



सचित्र सामाजिक मासिक पत्र

वर्ष ११, खण्ड २

मई, सन् १९३३ से अक्टूबर, सन् १९३३ ई० तक

सम्पादक—

मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

प्रकाशक—

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

वार्षिक चन्दा ६।।]

[छःमाही चन्दा ३।।]

Printed and Published for and on behalf of

THE CHAND PRESS, LIMITED

BY

Munshi NAUJADIK LAL SRIVASTAVA (Editor)

AT

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road—Chandralok

Allahabad



१—गद्य

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
१—अजमेर और पुष्कर	...	श्री० रामेश्वर ओझा, एम० ए०	६४१
२—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय	...	श्री० प्रभुदयाल मेहरोत्रा, एम० ए०	६१०
३—अस्पृश्यता-निवारण	...	श्री० राजेन्द्रलाल दास, बी० ए०	६४६
४—आस्ट्रेलिया की शासन-प्रणाली	...	श्री० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०	६११
५—इन्दुकला (कहानी)	...	श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०	६००
६—ईदगाह (कहानी)	...	श्री० प्रेमचन्द, बी० ए०	३६७
७—ईश्वर की उत्पत्ति	...	श्री० सत्यभक्त	६२७
८—कल्पना (कहानी)	...	श्री० वाचस्पति पाठक	४८६
९—कहानी-कला	...	श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए० ७२-१५८-२६६-४०१	१८१
१०—गर्भवतियों में भोजन-लालसा	...	श्री० ब्रजमोहन वर्मा	६७६
११—घरेलू दवाइयाँ	६२२
१२—चाँदनी रात में	...	श्री० प्रमोद	१०१-२१७-३३७-४५८-६६२-६८६
१३—चिट्ठी-पत्री	१३९
१४—चौपदों का चमत्कार	...	श्री० श्रीनाथ पाण्डेय, एम० ए०	६०
१५—जर्मनी का पुनर्संर्र्जन और विश्व-शान्ति	...	श्री० रामकिशोर मालवीय	२६०
१६—जापान का साम्राज्यवाद और चीन	...	श्री० रामकिशोर मालवीय	५३
१७—ज्योति (कहानी)	...	श्री० प्रेमचन्द, बी० ए०	३७५
१८—टर्कों का पुनर्निर्माण	...	श्री० शिवनारायण टण्डन	६१९
१९—ताजमहल के बनाने वाले कौन थे ?	...	श्री० विक्रमादित्यसिंह निगम, एम० ए०	४८६
२०—दिल्ली की अन्तिम ज्योति	...	श्री० लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज	७८-१७२
२१—दीप-शिखा	...	श्री० प्रमोद	२२५
२२—दुबे जी की चिट्ठी	...	श्री० विजयानन्द दुबे	८
२३—देवता (कहानी)	...	श्री० धनीराम प्रेम	६१६
२४—देवताओं की उत्पत्ति	...	श्री० सत्यभक्त	१४
२५—द्वितीय चैम्बर	...	श्री० प्रभुदयाल मेहरोत्रा, एम० ए०	२२२
२६—द्विवेदी मेला में श्री० जी० पी० श्रीवास्तव	...	'चाँद' के एक प्रतिनिधि	४३१
२७—नरपशु (कहानी)	...	श्री० मोहनलाल महतो 'वियोगी'	६०६
२८—नेपोलियन की महत्ता	...	श्री० गणेश पाण्डेय	३६
२९—नैपाल	...	श्री० सेठ लक्ष्मणप्रसाद	

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
३०—परिवर्तन (कहानी) श्री० वीरेश्वरसिंह, बी० ए० ५५३
३१—पाप की छाया (कहानी) श्री० वाचस्पति पाठक २७३
३२—पुरस्कार-प्रतियोगिता १११-३४७-५८१	...
३३—प्रभाव (कहानी) श्री० विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक	... १३२
३४—प्रलय श्री० सत्यभक्त २६०
३५—प्राचीन काल की विवाह-प्रथा श्री० सत्यभक्त ३९३
३६—प्रेम-लोक में प्रेत श्री० 'नरेन्द्र' ६३७
३७—फतेहपुर सीकरी श्री० विक्रमादित्यसिंह निगम, एम० ए० ५२४
३८—बहाना (कहानी) श्री० केशवराम गुप्त, विशारद, बी० ए०, एल्-एल् बी० ६६८
३९—बाल-स्मृति श्री० भगवतशरण उपाध्याय ३००
४०—भूल (कहानी) श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद २०६
४१—भूल (कहानी) श्री० विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक	... ३८६
४२—मनुष्य का आविर्भाव श्री० सत्यभक्त ३१
४३—मुमताज़महल श्री० जयनारायण कपूर, बी० ए०, एल्-एल् बी०	... ६१५
४४—मैत्रेयी और अमृतत्व श्री० मैथिलीशरण 'नेहनिधि'	... ४४५
४५—मौण्डिसरी की शिक्षा-पद्धति का मनोवैज्ञानिक आधार प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार	... ६०४
४६—राज्य-संस्था श्री० चन्द्रराज भगदारी, विशारद	... ५०१
४७—लालारूप (कहानी) श्री० धनीराम प्रेम	... २५०
४८—वर्तमान मुस्लिम-जगत् डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट् ४५-१८८-३०८
४९—वर्तमान जाति-भेद और उससे हानियाँ श्री० नोलेजाल शर्मा, काव्यतीर्थ	... ४६५
५०—विवाह और काम्हा (कहानी) श्री० पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए०, एल्-एल् बी०	... १९५
५१—विश्व-वीणा ६७३
५२—विश्व-रचना श्री० सत्यभक्त १६४
५३—श्रीकुमार जी और उनकी रूप-राशि श्री० बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक', विशारद	... १६
५४—श्रीजगद्गुरु का कृतवा हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष	... ११२-२३३-४६४-५८२-६६६
५५—श्रीनाथद्वारे की कथा श्री० शिवनारायण टण्डन	... ५२९
५६—सङ्गीत-सौरभ श्री० नीलू बाबू	... ६७-३४५-४४६-५७७
५७—सन्तति-निग्रह श्री० धनीराम प्रेम	... ६६
५८—समाज की चिन्ता (कहानी) श्री० सोमदेव, बी० ए०	... २३
५९—समाजगत यूरोपीय राजनीतिक सिद्धान्त श्री० शङ्करदयालु श्रीवास्तव, एम० ए०	... १४३
६०—साहित्य-संसार १०८-२२९-३४३-४५३-५७१-६८९	...
६१—सिनेमा तथा रङ्गमञ्च श्री० धनीराम प्रेम ; श्री० सतीशचन्द्रसिंह ; श्री० देवदत्त मिश्र	... ८९-३४१-४५०-५५९-६७९
६२—सौदा (कहानी) श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद	... ३२९

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
६३—सौ वर्ष पूर्व दिल्ली के लाल क़िले में	...	श्री० बनारसीदास, बी० ए०	४०८
६४—स्वामी चौखटानन्द	...	श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल् बी०	४१७-५३७-६१२
६५—स्वास्थ्य और सौन्दर्य	...	श्री० बुद्धिसागर वर्मा, बी० ए०, एल्० टी, विशारद;	
		श्री० जयकृष्ण शर्मा वैद्य	४३९-४७८
६६—हत्या (कहानी)	...	श्रीमती शिवरानी देवी	११३
६७—हरिजन-आन्दोलन की कार्य-पद्धति	...	श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०	२८५
६८—हिन्दी-साहित्य में गद्य-काव्य	...	श्री० मोतीलाल मेनारिया, एम० ए०	३८०

रङ्ग-भूमि

(सम्पादकीय)

क्रमाङ्क	लेख	पृष्ठ	क्रमाङ्क	लेख	पृष्ठ
६९—अनुचित प्रतियोगिता का अन्त	...	११८	१३—बेकारी और ठगी	...	३५४
७०—अन्तर्जातीय विवाह	...	४७३	१४—भारतवर्ष और वायुयान	...	३५३
७१—अन्धविश्वास की बलि	...	६६८	१५—भारत में मोटरों का व्यवसाय	...	४७२
७२—इनकम-टैक्स वालों की धाँधली	...	४६१	१६—भारतीय कोयले के व्यवसाय की दुरवस्था	...	६६७
७३—एक उपयुक्त प्रस्ताव	...	४७५	१७—भावी सुधार-योजना और स्त्रियाँ	...	४७४
७४—एशिया की एकता	...	६९४	१८—महात्मा गाँधी का उपवास	...	२३५
७५—क़र्ज़ देने वाले 'काबुली'	...	४९०	१९—महिला कवि-सम्मेलन	...	११९
७६—क्रान्त की लीला	...	११६	१००—"थलो जर्नलिज़्म"	...	४८६
७७—खादी की रक्षा	...	६६६	१०१—यूरोप में प्रजातन्त्रवाद की दुर्गति	...	४८५
७८—जापान की नृशंसता	...	२३७	१०२—रोग का सच्चा निदान	...	४६६
७९—जापान और भारत	...	६९५	१०३—वर्णाश्रम स्वरज्य-सङ्घ की श्रेणी	...	५९१
८०—जापानी वस्त्र पर कर-वृद्धि	...	३५०	१०४—विदेशी कम्पनियों की लूट	...	४७१
८१—जीव-दया का ढोंग	...	४७२	१०५—विधवाश्रमों के नाम पर प्रपञ्च	...	६६३
८२—डॉक्टर चिकित्सा की कायापलट	...	४८७	१०६—विश्व-आर्थिक कॉन्फ़ेरेन्स	...	४७३
८३—दवाओं के विज्ञापन	...	४८८	१०७—शक्कर के व्यवसाय का भविष्य	...	४६७
८४—दहेज़ की राक्षसी प्रथा	...	६९७	१०८—शान्ति की दुराशा	...	११७
८५—द्विवेदी मेला	...	२३६	१०९—शिक्षा-प्रचार में एक बड़ी बाधा	...	६९२
८६—देशी राज्यों को चेतावनी	...	२३७	११०—श्रीमती एनी बेसेण्ट का स्वर्गवास	...	६९८
८७—देशी राज्यों की रक्षा का वास्तविक उपाय	...	३५२	१११—श्री० सेनगुप्त का स्वर्गवास	...	४७६
८८—धूम्रपान-निषेधक बिल	...	३५६	११२—सहशिक्षा की उपयोगिता	...	४७०
८९—नैपाल में समाज-सुधार	...	३५५	११३—सिन्ध में शक्कर बनाने की कम्पनी	...	२३८
९०—न्याय का पक्षपात	...	३५६	११४—स्वर्गीय डॉक्टर लीलावती	...	२४०
९१—पक्ष-पराग	...	११८	११५—स्वागत	...	६६६
९२—बम्बई में बेत की सज़ा	...	४८९	११६—हैदराबाद के हिन्दू	...	११४

3

क्रमाङ्क	लेख	पृष्ठ	क्रमाङ्क	लेख	पृष्ठ
१४५	जन-संख्या का प्रश्न	४७८	१४८	सन्तान-निग्रह आन्दोलन पर एक दृष्टि	२४२
१४६	भविष्य की स्त्रियाँ	१२२	१४९	संयुक्त-प्रान्त में स्त्री-शिक्षा	५६४
१४७	श्रमजीवी और गृह-समस्या	३५८	१५०	हमारी शिक्षा-प्रणाली	"

२—पद्य

क्रमाङ्क	कविता	रचयिता	पृष्ठ
१—अनुरोध श्री० 'निर्मल'	... २४१
२—अनुरोध श्री० उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव	... २८९
३—अनूठे अगुवा श्री० 'रसिकेन्द्र'	... १७१
४—अन्तर श्री० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	... २९९
५—अन्तर्वेदना " " "	... ५२८
६—अपने मीत से श्री० मोहनलाल महतो 'वियोगी'	... २०८
७—अश्रु-विन्दु 'एक व्यथिता'	... ७१
८—आँसू श्रीमती कमलादेवी राय	... २४६
९—आँसू " " "	... ४२०
१०—उस पार श्री० 'नरेन्द्र'	... २५६
११—कसक श्री० मदनमोहन मिहिर	... ३९२
१२—केसर की क्यारी कविदर "बिस्मिल" इलाहाबादी १०७-२१२-३४९-४६३	...
१३—गीत श्री० 'नरेन्द्र'	... ५२३
१४—चन्द्र-कलङ्क- श्री० बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक', विशारद	... ६१८
१५—चित्र-रेखा श्री० रामकुमार वर्मा, एम० ए०	... ३५७-४७७
१६—तिरस्कृत श्री० रमाशङ्कर मिश्र 'श्रीपति'	... ३६६
१७—तु और मैं श्री० कपिलदेव नारायणसिंह 'सुहृद'	... २२८
१८—दुखता दिल श्री० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	... १
१९—नववधू के प्रति श्री० चन्द्रनाथ मालवीय 'वारीश'	... ६२१
२०—नारी-जीवन श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव	...
३८-२३०-३३४-४५६-५५६-६८३			
२१—निद्रा से— श्री० प्यारेलाल श्रीवास्तव 'सन्तोषी'	... ५६१
२२—निर्झर के प्रति श्री० हर्षवर्द्धन नैषाणी, बी० एस्-सी०	... ५६२
२३—पनिहारी श्री० मोहनलाल महतो 'वियोगी'	... ५६३
२४—परदेशी श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०	... ५५२
२५—परिवर्तन श्री० सीताराम 'प्रभास'	... ८२
२६—प्रणय-प्रभात श्री० उमेशचन्द्र देव	... १५७
२७—प्रेम की रीति श्रीमती सुन्दरकुमारी देवी	... ५९
२८—प्यार श्री० महावीरप्रसाद पाण्डेय	... ६०९
२९—बाग श्री० मदनमोहन मिहिर	... ६५
३०—बीसवीं सदी का बसन्त श्री० 'रसिकेन्द्र'	... ३०
३१—भिलारी श्री० कपिलदेव नारायणसिंह 'सुहृद'	... ५००
३२—मधुकण श्री० मोहनलाल द्विवेदी	... १३१
३३—मनोवेदना श्री० कविराज उमेशचन्द्रदेव	... ६४०
३४—मस्तक का सुभग-सुहाग 'एक व्यथिता'	... ५१५
३५—महत्वाकांक्षी से श्री० उमेशचन्द्रदेव	... २८०

क्रमाङ्क	कविता	रचयिता	पृष्ठ
३६	मातृमण्डल	... श्री० रामचरित उपाध्याय	... १३८
३७	सुट्टी भर हाड़ में	... श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०	... ४१२
३८—मेरा जीवन श्री० शरदाप्रसाद भण्डारी	... ४०७
३९—मेरी बात कुमारी शान्ति देवी भार्गव	... ४५२
४०—रूप-राशि श्री० रामकुमार वर्मा, एम० ए०	७-१२१-३०७
४१—वर्षा श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव	... ४४०
४२—विजया का सन्देश श्री० अम्बिकाप्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश'	... ६६७
४३—विधवा श्री० वीरेश्वरसिंह	... २७२
४४—विधवा की अन्तिम चेतावनी श्री० देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, एल्-एल् बी०	... ४९४
४५—विनय श्री० राजनाथ पाण्डेय	... १८
४६—विस्मरण श्री० 'निर्मल'	... १३
४७—विवाह के प्रति श्री० 'केसरी'	... १६८
४८—सङ्कोच श्री० कालीप्रसाद 'विरही'	... २५५
४९—साध श्री० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा	... ६२
५०—सावन श्री० परमानन्द शुक्ल	... ४३७
५१—सौन्दर्यमयी से— श्री० नर्मदाप्रसाद खरे	... ६२८
५२—हे मौलसिरी ! श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०	... ६५५



३—चित्र-सूची

क्रमाङ्क	चित्र
	तिरङ्गे
१—अन्तिम अवलम्ब	
२—क्रीडारता	
३—चित्रकार का आदर्श	
४—फरा हुआ फूल	
५—परलोक-चिन्तन	
६—प्रदीप-प्रकाश	
७—अमर की आशा	
८—सुग्धा	
९—सुरली-वादन	
१०—राजपूताना का आवरण-नृत्य	

क्रमाङ्क	चित्र
११—शाम की निमाज	
१२—सद्यःस्नाता	
	सादे
१३-१९—भिन्न-भिन्न स्त्री-पुरुषों के चित्र, भ्रूप तथा हरय आदि ८७ चित्र ।	
	कार्टून
१००-१०७—नाम बड़े और दर्शन थोड़े—८ चित्र	
१०८-१०९—भीतर और बाहर—२ चित्र	
११०-११३—वर्तमान समाज के अपूर्व जोड़े—४ चित्र	
११४—समाज-सुधारक और अछूत	
११५—साहित्यिक सद्भाव	





विभाग को कदाचित् ही ध्यान आता हो। वह केवल कुछ नियत पुस्तकें बालकों को रटा कर तथा परीक्षा लेकर उनको डिग्री दे देता है और इसीमें अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। डिग्री पाने के पश्चात् वे बालक या युवक जीवन-क्षेत्र में कुछ करके दिखा सकेंगे या नहीं, अपने देश और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन कर सकेंगे या नहीं, अथवा केवल अपना पेट भी भर सकेंगे या नहीं, इसकी उसको कुछ भी चिन्ता नहीं होती। वह इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देता कि ये बालक ही राष्ट्र की सब से बड़ी सम्पत्ति हैं और इन्हीं पर उसका उत्थान और पतन निर्भर है। इसकी आशा भी किस प्रकार की जा सकती है, जब इस शिक्षा-प्रणाली का जन्म ऐसे व्यक्तियों के हाथों से हुआ है, जिनका उद्देश्य ही सरकारी ऑफिसों के लिए क्लर्क तैयार करना, शिक्षित लोगों को यूरोपियन रहन-सहन का चस्का लगा कर विलायती माल की खपत बढ़ाना, और साथ ही मौका लगे तो उनको अपने धर्म में दीक्षित कर लेना था। इसकी पुष्टि के लिए इस शिक्षा-प्रणाली के आदि प्रचारक लॉर्ड विलियम बैण्टिन्क के सम्बन्ध में एक अङ्गरेज़-लेखक की निम्नलिखित सम्मति पर्याप्त है :—

“अङ्गरेज़ी भाषा के समर्थकों की दलीलों से बैण्टिन्क को यह अनुभव हुआ कि अङ्गरेज़ी द्वारा शिक्षा प्रदान करने से एक बड़ी समस्या हल हो जायगी, जो कि उस समय उसके सामने मौजूद थी। यह समस्या थी, कम्पनी के कार्य के लिए योग्य और विश्वासपात्र देशी कर्मचारियों का मिल सकना। × × × इसके सिवाय आर्थिक दृष्टि से भी, जो बैण्टिन्क में प्रचुर परिमाण में पाई जाती थी, यह प्रस्ताव लाभदायक था। इस देश में अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रचार होने से यहाँ के निवासियों का व्यापारिक सम्बन्ध यूरोपियन देशों से बढ़ना सुनिश्चित था, जिससे कम्पनी की आय बढ़ने की पूरी आशा थी।”*

धर्म-सम्बन्धी उद्देश्य के सम्बन्ध में भारतीय शिक्षा-प्रणाली के सुप्रसिद्ध जनक मैकॉले का निम्न-लिखित उद्गार ध्यान देने योग्य है :—

* “The Education of India” by Arthur Mayhew, C. I. E. Late Director of Public Instruction, Central Provinces (page 18).

“कोई भी हिन्दू, जिसने अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त कर ली है, अपने धार्मिक अनुराग को कदापि अश्रुण नहीं रख सकता × × × मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा-प्रणाली की योजना पर अमल किया जाय, तो तीस वर्ष के भीतर बङ्गाल की उच्च जातियों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं बचेगा।”

जिस शिक्षा-प्रणाली की नींव इस प्रकार के विचारों से ढाली गई हो, उससे यह आशा करना व्यर्थ है कि वह ऐसे नागरिक उत्पन्न करेगी, जो संसार में कुछ महत्वपूर्ण कार्य करके अपना और अपने देश का गौरव बढ़ाएँगे। यह सच है कि बैण्टिन्क और मैकॉले के ज़माने से अब तक अनेक परिवर्तन हो चुके हैं और भारतीय शिक्षालयों की अवस्था में भी बहुत-कुछ उन्नति हुई है, पर हमें खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि शिक्षा-प्रणाली के मूल उद्देश्य में बहुत कम अन्तर पड़ा है और वह अब भी अधिकांश में छोटे या बड़े नौकर तैयार करने की मैशीन ही बनी हुई है। इसके विरुद्ध यह दलील देना व्यर्थ है कि इन्हीं शिक्षालयों से तिलक, गाँधी, रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बोस जैसे जगतप्रसिद्ध व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं। भारतीय यूनिवर्सिटियों तथा कॉलेजों से अब तक लाखों ग्रेजुएट और अगडर-ग्रेजुएट निकले हैं, यदि उनमें से दस-बीस उन्नति के शिखर पर जा पहुँचे, तो इसका श्रेय इस शिक्षा-प्रणाली के बजाय उनकी प्रकृतिदत्त प्रतिभा को ही मिलेगा।

भारतीयता का अभाव

इस देश में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में सबसे बड़ा अभाव भारतीयता का है। उसमें इस देश के निवासियों के जातिगत आदर्शों और आकांक्षाओं का बहुत ही कम चिह्न मिलता है। भारतीय यूनिवर्सिटियाँ यहाँ के युवकों को शेक्सपियर, मिस्टन, बायरन आदि के ग्रन्थों का तो ज्ञान करा देती हैं, पर बाल्मीकि, कालिदास और भवभूति ने जिस अमूल्य साहित्य का निर्माण किया है, उसका कुछ भी परिचय नहीं कराया जाता। रोम और ग्रीस के पुराने इतिहास विद्यार्थियों के मस्तिष्क में डूँसे जाते हैं, पर महाभारत का अध्ययन करने का मौका उनको कभी नहीं मिलता। वे लोग अपने पूर्वजों के बारे में कुछ नहीं जान पाते, और यदि कुछ जानते भी



हैं तो यही कि वे अर्द्ध-सभ्य, अशिक्षित और कुसंस्कारा-कुल थे। इस प्रकार अपने भूतकालीन इतिहास से अनभिज्ञ रहने तथा अपने को एक पिछड़ी हुई जाति का वंशज समझने से उनमें स्वाभिमान का भाव प्रायः रूपरूप ही नहीं हो पाता और वे अपनी वर्तमान दुर्दशा को स्वाभाविक समझने लगते हैं। भारतीय नवयुवकों के लिए वास्तव में किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे वे सच्चे अर्थ में भारतीय नागरिक बन सकें, इसकी विवेचना करते हुए आधुनिक भारतीय अधि श्री० टी० एल० वस्त्वानी लिखते हैं :—

“भारत के लिए जो कोई भी शिक्षा-प्रणाली रची जाय, उसमें भारत को सर्व-प्रधान स्थान मिलना अत्यावश्यक है। मेरी सम्मति में शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य में कर्तव्यशीलता की उत्पत्ति और आत्म-विकास ही है। इसलिए हमारे भूतकालीन राष्ट्रीय महत्व तथा हमारे इतिहास की उपेक्षा करना किसी दशा में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षकों और विद्यार्थियों को इस बात का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए कि संसार के ज्ञान-भण्डार में हमारे पूर्वजों का कितना भाग है। भारतीय इतिहास तथा भारतीय आदर्शों की अवश्य ही ऐसे सम्मानोत्पादक ढङ्ग से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को अपनी सच्ची अवस्था का ज्ञान हो तथा उनके हृदयों में देशभक्ति का सञ्चार हो। अभी तक स्कूल और कॉलेजों में भारतीयों की प्राचीन आकांक्षाओं तथा आदर्शों का आशय सर्वथा विपरीत समझाया गया है। उदाहरणार्थ भारतीय विद्यार्थियों को पढ़ाई जाने वाली एक पुस्तक में लिखा है :—‘ब्राह्मण केवल अपने लिए जीवित रहते हैं। दया और अनुकम्पा के भाव, जहाँ तक उनका सम्बन्ध दूसरों से होता है, उनको छू भी नहीं जाते। वह एक कष्ट-पीड़ित व्यक्ति को सड़क पर या अपने मकान के दरवाजे पर ही तड़पता देखा करेगा, पर यदि वह किसी अन्य जाति का होगा तो उसकी सहायता को कभी हाथ न बढ़ाएगा, न उसे एक बूँद पानी देगा।’ इस प्रकार वास्तविकता को तोड़-मरोड़ कर लिखे गए इतिहास के पढ़ने से हमारे विद्यार्थियों के हृदय में अपने देश के प्रति क्या आदर उत्पन्न हो सकता है और बढ़े होकर वे इससे अपने जीवन की क्या उन्नति कर सकते

हैं ? × × × कितने ही अङ्गरेजी अधिकारियों ने स्वीकार किया है कि अङ्गरेजी शिक्षा केवल इहलौकिक है और उसका प्रभाव भारतवर्ष के लिए नाशकारी है। शिक्षा-विभाग में काम करने वाले भारतीय भी इस देश के इतिहास की खेदजनक उपेक्षा करते हैं। कितने ही लोग प्रायः यह कहते हुए खुने गए हैं कि ‘प्राचीन भारत का कोई इतिहास ही नहीं है !’ हमारी जातीयता के विकास का ज्ञान हो सके, इस दृष्टि से इतिहास का अध्ययन नहीं किया जाता। ऐसे कितने भारतीय विद्यार्थी हैं, जिन्होंने जनक, राम और अशोक की जीवनियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया हो ? हमारे स्कूलों और कॉलेजों में हमारे राष्ट्रीय नायकों के चरित्र पढ़ाए ही नहीं जाते। परन्तु आवश्यकता है कि इस देश के बालकों को ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जायें, जिनमें आधुनिक भारत के प्रसिद्ध देशभक्त पुरुषों के चरित्र कहानियों के रूप में दिए गए हों। केवल इसी विधि से विद्यार्थियों के हृदय में भारतीय आदर्शों के अनुकूल भावना जाग्रत हो सकती है और ऐसे चरित्र का विकास हो सकता है, जिसमें आदर्शवाद पर्याप्त मात्रा में पाया जाय। इसी उपाय से विद्यार्थियों को शिक्षा देने से उनमें भारतीयपन की भावना का जन्म हो सकता है, विशुद्ध देशभक्ति उत्पन्न हो सकती है और वे भारत की उपासना करना सीख सकते हैं।”

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली को सङ्कीर्ण बना दें। ऐसी राष्ट्रीयता, जो किसी जाति को संसार के अन्य भागों से पृथक् कर देती है, स्वयम् अपने ही लिए घातक है। उदाहरणार्थ भारत में इस समय जिस स्वाधीनता के भाव ने जन्म लिया है, उसका मुख्य आधार पश्चिमी शिक्षा ही है। यदि हम प्राचीनता के नाम पर पश्चिमी शिक्षा के इस सद्गुण से लाभ न उठाएँ तो हम दास-वृत्ति वाले ही बने रहेंगे और हमारा विकास बहुत-कुछ रुक जायगा। वास्तव में ज्ञान और विज्ञान किसी एक देश की नहीं, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। प्राचीन भारत के निवासी किसी अन्य देश वालों से किसी नवीन विद्या और कला के सीखने में सङ्कोच नहीं करते थे। हमारे प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि उन लोगों ने कितनी ही कलाएँ ‘यवनों’ से सीखी थीं। वास्तव में उन्नति का मूलमन्त्र यही है कि



अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए जो सद्गुण नहीं मिले ग्रहण कर लिया जाय और उसे अपनी सभ्यता के अनुरूप सौँचे में ढाल लिया जाय। वर्तमान समय में यूरोप के विज्ञान, शिल्पकला तथा राजनीति आदि से हम बहुत-कुछ लाभ उठा सकते हैं और उनकी सहायता से अपनी भ्रष्टियों को दूर कर सकते हैं, इसी प्रकार वहाँ की शिक्षा-संस्थाओं के सङ्गठन से भी हम कितनी उपयोगी बातें ग्रहण कर सकते हैं।

व्यवहारिक शिक्षा का अभाव

हमारी शिक्षा-प्रणाली में दूसरी बड़ी कमी व्यवहारिकता का अभाव है। हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, उसमें से बहुत थोड़ा अंश ऐसा होता है, जो सांसारिक जीवन में प्रवेश करने के बाद भी काम में आता है। अन्यथा अधिकांश बातें ऐसी ही होती हैं, जिन्हें विद्यार्थी परीक्षा-भवन तक ही याद रखते हैं और ज्योंही उनको डिग्री प्राप्त हो जाती है, तमाम रटी हुई बातें दिमाग से उड़ जाती हैं। अगर हमारी शिक्षा में कुछ तथ्य होता, तो वह अवश्य ही आजन्म हमारा साथ देती।

उदाहरणार्थ इस समय हमारे देश को जिस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है, वह व्यवसाय की उन्नति है। बिना उद्योग-धन्धों की वृद्धि हुए हमारे देश की आर्थिक अवस्था नहीं सुधर सकती और आर्थिक अवस्था का सुधार हुए बिना उन्नति की कल्पना करना निरर्थक है। इस देश में जो लोग कल-कारखानों में काम करके जीविकोपार्जन करते हैं, उनकी संख्या केवल १७-१८ लाख होगी। ३५ करोड़ की आबादी के देश में यह संख्या कितनी कम है, इसकी कल्पना वे लोग सहज में कर सकते हैं, जिनको संसार के व्यवसायिक देशों का कुछ हाल मालूम है। इस देश के विद्यालयों में इस विषय की जो शिक्षा दी जाती है, वह बहुत अल्प और असन्तोषजनक है। अगर यूनीवर्सिटियाँ साहित्य और कानून की शिक्षा में जो समय और धन खर्च करती हैं, उसका एक अंश यन्त्र-कला, विद्युत्, खान, धातु-विद्या तथा रसायन-शास्त्र की व्यवहारिक शिक्षा देने में खर्च करें, तो इस देश में कुछ ही समय में अनेक नवीन कारबारों की सृष्टि हो सकती

है और जो लोग इस तरह के कारखाने खोलना चाहते हैं, उनको बहुत बड़ी रकम खर्च करके विदेशों से विशेषज्ञ बुलाने के बजाय इसी देश में साधारण वेतन पर योग्य कर्मचारी मिल सकते हैं।

इसी प्रकार जिस खेती पर इस देश का मुख्य आधार है, उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है। यहाँ के किसान अपनी फसल के लिए केवल वर्षा पर आधार रखते हैं और इसलिए उनको साल में छः महीने निकम्मा रहना पड़ता है। अगर यहाँ के नवयुवकों को कृषि-सम्बन्धी रसायन-शास्त्र की शिक्षा दी जाय तथा मैशीनों और खाद का उचित रूप से उपयोग करना सिखलाया जाय, तो इस व्यवसाय की दशा में बहुत सुधार हो सकता है। इसके लिए सिंचाई की कला की शिक्षा का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है।

नियन्त्रण

शिक्षा प्राप्त करने का एक बड़ा उद्देश्य अपने भीतर नियन्त्रण अथवा आज्ञा-पालन का भाव उत्पन्न करना है। जो जातियाँ इस समय उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई हैं, उन सब में प्रायः यह गुण पाया जाता है। इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान आदि किसी देश के युवकों को देखिए, आज्ञापालन का भाव उनमें अवश्य पाया जायगा। इंग्लैण्ड ने जिस गुण की बढौलत अपना साम्राज्य संसार के कोने-कोने में फैला दिया है और अपने से कहीं अधिक विशाल देशों का स्वामी बना बैठा है, उसका प्रधान कारण वहाँ के निवासियों में इस भाव की प्रबलता ही है। यदि हम वास्तव में स्वभाग्य-निर्णय के अभिलाषी हैं और दूसरों की मातहतता में रहने के बजाय अपने घर का स्वामी स्वयम् बनना चाहते हैं, तो हमको अङ्गरेजों से यह गुण अवश्य ग्रहण करना चाहिए। इस गुण के अभाव के कारण ही प्राचीन काल में हम अपने ऊपर आक्रमण करने वालों का प्रायः सफलतापूर्वक मुकाबला न कर सके थे। क्योंकि जिन लोगों में आज्ञापालन का अभाव है, उनमें सङ्गठन-शक्ति, एकता, उद्देश्य की एकाग्र साधना आदि गुण भी उत्पन्न नहीं हो सकते और इनके बिना विजय कैसे सम्भव हो सकती है? आज्ञापालन के भावयुक्त एक छोटा सा दल मनमाने ठग से कार्य करने वाले तथा असङ्गठित लोगों के एक बहुत



बड़े समूह के सहज में छुटके छुड़ा सकता है। काङ्ग्रेस के जनक समझे जाने वाले तथा भारतवासियों के सच्चे हितैषी मि० ह्यूम प्रायः यहाँ के राजनीतिक कार्यकर्ताओं की शिकायत करते हुए कहा करते थे कि “जिनको मैंने फौजादी ज़ज़ीर समझा था, वे सड़ी-गली रस्सियाँ निकले।” इस सम्बन्ध में देश के एक विद्वान् सम्पादक की निम्न-लिखित सम्मति सब श्रेणियों के व्यक्तियों और विशेषकर नवयुवकों को स्मरण रखने योग्य है :—

“इसमें सन्देह नहीं कि पिछले दिनों में हमारे देश ने शिक्षा और आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत-कुछ उन्नति की है, पर यदि हमारे भीतर आज्ञापालन का भाव न होगा और हम किसी योग्य नेता की अध्यक्षता में नियन्त्रित ढङ्ग से कार्य करना न सीखेंगे, तो हमारी अब तक की चेष्टा का कुछ भी फल न मिल सकेगा। श्री० रानाडे अपने देशवासियों से प्रायः कहा करते थे, और उनका कहना निरर्थक न था, कि अङ्गरेज़ इस देश में शासक और शिक्षक दोनों की हैसियत रखते हैं। अपनी घुटियों का ज्ञान होना; आत्म-शिक्षा तथा दूसरों से ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव करना, अपने नेता की आज्ञा मानना तथा उसमें भक्ति रखना; उचित निर्णय तथा अपने विवेक के अन्तर को समझना। जिससे अपने से अधिक अनुभवी लोगों के विचारों के प्रति ‘आत्मा की पुकार’ के नाम पर अवहेलना का भाव प्रदर्शित न किया जाय; अपने प्राचीन विनय तथा सम्मान के भाव की रक्षा करते हुए अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहना—ये सब गुण मेरी सम्मति में आज्ञा-पालन से सम्बन्ध रखते हैं। इसी महान गुण को हमें परिश्रम-पूर्वक अपने राष्ट्र में उत्पन्न करना है; क्योंकि इसी के द्वारा देश-भक्त पुरुषों और महिलाओं का मातृभूमि के लिए किया गया अकथनीय बलिदान सार्थक हो सकेगा।”

देशभक्ति

वर्तमान समय में सभी स्वाधीन देशों की शिक्षा-प्रणाली में सबसे अधिक ध्यान जिस विषय पर दिया जा रहा है, वह बालकों के हृदयों में देशभक्ति का बीज बो देना है। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए अधिकांश देश शिक्षा-कार्य को जहाँ तक सम्भव होता है, सरकारी अधिकार में रखने की चेष्टा करते हैं और बालकों को

आरम्भ ही से बतलाया जाता है कि अपनी मातृभूमि के प्रति उनका क्या कर्तव्य है। ये बालक जब बड़े होते हैं तो उनको इस बात का सदैव ध्यान रहता है कि वे स्वयम् अथवा अन्य कोई व्यक्ति ऐसा काम न करें जिससे उनकी मातृभूमि का अपमान हो अथवा उसकी उन्नति में बाधा पड़े। वे सदैव अपने देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना तथा अपने देश-भाइयों के कल्याण की चेष्टा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। जब संसार के स्वाधीन तथा सम्पन्न देश अपने बालकों को देशभक्ति की शिक्षा देना इतना आवश्यक समझते हैं, तो भारत जैसे परावलम्बी तथा अवनति के गढ़ में गिरे देश में इस पर जितना अधिक बल दिया जाय कम है। पर खेद है कि हमारे यहाँ के अधिकांश शिक्षक इस शब्द से भूत की तरह भागते हैं और बालकों के सामने कभी इसको उच्चारण भी नहीं करते। इतना ही नहीं, वरन् यदि संयोगवश किसी बालक में स्वभावतः इसका चिन्ह दिखलाई पड़ता है, तो उसे बलपूर्वक दवाने की चेष्टा की जाती है अथवा उसे अन्य बालकों से इस प्रकार अलग कर दिया जाता है, जिस प्रकार छूत के रोग वाले रोगी को सबसे पृथक् रखा जाता है। हमारा आशय यह नहीं है कि बालक अपनी पढ़ाई छोड़ कर राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने लगे अथवा वे उपद्रवकारियों के साथी बन जायें, पर देशभक्ति का जो आदर्श मनुष्य के हृदय में श्रेष्ठ भावनाएँ उत्पन्न करता है तथा अपने भाइयों के कल्याण लिए अधिक से अधिक स्वार्थ-त्याग करने की शिक्षा देता है, उससे राष्ट्र के बालकों को वञ्चित रखना अवश्य ही अभाग्य का विषय है। ऐसे देशभक्ति के भाव से शून्य बालक जब बड़े होंगे, तो उनसे सिवा अपने स्वार्थ-साधन के किसी परोकार के कार्य की क्या आशा की जा सकती है ?

चरित्र

अधिकांश सांसारिक व्यक्ति किसी देश या समाज के बड़प्पन की जाँच उसकी सम्पत्ति तथा वैभव से करते हैं, पर यह बड़ी भूल है। प्रत्येक जाति की सब से बड़ी सम्पत्ति उसके युवक-युवतियों का चरित्र-बल ही है। केवल ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही किसी जाति की शक्ति नहीं बढ़ सकती। इसके लिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता



है, जो हमको वास्तव में मनुष्य बनावे। शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य छात्रवृत्ति प्राप्त करना अथवा बड़ी नौकरी पालेना नहीं है, वरन् अपना चरित्र-निर्माण करना ही है। इस दृष्टि से हमारे यहाँ के विद्यार्थियों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं समझी जा सकती। स्कूलों में पढ़ने वाले बालकों के चरित्र-निर्माण के लिए शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने कोई प्रभावशाली योजना नहीं बनाई है और कुछ व्यक्तिगत रूप से चेष्टा करने वाले शिक्षकों को छोड़ कर कहीं इस सम्बन्ध में चेष्टा नहीं की जाती। इतना ही नहीं, अनेक शिक्षक स्वयम् बालकों के चरित्र को पतित करने वाले होते हैं। वे उनको साहसी तथा पुरुषार्थी बनाने के बजाय कायर तथा दुबू बनाते हैं और उनके सामने ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं, जिससे उनमें अनेक प्रकार के दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

सुधार का मार्ग

इस देश की शिक्षा-प्रणाली का सुधार करने के लिए इस क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों को—चाहे वे सरकारी हों अथवा गैर-सरकारी—दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक तरफ जहाँ उनको अधिक परिमाण में शिक्षा फैलाने की आवश्यकता है, दूसरी तरफ यह भी ज़रूरी है कि वह शिक्षा वास्तव में फलदायिनी तथा भारतीय नागरिकों के चरित्र को उन्नत बनाने वाली हो। जैसा कि तमाम पढ़े-लिखे लोगों को

विदित है ब्रिटिश भारत के निवासियों में से केवल ७॥ प्रति सैकड़ा किसी एक भाषा को साधारणतया पढ़-लिख सकने की योग्यता रखते हैं। इस दशा का मुकाबला जब अन्य देशों से किया जाता है तो ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखलाई पड़ता है। इस देश की ३५ करोड़ की आबादी में से जहाँ एक लाख युवकों को विश्वविद्यालयों में शिक्षा दी जाती है, वहाँ पाँच-छः करोड़ की आबादी वाले जापान में ५२ हजार विद्यार्थी विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यही दशा अमेरिका और इंग्लैण्ड आदि की है। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में तो विद्यार्थियों की संख्या ९ लाख से ऊपर है। इस दशा को देखते हुए यदि हम अपने देश को संसार के उन्नत राष्ट्रों के मुकाबले में बैठाने की अभिलाषा रखते हैं तो हमारा कर्त्तव्य है कि यहाँ की शिक्षा की गति को जहाँ तक बन सके तीव्र करें और स्कूलों की संख्या को कम से कम तिगुनी-चौगुनी कर दें। पर इस वृद्धि के साथ ही शिक्षा-प्रणाली का संशोधन करने तथा उसे सब प्रकार से श्रेष्ठ बनाने की बात भी याद रखनी आवश्यक है। क्योंकि केवल अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लेने से अथवा हिसाब-किताब सीख लेने से किसी व्यक्ति अथवा जाति की सच्ची उन्नति नहीं हो सकती। इसके लिए उन सब सद्गुणों को उत्पन्न करना आवश्यक है, जो मनुष्य को वास्तव में देश तथा समाज के लिए उपयोगी बनाते हैं।

ॐ

ॐ

ॐ

रूपराशि

[श्री० रामबुमार वर्मा]

नव वसन्त का पुलकित मन ।

कितने फूलों के भवनोंमें,

हँसता है ले नवजीवन ।

प्रिये ! शब्द प्रत्येक तुम्हारा,

है सुरभित सस्मित उपवन ।

केवल एक सुमन-यौवन,

रहने दो उसका कुसुमित धन !!

उसमें सुरभित सौँस सभी.....

(उफ, कैसा है मतवालापन) ।

यह घर बाल-विहंग है कैसे,

करे कलित कलरव कूजन ?



देवता

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]



कलने जब से होश सँभाला था, तभी से उसके कानों में इन शब्दों की झनकार सुनाई दी थी कि 'पति देवता है।' उसकी बहिनों के विवाह हुए थे, तब उसकी माता ने उन्हें यही पाठ पढ़ाया था। उसकी सहेलियाँ जब ससुराल के लिए विदा हो रही थीं, तब भी उसने इन्हीं पवित्र वाक्यों को सुना था। वह समझने लगी थी कि 'पति देवता है।' यह एक महामन्त्र था और विवाह के सूत्र में बँधने वाली प्रत्येक बालिका के लिए उस मन्त्र की दीक्षा लेना और जीवन-पर्यन्त उसे जपते रहने की आवश्यकता थी। इस प्रकार के वातावरण में पलने वाली अन्य बालिकाएँ इस मन्त्र को सुनती थीं और फिर भूल जाती थीं। कुछ उसे सुन कर उस पर हँस देती थीं। इसलिये नहीं कि उनके मन में उपेक्षा या घृणा के भाव उत्पन्न हो जाते थे, बल्कि इसलिये कि वे उस मन्त्र को एक रूढ़ि समझती थीं; एक लकीर, जिसको पीटना वे प्रत्येक स्त्री के जीवन का कर्तव्य समझती थीं, कुछ के लिए इस मन्त्र का समझना कठिन था, उसी प्रकार जिस प्रकार एक अबोध ब्राह्मण के लिए गीता के श्लोक। परन्तु न समझने पर भी वह ब्राह्मण निश्चय उनका जाप करता है, केवल इसीलिए कि उसे वह आवश्यक समझता है, इस श्लोक के लिए तथा

परलोक के लिए। उसी प्रकार वे बालिकाएँ भी बिना समझे अपने मूलमन्त्र का जाप करती थीं, केवल इसी-लिए कि ऐसा करना इहलोक तथा परलोक के लिए आवश्यक बताया जाता था।

परन्तु कला इन बालिकाओं से कुछ भिन्न थी। वह इस प्रकार के प्रश्नों पर कुछ विचार किया करती थी। उसने देवताओं के विषय में सुना था। वह जानती थी कि हिन्दुओं के तैंतीस कोटि देवता हैं, यद्यपि उसने नाम कुछ का ही सुना था। जिनके नाम उसने सुने थे, उनके विषय में कुछ और भी उसने सुना था। उसने अपनी बहिनों और कई सहेलियों के पतियों को भी देखा था। उसने कई बार इस प्रश्न पर विचार किया था कि इन पतियों और देवताओं में क्या समानता है। देवता लोग यश और कीर्ति का कोई काम कर चुके थे, परन्तु इन पतियों में से बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने एक भी यश का काम किया हो। देवताओं की पूजा सभी करते थे, परन्तु पतियों की सेवा करना केवल उसकी स्त्री का ही कर्तव्य बताया जाता है। क्या विवाह करने से ही प्रत्येक पुरुष को स्त्री का देवता होने का अधिकार मिल जाता है? फिर स्त्री को विवाह होने के बाद पुरुष की देवी होने का अधिकार क्यों नहीं मिलता? देवताओं की स्त्रियाँ तो देवियाँ मानी जाती हैं, परन्तु इन नर-देवों की स्त्रियों को उस पद से क्यों वञ्चित रक्खा गया है? यह कुछ समझ में नहीं आता। क्या केवल जिज्ञा-भेद ही इन



सबका कारण है ? क्या पुरुष ही यह पद पाने का अधिकारी है, स्त्री नहीं ?

नित्य इसी प्रकार के विचार कला के मन में आते, वह उन पर विचार करती, परन्तु उसे इन बातों के सन्तोषजनक उत्तर न मिलते। एक दिन उसने अपनी माता से इस विषय पर वार्तालाप करने का साहस किया।

“माँ !”—उसने सिटपिटते हुए कहा।

माँ ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखें कला से पूछ रही थीं कि उसे क्या पूछना था।

“पति देवता होता है न ?”

“हाँ !”

“सबका पति ?”

“सबका !”

“चाहे वह कैसा ही हो ?”

“चाहे वह कैसा ही हो। जिसके साथ सात भौंवर पड़ गईं, वह कैसा भी हो, स्त्री का वह सदा देवता है।”

“स्त्री उसकी देवी नहीं ?”

“भला यह कैसे हो सकता है ? स्त्री तो अपने पति के चरणों की दासी होती है।”

“पति का इतना ऊँचा दर्जा और स्त्री का इतना नीचा ?”

“यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है !”

“क्या यह बदल नहीं सकती ?”

“कैसी बातें करती है ? धर्म-कर्म की बातें भी बदला करती हैं ? जो बदल जाय वह धर्म कैसा ? जो पुरखा-पङ्क्त से चला आई है, उस मर्यादा का तो सदा पालन करना ही पड़ेगा। ज़बरदार, जो फिर ऐसी बातें ज़बान पर लाई। जो शास्त्रों के विरुद्ध बातें करते हैं, उन्हें नरक में भी स्थान नहीं मिलता !”

— कला चुप हो गई। ‘पति देवता है,’ यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है। धर्मशास्त्र की बात अमिट है। उसे कोई बदल नहीं सकता। उसने फिर कभी इस प्रकार की जिज्ञासा नहीं की। वह समझ गई कि उस प्रचलित प्रथा का उसे पालन करना ही पड़ेगा।

२

कला के विवाह का दिन आया। उसके लिए जिस देवता की सृष्टि की जा रही थी, उसका उसे कुछ भी

२

पता न था। जिन देवताओं की लोग पूजा करते हैं, उनके विषय में थोड़ा-बहुत पहले से ही अवश्य जानते हैं। कोई अपने देवता के किसी गुण पर रीढ़ कर उसकी पूजा करता है, कोई उसके द्वारा होने वाले उपकार की आशा से उसका भक्त बनता है। परन्तु कला को न तो अपने देवता के किसी गुण का पता था और न वह यही जानती थी कि उस देवता के द्वारा उसका क्या उपकार हो सकेगा। उसकी माता उसके हृदय में एक अनजाने और अनदेखे देवता के प्रति अन्धविश्वास और अन्ध-भ्रम का भाव भर रही थी। वह उसे उसी मूलमन्त्र का जाप बता रही थी, जिसका उपदेश प्रत्येक नव-विवाहिता युवती को दिया जाता था। कला के कानों में वही शब्द गूँजने लगे—‘पति देवता है, पति देवता है।’ वह जिस समय अपने सगे-सम्बन्धियों से विदा होकर अपने देवता के साथ जा रही थी, उस समय उसकी माता ने उसके कानों में फिर वही मूलमन्त्र फँका—

“पति देवता है, बेटी ! इस बात को सदा याद रखना !”

“चाहे वह कैसा ही हो ?”

“कैसा ही हो !”

“चाहे वह दुराचारी हो, पर-स्त्री-गामी हो, शराबी हो ?”

“देवता के दोष देखने का भक्त को अधिकार नहीं !”

“उसकी पूजा करना ही उसका धर्म है ?”

“हाँ ! वह सब कुछ देती है, पर किसी चीज़ की मासि की प्रत्याशा नहीं कर सकती। उसके पास जो कुछ है, देवता की पूजा के लिए है !”

“देवता को पूजा की जो सामग्री चाहिए, वही चढ़ाना उसका धर्म है ?”

“वही !”

स्त्री के रूप में उसका क्या धर्म है, इसकी शिक्षा उसे मिल गई। उसने वह गाँठ बाँधी। कुछ कहने-सुनने का कुछ तर्क करने का उसे अधिकार ही नहीं। वहाँ अन्ध-भ्रम से ही काम चलेगा। जिस जीवन को वह अपने जाने रही थी, वहाँ तर्क और अविश्वास का काम नहीं। उनसे तो उस जीवन के ही नष्ट होने का डर था। उसका कर्तव्य माता के बताए हुए मार्ग पर आँखें बन्द करके चलना था। अपना सर्वस्व, अपना शरीर, अपनी



आत्मा और यदि इनसे परे भी कुछ हो तो वह भी, देवता की इच्छानुसार चुपचाप उसके ऊपर चढ़ा देना ही उसका धर्म था। उसने उस कर्तव्य को पूरा करने की, उस धर्म का पाबन करने की प्रतिज्ञा कर ली।

३

कला ससुराल पहुँची। उसका पति अभेड़ आयु का था, धनिक था। ऐसे विवाहों में अभेड़ आयु और धन, इन दोनों का गहरा सम्बन्ध होता है और आयु जितनी ही बढ़ती जाती है, विवाह के लिए उतना ही अधिक धन होना आवश्यक हो जाता है। लड़की के पिता जब घर के घर में धन का ढेर देखते हैं, तो वे घर की आयु का हिसाब भूल जाते हैं। साठ वर्ष की आयु फिर उनकी समझ में ४० की ही रह जाती है। लड़की का विवाह वास्तव में मनुष्य से नहीं, धन से होता है। इसी प्रकार का विवाह कला का था। उसके पति की आयु इतनी नहीं थी कि वह बुढ़ा कहा जा सके, परन्तु कला के पिता ने उसके रूप के लिए ही कला का विवाह उसके साथ किया था।

यह सब कुछ होते हुए भी कला अपनी माता के मन्त्र के अनुसार अपना जीवन बिताना चाहती थी। वह पति को वास्तव में देवता समझना चाहती थी और उसकी पूजा करना चाहती थी। पहले दो दिनों में ही उसे अपने पति के विषय में बहुत-कुछ विदित हो गया था। वह देवता हो सकता था, क्योंकि देवता कोई भी हो सकता है। परन्तु वह एक आदर्श पति नहीं हो सकता था। एक नवविवाहिता पत्नी अपने पति में जिन आदर्शों की, जिन भावों की कल्पना करती है, उनमें से एक भी कला को अपने पति में नहीं दिखाई देता था। जिन गुणों पर रीझ कर ली स्वयं ही, स्वेच्छा से पति को देवता समझ कर उसकी पूजा करने लगती है, उसके लिए जीवन स्वाहा करने को तैयार होती है, उन्हीं गुणों को कला भी अपने पति में देखना चाहती थी। यह उसके लिए स्वाभाविक था। परन्तु वे गुण उसके पति में नहीं थे। फिर भी कला ने उसकी पूजा करके उसे प्रसन्न रखने का सङ्कल्प किया। उसके देवता में और मन्दिर के देवता में विशेष अन्तर नहीं था। यह देवता पलता-फिरता था, वह देवता पत्थर का था,

अचल था। उस देवता की पूजा जोग भ्रष्टा के कारण करते थे, इस देवता की पूजा भ्रष्टा न होने पर भी केवल रुढ़ि के कारण करनी पड़ती थी।

विवाह करके ससुराल आए हुए कला को कई दिन हो गए थे। अभी तक उसे अपने पति से स्नेह की एक दृष्टि भी नहीं मिली थी, प्रेम का एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़ा था। उस दिन सन्ध्या को उसने स्वादिष्ट भोजन बनाया—वह भोजन प्रेम से बनाया गया था और सावधानी से भी। भोजन समाप्त करके कला पति की प्रतीक्षा कर रही थी। समय व्यतीत होने लगा, परन्तु पतिदेवता न आए। वह पहला दिन था, जब उन्हें आने में इतनी देर हुई। इधर-उधर का सोच-विचार करती हुई कला भोजन के पास ही चौके में बैठी रही। आठ बजे, नौ बजे, दस बजे। वह उसी प्रकार बैठी रही। आज़िर अब तक न आने का कारण क्या हो सकता है? कभी वह व्याकुल होती, कभी सम्देह उत्पन्न होता, कभी स्वयं ही समाधान हो जाता। ग्यारह बजे और द्वार पर शब्द हुआ। उसने दौड़ कर द्वार खोला।

जो कुछ उसने देखा, उससे वह किर्कतव्य-विमूढ़ सी रह गई। उसे अपने पति को, अपने देवता को इस दशा में देखने की आशा नहीं थी। वह लड़खड़ा कर गिरता-पड़ता चल रहा था। आँखें जलते हुए अङ्गार की तरह जाल हो रही थीं। जो कुछ कहना चाहता था, वह स्पष्ट नहीं कह सकता था। उसे अपना और पराया होश नहीं था। वह खूब पीकर आया था।

कला के होश उड़ गए। द्वार बन्द करके बड़ी कठिनता से वह उसे भीतर लाई। पलङ्ग पड़ा था, उस पर उसे बैठा दिया और ठण्डा पानी मुँह पर डाल कर पङ्खा झलने लगी। वह झुल्ला उठा।

“कुछ मत करो, यहाँ से चली जाओ!”—वह चिखा कर कर्कश स्वर में बोला।

“आपका जी अच्छा है?”—कला ने पूछा।

“तुमसे कह दिया, तुम मुझे यहीं छोड़ दो!”

“आपका जी ठीक हो जाय, तब चली जाऊँगी!”

“मैं जी ठीक होना नहीं चाहता। मैं सो जाऊँगा!”

“विस्तर बिछा दें?”

“नहीं!”



“तो कुछ खाकर सोइए। खाना बना हुआ रक्खा है।”

“खाने को चूल्हे में डाल दो और ऊपर से तुम गिर पड़ो।”

कह कर देवता ने पलङ्ग पर जम्बी तानी। कला ने भी भोजन न किया। बहुत देर तक वह आँसु बहाती हुई इस घटना पर विचार करती रही। यही वह व्यक्ति है, जिसे वह देवता समझने का उद्योग कर रही है। उसे अपने देवता से और अपने से घृणा होने लगी। परन्तु फिर उसे याद आया—“देवता के दोष देखने का भक्त को अधिकार नहीं।” उसने अपनी विवशता पर एक दीर्घ निद्रावास ली और एक ओर पड़ रही।

४

प्रातःकाल हुआ। देवता का खुमार उतर चुका था। कला ने नाश्ता तैयार किया और देवता के सामने रख दिया। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। फिर कला ने साहस बटोर कर रात्रि का विषय छेड़ा।

“तुम्हें पता नहीं था कि आप शराब पीते हैं।”— वह बोली।

“नहीं था ? लेकिन अब तो पता लग गया।”

“हाँ ! परन्तु × × ×”

“बोलो, परन्तु क्या ?”

“परन्तु यह ठीक नहीं। आप इसे पीना छोड़ दीजिए !”

“छोड़ दूँ ? क्या ?”

“क्योंकि यह व्यसन अच्छा नहीं। जब तक मैं नहीं आई थी, तब तक आप चाहे जो कुछ करते थे, परन्तु अब × × ×।”

“अब कुछ अन्तर हो गया ?”

“क्या नहीं ? आपके जीवन के साथ अब मेरा जीवन भी तो बंध गया है।”

“तुम्हारा जीवन बँध गया है, परन्तु घर के भीतर के लिए ही ; घर के बाहर के लिए नहीं। घर के बाहर मैं सब कुछ हूँ। जो चाहूँगा, सो करूँगा। तुम्हारे साथ मैंने विवाह इसलिए नहीं किया कि मैं अपने कामों में तुमसे सलाह लूँ। केवल इसलिए किया है कि तुम घर की रखवाली करो, उसे संभालो। तुम जो कुछ चाहती हो वह घर में है। जो चाहो, खाओ ; जो चाहो, पीओ ;

जो चाहो, पहनो। परन्तु घर के भीतर हो। बाहर की चिन्ता छोड़ दो, मेरी चिन्ता छोड़ दो ! अगर तुम्हें मेरी कोई बात अच्छी नहीं लगती, तो आँखें बन्द कर लो, परन्तु कुछ कहो मत !”

“कहाँ नहीं ? सब कुछ देख कर भी अन्धी बनी रहूँ ? आखिर हूँ तो मैं आपकी पत्नी !”

“तुम पत्नी हो, ठीक है। परन्तु मालूम है, मैं कौन हूँ ?”

“पति !”

“पति कौन होता है ?”

“देवता !”

“देवता से भी बढ़ कर भगवान। जानती हो देवता का क्या अधिकार है ?”

“पूजा !”

“बस यही तुम्हारा कर्त्तव्य है ! पूजा करो, बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूछे, बिना कुछ सोचे !”

कला चुप हो गई ! वह करती भी क्या ! जिस मूलमन्त्र की उसे शिक्षा मिली थी, यह उसी की पुनरावृत्ति थी।

५

घात बढ़ती ही गई। कला के पिता ने जिस धन के लिए कला को उसके देवता को सौंपा था, वह धन भी न रहा, और अपने सारे जीवन को जिस देवता के लिए कला ने मन्दिर बना डाला था, वह भी खाली हो गया। कला का देवता किसी दूसरी की पूजा अधिक पसन्द करता था। वह वहीं जाकर विराजमान हो गया। मानों कला उसकी कोई है ही नहीं। उसे कला की पूजा पसन्द न थी। परन्तु वह कला को दर्शन तो दे देता। कला को उसके लिए भी भटकना पड़ता था। उसका पति, उसका देवता ! उसके लिए उसे सब कुछ करने का आदेश दिया गया था। उसी की पूजा, उसी की सेवा करना उसका धर्म था। वह धर्म अमिट था, अखण्ड था, अपरिवर्त्तनीय था। कला उस धर्म से बड़ थी, इसीलिए उस देवता से भी बड़ थी, जो राक्षसी कृत्य कर रहा था ; जिसे किसी मन्दिर में तो क्या, मन्दिर की किसी नाखी में भी स्थान पाने का अधिकार न था।



एक दिन उसे देवता के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस दिन कला ने उसके सामने अपना हृदय खोल कर धर दिया।

“मैंने कौन सा अपराध किया है, जो आप मुझे इस प्रकार त्याग रहे हैं? क्या मैंने देवता समझ कर सच्चे हृदय से, लगन से, विशुद्ध सङ्कल्प से आपकी पूजा नहीं की?”—उसने पूछा।

“की है, परन्तु !”

“परन्तु ?”

“मेरा हृदय उस पूजा से सन्तुष्ट नहीं होता।”

“मेरी पूजा से सन्तुष्ट नहीं होता? एक कुलीन लज्जना, अपनी धर्मपत्नी की सच्ची पूजा से आपको सन्तोष नहीं होता?”—देवता ने कुछ उत्तर न दिया।

“और उस वाराङ्गना की पूजा से सन्तोष होता है, आनन्द का आभास होता है?”—उसने फिर पूछा।

“यह हृदय का सौदा है कला !”

“उस वाराङ्गना की पूजा में क्या विशेषता है?”

“हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने की विशेषता है !”

“वह शायद इसलिए कि वह एक कुल-लज्जना नहीं है। क्योंकि वह एक ही वस्तु—रूप, यौवन, सतीत्व—सौदा की भाँति सबको बेचने को तैयार हो जाती है !”

“पूजा भी एक सौदा है। पूजा के लिए भी देवता को ह्चिक्कित पदार्थों की आवश्यकता है ! जहाँ उसे वे मिलते हैं, वहीं की पूजा वह स्वीकार करता है !”

“पूजा भी एक सौदा है !” देवता के चले जाने पर कला इसी वाक्य पर विचार करती रही ! सच्चे हृदय से की हुई पूजा का कोई मूल्य नहीं। पूजा के भाव का आदर नहीं। विद्यावटी चढ़ावे के पदार्थ ही सबको पसन्द हैं।

“अच्छा, देवता ! तो मैं भी तुम्हारी पूजा के लिए उन्हीं पदार्थों को जुटाऊँगी, जिन्हें तुम पसन्द करते हो ! धर्म की लकीर पीटूँगी। शास्त्रों की आज्ञा मानूँगी। अन्त तक देवता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगी। धर्म ! देवता ! पूजा ! सौदा !”

वह चिन्ता-चिन्ता कर यह कहने लगी। उस समय इसके मुख पर हँसी थी और नेत्रों में आँसू।

६

जब तक देवता में वरदान देने की शक्ति रही, तब तक पुजारी ने मन से, तन से पूजा की। परन्तु जब धन-रूपी वरदान देने की शक्ति का नाश हो गया, तो वाराङ्गना ने देवता को मन्दिर से बाहर निकाल कर फेंक दिया।

घूमते-घूमते देवता ने दूसरे मन्दिर का द्वार खट-खटाया। द्वार खुला। नीचा सिर किए देवता कुर्सी पर बैठ गया।

“शराब !”—एक छोटी सी प्याली सामने सरका कर युवती बोली।

देवता की निद्रा भङ्ग हुई। उसने आँखें ऊपर उठा कर देखा ! यह क्या ? उसने आँखें मल कर फिर उधर देखा !

“कला !”—वह चिल्ला उठा !

“हाँ, मैं कला हूँ, देवता ! नई पुजारिन के रूप में !”

“यह मैं क्या देख रहा हूँ ?”

“क्या यह रूप पसन्द नहीं है ? तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हें इस प्रकार की पूजा पसन्द है !”

“ओह भगवान ! तुम यहाँ × × × एक × × ×”

“× × × वेदया !”

“नहीं, कला, यह न कहो ! तुम मेरी स्त्री हो ! मेरी स्त्री एक वेदया !”

“क्या बिगड़ गया ! जो अन्य वेदयाएँ हैं, वे भी तो किसी की स्त्रियाँ रही होंगी। तुम्हें तो पूजा का रूप चाहिए न ! तुम रूप, वासना, कुलटापन, विद्यावटी हाव-भाव के भूखे थे। वह तुम्हें अब मिल रहे हैं। अब तक अन्य वाराङ्गना उन्हें दे रही थी, अब तुम्हारी स्त्री दे रही है।”

वह पास आ गई। देवता दोनों हाथों से सिर पकड़ कर सोचने लगा।

“सोच क्या रहे हो ? शराब पियो ! मैं तो बहुत दिनों से इस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। घर में मेरी पूजा पसन्द न थी। जो, यहाँ इसे अपनाओ !”

“सुप रहो, कला ! ओह, मैंने यह क्या कर दिया ! मैं नहीं समझता था कि मेरा पाप इस प्रकार वृद्धि पाएगा। मैं नहीं जानता था कि मैं स्वयं ही अपनी स्त्री को वेदया बना दूँगा। मैं यह कैसा अनर्थ कर बैठा !”



“अनर्थ कैसा ? यह तो धर्मशास्त्र की आज्ञा है । प्राचीन प्रथा है । पति देवता होता है, स्त्री दासी । वह स्त्री का चाहे जो कुछ कर सकता है । स्त्री को तो पति को प्रसन्न रखने की सदा चेष्टा करनी चाहिए, चाहे उसे कुछ भी करना पड़े ।”

“इसमें तुम विश्वास करती हो ?”

“क्यों नहीं ? मुझे जन्म से यही सिखाया गया है ।”

“अब भी विश्वास करती हो ?”

“हाँ ?”

“सच कहती हो ?”

“देवता के सामने झूठ नहीं बोलूँगी ।”

“अब भी मुझे देवता समझती हो ?”

“हाँ !”

“मेरे लिए जो चाहूँ कर सकोगी ?”

“हाँ !”

“चाहे वह कैसा ही कठिन कार्य हो ?”

“जो कुछ कर चुकी हूँ, इससे कठिन और बरा हो सकेगा ?”

“मृत्यु ?”

“नहीं !”

“तो मेरे साथ, मेरे लिए प्रसन्नता से मर सकोगी ?”

“अवश्य !”

“शराब के दो प्याले भरो !”

कला ने प्याले भरे । पति ने एक पुड़िया दोनों में

डाल दी ।

“उठाओ इसे ।”

दोनों ने प्याले उठा कर होठों से जगाए ।

“साथ-साथ नरक को !”—पति बोला ।

“देवता के साथ कहीं भी ।”

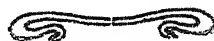
“जो कुछ इस जन्म में और इस समाज में न कर सके, वह अगले जन्म में और किसी अन्य समाज में करेंगे !”

दोनों ने प्याले खनकाए । दोनों ने एक-दूसरे का हाथ कस कर पकड़ लिया । दोनों ने एक दूसरे की ओर हँसते हुए देख कर विष के प्याले गले से नीचे उतार दिए ।

विस्मरण

[श्रियुक्त 'निर्मल']

भूलि गई सखि ! पिय की डगरिया,
 ढूँढ़त-ढूँढ़त हार गई थकि, ना जान वह कौन नगरिया ।
 जग जज्वाल विपति की मारी,
 अन्त मिलन की है तैयारी ;
 सँकरी गलिन गड़त पग कँकरी, सूक्त मोहि न कतहूँ कगरिया ।
 ऊपर चाँद उदय भए तारे,
 अन्तर में वह ज्योति कहौ रे;
 अटपट चाल न सँभरत नेकहूँ, सजनी ! छलकति सुरति-गगरिया ।



द्वितीय चैम्बर

[श्री० प्रमुदयाल जी मेहरोत्रा, एम० ए०]



जकल शासन-विधान विज्ञान में अन्य कोई प्रश्न इतना जटिल एवम् विवाद-ग्रस्त नहीं, जितना कि द्वितीय चैम्बर का प्रश्न है। राजनीति के विद्वानों में इस प्रश्न पर तीव्र मत-भेद है। एक ओर तो लोगों का कहना है कि देश को भावी विपत्ति से बचाने के लिए द्वितीय चैम्बर ही एकमात्र उपाय है, दूसरी ओर राजनीति-विशारदों की धारणा है कि यह एक व्यर्थ का आहम्बर है। आजकल भारतवर्ष में भी इस प्रश्न पर विवाद चल रहा है और ऐसा मालूम होता है कि भावी शासन-विधान में यहाँ भी द्वितीय चैम्बर की स्थापना होगी। अतएव इस विषय पर किञ्चित् प्रकाश डालना अनुपयुक्त और असामयिक न होगा।

आज से कुछ दिन पूर्व इंग्लैण्ड में भी वहाँ की द्वितीय चैम्बर अर्थात् 'हाउस ऑफ़ लार्ड्स' को लेकर खूब चलचल मच चुकी है। सन् १९१७ में तो इस विवाद ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था कि तत्कालीन प्रधान मन्त्री ने द्वितीय चैम्बर को सुधारने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति में पार्लामेण्ट की दोनो सभाओं (हाउस ऑफ़ लार्ड्स और हाउस ऑफ़ कॉमन्स) के विभिन्न दलों के तीस प्रतिनिधि थे। बाई काउन्ट ब्राइस इसके सभापति थे, जिनके नाम पर इसको 'ब्राइस कॉन्फ़्रेंस' कहते हैं। खूब विचार करने के पश्चात् उपर्युक्त कॉन्फ़्रेंस ने द्वितीय चैम्बर का निम्न-लिखित कार्य-क्षेत्र निर्धारित किया :—

(१) प्रथम चैम्बर द्वारा पास किए हुए बिलों को तर्कों की कसौटी पर कसना और उन पर पुनर्विचार करना।

(२) विवाद-रहित बिलों को प्रस्ताव का रूप प्रदान करना।

(३) किसी बिल के स्वीकृत होने में इतनी देर लगा देना कि उस पर जनता अच्छी तरह विचार कर सके।

(४) वैदेशिक नीति आदि महत्वपूर्ण तथा अत्यावश्यक प्रश्नों पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना—विशेषतः ऐसे अवसरों पर, जबकि प्रथम चैम्बर के पास समय का अभाव हो।

इन अधिकारों के कारण द्वितीय चैम्बर की शक्ति और भी बढ़ गई। पहले प्रथम चैम्बर के बिलों पर वादविवाद करने की स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगे थे, परन्तु अब नवीन अधिकार के अनुसार वह प्रतिबन्ध उठ गया। द्वितीय चैम्बर को दूसरा अधिकार इसलिए दिया गया कि प्रथम चैम्बर के समय की बचत हो। क्योंकि द्वितीय चैम्बर जब ऐसे बिलों पर खूब विचार कर लेती है, तब उस पर पुनर्विचार करने में प्रथम चैम्बर को अपना अधिक समय नहीं व्यय करना पड़ता। तीसरा अधिकार उसे इसलिए दिया गया कि ऐसे बिल, जिन पर जनता में तीव्र मतभेद हो, जिसका सम्बन्ध किसी विधान या किसी गूढ़ कानूनी सिद्धान्त से हो, उसके निर्णय में जान-बूझ कर इतनी देर लगा देना, ताकि जनता को उस पर अच्छी तरह विचार कर लेने का अवसर प्राप्त हो जाय। यह तीसरा अधिकार बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अस्तु—

किसी देश के शासन-विधान में द्वितीय चैम्बर की योजना एक अत्यन्त भरी, एवम् गोरखधन्धा सी है। क्योंकि शासन-विधान का सरल तथा आहम्बरहीन होना ही उसका विशेष गुण है। द्वितीय चैम्बर जैसी खर्चाखी संस्था का समर्थन केवल देश को ख़तरों से बचाने के नाम पर हो सकता है। इसके समर्थकों का कहना है



कि निर्वाचन के समय तो प्रथम चैम्बर पर जनता का पूर्ण अधिकार रहता है। परन्तु उसके बाद ही यह अधिकार कम हो जाता है और उन्नीस-वर्षों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों वह क्षीण होता जाता है; यहाँ तक कि अन्त में जनता का कोई अधिकार ही नहीं रह जाता। प्रथम चैम्बर मनमानी कार्रवाई कर सकती है और उसे रोकने के लिए द्वितीय चैम्बर की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु ये लोग यह बात भूल जाते हैं कि भावी निर्वाचन का ध्यान ही प्रथम चैम्बर के होश-हवास ठिकाने रखने के लिए पर्याप्त है। आज से प्रायः पचास वर्ष पूर्व वाट्टर बेगदार् नाम के एक विद्वान ने लिखा था कि भविष्य में निर्वाचन का भय ही 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' को रास्ते पर रखने के लिए यथेष्ट है।

अनुभवी राजनीतिज्ञों का कहना है कि जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के कार्यों को अब अधिक ध्यान से देखती है और इसके लिए उत्सुक रहती है कि वे लोग कोई अनुचित काम न करने पावें। जनता के पास अपना मत प्रगट करने के साधन भी पहिले की अपेक्षा अब बहुत अधिक हो गए हैं। साथ ही अपने मतानुसार अपने प्रतिनिधियों को चलावने के साधनों की भी अब उनके पास कमी नहीं है। फलतः किसी भी प्रथम चैम्बर का यह साहस नहीं हो सकता कि वह जनता की इच्छाओं तथा भावनाओं को पदक्षिप्त कर दे।

ऐसी दशा में जनता की इच्छा के विरुद्ध प्रथम चैम्बर के चलने के प्रयत्न पर द्वितीय चैम्बर का अस्तित्व निर्धारित करना तथा उसकी उपयोगिता प्रमाणित करना अत्यन्त निस्सार दलील है। खर्च का इतना बोझ ढटाने के लिए यह कल्पित भय पर्याप्त नहीं है।

एक बात और भी है। गवर्नमेण्ट के आवश्यकीय तथा महत्वपूर्ण निर्णय धारा-सभाओं द्वारा न होकर शासकों द्वारा होते हैं। इसलिए जनता को धारा-सभाओं के निर्णयों से नहीं, बल्कि शासकों की स्वेच्छा-चारिता से बचाने की आवश्यकता है। परन्तु कितने द्वितीय चैम्बर ऐसे हैं, जो शासकों पर अपना अधिकार रखते हैं?

यदि हम ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ द्वितीय चैम्बरों के इतिहास का विवेचन करें, तो उनकी निस्सारता और भी स्पष्ट हो जाती है। कनाडा की द्वितीय चैम्बर पचास

वर्ष की पुरानी संस्था है। इसके पचास वर्षों के इतिहास में, सदस्यों के निजी बिजों में समय-समय पर इसने अनेक संशोधन किए हैं। अनेक अवसरों पर ऐसे बिजों को इसने रद्द भी किए हैं। साथ ही समय-समय पर सरकारी बिजों को भी अस्वीकृत किया है और दलबन्दी के अवसरों पर तो यह एक मुर्दा संस्था ही प्रमाणित हुई है। सन् १८७८ से लेकर १८९६ तक तथा १९०० से लेकर १९१२ तक किसी विषय पर इसने चूँ तक नहीं किया। इसका प्रधान कारण यह था कि प्रथम अवसर पर वहाँ सर जान मेकडॉनल्ड आदि का बोल-बाला था और दूसरे मौके पर सर विलफ्रिड लारियर की पार्टी ही सब कुछ थी। इन दोनों की पार्टियों का इतना दबदबा था कि उनके सामने द्वितीय चैम्बर को सदा सर झुका देना पड़ता था। दोनों अवसरों पर प्रधान-मन्त्री द्वारा नियुक्त किए हुए सदस्यों की प्रधानता थी। फलतः यद्यपि कनाडा की द्वितीय चैम्बर के अधिकार बहुत हैं, पर वे सब केवल नाम-मात्र के लिए हैं और वास्तव में कनाडा का शासन एक चैम्बर द्वारा ही होता है। हाँ, नए शासन के प्रारम्भ में कुछ काल तक द्वितीय चैम्बर अवश्य अपने जीवन का परिचय देती हैं, क्योंकि उस समय विरोधी दल की उसमें अधिकता रहती है। परन्तु फिर शीघ्र ही सारा विरोध ठण्डा पड़ जाता है।

ऑस्ट्रेलिया के द्वितीय चैम्बर में भी दलबन्दी का इतना ही बोलबाला रहता है, जितना कि कनाडा के द्वितीय चैम्बर में। ऑस्ट्रेलिया के द्वितीय चैम्बर का कुछ विशेष कार्य-क्षेत्र निर्धारित किया गया था। पर अपने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने में वह पूर्णतया असमर्थ रही है। यही नहीं, अपने अन्य आम कार्यों में भी उसने कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं की। ऑस्ट्रेलिया कॉमनवेल्थ के इतिहास में पन्द्रह बार 'रेफ़रेण्डम' का प्रयोग किया गया है। यानी पन्द्रह बार विशेष प्रश्नों पर जनता की राय ली गई है। तेरह बार विधानों के संशोधनों पर तथा दो बार गत महायुद्ध के समय अनिवार्य सैनिक शिक्षा पर। इनमें से दो प्रस्तावों का तो जनता ने समर्थन किया था और अन्य तेरह का विरोध। किसी भी अवसर पर जनता दलबन्दी से प्रभावित नहीं हुई और प्रत्येक दल के अनुचित प्रस्तावों को उसने समय-समय पर ठुकरा दिया। इससे यह स्पष्ट है कि महत्वपूर्ण



प्रश्नों को हल करने के लिए द्वितीय चैम्बर की कोई आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि यह काम जनता स्वयं बड़ी झुबो से कर लेती है।

न्यूजीलैण्ड के अनुभव से पता लगता है कि द्वितीय चैम्बर के सदस्यों को आजीवन के लिए नामज़द करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि वे कुछ वर्षों के लिए ही नामज़द किए जावें। परन्तु इससे भी बुराइयों से कुछी नहीं मिलती और दोनों का परिणाम बहुत-कुछ मिलता-जुलता होता है। क्योंकि जब एक मन्त्रि-मण्डल अधिक काल तक शासनारुढ़ रहता है, तब कुछ विशेष काल के लिए नामज़द किए हुए सदस्य आजीवन के लिए नामज़द किए हुए सदस्यों की अपेक्षा मन्त्रि-मण्डल का मुँह अधिक ताका करते हैं। कारण यह होता है कि पुनः नामज़द होने के लिए उन्हें मन्त्रि-मण्डल की कृपा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। फलतः जब एक मन्त्रि-मण्डल पदच्युत होता है, तो वह एक ऐसा द्वितीय चैम्बर छोड़ जाता है, जिसमें उसकी पार्टी के लोगों तथा पेन्शनरों की अधिकता रहती है।

उपर्युक्त तीनों उपनिवेशों के द्वितीय चैम्बरों के इतिहास से पता चलता है कि इनमें से कोई भी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ है। इस असफलता का कारण भी स्पष्ट है। यदि एक द्वितीय चैम्बर दलबन्दी के दलदल में फँस जाता है, तो वह विरोधी दल के कार्यों में अस्थान्त अधिक बाधा पहुँचाता है और जब उसी की पार्टी शासनारुढ़ होती है, तब वह एकदम चुपपी साध लेता है; यहाँ तक कि उसके अस्तित्व का पता ही नहीं चलता। प्रथम चैम्बर को जनता की इच्छा के अनुकूल चलने के लिए द्वितीय चैम्बर एक अपर्याप्त साधन है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए राजनीति-विज्ञान ने हमें और साधन बता दिए हैं। प्रथम चैम्बर जनता के मत की अवहेलना न करने पावे, इसका सब से सरल उपाय यह है कि उसकी अवधि कम कर दी जावे।

द्वितीय चैम्बर के दो प्रधान कार्य हैं—(१) क़ानूनों पर पुनः विचार करना और (२) अल्पमत के अधिकारों की रक्षा करना। इसके लिए दो बातें आवश्यक कीय हैं। प्रथम, जिस बिल पर विचार हो रहा हो, उसके सिद्धान्त के अन्य अनुकूल प्रस्तावों पर विचार करने के लिए प्रथम चैम्बर को बाध्य करना और द्वितीय,

चैम्बर को यह अधिकार न हो कि वह किसी बिल को या उसकी नीति को रद्द कर दे। दक्षिण अफ़्रीका तथा नार्वे के द्वितीय चैम्बरों में उपर्युक्त गुण पाए जाते हैं। अतः इन चैम्बरों का विधान अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

दक्षिण अफ़्रीका की सिनेट में चालीस सदस्य होते हैं, यानी प्रथम चैम्बर के तिहाई। इनमें से कुछ सदस्य नामज़द किए जाते हैं और कुछ चुने जाते हैं। सपरिषद् गवर्नर-जनरल आठ सदस्यों को नामज़द करते हैं। इनमें से चार ऐसे होते हैं, जिन्हें दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाली काली जातियों की इच्छाओं एवम् भावनाओं का विशेष ज्ञान होता है। प्रत्येक प्रान्त के आठ सदस्य सिनेट में होते हैं। पहले इन सदस्यों को प्रान्तीय पार्लामेण्ट चुनती थीं। पर अब प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य तथा प्रान्त द्वारा चुने हुए एसेम्बली के सदस्य मिल कर इन सदस्यों को चुनते हैं। फलतः सिनेट में विभिन्न-लिखित तीन सिद्धान्तों का समावेश हो जाता है :—

(१) नामज़दगी, (२) स्थानीय संस्थाओं द्वारा निर्वाचन और (३) पार्लामेण्ट के सदस्यों द्वारा निर्वाचन।

यदि सिनेट एसेम्बली के किसी बिल को रद्द कर दे या उसमें संशोधन करे और एसेम्बली सिनेट से सहमत न हो, तो बिल दूसरे अधिवेशन के लिए स्थगित हो जाता है। यदि दूसरे अधिवेशन में भी एसेम्बली उसे पुनः पास कर दे और सिनेट भी उसे पुनः स्वीकार न करे, तो दोनों सभाओं का एक संयुक्त अधिवेशन होता है। परन्तु एसेम्बली के सदस्यों की संख्या सिनेट के सदस्यों की संख्या से तिगुनी अधिक होने के कारण इस संयुक्त अधिवेशन में एसेम्बली की ही विजय होती है।

अन्य द्वितीय चैम्बरों को प्रथम चैम्बरों द्वारा पास किए हुए बिलों के सिद्धान्तों का विरोध करना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें रद्द करने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु दक्षिण अफ़्रीका की सिनेट को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। वह बिलों को कुछ समय के लिए रोक कर प्रथम चैम्बर को अपनी बात सुनने के लिए बाध्य कर सकती है। परन्तु यदि एसेम्बली अपनी बात पर अड़ी रहे, तो सिनेट को चुप हो जाना पड़ता है। लॉर्ड डे विलियर्स के शब्दों में वहाँ की सिनेट केवल एक समालोचना करने वाली संस्था है।



इंग्लैण्ड की ब्राइस कॉन्फ्रेंस का अनुकरण करके सन् १९२० में अफ्रीका के तत्कालीन प्रधान मन्त्री ने भी अपने यहाँ के सिनेट के सम्बन्ध में कुछ सुधार करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए पार्लामेण्ट की दोनों सभाओं की सभी पार्टियों की एक सभा बुलाई थी। जिसे 'स्पीकर्स कॉन्फ्रेंस' कहते हैं। सिनेट की सुधारने के लिए इस कॉन्फ्रेंस ने भी कई प्रस्ताव उपस्थित किए थे।

नार्वे के द्वितीय चैम्बर का विशेष महत्व है। क्योंकि इसके सिद्धान्तों को अब सब लोग मानने लगे हैं। ब्राइस कॉन्फ्रेंस ने भी उन्हीं सिद्धान्तों को मान कर अपनी सुधार-योजना तैयार की थी। नार्वे में पार्लामेण्ट के सदस्य ही द्वितीय चैम्बर को चुनते हैं। जब नवीन पार्लामेण्ट का चुनाव हो सकता है, तो वह अपने में से चौथाई सदस्यों को द्वितीय चैम्बर के लिए निर्वाचित करती है। इन्हीं सदस्यों को लेकर द्वितीय चैम्बर बनता है और अन्य तीन-चौथाई सदस्यों की सभा प्रथम चैम्बर होती है। प्रत्येक चैम्बर अपने लिए सभापति तथा उप-सभापति स्वयं चुनती है। परन्तु यहाँ द्वितीय चैम्बर के अधिकार बहुत ही परिमित हैं। जो बिल इसके सामने विचारार्थ आते हैं, उनके प्रति भी इसके अधिकार बहुत कम हैं। वह किसी भी कानून को बनाने में अगुआ नहीं बन सकता। तमाम बिलों का श्रीगणेश प्रथम चैम्बर में ही होता है। वहाँ से पास होने के पश्चात् वे द्वितीय चैम्बर के सामने आते हैं। यदि द्वितीय चैम्बर उन्हें स्वीकार कर लेता है, तो कोई बात नहीं, अन्यथा वह बिल पुनः प्रथम चैम्बर के सामने आता है। यदि प्रथम चैम्बर अपनी बात पर अड़ा रहता है और द्वितीय चैम्बर के संशोधन आदि को स्वीकार नहीं करता, तो बिल एक बार फिर द्वितीय चैम्बर के सामने जाता है और द्वितीय चैम्बर के लिए यह अन्तिम अवसर होता है। साधारणतया ऐसे अवसरों पर द्वितीय चैम्बर को झुक जाना पड़ता है। परन्तु यदि वह न झुके और बिल को रद्द करने या संशोधित करने पर तुल रहे, तो दोनों चैम्बरों की एक संयुक्त सभा उस बिल पर विचार करती है। इस संयुक्त सभा में बिल पर वादाविवाद न होकर केवल 'वोट' लिए जाते हैं और दो-तिहाई बहुमत से बिल

पास हो सकता है। फलतः प्रथम चैम्बर के सदस्यों की संख्या तिगुनी होने के कारण उसे बड़ी आसानी से सफलता मिल जाती है। नार्वे के विधान से दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम यह कि दोनों चैम्बरों के पारस्परिक मतभेद शीघ्र ही तय हो जाते हैं और द्वितीय यह कि राजनीतिक सिद्धान्तों पर वहाँ मतभेद होते ही नहीं। शक्तिशाली पार्टी का दोनों चैम्बरों में बहुमत रहता है। नार्वे की द्वितीय चैम्बर को कुछ अदायगी अधिकार भी प्राप्त हैं। क्योंकि वह इसके तथा हाईकोर्ट के संयोग से उच्चतम अदायत बनती है, जो 'कौन्सिल ऑफ स्टेट', हाईकोर्ट या दोनों चैम्बरों के सदस्यों के विरुद्ध प्रथम चैम्बर द्वारा लगाए हुए अभियोगों को सुनती है। विधान के प्रारम्भ-काल से लेकर सन् १८४५ तक ऐसे ६ अभियोग हुए थे। सन् १८८३ में तमाम मन्त्रियों पर, जिनकी संख्या ग्यारह होती है, राजा को पार्लामेण्ट के प्रस्ताव न मानने की सजा दे देने का अभियोग लगाया था।

नार्वे के विधान में द्वितीय चैम्बर को स्थान तो अवश्य प्राप्त है, परन्तु उसके अधिकार इतने परिमित हैं कि उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का सारा महत्व ही नष्ट हो जाता है। नार्वे के राजनीति-विशारदों का कहना है कि वास्तव में यहाँ एक ही चैम्बर है और दूसरा चैम्बर प्रथम चैम्बर की छाया मात्र है। पार्लामेण्ट जब जनता से चुनी जाती है, तब एक ही चैम्बर के रूप में रहती है। वही पार्लामेण्ट आगे चल कर स्वयम् अपने को दो चैम्बरों में विभाजित कर लेती है। फलतः जनता के सम्मुख दूसरी चैम्बर का कोई मूल्य नहीं है और उन्हें इसका गर्व भी है।

स्थान की कमी के कारण हम अन्य द्वितीय चैम्बरों का यहाँ जिक्र नहीं कर सकते। यदि किसी देश के लिए किसी कारणवश द्वितीय चैम्बर का होना अनिवार्य हो और उसके कन्धे पर यह बोझ रक्खा ही जाए, तो इसका निर्माण करते समय कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। द्वितीय चैम्बर का सङ्गठन अत्यन्त सरल तथा सादा होना चाहिए। चूँकि शासन-नीति (Executive policy) में इसका कोई हाथ नहीं रहता; इसको विधान में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए इसमें आडम्बर न होना



चाहिए। इसका सङ्गठन दो ढङ्ग से हो सकता है— (१) नामङ्गदगी से या (२) चुनाव से। लोकतन्त्रीय देशों में नामङ्गदगी प्रधान-मन्त्री के हाथ में रहती है और प्रत्येक प्रधान-मन्त्री अपनी ही पार्टी के लोगों को नामङ्गद करता है, जिसके परिणाम-स्वरूप द्वितीय चैम्बर में दल-बन्दी का बाज़ार गर्म रहता है और यह लोकतन्त्र शासन के उद्देश्य के सर्वथा विपरीत होता है।

चुनाव दो प्रकार से हो सकते हैं। सीधे साधारण जनता द्वारा या स्थानीय धारा-सभाओं द्वारा। द्वितीय चैम्बर के लिए सीधे साधारण जनता द्वारा चुनाव होने से देश के कन्धे पर भारी खर्च लड़ जाता है। स्थानीय धारा-सभाओं द्वारा चुनाव होने से स्थानीय राजनीति में अस्वाभाविक प्रश्न पैदा हो जाते हैं और उदार पार्टियों का प्रतिनिधित्व उनकी शक्ति के अनुसार नहीं हो पाता। जब द्वितीय चैम्बर का निर्वाचन नियमित रूप से होता है, तो वह जनता की प्रतिनिधि बनने का दावा करने लगती है और इससे उत्साहित होकर प्रथम चैम्बर से बोहा-लेने का इरादा करने लगती है। इसका परिणाम देश के लिए हानिकार हो सकता है।

इन सब झगड़ों से बचने के लिए तथा साथ ही साथ एक ऐसी द्वितीय चैम्बर बनाने के लिए, जो प्रतिनिधि सभा होती हुई भी प्रथम चैम्बर से लड़ने को

तत्पर न हो, केवल एक ही उपाय है और वह उपाय यह है कि प्रथम चैम्बर स्वयं द्वितीय चैम्बर के सदस्यों को चुने। 'ब्राइस कॉन्फ़्रेंस' ने भी यह सिफ़ारिश की थी कि हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के तीन-चौथाई सदस्य हाउस ऑफ़ कॉमन्स द्वारा चुने जावें। आवश्यकता पड़ने पर तथा विशेष अनुभवी लोगों को चुनने के लिए प्रथम चैम्बर अपने बाहर से भी प्रतिनिधि चुन सकती है। यह सच है कि द्वितीय चैम्बर का चुनाव दलबन्दी पर होगा। जिस पार्टी का प्रथम चैम्बर में बहुमत होगा, वह अपनी पार्टी के सदस्यों को द्वितीय चैम्बर के लिए चुन लेगी। जिस पार्टी की प्रथम चैम्बर में जितनी ताक़त होगी, उसके उतने ही सदस्य चुने जायेंगे। पर हम दिखा चुके हैं कि दलबन्दी तो प्रत्येक द्वितीय चैम्बर में रहती है। द्वितीय चैम्बर के इस प्रकार चुने जाने पर उसकी प्रथम चैम्बर द्वारा बनाए हुए क़ानून का विरोध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

फ़लतः द्वितीय चैम्बर को यह अधिकार न होना चाहिए कि वह प्रथम चैम्बर को कोई क़ानून बनाने से रोक दे। उसका काम है, केवल सलाह देना और क़ानून बनने में इतनी देरी कर देना कि प्रथम चैम्बर को उसकी सलाह पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़े और जनता अपनी राय दे सके।

विनय

—+—

[श्री० राजनाथ पाण्डेय]

हैं दाने-दाने के लाले,
कोने घर के सब सूने हैं।
ये बच्चे सब भोले-भाले,
क़ुशावा के कुशल नमूने हैं।
इन कण्ठों से सूखी साँसें—
छन भर नम होकर आने दो !
मावा का मीठा दूध हमें,
हे ईश ! ज़रा बन जाने दो।

फुलवारी सारी सूखी हैं,
वे रङ्ग-बिरङ्गे फूल नहीं।
फूलों की प्यारी, प्रानभरी वह—
वायु इन्हें मिलती न कहीं।
बेला जूही चम्पा बन कर—
हे ईश ! हमें उग आने दो,
खुल खेलें खिल कर ये अलियाँ,
ऐसी कलियाँ बन जाने दो।

श्रीकुमार जी और उनकी “रूप-राशि”

[श्री० बलभद्रप्रसाद गुप्त, ‘रसिक’, विशारद]



मारी हिन्दी-कविता इस समय उन्नति के पथ पर है, उसमें छायावाद की जो विशिष्ट धारा प्रवाहित हो गई है, उससे उसकी उन्नति में अधिक गतिशीलता आ गई है। यद्यपि अभी हिन्दी के

उसके सामने किसी अलौकिक वस्तु की सृष्टि हो गई है।

इसी को पन्त जी ने एक बार इस प्रकार कहा था—

सघन मेघों का भीमाकाश,
गरजता है जब तमसाकार।
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर भरती जब पावस-धार।

न जाने तपक तड़ित में कौन,
मुझे इङ्गित करता तब मौन।

(मौन-निमन्त्रण)

पुराने प्रेमी छायावाद को सहायभूति की दृष्टि से नहीं देखते, तथापि उसके परिमार्जन में जो परिश्रम हो रहा है, वह उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। इस छायावाद की सीढ़ी पर चढ़ कर बहुत से कविता-प्रेमी कवि कहलाने की लालसा में कविता के चाँद को छूना चाहते हैं, पर समय शीघ्र ही बतला देगा कि चाँद बहुत ऊपर है और वे बहुत नीचे हैं। उनकी लेखनी से कविता की स्याही नहीं उतर सकती। उनके कण्ठघोष में कविता का तार नहीं हिल सकता।

छायावाद की वास्तविक स्थिति में अनन्त आत्मा के सम्मिलन की आकांक्षा उगार की लहर के समान वेगवती रहती है। उसमें भावना की धारा इतनी तीव्र रहती है कि वह असीम उद्धि में हो जाकर विश्राम ले सकती है, किसी अन्य स्थल में नहीं। आत्मा के उन्माद में परमात्मा के रूप की छाया रहती है, संसार की वस्तुओं में अनन्त आत्मा का चित्र रहता है। आत्मा अपने प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा में अपना विस्तार कर लेती है—यही तो छायावाद का रहस्य है। जरसन (Jerson) ने इसी विचार के वशीभूत होकर अपने रहस्यवाद की मीमांसा की थी। कभी-कभी आत्मा परमात्मा का रूप देखने के योग्य तो बन जाती है, पर उसे पहचानने में असमर्थ हो जाती है। उसे इस बात का ज्ञान अवश्य हो जाता है कि

हिन्दी-साहित्य में छायावाद की अभिव्यक्ति करने वालों में पन्त, प्रसाद और निराबा का ही नाम लिया जाता है। ज्ञात होता है कि हिन्दी के आलोचक इनके अतिरिक्त और किसी में छायावाद की छाया नहीं पाते। इधर हिन्दी-कवियों में छायावाद लिखने में तीन वर्ग कवियों को बहुत अधिक सफलता मिली है। उनके नाम हैं, श्री० रामकुमार वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा और श्री० भगवतीचरण वर्मा। यह वर्मात्रयी हिन्दी में अपना स्थान बना चुकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस अवसर पर श्री० रामकुमार वर्मा की कविता की आलोचना अभीष्ट है।

लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज के हिन्दी-प्रोफ़ेसर श्री० सूर्यकान्त शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, व्याकरणतीर्थ ने हिन्दी-साहित्य का एक विवेचनात्मक इतिहास लिखा है। उसमें वर्तमान छायावादी कवियों पर आलोचना करते हुए उन्होंने सात पृष्ठों में श्री० रामकुमार वर्मा की कविता की आलोचना बड़ी मनोरञ्जक एवं मार्मिक रूप से की है। उस स्थल पर उन्होंने कुमार



जी के 'अभिशाप' की आलोचना करते हुए लिखा है कि :—

“छायावादी कवियों में रामकुमार का स्थान आदर के योग्य है। आपका आत्मिक रुदन उत्तान होता है और श्रोता को अदृश्य की अन्तस्तली में गन्धक के धूँझ-मण्डल की नाईं घुँठने वाले लोकोत्तर विषाद का आभास दिखाने वाला होता है।” अभिशाप का परिचय कराते हुए आप लिखते हैं :—

हाय, सिसकती सी वर्षा में
यह गूँथा है हार।
समता करने को बरसातीं
हैं आँखें जलघार ॥
आँखों में जल है, ऊपर से—
भी है जल का साव।
हिम से शीतल बन कर गिरते
मन के भारी भाव ॥
झल-झल कर जल गिरता पर—
मन जल-जल कर है धूल।
उस पर हँसते हैं नभ के
मिटते से दो दस फूल ॥

करुण-क्रन्दन पर मिटते हुए क्षणभङ्गुर खपुषों का हँसना कैसा अखरता है? कुमार की कविता विषाद के कङ्काल को स्मृति की मरुस्थली में नङ्गा नचा देती है। वह हृदय के टूटे तारों को खींचने में अत्यन्त पटु है। कुमार विषण्णात्माओं के सन्तप्त निश्वासों को कविता की कोथली में बन्द करके नैराश्य-रञ्जित स्तब्धता के उत्तुङ्ग शिखर पर चढ़ जाता है और वहाँ छायात्मा बन कर उद्गाढ़ शोक के कूलङ्कष गैस को विरही तथा विरहिणियों के नासापुटों में छोड़ देता है। इस गैस में छटपटाते हुए कुमार के विरही जन रो-रोकर अपने प्रेमियों से इस प्रकार की भिच्चा माँगते हैं :—

“बिखरी कलियों से कर लूँगी मैं अपना शृङ्गार।

× × ×”

वास्तव में अभिशाप कुमार जी की करुण भावनाओं की विभूति है। उसमें करुणा अनेक रूप से आकर अपनी वेदना हम लोगों की दृष्टि के सामने झिखेर जाती है।

हम एक क्षण के लिए भूल जाते हैं कि संसार में कोई सुख भी है। चारों ओर अन्धकार और चारों ओर नैराश्य—यही अभिशाप का आवेश है। पर 'रूप-राशि' में कुमार की कविता आशा, सौन्दर्य और सज्जीत का सन्देश लिए है, उसमें चारों ओर शान्ति और सुख का ही वातावरण है। भावना उत्साह के हिंडोले में झूल रही है और चारों ओर बसन्त बिखरा हुआ है। इस रूप-राशि की एक कहानी है।

एक बार कुमार जी के घर पर पन्त जी बैठे हुए चाय पी रहे थे। कविता ही विषय था। दोनों ओर से कविता के फुहारे छूट रहे थे तथा उन पर आलोचनाएँ हो रही थीं। कुमार जी ने कहा—हिन्दी का क्षेत्र बड़ा करुणापूर्ण हो रहा है। उसमें आह और उच्छ्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और 'उच्छ्वास' तो तुम्हारे ही मुख से निकला है। अच्छा हो, हम लोग प्रसन्नता और आशा के गीत लिखें, वैसे ही जैसे अङ्गरेज़ी में Lynics (गीत-काव्य) हैं। सुमित्राकन्दन जी ने इस बात का समर्थन किया और उसी समय से दोनों ने अब तक इसी प्रकार की अधिकतर कविताएँ लिखी हैं। पन्त जी के इस प्रकार के कुछ गीत 'गुञ्जन' में सङ्कलित हैं और कुमार जी के 'रूप-राशि' में।

रूप-राशि में आत्मा का मायाहीन स्पष्ट रूप दिखलाई पड़ता है, जिसमें न वासना है और न कलुष। आत्मा की एक अनन्त सत्ता, जिसमें आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं है, उसीमें सुख है और उसी में विरास। जिसमें जीवन की परिधि इतनी विशाल है, जो दृगपथ में नहीं समा सकती, उसमें सदैव वसन्त अपना जीवन व्यतीत करता है :—

नव वसन्त का पुलकित मन।

कितने फूलों के भवनों में

हँसता है ले नवजीवन ॥

सांख्य शास्त्र के अनुसार परमात्मा और प्रकृति इन्हीं दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है और उन दोनों के संयोग से ही सत्-रज-तमस जगत की उत्पत्ति होती है। परमात्मा और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक हैं। और उन्हीं के मिलन में सारा विद्व सङ्निहित है। श्रीकुमार जी का 'मैं' यही परमात्मा है



और उनकी प्रेयसी यही प्रकृति है। संसार के प्रेमी और प्रेयसी में ईश्वर और प्रकृति के अस्तित्व का चित्रण वास्तव में कितना मनोहर एवं रहस्यमय है !

मैं तुमसे मिल सकूँ यथा,
 चर से सुकुमार दुकूल ।
 समय-लता में खिले—
 मिलन के दिन का उत्सुक फूल ॥
 मेरे बाहु-पाश से वेष्टित,
 हो यह मृदुल शरीर ।
 चारों ओर स्वर्ग के होगा,
 पृथ्वी का प्राचीर ?

नभ के चर में विमल नीलिमा शयित हुई सुकुमार ।
 उसी भाँति तुमसे निर्मित हो, मेरा चर-विस्तार ॥

मैं तुमसे उसी भाँति मिल जाऊँ, जिस प्रकार वक्ष से सुन्दर वक्ष । समय रूपी लता में मिलन का दिन रूपी उत्सुक फूल विकसित हो । आह ! वह कौन सी मङ्गल-बेला होगी, जिसमें अनन्त पुरुष का मिलाप प्रकृति से होगा—जिसमें उत्सुकता की मधुर व्यञ्जना होगी । वास्तव में वह दिन विश्व के निर्माण का होगा । उस समय क्या होगा—केवल धूम्राकाश और उसमें नीलिमा । एक पल में शायद यही शून्याकाश पुरुष-रूप से नीलिमा की प्रकृति को धारण कर तेज, वायु, जल और पृथ्वी में परिवर्तित हो जड़ जगत की रचना कर दे । यह है विकास का मूल । यह है सृष्टि की रचना और उसका आदिकरण ।

इस विकासवाद में उन्नति के चिह्न ही दृष्टिगोचर होते हैं—चारों ओर विकास । विकास में एक प्रकार की चेतना, जिसमें हर्ष और आशा की विराट् शक्तियाँ आन्दोलित हो रही हैं । उसी हर्ष के प्रवाह में संसार में किस रहस्य का अभिनय हो रहा है—यह निम्न पंक्तियों में देखिए :—

फूलों में किसकी मुस्कान ।
 बिखर गई है, कलिकाओं में
 भरने को आनन्द महान ॥
 कौन गा रहा है कोकिल के
 कण्ठों से मधुमय कल गान ।

कौन भ्रमर बन कर करता है
 कलियों से नूतन पहिचान ॥
 मेरे भावों के प्रसून भी
 पहिने रङ्गों का परिधान ।
 मेरे जीवन से व्यञ्जित हो
 फूलों की विकसित मुस्कान ॥

प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग में विकास का रहस्य है । एक उत्पत्ति की शक्ति है, जो प्रत्येक स्थल में, प्रत्येक वस्तु में अनेक रूप धारण कर कौतुक कर रही है । आशा और उत्साह का अनन्त विस्तार है, जो नवजात जगत के रोम-रोम में व्याप्त है । इस विकासवाद की पूर्णता पर कवि का पुरुष अपनी प्रेयसी से सन्तोष और शान्ति की साँस लेकर कहता है :—

मैं तुमसे मिल गया प्रिये ! यह है यात्रा का अन्त ।
 इसी मिलन का गीत कोकिले ! गा जीवन पर्यन्त ॥
 सुमन मधुप को बुला-बुला कर देंगे यह सम्वाद ।
 कलियों कल जागेंगी लेकर इसी मिलन की याद ॥
 प्राची के बिखरे सब बादल बदल-बदल कर रूप ।
 किरण साँस में बतला देंगे मेरा मिलन अनूप ॥

उस मिलन के उल्लास में प्रत्येक वस्तु नृत्य करेगी और चारों ओर इसी मिलन का रहस्य प्रस्फुटित होगा । अनन्त जीवन की यात्रा इसी मिलन में आकर समाप्त हो जाती है । प्रसूनों के सौरभ में इसी मिलन का आकर्षण होगा । कोकिल के कण्ठ से यही मिलन का गीत आलापित होगा, कलियों के विकास में इसी मिलन की मधुमयी स्मृति होगी । पूर्व के बादलों से जो किरणों की साँसें निकलेंगी, वे भी संसार के कोने-कोने में इसी मिलन का सन्देश वहन करेंगी । सांसारिक पदार्थों के द्वारा अलौकिक मिलन की भावना कितने तीव्र वेग से व्यञ्जित की गई है ! यह सराहनीय है । प्रत्यक्ष वस्तुओं और अप्रत्यक्ष सत्ता को बोधित करने का ढङ्ग कितना मनोरम एवं भावपूर्ण है ?

कुमार जी की कविता में सम्मिलन की आकांक्षा महाकवि सूर की गोपियों की मिलन-आकांक्षा के समान ही बहुवेशधारिणी है । जिस प्रकार गोपियाँ ऊष्व से बार-बार अनेकों प्रकार से श्रीकृष्ण से मिलने की आकांक्षा प्रगट करती हैं, उसी प्रकार कुमार जी की कविता में



जीवन की पूर्णता (जो मिलन से उद्भूत है) बार-बार हमारे हृदयाकाश में विद्युत की भाँति आकर प्रकाश की एक स्वर्ण-रेखा सी खींच देती है ।

हम तो नन्द घोष की वासी ।
नाम गोपाल जाति कुल गोपहि गोप गोपाल उपासी ॥
(सूर)

अथवा

जीवन मुँहचाही को नीको ।
दरस-परस दिन-रात करत हैं कान्हू पियारे पी को ॥
(सूर)

दूसरी ओर से कुमार जी के श्रीकृष्ण (पुरुष) गोपियों (प्रकृति) से कहते हैं :—

हटा दो घूँघट-पट इस बार ।
नेत्र में जग जागृति की ज्योति
और रवि के जीवन का वास ।
हृदय से शशि का शीतल हास
वसी का कण-कण में अधिवास ॥
अँधेरा है यह दृग-संसार ।
हटा दो घूँघट-पट इस बार ॥

× × ×

घूँघट-पट (शून्य आकाश की परिस्थितियाँ) हटने पर नेत्र पहले मिलेंगे, फिर हृदय—जिस नेत्र में जागृति की ज्योति-युक्त रवि है और जिस हृदय में शीतल हास से संयुक्त शशि है । यह तो स्पष्ट ही है कि रवि ईश्वर का नेत्र और चन्द्र हृदय कहा गया है ।

चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत ।
(पुरुष सूक्त)

इसी धारणा के आधार पर यह संसार, जोकि अन्धकार के शून्य से उत्पन्न होगा—आलोकित हो जायगा । घूँघट हटाने पर प्रकृति पुरुष का विराट रूप

ॐ

ॐ

ॐ

“मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी, वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा ।”

—लोकमान्य तिलक

नेत्र और हृदय के प्रकाश में देखेगी एवं अलौकिक प्रेम में इसी नेत्र और हृदय की अनुभूति होगी ।

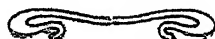
जगत की सृष्टि हो जाने पर पुरुष और प्रकृति का वास्तव में कोई विभिन्न व्यक्तित्व नहीं रह जाता । वे दोनों एक रूप में अपना अस्तित्व रखते हैं, जगत के निर्माण पर प्रकाश डालते हुए पुरुष और प्रकृति की एकरूपता का मनोहर चित्रण इन पंक्तियों में देखिए :—

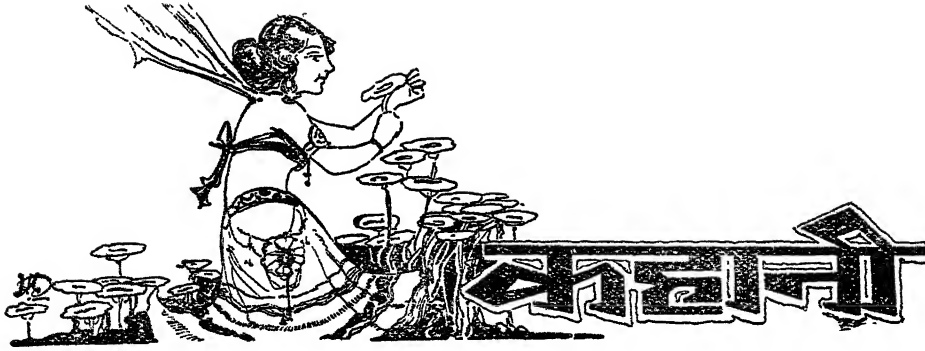
शान्त है नीरव है यह रात ।
सुकुमारी ! चुप, पवन न पावे प्रतिध्वनि का आघात ॥
स्वास-तार पर भूल रहा है
सुप्त शयित संसार ।
तारे हावों ही में इङ्गित
करते कम्पित प्यार ॥
क्यों चिन्तित हो जग दृग पर है,
मधुर नींद का भार ।
मैं हूँ, तुम हो, जाग रहे हैं—
दो विस्तृत संसार ॥
अपनी वाणी पर रख लो,
मेरे उर का सम्वाद ।
आओ, सो जाओ, भूलो,
इस जाग्रतपन की याद ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री० रामकुमार की कविता का अस्तित्व रहस्यवाद के विस्तृत क्षेत्र में ही है । उसमें अलौकिक मिलन की विशाल शक्ति सन्निहित है । इस रहस्यवाद के उद्घाटन में कवि की लेखिनी बहुत सफल हुई है । यदि कुमार जी इन रूप-राशि शीर्षक छोटे-छोटे रत्नों को एकत्रित कर सामूहिक रूप से हिन्दी-संसार को भेंट कर, तो हमारी हिन्दी के कविता-कोष में रहस्यवाद का एक मनोहर मञ्जूषा और भी हो जायगा ।

“यदि तुम्हें अपने कमरे सजाने हों, तो अलमारियों में अच्छी-अच्छी पुस्तकें सजाओ, तुम्हारे कमरों की शोभा दूनी हो जायगी ।”

—एक अध्ययनशील





समाज की चिन्ता

[श्री० सोमदेव जी, बी० ए०]



नी !” कराहती हुई बुढ़िया के मुँह से क्षीण आवाज़ निकली ।

“अब कैसा जी है, माँ जी ?”—पानी देते हुए इन्दु ने पूछा ।

“कौन, इन्दु ? क्या समय है बेटी ?”—एक घूँट

पानी पीकर फिर उसी भीमी आवाज़ में बुढ़िया ने पूछा ।

“सन्ध्या होने को आई है । अब कुछ आराम है अम्माँ !”

“हाँ, अब अच्छी हूँ । तो सारा दिन योंही बेसुच पड़ी रही ? ओह बेटी ! मैं मर क्यों नहीं जाती ? इतना बूढ़ा शरीर हो गया, अब भला किस काम आएगा ; भगवान् इसे उठा क्यों नहीं लेते ?” ठण्डी साँस लेकर बुढ़िया ने ‘हे भगवान्’ कहा ।

“क्यों ऐसी बात कहती हो माँ जी, दो-एक दिन में भली-चढ़ी हो जाओगी । बड़े-बूढ़ों के प्रताप से ही तो संसार चकता है, भला ऐसी बात मुँह से निकालनी चाहिए ?”

“बेटी, अब जी के क्या लेना है । तुमको भी देखो, कितना कष्ट देती हूँ । मेरे लिए सारा दिन तुम्हें भूखी-प्यासी बैठी रहना पड़ा ।”

“नहीं माँ जी, मेरी चिन्ता मत करो ; मैं सुबह ही कुछ खा-पीकर आई थी ।”—रुकते हुए इन्दु ने कहा ।

“नहीं बेटी, नहीं । तू तो भाइयों को खिजा कर खाया करती है । मेरी बीमारी की ख़बर सुन कर दौड़ो आई थी । भला उस समय तूने खाया क्या होगा ? जा, चौके में जाकर कुछ खा ले । आह ! मैं व्यर्थ कष्ट ही कष्ट देने के लिए बैठी हूँ । कैसी भोजी-भाजी लड़की है, नहीं-नहीं, साचाव लक्ष्मीदेवी है । पता नहीं, मेरे मन की साथ मन में ही रहेगी । मेरे हरि की और तुम्हारी जोड़ी कैसी मिलती, परन्तु क्या करूँ, जात-बिरादरी भी तो नहीं मिलती । नहीं तो ऐसी लक्ष्मी को पाकर मेरी आँखें तृप्त हो जाती—जन्म सफल हो जाता । हरि भी नहीं सुनता, कहता है अभी ब्याह ही न करूँगा । तुम्हारे भाई भी निकम्मे हैं, कहीं तुम्हारे लिए बातचीत हुई कि नहीं ?”

इन्दु का मुँह लाल गुलाब की तरह लाल हो गया । हरिण सी बड़ी-बड़ी आँखों को नीचे करके वह सकुचा सी गई, और दूसरी ओर को मुँह फेर लिया ।

“बेटी, इसमें शर्मने की कौन सी बात है ? मेरे बस में होता, तो कभी की तुम्हें ब्याह देती । अच्छा देखो, हरि से कहूँगी । कहीं अपने साथी-सहोदर को देखे-भाले ।”

“ओ माँ, तुम ऐसी बातें करोगी तो मैं जाती हूँ ।” कह कर सिर नीचा किए इन्दु उठ चली ।

“बेटी ! कुछ खा-पीकर जाना, नहीं तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध !” अतुरोध करते हुए बुढ़िया ने फिर पूछा—

“क्या अभी तक हरि नहीं आया ?”



इन्दु के मुँह से अभी “नहीं” का “न” ही निकला था कि “मैं आ गया, माँ !” की आवाज़ कानों में पड़ी, और हरि ने कमरे में पैर रखे।

इन्दु लज्जा से गड़ी सी जा रही थी। आज तक उसने हरि से कभी शर्म न की थी, आज पता नहीं क्यों सिमटी सी जाती थी; सिर नीचे किए एक ओर को हट गई। उसे भय हो रहा था कि कहीं उनकी बातें हरि ने सुन न ली हों।

माँ आवाज़ें देती रह गई, परन्तु वह वहाँ से भाग खड़ी हुई। हरि ने पीछे की ओर देखा और मुस्करा दिया। सीढ़ियाँ उतरती हुई इन्दु ने भी ठीक उसी समय पीछे मुड़ कर देखा। दोनों की आँखें क्षण भर के लिए मिलीं। आँखों की सूक्ष्म भाषा ने शब्दों की अपेक्षा ज्यादा मादकता, मधुरता और तीव्रता से दोनों की हृदयस्थितियों को छेड़ दिया; दोनों की हृदयस्थितियों के तार एक विविध बिजली के छू जाने से कम्पित हो उठे। दोनों के मुँह पर सारे शरीर का खून दौड़ आया। इन्दु सीढ़ियों से गिरती-गिरती बची, हरि मुड़ता हुआ दीवार से टोकर खाता-खाता बचा।

२

“मुझे इससे पहले जाना चाहिए था।”—फिर कुछ सोच कर—“क्या वे मेरे हृदय की व्यथा को नहीं जानते?” झुझाते हुए इन्दु ने मन ही मन कहा। फिर वह धीरे-धीरे उठी और हरिनाथ के घर की ओर चली। दोनों घरों की दीवारें एक-दूसरे के साथ ही सटी हुई थीं। पहले वह दरवाज़े पर रुकी, फिर कुछ सोच कर धीरे-धीरे दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़ना शुरू किया। एक पैर आगे बढ़ाती और कभी चौकशी सी होकर ठिठक जाती और कभी साँस बन्द करके वैसे ही खड़ी हो जाती थी। दो-एक बार पीछे मुड़ने के लिए भी पैर हटाए; फिर बढ़ता से, परन्तु कान खड़े किए हुए इधर-उधर चञ्चल नेत्रों से देखती हुई ऊपर कमरे के बाहर जाकर ठिठक कर खड़ी हो गई। हरिनाथ कुर्सी पर बैठा कुछ लिख रहा था। दरवाज़े की ओर उसका ध्यान न था। इन्दु कुछ देर हतबुद्धि सी चोरों की तरह दहलीज़ पर खड़ी रही। उसके पाँव काँपने लगे, छाती ज़ोर-ज़ोर से धक्-धक् करने लगी। उसे रह-रह कर अपने ऊपर

क्रोध आ रहा था कि क्यों आई। भला बाबू जी क्या सोचेंगे। मेरी निर्लज्जता पर मन ही मन हँसेंगे। फिर दूसरे ही क्षण विचार आता नहीं, मुझे क्या हो गया। अभी कुछ ही दिन तक तो मैं उनसे पढ़ती थी। आज क्या हुआ, कौन सी नई घटना घटी है? केवल, केवल यही कि माँ जी अब नहीं रहीं? आह, अब ये अकेले ही रह गए! घर का काम-काज कौन करता होगा? रोटी कहाँ से खाते होंगे? × × × यही सब कुछ सोचते-सोचते इन्दु का गला भर आया। न मालूम किस छिपी हुई अग्नि की तरह दबी हुई स्मृति में, उसके हृदय से उठी हुई एक हिचकी मुँह के द्वारा बाहर निकल पड़ी—साथ ही दो गरम-गरम आँसू भी गालों पर लुलक पड़े। इन्दु अपनी आवाज़ से स्वयं ही सिहर उठी और अपराधी की तरह भागने का प्रयत्न करने लगी। परन्तु हाथ, पाँव, टाँगें—उसका सारा शरीर ही मानों जकड़ा जाकर निश्चल हो चुका था। उसे अपने ऊपर इतना क्रोध आ रहा था कि शक्ति होती तो वहाँ धरती में समा जाती।

इतने में ही उसके कानों में “कौन?... इन्दु?” शब्द पड़े। “अरे! तुम कितनी देर से यहाँ खड़ी हो? पूं? रो क्यों रही हो? आओ, इधर आओ बैठो।” कहते हुए हरिनाथ ने अपने हाथ से क़जम रख दी और उठ खड़ा हुआ।

कुछ देर तो इन्दु वहीं मूर्तिवत् खड़ी रही, फिर साहस करके आगे बढ़ी और एक ओर प्रशं पर सकुच-सिमट कर बैठ गई।

“कितनी देर से यहाँ खड़ी थीं?”

“अभी तो आई थी।”—सिर नीचा किए इन्दु ने धीरे से उत्तर दिया।

“तो इतने दिन कहाँ रहीं, बहुत दिन बाद आई और इतनी कमज़ोर सी क्यों हो रही हो? माता जी को गुज़रे तो कई दिन हो गए; परन्तु तुम्हारी उस दिन के बाद सूरत ही नहीं देखी। क्या काम-धन्धा बहुत रहा? तुम्हें तो बहुत दुःख हुआ होगा?” इस तरह हरिनाथ ने चुप होते-होते कई प्रश्न पूछ डाले।

“हाँ।” कहते-कहते इन्दु ने अपना मुँह फिर आँचल से ढँक लिया। आँसुओं के अतिरिक्त उसके पास कौन से शब्द थे, जिनसे वह अपने हृदय की



व्यथा को व्यक्त कर सकती ? इन्हीं आँसुओं में किस श्रद्धा, किस भक्ति, किस प्रेम और किन आकांक्षाओं का समावेश था, उसे न तो मानवी शब्द और न कोई सांसारिक शक्ति दर्शा सकती है। एक दुःखी हृदय से निकले हुए आँसु किस प्रकार अज्ञात, परन्तु हृदय रूप से किसी दूसरे व्यक्ति के अन्तस्तल का चुम्बन करके कैसा स्नेह और कैसी मादकता भर देते हैं, इसकी व्याख्या प्रेमी का करुण और आर्द्र हृदय ही कर सकता है; विज्ञान और फ़िज़ॉसफ़ी इसके “क्यों ?” और “कैसे ?” का उत्तर लाख सिर पटकने पर भी नहीं पा सकते।

“मत रोओ इन्दु ! मत रोओ ! मैं जानता हूँ, माता जी के जाने का तुम्हें कितना दुःख है। वे तुम्हें कितना प्यार करती थीं, तुमने भी रातों जाग कर उनकी सेवा की थी। मैं आजीवन तुम्हारा आभारी रहूँगा। मुझे मालूम है कि जब वे मरीं तो तुम कितना विलख-विलख कर रोई। दो-तीन दिन तक कुछ भी नहीं खाया। परन्तु अब क्या हो सकता है ? जो होना था वह हुआ X X X।” हरिनाथ का गला भी यह कहते-कहते भर आया।

दोनों कई क्षण चुप रहे। इन्दु के हृदय से एक भारी बोझ तो हटका हो चुका था, परन्तु अब विचारों का एक तूफ़ान हृदय में उठ रहा था। कई तरह के विचार हृदय-सागर से उठ-उठ कर जिह्वा से आगे बढ़ने का साहस न करते थे—उसी तरह, जिस तरह सागर की तुमुल तरङ्गें प्रबल होती हुई भी किनारों से टकरा-टकरा कर, निष्फल-प्रयत्न वापस तो चली आती हैं, परन्तु उनकी शक्ति, उनका बल क्षीण होने की अपेक्षा और भी प्रबल, चञ्चल तथा उच्छुब्ध हो जाता है। इन्दु के मुँह पर भी कई तरह के शब्द आए, परन्तु आ-आकर रुक गए। अन्त में सारे शरीर की शक्ति इकट्ठी करके उसने पूछा :—

“रोटी कहाँ से खाते हैं ?” निश्चिन्ता को चीरते हुए ये शब्द कमरे में गूँज गए। स्वयं इन्दु को ये शब्द ऐसे लगे, मानों किसी विचारालय में खड़ी वह किसी घोर अपराध को स्वीकार कर रही हो। इन्द्र युद्ध मचने पर इस छोटे से हृदय ने माना एक महान् आन्दोलन को, एक हृदयाग्नि को, छिपाने में अपने आपको अस-मर्थ समझ कर साफ़ प्रदर्शित कर दिया हो। परन्तु पक्ष

४

भर में ही हरिनाथ ने धीमे स्वर में कहा—“बाज़ार से। कभी खाता और कभी नहीं भी खाता हूँ।” यह उत्तर क्या था, एक सितार की एक ही तार से उठी हुई दूसरी ध्वनि थी, एक स्पन्दन था, दूसरा उसके प्रत्युत्तर में प्रकम्पन था; एक ही सागर में एक ही जीवित-शक्ति से प्रेरित दो तरङ्गें थीं, जोकि एक दूसरे में लीन हो गई थीं; विस्तृत वायु-मण्डल में हवा के दो झोंके थे, जो दो भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर अक्षुण्ण हो गए थे, दो दिशाओं से आती हुई दो किरणें थीं, जोकि एक वर्पण में आकर एक ही स्थान पर केन्द्रीभूत हो गई थीं।

उत्तर देकर हरिनाथ ने आँखें ऊँची कीं, साथ ही सहसा उसके मुँह से एक दीर्घ उच्छ्वास सा निकल गया। निर्निमेष भाव से वह इन्दु के सुन्दर, गोरे मुँह की ओर ताकने लगा। इन्दु की आँखें नीची थीं, फिर भी उसे ऐसा मालूम दिया कि एक तीव्र सी वस्तु उसके हृदय में घुसी जा रही है। हृदय उसका चञ्चल हो उठा, इस चुप्पी से वह घबरा उठी। सम्झा का मन्द-मन्द प्रकाश कमरे के अन्दर आ रहा था। अचानक ही शान्त वायु उद्भिन्न हो उठी। खिड़की से पुर-पराग-पूरित एक हवा का झोंका आया, जिसने सारे कमरे में एक मादकता सी भर दी। इन्दु की साड़ी का पल्ला सिर से कुछ खिसक गया। बाज़ में एक कोयल बोली और उड़ गई। क्षण भर में किसी का मधुर सङ्गीत कानों में पड़ा और लीन हो गया।

सहसा इन्दु ने घबराई हुई आवाज़ में कहा—“मैं जाती हूँ।” भला कहाँ ? स्वयं अपने शब्दों की अस-त्यता का अनुभव क्षण भर में ही उसे हो आया। उसका हृदय उछल रहा था, शरीर निश्चेष्ट सा मालूम दे रहा था। किसी स्वर्गीय सुख का अनुभव उसे इन्हीं कुछ ही मिनटों में हुआ था, जिसमें वह विस्मृत हो चुकी थी। ‘मैं जाती हूँ’, ये शब्द किसी और के मुख से, जो दूर, अति दूर, किसी की प्रतीक्षा में बैठ-बैठ कर ऊब गया हो उसके मुँह से निकलते म लड़म दिए। इसके साथ ही इन्दु ने अपनी आँखें ऊँची कीं। पक्ष भर में दोनों की आँखों की ज्योति ने दो विचित्र हृदयों में छिपी हुई वेदनाओं और व्यथाओं का स्थान पा लिया। हरिनाथ ने हाथ आगे बढ़ाते हुए, कुछ भराई सी आवाज़ में कहा—



“इन्दु, ठहरो !” और यह कहते हुए इन्दु के हाथों को पकड़ लिया। इससे पहले भी कई बार हरिनाथ ने इन्दु का हाथ पकड़ कर उसे लिखना सिखलाया था, परन्तु आज न मालूम क्यों, छूते ही उसकी रग-रग में गर्म रक्त का प्रवाह बह चला। उसे सारे शरीर में एक बिजली सी चलती मालूम दी। इन्दु ने भी अपना हाथ खींचा नहीं, उसके साँस की आवाज़ कुछ तेज़ हो चली थी।

“इन्दु, एक बात पूछूँ ?” उसी प्रकम्पित आवाज़ में हरिनाथ ने पूछा। फिर थोड़ी देर बाद रुक कर कहा—“आज न जाने दूँ तो ?” यह कह कर मुस्करा दिया।

इन्दु ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह अपने आवेग को शान्त करने के लिए आँसू बहाने लगी। उसी तरह, जिस तरह निस्सीम आकाश में घनघोर घटापूँ, कितने नगर, कितने जङ्गल और कितने क्षेत्र पार करती हुई चली जाती हैं। लोग कहते हैं, बादल सूखे हैं, परन्तु उनसे जाकर कोई पूछे कि उनमें कितनी उबाला, कितनी बिजली भरी पड़ी है ? वे सब किधर स्वच्छन्द और उच्छृङ्खल भाव से चले जाते हैं ? वे द्रुते हैं, आस-पास कहीं एक गगनचुम्बी श्वेत पर्वत-शिखर को, एक चञ्चल हिरनी के बच्चे की तरह, जब वह अपना माँ से बिछुड़ कर अत्यन्त दुःख, परन्तु तेज़ी से उसे द्रुतता फिरता हो, और दूर से ही उसे देख कर उछलता-कूदता उसके स्तनों में जाकर अपना मुँह दे देता है। ये बादल भी ठीक इसी तरह अपने प्रियतम की फैली हुई विस्तृत भुजाओं में बाँहें खोल कर भागते हैं और टकराते ही बरस पड़ते हैं। इन्हीं के प्रवाह की तरह इन्दु का अश्रु-प्रवाह भी बह निकला था।

“मेरी इन्दु, प्यारी इन्दु !”—कहते हुए हरिनाथ ने उसे खींच कर हृदय से लगा लिया।

३

“आज इतनी देर लगा कर क्यों आए ?” कहते हुए इन्दु ने एक हाथ साइकिल के हेण्डिल पर और दूसरा हरिनाथ के कंधे पर रख दिया और करुण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। उसकी आँखें मौन थीं, उसी तरह, जिस तरह एक विस्तृत सागर का वक्षस्थल ऊपर

से शान्त दिखाई देता है, परन्तु जिसके गर्भ में असंख्य जीव-जन्तु तथा अति अतीत काल से संप्रहीत प्राणयुक्त तथा निष्प्राण विभूतियाँ निहित होती हैं, जिन्हें केवल जान-जोखों पर खेलने वाला, हुंक्की लगभग कर उन्हें प्राप्त करने वाला, अथवा उसी कठिन व्यवसाय में अपनी जीवन आहुति दे देने वाला, उन्हीं असंख्यों में से स्वयं भी एक बनने वाला पा सकता है। आज इन्दु का हृदय कितना आन्दोलित हुआ था। कितनी बार उच्चक-उच्चक कर उसने खिड़की की राह बड़ी प्रतीक्षा से देखी थी, और हरिनाथ को न आता देख कर कितने मनसुबे बाँध रही थी, “आज न बोलूँगी, ज़रूर लड़ूँगी। फिर वे मुझे मनाएँगे, और फिर × × × फिर हँस दूँगी।”

वर्ष भर के वैवाहिक जीवन ने इन्दु के प्रेम को घटाने के बजाय और भी प्रगाढ़ कर दिया था। पहले तो वह हरिनाथ की नज़रों में एक कोमल कली ही सी थी, जिसके मुरझाने के भय से हरिनाथ को सदा माजी की तरह सतर्क रहना पड़ता था, परन्तु समय ने और समाज के अत्याचारों ने इसे हरि की एकदम सज्जिनी और सहायिका बना डाला था। समाज को ठुकरा कर, उसके बन्धनों को अप्राकृतिक और अत्याचार-युक्त मान कर उसने अपनी इच्छानुसार बिरादरी के बाहर विवाह कर लिया था। इन्दु का उसके भाइयों ने, हरिनाथ का उसके सारे सम्बन्धियों ने और दोनों का समाज ने बहिष्कार कर दिया था। पहले तो ये बहुत चिन्तित रहने लगे थे, परन्तु चूँकि हरिनाथ को किसी और के रुपए-पैसे की ओर ताकने की आवश्यकता न थी, इसलिए उसने किसी की भी परवाह करनी छोड़ दी थी। दोनों का एक वर्ष कितनी मदभरी रात्रियों और प्रेम-भरी कहानियों में किस प्रकार व्यतीत हो गया था, उन्हें कुछ भी पता न था। केवल आज इन्दु के हृदय ने हरिनाथ के उतरे हुए मुँह को देख कर इस बात का आभास पाया; उसकी आत्मा एक आने वाले सङ्कट की आशङ्का से सिहर उठी।

“आज इतनी देर लगा कर क्यों आए ?” का उत्तर हरिनाथ “कुछ नहीं, योंही” में न दे सका। कुछ मुस्कराने का प्रयत्न किया, परन्तु आज हँसी हरिनाथ से उतनी ही दूर थी, जितनी कि अर्द्ध-रात्रि के निविड़ अन्धकार में पूर्वोदित सूर्य का सुखमय सन्देश लाने वाली



ऊषा-काल की लालिमा। इन्दु का हृदय बैठ गया; पल भर में नशा उतरे हुए शराबी का सा उसका मुँह हो गया। हरिनाथ ने रुकते-रुकते कहा—

“इन्दु, मेरी नौकरी छूट गई ?” इन्दु पर एक घोर वज्राघात सा हुआ। कुछ देर के लिए वह वहीं की वहीं खड़ी रह गई। कुछ ठहर कर उसने पूछा—“क्यों ?”

शुष्क सी हँसी हँसते हुए हरिनाथ ने कहा—कोई नई बात नहीं है इन्दु ! बहुत दिनों से मैं ऐसा सुन रहा था, परन्तु तुम्हें दुःख न हो, इस कारण बतला न रहा था। जिन्होंने हमें विरादरी से निकाला, उन्हीं धर्म के पुजारियों ने साहब के पास जाकर मेरी शिकायतें कीं, कि इसे निकाल दो, यह बदमाश है, चोर है। परन्तु साहब मेरे काम से खुश था, इसलिए उसने कुछ खयाल नहीं किया। परन्तु कुछ दिन हुए एक उन लोगों ने पार्टी पर बुला कर खूब नाच-रङ्ग किया। किसी का विवाह था, रगिडियाँ भी बुलाई; उसी में साहब को खूब पिला कर उससे कहलवा लिया, और आज मुझे छुटी मिल गई। मैं यह सुन कर साहब के पास गया। वह बोला—

“हम क्या कर, तुम्हारा लोग ही तुम्हारा दुश्मन है, हम कुछ नहीं कर सकता।”

“ज़ैर, कोई चिन्ता नहीं, ईश्वर सबका सहायक है।”—धैर्य बँधाते हुए इन्दु ने कहा।

परन्तु जीविका के लिए कुछ तो करना ही होगा। नौकरियों का तो आजकल बुरा हाल है।

“कुछ गहने ले जाकर बेच दो, कोई रोज़गार करो, ये किस दिन के लिए रखे हैं ?”

हरिनाथ की आँखों में आँसू आ गए। कुछ दिन योंही बीते। बहुतेरा नौकरी तलाश की, न मिलनी थी, न मिली। आखिर कुछ गहने बेचे, दाम आधे मिले। दूकान किराए पर ली, किराया दुगुना देना पड़ा। परन्तु कहाँ की बिक्री कैसा काम ? आज तक हरिनाथ के सिर यह आकलन न पड़ी थी, मोल-तोल बेचारा क्या जाने। फिर यहाँ भी धर्म के ठेकेदारों ने पीछा न छोड़ा, दूकान न चल सकी। हरिनाथ चिन्ता में व्यस्त रहने लगा, दिन-दिन शरीर क्षीण होने लगा।

एक दिन हरिनाथ दूकान से जड़खड़ाता हुआ आया और चारपाई पर गिर पड़ा। इन्दु ने माथे पर हाथ रक्खा। माथा गरम तब की तरह तप रहा था; नाड़ी

तेज़ हो रही थी; मुख पर हवाहवाँ उड़ रही थीं। जिस इन्दु ने घर से बाहर कभी पैर भी न रक्खे थे, आज उस पर डॉक्टर से दवाइयाँ लाने का बोझ पड़ा। अकेले, सड़क पर चलते हुए उसे लज्जा और अज्ञात सा भय महसूस होता था। परन्तु फिर शीघ्र ही पति की दारुण अवस्था का ध्यान करके सेवा में लग गई। डॉक्टर को बुला लाई। न दिन को चैन, न रात को आँखों में नींद। दिन-रात चारपाई के सिरहाने बैठी चुपचाप आँसू बहाया करती। हरिनाथ महीनों तक बीमार रहा। धीरे-धीरे घर के सब कपड़े-लत्ते और अलङ्कार, आभूषण इत्यादि बिक गए, और कुछ गिरवी पड़ गए। हरिनाथ का शरीर हाड़-पिंजर के अतिरिक्त और कुछ न रह गया था, मोटी-मोटी आँखें अन्दर घँस गई थीं—मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गईं। जिस व्यथा का इलाज कुछ और था, जो व्यथा मानसिक थी, भला दवाइयाँ कहाँ तक उसे आराम कर पातीं ?

एक दिन डॉक्टर ने नाड़ी देख कर नुस्खा देते हुए कहा—“आज का दिन ख़तरे का अन्तिम दिन है। यदि आज आराम से गुज़र गया, तो फिर कोई भय नहीं। इन्दु ने नुस्खा ले लिया और बाज़ार से दवा लाने को तैयार हुई, परन्तु पास में एक फूटी कौड़ी भी नहीं। माथा पकड़ कर वहीं बैठ गई। उसकी खाली-खाली आँखें हाथ में पकड़े हुए नुस्खे को इस तरह निर्निमेष भाव से देख रही थीं, मानों दिन भर का भटका हुआ थका-मोँदा मृग-छाता, सन्ध्या समय अपने सामने एक विस्तृत—निस्सीम मरुभूमि को देख रहा हो। रोने को अब आँसू भी तो नहीं बचे थे। वह कुछ क्षण इसी तरह बैठी रही, फिर उठ कर साहूकार की दूकान की ओर चली—एक अन्तिम आशा, एक अन्तिम भेंट, प्रेम के यज्ञ में आहुति देने के लिए। सम्भव है इसी से ‘उनके’ प्राण बच जायें, मकान तो फिर भी बन सकता है !

उस साहूकार से वह पहले भी कुछ रुपए उधार ले चुकी थी। आज फिर इन्दु को देख कर ऊपरी सहानुभूति दिखला कर उसने कहा—बेटी, रुपया जितना चाहे तुम ले जा सकती हो, परन्तु जानती हो, आजकल कितनी रुपए की तज़नी रहती हैं।

“मैं आपकी बेटी हूँ, आज ज़रूर सहायता कीजिए।” ऐसी दर्द-भरी आवाज़ में इन्दु ने ये शब्द कहे कि अगर



कोई मनुष्य होता तो उसका हृदय पानी-पानी हो गया होता। परन्तु इस बात में तो सन्देह है कि मनुष्यता और पैसा—ये बातें कभी साथ-साथ चल सकती हैं।

“इस बार बेटी, मैं तुम्हें रुपया तब दे सकता हूँ, यदि ५) सैकड़ा सूद दो। तुम मेरी बेटी की तरह ही हो, और कोई होता तो शायद इन्कार कर देता। तुम्हारी अवस्था देख कर मुझे दया आ रही है।”

इन्दु धीरे से बोली—जैसी आपकी इच्छा।

एक सौ रुपए लेकर, कुछ से दवा-दारू और कुछ से दूसरा आवश्यक सामान खरीद कर इन्दु घर पहुँची। हरिनाथ एकदम बेसुख सा पड़ा था; साँस धीरे-धीरे चल रही थी; होंठ कुछ-कुछ हिल रहे थे।

“डॉक्टर ने कहा था, आज अन्तिम दिन है, बीमारी का ही तो, और कुछ नहीं, कुछ नहीं।” मन ही मन सोच कर इन्दु झुंझता उठी। आज कितने दिन हो चुके थे, उसे भरोसे भोजन खाए हुए। आह! वह कैसे खा सकती थी, जब कि उसके हृदय की आत्मा सामने चारपाई पर पड़ी महीनों से तड़प रही थी। रात भर आराम से न सोई थी। उफ़! कैसे सो सकती थी वह? जब कि उसका जीवन, सामने पड़े हुए शरीर की व्यथा के साथ व्यथित हो उठता था, प्रत्येक प्रकम्पन के साथ सिहर उठता था। आज अन्तिम दिन था! आज उसने तै कर रक्खा था, “न छण भर चारपाई के सिरहाने से हिलूँगी, और न आँखें तक झपकने दूँगी।” पास एक पानी का फटोरा भर कर रख लिया था। जब कभी लुप्तप्राय चेतना आँखों द्वारा निद्रा में निमग्न होने की इच्छा करती, वह छींटे दे-देकर जगी रहती।

४

परन्तु एक बार उसने हाथ फटोरे की ओर आगे को बढ़ाया। प्रायः आधी रात हो चुकी थी, उसे मालूम हुआ किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया है। फिर वह देखती है कि वह लिखने का प्रयत्न कर रही है। एक दूसरा, वैसा ही अबोध, कोमल, गोरा चिढ़ा हाथ उसके हाथ पर रक्खा हुआ उसे क्लम से लिखवाने का प्रयत्न कर रहा है। और वह सिर काँपी के पास ले जाकर, मुत्कराती हुई कनखियों से कभी-कभी ऊपर भी देख लेती है और जान-बूझ कर टेढ़ा-मेढ़ा लिखती है। ताकि दूसरा

हाथ उसके हाथ के साथ देर तक जगा रहे—दबा रहे। वह हाथ हरि का—बाबू जी का—है। फिर लिखने में निष्फल-प्रयत्न समझ कर वे इससे क्रुद्ध हो जाते हैं। कुछ ही देर बाद वह ठीक लिखना शुरू कर देती है। थोड़ी देर बाद वह देखती है, वह बढ़ी हो गई है, सीढ़ियों से नीचे उतर रही है, हरिनाथ और उसकी आँखें चार हुईं। फिर देखती है कि बाबू जी उसे पकड़ कर कह रहे हैं—“आज न जाने दूँ तो ?” × × × इसी प्रकार थोड़े से समय में ही बाख्यावस्था की, फिर विरह की, प्रेम की और सुख की सारी स्मृतियाँ सिनेमा-चित्रों की तरह सामने से फिर गईं। प्रसन्नता के समय गद्गद हो जाती, उद्वेग के समय उसके होंठ हिलने लगते, आँखों में आँसू आ जाते, और प्रेम के समय विह्वल होकर अङ्ग-अङ्ग में कँपकँपी सी हो आती। वह समय भी सामने आया, जब बड़े उद्वेग, बड़े उत्साह बड़ी पीड़ा और करुणा से सारा दिन प्रतीक्षा करने के बाद, आँखों में मादकता भरे हुए उसने पूछा था—“आज इतनी देर क्यों लगा कर आए ?” एक-एक करके सुख की स्मृतियाँ, स्वर्गीय आनन्द के वे थोड़े से दिन—वर्ष भर के—आँखें झपकने के साथ-साथ ही सामने से गुज़र गए।

थोड़ी देर बाद उसने देखा, उसके पतिदेव और वह दोनों आकाश में उड़ते-उड़ते सहसा नीचे गिर पड़े। पता नहीं किस प्रबल शक्ति के हाथों वे नीचे वसीट लिए गए, जिसके स्पर्श ने दोनों को सैकड़ों बिच्छुओं की तरह डस लिया। इन्दु के पतिदेव तो गिरते ही बेहोश हो गए, यह उनके सिरहाने बैठी आँसू बहा रही है। छण भर में ही वर्षों का बना-बनाया सुख-स्वप्न बालू पर बने प्रासाद की तरह एक ही धक्के से भहरा कर गिरा और भग्न हो गया। वह फिर देखती है कि उसके पतिदेव के होंठ कुछ हिले। वह कुछ आगे को झुकी। यद्यपि शरीर बिल्कुल निष्प्राण सा पड़ा है, फिर भी होंठ हिले; साथ ही एक हाथ भी उठा और इन्दु की गर्दन में पड़ कर अपने होंठों के पास इसके कानों को ले गया। इन्दु को साँस कुछ देर के लिए रुकता मालूम दिया। कानों में एक बढ़ी हलकी, धिरकती हुई सी आवाज़ आई, मानों कहीं दूर—अति दूर सुनसान जङ्गल के पास किसी भयानक सी पहाड़ी गुफा से होकर आ रही हो। आवाज़ कह रही थी :—



“इन्दु ! प्यारी इन्दु ! दुःखी मत होना, मैं चला ! कभी-कभी मुझे स्मरण कर लेना । अपने बच्चे का ज़्यादा रखना । परन्तु देखना, देखना ! इसे समाज के सुपुर्द मत करना । समाज एक क्रूर, निर्दयी, अत्याचारी और भयानक हिंसक पशु है, जिसमें निर्बलों, असहायों, अबलाओं, सत्यवक्ताओं, सीधे-साधे, भोले-भाले और और विशाल हृदय व्यक्तियों की हत्या और भ्रंश होता है । इसके साथ वे ही—केवल वे ही रह सकते हैं, जो इसी की तरह, पशु, दम्भी, प्रपञ्ची और चोर-डाकू हों । न्याय के पदों में यह अन्याय, रक्षा के पदों में लूट, पुण्य के पदों में पाप और मनुष्यता के पदों में अमानुषता करता है । चली जाना, दूर-दूर, अति दूर—एक जङ्गल में—जहाँ कहीं भी आस-पास किसी मनुष्य-रूप में हिंसक पशु का मुँह भी न दीख सके । जो, अब बिदा दो, मैं चला, चला !” इतना कहते-कहते स्वर बन्द हो गया । इन्दु ने देखा, एक विशालकाय, बड़ा भारी और मोटा सा व्यक्ति, जिसके सिर में बालों की लटों की जगह रुपए-पैसे टँगे हैं, मुँह से भयानक दुर्गन्ध आ रही है, हाथों से रक्त टपक रहा है, एक लम्बे से कोट की एक जेब में ‘धर्म’ दूसरी में ‘न्याय’ की दो पुस्तकें पड़ी हैं, उसके पति की टाँगों को घसीट कर ले चला है । इन्दु यह देख कर ज़ोर से हरिनाथ की छाती से ज़िपट जाती है, और मुँह से एक भयानक चीख निकल जाती है । चीख की आवाज़ के साथ ही इन्दु की आँख खुल गई ।

चारों ओर घोर अँधेरा था । दरवाज़ा में से आती हुई हवा फुझारते हुए साँपों की तरह, सायँ-सायँ कर रही थी । मकान की मुँहरे पर एक उल्लू बड़े ज़ोर से चीख उठा और उड़ गया । इन्दु की छाती दहल गई । सारा शरीर पसीना-पसीना हो रहा था । उसने सोचने का प्रयत्न किया, सारे शरीर में ज़ोरों का दर्द उठ रहा था । फिर भी धीरे-धीरे सब स्मृतियाँ ताज़ी हो गईं और वह धबका कर उठ खड़ी हुई । तब में रक्खा हुआ दीपक हवा के झोंके से बुझ गया था । वही क्यों ? एक जीवन-रूपी दीपक भी अपना अन्तिम श्वास छोड़ कर बुझ चुका था, और अब शरीर से बदल कर शव के अतिरिक्त और कुछ न रह गया था । टटोल-टटोल कर इन्दु ने दीपक जलाया और चारपाई की

ओर ले गई । मुँह पर प्रकाश पड़ते ही उसके मुँह से “हा प्रियतम !” दो शब्द निकले । साथ ही हाथ का दीपक गिर कर चूर-चूर हो गया । इन्दु ने अपना माथा ज़मीन पर पटक दिया ।

५

सवेरा हुआ; शमशान में धू-धू करती हुई चिता के प्रकाश की तरह । सूर्य अपनी असंख्य ज्वालामयी किरणों को जलती हुई चिता की लटों की तरह चारों दिशाओं में फैलाता हुआ निकला । पूर्व की ओर से आता हुआ हवा का एक झोंका पश्चिम को निकल गया, मानों डरा हुआ खरगोश जान बचाने के लिए सरपट जङ्गल की ओर भागा जा रहा हो । कुछ क्षण के लिए कलरव के लिए निकले हुए पक्षियों ने अपना प्रभात-सङ्गीत बन्द कर दिया ; पक्षियों के बच्चे मार खाए बालकों की तरह घोंसलों में मुँह छिपा कर कोनों में दुबक गए । बाग में विकसित होते हुए एक फूल की कोमल पत्तियाँ झड़-झड़ कर गिर पड़ीं, छिने हुए यौवन, निष्प्राण शव की तरह अब केवल एक रुढ़-मुण्ड डगड़ी ही ढाली से लटकती रह गई थी ।

उसी समय एक अर्थी को कुछ लोग शमशान-भूमि की ओर उठाए जा रहे थे, जो पहरावे से सेवा-समिति के मालूम दे रहे थे । पीछे-पीछे एक स्त्री, जिसका माथा फटा हुआ था, बाल खोले, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे, करुण क्रन्दन करती हुई चली आ रही थी—नहीं, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा बिची चली आती थी । शरीर, पाँव सब शक्तिहीन होने पर लड़खड़ा रहे थे । स्थान-स्थान पर ठोकर खाकर गिरती और फिर सँभल कर उठ खड़ी होती थी । फिर शव की ओर बाँहें फैला कर कुछ पकड़ने का प्रयत्न करती हुई भाग खड़ी होती थी ।

जब शव चिता पर रक्खा गया, वह ज़ोर से उसकी छाती के साथ चिमट गई । “न जाने दूँगी, न जाने दूँगी । मत कोई मेरे पास आना, नहीं तो मार दूँगी ।” आहत सर्पिणी की तरह उसने आँखें दिखला कर कहा । क्षण भर के लिए तो लोग ठिठक गए—परन्तु शीघ्र ही उसे दो-तीन आदमियों ने पकड़ कर परे कर दिया, और चिता को आग दे दी । स्त्री ने चिता में कूदने का कई बार प्रयत्न किया, परन्तु लोगों ने पकड़ कर उसे अलग कर दिया ।



चिता से लपटें उठीं—नहीं, मानों एक नवयौवना के भस्म होते हुए सुहाग से। एक विधवा के—समाज द्वारा ध्वंस किए गए सुख-स्वप्न से—हृदय-रूपी दावानल से ऐसी लपटें उठीं, जिन्होंने देखते-देखते एक शव को भस्मीभूत नहीं किया—नहीं-नहीं, समाज के यौवन को, समाज के निर्द्वन्द्व प्रेम को, हिंसक समाज में जो कुछ थोड़ी सी सुन्दरता, सहृदयता और बचा-खुचा सत्य रह गया था, उसको भी आज एक मृत शरीर में मूर्ति का रूप देकर स्वाहा कर दिया !

सन्ध्या हुई, इन्दु शमशान से उठी और भागी, इतने ज़ोर से भागी कि पीछे मुड़ कर भी न देखा। मानों किसी अबोध बकरी के बच्चे के पीछे भूखे भेड़िए लगे हों। प्रत्येक आवाज़ के साथ उसकी टाँगें और भी तेज़ हो जातीं। प्रत्येक आहट से वह अपने कपड़े समेट लेती। मानों शिकारियों ने उसे पकड़ने को जाल बिछा रक्खे हों, अथवा आसपास की वस्तुएँ इतनी घृणास्पद, इतनी अस्पृश्य हों कि उन्हें छूकर वह पतित हो जायगी। उसका दम घुटा जा रहा था। हवा में एक घोर विष भरा हुआ मालूम दिया। वह परे—इस मनुष्य-जाति से, इसके सारे रक्त से सने स्मारकों से परे—एक जङ्गल की ओर भागी चली जा रही थी, जहाँ जङ्गली पशु-पक्षी भले ही उसे खा जायें; परन्तु किसी नर-राक्षस के दूषित हाथ, उसके शरीर को न छू सकें। आखिर न मालूम कब और कहाँ वह निस्तेज और निःशक्त होकर गिर पड़ी।

x

x

x

दूसरे दिन लोगों ने देखा, शमशान की पिछली ओर जङ्गल में कुछ ही दूर एक स्त्री लहू से लथपथ बुरी हालत में पड़ी है। उसकी नज़ी छाती से चिमटा हुआ एक नवजात शिशु दूध पीने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु वहाँ कुछ भी न मिलने पर अपनी क्षीण सी आवाज़ में रो-रोकर मर रहा है।

“यह तो मरी पड़ी है!”—एक आदमी कह रहा था।

“अरे ! यह तो कल वाली औरत ही मालूम देती है।”—दूसरे ने चौंक कर कहा।

हाँ-हाँ, यह कल वाली औरत—इन्दु—ही थी, जिसने माँ-बाप के लाड़-प्यार में अपना बाल्यकाल और पति के प्रेम में अपने यौवन का प्रारम्भ काटा था और आज उसकी यह अवस्था थी !

उन व्यक्तियों ने बालक को इन्दु की छाती से हटाना चाहा। उसकी पीठ पर इन्दु का निःशक्त हाथ लिपटा हुआ था। बालक को उठाते ही उसे एक हिचकी आई और साथ ही उसके प्राण भी निकल गए !

ले समाज, ले, तीन प्राणियों के जीवन को लेकर—नहीं, नहीं, इसी तरह शतशः के जीवनों को लेकर—उनके शवों की, उनकी चिन्ताओं की होखी जला ! और समझ, समझ मनुष्य-जीवन के मूल्य से, उसके प्रेम से, अपने पैसे को, अपने धन को, अपनी बिरादरी को बढ़ा। ओह ! जिस दिन तेरे सिर पर मृत्यु का ताण्डव-नृत्य होगा, उसी दिन—ठीक उसी दिन—स्वर्ग से देवता फूल बरसाएँगे।



बीसवीं सदी का वसन्त !

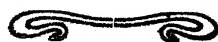
[श्री० रसिकेन्द्र]

प्रकृति का पीत-पट देखें, दरकार क्या है ? लोगों के बदन में ही ज़रदी सवार है !

बौरे हैं न आम, आम-खास हो रहे हैं बौरे, धाम-धाम मच रही धर्म की धमार है।

मधुप कहाँ हैं ? गाँव-गाँव गुबरीले बड़े, पिकों का अभाव, ‘काँव-काँव’ की पुकार है,

आपस की रार से रहा न सार प्यार में है, बीसवीं सदी में क्या, वसन्त की बहार है !!



मनुष्य का आविर्भाव

[श्री० सत्यभक्त]



य

दि आप हमारे देश के किसी व्यक्ति से—चाहे वह पण्डित हो या मूर्ख बालक हो या वृद्ध—यह प्रश्न करें कि मनुष्य की उत्पत्ति कहाँ से हुई तो वह तुरन्त उत्तर देगा कि मनुष्य को भगवान ने बनाया है। साधारण बुद्धि के लोग तो यहाँ तक विश्वास करते

हैं कि जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी की मूर्ति बनाता है, उसी प्रकार ब्रह्मा जी मनुष्यों को गढ़ते हैं। यदि कोई बालक जन्म लेते समय विकृत-अङ्ग हो या उसके साधारण लोगों की अपेक्षा अँगुलियाँ, हाथ, पैर या कोई अन्य अङ्ग अधिक हो, तो लोग कहते हैं कि ब्रह्मा जी उसे बनाते समय भूल कर गए हैं। ऐसे लोग समझते हैं कि सृष्टि के आदि में भगवान ने मनुष्य की इसी रूप में रचना की, जिसमें आज हम उसे देख रहे हैं। ऐसे लोगों से यदि यह कहा जाय कि मनुष्य की रचना अपने आप हुई है और सृष्टि के आदि से अनेक परिवर्तनों में होकर वह वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है तो वे कदापि उस पर विश्वास न करेंगे। पर बात दरअसल ऐसी ही है और इसका समर्थन विज्ञान द्वारा ही नहीं, वरन् सभ्य और असभ्य जातियों में प्रचलित कितनी ही दन्त कथाओं द्वारा भी होता है।

चार युग

भूतश्रवेषाओं के मतानुसार पृथ्वी का अब तक का इतिहास चार भागों में विभक्त है, जिनमें से प्रत्येक की उद्भिज और प्राणिज-रचना एक दूसरे से भिन्न प्रकार की थी। पहले भाग में समस्त पृथ्वीतल हरियाली से ढका हुआ था और पेड़ों के नीचे छिपकली के बच्चों के से छोटे-छोटे जन्तु रेंगते फिरते थे। इस काल

में समुद्र में भी तरह-तरह के केड़े और मछलियाँ पाई जाती थीं, जिनका अब नाम-निशान भी नहीं है। दूसरे युग में जल और थल में छिपकली की आकृति के बृहदाकार तथा भीषण जन्तु पाए जाते थे। इस युग के अन्तिम भाग में तथा तीसरे युग के आरम्भ में सर्पों की जाति के जन्तु भी बहुत अधिक पाए जाते थे और उनका आकार इतना अधिक बड़ा था कि आजकल उस पर विश्वास भी नहीं होता। इन सर्पों में से कुछ जल में तैरने वाले थे, कुछ ज़मीन पर चलने वाले थे, कुछ हवा में उड़ने वाले थे। तीसरे युग में गिराँऊ, हाथी, बन्दर आदि अनेक पशुओं का आविर्भाव हुआ। इसके पश्चात् चौथा युग आरम्भ हुआ, जो अब तक चला जाता है। इस युग से पहले के समस्त प्राणी और वृक्षादि ऐसे थे जो यदि आज हमें दृष्टिगोचर हों तो हम पहिचान भी नहीं सकें कि वे किस लोक से यहाँ आए हैं। इतना ही नहीं, उस काल की प्राकृतिक अवस्था तथा पृथ्वीतल की आकृति भी इस समय से सर्वथा भिन्न प्रकार की थी।

हिम-युग के मनुष्य

पर तो भी तीसरे काल में मनुष्य का अस्तित्व था, यह बात अब प्रमाणित हो चुकी है। इसका पता प्राचीन काल के लेखों से नहीं, वरन् उन पत्थर के हथियारों और मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की हड्डियों से लगा है, जिनको वैज्ञानिकों ने खोज करके प्राप्त किया है। ये चिन्ह उस युग के हैं, जब यूरोप और पृथ्वी के अन्य कितने ही भाग हिम से आच्छादित थे और बर्किस्तान के आसपास के जङ्गलों में मैमथ नाम के जन्तुओं के दल घूमते रहते थे। ये मैमथ हाथी की आकृति के अत्यन्त विशालकाय तथा बहुत लम्बे बाजों से ढके होते थे, जो कठोर शीत से उनकी रक्षा करते थे। कुछ वर्ष हुए वैज्ञानिकों ने पहाड़ों की उन



गुफाओं से, जहाँ बर्फ की नदियाँ बहती थीं, पत्थर के वे हथियार प्राप्त किए हैं, जिनसे उस काल के मनुष्य इस भीषण जन्तु का शिकार करके अपनी जीवन-रक्षा करते थे। फ़्रान्स की ऐसी गुफाओं में दीवारों पर मैमथ के रङ्गीन चित्र बने हुए हैं, जिन्हें उस युग के मनुष्यों ने खोखा था। उन्हीं गुफाओं में मनुष्यों की खोपड़ियाँ तथा अन्य हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार बिना किसी प्रकार के लिखित प्रमाण के हमको उस हिम-युग के मनुष्यों का बहुत-कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है। कुछ चिन्ह ऐसे भी मिले हैं, जिनसे विदित होता है कि इस हिम-युग से पूर्व जब कि यूरोप, अफ्रीका के समान उष्ण और ज़िर्गफ तथा बन्दरों से परिपूर्ण था, तब भी वहाँ मनुष्य का अस्तित्व था। इन तमाम चिन्हों तथा पत्थर के हथियारों से वैज्ञानिकों ने निर्णय किया है कि मनुष्य का आविर्भाव सम्भवतः तीसरे युग के मध्य काल में, अब से क़रीब दस लाख वर्ष पूर्व, हुआ था। इस सम्बन्ध में यह आपत्ति की जा सकती है कि इस बात का क्या प्रमाण है कि उसके पूर्व मनुष्य का अस्तित्व न था। इसके उत्तर में वैज्ञानिक दो बातें बतलाते हैं। एक यह कि इस युग से पूर्व का कोई पत्थर का हथियार आज तक उनको प्राप्त नहीं हुआ है और दूसरी बात यह कि वे जैसे-जैसे प्राचीन काल की तरफ लौटते हैं, पत्थर के हथियारों की बनावट अधिकाधिक भद्दी होती जाती है। ऐसी अवस्था में यह कल्पना करना कि जिस समय मनुष्य को पत्थर का भोंडे से भोंडा हथियार भी बनाना नहीं आता था उस समय भी उसका अस्तित्व था, युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। यदि उस समय में मनुष्य का अस्तित्व होगा भी, तो उसकी आकृति तथा शरीर की बनावट इस समय के मनुष्यों से इतनी अधिक भिन्न और विचित्र प्रकार की होगी कि आज उसकी हड्डियों को मनुष्य की हड्डी समझ सकना भी कठिन है। क्योंकि हिम-युग और उससे कुछ पूर्व के मनुष्यों की जो हड्डियाँ और खोपड़ियाँ मिली हैं, उनमें भी मनुष्य की वर्तमान हड्डियों से बहुत अन्तर है। विशेषकर उनकी खोपड़ी इतनी चिपटी है जितनी कि आजकल किसी घोर जङ्गली जाति के मनुष्य की भी देखने में नहीं आती।

पर वैज्ञानिकगण यह भी नहीं कह सकते कि मनुष्य तृतीय-युग के मध्य भाग में अपने आप उत्पन्न

हो गया। इस प्रकार की कल्पना वैज्ञानिक नियमों के सर्वथा विपरीत है और उनके अनुसार कोई चीज़ अपने आप या अकारण उत्पन्न नहीं होती। इसलिए उन्होंने पृथ्वी के विभिन्न स्तरों में पाए जाने वाले प्राणी-जगत् के अन्य चिन्हों से इस बात का अनुमान लगाने की चेष्टा की है कि इस अवस्था के पूर्व मनुष्य किस स्वरूप में छिपा हुआ था। इसके लिए उन्होंने अनेक ऐसे प्राणियों की हड्डियों और शारीरिक बनावट की जाँच की है, जो प्राचीनकाल में पृथ्वीतल पर पाए जाते थे, पर अब जिनमें से अधिकांश का नाश हो गया है। इस मार्ग को ग्रहण करके विचार-क्षेत्र में आगे बढ़ने से उन्होंने अनेक आश्चर्यजनक बातों का पता लगाया है।

बाबर-मनुष्य

जावा का टापू, जो एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग में है, ज्वालामुखी पहाड़ों के उपद्रव के लिए प्रसिद्ध है। जिस समय पृथ्वी तृतीय युग में थी, अर्थात् अब से पन्द्रह-बीस लाख या इससे भी अधिक वर्ष पूर्व, वहाँ एक ज्वालामुखी पर्वत भड़का, जिसने भू-भाग के एक अंश को राख के ढेर में उसी प्रकार दबा दिया, जिस प्रकार ऐतिहासिक काल में वेसुवियस पहाड़ के भड़कने से पोम्पियाई का नगर भूमस्थ हो गया था। राख से दबने वाले भाग में कितने ही प्राणी भी निवास करते थे, जो सब इस घटना के कारण मर गए और वहाँ पर उनकी कब्रें बन गईं। कुछ काल पश्चात् इन प्राणियों की हड्डियाँ पानी के बहाव द्वारा एक नदी के गर्भ में जा पहुँची, जिसका नाम बैङ्गेचैन है। सन् १८९१ में यूजेन डुबोइस नाम का एक हॉलैंड निवासी डॉक्टर इस नदी के किनारे खुदाई करा रहा था, जब कि उसे इन हड्डियों का एक ढेर प्राप्त हुआ। इनमें से अधिकांश हड्डियाँ तृतीय युग के हाथी, गैंडा आदि जैसे विशालकाय पशुओं की थीं, जो आजकल जावा में नहीं पाए जाते। इन हड्डियों में ही डुबोइस को एक विशेष प्रकार के प्राणी की जाँच की हड्डी, खोपड़ी का ऊपरी भाग और दो दाँत प्राप्त हुए। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह प्राणी उस प्राचीन युग में उन पशुओं के साथ जङ्गल में रहता था।



इन हड्डियों का निरीक्षण करने से विदित हुआ कि यह प्राणी मनुष्य से बहुत-कुछ मिलता हुआ था और प्रायः मनुष्य के बराबर ही ऊँचा था। उसकी जाँघ की हड्डी की बनावट से प्रकट होता है कि उसे खड़े होकर चलने की आदत थी। इस प्राणी के पैर मनुष्य से इतने मिलते-जुलते थे कि बड़े-बड़े शरीर-शास्त्रियों ने उस हड्डी को देख कर उसे निस्संकोच मनुष्य की हड्डी बतलाया। पर जब उन्होंने खोपड़ी की हड्डी को देखा तो बड़े चकराए। क्योंकि यह खोपड़ी इतनी चिपटी थी कि उसमें मस्तिष्क के सामने वाले भाग का पता ही न था और आँखों के ऊपर दो कूबड़ से निकले थे। यद्यपि हिम-युग के मनुष्यों की खोपड़ियाँ भी बहुत चिपटी होती थीं और उनमें आँखों के ऊपर ऐसे ही कूबड़ निकले थे, पर जावा में पाई जाने वाली खोपड़ी में इतना अधिक अन्तर था कि उसे मनुष्य के बजाय बन्दर की खोपड़ी कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता था। इतना ही नहीं, एशिया के दक्षिणी भाग में पाए जाने वाले एक विशेष प्रकार के बन्दर की खोपड़ी से, जिसको 'गिबन' कहते हैं, वह अने-कांश में मिलती-जुलती थी। यद्यपि आजकल गिबन का जो आकार देखने में आता है उससे इस प्राणी की हड्डियाँ बहुत बड़ी थीं, पर उन दोनों में इतना सादृश्य था कि कितने ही विद्वानों ने यह निर्णय किया कि ये हड्डियाँ एक ऐसी जाति के गिबन की हैं जिसका इस समय जोर हो गया है और जिसकी ऊँचाई आदमी के बराबर थी।

पर इस मत को सब लोगों ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने एक विशेष पदार्थ भर कर खोपड़ी की गहराई को नापा और निश्चय किया कि उसमें मस्तिष्क का स्थान वर्तमान काल के घोर जङ्गली लोगों की अपेक्षा आधा और गोरिल्ला बन्दर की अपेक्षा दुगुना है। इससे सिद्ध हुआ कि उस प्राणी का मस्तिष्क गिबन की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत था। यद्यपि वर्तमान काल के मनुष्य तथा हिम-युग के मनुष्य की अपेक्षा वह बहुत नीची श्रेणी का था। इसलिये उनके सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि इस प्राणी को किस श्रेणी में रखा जाय? इस विषय में वैज्ञानिकों में बहुत कुछ मतभेद हुआ। कुछ ने कहा 'गिबन से बहुत कुछ मिलता-जुलता मनुष्य' और कुछ ने 'मनुष्य से बहुत कुछ मिलता-जुलता गिबन' कहा। उसके आविष्कारक डुबाइस ने इन दोनों मतों के

बीच के मार्ग को ग्रहण करके इस प्राणी का नाम वानर-मनुष्य (Ape-man) रख दिया।

वैज्ञानिकों का यह मतभेद एक महत्वपूर्ण तथ्य को प्रकट करता है। इससे विदित होता है कि तीसरे युग में इस पृथ्वीतल पर ऐसे प्राणी पाए जाते थे, जो गिबन तथा मनुष्य के बीच की स्थिति में थे। उनकी खोपड़ी हिम-युग के मनुष्यों से उसी तरह भिन्न प्रकार की थी जिस प्रकार आजकल के मनुष्यों की हिम-युग वालों से भिन्न प्रकार की है। इस प्रकार वर्तमान मनुष्यों से उनमें इतना अधिक अन्तर था कि उनको मनुष्य कह सकना कठिन है। यदि उनको किसी नाम से पुकारा जा सकता है तो वे बन्दर के नाम के ही योग्य हैं। इतना जान लेने के बाद यदि कोई यह प्रश्न करे कि तीसरे युग के मध्य में मनुष्य का आविर्भाव कहाँ से हुआ तो उसे यही उत्तर दिया जायगा कि उस समय के पूर्व मनुष्य की स्थिति बन्दर के रूप में थी और उसी का विकास होकर वर्तमान मनुष्य का आविर्भाव हुआ।

वन-मानुस

यह बतला देना आवश्यक है कि यहाँ पर 'बन्दर' शब्द उन साधारण बन्दर और लङ्गूरों के लिए प्रयोग नहीं किया गया है, जिनको हम शहरों में और पेड़ों पर उछलते देखते हैं, वरन् हमारा आशय बन्दरों की एक विशेष जाति गिबन से है। जीव-विज्ञान के ज्ञाता बहुत समय पूर्व मनुष्याकृति बन्दरों की जाति को साधारण बन्दरों से पृथक् मान चुके हैं। इस शब्द से प्रकट होता है कि ये बन्दर अन्य जन्तुओं की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलते-जुलते हैं। इन बन्दरों की चार जातियाँ आजकल पृथ्वी पर पाई जाती हैं। इनमें से दो गोरिल्ला और शिम्पैजी अफ्रीका में रहती हैं और दो, ओरङ्ग-उटाङ्ग तथा गिबन एशिया में। इन चारों तरह के बन्दरों की बाहरी आकृति भी मनुष्य से मिलती हुई है। ये प्रायः दोनों पैरों पर खड़े होकर चलते हैं और इनके पूँछें नहीं होतीं। साधारण लोग इनको वन-मानुस के नाम से पुकारते हैं। यदि इन चारों तरह के बन्दरों की ठटरियों को मनुष्य की ठटरी से मिला कर देखा जाय तो और भी आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगोचर होती है। इन पाँचों प्रकार की ठटरियों में एक ही प्रकार की दो



सौ हड्डियाँ पाई जाती हैं। एक ही प्रकार की ३०० माँस-पेशियाँ विभिन्न हड्डियों का सञ्चालन करती हैं। इन सबकी खाल रोओं से ढकी रहती है और इनके बच्चों का पोषण दुग्ध-ग्रन्थि (Mammary gland) से होता है। इन सबका हृदय चार भागों में विभक्त होता है और वही समस्त देह में रक्त-सञ्चालन का कार्य करता है। इन सबके जबड़ों में एक सी बनावट के बचीस दाँत होते हैं और जनन-क्रिया के अङ्ग बिजकुल मिलते-जुलते हैं। मस्तिष्क की रचना करने वाले परमाणु भी इनमें एक से होते हैं। इन्हीं सब लक्षणों को देख कर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले ने लिखा है :— “हम मनुष्य तथा इन चारों तरह के बन्दरों के किसी भी अङ्ग पर दृष्टि क्यों न डालें, उनमें बहुत कुछ समानता जान पड़ती है, जब कि साधारण बन्दरों से इनके अङ्गों में बहुत अन्तर पाया जाता है।” यह सच है कि इन बन्दरों और हमारे कितने ही अङ्गों की लम्बाई और आकार में अन्तर पाया जाता है, पर वह विभिन्न परिस्थितियों में रहने से उत्पन्न हुआ है। ऐसा अन्तर स्वयम् मनुष्यों में भी पाया जाता है। किसी के हाथ बहुत लम्बे होते हैं और किसी के बहुत छोटे; किसी का मस्तक ऊँचा होता है किसी का नीचा; किसी के बाल मोटे होते हैं किसी के पतले, आदि-आदि।

रक्त की एकता

शरीर-शास्त्र-वेत्ताओं ने मनुष्य तथा बन्दर की एकता का जो प्रमाण दिया है उससे भी अधिक दृढ़ तथा अकाट्य प्रमाण कुछ डॉक्टरों ने खोज निकाला है। उससे विदित होता है कि मनुष्य का रक्त अन्य किसी भी प्राणी की अपेक्षा इन बन्दरों से बहुत अधिक मिलता है। यदि आप रक्त की एक बूँद को किसी अच्छे शुद्धबीन द्वारा देखें तो मालूम होगा कि वह एक तरल पदार्थ (Serum) तथा छोटे-छोटे कणों (Corpuscles) से मिल कर बना है। प्रत्येक प्राणी के रक्त के कण एक दूसरे से भिन्न आकृति के होते हैं। किसी के लम्बे होते हैं, किसी के गोल होते हैं, किसी के बड़े होते हैं, किसी के छोटे होते हैं। सारांश यह कि ये रक्त-कण मछली, पक्षी और बूध पिलाने वाले जानवरों में पृथक्-पृथक् आकृति के होते हैं।

इस भेद का महत्व उस समय ज्ञात होता है जब हम किसी एक जाति के प्राणी के शरीर में दूसरी जाति

के प्राणी का रक्त पिचकारी द्वारा पहुँचा दें। अगर उन दोनों प्राणियों में किसी प्रकार का सम्बन्ध होगा तो वह रक्त, रक्त में मिल जायगा और उसका कोई कुफल न होगा। उदाहरणार्थ कुत्ता और भेड़िया दो अलग-अलग प्राणी हैं, पर उनका वंश एक ही है। इसलिए यदि कुत्ते के शरीर में भेड़िए का अथवा भेड़िए के शरीर में कुत्ते का थोड़ा सा रक्त इन्जेक्शन द्वारा पहुँचा दिया जाय तो उनको उससे कुछ भी कष्ट नहीं होगा। यही दशा घोड़े और गधे की है। पर यदि एक वंश के प्राणी का रक्त दूसरे वंश के प्राणी के शरीर में डाल दिया जाय तो उसका प्रभाव घातक सिद्ध होता है। वह उसके लिए विष का काम करता है और वह कुछ ही देर में तड़फड़ा कर प्राण छोड़ देता है। इङ्ग्लैण्ड के नटैल नामक डॉक्टर ने ९०० प्रकार के प्राणियों के रक्त को लेकर इस प्रकार के १६ हजार परीक्षण किए और उससे अन्त में यह भली-भाँति सिद्ध हो गया कि मनुष्य का रक्त जबकि अन्य सब प्राणियों तथा साधारण बन्दरों को मार डालता है, उपर्युक्त चारों प्रकार के मनुष्याकृति बन्दरों पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह हुआ कि इन बन्दरों तथा मनुष्य के रक्त में पूर्ण एकता है और इसलिए वे सहज ही एक-दूसरे से मिल जाते हैं। यही बात बन्दरों की ‘ग्लैण्ड्स’ (Glands) के विषय में कही जा सकती है। आजकल बूढ़ों को जवान बनाने के लिए प्रायः डॉक्टर लोग बन्दर के शरीर से ‘ग्लैण्ड्स’ निकाल कर मनुष्य के शरीर में लगा देते हैं, पर उसका कुछ भी कुप्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार वैज्ञानिकों ने रसायन-शास्त्र की सहायता से जीवित शरीरों की एकता सिद्ध करके एक ऐसी दुरूह समस्या को हल कर दिया जिसके लिए अब तक वे जङ्गलों और पहाड़ों की झाँक छानते फिरते थे और फिर भी मतभेद का अन्त नहीं हो पाता था।

इस खोज से हम अपने विचार-क्षेत्र में एक कदम और आगे बढ़ते हैं। इससे यह सम्भावना सत्य प्रतीत होने लगती है कि किसी युग में मनुष्य ऐसे प्राणी के रूप में छुपा हुआ था जो इन मनुष्याकृति बन्दरों से मिलता हुआ था। कुछ लोग शायद ऐसी भी कल्पना करेंगे कि कहीं ये मनुष्याकृति बन्दर ही तो मनुष्य के पूर्वज नहीं हैं? उन लोगों की यह कल्पना हबशियों की



इस धारणा के सङ्ग है कि ये बन्दर वास्तव में मनुष्य ही हैं, पर वे बड़े आलसी हैं और इसलिए बन्दर बनने का बहाना करते हैं जिससे उनको काम न करना पड़े। यद्यपि यह धारणा हास्यजनक है पर उससे इतना अनुमान किया जा सकता है कि ये बन्दर मनुष्य के पूर्वजों के ही वंशज हैं, पर परिस्थितिवश उनके विकास में बाधा पड़ गई है और वे अभी तक बन-मानुस ही बने हुए हैं।

कुछ लोग इस सम्बन्ध में प्रश्न करेंगे कि यह कैसे सम्भव है कि हमारे कुछ कुरूप बन्दराकृति पूर्वज अभी उसी निम्न परिस्थिति में पड़े हैं जब कि मनुष्य बहुत समय पहले वर्तमान उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका है ? पर यह प्रश्न विशेष महत्व नहीं रखता; क्योंकि इस प्रकार की घटना हम स्वयम् मनुष्य-समाज में देख रहे हैं। क्या कारण है कि जब संसार के अधिकांश देशों के मनुष्य सभ्यता के अनगिनती सुखों का उपभोग कर रहे हैं, ऑस्ट्रेलिया के जङ्गली निवासी पशुओं की तरह भाड़ियों में रहते हैं और हिम-युग के मनुष्यों की भाँति पथर और लकड़ी के हथियारों का उपयोग करते हैं ? दूर जाने की क्या आवश्यकता है, स्वयम् हमारे देश में जब कि बम्बई, कलकत्ता के निवासी मोटरों और हवाई जहाजों में बैठ कर सैर करते हैं तथा दस खण्ड के मकानों में रहते हैं, उनसे सौ दो सौ मील की दूरी पर ही मील और सन्थाल जैसे लोग पाए जाते हैं, जिनको मोटा कपड़ा बनाना भी नहीं आता और जो आधुनिक सभ्यता से किसी तरह का सम्बन्ध न रख कर प्रायः पशुओं की सी अवस्था में पड़े हुए हैं।

गिबन की विशेषताएँ

जब हम चारों प्रकार के बन-मानुसों पर दृष्टि डालते हैं तो उनमें बहुत भिन्नता देखने में आती है। तब क्या वे विभिन्न युगों के प्राचीन मनुष्यों के नमूने हैं ? यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। उनको एक को दूसरे का उत्तराधिकारी सिद्ध करने की जितनी चेष्टा की गई है वह असफल हुई है। यह सच है कि उनमें से प्रत्येक कुछ ऐसी विशेषताएँ रखता है जो मनुष्य से मिलती हैं, पर उनमें पारस्परिक सादृश्य अधिक नहीं है। जैसा कि हम जावा में पाई जाने वाली हड़ियों की चर्चा करते समय बतला चुके हैं, गिबन नाम का बन्दर मनुष्य से अधिक सादृश्य रखता है। तब क्या गिबन ही मनुष्य

का पूर्वज है और ओरङ्ग-उटाङ्ग, शिम्पन्जी तथा गोरिल्ला अविकसित जातियों के नमूने हैं ? यह तो मानना ही पड़ेगा कि गिबन बड़ा चित्तचण तथा समझदार प्राणी है और मनुष्य के पूर्वज से उसका सम्बन्ध अन्य बन्दरों की अपेक्षा कहीं अधिक है। वह गोरिल्ला की तरह खूँखार नहीं होता वरन् बहुत नम्र स्वभाव का तथा प्रेमी होता है। वह ताल-सुर के साथ गा सकता है, जो एक पशु के लिए अत्यन्त आश्चर्यजनक विषय है। यदि गिबन कभी पेड़ से उतरता है, जो उसे बहुत कम पसन्द है, तो वह दोनों पैरों पर खड़ा होकर और दोनों हाथों को फैला कर अथवा उनको सर के ऊपर रख कर चलता है। गिबन के यह हाथ बड़े रहस्यपूर्ण हैं। उसके धड़ तथा पैरों के साथ तुलना करने से यह बहुत लम्बे जान पड़ते हैं। हाथों के सम्बन्ध में मनुष्य के साथ उसकी कुछ भी तुलना नहीं की जा सकती। किसी अन्य दूध पिलाने वाले पशु के इतने लम्बे हाथ नहीं होते। पर जब हम यह जान लेते हैं कि वह हमेशा पेड़ों पर ही रहता है और पेड़ों पर चढ़ने की कला में अद्वितीय है तो हमको इन हाथों की उपयोगिता विदित हो जाती है और उनके विकास के कारण का भी पता लग जाता है। इस दृष्टा में स्वभावतः हमारे मन में प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य के पूर्वज के भी ऐसे ही मकड़ी के से लम्बे हाथ थे। यद्यपि शेष तीन प्रकार के बन-मानुसों के भी काफी लम्बे हाथ होते हैं, पर तो भी उनमें और गिबन के हाथों में बहुत अन्तर है।

ऐसी दृष्टा में हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि सम्भवतः ये बन-मानुस मनुष्य के पूर्वज से सम्बन्धित हैं पर ये उससे पूर्णतया मिलते हुए नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक का अपनी परिस्थिति के अनुसार विकास हुआ है जब कि मनुष्य अपनी विशेष परिस्थिति द्वारा वर्तमान अवस्था तक पहुँच गया है। यद्यपि उनमें अपने पूर्वज की अपेक्षा अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है तो भी प्राकृतिक आवश्यकताओं ने उनमें कुछ पृथक्-पृथक् विशेषताएँ उत्पन्न कर दी हैं।

गर्भस्थ शिशु-विज्ञान की सान्नी

अब हम मनुष्य और बन्दरों की एकता का एक और प्रमाण देते हैं जिसका पता गर्भस्थ शिशु-विज्ञान के ज्ञाताओं ने लगाया है। जीवित प्राणियों में एक



अद्भुत नियम यह पाया जाता है कि उनके गर्भस्थ शिशु अपने पूर्वजों के स्वरूप से बहुत अंशों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक मेंढक जब तक वह छोटा रहता है मछली से बहुत कुछ मिलता है और उसी की तरह गलफड़ों से साँस लेता है। अन्य कितने ही प्राणियों के बच्चे अण्डे के भीतर या गभ में ऐसे रूप में होते हैं जो अनेकांश में उनके अति प्राचीन पूर्वजों से समानता रखता है।

उपर्युक्त कथन की सत्यता का एक साधारण प्रमाण यह है कि गोरिल्ला, शिम्पेन्जी और ओरङ्ग-उटाङ्ग जब तक कम उम्र के रहते हैं तब तक वे मनुष्य के साथ बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं। गोरिल्ला, जोकि बड़ी उम्र में अत्यन्त खूँझार और क्रोधी हो जाता है, बचपन में मनुष्य से इतना अधिक मिलता हुआ होता है कि एक साधारण आदमी भी, जिसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उसे देख कर आश्चर्य करने लगेगा। प्राणी-परम्परा के सिद्धान्तानुसार इसका यह अर्थ होता है कि, ये बन-मानुस किसी ऐसे पूर्वज के वंश में से हैं जो उनकी अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलता-जुलता था। इस विषय की प्रत्यक्ष जाँच एमिल सेलेनका नामक वैज्ञानिक ने जावा टापू में जाकर तथा गिबन के कितने ही गर्भस्थ शिशु एकत्रित करके की थी। उससे पता लगाया कि गिबन के बच्चे की ओम्फरी ठीक उसी प्रकार की होती है जैसी की मनुष्य की। साथ ही गिबन के गर्भस्थ शिशु की आकृति प्रायः मनुष्य के गर्भस्थ शिशु की तरह ही दिखलाई देती है। उस अवस्था में उसके हाथों की लम्बाई साधारण होती है और जन्म लेने के बाद धीरे-धीरे ही वे अस्वाभाविक रूप से बढ़ते हैं। यदि प्राणी-परम्परा विज्ञान का नियम ठीक है तो इस प्रमाण के आधार पर हम कह सकते हैं कि गिबन के पूर्वज के हाथ वर्तमान गिबन की तरह लम्बे न थे और इसलिए वह मनुष्य से बहुत-कुछ मिलता हुआ जान पड़ता होगा।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि किसी ज़माने में पृथ्वीतल पर कोई ऐसा स्तनधारी प्राणी (Mammal) रहता था, जिसमें केवल मनुष्य का ही नहीं वरन् वर्तमान समय में पाए जाने वाले चारों प्रकार के बन-मानुसों का बीज मौजूद था। उसी से इन सबका इस प्रकार विकास हुआ, जिस प्रकार एक ही पिता के कई पुत्र एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं।

अगर हम इस प्राणी को, इस कारण से कि इससे वर्तमान मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है, 'मनुष्य' कहें तो हमको यह भी कहना पड़ेगा कि वर्तमान मनुष्याकृति बन्दर मनुष्य के वंशज हैं। यह कथन उन विज्ञान-विहीन लोगों के कथन से, जो वर्तमान बन-मानुसों को मनुष्य का पूर्वज बतलाते हैं, कहीं अधिक सार्थक होगा।

मनुष्य की पूँछ

जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमारे सामने फिर यह समस्या उपस्थित होती है कि इस प्राणी की, जिसका नाम बानर-मनुष्य (Ape-man) रक्खा गया है, उत्पत्ति कहाँ से हुई? इस प्रश्न पर विचार करने से वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि चारों प्रकार के बन-मानुसों के शारीरिक सङ्गठन के पदचात साधारण बन्दरों के शारीरिक सङ्गठन का नम्बर है। ये साधारण बन्दर तीन प्रकार के होते हैं। एक एशिया और अफ्रीका में रहने वाले लम्बी पूँछ के लङ्गूर, दूसरा अमेरिका में पाया जाने वाला 'कैपूचिन' नाम का बन्दर और तीसरा अमेरिका में ही पाया जाने वाला 'मार्मोसेट' नाम का बन्दर जिसके नाखूनों के बजाय पंजे होते हैं और जो गिलहरी से अधिक मिलता-जुलता है। यद्यपि ये तीनों तरह के बन्दर मनुष्य के पूर्वजों की श्रेणी में नहीं माने जा सकते, पर उनकी शारीरिक रचना का विश्लेषण करने से इतना अनुमान अवश्य होता है कि बानर-मनुष्य का पूर्वज उनसे सादृश्य रखने वाला ही होगा।

आरम्भ में जिन वैज्ञानिकों ने गिबन की परीक्षा की थी उन्होंने बतलाया था कि उसमें जहाँ अनेक बातें मनुष्य तथा अन्य मनुष्याकृति बन्दरों से मिलती हैं, वहाँ कुछ बातें ऐसी भी हैं जो सर्वथा साधारण श्रेणी के बन्दर तथा लङ्गूरों में पाई जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गिबन ने ये विशेषताएँ बानर-मनुष्य से पाई हैं और बानर-मनुष्य ने अपने किसी और प्राचीन पूर्वज से, जो साधारण बन्दरों की तरह होगा, प्राप्त की होंगी। इस बात का प्रमाण कि मनुष्य की पूर्वज-श्रेणी में कोई प्राणी ऐसा था जिसके लम्बी पूँछ होगी, मनुष्य के गर्भस्थ शिशु को देखने से अब भी मिल सकता है। उस अवस्था में बालक के स्पष्ट रूप में बाहर निकली हुई पूँछ रहती है और कुछ लोगों के तो जन्म लेने के बाद बढ़े होने पर भी यह पूँछ क्यों की स्थिति बनी रहती है।



यद्यपि लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते पर ऐसे अपवाद-स्वरूप पूँछ वाले आदमी अब भी कभी-कभी देखने में आते हैं। इसलिए इस बात से इनकार करने का कोई कारण नहीं है कि मनुष्य के किसी पूर्वज के आजकल के बन्दरों की तरह लम्बी पूँछ थी। पृथ्वी के स्तरों की परीक्षा करने से पता चलता है कि ऐसे पूँछ वाले बन्दर तृतीय युग के मध्य में पाए जाते थे। इनमें से एक जाति का बन्दर जिसकी पूँछ बहुत लम्बी होती थी ग्रीस में रहता था। इसका नाम मैसोपिथेसस था और इसकी बहुत सी हड्डियाँ ग्रीस में मिली हैं। इस बन्दर की नाक तथा आँखों का स्थान मनुष्य से, वर्तमान बन्दरों की अपेक्षा, बहुत अधिक मिलता था। इससे तथा बन्दरों में पाए जाने वाले अन्य मनुष्य से मिलते हुए चिन्हों से विदित होता है कि जिस प्राणी की खोज हम कर रहे हैं उसका वंश दो शाखाओं में विभाजित हुआ था, जिनमें से एक शाखा साधारण बन्दरों की तथा दूसरी बानर-मनुष्य (Ape-man) की थी। यह प्राणी अवश्य ही बानर-मनुष्य से बहुत अधिक पुराना होगा और उसकी स्थिति तृतीय युग के आरम्भ में, जिसे कम से कम तीस लाख वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, रही होगी।

मनुष्य के तीस रूप

इस तरह जैसे-जैसे हम पीछे की तरफ लौटते जाते हैं, मनुष्य को हम विभिन्न प्राणियों के रूप में अन्तर्हित पाते हैं। कहीं वह गिलहरी के रूप में, कहीं छिपकली के रूप में, कहीं मछली के रूप में और कहीं कीड़े-मकोड़े के रूप में हमको दिखलाई देता है। अन्त में हम ऐसे युग में, जिसे कई करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, जा पहुँचते हैं जहाँ उसका अस्तित्व जीवित कणों के रूप में रह जाता है। सब मिला कर प्रायः तीस रूपों में होकर वह वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है। इन तमाम परिवर्तनों की अवस्था में उसके शारीरिक अवयवों तथा अस्थि-संरचना की वृद्धि थोड़ा-थोड़ा करके किस प्रकार हुई है, यह बड़ी लम्बी कथा है और इसके सम्बन्ध में एक नहीं हज़ारों सचित्र ग्रन्थ संसार की समस्त उन्नत भाषाओं में लिखे जा चुके हैं। उन सब का सारांश यही है कि यह पृथ्वी जैसे-जैसे पुरानी और प्राणियों के जीवन-निर्वाह के योग्य होती गई है वैसे-वैसे ही पुराने प्राणियों

का विकास होकर नई तरह के प्राणी उत्पन्न होते गए हैं। इस परिवर्तन का मुख्य आधार जल-वायु तथा भोजन की व्यवस्था पर रहा है। आत्म-रक्षा की नैसर्गिक भावना ने भी परिवर्तन में बहुत-कुछ सहायता पहुँचाई है। जो प्राणी कमज़ोर अथवा आत्म-रक्षा में असमर्थ थे उन्हें बलवान और चालाक प्राणियों ने खा डाला और उन्हीं के वंश का अधिकाधिक विकास होता गया।

विकास-सिद्धान्त के विरोधी

हम यह भली भाँति समझते हैं कि साधारण लोगों के लिए प्राणियों का यह शारीरिक तथा मानसिक रूपान्तर अत्यन्त दुर्बोध प्रतीत होता है और इसलिए वे इसे सर्वथा असम्भव समझते हैं। इसके दूसरे विरोधी धर्म के नाम पर पेट भरने वाले लोग हैं जो ऐसे ज्ञान का जनता में प्रचार होना अपनी मृत्यु समझते हैं। क्योंकि इससे विभिन्न धर्मों के 'ईश्वरीय ग्रन्थों' जैसे वेद, पुराण, बाइबिल, कुरान आदि में लिखे सृष्टि के इतिहास तथा सृष्टिकर्ता ईश्वर का खण्डन होता है और ऐसी अवस्था में लोगों के इस गोरखधन्धे में फँसे रहने की सम्भावना कम हो जाती है। हमारे देश में तो अभी इन सिद्धान्तों का सार्वजनिक रूप में प्रचार ही नहीं हुआ है, न यहाँ अभी इतनी शिक्षा ही फैली है कि साधारण जनता इस गहन विषय को समझ सके। पर यूरोप और अमेरिका में इसका पादरी तथा धर्माचार्यों ने इतना विरोध किया, जिसका वर्णन किया जा सकना असम्भव है। उन्होंने झूठे तर्क करके लोगों को भ्रम में डालने की ही चेष्टा नहीं की वरन् इसकी शिक्षा तथा प्रचार को क़ानून द्वारा रोकवाया और सम्भवतः अमेरिका में इसका प्रचार अभी तक ग़ैरक़ानूनी माना जाता है। पर जब इससे काम न चला तो उनमें से अधिकांश लोगों ने इसके मूल-सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया, पर साथ ही उनमें यह जोड़ देने की चेष्टा की कि वर्तमान रूप में पहुँचने पर मनुष्य में आत्मा का प्रवेश ईश्वर द्वारा ही हुआ। इस प्रकार जिस कार्य को वे विरोध तथा बलपूर्वक नहीं कर सके उसे युक्ति द्वारा करना चाहते हैं।

विकास के वर्तमान उदाहरण

वास्तव में यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि हम लोग ईश्वर या किसी अन्य दैवी शक्ति द्वारा एक ही



दिन में मनुष्यों तथा मानवीय सभ्यता का उत्पन्न हो जाना और उन मनुष्यों में से कुछ का धोती तथा बगल-बन्दी पहिन कर संस्कृत बोलने लगना तथा कुछ का कोट-पतलून पहिन कर अङ्गरेजी बोलना, जैसी कल्पनाओं को तो, जिनका एक भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है, बुद्धिगम्य मान लेते हैं, पर विकास का नियम जिसका प्रमाण संसार तथा मानवीय सभ्यता के प्रत्येक क्षेत्र में पग-पग पर मिलता है, हमारी समझ में नहीं आता। पुराने ज़माने की बात छोड़ दीजिए अब भी विकास-सिद्धान्त के अनुसार मनुष्यों तथा अन्य कितने ही प्राणियों में परिवर्तन होता रहता है, पर उसकी गति इतनी धीमी है कि साधारण लोग अपने जीवन-काल में, जो कुछ अपवादों को छोड़ कर प्रायः अधिक से अधिक सौ वर्ष का होता है, उसका अनुभव नहीं कर सकते। पर यदि हम किसी प्राणी के लिए कृत्रिम रूप से सर्वथा भिन्न जल-वायु में रखें तो हम थोड़े ही समय में विकास का परिणाम देख सकते हैं। पिछले कुछ ही वर्षों में कुत्तों, कबूतरों और खरगोशों आदि की जितनी विचित्र जातियाँ लोगों ने उनके खान-पान तथा रहन-सहन में परिवर्तन करके उत्पन्न कर ली हैं वह आश्चर्यजनक है। आजकल शेर के बराबर बड़े तथा बहादुर कुत्तों से लेकर इतने छोटे कुत्ते तक देखने में आते हैं जिनको लोग सहज ही जेब में रख ले सकते हैं। इसी प्रकार ऐसी-ऐसी विचित्र सूरत के कबूतर पैदा किए गए हैं जो साधारण कबूतरों से बिल्कुल नहीं मिलते। खरगोश भी आजकल हरे, पीले, नीले आदि बीसियों रङ्ग के मिलते हैं जिनका पहले पता भी न था। इन तमाम नई नस्लों को ईबवर ने नहीं वरन् मनुष्य ने स्वयं उत्पन्न किया है। जापान वाले मुरों की पूँछ को आठ-दस हाथ तक लम्बी बना लेते हैं। वहाँ के निवासी आम और इमली के समान विशाल वृक्षों को छोटा करके केवल फ़ीट दो फ़ीट का बना देते हैं और उनमें हज़ारों पत्ते तथा फल बराबर लगते रहते हैं। अमेरिका के कृषि-विज्ञान-विशारदों ने अनेक प्रकार के नवीन फल और फूलों को उत्पन्न किया है। ये सब विकास के छोटे-छोटे नमूने हैं और यदि चेष्टा की जाय तो कुछ ही समय में ऐसे-ऐसे पशु-पक्षी

उत्पन्न किए जा सकते हैं जिनको मनुष्य पहिचान भी नहीं सकते न उनका नाम ले सकते हैं। इसी प्रकार यदि पृथ्वी की प्राकृतिक अवस्था में स्वभावतः परिवर्तन होने से समय-समय पर उस पर रहने वाले प्राणियों के स्वरूप तथा स्वभाव में अन्तर होता गया तो इसमें असम्भव क्या है? हम यह मानने को तैयार हैं कि अभी मनुष्य ज्ञान की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँच गया है और सैकड़ों बातें ऐसी हैं, जिनके विषय में उसे भ्रम है अथवा जिनसे वह सर्वथा अनजान है। यह भी सम्भव है कि वैज्ञानिकों ने मनुष्य के जिन-जिन स्वरूपों का निर्णय किया है, उनमें से कुछ स्वरूप छूट गए हों अथवा कुछ ऐसे स्वरूप सम्मिलित हो गए हों जिनसे मनुष्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रकृति ने किस नियम के अनुसार अधिक योग्य और उपयुक्त प्राणियों को पृथ्वीतल पर स्थित रहने के लिए चुना, यह प्रश्न भी बड़ा विवादग्रस्त है और इसकी अन्तिम मीमांसा अभी तक नहीं हो पाई है। पर इन तमाम त्रुटियों के होते हुए भी कोई हमको अपने अध्ययन के उन फलों का उपभोग करने से नहीं रोक सकता, जिनकी सत्यता निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है और जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण हम प्राप्त कर चुके हैं।

इस प्रकार के सत्य-ज्ञान का विरोध ऐसे ही लोग करते हैं जिनके विवेक पर धार्मिक कट्टरता अथवा अन्धविश्वास का परदा पड़ गया है, अथवा जिन्होंने धर्म और मानवीय आदर्शों को इतना नाजुक समझ रक्खा है कि इस प्रकार की खोजों से उनके नष्ट-अष्ट हो जाने की सम्भावना है। सच्ची धार्मिक भावना कुछ और ही वस्तु है और इस प्रकार के मानवीय विकास के इतिहास से वह क्षीण नहीं हो सकती। इस बात के जान लेने से कि लाखों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों की देह पशुओं के समान बालों से परिपूर्ण चर्म से ढकी थी, हमारे आध्यात्मिक जीवन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस प्रकार की कितनी भी खोजें क्यों न हों मनुष्य, मनुष्य ही बना रहेगा। इसके विपरीत मनुष्य को इस विषय में अपनी शक्ति पर गर्व करना चाहिए कि उसने लाखों वर्ष के विस्मृत इतिहास को फिर से नवजीवन प्रदान किया।



नैपाल

[श्री० सेठ लक्ष्मणप्रसाद]



रतीय इतिहास के पर्यालोचन से यह स्पष्ट विदित होता है कि इस देश का अतीत जितना उज्ज्वल और गौरवपूर्ण रहा है, उतना शायद ही और किसी देश का रहा हो। एक दिन भारत जगद्गुरु की महान पदवी से विभूषित था। इसी ने संसार को गणित, वैद्यक, भौगोलिक ज्ञान तथा सभ्यता की शिक्षा दी थी। उन्नति के चरम शिखर पर पहुँची हुई पाश्चात्य जातियाँ जिस समय जङ्गलों में पशुओं की तरह जीवन-यापन कर रही थी, उस समय भारत के मनीषी भूगोल और खगोल जैसी गहन विद्याओं की पर्यालोचना में निमग्न थे। चीन, जापान, जावा और सुमात्रा को इसी ने पवित्र सार्वभौम धर्म की शिक्षा प्रदान की थी।

इसके बाद समय ने पलटा खाया। महाभारत आदि वराज युद्धों के कारण आर्य-राजसत्ता की नींव हिल गई। हज़ारों वर्षों तक विदेशियों के आक्रमण तथा लूट-खसोट का सिलसिला जारी रहा। धनजोलुप आक्रमणकारियों ने इसे लूटा ही नहीं, वरं इसकी सभ्यता को भी नष्ट कर डालने की चेष्टा की। जिन्हे ज्ञान-दान देकर इसने मनुष्य बनाया था, वे ही इसके शत्रु बन गए। धीरे-धीरे सारी प्राचीन गौरव-गरिमा विलुप्त हो गई; एक दिन का जगद्गुरु आज पराधीन, पर-पददलित और संसार का सबसे पिछड़ा हुआ—अनुन्नत देश बन गया। उसकी सभ्यता, उसकी धार्मिकता और उसकी उन्नतिशीलता इतिहास की सामग्री बन गई।

जिस आर्य-राज्यसत्ता के प्रखर प्रताप से आधा भूमण्डल उज्जासित था, उसकी एक झलक मात्र हिमालय की गोद में बच गई है, जिसे हम 'नैपाल' कहते हैं। भारत की इस हीनावस्था में भी अपनी स्वतन्त्रता और प्राचीन आर्य-सभ्यता को किञ्चित् बचाए रख कर

नैपाल ने बड़ा काम किया है। इसलिए नैपाल हिन्दू-मात्र के गौरव और अभिमान की वस्तु है। इसीलिए इन पंक्तियों द्वारा हमने 'चाँद' के पाठकों से नैपाल का किञ्चित् परिचय कराने का विचार किया है।

नाम

नैपाल या नेपाल एक प्राचीन देश है। 'हिन्दी शब्दसागर' से पता चलता है कि स्कन्दपुराण, गरुड-पुराण, शक्ति-सङ्गम तन्त्र, बृहन्नील तन्त्र, और योगेश्वर तन्त्र आदि ग्रन्थों में इस देश का उल्लेख पाया जाता है। जैन हरिवंश तथा हेमचन्द्र की स्थविरावली में भी इसका वर्णन है। इसके नाम के सम्बन्ध में विद्वानों के कई मत हैं। कुछ सज्जनों के मतानुसार तिब्बत तथा उसके आसपास की अनार्य जातियों अपनी भाषा में उस देश को, जहाँ गोरखे रहते हैं, पाज कहती हैं। सिक्किम और भूटान वाले नैपाल के पूर्वीय भाग को 'ने' कहते हैं। इन्हीं दोनों शब्दों से 'नेपाल' शब्द बना होगा। कुछ विद्वानों के मतानुसार इसका पुराना नाम 'डेकारी टापू' (Dacarie Tapoo) है। परन्तु अधिकांश का मत यह है कि त्रेता और द्वापर में यहाँ निमूनी (Nymuni) वंश के नरेशों का राज्य था, इसलिए 'नैपाल' शब्द की उत्पत्ति का कारण भी 'निमूनी' शब्द ही है।

भौगोलिक स्थिति

इस देश की भौगोलिक स्थिति के विषय में भूगोल-वेत्ताओं का कथन है कि किसी समय में यहाँ बहुत सी झीलें थीं, जो धीरे-धीरे भर गईं और इस प्रकार नैपाल के प्राचीन और नवीन रूप में बहुत-कुछ अन्तर पड़ गया। यह देश साढ़े सत्तारह डिग्री उत्तरी अक्षांश के समीप स्थित है। इसके जलवायु के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इसकी समता अधिकांश में यूरोप महाद्वीप के दक्षिणी भाग के प्रदेशों के जलवायु से की जा सकती



है। इसका कुछ भाग हिम से आच्छादित रहता है और इसकी घाटियों में बर्फ भी गिरती है। चार-पाँच मास पर्यन्त यहाँ के ताजाब और भीत हिम से आच्छादित रहते हैं। उस समय शुभवसना प्रकृति का सौन्दर्य ऊषा-हास-विलास के साथ एक अनुपम और अलौकिक शोभा की सृष्टि करता है। भूगोलवेत्ताओं की दृष्टि में इसका कारण यह है कि यह देश समुद्र की सतह से चार हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित है। इस देश के इतने उच्च स्थान पर स्थित होने से यहाँ की हवा अत्यन्त शीतल है। परन्तु नाऊकोटी (Noakote) से खैरू (Kheroo) होकर रुमिका (Rumika) तक विविध प्रकार का वायु-मण्डल है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं उष्णता उतनी ही अधिक है, जितनी कि बङ्गाल प्रान्त में है और कहीं-कहीं शीत की उतनी ही अधिकता अनुभव होती है, जितनी कि रूस के साईबेरिया प्रान्त में। इसकी तराई में एक प्रकार का उजर होता है, जिसे चिकिस्सक लोग 'आउल' (Owl) के नाम से पुकारते हैं। कहीं-कहीं वहाँ के निवासियों को एक और रोग होता है, जिसे भारतवर्ष में घेवा या गलगण्ड कहते हैं। इसे नेपाली भाषा में गानू कहते हैं। यह रोग देव-पाटन और कौरीगौड़ में अधिक होता है। ये दोनों स्थान काठमण्डू से कुछ मील की दूरी पर हैं। मँगल-टाई में भी यह रोग अधिकतर उत्पन्न होता है। इस रोग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों की यह सम्मति है कि इसके कोटाणु जल के साथ-साथ पेट में चले जाते हैं। परन्तु कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि वहाँ का वायुमण्डल दूषित होने पर यह रोग हो जाता है। इस विषय में मिस्टर कौक्स (Cox) की सम्मति है कि इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्रकार की मिट्टी है, जिसका नाम टफ (Tuf) है। यह मिट्टी यूरोप के स्वीट्ज़रलैण्ड में भी अधिकता से प्राप्त होती है। परन्तु नेपाल के अधिकांश स्थल की आवहवा रूखी है। देश का अधिकांश भाग पहाड़ी भूभागों, नदियों, पर्वतों और बने बनों से आच्छादित है।

पैदावार

प्राचीन समय में भारतीयों का निश्चित विचार था कि नेपाल में सुवर्ण अधिकता से उत्पन्न होता है। यह

विचार यहीं तक सीमित नहीं रहा; बल्कि इस बात से अन्य देश के राजाओं के हृदयों में भी इस देश को हस्तगत करने का विचार हुआ। फलतः एक के बाद दूसरे राजा ने इस पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। यहाँ तक कि मुर्शिदाबाद के नवाब क़ासिमअली ख़ाँ ने भी इसी आधार पर नेपाल पर आक्रमण किया था। परन्तु सत्य तो यह है कि नेपाल में सोना इतनी अधिकता से प्राप्त नहीं होता, जितना कि लोगों ने समझ रखा था। हाँ, एक स्थान जो लैस्टी (Lestie) कहा जाता है, यहाँ पर सोना अवश्य प्राप्त होता है। परन्तु यह स्थान आजकल नेपाल राज्य के अन्तर्गत नहीं है। सम्भव है, अन्य स्थानों पर सुवर्ण मिल सके, परन्तु इसका निश्चित ज्ञान किसी को नहीं है। परन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि नेपाल में ताँबा और लोहा आदि धातुएँ अधिकता से प्राप्त होती हैं। इनकी खानें कूमबरी घाटी (Koombare Valley) के पास हैं। कुछ काल पूर्व अवध में नेपाल से बहुत ताँबा आता था, जो एक रूपए का आध सेर के भाव से बिकता था। परन्तु विजायती ताँबे के आते ही नेपाली ताँबे का आना बन्द हो गया। क्योंकि विजायती ताँबे का भाव एक रूपए सेर का था।

इन धातुओं के अतिरिक्त नेपाल में चाँदी भी मिलती है और कहीं पर चाँदी के साथ सीसा और गन्धक भी मिलता है। परन्तु इतना होने पर भी नेपाल में सीसा पटने से आता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सीसे को चाँदी से पृथक् करने में या तो व्यय अधिक होता है अथवा कठिनाई होती है या वहाँ वाले सीसे को चाँदी से पृथक् करना जानते ही नहीं।

नेपाल में गन्धक मिलने से यह सिद्ध होता है कि इस देश में अवश्य ही कहीं पर कोई ज्वालामुखी पहाड़ है। किन्तु यह किसी को भी विदित नहीं कि वह किस स्थान पर है। फिर भी विद्वानों का यह अनुमान है कि यह नेपाल के दक्षिणी भाग में है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर कई प्रकार के पत्थर भी पाए जाते हैं। उनमें से मारबिज, सिलेट, चूना और लाल-पीले पत्थर ही वर्णन योग्य हैं। गोरखा स्थान के पास एक प्रकार का साफ़ क्रिस्टल (Crystal) पत्थर पाया जाता है, जिसे अच्छी तरह काटा जाय तो हारे की तरह चमकीला होता है।



नैपाल की मिट्टी ऐसी अच्छी है कि कुछ काल पीछे वह सीमेण्ट के समान कठिन हो जाती है। इसके अतिरिक्त नैपाल में ये वस्तुएँ और उत्पन्न होती हैं—जैसे, अफीम, कस्तूरी, खैर, चिरायता, मजीठ, खाल, लकड़ी, सुरमा, सङ्किया, अखरोट, बड़ों पीपल, इलायची, हाथी-दंत, चँवर और नाना प्रकार की औषधियाँ आदि। ये तमाम वस्तुएँ यहाँ से बाहर भी भेजी जाती हैं। नैपाल में अन्न भी कई प्रकार के होते हैं। उनमें धान का स्थान प्रधान है। यही यहाँ के अधिवासियों की प्रधान खाद्य-सामग्री है। रूई, सूती कपड़ा, खीनखाप, नमक, लाख, पीतल के गहने, शिकार के लिए बन्दूकें और चाय आदि चीज़ें यहाँ बाहर से आती हैं।

यहाँ के निवासी और उनका रहन-सहन

इस देश की जन-संख्या पचास लाख है। यहाँ के निवासी प्रायः हिन्दू हैं। जिनमें ब्राह्मण और राजपूत बहुत हैं। अन्य जातियों में नेवाड़, धनवाड़े, महाजन, भूतिया और बनरस हैं। राजपूत अधिकतर सेनाओं में सैनिक का कार्य करते हैं। ये बड़े सच्चे, सीधे तथा रण-कुशल होते हैं। इन लोगों की नस-नस में वीरता और देश का गौरव भरा हुआ है। ये लोग कपटी नहीं होते। अपना जीवन धार्मिकता से व्यतीत करते हैं। राजपूतों में ही नहीं, किन्तु प्रायः यहाँ के सभी निवासियों के हृदयों में भगवद्भक्ति का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। ये लोग गौ-भक्त भी होते हैं और गायों को पूज्य तथा पवित्र समझते हैं। उन्हें बेचने की प्रथा को तो ये पाप की दृष्टि से देखते हैं। नैपाल की स्थिति से यह स्पष्ट है कि यहाँ प्रायः किसी शत्रु का प्रवेश ही नहीं हुआ। अगर हुआ भी तो वह असफल रहा। इसीलिए एक-मात्र नैपाल ही ऐसा हिन्दू राज्य है, जहाँ किसी भी यवन राजा का राज्य नहीं रहा। इसीलिए नैपालियों की रहन-सहन, वेष-भूषा, रीति-रिवाज और त्यौहार आदि में किसी बाहरी सभ्यता का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यहाँ वेष-भूषा आदि अनेक प्रकार के हैं। जितनी जातियाँ यहाँ हैं, उतने प्रकार के रहन-सहन भी प्रचलित हैं। इन्हीं कारणों से एक जाति का दूसरी जाति से अधिक सम्बन्ध भी नहीं है। वे एक दूसरे के समीप रहती हुई भी दूसरी जाति की उत्पत्ति का कारण

नहीं जानती हैं। सम्भव है, इसका कारण इस देश की स्थिति के अनुसार यात्रा की कठिनता हो।

इस देश में हाथियों की बहुतायत होने से सवारी का कार्य इन्हीं से लिया जाता है। नैपाली पुरुष इसीके द्वारा यात्रा आदि करते हैं। सवारी के लिए पालकी का भी व्यवहार होता है और वह बड़े गौरव और महत्व की सवारी समझी जाती है। धनी लोग प्रायः इसी का व्यवहार किया करते हैं।

नैपाल के प्रायः सभी अधिवासी इतने धर्मनिष्ठ और सत्यप्रिय होते हैं कि यदि किसी को कोई वस्तु कहीं पर पड़ी हो, तो कोई भी उसे ग्रहण नहीं करेगा; जो उसका अधिकारी होगा वही लेगा। नैपाली बड़े परिश्रमी होते हैं। आलस तो उनके निकट ही नहीं आता। वे भाग्य के भरोसे बैठना पाप समझते हैं। नैपाल कृषि-प्रधान देश है। इसीलिए यहाँ के निवासी प्रायः कृषि-कार्य ही करते हैं और उसी से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। कृषि-कार्य अथवा अन्य कार्य जो पुरुष करते हैं, वहाँ की स्त्रियाँ भी उन कार्यों को बड़ी खुशी के साथ करती हैं। परिश्रम करके जीवन व्यतीत करना उनका प्रधान लक्ष्य होता है। नैपाल की स्त्रियाँ भारतवर्ष की स्त्रियों की तरह घरों में बन्द रह कर रोग-ग्रस्ता बनना या उसी में अपना मान समझना उचित नहीं समझतीं। स्त्री और पुरुषों के शारीरिक परिश्रम का प्रभाव उनके शरीर के सौन्दर्य और गठन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि नैपाल देशवासी स्त्री और पुरुषों के शारीरिक परिश्रम का प्रभाव उनके शारीरिक सौन्दर्य और गठन पर भी पड़ा है। शरीर का वर्ण बहुत कुछ देश की जलवायु पर आश्रित है। यहाँ के निवासियों को इसका भी उचित पुरस्कार मिला है। यहाँ के स्त्री और पुरुष अधिक संख्या में बड़े सुन्दर होते हैं। स्त्रियाँ विशेषतया सुन्दरी हाती हैं। नैपाल-निवासियों के शरीर-गठन की कुछ विशेष बातें अन्य देश-निवासियों के शरीर-गठन से एक असाधारण भेद पैदा कर देती हैं, जिससे इस देश के निवासी सरलता से दूर से ही पहचाने जाते हैं। उनकी नाक चिपटी और नेत्र छोटे होते हैं। उनकी समता चीनी स्त्रियों से किसी अंश में की जा सकती है, परन्तु मलाया की स्त्रियों से मिलती-जुलती होती हैं।



वस्त्र और गहने

नैपालियों में गोरखा जाति शरीर की सजधज में दूसरी जातियों से श्रेष्ठ है। गर्मियों में ये लोग सादे वा नीले रङ्ग के सूती कपड़े का पाजामा, कुर्ता या कुछ नीचे लटकता हुआ, जामा जो चपकन की भाँति होता है, पहनते हैं। सबकी कमर में कई हाथ लम्बा कपड़े का कमरबन्द रहता है और उसमें कुकड़ी नामक छुरा लटकता रहता है। शीत-काल में भी वह वैसी ही पोशाक पहनते हैं, किन्तु उसके भीतर रुई भरवा लेते हैं। धनी लोग जामे के भीतर बकरे के लोम मढ़वा लेते हैं। शिर की शोभा के लिए टोपी ओढ़ते हैं, जो काले कपड़े की बनी हुई गोला होती है; और भी कई रङ्ग के कपड़े उसमें लगे रहते हैं। अधिक लोग उस प्रकार की पगड़ी ज़री और फ़ीता लगा कर शिर के नाप के अनुसार टोपी की भाँति ओढ़ते हैं। नेवारी लोग गर्मी और जाड़े की अधिकता में मोटे सूतों या ऊनी कपड़े का जामा पहनते हैं। इनमें जो लोग व्यापार करने के कारण धनी हो गए हैं और व्यापार आदि के लिए तिब्बत आदि देशों में जाते हैं, वे चूड़ीदार पाजामा और चपकन की तरह लम्बा जामा पहनते और शिर पर ऊनी टोपी ओढ़ते हैं। हरि-सिद्धि नामक स्थान में जो नेवारी लोग रहते हैं, वे स्त्रियों के बाघरे के समान वा संन्यासियों के समान घुटनों तक नीचा जामा पहनते हैं।

नैपाल में जितनी जातियाँ हैं, उनका पहनावा भी उतने ही प्रकार का है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। तो भी स्थान-विशेष में कुछ अदल-बदल हो जाता है। समस्त जाति की स्त्रियाँ थोड़ा कपड़ा लेकर सामने की ओर बाघरे के समान चुन कर पहनती हैं। राजघराने की स्त्रियाँ और धनी लोगों की स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ बाघरे के समान जिस कपड़े को चुन कर पहनती हैं, उसकी लम्बाई ६० से ८० गज़ तक होती है। ये स्त्रियाँ अपने वंश की मर्यादा के लिए ऐसी पोशाक पहनती हैं और इसी वेश से उनका आदर होता है। सभी स्त्रियाँ जामा और साड़ी पहनती हैं।

नैपाली स्त्रियों को गहनों का बड़ा शौक होता है। वे अपने शरीर की शोभा की वृद्धि के लिए यथाशक्ति अनेक प्रकार के गहने पहनती हैं। धनियों की स्त्रियाँ

और कन्याएँ जैसे मणि-मुक्ता जड़े हुए सोने और चाँदी के गहने पहनती हैं, वैसे हा दूसरी पहाड़ी स्त्रियाँ अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार गहने पहनती हैं। ये माथे पर जड़ाऊ फूल, गले में सोने और मूँगे की माला, हाथों में अँगूठियाँ, कानों में बालियाँ और कर्णफूल तथा नाक में नथ आदि बहुत से गहने पहनती हैं। असभ्य भोटिए लोग अपनी स्त्रियों के लिए सुलेमानी पत्थर, मूँगा और दूसरे क्रीमती पत्थरों की मालाएँ या भारी हार, चाँदी का कठला और बालियाँ आदि अनेक प्रकार के गहने बनवाते हैं।

नैपाली स्त्रियाँ सुगन्धित फूलों को बहुत पसन्द करती हैं। किसी त्योहार के अवसर पर अपने बालों को फूलों से खूब ही सजाती हैं। अभिचारिणी स्त्रियाँ भी फूलों से शृङ्गार बनाती हैं।

राजपुरुषों का पहनावा और प्रकार का है। वे शिर पर ज़री और अनेक भाँति के पर तथा मणिमुक्ता जड़ा हुआ ताज, शरीर में घुटनों तक लम्बा जामा और पैरों में पाजामा पहनते हैं। रुमात और तलवार का व्यवहार सभी करते हैं। राना जङ्गबहादुर के शिर पर जो मुकुट रक्खा जाता था, उसका मूल्य एक लाख पचास हजार रुपया था। सैनिक विभाग के अध्यक्ष लोग अङ्गरेज़ी सेनापतियों के समान फ़ौजी पोशाक धारण करते हैं।

खान-पान

नैपाल राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्ण-विभाग होने पर भी खान-पान के सम्बन्ध में विशेष प्रयत्न नहीं देखी जाती। यहाँ जो लोग ब्राह्मण नाम से विख्यात हैं, उनका आचार-व्यवहार और खान-पान भारत के समतलवासी ब्राह्मणों के समान है। गोरखा लोग शिकार के बड़े शौकीन हैं। अन्य धनी लोग भी शिकार के प्रेमी होते हैं। साधारण धनी लोग यद्यपि माँस आदि खाने और विलास की दूसरी सामग्री भोगने में समर्थ हैं, किन्तु दूरिद्र और निम्न श्रेणी के लोग सदा माँस आदि का भोजन नहीं कर सकते। इस कारण शाक-सब्ज़ी से ही अपना पेट भर लेते हैं। विशेषकर चावल और शाक आदि की तरकारी, कच्चा और राँधा हुआ लहसुन, प्याज़ और मूली आदि की तरकारी खाते हैं। नेवारी लोग और दूसरी नीच जातियाँ मदिरा खूब पीती हैं। वे अपनी प्यास बुझाने के लिए चावल अथवा



गेहूँ से एक प्रकार की अधम शराब तैयार करते हैं। यहाँ जैची श्रेणी के लोग मदिरा नहीं पीते। अच्छे कुल के लोग मदिरा पीने के कारण जाति से गिर जाते हैं।

विवाह-प्रथा

नैपालियों में एक-एक मनुष्य के कई-कई विवाह होते हैं। विवाह उनके लिए एक प्रकार का शौक है। जो धनवान हैं, वह कई स्त्रियाँ रखते हैं। बहुत सी स्त्रियों का होना नैपालियों के लिए सम्मान का चिन्ह है। पूर्वकाल में यहाँ असंख्य पतिव्रता स्त्रियाँ स्वामी के साथ जलती थीं। स्वामी की मृत्यु पर स्त्री का यह अपूर्व आत्म-त्याग नैपालियों के कठोर हृदय में असाधारण धर्म-उद्योति प्रकाशित करता था। नेवार लोग अपनी कन्याओं का बालकपन में ही एक बेल (श्रीफल) के साथ विवाह कर देते हैं। इसके बाद जब कन्या ऋतुमती होती है, तब उसके लिए कोई उपयुक्त वर ढूँढ़ते हैं। भारतीय हिन्दुओं की तरह एक बार विवाह हो जाने पर, पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु हुए बिना विवाह-विच्छेद वा स्त्री का त्याग नहीं हो सकता। स्त्री का त्याग या स्त्री का किसी दूसरे के घर चली जाना बहुत बुरा और जातीय गौरव को नष्ट करने वाला समझा जाता है।

देव-देवियों की पूजा और उत्सवादि

देवता और ब्राह्मणों में भक्ति होने के कारण नैपाल में देव-देवियों के असंख्य मन्दिर हैं। वहाँ दो हज़ार सात सौ तैंतीस उल्लेख योग्य तीर्थ-स्थान और देवालय हैं और इन सब देव-मन्दिरों में पर्वों पर उत्सव आदि होते हैं। इसके सिवा प्रायः प्रतिदिन ही कोई न कोई उत्सव हुआ करता है। इस प्रकार वर्ष के छः महीने उत्सव और पूजा आदि में कटते हैं। यहाँ के पर्व और उत्सवों का तो अन्त ही नहीं। लेख बढ़ जाने के भय से केवल प्रधान-प्रधान पीठों या देवाल्यों के पर्व-दिन और उत्सवों के केवल नाम ही दिए जाते हैं:—(१) मत्स्येन्द्रनाथ की यात्रा, (२) नेता देवी की यात्रा, (३) पशुपतिनाथ की यात्रा, (४) वज्र-योगिनी की यात्रा (यह बौद्धों का उत्सव है) (५) सीपी यात्रा, (६) गोबिया मङ्गल, (७) बाँद्रा यात्रा, (८) राखी पूर्णिमा, (९) नाग पञ्चमी, (१०) जन्माष्टमी, (११) गोष्ट या गामी यात्रा, (१२) बाग यात्रा, (१३) इन्द्र-

यात्रा, (१४) दशहरा या दुर्गोत्सव, (१५) दीवाली, (१६) किचा पूजा, (१७) भाई पूजा, (१८) बाजा चतुर्दशी, (१९) कार्तिकी पूर्णमा, (२०) गणेश चौथ (२१) वसन्तोत्सव, (२२) होली, (२३) माघी पूर्णमा, (२४) रामनवमी, (२५) नारायण पूजा, इत्यादि नैपालियों के प्रधान त्योहार हैं।

दण्ड-विधान

प्राचीन काल में यदि कोई नैपाली कोई गुरुतर अपराध करता था, तो उसका अङ्ग-भङ्ग कर देते थे; यहाँ तक कि प्राण तक ले डालते थे। परन्तु सर जॉन ब्रिडगट ने विलायत से लौट कर इस प्रकार के अमानुषिक दण्डों को एकदम उठा दिया और यह नियम बनाया कि अगर कोई आदमी राजद्रोह करे, राजकीय कामों में विरवास-घातकता करे, संग्राम से भाग जाए या शासन-कार्य सम्बन्धी कोई अपराध करे तो उसको आजन्म कारावास या सिर काटने का दण्ड दिया जाय। साथ ही गाय अथवा मनुष्य की हत्या करने पर भी सिर काटने की आज्ञा दी जायगी। यदि कोई गाय का चमड़ा किसी अस्त्र से काटे, तो उसको आजन्म जेल की सज़ा दी जाएगी। जो लोग जाति-भ्रष्ट हो जाते हैं वे उपवासादि प्रायश्चित्त करके या गुरु और पुरोहित को नियत दण्ड देकर अपनी जाति में मिल जाते हैं। ब्राह्मण और स्त्री का सिर किसी हालत में भी नहीं काटा जाता।

सेना-विभाग

राज्य-रक्षा और राज्य-शासन के सम्बन्ध में नैपाल राज्य का बहुत रुपया खर्च होता है। जिन नियमों के साथ युद्ध-विद्या सिखाई जाती है, वे विशेष खर्चीले हैं। वैसे ही तीर, तोप और बन्दूक आदि बनाने में भी बहुत सा रुपया खर्च किया जाता है। गोरखा-दल ही सैनिक दल को पुष्टि करता है। यहाँ राज्य-कोष से वेतन पाने वाले लगभग सोलह हज़ार सैनिक हैं। यह सेना छत्तीस रेज़ीमेण्टों में बटी हुई है। इसके सिवाय नैपाल राज्य के नियमानुसार और भी बहुत से लोग सेना-विभाग में एक नियत समय तक युद्ध-विद्या सीखते हैं। अर्थात् वहाँ सैनिक-शिक्षा अनिवार्य है। ये लोग गृहस्थी के कामों में लगे रहने पर भी आवश्यकता पड़ने पर सेना में भरती कर लिए जाते हैं। नैपाल में इस नियम के होने से



नैपाल राज्य को सेना संग्रह करने का विशेष सुभीता रहता है। शासकगण इच्छा करते ही एक दिन में प्रायः सत्तर हज़ार शिखित सिपाही इकट्ठा कर सकते हैं।

यहाँ के राजपुत्र या राजघराने के लोग प्रतिवर्ष क्रमानुसार उच्च पद प्राप्त करते हैं। किन्तु अन्य बड़े कर्मचारियों को प्रायः सेना-विभाग के नीचे ही काम करते देखा जाता है, उनकी उन्नति सहज में ही नहीं होती।

सैनिकों का साधारण पहनावा नीले रङ्ग का सूती जामा और पाजामा है। सामरिक वेष लाल रङ्ग का जामा, बग़ल में लाल डोरा, सिर पर टोपी और अपने दल का चिन्हयुक्त एक चाँदी का तमगा रहता है। तोपखाने के सिपाहियों की पोशाक नीली होती है। घोड़े आदि के चलाने का स्थान न होने से नैपाल राज्य में बुधसवार सेना की संख्या बहुत ही कम है। पहाड़ी देश में ये लोग बड़ी चतुरता से युद्ध करते हैं।

वर्तमान मुद्रा

वर्तमान समय में जो मुद्रा नैपाल में चलती हैं और समय-समय पर जो स्वर्ण, चाँदी, ताँबे की मुद्रा चलती थीं, उनके नाम और मूल्य निम्न-लिखित हैं :—

सोने के सिक्के

पहिला सिक्का	दाम
अशर्फी ...	२०)
पाटले ...	८१)
सूका ...	४२) ८ पाई
सूकी ...	२२) ४ पाई
आना ...	१) ८ पाई
दाम ...	१) २ पाई

चाँदी का सिक्का

रूपी III) ४ पाई	मोहर ६) ८ पाई
सूका II) ४ पाई	सूकी ७) ८ पाई
आना ६ पाई	दाम ३ पाई

ताँबे का सिक्का

पैसा २ पाई	दाम आधी पाई
------------	-------------

इसके सिवाय नैपाल में और भी तीन प्रकार के सिक्के चलते हैं। इस राज्य के पूर्व और उत्तर-पूर्व में एक प्रकार का काला सिक्का चलता है। इसमें लोहा

मिला हुआ होने से इसका दाम कम होता है। पहले नैपाल राज्य में जितने चाँदी के सिक्के चलते थे, वे वर्तमान मुद्रा से बड़े थे। इस राज्य के कुछ भाग में अङ्गरेज़ी सिक्का भी चलता है और अङ्गरेज़ी नोट का भी कुछ-कुछ प्रचार होने लगा है।

भाषा

नैपाल में संस्कृत के अतिरिक्त निम्न भाषाएँ प्रचलित हैं :—१—पूर्वटी, २—नैवाड़, ३—घनवार, ४—मुगार, ५—कुरान्टी, ६—हाऊ, ७—लिम्बू, ८—भूटी।

नैवाड़ की भाषा हिन्दी से बहुत मिलती है। पूर्वटी संस्कृत से और कुछ बिहारी भाषा से मिलती है।

नैपाल में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें पन्द्रह हज़ार से अधिक पुस्तकें हैं। जिस प्रकार बनारस भारतवर्ष में विद्या का केन्द्र-स्थान है, उसी प्रकार नैपाल में भटगङ्ग है। यहाँ के ज्योतिषी बड़े निपुण होते हैं और बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

उपसंहार

नैपाल स्वतन्त्र हिन्दू राज्य है। जिस समय भारत की राजनीतिक स्थिति ढाँवाँडोल हो रही थी, विदेशी राजाओं के अनवरत आक्रमणों से यह विशाल देश ख़बरा उठा था, उस समय नैपाल के शासकों ने बड़ी सावधानी से अपने देश की रक्षा की थी। अपनी वीरता और राजनीति-कुशलता से उन्होंने प्राचीन आर्य-सभ्यता की रक्षा की थी। इसलिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। वास्तव में ऐसे ही अवसर पर शासक की योग्यता और चतुरता का परिचय मिलता है। आपत्तियों के समय नैपाल-शासकों ने जैसी धीरता से काम लिया है, वह भी कम प्रशंसा की बात नहीं है। परन्तु इस समय संसार की गति कुछ और ही है। सारे संसार में नवीन सभ्यता, नवीन संस्कृति और नवीन विज्ञान की तूती बोल रही है। मनुष्य पृथ्वी को छोड़ कर आकाश में विचरण करने लगा है। परन्तु नैपाल अभी तक वहीं है, जहाँ वह सैकड़ों वर्ष पूर्व था। वर्तमान शासकों का कर्तव्य है कि जिस तरह उन्होंने अपनी प्राचीन सभ्यता की रक्षा कर रखी है, उसी तरह नवीन सभ्यता के गुणों से भी लाभ उठावें।

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट०]

(गताङ्क से आगे)

भारत



हासमर की समाप्ति के समय भारत में अपूर्व हिन्दू-मुस्लिम एकता हुई। इसके तीन कारण थे। तुर्की, मिस्र और ईरान आदि के साथ जो अङ्गरेजों ने व्यवहार किया, उससे मुसलमानों में उनके प्रति घृणा बढ़ती जाती थी। दूसरे मुसलमान अनुभव करने लगे थे कि जब तक वे अपने

देश में स्वतन्त्र न हो जाएँगे, तब तक वे अन्य मुस्लिम देशों की कोई सहायता नहीं कर सकते और न दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊँचा कर सकते हैं। तीसरा कारण था महात्मा गाँधी का प्रभाव। सन् १९१९ में जब अङ्गरेज तुर्की को मटियामेट करने पर तुले हुए थे तो महात्मा गाँधी ने इस योजना के विरुद्ध मुस्लिम आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। शीया-सुन्नी दोनों मुस्लिम सम्प्रदायों के लोगों के अतिरिक्त हिन्दुओं ने भी इस आन्दोलन में पूरा भाग लिया। इस आन्दोलन में मौलाना मुहम्मदअली महात्मा गाँधी के दाहिने हाथ थे। यह एक उच्च मुस्लिम-वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह ने सन् १८५७ के गदर में अङ्गरेजों की बड़ी सहायता की थी और सन् १९१० में पंजाब का गवर्नर इनको एक देशी राज्य का दीवान बनाना चाहता था। महासमर के समय इनको नज़रबन्द कर दिया था। उससे छूटने पर ये खिलाफत आन्दोलन में सम्मिलित हुए और मुसलमान जनता पर इनका अद्भुत प्रभाव पड़ा। खिलाफत आन्दोलन के साथ ही साथ स्वराज्य आन्दोलन भी चल रहा था, उसमें भी मुहम्मद-

अली ने बहुत काम किया। महात्मा गाँधी के साथ सम्पूर्ण भारतवर्ष में इन्होंने भी दौरा किया और खिलाफत फ़ण्ड तथा तिलक स्माराज्य फ़ण्ड एकत्र करने में परिश्रम किया।

६ अप्रैल सन् १९१९ भारत के इतिहास में अपूर्व दिन था। महात्मा गाँधी और मुहम्मदअली के आदेशानुसार उस दिन सम्पूर्ण भारतवर्ष में हड़ताल मनाई गई और भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा खिलाफत के उद्धार के लिए मन्दिर और मस्जिदों में ईश्वर से प्रार्थना की गई। इसके बाद जलियानवाला बाग़ का क़त्लेआम, पंजाब का सैनिक शासन, नाक के बल लोगों को चलाना, अनेक मनुष्यों को प्राण-दण्ड और सर्वस्व-हरण आदि अत्याचार हुए। इससे भी शान्ति नहीं हुई। सरकार ने जलियानवाले बाग़ के हत्यारे अफ़सरों को यथोचित दण्ड नहीं दिया और देश में असन्तोष बढ़ता गया। उसी वर्ष अमृतसर में कॉङ्ग्रेस तथा मुस्लिम लीग के अधिवेशन हुए और दोनों में स्वतन्त्रता की माँग और सरकार के कृत्यों की घोर निन्दा की गई। १९२० में तुर्की के साथ जो विजेताओं ने दबाव डाल कर सन्धि की थी, वह भारत में प्रकाशित हुई। इससे मुसलमानों का असन्तोष और भी बढ़ा और वे हिन्दुओं की तरफ़ अधिकाधिक आकर्षित होने लगे। १९२० में नागपुर में कॉङ्ग्रेस का महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ। अब तक कॉङ्ग्रेस का ध्येय था वैध साधनों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक शासन प्राप्त करना। नागपुर में यह बदल दिया गया। अब ध्येय निश्चित हुआ अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना। इसका मुसलमानों ने भी पूर्ण अनुमोदन किया। मुहम्मदअली ने इस अधिवेशन में विशेष भाग लिया।



इसके बाद महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन उठाया। मुहम्मदअली ने अपने मुसलमान भाइयों को सरकारी नौकरियों छोड़ने का आदेश किया और पुलिस तथा सेना में नौकरी करने वाले मुसलमानों के नाम एक अलग विज्ञप्ति निकाली। इस अपराध में उनको सरकार ने कैद कर दिया। १९२१ की अहमदाबाद काँग्रेस का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ हुआ। मुसलमानों ने पूरा साथ दिया और मौलाना हसरत मोहानी ने प्रस्ताव किया कि जैसे हो जैसे स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। देश में घोर जागृति हुई और सत्याग्रह संग्राम की तैयारी होने लगी। परन्तु दो मास बाद ही गोखलपुर ज़िले के चौरीचौरा गाँव में उत्तेजित जनता ने पुलिस के कुछ सिपाहियों का बध कर डाला, जिसके कारण महात्मा गाँधी ने संग्राम बन्द कर दिया और उसी दिन से असहयोग का एक प्रकार से अन्त हो गया।

असहयोग आन्दोलन के पिछले दिनों में और उसके बन्द हो जाने के बाद कई स्थानों में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हुए। विशेषकर मालावार, सहारनपुर और कोहाट में हिन्दुओं की भारी क्षति हुई। उसके बाद भी यह पारस्परिक विरोध जारी ही रहा, जिसके कारण महात्मा गाँधी ने दिल्ली में २१ दिन का उपवास किया। १९२८ में साहमन कमोशन भारत में आया और उसका विरोध करने के लिए हिन्दू-मुसलमान पुनः एक हो गए। वर्तमान सत्याग्रह संग्राम में अधिगंश मुसलमान सम्मिलित नहीं हैं। परन्तु उनके प्रमुख नेताओं ने काँग्रेस का साथ दिया है। आपसी मतभेद कुछ भी हो, परन्तु अब मुसलमान हिन्दुओं के साथ ही हैं। वे भारतवर्ष को अपनी मातृभूमि मानने लगे हैं और इसके उद्धार में अपना उद्धार समझते हैं।

उत्तर अफ्रीका

महासमर समाप्त होते ही उत्तर अफ्रीका में भी उजाला धधकने लगी। मोरक्को, अल्जीरिया आदि देशों के मुसलमानों में असन्तोष फैल गया। इनमें कभी यह थी कि अभी राष्ट्रीयता का उद्बोध नहीं होने पाया था। स्वतन्त्रता अवश्य चाहते थे, परन्तु उसकी प्राप्ति के पदचाद क्या होगा, इसका उनको ज्ञान नहीं था।

उनका संग्राम यूरोपीय शासकों के अत्याचारों का विरोध मात्र था।

रीफ-संग्राम

उत्तरी अफ्रीका में रीफ नाम की एक जाति रहती है। ये लोग लड़ने में बड़े निपुण और स्वतन्त्रता के बड़े प्रेमी हैं। परन्तु अल्प-संख्यक और अर्धशिक्षित तथा पिछड़े हुए होने के कारण इनको दक्षिण यूरोप के राष्ट्रों ने दबा रक्खा है। महासमर के समय इनका यूरोप के साथ सम्पर्क बढ़ा और उसका इन पर जो प्रभाव पड़ा, इसका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है। समर-समाप्ति के बाद इनमें स्वतन्त्रता की अभिलाषा दुर्दमनीय हो उठी और उन्होंने आतताहियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। अब्दुलकरिम नामक एक योग्य सैनिक तथा राजनीतिज्ञ ने इनका नेतृत्व ग्रहण किया। मुट्रो भर रीफ, जिनके पास न विज्ञान-बल था, न धन-बल, लगभग दो वर्षों तक स्पेन और फ्रान्स की संयुक्त सेना से आश्चर्यजनक वीरता के साथ लड़े। स्पेन और फ्रान्स ने वायुयान, विषमय गैस, टेङ्क आदि भोषण नर-संहारी शस्त्रास्त्रों का उपयोग किया। उधर रीफ लोगों को घायल हो जाने पर मरहम-पट्टी की भी सुविधा नहीं थी। यूरोप के सभ्य राष्ट्र इस हत्याकाण्ड को आनन्द के साथ देखते रहे। स्पेन और फ्रान्स ने अपना सम्पूर्ण बल रीफों के दमन में लगा दिया। बेचारे मुट्रो भर रीफ कहाँ तक उनका मुकाबला करते। अब्दुलकरिम हार गया और अत्यन्त निराशावस्था में उसका देहान्त हुआ। वर्तमान इतिहास में रीफ-संग्राम अत्यन्त आश्चर्यकारी तथा कण्ठोत्पादक घटना है।

देखें ये आज्ञादी के दीवाने रीफ कब तक पदक्षिप्त रहते हैं।

वर्तमान स्थिति

इस समय सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत् में नया जीवन और नई स्फूर्ति है। वह भविष्य के लिए नई उमङ्गें, नई योजनाएँ और नवीन भावनाओं से भरा हुआ है। पिछले १०-१२ वर्षों के इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि मुस्लिम-जगत् में शक्ति है, पर उसका रूपांतर हो गया है। इस्लाम के उद्धार की अब जगों को इतनी चिन्ता नहीं है, जितनी अपने देश के उद्धार की। यह नवीन



नीति उन्होंने यूरोपीय राष्ट्रों से सीखी है। यही वर्तमान संसार का धर्म है और आधुनिक उन्नति का कारण है।

राजनैतिक स्थिति

तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र हैं। इन तीनों देशों की संसार के महान राष्ट्रों के साथ सन्धियाँ हो चुकी हैं और इनको आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यूरोपीय राष्ट्रों के राजदूत इन देशों में रहते हैं और इनके राजदूत उसी हैसियत से उन देशों में रहते हैं। व्यापार आदि के सम्बन्ध में भी इन देशों की यूरोपीय राष्ट्रों के साथ सन्धियाँ हो चुकी हैं। मिश्र और ईराक़ पर अभी इज़लैयद की संरक्षकता है, पर वहाँ स्वतन्त्रता की अभिलाषा अदृश्य हो गई है। मिश्र के साथ सन्धि की बातचीत हो रही है और वहाँ अज़रेज़ों का टिकना अब कठिन सा हो चला है। ईराक़ के विषय में तो यह भी सम्भव है कि कभी राष्ट्र-सङ्घ अज़रेज़ों की नीति में हस्तक्षेप कर सके और उनको विवश हो जाने की प्रार्थना करे। सीरिया में फ़्रान्स ने खूब दमन किया है, परन्तु वहाँ सामाजिक और राजनैतिक जागृति फिर भी बढ़ती ही जाती है। पलस्तीन, ट्रान्सजार्डन और उत्तर अफ़्रीका के अट्रिस, ऐज़रियस आदि देशों का भाग्य अवश्य अन्धकारमय है। पलस्तीन में यहूदी और मुसलमानों के पारस्परिक झगड़ों के कारण परतन्त्रता कब तक बची रहेगी, यह कोई नहीं कह सकता। अज़रेज़ लोगों को इस बात की चिन्ता भी नहीं है कि इस समस्या को हल किया जावे। पलस्तीन को स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होगी, तब तक ट्रान्सजार्डन भी परतन्त्र ही रहेगा। उत्तर अफ़्रीका में अभी पर्याप्त शिक्षा और राष्ट्रीयता का प्रचार नहीं होने पाया है; एवं इन तीन-चार छोटे-छोटे मुस्लिम प्रदेशों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण मुस्लिम देशों का भविष्य उज्ज्वल है। परन्तु जब मिश्र और ईराक़ पूर्ण स्वतन्त्र हो जावेंगे और अरब, जो इस समय भी स्वतन्त्र है, उन्नत हो जावेगा, तो यह सम्भव न होगा कि अज़रेज़ पलस्तीन को अपने चक्कुल में दबाए ही रहें। मिश्र से ईराक़ तक जो इस समय अज़रेज़ों का आधिपत्य है, उसके हट जाने पर मोरक्को से चीनी तुर्किस्तान तक मुस्लिम-जगत् स्वतन्त्र हो जायगा। इस समय यदि इन मुस्लिम राज्यों का एक सङ्घ बन

गया और ग़ैर-मुस्लिम जगत् के साथ उन सबकी एक नीति रही तो संसार की अन्तराष्ट्रीय स्थिति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। पर भविष्य की राजनीति में धर्म का स्थान मुख्य नहीं रह सकता। इसलिए सम्पूर्ण मुस्लिम राज्य शायद ही एक सङ्घ बना सकें। आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से यदि ऐसा सङ्घ बना तो वह एशियाई सङ्घ होगा, न कि मुस्लिम-सङ्घ।

तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान तीनों देश स्वतन्त्र हैं। परन्तु तीनों की शासन-व्यवस्था पृथक्-पृथक् है। तुर्की पूर्ण प्रजातन्त्र है और ईरान तथा अफ़ग़ानिस्तान में नियन्त्रित एक राट् राज्य है। तुर्की की सम्पूर्ण राज्यसत्ता राष्ट्रीय महासभा के हाथ में है। इस महासभा का निर्वाचन तुर्की राज्य की जनता करती है। महासभा एक राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है। वर्तमान राष्ट्रपति मुस्तफ़ा क़मालपाशा है। राष्ट्रपति महासभा के किसी सभासद को प्रधान मन्त्री नियत करता है और उसके नीचे कार्यकारिणी समिति होती है। हार्डकार्ट बिज़कुल स्वतन्त्र है। ख़लीफ़ा और सुलतान का टर्की में अब कोई स्थान नहीं है। १ नवम्बर १९२२ में राष्ट्र-महासभा ने निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया था :—

“तुर्की जनता ने यह निश्चय कर लिया है कि देश का शासन राष्ट्रीय महासभा करे। जनता इसी को अपना सच्चा प्रतिनिधि मानती है और इसके अधिकारों को अविभाज्य, अत्याज्य तथा अटल मानती है। तुर्की अन्य किसी ऐसा शक्ति को स्वीकार नहीं करती, जिसका आधार लोकमत न हो और राष्ट्र-य महासभा के शासन के अतिरिक्त वह अन्य कोई शासन-व्यवस्था को नहीं मानती। इसलिए तुर्की जनता कुस्तुन्तुनिया की सरकार को १६ मार्च, १९२० के बाद से सरकार नहो मानती। ख़िलाफ़त उस्मान के वंश में बनी रहेगी। इस वंश के योग्य और सच्चरित्र आदमी को यह राष्ट्र-सभा ख़लीफ़ा निर्वाचित करेगी।”

उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुकूल सुलतान ख़लीफ़ा बालू-हीन को सिंहासन से हटा दिया गया और उसके पुत्र अब्दुल मजिद को केवल ख़लीफ़ा बना दिया गया। इस प्रकार महाशक्तिशाली सुलतान का पुत्र केवल एक मुल्ला रह गया। एक सम्राट का पुत्र अपना इस हीन दशा से कैसे संतुष्ट रह सकता था? उसका असन्तोष कई प्रकार



से प्रकट होने लगा और उधर राष्ट्रीय महासभा को उस पर सन्देह होने लगा। परिणाम यह हुआ कि महासभा के प्रस्तावानुकूल खलीफा और उसका परिवार ४ मार्च १९२४ को अपना पैत्रिक नगर और राजसी ठाट-बाट छोड़ कर यूरोप में अपने दिन काटने चला गया।

इसलिए तुर्क पूर्ण प्रजातन्त्र राज्य है। वहाँ राजनीति पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं है और शासन का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार भी नहीं है।

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान

ईरान में जनता द्वारा पार्लामेंट का निर्वाचन होता है और फिर बादशाह निर्वाचित सभासदों में से एक प्रधान मन्त्री बनाता है, जो अपने सचिव-मण्डल की स्थापना करता है। बादशाह निर्वाचित नहीं होता। ऐसा मालूम होता है कि कुछ अर्से बाद ईरान का शासन-विधान ग्रेट ब्रिटेन जैसा हो जायगा। अफ़ग़ानिस्तान में भी शाह अमानुल्ला ने पार्लामेंट की स्थापना की थी और प्रधान मन्त्री, कार्यकारिणी समिति आदि की भी व्यवस्था कर दी थी, परन्तु अफ़ग़ानिस्तान ईरान की अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है और शासन-कार्य में भाग लेने के लिए लोग उत्सुक नहीं हैं।

अन्य देश

ईराक़ और मिस्र की स्थिति लगभग वही है, जो ईरान की। पर अन्तर यह है कि ईराक़ और मिस्र के बादशाह अङ्गरेजों के बनाने से बादशाह बने हैं, इसलिए वे एक प्रकार से उनके हाथ में कठपुतलियाँ की भाँति नाचते हैं। इसके अलावा सेना, व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय नीति आदि महत्वपूर्ण विभागों पर अङ्गरेजों का ही आधिपत्य है। लेकिन लोकमत की प्रबलता को देख कर इन देशों के बादशाह भी अब देश की ओर झुकने लगे हैं और मन्त्रिमण्डल तो प्रायः देश की ओर ही रहता है। मोरक्को, एलजियर्स और ट्यूनिस् की दशा भारत के देशी राष्ट्यों से

मिलती-जुलती है। वहाँ के सुलतानों को यूरोपीय राष्ट्रों ने अपने चङ्गुल में फँसा रक्खा है और जनता उनसे दबी हुई है, पर वहाँ भी लोग सुपचाप नहीं हैं।

पश्चिमी तुर्किस्तान

१९१७ से पूर्व पश्चिमी तुर्किस्तान में कई छोटी-छोटी सुसलमान रियासतें थीं, जो ज़ार के समय में रूसी राज्य के अधीन थीं। जब रूस में राज्यक्रान्ति हुई, तो इन राज्यों को स्वतन्त्र कर दिया गया और कुछ अर्से बाद उनमें प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिए गए। इन राज्यों को अपने घरू मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में ये रूस के अधीन हैं और इनकी शासन-प्रणाली भी रूस की जैसी ही है। इन राज्यों में खीवा और बुखारा मुख्य हैं।

सैनिक उन्नति

राष्ट्रीय जागृति और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के कारण मुस्लिम देशों में तीव्र वेग से उन्नति हो रही है। जब देश का प्रत्येक व्यक्ति उन्नति के लिए जाजायित हो और उसके भाग्य की बागडोर जनता के ही हाथ में हो तो उन्नति क्यों न हो? इस समय तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की सेनाएँ यूरोपीय ढङ्ग पर व्यवस्थित हैं और यूरोपीय शस्त्रों से सुसज्जित हैं। इन देशों की सेनाएँ मैशीनगन, टेङ्क, वायुयान, सबसे काम लेती हैं। कमाल-पाशा स्वयं वीर योद्धा और अद्भुत रणपण्डित है। रिज़ाअली पहलवी अपनी सैनिकता के कारण ही देश का उद्धार कर सका था। नादिरशाह पहिले अफ़ग़ान सेना का जनरल था। अमानुल्ला ने अफ़ग़ानिस्तान में सैनिक शिक्षा प्रत्येक अफ़ग़ान के लिए अनिवार्य कर दी थी। तुर्क और ईरानी लोग भी सैनिक बनने में अपना गौरव समझते हैं।

(क्रमशः)

“जेब में मेरी किताबों ने मेरे मित्रों का काम किया, अब मुझे इनसे अलग रहना पसन्द नहीं है।

—एक अनुभवी

“किसी घर में पुस्तकालय बनाना क्या है, मानों उस घर को सजीव कर देना है।”

—सिसरो





कुमारी कमला ओजिब
नोबुल ओफा—आप
प्रथम भारतीय महिला
हैं, जिन्होंने काशी हिन्दू-



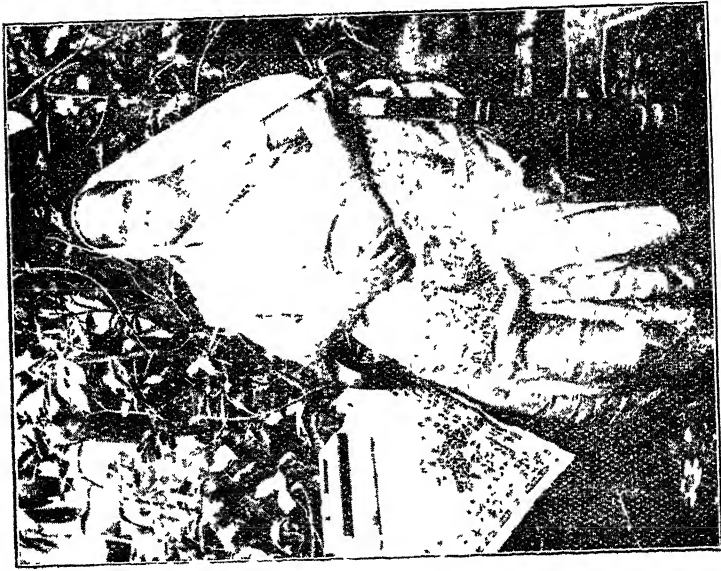
विश्वविद्यालय से ललित
कला और गृह-विज्ञान
में बी० ए० की डिग्री
प्राप्त की है।



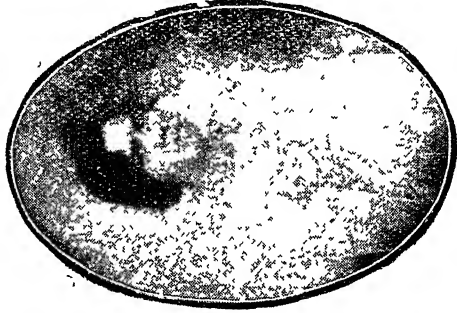
कुमारी सकीना करामत, बी० ए०, बी० एस्-सी०
(अमेरिका)—आप अलीगढ़ के एम० ए० बी०
गर्ल्स स्कूल की प्रिन्सिपल हैं और अभी हाल में
ही अमेरिका से बी० एस्-सी० की डिग्री
प्राप्त करके आई हैं।



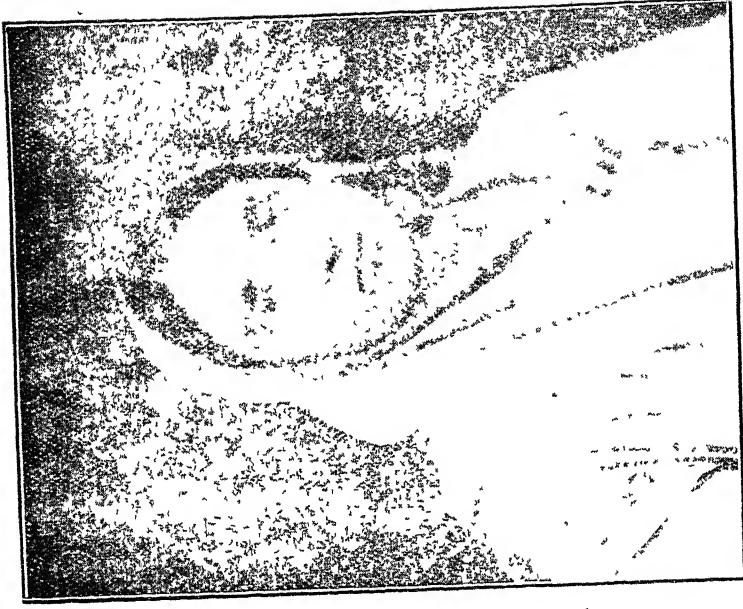
श्रीमती सुशीला श्रीवास्तव—आप कानपुर म्युनिसिपल
बोर्ड की सदस्या और वीमेन एसोसिएशन कानपुर
की सेक्रेटरी हैं। वियना में जो अखिल-विश्व
महिला कॉन्फ्रेंस हुई थी, उसमें आप
भारतीय महिला-प्रतिनिधि थीं।



श्रीमती बजरजकिशोरी सिंह—आप फ़ौज़ाबाद म्यूनिसिपल बोर्ड की प्रथम महिला सदस्या हैं। स्त्री-शिक्षा और ख़ियोज़ति सम्बन्धी कार्यों से आपको विशेष प्रेम है।



कुमारी राम० बी० सिंह,
बी० ए०, बी० टी०—आप
मेरठ विक्टोरिया बोर्ड की सदस्या
हुनी गई हैं। आप उक्त
बोर्ड की सर्व-प्रथम महिला-
सदस्या हैं।



श्रीमती कालिकाप्रसाद भटनागर, बी० ए०—गत दिसम्बर में प्रयाग में जो कायस्थ महिला-सम्मेलन हुआ था, उसकी आप सभापति थीं। इसके सिवा संयुक्त प्रान्तीय वर्ना-क्यूलर शिक्षा-विभाग की सदस्या और कानपुर वीमेन एज्युकेशन की प्रधाना हैं।



श्रीमती नागमणि कल्याण सुन्दरम्
विरधूनगर (मद्रास) में आप ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट
नियुक्त हुई हैं ।



श्रीमती कमलादेवी, आयुर्वेद-विशारदा
आप अजमेर की रहने वाली हैं और बनारस में होने
वाली संयुक्त प्रान्तीय माहेश्वरी कॉन्फ़रेन्स की
अध्यक्षा चुनी गई हैं ।



श्रीमती लीलावती श्रीनिवास असेरप्पा
आप सीलोन की राजनीतिक महिला-सङ्घ की
सभानेत्री हैं ।



कुमारी जेरबाई डी० आवासिया
आप बम्बई की प्रेसीडेन्सी अदालत में ऑनरेरी
मैजिस्ट्रेट बनाई गई हैं ।



कुमारी बी० शान्ताबाई
जो बेजवाड़ा (आन्ध्र) के आरकिन्सन गर्ल्स स्कूल की छात्री हैं। अङ्ग्रेजी भाषा में सुन्दर भाषण करने के लिए 'आन्ध्र प्रान्तीय एलोक्यूशन कान्टेस्ट' की ओर से, आपको एक पदक प्रदान किया गया है।



श्रीमती एम० चन्द्रमती
आप राजमुन्द्री के गवर्नमेण्ट आर्ट कॉलेज की छात्री हैं। आपने गान-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है।



कुमारी एस० एस० रथित, बी० ए०, बी० टी०
जो कि कोकोनदा के पीथापुरम् राजा कॉलेज में अङ्ग्रेजी भाषा की शिक्षयित्री नियुक्त की गई हैं।



कुमारी प्रकाशवती जैन
दिल्ली यूनिवर्सिटी की इण्टर मीडियट परीक्षा में प्रथम स्थान लाभ करने के उपलक्ष में इन्होंने स्वर्ण-पदक तथा सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त की है।



ज्योति

[श्रीयुत प्रेमचन्द]



वि

धवा हो जाने के बाद बूटी का स्वभाव बहुत कटु हो गया था। जब बहुत जी जख्मता तो अपने मृत पति को कोसती—आप तो सिधार गए, मेरे लिए यह सारा जञ्जात छोड़ गए। जब इतनी जल्दी जाना था तो ब्याह न जाने किस लिए किया था। घर में भूनी भाँग नहीं, चले थे ब्याह करने। चाहती तो दूसरी सगाई कर लेती। अहीरों में इसका रिवाज है। देखने-सुनने में भी बुरी न थी। दो-एक आदमी तैयार भी थे। लेकिन बूटी पतिव्रता कहलाने के मोह को न छोड़ सकी। और यह सारा क्रोध उतरता था बड़े लड़के मोहन पर, जो अब १६ साल का था। सोहन अभी छोटा था और मैना लड़की थी। ये दोनों अभी किसी लायक न थे। अगर यह तीनों न होते तो बूटी को क्यों इतना कष्ट होता। जिसका थोड़ा सा काम कर देती वही रोटी-कपड़ा दे देता। जब चाहती किसी के सिर बैठ जाती। अब अगर वह कहीं बैठ जाय तो लोग यही कहेंगे कि तीन-तीन लड़कों के होते इसे यह क्या सूझी। मोहन भरसक उसका भार हल्का करने की चेष्टा करता। गाथों, मैसों की सानी-पानी, दुहना, मथना यह सब कर लेता। लेकिन बूटी का मुँह सीधा न होता था। वह रोज़ एक न एक खुचड़ निकालती रहती और

मोहन ने भी उसकी छुड़कियों की परवाह करना छोड़ दिया था। पति उसके सिर गृहस्थी का यह भार पटक कर क्यों चला गया, उसे यही गिला था। उसने तो बेचारी का सर्वनाश ही कर दिया। न खाने का सुख मिला, न पहनने-ओढ़ने का, न और किसी बात का। इस घर में क्या आई, मानों भट्टी में पड़ गई। उसकी वैधव्य-साधना और अतृप्त भोग-जाजसा में सदैव इन्द्र सा मचा रहता था और उसकी जलन में उसके हृदय की सारी मृदुता जल कर भस्म हो गई थी। पति के पीछे और कुछ नहीं तो बूटी के पास चार-पाँच सौ के गहने थे। लेकिन एक-एक करके सब उसके हाथ से निकल गए। उसी महल्ले में, उसकी बिरादरी में, कितनी ही औरतें थीं, जो उससे जेठी होने पर भी गहने भ्रमका कर, आँखों में काजल लगा कर, माँग में सेंदुर की मोटी सी रेखा डाल कर मानों उसे जलाया करती थीं। इसलिये जब उनमें से कोई विधवा हो जाती तो बूटी को खुशी होती और यह सारी जलन वह लड़कों पर निकालती, विशेषकर मोहन पर। वह शायद सारे संसार की स्त्रियों को अपने ही रूप में देखना चाहती थी। कुत्सा में उसे विशेष आनन्द मिलता था। उसकी बखित लाजसा जब न पाकर ओस चाट लेने ही में सन्तुष्ट होती थी। फिर यह कैसे सम्भव था कि वह मोहन के विषय में कुछ सुने और पेट में डाल ले। ज्योंही मोहन सन्ध्या समय दूध



बेच कर घर आया, बूटी ने कहा—देखती हूँ, तू अब साँड़ बनने पर उतारू हो गया है।

मोहन ने प्रश्न के भाव से देखा—कैसा साँड़ ! बात क्या है ?

“तू रुपिया से छिप-छिप कर नहीं हँसता-बोलता। उस पर कहता है कौन साँड़ ? तुम्हें लाज नहीं आती। घर में पैसे-पैसे की तक्की है और वहाँ उसके लिए पान बाए जाते हैं, कपड़े रँगए जाते हैं।”

मोहन ने विद्रोह का भाव धारण किया—अगर उसने मुझसे चार पैसे के पान माँगे तो क्या करता ? कहता कि पैसे दे तो लाऊँगा। अपनी धोती रँगाने को भी तो उससे रँगवाई माँगता ?

“महल्ले में एक तू ही बड़ा धन्नासेठ है। और किसी से उसने क्यों न कहा ?”

“यह वह जाने, मैं क्या बताऊँ।”

“तुम्हें अब छैला बनने की सूझती है ! घर में भी कभी एक पैसे के पान जाया ?”

“यहाँ पान किसके लिए लाता ?”

“क्या तेरे लेखे घर में सब मर गए।”

“मैं न जानता था तुम पान खाना चाहती हो।”

“असल में एक रुपिया ही पान खाने जोग है ?”

“शौक-सिगार की भी तो उमिर होती है।”

बूटी जल उठी। उसे बुढ़िया कह देना उसकी सारी साधना पर पानी फेर देना था। बुढ़ापे में उन साधनाओं का महत्व हो क्या। जिस त्याग-कल्पना के बल पर वह सब स्त्रियों के सामने सिर उठा कर चलती थी, उस पर इतना कठोराघात ! इन्हीं लड़कों के पीछे उसने अपनी जवानी धूल में मिटा दी ! उसके आदमी को मरे आज पाँच साल हुए। तब उसकी चढ़ती जवानो थी। तीन लड़के भगवान ने उसके गले मढ़ दिए, नहीं अभी वह है कै दिन की। चाहती तो आज वह भी श्रॉठ लाज किए, पाँव में महावर लगाए, अनवट बिछुए पहने मटकती फिरती। यह सब कुछ उसने इन लड़कों के कारन त्याग दिया और आज मोहन उसे बुढ़िया कहता है ! रुपिया उसके सामने खड़ी कर दी जाय तो चूहिया सी लगे। फिर भी वह जवान है, और बूटी बुढ़िया है !

बोली—हाँ और क्या। मेरे लिए तो अब फटे-चीथड़े पहनने के दिन हैं। जब तेरा बाप मरा तो मैं रुपिया से

दो ही चार साल बढ़ी थी। उस वक्त कोई घर कर लेता तो तुम लोगों का कहीं पता न लगता। गली-गली भीख माँगते फिरते। लेकिन मैं कहे देती हूँ, अगर तू फिर उससे बोला तो या तो तू ही घर में रहेगा या मैं ही रहूँगी।

मोहन ने डरते-डरते कहा—मैं उसे बात दे चुका हूँ अम्माँ ?

“कैसी बात ?”

“सगाई की।”

“अगर रुपिया मेरे घर में आई तो झाड़ू मार कर निकाल दूँगी। यह सब उसकी माँ की माया है। वही कुटनी मेरे लड़के को मुझसे छीने लेती है। रॉड से इतना भी नहीं देखा जाता। चाहती है कि उसे सौत बना कर मेरी छाती पर बैठा दे।”

मोहन ने व्यथित कण्ठ से कहा—अम्माँ, ईश्वर के लिए चुप रहो। क्यों अपना पानी आप खो रही हो। मैंने तो समझा था, चार दिन में मैना अपने घर चली जायगी, तुम अकेली पड़ जावगी। इसीलिए उसे खाने का बात सोच रहा था। अगर तुम्हें बुरा लगता है तो जाने दो।

“तू आज से यहीं आँगन में सोया कर।”

“और गाएँ-मैंसे बाहर पड़ी रहेंगी ?”

“पड़ी रहने दे। कोई डाका नहीं पड़ा जाता।”

“मुझ पर तुम्हें इतना सन्देह है ?”

“हाँ।”

“तो मैं यहाँ न सोऊँगा।”

“तो निकल जा मेरे घर से।”

“हाँ, तेरी यही इच्छा है तो निकल जाऊँगा।”

मैना ने भोजन पकाया। मोहन ने कहा मुझे भूख नहीं है ! बूटी उसे मनाने न आई। मोहन का युवक-हृदय माता के इस कठोर शासन को किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता। उसका घर है, ले ले। अपने लिए वह कोई दूसरा ठिकाना ढूँढ़ निकालेगा। रुपिया ने उसके रखे जीवन में एक स्निग्धता भर दी थी। जब वह एक अव्यक्त कामना से चञ्चल हो रहा था, जीवन कुछ सुना-सुना लगता था, रुपिया ने नवबन्सत की भाँति आकर उसे पलज्वित कर दिया। मोहन को जीवन में एक मीठा



स्वाद मिलने लगा। कोई काम करता होता, पर ध्यान रुपिया की ओर लगा रहता। उसे क्या दे दे कि वह प्रसन्न हो जाय ! अब वह कौन मुँह लेकर उसके पास जाय ? क्या उससे कहे कि अम्माँ ने मुझे तुम्हसे मिलने को मना किया है ? अभी कल ही तो बरगद के नीचे दोनों में कैसी-कैसी बातें हुई थीं। मोहन ने कहा था, रुपा तुम इतनी सुन्दर हो, तुम्हारे सौ गाहक निकल आएँगे। मेरे घर में तुम्हारे लिए क्या रक्खा है। इस पर रुपिया ने जो जवाब दिया था वह तो सज़्जीत की तरह अब भी उसके प्राणों में बसा हुआ था—मैं तो तुमको चाहती हूँ मोहन, अकेले तुमको। परगने के चौधरी हो जाव तब भी मोहन हो, मजूरी करने लगो तब भी मोहन हो। उसी रुपिया से आज वह जाकर कहे—मुझे अब तुम्हसे कोई सरोकार नहीं है !

नहीं, यह नहीं हो सकता। उसे घर की परवाह नहीं है। वह रुपिया के साथ मर्से अलग रहेगा। इस जगह न सही, किसी दूसरे महल्ले में सही। इस वक्त भी रुपिया उसकी राह देख रही होगी। कैसे अच्छे बीड़े लगाती है। कहीं अम्माँ सुन पावें कि यह रात को रुपिया के द्वार पर गया था तो परान ही दे दें। दे दें परान ! अपने भाग तो नहीं बखानती कि ऐसी देवी बहू मिली जाती है। न जाने क्यों रुपिया से इतना चिढ़ती हैं। वह ज़रा पान खा लेती है, साड़ी भी रँग कर पहनती है। बस यही तो।

चूड़ियों की रुझार सुनाई दी। रुपिया आ रही है ! हाँ वही है।

रुपिया उसके सिरहाने आकर बोली—सो गए क्या मोहन ? घड़ी भर से तुम्हारी राह देख रही हूँ। आए क्यों नहीं ?

मोहन नींद का मक्कर किए पड़ा रहा।

रुपिया ने उसका सिर हिला कर फिर कहा—क्या सो गए मोहन ?

उन कोमल उँगलियों के स्पर्श में क्या सिद्धि थी, कौन जाने। मोहन की सारी आत्मा उन्मत्त हो उठी। उसके प्राण मानों बाहर निकल कर रुपिया के चरणों में समर्पित हो जाने के लिए उछल पड़े। देवी वरदान लिए सामने खड़ी है। सारा विश्व जैसे नाच रहा है। उसे

मालूम हुआ, जैसे उसका शरीर लुप्त हो गया है, केवल वह एक मधुर स्वर की भाँति विश्व की गोद से चिमटा हुआ उसके साथ नृत्य कर रहा है।

रुपिया ने फिर कहा—अभी से सो गए क्या जी ?

मोहन बोला—हाँ, ज़रा नींद आ गई थी रुपा। तुम इस वक्त क्या करने आईं। कही अम्माँ देख लें तो मुझे मार ही डालें।

“तुम आज आए क्यों नहीं ?”

“आज अम्माँ से लड़ाई हो गई।”

“क्या कहती थीं ?”

“कहती थीं, रुपिया से बोलेगा तो मैं परान दे दूँगी।”

“तुमने पूछा नहीं, रुपिया से क्यों चिढ़ती हो ?”

“अब उनकी बात क्या कहूँ रुपा। वह किसी का खाना-पहनना नहीं देख सकती। अब मुझे तुमसे दूर रहना पड़ेगा।”

“मेरा जी तो न मानेगा।”

“ऐसी बातें करोगी तो मैं तुम्हें लेकर भाग जाऊँगा।”

“तुम मेरे पास एक बार रोज़ आ जाया करो। बस ! और मैं कुछ नहीं चाहती।”

“और अम्माँ जो बिगड़ेंगी।”

“तो मैं समझ गई। तुम मुझे प्यार नहीं करते।”

“मेरा बस होता तो तुमको अपने परान में रख लेता।”

इसी समय घर के केवाड़ खटके। रुपिया भाग गई।

२

मोहन दूसरे दिन सोकर उठा तो उसके हृदय में आनन्द का सागर सा भरा हुआ था। वह सोहन को बराबर ढाँटता रहता था। सोहन आजसी था। घर के काम-धन्धे में जी न लगाता था। आज भी वह आँगन में बैठा अपनी धोती में साबुन लगा रहा था। मोहन को देखते ही वह साबुन छिपा कर भाग जाने का अवसर खोजने लगा।

मोहन ने मुस्करा कर कहा—क्या धोती बहुत मैली हो गई है सोहन ? धोबी को क्यों नहीं देते ?

सोहन को इन शब्दों में स्नेह की गन्ध आई।

“धोबिन पैसे माँगती है।”

“तो पैसे अम्माँ से क्यों नहीं माँग लेते ?”



“अम्माँ कौन पैसे दिए देती है।”

“तो मुझसे ले लो!”

यह कह कर उसने एक इकन्नी उसकी ओर फेंक दी। सोहन प्रसन्न हो गया। भाई और माता दोनों ही उसे धिक्कारते रहते थे। बहुत दिनों के बाद आज उसे स्नेह की मधुरता का स्वाद मिला। इकन्नी उठा ली और धोती को वहीं छोड़ कर गाय को खोल कर ले चला।

मोहन ने कहा—तुम रहने दो, मैं इसे लिए जाता हूँ।

सोहन ने पगहिया भाई को देकर फिर पूछा—तुम्हारे लिए चिल्लम रख जाऊँ?

जीवन में आज पहली बार सोहन ने भाई के प्रति ऐसा सद्भाव प्रकट किया था। इसमें क्या रहस्य है, यह मोहन की समझ में न आया। बोला—आग हो तो रख जाओ।

मैना सिर के बाल खोले आँगन में बैठी घिरौंदा बना रही थी। मोहन को देखते ही उसने घिरौंदा बिगाड़ दिया और अञ्जल से बाल छिपा कर रसोई घर में बरतन उठाने चली।

मोहन ने पूछा—क्या खेल रही थी मैना?

मैना डरी हुई बोली—कुछ तो नहीं।

“तू तो बहुत अच्छे घिरौंदे बनाती है। ज़रा बना, देखूँ।”

मैना का रुआसा चेहरा खिल उठा। प्रेम के एक शब्द में कितना जादू है। मुँह से निकलते ही जैसे सुगन्ध फैल गया। जिसने सुना उसका हृदय खिल उठा। जहाँ भय था, वहाँ विश्वास चमक उठा। जहाँ कटुता थी, वहाँ अपनापा छलक पड़ा। चारों ओर चेतनता दौड़ गई। कहीं आज्ञा नहीं, कहीं खिन्नता नहीं। मोहन का हृदय आज प्रेम से भरा हुआ था। उसमें से सुगन्ध का विकर्षण हो रहा था।

मैना घिरौंदा बनाने बैठ गई।

मोहन ने उसके उलझे हुए बालों को सुलझाते हुए कहा—तेरी गुड़िया का ब्याह कब होगा मैना, नेवता दे, कुछ मिठाई खाने को मिले।

मैना का मन आकाश में उड़ने लगा। अब मैना पानी माँगें तो वह छोटे को राख से खूब चमाचम करके पानी ले जायगी।

“अम्माँ पैसे नहीं देती। गुड्डा तो ठीक हो गया है।

टीका कैसे भेजूँ।”

“कितने पैसे लेगी?”

“एक पैसे के बतासे लूँगी और एक पैसे का रङ्ग। जोड़े तो रङ्ग जायेंगे कि नहीं।”

“तो दो पैसे में तेरा काम चल जायगा।”

“हाँ, दो पैसे दे दो मैना, तो मेरी गुड़िया का ब्याह धूमधाम से हो जाय।”

मोहन ने दो पैसे हाथ में लेकर मैना को दिखाए। मैना लपकी, मोहन ने हाथ ऊपर उठाया, मैना ने हाथ पकड़ कर नीचे खींचना शुरू किया। मोहन ने उसे गोद में उठा लिया। मैना ने पैसे ले लिए और नीचे उतर कर नाचने लगी। फिर अपनी सहेलियों को विवाह का नेवता देने के लिए भागी।

उसी वक्त बूटी गोबर का मौवा लिए आ पहुँची। मोहन को खड़े देख कर कठोर स्वर में बोली—अभी तक मटरगस ही हो रही है। भैंस कब दुही जायगी?

आज बूटी को मोहन ने विद्रोह भरा जवाब न दिया। जैसे उसके मन में माधुर्य का कोई सोता सा खुल गया हो। माता को गोबर का बोझ लिए देख कर उसने मौवा उसके सिर से उतार लिया।

बूटी ने कहा—रहने दे, रहने दे, जाकर भैंस बूढ़, मैं तो गोबर लिए जाती हूँ।

“तुम इतना भारी बोझ क्यों उठा लेती हो। मुझे क्यों नहीं बुझा लेती?”

माता का हृदय वास्तव्य से गदगद हो उठा।

“तू जा अपना काम देख। मेरे पीछे क्यों पड़ता है।”

“गोबर निकासने का काम मेरा है।”

“और बूध कौन दुहेगा?”

“वह भी मैं करूँगा।”

“तू इतना बड़ा जोधा है कि सारे काम कर लेगा?”

“जितना कहता हूँ उतना कर लूँगा।”

“तो मैं क्या करूँगी?”

“तुम लड़कों से काम लो, जो तुम्हारा धर्म है।”

“मेरी सुनता है कोई।”

३

आज मोहन बाज़ार से दूध पहुँचा कर जौटा तो पान, कथा, सुपारी, एक छोटा-सा पानदान और थोड़ी



सी मिठाई लाया। बूटी बिगड़ कर बोली—आज पैसे कहीं फालतू मिल गए थे क्या? इस तरह पैसे उड़ावेगा तो कै दिन निबाह होगा।

“मैंने तो एक पैसा भी नहीं उड़ाया अम्मा। मैं समझता था तुम पान खाती ही नहीं।”

“तो अब मैं पान खाऊँगी।”

“हाँ और क्या। जिसके दो-दो जवान बेटे हों, क्या वह इतना शौक भी न करे।”

बूटी के सूखे कठोर हृदय में कहीं से कुछ हरिगानी निकल आई, एक नन्हीं-सी कोपल थी, लेकिन उसके अन्दर कितना जीवन, कितना रस था। उसने मैना और सोहन को एक-एक मिठाई दे दी और एक मोहन को देने लगी।

“मिठाई तो लड़कों के लिए लाया था अम्मा।”

“और तू तो बूढ़ा हो गया, क्या?”

“इन लड़कों के सामने तो बूढ़ा ही हूँ।”

“लेकिन मेरे सामने तो लड़का ही है।”

मोहन ने मिठाई ले ली। मैना ने मिठाई पाते ही गप से मुँह में डाल ली थी। वह केवल मिठास का स्वाद जीभ पर छोड़ कर कब की गायब हो चुकी थी। मोहन की मिठाई को ललचाई आँखों से देखने लगी। मोहन ने आधा लड्डू तोड़ कर मैना को दे दिया। एक मिठाई दोने में और बची थी। बूटी ने उसे मोहन की तरफ बढ़ा कर कहा—लाया भी तो इतनी-सी मिठाई। यह ले ले।

मोहन ने आधी मिठाई मुँह में डाल कर कहा—वह तुम्हारा हिस्सा है अम्मा।

“तुम्हें खाते देख कर मुझे जो आनन्द मिलता है, उसमें मिठास से ज्यादा स्वाद है।”

उसने आधी मिठाई सोहन को और आधी मोहन को दे दी। फिर पानदान खोल कर देखने लगी। आज जीवन में पहली बार उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। धन्य भाग कि पति के राज में जिस विभूति के लिए तरसती रही, वह लड़के के राज में मिली। पानदान में कई कुल्हिया हैं। और देखो, दो छोटी-छोटी चिमचियाँ भी हैं, ऊपर कड़ा लगा हुआ है, जहाँ चाहो लटक कर ले जाव। ऊपर की तरतरी में पान रखें जायेंगे। ज्योंही

मोहन बाहर चला गया, उसने पानदान को माँज-बोकर उसमें चूना, कथा भरा, सुपारी काटी, पान को भिगो कर तरतरी में रखवा। तब एक बीड़ा लगा कर खाया। उस बीड़े के रस ने जैसे उसके वैधव्य की कठुता को आर्द्र कर दिया। मन की प्रसन्नता व्यवहार में उदारता बन जाती है। अब वह घर में नहीं बैठ सकती। उसका मन इतना गहरा नहीं है कि इतनी बड़ी विभूति उसमें जाकर गुम हो जाय। एक पुराना आईना पड़ा हुआ था। उसने उसमें अपना मुँह देखा। ओठों पर लाकड़ी तो नहीं है। मुँह खाल करने के लिए उसने थोड़े ही पान खाया है।

धनिया से आकर कहा—काकी, तनक रस्सी दे दो, मेरी रस्सी टूट गई है?

कल बूटी ने साफ़ कह दिया होता, मेरी रस्सी गाँव भर के लिए नहीं है। रस्सी टूट गई है तो बनवा लो। आज उसने धनिया को रस्सी निकाल कर प्रसन्न मुख से दे दी और सद्भाव से पूछा—लड़के के दस्त बन्द हुए कि नहीं धनिया?

धनिया ने उदास मन से कहा—नहीं काकी, आज तो दिन भर दस्त आए। जाने दाँत आ रहे हैं।

“पानी भर ले तो चल ज़रा देखूँ, दाँत ही है कि और कुछ फसाद है। किसी की नजर-वज़र तो नहीं लगी।”

“अब क्या जाने काकी, कौन जाने किसी की आँख फूटी हो।”

“चोंचाल लड़कों को नजर का बड़ा डर रहता है।”

“जिसने चुमकार कर बुलाया, भट उसकी गोद में चला जाता है। ऐसा हँसता है कि तुमसे क्या कहूँ।”

“कभी-कभी माँ की नजर भी लग जाया करती है।”

“ऐ नौज काकी, भला कोई अपने लड़के को नजर लगाएगा।”

“यही तो तू समझती नहीं। नजर आप ही आप लग जाती है।”

धनिया पानी लेकर आई तो बूटी उसके साथ बच्चे को देखने लगी।

“तू अकेली है। आजकल घर के काम-धन्धे में बड़ा अण्डस होता होगा।”



“नहीं अम्माँ, रुपिया ण जाती है, घर का कुछ काम कर देती है, नहीं अम्मेले तो मेरी मरन हो जाती।” बूटी को आश्चर्य हुआ। रुपिया को उसने केवल तितली समझ रक्खा था।

“रुपिया !”

“हाँ काकी, बेचारी बड़ी सीधी है। भाड़ लगा देती है, चौका-बरतन कर देती है, लड़के को संभालती है। गाढ़े समय कौन किसी की बात पूछता है काकी।”

“उसे तो अपने मिस्सी-काजल से छुट्टी न मिलती होगी।”

“यह तो अपनी-अपनी रुचि है काकी। मुझे तो इस मिस्सी-काजल वाली ने जितना सहारा दिया, उतना किसी भक्तिन ने न दिया। बेचारी रात भर जागती रही। मैंने कुछ दे तो नहीं दिया। हाँ, जब तक जिङ्गी उसका जस गाऊँगी।”

“तू उसके गुन अभी नहीं जानती धनिया। पान के लिए पैसे कहाँ से आते हैं ? किनारदार साड़ियाँ कहाँ से आती हैं ?”

“मैं इन बातों में नहीं पड़ती काकी। फिर शौक-सिंगार करने को किसका जी नहीं चाहता। खाने-पहनने की यही तो उमिर है।”

धनिया का घर आ गया। आँगन में रुपिया बच्चे को गोद में लिए थपक रही थी। बच्चा सो गया था।

धनिया ने बच्चे को खोले पर सुला दिया। बूटी ने बच्चे के सिर पर हाथ रक्खा, पेट में धीरे-धीरे उँगली गड़ा कर देखा ! नाभी पर हींग का लेप करने को कहा। रुपिया बेनिया लाकर उसे झुलने लगी।

बूटी ने कहा—जा बेनिया मुझे दे दे।

“मैं बुला दूँगी तो क्या छोटी हो जाऊँगी।”

“तू दिन भर यहाँ काम-धन्धा करती रही है ! थक गई होगी।”

“तुम इतनी भलीमानस हो, और यहाँ लोग कहते थे वह बिना गाती के बात नहीं करती। मारे डर के तुम्हारे पास न आई।”

बूटी मुस्कराई।

“लोग झूठ तो नहीं कहते।”

“मैं आँखों की देखी मानूँ कि कानों की सुनी ?”

आज भी रुपिया आँखों में काजल लगाए, पान खाए, रङ्गीन साड़ी पहने हुए थी। किन्तु आज बूटी को मालूम हुआ, इस फूल में केवल रङ्ग नहीं है, सुगन्ध भी है। उसके मन में रुपिया से जो घृणा हो गई थी, वह किसी दैवी मन्त्र से धुल सी गई। कितनी सुगील लड़की है, कितनी बजाधुर। बोली कितनी मीठी है। आजकल की लड़कियाँ अपने बच्चा की तो परवाह नहीं करतीं, दूसरों के लिए कौन मरता है। सारी रात धनिया के लड़के को लिए जागती रही ! मोहन ने कल की बातें इससे कह तो दी ही होंगी। दूसरी लड़की होती तो मेरी ओर से मुँह फेर लेती, मुझे जलाती, मुझसे ऐंठती। इसे तो जैसे कुछ मालूम ही नहीं। हो सकता है कि मोहन ने इससे कुछ कहा ही न हो। हाँ, यही बात है।

आज रुपिया बूटी को बड़ी सुन्दर लगी। ठीक तो है, अभी शौक-सिंगार न करेगी तो कब करेगी। शौक-सिंगार इसलिए बुरा लगता है कि ऐसे आदमी अपने भोग-विजास में मस्त रहते हैं। किसी के घर में आग लग जाय, उनसे मतलब नहीं। उनका काम तो खाली दूसरों को रिझाना है। जैसे अपने रूप की दुकान सजाए, राह-चलनों को बुलाते हों कि ज़रा इस दुकान की सैर भी करते जाइए। ऐसे उपकारी प्राणियों का सिंगार बुरा नहीं लगता। नहीं, बल्कि और अच्छा लगता है। इससे मालूम होता है कि इसका रूप जितना सुन्दर है उतना ही मन भी सुन्दर है। फिर कौन नहीं चाहता कि लोग उसके रूप का बखान करे। किसे दूसरों की आँखों में खुब जाने की जरूरत नहीं होती। बूटी का यौवन कब का बिश हो चुका। फिर भी यह बाबूसा उसे बनी हुई है। कोई उसे रस-भरी आँखों से देख जाता है तो उसका मन कितना प्रसन्न हो जाता है। मोहन पर यह नहीं पड़ते। फिर रूपा तो अभी जवान है।

उस दिन से रूपा प्रायः दो-एक बार निश्च बूटी के घर आती। बूटी ने मोहन से आग्रह करके उसके लिए एक अच्छी सी साड़ी मँगवा दी ? अगर रूपा कभी बिना काजल लगाए या बेरंगी साड़ी पहने आ जाती तो बूटी कहती—झूठे-बेटियों को यह जेनिया भेस अच्छा नहीं लगता। यह भेस तो हम जेनी बूटियों के लिए है।



रूपा ने एक दिन कहा—तुम बूढ़ी काहे से हो गईं
अम्माँ ! लोगों को हथारा नल जाय तो भौंरों की तरह
तुम्हारे ऊपर मैं-हरे बनें ! मेरे दादा तो तुम्हारे द्वार पर
धरना देने लगे ।

बूटी ने मीठे हिलकार से कहा—रख, मैं तेरे मा-
की सौत बन कर जाऊँगी ?

“अम्माँ तो बूढ़ी हो गईं ?”

“तो क्या तेरे दादा अभी जवान बैठे हैं ?”

“हाँ देया, बड़ी अच्छी मिट्टी है उनकी ।”

बूटी ने उसकी ओर रसभरी आँखों से देख कर
पूछा—अच्छा बता, मोहन से तेरा ब्याह कर दूँ ?

रूपा बजा गई ! मुख पर गुलाब की छाया दीड़

गई ?

आज मोहन दूध बेच कर जौटा तो बूटी ने कहा—
कुछ रुपए-पैसे जुटा, मैं रूपा से तेरी बातचीत कर
रही हूँ ।



प्रेम की रीति



[श्रीमती सुन्दरकुमारी]

फूलों को हम बेध-बेध कर,
अपना द्वार बनाते हैं ।
पहिन शहीदों की मालाएँ,
हम सगर्व मुसकाते हैं ॥



दीपक ने कर प्यार शत्रु का,
अङ्ग-अङ्ग मुनसा डाला ।
हमने आँखों के प्यारे सुरमे,
ही को पिसवा डाला ॥



मोती को सीपी की गोदी,
से छीना छिदवाया ।
अपना प्यार स्वर्ण को हमने,
तपा-तपा दिखलाया ॥



हँसते कमल प्रेम उनका जब,
अमरों को भटकाता है ।
हाय ! जिसे जो जितना प्रिय,
उतना ही उसे सताता है ॥



कठिन कृपाण धार है यह,
या देव ! प्रेम मतवाला है ?
तेरा आशीर्वाद, श्राप, अमृत,
है या विष-भ्याला है ?



घायल हृदय, भरी आँखें,
क्या यही प्रेम की रीति ?
इसी राह में तुम रहते, क्या
प्रभु है यह ही प्रीति ?



जर्मनी का पुनर्संघटन और विश्व-शान्ति

[श्री० रामकिशोर मालवीय]



मुल्य की मनस्थिति परिवर्तन-शील है। उसकी विचार-धारा में, उसके दृष्टिकोण में सदा परिवर्तन हुआ करता है और यह परिवर्तन विकास अथवा विनाश के अनुसार होता रहता है। जो विचार एक समय में कल्पवृक्ष समझा जाता है, कालान्तर में वही विष-वृक्ष सिद्ध कर दिया जाता है और मनुष्य उसका अविलम्ब त्याग कर देता है। यह स्थिति जिस प्रकार व्यक्तियों पर घटित होती है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रों पर भी होती है। जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र जितना अधिक उन्नत होता है, वह उतना ही अधिक परिवर्तनप्रिय भी होता है और इस सत्य का प्रमाण हमें यूरोपीय देशों के इतिहास में प्रचुर मात्रा में मिलता है। पिछली अनेक शताब्दियों में यूरोप ने जिस प्रकार उन्नति की है, उसी प्रकार उसके सिद्धान्तों में भी परिवर्तन होते रहे हैं। उसके जिस राष्ट्र ने जितनी अधिक उन्नति की है, उतनी ही शीघ्रता के साथ उसके दृष्टिकोणों में परिवर्तन भी हुए हैं और इसीलिए उनमें परस्पर सङ्घर्ष भी होता आया है। सदा एक राष्ट्र ने दूसरे पर अपना सैद्धान्तिक और राजनीतिक प्रमुख ज्ञान का प्रयत्न किया है और इसी प्रयत्न की पूर्ति में उनमें भयङ्कर युद्ध होते रहे हैं। यूरोप ही नहीं, शक्ति-मद से मत्त होकर यूरोपीय राष्ट्रों ने संसार के अन्य देशों की ओर भी अपना हाथ बढ़ाया और इसका फल यह हुआ कि वे यूरोप ही नहीं, वरन् समस्त संसार की शान्ति के बाधक रहे। एक युग आता है, जब कि राज-तन्त्र के विरुद्ध युद्ध घोषित किया जाता है, बादशाह ही नहीं, समस्त राज-वंश तलवार के घाट उतारे जाते हैं, उनके राजमहल धराशायी किए जाते हैं और राज-

तन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र शासन की स्थापना होती है; लोगों की मति-गति फिर बदलती है, प्रजातन्त्र शासन में भी सत्ता प्रायः पूँजीवादियों के हाथों में चली जाती है, इसके विरुद्ध भी अस्त्र ग्रहण किए जाते हैं और श्रमजीवी शासन स्थापित होता है। परन्तु इतिहास फिर दुहराता है, समय पलटा खाता है, परमार्थ पर स्वार्थ की विजय होती है, स्वराष्ट्र-हित-साधन का ज़माना आता है और प्रजातन्त्र के स्थान पर एकतन्त्र (डिक्टेटरी) शासन स्थापित होता है। इस रङ्गमञ्च पर जर्मनी ने सदा प्रमुख अभिनय अभिनीत किया है और इस समय भी वह एक नूतन दृश्य लेकर स्टेज पर आया है। इस बार वह किस आन-बान के साथ रङ्ग-मञ्च पर आया है और उसके इस अभिनय का यूरोप ही नहीं, समस्त संसार पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसी का विवेचन इस लेख में किया जायगा।

जर्मनी का आदर्श राष्ट्र-प्रेम

जर्मनी यूरोप में सदा से महाशक्तिशाली देश ही नहीं, अन्य देशों के लिए आतङ्क-स्वरूप रहा है। यों तो ग्रेट ब्रिटेन, फ़्रान्स और रोम के रूप में इटली आदि की भी गणना बड़ी शक्तियों में रही है, किन्तु जर्मनी में साम्राज्य-विस्तार-लिप्सा हमेशा से अधिक रही और इससे भी ऊपर जीवन-क्षेत्र में जितना अधिक ऊँचा स्थान राष्ट्रीयता और वैयक्तिक स्वार्थ की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को जर्मन लोगों ने दिया है, उतना दूसरे राष्ट्रों ने नहीं दिया है। यद्यपि आए-दिन इटैलियनो, फ़्रान्सीसियों और अङ्गरेजों में भी राष्ट्रीयता के भाव अधिक जागृत हो उठे हैं, किन्तु वर्तमान समय में जितना राष्ट्र-प्रेम जर्मनी वालों में है, जितना वैयक्तिक स्वार्थों को अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान करने का माहा उनमें है, उतना अन्य राष्ट्रों में



नहीं है। यही कारण है कि जर्मनी से अन्य राष्ट्र सदा भयभीत और चौकन्ने रहते हैं। जर्मनों का यह स्वभाव है कि पूर्ण शक्तिशाली होने पर वे शान्त नहीं रह सकते। शक्ति प्राप्त कर लेने पर वे मदान्ध हो जाते हैं। यूरोपीय महाभारत के पहिले जर्मनी का शक्ति-मद छलका पड़ता था और उसका प्रतिफल यूरोपीय महाभारत हुआ। महायुद्ध होने के पहिले जर्मनों की सैनिक शक्ति जिस प्रकार सुदृढ़ थी, वैसी ही इस समय हो गई है। जिस प्रकार उस समय यूरोप के अन्य देश जर्मनी से भयभीत रहते थे और उसका पड़ोसी फ्रान्स उससे काँपा करता था, उसी तरह इस समय भी उसे शक्तिशाली होते देख अन्य देश और विशेषतः फ्रान्स खलबला उठा है। यद्यपि इस बार फ्रान्स ने भी अपनी सैनिक सङ्कटन सुदृढ़ कर लिया है और जर्मनी से उसकी सैनिक शक्ति कहीं बढ़ी-चढ़ी है, किन्तु दूध का जका हुआ मट्ठे को भी फूँक कर पीता है, फ्रान्स जर्मनों की वीरता से, उनके राष्ट्र-प्रेम से भलीभाँति अवगत है, यही नहीं उससे वह सबक सीख चुका है। इसलिए वह जर्मनी से अत्यधिक सतर्क है और उसका शक्तिशाली होना अपने लिए वह ज़हर समझता है। बात भी ठीक है, जितनी दुश्मनी फ्रान्स और जर्मनी में है, उतनी मित्र-राष्ट्रों में किसी दूसरे से नहीं है। अवसर पाकर ये दोनों राष्ट्र एक-दूसरे को पूर्ण पददलित करने से नहीं चूकते। गत महाभारत के बाद फ्रान्स जर्मनी को जितना अधिक सन्धि में जकड़वा सका था, उतना उसने जकड़-वाया था। अपने भरसक उसने ऐसा कर दिया था कि जर्मनी दशाब्दियों तक सर न उठा सके। इटली, पोलैंड आदि दूसरे देशों ने भी महायुद्ध से शिक्षा ग्रहण की और अपनी-अपनी सैनिक शक्ति खूब बढ़ाई। यद्यपि महायुद्ध के बाद वार्सेलीज़ की सन्धि में सब देशों के लिए सैनिक शक्ति की एक सीमा निश्चित कर दी गई थी, किन्तु सैनिक सुदृढ़ता का सबक सब लोग महायुद्ध से सीख चुके थे, इसलिए चुपके-चुपके सभी राष्ट्रों ने अपनी सेनाएँ बढ़ाईं। यह बात सन्धि की शर्तों के विरुद्ध थी। जर्मनी ने चीटकार मचाई और संसार का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि सन्धि की शर्तें तोड़ी जा रही हैं, हमारी सेना तो घटा दी गई, किन्तु अन्य राष्ट्र अपनी फ़ौजी ताक़त बढ़ा रहे हैं। जर्मनी न्याय-पथ

पर था, अतः संसार की सहानुभूति उसके साथ हुई। जर्मनी के लिए विष से अमृत उत्पन्न हुआ और उसे अपनी सैनिक शक्ति-वृद्धि का बहाना मिल गया। उसने इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाया और बड़ी तेज़ी के साथ अपना पुनर्सङ्कटन आरम्भ किया। सबसे अधिक ध्यान उसने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की ओर दिया और इसमें अपनी सारी ताक़त लगा दी। एक ओर जर्मनी दूसरे देशों के फ़ौजी कूत बढ़ाने के खिलाफ़ शोर मचाता जाता था और दूसरी ओर अपनी ताक़त ज़ोरों के साथ बढ़ाता जा रहा था। जर्मनी में सेनावाद और सैनिक शक्ति बढ़ाने की भावना का जन्म भीतर ही भीतर महाभारत की सन्धि के बाद ही हो गया था। मित्र-राष्ट्रों द्वारा निर्धारित सन्धि की शर्तें जर्मनी के लिए इतनी अपमानजनक और उसे झुज-पुञ्ज बनाने वाली थीं और जर्मनी ने इस बेकसी के साथ उन्हें स्वीकार किया था कि उसे देख कर संसार के राजनीतिज्ञों ने उसी समय यह भविष्यवाणी कर दी थी कि जर्मनी कुछले हुए सर्प की भाँति अवश्य बढ़ता लेगा और दूसरे महाभारत का बीजारोपण इसी समय से हो गया है। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होने के बाद ही जर्मनों में बढ़ते का भाव जाग्रत हो उठा।

नाज़ी-दल का जन्म और विकास

सन् १९१९ में वहाँ 'नाज़ी' नामक एक ऐसे दल की स्थापना हुई, जिसने जर्मनी को पुनर्सङ्कटित करने और उसे पूर्ण स्थिति में ला देने का बीड़ा उठाया। महायुद्ध समाप्त होने और सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होने के बाद जर्मनों की आन्तरिक दशा अत्यन्त हीन और भयावह हो गई थी। क़ैसर का पतन और प्रजातन्त्र शासन की स्थापना होने के बाद गृह युद्ध आरम्भ हो गया था। जनता का बहुत बड़ा समुदाय सन्धि की शर्तों को स्वीकार करने और हरजाने की रकम देने के विरुद्ध था। इसी समय नाज़ी-दल का जन्म हुआ। इस दल ने देश को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करने का उद्देश्य देशवासियों के सामने रक्खा। जर्मनी के वर्तमान प्रधान मन्त्री ही नहीं, डिक्टेटर एडोल्फ़ हिटलर ने ही इस दल को स्थापित किया था और वही दल के नेता हुए। हिटलर ने नाज़ी-दल का ऐसा आदर्श बनाया



और देश को फिर पूर्व-स्थिति में लाने का ऐसा कार्यक्रम देश के सामने रक्खा कि समस्त देशवासियों की सहानुभूति इसी दल की ओर हो गई। जर्मनी में प्रजातन्त्र के उदार सिद्धान्तों के मुक़ाबले में भी नाज़ी-दल कैसे सर्वप्रिय हो गया, इसके अनेक कारण हैं। प्रथम और सबसे ज़बरदस्त कारण यह है कि हिटलर सदा दल के नेता थे। हिटलर महान देशभक्त, देश के लिए सर्वस्व-त्यागी, अत्यन्त प्रभावशाली वक्ता, कर्म-वीर और पराक्रमी योद्धा है। माता-पिता-रहित, एक अनाथ बालक का जीवन व्यतीत कर, हिटलर ने अपने अध्यवसाय और परिश्रम से जो उन्नति की है, वह बिरबों को ही नसीब होती है। ख्याति से दूर रह कर शान्त रूप में हिटलर ऐसा कार्य करने वाला है कि पौन्च-सात वर्ष पहिले इसका किसी को नाम तक नहीं ज्ञात था, किन्तु इस समय हिटलर का आतङ्क केवल जर्मनी ही पर नहीं, समस्त संसार पर छा गया है और यूरोप की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ इससे भयभीत रहने लगी हैं। संक्षेप में हिटलर 'जर्मनी का मुसोलिनी' हो गया है और हिटलर को संसार एक बड़ी भारी आफ़त के रूप में देख रहा है। अतः ऐसे व्यक्ति को नेता पाकर नाज़ी-दल का इतना शीघ्र शक्तिमान न होना ही आश्चर्य की बात होती। दूसरा कारण नाज़ी-दल के शक्तिशाली होने का उसके आकर्षक सिद्धान्त और कार्यक्रम हैं। सन्धि की शर्तों को अत्यन्त अपमानजनक और मित्र-राष्ट्रों को हरजाना देना अन्यायपूर्ण तथा अनुचित घोषित करने का सर्वप्रथम साहस नाज़ी-दल ने किया था। देश की सरकार यद्यपि प्रजातन्त्रात्मक थी और उन दिनों प्रजातन्त्र में ही समस्त संसार के लिए आकर्षण था, किन्तु जनता सन्धि की शर्तों से इतना अस्वस्थ थी, आर्थिक शोषण के कारण वह ऐसी मृतप्राय हो रही थी कि प्रजातन्त्र सरकार के विरुद्ध वह केवल इसलिए थी कि सरकार हरजाने की रक़म क्यों बढ़ा कर रही है। और चूँकि नाज़ी-दल हरजाने की रक़म देने का खुल्लमखुल्ला विरोध करता था, देशवासियों में सेनावाद का प्रचार करता था और देश की समस्त शक्ति देश को पुनर्संरक्षित करने में ही लगा देने की आवाज़ बुलन्द कर रहा था, इसलिए प्रजातन्त्र दल की अपेक्षा भी जनता ने नाज़ी-दल को ही अपनाया। जनता के सभी फ़िरक़ों ने नाज़ी-

दल के उद्देश्यों और कार्यक्रम में अपनी मुक्ति का मार्ग पाया, ग़रीब और अमीर श्रेणी के सभी लोगों ने उसे सहायता तथा सहयोग प्रदान किया। युवक-समुदाय तो नाज़ी-दल और हिटलर का भक्त है अथवा यों कहना चाहिए कि युवा जर्मनी ही नाज़ी-दल है। युवक समुदाय नाज़ी-दल का पूजक इसलिए है कि इसके सिद्धान्त राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं। नाज़ी-दल फ़्रान्सीसियों और पोलैण्ड वालों के विरुद्ध है और इस बात में युवा जर्मनी के सिद्धान्त नाज़ियों से मिलते हैं। किसान नाज़ी-दल को इसलिए पसन्द करते हैं और उसमें सम्मिलित हैं, कि नाज़ी-दल पूँजीपति यहूदियों के विरुद्ध है और उनको मिटा देना चाहता है। पूँजीपतियों के नाश का अर्थ होगा निर्धन किसानों की मुक्ति, क्योंकि किसान पूँजीपतियों के कर्ज़दार हैं, उनकी जायदादें महाजनों के पास रहन हैं, अतः पूँजीपतियों के नष्ट हो जाने से किसानों के गले पूँजीपतियों के हाथों से छूट जायेंगे। अनुदार और व्यापारी दल के लोग नाज़ियों से इसलिए सहयोग करते हैं कि वे साम्यवादियों और उस समय की साम्यवादी सरकार के विरोधी थे और नाज़ी-दल भी साम्यवादियों का सैद्धान्तिक रूप से विरोधी था। इन कारणों से नाज़ी-दल का प्रभाव समस्त देश-वासियों पर अधिकाधिक बढ़ता गया।

नाज़ियों और साम्यवादियों में अन्तर क्या है ?

जर्मनी में नाज़ी और साम्यवादी, दो सर्व-प्रधान दल हैं और ये दोनों एक-दूसरे के घोर शत्रु हैं। महायुद्ध की समाप्ति और कैसर के पतन के बाद जर्मनी में साम्यवादी दल का ही प्राधान्य था और शासन-सूत्र भी इसी दल के हाथों में था। परन्तु उसके दो-तीन वर्ष बाद ही जर्मनी में नाज़ी-दल का जन्म हुआ और थोड़े ही दिनों में वह साम्यवादी दल से अधिक लोकप्रिय हो गया। 'साम्यवाद' शब्द में ग़रीबों के लिए बड़ा आकर्षण है और ग़रीब लोग अपने अधिकार साम्यवादियों के हाथों में पूर्णरूपेण सुरक्षित समझते हैं, ऐसी दशा में निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात है कि जर्मन प्रजा ने साम्यवादियों को क्यों ठुकरा दिया और देश का समस्त अधिकार नाज़ी-दल के हाथों में क्यों सौंप दिया। यद्यपि नाज़ी-दल



और साम्यवादी दल के सिद्धान्तों में बहुत सामंजस्य है। दोनों के प्रायः सभी सिद्धान्त मिलते हैं। नाज़ी-दल महायुद्ध के बाद मित्र-राष्ट्रों से की गई वार्सेलीज़ सन्धि को देश के लिए घातक समझता है, उसी प्रकार साम्यवादी दल भी समझता है। नाज़ी-दल जिस तरह क्षति-पूर्ति की रकम अदा करने का विरोधी है, उसी प्रकार साम्यवादी दल भी उसका विरोधी है। नाज़ी-दल गरीबों और श्रमजीवियों का हितैषी और पक्षपाती है, उसी के सदृश साम्यवादी दल भी है। परन्तु एक अन्तर है और वह इतना ज़बरदस्त अन्तर है कि उसी के कारण साम्यवादी दल ठुकरा दिया गया और नाज़ी-दल की पूजा की गई। वह अन्तर यह है कि साम्यवादी दल अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। उसका आदर्श और सिद्धान्त सभी देश के लिए एक है, वह सार्वभौमिक हित की दृष्टि से प्रबलों के पहलुओं देखता है, किन्तु नाज़ी-दल एक-देशीय संस्था है, वह केवल अपने ही देश के हित की दृष्टि से प्रबलों को लेता है और उसका प्रत्येक कार्य एकमात्र देश-हित की दृष्टि से होता है। साम्यवादी सरकार को क्षति-पूर्ति की समस्या के सम्बन्ध में मित्र-राष्ट्रों से सहयोग भी करना पड़ा। इन्हीं कारणों से साम्यवादी दल पर से जनता का विश्वास उठ गया और उसने शासन की बागडोर नाज़ी-दल के हाथों में दे दी। जर्मन पार्लामेण्ट (जिसे रीशटाग कहते हैं) के गत मार्च मास के नए चुनाव में नाज़ी-दल की ज़बरदस्त प्रधानता रही और अधिकांश संख्या में चुने जाने के कारण शासन-कार्य नाज़ियों के हाथों में ही सौंपा गया और नाज़ी-दल के संस्थापक तथा उसके नेता हिटलर प्रधान मन्त्री बनाए गए। प्रधान मन्त्री और चान्सलर ही नहीं, हिटलर को डिक्टेटरी का अधिकार मिला गया। अब ४ वर्षों तक रीशटाग का चुनाव नहीं होगा और हिटलर की सरकार एकतन्त्र रूप से देश का शासन करेगी।

सैनिक और आर्थिक सङ्कटन

हिटलर अब शासनाखंड हो गए हैं और अब तो देश को पुनर्संरुद्ध करने के लिए वह जो चाहेंगे, करेंगे। उनका ध्यान अधिकतर आर्थिक और सैनिक सङ्कटन करने का है। सैनिक सङ्कटन तो वह पिछले कई वर्षों

से, जबकि शासन में उनका कोई हाथ नहीं था, कर रहे हैं। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से और सरकार पर भी दबाव डलवा कर उसके द्वारा देश में सैनिकवाद को पुनर्जाग्रत किया। यह इन्हीं का प्रताप है कि जर्मनी में इस समय प्रायः उतनी ही सेना है, जितनी महायुद्ध आरम्भ होने के पहिले अथवा सन् १९१३ में थी। सेना यद्यपि उतनी ही है, किन्तु खर्च उस पर उस समय की अपेक्षा अधिक किया जाता है। इस समय एक तो शाही सेना है और उसके अतिरिक्त नाज़ी-दल की सेना अलग है। नाज़ी युवकों की एक सुरक्षित सेना है। इन सैनिकों की शिक्षा के लिए अनेक कॉलेज हैं और उन्हें बाकायदा शिक्षा दी जाती है। इस सेना का नाम हिटलर ने 'स्टहेलहेम' रक्खा है। इसकी कैम्पेज़ प्रति वर्ष विभिन्न नगरों में हुआ करती है। नए-नए शस्त्रास्त्र तैयार किए गए हैं और पुराने हथियार अलग सुरक्षित रूप से रखे हैं। शाही सेना की भी वृद्धि की गई है। सन् १९१३ में शाही सेना ८ लाख सैनिकों की थी, ४,००० मैशीन-गनों थीं, ६७ मिलियन मार्क (जर्मन सिक्का) उन पर खर्च होता था, किन्तु सन् १९३० में शाही सेना में १ लाख युवक सैनिक और २,३३६ मैशीनगनों थीं; किन्तु इन पर खर्च ७८९ मिलियन मार्क (अर्थात् १९१३ की अपेक्षा अधिक) खर्च किया गया। युवकों की सैनिक उन्नति में ज्यायाम के नाम पर बहुत अधिक सम्पत्ति व्यय की गई। बजट की रकमों को देखने से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक खर्च फ़ौजी तैयारी में किया गया है। इस समय जर्मनी में १७ वर्ष से लेकर ४५ वर्ष तक के युवकों की संख्या १,२०,००,००० है जिनमें प्रायः ४५,००,००० पुरुष फ़ौजी शिक्षा से पूर्ण हैं। इसी प्रकार ३२ वर्ष की अवस्था के अन्दर के पुरुष १० लाख, ३३ से ३८ वर्ष की अवस्था के १७ लाख और ३८ से ४५ वर्ष की अवस्था के १८ लाख पुरुष शिक्षित हैं। सरकारी सेना के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं द्वारा विभिन्न नाम से सेनाएँ तैयार की गई हैं। इस समय ६ लाख युवक रिज़र्व फ़ोर्स में हैं और इनके साथ ही ३२ साल से नीचे के युवकों की १० लाख की सेना तैयार है। इन सेनाओं के लिए बैरकें तैयार हैं। जिनमें उतनी ही सेना रह सकती है, जितनी सन् १९१४ में अर्थात् महायुद्ध होने के पहले के दिनों रहती थी।



बढ़ तो हुआ सैनिक सङ्गठन, जो कि हो चुका है और भविष्य में जो होगा उसकी बात ही अलग है। इतने सैनिक सङ्गठन के बाद अब हिटलर ने आर्थिक सङ्गठन का कार्यक्रम सामने रक्खा है। आर्थिक सङ्गठन में उनकी दृष्टि यह है कि देश के व्यवसाय और बैंकों पर सरकारी अधिकार रहे और वैयक्तिक संस्थाएँ सरकार के कब्जे में कर ली जायँ। जर्मनी खाद्य-पदार्थों तथा अन्य आवश्यकता की वस्तुओं में दूसरे देशों का मुहताज न रहे, इस उद्देश्य से देश की आन्तरिक उपज को बढ़ाने और उसकी खपत करने की शक्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न होगा। देश की आयात और निर्यात दोनों आर्थिक दशा न सुधरने तक के लिए बन्द कर दी जायँगी और इस प्रकार देश का रूपया देश में ही रखने का प्रयत्न किया जायगा। देश की बेकारी को दूर करने के साथ ही अन्न की उपज को बढ़ाने के लिए कृषि का विस्तार किया जायगा। २ करोड़ एकड़ भूमि को सींच कर खेती कराई जायगी और इस का १ में राज्यकोष से २ अरब ५० करोड़ डोल खर्च किए जायँगे। इस सब उपज का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जायगा। किसानों की उद्ग-पूर्ति के लिए प्रत्येक किसान को आधी एकड़ भूमि बिना कीमत और बिना शुल्क के दी जायगी। उसी के द्वारा वह अपने कुटुम्ब के भोजन के लिए माज उभारने करेगा। इस कार्यक्रम के अनुसार ४ लाख एकड़ भूमि प्रति वर्ष के हिसाब से जोती जायगी और प्रत्येक वर्ष १० लाख मनुष्यों की रोटी और धान का प्रदन हल किया जायगा। खाने, कोयला, धातु आदि की उपज के लिए रुपये लोगों को दिए जायँगे, किन्तु शर्त यह होगी कि ये उपज लागत मात्र में बेचनी होंगी, जिससे कि इस व्यवसाय को करने वाले मुनाफ़ा कम ल और अधिक आमजीवियाँ को काम दे सकें।

जर्मनी पर विदेशों का कर्ज़ भी बहुत है। पिछली सरकारों ने २२ अरब मार्क कर्ज़ ले रखे हैं, जिसका केवल ब्याज प्रति वर्ष ६ अरब ६० करोड़ मार्क देना पड़ता है। अतः यह कर्ज़ लम्बी मीमादों में बढ़ा दिए जायँगे और उनका ब्याज भी कम कर दिया जायगा। ब्याज उतना ही दिया जायगा, जितना उन देशों में वर्तमान समय में अन्य लोगों को दिया जाता है। विदेशी व्यवसाय और बैंक, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका

है, सरकार के अधिकार में कर लिए जायँगे और जो व्यक्ति इस नियम का उल्लङ्घन कर चोरी से व्यक्तिगत रूप से व्यवसाय करेगा, उसे फाँसी की सज़ा दी जायगी।

इस प्रकार जर्मनी पुनर्सङ्गठन के मार्ग पर बहुत कुछ आगे बढ़ गया है और जो रास्ता बाकी है, उसे हिटलर सदृश नेता के नेतृत्व में तय कर लेना उसके लिए कठिन नहीं है। हिटलर को ४ वर्ष के लिए शासन का अधिकार दे दिया गया है। इस अवधि में वह जर्मनी को पूर्ण शक्तिशाली बनाने के लिए एकतन्त्र रूप से शासन करेंगे। उनका दावा है कि इन चार वर्षों के अन्दर वह जर्मनी को वह समस्त शक्ति प्राप्त करा देंगे, जो उसने महायुद्ध के बाद पिछले चौदह वर्षों में खो दी है। हिटलर सदृश देशभक्त, राजनीतिज्ञ, कर्मचय और सुदृढ़ शासक अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति कर जर्मनी को पहिले की अपेक्षा भी महाशक्तिशाली बना लेगा, इसमें सन्देह ही क्या है और इसी बात का विश्वास कर जर्मन जनता ने हिटलर को डिक्टेटरी प्रदान की है। मुसोलिनी के इटली ने थोड़े ही समय में जो कुछ कर दिखाया है, उसे देखते हुए हिटलर का जर्मनी क्या कर लेगा, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। पुनर्सङ्गठित और नूतन शक्ति-प्राप्त जर्मनी किस रूप में संसार के समक्ष आएगा और विश्व-शान्ति पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा, इसे समझने के लिए बृहस्पति की बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। शक्ति-सम्पन्न जर्मन क्या कर सकते हैं और सैनिक सङ्गठन का क्या महत्व है, इसका सबकु संसार के अन्य राष्ट्रों को गत यूरोपीय महाभारत में मिल गया था। उसी समय से यूरोप के छोटे-बड़े सभी देशों ने अपना सैनिक बल बढ़ाना आरम्भ कर दिया था। फ़्रान्स, इटली, पोलैण्ड, इङ्गलैण्ड, रूस, अमेरिका, जापान आदि सभी प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों ने गत पन्ध्रह वर्षों के अन्दर अपना-अपना सैन्य-बल खूब बढ़ाया। इन राष्ट्रों की यह शक्ति-पूजा देख कर लोग भय-भीत हो गए। भय यह सताने लगा कि यह तो दूसरे महाभारत की तैयारी है और इस बार का महाभारत अतीव भयङ्कर होगा। निश्चिन्ताकरण और विश्व-शान्ति की आवाज़ बुलन्द की गई और उपर्युक्त राष्ट्र भी इस प्रयत्न में सम्मिलित हुए। संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों की कई कॉन्फ़ेरेन्स इस सम्बन्ध में हुईं, किन्तु सब प्रयत्न



निरर्थक हुए। कहने को यह प्रयत्न अब भी हो रहा है। इटली के उद्धारक और सर्वत्र सिंगनर मुसोलिनी ने विश्व-शान्ति की एक नई स्कीम तैयार की है। इस स्कीम में मुसोलिनी ने एक बात यह भी रखी है कि विश्व-शान्ति के प्रबल बाधक जर्मनी को सन्तुष्ट करने के लिए यूरोपीय महाभारत के बाद की गई वॉर्सेलीज़ की सन्धि का फिर से संशोधन किया जाय। निस्सन्देह संसार की अशान्ति की जड़ वॉर्सेलीज़ की सन्धि की शर्तें हैं और यदि उनमें संशोधन कर जर्मनी को सन्तुष्ट कर दिया जाय, तो यूरोप में शान्ति स्थापित हो सकती है और यूरोप की शान्ति का अर्थ है समस्त संसार की शान्ति। परन्तु फ़्रान्स मुसोलिनी के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता और वह नहीं चाहता कि जर्मनी फिर शक्तिशाली हो जाय। यद्यपि इङ्ग्लैण्ड, जर्मनी, इटली आदि इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं और फ़्रान्स ने भी इसे निश्चित रूप से अस्वीकार नहीं कर दिया है, किन्तु फ़्रान्स का उसके पक्ष में होना अत्यन्त कठिन है और ऐसी दशा में विश्व-शान्ति का यह प्रयत्न भी सफल होता नहीं दिखाई देता।

परन्तु इस समय संसार का हित और कल्याण इसी बात की अपेक्षा करता है कि शक्तिशाली राष्ट्र युद्ध की प्रवृत्ति त्याग दें और सब की सैनिक शक्तियाँ घटा दी जायँ। यदि यह नहीं हुआ, तो इस बार का महा-भारत अत्यन्त भीषण होगा। गत वर्षों में ऐमे-ऐसे भयङ्कर शस्त्रास्त्र तैयार किए गए हैं और ऐसी-ऐसी जड़-रीखी गैसों तैयार हुई हैं कि मिनटों में बड़े-बड़े नगर के

नगर धूल में मिलाए जा सकते हैं। इस मर्तवा युद्ध से बचे रहने का पूर्ण प्रयत्न करने वाले देश भी नर-संहार से नहीं बच सकेंगे। परन्तु युद्ध का न छिड़ना तभी सम्भव है, जब युद्ध के विस्फोटक फ़्रान्स और जर्मनी उसके लिए प्रयत्नशील हों। मगर वाक्या यह है कि ये दोनों परस्पर घोर शत्रु राष्ट्र-युद्ध की तैयारी में संलग्न हैं। जर्मनी की तैयारी देख कर तो मस्तिष्क घूम जाता है। वहाँ सर्व-साधारण में युद्ध और वॉर्सेलीज़ की सन्धि द्वारा जर्मनी पर फ़्रान्स के अत्याचारों के विरुद्ध भावनाएँ भरने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न हो रहे हैं। फ़्रान्स पर जर्मनी के प्राचीन विजय के चित्र सिनेमा द्वारा जनता को दिखाए जाते हैं, ब्राडकास्टिंग द्वारा युद्ध और राष्ट्र की रक्षा के लिए जनता में भाषण किए जाते हैं, जिन्हें देख कर और सुन कर जनता जोश खाती है और सेना में वह अधिकाधिक संख्या में भरती होती है। समाचार-पत्रों में लेखों द्वारा जनता को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन प्रचारों का पूरा प्रभाव पड़ रहा है। इस सबका अर्थ यह है कि हिटलर के प्रयत्नों से जर्मनी सङ्कटित होने पर सबसे पहिले फ़्रान्स द्वारा अधिकृत अपने प्रदेशों को लौटाने के लिए उठ खड़ा होगा और दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है संसार-न्यायी महासंग्राम का आरम्भ। अतः जर्मनी का पुनर्सङ्कटन विश्व-शान्ति के लिए महान खतरा है और यदि जर्मनी के साथ न्याय न किया गया, तो इसका प्रतिफल केवल यूरोप को ही नहीं, वरन् समस्त संसार को भुगतना पड़ेगा।



बाग़



[श्री० मदनमोहन मिहिर]

कुसुमित कहीं कुसुम कल कोमल,

सघन कहीं काँटों के झाड़।

कहीं हरे तरु लदे फलों पे,

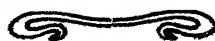
खड़े कहीं सुखे झुझड़॥

शीतल सुरमित कभी समीरण,

और कभी हा कठिन तुषार।

माली ! तेरे सुघड़ बाग़ में,

कभी बसन्त कभी पतझड़॥





[डॉक्टर धनीराम प्रेम]



ई वर्षों से सारे संसार में सन्तति-निग्रह (Birth Control) का आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा है। धीरे-धीरे अधिकाधिक व्यक्ति इसकी उपयोगिता में विश्वास करने लगे हैं। कई वर्ष पूर्व मेरे अनेक मित्र, जिनके विवाह

कुछ समय पूर्व ही हुए थे, इस विचार की खिल्ली उड़ाया करते थे। आज जीवन को वे उतना सरल नहीं समझते। आज वे कई बच्चों के बाप हैं और समझते हैं कि इतनी बड़ी गृहस्थी का भार क्या होता है। इसीलिए आज वे मुझसे सन्तति-निग्रह के साधनों के विषय में लिखा-पढ़ी करते हैं। यही दशा अन्य अनेक नवयुवकों तथा अघेदु सज्जनों की है।

विदेशों में तो इसका प्रचार दिन पर दिन बढ़ रहा है। कुछ वर्ष पूर्व इस विषय को अधार्मिक बता कर इसका प्रयोग अपराध माना जाता था। इसके प्रचारकों तथा लेखकों के ऊपर मुकदमे चलते थे। परन्तु अब वायु का प्रवाह बदला है। लगभग दो वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में पादरियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें इस विषय की भी चर्चा हुई थी। पादरी डीन हज़ जैसे क्रान्तिकारी धर्म-प्रचारक के भाषणों के उपरान्त इस सम्मेलन ने कुछ अवसरों पर सन्तति-निग्रह के उपायों को काम में लाने की अनुमति दे दी थी। इंग्लैण्ड की सरकार ने भी उसी वर्ष प्रत्येक 'काउण्टी' के हेल्थ-ऑफ़ीसर को सन्तति-निग्रह की क्लिनिक (Clinics) खोलने की प्रेरणा की थी।

इंग्लैण्ड में सबसे पहले इस कार्य को हाथ में लेने का श्रेय श्रीमती डॉ० मारी स्टोप्स तथा उनके पति को है। प्रारम्भ में डॉ० स्टोप्स के विचारों का बड़ा विरोध

हुआ। चिकित्सा-शास्त्र के डॉक्टर, पादरी तथा सरकार सभी उनके विरुद्ध थे। उन पर कई मुकदमे भी चलाए गए। परन्तु वे अपने विचारों और कार्य में दृढ़ रहीं और लन्दन में दो वर्ष पूर्व जब मैंने एक सभा में उनका भाषण सुना तो मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उस सभा के सभापति थे लन्दन के एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक और उसमें भाग लेने के लिए अनेक सम्मानित की-पुरुष आए हुए थे।

डॉ० मारी स्टोप्स ने लन्दन में एक बड़ी क्लिनिक की स्थापना की है, जहाँ स्त्रियों को निःशुल्क इस विषय की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त क्लिनिक की ओर से प्रचारक बाहर के भागों में भी जा-जाकर जनता को सहायता देते हैं। इस क्लिनिक की ओर से मार्च १९३० तक लगभग १०,००० स्त्रियों को शिक्षा-सहायता दी गई थी। केन्द्रस्थ क्लिनिक का कार्य मैंने स्वयं जाकर भली-भाँति देखा था और वहाँ की कार्य-प्रणाली वास्तव में अनुकरणीय थी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन दस सहस्र स्त्रियों में से पाँच केवल ऐसी थीं, जिनका विवाह नहीं हुआ था और जो गर्भ धारण कर चुकी थीं। दस सहस्र में यह संख्या नगण्य है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनमें से अधिक संख्या उनकी थी, जो क्लिनिक में आने के पूर्व दो या तीन बालकों की माताएँ थीं। इस क्रियात्मक प्रणाली ने अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों को इसका हामी बना दिया है। इस सम्बन्ध में डॉ० स्टोप्स ने एक बड़ी मनोरञ्जक घटना का वर्णन किया है। सन् १९२१ में सन्त मेरी अस्पताल की प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय ने एक भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने सन्तति-निग्रह के साधनों की और विशेषकर 'रबर-कैप' की बड़ी निन्दा की। इस निन्दा से प्रभावित होकर वहाँ आए हुए एक पादरी महोदय ने एक पुस्तक लिख डाली, जिसमें डॉ० स्टोप्स की झूब झूबर



जी। डॉ० स्टोप्स ने इस पर मानहानि का मुकदमा चलाया, जिसमें फिर प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय ने अपनी सम्मति बताई।

कुछ दिनों बाद डॉ० स्टोप्स ने सुना कि प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय सन्तति-निग्रह की हामी होकर 'रबर कैप' का प्रयोग स्त्रियों को बताती थीं। डॉ० स्टोप्स ने विद्वत्ता करने के लिए, एक निर्धन स्त्री का वेश धारण किया और सन्त मेरी अस्पताल पहुँच गई। कुछ देर बाद हँसती हुई वे बाहर आईं, क्योंकि प्रोफ़ेसर मैकिलरॉय ने उन्हें स्वयं 'रबर कैप' पहनाया था। इससे विदित होता है कि सन्तति-निग्रह के सिद्धान्त का विरोध किस प्रकार घट रहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतवर्ष जैसे देश के लिए इसकी परम आवश्यकता है। सन्तान का होना बुरा नहीं, परन्तु एक तो सन्तान स्वस्थ तथा राष्ट्र के लिए उपयोगी होनी चाहिए और दूसरे उसके द्वारा माता-पिता के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। अधिक सन्तान पैदा करने से ये दोनों बुराइयाँ पैदा होती हैं। जितनी ही अधिक सन्तान होंगी, उतनी ही कमजोर और रोगी होंगी और उतनी ही कम चिन्ता, देख-भाल और शिक्षा का प्रबन्ध माता-पिता उनके लिए कर सकेंगे। हम सब जानते हैं कि भारत-वासियों की औसत आय प्रतिमास बहुत कम है। जिनकी आय १००) मासिक है, उनके लिए भी दो-तीन बालकों की शिक्षा-दीक्षा तथा जालन-पालन का भार सँभालना असम्भव हो जाता है। सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ जीवन को और भी कठिन बना देती हैं।

इसके अतिरिक्त हमें माता का भी विचार करना है। जिस प्रकार के कुटुम्बों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनमें माता को यथेष्ट पौष्टिक भोजन आदि का मिलना कठिन होता है, फिर निर्धन किसान और मजदूरों के घरों का तो कहना ही क्या? बार-बार सन्तान उत्पन्न करने से वे नितान्त शिथिल और जीवन-रहित हो जाती हैं। अपने पति की इच्छा पूरी करते हुए बार-बार गर्भ धारण करना मृत्यु का आवाहन करना है। पति की आज्ञा का पालन न करना भी सम्भव नहीं। ऐसी स्त्रियाँ स्वयं तो मृत्यु का शिकार होती ही हैं, साथ ही

ऐसे बालकों को जन्म देती हैं, जो शीघ्र ही काल के गाल में चले जाते हैं। इसी कारण शिशुओं की मृत्यु-संख्या इतनी बढ़ी हुई है। बम्बई में यह संख्या २८९ प्रति-सहस्र, कलकत्ता में ३०६, कानपुर में ४६१ और पूना में ८२७ है। सम्पूर्ण भारत का औसत १९० प्रति सहस्र होता है। इन सब बातों को रोकने का उपाय सन्तति-निग्रह ही है। इसी के द्वारा गरीब देश अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या को कम कर सकते हैं और अपने बालकों को स्वस्थ, सुन्दर तथा सुशिक्षित बना सकते हैं। ये केवल कोरी बातें नहीं हैं। जिन देशों में इसका प्रचार है, वहाँ के अङ्गों से इस बात का प्रमाण मिलता है। हॉलैण्ड में सन्तति-निग्रह संस्थाओं का जन्म १८८५ में हुआ था। १९०१ में मृत्यु-संख्या १७ थी, सन् १९११ में यह संख्या १३.५० रह गई।

सन्तति-निग्रह की आवश्यकता दो अन्य अवस्थाओं में भी होती है। जो माता यक्ष्मा, हृद्रोग आदि रोगों से पीड़ित हैं, उनके जीवन सन्तानोत्पत्ति से सदा ख़तरों में रहते हैं। जो व्यक्ति मानसिक रोगों से पीड़ित हैं, उन्हें सन्तान कभी भी उत्पन्न न करनी चाहिए, क्योंकि उनकी सन्तान को भी वही रोग जलेगा और इस प्रकार वे राष्ट्र के ऊपर एक और भार बढ़ाएँगे। इस प्रकार के व्यक्तियों को सन्तानोत्पत्ति से सदा बचना चाहिए।

सन्तति-निग्रह के सिद्धान्तों का विरोध जगभर सभी देशों में अब भी किया जाता है। फ़्रान्स, इटली तथा अमेरिका के कुछ राज्यों में अब भी सन्तति-निग्रह के सिद्धान्तों का प्रचार करना तथा उसके साधनों का क्रय-विक्रय कानूनन नाजायज़ है।

सन्तति-निग्रह के विरोधी सबसे पहले धर्म की दुहाई देते हैं। वे इसे अस्वाभाविक तथा अधार्मिक कहते हैं। भारतवर्ष में तो लोग कह देते हैं कि 'जितनी सन्तान भाग्य में लिखी है, उतनी ही होगी, चाहे कितना ही प्रयत्न उसे रोकने का करें।' विदेशों में रोमन कैथलिक चर्च के अनुयायी अधिकांश में इसके विरोधी हैं। बात यह है कि इस प्रकार के व्यक्ति कभी भी किसी सुधार के पक्षपाती नहीं होते। प्रारम्भ में वे प्रत्येक नई बात को अस्वाभाविक तथा अधार्मिक कह कर उसका विरोध करते हैं।



दूसरी आपत्ति यह है कि इस प्रकार उस देश की जन-संख्या घटेगी, जहाँ इसका प्रचार है, और अन्य देश उस पर आक्रमण करके पराजित कर देंगे। खासकर यूरोप और अमेरिका में इस बात का डर दिखाया जाता है। विरोधी जन वहाँ कहते हैं—‘सन्तति-निग्रह का प्रचार कालों और गैर-ईसाई मत वालों में बहुत कम है, इसलिए उनकी संख्या बढ़ेगी। गोरे ईसाई इसके प्रचार के कारण संख्या में कम हो जायेंगे और इस प्रकार एक दिन उन्हें काले गैर-ईसाइयों की दासता स्वीकार करनी पड़ेगी।’ पाठक समझ सकते हैं कि ये दलीलें कितनी निस्सार और थोथी हैं।

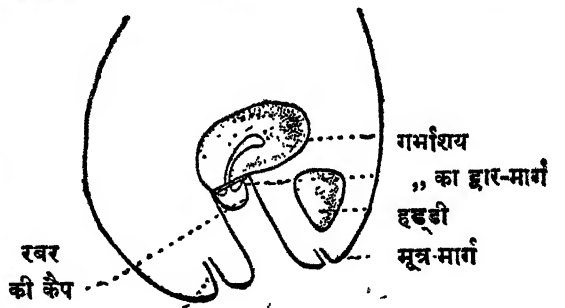
एक वास्तविक और आवश्यक आपत्ति यह है कि यदि अप्राकृतिक उपायों का प्रचार हो जायगा, तो संसार में अवैध विषय-भोग का बाज़ार गर्म हो जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। कुछ व्यक्ति इस प्रकार का कृत्य करने से इसलिये डरते हैं कि उनके पाप का प्रत्यक्ष फल समाज के सामने आ जायगा। जब उन्हें यह शङ्का न रहेगी, तो इन साधनों द्वारा वे पाप-कर्म करने के लिए अधिक आकर्षित होंगे। यह ठीक होते हुए भी, दो बातें हमें न भूल जाना चाहिए। एक तो यह है कि बिना इन साधनों के प्रचार के भी संसार में काफ़ी व्यभिचार होता है। उसके फल को अन्य साधनों द्वारा नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। अशुभ-हत्या इस प्रकार के साधनों में अधिक भयङ्कर है, परन्तु उसका बाज़ार चारों ओर गर्म है। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं कि इस प्रकार के कर्मों में एक साथ बाढ़ आ जाय। यदि कुछ बुद्धि होगी भी तो वह इतनी हानिकर न होगी, जितना सन्तति-निग्रह की प्रथा का अभाव है। उसके द्वारा हमें जो लाभ होंगे, उनके सामने वह हानि कुछ भी न होगी। प्रत्येक सिद्धान्त के मानने से हानि और लाभ दोनों की सम्भावना होती है। हमें उसी सिद्धान्त को अपनाना चाहिए, जिससे लाभ अधिक हो और हानि कम।

सन्तति-निग्रह के साधन अनेक हैं। उनमें से सर्व-श्रेष्ठ और आदर्श है ‘इन्द्रिय-निग्रह।’ जो स्त्री-पुरुष इस अमोघ अस्त्र का प्रयोग सरलता से कर सकते हैं, उनके लिए कोई कठिनाई नहीं। परन्तु आदर्श, आखिर एक आदर्श ही है और उसका पालन करना सबके लिए सम्भव नहीं है। जो इस आदर्श को निभा सकते हैं,

उनके लिए तो वास्तव में सन्तति-निग्रह का प्रबल कुछ भी अर्थ नहीं रखता, क्योंकि वे कभी अधिक सन्तान उत्पन्न करेंगे ही नहीं।

इसकी आवश्यकता तो उन्हीं के लिए है, जो ऐसा नहीं कर सकते। और ऐसे व्यक्तियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। जो यह कहते हैं कि ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-दमन प्रत्येक के लिए सम्भव है, वे शायद जन-समाज के मनो-विज्ञान को नहीं समझते, या उनमें सम्भव से अधिक विश्वास करते हैं। इस बात के सत्य का एक साधारण प्रमाण यह है। आजकल अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करना चाहते, साथ ही वे कृत्रिम उपायों के विरोधी हैं। वे इन्द्रिय-दमन के सिद्धान्त का अनुसरण कर सकते हैं, परन्तु सभी सन्तान उत्पन्न करते जा रहे हैं। इन बातों का कहना बहुत सरल है, करना कठिन है। मनुष्य-स्वभाव को परिवर्तित किया जा सकता है; परन्तु उसको निर्मूल नहीं किया जा सकता। ऐसे व्यक्तियों को अपना अर्थ पूरा करने के लिए कृत्रिम उपायों की सहायता लेनी पड़ती है। कुछ आवश्यक कृत्रिम उपायों का यहाँ वर्णन किया जाता है। परन्तु इसके पूर्व दो शब्द सम्भोग तथा उसके फल के विषय में कह देना उचित होगा।

पुरुष का वीर्य अण्डकोषों में स्थित दो गाँठों (Testicles) में बनता है। वहाँ से वह वीर्य-नजिका द्वारा मूत्रेन्द्रिय में होता हुआ बाहर निकल आता है। उसमें लाखों छोटे-छोटे वीर्य-कीटाण (Spermatozoa) होते हैं। ये कीटाण पुरुष के वीर्य में सन्तानोत्पत्ति के



गुदा-मार्ग (Rectum) लिए आवश्यक होते हैं। इसी प्रकार स्त्री के शरीर में दो रजपिण्ड होते हैं। इन रजपिण्डों में स्त्री के रज-



कीटाणुओं का जन्म होता है। स्त्री की गुप्तेन्द्रिय का कुछ ज्ञान साथ के चित्र से हो जायगा। बाहर गुह्य-मार्ग के आगे स्त्री की बाह्य इन्द्रिय होती है। इसमें दो मार्ग होते हैं। ऊपर का मूत्र-मार्ग कहलाता है और नीचे का योनि मार्ग (Vagina)। योनि मार्ग के भीतर गर्भाशय है, जिसका द्वार योनि मार्ग में खुलता है। गर्भाशय के ऊपरी भाग में से दो नलियाँ निकलती हैं। उन्हें रज-नलियाँ (Fallopian Tubes) कहते हैं। जिस समय स्त्री-पुरुष का संयोग होता है, उस समय स्त्री के योनि मार्ग में पुरुष का वीर्य स्थलित होता है। वीर्य के कीटाणु गर्भाशय के द्वार मार्ग में होकर गर्भाशय में पहुँचते हैं। वहाँ से वे रज-नलिका में पहुँचते हैं। वहाँ रज-कीटाणु पहले से ही विद्यमान होते हैं। दोनों के सम्मेलन का फल गर्भस्थिति होती है। इसे रोकने के लिए जो उपाय भी काम में लाया जाय, उसमें यह शक्ति हो कि वीर्य-कीटाणु गर्भाशय के भीतर न पहुँच सकें। यह तभी हो सकता है जब या तो कीटाणुओं को नष्ट कर दिया जाय, या उन्हें किसी प्रकार गर्भाशय में न जाने दिया जाय।

खाने की औषधियाँ

आयुर्वेद-शास्त्र के कई ग्रन्थों में लिखा है कि अमुक औषधि खा लेने पर गर्भ नहीं रह सकता। आजकल समाचार-पत्रों में भी अनेक विज्ञापन इसी प्रकार की औषधियों के विषय में छपते हैं। मैं पाठकों के सामने यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कोई भी ऐसी औषधि नहीं है, जिसके खाने से स्त्रियों को गर्भ-धारण से मुक्ति मिल सके। अनेक इस प्रकार की औषधियों की वैज्ञानिक रीति से खोज हो चुकी है और वे औषधियाँ निष्फल सिद्ध हो चुकी हैं। पाठकों को आजकल के विज्ञापनों पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे सब ठगी के जाल हैं। उनमें कोई भी तत्व नहीं।

श्वास आदि की क्रियाएँ

कुछ पुस्तकों में बतलाया गया है कि अमुक समय अथवा अवस्था में सहवास करने से गर्भ नहीं रह सकता अथवा यदि अमुक नासिका-द्वार से श्वास लिया जाय तो इससे मुक्ति मिलती है। परन्तु ये सब कपोल-कल्पित कथाएँ हैं। इनमें कोई सार नहीं। कुछ स्त्रियों का यह

विश्वास होता है कि जब तक बच्चा दूध पीता रहता है अथवा प्रसव के बाद जब तक मासिकधर्म बन्द रहता है, तब तक सहवास किसी भी ढर के बिना किया जा सकता है। यह उनकी भूल है। बच्चे को दूध पिलाने से इस पर थोड़ा प्रभाव पड़ता है, अधिक नहीं। ऐसी सैकड़ों स्त्रियाँ हैं, जो पहले बालक के तीन-चार मास का होते ही गर्भवती हो जाती हैं।

मासिकधर्म और गर्भ-धारण के सम्बन्ध के विषय में भी बड़ी भ्रान्ति फैली हुई है। यह ठीक है कि मासिकधर्म होने के कुछ दिनों बाद तक गर्भ-धारण की आशङ्का अधिक रहती है और फिर कम होती जाती है। यह सब कुछ होने पर भी यह याद रखना अच्छा है कि किसी समय भी सहवास करने से गर्भाधान हो सकता है। वीर्य-कीटाणु कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं।

फ़्रेश्व लेटर या लेदर

यह रबर का खोज होता है, जो पुरुषेन्द्रिय पर चढ़ाया जाता है। सहवास के समय वीर्य इसी में स्थलित होता है और इस प्रकार कीटाणु स्त्री के गर्भाशय में नहीं जा पाते। यह उपाय है अच्छा, परन्तु इसमें कई आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि कभी-कभी सहवास के समय यह फट जाता है और वीर्य स्त्री के योनिमार्ग में पहुँच जाता है। यदि एक बार भी ऐसा हो जाय, तो गर्भ रह जाने की आशङ्का रहती है। दूसरी आपत्ति यह है कि इसके प्रयोग से सहवास का सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता और इस प्रकार स्त्री-पुरुष के ज्ञान-तन्तुओं को हानि पहुँचती है। तीसरी आपत्ति यह है कि वीर्य के जो पौष्टिक पदार्थ साधारणतया स्त्री के रक्त में मिल कर उसे लाभ पहुँचाते हैं, वे सब इसके कारण व्यर्थ हो जाते हैं। परन्तु नवविवाहिताओं के लिए यही उत्तम साधन है।

रबर-कैप या पैसरी (Check Pessary or Occlusive Cap)

यह उपाय सबसे अच्छा है। इसके द्वारा गर्भाशय के द्वार पर परदा डाल दिया जाता है, जिससे वीर्य-कीटाणु भीतर प्रवेश नहीं कर पाते। सम्भोग के सुख में इस प्रकार बाधा नहीं पड़ती और वीर्य भी व्यर्थ ही नहीं जाता। इसका प्रयोग हमारे देश में अधिक नहीं किया जाता। उसका पहना कारण तो यह है कि स्त्री



की गुप्तेन्द्रियों का ज्ञान बहुत कम व्यक्तियों को है। दूसरा कारण यह है कि बहुतेरी स्त्रियाँ कैप का व्यवहार करने से इनकार कर देती हैं।

यह कैप कई पदार्थों की बनाई जाती है, जैसे धातुएँ, सैल्यूलोइड तथा रबर। रबर की कैप का



रबर-कैप

ही प्रयोग अधिक किया जाता है। इसका किनारा कई प्रकार का होता है। किसी में स्प्रिङ्ग लगी रहती है, किसी में हवा भरी रहती है, कोई ठोस होता है। ठोस किनारे वाली कैप अच्छी होती है। इसके तीन नम्बर होते हैं—नम्बर १—छोटे कूद की स्त्रियों के लिए, तथा उनके लिए, जो माता नहीं हैं। नम्बर २—साधारण स्त्रियों के लिए। नम्बर ३—उन स्त्रियों के लिए, जिनका कूद बहुत बड़ा है अथवा जो कई बालकों को जन्म दे चुकी हैं। एक कैप छः महीने से दो वर्ष तक काम दे सकती है। इङ्गलैण्ड की बनी हुई रेशियल, प्रोरेस आदि कैप अच्छी होती हैं; इनका मूल्य २) और ३) के बीच में होता है। जर्मनी की बनी हुई कैप भी अच्छी होती हैं और सस्ती भी होती हैं। 'मीरा' नामक कैप ठाकोर कम्पनी, चर्चगेट, बम्बई से १) और ११) में मिल सकती है।

कैप को स्त्रियाँ स्वयं ही चढ़ा सकती हैं। पहली बार लेडी डॉक्टर से परीक्षा कराके चढ़ाने का तरीका मालूम कर लेना अच्छा है। निम्न-लिखित बातें इस सम्बन्ध में उपयोगी सिद्ध होंगी :—

१—कैप का नम्बर ठीक होना चाहिए। जो पहले नम्बर १ का प्रयोग करती रही हैं, उन्हें बालक उत्पन्न होने के बाद नम्बर २ का प्रयोग करना चाहिए।

२—मासिकधर्म के समय तथा प्रदर आदि रोगों में इस कैप का प्रयोग वर्जित है।

३—प्रयोग से पहले कैप को साबुन के पानी में डुबाएँ। स्त्री या तो लेट कर अपनी टाँगों को ऊपर खींच या तलवों के बल बैठ जाय। कैप के किनारों को उँगलियों से पकड़ कर भीतर ले जाय और गर्भाशय के मुख पर चढ़ा ले। कैप वहाँ पहुँच कर आप ही आप फिट हो जाती है।

४—किनारे पर एक रेशम का फीता बँधा रहता है। यह उतारते समय खींचने के लिए है। परन्तु इसकी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती और इसको निकाल डालना ही अच्छा है।

५—कैप सहवास के बाद कम से कम १६ घण्टे अन्दर ज़रूर रहे। अधिक से अधिक कुल ४८ घण्टे कैप अन्दर रखनी चाहिए। इसके बाद अवश्य ही निकाल लेनी चाहिए। कैप के अन्दर रखने से किसी बात का कष्ट नहीं होता, इससे उसके अन्दर छोड़ रखने की अधिक सम्भावना रहती है।

६—निकालते समय उसी प्रकार बैठ कर उँगलियों से उसे बाहर निकालना चाहिए और फिर गर्म पानी और साबुन से धोना चाहिए। उसके बाद उसे बोरिक या कारबोलिक लोशन में रखना अच्छा है। यदि शीघ्र आवश्यकता हो तो सुखा कर रखना अधिक लाभप्रद है। यदि उसमें छेद हो जाय या कहीं दूरार पड़ जायें तो दूसरी कैप मँगाना ही श्रेयस्कर होगा।

७—जिन्हें सन्देह हो कि कैप ठीक नहीं चढ़ती, वे उस पर चढ़ाने से पहले किनीन, चिनोसोल आदि का मरहम लगा सकते हैं, परन्तु इस प्रकार व्यय अधिक बढ़ जाता है। निकालते समय दूध (Douché) लेना अर्थात् योनि-मार्ग को पानी से धो डालना भी अच्छा है।

जिन्हें गर्भाशय के रोग के कारण लेडी डॉक्टर कैप का प्रयोग करना असम्भव बताती हैं, वे दूसरी प्रकार की कैप का प्रयोग कर सकती हैं। इसे 'डच पैसरी' (Dutch Pessary) कहते हैं। यह पैसरी गर्भाशय



के मुख पर नहीं चढ़ाई जाती। यह योनि-मार्ग के उस भाग को बन्द कर देती है, जो गर्भाशय के मुख के पास होता है। इसमें कई दोष हैं, इसीसे प्रत्येक के लिए इसका प्रयोग ठीक नहीं।

कपड़े की डाट (Plug)

जो स्त्रियाँ निर्धन हैं या कैप का प्रयोग करना नहीं जानतीं, उनके लिए एक बहुत ही सरल उपाय है, यद्यपि वह ख़तरे से ख़ाली नहीं है। एक स्वच्छ कपड़े का टुकड़ा लेकर गर्म पानी में भिगोना चाहिए। फिर उस पर औलिव ऑयल, आधा सिरका और आधा पानी मिला कर, अथवा फिटकरी का पानी ढालना चाहिए। उस कपड़े को योनि-मार्ग में डाट की तरह लगा देना चाहिए। कपड़ा इतना अधिक न हो कि सारा मार्ग ही उससे भर जाय। रबर आदि के स्पंज भी यही काम देते हैं।

योनि-मार्ग में रखने की औषधियाँ

यह कहा जा चुका है कि यदि किसी प्रकार वीर्य के कीटाणु योनि-मार्ग में पहुँचते ही नष्ट कर दिए जायँ, तो गर्भ का भय नहीं रहता। इसके लिए कई प्रकार की औषधियाँ (Suppositories, jellies and pills)

का आविष्कार हुआ है, जो कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। इनमें से लैक्टिक एसिड जैली, प्रोसेस्डोस बर्थ-कन्ट्रोल टेबलेट्स, क्विनीन या चिनोसोल सपोज़िटरी, कोन्ट्रासेप्टे-लीन, पेटेन्टेक्स, स्पेटोनेक्स, आदि के नाम प्रमुख हैं। नवविवाहिताओं को इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे कष्ट अधिक होता है।

ऑपरेशन (Sterilisation)

सबसे अधिक विश्वसनीय उपाय ऑपरेशन है, परन्तु यह उन्हीं के लिए योग्य है, जिन्हें जीवन भर सन्तान उत्पन्न करने की अभिलाषा नहीं है। जो कुछ समय के लिए ही सन्तानोत्पत्ति रोकना चाहते हैं, उनके काम का यह उपाय नहीं। यह ऑपरेशन डॉक्टरों की सलाह से ही हो सकता है। सबसे अच्छी विधि वह है, जिसमें दोनों ओर की रज-नलियाँ काट कर बन्द कर दी जाती हैं। इस प्रकार रजपिण्ड रज को बनाते हैं, परन्तु नलियाँ न होने के कारण रज-कीटाणु गर्भाशय में आए हुए वीर्य-कीटाणुओं से नहीं मिल सकते।

संक्षेप में यह सन्तति-निग्रह का विषय है। समाज और राष्ट्र का कल्याण चाहने वालों को अवश्य इसे अपनाना चाहिए।

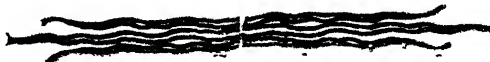
अश्रु-विन्दु

[एक व्यथिता]

मोती से अनमोल !
प्रेम पूर्ण अति पुलकित तन से,
मञ्जुल अमित मोदमय मन से,
निर्मल नवल नलिन नयनन से,

निकल-निकल ये अश्रुबुन्द !
इतिहास हृदय का देते खोल !!

पीकर पूर्ण प्रेम-पय-प्याला,
विधुर-वियोग बिलखती बाला,
निज जीवन-निधि से चुन-चुन कर,
स्नेह-सूत्र में तुझे पिरो कर,
प्रियतम हित रचती है माला !
एक प्रियतमा का जीवन ही जाने तेरा मोल !!
मोती से अनमोल !!



कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

दृश्य-प्रयोग

“ The function of the setting is to furnish in the best possible way for any given story, the conditions of time, place and characters which shall make that story possible and actual.”

—E. M. ALBRIGHT.

उपर्युक्त कथन द्वारा कहानी में दृश्य की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। दृश्य के प्रयोग का उद्देश्य यही है कि उसके द्वारा पाठक के हृदय पर समय, स्थान और पात्रों का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाय, जिससे वे पाठक को इसी जगत् के मालूम पड़ें; अलौकिक नहीं। परन्तु दृश्य का अत्यधिक प्रयोग वातावरण के प्रभाव को उत्पन्न करता है। ऐसे ही दृश्यों से कहानी में लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि होती है।

दृश्य का प्रयोग कथानक रचना में भी किया जाता है। क्योंकि उसके द्वारा कथानक की गति में परिवर्तन करने में सहायता मिलती है। इसके साथ ही साथ चरित्र-विकास में भी सहायता मिलती है। कभी-कभी दृश्य का प्रयोग कहानी के प्रधान-भाव के साथ उसका विरोध या सामञ्जस्य दर्शाने के लिए भी होता है। यहाँ यह उल्लेख कर देना असंभव न होगा कि कहानी अपनी अनूठी स्थिति के मनोरम चित्र द्वारा हमारे हृदय पर अपना प्रभाव डालती है।

वस्तुतः प्राकृतिक दृश्य इस मनोरम चित्र के लिए एक प्रकार से रङ्गस्थली का काम देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कहानी में दृश्य का प्रयोग अनेक रूप में किया जाता है। कहानी को रूप-सौष्ठव, सौन्दर्य, सजीवता, वास्तविकता, उद्देश्य और गम्भीरता प्रदान करने में दृश्य का कार्य बड़ा उपयोगी है। चाहे दृश्य पाठक को उन घटनाओं का निदर्शन करावे, जिसके द्वारा

कथानक का विकास सम्भव हो सके, चाहे वह पाठक को इस दृश्यमान् जगत् और इस युग से भिन्न किसी अलौकिक युग या जगत् में ले जावे, चाहे वह उसे अलौकिक जीवन का दृश्य दिखला कर अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि कर दे, चाहे वह कहानी में, सुकुमार, कोमल और सौम्य सौन्दर्य की रचना करे, चाहे वह कहानी के 'भाव' की ओर निर्देश करे या किसी दशा की अभिव्यक्ति करे और चाहे वह पात्रों को यथार्थ वातावरण में रख कर उन्हें मानवता प्रदान करे; परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि दृश्य वही सफल कहला सकेगा, जिसके आधार में कहानी का कोई विशेष 'भाव' या 'उद्देश्य' काम कर रहा हो।

हिन्दी-कहानी-साहित्य में दृश्य का प्रयोग बहुत ही न्यून है। कहानी-लेखकों की यह उदासीनता श्रेयस्कर नहीं है। हमने कतिपय कहानियों में दृश्य का प्रयोग बड़े उत्कृष्ट रूप में देखा है। श्रीयुत जयशङ्कर 'प्रसाद' की कहानियों में दृश्य का प्रयोग अतीव मनोहारी है। 'सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया!' 'स्वर्ग के खण्डहर में,' 'बिसाती,' 'जय या पराजय,' 'परदेशी,' 'कानों में कड़ना,' 'जूटा आम' और 'कल्पना' में दृश्य की नयनाभिराम प्रदर्शनी दर्शनीय है। अब हम संक्षेप में यह निर्देश कर देना चाहते हैं कि कहाँ किस उद्देश्य से दृश्य का प्रयोग किया जाता है।

१—'सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया!' कहानी में दृश्य का प्रयोग पात्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से किया गया है। यथा :—

“रात बहुत अँधेरी थी। रास्ता पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ था। आकाश पर बड़की चूड़ हुई थी, और अभी कुछ देर पूर्व जोर की वर्षा हो चुकी थी। जब जोर की हवा से वृक्ष और बड़ी-बड़ी घास साँस-साँस करती थी, तब जङ्गल का सञ्जाटा और भी भयानक मालूम होता था।



उस समय उस जङ्गल में दो घुड़सवार बड़े चले जा रहे थे। दोनों के घोड़े खूब मज़बूत थे, पर वे पसीने से लतपत थे। घोड़े पग-पग पर ठोकरें खाते थे। पर उन्हें ऐसे बीहड़ रास्तों में, ऐसे सङ्कट के समय, अपने स्वामी को ले जाने का अभ्यास था। सवार भी असाधारण धैर्यवान् और वीर पुरुष थे। वे चुपचाप चल रहे थे। घोड़े की टाँपें और उनकी प्रगति से कभी न लटकती हुई उनकी तलवारों और बरछों की खरखराहट उस सज़ाटे के आलम में एक भयपूर्ण रव उत्पन्न करती थी।”

—चतुरसेन शास्त्री

२—‘स्वर्ग के खण्डहर में’ कहानी में स्वर्ग का ऐसा भव्य वर्णन किया गया है कि पाठक का हृदय बरबस उसकी अनुभूति के लिए लालायित होने लगता है। इस कहानी में इदय के प्रयोग का उद्देश्य है, इस इदय-मान् जगत और युग से भिन्न अलौकिक जगत एवं युग के दर्शन कराना। इसी के साथ ही साथ इदय और कहानी के विषय में सामञ्जस्य का बड़ा सुन्दर निर्वाह किया गया है।

“वन्य कुसुमों की भाँवरें सुख-शीतल पवन से विकम्पित होकर चारों ओर भूम रही थीं। जता-वितानों से ढकी हुई प्राकृतिक गुफाएँ शिल्प-रचनापूर्ण सुन्दर प्रकोष्ठ बनातीं, जिनमें पागल कर देने वाली सुगन्ध की लहरें नृत्य करती थीं। स्थान-स्थान पर कुँजों और पुष्प-शय्याओं का समारोह, छोटे-छोटे विश्राम-गृह, पान-पात्रों में सुगन्धित मदिरा, भाँति-भाँति के सुस्वादु फल-फूल वाले घुँचों के झुरमुट, दूध और मधु की नहरों के किनारे, गुलाबी बादलों का छत्रिक विश्राम। चाँदनी का निभृत रङ्गमञ्च, पुनक्ति वृक्ष, फूँजों पर मधु-मक्खियों की भ्रमाहट, रह-रह कर पक्षियों के हृदय में चुभने वाली तानें। मणि-दीपों पर लटकती हुई सुकुलित मालाएँ। उस पर सौन्दर्य के छटे हुए जोड़े। रूपवान् बाजक और बालिकाओं का हृदयहारी हास-विहास! सङ्गीत की अवाध-गति में छोटी-छोटी नावों पर उनका जल विहास! किसकी भाँखें यह सब देख कर भी नशे में न हो जाएँगी, हृदय पागल, इन्द्रियाँ विकल न हो रहेंगी? यही तो स्वर्ग है!”

—जयशङ्कर ‘प्रसाद’

३—‘जय या पराजय’ कहानी में इदय का प्रयोग सौन्दर्य की सृष्टि करने के उद्देश्य से किया गया है। श्रीनगर का इदय तो प्रकृति की नाट्यशाला है!

“सौन्दर्यमयी श्रीनगर नगरी अमरावती के समान विभव से चमक रही थी! नगर की विशाल अट्टालिकाएँ लाल, पीले और सुनहरे काम से सजाई गई थीं। नदी के दोनों तट बिजली की छटा से जगमगा रहे थे! बड़ा लुभावना इदय था! भेजम के दोनों किनारों पर बजड़ों की कृतारें लग रही थीं। सुन्दर काश्मीरी लोगों के ठठ लग रहे थे! चुत्तुल हसीन काश्मीरनें अपने-अपने राजकुमार जैसे बालकों की डँगली पकड़े चकित हरिणी-सी खड़ी थीं।

बड़ा नयनाभिराम इदय था! हिमांशु अपनी शीतल ज्योत्स्ना द्वारा इदय की मनोहरता को शतशः द्विगुण कर रहा था! उतावली लहरें चन्द्र-चुम्बन के लिए मतवाली हो, आकाश को छूने का मन्सूबा बाँध रही थीं। अगणित तारे सुविशाल नील वितान में छिटके हुए जवाहरों की तरह दमक रहे थे—दर्शक का मन मोह जाता था।”

—शिवनारायण टण्डन

यथार्थवाद

“एक विशेष श्रेणी के साहित्य-सेवी ऐसे भी हैं, जो लोक-कल्याण या रचना-कला की दृष्टि से जो बात जैसी है उसका वैसा ही चित्र खींचना आवश्यक समझते हैं। इसे वे प्रकृतिवाद (Realism) के नाम से पुकारते हैं। अपनी शैली के कलापूर्ण होने के प्रमाण में वे पाश्चात्य देशों के धुरन्धर साहित्यिकों के नाम पेश करते हैं। फ्रान्सीसी कहानी-लेखक मोपाँसा का नाम इस सम्बन्ध में बहुत लिया जाता है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि प्रकृतिवाद के सम्बन्ध में कुछ अमालूमक धारणाएँ प्रचलित हो गई हैं। फ्रान्स के प्रसिद्ध साहित्य-सेवी अनातोले भी प्रकृतिवादी थे। उनका यही कथन था कि किसी घटना का तद्वत् चित्र खींचने के लिए या किसी मनोभाव को तद्वत् प्रदर्शित करने के लिए नेत्र और हृदय खोल कर उस प्रकार की घटनाओं या भावों में या उसके अत्यन्त निकट होकर, निकलने की आवश्यकता होती है। बहुधा होता यह है कि लेखक के



मस्तिष्क में जो कलुषित भाव ऊपर ही रखे होते हैं, प्रकृतिवाद की आड़ में उन्हीं का अपनी कृति में प्रदर्शन कर दिया करते हैं।”*

—स्वर्गीय गणेशशङ्कर विद्यार्थी

उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है। हमारे इस प्रकरण का उद्देश्य इसकी पुष्टि करना है। अतः हम यथार्थवाद पर विशद रूप से प्रकाश डालेंगे।

यथार्थवाद में जो तथ्य है, उसका स्वीकार तथा जो निस्तार है उसका त्याग साहित्य के लिए उपादेय है। विद्यार्थी जी यथार्थवाद के विरोधी नहीं हैं; परन्तु यथार्थवाद के नाम पर जिन ‘कलुषित भावों’ की अभिव्यक्ति की जाती है, वह त्याज्य है।

अन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर भाग में गोतिए (Theophtule Gautier) ने फ्रेञ्च साहित्य में एक युगान्तरकारी सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया। यद्यपि वह अपने को रोमाण्टिक कहता था, तो भी उसमें रियलिज्म की प्रवृत्ति या निरपेक्ष अनुकरण की प्रवृत्ति प्रबल थी। इसी कारण गोतिए को ही यथार्थवाद (Realism) का जन्मदाता माना जाता है। उसने दो बातों पर विशेष ध्यान दिया था; रचना का रूप और उसका विषय मनोहर हो तथा रचना में पूर्ण सङ्गीत रहे। उपन्यास के पात्र सोलहो आने सत्य जीव हों, जिन्हें रात-दिन हम देखते हों। इस दृष्टि से उपन्यास-लेखक के विचार, उसके तथा बहुधा उसकी मौज का संग्रह नहीं, किन्तु आत्मा का दर्पण और प्रकृत जीवन का चित्र होगा। परन्तु यथार्थवाद को पूर्ण विकसित करने में गोंकूर-बन्धु, एमिलज़ोला और आल्फ्रैड दोदे ने विशेष योग दिया। गोंकूर-बन्धु उपन्यास में संसार का यथार्थ चित्र खींचना चाहते थे। अपने प्रसिद्ध उपन्यास ‘Germinie Lacerteux’ में इन्होंने अपना यथार्थवाद सम्बन्धी मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है :—

“जनता झूठे उपन्यास चाहती है, किन्तु यह उपन्यास सच्चा है। जनता ऐसी पुस्तकें पसन्द करती है, जो ऐसा आभास देती हैं कि वे कहीं बाहर से इस संसार में

फेंकी गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक संसार में उरपन्न हुई है। वह यह आशा नहीं करती कि उसके सामने छिन्न-विच्छिन्न चित्र रखे जायें। यह गवेषणा प्रेम के चीड़-फाड़ का दृश्य है।”

इस प्रकार गोंकूर-बन्धुओं ने प्रमाणित किया कि ‘उपन्यास जीवन का चित्र नहीं, स्वयं जीवन है।’ यथार्थ अनुकरण की प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि गोंकूर-बन्धुओं ने अशिष्ट और गँवार लोगों को, अपने उपन्यासों में, पात्रों का स्थान देने का प्रयास किया। यथार्थवाद का विकास यहीं नहीं रुक गया, आगे चल कर ऐमिल ज़ोला ने प्रकृतिवाद (Naturalism) को जन्म देकर यथार्थवाद को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। आजकल जिस प्रकार जर्मनी में नङ्गा-पन्थ (Nude Sect) प्रकृति के अनुकरण में जीवन की सार्थकता समझ रहा है, उसी प्रकार साहित्य में प्रकृतिवादी घृणित, नीच, अपवित्र, अश्लील के चित्रण में कला की सार्थकता समझ रहे हैं। प्रकृतिवादी ज़ोला (Emile Zola), जिसने प्रकृतिवाद को जन्म दिया था, की साहित्यिक रचनाओं का फ्रान्स में घोर प्रतिवाद किया गया—निन्दा की गई।

‘जब सन् १८६८ ई० में ज़ोला ने ‘टैरैज़ राक्वॉ’ नामक उपन्यास प्रकाशित किया, तो इसकी बढ़ी निन्दा हुई। इसकी गणना गन्दे, सड़े साहित्य में की गई।”*

विज्ञ पाठक इससे अनुमान कर सकते हैं कि यथार्थवाद और प्रकृतिवाद की अपनी जन्मभूमि में कितनी दुर्दशा हुई—कैसा बहिष्कार हुआ। परन्तु बड़ा खेद और आश्चर्य है कि हिन्दी-साहित्य में इन तिरस्कृत ‘वादों’ का स्वागत किया जाता है! इसे भाग्य का फेर कहें या लेखकों की रुचि का पतन! एक स्थान पर ज़ोला ने प्रकृतिवाद की पाशाविक प्रवृत्ति को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।

ज़ोला लिखता है—“मुझे केवल एक इच्छा थी; यदि एक मनुष्य स्वस्थ और हट्ट-कट्टा है और एक स्त्री अतृप्त-काम है, तो उनमें पशुत्व दूँदना, बस उनमें केवल पशुत्व दूँदना ही मेरा काम था।”

* स्वर्गीय विद्यार्थी जी के गोरखपुर के अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर समापति पद से दिए भाषण से।

* डॉक्टर हेमचन्द्र जी जोशी, डी० लिट्० जिल्लित ‘फ्रेञ्च साहित्य के गत सौ साल’ लेख देखिए।



क्या इससे बढ़ कर जघन्य रूचि की कल्पना कभी मानव-मस्तिष्क में उत्पन्न हुई है ! यह नैतिक पतन, नहीं-नहीं, मानवता के पतन की चरम सीमा है ।

अब हम संक्षेप में, फ़्रान्स के ख्यातनामा कलाविद् मोर्पोसा (Guy de Maupassant) की कला के विषय में विचार करना चाहते हैं । क्योंकि कुछ हिन्दी कहानी-लेखक उसे अपना आचार्य मानते हैं । हमारे उदीयमान कहानीकार अपने दोषों को स्वीकार करने के स्थान में उन्हें मोर्पोसा के नाम पर 'कला' नाम से प्रसिद्ध करते हैं । यह मानसिक-दासत्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । मोर्पोसा अन्य लेखकों के समान प्रकृतिवादी था । उसने अपनी पुस्तक 'Pierre and Jean' में कला के सम्बन्ध में अपने निजी विचार निम्न-प्रकार व्यक्त किए हैं :—

“पाठक कई तरह के हैं, और उनकी माँगों भी नाना प्रकार की हैं । किन्तु थोड़े से पाठक ऐसे हैं, जो कला-विधाता लेखक से कहते हैं—मुझे कोई सुन्दर चीज़ बना कर दो, उसका रूप तुम अपनी रूचि तथा स्वभाव के अनुसार गढ़ो । कला-निर्माता वह सुन्दर प्रतिमा गढ़ने की ओर चेष्टा करता है, कभी सफल होता है, कभी असफल । उस साहित्यिक मार्ग के बाद, जिसने हमें विकृत, अलौकिक, काव्यमय, कल्पापूर्ण, मनोहर, अत्यन्त सुन्दर स्वरूप देने की चेष्टा की है, अब नया मार्ग निकला है, जिसे प्रकृतिवाद या यथार्थवाद कहा जाता है । इसका दावा है कि यह हमें सत्य के दर्शन कराता है । यह सत्य है, विशुद्ध सत्य ; सम्पूर्ण सत्य ।”

मोर्पोसा के कथनानुसार कलाविद् आत्मानुभूति की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति नहीं करता । उसकी कला पाठक-वृन्द के स्वभाव एवं रूचि पर अवलम्बित रहती है । इस प्रकार कलाकार पाठक-वृन्द को नवीन सन्देश प्रदान करने के स्थान में उनकी रूचि के अनुकूल साहित्य की सृष्टि करता है । कलाकार एक प्रकार से, पाठक-वृन्द की प्रवृत्तियों का प्रकाशक ही हुआ । परन्तु मोर्पोसा का यह मन्तव्य सर्वथा सत्य नहीं है । संसार में जितने विद्व-विख्यात-साहित्यिक लेखक हुए हैं, उन्होंने लोकमत की अभिरूचि के परिष्कार के लिए, उसकी भावना के परिष्कार के लिए, साहित्य की रचना की है । फ़्रान्स के आधुनिक सर्वश्रेष्ठ कलाकार रोम्यो रोलाँ (Roman

Rolland) से फ़्रेञ्ज इतने चिढ़े हुए हैं कि वे उनकी रचनाओं का यथेष्ट सम्मान भी नहीं करते । रोम्यो रोलाँ फ़्रेञ्ज लोगों के इस दुर्ब्यवहार तथा हृदय-हीनता से तज़ आकर जिनेवा में निवास-स्थान बना कर रहने लगे हैं !! फ़्रेञ्ज लोगों के इस अद्भुत अमर्ष का कारण यही बतलाया जाता है कि रोम्यो रोलाँ फ़्रेञ्ज साहित्य कला और रूचि का शत्रु है । रोम्यो रोलाँ, वास्तव में, फ़्रेञ्ज साहित्य का शिरोमणि कलाविद् है ।

यह उन इवलन्त उदाहरणों में से एक जीता-जागता उदाहरण है, जो मोर्पोसा के उपर्युक्त मन्तव्य की सार-हीनता सिद्ध करने के लिए दिए जा सकते हैं । सत्य तो यह है कि मोर्पोसा का जन्म एक ऐसे देश में हुआ है, जहाँ की भूमि विलासिता, लम्पटता, व्यभिचार इत्यादि के लिए अत्यन्त उर्वरा है । ऐसी स्थिति में उसे 'प्रकृतिवाद' की स्वच्छन्द क्रीड़ा करने का अवसर हाथ लगा; ऐसे पाठक भी मिल गए, जिन्होंने उसकी 'कृतियों' में सर्वश्रेष्ठ कला का रूप देखा ।

मोर्पोसा ने जिस 'वाद' का समर्थन अपनी रचनाओं द्वारा किया है, वह 'यथार्थवाद' नहीं है और हम तो उसे 'प्रकृतिवाद' भी कहना उचित नहीं समझते । मोर्पोसा के 'वाद' के लिए कोई अच्छा भाव-व्यञ्जक शब्द न मिलने के कारण हम उसे साहित्यिक वाममार्गवाद ही कहेंगे । मोर्पोसा की 'मानव हृदय की कहानियों' नामक हिन्दी पुस्तक में फ़्रेञ्ज के 'तिरिया चरित' का बड़ा नम्र वर्णन है । पेरिस के दूषित वातावरण का, यूरोप की विलासप्रियता का, वहाँ की व्यभिचारिणी और पतित कामिनियों का बड़ी मोहक भाषा में चित्र खींचा गया है । एक स्थान पर मोर्पोसा नारी-प्रेम के सम्बन्ध में कहता है :—

“स्त्री का प्रेम तो विषय-वासना से भरा होता है, उसमें ईर्ष्या, सन्देह और बेचैनी के सिवा और कुछ नहीं होता ।”

वह एक स्त्री से कहलाता है :—

“मेरा तो यह विश्वास है कि वास्तविक प्रेम से मन चञ्चल हो जाता है, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों ही शिथिल पड़ जाती हैं । मस्तिष्क में बबराहट हो जाती है । वह केवल भयङ्कर कठोर ही नहीं, प्रत्यक्ष



दूषित, एवं दूषित भी है। वह तो एक प्रकार का राज-द्रोह है। मेरा अभिप्राय यह है कि प्रेम-पथाभिगामी होने पर न्याय-विरुद्ध आचरण करने पड़ते हैं, मातृ-स्नेह टूट जाता है, धार्मिक बन्धन एवं नियम तक भङ्ग हो जाते हैं। शान्तिप्रद, धार्मिक, भयहीन तथा सुगम प्रेम को कौन प्रेम कह सकता है ?”

मोपॉसा-मत का यह निष्कर्ष है !

हमने ‘यथार्थवाद’ और ‘प्रकृतिवाद’ पर विशद् रूप से विचार किया है; विशेषतः मोपॉसा की ‘कला’ पर प्रकाश डाला है। क्योंकि इन ‘वादों’ की उत्पत्ति फ्रान्स में हुई है। अतः प्रसङ्ग रूप से प्रेक्ष्य साहित्यिकों की कला के विषय में विवेचन किया गया है।

हम यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं कि हम मोपॉसा के ‘वाममार्गवाद’ के विरोधी हैं। मोपॉसा का ‘प्रकृतिवाद’ सच्चा प्रकृतिवाद नहीं है। उसके प्रकृतिवाद में संयम, मर्यादा, सदाचार और शील-सौन्दर्य के लिए स्थान नहीं है। उसमें केवल पाशविक वृत्तियों की सम्पुष्टि के साधन हैं—व्यभिचार, दुराचार और विलासिता। क्या प्रकृति हमें व्यभिचार, दुराचार और विलासिता की शिक्षा देती है ? हिन्दी के उदीयमान् कहानी-लेखक, जो मोपॉसा के अनुयायी हैं, भी ‘दिल्ली का दलाल’, ‘चाकलेट’ तथा ‘दिल्ली का व्यभिचार’ जैसी अश्लील पुस्तकों द्वारा हिन्दी-साहित्य और आर्य-संस्कृति को कलङ्क लगा रहे हैं। ऐसी कहानियाँ भी लिखी जाने लगी हैं, जिनमें पशुता का नम्र नृत्य दिखलाया जाता है। श्री० ऋषभचरण जैन ने ‘नरक के द्वार पर’ एक कहानी लिखी है। इस कहानी में आदि से अन्त तक केवल यही प्रदर्शित किया गया है कि दो युवक, जो रिश्ते में साले-बहनोई हैं, अपनी स्त्रियों के मैके चले जाने पर, किस प्रकार अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिए साधन जुटाते हैं—वेद्यागमन का आश्रय लेते हैं ! इस कहानी में जिन मनोविकारों का चित्रण किया गया है, वह जे० रस्किन के निम्न शब्दों को-पुष्ट करता है :—

“It is an expression of delight in the prolonged contemplation of a vile thing, and delight in that is an ‘unmannered,’ or ‘immoral’ quality. It is a ‘bad taste’

in the — profoundest sense—it is a taste of the devils.

—The Crown of Wila Olive.

श्री० ऋषभचरण जैन अपने एक पात्र से कहलाते हैं :—

“लोग कहते हैं, असली प्रेम शादी के कुछ दिन बाद तक रहता है। मैं इसके विरुद्ध हूँ। इन दिनों में जो खिंचाव होता है, उसमें कितनी पाशविकता होती है, और कितनी मनुष्यता, इस पर कोई विचार करे, तो जरूर मेरा हम-खुयाल हो जाय। मेरी बात है तो भद्दी, परन्तु सच है, इससे कहनी पड़ी। हाँ, तो मुझे जो यह जुदाई इतनी अधिक महसूस होती है, इसमें सब कारस्तानी पाशविकता की थी।”

×

×

×

‘जत बुरी है, मगर यह (वेद्यागमन) तो जत नहीं, मनबहलाव है।’

लेखक महोदय को इस ‘पाशविकता’ की अभिव्य-ज्जना के लिए न जाने कितनी बार, न जाने कितनी वेद्याओं के पास उनके निरीक्षण के लिए जाना पड़ा होगा। लेखक ने इन वेद्याओं के कलुषित जीवन के अध्ययन में जो सुखानुभव किया है, उसी की अभिव्य-ज्जना ‘नरक के द्वार में’ कर दी है ! जब लेखक यह स्वीकार करते हैं कि बात ‘भद्दी’ है, फिर चाहे सत्य ही क्यों न हो, तो फिर ‘भद्दी’ बात क्यों सुनाई जाय ? कला में केवल असुन्दर सत्य ही का समावेश नहीं होता, उसमें सत्य और सुन्दर का सामञ्जस्य होना अभि-प्रेत है।

यह हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि केवल सत्य की अभिव्यक्ति करना कला का उद्देश्य नहीं है ; जब तक सत्य सुन्दर न हो, तब तक वह मानव-हृदय को स्पर्श नहीं कर सकता। जब तक सत्य आनन्दमय न हो तब तक वह मानव को अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान नहीं कर सकता। ऐसे अनेक ‘सत्य’ हैं, जिन्हें हम और आप अनुभव करते हैं ; परन्तु वे असुन्दर और अशिव होने के कारण अभिव्यक्त करने योग्य नहीं हैं। ‘कला का प्रधान गुण सुन्दर और सत्य है। जो असुन्दर और असत्य में डूबा हुआ हो, वह अपनी कला में गुण कहाँ से पैदा करेगा ? जो मन में है, वही कलम



से निकलेगा।* हम यथार्थवाद (Realism) के विरोधी नहीं हैं; हमारा 'यथार्थवाद' से क्या तात्पर्य है, यह हम बतला देना चाहते हैं।

कहानी में मानव-जीवन की व्याख्या होनी चाहिए। इससे हम सहमत हैं; परन्तु व्याख्या कैसी हो, यह विचारणीय है। मानव-जीवन में प्रकाश है और अन्धकार भी है; उसका चाँद सा धवल शुक्लपक्ष है, तो रजनीवत् कृष्ण-पक्ष भी है। एक ओर उत्थान, विकास और उत्कर्ष है; दूसरी ओर पतन, दुराचार एवं पाप। इसलिये व्याख्या में एक चित्र की दोनों आकृतियों, शुक्ल और कृष्ण का सन्निवेश आवश्यक है। हम चाहते हैं कि मनुष्य के पतन का चित्र खींचा जाय; मनो-विकारों का यथार्थ चित्रण किया जाय। परन्तु वे मनो-विकार और मनोभाव मनुष्य के हों, पशु के नहीं। जब लेखक मानव के मनोभावों का चित्रण करता है, तो उसमें यथार्थवाद के दर्शन सम्भव हैं; परन्तु ज्योंही वह पाशविकता का चित्र खींचना शुरू कर देता है, वह यथार्थवाद की सीमा को लाँच कर 'वाममार्गवादी' बन जाता है। प्रयाग के 'भारतेन्दु' मासिक पत्र में श्री० ज्योतिप्रसाद जी मिश्र 'निर्मल' ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में, यथार्थवाद के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किए थे, वे अत्यन्त उत्कृष्ट और सारगर्भित हैं। उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

“×××जीवन के पतन का चित्रण करो, समाज की नारकीय अवस्था का चित्र खींचो; पर उस समाज की नारकीय अवस्था का, जो मनुष्यों का हो। जहाँ मनुष्य पशु सा हो जाय, जहाँ वह समाज की मर्यादा और प्रकृति के नियमों को ताक में रख दे, वहाँ, उस अवस्था में वह मनुष्य नहीं, पशु ही है। और पशुता का चित्रण न तो मानव-जीवन के सङ्घर्षों की व्याख्या है और न यथार्थवाद का उद्देश्य। उसकी ओर अग्रसर होना मनुष्यत्व का विकास करना नहीं, उसका ह्रास करना है।”

* दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समापति 'उपन्यास-सम्राट' श्री० प्रेमचन्द जी का अभिभाषण।

हिन्दी के उत्कृष्ट कलाकार श्री० प्रेमचन्द जी और श्री० सुदर्शन जी ने अपनी कहानियों में मानव-चरित्र की दुर्बलता का चित्र खींचा है; मानव-जीवन के पतन का चित्र अङ्कित किया है तथा मनोविकारों का चित्रण किया है; किन्तु कहीं भी 'पशुता' की गन्ध नहीं आने पाई। क्योंकि उन्होंने यथार्थवाद का चित्रण किया है। यदि वे भी श्री० ऋषभचरण जैन और श्री० देचन पाण्डेय 'उग्र' के समान 'पाशविकता' का चित्रण करते तो वह यथार्थवाद की सीमा का अतिक्रमण होता! कहानी-लेखकों को चाहिए कि वे कहानी लिखते समय आर्थ-संस्कृति और आदर्शों का अवश्य ध्यान रखें। यथार्थवाद का प्रयोग सौम्यता, शिष्टता, संयम और मर्यादा के साथ किया जाय।

उदीयमान कहानी-लेखक पं० विनोदशङ्कर व्यास की अनुमति में पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी में सर्वप्रथम यथार्थवादी कहानी है। इसमें कहानी के सब अङ्ग वर्तमान हैं। व्यास जी ने यथार्थवाद और आदर्शवाद के सामञ्जस्य के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं; वे मनन योग्य ही नहीं, अनुकरणीय हैं! आप लिखते हैं :—

“श्रीयुत हडसन का कहना है कि कजा की दृष्टि से आदर्श सिद्धान्तों को लेकर हम प्रकृतिवाद (Realism) का निर्वाह कर सकते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उपन्यास और कहानी में उपदेश की प्रथा अस्वाभाविक प्रतीत होती है, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि संसार के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक अधिकतर आदर्शवादी थे।” *

सारांश यह है कि कहानियों में यथार्थवाद का निर्वाह किया जाय, परन्तु केवल सत्य का चित्रण ही वाञ्छनीय नहीं हो। सत्य, शिव और सुन्दर इन तीनों का सामञ्जस्य ही चित्रण को हृदयस्पर्शी और मानवोचित बना सकता है।

* पं० विनोदशङ्कर व्यास द्वारा संग्रहीत 'मधुकर' कहानी-संग्रह, पृ० २४।





प्रथम दर्शन

मेरे मन-मानस की मराजिनी,

यह पत्र लिख कर तुम्हारे हृदय को तनिक भी चोट पहुँचाना नहीं चाहता। तुम्हें शायद मेरे पत्रों की जरूरत नहीं है। इसीलिए तुम्हें कुछ भी लिखने में बहुत सकोच होता है। यह पत्र भेज तो तुम्हारे पास रहा हूँ, परन्तु न जाने क्यों, तुम्हारे पास भेजने के उद्देश्य से यह लिख नहीं रहा हूँ। यह बात सुन कर तुम भी कहोगी, क्या ख़ूब ? मेरी इस मनोवृत्ति पर शायद तुम हँस भी पड़ोगी। परन्तु सचमुच बात ऐसी ही है। यह पत्र लिखने का मेरा केवल एक उद्देश्य है। वह बहुत स्पष्ट है। “स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा !” मुझे इस प्रकार, अपने निजी पत्र द्वारा, अपने एक उस साथी के सामने अपना हृदय खोल कर रख देने में स्वर्गीय आनन्द मिलता है, जिसने कभी स्वप्न में, नहीं-नहीं, प्रत्यक्ष मुझे सम्बोधित करते हुए कहा था—“आज मुझे जीवन की लम्बी यात्रा पार करने के लिए एक सच्चा साथी मिल गया !”

गोस्वामी तुलसीदास की ऊँची आर भावपूर्ण उक्ति उद्धृत करने पर, तुम हँस कर कहोगी कि बेचारे कवि को मैंने दुनिया के किस गँदले दलदल में लाकर पटक दिया। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह पत्र सचमुच मैं अपने सुख के लिए ही लिख रहा हूँ। इसीलिए यह पत्र लिखने में केवल मेरा स्वार्थ है, और किसी भावना की गन्ध तक नहीं है। मैं तो पल्ले सिरे का स्वार्थी हूँ। तुलसीदास को रघुनाथ-गाथा गान करने में आनन्द आया और वे उसमें रम गए। तल्लीन होगए। आज मुझे ऐसे सांसारिक आदमी को एक ऐसे व्यक्ति के सामने, जो मुझे साथी के नाम से प्रकार चुका है, अपना हृदय खोल कर रख देने में जो सुख है, वह सचमुच, स्वर्ग से भी बढ़ कर है।

* लेखक की ‘दीप-शिखा’ नाम की पुस्तक का प्रथम अध्याय।

कहाँ अध्यात्म-ज्ञान की दिव्य आभा से प्रदीप्त तुलसी, और कहाँ संसार के पाप-पङ्क में सना हुआ अल्प बुद्धि-वाला मैं ! दोनों की कहीं तुलना हो सकती है ?

हाँ, तो उस दिन मैंने अपने एक साथी के सामने तुम्हें अपनी जीवन-सङ्गिनी कह कर पुकारा ही नहीं, बल्कि हृदय से स्वीकार कर लिया। कब ? जब तुम्हारे नेत्रों की मौन स्वीकृति मुझे मिल चुकी थी, और उस समय, जबकि तुमने स्पष्ट शब्दों में बड़े प्यार से, केवल आत्म-समर्पण के भाव से प्रेरित होकर, मुझे ‘साथी’ के नाम से पुकारा था।

इस घटना के बाद, हम दोनों ही एक दूसरे को पाने के आनन्द में विभोर हो उठे। लोक-लाज की मर्यादा का बाँध टूट गया। हमारे हृदय एक दूसरे से मिल गए, मानों बहुत समय के बिछुड़े हुए दो प्राणी अचानक कहीं मिल गए हों। मैं तो प्रतिक्षण हर्षातिरेक में इतना विह्वल रहने लगा, मानों अतीत काल की खोई हुई मेरी निधि मुझे मिल गई। एक क्षण के लिए भी अलग होने पर, मेरे प्राण निकलने लगते थे। हृदय की सरिता का बाँध टूट जाता था। एक-एक क्षण में आँसू छलछल उठते थे। अविरल गति से आँखों का भरना भरने लगता था। सचमुच मेरी यही दशा थी। तुमने मेरी यह दशा अपनी आँखों से देखी है। कभी-कभी अपने कोमल कल-करों से, अपने अञ्जल से, तुमने स्वयं मेरे आँसू पोंछ कर, मेरी आँखों के भरने की अविरल धारा रोकने की चेष्टा भी की थी। इसमें तुम्हें सफलता मिलती थी या नहीं, सो तो तुम्हीं जानती हो।

जीवन के वे सुनहले क्षण, जिनमें मैं विह्वलता के अनिर्वचनीय आनन्द में प्रतिक्षण सराबोर रहता था, एक अभिनव छाया-चित्र की तरह आँखों से सदा के लिए ओझल हो गए और हृदय-पट पर एक ऐसी अनूठी स्मृति अङ्कित कर गए, जिसकी धुँधली प्रकाश-रेखा के



सहारे मेरे जीवन में एक अद्भुत चमक पैदा हो गई है। मेरा विश्वास है कि यह चमक जीवन के अन्तिम क्षण तक मेरा साथ देगी। यह उस बिजली की चमक है, जो तुम्हारी जादू-भरी चितवन ने अनायास ही मुझे दे डाली। कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम्हारी हाँ ऐसी किसी मृग-नयनी के नेत्रों की चोट से पीड़ित होकर, कवि-शिरोमणि रहीम की रसभरी लेखनी से अनुपम उद्गारों के रूप में यह मधुर ध्वनि निकल उठी होगी—

अभी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार,
जियत मरत मुकि-मुकि परत जेहि चितवत एक बार।

अपने अब तक के जीवन में, पहली बार, मुझे एक मृगनयनी के नयनों की अद्भुत आकर्षण-शक्ति का पता चला। एक बार, हाँ, केवल एक बार नज़र भर कर देखते ही, शरीर के रोम-रोम में बिजली दौड़ गई। थोड़ी देर के लिए सारी सुख-बुध भूल गया। ऐसा मालूम होने लगा कि पैरों-तले से ज़मीन निकली जा रही है। तुरन्त ही मैंने अपने आपको सँभालने का भरसक प्रयत्न किया। यदि मैं उस क्षण अपने आपको सँभालने का प्रयत्न न करता, तो जानती हो मेरी क्या दशा होती? उस विशालकाय वृक्ष के समान, बेसुख होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ता, जिसकी जड़ें कट जाती हैं। आग्निर यह सब क्यों हुआ? यह एक प्रश्न है, जो आज भी आँखों के सामने है। परन्तु इसका उत्तर देना मेरी समझ के परे की बात है। दिल और दिमाग दोनों ही, इस प्रश्न का यथोचित उत्तर दे सकने में असमर्थ हैं। इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर, तो कोई ऐसा विद्वान ही दे सकता है, जिसने मनोविज्ञान का खूब गहरा अध्ययन किया हो। मेरे लिए तो सचमुच यह एक ऐसी जटिलतम पहेली है, जो जीवन के अन्तिम क्षण तक सुलझ न सकेगी।

अगर मुझे पहले से यह पता होता कि तुम्हारी आँखों में वह शज़ब का जादू है, जिसके मारे मेरी काया ही पलट जायगी, और जिसके प्रसाद से जीवन में प्रति क्षण की बेकरारी पैदा हो जायगी, तो आज कसम खाकर कहता हूँ कि मैं हर्गिज़ तुम्हारी आँखों की ओर न देखता! ओफ़! उस चितवन में शज़ब का आकर्षण था! ऐसा जादू, जिसने मेरे ऐसे बड़े विचार वाले युवक

को पागल बना दिया! इसीलिए स्त्रियों के नेत्रों की करामात दिखाते हुए महाराज भर्तृहरि को कहना पड़ा है—

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मल विवेक दीपकः।
यावदेव न कुरङ्गचक्षुर्यं ताड्यते चटुज लोचनाञ्चलैः॥

अर्थात्—विवेकशाल आदमियों के भी निर्मल विवेक का दीपक तभी तक प्रकाशित रहता है, जब तक मृगनयनी स्त्रियों के चञ्चल लोचन-रूपी अञ्जल से वह बुझा नहीं दिया जाता।

महाराज भर्तृहरि की इस उक्ति का, सचमुच मैंने अपने जीवन में, पहली बार उसी क्षण अनुभव किया, जिस क्षण मैंने नज़र भर कर तुम्हारी आँखों की ओर देख लिया। तुम सच बता दो कि तुम्हारी आँखों में यह जादू, यह शज़ब की मोहक मदिरा कहाँ से आ गई, जिसने मेरे ऐसे स्वस्थ युवक को मतवाला बना दिया; उस रोग का रोगी बना दिया, जिसका कोई इलाज नहीं हो सकता। आज तुम्हारी आँखों की चर्चा करते समय, तुम्हारी भोली-भाली शान्त मूर्ति एक क्षण के लिए भी आँखों से ओझल नहीं हो रही है। इस स्मृति में कितना मिठास है, यह कहने की नहीं, किन्तु अनुभव करने की चीज़ है। इस वक्त तो उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'जिगार' के शब्दों में केवल इतना ही कहा जा सकता है:—

कुछ खटकता तो है पहलू में मेरे रह रह कर,
अब खुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा।

जिस दिन मैंने तुम्हें देखा, उसी दिन बड़े प्यार से अपने हृदय से लगा लिया और स्पष्ट रूप से, तुमसे खूब खुल कर कह दिया कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैंने अपने मन का यह भाव, तुरन्त ही, एकान्त में जाकर, अपने सबसे निकट के ऐसे साथी के सामने, जो संसार में मेरे जीवन-मरण का साथी है, प्रकट कर दिया। क्यों? इसलिए कि उन लोगों के सामने, जिन्हें मैं अपना समझता हूँ, अपनी कोई भी बात छिपाना नहीं जानता। अपने जीवन में मैंने कभी ऐसा नहीं किया। मेरा साथी मूर्ख नहीं, किन्तु असहृदु बहुत है। उसे अभी दुनिया का व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। मेरी बात सुन कर बड़ी सरलता के साथ उसने मेरे इस विचित्र विचार पर अपनी अनुमति की मुहर लगा दी। इसलिए कि इस



विचार का निष्पन्न करने पर मुझे बेहद तकलीफ होगी। ओह ! मेरे साथी का यह कितना भोलापन था, इसकी याद आते ही आज कलेजा काँप उठता है ! यदि उस क्षण सचमुच मेरे जीवन-सङ्गी ने मुझे इस कूचे में कदम रखने से रोका होता, तो आज मैं कहाँ क्या करता होता, इसे अब क्या बताऊँ ?

मेरी बातें सुन कर तुमने ऊपरी मन से मुझे और मेरे साथी को बहुत सावधान किया। दो-तीन बार तुमने हमें बुरी तरह से फटकारा भी ! तुम्हारी उस फटकार में भी ग़ज़ब का मिश्रण था। तुम्हारे उस वेष में ऐसा मालूम पड़ा, मानों तुम्हारे रूप में, साक्षात् वीणावादिनी देवी सरस्वती ने भूतल पर अवतरित होकर हमें सांसारिक मोह-रूपी अज्ञानान्धकार से उबारने और अखण्ड ज्ञान के रूप में कर्तव्य-शास्त्र का पाठ पढ़ाने ही के लिए हमारे घर पधारने का कष्ट किया है। तुम्हारी बातें हमें बहुत स्पष्ट और भली मालूम पड़ीं। परन्तु इतना सावधान करने पर भी न जानें क्यों मेरा हृदय अधिकाधिक तुम्हारी ओर इस प्रकार खिंचता गया, जैसे चुम्बक की आकर्षण-शक्ति से लोहा खिंच आता है। हमारे मन में यह शङ्का ज़रूर थी कि जब तुम स्वयं मुझसे प्रेम नहीं करतीं, तब मुझे बार-बार नज़्मे रूप में अपना प्रेम प्रदर्शित करने का अवसर ही क्यों देती हो ? और यदि मुझे बार-बार प्रेम-सम्बन्धी बातें कहने, और अपना हार्दिक विचार प्रकट करने का अवसर देती हो, तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि तुम भी स्वयं मुझे प्यार करती हो, और मुझे छोड़ कर तुम स्वयं भी एक क्षण को अलग होना नहीं चाहतीं। मुझसे मिलने के कुछ महीने बाद ही तुमने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि जिस क्षण तुमने मुझे पहले-पहल देखा, उसी क्षण से तुम्हारा हृदय भी मेरी ओर आकर्षित हो गया। इस दशा में मुझे आज यह कहने का पूरा हक है कि तुमने महीनों तक मुझे जो चेतावनी दी और सावधान किया तथा जिस प्रकार अपनी स्त्रियोचित हठ से खूब जी भर कर परेशान किया, वे सब तुम्हारी ऊपरी बातें थीं, अथवा हमें परीक्षा की कसौटी पर कसने के लिए, अख्तियार किए गए ढङ्ग थे। आगे चल कर तुम मुझे देखने के लिए स्वयं इतनी व्याकुल रहती थीं कि सैकड़ों मील दूर से अपना सारा काम चौपट कर मेरे पास

आकर रहने लगी थीं। आने से पहले अपने एक पत्र में तुमने बड़े करुणापूर्ण शब्दों में मुझे लिखा था :—

“अरे भाई, यदि किसी के आशापूर्ण पत्र ही से किसी दुःखी हृदय को सान्त्वना मिलती हो, तो उसे कभी-कभी पत्र तो भेज दिया करें ?”

तुम्हारी इन पंक्तियाँ से मेरे हृदय पर उस क्षण कैसी बीती, यह आज कह सकने में बिल्कुल असमर्थ हूँ। आज तो केवल अपने कलेजे को थाम कर यही कहने का साहस कर सकता हूँ कि तुम्हारे उस पत्र से मेरे मन में न जाने कितने पुराने संस्कार जाग उठे, और मेरे दुःखी दिल में एक ऐसा दर्द पैदा हो गया, जो एक क्षण को भी सुलाया नहीं भूलता। पत्र से तुम्हारी स्मृति हरी हो उठी और तुम्हारी मञ्जुल मूर्ति आँखों के सामने आकर अपने स्वाभाविक रूप में थिरक-थिरक कर, नाचने लगी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के शब्दों में सचमुच मेरी यह दशा हो गई :—

पहिले ही जाय मिले गुन में अवन फेर,
रूप-सुधा मधि कीनों नैनहु पयान है।
हँसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि,
सुघराई रसिकाई मिली मति पयपान है।
मोहि-मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो,
‘हरीचन्द’ भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भए प्रानमय कि प्रान भए कान्हमय,
हिय में न जानि परै कान्ह है कि प्रान है ॥

पता नहीं, तुमने अपने जीवन में यह दशा कभी अनुभव की है या नहीं ? यहाँ तो बहुधा यही हाल रहता है। दो-चार बार, ऐसे समय, जबकि तुम्हारी मधुर स्मृति का दर्द मेरे कलेजे में टीस मार रहा था, अचानक तुम मेरी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई हो, उस समय, जबकि पहले से तुम्हारे आने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसका हृदय पर सचमुच बड़ा विचित्र सा प्रभाव पड़ा है। ज़रा सा कहीं खटका हो, तो यही मालूम पड़ता है कि तुम्हारे पैरों की आहट है ! द्वार पर कोई गाड़ी आकर खड़ी हो, तो यही मालूम पड़ता है कि तुम आगईं। सोते-जागते, उठते-बैठते मुँह से निरन्तर निकलता है :—



“अखियाँ हरि दरसन की प्यासी,
दैख्यौ चाहत कमल-नैन को निशि-दिन रहत उसासी।”

आखिर इस पागलपन की भी कोई हद है ? ग़ालिब के शब्दों में कहें तो कहना पड़ता है :—

मुहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने में,
उसकी को देख कर जीते हैं जिस काफिर पै दम निकले !

तुम्हारे प्रथम दर्शन के बाद के चार-पाँच महीने कितनी बेकरारी में कटे, इसे तुम स्वयं जानती हो। एक दिन शाम को, तुम्हारी याद में, मैं अपने पलंग पर पड़ा हुआ मछली की तरह तड़प रहा था। दम निकल रहा था। गला सूख रहा था। अपने साथी से पानी माँगा। रह-रह कर, छूट-छूट करके थोड़ी देर तक पानी गले से नीचे उतारा और एक ठण्डी आह के साथ गिलास रख दिया। उस वक्त मेरे साथी का चेहरा बहुत उदास था। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। हँसे हुए कण्ठ से उसने कहा :—

“मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि इस स्त्री ने तुम्हारे ऊपर कुछ जादू कर दिया !” इतना कह कर उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। मैंने उठ कर अपने रुमाज से उसके आँसू पोंछे और बहुत समझा कर सान्त्वना दी कि नहीं, बात ऐसी नहीं है, थोड़े ही दिन में मेरी हालत ठीक हो जायगी, कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है। मेरे साथी को पक्का विदवास था कि तुम पर प्रेमासक्त होने के कारण ही मेरे प्राणों पर आ बनी है ! इसी कारण उस भारी सङ्कट से मेरे प्राण बचाने के लिए उसने तुम्हारी बड़ी अनुनय-विनय की और तुम्हारे पैरों पर सर रख कर, तुमसे यहाँ तक कहा कि “किसी तरह इनके प्राण बचा लो, मैं आजीवन तुम्हारा सेवक बन कर रहूँगा !”

इस घटना से क्या अब भी तुम्हें इस बात में सन्देह है कि तुमने, अथवा तुम्हारी आँखों ने, मिलते ही मेरे ऊपर ग़ज़ब का वार किया ; ऐसे मोहन-मन्त्र का प्रयोग किया, जिसके मारे मुझे लेने के देने पड़ गए। कितनी रातों मैंने तुम्हारी गोद में सिर रख कर सिसकते हुए काटी हैं, और कितनी रातों तुम्हारे वियोग में तारे गिनते हुए काटी हैं, इसका कोई हिसाब भी लगाया जा सकता है ? कितने दिन और महीने तुम्हारे प्रथम-दर्शन के ‘सुन्दर-

काण्ड’ में आए और चले गए, इसका भी तुम्हें कुछ पता है ? इस समय रामचरित-मानस की यह चौपाई रह-रह कर याद आ रही है :—

मिलत एक दारुण दुख देहीं।

बिहुरत एक प्राण हरि लेहीं॥

तुम अपने आपको सत्य और स्वतन्त्रता की पक्ष-पातिनी बतलाती हो। इसी से, हाँ, केवल इसी कारण तुमसे मैं कहता हूँ कि हृदय पर हाथ रख कर सच बता दो कि क्या तुम्हारे अन्दर उक्त चौपाई में कही गई दोनों ही बातें मौजूद नहीं हैं ?

मिलते समय, प्रथम दर्शन में तुम्हारी मद-भरी आँखों ने जो ग़ज़ब ढाया, उससे मेरे प्राणों पर नौबत आ गई। और अब, तुम्हारे वियोग में, उन प्राणों का हाल क्या है, वे कितनी जल्दी और कैसी द्रुत गति से इस मिट्टी के कटघरे को छोड़ कर आज़ाद हो जाना चाहते हैं, यह बताने में बेचारी लेखनी बिलकुल अस-मर्थ है। यदि तुम्हारे अन्दर ईश्वर ने सचमुच वह दर्द-भरा दिल दिया है, जो एक व्यथित हृदय की, दर्द-भरे दिल की कसक को अनुभव कर सके, तो तुम बहुत दूर रह कर भी, उस पीड़ा को अनुभव कर सकती हो, जिसमें यह कह कर प्राण निकलना ही चाहते हैं :—

दो ही हिचकी में हुआ बीमारे राम का खात्मा,
एक हिचकी मौत की थी एक तुम्हारी याद की।

यदि तुम्हारे अन्दर अब वह हृदय ही नहीं है, जो पहले था, तो मुझे सचमुच तुमसे कोई शिकायत नहीं है, इसलिए कि तुम तो अपने आपको किसी भी तरह के सांसारिक बन्धनों से ‘आज़ाद’ कर ही चुकी हो। और मैं ? मैं क्या कहूँ ? कविवर ‘दर्द’ के शब्दों में इतना ही कह सकता हूँ :—

किसी से क्या बर्बाद कीजे बस अपने हाल अबतर का,
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना।

और महाकवि अकबर के शब्दों में यह भी कहने के लिए विवश हूँ :—

मुसीबत ऐन राहत है अगर हो आशिके सादिक॥
कोई परवाने से पूछे कि जलने में मज्जा क्या है॥

बस, केवल इतना कह कर ही आज तुम्हारे प्रथम दर्शन की अमृत चर्चा समाप्त करता हूँ। अभी आगे



बहुत-कुछ कहना है। समय-समय पर मन में निरन्तर उठते रहने वाले उद्गारों के रूप में सचमुच बहुत कुछ कहना है। बिना कहे रहा नहीं जायगा। तुमने तो पत्र न लिखने की कसम ही खा ली है। यह भी अच्छा हुआ। तुम इस बला से आसानी से इतनी जल्दी छुटकारा पा गईं ! अब तुम्हारी बला से, कोई मरे, चाहे जिये ! भगवान् तुम्हारा भला करें। कभी तुम्हें बीती हुई बातों की याद भी न आवे। कभी तुम्हें स्वप्न में भी हमारे ऐसे फकड़ आदमी का खयाल न हो, जिसे तुम्हारी ऐसी मङ्गलमयी मनोहारिणी महिला ने कभी अपने जीवन का साथी बनाया था और जिसे, तुमने उस समय 'प्राणेश्वर' के नाम से पुकारा था, जो प्रकृति-नटी के रङ्ग-मञ्च पर, प्रकृति और पुरुष की अनुपम मानव-लीला का सबसे उत्कृष्ट और सचमुच जीवन का वह मधुर, स्वर्गीय और नैसर्गिक समय होता है, जिस पर समस्त सृष्टि के क्रम-विकास की समस्या निर्भर है !

मैं सचमुच फकड़ हूँ, परन्तु कोरा 'फकड़' ही नहीं हूँ। मेरे सामने उत्कृष्ट प्रेम और अनुपम बलिदान का वह सुनहला और जीता-जागता आदर्श है, जिस पर मेरे और तुम्हारे ही नहीं, किन्तु कोटि-कोटि मानव-तनधारियों के शत-शत जीवन निझावर किए जा सकते हैं। समय आवेगा, जब तुम स्वयं देख लोगी कि वह फकड़, तुम्हारा वही भुलाया हुआ साथी, जिसे तुम अपनी अधिकार-लिप्सा और मानव-जीवन का सर्वनाश करने वाली स्वच्छन्दता की सनक में, अपनी व्यर्थ सी तुच्छ सांसारिक इच्छाओं को पूरा करने में बिलकुल निकम्मा और असमर्थ समझती थीं, अपने पुनीत, उज्ज्वल और उच्चतम आदर्श की दीप-शिखा पर पतङ्ग की भाँति बलि चढ़ गया !

तुम्हारा वही

—प्रमोद

परिवर्तन

[श्री० सीताराम 'प्रभास']

यौवन का वह प्रथमोन्माद !

समझा उसको सत्य-नित्य है, पर वह तो था निरा प्रमाद !

अश्वत्थ से ढँक कर मतवाली,
छलकाती मदिरा की प्याली,
प्राची में उतरी थी लाली ;

अपर-लोक का नव सम्बाद !
यौवन का वह प्रथमोन्माद !



मधु-अधरों का मधु-सञ्चालन,
कण-कण में छवि का आकर्षण,
स्वर्ण-स्वप्न के मुखमय दर्शन ;

कहीं नहीं था विरस विषाद !
यौवन का वह प्रथमोन्माद !

मुझसे रति-शृङ्गार हुआ था,
जग में तब अभिसार हुआ था,
सुख-सौरभ-सञ्चार हुआ था ;

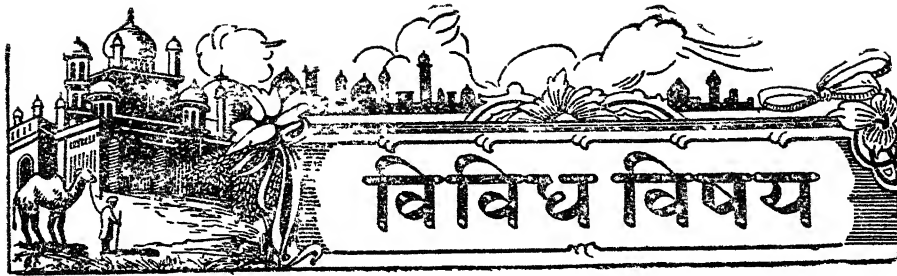
कौन कराता 'तब' की याद ?
यौवन का वह प्रथमोन्माद !



ब्रज-कुञ्जों में कूक रही थी—
कोकिल, रस को धार बही थी,
वैभव का भण्डार मही थी ;

आया पतझड़ इसके बाद !
यौवन का वह प्रथमोन्माद !





समाज में स्त्रियों का स्थान

वर्तमान काल जागृति का है। जहाँ समाज में हर प्रकार से जागृति पैदा हो रही है, वहाँ स्त्री-समाज में भी जागृति का पैदा होना अनिवार्य है। इसी से आजकल भारत का महिला-समाज भी एक प्रकार से अपनी निद्रा से जाग रहा है। अब प्रायः स्त्रियों को हर प्रकार से समाज में उच्च दृष्टि से देखा जा रहा है; किन्तु फिर भी बहुत से पुराने विचारों के व्यक्ति स्त्रियों की जागृति को नहीं देख सकते। आवश्यकता अब इस बात की है कि जब तक स्त्री-समाज पुरुषों की तरह समानाधिकार प्राप्त नहीं कर सकता, तब तक समाज का उत्थान असम्भव है। पुरुष और स्त्री का स्थान समाज में उन गाड़ी के घोड़ों की तरह है जो साथ-साथ चलते हैं। यदि उनमें से एक आगे और दूसरा पीछे हो जाय तो गाड़ी की गति रुक जाती है, इसी प्रकार समाज में भी केवल पुरुषों के ही उन्नति करने अथवा स्त्रियों के ही उन्नति करने से काम नहीं बनता। समाज तभी अग्रसर होता है, जब समाज के दोनों अङ्ग साथ-साथ तरक्की करें।

समाज में स्त्रियों को सदा बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। प्राचीन काल में भी, जब कि भारत सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर था, स्त्रियों को पुरुषों की तरह समानाधिकार थे। स्त्रियाँ पुरुषों की तरह पढ़ी-लिखी और विदुषी हुआ करती थीं। अब भी बहुत सी लड़कियाँ, जिनको उचित रूप से शिक्षा दी जाती है, लड़कों की अपेक्षा पढ़ने-लिखने में अधिक योग्य निकलती हैं।

बहुत से लोगों का यह कहना है कि यदि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर अधिक योग्य बन जावेंगी, तो गृहस्थ-

जीवन अधिक सुखमय नहीं बना सकगी। उनका यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल है। स्त्रियाँ जितना पढ़ेंगी, उतना ही अधिक गृहस्थ जीवन सुखमय बनेगा और वे उन्नति भी कर सकेंगी।

दूसरा विचारणीय प्रश्न देश की नवयुवतियों के सामने यह है कि वे शीघ्र विवाह करें अथवा नहीं। आजकल देश के सामने आर्थिक प्रश्न बड़ा ही भीषण है। अभाग्यवश, हमारे देश में, विवाह गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनाने के लिए नहीं, बल्कि उसे समाज का एक बोझ समझ कर किया जाता है। चाहे भोजन और वस्त्र को भी पैसा न हो, परन्तु फिर भी माँ-बाप बालक-बालिकाओं का विवाह कर देते हैं, चाहे विवाह के लिए कर्ज़ ही क्यों न लेना पड़े। मेरी समझ में ऐसे विवाहों से समाज सुखमय न बन कर दुःखमय ही बनता है। खास कर लड़कियों को, लड़कों को भी, विवाह के समय यह देख लेना चाहिए कि क्या उनका विवाह होने पर वे गृहस्थी के बोझ को सँभालने के योग्य हैं, अथवा नहीं। यदि वे गृहस्थी का व्यय-भार सहन करने को तैयार नहीं हैं, यदि उनके पास पुष्कल धन नहीं है, तो उन्हें विवाह-बन्धन नहीं जोड़ना चाहिए।

प्रतिदिन हम देखती हैं कि बालक-बालिकाओं का बहुत कम उम्र में पाणिग्रहण कर दिया जाता है, परन्तु होश सँभालने पर वे अपने को गृहस्थी का बोझ सँभालने पर अयोग्य पाते हैं। सन्तान के पैदा होने पर भी वे उसकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसलिए नवयुवतियों को चाहिए कि वे तब तक शादी न करें, जब तक कि अपने को स्वयं इस योग्य न समझ लें कि वे गृहस्थी को सँभाल सकेंगी। विवाह-बन्धन में फँस कर दुःखमय जीवन बिताने से आजन्म अविवाहित रह कर देश-सेवा करना तथा समाज



का हित करना कई गुना अच्छा है ? मुझे उम्मीद है कि मेरी बहिनें स्त्री-समाज के उत्थान के लिए हर तरह से प्रयत्नशील बनेंगी ।

—चन्दोबीबी

❁

❁

❁

टीका से हानि

‘चाँद’ के किसी गत अङ्क में श्रीयुत चन्द्रशेखर जी शर्मा का “टीका की भीषण हानियाँ जो अम-निवारण” शीर्षक लेख पढ़ कर आश्चर्य हुआ । आपने अपने लेख के प्रारम्भ ही में महाशय कृष्णगोपाल दत्त के जनवरी सन् १९३० के “टीका से भीषण हानियाँ” शीर्षक लेख को निराधार और निर्मूल बताने की चेष्टा की है । उदाहरण में आप लिखते हैं कि “श्रीकृष्णदत्त जी शायद लिम्फ (Lymph) और पस (Puss) को एक ही पदार्थ समझते हैं ।” हम शर्मा जी से निवेदन करते हैं कि यदि वे एक पदार्थ नहीं हैं तो सजातीय अवयव हैं । गाय अथवा बछड़े के स्तनों पर सुई द्वारा घातक क्रिया करने के बाद जो पदार्थ निकलता है, आप उसको “लिम्फ” शब्द के नाम से सम्बोधित करते हैं और कृष्ण-दत्त जी ने शायद उसको “पस” शब्द के नाम से सम्बोधित किया है । परन्तु मात्र शब्द-भेद से पदार्थ की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता । लिम्फ एक परिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ शर्मा जी ने “एक प्रकार का निर्मल जल जैसा पदार्थ” किया है ।

सम्भवतः आप उसको गङ्गोत्तरी के गङ्गाजल से भी अधिक निर्मल और पवित्र मानते हों, परन्तु वस्तुतः वह होता महान घृणित पदार्थ है और उसके लिए हमारी दृष्टि में तो “चेप” अथवा “पीप” शब्द ही अधिक उपयुक्त जान पड़ते हैं । आगे चल कर शर्मा जी लिखते हैं कि— “एक बालक की बाँह पर लगाए हुए टीके के घाव से लिम्फ लेकर दूसरे बालक को टीका लगाने की सम्भवतः सदोष प्रणाली का प्रचार था, तब भी एक बालक का पीप नहीं, बल्कि लिम्फ दूसरे में प्रविष्ट किया जाता था ।” इत्यादि ।

शर्मा जी को कदाचित् लिम्फ की निर्मलता और पवित्रता पर अधिक विश्वास है, इसीसे आपने यहाँ पर दूसरी बार फिर उसका उपयोग किया है ।

हम इसी बात को इस प्रकार कहते हैं—“गाय वा बछड़े का चेप घातक सुई द्वारा बच्चे की देह में प्रविष्ट किया जाता था और फिर उस बच्चे का चेप दूसरे को ।” इत्यादि ।

एक बच्चे के हाथ के चेप को दूसरे बच्चे के हाथ में प्रविष्ट करने की प्रणाली (Arm to Arm Method) स्वयं टीके के प्रचारकों द्वारा ही सदोष सिद्ध हो चुकी है, परन्तु उसको शर्मा जी अभी तक “सम्भवतः सदोष प्रणाली” कहते हैं । शायद उनको अभी उसके सदोष होने में सन्देह है ।

शर्मा जी वैज्ञानिक रीति से तैयार किए हुए लिम्फ को (‘Glycerinated Calf Lymph’) शायद स्वर्ग से उतरा हुआ आशीर्वाद-रूप मानते हैं, इसी से लिखते हैं कि “पुरानी रीति का भय दिखा कर लोगों को टीके से वञ्चित रखना महान अनर्थकारी है ।” शर्मा जी को विदित हो कि टीका लगाने की पुरानी रीति मात्र ही अनर्थकारी नहीं है, किन्तु स्वयं टीका भी अनर्थकारी है, और केवल अनर्थकारी ही नहीं, बल्कि बहुत-सी दशाओं में प्राणघातक भी सिद्ध हो चुका है । शर्मा जी ने आगे चल कर टीका की उपयोगिता को प्रमाणित करने के लिए चेचक से होने वाली मृत्यु-संख्या के कुछ आँकड़े दिए हैं । उनमें आपने मद्रास के बारे में लिखा है कि “सन् १८८४ में टीका लगाए जाने से पूर्व के दस वर्ष (१८७५-१८८४) तक चेचक से वार्षिक मृत्यु-संख्या ४२ प्रति एक लाख आबादी में थी, जो १८८५-१८९४ में घट कर केवल ६ प्रति लाख रह गई ।” हम शर्मा जी से नम्रतापूर्वक पूछने की छष्टता करते हैं कि जब उपर्युक्त दस वर्षों में चेचक की मृत्यु-संख्या टीका लगाने से ३६ प्रति लाख घट गई, तब सन् १८९५ से १९३१ तक के ३६ वर्षों के बाद अब मद्रास प्रान्त में चेचक से अवयव एक भी मृत्यु न होती होगी ! आगे आप लिखते हैं कि “यह जान कर आश्चर्य होगा कि जर्मनी में दुबारा टीका लगाने से चेचक का निकलना प्रायः बन्द हो गया है ।” टीके के प्रचारकों द्वारा फैलाई हुई इस कल्पित बात को पढ़ कर हमें भी आश्चर्य होता है । परन्तु जर्मनी सम्बन्धी बात कल्पित है और इसके लिए हमारे पास प्रमाण है । आगे चल कर आप लिखते हैं कि “टीके के प्रचार से पूर्व एक बड़ी संख्या छोटे बच्चों की देवीमाता



की भेंट हो जाया करती थी, रहे-सहे जन्म भर के लिए अन्धे और कुरूप हो जाते थे।" धन्यवाद है शर्मा जी को, इस उच्च कल्पना के लिए; शायद चेचक के टीके से पूर्व संसार अन्धे और कुरूपों का भण्डार ही रहा होगा।

आगे चल कर शर्मा जी ने अपने लेख में डॉक्टर जेनर की प्रशंसा के पुल बाँध दिए हैं। परन्तु हम डॉक्टर जेनर की कीर्ति से भली प्रकार परिचित हैं। वे किस भाँति डॉक्टर बने, इङ्ग्लैण्ड की माताओं पर उन्होंने किस प्रकार अपना प्रभाव जमाया, इत्यादि विषयों को एक बार शर्मा जी जान लें तो अच्छा है। आज तक किसी भी देश में दो-दो, तीन-तीन बार टीका लगाने पर भी चेचक का निकलना निर्मूल नहीं हुआ है। वरन् इससे और अनेक प्रकार के रोगों का उद्भव हुआ है। अमुक व्यक्ति को चेचक निकलेगी या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं है। टीका लगाने पर भी निकलेगी कि नहीं, इसका भी कोई निश्चय नहीं है। आप कहेंगे कि टीका लगाने पर चेचक कम निकलती है। परन्तु प्रथम तो इस बात का कोई प्रमाण नहीं है। द्वितीय टीका लगाने पर भी कभी-कभी इतनी अधिक चेचक निकलती है कि कोई-कोई अन्धा भी हो जाता है। जब तक मनुष्य कुदरत की तरफ पीछे नहीं हटेंगे, तब तक चेचक का निकलना भी चालू रहेगा।

आज यूरोप और अमेरिका के नगरों में से टीका लगाने की आवश्यक योजना को हटाया जा रहा है। शिकागो इसका प्रमाण है, और स्वयं इङ्ग्लैण्ड में भी मनुष्य टीका से मुक्त कर दिए जाते हैं। परन्तु भारत जैसे पराधीन देश में जो न हो वह थोड़ा है। यथा-सम्भव इस देश में जब टीका का क़ानून बना था, उस समय देश के प्रतिनिधि कौन्सिलों में नहीं जाते थे। आज इस क़ानून के संशोधन की परमावश्यकता है और निकट भविष्य में कम से कम आवश्यक स्थान पर ऐच्छिक तो अवश्य ही हो जाना चाहिए। इसके लिए हम कौन्सिल के सदस्यों तथा उम्मेदवारों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। वैज्ञानिक अनुभवों के नाम पर आज तक मनुष्य जाति के होनहार और निर्दोष बालकों पर जो घातकी क्रिया की जा रही है उसका कौन उत्तर-दायी है? बालकों के ईश्वर-प्रदत्त शुद्ध रुधिर में विष का बीज आरोपित किया जा रहा है। यहाँ तक नहीं,

इस लिम्फ की उत्पत्ति भी अति घृणित और क्रूरता-पूर्ण है।

गाय वा बछड़े को मेज़ पर डाल कर उसके आगे और पीछे के पाँवों को खूंटों से जकड़ कर बाँधना तथा उनके स्तन भाग को सुई से गोदना कितनी हृदय-विदारक और घातकी क्रिया है। एक सहृदय व्यक्ति ही इसकी कल्पना कर सकता है। इस लिम्फ की बनावट इसी प्रकार की क्रूरतापूर्ण क्रियाओं द्वारा होती है, जिसको शर्मा जी ने निर्मल जल जैसा पवित्र पदार्थ कहा है।

टीके के क़ानून द्वारा हिन्दू-धर्म पर भी आघात हो रहा है। जिस गाय को हिन्दू जाति माता कह कर पूजती है, उसी के शरीर से घातकी क्रियाओं द्वारा लिम्फ और वह लिम्फ, जिसकी उपयोगिता भी अभी सिद्ध नहीं हो सकी है, हिन्दू बच्चों के पवित्र रुधिर में प्रविष्ट किया जाता है, और विज्ञान के नाम पर ईश्वर और कुदरत के कामों में हस्तक्षेप किया जाता है। हमारी दृष्टि में तो इसे वैज्ञानिक बेहूदापन ही कहा जाना चाहिए।

आज तक टीका की उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकी है। इस सम्बन्ध में अङ्गरेज़ी में प्रचुर साहित्य है, शर्मा जी से निवेदन है, एक बार उन्हें मँगा कर पढ़ें।

—डॉक्टर विश्वनाथ त्रिवेदी, वैद्यरत्न

❁

❁

❁

राम-कलेवा

यद्यपि 'सूर सूर्य तुलसी शशी' वाली इस पुरानी उक्ति को हममें से अनेक बार-बार दुहराते हैं, तथापि तुलसी ने जो मानस-सुरसरि की धवज धारा बहा कर मृतवत् हिन्दू जाति में प्राण-सञ्चार किया है, वह सूर के 'सूरसागर' ने नहीं किया है। 'सूरसागर' काव्य-क्षेत्र में अपनी अगाधता और विशदता के लिए विख्यात है, पर उपयोगिता-क्षेत्र में जो काम गोस्वामी तुलसीदास के मानस ने किया है, वह 'सूरसागर' ने कदापि नहीं किया। आज विद्वज्जन 'सूरसागर' में गोते लगा कर काव्य-रस का अनुपम स्वाद पा धन्य-धन्य हो जाते हैं; पर चरित्र को टकसाजी बना कर अमरस्व लाभ



कराने वाला 'मानस' ही है। तुलसी ने भगवान श्रीराम-चन्द्र जी का आदर्श चरित्र चित्रण कर आज से तीन सौ बरस पहले ही शिक्षा का प्रचार किया है। एक श्रीराम ही मैं प्रजा-पालन, आतृ-प्रेम, पितृभक्ति, दाम्पत्य प्रेम और उच्च त्याग आदि एक से एक उत्कृष्ट गुणों का समावेश कर, तुलसी ने उन्हें सदा के लिए हिन्दू जाति का आराध्यदेव बना कर उनका अमर नाम हिन्दू-हृदयों पर अङ्कित कर दिया है। रामायण के प्रत्येक पात्र-चरित्र से हमें जो शिक्षा मिलती है, उससे हमारा विशेष कल्याण हो सकता है। कितनों ने रामायण और राम का आदर्श सामने रख कर अपने जीवन को धन्य बना डाला है। आज मानस की 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' आदि उक्तियों को लेकर काफ़ी टीका-टिप्पणी हो रही है। कुछ दिन हुए 'माधुरी' में श्री० गोपाल दामोदर तामस्कर जी का 'रामायण में ईश्वर-चरित्र और मानव-चरित्र का असम्बद्ध सम्मिश्रण' शीर्षक एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है, जो अभिनन्दनीय है।

'गङ्गा' और 'चाँद' की किसी पिछली संख्याओं में श्री० रजनीकान्त शास्त्री महोदय ने सूर्य-वंश और निमि-वंश की वंश-तालिका देकर श्रीराम और सीता का असमकालीन होना सिद्ध करने का एक असफल प्रयास भी कर डाला है। ऐसे ही और भी कितने विद्वान रामायण और रामचरित-मानस के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करके इसकी महत्ता की छाप जन-साधारण के हृदयों पर लगाया करते हैं और अब तो ऐसे विद्वानों की भी कमी नहीं, जो मानस को सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ और गोस्वामी तुलसीदास जी को एशिया का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। अस्तु—

परन्तु मेरा विषय इन लोगों से भिन्न है। यद्यपि मूल रामचरित-मानस से मेरे शीर्षक का कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि छेपक वाली सभी रामायण की प्रतियों में 'राम कलेवा' नाम का एक अध्याय पाया जाता है। इस राम कलेवा में कैसी भद्दी-भद्दी बातें कही गई हैं, उन्हें पढ़ कर ही हमें इस विषय पर कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। आजकल हिन्दुओं में भावुकता और रुढ़ि-पालकता के सिवा और कुछ नहीं रह गया है। जो बातें, चाहे वे अच्छी हों या बुरी, बिना विचारे लोग मानते आए हैं, उसी को धार्मिकता का

जामा पहना दिया गया है और उसके विरुद्ध ज़बान हिलाना तक एक अक्षम्य अपराध माना जाता है। फलतः असम्भव नहीं कि मेरे लेख को पढ़ कर कुछ रामायण-भक्त मुझ पर नास्तिक होने का इत्ज़ाम लगावें। परन्तु मेरा विद्वान है कि विचारशील सज्जन मेरी बातों पर ध्यान देंगे और मुझे क्षमा करेंगे। मैं रामचन्द्र और रामायण का वैसा ही भक्त हूँ, जैसा कि एक हिन्दू हो सकता है। परन्तु मैं सत्य पर धूल डालना नहीं चाहता। रामायण करोड़ों हिन्दुओं का जीवन-सर्वस्व है। हिन्दू रात-दिन उसका पाठ किया करते हैं। हमारे बच्चे भी बड़े चाव से रामायण पढ़ते और उसकी कथा सुनते तथा उसी से अपना भविष्य बनाते हैं। यह निर्विवाद सिद्ध है कि बच्चों के कोमल हृदयों पर बचपन में जो अच्छे या बुरे संस्कार पड़ जाते हैं, वे आमरण उनका साथ देते हैं। रामायण एक ऐसी चीज़ है, जिसके द्वारा हिन्दू अपने बच्चों का चरित्र निर्माण कर सकते हैं। बच्चों के उपकार के नाम पर और सदाचार की रक्षा के लिए, ऐसे पुण्य ग्रन्थ से वाहिंयात बातें हमें निकाल डालनी चाहिए, जिससे हमारा और हमारे मासूम बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बन सके।

अब मैं 'राम कलेवा' के उन स्थलों को यहाँ रखता हूँ, जिनसे मेरा मतभेद है और प्रत्येक सुधार-प्रेमी भाई से मैं आशा रखता हूँ कि वे हमारी बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर अपने मतममत अन्यान्य पत्रों में प्रकाशित करावेंगे। देखिए, भगवान श्रीरामचन्द्र कलेव कर अपने भाइयों के साथ—

राज-ऐन सब चैन युत, राजें राजकुमार।
जिनको हास विलास लखि, लाजें लाखन मार ॥

उस समय लक्ष्मीनिधि की पत्नी सिद्धि श्रीरामचन्द्र आदि की सरहज आती हैं, और कहती हैं :—

ये चित चोर किशोर भूप के बड़े चोर तुम प्यारे।
सुरति हमारि भुलाय सौंवे सासु समीप सिधारे ॥

पाठक विचार करें, यहाँ शिक्षाचार की सीमा का उल्लङ्घन किया गया है या नहीं। कितना भद्दा उपालम्भ है? एक राजघराने की युवराज्ञी को क्या साधारण शिक्षाचार का भी ज्ञान नहीं है। 'सासु समीप सिधारे'

तो कौन सा बड़ा भारी अपराध कर डाला ? खैर, आगे चलिए—

हम आए तुम महलन भीतर तुमहिं न परचो जनाई ।
भलो सदन है तुम्हरो प्यारी जहाँ सब जाहिं समाई ॥

माशा अल्लाह ! श्रीरामचन्द्र जी 'घर' शब्द का क्या अर्थ करते हैं ! आखिर मर्यादा पुरुषोत्तम ठहरे, फिर मज़ाक में कैसे पाँछे रह जाते ?

खैर, इस पर सिद्धि जो उत्तर देती है, उसमें तो और भी कमाल कर डाला । वे स्वयं ही अपराधिनी नहीं बनीं, वरन् अपने ननदोई मर्यादा पुरुषोत्तम को भी मुलज़िम बना डाला । सुनिए—

सुनत राम के बचन लाड़िली बोली मृदु मुसकाई ।
तुमरे घर की रीति लालजू यहाँ न चली चलाई ॥

देखा आपने ! किस प्रकार वादी-प्रतिवादी दोनों प्रतिवादी के मुख से दोषी करार पा जाते हैं । ध्यान दीजिए, 'मृदु मुसकाई' 'तुमरे घर की रीति' से कौन सा गूढ़ भाव व्यक्त होता है ? इतना कह देने पर नन-दोई और सरहजद दोनों को शिष्टाचार का ख़याल हो आता है और वे दूसरे घर में चले जाते हैं ।

सासु सुनैना के समीप महुँ देत जवाब बनै ना ।
पाणि पकर रघुनन्दन जी को गई लिवाय निज ऐना ॥

वहाँ तो सासु के समीप अश्लीलता ढक दी गई । यहाँ कवि जी ने फ़ौरन इसकी रिपोर्ट आम जनता में कर दी । अच्छा आगे बढ़िए । सिद्धि चारो भाइयों को अपने महल में ले जाती है और आदर-सत्कार करती है । ग़ाली दिखवाती है । फिर अन्तर्जातीय विवाह पर फ़क्तियाँ कसी जाती हैं । रामचन्द्र आदि की माताओं का ख़ीर खाकर बेटा पैदा करने पर आश्चर्य प्रकट किया जाता है । यहाँ तक तो किसी तरह कुशल है । आगे शज़ब देखिए । लक्ष्मीनिधि की साली, सिद्धि की छोटी बहिन चन्द्रकला, जो अब तक कुंवारी है, लाल जी से कहती है—

लरकाई ते गयो लाल जी तुम तपस्विन सँग माहीं ।
ये छल छन्द फन्द कहँ पाए सत्य कहो हम पाहीं ॥
की मुनि-नारिन के सङ्ग सीखे की निज भगिनी पासै ।
मीठो सीठो खाव लाल जी बिन चाखे नहिं भासै ॥

तारीफ़ तो यह है कि श्रीमती जी भी कुंवारी ही थीं । खैर, भरत जी ने उनका भी शिकार कर डाला । सुनिए—

बोले भरत भली कह सजनी तुमहु तो अबै कुमारी ।
वर्णहु पुरुष सङ्ग की बातें सो कहँ सीखेहु प्यारी ॥

यह भरत जी महाराज का चित्र है, जिसे राम-कलेवाकार ने चित्रित किया है और रामचरित-मानस का एक अंश बना डाला गया है । आगे भरत जी फ़रमाते हैं—

रहे मुनिन सँग ज्ञान सिखन को सो सब सुने सुनाए ।
कामिनि कामकला अब सीखन हम तुमरे ढिग आए ॥

मुनि-पत्नियों की झीछालेदर तो ऊपर हो चुकी । भरत जी उसको भुला कर नई चटसार में नए गुरु जी से नई शिक्षा कामकला सीखने की याचना करते हैं । इस पर भी सिद्धि उन्हें कैसा भोला-भाला समझती है—

सिद्धि कह्यो तब सुनहु भरत जी ऐसे तुम न बखानो ।
तुमरी तो गिनती साधुन महुँ लोक बात का जानो ॥

अब भरत जी का भोलापन भी देखिए, कैसी साधुता दिखलाते हैं—

भरत कह्यो तुम साँची कहत हो हम साधू परकाजी ।
ऐसी सेवा करो कामिनी जामें हों हम राजी ॥
आए ऐन अपूरब योगी अस निज मन गुन लीजै ।
अधर सुधारस को दै भोजन अतिथे पूजन कीजै ॥

वाह रे निराले अतिथि ! क्या कहना ? अधर-सुधारस के फलाहार की याचना ! पूरे 'दिल्ली के दलाल' निकले । योगी की याचना सुन कर आइए, हम अब आपको श्रीराम की कायरता दिखलाते हैं ।

एक सखी कहै सुनहु सबै मिलि इनकी एक बड़ाई ।
अधिमख राखन गए कुँवर ये तहँ हम अस सुधि पाई ॥
इनको सुन्दर देख कामवश तिया ताड़का आई ।
सो करतूति न भई लाल सों-मारेहु तेदि खिसियाई ॥

'सो करतूति' और 'कामवश' पर ज़रा ध्यान दीजिए । जब राम, लक्ष्मण कायर ही ठहरे, तो रण में कैसे डटते । वे हुम दबा कर भागे । अब वीर-पुङ्गव शत्रुहन जी सामने आते हैं ।



बोले रिपुहन सुनहु भामिनी नाहक दोष न दीजै ।
जो करतूति बनी नहीं बनते सो हमसे भरि लीजै ॥
बिन जाने करतूति सबन को तुम्हरे घर भो ब्याहू ।
सोऊ पछिताव न रहै पियारी अब करि लेहु समाहू ॥
जाके हित तुम रोष बढ़ावहु सो मति करहु उपाई ।
वैखिन सेवा में तुम्हरे हम हाजिर चारिहु भाई ॥

अब शत्रुहन जी की 'कला' पर एक रमणी आश्चर्य करती है । कहती है—

सुनि बानी रिपुदमनलाल की बोली कोउ सुकुमारी ।
कहँ पाई येती चतुराई कहिए लाल बिचारी ॥
की कहूँ मिली नारि गुण-आगर की गणिकन सँग
कीनो ।

तीनों भाइन ते तुमरे महुँ लखियतु चिन्ह नवीनो ॥

अब पुनः शत्रुहन जी का उत्तर सुनिए । देखिए प्रभ-
कर्त्री को कैसी साध्वी करार देते हैं ।

रिपुहन कह भल कह्यो भामिनी भेदिया भेदहि जानै ।
गणिका नारिन हूँ ते सौगुण तुम्हें अधिक हम मानै ॥

लाहौल बिबाकूत ! बिचारा ने बड़ी मुँह की
खाई । उन्हें क्या खयाल था कि वे गणिका से भी गई
बीती हैं ? फिर रिपुदमन जी की लार टपकने लगी—

हमरो तुमरो चिन्ह लाड़िली एकै भौँति लखाई ।
ताते सखी हमारी तुम्हारी चाहिय अवशि सगाई ॥

अब रिपुसूदन जी पीछे रह गए । सिद्ध जी की
नई सुरु देखिए—

सुनि नव उक्ति युक्ति की बातें बोली सिद्धि कुमारी ।

सुनिए रसिक राय रघुनन्दन आनन्दकन्द बिहारी ॥

अति अभिराम कामहू मोहत मूरति देखि तुम्हारी ।

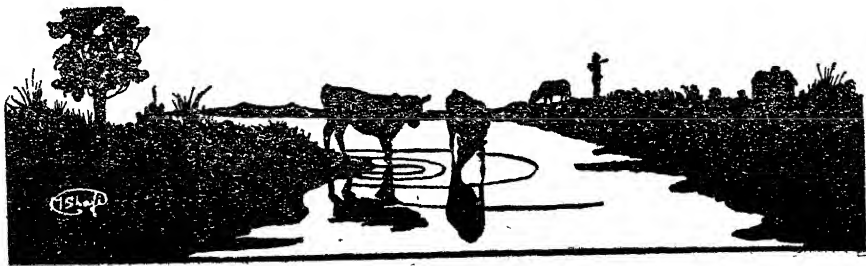
कैसे बची होयेंगी तुमसे अवधपुरी की नारी ॥

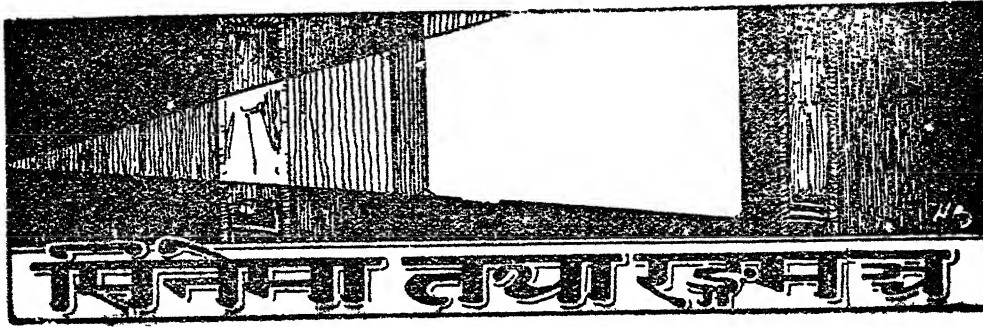
कहिए, कैसी ओछी मनोवृत्ति है !

लेख बढ़ रहा है । मैंने जो कुछ लिखा है, सज्जावना
से ही प्रेरित होकर लिखा है । पाठक स्वयं 'राम कलेवा'
पढ़ कर विचार करें । क्या यह वर्तमान निकृष्ट समाज के
गन्दे चित्र नहीं हैं ? हम यह नहीं मानते कि ऐसी-ऐसी
वाहियात बातें श्रीराम जी के नेतृत्व में हुई होंगी और
उस समय, जब कि 'मातृवत् परदारेषु' की कृद्र करना
लोग अपना परम कर्तव्य समझते थे । आजकल जैसे
झूठ-चिकनिया उस ज़माने के लोग नहीं थे । और फिर
श्रीराम और विदेह के यहाँ ! कैसी अनोखी बात है !!

कलाकार जब कोई चित्र तैयार करता है, तो देश,
काल, पात्र का विचार कर । इतिहास-ज्ञान-शून्य कवि
ने ऐसा चित्र खींच कर बड़ी भद्दी मनोवृत्ति का परिचय
दिया है । 'राम कलेवा' में जो कुछ कहा गया है, वह
अनहोनी बात नहीं है । आज तो इससे भी बढ़-बढ़ कर
सत्यानाशी बातें होती हैं । 'राम कलेवा' जिस समय के
वर्णन में कहा गया है, उस समय ऐसी बातें नहीं होती
होंगी, ऐसा हमारा खयाल है । यदि थोड़ी देर के लिए
मान भी लिया जाय, तो भी रामायण जैसी पवित्र पुस्तक
में ऐसी अश्लील बात नहीं रहनी चाहिए । रामायण,
महाभारतादि में जो कुछ लिखा रहता है, लोग उसे
'बाबा वाक्य प्रमाणम्' मान लेते हैं । क्या सुहृद् के
विचार से यह नहीं हो सकता कि धार्मिक कहलाने
वाली ऐसी-ऐसी पुस्तकों से ऐसे-ऐसे भद्दे अवतरण
नष्ट कर डाले जायें ? 'राम कलेवा' के अन्त में कुछ
आध्यात्मिक बातें कह कर 'इति' कर दिया गया है,
फिर भी उपर्युक्त बातें उपेक्षणीय नहीं हैं । विदग्ध
साहित्यिक विचार करें ।

—मैथिलीशरण 'नेहनिधि'





नवीनचन्द्र

['चाँद' के प्रतिनिधि द्वारा]

भारतीय सिनेमा-संसार में ख्याति पाने वाले अभिनेताओं की संख्या उतनी नहीं है, जितनी अभिनेत्रियों की है। इसके कई कारण हो सकते हैं। परन्तु उनमें से एक यह भी है कि वास्तव में भारतीय सिनेमा-जगत में अच्छे अभिनेताओं की कमी है। प्रथम श्रेणी के अभिनेता उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। नवीनचन्द्र उन्हीं में से एक हैं।

नवीनचन्द्र का नाम 'मारामारी' के फ़िल्मों के कारण अधिक हुआ है। इसी प्रकार के फ़िल्मों के कारण कई अन्य अभिनेताओं ने भी ख्याति पाई है। उनमें से विट्ठल का नाम उल्लेखनीय है। परन्तु नवीनचन्द्र और उनकी श्रेणी के अन्य अभिनेताओं में अन्तर है। वह यह कि जहाँ अन्य अभिनेता कैमरा की सहायता से साहस के काम (Stunts) करते हुए दिखाए जाते हैं, वहाँ नवीनचन्द्र वास्तव में उन सब कामों को करते हैं।

उस दिन जब मैं उनसे मिला तो मैंने उनसे 'चाँद' के लिए उनके जीवन की कुछ बातें देने की प्रार्थना की। आपने हँस कर टाकना चाहा। कहा—क्या कीजिएगा? लोग जिस रूप में मुझे फ़िल्मों में देखते हैं, वही उनके लिए काफ़ी है।

“क्षमा कीजिए। आप फ़िल्मों में तो बहुरूपिया हैं। लोग उस बहुरूपियापन के परदे को फाड़ कर आपके असली स्वरूप को देखना चाहते हैं!”—मैं बोला।

और आपने फिर हँसते हुए अपने जीवन का वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

आपका वास्तविक नाम श्री० नरहरि जोशी है। 'नवीनचन्द्र' नाम आपने फ़िल्मों के लिए रख लिया है। परन्तु अब आप इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म १९०८ ईस्वी में चुरोंडा नामक ग्राम में हुआ था, जो बड़ौदा के पास है। आपके पिता के पास काफ़ी सम्पत्ति थी। परन्तु व्यापार में वह सब कुछ खो बैठे। फल यह हुआ कि नवीनचन्द्र को अपना विद्यार्थी-जीवन कष्टों और आपत्तियों के बीच में व्यतीत करना पड़ा। आप पढ़ाई के साथ एक प्रेस में प्रूफ़ देखने आदि का काम भी करते थे। और इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन का व्यय स्वयं ही चलाते थे। इस प्रकार आपको कष्टों का सामना तो करना पड़ा, परन्तु उनसे स्वावलम्बन की शिक्षा मिली, जिसे नवीनचन्द्र आज भी अपने विद्यार्थी-जीवन का सबसे मधुर फल समझते हैं।

जिस समय नवीनचन्द्र स्कूल में थे, उस समय आपका शरीर बहुत कमज़ोर था। आपके पतले-दुबले शरीर को देख कर आपके साथी आपको 'छोकरी' कह कर मज़ाक़ उड़ाया करते थे। इससे ऊब कर आपने हट-पुट बनने का निश्चय किया और व्यायाम प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों में ही आपका शरीर स्वस्थ और हट-पुट हो गया। इस उत्तम स्वास्थ्य का ही परिणाम है कि आप फ़िल्मों में कठिन से कठिन और भयावह



से भयावह कार्य करने से भी नहीं हिचकते। अब भी आप व्यायाम के उतने ही प्रेमी हैं। निर्य नियम से आप ८-१० मील का भ्रमण कर लेते हैं। अब भी आपका सुडौल शरीर और कान्तिमय मुख-मण्डल देखते ही बनता है। आपका विचार बी० एस-सी० में जीव और रसायन विज्ञान का अध्ययन करके अमेरिका स्वास्थ्य, व्यायाम आदि की शिक्षा के लिए जाने का था। इसके अतिरिक्त आपको ज्ञानयोग से भी बहुत प्रेम है। कई संन्यासियों से आपने इसकी शिक्षा प्राप्त की है।

फ़िल्मों में काम करने का आपका लेश मात्र भी विचार नहीं था, न आपको इस ओर अधिक दिलचस्पी ही थी। फ़िल्मों में आपका आगमन अचानक ही हो गया। एक बार छुट्टियों में आप घर जा रहे थे। मार्ग में आपने डाइरेक्टर मजूमदार और श्री० याज्ञिक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उन्हें आपका शरीर, स्वास्थ्य आदि देख कर यह इच्छा हुई कि आप उनके एक फ़िल्म 'पावागढ़ का पतन' में काम करें। इस विचार से कि इस प्रकार छुट्टियों में कुछ रूप कमा लेने से आप आगामी वर्ष का कुछ काम चला सकेंगे, आपने उनकी बात स्वीकार कर ली। और इस प्रकार सन् १९२८ में आप एकाएक फ़िल्म-जगत में आए।

'पावागढ़ का पतन' की सफलता से श्री० याज्ञिक का ध्यान आपकी ओर विशेष रूप से गया। परन्तु कॉलेज खुलने पर आप फिर पढ़ने चले गए। दूसरे वर्ष की छुट्टियों में फिर आपके सामने वही प्रस्ताव आया। इस बार अधिक अर्थ-प्राप्ति की आशा थी। अतः आपने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस बार आपने 'यज्ञ इच्छया' नामक फ़िल्म बनाया। यह फ़िल्म आपकी छुट्टियों में पूरा न हो सका। इतने में ही श्री० याज्ञिक ने आपसे स्थायी रूप से कम्पनी में काम करने की प्रार्थना की। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से आपको पढ़ना छोड़ना पड़ेगा, यह स्पष्ट था। आपने बहुत सोच-विचार के बाद पढ़ना छोड़ दिया और स्थायी रूप से फ़िल्मों में काम करने लगे। इस प्रकार सिनेमा ने अनायास ही एक कलाकार को प्राप्त कर लिया। उस समय फ़िल्मों में जिस प्रकार काम किया जाता था, वह आपको पसन्द न था। परन्तु आपको यह आशा थी कि आप कुछ सुधार कर सकेंगे। आपको केवल 'मारामारी'

और लड़ाई आदि ही पसन्द नहीं है। आप भावपूर्ण अभिनय को अधिक पसन्द करते हैं।

इसके बाद आपने शारदा कम्पनी के दो फ़िल्मों में काम किया। उसके बाद सुरेश कम्पनी की तीन तस्वीरों में। इसी कम्पनी से आपने 'मारामारी' के फ़िल्मों में काम करना प्रारम्भ किया और उसे मेहता-लुहार प्रोडक्शन कम्पनी ने ख़ूब बढ़ा दिया। इस कम्पनी ने आपके साथ १० फ़िल्म बनाए। अब आप रॉयल फ़िल्म कम्पनी की सम्पत्ति हैं। आप इस कम्पनी के लिए 'चलता-पुर्जा' और 'बदमाश का बेटा' ये दो 'चुप-चित्र' बना चुके हैं। तीसरा 'गुनहवार' शीघ्र ही तैयार होने वाला है। इसके बाद आपका एक बोलता फ़िल्म बनाया जायगा।

आप अभिनय ही करते हों, यही बात नहीं। आप कहानी भी लिखते हैं और फ़िल्म को डाइरेक्ट करने में भी सहायता देते हैं। 'बदमाश का बेटा' के लिए सीन-रियर्स आपने ही लिखी थीं और उसके अङ्ग्रेजी के टाइटिल आपकी लेखन-शैली के चोतक हैं।

आपके बोलते फ़िल्मों के विषय में बड़े सुन्दर विचार हैं। इस विषय पर प्रश्न का उत्तर देते हुए आपने कहा—मैं समझता हूँ कि बोलते फ़िल्म सिनेमा के प्रेमियों के लिए अधिक मनोरञ्जक हो सकेंगे, क्योंकि शब्द का समावेश फ़िल्मों में अधिक स्वाभाविकता पैदा कर देता है। परन्तु जिस प्रकार आजकल फ़िल्म बनाए जाते हैं, उनसे मैं सहमत नहीं हूँ। आजकल के फ़िल्मों में अस्वाभाविकता तो कूट-कूट कर भरी है। जब चाहे, और जहाँ चाहे, गाने रखने की प्रणाली को भी मैं पसन्द नहीं करता।

आशा है कि आपके बोलते फ़िल्मों में इन बातों का ध्यान रखा जायगा।

आपका फ़िल्मों के बाहर का जीवन अनुकरणीय है। सादगी आपका भूषण है। बनावट, अभिमान और आत्म-प्रशंसा आपको छू नहीं गईं। मित्रनसार ऐसे हैं कि एक बार मिलने से ही सबके मित्र बन जाते हैं। आपका विवाह हो चुका है। आपकी माता जीवित हैं। फ़िल्म-अभिनेताओं में जोग जिन दुर्गुणों की आशङ्का करते हैं, उनमें से एक भी आप में नहीं पाया जाता। अपने स्वास्थ्य का आप बहुत ध्यान रखते हैं, क्योंकि



आप जिस प्रकार का काम फ़िल्मों में करते हैं, उसके लिए यह परमावश्यक है। इसके लिए आप सब काम समय पर करने के पक्षपाती हैं।

आपको एक शिकायत है। वह यह कि अभी तक आपको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जो १००) देकर १५०) का काम आपसे ले। आप समझते हैं कि आपकी शक्ति, बल, बुद्धि और कला का पूर्णतया प्रयोग नहीं किया जा रहा है। उनमें से तीन चौथाई बिना प्रयोग के नष्ट हो रहे हैं। इससे पता लगता है कि आप किस प्रकार और कितना काम जनता को दिखाना चाहते हैं।

मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता यह जान कर हुई कि आप अपने विद्यार्थी-जीवन की कठिनताओं को भूल नहीं हैं। इसीलिए आप ५-६ विद्यार्थियों की सहायता कर रहे हैं। आपका घर कभी-कभी तो विद्यार्थियों का आश्रम बन जाता है। इसी से नवीनचन्द्र के हृदय की महानता और विशालता प्रगट होती है।

आशा है कि नवीनचन्द्र आगामी वर्षों में फ़िल्म-जगत् की जनता की और भी सेवा कर सकेंगे और उनके आदर्श को लेकर अन्य शिक्षित नवयुवक भी फ़िल्मों में काम करके इस व्यवसाय का नाम ऊँचा करेंगे।

२—‘मेक-अप’ (सचित्र)

‘मेक-अप’ उस कला का नाम है, जिसके द्वारा मनुष्य फ़िल्म में भौति-भौति के असम्भव स्वरूप दिखा सकता है। साधारणतया सभी फ़िल्म-अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को कैमरा के सामने आने से पहले ‘मेक-अप’ करना पड़ता है। परन्तु वह मेक-अप साधारण ही होता है। वह केवल फ़ोटोग्राफी की दृष्टि से किया जाता है। उसके द्वारा मुख के अनेक प्रकार के दोष छिपाए जाते हैं। जैसे काला मुख गोरा दिखाई देता है, मुख पर के दाग, चेचक के गड्ढे, मससे, तिल आदि सब ढँक जाते हैं। परन्तु जिस ‘मेक-अप’ का ऊपर की दो पंक्तियों में वर्णन किया गया है, वह मेक-अप इससे भिन्न है। उस मेक-अप के द्वारा एक सुन्दर व्यक्ति कुबड़ा, काना, लँगड़ा दिखाया जा सकता है। अर्थात् गड्ढे में धँसी हुई दिखाई जा सकती है। गाल पिचके हुए दिखाए जा सकते हैं। दाँतों को चाहे जैसा विकृत रूप दिया जा सकता है। नाक को जिस

प्रकार चाहे तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। इसके द्वारा एक फ़रिश्ता राक्षस दिखाई दे सकता है। पाठकों की जानकारी के लिए अन्यत्र एक चित्र दिया गया है। यह चित्र ‘डा० जीकिल एण्ड मि० हाइड’ नामक प्रसिद्ध फ़िल्म से लिया गया है और इन दोनों का काम एक ही अभिनेता, मि० फ्रेडरिक मार्च, ने किया है। चित्र देखने पर पाठक यह कभी विश्वास नहीं कर सकते कि इसमें दोनों आकृतियाँ एक ही व्यक्ति की हैं। परन्तु मेक-अप ने यह सम्भव कर दिया है।

‘डा० जीकिल एण्ड मि० हाइड’ में डा० जीकिल एक ऐसी औषधि का आविष्कार करना चाहते हैं, जिससे मनुष्य की भली और बुरी दो प्रकृतियाँ भलग की जा सकें और बुरी का नाश करके केवल भली को ही संसार में जीवित रक्खा जा सके। उन्हें अपने आविष्कार में सफलता मिलती है। पहला प्रयोग वह स्वयं अपने ऊपर करना चाहते हैं। इसलिए वह उस औषधि का पान कर लेते हैं। उस औषधि के पीते ही उनकी बुरी प्रकृति जोर मारती है और धीरे-धीरे उनकी सुन्दर आकृति बदल कर राक्षस की सी आकृति हो जाती है। उसका नाम वह मि० हाइड रखते हैं। एक आकृति से दूसरी आकृति में परिवर्तन फ़िल्म में बड़े कमाल से दिखाया गया है। इसके लिए मेकअप और फ़ोटोग्राफी की विधि के अनेक प्रयोग करने पड़े थे और उनके लिए बहुत सा कच्चा फ़िल्म व्यय करना पड़ा था।*

‘मेकअप’ करने में सबसे अधिक कुशल था स्वर्गीय जॉनचेनी। वह ‘मेकअप का राजा’ कहलाता था। वास्तव में उसकी मेकअप की प्रणाली विचित्र थी। ‘नौत्रदाम का कुबड़ा’, ‘ओपेरा का भूत’, ‘अपवित्र तीन’ आदि फ़िल्मों में उसने मेकअप के कारण कमाल कर दिखाया था। ‘नौत्रदाम का कुबड़ा’ में उसने कुबड़े का मेकअप इतनी स्वाभाविक रीति से किया था कि कोई रत्ती भर भी यह सन्देह नहीं कर सकता था कि यह मेकअप है।

भयानक मेकअप करने में अमेरिका का प्रसिद्ध अभिनेता बोरिस कारलोफ़ भी सिद्धहस्त है। वह कई

* फ्रेडरिक मार्च का ‘डाक्टर जीकिल और मिस्टर हाइड’ के रूप में परिवर्तित चित्र इस महीने की चित्रावली में अन्यत्र देखिए।



फ़िल्मों में भयानक पार्ट ले चुका है और सबको बड़ी खूबी के साथ निभाया है। यूनीवर्सल फ़िल्म कम्पनी के सुप्रसिद्ध फ़िल्म 'फ्रेड्रिक्सटाइन' में एक वैज्ञानिक ने एक मुर्दे को जीवित कर दिया है। कारलोफ़ ने ही वह काम किया है। जिस समय वह मुर्दे के रूप में मेज़ पर पड़ा है, उस समय कोई यह नहीं कह सकता कि वह मुर्दा नहीं है। उसके बाद जब वह जीवित होता है, मैशीन की भाँति चलता है, कृत्रिम मनुष्य की भाँति देखता है और शब्द करता है। उस समय कारलोफ़ की कला का आभास होता है।

"मेकअप" की कला फ़िल्मों के लिए अत्यन्त आवश्यक और लाभदायक है। उसके द्वारा दर्शकों पर मन-चाहे जैसा जादू किया जा सकता है। भारतीय फ़िल्मों में अभी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। श्री० एज़रा मीर ने अपने फ़िल्म 'ज़रीना' में 'नौत्रदाम के कुबड़े' की नक़ल करके एक कुबड़ा बनाया था, परन्तु उसमें अधिक सफलता नहीं मिली थी। शायद आगे चल कर भारत में भी लॉनचेनी, बोरिस कारलोफ़, फ्रेडरिक मार्च जैसे 'मेकअप के राजा' पैदा हो जायँ।

३—'पूरन भगत'

अभी तक प्रभात कम्पनी, कोल्हापुर को सर्वोत्तम

कलापूर्ण फ़िल्म बनाने का श्रेय प्राप्त था। परन्तु अब 'न्यू थिएटर्स लिमिटेड' कलकत्ता के हिन्दी फ़िल्म 'पूरन भगत' ने प्रभात के फ़िल्मों से बाज़ी मार ली है।

अब तक न्यू थिएटर्स ने प्रथम श्रेणी के कुछ बँगला के फ़िल्म ही बनाए थे। उसके हिन्दी और उर्दू के फ़िल्मों को अच्छी सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस फ़िल्म में उसने सारी कमी पूरी कर दी है।

'पूरन भगत' में 'माया-मच्छीन्द्र' (प्रभात) के ही कथानक के कुछ भाग हैं और उसी प्रकार के भव्य दृश्य दिखाए गए हैं। परन्तु वे सभी 'माया मच्छीन्द्र' से बढ़ कर हैं। 'पूरन भगत' का कथानक अधिक ज़ोरदार है, सम्वाद अधिक मनोहर है तथा इश्यावली और फ़ोटोग्राफी बहुत सफल रही है। अभिनय भी आशा से अधिक अच्छा है। उसी प्रकार सङ्गीत भी है। बङ्गाल के सुप्रसिद्ध सुरदास गवैए कृष्णचन्द्र के गाने बहुत ही मनोहर हैं। हिन्दी साधारण बोलचाल की हिन्दी से अधिक कठिन है, शायद इसीलिए कहीं-कहीं उच्चारण बहुत अशुद्ध प्रतीत होते हैं। इस कमी को छोड़ फ़िल्म वास्तव में भारतीय सिनेमा-जगत में आदर्श है और इसके लिए हम कम्पनी को बधाई देते हैं।

॥

॥

॥

साध

[श्री० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा; स० सम्पादक "गङ्गा"]

अभाग्य जीवन की वह साध,
साध—जिसमें भूला अभिमान !
मान जिसकी गोदी में बैठ—
प्रणय बन जाता है छविमान !!

पङ्खु बन कर वह छोटी साध,
निराशा का करती आह्वान !
स्मृति की छाया में वह मौन,
जुगाती अन्तर्व्यथा महान् !!

व्यथा, जिसमें चलता था मोह,
मोह, जिसमें खोया था ज्ञान !
ज्ञान में डूब आज वह साध,
भस्म में ढूँढ़ रही निर्वाण !!



चाँद



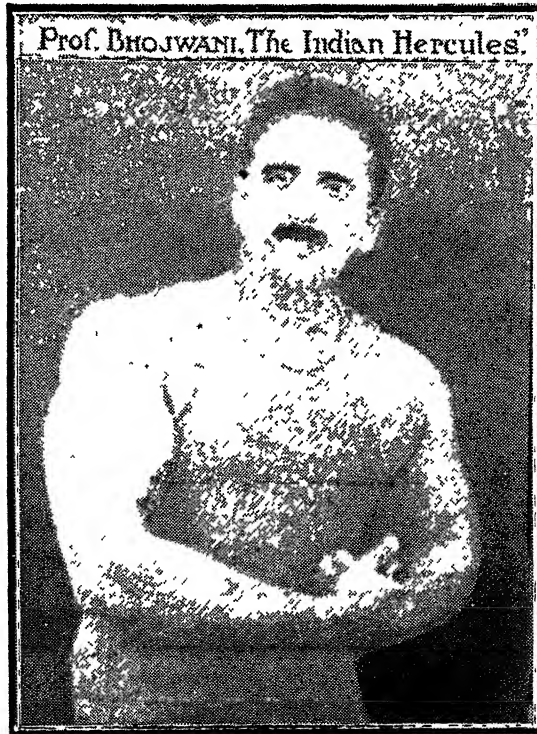
जर्मनी की ऊफ़ा फ़िल्म कम्पनी की एक प्रसिद्ध स्टार—मिस दिता पार्लो ।



अमेरिका के विख्यात अभिनेता मि० फ्रेडरिक माक डॉ० जीकूली और मि० हाईड के रूप में ।
(पूर्ण विवरण 'सिनेमा और रङ्ग-मञ्च' में पढ़िए ।)



प्रोफेसर भोजवानी
आप सिन्धु प्रान्त
के विख्यात पहलवान
हैं और 'इण्डियन
हरक्यूलस' कहे जाते हैं ।



शारीरिक बल-प्रदर्शन
करने में आपने यूरोप
आदि देशों में काफ़ी
सुख्याति प्राप्त की है ।





स्वर्गवासिनी सरस्वता देवी

आप पण्डित बलदेवप्रसाद शर्मा, सुपरवाइज़र पोस्ट ऑफ़िस, इटावा की सुपुत्री थीं। आपको धर्म, सङ्गीत और पठन-पाठन से बड़ा प्रेम था। लोकमान्य के गीता-रहस्य और कर्मयोग शास्त्र का नियमित रूप से पाठ किया करती थीं। इनका जन्म सम्बत् १९६७ में और देहान्त सम्बत् १९८९ में हो गया। इनके दुखी पिता ने इनकी स्मृति में इनके भजनों का एक संग्रह छपवाया है।



मि० आर० के० पण्मुखम् चेटी—जो अभी हाल में ही लेजिस्लेटिव
एसेम्बली के प्रेज़ीडेण्ट निर्वाचित हुए हैं ।



[शब्दकार—अज्ञात]

स्थायी—प्रातः समय रघुवीर जगावें ; कौशल्या महतारी ।

चठो लाल जी भोर भए हैं ; सुर-नर-मुनि हितकारो ॥

अन्तरा—ब्रह्मादिक नारद सनकादिक ; वशिष्ट ऋषि चारी ।

वाणी वेद विमल यश गावत ; रघुकुल यश विसतारी ॥

स्थायी

०	—	ध	ध	१	—	ग	म	×	नि	ध	प	१	ग	रे	स
स	—	त	स	प	य	र	धु	प	ई	र	ज	म	आ	वे	ए
प्रा	—	ग	म	म	ग	रे	स	बी	स	ग	रे	गा	—	—	—
स	म			रे				नि				स			
कौ	औ	शि	इ	ल्या	आ	म	ह	ता	आ	आ	आ	री	—	—	—
०	०	—	०	—	०	०	०	नि	०	नि	नि	ध	—	प	—
स	स	—	स	—	स	रे	स	भो	स	र	भ	यो	—	ह	—
व	ठो	—	ला	—	ल	जी	ई	ग	ओ	रे	—	स	—	—	—
म	प	ग	म	प	नि	ध	प	का	म	आ	—	री	—	—	—
सु	र	न	र	सु	नि	हि	त						—	—	—

अन्तरा

म	—	ग	—	ध	ध	ध	—	नि	ध	सं	सं	सं	—	सं	सं
अ	—	हा	—	दि	क	ना	—	र	द	स	स	का	—	दि	क
रे	रे	—	रे	सं	नि	ध	रे	सं	रे	नि	सं	नि	ध	प	—
व	शि	—	ष्ट	श्रु	वि	वा	आ	री	॥	॥	॥	॥	॥	॥	—
सं	—	सं	—	सं	—	रे	सं	नि	सं	नि	नि	ध	—	प	प
वा	—	यी	—	वे	—	द	वि	म	ल	य	श	ना	—	व	त
म	व	ग	म	प	नि	ध	प	ग	म	रे	—	सी	—	—	—
र	धु	कु	ल	य	श	वि	स	ता	आ	आ	—	—	—	—	—

नोट—रे ग ध नि कोमल ।



नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

['चौद' परिवार के सुपरिचित कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव ने 'चौद' के सितम्बर सन् १९३१ के अङ्क में इस धारावाहिनी कविता का ३१ चौ एवं ३२ चौ पत्र लिखा था । कई कारणों से इस कविता के आगे के पत्र अब तक न प्रकाशित हो सके । अब वे प्रकाशित किए जाएंगे । पहला पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को होता है और दूसरा बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को । यहाँ पर हम पाठकों की सुविधा के लिए संक्षेप में वृद्ध-पत्नी का किञ्चित् पूर्व वृत्तान्त दिए देते हैं । बाल-विधवा का पूर्व वृत्तान्त भी पत्र नं० ३४ के पहले दे दिया गया है ।

वृद्ध-पत्नी का पूर्व वृत्तान्त

एक तरुणी का दहेज प्रथा के कारण एक वृद्ध से विवाह कर दिया गया । उसने प्रथम मिलन के समय में ही अपने को वृद्ध-संसर्ग से बचा कर पवित्र ही रखने की बात निश्चित की । पहले दिन अस्वस्थता का बहाना करके उसने उसे टाल दिया । दूसरे दिन स्पष्ट कह दिया कि हमारा तुम्हारा मिलन असम्भव है । वृद्ध ने घर में वेश्याओं का नाच कराना और उनके द्वारा तरुणी का मन डिगवाना चाहा । परन्तु असफल रहा । उसने एक भयङ्कर मनुष्य की सहायता लेनी चाही । परन्तु तरुणी ने एक दासी द्वारा छुरी प्राप्त कर ली थी और उसी से उसे ज़ख्मी किया । इसके पश्चात् वृद्ध ने एक मनुष्य के साथ अपराध लगा कर तरुणी को घर से निकाल बाहर किया । वहाँ से निकलने के बाद तरुणी ने एक सुन्दर युवक का आश्रय पाया, पर उसकी भी तरुणी पर कुदृष्टि हुई ।

—स० 'चौद']

पत्र-संख्या ३३

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर

हाल तुम्हारा ज्ञात हुआ;

समस्त परिस्थिति जिसमें तुम थीं

मन पर कुछ आघात हुआ ।

लिए जा रही थीं उसको तुम,

बन लेने को उसके प्राण,

कोमल मन को भी है लेना

पड़ता कठोरता में त्राण ।

वह ललना का काम नहीं था,

पर था वह ललना का काम,

यह संसार जटिल, है कष्टक—

कुञ्ज, समस्त पड़ता आराम ।

❀

❀

❀

अनुचित उचित विचार कठिन है,

कठिन परिस्थिति की पहिचान,

क्या करना किस समय चाहिए,

इसका बड़ा कठिन है ज्ञान ।

बहिन, तुम्हारी शङ्काएँ हैं

व्यर्थ, जहाँ सम-बल होता,

वहाँ न होता युद्ध, वहाँ पर

नहीं छद्म या झल होता ।

❀

❀

जो होते हैं युद्ध सभी हैं

छिपे असम-बल के कारण,

अथवा उनका मूल भ्रान्ति है

जो होती छल के कारण,

जिसमें सम-बल होने पर भी

समस्त असम बल पड़ता है,

अन्य पक्ष को अबल समझना

कुछ राष्ट्रों की जड़ता है ।

यह है उचित कि सम-बल वाले

एक दूसरे को निस्सार

करना सदा चाहते लखता

यही आ रहा है संसार ।



पर राष्ट्रों के ही बारे में
सच हो सकती है यह बात,
वही चाहते एक दूसरे
के ऊपर करना आघात।

❀

दिखलाने को धारण करते
हैं वे सतत प्रेम का भाव,
पर भीतर तो शत्रु-भाव ही
उन पर रखता अधिक प्रभाव।

❀

पर नर-जन के, नारी जन के
राष्ट्र पृथक जब होवेंगे,
शत्रु न होंगे आपस में वे,
मित्र युगल तब होवेंगे।

❀

उन राष्ट्रों की इन राष्ट्रों से
तुलना करना उचित नहीं।
सभी परिस्थितियों में रहता
स्वार्थ-भाव क्या बना कहीं ?

❀

मनुज राष्ट्र में, स्त्री-सुराष्ट्र में
कुछ स्वाभाविक आकर्षण,
होगा भला नहीं क्या ? खिंचते
वे न रहेंगे क्या क्षण-क्षण ?

❀

इसीलिए उनमें होगा क्यों
युद्ध, तुम्हें शङ्का ऐसी,
करनी नहीं चाहिए, सोचो
देखो यह शङ्का कैसी ?

❀

बहुत हुआ अब तुम्हें सुनाऊँ
अपना कुछ आगे का हाल,
मैंने हाथ हटाया उसका,
कहा—“तुम्हारी कैसी चाल ?

❀

तुम तो मुझे बहिन ही कह कर,
अभयदान दे घर लाए,
इस प्रकार व्यवहार आज फिर
करने क्योंकर हो आए।

❀

भय्या, क्या यह भाव तुम्हारा,
नहीं पापमय भाव नितान्त,
सुन कर मेरी बात, हटा कर
हाथ हुआ वह थोड़ा शान्त,

❀

बोला फिर उद्भ्रान्त सदृश वह
पुनः पकड़ कर मेरा हाथ —
“तुममें क्या कुछ दया नहीं है,
कुछ न कर सका इतना साथ।”

❀

मैंने कहा कि—“भाई, मैं हूँ
तुमसे उपकृत हुई विशेष।
इसीलिए मैं रोक रही हूँ
मन में जो आता है त्वेष।

❀

तुम सज्जन हो, दयावान हो,
शुद्ध हृदय थे, पर इस काल,
क्या करने हो चले, करो मत
कलुषित अपना हृदय विशाल।”

❀

बाल-विधवा का पूर्व वृत्तान्त

[एक बालिका जब छोटी थी तभी विधवा हुई। थोड़े दिन में वह अपने पितृ-गृह को भार-स्वरूप प्रतीत हुई। वह अपने ससुराल भेज दी गई। वहाँ उस पर अत्याचार होने लगे। वह उम्र प्रकृति के कारण प्रत्युत्तर देती थी। एक दिन उसने अपने किसी ननद की भद्दी चाल देख कर उसे समझाया। इस पर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया और नौकर के साथ अपराध जगा कर वह घर से निकाल बाहर की गई। वह एक सुसज्जमान फ़कीर के जाल में फँसी। पर उसी की छुरी से उसे मार कर निकल भागी। क्योंकि वह उसको अबला समझ कर उससे असावधान था। वहाँ से निकल कर वह एक सज्जन के द्वारा एक विधवा-आश्रम में रख दी गई। वहाँ के अधिपति की उस पर कुदृष्टि हुई। उसने उनसे समय और एक नौकर माँग लिया। अन्त में उसी नौकर को प्रलोभन देकर उसकी सहायता से वह निकल भागी। वह उस नौकर के साथ एक नगर में रेल पर से उतरी। वहाँ स्नान करके और भोजन लेकर वे जोश एक निकटस्थ वन में जा रहे हैं। —सं० ‘चौद’]



पत्र-संख्या ३४

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
उसे समझ कर है सन्तोष,
इस प्रकार के दो राष्ट्रों में
होगा नहीं बैर का दोष !

चाहेंगे वे कभी न करना
एक दूसरे को निस्सार ।
वरन सहायक बन जावेंगे
आपस में करके सुविचार ॥

नहीं कर सकेंगे वे दोनों
एक दूसरे का अपमान ।
दोनों को ही हो जावेगा
दोनों के हित का शुभ ध्यान ॥

❀ यदि होगी तो स्पर्धा होगी
❀ उनमें सहित सुकोमल भाव ।
❀ होगा अभिनन्दन आपस में
❀ एक दूसरे पर सुप्रभाव ॥

❀ भूल गई थी बात परस्पर
❀ आकर्षण की, मैं थी भ्रान्त ।
❀ बहिन, समझ में अब आया है
❀ उनके सम बल का सिद्धान्त ॥

❀ बहिन, तुम्हारी तर्क-प्रणाली
❀ परम गहन है—अति सुन्दर ।
❀ परम चकित मैं रह जाती हूँ
❀ देख तुम्हारी बुद्धि प्रखर ॥

❀ यह लिखना, सम्बन्ध परस्पर
❀ उनमें तब कैसा होगा ?
❀ चित्रित करना नर-नारी का
❀ जीवन तब जैसा होगा ?

❀ बहिन, सुनाती हूँ तुमको फिर
❀ मैं अपना आगे का हाल ।
❀ सुस्ताने के बाद चले हम
❀ फिर आगे, धीमी थी चाल ॥

❀ मुझे छेड़ता जाता था वह,
❀ पर मैं जाती थी चुपचाप ।
❀ जब गम्भीर मनुज होता है
❀ नहीं बोलता अपने आप ॥

❀ जब हम पहुँच गए वन में
❀ तब सोचा मैंने यह मन में ।
❀ उचित न बाधा पहुँचाना है
❀ इसके अन्तिम भोजन में ॥

❀ उसने कहा—“साथ ही खाएँ ।”
❀ मैंने कहा—“अलग खाएँ ”
❀ वह बोला—“जैसी इच्छा हो,
❀ आओ यहीं बैठ जाएँ ।”

❀ अलग-अलग बैठे हम दोनों,
❀ भोजन किया, हुए सन्तुष्ट ।
❀ तब तो लगा छेड़ने मुझको
❀ आकर बहुत पास वह दुष्ट !

❀ मैंने उसको समझाया यों—
❀ “सेवक हो तुम दूर रहो,
❀ इस प्रकार की बातें मुझसे
❀ इसके आगे तुम न कहो ।

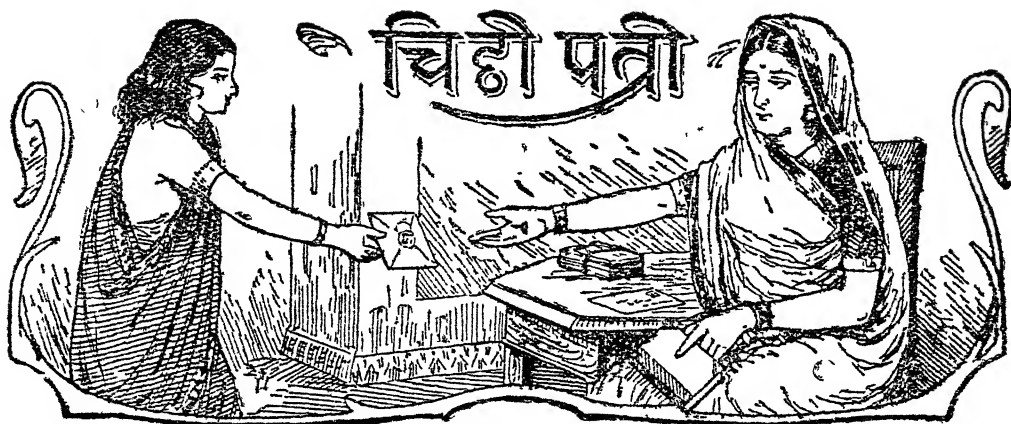
❀ क्रोध आगया उसको, उसने
❀ पकड़ा मेरा बायाँ हाथ ।
❀ और गिराना मुझे चाहता
❀ था तुरन्त धक्के के साथ ॥

❀ मुक्त हाथ से लेकर छुरिका
❀ मैंने उस पर किया प्रहार ।
❀ इसके लिए न वह प्रस्तुत था
❀ अति थी तीक्ष्ण छुरी की धार ॥

❀ शीघ्र भूमि पर गिरा दुष्ट,
❀ मैं चढ़ बैठी उसके ऊपर ।
❀ उसके त्रण से अब बहती थी
❀ भयङ्कर रक्तधार भू पर ॥

❀ उस पर किया प्रहार पुनः,
❀ यों कर डाला उसका संहार ।
❀ दुर्गा थी प्रत्यक्ष उस समय
❀ मैं, वह था भीषण व्यापार ॥





चिठी पत्र

एक सत्साहसी सुपात्र की आवश्यकता

बिहार प्रान्त के एक प्रसिद्ध स्थान से एक शिक्षिता बहिन ने लिखा है :—

प्रिय सम्पादक जी,

सादर नमस्ते ! गत ११ मार्च सन् १९३३ को मेरे परिवार में एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई। मेरा निवास-स्थान एक छोटे से गाँव में है। उस दिन इस गाँव से पन्द्रह कोस पर एक बारात गई थी और गाँव भर के प्रायः सभी पुरुष बारात में चले गए थे। मेरे घर के माजिक भी बारात में चले गए थे। घर में एक वृद्ध नौकर था, वह भी रात को ही लकड़ी लाने के लिए बैलगाड़ी लेकर जङ्गल की ओर चला गया। घर में सिर्फ ८०-९० वर्ष के एक वृद्ध, एक ५५ वर्ष की वृद्धा और एक सोलह वर्ष की अविवाहिता लड़की रह गई थी। रात के प्रायः १ बजे लड़की × × × के लिए बाहर निकली। उधर पड़ोस के ही चार बदमाश, जिनमें एक सुसज्जमान और तीन हिन्दू थे, शायद पहले से ही छिपे थे। बस, लड़की के घर से निकलते ही उन्होंने उसे पकड़ लिया और उसका मुँह बन्द कर दिया। इसके साथ ही वह बेहोश भी कर दी गई। गुपटे लड़की को उठा कर गाँव से कोस भर की दूरी पर एक मैदान में ले गए। वहाँ गाड़ी तैयार थी। उस पर बिठा कर उसे और भी दूर ले गए। जब लड़की होश में आई तो बदमाशों ने उसे ज्ञान का तथा बिरादरी और बदमासी का सब दिखा कर छिपा रक्खा।

इधर घटना के थोड़ी देर बाद ही लड़की की बुढ़ाई को कुछ आदमियों के पैरों की आहट सुनाई दी और

कुछ सन्देह भी हुआ। वह तुरन्त बाहर निकली और शोर मचाया। गाँव के कुछ लोगों ने बदमाशों का पीछा भी किया, परन्तु बदमाश लड़की को लेकर निकल गए।

अन्त में पुलिस को खबर दी गई। अपराधी पकड़े गए और अदालत से उन्हें दण्ड भी मिला। परन्तु दण्ड जैसा मिलना चाहिए, वैसा न मिला। क्योंकि आज-कल न्याय पाने के लिए भी रुपए की ही ज़रूरत होती है। रुपए के बल से गुरुतर अपराध भी हलका हो जाता है। अस्तु—

महाशय जी, इसी जान्छिता लड़की के पाणिग्रहण के लिए एक सत्साहसी, सहृदय, सुधार-प्रेमी, स्वस्थ और शिक्षित नवयुवक की आवश्यकता है। लड़का किसी भी जाति का, परन्तु वैदिक धर्म का अनुयायी हो। अगर बिहार प्रान्त का कोई नवयुवक इसके लिए अग्रसर हो तो अति उत्तम।

लड़की १६ वर्ष की है। शरीर का रङ्ग पक्का और गठन सुन्दर है। स्वास्थ्य भी अच्छा है। वास्तविक सुन्दरी है। कुछ पढ़ना-लिखना भी जानती है। बुद्धिमती और सांसारिक कार्यों में अति निपुण है। लड़की के तीन शिक्षित सहोदर उपयुक्त पढ़ों पर नियुक्त हैं। पिता-माता के अलावा दादा-दादी भी जीवित हैं।

आपकी,

× × ×

[हमारे पास ऐसे कितने ही सुधार-प्रेमी नवयुवकों के पत्र आते हैं, जो जाति-वैति का बन्धन तोड़ कर किसी सुशीला कुमारी या विधवा का पाणिग्रहण करना चाहते हैं। कई विधवा-



विवाहेच्छुक तो ऐसे हैं, जो प्रचुर तिलक-दहेज के प्रलोभन को ठुकरा कर किसी विधवा का ही उद्धार करना चाहते हैं। हमारे खयाल में ऐसे उदार हृदय, सुधार-प्रेमी नवयुवकों के लिए उपर्युक्त अवसर स्वर्ण-सुयोग है। यही उनकी सहृदयता, सुधार-प्रियता और सत्साहस की परीक्षा का अवसर है। जो सत्साहसी युवक इस लाञ्छिता बालिका के उद्धार के लिए अग्रसर होगा, वह हिन्दू-समाज के सामने एक उज्ज्वल आदर्श रखेगा और सुयश का भागी होगा। हमारा विश्वास है कि बिहार के शिक्षित युवक समाज-सुधार के काम में किसी से पीछे नहीं हैं। बिहारियों ने परदे की दकियानूसी प्रथा को एक ही दिन में ठुकरा दिया, तिलक-दहेज की प्रथा के विरुद्ध भी उन्होंने जहाद खड़ा कर दिया है और अन्य प्रकार के सामयिक सुधारों के लिए भी कार्य कर रहे हैं। इसलिए हमें आशा है कि अवश्य ही कोई बिहारी युवक इस पुण्य कार्य के लिए अग्रसर होगा।

इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातों की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले सज्जन उत्तर के लिए डाक-टिकट भेज कर हमसे पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। —स० 'चौद']

✻ ✻ ✻

सङ्कोच या मूर्खता

राजपूताने से एक बहिन लिखती हैं :—

पूज्यवर,

मैं एक उच्च गौड़ ब्राह्मण कुल की स्त्री हूँ। मेरी उम्र इस समय २२ साल की है। मेरा विवाह हुए दस साल हो गए हैं। पिता जी देशी राज्य के एक ऊँचे अफसर हैं। ससुर जी भी सरकारी नौकर हैं। पतिदेव पढ़ते हैं। परन्तु गत दस वर्षों में वे एक दिन भी मुझसे नहीं बोले। एक दिन संयोगवश एकान्त में उनसे भेंट होगई और मालूम हुआ कि उनके मुझसे न बोलने का कारण एक बीमारी है—कमज़ोरी, जो आजकल बहुत से नवयुवकों को हो जाती है। मेरे पतिदेव लज्जावश इस बीमारी का हाल किसी से नहीं कहते और न कोई दवा-

इलाज ही करते हैं। मैंने एक दिन लज्जा छोड़ कर सास जी से सब हाल कहा तो वे उलटे मुझ पर बिगड़ उठीं, मुझे नाहक मारा-पीटा और नैहर भेजवा दिया। तब से मैं यहीं पड़ी हूँ। आप मेरी बेशरमी को क्षमा करके इस पत्र को 'चौद' में छाप दें। क्योंकि मेरे पतिदेव 'चौद' बराबर पढ़ते हैं। शायद इस पत्र के सम्बन्ध में आपकी राय पढ़ कर उनकी आँखें खुलें और वे अपने रोग की दवा कराने की चेष्टा करें, अन्यथा मेरे भाग्य में जो कुछ बढ़ा है, वह तो भोगना ही पड़ेगा।

आपकी,

एक अभागिनी

[हमें ऐसे युवकों की निर्बुद्धिता पर तरस आता है, जो अपनी मूर्खता के कारण ऐसे रोगों के शिकार बन जाते हैं और फिर लज्जावश उसे छिपाने की चेष्टा करते हैं! कुछ समझ में नहीं आता कि इन अछू के दुश्मनों को क्या कहा जाए। अस्तु, उपर्युक्त पत्र की प्रेषिका के लायक पति महोदय से हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे थोड़ी देर के लिए अपनी लज्जा छोड़ें और अपने गुरुजनों से अपनी बीमारी का सब हाल कह कर उसका इलाज करावें। लज्जा के फेर में पड़ कर अपनी पत्नी की जिन्दगी बरबाद कर डालना कोई बुद्धिमानी नहीं है। साथ ही इस बहिन को भी हमारी सलाह है कि वे इस बात को अपने माता-पिता के कानों तक पहुँचा दें। ऐसे मामले में लज्जा नितान्त मूर्खता है। इस लज्जा और सङ्कोच का परिणाम आगे चलकर बड़ा ही भीषण होगा, इसलिए अभी से सावधान हो जाना उचित है।

—स० 'चौद']

✻ ✻ ✻

लाइलाज मर्ज़

एक बिहारी सज्जन लिखते हैं :—

सम्पादक जी, सादर नमस्ते !

आप तो सदा ज़ियों के पक्ष में रहते हैं, फिर भी मैं अपनी कहानी आपको सुनाना ही वाजिब समझता हूँ।



मैं धनी नहीं हूँ, पर आनन्द से रोटी-दाल चलती है; असाधारण विद्वान नहीं हूँ, पर पढ़ा-लिखा अवश्य हूँ; पहलवान नहीं हूँ, पर साधारण लोगों से अधिक स्वस्थ हूँ। अवस्था ३२ साल की है।

मेरी पत्नी, सुना था, किसी ज़माने में रामायण इत्यादि पढ़ लेती थीं, पर अब तो धोबी का हिसाब भी मुझे ही रखना पड़ता है। गृहस्थी के खर्च का हिसाब ज़बानी होता है, जिसमें मुझे भय नहीं, विद्वान है कि नौकर उन्हें ठगते हैं। स्वास्थ्य की हालत यह है कि ५ वर्ष में मैं प्रायः एक हज़ार रूपए व्यय कर चुका। डॉक्टर की निगाह में जो अपथ्य है, उन्हें वही पसन्द आता है। इसलिए रोग छाया की तरह पीछे लगा रहता है। आज साँसी तो कल बुझार। आप कहेंगे, पढ़ते क्यों नहीं? बात भी ठीक है। पर दुःख है कि आपकी रुचि पढ़ने की तरफ़ बिल्कुल नहीं है। विचित्र स्वभाव है। पुस्तकों में दो-चार रूपए खर्च भी किया, पर अब वह आलमारी के कोने आबाद कर रही हैं। कुछ नहीं तो रोग का बहाना ही ज़बरदस्त है—उसमें भी सर-दर्द और पेट-दर्द, जिसका थर्मामीटर क्या, डॉक्टर का चचा भी पता नहीं लगा सकता। कुर्ते में बटन टाँकने के लिए भी मुझे स्वावलम्बन ही से काम लेना पड़ता है। सीने की मैशीन एक टेबुल पर पड़ी ख़राब ले रही है।

कहने का सारांश यह कि यदि मैं समझता हूँ कि पढ़ो-लिखो तो जवाब यह मिलता है कि “तबीयत ठीक नहीं रहती, क्या करूँ?” यह कहिए कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए उचित भोजन और उचित व्यायाम करो तो अपने भाग्य को कोसती हैं कि “मेरा पेट भर अन्न भी खाना किसी से नहीं देखा जाता।” (मैं भूल ही गया था, आप माँसाहारी हैं और मैं शाकाहारी)। सीने-पिरोने को कहो तो कहेंगी कि “जो सीना-पिरोना नहीं जानती क्या उसका संसार नहीं चलता?” समझाया कि “युग उत्थति का है, सब उत्थति कर रहे हैं।” तो आप साक्षात् सन्तोष की मूर्ति बन कर कहती हैं—“अब मेरी आधी उमर (२५ वर्ष) बीती, दो बच्चे हुए, यही बहुत है।”

सब रोगों का कारण यह है कि उनका बचपन बड़े जाड़-प्यार से बीता है, दो भाई-बहिन थे और पिता अच्छी नौकरी करते थे। पर “सब दिन नार्हि बराबर

जात।” पिता की मृत्यु के बाद जाड़ले पुत्र अलग दुःख पा रहे हैं और जाड़ली पुत्री अलग दुःख दे रही हैं।

मैं जानता हूँ, रोग असाध्य है। जिसकी नस-नस में विलासिता, आलस्य और जिह्माजोलुपता भरी है, वह आज किसी के समझाने-बुझाने से थोड़े ही छूट सकती है? पर पाठको, ज़रा होश सँभाल कर दृष्टि बनना। “अमुक डिप्टी कलक्टर मेरे ससुर हैं,” यह डोंग भले ही मित्रमण्डली में आपका सिर उँचा कर दे, पर जिसके साथ जीना-मरना है, उसके स्वभाव का भी ज़रा ख़याल रखना चाहिए।

भवदीय,

× × ×

[हम इन सज्जन के प्रति अपनी आन्तरिक समवेदना प्रगट करते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि ‘चौद’ स्त्रियों का अन्ध पक्षपाती नहीं, बल्कि न्याय और औचित्य का ही पक्षपाती है। वह स्त्रियों को चुस्त-दुरुस्त, फुर्तीली, गृहकार्य-कुशला और पतियों की सच्ची सहयोगिनी के रूप में देखना चाहता है, ऐसी पलङ्ग का भार-स्वरूपा देवियों को तो वह दूर से ही नमस्कार करता है। आलस्य और विलासिता चाहे स्त्री में हो या पुरुष में, बुरी है; जीवन को नष्ट कर देने वाली है। इसलिए इस सज्जन की पूर्व-प्रशंसिता श्रीमती जी से हमारा निवेदन है कि उनसे और कुछ न हो सके तो स्वास्थ्य-रक्षा के खयाल से प्रतिदिन सुबह-शाम खुली हवा में थोड़ा सा टहल लिया करें और चौबीस घण्टों में केवल एक ही घण्टा कुछ पढ़ लिया करें। क्योंकि यह आलस्य और विलासिता की आदत उनके ही लिए नहीं, वरन् उनके बच्चों के लिए भी बुरी है। उन्हें जानना चाहिए कि बच्चों पर माता की भली-बुरी आदतों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। क्या हम आशा करें कि वे अपने बच्चों की भलाई के लिए अपने आलस्य और विलासिता को छोड़ने की चेष्टा करेंगी?

—स० ‘चौद’]





विषम धर्म-सङ्कट

एक सज्जन ने लिखा है :—

मान्यवर सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

मैं आपका 'चौद' सदा आदर और प्रेम के साथ पढ़ा करता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि समाज-सेवा आपके जीवन का लक्ष्य है। उसी नाते मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं अभाग्यवश बी० ए० पास तो कर चुका हूँ, पर जीवन का लक्ष्य अभी तक निश्चित नहीं कर सका हूँ। कृपा कर मेरी करुण-कहानी आद्योपान्त पढ़ जायें और उचित सम्मति देकर मेरे दिल को तसल्ली देने की कृपा करें।

अब तक मैंने विवाह नहीं किया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि लड़की मुझसे अधिक नहीं तो कम से कम मेरे समान ही सुन्दर ज़रूर हो। धनवान घर की हो वा न हो, पर मिडिल तक पढ़ी हुई ज़रूर हो और स्वभाव शान्त तथा सरल हो। ये तीन आकांक्षाएँ मेरे मन में बसी हुई हैं और शायद ये अनुचित नहीं हैं। मैं इसी फ़िक्र में था कि संयोगवश मुझे एक गरीब घर की देहाती लड़की मिली। उसमें यथेष्ट सौन्दर्य, जैसा मैं चाहता था, वह तो नहीं है, परन्तु खराब भी नहीं है। पढ़ी-लिखी नहीं है, परन्तु गरीब घर की होने के कारण सुशीला मालूम पड़ती है। मेरी योग्यता देख कर उसके अभिभावकों ने उस लड़की को दिखा दिया। देखने में अच्छी मालूम पड़ी और ऐसा विचार करके कि उसे पढ़ा-लिखा लूँगा, मैंने शादी करने का वचन दे दिया।

परन्तु अब एक और लड़की का पैगाम आया है। वह लड़की मेरे मन मुताबिक है। पहली से अधिक सुन्दरी है। मिडिल तक की योग्यता भी रखती है और स्वभाव भी अच्छा है। अब यह मेरी इच्छा पर निर्भर है कि मैं पहली से शादी करूँ वा दूसरी से। मैं पहली के लिए ज़बान दे चुका हूँ और वह लड़की मुझसे शादी होने की आशा से पढ़-लिख भी रही है। परन्तु अभी वह कमसिन है, तेरह-चौदह वर्ष की उमर है। दूसरी लड़की सत्रह-अठारह की है। इसके माता-पिता भी शादी के लिए बहुत व्यग्र हैं और सब तरह से मेरे मनोबुद्ध होने के कारण मन गवाही देता है कि इसीसे शादी करता तो अच्छा था। परन्तु जब मैं अपने वचन

का खयाल करता हूँ, तो विचार उत्पन्न होता है कि ज़बान देकर पूरा न करना विश्वासघात करना होगा। इसी धर्मसङ्कट में मेरी दशा साँप-बछ्छन्दर की सी हो रही है। अब आप जिसमें मेरी भलाई देखें, एक बात निश्चित करके अपने 'चौद' में छापने की कृपा करें।

आपका,

एक सङ्कटापन्न

[तेरह-चौदह वर्ष की बालिका के साथ विवाह करने की सलाह देना बाल-विवाह का समर्थन करना है, जो हमारे उसूल के खिलाफ है। बालविवाह का काफ़ी विरोध हो चुका है और उसकी बुराइयों भी लोगों से छिपी नहीं हैं, इसलिए उसके विषय में अधिक कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। ऐसी एक बालिका से विवाह करने का वचन देकर उपर्युक्त युवक ने मूर्खता की है। इस मूर्खता का उसे प्रायश्चित्त करना होगा। इसलिए वह युवक या तो तीन-चार वर्ष तक प्रतीक्षा करे; उस लड़की को सत्रह-अठारह साल की हो जाने दे और तब उसकी अनुमति लेकर उसका प्राणिग्रहण करे। अथवा दूसरी लड़की से, जो सत्रह-अठारह साल की है, विवाह कर ले और इस तेरह-चौदह साल वाली बालिका को अपनी बहिन समझ कर यह प्रतिज्ञा करे कि उसके पढ़ने-लिखने में तन-मन और धन से सहायता प्रदान करेगा और जब वह विवाह योग्य हो जायगी तो किसी उपयुक्त पात्र से उसका विवाह करा देगा। हमारी संमति में यह समस्या इन्हीं दो तरीकों से सुलभ सकती है।

—स० 'चौद']

एक समस्या

श्रीयुक्त सम्पादक जी,

मेरे एक मित्र, जोकि आदि गौड़ ब्राह्मण हैं, एम० ए० में पढ़ रहे हैं। दो वर्ष पूर्व उनका प्रेम एक परिचित कुल की सनाढ्य ब्राह्मण लड़की से हो गया था। लड़की के अभिभावक भी इन्हीं के साथ उसका सम्बन्ध करना



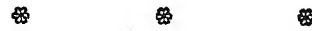
चाहते हैं; किन्तु मेरे मित्र के अभिभावक इस सम्बन्ध के असामान्य गोत्र का होने से इसके लिए सहमत नहीं हैं। मेरे मित्र का निश्चय है कि वे ऐसा ही उपयुक्त सम्बन्ध करेंगे, क्योंकि उनकी बालकपन से ही यह इच्छा रही है कि वे विवाह सम्बन्ध में गोत्रों की ऐसी सङ्कीर्णता तथा दहेज प्रथा को तोड़ें। यों तो कई स्थानों में सनाढ्य और गौड़ों में सम्बन्ध होता भी है। उधर लड़की के अभिभावकों की भाँ ऐसी सम्पन्न दशा नहीं है कि वे हज़ारों रुपया देकर लड़की का सम्बन्ध कर सकें। ऐसी दशा में, जब कि मेरे मित्र अपनी पढ़ाई के व्यय के लिए अपने अभिभावकों पर निर्भर हैं तथा विवाह सम्बन्ध भी उसीसे करना चाहते हैं, उनको क्या करना उचित है? क्या वे इस कार्य को अपने अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध भी कर सकते हैं?

—‘चाँद’ का एक ग्राहक

[निश्चय कर सकते हैं। इस तरह की प्राचीन दक्षियानूसी प्रथाओं को तोड़ना प्रत्येक विचारशील युवक का परम कर्तव्य है। इसके लिए उन्हें अगर कुछ क्षति भी उठानी पड़े तो परवा नहीं। हम तो बार-बार कह चुके हैं कि हमारे समाज में तिलक-दहेज, गोत्र-विचार और बाल-विवाह आदि जो कुरीतियाँ प्रचलित हैं, उनके प्रश्रयदाता ये ही कमजोर दिल वाले युवक हैं। वे अपने कॉलेजों के ‘डिवेटीङ्ग’ क्लबों में तो सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ा करते हैं और ऐन मौके पर उनकी मातृ-पितृ-भक्ति चर्चा उठती है और वे अभिभावकों की नाराजगी की दुहाई देकर उन्हीं कुप्रथाओं के आगे सर झुका देते हैं! हमने बहुत से एम० ए० पास दुल्हों को विवाह के समय घुटनों के नीचे तक लम्बा-जामा, पैरों में चाँदी के कड़े पहने तथा आँखों में काजल लगाकर पूर्ण पँवरिया बन देखा है। यही नहीं, बाज-बाज तो विवाह के समय दहेज लेने के लिए पूरे ‘महापात्र’ बन जाते हैं। खीर खाने के समय पूरी रक्कम पेंटे बिना कौर ही नहीं उठाते। अस्तु। एक एम० ए० के विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक

नहीं कि पढ़ाई का खर्च बन्द हो जाने के भय से अपने अभिभावक के अनुचित हठ के सामने सिर झुकावे। वह तो स्वावलम्बी बन कर बड़ी आसानी से अपनी शिक्षा समाप्त कर सकता है। इसलिए उपर्युक्त पत्र के लेखक महाशय अपने मित्र को साहसी और स्वावलम्बी बनने की सलाह दें।

—स० ‘चाँद’]



पति की निष्ठुरता

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

आगे निवेदन यह है कि आपके ‘चाँद’ में चिट्ठी-पत्री पढ़ कर मैं भी सलाह की आशा से आपकी सेवा में यह पत्र भेज रही हूँ, और मुझे पूर्ण आशा है कि आप मुझ अवला को ‘चाँद’ द्वारा कोई ऐसा उपाय बतलाने की कृपा करेंगे जो मेरे हृदय को शान्ति पहुँचाए। मेरी भी वही हालत है, जो गत फ़रवरी के ‘चाँद’ में छपी विद्यार्थी की पत्नी की है। सब यत्न करके हार गई, परन्तु सफल नहीं हुई। आठ साल शादी को हो गए और एक बच्चा भी है। परन्तु इतने सालों में भी मैं अपने पति को नहीं पहचान सकी। प्रेम तो मानों वे जानते ही नहीं और मुझे उनसे इतना प्रेम हो गया है कि मैं उनसे एक मिनिट भी अलग रहना पसन्द नहीं करती। घर की सासों के झगड़े तो आप जानते ही हैं कि हिन्दू घराने की बहुएँ किस तरह दुब कर रहती हैं। मेरी तन्दुरुस्ती बिल्कुल खराब हो गई है। यही चिन्ता रहती है कि इतनी लम्बी ज़िन्दगी कैसे कटेगी! पति की तरफ़ से तो मैं निराश हो चुकी। क्योंकि मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वे मेरा कभी खयाल न करेंगे। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं अपनी ग़रीब बहिनों की सेवा करूँ, परन्तु कोई भी मेरा सहायक नहीं। दूसरे, ससुराज रूपी कैदखाने में पड़ी सड़ रही हूँ। सम्पादक जी, मुझे रईसों से नफ़रत हो गई है। क्योंकि मैं अमीर घराने की होने पर भी सुखी नहीं हूँ। कृपा करके आप ‘चाँद’ द्वारा कोई ऐसी युक्ति बतलाइए, जिससे मैं पति-प्रेम पा सकूँ।

दुःखिनी,

—शान्तिबता



[अफसोस है कि इस बहिन की हम कुछ भी सहायता नहीं कर सके। क्योंकि पति-प्रेम प्राप्त कराने का कोई उपाय हमें नहीं मालूम। और जिस निष्ठुर हृदय में मनुष्यत्व की तरी नहीं होती, वहाँ प्रेम उपजता भी नहीं। इसलिए इस बहिन के लिए इसके सिवा और कोई उपाय ही नहीं है कि प्रेम के प्रतिदान की आशा छोड़ कर अपने पति से प्रेम करती रहें और हिन्दू-समाज की भट्टी में आजन्म जलती रहें। वे अपनी गरीब बहिनों की कुछ सेवा करना चाहती हैं, परन्तु यह भी उस समय तक सम्भव नहीं, जब तक कि वे ससुराल के क़ैदखाने से निकलने का साहस न करें। फलतः यह समस्या इतनी जटिल है कि इसका कोई समाधान नहीं।

—स० 'चौद']



एक विवेचक विधुर

श्रीमान् सम्पादक जी, नमस्ते !

आप दीन-दुस्त्रियों को 'चौद' द्वारा उचित सलाह देते हैं, इसी आशा से मैं भी अपना दुख आप से प्रगट करता हूँ। आशा है, आप मुझे भी उचित परामर्श देंगे।

मेरी धर्मपत्नी तीन म स हुए मुझे छोड़ स्वर्ग-धाम सिधार गईं, केवल एक पुत्रा एक वर्ष की है। पर उसका होना भी नहीं होने के बराबर है, क्योंकि उसकी अवस्था शोचनीय है। मेरे मित्र मुझे दूसरा विवाह करने के लिए बाध्य कर रहे हैं। मैं उच्च कुल का ब्राह्मण हूँ। मेरी अवस्था ४० वर्ष पार कर चुकी है। हमारी जाति में १३ वर्ष से बड़ी लड़की नहीं मिलती है। सो भी गुप्त रूप से उसका मूल्य सैकड़ों रूपए कन्या के पिता को देना पड़ता है। मैं दूसरा विवाह करके एक कन्या

की ज़िन्दगी बिगाड़ने को तैयार नहीं हूँ। इसे मैं नीच और निन्दनीय कार्य समझता हूँ। मित्र मुझे कञ्जूस और कृपण आदि की उपमा देते हुए मुझे दूसरा विवाह करने के लिए बार-बार तङ्ग करते हैं। अस्तु, अब आप कृपा करके मुझे उचित सलाह दीजिए, ताकि मैं इस मार्ग का अवलम्बन न करूँ।

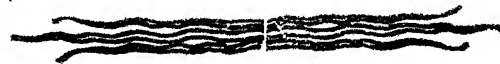
—आपका एक ग्राहक

[चालीस वर्ष से भी अधिक अवस्था हो जाने पर, जो लोग आपको तेरह वर्ष की लड़की से विवाह करने की सलाह दे रहे हैं, वे आपके मित्र नहीं, महान् शत्रु हैं। ऐसे लोगों के लिए 'मित्र' शब्द का प्रयोग करके आपने उस शब्द का अपमान किया है। आपने अपने पत्र में जो विचार प्रगट किए हैं, वह आपके उपयुक्त हैं। अब कदापि विवाह के चहले में न फँसिए, नहीं तो ज़िन्दगी बरबाद हो जाएगी। अन्तिम समय सुख से मरने का भी अवसर न मिलेगा। तेरह वर्ष की बालिका तो आपको अपना 'बाबा' समझेगी—पति नहीं। आपके समाज में कोई तीस-पैंतीस साल की विधवा मिले तो आप खुशी से उसके साथ पुनर्विवाह कर सकते हैं। अगर आप में साहस हो तो किसी भी जाति की ऐसी विधवा से शादी कर सकते हैं। इसमें कोई पाप नहीं है, वरन् अपने और समाज के हित के लिए ऐसा करना उचित ही है। परन्तु बुढ़ौती में तेरह वर्ष की बालिका के साथ विवाह करना तो घोर अन्याय होगा। इसलिए आप अपने मित्रों से स्पष्ट कह दीजिए कि :—

“अबलों नसानो अब ना नसैहों।

राम कृपा भव निसा सिरानी जागे पुनि न डसैहों॥”

—स० 'चौद']





आह जो दिल से निकाली जायगी,
क्या समझते हो कि खाली जायगी ?
इस नज़ाकत पर यह शमशीरे^१ जफ़ा,
आपसे क्योंकर सँभाली जायगी ?
ज़िन्दगी की कल है पेचीदा तो ख़ैर,
सौँस ले लेकर चला ली जायगी !

—“अकबर” इलाहाबादी

उनका खज़र नज़र नहीं आता,
कोई सर पर नज़र नहीं आता !
उनकी सूरत नज़र जब आती है,
दिले मुज़तर^२ नज़र नहीं आता ।
कर गई काम तेरो^३ नाज़ मगर,
ज़लूम दिल पर नज़र नहीं आता ।
भीड़ ऐसी है जॉनिसारों^४ की,
वह सितमगर^५ नज़र नहीं आता ।
उसका जलवा है ज़र्रे-ज़र्रे में,
और इस पर नज़र नहीं आता ।
क्या कहूँ अपने दिल की बेताबी,
वह जो दम भर नज़र नहीं आता ।
“नूह” मेरी नज़र में कोई भी,
उनसे बेहतर नज़र नहीं आता ।

—“नूह” नारवी

खुल नहीं सकती गिरह तकदीर की ।
क्या चले तकदीर से तदबीर की ।

१—तलवार, २—बेकरार, ३—तलवार, ४—निष्ठा-
वर करने वाले, ५—ज़ाज़िम ।

आते-आते राह से वह फिर गए,
देखिए तो चाल चख़ें^६ पीर की ।
आँखें झपकी जाती हैं बेअख़तियार,
क्या हवा है दामने शमशीर^७ की ।

—“यास” अज़ीमाबादी

तड़पते हैं हम वह जो तड़पा रहे हैं,
उन्हें क्या, हमें भी मज़े आ रहे हैं ।
जो पूछा कि क्यों दिल में लेते हो चुटकी,
वह बोले तबीयत को बहला रहे हैं ।
मिज़ाज आप क्या पूछते हैं हमारा,
लगाने की दिल की सज़ा पा रहे हैं ।
“कमाल” उनको आया तसल्ली न देना,
मेरे दिल को वह और तड़पा रहे हैं ।

—“कमाल” लखनवी

तुम्हें याद हो या न हो हज़रते दिल,
हमें याद है दिल लगाना किसी का ।
मुहब्बत है, नफ़रत है, आख़िर यह क्या है,
हमें देख कर मुँह बनाना किसी का ।
मिला ख़ूब आराम मिट्टी में मिल कर,
फ़तक^८ बन गया शामियाना किसी का ।
कोई दिल का देखे न तिरछी नज़र से,
ख़ता कर न जाए निशाना किसी का ।
बुरा वक्त जिस वक्त आता है “विस्मिल”
नहीं साथ देता ज़माना किसी का ।

—“विस्मिल” इलाहाबादी

६—आकाश, ७—तलवार, ८—आकाश ।



अयोध्या का इतिहास—लेखक, साहित्य-रत्न, हिन्दी-सुधाकर, रायबहादुर लाला सीताराम जी, बी० ए०, उपनाम अवधवासी भूप; प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्त-प्रान्त, प्रयाग। आकार रॉयल १×८, पृष्ठ-संख्या २८८×१०, काराज, छपाई और गेटप सुन्दर, खजिल्द, मूल्य ३)

इस सुन्दर पुस्तक के सङ्कलन-कर्त्ता रायबहादुर लाला सीताराम जी वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों में हैं। आपने हिन्दी साहित्य की स्तुत्य सेवा की है। और इस वृद्धावस्था में भी इतिहास जैसे कठिन विषय पर उपर्युक्त बड़ी पोथी लिख डाली है, जिसमें वैदिक काल से लेकर अब तक का अयोध्या नगरी का इतिहास सङ्कलित है। पुस्तक बड़ी जोन और बड़े परिभ्रम से लिखी गई है। उपसंहार के अतिरिक्त इसमें सोलह अध्याय हैं, जिनमें अयोध्या के माहात्म्य से लेकर उसके प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास का वर्णन है। उपसंहार में भी इसी सम्बन्ध की बहुत सी ज्ञातव्य बातें संगृहीत हैं। इसके सिवा कोशल-राज का मान-चित्र, अयोध्या की परिक्रमा, अयोध्या के प्रमुख स्थानों का चित्र और वर्तमान शाकद्वीपीय राजवंश के कई नेरेशों के चित्र दिए गए हैं। भाषा सरल और पराजल है। पुस्तक में प्रूफ संशोधन सम्बन्धी कुछ भूलें रह गई हैं, इसलिए अन्त में एक विस्तृत शुद्धि-पत्र भी दे दिया गया है। परन्तु यह हिन्दी के लिए दुःख की बात है कि अभी तक हिन्दी प्रेसों ने प्रूफ-संशोधन सम्बन्धी दायित्व का भी अच्छी तरह ज्ञान नहीं प्राप्त किया है।

मधुकरी (द्वितीय भाग)—सम्पादक श्री० विनोदशङ्कर व्यास, प्रकाशक, साहित्य-

मण्डल, दिल्ली। आकार डबल क्राउन ११६, पृष्ठ-संख्या ४६६, छपाई और काराज साफ, मूल्य ३)

‘मधुकरी’ के पहले भाग में हिन्दी के सभी कहानी-लेखकों की कहानियाँ न जा सकी थीं, इसलिए व्यास जी ने यह दूसरा भाग संग्रह किया है। इसमें आजकल के कहानी-लेखकों की—जो सरे मैदान हैं—सुनी हुई कहानियाँ संगृहीत हैं। निर्वाचन स्वयं लेखकों ने ही किया है, जिनकी संख्या २३ है। लेखकों ने अपनी वही कहानी इस संग्रह में छापने को दी है, जो उन्हें सबसे अच्छी प्रतीत हुई है। वैसे तो इस संग्रह में आई हुई सभी कहानियाँ अच्छी हैं, परन्तु दो-तीन कहानियाँ तो हमें बहुत ही अच्छी लगीं। अस्तु, व्यास जी ने मधुकरी के रूप में हिन्दी की सुनी हुई कहानियों को एक जगह सन्निवेशित करके बड़ा काम किया है। आपके इस प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। कुछ को छोड़ कर बाकी कहानी-लेखकों के चित्र भी पुस्तक में हैं। प्रकाशकों ने भी पुस्तक को बढ़िया बनाने का प्रयत्न किया है। सुन्दर जिन्द के ऊपर आदर्शपूर्ण सचित्र वाद्यावरण लगा हुआ है।

रश्मि—रचयित्री, श्रीमती महादेवी वर्मा, बी० ए०; प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १३६; मूल्य लिखा नहीं।

हिन्दी की नवीन शैली के प्रसिद्ध कवियों में श्री० महादेवी जी का स्थान अन्यतम है। आपकी रचनाओं में मार्मिकता होती है। भाव अन्तस्तल से निकले होते हैं। भाषा मधुर और उपमाएँ अनूठी होती हैं। आपके



गम्भीर भावों को समझने के लिए दिमाग पर विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं होती, यह आपकी रचना की विशेषता है। इस संग्रह में आपकी ३५ रचनाएँ संगृहीत हैं। सभी रचनाएँ कवितापूर्ण हैं। उन्हें बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। हमें विश्वास है कि इस संग्रह का खूब समादर होगा। पुस्तिका की छपाई और गेटप सुन्दर है।

मकरन्द—लेखक, श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव। प्रकाशक, विश्व ग्रन्थावली कार्यालय, ५०६ दारागञ्ज, प्रयाग। आकार मसोला, पृष्ठ-संख्या १६०, मूल्य १।।)

इस 'मकरन्द' में श्रीवास्तव जी की १४ कहानियाँ संगृहीत हैं और जिस तरह कविता-क्षेत्र में आपका एक स्थान है, उसी तरह 'मकरन्द' पढ़ने से मालूम होता है कि कहानी-क्षेत्र में भी आपका एक स्थान रहेगा। क्योंकि आपने इस क्षेत्र में भी अपनी कृतित्व का ख़ासा परिचय दिया है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ हिन्दी की किसी भी अच्छी कहानी से ठकुर ले सकती हैं। मकरन्द की भूमिका "कहानी कैसे लिखनी चाहिए" पुस्तक के प्रणेता सुन्शी कन्हैयालाल जी, एम० ए०, एल्.एल्. बी० ने लिखी है और आपका कथन है कि "श्रीवास्तव जी की ही ऐसी कहानियाँ हैं, जो हमारी पिछड़ी हुई हिन्दी कहानियों को संसार की अन्य नामी कहानियों के मुक़ाबले स्थान दिला सकेंगी।" हम सुन्शी जी की इस उक्ति की तहेदिल से तार्किक करते हैं और इस कला में इतनी सफलता प्राप्त कर लेने के लिए श्रीवास्तव जी को बधाई देते हैं। पुस्तक निहायत साफ़-सुथरी छपी है। वाद्यावरण भी 'मकरन्द' नाम का छोटक है।

प्रेम-पत्र—लेखक, श्री० पद्मकान्त मालवीय; प्रकाशक, भारत पुस्तक भण्डार, प्रयाग। आकार मसोला, पृष्ठ-संख्या ६८, सजिल्द मूल्य १), राज-संस्करण मूल्य १।।)

कविवर पद्मकान्त जी मालवीय के इन पद्यात्मक प्रेम-पत्रों में एक अत्यन्त मर्मवेदनापूर्ण करुण कहानी छिपी है। ये पत्र उन्होंने अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी सौ० शारदा मालवीया की पवित्र स्मृति में लिखे हैं।

इसलिए इन पत्रों में छिपी हुई व्यथा को तो कोई भुक्तभोगी—वियोग-व्यथित हृदय विधुर ही अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकता है। परन्तु साधारण कवि-हृदय के लिए भी इनमें यथेष्ट सामग्री है। प्रत्येक पत्र की प्रत्येक पंक्ति एक आह—एक वेदना से ओत-प्रोत है। पत्रों की संख्या सात है। अन्त में 'हृदयोद्गार' शीर्षक के नीचे कवि की कतिपय अन्य रचनाएँ भी संगृहीत हैं। पुस्तक के आरम्भ में कवि और उनकी स्वर्गवासिनी पत्नी का चित्र भी है।

प्याला—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त 'प्रेम-पत्र' वाले, आकार तद्वत्, पृष्ठ-संख्या ९८, मूल्य १)

'प्याला' के प्रथम संस्करण की समाप्ति के बाद, अभी हाल में ही उसका यह 'संशोधित और परिवर्द्धित' संस्करण प्रकाशित हुआ है। इस प्याले में कविता की मादकता तो भरी ही है, साथ ही इसकी कविताएँ केदारा, इयाम कल्याण, खम्माच और विहाग आदि राग रागिनियों में लिखी गई हैं। फलतः इनमें कवित्व है और सङ्गीत भी। रचनाएँ नवीन शैली की और भाव-पूर्ण हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में रचयिता, उनकी धर्मपत्नी (जिन्हें पुस्तक समर्पित है) और विश्ववरेण्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र हैं। पुस्तक साफ़ कागज़ पर और अच्छी छपी है।

❀

आदर्श ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग की कुछ बालोपयोगी पुस्तकें

नीचे लिखी बालोपयोगी पुस्तकें भी उपर्युक्त आदर्श ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित हैं। पुस्तकों की भाषा, रङ्ग-विरङ्गी छपाई और रङ्ग-विरङ्गे आवरण आदि सभी बालो-पयोगी, सुन्दर और आकर्षक हैं। वच्चे इन पुस्तकों को पढ़ कर मनोरञ्जन के साथ-साथ यथेष्ट ज्ञानार्जन भी कर सकते हैं। इन बालोपयोगी पुस्तकों के नाम और दाम इस प्रकार हैं :—

सुनहली कहानियाँ—लेखक, श्री० नारायण विद्या-धर गोरे, पृष्ठ-संख्या ३१, दाम १)

मोतियों की माला—ले० श्री० अब्दुल रहमान, पृष्ठ-संख्या ६८, दाम १।।)



जादू का देश—लेखक, श्री० रामचन्द्र द्विवेदी
'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ८४, दाम ॥=)

उपदेश की कहानियाँ—लेखक, श्रीमती ज्योति-
र्मयी ठाकुर, पृष्ठ-सं० १०, दाम ॥=)

सोने का तोता—लेखक, श्री० रामचन्द्र द्विवेदी
'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ४४, दाम ॥=)

भोंपू—ले० श्री० गुर्ती सुब्रह्मण्यम्, विशारद, पृष्ठ-
संख्या १००, दाम ॥)

मस्तराम—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-
संख्या ७२, दाम ॥=)

सोने का हंस—लेखक श्री० रामचन्द्र द्विवेदी
'प्रदीप', पृष्ठ-संख्या ६६, दाम ॥=)

विचित्र देश—ले० श्री० गुर्ती सुब्रह्मण्यम् विशा-
रद, पृष्ठ-संख्या ६४, दाम ॥=)

हिंडोला—ले० श्री० रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप',
पृष्ठ-संख्या ९८, दाम ॥)

परी देश—ले० श्री० रामचन्द्र द्विवेदी, पृष्ठ संख्या
९२, दाम ॥=)

सोने की परी—ले० श्री० व्यथित हृदय, पृष्ठ-
संख्या ६५, दाम ॥=)

हँसी की कहानियाँ—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर,
पृष्ठ-संख्या ९३, दाम ॥)

जानवरों की कहानियाँ—ले० श्री० गणेश पाण्डेय,
पृष्ठ-संख्या ७६, दाम ॥=)

फुलफुड़ी—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर, पृष्ठ-संख्या
८३, दाम ॥)

हँसी के चुटकुले—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर,
पृष्ठ-संख्या १०२, दाम ॥)

सियार परिडत—ले० श्री० व्यथित हृदय, पृष्ठ-
संख्या ४५, दाम ॥)

चन्दा मामा—ले० श्री० व्यथित हृदय, पृष्ठ-संख्या
५४, दाम ॥=)

तन्दुरुस्त बालक—ले० श्री० ज्योतिर्मयी ठाकुर,
पृष्ठ-संख्या ५२, दाम ॥=)

यह पुस्तक बालकों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षा
देने के उद्देश्य से लिखी गई है।

गङ्गा-तत्त्वाङ्क—सम्पादक श्री० राहुल सांकृ-
त्यायन और श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त-
शास्त्री; प्रकाशक, 'गङ्गा'-कार्यालय कृष्णगढ़, सुल-
तानगञ्ज, भागलपुर; पृष्ठ-संख्या ३३७, मूल्य ३)

'गङ्गा' का यह 'पुरातत्त्वाङ्क' निस्सन्देह हिन्दी में एक
नई चीज़ है। क्योंकि पुरातत्व सम्बन्धी विशेषाङ्क निका-
लना तो अलग रहा, हिन्दी के मासिकों में इस विषय
के लेख भी बहुत कम देखने में आते हैं। ऐसी दशा में
'गङ्गा' के सञ्चालकों ने यह पुरातत्त्वाङ्क निकाल कर हिन्दी
का विशेष उपकार किया है। इस बृहद्विशेषाङ्क में पुरा-
तत्व विषय से दिलचस्पी रखने वाले बड़े-बड़े विद्वानों के
४३ लेख हैं। जिनमें पुरातत्व क्या है? उससे हमारे
जातीय इतिहास का क्या सम्बन्ध है? उससे हमारा क्या
उपकार हो सकता है? इसके द्वारा हमारे विलुप्तप्राय
इतिहास का कितना कुछ उद्धार हो सका है, प्राचीन
शिल्पा-लेखों का वर्णन, भारत के विभिन्न खँडहरों का
हाल, आदि पुरातत्व सम्बन्धी विविध विषयों पर प्रकाश
झाला गया है? इसके सिवा सैकड़ों पुराने खँडहरों,
पुरानी लिपियों और मूर्तियों के चित्र भी संग्रह करके
इस विशेषाङ्क में दिए गए हैं, इस विशेषाङ्क द्वारा हमारे
गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता
है। यह विशेषाङ्क हिन्दी की एक स्थायी सम्पत्ति है।
इसके द्वारा हिन्दी का उपकार और 'गङ्गा' के गौरव की
वृद्धि हुई है। अतः इसके सञ्चालक और सम्पादकों को
विपुल बधाई है।

रिलीफ पञ्चाङ्ग—१९९०। प्रकाशक, मार-
वाड़ी रिलीफ सोसाइटी, ७१ जगमोहन मल्लिक
लेन, कलकत्ता।

इसमें सम्बत् १९९० के पूर्ण पञ्चाङ्ग के सिवा
मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी द्वारा प्रस्तुत आयुर्वेदिक
औषधियों का विज्ञापन तथा अन्य बहुत सी ज्ञातव्य बातें
हैं। उक्त सोसाइटी इसे बिना मूल्य वितरण करती है।



पुरस्कार-प्रतियोगिता

क्षमा-प्रार्थना

कई अनिवार्य कारणों से इस बार कोई पहेली नहीं दी जा सकी। प्रतियोगिता-प्रेमी पाठक क्षमा करें। अगली बार अवश्य कोई मनोरंजक पहेली दी जावेगी।

गत बार की पहेली का परिणाम

गत अप्रैल मास के 'चाँद' में 'कहावत की खोज' शीर्षक पहेली दी गई थी, जिसका ठीक उत्तर यह है:—

“धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।”

इस पहेली के कुल ३७८ उत्तर हमारे पास आए हैं, जिनमें से एक उत्तर ग़लत बाक़ी ३७७ ठीक हैं। इसके लिए पुरस्कार की रक़म २५) रक्खी गई थी और नियम में यह लिख दिया गया था कि अगर एक से अधिक सज़नों के उत्तर ठीक आएँगे तो पुरस्कार की रक़म बराबर भागों में बाँट दी जाएगी। इसलिए उपयुक्त नियम के अनुसार ये रूपए ३७७ विजेताओं में बाँटे जायें तो प्रत्येक हिस्सा मनीऑर्डर कमीशन के लिए भी काफ़ी न होगा। इसलिए हमारी राय है कि अगर पुरस्कार-विजेतागण अनुमति प्रदान करें, तो उक्त २५) का 'चाँद' कार्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकें किसी ऐसे सार्वजनिक पुस्तकालय या वाचनालय को प्रदान कर दी जावें जो सवसाधारण के लिए उपयोगी हों। इसलिए हम निम्नलिखित सार्वजनिक संस्थाओं के नाम उपस्थित करते हैं और विजेताओं से प्राधना करते हैं कि वे इन संस्थाओं में से जिस किसी को पुस्तकें दिलवाना चाहते हैं, उनके नाम हमारे पास लिख कर भेजने की कृपा करें। जिस संस्था के लिए अधिक से अधिक सम्मतियाँ आएँगी, उसी को भेजने का खर्च काट कर पुस्तकें भेज दी जाएँगी और विजेता सज़नों की जानकारी के लिए इसकी सूचना आगामी मास के 'चाँद' में दे दी जाएगी।

हमारे इस प्रस्ताव के अतिरिक्त यदि पुरस्कार-विजेता इस रक़म के सदुपयोग की कोई और तद्वीर बता सकेंगे, तो हमें उसे काम में लाने में कोई आपत्ति

न होगी। क्योंकि यह रक़म उन्हीं की है और उन्हीं की इच्छा और अनुमति के अनुसार इसका उपयोग हो सकता है। हम तो अधिक से अधिक सम्मति के अनुसार कार्य करने को बाध्य हैं। संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

१—श्री० महिला सेवा-सदन, महिला विद्यापीठ, कास्थवेट राड, इलाहाबाद।

२—श्री० विद्यार्थी पुस्तकालय श्री रामबाग, इलाहाबाद।

३—नागरी-प्रचारक पुस्तकालय, तिमरनी।

४—श्री० सरस्वती पुस्तकालय राजनाद गाँव, बी० एन० आर०।

५—श्री० जलमीविकास पुस्तकालय, गोला गोकर्णनाथ (जलमीपुर-खीरी)

सूचना

कुछ सज़नों ने दिसम्बर मास की पहेली के निर्णय से असन्तोष प्रकट किया है। उनके पत्रों से यह मालूम होता है कि वे Cross word puzzle का अर्थ नहीं समझते। उन्हें मालूम होना चाहिए कि बिना Alternatives के कोई पहेली नहीं हो सकती। माना कि 'बारिज' और 'जलज' दोनों ठीक बैठते हैं, पर ठीक तो वही माना जायगा जो कि सुरक्षित उत्तर में होगा। यही नहीं, इसकी दो अशुद्धियाँ गिनी जायँगी, क्योंकि हमारे उत्तर से दो अक्षर नहीं मिलते।

व्यक्तिगत रूप से उत्तर नहीं दिया जा सकता था, इसलिए हमने यह नोट 'चाँद' में दिया है। आवश्यक के लिए हम यह बतला देना चाहते हैं कि प्रतियोगिता में भाग लेने वाले इस प्रकार के पत्र हमारे पास न भेजा करें। क्योंकि प्रथम तो यह नियम-विरुद्ध है और फिर उत्तरों के देखने में काफ़ी समय दिया जाता है, जिससे किसी ग़लती की सम्भावना नहीं रह जाती है।

—सम्पादक प्रतियोगिता-विभाग

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज्र होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

भला, यह जान कर किस कमबख्त की बाछु न खिज जायँगी कि श्रीमान् महाराजा बहादुर ऑफ़ योधपुर मुबलिश पचास लाख की लागत का एक नया महल बनवाने वाले हैं। वज़ाह, गृहप्रवेश के अवसर पर भूरि-भोजन की व्यवस्था तो अवश्य होगी। इसलिए योधपुरी भोजन-भट्टों को चाहिए कि भास्कर जवण का सेवन आरम्भ कर दें।

❀

महाराज युधिष्ठिर के सभा-भवन का निर्माता मय-दानव ने 'लङ्कसर ऐण्ड लॉज' के रूप में लण्डन में जन्म लिया है, इसलिए महाराजा बहादुर का यह नवीन महल उसीके द्वारा निर्मित होगा। आखिर यूरोप के कमबख्त सुफ़ेदों को मालूम कैसे होगा कि महाराजा साहब नया महल बनवा रहे हैं।

❀

इस महल में शयनागार, नृत्यागार, थियेटरागार, स्नानागार और मलागार सब कुछ रहेगा। इसमें रहने वाले को खाना से लेकर पाख़ाना तक एक ही स्थान पर मिल जाएगा, न हाथों को हिलाने की आवश्यकता पड़ेगी और न पैरों को जुम्बिश देने की। महल अद्वितीय होगा।

❀

एक उर्दू अख़बार का कथन है कि इस महल के दो हिस्से होंगे—एक मर्दाना और दूसरा ज़नाना, “जो ज़मीन की सतह से १२० फ़ीट की बुलन्दी पर बाक़ू होगा।” तब तो आश्चर्य नहीं कि माउण्ट एवरेस्ट की तरह हवाई जहाज़ों द्वारा इसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के लिए जर्मनी और इटली से उड़कों के अभियान भी आया करें। वाह रे महाराजा, क्या कहना है!

❀

अरे भई, ज़माना बदल रहा है। संसार में नवीनता की सूती बोल रही है। कहीं राजनीतिक सुधार हो रहा

है तो कहीं सामाजिक। इसलिए योधपुर के महाराजा बहादुर ने भी कुछ नया काम करके प्रजा की गाढ़ी कमाई को सार्थक करने का विचार किया है। बकौल स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त—

नया काम कुछ करना साधो, नया काम कुछ करना। नाक कटाना कान कटाना, औंधे होकर चलना, साधो, नया काम कुछ करना।

❀

राजपूताने के नरेश पहले जब कोई लड़ाई जीता करते थे, तो उसकी स्मृति में ‘विजय-स्तम्भ’ बनवाया करते थे। आजकल अङ्गरेज़ी राज्य की कृपा से बाघ और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते हैं। राजे-महाराजे जय-पराजय के झगड़ों से बरी हैं। इसलिए कोई विजयत से कुत्ते धरती लाता है और कोई मेम ब्याह लाता है। ऐसी दशा में अगर योधपुर-नरेश विजयत से कारीगर बुला कर एक महल बनवा रहे हैं तो ‘महाजनो येन गतः स पन्था’ का ही अवलम्बन कर रहे हैं। इसीको कहते हैं, पूर्व पुरुषों का पदाङ्गानुसरण।

❀

परन्तु कुछ ‘देखि न सकहिं पराह विभूती’ वालों का कहना है कि आर्थिक सङ्कट के दिनों में यह भारी रक़म ईटा-सुखी में न लगकर किसी जन-हितकर कार्य में लगती तो अच्छा था। इसी को कहते हैं—तेली का तेल जले और मशालची की छाती फटे! इन अङ्क के दुश्मनों को मालूम ही नहीं कि इससे बढ़कर जन-हितकर कार्य और हो ही नहीं सकता। ‘हाथ कज़न को आरसी क्या।’ प्रमाण लीजिए।

❀

इस महल में लगने वाली रक़म का अधिकांश भाग विजयती कम्पनी और विजयती कारीगरों के पेट में जाएगी, देश की मिट्टी पक कर ईंट के रूप में परिणत



होगी, महाराजा के मर जाने पर सारा महल यहीं पड़ा रहेगा, वे उसका चुटकी भर चूना भी अपने साथ न ले जाएँगे और उसके बाद दूसरे 'जन' उसमें गुजड़ें उड़ाएँगे। बताइए, इससे बढ़ कर जनहितकर कार्य और क्या हो सकता है ?

❀

बढ़ीं वज्र अपने राम की राय है कि महाराजा बहादुर बड़ा ही अच्छा काम कर रहे हैं। 'अस्य कीर्ति सजीवति' के अनुसार आप इस महल के कारण मरने पर भी अमर ही रहेंगे। अपने पसीने की कमाई की ऐसी 'पक्की' (इंट, पत्थर, सीमेन्ट और चूने के रूप में) सार्थकता देख कर प्रजा भी निहाल हो जाएगी और उसकी रक्त-रस-रहित विशुद्ध हृत्तन्त्री महाराज की जय-जयकार-ध्वनि से झकृत हो उठेगी।

❀

अल्लाह मियाँ की खोजी—अर्थात् यह दुनिया भी अजीब चीज है—“कहीं खूब खूबी, कहीं हाय हाय !” इधर थोड़ा-थोड़ा पचास लाख की जागत की अमर कीर्ति स्थापित कराने जा रहे हैं और उधर हट्टे-कट्टे, शकील नौजवानों के सुप्रसिद्ध कूट-दौ राजर्षि अलवरेंद्र बहादुर का यह हाल कि :—

सखी भई भगतिनियों जपें माला !

❀

उस दिन जब आप काशी से अखिल भारतवर्षीय 'ज्ञानानन्दी' सनातन-धर्म-सम्मेलन से सनातन-धर्म का उद्धार करके, हाथ में गङ्गा-जल का कमण्डलु, सिर पर खहर की पगड़ी और शरीर पर खहर की रामनामी आँढ़े—‘देह-गेह सब सन तू न तोरे’ अलवर के स्टेशन पर उतरे तो बहुतों की आँखों के सामने इतिहास-प्रसिद्ध बी० ‘म्याड’ की सूरत नाच गई, जो गले में फूटी मटकी की माजा पहने हुए हज से लौटी थीं। भला, दुईमारों की इस बेहूदी स्मृति को क्या कहा जाय !

परन्तु अपने राम तो खान्दानी कलाविद उधरे, इसलिए इन्हें राजर्षि के नवीन वेष में कुछ खामियाँ दीख पड़ीं। बात यह है कि खहर की रामनामी और गङ्गा-जली के साथ ही राजर्षि के मस्तक पर नीमुचाणा की यज्ञराजा की विभूति और एक हाथ में वह प्रसिद्ध चित्राधार होना चाहिए, जिसे आपने बहुत दिनों से संग्रह करके रक्खा है। और जिये हम भारत के सै हज़ों नौजवानों के सौन्दर्य और स्वास्थ्य का समाधि-मन्दिर कह दें तो भी कोई अत्युक्ति न हो। क्योंकि वास्तव में उन अभागों के उस प्रकृति-प्रदत्त ऐश्वर्य (स्वास्थ्य और सौन्दर्य) का—

खोज मिलता है, यहीं तक,

बादअजौं कुछ भी नहीं।

❀

खैर साहब, भक्तों को अलवरेंद्र जी का यह राजर्षि वेष खूब पसन्द आया। राजर्षि को जय से काशी और अलवर का व्योम-मण्डल गूँज उठा। दादा सनातनधर्म और उनके अभिन्न वर्णाश्रम-धर्म का भविष्य भी उज्ज्वल हो उठा और लहलहा उठी बाबा ज्ञानानन्द की धर्म की खेती, जो अछूतोद्धार आदि आन्दोलनों के ओलों की मार से मूछमान हो रही थी। वज्जाह, राजर्षि के इस नए स्वाँग के साथ ही कई काम हो गए।

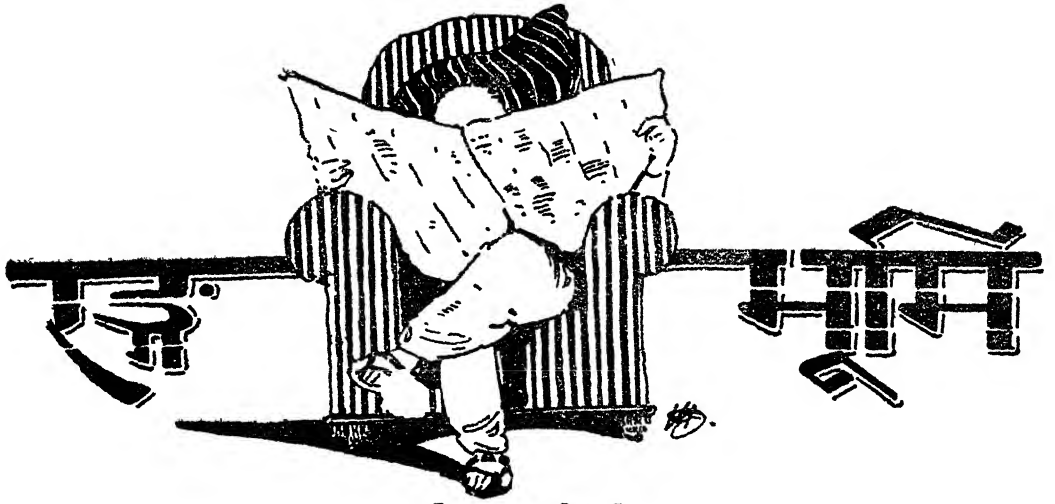
❀

अब अगर कहीं तकदीर ने ज़ोर मारा और मेवाती-मसले से खोकी हुई गर्बीजी गोरी—अर्थात् श्रीमती सखी नौकरशाही—भी महाराज के राजर्षि-वेष पर रीझ गई और अपने गोरे गुर्गों को अलवर से वापस बुला लिया तो बेइतर—राजर्षि रूप सार्थक, नहीं तो, खुदा न करे, ‘माथ हूँ सुँड़ाए गरीब गिरि ही नाम रह जायगा।’ और अन्त में राजर्षि महोदय को आहो सद् खींच कर सुमिरनी के मनकों पर अङ्गुलि-सञ्चालन करते-करते यही कह कर सत्र कर लेना पड़ेगा कि :—

खुदा याद आ गया मुझको

बुतों की बेनियाची से !





[सम्पादकीय]

हैदराबाद के हिन्दू

हैदराबाद (दक्षिण) के शासनकर्ता यद्यपि मुसलमान हैं, परन्तु जनसंख्या की दृष्टि से उसे हिन्दू-राज्य ही कहना उचित होगा ; क्योंकि वहाँ के निवासियों में ८६ प्रति शत हिन्दू और शेष में मुसलमान तथा अन्य सम्प्रदायों के लोग हैं। राज्य को जो वार्षिक आय होती है तथा उसके खजाने में जो अर्थराशि सञ्चित है, वह प्रायः सभी हिन्दुओं के ही परिश्रम का फल है। परन्तु खेद है कि हिन्दुओं के इस धन का, जो जनता की शिक्षा, सुख्यवस्था तथा कल्याण के लिए राज्य को कर-स्वरूप दिया जाता है, उपयोग उनके लिए न होकर अधिकांश में ऐसे लोगों के लिए होता है जो उसके उपार्जन करने में कुछ भी कष्ट नहीं उठाते। यद्यपि यह एक इतिहास द्वारा सिद्ध बात है कि मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का भाव अधिक होता है और वे स्वभावतः ही अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को हीन मानते हैं, परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में इस तरह के विचारों के अनुसार काम करना अनुचित तथा असमर्थोचित जान पड़ता है। आश्चर्य का विषय है कि हैदराबाद के निज़ाम, जो अपनी राजनीतिज्ञता तथा बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं, इस विषय में अमपूर्ण मार्ग का अवलम्बन कर रहे हैं और कट्टर मुसल-

मानों की उसी नीति के अनुसार आचरण कर रहे हैं, जो औरङ्गजेब जैसे घोर पक्षपाती तथा सङ्कीर्ण-हृदय शासक द्वारा अमल में लाई गई थी। इस अन्यायपूर्ण नीति के फल-स्वरूप हैदराबाद के हिन्दुओं को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ रहे हैं और उनका असन्तोष दिन पर दिन बढ़ता जाता है। उनकी शिकायतों की जाँच करने के लिए कुछ समय पूर्व दिल्ली के अखिल-भारतीय रियासती हिन्दू-हितैषी मण्डल ने एक सब-कमिटी नियत की थी, जिसकी रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुई है। इस कमिटी ने हैदराबाद के प्रायः एक सौ प्रतिष्ठित हिन्दू नागरिकों की गवाहियाँ लीं तथा कितनी ही सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं ने उसे लिखित बयान दिए। अनेक ज़रूरी काज़-पत्र तथा सरकारी रिपोर्टें भी उसने निरीक्षण के लिए एकत्रित कीं। इस तमाम सामग्री के आधार पर कमिटी ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की है, उससे हैदराबाद के हिन्दुओं की असीम दुर्दशा की बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है। रिपोर्ट में ऐसे असंख्य उदाहरण दिए गए हैं जिनसे प्रकट होता है कि हैदराबाद में बहुसंख्यक हिन्दुओं के हित की बुरी तरह हत्या की जाती है और अल्पसंख्यक मुसलमानों को अधिक से अधिक सुभीते तथा विशेष अधिकार प्रदान किए जाते हैं। उदाहरण के लिए सरकारी नौकरियों में मुसलमान और हिन्दुओं की संख्या का अनुपात उनकी जनसंख्या से बिल्कुल उल्टा है। अर्थात् १४



प्रति सैकड़ा नौकरियों हिन्दुओं को मिली हैं और शेष ८६ प्रति सैकड़ा मुसलमानों को। राज्य के बड़े-बड़े ओहदों पर तो हिन्दू नियुक्त ही नहीं किए जाते। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि चीफ़ सेक्रेटेरियट में एक भी हिन्दू नहीं है। न्याय-विभाग के सेक्रेटेरियट में नौ कर्मचारी हैं, जो सब मुसलमान हैं। कानून-विभाग के सेक्रेटेरियट में चारों पद मुसलमानों को ही दिए गए हैं। युद्ध और धर्म-विभाग के सेक्रेटेरियट की भी यही दशा है। विचार-विभाग में १४ ज़िन्ना जज तथा ७ अतिरिक्त जज हैं, जो सब के सब मुसलमान हैं। छः सरकारी वकील हैं, जिनमें हिन्दू एक भी नहीं। चार सिटी सिविलकोर्ट के जज हैं, जो सब मुसलमान हैं। इन आगेपों के प्रतिवाद स्वरूप हैदराबाद के शासकों की तरफ़ से कितनी ही बातें कही जाती हैं, जिनका आशय यह है कि हैदराबाद के हिन्दू प्रतियोगिता की परीक्षाओं में मुसलमानों के मुक़ाबले में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते तथा सरकारी नौकरियों की तरफ़ उनका झुकाव ही नहीं है। परन्तु यह तर्क उस समय सर्वथा निस्सार सिद्ध होना है, जब हम देखते हैं कि समस्त भारत में हिन्दू प्रतियोगिता की परीक्षाओं में सबसे अधिक श्रेष्ठ निकलते हैं। फिर सरकारी नौकरी ही नहीं, शिक्षा, साहित्य, धर्म, जिस विषय में देखा जाय, हैदराबाद में मुसलमानों को अपार सुभीते मिले हैं और हिन्दुओं की सर्वथा उपेक्षा की जाती है। इन शिकायतों का पता उस प्रार्थना-पत्र से भलीभाँति चलता है, जो हैदराबाद की हिन्दू प्रजा की तरफ़ से निज़ाम सरकार की कार्यकारिणी कौन्सिल के सभापति की सेवा में पेश किया गया था। उसका केवल एक पैराग्राफ़ हम यहाँ देते हैं :—

“सन् १३४१ फ़सली के बजट पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि मुसलमानी समितियों के लिए ५० हज़ार तथा मुसलमानी साहित्य के लिए १७,५०० रु० सुरक्षित रक्खा गया है। मुसलमानी संस्थाओं के लिए वैसे भी प्रतिवर्ष बहुत बड़ी रकम खर्च की जाती है। धार्मिक कार्यों के निमित्त राज्य की तरफ़ से जो सहायता दी जाती है, उसमें से ३५ प्रति सैकड़ा मुसलमानों को मिलती है। विशेष और रियायती अलाउन्स के मद में मुसलमानों को २,६२,८३० और हिन्दुओं को केवल १३,८८४ रु० दिया जाता है। इसी प्रकार विशेष

धार्मिक अलाउन्स के मद में मुसलमानों के लिए २,००,६४२ और हिन्दुओं के लिए नाम-मात्र को १३४१) मंजूर किया गया है। इसके सिवा गत ५ वर्षों के भीतर रियासत के बाहर की मुसलमानी संस्थाओं को बहुत बड़ी-बड़ी रकम दी गई है, जैसे नरड के पुनरुद्धार के लिए १ लाख रुपया, जन्दन की मस्जिद के लिए ५ लाख रु०, मुस्लिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़ के लिए १० लाख रु०, दिल्ली की जामे मिल्लिया के लिए ५० हज़ार रु० और पानीपत के मुस्लिम स्कूल के लिए बीस हज़ार रु० ! इन एकमुदत दानों के सिवा विभिन्न मुस्लिम-संस्थाओं के लिए और भी २ लाख रु० प्रति वर्ष व्यय किए जाते हैं। राज्य के भीतर मस्जिदें बनाने, क़ाज़ियों के लड़कों को छात्रवृत्ति देने तथा हाफ़िज़ तैयार करने के लिए भी प्रति वर्ष बहुत सा धन खर्च किया जाता है। राज्य की तरफ़ से विशेष मुसलमानी धर्म-प्रचारक नियत किए गए हैं, जो मुसलमान प्रजा को धार्मिक शिक्षा देते हैं। हमारे कथन का आशय यह नहीं है कि हम इन खर्चों के प्रति द्वेषभाव रखते हैं। क्योंकि हमारा विश्वास है कि यदि रियासत की जनता का कोई भी अङ्ग उन्नति करेगा तो उससे सभी लोगों का कल्याण होगा। हमारा कथन केवल इतना ही है कि मुसलमानों की तरह राज्य में बसने वाले अन्य सम्प्रदायों के लोगों को भी सुविधाएँ मिलनी चाहिए। इस सम्बन्ध में हम यह बतला देना चाहते हैं कि यदि हिन्दू अपने व्यय से भी अपने किसी देवालय की मरम्मत कराना चाहते हैं, तो इसके लिए बड़ी कठिनाई से अनुमति प्राप्त होती है। यह भेद उस समय अत्यन्त अनुचित जँचता है, जब हम देखते हैं कि सरकार प्रत्येक स्थान में मस्जिदें बनवाने के लिए सदैव सहायता करती रहती है।”

शिक्षा के सम्बन्ध में भी ऐसी ही नीति का अवलम्बन किया जाता है। राज्य की तरफ़ से जितनी प्रायमरी तथा सेकिण्डरी पाठशालाएँ हैं, उनमें केवल उर्दू द्वारा शिक्षा दी जाती है, जो केवल जनता के १ प्रति सैकड़ा भाग की मातृभाषा है। पर तेलगू, मराठी और कनाड़ी की शिक्षा के लिए, जिनके बोलने वाले उर्दू वालों से कहीं अधिक हैं, कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया जाता। हिन्दुओं की तरफ़ से जो निजी पाठशालाएँ खोली जाती हैं, उनको सहायता देने के बजाय उनके



मार्ग में अड़चनें डाली जाती हैं। इन तमाम बातों से इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं रह जाता कि हैदराबाद के हिन्दुओं को जितने कष्ट हैं, वे काश्मीर और अजमेर के मुसलमानों के कष्टों से किसी भी दशा में कम नहीं हैं। परन्तु आश्चर्य है कि उनके लिए न कहीं आन्दोलन होता है, न कोई उनकी सहायता के लिए खड़ा होता है। क्या इससे यही तात्पर्य निकाला जाय कि हिन्दू मुसलमानों की भाँति उड़ण्ड और लड़ाकू होने के बजाय शान्तिप्रिय तथा निरीह हैं और अपनी हित-रक्षा के लिए सज्जित होकर काम करना नहीं जानते, इसीलिए उनकी उपेक्षा की जाती है।

❁

❁

❁

क़ानून की लीला

भारत में जितने प्रकार के सरकारी क़ानून प्रचलित हैं, उनमें सबसे विचित्र और विरतून सम्भवतः दफ़ा १२४-ए ही है, और शायद सबसे अधिक दुरुपयोग भी इसी का किया जाता है। यह दफ़ा ऐसी गोलमोल अर्थयुक्त तथा लचीली है कि सर्वथा निर्दोष तथा आपत्ति-रहित वस्तु भी उसके अनुसार अपराध करार दी जा सकती है। इसके द्वारा अब तक न मालूम कितनी ऐतिहासिक तथा साहित्यिक उपयोगी पुस्तकों का संहार हो चुका है। इस सम्बन्ध में हम स्वयम् भुक्त-भोगी हैं और भत्ती प्रकार जानते हैं कि किस प्रकार ऐसी रचनाएँ, जिनके सम्बन्ध में हमारे हृदय में किसी भी तरह की शक्का नहीं होती और न जिनमें किसी तरह का कूट उद्देश्य अथवा दुरभिसन्धि होती है, अकस्मात् इस दफ़ा की कृपा से राजद्रोहपूर्ण बतलाई जाकर ज़ब्त कर दी जाती हैं। श्री० मैथिलीशरण गुप्त रचित 'ईश-प्रार्थना' तथा श्री० रामदास गौड़ लिखित बालगोथियों का ज़ब्त किया जाना इस दफ़ा के दुरुपयोग के देने उदाहरण हैं, जिनको प्रायः सभी हिन्दी पाठक जानते हैं और जिनकी चर्चा एक समय सभी पत्र-पत्रिकाओं में हो चुकी है। अब इसी प्रकार का व्यवहार अजमेर के सस्ता-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों के साथ किया गया है। इनमें से एक का नाम 'सामाजिक कुरीतियाँ' और दूसरी का 'हमारे ज़माने की गुलामी' है। ये दोनों

पुस्तकें जगत्प्रसिद्ध लेखक महात्मा टॉल्स्टॉय की लिखी हैं और बहुत वर्षों से संसार के प्रायः देश में छपती आई हैं। सम्भवतः भारत में कोई भी ऐसा सरकारी अथवा ग़ैर-सरकारी बड़ा पुस्तकालय न होगा, जिसमें ये न मिल सकें। यदि स्वयम् वायसरॉय तथा प्रादेशिक गवर्नरों के निजी पुस्तकालयों में भी ये मौजूद हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इनका न किसी देश-विशेष से सम्बन्ध है और न इनमें किसी राष्ट्र-विशेष की सरकार या समाज की आलोचना की गई है। इनमें टॉल्स्टॉय ने मनुष्य-समाज में फैली हुई अनेक बुराइयों का दिग्दर्शन कराया है और समाज-निर्माण के सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किये हैं। इन दोनों पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद कई वर्ष पूर्व सस्ता-साहित्य मण्डल ने प्रकाशित किया था और हाल ही में उनके नवीन संस्करण हुए थे। अब तक इन पुस्तकों की हजारों प्रतियाँ बिक चुकी थीं और किसी ने उन पर किसी तरह की आपत्ति नहीं की थी। परन्तु अब अचानक अजमेर मेरवाड़ा की सरकार ने उनको दूषित ठहरा कर ज़ब्त कर लिया है और पुलिस 'मण्डल' के कार्यालय से उनकी कुछ प्रतियाँ उठा ले गई हैं। हम नहीं समझ सकते कि इतने दिन बाद ये पुस्तकें भारत-सरकार अथवा भारतीय शासन-व्यवस्था के विरुद्ध कैसे हो गईं। सम्भव है, यह कार्य किसी अधिक 'जोशीले' सरकारी कर्मचारी ने अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए जल्दी में कर डाला हो और बाद में चारों तरफ से खताड़ पड़ने पर सरकार अपनी भूल समझ कर अपने हुकम को वापस कर ले। परन्तु इस घटना से इतना तो स्पष्ट जान पड़ता है कि सरकार जिन पुस्तकों को ज़ब्त करती है, वे सभी दोषी नहीं होतीं। परन्तु असमर्थता के कारण लेखक और प्रकाशक सरकारी आज्ञा का प्रतिकार नहीं कर सकते और इसलिए शासकों का कृत्य सर्वथा अनुचित होते हुए भी बौध मान लिया जाता है। यह अवस्था साहित्य तथा देश के कल्याण की दृष्टि से अवश्य ही शोचनीय है और इसका प्रतिकार तभी हो सकता है, जब कि या तो क़ानून में ऐसा परिवर्तन किया जाय, जिससे ज़ब्त की जाने वाली पुस्तक के लेखक और प्रकाशक को बिना किसी तवाकल या खर्च के अपना मामला अदालत के सामने जा सकने की व्यवस्था हो अथवा किसी ऐसी



सार्वजनिक संस्था का सङ्गठन किया जाय, जो इस प्रकार जड़त किए जाने वाले साहित्य पर दृष्टि रखे और जहाँ अन्याय हुआ देखे, उस मामले की पैरवी स्वयम् करे।

❁ ❁ ❁

शान्ति को दुराशा

इ धर कुछ दिनों से जर्मनी में जो घटनाएँ हो रही हैं और फ़्रान्स उनके प्रति जिस प्रकार का मनोभाव प्रकट कर रहा है, उससे प्रमाणित होता है कि जो लोग संसार-व्यापी शान्ति का स्वप्न देख रहे हैं अथवा निरशस्त्रीकरण के मनस्वी बाँध रहे हैं वे बड़े भ्रम में हैं। जर्मनी के निर्वाचन में हिटलर की सफलता इस बात की सिद्ध करती है कि वहाँ बहुसंख्यक निवासी वर्सेजीज़ की अन्यायपूर्ण सन्धि से अत्यन्त असन्तुष्ट हो उठे हैं और अब उन्होंने परिणाम की चिन्ता त्याग कर अन्य राष्ट्रों के समान अधिकार बलपूर्वक प्राप्त करने का निश्चय कर लिया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के ज्ञाता एक अङ्ग-रेज़ ने, जो हाल ही में जर्मनी से लौट कर आया है, 'डेली टेलीग्राफ़' (लन्दन) में लिखा है कि "हिटलर की सरकार निश्चयात्मक रूप से सैनिक दङ्ग की है और उसके शासनारूढ़ होते ही समस्त जर्मनी में युद्ध की तैयारियाँ होने लगी हैं। वहाँ का वायुयान-विभाग इस विद्या के विशेषज्ञों को, जो गत महायुद्ध के पश्चात् नौकरी से अलग कर दिए गए थे, ढूँढ़-ढूँढ़ कर एकत्रित कर रहा है। इसके साथ ही युद्धोपयोगी वायुयानों को बनाने तथा बड़े परिमाण में ज़हरीली गैस आदि तैयार करने का भी बन्दोबस्त हो गया है। इन तैयारियों का वास्तविक भेद कोई खोल न सके, इसीलिए कम्युनिस्टों तथा शान्तिवादियों पर अकथनीय अत्याचार किए जा रहे हैं, क्योंकि ये सब युद्ध के विरोधी हैं और हर तरह से ऐसी तैयारी में बाधा डालते हैं।" एक अन्य सम्बाद-दाता द्वारा भेजे हुए समाचारों से विदित होता है कि अभी जर्मनी में दो नवीन रणपोत तैयार किए गए हैं, जिनके प्रथम बार समुद्र में डाले जाने के उपलक्ष में ऐडमिरल रीडर ने भाषण देते हुए यह अभि-प्राया प्रकट की कि "वे जर्मन नौसेना के प्राचीन आदर्श की पूर्ति करेंगे।" यह भी खबर आई है

कि जर्मनी की नई सरकार ने पुराने नियमों को तोड़ कर वहाँ के विद्यार्थियों के द्वन्द्व-युद्ध (Duel) को फिर से अनिवार्य करार दे दिया है। इस आज्ञा को प्रकाशित करते हुए कहा गया है कि "विद्यार्थियों में लड़ने की भावना को जाग्रत करना सब प्रकार से वाञ्छनीय है; क्योंकि इससे उनका साहस बढ़ होता है, आत्म-संयम की वृद्धि होती है और इच्छा-शक्ति प्रबल होती है।" इन तमाम बातों से स्पष्ट जान पड़ता है कि फ़्रान्स और इंग्लैण्ड आदि ने जर्मनी को जिस तरह ज़बर्दस्ती निर्बल और असहाय बनाने की चेष्टा की थी, अब उसकी प्रतिक्रिया हो रही है। जर्मनी की सङ्गठित तथा नियमित सैनिक और शासन-शक्ति को कुचल देने का ही यह परिणाम हुआ है कि आज वहाँ की बागडोर रख-प्रेमी नाज़ी-दल के हाथ में आ गई है, जिसमें प्रायः उद्धत प्रकृति के युवकों की भरमार है। इसका फल जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों के लिए कितना भयावह होगा, इसकी अभी कल्पना नहीं की जा सकती। पर तो भी यूरोपियन शक्तियों की आँखें नहीं खुलती और वे अपने राष्ट्रीय हित की ही दुहाई दे रहे हैं। यद्यपि शान्ति-रक्षा तथा निरशस्त्रीकरण के प्रोग्रामों की कमी नहीं है, पर कोई उन पर सच्चे हृदय से अमल करने को तैयार नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सन्देह की दृष्टि से देख रहा है और सब से पहले अपनी 'रक्षा' की 'गारण्टी' माँगता है। अभी इस विषय की विवेचना करने के लिए इङ्ग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड इटली गए थे और वहाँ उन्होंने मुसोलिनी की सम्मति से निरशस्त्रीकरण का एक 'पैक्ट' बनाया था, जिसे "सर्वाङ्ग पूर्ण तथा अत्यन्त व्यापक" बतलाया गया। परन्तु फ़्रान्स के पत्र उसे "तेरह महीनों में सत्तावनवाँ प्रोग्राम" कह कर उसकी हँसी उड़ा रहे हैं। फ़्रान्स-सरकार ने भी उसमें ऐसे परिवर्तन किए हैं, जिससे उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाने की सम्भावना है। इस पर इटली की सरकार ने कहा है कि यदि उक्त 'पैक्ट' के मूल सिद्धान्तों को तब्दील किया गया तो वह उनके किसी काम का नहीं रहेगा। ये सब शान्ति के लक्षण नहीं हैं, वरन् इनसे तो यही प्रतीत होता है कि यूरोप दिन पर दिन अशान्ति और अव्यवस्था की तरफ़ बढ़ता जा रहा है।

❁ ❁ ❁



अनुचित प्रतियोगिता का अन्त

जापानी माल ने और विशेषतः जापान से आने वाले कपड़े ने भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की अवस्था कैसी सङ्कटापन्न कर दी है, इसकी चर्चा समाचार पत्रों में प्रायः बराबर होती रहती है। इस अनुचित प्रतियोगिता ने आजकल और भी भीषण रूप धारण कर लिया है और उसके परिणाम-स्वरूप इस देश की कपड़े की मिलें धड़ाधड़ बन्द होने लगी हैं। देश का बाज़ार जापानी कपड़े से पटा जा रहा है। जापानी कपड़ा देखने में सुन्दर होने के साथ ही इतना सस्ता होता है कि एक साधारण व्यक्ति को भी आश्चर्य होता है कि आखिर जापानी मिल वालों का पड़ता किस प्रकार बैठता होगा। परन्तु जो लोग वर्तमान समय की व्यवसाय-जगत में प्रचलित कूटनीति से परिचित हैं, उनको इसमें ज़रा भी आश्चर्य नहीं मालूम होगा। यह सस्तापन जापान के व्यवसायियों तथा वहाँ की सरकार ने जान-बूझ कर किया है। वे स्वयम् हानि सह कर इसलिये इतने सस्ते भाव में कपड़ा बेच रहे हैं कि इस देश का वस्त्र-व्यवसाय चौपट हो जाय और तब वे मनमाना दाम लेकर अपने घाटे से दुगुनी-चौगुनी रकम वसूल कर लें। वास्तव में इस प्रकार की प्रतियोगिता इतनी नीच स्वार्थयुक्त है कि कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र उसे एक दिन के लिए भी सहन नहीं कर सकता। परन्तु भारत की शासन-व्यवस्था उत्तरदायित्व-शून्य है, यहाँ ऐसी बातों पर उस समय ध्यान दिया जाता है, जब अवस्था अन्तिम सीमा पर पहुँच जाती है और बहुत कुछ हानि हो चुकती है। यही दशा इस बार भी हुई और जब जापान की प्रतियोगिता न कर सकने के कारण यहाँ की बहुत सी मिलें बन्द हो गईं और उनके मालिक हाथ-तोबा मचाने लगे, तब सरकार की निद्रा भङ्ग हुई और उसने एसेम्बली में एक बिल पेश किया, जिसके अनुसार गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया है कि वे अपनी कार्यकारी समिति की सलाह से किसी भी देश के माल पर अतिरिक्त कर लगा सकते हैं, बशर्ते कि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि वह देश इस देश में इतने सस्ते दर से माल बेच

रहा है कि यहाँ के व्यवसाय की स्थिति ख़तरे में पड़ गई है।

इस क़ानून के अनुसार गवर्नर-जनरल जो आज्ञाएँ निकालेंगे वे सब एसेम्बली के सामने उपस्थित की जायेंगी और यदि एसेम्बली उनको अस्वीकार करेगी तो दो महीने बाद वे रह हो जायेंगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस समय ऐसी किसी योजना की सफ़्त ज़रूरत थी। इसलिये सरकार ने जो क़ानून बनाया है वह ऊपरी दृष्टि से किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कहा जा सकता। वैसे तो इस समय भी इस देश में 'टेरिफ़-बोर्ड' क़ायम है, जो भिन्न-भिन्न व्यवसायों की जाँच करके उनके संरक्षण के लिए बाहर से आने वाले माल पर कर लगाने का निश्चय किया करता है। पर उसकी कार्यप्रणाली बड़ी लम्बी है और उसके निर्णय में प्रायः इतना अधिक समय लग जाता है कि जब तक किसी व्यवसाय के सहायताार्थ संरक्षण कर लगाने की नौबत आती है, तब तक वह बहुत-कुछ चौपट हो चुकता है। परन्तु अब इस नए क़ानून द्वारा गवर्नर-जनरल बहुत जल्दी ऐसे प्रश्नों का निर्णय कर सकेंगे और विदेशियों की अनुचित प्रतियोगिता का प्रतिकार यथा-समय किया जा सकेगा। परन्तु यह सब तभी सम्भव होगा, जब सरकार इस देश के व्यवसाय का ही मुख्यतया ध्यान रखे। यदि उसने भारतीय व्यवसाय के साथ-साथ इङ्गलैण्ड अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के व्यवसाय के हित की रक्षा करना भी अपना कर्तव्य समझा, जैसा कि अब तक प्रायः होता रहा है, तो इस क़ानून का मूल्य बहुत कम रह जायगा। उस समय यहाँ की जनता को केवल स्वदेशी व्यवसाय की उन्नति के लिए ही नहीं, वरन् ऐसे देशों के व्यवसाय के हित के लिए भी स्वार्थ-त्याग करना पड़ेगा, जिनसे उसका कोई उपकार नहीं होता।

✻

✻

✻

‘पद्म-पराग’

इसे हिन्दी भाषा का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि जो व्यक्ति इसकी सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर देते हैं, और अनेक कष्ट तथा हानि सह कर भी इसके भण्डार की पूर्ति करते हैं, उनकी कोई



खोज-खबर भी नहीं लेता। देहान्त हो जाने के बाद की तो बात ही क्या, जीवित अवस्था में ही अनेक ख्यात-नामा हिन्दी-लेखकों को वृद्धावस्था अथवा बेकारी के कारण भूलों मरना पड़ा है और अपील की जाने पर भी किसी ने उनकी तरफ विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया। इसी प्रवृत्ति का फल है कि जिन लेखकों ने आरम्भिक युग में हिन्दी-लेखन-शैली की जड़ जमाई है उनके लेखों का दर्शन भी आज दुष्प्राप्य है। श्री० प्रतापनारायण मिश्र, श्री० प्रेमचन, श्री० बालकृष्ण भट्ट आदि जैसे लेखकों के कुछ इने-गिने लेख ही आज दृष्टिगोचर होते हैं। यदि हिन्दी-पाठकों में कुछ भी कृतज्ञता का भाव होता तो इन लेखकों की लेख-मालाओं के सुन्दर तथा सर्वाङ्ग-पूर्ण संस्करण कभी के निकल गए होते; और उनसे हिन्दी की प्रगति को विशेष सहायता मिली होती। और, अब धीरे-धीरे इस अवस्था में कुछ परिवर्तन होने लगा है और लोग मातृ-भाषा के सेवकों का आदर करना सीख रहे हैं। पर अभी भी उनकी कृतियों को सुरक्षित रखने की भावना विशेष रूप से जागृत नहीं हुई है। इसी अनुचित प्रवृत्ति का फल है कि आज हमको हिन्दी भाषा-भाषियों के सामने स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा के लेख-संग्रह के द्वितीय भाग को प्रकाशित कराने में सहायता देने की अपील करनी पड़ रही है। पण्डित जी हिन्दी-भाषा के अद्वितीय विद्वान् तथा निर्भीक समालोचक थे। उन्होंने जो कुछ लिखा है, उससे उनके गम्भीर साहित्य-ज्ञान का भली-भाँति परिचय मिलता है। उनके लेखों के सम्बन्ध में श्री० बनारसी-दास चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि “जो लोग स्वर्गीय शर्मा जी को जानते हैं, वे यह कहते हैं कि यदि कोई लेखक अपने व्यक्तित्व की छाप अपने लेखों पर और अपनी लेखन-शैली पर छोड़ने में समर्थ हुआ है, तो वे शर्मा जी ही थे। आज से दस-बीस वर्ष बाद ही नहीं, बल्कि सौ वर्ष बाद भी स्वर्गीय शर्मा जी के लेख अपनी अनुपम लेखन-शैली के कारण पढ़े जायेंगे। जिस सहृदयता तथा जिस तल्लीनता के साथ वे लिखते थे और शब्दों पर उनका जो असाधारण अधिकार था, वह सहृदयता तथा तल्लीनता उतनी मात्रा में शायद ही किसी हिन्दी-लेखक में पाई जाती हो।”

वस्तुतः शर्मा जी के लेख हिन्दी साहित्य की अपूर्व

सामग्री हैं और हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए यह घोर कलङ्क की बात होगी यदि उनके लेख संगृहीत होकर अर्थाभाव के कारण प्रकाशित न हो सकें और समाचार-पत्रों की फ़ायलों में पड़े-पड़े नष्ट हो जायें। दर असल ऐसे लेखकों की रचनाएँ ही उनकी सच्ची जीवनियाँ होती हैं। फलतः उनकी रक्षा करना उनको एक प्रकार से अमर कर देना है। ऐसी अवस्था में यदि हिन्दी के प्रेमीगण इस कार्य में थोड़े से रूपएँ खर्च कर दें तो यह उनका दुरुपयोग न समझा जायगा। विशेषकर पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे सहृदय साहित्य-सेवक के लिए, जिनका सम्पूर्ण जीवन ही दूसरों को प्रोत्साहन प्रदान करते-करते बीता और जिन्होंने बीसियों नवीन हिन्दी-लेखकों तथा कवियों की सृष्टि की, इतनी सी चेष्टा कर देना, कोई बड़ी बात नहीं है। शर्मा जी के लेखों का एक संग्रह ‘पद्म-पराग’ (प्रथम भाग) के नाम से छप चुका है। दूसरे भाग का संग्रह उनके पुत्र श्री० रामनाथ शर्मा ने कर डाला है। परन्तु अर्थाभाव के कारण वे उसके प्रकाशन का व्यय-भार नहीं सहन कर सकते। इसलिए पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने विख्यात पत्र ‘विशाल-भारत’ में एक अपील निकाली है और हिन्दी-संसार से प्रार्थना की है कि स्वर्गवासी पं० पद्मसिंह जी शर्मा की इस महान कीर्ति की रक्षा में श्री० रामनाथ जी की यथेष्ट सहायता करें अर्थात् ‘पद्म-पराग’ के दूसरे भाग के प्रकाशन कार्य में उनकी आर्थिक मदद करें। जो सज्जन इस विषय में कुछ सहायता करना चाहें वे ‘पद्म-पराग’ के प्रकाशक श्री० रामनाथ शर्मा, नायकनगला, पो० चाँदपुर, ज़िला बिजनौर को लिखें।

❀ ❀ ❀

महिला कवि-सम्मेलन

इ लाहाबाद का महिला कवि-सम्मेलन, जिसका अधिवेशन गत् १५ अप्रैल को महिला विद्या-पीठ हॉल में हुआ था, निस्सन्देह हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है और साथ ही वह स्त्रियों की जागृति का एक बड़ प्रमाण भी है। इससे प्रकट होता है कि अब भारतीय स्त्रियों को अपने महत्व तथा शक्ति का आभास मिल गया है और वे किसी

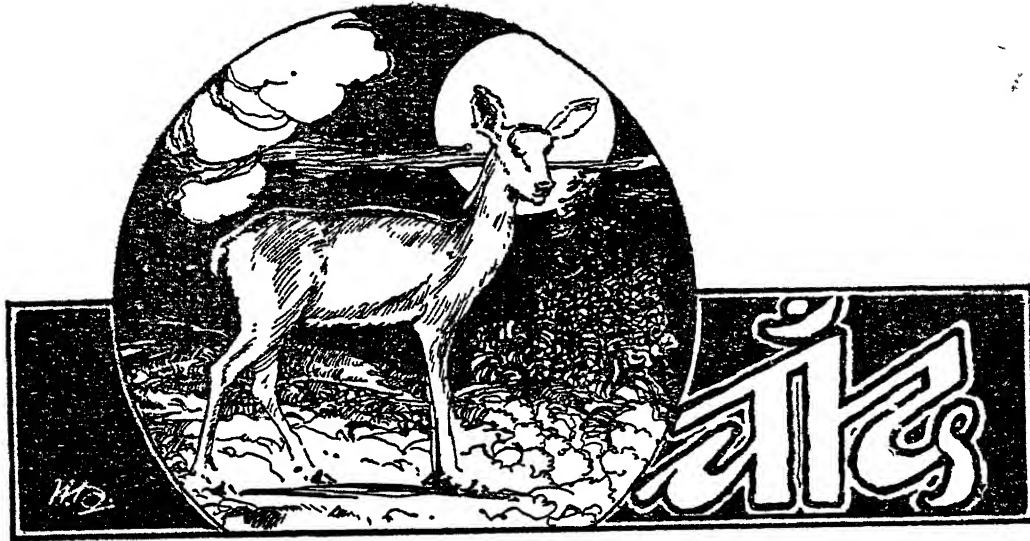


क्षेत्र में भी पुरुषों से पीछे या उनसे दबी हुई नहीं रहना चाहतीं। यद्यपि हिन्दी के कविता-कानन में स्त्रियों बहुत पहले से ही प्रवेश कर चुकी हैं और आजकल हमको कई लब्ध-प्रतिष्ठ तथा प्रतिभाशालिनी कवियत्रियों की रचनाओं का आस्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त है, पर अभी तक वे अस्त-व्यस्त दशा में थीं और उनका कोई ऐसा सङ्गठन न था, जिसके द्वारा उनकी कृतियों का यथोचित प्रचार और आदर हो सकता तथा उनको उन्नति करने के लिए प्रोत्साहन मिलता। यद्यपि उनकी रचनाएँ समय-समय पर सामयिक पत्रों में स्थान पाती रहती थीं, पर इसका आधार सम्पादकों की कृपा पर था और इससे उनको उतना प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता था जितना कि जन-समुदाय के सम्मुख अपनी रचना को मौखिक रूप से उपस्थित करने से मिलता है। यह देखा गया है कि कितनी ही कविताएँ जो पढ़ने में सर्वथा नीरस तथा भाव-शून्य जान पड़ती हैं, वे रचयिता के मुख से ऐसी आकर्षक तथा मधुर प्रतीत होती हैं कि श्रोता उन पर लट्टू हो जाते हैं। हम ऐसे अनेक कवियों को जानते हैं जिनकी कविताएँ आरम्भ में सम्पादकों की रही की टोकरी में फँकी जाती थीं, पर जब कवि-सम्मेलनों में उन्होंने अपनी धाक जमाई तो पत्रकार भी उनकी रचनाओं को प्रकाशित करने लगे और धीरे-धीरे वे महाकवि बन बैठे। इन तमाम दृष्टियों से महिला कवि-सम्मेलन जैसे किसी आयोजन की अत्यन्त आवश्यकता थी और हमें यह कहते हर्ष होता है कि इस सम्बन्ध में किया गया यह प्रथम प्रयत्न सब प्रकार से सफल हुआ है। सम्मेलन में करीब एक हजार महिलाओं ने भाग लिया था, जो स्त्रियों की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए एक आश्चर्यजनक संख्या है। सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति की प्रधाना श्रीमती महादेवी वर्मा, बी० ए० तथा अध्यक्ष श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के भाषण भी समयोचित तथा मार्के के थे। श्रीमती सुभद्राकुमारी ने एक बात महत्व की यह कही है कि कविता के क्षेत्र पर स्वभावतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिकार अधिक है और सम्भवतः आगे चल कर स्त्रियाँ इसे कार्य-रूप में परिणत करके दिखावा सकेंगी। उनकी दलील है कि

कविता में प्रायः भाव की प्रधानता होती है और भावुकता की मात्रा स्त्रियों में निश्चयात्मक रूप से पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। इसके प्रमाण-स्वरूप वे कहती हैं :—

“नारी-हृदय की तुलना हम वायु-मापक यन्त्र (बैरोमीटर) से कर सकते हैं, जिससे छोटे से छोटा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। स्त्री-हृदय की कोमल वृत्तियाँ अत्यधिक सजग और सजीव रहती हैं। उनकी हृदय-वीणा का प्रत्येक तार इतना खिंचा और कसा रहता है कि वह वातावरण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आघात से निनादित हो उठता है। शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के पण्डितों का कहना है कि स्त्रियों की शरीर-रचना और मन पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत है।”

दूसरा लाभ स्त्रियों के कविता-क्षेत्र में प्रवेश करने से यह होगा कि कविता की भाषा में सरलता का समावेश होगा। स्त्रियों के स्वभाव तथा वाणी में स्वाभाविक रूप से विशेष कोमलता पाई जाती है और वे कर्णकटु तथा कठोर शब्दों को प्रायः मधुर और सरल बना लेती हैं। यह माधुर्य कविता के लिए एक आवश्यक वस्तु है और जो कविता इस गुण से शून्य होगी उसका प्रचार साधारण जनता में कभी अधिक न हो सकेगा। स्त्री-स्वभाव की इन दो विशेषताओं के आधार पर श्रीमती चौहान ने स्त्री-कवियों के भविष्य की जो उज्ज्वल रूप-रेखा खींची है उससे हम पूर्णतया सहमत हैं। हमारा विश्वास है कि इलाहाबाद का यह महिला कवि-सम्मेलन एक विराट आन्दोलन अथवा भावी प्रगति की भूमिका-मात्र है और कुछ ही दिनों में ऐसा अवसर आ सकता है जब संख्या और आकर्षण की दृष्टि से महिला कवि-सम्मेलन पुरुषों के कवि-सम्मेलनों से बाज़ी मार ले जायेंगे। सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा रानी-महारानियों तथा अन्य सम्मानित श्रिमतियों से प्रार्थना की है कि वे समय-समय पर ऐसे उत्सवों का आयोजन करती रहें और सुकवियत्रियों को सम्मानित करके उनका उत्साह बढ़ाती रहें। इसमें सन्देह नहीं कि इस दिशा में नियमपूर्वक काम होने से स्त्री-कवियों को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा और वे कविता के क्षेत्र में शीघ्रतापूर्वक उन्नति करके उसमें उचित स्थान प्राप्त कर सकेंगी।



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड २

जून, १९३३

संख्या २, पूर्ण सं० १२८

रूपराशि

[प्रोफेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

इलुज-सी वह ध्वनि कोमल ।

मेरे इस जाग्रति के जग में खिंची क्षितिज-सी वह प्रति पल ॥

करुणायुत निषाद के स्वर में

विहगों का है कण्ठ विकल ।

मेरा क्षितिज न छू पाते हैं

उनके बाल-प्रयास विफल ॥

उनके लघु उर में गूँजेगा

कैसे विस्तृत गान चपल ?

मेरी ध्वनि से ही प्रभात का

अब होगा अवतार सरल ॥



जून, १९३३

भविष्य की स्त्रियाँ



सामाज में स्त्रियों का वास्तव में क्या स्थान होना चाहिए, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसकी मीमांसा में इस समय संसार के बड़े-बड़े विचारवान लगे हुए हैं। यद्यपि हमारे देश में अल्प-संख्यक स्त्रियों के परदा त्याग देने तथा राजनीतिक आन्दोलन में आगे बढ़ कर भाग लेने से ही लोगों को आश्चर्य होने लगा है और एक श्रेणी के व्यक्ति इससे भावी सामाजिक तूफान की कल्पना करने लगे हैं, पर संसार के अन्य देशों में, विशेषकर यूरोप और अमेरिका में, ये बातें बहुत ही तुच्छ समझी जाती हैं, और वहाँ इस समय यह प्रश्न उठा हुआ है कि मानव-जीवन के समस्त क्षेत्रों में, जिनमें अभी तक एक-

मात्र पुरुषों की ही प्रधानता है, प्रवेश करने का अधिकार स्त्रियों को दिया जाय या नहीं, और यदि दिया जाय तो कितना? क्या यह समाज के लिए कल्याणजनक होगा कि स्त्रियों को शासन-विभाग में उत्तरदायित्वपूर्ण पद दिए जायें? क्या अमेरिका और फ्रान्स जैसे प्रजासत्तात्मक राज्यों में स्त्रियों को प्रेसीडेंट का पद देने से उनका विशेष रूप से उपकार हो सकता है? व्यापार-व्यवसाय में स्त्रियों का भाग लेना कहाँ तक उचित है? क्या कारखानों में स्त्री-मजदूरों की संख्या का बढ़ना समाज के लिए हितकारी है? क्या स्त्रियों को सेना में दाखिल करना और फौजी अफसरों का पद देना सम्भव है? इस तरह के अनेक प्रश्न आजकल राजनीतिज्ञों तथा समाज-तत्त्व-विशारदों के दिमागों में चक्कर लगा रहे हैं।

सङ्कीर्ण तथा उन्नति-विरोधी विचारों के लोग, जिनकी समझ में मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ बाँध-दादों की लकीर पीटना ही है और जो भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् संसार के सभी देशों में पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं, ऐसे प्रश्नों को सुन कर ही व्याकुल हो उठते हैं। वे ऐसी चर्चा सुन कर कानों में उँगली दे लेते और कहते हैं कि यह सब कलियुग की महिमा है। उनका कथन है कि जिन देशों में स्त्रियों को वोट देने का और शासन-सभा में भाग लेने का अधिकार मिला है, वहाँ का समस्त राजनीतिक वातावरण दूषित हो उठा है। स्त्रियों का एकमात्र तथा उपयुक्त स्थान घर के भीतर ही है, जिसे सुखप्रद बनाना उनका सब से महान कर्तव्य है। इसके सिवा बच्चों का उचित रीति से लालन-पालन



करना भी उन्हीं पर अवलम्बित है और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर समस्त समाज का अस्तित्व निर्भर है। अपने इन स्वाभाविक कर्तव्यों को परित्याग कर जो स्त्रियाँ ऐसे कामों में हाथ डालने की चेष्टा करती हैं, जिनको पुरुष ही अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं, वे अपना और समाज का घोर अकल्याण करती हैं।

परन्तु इस तरह की बातें करने वालों में अधिकांश लोग वे ही हैं जो अपने स्वभाव के कारण अथवा स्वार्थ-वश प्राचीन रूढ़ियों को कायम रखना ही उचित समझते हैं; अथवा जिनमें इतनी बुद्धि नहीं है कि वे मानवीय सभ्यता के विकास के रहस्य को हृदयङ्गम कर सकें। जो लोग प्राचीन सभ्यता के इतिहास तथा सामाजिक विकास के नियमों से परिचित हैं और जिनका हृदय तथा मस्तिष्क प्रचलित रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त है, वे भली-भाँति समझते हैं कि समाज की दशा का सदैव एक-सी रह सकना असम्भव है। एक समय था जब स्त्रियाँ सर्वथा स्वतन्त्र थीं और वे ही घर की स्वामिनियाँ होती थीं। उन्होंने सब प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्धों तथा कलाकौशल की सृष्टि की थी। इसके पश्चात् ऐसा समय आया जब पुरुषों ने बलपूर्वक उनको अपने अधीन कर लिया और कितने ही देशों में तो वे पशुओं की तरह झर्रीदी और बेची जाने लगीं। एक व्यक्ति का सौ-सौ और हजार-हजार स्त्रियाँ रखना भी स्वाभाविक समझा जाने लगा। इसके बाद फिर उनकी दशा में कुछ सुधार होने लगा और उन्होंने पुरुष की सहयोगिनी का पद प्राप्त कर लिया। अब परिवर्तन की लहर फिर जोर पकड़ रही है और स्त्रियाँ पुरुषों की सहयोगिनी अथवा अर्द्धाङ्गिनी ही नहीं, वरन् सब प्रकार से उसके तुल्य अधिकार सम्पन्न होना चाहती हैं। इस मनोभाव के परिणाम-स्वरूप अब पश्चिमी देशों में करोड़ों स्त्रियाँ ऐसी पाई जाती हैं, जो कोई भी स्वतन्त्र कारबार, नौकरी या मजदूरी करके पुरुषों की अधीनता से पूर्णतया मुक्त रहती हैं। आजकल उन देशों में स्त्रियाँ कारखानों में मैशीनें चलाती हैं; दफ्तरों में क्लर्क का काम करती हैं; ट्राम और रेल की नौकरियाँ करती हैं; वकील, डॉक्टर, इंजिनियर और सम्पादक आदि का पेशा करती हैं; पुलिस और न्याय-विभाग भी स्त्रियों से खाली नहीं है। रूस के समान कुछ देश ऐसे भी हैं, जहाँ वे राज-मन्त्री, राजदूत

तथा बड़े-बड़े सरकारी विभागों की अध्यक्षता नियुक्त की जाती हैं। परन्तु जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, स्त्रियों के कार्यक्षेत्र का यह परिवर्तन एक विवादग्रस्त विषय बना हुआ है और जो लोग स्त्रियों के उद्धार के पूर्णतया पक्षपाती हैं उनमें से भी कितने ही ऐसे हैं, जो स्त्रियों के सब बातों में पुरुषों की नक़ल करने को उनके तथा समाज के लिए लाभजनक नहीं समझते। इसी प्रकार कितने ही लोग, जो स्त्रियों के स्वतन्त्र व्यवसाय करने के पक्षपाती हैं, कितने ही पेशों को उनके लिए बुरा समझते हैं। उदाहरण के लिए उनका कहना है कि जिन कामों में लगातार बहुत देर तक खड़े रहने की आवश्यकता होती है, उनको करने से स्त्रियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनकी जननेन्द्रिय की नसों में दोष उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचारवान पृथक्-पृथक् मत प्रकट करते रहते हैं। यद्यपि उनकी सम्मतियों में बहुत कुछ अन्तर रहता है और वे स्त्रियों को जो अधिकार दिया जाना पसन्द करते हैं, उसमें बहुत न्यूनाधिकता होती है, तो भी इस सम्बन्ध में प्रायः सभी एक मत हैं कि अब स्त्रियाँ पुरुषों की अधीन बन कर नहीं रह सकतीं। यदि वे स्थायी रूप से विवाहित जीवन व्यतीत करें तो भी उनको किसी अंश में आर्थिक स्वतन्त्रता होना आवश्यक है। इस प्रकार के विचार वालों ने जिस भावी समाज की कल्पना की है और उसमें स्त्रियों की परिस्थिति का जो अनुमान किया है, उसका हम संक्षिप्त रूप में दिग्दर्शन नीचे कराते हैं। हमारा आशय यह नहीं है कि ये बातें अनिवार्य रूप से सभी देशों में होंगी अथवा उन्होंने जिन बातों की कल्पना की है वह सभी पूरी होकर ही रहेंगी। पर इससे उस विचार-धारा का कुछ अनुभव अवश्य होगा जो आजकल संसार की उन्नतशीला स्त्रियों तथा उदार, समाज-सुधारकों में प्रवाहित हो रही है। यद्यपि अभी तक हमारे यहाँ की अधिकांश स्त्रियाँ सीता और सावित्री को ही अपना आदर्श मान रही हैं और उनमें पतिव्रत तथा पति-सेवा का भाव भी इतनी गहरी जड़ जमाए हुए हैं कि सैकड़ों वर्षों में भी उनके यूरोपियन स्त्रियों की भाँति स्वेच्छाचारिणी होने की सम्भावना नहीं हो सकती, परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि जैसे-जैसे आधुनिक शिक्षा का उनमें प्रसार होगा वे पश्चिमीय आदर्श



की कुछ बातें ग्रहण करती जायँगी। अब भी अधिकांश अङ्ग्रेजी शिक्षित भारतीय पुरुष वेश-भूषा तथा रहन-सहन में यूरोपियनों का अनुकरण करना पसन्द करते हैं और कितनी ही उच्च शिक्षिता महिलाएँ भी फ्रैशन की दृष्टि से नहीं तो आचार-व्यवहार तथा शिष्टाचार की दृष्टि से पूरी 'मेम' बन गई हैं। वैसे भी संसार के विभिन्न भागों में जैसी शीघ्रता से घनिष्टता बढ़ती जाती है और यातायात तथा विचार-विनिमय के जैसे अद्भुत साधन विज्ञान द्वारा आविष्कृत हो रहे हैं उनको दृष्टिगोचर रखने से इस बात की आशा कदापि नहीं की जा सकती कि संसार-व्यापी स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन का भारतीय महिलाओं पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। ऐसी परिस्थिति में हमारे लिए इस भावी परिवर्तन की रूप-रेखा तथा सम्भावनाओं का जान लेना और समय से पूर्व ही उसकी भली और बुरी बातों से परिचित हो जाना अत्यावश्यक है।

मानवीय कार्य

समाज-तत्त्व-विशारदों में से अधिकांश का मत है कि भावी समाज में समस्त पुरुष और स्त्रियाँ अपने हाथ से काम करके अपनी जीविका उपार्जन करने वाले होंगे। कुछ लोग ऐसा ख्याल करते हैं कि जब समाज की अधिक उन्नति हो जायगी और विज्ञान की सहायता से संसार में जीवन-निर्वाह के साधनों की प्रचुरता हो जायगी तब स्त्रियों को जीविकोपार्जन करने के लिए कुछ भी काम न करना पड़ेगा। दूसरे कुछ लोगों की यह धारणा है कि भविष्य में स्त्रियाँ प्राचीन काल की भाँति अपनी समस्त शक्ति तथा बुद्धि का उपयोग अपने गृह-सुख तथा बाल-बच्चों की उन्नति के लिए करेंगी। परन्तु ये दोनों मत मानवीय विकास की दृष्टि से गलत हैं। क्योंकि ऐसा होने से स्त्रियाँ फिर अन्तःपुर-वासिनी बन जायँगी और अर्थोपार्जन की शक्ति न रखने के कारण फिर से सम्पूर्ण रूप से पुरुषों के अधीन हो जायँगी। क्योंकि यह कल्पना कर सकता-कठिन है कि वैज्ञानिक साधनों की कितनी भी उन्नति हो जाने पर तथा समाज में कितनी भी समावस्था फैल जाने पर कभी भी मनुष्यों को विना थोड़ा बहुत परिश्रम किए जीवन-निर्वाह को कामगरी प्राप्त हो सकेगी। जब ऐसा न होगा और

अर्थोपार्जन के लिए किसी न किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना आवश्यक ही बना रहेगा, तो यह समझ सकना कठिन नहीं है कि जो व्यक्ति उस अवस्था में भी काम न करेंगे वे परोपजीवी (Parasite) होंगे और परोपजीवी आज तक न कभी उन्नति कर सके हैं न सम्मान की दृष्टि से देखे गए हैं। फिर यदि हम दूसरी श्रेणी वालों के मत पर विचार करते हैं, जिनका कहना है कि स्त्रियाँ अपनी शक्ति का उपयोग केवल अपने परिवार के सुख के लिए करेंगी, तो वह भी तर्क-विरुद्ध जान पड़ता है। क्योंकि ऐसी स्थिति वही होगी जो वर्तमान यन्त्र-युग के पूर्व संसार के सभी देशों में पाई जाती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्रियाँ आगे बढ़ने के बजाय पीछे लौट जायँगी। यह बात विकास-सिद्धान्त के विपरीत है कि जब समस्त समाज उन्नति करेगा और वर्तमान यन्त्रों से भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक मैशीनों द्वारा दुनिया का कारबार सञ्चालित होगा तब स्त्रियाँ आज से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व की दशा में रहना स्वीकार करें। ऐसा होने से सार्वजनिक जीवन से उनका कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा और समाज के लिए सामूहिक रूप से वे जो उपयोगी सेवाएँ कर रही हैं, उनका भी अन्त हो जायगा। इसके सिवा भविष्य में वैज्ञानिक साधनों की विशेष रूप से वृद्धि होने से घर में इतना काम भी न रहेगा जिसमें स्त्रियों का सारा समय व्यतीत हो सके और उनको इतना परिश्रम करने का अवसर मिल सके जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक बना रहे। पक्षे ज़माने में स्त्रियाँ भोजन बनाने और घर की सफ़ाई के अलावा आटा पीसती थीं, चप्पें कातती थीं, पानी भर कर लाती थीं, कपड़े सीती थीं। पर आजकल शहरों की स्त्रियों में से शायद ही कोई इन कामों को करती होगी। आजकल आटा छोटे-छोटे स्थानों में भी बिजली या आबल इन्जिन की चक्की से पीसा जाता है, पानी नल से मिल जाता है, सूत कारखानों में कतता है और कपड़े दुर्ज़ी की दुकानों में मैशीन से सिए जाते हैं। इसके अलावा यूरोप और अमेरिका के कितने ही स्थानों में तो घर की सफ़ाई और भोजन पकाने आदि का काम भी बिजली की छोटी-छोटी मैशीनों द्वारा होता है। इस प्रकार जहाँ हमारी दादियों और नानियों को



सुबह से आधी रात तक गृह-कार्य में व्यस्त रहना पड़ता था, आजकल के सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ अपना समय आलस्यवश पड़े रहने, निरर्थक गप्पाष्टक करने या सारहीन पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत किया करती हैं। बच्चों की शिक्षा का कार्य, जो किसी समय में पढ़ी-लिखी माताओं का एक कर्तव्य माना जाता था, अब क्रमशः बन्द होता जाता है और सर्वत्र ऐसे स्कूलों की स्थापनाएँ हो चुकी हैं, जिनमें पाँच साल की उम्र से ही बच्चों को शिक्षा दी जानी आरम्भ हो जाती है। विदेशों के किण्डर गार्टन स्कूलों में तो दो-तीन वर्ष के बच्चे भी खुशी से चले जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान काल में घर के भीतर स्त्रियों का काम दिन पर दिन घटता जाता है और भविष्य में वह और भी कम हो जायगा। इसलिए जिस प्रकार अब इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि लोग रेलगाड़ी छोड़ कर बैलगाड़ी द्वारा यात्रा करेंगे; अथवा प्रेस छोड़ कर हाथ से ग्रन्थ लिखने लगेंगे; अथवा बिजली की रोशनी त्याग कर कड़वे तेल का दिया जलाने लगेंगे, उसी प्रकार अब यह भी सम्भव नहीं जान पड़ता कि स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन को परित्याग कर केवल घर के भीतर आवद्ध रहना स्वीकार कर सकेंगी।

इसलिए यह निर्विवाद है कि भविष्य की समस्त स्त्रियाँ भी उसी प्रकार काम करती रहेंगी जिस प्रकार भूत और वर्तमान काल की साधारण श्रेणी की स्त्रियाँ करती आई हैं। अन्तर इतना ही होगा कि उनके कार्य का ढङ्ग वर्तमान समय से भिन्न प्रकार का होगा। और यह बात केवल स्त्रियों ही के लिए नहीं, वरन् पुरुषों के लिए भी लागू होगी। इस समय तक मैशीनों की जितनी उन्नति हो चुकी है उसका उपयोग यदि समस्त जन-समूह के कल्याण की दृष्टि से किया जाय तो प्रत्येक मनुष्य को केवल तीन-चार घण्टे काम करने से जीवन-निर्वाह के जायक काफ़ी सामग्री मिल सकती है। इसलिए भविष्य में, जब यन्त्रों और वैज्ञानिक साधनों के और भी उन्नत होने की सम्भावना की जाती है, प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जो काम करना पड़ेगा वह आजकल की अपेक्षा बहुत हलका, आनन्ददायक, विवेका-पुङ्गव और समाज के लिए स्वास्थ्य और सुख का दायक होगा। जिस समय समाज में यह सिद्धान्त प्रचलित

हो जायगा कि काम करना मनुष्य-मात्र के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और सम्मानजनक है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का आधार काम पर ही है, उस समय स्त्रियाँ काम करने के अधिकार से वञ्चित रहना अपने लिए प्रशंसा और सौभाग्य का नहीं, वरन् दुर्भाग्य का विषय समझेंगी। उस समय स्त्रियों को स्वभावतः ही ऐसा कोई काम न करना पड़ेगा जिससे उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचे। फिर स्त्रियाँ ही क्यों, प्रत्येक विवेकशील समाज का यह आवश्यक कर्तव्य होना चाहिए कि वह उसमें सम्मिलित प्रत्येक व्यक्ति से उसकी रुचि तथा शक्ति के अनुकूल काम कराए।

गृह-जीवन

इस सम्बन्ध में कितने ही लोग यह भय प्रकट करते हैं कि यदि स्त्रियाँ इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से काम करने लगेंगी तो अपने परिवार से उनका सम्बन्ध शिथिल पड़ जायगा और गृह-सुख का नाश हो जायगा। पर उनकी यह धारणा अममात्र है। पति और पत्नी अथवा माता और पुत्र का सच्चा प्रेम ऐसी चीज़ नहीं, जिसे कोई सामाजिक परिवर्तन नष्ट कर सके। यदि लोगों ने स्त्रियों की पराधीनता और मूक पशु के समान आज्ञापालन को ही सुगृहिणी का आदर्श और गृहस्थी का सुख मान रक्खा हो तो दूसरी बात है। अन्यथा जब स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और अपने जीवन-निर्वाह के लिए सर्वथा समर्थ होते हुए भी किसी व्यक्ति से पति या पुत्र के नाते प्रेम करेंगी तथा उसके लिए अपने हित का बलिदान करने को तैयार होंगी तो वही सच्चे और अकृत्रिम प्रेम की कसौटी होगी। इसके सिवा यह भी आवश्यक नहीं है कि स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति प्राप्त होने पर प्रत्येक स्त्री परिवार से अलग ही रहे अथवा अवश्य ही किसी प्रकार की नौकरी या व्यवसाय करे। हम इस सम्बन्ध में एक भारतीय विद्वान् की सम्मति यहाँ पर देते हैं जिससे इस समस्या का बहुत कुछ खुलासा हो जायगा :—

“यह बात निर्विवाद है कि स्त्रियों को कानून द्वारा किसी भी पेशे को करने से रोकना अनुचित है। उनको वे सब सुभीते मिलने चाहिए जिससे वे राष्ट्र के बड़े से बड़े पद तक पहुँच सकें। परन्तु इसके साथ ही स्त्रियों के



लिए यह कभी उचित न समझा जायगा कि वे अपनी संख्या के अनुपातानुसार पुरुषों के समान नौकरियाँ पाने की चेष्टा करें। मैं तो यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि ऐसी परिस्थिति कभी उपस्थित हो ही नहीं सकती। स्त्रियों को चाहे कैसे भी अधिकार क्यों न मिल जायँ, उनमें से अधिकांश सदैव यह स्वीकार करेंगी कि 'घर' का बनना और बिगड़ना उन्हीं पर आधार रखता है और बिना 'घर' के पुरुष और स्त्रियों के जीवन की कृत-कार्यता असम्भव है। पर जिन स्त्रियों के लिए 'घर' बना सकना या पा सकना कठिन हो, वे अवश्य ही नौकरी या कोई अन्य पेशा करेंगी और प्रत्येक सम्य जाति का कर्तव्य है कि उनको वे सब सुभीते दिए जायँ जिससे वे ऊँचे से ऊँचे सम्मानयुक्त पदों तक पहुँच सकें। फिर यह भी आवश्यक नहीं है कि सभी विवाहिता और परिवार वाली स्त्रियाँ घर के भीतर ही आबद्ध रहें। उनमें से कितनी ही थोड़े समय के लिए कोई धन्धा करके अपने कुटुम्ब की आमदनी को बढ़ा सकती हैं अथवा समाज-सेवा का कोई कार्य कर सकती हैं। इसके सिवा कुछ स्त्रियाँ ऐसी विशेष प्रतिभा-सम्पन्न भी हो सकती हैं, जो मानवीय सम्यता की वृद्धि के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें और अपने स्वार्थ-त्याग तथा बलिदान के द्वारा राष्ट्रीय नेता का पद ग्रहण कर लें।”

विवाह

पति और पत्नी का पारस्परिक प्रेम तथा सुखी विवाह-सम्बन्ध एक ऐसी बात है, जिस पर व्यक्तियों और समाज का कल्याण अधिकांश में अवलम्बित है। पर इस आकांक्षणीय परिस्थिति का आधार केवल पत्नी की आर्थिक पराधीनता नहीं है, जैसा कि आजकल माना जा रहा है। कोई भी वैवाहिक सम्बन्ध इस कारणवश अधिक उत्तम अथवा सुखप्रद नहीं हो सकता कि पत्नी को अपने भरण-पोषण के लिए पति की आवश्यकता है और पति को घर के सँभालने के लिए पत्नी की। इसके विपरीत ऐसे वैवाहिक सम्बन्ध, जिनमें पति और पत्नी की आमदनी पृथक् होती है और एक को दूसरे की आवश्यकता आर्थिक कारणवश नहीं होती, प्रायः वर्तमान समय में भी अधिक सुखप्रद और उत्तम सिद्ध होते हैं। भविष्य में जब सामाजिक आदर्श के बदल जाने

तथा योग्य शिक्षा पाने का पूर्ण सुभीता होने से स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से भली-भाँति स्वावलम्बी हो जायँगी तो उनके विवाह करने का कोई गूढ़ अथवा स्वार्थयुक्त कारण न होगा। तब वे अपनी पसन्द के पुरुष के साथ केवल निर्दोष शारीरिक तथा मानसिक सम्बन्ध क्रायम करने के उद्देश्य से विवाह करेंगी। भविष्य की किशोरियाँ, जो शारीरिक स्वास्थ्य तथा शिक्षा की दृष्टि से वर्तमान समय की स्त्रियों से कहीं अधिक उन्नत होंगी, अपने आरम्भिक जीवन में उसी प्रकार कोई न कोई रोज़-गार-धन्धा अवश्य करेंगी, जिस प्रकार आजकल प्रत्येक युवक स्कूल या कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके जीवन-निर्वाह के लिए किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है। उनकी आमदनी निश्चित होगी, जीवन-निर्वाह की उनको कुछ भी चिन्ता न होगी और इसलिए उनका जीवन आनन्दयुक्त होगा। वे वास्तविक अर्थों में युवती होंगी, जैसी कि आजकल बहुत कम देखने में आती हैं। क्योंकि आजकल शरीरब लोको में कार्य की कठोरता और पौष्टिक खाद्य सामग्री के अभाव से और अमीरों में आलस्ययुक्त जीवन बिताने और हानिकारक भोग-विलास तथा शौक्रीनी में लगे रहने से युवक-युवतियों का स्वास्थ्य प्रायः आदर्श अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। आजकल की स्त्रियाँ प्रायः किसी न किसी रोग में ग्रसित होती हैं और चाहे बाहर से वे कितना भी बनाव-शृङ्गार क्यों न कर लें, पर उनका फीका रङ्ग, निस्तेज मुख और दबी हुई छाती इस बात की गवाही देते हैं कि वे वास्तव में स्वस्थ नहीं हैं और उनकी शारीरिक सम्पत्ति बहुत ही निकृष्ट श्रेणी की है। भविष्य की शक्तिशालिनी, स्वस्थ, कार्यक्षम और सुशिक्षित कुमारियाँ शारीरिक और मानसिक दृष्टि से पत्नीत्व तथा मातृत्व के लिए जितनी अधिक उपयुक्त होंगी वैसी आजकल सैकड़ों में एक भी नहीं मिल सकती। ये कुमारियाँ जल्दी या देर में अपनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार किसी इच्छित पुरुष को पति-रूप में वरण कर लेंगी और आर्थिक कारणों से उनकी इस आकांक्षा में किसी तरह की बाधा नहीं पड़ेगी।

यह जान सकना कि भविष्य में विवाह के विषय क्या होंगे अथवा वह किन विधियों से सम्पन्न किया जायगा, असम्भव है और इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं।



वर्तमान समय में लोगों की प्रवृत्ति यह दिखलाई देती है कि यथासम्भव विवाह के नियमों को सरल बनाया जाय और आडम्बरयुक्त तथा व्ययसाध्य विधियों को त्याग दिया जाय। लक्ष्यों से जान पड़ता है कि यह प्रवृत्ति भविष्य में निरन्तर जोर पकड़ती जायगी और अन्त में ऐसा समय आएगा, जब विवाह-सम्बन्धी बाह्याडम्बर निरर्थक तथा उपहासास्पद समझ कर पूर्णतया त्याग दिए जायेंगे और वर तथा वधू का किसी सार्वजनिक संस्था या न्यायालय के सामने अपनी विवाह करने की इच्छा प्रकट कर देना ही उनका सम्बन्ध स्थापित होने के लिए पर्याप्त समझा जायगा। उस समय यदि विवाह-सम्बन्धी कानूनों का अस्तित्व रहेगा, तो उनकी संख्या बहुत घट जायगी और उनका सम्बन्ध पति-पत्नी के पारस्परिक व्यवहार तथा सन्तान के प्रति उनके उत्तरदायित्व से होगा। हमारे इस परिणाम पर पहुँचने का कारण यह है कि कानूनों और विवाह की धार्मिक समझी जाने वाली विधियों का विवाह सम्बन्धी सुख तथा उसकी पवित्रता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति वेद-मन्त्रों द्वारा किसी कुमारी का पाणिग्रहण करता है उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपनी पत्नी के प्रति उस व्यक्ति की अपेक्षा, जिसने केवल कारागार पर छपे एक फार्म पर दस्तखत करके विवाह किया है, अधिक सच्चा तथा सचरित्र सिद्ध होगा। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता कि जिस नवदम्पति का विवाह बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजे के साथ समस्त रुढ़ियों का पालन करते हुए हुआ है उसका प्रथम मिलन युवक-युवती के उस जोड़े से अधिक आनन्ददायक होगा, जिसने केवल किसी राज्य कर्मचारी के सामने अपने को सम्बन्धित कर लिया है। सच तो यह है कि विवाह की सफलता का आधार उसके बाहरी रूप तथा दिखावट पर नहीं है, वरन् हृदय की शुद्धता और आन्तरिक निष्ठा पर है। विवाह का स्वरूप समय-समय पर बदलता रहा है और बदलता रहेगा, परन्तु पुरुषों और स्त्रियों को एक दूसरे की आवश्यकता सदैव समान रूप से बनी रहेगी और जैसे-जैसे मनुष्य सभ्यता की तरफ़ अग्रसर होगा, उनका सम्बन्ध अधिक आदर्श स्वरूप तथा सुन्दर होता जायगा।

स्त्रियों की विवाह सम्बन्धी स्वतन्त्रता का अर्थ कितने ही लोग यह लगाते हैं कि इससे विवाह-प्रथा सर्वथा नष्ट हो जायगी और पुरुष तथा स्त्रियाँ उसी प्रकार मनमाने ढङ्ग से संयोग करने लगेंगे, जैसा कि पशुओं में अथवा किसी काल में घोर जङ्गली लोगों में हुआ करता था। पर यह उनका भ्रम है अथवा विरोध की भावना से अन्धे होकर वे ऐसा निर्मूल आक्षेप करते हैं। समाज को ऐसी पाशविक अथवा असभ्य अवस्था में पहुँचा देना किसी समाज-तत्त्व-विशारद का ध्येय नहीं हो सकता और न सभ्यता की उन्नति से ऐसे किसी फल की आशा की जा सकती है। जो लोग वर्तमान विवाह-प्रथा के सुधार के पक्षपाती हैं, उनका आशय इतना ही है कि विवाहाकांक्षी स्त्री-पुरुषों के मार्ग में आजकल जो कृत्रिम और अनावश्यक बाधाएँ पाई जाती हैं वे दूर हो जायँ, वर और कन्या को एक दूसरे के पसन्द करने की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जाय, और उनके पारस्परिक सम्बन्ध में बाहरी हस्तक्षेप कम से कम होने लगे। वास्तव में प्रेम सदा से स्वतन्त्र रहा है और आज तक कोई उसका नियन्त्रण नहीं कर सका है। अत्यन्त कठोर राजकीय और सामाजिक नियमों के होते हुए भी पुरुष और स्त्रियाँ उनके विरुद्ध एक दूसरे से प्रेम करते रहे हैं और ऐसे व्यक्ति प्रायः वे ही हुए हैं, जिनको उस युग के समाज ने अत्यन्त महान अथवा आदर्श माना है। यदि बलपूर्वक दो प्रेमियों के शारीरिक मिलन को रोक दिया जाय तो भी हृदय को बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता। कोई भी राजकीय कानून दो व्यक्तियों के हार्दिक प्रेम को नष्ट नहीं कर सकता। इसलिए यदि भविष्य का समाज वर्तमान समय में प्रचलित ऐसे हानिकारक तथा अस्वाभाविक नियमों को त्याग दे, जिनके कारण दो प्रेमियों को लोक-लाज अथवा समाज और राज्य के भय से कपटाचरण का आश्रय लेना पड़ता है अथवा अन्य गुप्त पाप-कर्मों में फँसना पड़ता है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है और न कोई इसकी निन्दा कर सकता है। भावी समाज में सबसे अधिक ध्यान इसी बात पर दिया जायगा, और यही स्वाभाविक जान पड़ता है कि प्रत्येक विवाह-सम्बन्ध दम्पति के सुख तथा कल्याण की वृद्धि करने वाला हो। वर्तमान समय के दूषित तथा विवेक-विरुद्ध



विवाहों के बजाय, जिनके फल-स्वरूप नित्य व्यभिचार की कथाएँ सुनने में आती हैं, वेश्याओं की संख्या बढ़ती जाती है; कुलीन रमणियों का करुण-क्रन्दन हृदय को बेधता है, और अदालतें खून, मार-पीट, बलात्कार, तलाक़ आदि के मुक़दमों से भरी रहती हैं, भावी समाज एक स्त्री और एक पुरुष के विशुद्ध तथा निष्कपट संयोग की चेष्टा करेगा। उस समय लड़के और लड़कियों को आरम्भ में ही विवाह का महत्व समझा दिया जायगा ताकि वे अपने शरीर तथा मन की विशुद्धता की रक्षा करते हुए सन्तानोत्पत्ति के पवित्र कार्य में प्रवृत्त हों। उस समाज में विवाह के मार्ग में केवल एक बाधा रक्खी जायगी और वह यह कि जिन लोगों का चरित्र स्वभावतः पतित है अथवा जिनको कुछ आदि के समान कोई वंशक्रमागत बीमारी है, वे विवाह न करें अथवा कम से कम सन्तान उत्पन्न न करें। यह एक ऐसा सुधार है, जिसकी उपयोगिता वर्तमान समय में अधिकांश विद्वान् स्वीकार कर चुके हैं।

एक प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि जो लोग केवल प्रेम की दृष्टि से विवाह करेंगे, यदि कुछ वर्षों बाद उनका मनोभाव बदल जाय तो वे क्या करेंगे? ऐसे वैवाहिक सम्बन्धों के लिए क़ानून की क्या व्यवस्था होगी? इसके उत्तर में हम निस्संकोच कह सकते हैं कि ऐसे दम्पति वही करेंगे, जो ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर आजकल हज़ारों स्त्री-पुरुष करते हैं। वे एक-दूसरे को तलाक़ देकर अथवा उस समय जैसा क़ानून होगा उसके अनुसार पृथक् हो जायेंगे। अन्तर केवल इतना ही होगा कि उस समय तलाक़ अत्यन्त सहज तथा शिष्टतापूर्ण बना दिया जायगा और उसके लिए किसी को एक दूसरे को बदनाम करने की अथवा सच्चे-झूठे झग़ाम लगाने की आवश्यकता न पड़ेगी और न ऐसे मामलों का जान-बूझ कर सर्वत्र प्रचार किया जायगा, जैसा कि आजकल विदेशी समाचार-पत्र प्रति दिन करते रहते हैं। आजकल अधिकांश लोग तलाक़ देने के लिए अदालत के सामने सब्बे कारणों को छुपा कर ऐसे कारण प्रकट किया करते हैं जिससे क़ानून उनका दावा स्वीकार किया जा सके। आक्षेप करने वाले फिर कहेंगे कि यदि तलाक़ को ऐसा सरल बना दिया जायगा कि पति-पत्नी में से किसी एक के कहने से ही वह स्वीकार हो जाय तो

लोग आम तौर से तलाक़ देने लगेंगे और विवाह-बन्धन का कोई मूल्य न रहेगा। मनुष्य की असंयत तथा पाप की ओर प्रेरित करने वाली मनोवृत्ति पुरुष और स्त्रियों को जल्दी-जल्दी एक के बाद दूसरा विवाह करने को उकसाएगी और अन्त में ऐसी नौबत आएगी कि यह बतलाना असम्भव होगा कि अमुक स्त्री किसकी पत्नी है, और न बच्चे अपने माता-पिता का पता पा सकेंगे। इस प्रकार का आक्षेप करने वाले निस्सन्देह करुणा के पात्र हैं। क्योंकि वे मनुष्य-स्वभाव से इतने अनजान हैं कि ऐसी निर्मूल कल्पना को भी सच मान लेते हैं। उनको अपने हृदय में विचार करना चाहिए कि क्या सभ्य मनुष्य का यही स्वभाव है कि वह इस प्रकार का पशु तुल्य आचरण जान-बूझ कर करे और इसमें आनन्द समझे। क्या सब लोगों से अथवा बहुसंख्यक लोगों से यह आशा की जा सकती है कि यदि क़ानून वा बन्धन न रहें, तो वे अपने प्रेम-पात्र को निरन्तर बदलते रहेंगे? इस प्रश्न का निर्याय करने के लिए हमको भावी समाज की स्थापना अथवा वर्तमान समय में ही तलाक़ सम्बन्धी क़ानून के बदलने की राह देखने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक पाठक अवश्य ही कुछ सुखी दम्पतियों से परिचय रखता होगा। उसे किसी ऐसे सुखी दम्पति के पास जाकर पूछना चाहिए कि यदि कल तलाक़ देने का क़ानून बदल कर बिल्कुल सहज कर दिया जाय तो क्या वे एक दूसरे से पृथक् होने को तैयार होंगे। जिन व्यक्तियों से ऐसा प्रश्न किया जायगा, चाहे वे किसी जाति या देश के हों, इस पर या तो हँसने लगेंगे या नाराज़ हो जायेंगे। पर कुछ भी हो, वे इतना अवश्य प्रकट कर देंगे कि क़ानून में कैसा भी परिवर्तन होने से उसका प्रभाव उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर कुछ नहीं पड़ सकता। वे लोग क़ानून से दब कर एक दूसरे के साथ आबद्ध नहीं हैं, वरन् प्रेम, सहयोग और समान भावनाओं के कारण एक दूसरे से संयुक्त हैं। जिन दम्पतियों का हृदय परस्पर भलीभाँति मिल गया है, वे क़ानून का कुछ खयाल न करके सदैव एक दूसरे के अनुरक्त बने रहेंगे। पर जिनकी जोड़ी अनमेल है, और इस कारण जिनका जीवन दुःखपूर्ण हो रहा है, उनको समाज के तथा स्वयं उनके हित की दृष्टि से पृथक् होने की अनुमति दी जानी अनिवार्य है।



मातृत्व

भावी समाज में बच्चों की क्या व्यवस्था होगी, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। जब हम यह मान लेते हैं कि भविष्य की माताएँ जीवन-निर्वाह के लिए प्रायः स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाली होंगी तो हमारे हृदय में स्वयमेव यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि उस अवस्था में वे अपने बच्चों का उचित रीति से पालन-पोषण कैसे कर सकेंगी? विवाह की भाँति इस सम्बन्ध में भी लोगों में बड़े भ्रमपूर्ण विचार फैले हुए हैं। जब यह कहा जाता है कि भविष्य में राज्य या सरकार बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध करेगी, तो अनजान लोग कल्पना करते हैं कि उस समय समस्त बच्चों को किसी बड़े राजकीय अनाथालय जैसे स्थान में रक्खा जायगा और सरकारी कर्मचारी गाँव-गाँव में माताओं से बच्चों को जबर्दस्ती छीनते फिरेंगे। यह एक सर्वथा उपहासास्पद विचार है, जिसकी कल्पना आज तक किसी समाज-तत्त्व-विशारद ने नहीं की है और न कोई सम्य-समाज इस प्रकार माताओं के स्नेहमय हृदय की हत्या करना गवारा कर सकता है। सच तो यह है कि बच्चों की देख-रेख तथा शिक्षा-दीक्षा का बहुत सा भार अब भी सरकारों ने अपने ऊपर ले रक्खा है। जिन सम्य देशों में अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली की प्रथा प्रचलित है, वहाँ प्रत्येक बच्चे को बहुत छोटी उम्र से ही स्कूल भेज दिया जाता है, जहाँ उनको केवल निःशुल्क शिक्षा ही नहीं दी जाती, वरन् कितने ही स्थानों में दूध और जलपान का भी प्रबन्ध किया जाता है। छोटे बच्चों की शिक्षा-सामग्री के लिए भी माँ-बाप को कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। भावी समाज में इसी कल्याणजनक प्रवृत्ति की और वृद्धि होगी, और इस बात की अधिक से अधिक चेष्टा की जायगी कि भावी पीढ़ी सब तरह से स्वस्थ तथा सद्गुण-सम्पन्न हो। उस समय केवल आरम्भिक शिक्षा ही बच्चों को मुफ्त नहीं दी जायगी, वरन् ऊँची से ऊँची शिक्षा भी प्रत्येक बालक को बिना किसी प्रकार के व्यय तथा भेदभाव के दी जायगी। उस समय यह भली-भाँति समझ लिया जायगा कि प्रत्येक बालक समाज का एक सदस्य है और उसके बनने-बिगड़ने का फल जितना समाज को सहन करना पड़ेगा, उतना उसके माता-पिता को नहीं। उदाहरणार्थ यदि कोई बालक कुशिक्षावश

चोर, डाकू या लम्पट बन जाय तो माता-पिता उसे घर से निकाल दे सकते हैं, पर समाज का पिण्ड उससे नहीं छूट सकता। समाज के किसी न किसी भाग को उसकी दुर्वृत्तियों का शिकार होना ही पड़ेगा अथवा उसे जेल में बन्द करके एक भारी ज़िम्मेदारी तथा व्यय अपने ऊपर लेना पड़ेगा। इसलिए यह बात समाज के लिए ही विशेष रूप से कल्याणजनक है कि वह अपने प्रत्येक सदस्य को आरम्भ ही से ऐसी शिक्षा दे, जिससे वह उसमें किसी प्रकार की अशान्ति अथवा असन्तोष प्रकट करने के बजाय अन्य लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध हो।

पर इसका यह अर्थ लगाना ठीक न होगा कि आवश्यक शिक्षा-दीक्षा के लिए बच्चों को उनके माँ-बाप से अलग कर दिया जायगा। यह सच है कि उस समय बच्चों के स्कूल और प्रमोदोद्यान अत्यन्त चित्ताकर्षक तथा सुखप्रद होंगे और बच्चे उनमें रह कर कभी न उबेंगे, पर तो भी विशेष परिस्थिति को छोड़ कर प्रत्येक बच्चा अपने घर में माँ-बाप के पास ही रहेगा। वर्तमान समय में मज़दूर-श्रेणी की स्त्रियों को कारखानों अथवा अन्य स्थानों में काम करने के लिए अपने बिल्कुल छोटे बच्चों को आठ-आठ, दस-दस घण्टे के लिए घर पर छोड़ देना पड़ता है, जहाँ या तो बड़ी उम्र के बच्चे या पड़ोसी थोड़ी बहुत देर के लिए उनकी देख-भाल कर देते हैं, अन्यथा उनको पड़े-पड़े रोते रहना पड़ता है। अमीरों की स्त्रियाँ अपने आराम या सैर-तमाशे के लिए अपने बच्चों को अशिक्षित तथा कुसंस्कारपूर्ण दाइयों और नौकरों के भरोसे छोड़ देती हैं, जिनसे वे भली आदतों के बजाय कुछ न कुछ बुरी बातें ही सीखते हैं। पर भावी समाज में माँ की अनुपस्थिति में बच्चों की देख-भाल का भार किसी निकटवर्ती शिशुगृह या बालशाला पर रहेगा, जहाँ पूर्ण सुशिक्षित, सुहृदया तथा प्रेमशील निरीक्षिकाएँ उनकी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करती रहेंगी। इन स्थानों में बालक ऐसी सफ़ाई तथा स्वास्थ्यप्रद तरीक़े से रखे जायँगे जैसा कि घर में किसी तरह सम्भव न होगा। क्योंकि न तो प्रत्येक माता बाकायदा सीखी हुई नर्सों अथवा निरीक्षिकाओं के समान बच्चों के सँभालने में कुशल हो सकती है और न प्रत्येक घर में बच्चों के सुख की उतनी सामग्री



एकत्रित की जा सकती है, जितनी कि एक सार्वजनिक शिशुगृह में मिल सकती है।

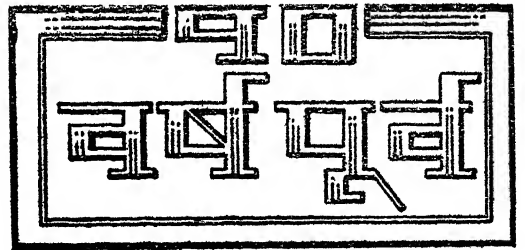
इसमें सन्देह नहीं कि भावी समाज में मातृत्व का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा पवित्र माना जायगा। समाज बालक की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर सकता है, पर आरम्भ में उसके पालन-पोषण का कार्य उसकी माता ही करेगी। समाज बच्चे के विकास को निरीक्षण कर सकता है, पर अपनी आयु के प्रथम वर्ष में उसको स्तन का दूध पिला कर पुष्ट बनाने का कार्य माता के सिवा कोई दूसरा भली-भाँति नहीं कर सकता। इसलिए एक विवेकयुक्त समाज में माता को अवश्य वे सब सुविधाएँ दी जायँगी, जिनसे वह बालक को उचित रीति से जन्म दे सके और पालन कर सके। ऐसे समाज में गर्भ-धारण तथा बच्चे के पालन का कार्य किसी अन्य काम से कम महत्वपूर्ण न समझा जायगा। जब कोई स्त्री माता बनने को होगी तो उसका समस्त कार्य-भार हटा दिया जायगा। विशेषकर उसे ऐसा कोई काम तो करने ही न दिया जायगा जिससे गर्भस्थ बालक अथवा जननेन्द्रिय को हानि पहुँच सकने की सम्भावना हो। बच्चे का जन्म होने के बाद से जब तक वह इस योग्य न हो जाय कि अन्य खाद्य पदार्थ द्वारा भी उसका भली प्रकार पालन हो सके, तब तक माता को अन्य जिम्मेदारियों से पूर्णतया स्वतन्त्र रखा जायगा तथा उसका नियमित वेतन या जीवन-निर्वाह की सामग्री उसे बिना किसी बाधा के पूर्ववत् मिलती रहेगी। वर्तमान समय की भाँति उस दशा में उसे किसी अन्य व्यक्ति के आश्रित न होना पड़ेगा।

इस प्रकार जैसे-जैसे समाज में सभ्यता तथा मनुष्यता की वृद्धि होती जायगी, उसमें स्त्रियों के प्रति आदर का भाव बढ़ता जायगा और उनको नागरिकता के वे सब अधिकार अपने आप मिल जायँगे जो पुरुषों को प्राप्त होंगे। वे पूर्णतया स्वतन्त्र होंगी और उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा समाज स्वयं करेगा। इससे वे पत्नीत्व और मातृत्व के श्रेष्ठ कार्य की अब से कहीं अधिक अच्छी तरह पूर्ति कर सकेंगी।

जैसा हम इस लेख के आरम्भ में निवेदन कर चुके हैं, हमने ऊपर जिस भावी समाज की रूप-रेखा अंकित की है, वह विदेशी समाज-तत्त्व-विशारदों की कल्पना-

प्रसृत है और उसमें कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं, जो हम भारतवासियों को हानिकारक या असम्भव प्रतीत हों। पर यदि हम इसकी भली और बुरी बातों का विश्लेषण करके वर्तमान अवस्था से उसकी तुलना करें तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वह इसकी अपेक्षा कहीं उच्च तथा वाञ्छनीय सिद्ध होगा। यह भी कहा जा सकता है कि समाज का उपरोक्त चित्र केवल काल्पनिक है, वास्तविक जीवन में उसका कार्यरूप में परिणत हो सकना सम्भव नहीं। यदि कुछ देर के लिए हम इस कथन को स्वीकार भी कर लें तो इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि यह एक सुखद कल्पना है।

✻ ✻ ✻



‘चाँद’—जून, १९२३

भारतीय स्त्री-जाति का भविष्य

[श्री० मदनमोहन वर्मा, एम० ए०]

आज हम सबको इस बात पर पूर्णतया विचार करना चाहिए कि स्त्री-जाति का कर्तव्य और आदर्श क्या है ! क्योंकि उसी के अनुसार हमको स्त्री-जाति के उत्थान के लिए कार्य करना है। परन्तु किस प्रकार की शिक्षा और स्वतन्त्रता ? यह तब निश्चित हो सकता है, जब हमारे चित्त में उनका कर्तव्य निश्चित हो। निस्सन्देह केवल पति को तलाक़ देने की स्वतन्त्रता और अधिकांश बुरा काम करने की योग्यता प्राप्त करने की शिक्षा तो हमें देना ही नहीं है। अपने महत्व का ज्ञान ? अपने कर्तव्यों को जानना, घर को देवताओं के रहने योग्य बनाना, देश के मान को रखना और उसके आदर्श की रक्षा करना इत्यादि, इन सब बातों की



हमारी स्त्रियों को शिक्षा चाहिए। इसके लिए उनका सुशिक्षित होना आवश्यक है।

उपरिलिखित उद्देश्य की पूर्णता के लिए यह तो आवश्यक है ही कि हम लड़कियों की पाठशालाएँ प्रति वर्ष बढ़ाएँ, पर इसके अतिरिक्त यह भी उचित है कि हम अपनी बहिनों की शिक्षा-प्रणाली को आदर्श रूप बनावें। लड़कों की शिक्षा-प्रणाली को भीकने से तो हमें अब तक फुरसत ही नहीं मिली है और “देशी शिक्षा” और “जातीय शिक्षा” की पुकार देश में खूब गूँज रही है, तो फिर स्त्री-शिक्षा हम शुरु से ही क्यों ऐसे मार्ग पर न चलाएँ कि जिसके लिए भविष्य में हाथ न पीटना पड़े। यदि स्त्री और पुरुषों के कर्तव्य एक से नहीं तो इसका क्या कारण है कि स्त्रियों की शिक्षा, पुरुषों की शिक्षा के बिलाटिङ्ग पेपर की छाप हो।

एक ऐसे विषय में और विचार करना है। भारत की स्त्रियों का धन्धा क्या रहेगा? आज से दो पुरत पहले तो यह समझा जाता था कि जैसे पुरुष बाहर का काम करने और रोटी कमाने के लिए हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ घर का प्रबन्ध करने (जिसमें कि साधारणतः वह काम भी, जो आजकल नीच समझा जाता है, चौका-बर्तन करना, आटा पीसना, रोटी पकाना, कपड़ा सीना इत्यादि भी शामिल था) के लिए समझी जाती थीं। आजकल के नए रिवाज के अनुसार यह काम तो नौकर या मैरीन करते हैं, तो भी इनकी जगह पर कोई और काम हमारी स्त्रियों ने ग्रहण नहीं किया है। यह तो अच्छी बात है कि स्त्रियाँ ऐसे तुच्छ कामों में अपना सारा समय नष्ट न करें। किन्तु यह तो और भी बुरा है कि उनके बदले आलस्य ग्रहण करें, जैसा कि आम तौर पर आजकल बड़े घरों में देखा जाता है। आलस्य से स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि आम उन्नति को ज्ञान पहुँचने की सम्भावना है।

यह मसला मेरी समझ में स्त्रियों को वकालत करने की आज्ञा मिल जाने या सरकारी नौकरी में भर्ती किए जाने से हल नहीं हो सकता। और यद्यपि मैं इन बातों से भी खुश हूँ कि स्त्रियों के दर्जे की बराबरी पुरुष मानने तो लगे हैं, तो भी किसी देश के शुभचिन्तक को इन बातों से वास्तविक सन्तोष नहीं हो सकता और न स्त्रियों का इस प्रकार आलसी रहना ही देखा जा सकता है; न यह कि आधे से अधिक गिनती जानने वाली स्त्रियाँ तो घर की चहार-दिवारी में बैठी आनन्द करें और बेचारे पुरुष अपने पसीने से कमा-कमा कर उनका और अपने बच्चों का पेट भर दिया करें।

स्त्रियों के उत्थान के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उनमें उनका सुशिक्षित होना, पर्दा तोड़ कर स्वतन्त्र होना, और देश की उन्नति के कार्य, विशेषतः बालकों का पालन करना व शिक्षा-सम्बन्धी कार्य में उनका भाग लेना, रोगियों की सेवा करना, यह सब बातें अति आवश्यक हैं, परन्तु इनके विषय में मुझे इस लेख में कुछ लिखना नहीं है। इस ग्रहण मसले की ओर मैं देश के नेताओं तथा विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि वे इस पर ध्यानपूर्वक विचार कर, स्त्रियों की भावी शिक्षा की एक स्कीम तैयार कर, उसे जनता के सामने उपस्थित करें। उसके लिए यही उपयुक्त समय है, जब कि देशवासी वर्तमान शिक्षा-पद्धति से बेतरह क्रुद्ध हैं और कन्याओं को वर्तमान शिक्षा से वञ्चित रखना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

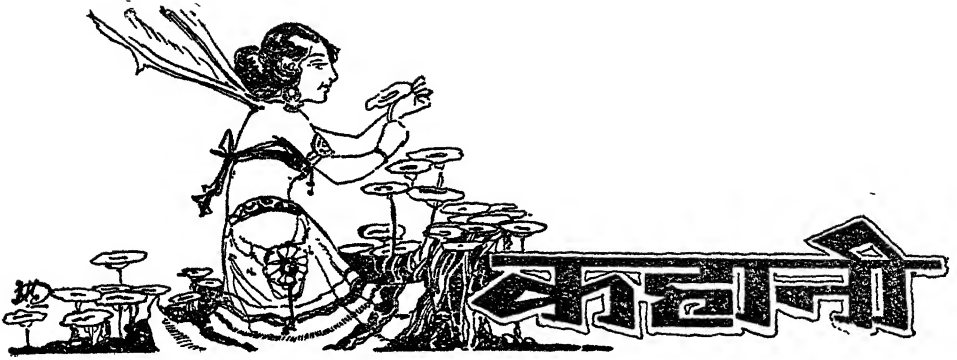
पाठकों को यह याद रहे कि एक लड़के के बिगड़ने से एक पुरुष ही बिगड़ता है, परन्तु एक लड़की के निकम्मी रहने से एक घर निकम्मा हो जाता है, और एक लड़की के सुशिक्षित, सभ्य और स्वतन्त्र होने से एक घर, और घरों द्वारा देश, सुशिक्षित, सभ्य और स्वतन्त्र बनता व कहलाता है।

मधुकरा

[श्री० सोहनलाल द्विवेदी]

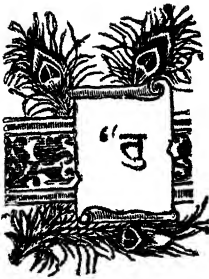
कितनी है दयनीय दशा यह, कितना है विपरीत विचार ?
चाह रहा हूँ मेरे पापों पर तुम मुझे करोगे प्यार !





प्रभाव

[श्री० विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक]



म इसे क्या समझते हो—यह बड़ी मालदार है।”

“ऐं ! मालदार है ? अजी बस रहने भी दो। मालदारी तो इसकी सूरत से ही टपकती है।”

“सूरत पर मत जाओ। किसी की असली हालत का पता उसकी सूरत से नहीं लग सकता।”

प्रातःकाल के नौ बज चुके थे। तरकारी मण्डी के निकट ही एक मन्दिर के चबूतरे पर तीन आदमी बैठे हुए थे। एक अधेड़ आदमी चबूतरे के पास इस प्रकार खड़ा था, मानों रास्ता चलते-चलते उन तीनों का वार्त्तालाप सुनने के लिए ठिठुक गया हो। सामने ही एक बुढ़िया, जिसकी वयस पचास वर्ष के ऊपर होगी, मैले-कुचैले कपड़े पहने धीरे-धीरे जा रही थी। उसके हाथ में कपड़े की एक छोटी पोटली थी। उस बुढ़िया की ओर सङ्केत करके चबूतरे पर बैठे हुए व्यक्तियों में से एक बोला—

“इसके पास कुछ नहीं तो चालीस-पचास हजार रूप्य नक़द होंगे।”

“तुमने भी उस्ताद गप की नाक काट ली।”—दूसरा व्यक्ति बोला।

“हाँ, तुम्हें तो सब गप ही मालूम पड़ता है।”

“यदि ऐसी बात है तो तुम इसकी गोद क्यों नहीं बैठ जाते।”

“मैं तो तैयार हूँ ; परन्तु वह बिठावे तब न ? यदि तुम प्रयत्न करके बिठला दो, तो आधा रुपया तुम्हारा रहा।”

इस पर अन्य दोनों ने अट्टहास किया। चबूतरे के नीचे खड़ा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे वहाँ से चला। कुछ दूर निकल जाने पर उसने अपनी चाल तेज़ की और शीघ्र ही बुढ़िया से आगे निकल गया। सहसा वह एक तम्बोली की दुकान पर रुक गया और तम्बोली से यह कह कर “दो पान बनाना” बुढ़िया की ओर ताकने लगा।

जितनी देर में तम्बोली ने पान बनाए उतनी देर में बुढ़िया तम्बोली की दुकान के सामने आ गई। तम्बोली ने बुढ़िया से पूछा—“का हे बुढ़िया दाई, क्या ले आई ?” इतना सुनते ही बुढ़िया खड़ी हो गई और बोली—“यही साग-तरकारी ले आई बेटा। कुँजदिन राँड से सवेरे हाय-हाय हो गई। चार पैसे सेर के तो दाम लिए और सड़े आलू तोलने लगी। ज़रा आँख चूक जाय तो ये लोग मट्टी दे दें मट्टी—ऐसी खराब जात है। सो वैसी ही बरक़त भी है। भगवान सब देखता है।”

यह कह कर बुढ़िया बड़बड़ाती हुई चल दी। तम्बोली उस व्यक्ति की ओर पान बढ़ा कर बोला—मण्डी भर की सस्ती तरकारी ढूँढ़ कर लाती है। छः पैसे सेर आलू बिक रहा है—यह चार पैसे में लाई है,



अब आप खयाल कीजिए, सड़े न होंगे तो और कैसे होंगे ।

वह व्यक्ति पान मुँह में रख कर बोला—और सुनते हैं मालदार है, जितनी गरीब दिखाई पड़ती है, उतनी नहीं है ।

तम्बोली बोला—हाँ, सुनते तो ऐसा ही हैं; भगवान जाने कहाँ तक ठीक है । तमाखू लीजिएगा ?

उस व्यक्ति ने तम्बोली से तमाखू लेकर मुँह में रखली, तत्पश्चात् एक पैसा फेंक कर आगे की ओर पैर बढ़ाया ।

बुढ़िया आगे-आगे जा रही थी, उसके पीछे-पीछे वह व्यक्ति चल रहा था । सहसा बुढ़िया सड़क पर से एक गली में मुड़ी । गली के अन्दर चार-पाँच लड़के खेल रहे थे । बुढ़िया को देखते ही एक बोला—“नानी करेला लाई !”

इतना सुनते ही बुढ़िया ने गालियाँ देनी आरम्भ कीं—“तुम्हारे बाप का मुँह लाई । लेओ अपनी अम्माँ से पक्का के खा लेना । हरामजादों के मारे राह चलना दूबर है ।”

अब सब लड़के चिल्लाने लगे—“नानी एक करेला दिए जाओ ।” लड़के करेला माँगते थे और बुढ़िया गालियाँ देती थी, कोसती थी । बुढ़िया की बातें सुन कर छोटे-बड़े सब हँसते थे । अन्त में लोगों ने लड़कों को डाँट-डपट कर चुप किया ।

बुढ़िया एक छोटे से मकान के द्वार पर जाकर रुक गई । द्वार पर ताला लटक रहा था । बुढ़िया आँचल में बँधी हुई ताली से ताला खोलने लगी । बगल के मकान के द्वार पर एक व्यक्ति बैठा नारियल पी रहा था । वह बोला—“का हे अम्माँ, क्या ले आई ?” “आलू लाई, बेटा । और कोई साग आता ही नहीं, न जाने सागों में क्या आग लग गई !”

इतना कह कर बुढ़िया द्वार खोल कर अन्दर गई और भीतर से द्वार बन्द कर लिया । नारियल पीने वाला व्यक्ति बड़बड़ाने लगा—“बुनिया भर के तो साग आते हैं, इसे कोई साग ही नहीं मिलता । न जाने ससुरी किसके खातिर जोड़-जोड़ कर घर रही है ।

वह व्यक्ति आगे बढ़ कर नारियल पीने वाले व्यक्ति से बोला—क्यों भइया, यहाँ कोई मकान खाली है ?

नारियल पीने वाला बोला—यहाँ तो कोई मकान खाली नहीं है ।

“क्यों भई, यह बुढ़िया जो इस मकान में गई है, पागल है क्या ?”

“नहीं तो ! अच्छी-भली है । इस जैसी सयानी तो दूसरी इस मुहल्ले भर में नहीं है ।”

“अभी लड़के करेला कह कर इसे चिढ़ा रहे थे और यह बिगड़ रही थी । इससे मैंने समझा कि शायद इसका दिमाग कुछ खराब है ।”

“अजी नहीं, दिमाग-विमाग कुछ खराब नहीं है—करेला कहे से चिढ़ती है—बस इतनी बात है । वैसे भली-चढ़ी है ।”

इतना सुन कर वह व्यक्ति बुढ़िया के मकान को ध्यानपूर्वक देखता हुआ वहाँ से चल दिया ।

२

बृद्धा चमेली इस संसार में अकेली है । जाति की कलवारिन है । इसके दो मकान हैं । एक में तो वह स्वयम् रहती है और दूसरा पचास रुपए मासिक किराए पर उठाया हुआ है—यही उसकी जीविका है । जिस मुहल्ले में वह रहती है, उसके प्रायः सब लोग उसका आदर करते हैं और कोई अम्माँ, कोई चाची, कोई बुआ, इत्यादि नामों से उसे सम्बोधित करते हैं । मुहल्ले के लड़के उसे नानी कहते हैं और ‘करेला’ कह कर उसे चिढ़ाया करते हैं । मुहल्ले के अधिकांश लोगों का अनुमान है कि चमेली के पास नक़्द रुपया भी काफ़ी है ।

उपर्युक्त घटना के एक सप्ताह पश्चात् एक व्यक्ति, एक छोटा सा बिस्तरा दाबे चमेली के द्वार पर पहुँचा । यह वही व्यक्ति था, जिसने उस दिन चमेली का पीछा उसके घर तक किया था । देखने से प्रतीत होता था कि यह व्यक्ति कहीं की यात्रा करके आ रहा है ; क्योंकि उसका शरीर धूल-धूसरित हो रहा था । द्वार पर पहुँच कर उसने द्वार की कुण्डी खटखटाई । कुछ क्षणों पश्चात् द्वार खुला और चमेली की गम्भीर मूर्ति दिखाई पड़ी । उस व्यक्ति ने चमेली को देखते ही झट उसके चरण छूकर कहा—“मौसी, पाँव लागों ।” चमेली ने विस्मय-पूर्ण नेत्रों से उस व्यक्ति को पहचानने की चेष्टा करते हुए कहा—“खुस रहौ बेटा !” इतना कह कर वह उसे सिर



से पैर तक देखने लगी। वह व्यक्ति बोला—“मुझे पहचाना मौसी ?”

चमेली सिर हिला कर बोली—नहीं बेटा, मैंने तो नहीं पहचाना। अब मुझे सूझ कम पड़ता है।

वह व्यक्ति बोला—हम चन्दनपुर से आए हैं, सरजूप्रसाद के लड़के हैं।

बृद्धा अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर देते हुए बोली—सरजूप्रसाद। हाँ, यह नाम तो मुझे अच्छी तरह याद है। सरजूप्रसाद थे तो।

वह व्यक्ति—सरजूप्रसाद वही, जो तुम्हारे घर के पिछवाड़े रहते थे, उनके द्वार पर पीपल का पेड़ था।

बृद्धा नेत्र विस्फारित करके किञ्चित् मुस्कराते हुए बोली—ओहो! अब याद आगया। वह सरजूप्रसाद। उन्हें तो मैं अच्छी तरह जानती हूँ। तुम उन्हीं के लड़के हो ?

“हाँ मौसी।”

“अच्छा तो आओ बेटा, भीतर आओ। सरजूप्रसाद तो हमारे पड़ोसी और बड़े हितु थे।”

यह कह कर बुढ़िया भीतर चली। वह व्यक्ति बुढ़िया के पीछे-पीछे चला।

एक दालान पार करके एक कमरे में दोनों पहुँचे। कमरे में एक ओर एक चारपाई पड़ी थी। उसी के सिरहाने एक बड़ा सन्दूक रक्खा था—बीच में पक्के फर्श पर एक शीतलपाटी बिछी हुई थी। खंठियों पर कुछ मैले तंथा श्वेत कपड़े लटके हुए थे। एक ओर पानी का घड़ा और उसी के पास एक लोटा तथा गिलास रक्खा हुआ था।

बृद्धा शीतलपाटी की ओर सङ्केत करके बोली—बैठो बेटा !

उस व्यक्ति ने बिस्तर एक कोने में डाल दिया और शीतलपाटी पर बैठ कर बड़े ध्यानपूर्वक इधर-उधर देखने लगा। चारपाई के सिरहाने रखे हुए सन्दूक को उसने बहुत ही ध्यान से देखा।

बृद्धा चमेली भी उसके सामने बैठ गई। बैठ कर उसने पूछा—सरजूप्रसाद तो अच्छे हैं ?

“नहीं, उनका तो पीछा हो गया।”

चमेली मुख पर दुःख का भाव साफ़ बोली—अरे ! यह कब ?

“चार बरस हुए।”

“राम-राम ! बड़ा बुरा हुआ ! बड़े अच्छे आदमी थे। मुझे तो बहुत ही मानते थे। बेटा, मुझे चन्दनपुर छोड़े एक जमाना हो गया। तुम तो उस समय चार-पाँच बरस के होगे।”

“मुझे इतना तो याद है कि मैंने तुम्हें वहाँ देखा था और कुछ याद नहीं।”

“हाँ, एक बार जब मेरे बाप मरे थे, तब दो दिन के लिए गई थी, तब से फिर नहीं गई। जाकर करती भी क्या, बाप के घर में कोई भी नहीं रहा, यहाँ भी कोई नहीं रहा। सबको खा बैठी। भगवान मुझे न जाने क्यों भूल गए। मैं भी मर जाती तो पाप कटता।”—इतना कहते हुए चमेली ने नेत्रकोण पर आए हुए आँसू की बूँद को धोती के पल्ले से पोंछ लिया।

“भगवान की मरजी है मौसी और क्या कहा जाय ! भगवान तुम्हें बनाए रखें। तुम्हारे बैठे रहने से हम लोगों को बड़ा सहारा है।”

“हाँ बेटा ! जब तक जिन्दगी है, तब तक तो दुःख भोगना ही पड़ेगा। तुम्हारी माँ तो अच्छी है ?”

“हाँ अच्छी हैं। वह भी तुम्हारी तरह बुढ़ाय गई।”

“हाँ, मेरे साथ की तो है ही और बड़ी नेक है। मेरा उसका बहुत साथ रहा। तुम यहाँ कैसे आए बेटा ?”

“क्या बताऊँ मौसी ! देहात में तो अब गुजर चलता नहीं। खेती-पाती में तो कुछ तत्व नहीं रहा, वहाँ और कोई जीविका है नहीं। इसलिए यही विचार किया कि सहर में चल कर नौकरी-चाकरी करें। पहले तो आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। यहाँ न किसी से जान न पहचान ! पर जब अम्मा ने बताया कि चमेली मौसी वहाँ हैं, तब आने का साहस हुआ। बड़ी मुश्किल से तो तुम्हारे घर का पता मिला।”

“चलो अच्छे आ गए बेटा ! मैं भी अकेली ऊबती थी ; पर करती क्या। जब तक कोई अपने भरोसे का आदमी न हो, तब तक घर में रखते भी तो नहीं बनता।”

“हाँ, सो तो है ही। जमाना बड़ा खराब है मौसी। बहुत समझ-बूझ कर किसी पर एतबार करना चाहिए।” यह कहते हुए उस व्यक्ति ने बड़े सन्दूक पर दृष्टि डाली।

“ठीक बात है बेटा ! और सहर के आदमियों से तो भगवान बचावे !”



“यही डर तो मुझे भी था मौसी। देहात में सुनते थे कि सहर के आदमी बड़े चालाक होते हैं, देहातियों को ठग लेते हैं। इससे और भी आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। पर जब सुना कि तुम यहाँ हो तब ढाड़स बैठा।”

“चलो आ गए हो तो यहाँ आराम से रहो। भगवान चाहेगा तो कोई न कोई नौकरी मिल ही जायगी। तुम भी कोसिस करना, मैं भी पता लगाऊँगी। हाँ बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?”

“मेरा नाम अयोध्याप्रसाद है।”

“बहुत ठीक! भगवान चाहेगा तो नौकरी मिल जायगी। और जो $\times \times \times$ ।”—इतना कह कर हठाव चमेली रुक गई। वह कोई बात कहना चाहती थी, परन्तु फिर कुछ खयाल आने से रुक गई। कुछ क्षणों तक मौन रह कर उसने कहा—“अच्छा तो कपड़े-वपड़े उतार कर हाथ-मुँह धोओ, तब तक मैं खाने को बनाती हूँ।”

३

अयोध्याप्रसाद को चमेली के यहाँ रहते हुए तीन दिन हो गए। अब सवेरे चमेली साग लेने नहीं जाती, उसके बदले अयोध्याप्रसाद जाता है। चमेली अयोध्याप्रसाद से प्रसन्न है; क्योंकि वह चमेली की अपेक्षा साग खरीदने में अधिक पटु है, सस्ता भी खाता है और—अच्छा भी। चमेली उसे पका कर खिलाती है और दोनों समय रामायण सुनाती है।

एक दिन सवेरे अयोध्याप्रसाद नहीं उठा। चमेली ने उसे उठाना चाहा तो वह काँख कर बोला—आज जी अच्छा नहीं है मौसी।

मौसी ने अयोध्या के शरीर पर हाथ रख कर कहा—खुशार तो नहीं जान पड़ता।

“हाँ खुशार तो नहीं है, पर बदन में दर्द है, सिर फटा जा रहा है, आह! आह!”

चमेली ने कहा—अच्छा तो पड़े रहो। आज नहाना नहीं।

चमेली ने नहा-धोकर थोड़ी देर रामायण पाठ किया, तत्पश्चात् बोली—तो मैं जरा मण्डी हो आऊँ।

अयोध्या बोला—काहे को तकलीफ करोगी। अब मेरी तबियत कुछ ठीक हो गई है, मैं चला जाऊँगा।

“नहीं बेटा, तुम अभी थोड़ी देर और पड़े रहो तो जी बिल्कुल अच्छा हो जायगा। मैं लिए आती हूँ, कौन बहुत दूर है। मैं कई दिन से घर से नहीं निकली, जरा घूम भी आऊँगी।”

“अच्छा तो ले आओ, थोड़ी पातक भी लेती आना।”

“अच्छा लेती आऊँगी। तुम उठ कर जरा किवाड़े बन्द कर लो।”

अयोध्या काँखता हुआ उठा और उसने चमेली के बाहर हो जाने पर किवाड़े बन्द कर लिए। किवाड़े बन्द करते ही उसकी कायापलट हो गई। वह क्षणमात्र में भला-चला हो गया। वह जल्दी से अपनी चारपाई के पास आया और अपने सिरहाने से उसने एक पुडिया निकाली। पुडिया को उसने खोला तो उसमें से मोम का डला निकला। मोम का डला लेकर वह बड़े सन्दूक के पास पहुँचा। पहले तो उसने सन्दूक में लगे हुए बड़े ताले को ध्यानपूर्वक देखा। इसके पश्चात् मोम को दबा कर टिकिया बनाने लगा। सहसा उसकी दृष्टि सन्दूक के कुछ ऊपर बने हुए एक बड़े ताक पर गई। उस ताक पर रामायण रक्खी हुई थी और उस पर कुछ फूल पड़े हुए थे। अयोध्याप्रसाद रामायण देख कर स्तम्भित सा हो गया। उसकी दृष्टि पुस्तक पर जम गई, मोम को ठीक करती हुई हाथ की उँगलियाँ रुक गईं। कुछ क्षणों तक उसकी यही दशा रही, तत्पश्चात् वह अपने ही आप बोला—“उँह! इन ढकोसलों में क्या धरा है, तुम अपना काम करो जी।” वह पुनः ताले पर झुका और उसने मोम की टिकिया ताले के ताली वाले छिद्र पर चिपका दी। कुछ देर तक वह उसे दबाता रहा, तत्पश्चात् उसने धीरे से टिकिया को ताले से अलग किया और उसे देख कर बोला—“ठीक है।” वह पुनः अपनी चारपाई के पास आया। उसने अपने सिरहाने से एक टीन की डिबिया निकाली। उस डिबिया में मोम की टिकिया को बन्द करके डिबिया अपने सिरहाने बिस्तर के नीचे दबा दी। इसके पश्चात् वह नित्य कर्म से निवृत्त होने चला गया।

जब चमेली लौट कर आई तो अयोध्याप्रसाद का चित्त बहुत-कुछ ठीक हो चुका था। केवल सिर में थोड़ी सी धमक शेष थी। उपर्युक्त घटना के चार दिन पश्चात् एक



दिन सवेरे अयोध्याप्रसाद की तबीयत फिर खराब हो गई। वही बदन और सिर में दर्द था। चमेली के पूछने पर उसने कहा—ऐसा देहात में भी बहुधा हो जाया करता था मौसी। न जाने क्या रोग है।

“तो तू इसकी कुछ दवा क्यों नहीं करता ?”

“देहात में धरा ही क्या है। अब आज यहाँ किसी डॉक्टर-वैद्य को नाहीं दिखाऊँगा।”

“पण्डित लक्ष्मीनारायण हमारे पुराने वैद्य हैं, उनके यहाँ चला जाना, बड़ी जल्दी ठीक कर देंगे। बड़ा जसी (यशी) हाथ है। मेरा नाम ले देना।”

“अच्छा शाम को जाऊँगा। पता बता देना।”

“इसी मुहल्ले के लुकड़ पर रहते हैं। अच्छा जरा मैं मण्डी हो आऊँ।”

“क्या कहूँ मौसी, तुम्हें बड़ी तकलीफ होती है।”

“तकलीफ काहे की; चित्त बहल जाता है।”

चमेली के जाते ही अयोध्याप्रसाद ने सिरहाने से डिबिया निकाली। उसे खोल कर उसने उसमें से एक ताली निकाली। ताली नई तथा चमकदार थी। ताली लेकर वह सन्दूक के पास पहुँचा। उसकी दृष्टि फिर रामायण पर पड़ी। रामायण को देख कर वह पुनः स्मिक्का। परन्तु शीघ्र ही सँभल कर बड़बड़ाने लगा।

यह रामायण आदमी को बोदा बना देती है। महीने दो महीने सुने तो पूरा गोबर का चोत बन जाय। उसने काँपते हुए हाथों से ताली को ताले के अन्दर डाल कर धुमाया। ताला खुल कर लटक गया। उसका मुख प्रसन्नता से खिल उठा और मुँह से निकला—“अरे !” उसने शीघ्रतापूर्वक कपड़े सन्दूक से निकालने आरम्भ किए। कपड़े अच्छे तथा साधारण दोनों प्रकार के थे। कपड़ों के नीचे उसे एक पिटारी मिली। उसका मुख आशा से खिल उठा। पिटारी को खोला तो उसमें पीतल की सुर्मेदानी, कुछ काठ की डिबियाँ और इसी प्रकार की सटर-पटर चीज़ें निकलीं। उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। वह बोला—“हरामजादी ने इसे भी ताले में बन्द किया है। राम-राम ! मेहनत ही बर्बाद गई। रुपया ससुरी ने न जाने कहाँ रक्खा है। सन्दूक को धोके की टट्टी बना रक्खा है।” उसने जल्दी-जल्दी सब कपड़े सन्दूक में भर दिए और फिर ताला लगा दिया। ताली अपने सिरहाने रख कर वह चारपाई पर बैठ गया

और सोचने लगा—“रुपए तो इसके पास जरूर हैं, पर न जाने साली ने कहाँ रक्खा है। कहाँ गाढ़ के रक्खा होगा। बिना महीना दो महीना साथ रहे पता चलना कठिन है। अच्छा !”

इसी समय द्वार की कुण्डी खटकी। अयोध्या काँखता हुआ उठा और उसने द्वार खोला। चमेली ने पूछा—कैसा जी है ?

“अब तो ठीक है।”—अयोध्या ने उत्तर दिया।

४

फिर दिन व्यतीत होने लगे। चमेली नित्य अयोध्या को रामायण सुनाती थी। अयोध्या को अपनी इच्छा के विरुद्ध, केवल चमेली को प्रसन्न रखने के लिए, रामायण सुननी पड़ती थी। एक दिन उसने कहा—मौसी, तुम रोज-रोज रामायण पढ़ती हो, तुम्हारा जी नहीं अबता। कोई और किताब पढ़ा करो।

चमेली बोली—अरे बेटा, यह किताब थोड़े ही है। यह तो आदमी की मुक्ती का द्वार है। इसके पाठ करने से मुक्ती हो जाती है।

अयोध्या मन ही मन कुढ़ कर चुप हो रहा।

एक दिन अयोध्या बोला—मौसी, नौकरी तो कहीं लगती नहीं। क्या बतावें रुपया पास नहीं है, नहीं तो कोई छोटी-मोटी दूकान कर लेता।

चमेली बोली—लगा जायगी, जल्दी क्या है, भगवान् पर भरोसा रखो। वही सबकी बैय्या पार लगाते हैं। तुम्हें खाने-पीने की तो कोई तकलीफ है नहीं। कुछ घर भेजना चाहो तो भेज दो। दस-बीस रुपए का सहारा मैं कर सकती हूँ।

अयोध्याप्रसाद चमेली के स्नेहपूर्ण वाक्य से प्रभावित होकर बोला—सो तो मौसी, तुम्हारे चरनों में मुझे कोई तकलीफ नहीं है; पर ऐसे कब तक × × ×

बुढ़िया बात काट कर बोली—जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक तो फिकर करो न, मैं मर जाऊँ तो देखी जायगी। फिर भी रामचन्द्र जी महाराज सब भली करेंगे। उनका ध्यान रखो।

उसी दिन चमेली ने बीस रुपए अयोध्याप्रसाद को दिए और कहा—इन्हें घर भेज दो। अपनी माँ को मेरा राम-राम लिख देना।



अयोध्याप्रसाद को यह पता न चला कि बुढ़िया ने रुपए कब और कहाँ से निकाले। इसी प्रकार दो मास व्यतीत हो गए। एक दिन चमेली किसी के यहाँ जाने कह कर सवेरे गई और शाम को लौटी।

उसी दिन रात को चमेली ने अयोध्याप्रसाद से कहा—बेटा, मेरी इच्छा एक मन्दिर बनवाने की हो रही है। भगवान की मर्जी होगी तो बन ही जायगा।

अयोध्या तुरन्त बोला—रुपया कहाँ से आवेगा मौसी ?

“भगवान चाहेंगे तो रुपया भी हो ही जायगा।”

अब अयोध्याप्रसाद को पूर्ण विश्वास हो गया कि इसके पास रुपया अवश्य है। वह बोला—तो रुपया हो तो निकालो, मन्दिर बन जाय ! अपनी जिन्दगी में ही बनवा डालो।

“हाँ, बनवाऊँगी। और मैं क्या बनवाऊँगी—रामचन्द्र जी बनवावेंगे। उनकी जब मर्जी होगी तब बन जायगा।”

“तुम्हारी मर्जी होगी तो उनकी मर्जी भी हो जायगी।”

“नहीं बेटा, उनकी मर्जी मुख्य है।”

अयोध्याप्रसाद दाँत पीस कर रह गया।

एक महीना और व्यतीत हुआ।

सहसा एक दिन चमेली को हैजा हो गया। अयोध्या-प्रसाद ने बहुत दौड़-धूप की, परन्तु कुछ लाभ न हुआ—उसका अन्त समय निकट आ गया।

अयोध्याप्रसाद ने पूछा—मौसी तुम्हारा रुपया कहीं हो तो बता दो, मैं तुम्हारे नाम से मन्दिर बनवा दूँगा।”

बुढ़िया आँखें बन्द किए हुए लगती जिह्वा से बोली—राम × × × राम !

कुछ देर पश्चात् चमेली का देहान्त हो गया।

मुहल्ले वालों को खबर हुई। उसी समय मुहल्ले के दो प्रतिष्ठित व्यक्ति आ गए। उन्होंने किसी वकील को बुलवाया। उसने आते ही घर पर अधिकार जमाया। अयोध्याप्रसाद बोला—“चमेली मेरी मौसी थी। मैं जैसा चाहूँगा करूँगा, आप लोग दखल मत दीजिए।”

वकील ने हँस कर कहा—चमेली वसीयत कर गई है और हम लोगों को दूस्ती बना गई है। तुम्हारा नाम क्या है ?

अयोध्या धबकाकर बोला—मेरा—मेरा नाम अयोध्या है।

“बाप का नाम ?”

“बाप का नाम ? बाप का नाम सरजूप्रसाद।”

“चन्दनपुर के रहने वाले हो ?”

“हाँ।”

“तो तुम्हारे लिए बीस रुपया महीना और खूराक लिख गई है। वह भी यदि तुम मन्दिर में रहोगे ?”

“मन्दिर, कैसा मन्दिर ?”

“अब बनेगा, हम लोग बनवावेंगे। मगर पहले तुम्हें यह साबित करना होगा कि तुम सरजूप्रसाद के लड़के और चन्दनपुर के रहने वाले हो।”

अयोध्याप्रसाद का मुख पीला पड़ गया।

वकील ने कुछ आदमियों को अन्त्येष्टि क्रिया का सामान लाने भेजा और कुछ आदमियों से बढ़ा सन्दूक हटवा कर वह स्थान खुदवाया। एक गज़ खोदने पर एक बड़ा बक्स निकला। इस बक्स को खोला तो वह रुपयों और नोटों से भरा था। अनुमान से चालीस-पचास सहस्र रुपया होगा। अयोध्याप्रसाद का सिर घूम गया। वकील साहब घर के सामान की सूची बनाने लगे। कुछ आदमी अन्त्येष्टि क्रिया के लिए रथी हत्यादि बनाने में लग गए। रथी तैयार हो जाने पर अयोध्या की तलाश हुई। क्रिया करने के लिए वही चुना गया। परन्तु अयोध्या लापता हो गया था।

× × ×

आठ महीने पश्चात् एक नए मन्दिर के द्वार पर, जो चमेलीदेवी का मन्दिर कहलाता था, एक संन्यासी आया। उसने पुजारी से कहा—यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी इस मन्दिर के द्वार पर पड़ा रहा करूँ और भगवान का भजन करूँ।

पुजारी ने सहर्ष आज्ञा दे दी। संन्यासी ने मन्दिर के चबूतरे पर आसन जमा दिया। कुछ भोजन मन्दिर से और कुछ पढ़ोस के गृहस्थों से मिल जाता था। इस प्रकार संन्यासी चबूतरे पर बैठा रहता और रामायण पढ़ कर लोगों को सुनाया करता था।

यह संन्यासी कौन था ? वही हमारा पूर्व-परिचित अयोध्याप्रसाद !



मातृमण्डल

[श्री० रामचरित उपाध्याय]

सुमातृमण्डल कदापि तुमसे,
उत्तुण न होंगे किसी तरह हम ।
कृतज्ञता पर प्रकाश तो भी,
किया करेंगे इसी तरह हम ॥

❀

उदर तुम्हारे कलोल कर जो,
गरम तुम्हारा रुधिर न पीते ।
धुधा-विवश हो तड़प तड़प-कर,
अकाल मरते, कभी न जीते ॥

❀

बलिष्ठ हों हम विचार कर यह,
अनिष्ट भोजन किया न तुमने ।
निरुज रहें हम इसीलिए क्या—
कटुक दवा को पिया न तुमने ?

❀

हमें हृदय से छिपा शिशिर में,
स्वयं तुहिन-दुख सहा न तुमने ?
मचल गए तब तनिक न टाला,
कभी हमारा कहा न तमने ॥

❀

न यदि जनमते न दूध पीते,
तुरत बुढ़ौती तुम्हें न आती ।
न बख होते मलिन तुम्हारे,
न यदि हृदय से हमें लगाती ॥

❀

निशुम्भ-हन्त्री कभी स्वयं बन,
अधम असुर से हमें बचाया ।
कभी जनकजा के रूप धर के,
दनुज-निबह का निधन कराया ॥

तुम्हीं हमारी रमा क्षमा हो,
तुम्हीं हमारी हो जन्मदात्री ।
तुम्हीं हमारी हो देवियाँ भी,
तुम्हीं हमारी हो गेह-धात्री ॥

❀

न भीम ही हम रहे न अर्जुन,
द्रुपदसुता फिर तुम्हें कहें क्यों ?
स्वयं निबल हो तुम्हें प्रबल क्यों—
बना सकेंगे, सुखी रहें क्यों ?

❀

स्वतन्त्रता थी मिली तुम्हें भी,
रही हमारी स्वतन्त्रता जब ।
निशेश पर जब प्रहण लगा है,
छिटक रहेगी न चाँदनी तब ॥

❀

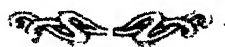
कपूत हम-सा कहीं मही पर,
नहीं हुआ है, न हो सकेगा ।
वही नपुंसक, पुरुष नहीं, जो—
कलङ्क माँ का न धो सकेगा ॥

❀

हमें गुलामी सुखद हुई है,
न चाहते हम स्वतन्त्र रहना ।
जिन्हें खुशामद हुई है पारस,
पुरुष उन्हें तुम कभी न कहना ॥

❀

स्व-चूड़ियों को उतार करके,
हमें पिन्हा दो, न हानि होगी ।
निलज्ज हैं हम सुमातृमण्डल,
हमें तनिक भी न ग्लानि होगी ॥



‘चौपदों’ का चमत्कार

[श्री० श्रीनाथ पाण्डेय, एम० ए०, रिसर्च-स्कॉलर]



प

खिड़त अयोध्यासिंह उपाध्याय खड़ी बोली के सर्वोत्कृष्ट कवियों में हैं। यों तो काव्य की प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी शैलियों और भाषाओं पर आपका पूर्ण अधि-

कार है, परन्तु आपकी

यश-वृद्धि का श्रेय खड़ी बोली ही को प्राप्त है। वर्तमान कवियों में आप ही एक ऐसे कवि हैं, जिन पर दोनों ‘स्कूल’ वालों की समान श्रद्धा है। ‘वादयुक्त’ और ‘वादमुक्त’ दोनों प्रकार की कविता करने में भी आप विशेष कुशल हैं। शीघ्र ही आपका ‘रस-कलस’ नामक ग्रन्थ निकलने वाला है, जिसमें आपने रीतिकाल की पद्माकरी पद्धति का अनुसरण किया है और इस कार्य में भी आप पूर्णतया सफल हुए हैं।

काव्य की प्रचलित भाषाओं में पूर्ण अभिज्ञता रखते हुए भी, प्रारम्भिक काल से ही जन-साधारण की बोलचाल की भाषा से आपका विशेष प्रेम रहा है। आज से ४५-५० वर्ष पूर्व, जब कि हिन्दी-गद्य का कोई निश्चित स्वरूप भी स्थिर नहीं हुआ था, और हिन्दी के लेखक महोदयगण अपनी-अपनी विभिन्न प्रकार की शैली को प्रधानता देने में प्रवृत्त थे, उपाध्याय जी ने भी अपनी शैली को स्थायित्व प्रदान करने के विचार से बोलचाल की भाषा में दो पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों को लोगों ने बड़े चाव से पढ़ा; इनके कई संस्करण भी हुए। यद्यपि साहित्य की भाषा की दृष्टि से इन्हें प्रधानता नहीं मिली, परन्तु उपाध्याय जी इससे हताश न हुए। क्योंकि वह समय ही ऐसा था, जब लोग “कल में आपसे मिलने के लिए आपके घर पर गया था। घर का दरवाज़ा बन्द था, आपसे भेंट नहीं हुई। लाचार होकर लौट आया” के स्थान पर “आपके समागमार्थ मैं

गत दिवस आपके धाम पर पधारा। गृह का कपाट मुद्रित था, आपसे भेंट न हुई। हताश होकर परावर्तित हुआ” लिखना पसन्द करते थे। अरु, बोलचाल की भाषा से आपका प्रेम तो बना ही रहा, परन्तु तो भी आपने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य ‘प्रिय-प्रवास’ में संस्कृत वृत्तों का सहारा लिया, जिनमें तत्सम शब्दों की ही प्रधानता रही। घात-प्रतिघात के नियमों के अनुसार आपका यह कार्य स्वाभाविक ही था। अस्तु, ‘प्रिय-प्रवास’ के प्रकाशित हो जाने पर उसकी एक प्रति समालोचनार्थ आपने डॉ० ग्रियर्सन (Sir George A. Grierson, G. M. K. C. I. E.) के पास भेजी थी। सुप्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी ग्रियर्सन साहब बोलचाल की हिन्दी के बड़े पक्षपाती हैं। उन्होंने प्रिय-प्रवास की प्रशंसा करते हुए लिखा था—“रचना बड़ी ही मधुर और सुन्दर है। परन्तु इसकी भाषा से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मेरे लिए परम सौभाग्य की बात होती, यदि आप बोलचाल की भाषा में किसी महाकाव्य की रचना करते।” डॉक्टर साहब की इन पंक्तियों को पढ़ कर उपाध्याय जी का ध्यान पुनः बोलचाल की भाषा की ओर आकृष्ट हुआ और आपने बोलचाल के मुहावरों को लेकर दो काव्य-ग्रन्थों की रचना की। ये दोनों पुस्तकें अपने ढङ्ग की अनूठी हैं। परन्तु बड़े दुःख की बात है कि इन ग्रन्थरत्नों का अध्ययन इने-गिने लोगों ने ही किया है। अतः अभी तक इनकी जो आलोचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, उनमें कुछ तो प्रमादवश और कुछ अज्ञानवश बड़ी ही अमालूम हैं। यथार्थ में बात यह है कि हिन्दी साहित्य-समालोचक किसी पुस्तक की उत्तमता की परख अपनी आँखों से न करके बङ्गला तथा अङ्गरेज़ी लेखकों की आँखों से किया करते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि कविता का सम्बन्ध प्रधानतः चित्तवृत्तियों और भावों से है। तर्क के कर्कश विचारों या हेतुवाद से उसका कोई सम्बन्ध



नहीं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कविता हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। हृदय-सम्वादी भावों से ही इसकी अभिव्यक्ति होती है और उसी का जादू सारे शरीर पर अपना असर डालता है। “योऽर्थो हृदय सम्वादी तस्य भावो रसोद्भवः। शरीरं व्याप्यते तेन शुष्क काष्ठमिवाग्नितां।” (नाथ ७।७) तार्किकों की दाल यहाँ नहीं गलती। तार्किकों के लिए तो नीलकण्ठ की यह उक्ति ही बहुत कुछ युक्तिसङ्गत जान पड़ती है—

अप्यन्तकस्थै रविभावनीयः

सूक्ष्मः प्रकृत्या मृदु सूक्ति जन्मा।

कुतर्क विद्या व्यसनोपजातैः

कोलाहलैर्न ध्वनिरेव वेद्यः ॥

—शिवलीलार्णव १।७२

अर्थात्—“सुकुमार सूक्ति से उत्पन्न, स्वभाव से ही सूक्ष्म, पास वालों को भी कुछ न मालूम पड़ने वाली यह ध्वनि—कविता-पद की मीठी तान—कर्कश तर्क-विद्या की झुक से की गई बक-बक में नहीं सुनाई देती।” सारांश यह कि कविता हृदय की वस्तु है। भावुक का हृदय जब हृदय-सम्वादी भावों से आप्लावित हो जाता है, तो उसके हृदय में एक विशेष प्रकार की व्यथा उत्पन्न होती है। हृदय की व्यथा दूर करने के लिए वाणी के सिवा दूसरे अवयव समर्थ नहीं। अतः ऐसे अवसरों पर वाणी से जो कुछ प्रसृत होता है, वही कविता है। भावुक को उस समय वाणी के परिधान का बिलकुल ध्यान नहीं रहता। शब्द भावों के प्रवाह के साथ होड़ लगाते हैं; कभी साथ-साथ दौड़ने में समर्थ होते हैं, और कभी पीछे पड़ जाते हैं। यही कारण है कि अध्ययनशील कवियों में दोनों बातों का सुन्दर समन्वय मिलता है; भावों की अभिव्यक्ति में शब्द असमर्थ नहीं दिखलाई पड़ते। परन्तु कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जिनकी रचनाओं में शब्दों की तो प्रचुरता होती है, परन्तु भावों की न्यूनता रहती है। ऐसे कवियों का हृदय भावों से व्यथित नहीं होता, वरन् वे जान-बूझ कर हृदय में व्यथा उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं, और इस तरह भावों के साथ बलात्कार करते हैं। यही कारण है कि उनके भावों में भद्दापन आ जाता है। वस्तुतः बात यह है कि सच्ची कविता के लिए व्यथित

कवि-हृदय चाहिए, यों तो ऊटपटांग तुकबन्दी भाषा से अभिज्ञ सभी कर सकते हैं। प्राचीन काल में कविता के सम्बन्ध में सांख्यवादीक मतभेदों के होते हुए भी भाव की सब में प्रधानता थी—चाहे अलङ्कार-सम्प्रदाय हो, चाहे रीति-सम्प्रदाय। चमत्कारवादियों के ‘चमत्कार’ में भी भाव की ही प्रधानता थी। केवल उक्ति-वैचित्र्य-प्रधान काव्य तो सूक्तिपद का ही अधिकारी था। चमत्कार शब्द ही भाव का बोधक है—हृदय या मन ही चमत्कृत हो सकता है, मस्तिष्क नहीं।

भाषा की बँधी हुई रुढ़ियाँ ही मुहावरा हैं। लाक्षणिक प्रयोगों का बोध भी इन रुढ़ियों द्वारा ही होता है। अतः लक्षण और मुहावरा दोनों सापेक्ष हैं—एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि भाषा की बँधी हुई रुढ़ियों में बँध कर कविता करने में कवित्व-शक्ति को व्याघात पहुँचता है। परन्तु यह कहना कि भाषा की बँधी हुई रुढ़ियों में कविता करना असम्भव और अशक्य है, युक्तिसङ्गत नहीं। कुछ बँधे हुए नियमों का पालन तो सभी कवियों को करना ही पड़ता है, चाहे किसी प्रकार की कविता हो। अतः कुछ विद्वान समालोचकों का यह कहना कि उपाध्याय जी की प्रतिभा का इन चौपदों में हास हुआ है और वे कवि-पद से च्युत होकर शब्द-संग्रहकार बन गए हैं, युक्तिसङ्गत एवं समीचीन नहीं है। उपाध्याय जी का उद्देश्य मुहावरों का संग्रह करना नहीं, वरन् मुहावरों में कविता करना है। फिर भी ‘प्रिय-प्रवास’ के छन्दों की तुलना इन चौपदों से करना अन्याय होगा। यदि एक से हृदय चमत्कृत होता है तो दूसरे से रसमग्न; यदि एक में शब्द-सौष्ठव है तो दूसरे में भाव-सौष्ठव। अपने-अपने ढङ्ग की दोनों उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इसलिए इनके परस्पर की कसौटी भी विभिन्न प्रकार की होनी चाहिए।

हिन्दी-संसार के लिए ये चौपदे बिलकुल नई चीज़ हैं। भाषा की दृष्टि से तो इनका विशेष स्थान है ही, साहित्य में भी इनका विशिष्ट स्थान है। पद्य-साहित्य के एक हजार वर्षों के इतिहास में मुहावरों में कविता करने का किसी ने साहस ही नहीं किया। ऐसा साहस वे ही कर सकते हैं, जिनका मुहावरों पर अधिकार है। उपाध्याय जी इस साहस के अधिकारी हैं। आपने अपनी अपूर्व प्रतिभा के प्रसाद से अपने को भाषा की बेड़ियों



में जकड़ कर उसे ही सम्भव कर दिखाया है, जिसे लोग असम्भव समझते थे। नीचे इनके चौपदों के कुछ नमूने दिए जाते हैं। यों तो सभी चौपदे अपने-अपने ढङ्ग के निराले हैं, परन्तु सबकी अपनी-अपनी विभिन्न रुचि है, अतः हमें जो सबसे प्रिय हैं, उन्हीं में से कुछ दिए जाते हैं :—

तैरते हैं उमङ्ग लहरों में ।
चाव से लाड़ साथ लड़ लड़के ॥
लाभ हैं ले रहे लड़कपन का ।
हाथ औ पाँव फेंकते लड़के ॥

लड़कों का 'हाथ-पाँव फेंकना' नित्यप्रति की एक साधारण घटना है। छोटे-छोटे सभी बच्चे माँ की गोद में, बिछौने पर या गो-कार्ट (Go-Cart) में हाथ-पाँव फेंकते दिखाई देते हैं। मनोविज्ञान-वेत्ताओं ने इस घटना पर चाहे भले ही विचार किया हो और इसके कारणों का भी उल्लेख किया हो, परन्तु हिन्दी-भाषा के किसी कवि की दृष्टि इस 'तुच्छ घटना' में नहीं रमी। उपाध्याय जी ने इस चौपदे में इसी तुच्छ घटना पर बड़ी ही मार्मिकता और सहृदयता के साथ विचार किया है। लड़के हाथ-पाँव क्यों फेंकते हैं? इसका उत्तर उपाध्याय जी ने चौपदे के ऊपर वाले तीन पदों में दिया है। उत्तर बहुत ही स्वाभाविक, युक्तिसङ्गत एवं मर्मस्पर्शी है। तैरने में ही हाथ-पाँव दोनों फेंकने की आवश्यकता पड़ती है। लड़के हाथ-पाँव दोनों फेंक रहे हैं, अतः ये भी तैर रहे हैं—तैराक हैं। तैराक के लिए किसी नदी या जलाशय की आवश्यकता पड़ती है। बालक उमङ्ग के आप्लावित प्रवाह में तैर रहे हैं—जहाँ हर घड़ी कोल लहरों से सामना है। मनोवेगों का रूप सदा स्थायी नहीं रहता। उद्बोधक की मात्रा के अनुसार ही इनकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। ऐसी परिस्थिति में लहरों का उठना स्वाभाविक ही है। जल में भी वायु के वेग की तीव्रता के कारण ही लहरें उठती हैं। तरङ्गित जल-प्रवाह में तैराकों को लहरों से सामना करना पड़ता है, जिसे लहरों से लड़ना कहते हैं। लहरों में तैरना बहुत ही कष्टसाध्य है, परन्तु तैराक लोग अपना कौशल दिखलाने के लिए ऐसा करते हैं। उन्हें इसके लिए कोई प्रेरित नहीं करता। लड़के भी 'चाव' से लाड़ की लहरों से लड़ रहे हैं और अपना कौशल माता-पिता को

दिखला रहे हैं। चौपदे में लकार और इकार का बाहुल्य होते हुए भी प्रवाह है। बल्कि इन लकार और इकारों के कारण नाम-सौन्दर्य आ गया है।

दूध छाती में भरा, भर वह चला ।
आँख बालक और माँ की जब फिरी ॥
गङ्गाधारा शम्भु के शिर से बही ।
दूध की धारा किसी गिरि से गिरी ॥

संसार में एक माँ का प्रेम ही निस्स्वार्थ कहा जाता है। माँ के इस प्रेम का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। उपाध्याय जी ने भी प्रेम के उसी रूप को लिखा है जिसे औरों ने। परन्तु इनकी उक्ति अछूती और अनूठी है। माँ के स्तनों की उपमा के लिए कवियों ने क्या छोड़ रक्खा है? परन्तु किसी की भी पहुँच 'अमृत-घट' से आगे नहीं। बहुत से ज़बाँदानी का दावा रखने वाले कवि तो 'दूध के दो घड़े' ही से वापस लौट आए हैं। परन्तु उपाध्याय जी अपनी अपूर्व प्रतिभा के प्रसाद से बहुत आगे बढ़ गए हैं। 'गङ्गाधारा शम्भु के शिर से बही; दूध की धारा किसी गिरि से गिरी' में आपने अपने 'कवि अनूठे कलाम के बल से, हैं बड़ा ही कमाल कर देते। बेधने के लिए कलेजों को, हैं कलेजा निकाल धर देते। हैं निराली निपट अछूती जो, हैं वही सूक्त काम में लाते। कम नहीं है कमाल कवियों में, हैं कलेजा निकाल दिखलाते।' इन उक्तियों को सार्थक कर दिखलाया है। 'गिरि' से दूध की धारा बहते किसी ने सुना भी न होगा, परन्तु उपाध्याय जी ने अपनी प्रतिभा के बल से दूध की धारा बहाई है, जो परम स्वाभाविक एवं हृदय-स्पर्शी है। 'शम्भु के शिर की धारा' और 'गिरि के दूध की धारा' में साम्य है। दोनों का प्रवाह दूसरे के हित के लिए है। धारा शब्द ही निस्स्वार्थता का ध्येयक है।

भौं सिकोड़ी बके भके, बहके ।
बन बिगाड़ लड़ पड़े अकड़े ॥
लोक के नाथ सामने तेरे ।
कान हमने कभी नहीं पकड़े ॥

मनुष्य संसार में सब कुछ करता है, परन्तु घट-घट अन्तर्यामी परमात्मा के सामने अपनी भूल नहीं स्वीकार करता। अज्ञानता के कारण वह अपने को परमात्मा से



भी बड़ा समझता है। 'लोक के नाथ सामने तेरे, कान हमने कभी नहीं पकड़े' में उपाध्याय जी ने जिस भावुकता का परिचय दिया है, वह अन्य कहीं सम्भव नहीं। बहुत से सन्त कवियों ने परमात्मा में पितृत्व और मातृत्व का आरोप करके अपने को बालक के रूप में माना है। परन्तु 'कान हमने कभी नहीं पकड़े' से जिस भाव की व्यञ्जना होती है, वह अछूता है। सहृदयता की यहाँ पराकाष्ठा है। बालक के भूल-चूक करने पर माता-पिता उसे कान पकड़ने के लिए आदेश करते हैं—बालक आज्ञा का पालन करता है—माता-पिता क्षमा कर देते हैं। अदृष्ट रूप से परमात्मा भी हमें हर घड़ी आदेश करता है, परन्तु हम उसकी अवहेलना करते हैं। चौपदे में मुहावरों की भरमार होते हुए भी कवित्व-शक्ति को व्याघात नहीं पहुँचने पाया है। अलङ्कार-विधान की दृष्टि से भी चौपदे सर्वोत्कृष्ट हैं। 'लड पड़े अड़े अकड़े' में बड़ी ही सजीवता है। इनकी ध्वनि द्वारा सारी घटना का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है।

हो कहाँ पर झलक नहीं जाते।
पर हमें तो दरस हुआ सपना ॥
कब हुआ सामना नहीं, पर हम।
कर सके सामने न मुँह अपना ॥

सृष्टि के सारे पदार्थों में हर घड़ी परमात्मा की झलक मिलती रहती है, परन्तु अहं भाव के कारण मनुष्य को उसका आभास नहीं मिलता। जब तक हृदय अन्धकार से भरा है—चित्त पर अज्ञान का आवरण है, तभी तक मनुष्य अपने को सब पदार्थों से अलग समझता है। हृदय का अन्धकार नष्ट होते ही—चित्त का अज्ञानावरण दूर हटते ही, वह अपने को उस अव्यक्त सत्ता का अंश समझने लगता है, जिसका व्यक्त रूप प्रकृति है, जिसकी विभूति चारों ओर फैली हुई है। अपनी व्यक्त-सत्ता को प्रकृति की व्यक्त सत्ता में लय कर देने ही में जीवन की सार्थकता है। परमात्मा का यही आदेश है। जब तक मनुष्य ऐसा करने में समर्थ नहीं होता तब तक

परमात्मा की दृष्टि में वह दोषी है। दोषी मालिक के सामने मुँह कैसे कर सकता है? 'कब हुआ सामना नहीं, पर हम; कर सके सामने न मुँह अपना।' जब तक हृदय भेद-भावों से भरा है, तब तक मुँह कलङ्कित है—कलङ्कित मुँह परमात्मा के सामने कैसे करे? 'मुँह सामने न कर सके' व्यथित हृदय की उसास है। 'सामना नहीं हुआ' 'सामने मुँह न कर सके' इन मुहावरों के प्रयोग से भावों में तीव्रता आ गई है। परिधान और भाव दोनों उत्तम हैं।

हों भले, हों सब तरह के सुख हमें।
एक भी साँसत न दुख में पड़ सहे ॥
चाह है, लाली बनी मुँह की रहे।
लाल तलवों से लगी आँखें रहें ॥

चौपदे का भाव बहुत ही पुराना है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रायः सभी कवियों ने इस भाव की अभिव्यक्ति अपने-अपने छन्दों में की है; परन्तु मुहावरों के प्रयोग से जो चमत्कार उपाध्याय जी के चौपदे में आ गया है, वह अन्य कहीं देखने को नहीं मिलता। सड़े हुए भाव में ज़िन्दादिली आ गई है। यही तो प्रतिभा है। 'चाह है, लाली बनी मुँह की रहे। लाल तलवों से लगी आँखें रहें।' इन पदों को सुनते ही सुनने वाले के मुँह से अचानक बाह-बाह निकल जाता है। दोनों पदों में बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है—एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं। लाल तलवों से जब तक आँखें लगी रहें, तभी तक मुँह की लाली बनी रह सकती है। इन दोनों मुहावरों के प्रयोग द्वारा उपाध्याय जी ने कमाल कर दिखाया है।

कहाँ तक उदाहरण दिए जायँ। सहृदय कविता-प्रेमी मात्र इस बात को स्वीकार करेंगे कि अपने चौपदों में मुहावरों का प्रयोग करके कवि ने अपने भाषा-सम्बन्धी असाधारण अधिकार की ही अभिव्यक्ति नहीं की है, वरन् कविता में भी एक विचित्र चमत्कार भर दिया है। उपाध्याय जी के चौपदे हिन्दी के अमूल्य रत्न हैं।



समाजगत यूरोपीय राजनीतिक सिद्धान्त

[श्री० शङ्करदयालु श्रीवास्तव, एम० ए०]



रोप की इतिहास-प्रसिद्ध औद्योगिक क्रान्ति, सब से पहले इङ्ग्लैण्ड में अष्टारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में, प्रारम्भ हुई थी और उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय चरण के अन्त तक लगभग समस्त महाद्वीप में उसका प्रसार हो चुका था। विविध वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सुदृढ़ आधार पर ही उक्त क्रान्ति का विजय-वैभव अवलम्बित था। वाष्प-बल तथा विद्युत्शक्ति के प्रचुर प्रयोग द्वारा दैनिक व्यवहारोपयोगी अनेक प्रकार की वस्तुओं की उत्पादन-शक्ति अत्यधिक बढ़ गई। भिन्न-भिन्न देशों में विविध प्रकार के यन्त्रों का प्रचार बढ़ गया और स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े नगरों का प्रादुर्भाव हुआ। ये नगर यान्त्रिक बल पर अवलम्बित औद्योगिक कार्य-कलापों के केन्द्र बन गए और बहुसंख्यक दीन ग्रामीण स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाएँ जीविकोपार्जन के लिए वहाँ आकर बड़े-बड़े कारखानों में कार्य करने लगे। कारखानों के स्वामी उनके परिश्रम से अतुल लाभ उठाने लगे, किन्तु उन श्रमिकों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई। वे दिन-रात कठिन परिश्रम करते थे, तथापि पारिश्रमिक रूप से जो कुछ वे पाते थे, उससे वे सुखपूर्वक अपना निर्वाह नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त उन श्रमिकों के रहने का प्रबन्ध भी सन्तोषजनक न था। दिन भर गैस तथा धुँएँ से व्याप्त विषाक्त वायु-मण्डल में कठिन परिश्रम करने के उपरान्त जब वे कुछ घण्टे भोजन तथा विश्राम करने के लिए अवकाश पाते थे, तब भी उन्हें स्वच्छ जल-वायु नहीं प्राप्त होता था। उनके रहने के लिए छोटी-छोटी सङ्कीर्ण एवं अन्धकार-मय कोठरियाँ बनी रहती थीं। इस प्रकार दिन-रात अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में रहने के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उनकी चिकित्सा के लिए भी

कोई सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं होती थी और न उनके बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए ही कोई सुविधा होती थी। यही नहीं, अनेक विरवसनीय लेखकों के लेखों से पता चलता है कि दस-दस और ग्यारह-ग्यारह वर्ष के बालकों को भी कारखानों में काम करने के लिए रात के ३-४ बजे ही जगा दिया जाता था और उधर रात के ११-१२ बजे तक उनसे काम लिया जाता था। बीच में केवल घण्टे-आध घण्टे के लिए उन्हें अवकाश मिलता था। ४-४ वर्ष के बच्चों से कभी-कभी १२-१२ घण्टे तक काम लिया जाता था। इसी प्रकार स्त्रियों से भी निर्दयतापूर्वक कठिन परिश्रम कराया जाता था और उन पर भाँति-भाँति के अत्याचार होते थे। परन्तु इतना परिश्रम करके भी श्रमिकों को सुख नहीं मिलता था। उन्हें इतना पारिश्रमिक भी नहीं मिलता था कि वे अपने मनोविनोद का कुछ सामान कर सकें अथवा अपनी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के लिए कुछ साधन प्रस्तुत करें।

पूँजीपतियों की इस धन-लोलुपता तथा श्रमिकों की भीषण शोचनीय अवस्था को देख कर लोक-हितैषी व्यक्तियों तथा समाज-सुधारकों का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने पूँजीपतियों तथा कारखानों के मालिकों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। श्रमिक-दल की दशा सुधारने के लिए विचारशीलों ने आन्दोलन खड़ा किया और उसका यह परिणाम हुआ कि श्रमिकों की शोचनीय अवस्था का प्रतिकार करने के लिए कई कानून बने। किन्तु इससे भी पूँजीपतियों के अत्याचार बन्द नहीं हुए और न श्रमिकों की दशा ही सन्तोषजनक हो सकी। कारखानों के मालिकों और मज़दूरों में मनोमालिन्य और असन्तोष बढ़ता गया। पूँजीवाद तथा प्रचलित सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणाली के प्रति बहुत से विचार-शील लोगों में घृणा तथा विरक्ति के प्रबल भाव जाग्रत हो उठे। इन्हीं में से कतिपय विद्वानों ने ग्रन्थ-रूप में



अपने विचारों को व्यक्त किया और अपने अनुभव तथा कल्पना के द्वारा एक आदर्श समाज का रेखा-चित्र अंकित करना प्रारम्भ किया, जिसमें उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि प्रस्तावित सामाजिक सङ्गठन के अन्तर्गत सब लोग किस प्रकार सुख-शान्ति-पूर्वक रह सकते हैं और वर्तमान विभिन्नता तथा असन्तोष सोन्मूल नष्ट हो सकता है। इङ्ग्लैण्ड में ओवेन तथा फ्रान्स में चार्ल्स फोरियर और सेन्ट साइमन ने ऐसे ही आदर्श समाजों की कल्पना की है। इन लोगों ने बड़े ओजस्वी शब्दों में युक्तिपूर्वक यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि भू-स्वामियों और पूँजीपतियों को इस बात का कोई न्यायानुकूल अधिकार नहीं है कि वे बड़े-बड़े भूखण्डों तथा अतुल धन-सम्पत्तियों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित रखें और देश-समाज के बहुसंख्यक लोग विवशता-पूर्वक जुधा-ज्वाला में जल कर अपना प्राणोत्सर्ग करें। उन्होंने यह आयोजना उपस्थित की कि देश की सम्पूर्ण जन-संख्या को छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर दिया जाय और प्रत्येक भाग पारस्परिक सहयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। एक भाग के सब लोग सम्मिलित उद्योग से जीविकोपार्जन सम्बन्धी सब कार्य सम्पादित करें और सब लोग समान रूप से अपनी आवश्यकतानुसार उस अर्जित वृत्ति का उपभोग करें। किञ्चित् आगे चल कर हम देखेंगे कि ऐसे विचारों ही से साम्यवाद आदि सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ। किन्तु सेन्ट साइमन प्रभुत्ति राजनीतिक दार्शनिकों की आदर्श समाज-सम्बन्धी कल्पना कार्यरूप में परिणत न हो सकी। परवर्ती विद्वान विचारकों ने भी प्रचलित सामाजिक सङ्गठन का सर्वनाश कर उसके स्थान पर एक आदर्श नवीन सङ्गठित समाज की स्थापना करने की कल्पना की। उसके साथ-साथ उन्होंने अपने-अपने सुदृढ़ सिद्धान्त भी स्थिर किए और सविस्तर रूप से यह बतलाया कि किन उपायों का अवलम्बन कर, नए समाज की सृष्टि की जा सकती है। इन विद्वानों की विचार-धारा ने यूरोपीय समाज में एक व्यापक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इसी के परिणाम-स्वरूप आज हम देखते हैं कि यूरोपीय समाज के अन्दर कई सङ्गठित दल आविर्भूत हो गए हैं। जिनका उद्देश्य है कि समाज और राज्य-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करें और उस

नवीन समाज की सृष्टि करें, जिसके अन्तर्गत समस्त जन-समाज सुख तथा शान्ति-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। अब हम संचेप में यह बताने की चेष्टा करेंगे कि ये विभिन्न दल कौन-कौन हैं, उनके क्या सिद्धान्त हैं और किस प्रकार वे अपने उद्देश्य को सिद्ध करना चाहते हैं।

कार्ल मार्क्स और उनके सिद्धान्त

साम्यवाद आदि कई सिद्धान्तों के प्रमुख जन्मदाता जर्मनी के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विद्वान कार्ल मार्क्स हैं, जिनका जन्म १८१८ ई० में राइन प्रान्त के अन्दर हुआ था। १८४२ ई० में वे एक पत्र के सम्पादक हुए और इस प्रकार उन्हें अपना विचार जनता के सम्मुख रखने का अच्छा साधन प्राप्त हो गया। किन्तु अधिकारीवर्ग इनकी निर्भीक आलोचना तथा क्रान्तिकारी विचारों को सहन नहीं कर सका। फलतः मार्क्स तथा उनके पत्र पर अधिकारियों का कोप-पात हुआ और उन्हें पेरिस में आश्रय लेना पड़ा। यहाँ एक अङ्गरेज़ क्रान्तिकारी विद्वान से उनकी घनिष्टता हो गई और उनकी यह अधिक मित्रता जीवन पथन्त बनी रही। पेरिस के अधिकारियों ने भी उन्हें निर्वासन का दण्ड दिया। इङ्ग्लैण्ड के साथ मार्क्स ब्रूसेल चले गए। पेरिस-स्थित जर्मन कम्युनिस्ट लीग की ओर से आमन्त्रित किए जाने पर १८४८ ई० में वे फिर पेरिस आए और यहीं इङ्ग्लैण्ड के सहयोगी से एक मसविदा तैयार कर घोषित किया, जो कि कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो (Communist Manifesto) के नाम से प्रसिद्ध है। फिर क्रमशः पेरिस, बेल्जियम तथा जर्मनी से निर्वासित होकर इङ्ग्लैण्ड का आश्रय ग्रहण किया और वहीं १८८३ ई० में उनका नखर शरीर पञ्चत्व को प्राप्त हुआ।

कार्ल मार्क्स के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं :—

(१) इतिहास की भौतिक व्याख्या, (२) पूँजी का उत्तरोत्तर न्यूनातिन्यून व्यक्तियों में सीमित होते जाना और (३) वर्गीय युद्ध। सबसे पहले मार्क्स ने इस तथ्य का अनुसन्धान किया कि किस प्रकार समाज का सङ्गठन इस रूप में हो गया कि जिसके कारण कुछ इने-गिने व्यक्ति देश का सब धन समेटते जा रहे हैं और बहुसंख्यक लोग भनहीन होते जा रहे हैं। अपने



अनुसन्धान तथा इतिहासानुशीलन से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आर्थिक कारणों से ही प्रभावान्वित होकर ऐतिहासिक घटनाएँ अपना रूप ग्रहण करती हैं। औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव से ही सारा समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया है। एक ओर पूँजीपति-दल है और दूसरी ओर श्रमिक-वर्ग। संसार के इतिहास में आदिकाल से समाज के अन्तर्गत दो वर्ग होते आए हैं और प्रत्येक युग में हीन वर्ग वालों ने सङ्गठित होकर समाज पर प्रभुत्व रखने वाले उच्च वर्ग के लोगों को पराजित तथा अधिकारच्युत किया है। आधुनिक इतिहास में भी वह समय आ रहा है, जब कि श्रमिक-वर्ग सङ्गठित होकर पूँजी वाले उच्च वर्ग का सर्वनाश करेगा और सब अधिकार उससे छीन लेगा। इसी सिद्धान्त को इतिहास की भौतिक व्याख्या कहते हैं।

उपर्युक्त दूसरा सिद्धान्त है पूँजी के सम्बन्ध में। मार्क्स ने अपने अनुभव एवं अनुमान से यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि देश की समस्त पूँजी उत्तरोत्तर अल्पातिशय-संख्यक व्यक्तियों के हाथों में एकत्रीभूत होती जायगी और इस प्रकार पूँजीपतियों की संख्या कम होती जायगी और उनके सामूहिक बल का क्रमशः हास होता जायगा। इसके विपरीत पूँजीहीन दीन श्रमिकों का दल प्रबल और सुसङ्गठित होता जायगा। अन्त में एक समय ऐसा आएगा, जब सङ्गठित श्रमिक-वर्ग पूँजीपतियों को पराजित कर सारा अधिकार अपने हाथों में ले लेगा।

तीसरे सिद्धान्त—वर्गीय युद्ध का अभिप्राय यह है कि श्रमिकों को अपने कठिन परिश्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं प्राप्त होता। उनके श्रम के द्वारा उत्पन्न सारे लाभ का उपभोग कारखानों के मालिक करते हैं। पूँजीपतियों की यह अनधिकार चेष्टा सर्वथा निन्दनीय है। फलतः श्रमिकों को अपना सङ्गठन करना चाहिए। यह सङ्गठन प्रथमतः स्थानीय, अनन्तर राष्ट्रीय और तदनन्तर अन्तराष्ट्रीय रूप धारण करेगा। अपने सुव्यवस्थित सङ्गठन द्वारा प्रबल शक्ति प्राप्त कर वे पूँजीपतियों के विरुद्ध क्रान्ति मचाएँगे और उनके हाथ से सब अधिकार छीन लेंगे। उपरोक्त कथन के अनुसार पूँजीपति-वर्ग शनैः-शनैः स्वयं क्षीय होता जायगा और फलतः उन्हें पराजित करने में श्रमिकों को विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। यही वर्गीय युद्ध का सिद्धान्त है।

इन सिद्धान्तों ने श्रमिक-वर्ग के ऊपर अपना विशेष प्रभाव डाला और उनके सङ्गठन में पर्याप्त योग प्रदान किया। कार्ल मार्क्स के अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। उनके बताए हुए उपायों का अवलम्बन कर बहुत से लोग एक नवीन समाज की सृष्टि के लिए प्रयत्न करने लगे। कुछ काल के उपरान्त विभिन्न मत के लोगों ने मार्क्स के कथनों और सिद्धान्तों की विभिन्न व्याख्याएँ कीं, फलतः यूरोपीय समाज के अन्तर्गत कई विभिन्न दल उत्पन्न हो गए। किन्तु उन सबका उद्देश्य यही है कि वर्तमान असन्तोषप्रद सामाजिक व्यवस्था में घोर परिवर्तन उपस्थित किए जायें अथवा आवश्यकता-नुसार इसका ध्वंस कर एक नए समाज की सृष्टि की जाय, जिसके अन्दर सब लोग पारस्परिक सहयोगपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें और जिसमें आर्थिक असमानता का भीषण रूप न दिखाई पड़े। कुछ लोगों का विश्वास है कि नवीन समाज का विकास क्रम-क्रम से होगा, क्रान्ति करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इसके विपरीत कुछ दल ऐसे हैं, जिनका विश्वास है कि सशस्त्र क्रान्ति तथा बल-प्रयोग द्वारा ही प्रचलित शोचनीय अवस्था का अन्त हो सकता है। नए समाज की सृष्टि में यथासम्भव अल्पन्त शीघ्रता करनी चाहिए, नहीं तो श्रमिकों की अवस्था उत्तरोत्तर और भी अधिक भयङ्कर हो जायगी और बहुसंख्यक लोग पूँजीपति-वर्ग के उत्पीड़नों से पीड़ित हो बुधा-ज्वाला में भस्मसात् हो जायेंगे।

साम्यवाद (Collectivist or State Socialism)

साम्यवादी एक ऐसे समाज का सङ्गठन करना चाहते हैं, जिसके अन्दर आर्थिक असमानता न रह जाय। देश के आर्थिक उपार्जन पर सारे समाज का सामुदायिक स्वत्व स्थापित हो। साम्यवादी ऐसा सामाजिक सङ्गठन तथा राज्य-व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें भूमि, पूँजी एवं उद्योग-धन्यों पर व्यक्तिगत अधिकार न रहे, वरन् राज्य के द्वारा समस्त जनता का उन पर सामूहिक प्रभुत्व स्थापित रहे। रेल-तार, जल, प्रकाश तथा कल-कारखानों का प्रबन्ध और नाना प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन सम्बन्धी प्रभुत्व साधन राष्ट्रीय सरकार के हाथ में न्यस्त रहें। इनसे



जो कुछ लाभ हो वह सर्वसाधारण के हित में व्यय किया जाय। इस प्रकार साम्यवादियों की यह धारणा है कि राज्य के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत तथा व्यापक बना देने से देश भर में आर्थिक समानता स्थापित हो सकती है और व्यक्तिगत पूँजीवाद-प्रथा का अन्त हो सकता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि साम्यवादी आधुनिक साम्राज्यवादी राज्य का आश्रय नहीं ग्रहण करना चाहते। वे इस राज्य की बड़ी कड़ी आलोचना करते हैं। मार्क्स का कथन है कि आधुनिक शासन-तन्त्र के अन्तर्गत जो कार्यकारिणी शाखा है, वह धनिकों, पूँजी-पतियों तथा भूस्वामियों के अधिकार-संरक्षण का काम करती है और उन्हीं के हितों को दृष्टि में रख कर शासन-प्रबन्ध का सञ्चालन करती है। साम्यवादी ऐसी शासन-प्रणाली को सर्वथा निन्दनीय समझते हैं और उनकी अवहेलना करते हैं। अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए वे शुद्ध लोकसत्तात्मक राज्य स्थापित करना चाहते हैं। और ऐसे ही सुव्यवस्थित राज्य की ओर निर्देश करके वे यह कहते हैं कि देश के समस्त उद्योग-धन्धों का प्रबन्ध राज्य की ओर से होना चाहिए।

एक स्थान पर साम्यवाद की परिभाषा इस प्रकार की गई है—साम्यवाद वह नीति तथा सिद्धान्त है, जिसका उद्देश्य एक केन्द्रीय लोकसत्तात्मक राज्य के द्वारा देश के प्रचलित आर्थिक वितरण को अधिक सन्तोषप्रद बनाना और साथ ही यथासम्भव धन के उत्पादन में वृद्धि करना है।* धन के और अधिक सुन्दर वितरण करने तथा सर्व-साधारण के सामाजिक जीवन को राज्य के द्वारा सञ्चालित करने के लिए साम्यवादियों ने निम्न-लिखित उपायों के अवलम्बन करने का प्रस्ताव किया है :—(क) उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा हट कर दी जाय और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के अन्दर जितने महत्वपूर्ण उद्योग-धन्धे, नौकरियाँ तथा व्यवसाय हैं, वे जनता के सामुदायिक प्रभुत्व तथा अधिकार में न्यस्त किए जायें। (ख) सम्पूर्ण समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के ही अभिप्राय से उद्योग-धन्धों का सञ्चालन किया जाय। व्यक्तिगत लाभ के लिए उनका

सञ्चालन न किया जाय। किन्-किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय और कितने परिमाण में—ये सब बातें भी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ही निश्चय की जानी चाहिए। दूसरे देशों में उन्हें बेच कर लाभ पैदा करने की आशा से सामाजिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त वस्तुओं का उत्पादन न करना चाहिए। (ग) ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी चाहिए जिससे कि श्रमिक लोग सामाजिक सेवा के भावों से प्रेरित होकर धनोत्पादन का कार्य करें, व्यक्तिगत लाभ की आशा से अनुप्राणित होकर कार्य करने का अवसर न प्रदान किया जाय।

ब्रिटिश श्रमिक-दल ने अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिए १९१९ ई० में यह प्रस्ताव किया था कि यह निश्चय करना चाहिए कि एक श्रमिक को न्यूनातिन्यून कितना पारिश्रमिक देना चाहिए, कितने में उसका सुखपूर्वक निर्वाह हो सकेगा। इस निश्चय को देश भर में कार्यान्वित करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की नैतिक, मानसिक तथा शारीरिक उन्नति के लिए समुचित साधन प्रस्तुत होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य को राज्य की ओर से काम मिलना चाहिए, ताकि वह निर्धारित न्यूनतम पारिश्रमिक पाकर अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। साथ ही साथ यह भी निश्चित हुआ कि सप्ताह भर में किसी भी श्रमिक से ४८ घण्टे से अधिक कार्य न लिया जाय। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उद्योग-धन्धों पर लोकसत्ता का स्वामित्व स्थापित किया जाय। इस सम्बन्ध में उन्होंने यह भी स्थिर किया कि रेल, खान, नहर तथा बिजली के व्यवसायों का शीघ्र राष्ट्रीयकरण हो जाय। समुचित क्षतिपूर्ति करके ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी तथा पूँजीवाद का क्रमशः निराकरण किया जाय और जीवन-बीमा कम्पनियों को भी सरकार द्वारा सामुदायिक अधिकार के अन्दर लाया जाय। तीसरा प्रस्ताव यह था कि देश के आर्थिक विभाग में घोर परिवर्तन किया जाय और उत्पादक साधनों के राष्ट्रीयकरण से जो कुछ लाभ हो उसे सर्वसाधारण के हित में लगाया जाय।

व्यक्तिवाद का समर्थन करने वाले लोगों ने साम्यवाद की नीति का घोर विरोध किया है। क्योंकि इसके अन्तर्गत राज्य ही सर्वेसर्वा हो जाता है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को इसमें कोई स्थान ही नहीं प्राप्त होता।



राज्य का कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत तथा व्यापक बना दिया गया है कि वह अनावश्यक रूप से व्यक्तिगत मामलों में भी हस्तक्षेप कर सकता है। इसके उत्तर में साम्यवादियों का कथन है कि हम वैयक्तिक स्वतन्त्रता को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचाते, वरन् उसके विकास के लिए अनुकूल परिस्थिति उपस्थित करते हैं। हम प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक चिन्ता से सर्वथा मुक्त करते हैं और इस प्रकार उसे शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति करने का समुचित अवसर प्रदान करते हैं। सच्ची वैयक्तिक स्वतन्त्रता वही है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर सके। वह स्वतन्त्रता किस काम की, जो मनुष्य को आर्थिक चिन्ता के जटिल बन्धन में बाँधे रहती है और उसे अपनी प्रसुप्त शक्तियों को पूर्णतया विकसित करने का सुअवसर नहीं देती। साम्यवादी कहते हैं कि वास्तव में आदर्श वैयक्तिक स्वतन्त्रता साम्यवाद के अन्तर्गत ही प्राप्त हो सकती है।

अराजकवाद (Anarchism)

साधारण लोकमत अराजकवाद का यथार्थ अभिप्राय नहीं समझता। साधारणतः उसका अर्थ सामाजिक उच्छृङ्खलता, मार-काट तथा अनुचित उत्पात का लगाया जाता है। लोग समझते हैं कि जो दूसरों पर बम फेंकता है वही अराजकतावादी है। किन्तु वास्तव में यह धोखा ठीक नहीं। इस तरह का प्रतिकूल अर्थ करना अराजकवाद के साथ घोर अन्याय करना है। प्रसिद्ध अङ्गरेज लेखक बर्ट्राण्ड रसेल का कथन है कि यदि बम फेंक कर दूसरों की हत्या करने वाला ही अराजकवादी है, तब तो लगभग सभी देशों की सरकारें भी अराजकवादी हैं, क्योंकि सरकारें भी तो बमों का उपयोग करती हैं और यदि अराजकवादी व्यक्ति एक बम का निर्माण करता है, तो सरकारें लाखों बमों का प्रयोग करती हैं और उनके द्वारा असंख्य निर्दोष स्त्री-पुरुषों का बध् करता है।

वास्तव में अराजकवाद का सिद्धान्त बलपूर्वक शासन करने के कार्य को दृष्टि तथा विन्दनीय समझता है। इस सिद्धान्त के एक प्रसिद्ध प्रवर्तक प्राउडन (Proudhon) का कथन है कि एक व्यक्ति का दूसरे

व्यक्ति पर शासन करना घोर अन्याय है। अराजकवाद सिद्धान्त के मूल प्रवर्तक मिशेल बकुनिन था, जिसका जन्म १८१४ ई० में रूस में हुआ था। मार्क्स की भाँति बकुनिन भी कई देश की सरकारों का कोप-भाजन बना और अनेक बार उसे कारागार का कठिन दण्ड भोगना पड़ा। यही नहीं, कई बार उसे प्राण-दण्ड की भी आज्ञा दी गई। किन्तु फिर भाग्यवश वह उससे मुक्त हो जाया करता था। उसके हाथ, पैर और गले में ज़न्जीरें भी डाली गई थीं। किन्तु जिन क्रान्तिकारी भावों को कुचलने के लिए ये सब अन्याचार उस पर किए गए थे, वे वैसे के वैसे ही बने रहे। प्रचलित राज्य-प्रणाली के प्रति जो द्वेषाग्नि उसके हृदय में उत्पन्न हुई थी वह अधिकारियों के अन्याचारों से और भी अधिक प्रज्वलित हो उठी।

बकुनिन ने मार्क्स की भाँति अपने सिद्धान्तों को पूर्णरूप से विकसित नहीं किया था और न उनकी विशद व्याख्या ही करने को उसे अवसर मिला था। उसकी मृत्यु (१८७१) के पश्चात् उसके सिद्धान्तों का रेखा-चित्र ही प्राप्त था। इस कमी की पूर्ति क्रोपोटकिन नामक एक दूसरे रूसी विद्वान ने की, जोकि उसका अनुयायी था। बकुनिन मार्क्स का समकालीन था और दोनों एक दूसरे से परिचित थे। बकुनिन मार्क्स के अतुल ज्ञान तथा उसकी विद्वत्ता पर मुग्ध था, किन्तु दोनों के सिद्धान्तों में मतभेद था। फलतः वे एक दूसरे के प्रबल विरोधी थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सङ्गठन के चौथे (१८६९ ई०) अधिवेशन के अवसर पर जर्मनी तथा इङ्ग्लैण्ड के प्रतिनिधियों ने मार्क्स का पक्ष ग्रहण किया और फ्रान्स, स्पेन, इटली तथा स्वीट्ज़रलैण्ड ने बकुनिन के पक्ष का समर्थन किया। मार्क्स नवीन समाज की सृष्टि में भी राज्य-सत्ता की आवश्यकता को स्वीकार करता था; यद्यपि उस राज्य को जैसा ऊपर बतलाया गया है, लोक-सत्ता के आधार पर सुसङ्गठित करना था। किन्तु बकुनिन राज्य-सत्ता का अति प्रबल विरोधी था। वह किसी प्रकार के भी राज्य को समाज में स्थान देने को तैयार नहीं था। यह विरोध इतना अधिक बढ़ा कि १८७२ ई० में हेग में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सङ्गठन के अधिवेशन में उसे तथा उसके अनुयायियों को मार्क्स ने बाहर निकाल दिया। इस प्रकार बकुनिन ने स्वतन्त्र रूप से अलग होकर अपने सिद्धान्त का प्रवर्तन किया।



अराजकवादियों का कथन है कि समाज के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के ऊपर किसी प्रकार का बल-प्रयोग न किया जाय। राज्य का आधार ही बल-प्रयोग है। फलतः वे राज्य को अपनी सामाजिक व्यवस्था में बिलकुल स्थान नहीं देते। वे चाहते हैं कि प्रचलित शासन-प्रणाली को सर्वथा नष्ट कर दिया जाय। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अपने समाज को अव्यवस्थित रखना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि राज्य के बिना भी समाज सुव्यवस्थित रह सकता है। सामाजिक शान्ति-रक्षा के लिए शासन अथवा नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है। किसी व्यक्ति को किसी कार्य के लिए विवश नहीं किया जा सकता। समाज की सुव्यवस्था के लिए वर्तमान ढङ्ग के कानूनों की आवश्यकता नहीं है। कोई बहुसंख्यक दल अल्प-संख्यक दल के मत की अवहेलना कर, कोई कार्य सम्पादित नहीं कर सकता। प्रत्येक सामाजिक कार्य सर्व-सम्मति से ही हो सकेगा, मताधिक्य का प्रभुत्व समाज में नहीं स्थापित हो सकता, अराजकवाद के अन्दर सभी व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं। उन्हें पुलिस अथवा फौजदारी कानूनों की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, कारण यह कि ये सब बल-प्रयोग से काम लेते हैं। अराजकवादी के अनुसार वैयक्तिक स्वतन्त्रता ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है, इस पर किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचना चाहिए।

समाज के आर्थिक सङ्गठन के सम्बन्ध में अराजकवादियों का जो सिद्धान्त है, वह साम्यवादियों के सिद्धान्त से अनेक बातों में मिलता-जुलता है। दोनों दलों का इस विषय पर मतैक्य है कि समाज की भीषण आर्थिक असमानता को शीघ्र से शीघ्र हटाना चाहिए। समाज की पूँजी तथा भूमि पर समाज के सब व्यक्तियों का समान अधिकार होना चाहिए। देश के अन्दर विविध वस्तुओं के उत्पादन के जो साधन हैं, उन पर समस्त जनता का सामुदायिक स्वामित्व है—उन पर सब व्यक्तियों का समान अधिकार है। मज़दूरी की प्रणाली अराजकवाद के अन्दर नहीं रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा से प्रेरित होकर स्वतः कार्य करेगा। पारिश्रमिक अथवा व्यक्तिगत लाभ की लालसा से वह काम नहीं करेगा। काम करने के लिए सबको बाध्य नहीं किया जायगा, अपितु सब अपनी इच्छा के

अनुसार न्यूनाधिक कार्य सम्पादन करेंगे। अराजकवादियों का कथन है कि मनुष्य स्वभावतः कार्यशील है; स्वस्थावस्था में वह बेकार नहीं बैठा रह सकता। नवीन समाज के अन्तर्गत सब लोगों की रुचि कार्य करने की ओर स्वतः प्रवृत्त होगी। सामुदायिक उद्योग के परिणाम-स्वरूप समाज के अन्दर जितना धन उत्पादित होगा, वह समाज के सभी लोगों में समान अनुपात से वितरण कर दिया जायगा। इस बात में अराजकवादी साम्यवादियों से कुछ विभिन्न मत रखते हैं। साम्यवादी केवल उन्हीं लोगों को समाज के अर्जित धन में भाग लेने देंगे जो कार्य करने वाले हैं। काम न करने वालों को कुछ नहीं मिलेगा, हाँ सबको काम दिलाना राज्य का कर्तव्य होगा। अराजकवादी काम न करने वाले व्यक्तियों को भी कार्य करने वाले व्यक्तियों की भाँति समाज के सामूहिक धन का उपयोग करने देंगे। साम्यवादी की भाँति अराजकवादी भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत पूँजीवाद अत्याचार की जननी है। किन्तु साम्यवादियों का कथन है कि यदि राज्य ही एकमात्र पूँजीपति बन जायगा तो उस पूँजी से सबको समान रूप से लाभ प्राप्त होगा। समाज की किसी श्रेणी पर पूँजी के द्वारा अत्याचार नहीं होने पावेगा। किन्तु अराजकवादियों को भय है कि यदि समस्त औद्योगिक धन्यों पर राज्य का अधिकार हो जायगा, तो व्यक्तिगत पूँजीपति की भाँति एक बड़े पूँजीपति की अवस्था में स्थित राज्य भी समाज के व्यक्तियों पर तरह-तरह के अत्याचार ढाएगा।

सिन्डिकलिज़्म (Syndicalism)

अराजकवाद की भाँति सिन्डिकलिज़्म का सिद्धान्त भी साम्यवाद की अपेक्षा अधिक उत्तेजक तथा क्रान्तिकारी है। मार्क्स के वर्गीय-युद्ध नामक सिद्धान्त पर यह बहुत अधिक जोर देता है। इस मत का प्रधान केन्द्र फ्रान्स है। अभी तक फ्रान्स के बाहर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। यह मत मार्क्स के आदर्श-समाज तथा उनके बताए हुए साधनों की बड़ी कड़ी आलोचना करता है। सिन्डिकलिज़्म के अनुयायी भी अराजकवादियों की भाँति राज्य के अस्तित्व को मिटा देना चाहते हैं। परन्तु वे साम्यवादियों की उस नीति का घोर



विरोध करते हैं, जिसके आधार पर राज्य को बड़ी व्यवस्थापिका सभा में प्रतिनिधि भेजने के लिए श्रमिक-दल का सङ्गठन किया जाता है। उनका कथन है कि इस उपाय का आश्रय लेकर साम्यवादी श्रमिकों की शोचनीय अवस्था को कदापि दूर नहीं कर सकते। राज्य का सङ्गठन तो पूँजीपतियों की हित-रक्षा के लिए है, फिर उसका आश्रय लेकर पूँजीपतियों का विनाश वे कैसे कर सकते हैं ?

सिन्डिकलिज़्म के विकास में एक विलक्षणता यह है कि वह एक प्रचलित सङ्गठन के द्वारा आविर्भूत हुआ है। उस सङ्गठन के द्वारा ही उपयुक्त विचारों तथा सिद्धान्तों का विकास हुआ है। किन्तु साम्यवाद तथा अराजकवाद के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। पहले मार्क्स, इन्जेल, बकुनिन एवं क्रोपोटकिन ने उन सिद्धान्तों को जन्म दिया था और उसके अनन्तर सङ्गठन की सृष्टि हुई। फ़्रान्स में औद्योगिक धन्धों का जो सुव्यवस्थित सङ्गठन है, उसके एक अङ्ग को सिन्डिका कहते हैं। उसी के आधार पर इस सिद्धान्त का नाम सिन्डिकलिज़्म पड़ा है।

सिन्डिकलिज़्म का सिद्धान्त है कि व्यक्तिगत पूँजी चोरी-का माल है। पूँजीपतियों को कोई अधिकार नहीं कि देश का समस्त धन अपने पास बटोर कर रखें। वे इस प्रणाली को नष्ट करना चाहते हैं और इसके लिए ट्रेड-यूनियन सङ्गठन को एक अच्छा साधन समझते हैं। वास्तव में इस सङ्गठन के ही आधार पर इस मत के अनुयायी अपने नवीन समाज की सृष्टि करना चाहते हैं। महामति प्राउदन के विचारों ने फ़्रान्स की ट्रेड-यूनियन सङ्गठन पर अपना पर्याप्त प्रभाव डाला है। प्राउदन को ही इस मत के सिद्धान्तों का प्रमुख प्रवर्तक समझना चाहिए। सिन्डिकलिज़्म का मत है कि आर्थिक तथा राजनीतिक दोनों कार्य-क्षेत्रों में उपाजर्जनशील व्यक्तियों का ही सामुदायिक अधिकार रहे।

गण-साम्यवाद अथवा गिल्ड सोशलिज़्म (Guild-Socialism)

गण साम्यवाद न तो साम्यवादियों की भाँति राज्य के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करना चाहता है और न अराजकवादियों अथवा सिन्डिकलिज़्म के अनुयायियों

की भाँति उसका विनाश ही चाहता है। दोनों मतवादों में यह एक समझौता कराने का प्रयत्न करता है। गण-साम्यवाद का प्रधान केन्द्र इङ्ग्लैण्ड में है। साम्यवादी अपने समाज को उपभोक्ता (Consumer) के आधार पर सङ्गठित करना चाहते हैं और सिन्डिकलिज़्म सिद्धान्त के मानने वाले उत्पादक (Producer) थे। अपने समाज-सङ्गठन का आधार बनाना चाहते हैं, किन्तु गण-साम्यवादी उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के आधार पर अपने समाज का सङ्गठन करना चाहते हैं। श्रमिक-दल व्यावसायिक संस्थाओं अथवा सङ्घों में सङ्गठित होकर उत्पादन-कार्य को अपने हाथ में लेंगे और उपभोक्ता समुदाय, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य वहन करेगा, उत्पादन के साधनों पर अपना अधिकार रखेंगे। गण-साम्यवाद के सिद्धान्त बहुत स्पष्ट तथा युक्तिसङ्गत हैं और उसके अनुयायियों की संख्या भी पर्याप्त है। यह सिद्धान्त नरम दल वालों का है, जो किसी प्रकार के घोर आकस्मिक परिवर्तन, क्रान्ति तथा उत्पात को पसन्द नहीं करते।

राज्य के सम्बन्ध में गण-साम्यवादियों का मत है कि हमें उसका अस्तित्व न मिटाना चाहिए। आंशिक रूप से उसकी आवश्यकता रहेगी। किन्तु उसे इतना शक्तिशाली नहीं बनने देना होगा, जितना कि वह आज-कल है। वे राज्य को कोई आदर्श संस्था नहीं समझते। तथापि उपभोक्ता-समुदाय का प्रतिनिधित्व वहन करने के लिए उसकी कुछ आवश्यकता समझते हैं। उनका कथन है कि यदि देश के समस्त औद्योगिक धन्धों पर राज्य का एकछत्र अधिकार स्थापित हो जाएगा, तो लोक-सत्ता का अस्तित्व ही न रह जायगा और सरकार नौकरशाही का रूप धारण कर लेगी। उनके मतानुसार समस्त औद्योगिक धन्धों का एक विशद सामूहिक सङ्गठन होना चाहिए और उसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यवसाय भी स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग सङ्गठित हो। उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में जितनी बातें होंगी—मज़दूरी, मूल्य निश्चित करना, श्रम-दशा का सुधार करना आदि, वे सब स्वतन्त्र औद्योगिक सङ्गठनों द्वारा निश्चित की जाएँगी। उद्योग-धन्धे सम्बन्धी मामलों में राज्य का हस्तक्षेप नहीं होगा। राष्ट्रीय आय का हिसाब भी उक्त विशद सङ्गठन की ही ओर से रक्खा जाएगा और कुछ



धन राज्य को अपना कर्तव्य पालन के लिए दिया जायगा।

जैसा ऊपर कहा गया है, सिन्डिकलिज्म के अनुयायी वर्गीय-युद्ध पर ही अधिक जोर देते हैं और मार्क्स के सिद्धान्तों में से उसी को प्रमुख समझते हैं। उनका कथन है कि श्रमिक-वर्ग को अपने सङ्गठन-शक्ति की सहायता से पूँजीवादी सरकार का विनाश करना चाहिए। वे प्रत्यक्ष कार्यवाही अथवा डाइरेक्ट ऐक्शन (Direct action) की नीति व्यवहृत करते हैं। हड़ताल, बहिष्कार आदि से वे पूँजीपतियों की शक्ति को नष्ट करना चाहते हैं। उनका कथन है कि हड़ताल करने से कम से कम श्रमिकों में सङ्गठन होता जायगा। हड़ताल पूरी करनी चाहिए और विशेष कर ऐसे धन्यों में, जिसके बन्द होने से पूँजीपतियों की अधिक हानि हो। इस प्रकार धीरे-धीरे जब श्रमिकों का सङ्गठन सुदृढ़ होता जायगा और पूँजीपतियों की शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जायगी तब एक दिन बहुत व्यापक हड़ताल करके वस्तु-उत्पादन के साधनों को छीन लेंगे और पूँजीवाद की शक्ति को पूर्णतया विनष्ट कर देंगे।

इस वर्गीय-युद्ध तथा नवीन समाज की स्थापना के मध्यवर्ती समय में श्रमिक-वर्ग के लोग अपना आधिपत्य स्थापित रखेंगे। किन्तु जब नवीन समाज की सृष्टि हो जायगी तो समाज के अन्दर किसी प्रकार का आधिपत्य नहीं रह जायगा। विभिन्न व्यवसायों के आधार पर ही ऐसे समाज का सङ्गठन होगा और प्रत्येक व्यवसाय अलग-अलग सङ्गठित तथा स्वतन्त्र रहेंगे। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि विभिन्न व्यावसायिक सङ्गठनों के बीच किस प्रकार शान्ति एवं सद्ब्यवहार स्थापित होगा। यदि कोई झगड़ा उठा तो कौन उसे शान्त करेगा। हड़ताल और बहिष्कार के अतिरिक्त ये लोग अन्य उपायों का भी आश्रय लेते हैं, जैसे काम बिगाड़ देना, मशीन के पुर्जों को तोड़ डालना, ग्राहकों को उत्पादित वस्तु के बिचित्र में ठीक-ठीक सब अच्छाई बुराई बता देना और इतनी कठोरता के साथ नियमों का पालन करना, जिससे कि कोई काम ही न हो सके। इस नीति को वे सेबोटेज (Sabotage) कहते हैं। ये भी अपने सङ्गठन को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं और किसी प्रकार की सैनिक-शक्ति की आवश्यकता

नहीं समझते। सरकार को ये लोग सङ्गठित अराजकता समझते हैं। इन्होंने यह भी घोषित कर दिया है कि राज्यप्रणाली तथा पूँजीवाद का विनाश करने के लिए सशस्त्र युद्ध तथा क्रान्ति आवश्यक है।

इस प्रकार गण-साम्यवादी समाज के अन्तर्गत एक प्रकार की सङ्घ-व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। एक ओर तो सारे आर्थिक तथा व्यावसायिक मामलों का सङ्गठन होगा और दूसरी ओर राज्य का राजनीतिक सङ्गठन स्थापित होगा। उच्च शिक्षा, कला-विज्ञान आदि विषयों की उन्नति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के निरीक्षण का कार्य राज्य द्वारा सम्पादित होगा। राज्य तथा औद्योगिक सङ्घ दोनों का सङ्गठन देश-व्यापी होगा और दोनों एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे। यदि संयोग-वश राज्य तथा औद्योगिक गण-सङ्घ में कोई झगड़ा उत्पन्न हुआ तो उसका निबटारा एक संयुक्त समिति के द्वारा किया जायगा, जिसमें दोनों दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित रहेंगे। यह समिति एक स्थायी राष्ट्रीय संस्था होगी। जल तथा स्थल सेना का नियन्त्रण इसी के द्वारा होगा। इसी समिति अथवा दल के हाथ में समाज की चरम शक्ति (Sovereignty) निहित होगी। १९१५ ई० में इङ्ग्लैण्ड के अन्दर राष्ट्रीय गण-सङ्घ (The National Guild League) स्थापित हो चुका है और गण-साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रचार बढ़ रहा है।

कम्यूनिज्म (Communism)

यह सिद्धान्त वास्तव में अति प्राचीन है। आज से लगभग २३०० वर्ष पूर्व ग्रीस देश में प्लेटो नामक प्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक ने इसका प्रचार किया था। स्पार्टा आदि कतिपय प्रदेशों में यह सिद्धान्त अंशतः कार्यरूप में भी परिणत हो गया था। प्लेटो के पश्चात् भी अनेक विद्वानों ने ऐसे ही समाज की सृष्टि करने की कल्पना की। किन्तु वह कल्पना कल्पना के रूप में रही, कभी कार्यान्वित नहीं हो सकी। आधुनिक काल में इस सिद्धान्त ने बहुत अधिक जोर पकड़ा है और इसे पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है। रूस का बोल्शेविज्म इसी का रूपान्तर है। स्थूल रूप से इस व्यापक शब्द के अन्दर साम्यवादादि वे सभी सिद्धान्त परिगणित हो



सकते हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक भन को सामुदायिक अधिकार में रखना है।

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक भी कार्ल मार्क्स ही थे। १८४७ ई० में इंग्लैंड के साथ मिल कर मार्क्स ने कम्युनिस्टिक मैनीफेस्टो नामक जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसी के आधार पर इसने अपना विकास और सङ्गठन किया है। उसके पूर्व साम्यवाद के ढङ्ग का जो प्रचार किया जाता था वह समाज के थोड़े से ही लोगों में सीमित था, उस आन्दोलन ने कोई व्यापक रूप नहीं धारण किया था। जिस समय से उक्त आन्दोलन एक व्यापक तथा सर्व-साधारण श्रमिकों का आन्दोलन (Mass Movement) हो गया, उसी समय से उक्त कम्युनिज्म का वास्तविक विकास होना प्रारम्भ हुआ। उक्त मैनीफेस्टो ही इस विकास का प्रथम रूप था। कम्युनिज्म को यथार्थ रूप से हृदयङ्गम करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस मैनीफेस्टो के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करें। उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है कि समस्त मानव-समाज का इतिहास वर्गीय कलह का इतिहास है। इस वर्गीय युद्ध के फल-स्वरूप या तो समय-समय पर समाज का सम्पूर्ण रूप ही परिवर्तित हो जाता था अथवा उसका एकदम से विनाश ही उपस्थित हो जाता था। आधुनिक काल में उसी प्रकार पूँजीवाद ने भी ऐसी शक्तियों का प्रादुर्भाव कर दिष्ट है, जो उलटे उसी का सत्यानाश करेंगी। दीन-हीन श्रमिक-वर्ग (Proletariate), जो कि पूँजीवाद के ही द्वारा आविर्भूत हुआ है, पूँजीपति-वर्ग का सम्पूर्ण रूप से विनाश करेगा और उसके भद्रावशेष पर एक नवीन समाज की सृष्टि करेगा। पूर्ववर्ती ऐतिहासिक वर्ग-युद्ध का परिणाम यह होता था कि विजय के पश्चात् अल्पसंख्यक लोग ही समाज में फिर शासन करने लगते थे; किन्तु वर्तमान वर्गीय-युद्ध का परिणाम उससे बिल्कुल विभिन्न होगा। श्रमिक-वर्ग अपना सुव्यवस्थित अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन करके समस्त मानव-समाज को वर्तमान शोचनीय अवस्था से मुक्त करेगा। फलतः श्रमिक-वर्ग का युद्ध सारे मानव-समाज की मुक्ति और रक्षा के लिए हो रहा है। वर्तमान पूँजीवाद वाले समाज का विध्वंस करने के लिए कम्युनिज्म के अनुयायी सभी प्रकार के साध्य साधनों का व्यवहार करना चाहते

हैं। उनका विरवास है कि हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्ति करनी होगी। मैनीफेस्टो में यह घोषणा की गई है कि इस प्रकार जो क्रान्ति तथा बल-प्रयोग किया जायगा उससे श्रमिक-वर्ग की किञ्चित भी हानि होने की सम्भावना नहीं है। हाँ, उनकी दासत्व-शृङ्खला अवश्य टूट जायगी।

राज्य के विषय में उनका कथन है कि यह पूँजीपति-वर्ग के हितों की रक्षा करता है; उनके सम्बन्ध में सब प्रकार के प्रबन्धों की व्यवस्था करता है। फलतः वे अराजकवादी तथा सिन्डिकलिज्म के अनुयायी की भाँति अपने नवीन समाज से राज्य का वहिष्कार करना चाहते हैं। युद्ध तथा नवीन समाज की स्थापना के मध्यवर्ती काल में श्रमिक-वर्ग डिक्टेटर का रूप धारण करेगा, किन्तु यह शासन क्षणिक होगा। समाज के अन्तर्गत वर्णभेद अथवा वर्गभेद का विनाश करके श्रमिक-वर्ग अपने वर्ग को भी मिटा देंगे। समाज फिर वर्गों में विभक्त न रहेगा। इसी अवस्था में समाज के सब लोग अपनी स्वतन्त्रता का वास्तविक रूप से उपभोग करेंगे।

कम्युनिस्ट लोगों का एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन है और समय-समय पर उसका अधिवेशन भी होता रहता है, जिसमें संसार के लगभग सभी देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। १८७१ ई० में इन लोगों ने प्रथम बार पूँजीवाद पर अस्थायी विजय प्राप्त की थी। ६ सप्ताह तक पेरिस में उनका शासन स्थिर रहा था।

बोलशेविज्म (Bolshevism)

जैसा कि एक स्थल पर ऊपर कहा गया है, बोलशेविज्म कम्युनिज्म का रूपान्तर मात्र है। वास्तव में गत यूरोपीय महायुद्ध के समय से ही आधुनिक कम्युनिज्म का श्रीगणेश हुआ है। जिस समय यूरोप में युद्ध प्रारम्भ हुआ, उस समय कम्युनिज्म के अनुयायियों में इस विषय पर मतभेद हो गया कि हमें अपने देश की ओर से शत्रुओं से युद्ध करना चाहिए, अथवा पूँजीवाद का विनाश करने के लिए क्रान्ति करनी चाहिए। रूसी सोशल डेमोक्रेटिक दल क्रान्ति के पक्ष में था और उसने क्रान्ति द्वारा रूस में अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया। क्रान्ति के पक्ष में उक्त दल का मताधिक्य था, इसी कारण इस प्रणाली को बोलशेविज्म कहते हैं। बोलशेविकी का अर्थ मताधिक्य है।



रूस में बोलशेविज्म कहाँ तक सफल हुआ है, इसका अनुमान हम उसके सङ्गठन तथा बसकी शक्ति-शालिता से कर सकते हैं। द्वेष से प्रेरित होकर उसके सम्बन्ध में जो वर्णन पत्रों अथवा ग्रन्थों में प्रकाशित होते हैं, उनसे हम वास्तविकता का अनुमान नहीं कर सकते। जो कुछ भी हो, १९१७ ई० से अब तक रूस में बोलशेविकों ने ही सब प्रकार की शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध किया है और वह देश इतना सुव्यवस्थित है कि शत्रु-राष्ट्रों में इतना साहस नहीं है कि उसको पराजित करने की चेष्टा करें। उन लोगों ने सब प्रकार के व्यवसायों का सङ्गठन किया है, पूँजीवाद का बहुत कुछ अंशों में विनाश किया है और एक प्रकार से रूस में आर्थिक समानता स्थापित हो गई है। लोक-सत्ता के आधार पर कृषकों के छोटे-छोटे दल सङ्गठित हैं।

मार्क्स ने लिखा था कि वर्गीय युद्ध के पश्चात् समाज में वर्ग-भेद का चिह्न न रहेगा। बोलशेविज्म के अन्दर भी वही बात सत्य है। बोलशेविकों का मत है कि काम करने की शर्त सबके लिए रखी जाय, जिससे कि उच्च वर्ग के लोग भी काम करने से विमुक्त न हों।

फैसिज्म (Fascism)

गत १३-१४ वर्षों से इटली के अन्दर एक विशेष सिद्धान्त का विकास हो रहा है। यह सिद्धान्त उपर्युक्त सब सिद्धान्तों की अपेक्षा विलक्षण है। इसका उद्देश्य साम्यवाद, अराजकवाद आदि सिद्धान्तों की तरह समाज में पूँजीवाद का विनाश कर आर्थिक समानता स्थापित करना नहीं है, अपितु शान्ति और कानून की रक्षा के लिए ही इसका जन्म हुआ है। बहुत कुछ अंशों में कम्युनिज्म के प्रचार को रोकने के लिए ही इसका आविर्भाव हुआ है। इसका सङ्गठन १९१९ ई० में प्रारम्भ हुआ था। इटली के डिक्टेटर मुसोलिनी ने ही इसका प्रवर्तन किया है। १९१० ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सिन्डिकलिज्म के व्यावसायिक सङ्गठन का बहुत कुछ प्रभाव इस पर पड़ा है। सर्व-प्रथम १९१९ ई० में मुसोलिनी ने मिलन नामक नगर में एक दल स्थापित किया था। इस दल की ओर ऐसे बहुत से लोग आकर्षित हुए, जो कम्युनिज्म का विरोध करते थे। इस रूप से राष्ट्रीय भावों से प्रेरित

होकर फैसिज्म का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था। यूरोपीय महायुद्ध के पश्चात् वार्सेल-सन्धि में इटली की माँगों की पूर्ति नहीं हुई थी, अतः इटली के हितों की रक्षा करने का भाव भी इस आन्दोलन के अन्दर था। साम्यवादी तथा कम्युनिस्ट लोगों के विरुद्ध १९२१-२२ ई० में फैसिस्ट लोगों ने हथियार भी उठाया था। उनकी विजय और बीरता से मुग्ध होकर रोमन कैथोलिक तथा कट्टर उदार दल के लोगों ने भी उसको सहयोग प्रदान किया।

कुछ समय के पश्चात् इस आन्दोलन ने इटली के लोकमत को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। श्रमिक-वर्ग, कृषक-दल तथा भूस्वामी-समुदाय भी इसमें सम्मिलित हो गया। इस प्रकार फैसिज्म इटली भर में व्याप्त हो गया। १९२१ ई० में इस मत के अनुयायियों का रोम-नगर में एक विशाल अधिवेशन हुआ था और एक राजनीतिक दल का सङ्गठन भी किया गया था।

उनका मत है कि राज्य का कार्यक्षेत्र कानून बनाना तथा राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है। उत्पादन की उन्नति के लिए ट्रेड यूनियन को प्रोत्साहित करना चाहिए। राज्य के सम्मान और गौरव में क्षति न पहुँचानी चाहिए। व्यावसायिक हड़ताल नहीं की जा सकती।

समाज में अशान्ति को रोकने के लिए फैसिज्म ने एक सैनिक सङ्गठन की भी आयोजना की है। इस प्रकार इस विलक्षण सङ्गठन ने राजतन्त्र को सुदृढ़ रूप से संरक्षित कर रखा है। इसके अन्दर एक महान परिषद् (Grand council) की स्थापना भी की गई है, जिसमें सरकारी दल के बहुत से पदाधिकारी सम्मिलित हैं। मुसोलिनी ही इटली का सर्वेसर्वा है और वही इस दल का प्रमुख नेता भी है।

इसका सिद्धान्त है कि व्यक्ति के लिए समाज का अस्तित्व नहीं है, बल्कि समाज के लिए ही व्यक्ति का अस्तित्व है। इस तरह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता इस समाज के अन्दर नहीं रह जाती। समाज ही न्यायकर्ता है और वही व्यक्तिगत अधिकारों का निरीक्षण करता है।

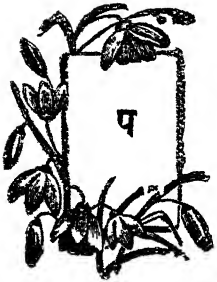
इस प्रकार आजकल यूरोप में कई प्रकार के सिद्धान्तों का तुमुल द्वन्द्व जारी है।





हृत्पथ

[श्रीमती शिवरानी देवी]



पिंडित रुद्रनाथ के घर में किसी देवी का अभिशप है कि बहुएँ आने के दो-चार साल बाद ही स्वर्ग की राह लेती हैं। ऐसा कोई मर्द नहीं हुआ, जिसकी तीन शादियों से कम हुई हों। रुद्रनाथ के पिता की पाँच शादियाँ हुईं। रुद्रनाथ तीन भाई थे, तीनों ही की तीन-तीन शादियाँ हुईं। रुद्रनाथ के दोनों जवान लड़कों की भी दो-दो शादियाँ हो चुकी हैं। बहुएँ आती हैं, साल-छः महीने में उन्हें भूत लग जाता है, कुछ भाद-फूँक होती है, फिर मालूम होता है कि बहू का अन्त हो गया। फिर उसके दूसरे ही महीने बेटे की शादी की बातचीत होने लगती है। मुहल्ले के अन्य घरों में भी यही हाल है, इसलिए इसे साधारण व्यवस्था समझना चाहिए। रहीं नीच जातियों की स्त्रियाँ, वे समझती हैं कि बड़े आदमियों के घर की औरतें पूर्व-जन्म के किसी पुण्य-फल से इतनी जल्द दुनिया से विदा हो जाती हैं। बेचारी नीच जाति की औरतों को तो यमराज भी नहीं पूछते। जिनकी यहाँ पूछ है, उन्हीं की वहाँ भी पूछ है।

रुद्रनाथ का बड़ा लड़का चन्द्रनाथ जब पन्द्रहवें साल में था, तो उसका पहला ब्याह हुआ। महीने भर यहाँ

रह कर बहू विदा हो गई। साल भर के बाद वह फिर आई और मर कर ही गई। छः महीने के अन्दर चन्द्रनाथ का दूसरा ब्याह हो गया। लड़की का मैका गङ्गा किनारे था। रोज़ नहाने जाती। जल भी गङ्गा जी से लाती थी। यहाँ बन्द कोठरी में रहना पड़ा, न किसी से भेंट न मुलाकात, न कहीं आना न जाना, तो उसे बड़ा बुरा मालूम हुआ। बहू किसी से बोल नहीं सकती। जो कुछ कहना हो अपनी सास से कहे। हँसे-बोले किससे? यही जैद दूसरे घरों में भी है। बेचारी किसी से दो बात बोलने के लिए तरसती रहती थी। जब कभी कहाँ-नया या पिसनहारिन को पकड़ पाती तो उसका जी चाहता उससे बातें ही किया करे। उसकी बातें ही न ख़तम होतीं। उधर मैनादेवी का नादिरशाही हुक्म था कि किसी से मत बोलो। यह निषेध उसे पाँव की बेदी की तरह कठोर लगता और वह किसी न किसी उपाय से उसे तोड़ने की चेष्टा करती रहती थी।

एक दिन मैना की नज़र पड़ गई। गुलाब गोबर फेंकने वाली चमारिन से हँस-हँस कर इस तरह बातें कर रही थी, मानों जीवन का इससे बड़ा सुख दूसरा नहीं है।

मैनादेवी आरा-बबूला हो गई। आँखें निकाल कर बोली—मैंने तुम्हें समझा दिया कि इन नीच औरतों से बातचीत न किया कर; लेकिन जैसे तुम्हें कुछ परवाह ही



नहीं। इसीसे मैं कहती थी कि नीच कुल की लड़की मत लाओ, वह कुलीन घरों का रहन-सहन क्या जाने। लेकिन मेरी कौन सुनता है, रुपए देखे तो फिसल पड़े। बहुरानी का चमारियों और कहारियों से बहिनापा है। आज तो मैं छोड़ देती हूँ, लेकिन आगे किसी से बातें करते देखा तो फिर मैके ही का पानी पिलाऊँगी। अपने कुल की नाक नहीं कटवानी है।

गुलाब ने तीव्र स्वर में कहा—“तो क्या रात-दिन घर में पड़े-पड़े मरूँ?” इतना सुनना था कि मैना के सिर जैसे भूत सवार हो गया। कुलटा, कुलच्छिनी, बेहया और जो-जो मुँह में आया बकती रही। इतने ही पर सन्तोष न हुआ। पण्डित जी से लगाया और चन्द्रनाथ को ऐसी बुरी तरह डाटा कि बेचारा रोने लगा।

२

रात को चन्द्रनाथ जब घर में सोने गया तो गुलाब से बोला—यह तुम्हारा क्या स्वभाव है जी, कि तुम्हें कितना ही कोई समझावे अपने मन ही की करती हो। यह भी कोई क्रायदा है कि बड़े घर की बहुएँ नीच औरतों से बातचीत करें। मैंने तो तुम्हारी जैसी स्त्री नहीं देखी।

गुलाब भी भरी बैठी थी। बोली—हाँ बात तो ऐसी ही है। औरतें देखे होते तो जानते कि उनसे कैसे व्यवहार करना चाहिए।

“हाँ ठीक है, हम लोगों का तो सिर फिर गया है, जो कुत्तों की तरह भूँका करते हैं। अम्माँ बुढ़ी हो गई हैं, लेकिन उनकी बोली आज तक किसी ने नहीं सुनी। तुम्हारे पीछे मुझे भी बातें सुननी पड़ती हैं।”

“तो आखिर किससे बोलूँ?”

“किसी से बोलने की ज़रूरत नहीं।”

“और जो मैं कहूँ, तुम भी किसी से न बोलो तब?”

“मुझसे तुम ऐसा नहीं कह सकती।”

नीचे से मैनादेवी आकर कोठे के द्वार पर खड़ी हो गई और बोली—इस बेशरम के मुँह क्यों लगता है बेटा। ले जा इसे उस पापी के घर भेज आ, जो इसे मेरे गले मँद गया है। बातों में तो कोई इससे जीत ही नहीं सकता। न जाने इसके माँ-बाप कैसे हैं, जिसके ऐसी लड़की है। तुम्हारे दादा ने आज खाना नहीं खाया।

इसी सोच में पड़े रहे कि न जाने आबरू कैसे रहेगी। इस कलमुँही ने सारे घर का नाक में दम कर दिया है। न जाने कब इसका पौरा उठेगा।

गुलाब ने कोई जवाब न दिया। मन में बार-बार ज्वाला सी उठती थी, लेकिन मुँह तक आते-आते पानी हो जाती थी। यहाँ वह अकेली है। ये लोग चाहे उसे मार भी डालें, तो वह क्या कर सकती है। इसीलिए भगवान ने उसका जन्म दिया था।

३

एक दिन गाँव में एक बारात आई। गुलाब का जी न माना, खिड़की पर खड़ी होकर देखने लगी। चन्द्रनाथ के मित्र खिड़की के नीचे ही खड़े थे। संयोग से उनकी निगाह उस पर पड़ गई। दिल में शर्माए तो नहीं, चन्द्रनाथ से बोले—“देखो तुम्हारी श्रीमती जी खिड़की के सामने खड़ी हैं।” चन्द्रनाथ ने आँख ऊपर उठाई तो गुलाब को खड़ी देखा। अब क्या था। इतना भयङ्कर अपराध, कुलीन घर की बहु और खिड़की के सामने खड़ी हो। भट्लाए हुए घर में आए और गुलाब से बोले—“क्यों जी, तुम हमारी नाक कटवा कर ही दम लोगी? अब तुम इतनी बेशरम हो गई कि सारे महल्ले के महल्ले से आँखें लड़ाती फिरती हो। ऐसा जी चाहता है कि या तो आप ज़हर खाकर सो रहूँ या तेरा ही गला घोट दूँ। मैं तो तुझसे हार गया। न तू मरेगी न मेरा गला छूटेगा।”

गुलाब के काटो तो लहू नहीं। उसके पास कोई जवाब न था, कोई सफ़ाई न थी। अपराधी भाव से बोली—अगर मैंने इतना बड़ा अपराध किया है तो मुझी को क्यों न मार डालो।

“तुम जैसी बेहयाओं से मौत भी डरती है।”

सहसा चन्द्रनाथ का छोटा भाई रामनाथ आकर बोला—भैया तुमने आज भाभी की करतूत सुनी! इन्होंने हमारी नाक कटवा ली। आज पण्डित रामशङ्कर ने इन्हें खिड़की पर खड़े देखा। वह सबके सामने कहते थे। मारे शर्म के मेरा सिर नीचा हो गया और क्या कहूँ।

गुलाब के मुँह से निकला—अब तुम्हारी बारी है तो जो सज़ा चाहो तुम भी दे लो। मैं तो घर भर का लात खाने आई ही हूँ।



चन्द्रनाथ ने कहा—सज़ा वह नहीं देगा, मैं दूँगा। जितना ही मैं तरह देता हूँ, उतना ही तू और बढ़ती जाती है।

यह कहने के साथ ही उसने पाँव से जूता निकाला और गुलाब की पीठ पर तड़ातड़ चार-पाँच जूते जमा दिए। बोला—फिर जायगी खिड़की पर! तुझको शर्म नहीं है, हम लोगों को है। मेरे घर में तेरी बेशर्मी नहीं चलने पाएगी। हो गया दिमाग़ ठीक कि और चाहिए!

४

कई महीने बीत गए हैं। गुलाब गर्भवती है। रात-दिन कोठरी में बैठे-बैठे उसे संग्रहणी हो गई है। गुलाब सा मुँह सूख कर पीला हो गया है। खाना अच्छा नहीं लगता, दवा कोई देता नहीं। जब से मार पड़ी थी, किसी ने उसका मुँह नहीं देखा, न वह किसी से बोली। एक ही मार में हमेशा के लिए उसे ठीक कर दिया। दिन भर खाट पर पड़ी रहती। उससे उठा नहीं जाता। लेकिन मैनादेवी इसे भी उसकी बेशर्मी समझती हैं। छोटे-बड़े का लिहाज़ तो इसे है ही नहीं। कोई जाय, कोई आए, बस लम्बी ताने पड़ी रहती है। मानों इसी को तो नोखे का बच्चा होने वाला है। और किसी को तो लड़के हुए ही नहीं।

चन्द्रनाथ ने अब गुलाब से कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। उसकी ओर से अब वह निराश हो गया है। ऐसी निर्लज्जा को कोई कहाँ तक समझाए। जिसे न मार का डर है, न गाली की लाज। वह जो चाहे वही कर सकती है। मैं अगर हारा तो इसी की से।

आज गुलाब के पेट में दर्द है। मगर किसी से कुछ कह नहीं सकती। खाट पर पड़ी कराह रही है। कभी उठ बैठती है, कभी लेट जाती है, कभी खड़ी हो जाती है। हर बार आसन बदलने से उसे कुछ विश्राम का अनुभव होता है। लेकिन एक ही सेकेण्ड में फिर वैसे ही पीड़ा होने लगती है। मुँह से बार-बार यही वेदना से भरा हुआ शब्द निकलता है—हाय भगवान, अब नहीं सहा जाता।

घर का कोई आदमी उसके पास नहीं फटकता। केवल महरा उसका तड़पना देख रही है। किन्तु मैना-देवी के भय से उसकी भी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं

पड़ती। आखिर जब उससे न रहा गया तो गुलाब के पास जाकर बोली—कैसा जी है बहू जी!

गुलाब ने करुण नेत्रों से उसे देख कर कहा—तुम यहाँ से चली जाओ माता, नहीं अम्माँ जी देख लेंगी तो मेरी भी दुर्गति करेंगी, तुम्हारी भी दुरमन हो जायँगी।

महरा दयार्द्र होकर बोली—तो अपनी नौकरी ही लेंगी या किसी की जान मारेंगी। अब यह तो नहीं हो सकता कि तुम यों छुटपटाती रहो और मैं खड़ी देखा करूँ। हम लोग कहने को नीच जात हैं, लेकिन हमारे यहाँ भी ऐसा नहीं होता कि किसी भले आदमी की लड़की लाकर उसे दबे में बन्द कर दें। ऐसा अन्धेर तो मैंने कहीं नहीं देखा। बहू न भई कैदिन भई। बड़े घर की बड़ी-बड़ी बातें होती हैं। यह परदा है कि जान मारना है।

गुलाब ने हाथ जोड़ कर कहा—माता, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, यहाँ से चली जाओ, नहीं मेरी जान की कुशल नहीं है।

मैना के सतर्क कानों में इन बातों की आहट पड़ गई। दबे पाँव आकर बहू की कोठरी के द्वार पर खड़ी हो गई और कान लगा कर सुनने लगी। आँखों में खून उतर आया। महरा को डाँट कर बोली—अच्छा, बस रहने दे। आई है वहाँ से बहू की सगी बन कर। हम लोग नाई-कहार नहीं हैं कि हमारी बहुएँ गली-गली नाचती फिरें। चली है अपनी बिरादरी का बखान करने। तू क्यों आई यहाँ? तू कौन होती है मेरी बहू से बोलने वाली?

महरा ने देखा कि बहू जी के मालकिन का क्रोध बढ़ रहा है तो चुपके से खिसक गई। मैना गुलाब के सिर हो गई—अब क्या पूछना है। अब तो दुखड़ा रोंने को महरा मिल गई।

गुलाब ने आँखों में आँसू भर कर कहा—अम्माँ जी, मैं आपके चरण छूकर कहती हूँ, मैंने महरा से कुछ नहीं कहा। मैं तो उससे बार-बार कहती रही कि यहाँ से चली जा। आप उसको बुला के पूछ लीजिए कि मैंने उससे क्या कहा?

मैना ने उसी क्रोध में जो कुछ मुँह में आया कहा। लेकिन गुलाब को कुछ सुनाई न दिया। उसके पेट में फिर दर्द होने लगा था।



५

बाहर से चन्द्रनाथ आए। मैना ने उसको आड़े हाथों लिया—अब या तो तू ही इस घर में रह या मैं ही रहूँ। तेरी बहू के साथ अब इस घर में मेरा निवाह न होगा। अब महरी को बुला कर उससे दुखड़ा रोया जाता है। हम चमार हैं, डोम हैं, बल्कि उनसे भी गए बीते। बहुओं की जैसी दुर्दशा हमारे घर में होती है वैसी और कहीं नहीं होती। कुछ कहो तो लड़ने को तैयार। इस चायखालिन ने पुरखों के मुँह में कालिख लगा दी।

चन्द्रनाथ बोला—तो अपने बाप को क्यों नहीं कोसती कि चमार के घर पटक दिया। अब से भला है, चली जाय किसी कुलीन के घर।

इसी क्रोध में भरा हुआ वह गुलाब की कोठरी के दरवाजे तक आया तो देखा गुलाब अचेत पड़ी है और शिशु रो रहा है। उल्टे पाँव दौड़ा हुआ माँ के पास आया और माँ से यह हाल कहा।

अब मैना को शायद कुछ खेद हुआ। उसने समझा था, बहू मक्कर किए पड़ी हुई है। दौड़ी हुई ऊपर गई। बच्चे को उठा लिया और चन्द्रनाथ को पुकार कर बोली—जाकर अपने बाप से कह दो, दाई बुलवा लें। भगवान ने उनको पोता दिया है। पण्डित जी दाई को बुलाने के लिए आदमी भेज कर घर में आ बैठे और पत्रा खोल कर देखने लगे, बच्चा कैसे लभ में पैदा हुआ है।

थोड़ी देर में दाई आ गई और बहू को देख कर मैना से बोली—क्या बहू के पास कोई था नहीं; मुझे और पहले क्यों न बुला लिया। इनके तो दाँत बैठ गए हैं, जी डूब गया है। बच्चे की नाल तो मैं काट दूँगी, लेकिन बहू मेरे मान की नहीं है। किसी मेम डॉक्टर को बुलवाइए। नहीं पीछे मुझे दोष दोगी कि पहले क्यों नहीं बताया।

मैना नाक सिकोड़ कर बोली—मेरे घर कभी न मेम आई है न आवेगी। और बहू को हुआ ही क्या है कि मेम को बुलाऊँ? कोई नई बात थोड़े हुई है!

महल्ले की दो-चार बड़ी-बूढ़ियाँ यह खबर सुनते ही आ पहुँची थीं और सौरिगृह के द्वार पर खड़ी थीं। उनकी भी यही सलाह हुई कि मेम-सेम के बुलाने की

कोई ज़रूरत नहीं है। सभी के दस-दस, बीस-बीस बच्चे हो चुके थे। लेकिन मेम किसी के घर नहीं आई थी। उस पुरानी प्रथा को आज कैसे तोड़ा जाय।

दाई बोली—मैया, मुझे तो डर लग रहा है। देखते नहीं हो, बहू कैसी दुई जाती है।

मैना ने उसे कड़ी आँखों से देखा। तुम तो दाई, ऐसी घबड़ा रही हो जैसे आज पहली बार जन्मा-बच्चा देखा हो। कुछ नहीं तो सैकड़ों ही बच्चे जनाए होंगे। मेम किसके घर आती है? हम क्रिस्तान थोड़े ही हैं कि मेम को घर पर बुला लें।

दाई ने देखा कि यहाँ उसकी कोई नहीं सुनता तो बाहर निकल आई और आँगन में आकर पण्डित जी से बोली, जो अभी तक बैठे लगन विचार रहे थे—मालिक! बहू जी बहुत बेहाल हैं, मुझे तो उनका बचना मुश्किल मालूम होता है। नाड़ी का कहीं पता नहीं, आँखें ऊपर को टँग गई हैं। मैंने कहा कि किसी मेम को बुला कर दिखा लो, लेकिन मेरी कोई नहीं सुनता। मैं तुमसे भी जताए देती हूँ। अब मेरा दोष नहीं है।

पण्डित जी बोले—कैसी बातें करती हो दाई! तुम्हें क्या हो गया है। बच्चे के होने में दाई आती है, मेम नहीं आती। न आज तुम नए सिरे से आई हो, न मेरे घर में कोई नोखा बच्चा हुआ है।

दाई ने बहुत समझाया, लेकिन पण्डित जी मेम बुलाने पर किसी तरह राज़ी न हुए। आखिर उसने कहा अगर आप बहू को मारने ही पर लगे हैं, तो दूसरी बात है। नहीं, अब उनके बचने की कोई आशा नहीं है। रुपए-पैसे इसी दिन के लिए जोड़े जाते हैं। आप लोग न जाने क्या समझ कर छोड़ते हैं। रुपए आते-जाते रहते हैं, लेकिन आदमी एक बार चला जाता है तो फिर नहीं आता। अब पण्डित जी को भी कुछ शक्का हुई। मैना को पुकार कर पूछा—अब बहू का जी कैसा है?

मेम के नाम ही से मैना की ईर्ष्या प्रबलित हो रही थी। उसके भी तो बच्चे हुए हैं। उसे भी तो इसी तरह पीड़ा हुई, वह भी तो प्रसूत ज्वर में महीनों पड़ी रही, जब उसकी बार मेम न आई तो अब कैसे आ सकती है। गुलाब ऐसी कहाँ की दुलारी है कि उसके लिए मेम आवे। जीना होगा जिप्सी, मरना होगा



मरेगी। संसार में औरतों का कल्याण नहीं है। बोली—
जी अच्छा है और क्या। नज़रा किए पड़ी है। तुम
औरतों का हाल क्या नहीं जानते।

पण्डित जी ने कहा—दाई तो डॉक्टर बुलाने को
कहती है। लेकिन मैंने तो कह दिया कि मैं डॉक्टर को
बुला कर अपने घर की बेइज़्जती न कराऊंगा। मेम
आवेगी तो सबसे पहले शराब माँगेगी। मेरे जीते जी
यह अधर्म नहीं होगा ?

रात के दस बज गए। गुलाब की उल्टी साँसें चल
रही हैं, और सब औरतें बैठी तमाशा देख रही हैं।

एकाएक उसने एक हिचकी ली और अपनी जीवन-
लीला समाप्त कर दी ! बेचारी को बच्चे का मुँह देखना
भी नसीब न हुआ !

मैना छाती पीटने लगी—हाय भगवान, मेरी क्यों
दुर्दशा कर रहे हो। कितने अरमान से बेटे का ब्याह
किया था, मगर कोई हौसला पूरा नहीं हुआ।

लाश कपड़े से ढक कर बाहर लाई गई। घर में
रोना-पीटना मच गया।

एक बुढ़िया ने मैना को समझाया—दीदी अब क्यों
रोती हो, सलामत रहे बेटा, फिर बहू आ जायगी !!!



प्रणय-प्रभात

[श्री० कविराज उमेशचन्द्र देव]

अवनि से उमड़-उमड़ उच्छ्वास
विकल, कलियों को लेते चूम—
विहँस देती हैं वे सत्वर,
हृदय का करतीं अभिनन्दन !
अरे ! यह मादक जड़ जीवन !

इधर से आता अलि बेपीर,
उधर से भावुक मन्द सहीर
सभी को देतीं सौरभ दान—
सभी का है समान सम्मान,
प्रणय का अभिरञ्जन ही ध्येय !

सुमन प्यालों में पी यौवन
भूमने लगता है उपवन,
लुटा देने को तन-मन-धन
मचल जाता चञ्चल जीवन !

×

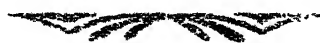
×

×

प्रभा का पोषक उद्वर्तन,
मयूरों का मादक नर्तन,
मलय लहरी का आवर्तन,
प्रकृति का पल-पल परिवर्तन
सभी में यौवन-जीवन-धन !!

कामनाएँ उल्लास विलास
लजाते आते मेरे पास,
पलक भर आजाएँ इस पार,
सजा दें यह बिखरा शृङ्गार
न हारे फिर मेरा मनुहार !

कमल सी कोमल वे कलियाँ
हमारी बनने को उपहार
तरसती हैं प्रभात सुकुमार !
सुका दो अपनी प्रीवा-मञ्जु
तुम्हीं को पहना दूँ यह हार !



कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कल्पना और भाव



हित्य की आत्मा कल्पना और भाव हैं। इनके अभाव में साहित्य और जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। संसार में कल्पना और भाव का नाश हो जाय तो मानव-सृष्टि का अन्त ही हो जायगा। मानव-जगत

तथा इतर प्राणि-जगत में कोई अन्तर ही न रहेगा। साहित्य में कल्पना द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि की जाती है। जहाँ मरुभूमि है, वहाँ कवि-कल्पना रमणीय वाटिका के दर्शन करती है! जहाँ घृणा का अभिनय है, वहाँ प्रेम-राज्य के वैभव का अनुभव करती है। आनन्द और दुःख क्या हैं? हमारे सत्य भावों की अभिव्यक्ति ही आनन्द है। असत्य भावों की अनुभूति में दुःख ही दुःख है।

मनोविज्ञान-वेत्ताओं का कथन है कि कल्पना की सहायता के बिना मनुष्य में उदात्त भावों और सहानुभूति का आविर्भाव नहीं हो सकता। जो मनुष्य अपने आपको दूसरों की स्थिति में पड़ा होने की कल्पना नहीं कर सकता, उसमें कब प्रेम, दया, कृपा इत्यादि मनो-भावों की जननी सहानुभूति का सञ्चार हो सकता है? निष्कर्ष यह है कि जीवन और साहित्य में कल्पना का सर्वोपरि स्थान है। परन्तु साहित्य में जिस कल्पना का निर्वाह किया जाता है, वह सरस कल्पना है। जिस कल्पना में भावों का प्राधान्य हो, उसे ही हम सरस कल्पना कहते हैं। साहित्य में सौन्दर्य की अनुभूति इसी सरस कल्पना के द्वारा की जाती है।

जिस प्रकार काव्य में कल्पना का स्थान भाव के समकक्ष है, उसी प्रकार कहानी में कल्पना का स्थान भी सर्वोच्च है। जिस लेखक में सरस भावपूर्ण कल्पना का अभाव हो, वह कवि या कहानीकार नहीं बन सकता। कल्पना के द्वारा कहानी में मौलिकता और नूतनता

की सृष्टि की जाती है! भावों के द्वारा आनन्द या रस की उत्पत्ति की जाती है। जिस कहानी में कोई भाव नहीं, वह रसहीन है। भाव से हमारा तात्पर्य ज्ञान-मिश्रित संवेदन से है। संवेदन मन की सुखात्मक और दुःखात्मक दशा है। 'जब विशेष परिस्थिति का ज्ञान संवेदन उत्पन्न करता है, तो वह ज्ञान-मिश्रित संवेदन हमारे अन्दर शारीरिक परिवर्तन पैदा कर देता है। वह शारीरिक परिवर्तन उस संवेदन को तीव्र रूप दे देते हैं, यही तीव्र संवेदन भाव कहलाता है।'^{*}

कहानी की सार्थकता इसी में है कि उसके अवलोकन से पाठक के हृदय में भी तद्गत भाव जाग्रत हो जायँ। यदि लेखक में मानव-चरित्र के सौन्दर्य-दर्शन के लिए दिव्य चक्षु हैं, उसकी विशदता का अनुभव करने के लिए सरस हृदय है, मानव-जीवन के तथ्यों के ज्ञान के लिए मेधावी बुद्धि है, तो उसमें स्वतः भावों का आविर्भाव हो जायगा।

“साहित्य में भावप्रवणता के सब रूपों की उत्पत्ति प्रेमाभास या कृपाभास के जागरण का फल है। जो भाव इस प्रकार सुगमता से जाग्रत किए जा सकते हैं अथवा विवेक-पूर्वक प्रयुक्त किए जाते हैं, उनमें सारहीनता आ जाती है। जिन भावों का प्रादुर्भाव सच्चे कलाविद् द्वारा किया जाता है, वे मानव-जीवन के गम्भीर सत्त्वों पर निर्भर होते हैं।”[†]

मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक परिवर्तन में न्यूनाधिक की दृष्टि से भावों को दो भागों में विभाजित किया है। क्रोध, भय, घृणा, ईर्ष्या, शोक और लज्जा को स्थूल भाव माना है और जिज्ञासा, विद्या, प्रेम, सौन्दर्य, कृतज्ञता, सहानुभूति, अनुताप, अस्मग्लानि इत्यादि सूक्ष्म भाव

* 'मनोविज्ञान' ले० प्रो० सुधाकर, एम० ए०; पृ० २०८।

† Winchester's 'Principles of Literary Criticisms'.



हैं। ये सूक्ष्म भाव ही हमारे साहित्य की अक्षय सम्पत्ति हैं। ये समाज-स्थिति-विधायक भाव हैं। अतः लेखक का कर्तव्य है कि वह इन्हीं भावों का अपनी कृतियों में सन्निवेश करे। प्रेम भाव-साम्राज्य का सम्राट् है। यही कारण है कि समस्त साहित्य में प्रेम का उज्ज्वल वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् कथन और हास्य का स्थान है। इन तीनों भावों पर हम विशद रूप से विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

प्रेम-भावना

“काव्य की उस भूमि में, जहाँ आनन्द अपनी पूर्ण-वस्था को प्राप्त दिखाई पड़ता है, प्रवर्तक भाव प्रेम है।”

—प्रो० रामचन्द्र शुक्ल

आजकल हिन्दी कहानी-साहित्य में ‘प्रेम-कहानी’ का प्रचलन बड़े जोर से हो रहा है। ऐसी कहानी में भावुकता के स्थान में कोरी भाव-प्रवणता (Sentimentalism) का प्राचुर्य रहता है। यदि ‘प्रेम-कहानी’ द्वारा प्रेम का दिव्य रूप अभिव्यक्त किया जाय, तो इससे आनन्द की उत्पत्ति हो सकती है। परन्तु ‘प्रेम-कहानी’ की कथा ही निराली है। काव्य-क्षेत्र में जिस कामुकता का प्रचार बिहारी और देव ने किया उसी का प्रचार आजकल के ‘प्रेम-कहानीकार’ कर रहे हैं! क्या प्रेम की इससे अधिक दुर्दशा सम्भव हो सकती है? फ्रेञ्च-साहित्य की कृपा से हिन्दी-साहित्य में ‘यथार्थवाद’ का प्रचार हुआ और इस ‘वाद’ के साथ प्रेम-भावना के सम्मिलन ने साहित्यिक वाममार्गवाद को जन्म दिया। प्रेम-भावना को कलुषित करने का सारा उत्तरदायित्व यथार्थवादी मनोवृत्ति पर है। प्रेम में अशान्ति, असंयम, विषाद और काम का सन्निवेश ‘यथार्थवाद’ का परिणाम है। ऐसे प्रेम में द्वेष, घृणा, ग्लानि, विश्वासघात, अमर्ष, शोक, निराशा और दुःख होता है!!

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि प्रेम विषयी शृङ्गार नहीं है। प्रेम विश्व है; विश्व प्रेम है। जीवन का सार प्रेम है; प्रेम-रहित जीवन मृत्यु है। जीवन का चित्रण साहित्य है; अतः साहित्य में प्रेम का निर्वाह अतीव आवश्यक है।

प्रेम-भावना को इतना कलुषित बना दिया गया है कि हमारे उदीयमान कलाकार प्रेम में अशान्ति और दुःख के सिवाय और कुछ नहीं देखते। वे मानव-जीवन,

प्रेम और शान्ति, इन तीनों को एक साथ नहीं देख सकते। विगत प्रकरण में हमने फ्रेञ्च-कलाविदों की प्रेम सम्बन्धिनी भावना का दिग्दर्शन कराया है। मोर्पासा की दृष्टि में प्रेम में ‘विषय-वासना’ है। उसमें ‘ईर्ष्या’, ‘सन्देह’ और ‘वैचैनी’ है। उसकी धारणा यह है कि ‘प्रेम से मन चञ्चल हो जाता है, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों ही शिथिल पड़ जाती हैं, और मस्तिष्क में घबराहट हो जाती है।’ ‘प्रेम’ भयङ्कर और कठोर है। वह ‘प्रत्यक्ष दूषित और दूषक भी है।’ यह मोर्पासा की, जो फ्रेञ्च-कला का सर्वश्रेष्ठ कलाकार माना जाता है, प्रेम-भावना है।

वास्तव में यह प्रेम नहीं है, इसका नाम वासना है। इसलिये विशुद्ध, विमल और पुनीत प्रेम को ‘दूषित’ और ‘दूषक’ कहना महा अज्ञान और अशान्ति है। खेद का विषय है कि हमारे अधिकांश कहानी-लेखक अपनी कहानियों में इसी प्रेम-भावना का प्रदर्शन करते हैं। एक हिन्दी कहानी-लेखक के प्रेम की व्याख्या सुनिए :—

“प्रेम वह ठग है, धोखा है, फरेब है, छलिया है, जो भोली-भाली स्त्रियों को, विलास की भूखी-भ्यासी विधवाओं को, पानी और खुराक, घर और आराम, समवेदना और सहायभूति के डोरे डाल कर मर्दों के उस जाल में फँसा देता है, जिसमें फँस कर कुछ तो तबप-तबप कर मर जाती हैं और कुछ अपना शरीर बेच कर जीवन के दिन बिताती हैं।”

यूरोप और अमेरिका में इस प्रकार की काम-खीला के इश्य दैनिक जीवन की सामान्य घटना है। यदि उन देशों के लेखक संशोधन करने के उद्देश्य से अपनी कृतियों में कामुक मनोविकारों का प्रदर्शन करें तो क्षम्य भी है। परन्तु भारतवर्ष में, प्रेम-भावना में काम और व्यभिचार का आरोप करना अभिप्रेत नहीं है। इस मलीन मनोवृत्ति का कारण यह है कि हमारी सौन्दर्य-भावना अत्यन्त कलुषित होगई है और इसीलिए उसका प्रभाव प्रेम-भावना पर भी पड़ा है।

कला का उद्देश्य सौन्दर्य के आदर्श को प्रत्यक्षी-भूत करना होता है। इस दृष्टि से कहानी में भी सौन्दर्य की सरस सृष्टि की जाती है। यह सौन्दर्य बाह्य प्रकृति

“प्रेम क्या है?” कहानी ‘सरोज’ मासिक पत्र कलकत्ता, असाढ़ सं० १९८५ वि०।



में रहता है और अन्तरङ्ग प्रकृति में भी रहता है। कहा-
नियों में बाह्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए भगीरथ-
प्रयत्न किया जाता है। यहाँ तक कि रमणी के सुन्दर
अङ्गों की उपमा देने में बेचारे उपमान भी हार मान
बैठे हैं। परन्तु अन्तरङ्ग प्रकृति की उपेक्षा अनभिप्रेत है।
क्योंकि आत्मा के सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण तो अन्तरङ्ग
चित्रण द्वारा ही सम्भव है। रमणी के चन्द्र-वदन,
कमल-लोचन, विम्बोष्ठ, कीर-नासिका, चम्पक-कलिका
से कर्णद्वय आदि की अपेक्षा उसके शील, सदाचार
तथा उदात्त मनोभावों की अभिव्यक्ति विशेष मूल्यवान्
है। जिस कहानी में बाह्य और अन्तरङ्ग सौन्दर्य के पूर्ण
सामञ्जस्य का निर्वाह किया जाता है, वह हमारी रागा-
त्मिका प्रकृति में संशोधन करती है; हमारे मनोविकारों
का परिष्कार करती है तथा मानवी हृदय में दिव्य भावों
की प्रगतियों की निर्बल पड़ने से बचाती है।

जो प्रेम-भावना शारीरिक सौन्दर्य पर निर्भर रहेगी,
उसमें उच्च शील के उत्कर्ष के लिए अवसर ही नहीं
रहता। प्रेमी अपने प्रेम को उसी समय तक क्रायम
रखता है, जब तक कि शारीरिक सौन्दर्य में क्षीणता नहीं
आ जाती। शारीरिक सौन्दर्य नश्वर है; शारीरिक
सौन्दर्य देश, समय और स्थिति पर निर्भर है। परन्तु
प्रेम अमर है; वह देश, काल और स्थिति के बन्धन में
नहीं है। साहित्याचार्य पण्डित लोकनाथ सिलाकारी,
साहित्य-रत्न का कहना है कि—“प्रेम भावना की वस्तु
होने से स्थूल जगत की वस्तु नहीं है। प्रेम आध्यात्मिक
है। एवं जब प्रेम एकनिष्ठ हो—अव्यभिचारी न हो—
तभी वह प्रेम कहलाता है। ऐसा प्रेम तो प्रेम की सिद्धा-
वस्था में उन्नत श्रेणी में होता है और उसमें लौकिक
नीति के व्यवहार और कर्म का बन्धन नहीं रह जाता।
ध्यान रहे कि लौकिक धर्म और नीति के स्थूल आचारों
की आवश्यकता मनुष्य को तब तक है, जब तक वह
उन्नत भाव में न पहुँच जाय।”

सौन्दर्य क्या है, इस विषय में एक पाश्चात्य सौन्दर्य-
शास्त्री लिखता है :—

❖ ‘सम्पादकीय वक्तव्य’ ‘प्रेमा’ पत्रिका का शृङ्गार-
रसाङ्क, सम्पादक साहित्याचार्य पं० लोकनाथ सिलाकारी,
साहित्यरत्न। पृष्ठ ६४१ (अप्रैल-मई १९३२ ई०)

“The deeper the mind penetrates into
the facts of Aesthetics, the more they
are perceived to be based upon an ideal
identity between the mind itself and
things. At a certain point the harmony
becomes so complete and the finality
so close that it gives us actual emotion.
The beautiful then becomes sublime.
The soul rises into the true mystic state
and touches the absolute.”

—E. RECIJAC, (R. N. P. 72).

अर्थात्—“हम सौन्दर्य-शास्त्र के तथ्यों पर जितनी
ही गहराई से विचार करते हैं, उतना ही हमारे सामने
वह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अस्तित्व दृष्टा (मन)
और हृदय की आदर्शपूर्ण एकता पर निर्भर है। एक ख़ास
सीमा पर जाकर यह सामञ्जस्य इतना घनिष्ठ हो जाता
है कि हमारे मन में सच्ची भावना की सृष्टि करता है। ऐसे
समय वह सुन्दर ही सत्य बन जाता है और अन्तःकरण
एक रहस्य और आनन्द की अवस्था को पहुँच कर
‘सम्पूर्ण’ का स्पर्श करता है।”

यहाँ तक जो विवेचन किया गया है उसका सारांश
यह है कि प्रेम अमर है; प्रेम में अनन्त आशा और
प्रतीक्षा के लिए स्थान है; उसमें मिलन की तीव्र उत्कण्ठा
और आत्मिक शान्ति का सुखद सन्देश है। परन्तु प्रेम
में निराशा, व्याकुलता, दुःख, अशान्ति के लिए स्थान
नहीं है और भोग-विलास तथा काम से तो प्रेम सर्वथा
अछूता है। शुद्ध सौन्दर्य विरोध और दुःख नहीं, प्राण-
प्राण में सामञ्जस्य स्थापित करता है और दुःखी हृदय के
उजड़े उपवन में बसन्त-समीर के झोंकों का प्रसार
करता है। ❖

❖ स्वीटज़रलैण्ड के महाकवि ‘नोबुल-पुरस्कार’ के
विजेता Carl Spitteler ने अपने ‘Laughing
Truths’ नामक ग्रन्थ में भी इसी प्रकार के विचार
व्यक्त किए हैं :—

“ . . . It revives and consoles the grief-
stricken soul. All beauty reconciles and emanci-
pates.”



अब हम यह विचार करना चाहते हैं कि कहानियों में प्रेम का निर्वाह कहाँ तक औचित्यपूर्ण है तथा आदर्श प्रेम का निर्वाह कहाँ तक सम्भव है।

अनेक उत्कृष्ट हिन्दी लेखकों ने प्रेम की—सौन्दर्य की—उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कहानियों में, यदि लेखक चाहें, तो उस प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति बड़ी उत्तमता से हो सकती है, जिसका हमने ऊपर विवेचन किया है। कहानियों में अशान्ति और निराशा इसलिए मिलती है कि उनमें यौवन की मादकता से पूर्ण प्रेम की अभिव्यञ्जना होती है। जब तक यौवन की मादकता से ओत-प्रोत विलासी प्रेम को मानव-भाव-मन्दिर से निकाला नहीं जायगा, तब तक पुनीत प्रेम के गम्भीरतम और उत्कृष्ट भावों का विकास सम्भव नहीं। और जब तक कहानियों में उदात्त भावों—कर्तव्य-परायणता, दया-दाक्षिण्य, वीरता, त्याग, हृदय-विशालता, श्रद्धा, भक्ति, सम्मान—को स्थान नहीं मिलेगा, तब तक सुख-प्रेमी पाठकों के लिए प्रेम-कहानियाँ (Love Stories) विदेशी-वस्तु के समान बहिष्कृत रहेंगी।

क्या कहानी की सफलता के लिए प्रेम का निर्वाह अनिवार्य है? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक कहानी के लिए प्रेम-तत्व आवश्यक नहीं है और न प्रेम के ज़बर-दस्ती प्रयोग से कहानी में सौन्दर्य ही आता है। हमारी अनुमति में यौवन की मादकता से ओत-प्रोत 'प्रेम' (इस प्रेम में काम-वासना रहती है) का कहानी में प्रयोग न करना ही वाञ्छनीय है। पाश्चात्य देशों के साहित्य-सेवी समालोचकों तथा कहानी-लेखकों का भी विश्वास है कि यौवनपूर्ण प्रेम का निर्वाह ही न करना उत्तम है।*

एक बार इटली के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार Manjoni से यह प्रश्न किया गया कि आपके उपन्यासों से प्रेम-तत्व के अभाव का क्या कारण है, तो उसने इस प्रकार उत्तर दिया :—

* Not only the critics, but some writers of fiction believe that passion of young love is a subject best omitted.

—E. M. ALBRIGHT.

“Because I am of opinion that we must not speak of love in a way to lead others to that passion . . . I believe that love is necessary in this world, but also that there will always be a sufficient amount of it ; we need not therefore take the pains of cultivating it in others, for in cultivating it one helps only to arouse it where it is not wanted. There are other sentiments which the world is in more need of, and a writer may according to his ability, spread somewhat more in the heart of man ; such as pity, love of mankind, a kindly disposition, mercifulness and self-denial. These sentiments cannot be too numerous, and all praise to the writers who attempt to increase their strength among men.

× × ×

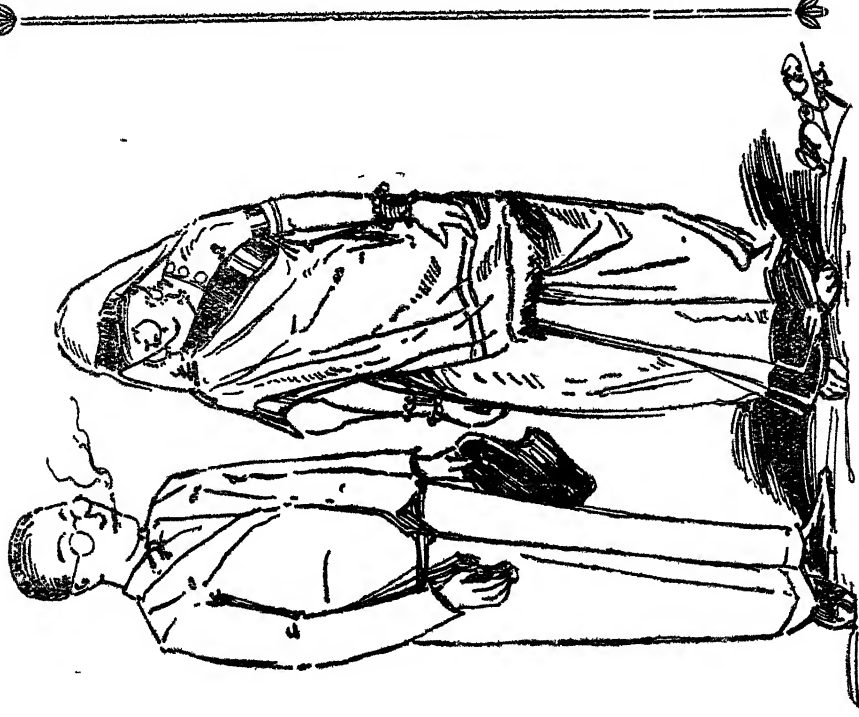
I am so convinced that if by a miracle, someday, I should be inspired with the most eloquent love-pages that man has ever written, I should not even take pen to get them on paper so certain am I that I should regret it.”

इस मन्तव्य में चरम-पक्ष पर जोर दिया गया है ; अर्थात् यह विचार चरमपन्थियों का है। परन्तु इस कथन में तथ्य है ; वह तथ्य जिसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। अतः पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

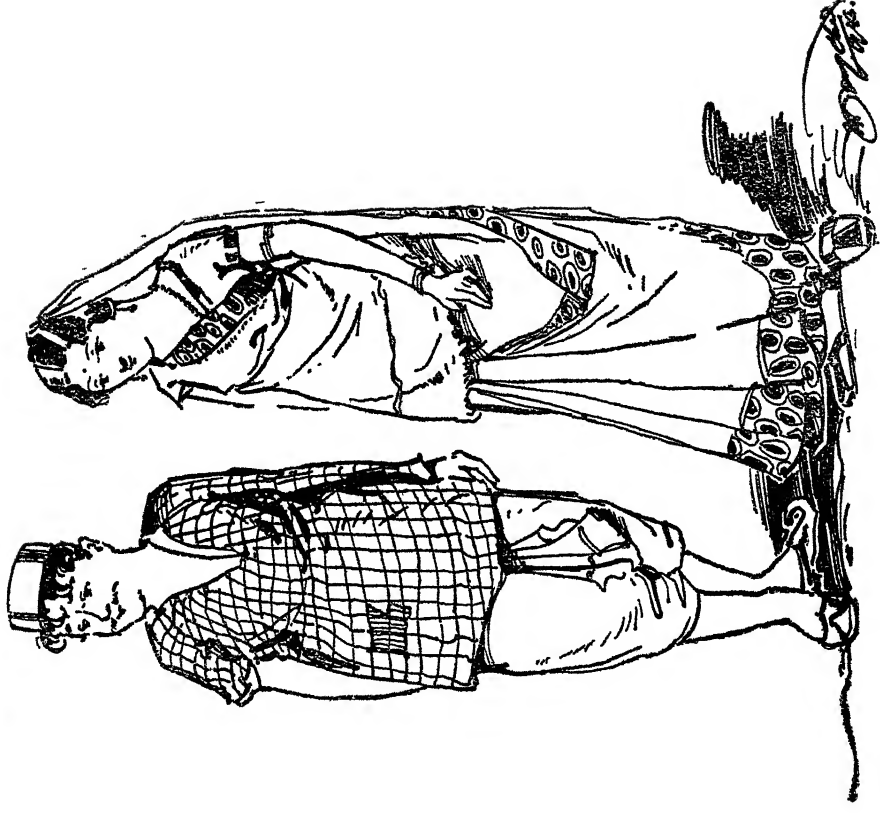
हमने जिस विमल, आनन्द-स्वरूप, आध्यात्मिक प्रेम का विवेचन किया है, उसका, हमारी हार्दिक इच्छा है, प्रेम-कहानियों में निर्वाह होना चाहिए। हमने निम्नलिखित कहानियों में प्रेम-भावना को अति दिव्य रूप में देखा है—डॉ० धनीराम जी प्रेम की 'डोरा', श्री० सूरजबल शर्मा की 'वीर-प्रतिज्ञा', आचार्य चतुर-सेन शास्त्री की 'सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया', श्री० अवध उपाध्याय की 'ब्रह्मचर्याश्रम' कहानियों में लोक-रक्षणकारी और विश्व-शान्ति की प्रतिष्ठा करने वाले विमल प्रेम का अच्छा निर्वाह हुआ है।



वर्तमान समाज के कुछ अपूर्व जोड़े

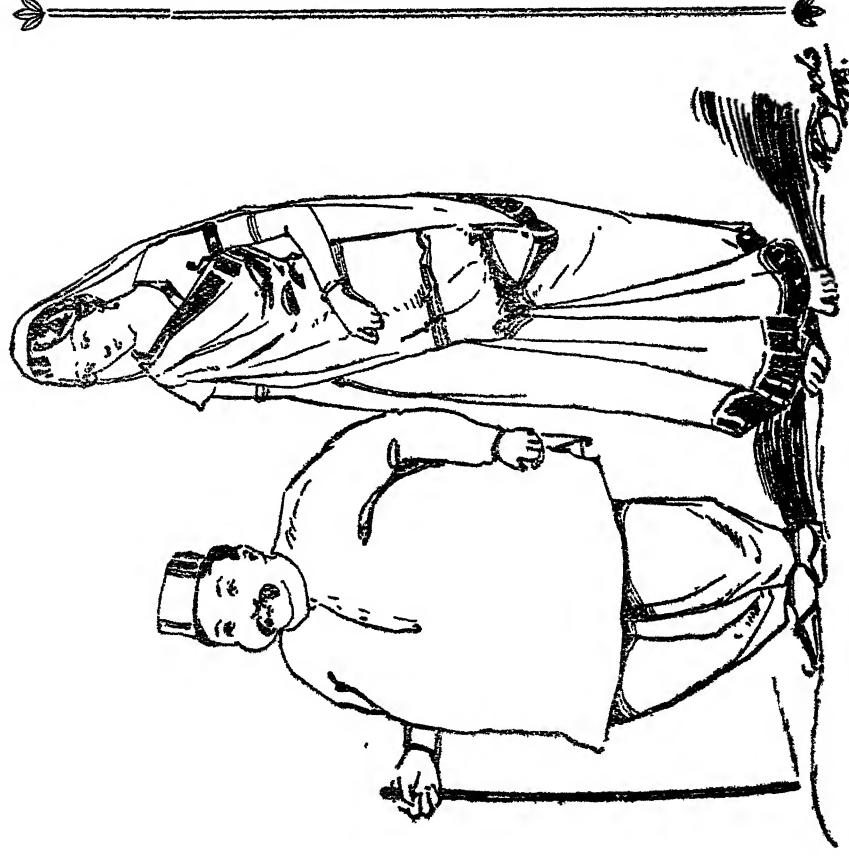


पति कैम्ब्रिज गुरुकुल के स्नातक, जेस्टिलमैन उद्गार ।
पत्नी घूँघट-पट नथवाली, अक्षर हीन—गँवार !

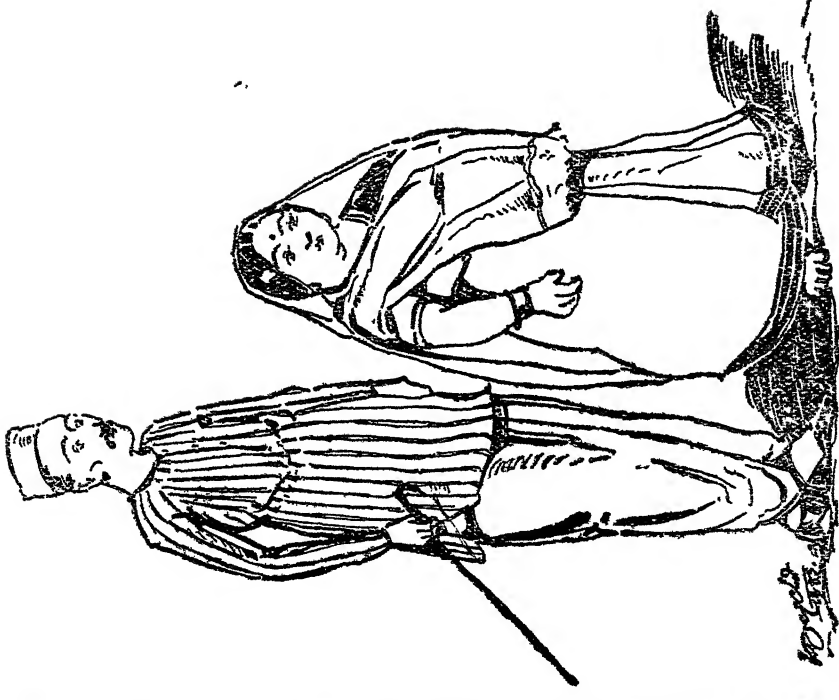


ये विंशति शताब्दि की विदुषी, सुषमा-सुरभित गात ।
वे मुचुडू गोबर-गनेस जी, करै न जानें बात !

वर्तमान समाज के कुछ अपूर्व जोड़े



श्रीमती लाठी सी लम्बी, पति जी कोल्हूराम ।
मानों गङ्गा और मदार की जोड़ी बनी ललाम ।



ये ताड़िका-सहोदर लम्बे, मरकट-वदन विशाल ।
वे मानों गठरी गैवार की, या सजीव फुटबाल ।

विश्व-रचना

[श्री० सत्यभक्त]



उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

इस सम्बन्ध में सबसे पहले एक सिद्धान्त समझ लेने की आवश्यकता है। संसार में किसी भी वस्तु की उत्पत्ति शून्य से नहीं हो सकती। हमको यह मानना ही पड़ेगा कि पृथ्वी, ग्रह तथा सूर्य आदि की रचना जिस उपादान से हुई है, वह अनादि काल से मौजूद है। हम केवल यही कल्पना कर सकते हैं कि सृष्टि-रचना के पूर्व यह सर्वथा अस्त-न्यस्त अवस्था में था और उसका प्रत्येक परमाणु एक दूसरे से असम्बन्धित रह कर शून्य आकाश में स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करता था। यह संसार के विकास की सबसे प्रथम और निम्न अवस्था है। ऐसी अवस्था दो मृत-पिण्डों के परस्पर टकराने से उत्पन्न होती है, जिसके परिणाम-स्वरूप केवल वे छिन्न-भिन्न ही नहीं हो जाते, वरन् पृथक्-पृथक् तत्वों के अणु भी नष्ट होकर एकाकार हो जाते हैं। इस प्रकार की एक घटना सन् १९०१ के फरवरी मास में देखने में आई थी, जब कि आकाश के उत्तरी भाग में दो मृत-पिण्ड छः सौ मील प्रति सैकण्ड के वेग से आपस में टकराए और उनसे बड़ी तीव्र अभिशिखा उत्पन्न हुई। इसके फल से कुछ ही महीनों में हमारे सौर-जगत के क्षेत्रफल से १५० गुना ह्याच अत्यन्त सूक्ष्म तत्व से परिपूर्ण हो गया। इस

घटना से हम इस सिद्धान्त पर उपनीत हो सकते हैं कि ये सूक्ष्म परमाणु ही जगत के आदि कारण हैं और उन्हीं से विश्व के छोटे-बड़े तथा विभिन्न प्रकार के समस्त पदार्थों की रचना होती है।

यह घटना एक और रहस्य पर भी प्रकाश डालती है। इससे विदित होता है कि जो प्राकृतिक शक्तियाँ इन पिण्डों के नाश का कारण हैं, उन्हीं शक्तियों के द्वारा फिर उनको नवजीवन प्राप्त होता है। इस रहस्य का उदाहरण हम अपने सांसारिक जीवन में भी देख सकते हैं, यद्यपि उसमें तथा विश्व-रचना की घटना में बाह्य दृष्टि से बहुत बड़ा अन्तर है। जब हमारे शरीरों की अधिक से अधिक वृद्धि हो चुकती है, तो धीरे-धीरे उनका हास होने लगता है और अन्त में नाश हो जाता है। अगर वे स्वयम् बिना किसी की सहायता के अपनी परम्परा को स्थिर रखना चाहें तो यह असम्भव है। अपनी जाति का अस्तित्व बनाए रखने के उद्देश्य से एक अनिवार्य नैसर्गिक प्रेरणावश उनमें से दो विभिन्न लिङ्ग (Sex) के प्राणी परस्पर संयुक्त होते हैं और इसके फल से एक नवीन प्राणी की उत्पत्ति होती है, जो जाति की शृङ्खला को स्थिर रखता है। यही विश्वव्यापी प्रेम, जो सांसारिक जीवन की धारा को प्रवाहित रखता है, जड़ समझे जाने वाले तत्व में पाया जाता है। इसी आकर्षण द्वारा शून्य आकाश में निरुद्देश्य चक्कर लगाने वाले दो मृत-पिण्ड परस्पर सहयोग करते हैं और इसके फल से उनके गर्भ में प्रचण्ड उत्ताप उत्पन्न होता है, जो उनके परमाणुओं को स्वतन्त्र करके समस्त दिशाओं में फेंक देता है तथा नवीन जगत की रचना आरम्भ हो जाती है। वास्तव में ये पिण्ड, जिनको हम धरातल पर पाए जाने वाले जीवन के अभाव से मृत समझ लेते हैं, सर्वथा जीवनी-शक्ति-रहित नहीं होते। उनके गर्भ में 'रेडियम'



के समान महाशक्तिशाली तत्व प्रचुर परिमाण में उपस्थित रहता है, पर अत्यन्त भारी आवरण के कारण वह निष्क्रिय अवस्था में पड़ा रहता है। जब दो पिण्डों के टकराने से यह आवरण भङ्ग हो जाता है, तो उस शक्तिशाली तत्व के सुप्रकाशित परमाणु उसी प्रकार चारों तरफ फैल जाते हैं, जैसे किसी बीजों से भरे फल के चिटकने पर बीज दूर-दूर जाकर गिर जाते हैं।

शून्य आकाश के एक भाग में सर्वत्र बिखरे हुए परमाणुओं (Electrones) का यह समूह ही, जो दूरदर्शक यन्त्र द्वारा हमको धुँएँ के बादल के रूप में दिखलाई पड़ता है, नवीन जगत् की आदि अवस्था है। यद्यपि किसी नर-तन-धारी ने इतनी आयु नहीं पाई है कि वह किसी विशेष पिण्ड के परमाणुओं में होने वाले क्रमशः परिवर्तनों को और उनसे स्थूल जगत् की उत्पत्ति को अपनी आँखों से देख सके, क्योंकि इन परिवर्तनों में लाखों-करोड़ों वर्षों का समय लगता है। पर आकाश-स्थित पिण्डों की संख्या अत्यन्त अधिक है और उनमें प्रत्येक अवस्था (Stage) के उदाहरण पाए जाते हैं। उनका क्रम से निरीक्षण करने से हम आसानी से पिण्डों में होने वाले परिवर्तन का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि जब दो पिण्डों की टक्कर से शून्य आकाश परमाणुओं से भर जाता है, तो कौन सी शक्ति उनका इस प्रकार सञ्चालन करती है जिससे उनके द्वारा विभिन्न तत्वों तथा स्थूल जगत् की उत्पत्ति होती है? इन परमाणुओं में एक ऐसी स्वाभाविक आकर्षण-शक्ति होती है, जिससे वे परस्पर मिल कर बड़े आकार में परिणत हो जाते हैं। अनेक परमाणुओं के मिलने से अणुओं की और उनके द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न छोटे-बड़े पदार्थों की रचना होती है। एक छेँटा सा पत्थर, जिसका बोझ केवल एक पैसे भर है, और हिमालय पहाड़, वे दोनों ही इन अणुओं से मिल कर बने हैं। इतना ही क्यों, आकाश में हम जितने सूर्य आदि ग्रह देखते हैं, जिनमें से बहुतों का आकार हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी से सैकड़ों हज़ारों गुना बड़ा है, वे सभी इन्हीं परमाणुओं द्वारा बने हैं। इस प्रकार वे परमाणु जो इतने छोटे हैं कि हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते, आकर्षण शक्ति के बल से इतना बृहद्

आकार धारण कर लेते हैं कि वह भी हमारी कल्पना से बाहर है। आरम्भ में इन परमाणुओं का समूह प्रकाशवान होता है और दूरबीन द्वारा वह चमकीले बादल के रूप में दिखलाई देता है। परन्तु जैसे-जैसे परमाणु एक-दूसरे से मिल कर घनीभूत होते जाते हैं तथा उनकी गति में कमी पड़ती जाती है, वैसे-वैसे ही उनका प्रकाश कम होता जाता है और अन्त में उसका दिखलाई पड़ना बन्द हो जाता है। परन्तु घनीभूत होने का कार्य बराबर जारी रहता है और आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से परमाणुओं का प्रत्येक समूह सङ्कुचित होने की चेष्टा करता रहता है। घनीभूत होने के कारण पिण्ड की गर्मी भी बढ़ती जाती है और कुछ समय के बाद उसके प्रभाव से वह जलती हुई आग का गोला बन जाता है। अब वह फिर चमकने लगता है, परन्तु इस चमक में तथा प्रारम्भिक अवस्था की चमक में, जब पिण्ड धुँएँ के रूप में होता है, बहुत अन्तर होता है। घनीभूत होने से अब पिण्ड उतनी शीघ्रतापूर्वक सङ्कुचित नहीं हो सकता, जितना कि धुँएँ की अवस्था में होता था। फल यह होता है कि धीरे-धीरे उसकी गर्मी कम पड़ जाती है। वह शून्य आकाश में जितनी गर्मी फँकता है, उतनी गर्मी उसके भीतर उत्पन्न नहीं होती, इस कारण वह क्रमशः ठण्डा होने लगता है। यह ठण्डा होने की क्रिया आरम्भ में ऊपरी सतह पर होती है। पिण्ड की अवस्था में परिवर्तन होते-होते ऐसा समय आता है, जब कि वायु-रूपी उपादान द्रव-रूप धारण कर लेता है। यह क्रिया प्रायः उसी भाँति होती है, जिस प्रकार हम अपनी पृथ्वी पर भाप से जल बनते देखते हैं। उस काल में प्रत्येक पिण्ड गैस और द्रव का गोला होता है; जिससे अग्नि की लपट निकलती रहती है। वर्तमान समय में हमारे सूर्य की यही अवस्था है और किसी समय हमारी पृथ्वी भी इसी दशा में थी।

यह कोई नियम नहीं है कि दो मृत-ग्रहों की टक्कर से जिस बादल के समान पदार्थ, जिसे 'नेबुला' कहा जाता है, की उत्पत्ति होती है, उससे केवल एक ही पिण्ड की उत्पत्ति हो। वरन् इस प्रकार की घटना के फल से एक सम्पूर्ण सौर-लोक की उत्पत्ति होती है। कभी-कभी इस प्रकार का नेबुला हज़ारों पिण्डों में बँट



जाता है और कभी केवल दस-बीस पिण्डों में। अंधेरी रात में हमको जो आकाश-गङ्गा दिखलाई पड़ती है, वह इस प्रकार के अनगिनती सूर्यों तथा उनके ग्रह और उपग्रहों से भरी हुई है। इस प्रकार के सौर-लोकों में मूल उपादान का एक बड़ा भाग केन्द्र-रूप से बीच में बना रहता है और शेष छोटे पिण्ड उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। इन पिण्डों का न तो कोई निश्चित आकार होता है और न केन्द्र से उनकी दूरी में किसी प्रकार का सामञ्जस्य पाया जाता है। बात यह है कि इन विभिन्न पिण्डों की उत्पत्ति दो पिण्डों की टूटकर से उत्पन्न होने वाली हलचल के कारण होती है और ऐसी हलचल की अवस्था में एकरूपता अथवा समानता की आशा रखना व्यर्थ है। यह भी आवश्यक नहीं है कि इन समस्त पिण्डों की भूमि-रचना एक सी हो अथवा उनमें एक प्रकार की उद्भिज और प्राणिज सृष्टि पाई जाती हो। परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक पिण्ड के अणुओं का सङ्गठन भिन्न प्रकार का होता है और उनसे ऐसे पदार्थों की उत्पत्ति हो सकती है, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

जब हमारी पृथ्वी गैस और जलते हुए द्रव पदार्थ का गोला बन जाती है, तो द्रव पदार्थ भीतरी गर्मी के जोर से वाष्प बन कर आकाश में उड़ जाता है और वहाँ से, ठण्डा होकर, मँह के रूप में पुनः पृथ्वी पर गिरता है। परन्तु भूमि की गर्मी के कारण वह शीघ्र ही फिर वाष्प रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह क्रिया निरन्तर बहुत बड़े परिमाण में जारी रहती है और इसके फल से धीरे-धीरे पिण्ड की गर्मी कम होती जाती है। आरम्भ में द्रव पदार्थ का, जो पिघले हुए लोहे की तरह जलता होता है, परिमाण कम होता है और भीतर की गैस उसे बार-बार छिन्न-भिन्न करके बाहर निकालती रहती है। परन्तु कुछ काल में द्रव पदार्थ का परिमाण बढ़ जाता है और वह फल के ऊपरी छिलके की भाँति समस्त पिण्ड को आच्छादित कर लेता है। इस छिलके के भीतर सर्वत्र उष्ण गैस भरी रहती है, जो कभी-कभी विशेष जोर पाने पर द्रव पदार्थ के पतले अंश को छिन्न-भिन्न करके बाहर निकल पड़ती है। जब कि वर्तमान समय में हमारी पृथ्वी के ठोस हो जाने और उसके ऊपर कई मील मोटा पत्थर और मिट्टी का

कठोर आवरण पड़ जाने पर भी अन्तरस्थ द्रव पदार्थ उसे तोड़ कर ज्वालामुखी के रूप में प्रकट हो जाता है, तो उस प्राचीन काल में, जब कि यह आवरण केवल द्रव रूप में था, ऐसी घटना नित्य ही होती रहती होगी, यह समझ सकना कठिन नहीं है। आरम्भ में यह बात असम्भव सी प्रतीत होती है कि वायु-रूपी पदार्थ से बना हुआ गोला द्रव पदार्थ के आवरण का भार अधिक समय तक सँभाल सके। इसका कारण यह होता है कि इस प्रकार के बृहदाकार गोले में ऊपरी आवरण का इतना अधिक दबाव पड़ता है, जिससे उसकी गैस को बहुत सङ्कुचित होना पड़ता है। इसलिए यद्यपि अतिरिक्त उष्णता के कारण गैस वायु-रूप में ही बनी रहती है, परन्तु वह द्रव की अपेक्षा भी भारी हो जाती है। फिर यदि द्रव पदार्थ का कोई भाग ठण्डक पाकर अधिक भारी हो जाता है, तो वह नीचे चला जाता है और वहाँ गर्मी पाकर फिर वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार पिण्ड के ऊपर जलते हुए द्रव पदार्थ का एक स्थायी आवरण बन जाता है। हमारी पृथ्वी एक समय इस प्रकार के द्रव पदार्थ के भीतर डूबी हुई थी, इसका प्रमाण हमको धार्मिक ग्रन्थों में पाई जाने वाली कथाओं से ही नहीं मिलता, वरन् ज़मीन को अधिक गहराई तक खोदने से भी इसकी पुष्टि होती है। वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा सिद्ध किया है कि पृथ्वी के प्रायः सभी पहाड़ों में ऐसे पत्थर पाए जाते हैं जो ज्वालामुखी से निकलने वाले लावा से बने हैं। इससे विदित होता है कि किसी समय समस्त पृथ्वी अवश्य ही लावा से आच्छादित होगी। इसमें भी सन्देह नहीं कि अब भी पृथ्वी का अन्तरस्थ भाग गैस के रूप में है और उसके ऊपर लावा भरा है। यह भीतरी भाग आज भी पृथ्वी के ऊपरी भाग के मिट्टी-पत्थर आदि की अपेक्षा भारी है। क्योंकि समस्त पृथ्वी का वज़न करने से वह लोहे के समान भारी सिद्ध होती है। पर मिट्टी और पत्थर आदि लोहे से हलके हैं, इसलिए स्वभावतः यह मानना पड़ेगा कि पृथ्वी के भीतर की गैस लोहे की अपेक्षा भारी है। दूसरी बात यह है कि जब हम पृथ्वी को खोदने लगते हैं तो प्रत्येक ३३ गज़ के पश्चात् एक डिग्री गर्मी बढ़ जाती है। इस प्रकार हिसाब लगाने से पृथ्वी



के केन्द्र में इतनी गर्मी का होना सिद्ध होता है कि उसमें कोई वस्तु गैस के सिवा और किसी रूप में स्थिर रह ही नहीं सकती। इन परीक्षाओं से भी हमको इसी निर्याय पर पहुँचना पड़ता है कि विश्व में अमण करने वाले पिण्डों का अन्तरस्थ भाग गैस के रूप में होता है।

जब पृथ्वी का द्रव आवरण कुछ और ठण्डा हो जाता है तो उसके ऊपर उसी प्रकार की मलाई सी जम जाती है, जैसा हम लावा की धारा के ठण्डा होने पर जमते देखते हैं। यह ठोस आवरण रवादार होने से लावा की अपेक्षा हलका होता है और उसके ऊपर उसी प्रकार तैरता रहता है जैसे बर्फ पानी पर तैरती है। यह सच है कि कुछ पदार्थ ठोस अवस्था में द्रव अवस्था की अपेक्षा भारी हो जाते हैं। ऐसे पदार्थ उसी प्रकार द्रव पदार्थ में डूब कर पुनः द्रव बन जायेंगे जैसा कि हम भारी द्रव पदार्थ के गैस में डूब कर गैस बन जाने के उदाहरण में देख चुके हैं। इस सिद्धान्तानुसार पृथ्वी के द्रव आवरण का ठोस आवरण की अपेक्षा भारी होना आवश्यकीय जान पड़ता है। ठोस पदार्थ के टुकड़े द्रव पदार्थ की लहरों में इधर-उधर बहते फिरते हैं और एक-दूसरे से सम्मिलित होकर धीरे-धीरे महाद्वीपों की सृष्टि करते हैं। इस अवस्था को प्राप्त होने पर विश्व के प्रत्येक पिण्ड का कुछ भाग चमकीला और कुछ धुँधला दिखलाई देता है। और चूँकि पिण्ड आकाश में निरन्तर चक्कर लगाता रहता है, इसलिए उसके ये चमकीले और धुँधले भाग क्रम से अन्य पिण्डों के सम्मुख आते रहते हैं। यदि ऐसे पिण्ड को बड़ी दूरी से देखा जाय, जितनी दूरी पर विभिन्न तारे उपस्थित हैं, तो उसका प्रकाश क्रम से घटता-बढ़ता दिखलाई देगा। प्रकाश का यह घटना-बढ़ना कुछ पिण्डों में नियमित रूप से होता है और कुछ में थोड़ा अन्तर पड़ता रहता है। जिनमें अन्तर पड़ता रहता है, उनका ठोस भाग अभी तक एक स्थान में स्थिर नहीं हुआ है, वरन् लावा की लहरों से इधर-उधर हटता रहता है। इसी कारण-वश कितने ही तारे कुछ समय के लिए उदय और कुछ समय के लिए अस्त होते रहते हैं। ऐसा होने के समय उनकी रोशनी घट जाती है और उनका साधारण रूप से आँख द्वारा दिखलाई पड़ना बन्द हो जाता है।

जब पिण्ड का ऊपरी भाग ठोस हो जाता है, तो उसका प्रकाश बहुत कम पड़ जाता है और उसके ऊपर धुँएँ और गैस के बादल छाए रहते हैं, जो या तो ठोस सतह से ही निकलता है अथवा सतह को तोड़ कर भीतर से प्रकट हो जाता है। समय-समय पर द्रव पदार्थ के जोर से ऊपरी सतह फट जाती है और एक बड़ा भूमि-खण्ड लावा से भर जाता है। यह लावा इतना अधिक होता है कि उसके सूखने में सैकड़ों-हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। हमारी पृथ्वी पर अब भी लावा की दो झीलें मौजूद हैं, जो ज्वालामुखी के 'क्रैटरों' के रूप में हैं। उनमें से एक अमेरिका के पास हवाई टापू में है और दूसरी सिसली (इटली) में। ये पृथ्वी पर की अनगिनती प्राचीन लावा की झीलों के अवशेष मात्र हैं।

जब तक पृथ्वी का ठोस आवरण स्थायी नहीं होता तब तक उसके छोटे-बड़े टुकड़े लावा की लहरों से इधर-उधर घूमते रहते हैं। ये लहरें कुछ तो सूर्य के इर्द-गिर्द पृथ्वी के घूमने से और कुछ ऊपर के पदार्थ के नीचे जाने तथा नीचे के पदार्थ के ऊपर आने से उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी ये लहरें आपस में टकरा कर ठोस पदार्थ के टुकड़ों को ऐसे वेग से धक्के मारती हैं कि वे एक जगह इकट्ठे होकर एक बड़े ढेर के रूप में हो जाते हैं और यदि उसी प्रकार बने रहते हैं, तो भूमण्डल की भली प्रकार रचना हो जाने पर पहाड़ों का रूप धारण कर लेते हैं।

इस प्रकार जब पृथ्वी की ठोस सतह कुछ स्थायी हो जाती है और लावा उसे पूर्णतया नष्ट नहा कर सकता तो ज्वालामुखी पर्वतों का युग आरम्भ होता है। समस्त भूमण्डल ऐसे पर्वतों से भर जाता है और उनसे लावा निकल-निकल कर पृथ्वी पर फैलता रहता है तथा वहीं जम कर ठोस आवरण को और भी पुष्ट करता रहता है। इन ज्वालामुखियों की अधिकता और संख्या का अनुमान हमको तब होता है, जब हम जानते हैं कि चन्द्रमा में, जिसका आकार हमारी पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटा है, एक लाख ज्वालामुखी हैं, जिनमें से प्रत्येक पृथ्वी में आजकल पाए जाने वाले ज्वालामुखियों से कहीं अधिक बड़ा है। परन्तु संख्या की अधिकता तथा पृथ्वी की सतह के अधिक इढ़ न होने के कारण उस युग के ज्वालामुखियों के फूटने का फल अधिक भयङ्कर नहीं होता और उससे वर्तमान समय की भाँति भूकम्प उत्पन्न नहीं होते।



अब जैसे-जैसे पृथ्वी की सतह मोटी होती जाती है, ज्वालामुखियों की संख्या घटती जाती है, पर उनके फूटने से बड़े ज़ोर का भक्का लगता है जिससे प्रायः अनेक नगर-ग्राम नष्ट हो जाते हैं। तो भी अब भूमण्डल पर ऐसा ज्वालामुखी शायद ही कोई बचा होगा, जिसका सम्बन्ध पृथ्वी के मूल द्रव-आवरण से हो। आजकल के ज्वालामुखियों का लावा प्रायः किसी छोटे भण्डार से, जो प्राचीन काल से विभिन्न स्थलों में एकत्रित हो गया है, आता है। ये भण्डार छोटे होने पर भी सैकड़ों मील के घेरे में फैले होते हैं और उनमें इतना लावा भरा होता है कि प्रति दिन ख़र्च होने पर भी वह बहुत वर्षों तक चल सकता है। इनके अतिरिक्त पृथ्वी के कितने ही प्राचीन ज्वालामुखी अब गर्म पानी के सोतों और 'गेसर्स' के रूप में परिवर्तित हो गए हैं।

हम बतला चुके हैं कि आरम्भ में किस प्रकार लावा की लहरों से ठोस आवरण के टुकड़ों के इकट्ठे हो जाने से पर्वतों की उत्पत्ति हुई। पर ये प्राचीन पर्वत वर्तमान समय में पृथ्वीतल पर दिखलाई नहीं देते, वरन् अधिकांश में बड़े-बड़े पर्वतों की नींव अथवा जड़ में पड़े हुए हैं। आजकल पर्वतों का जो भाग हमारे देखने में आता है, वह प्रायः बहुत काल पश्चात् पानी द्वारा बना है। पानी से बने पत्थरों और अग से बने पत्थरों में इतना अधिक भेद होता है कि एक साधारण मनुष्य भी उनकी पहिचान कर सकता है। आग से बने पत्थर जहाँ कणों अथवा रवों के रूप में होते हैं, पानी से बने पत्थर पतल पर पतल जम कर तैयार होते हैं। इसलिए वैज्ञानिकगण सहज में इस बात का पता लगा लेते हैं कि पहाड़ का कितना भाग पानी से बना है और कितना आग से।

संसार में पानी की उत्पत्ति तभी हो गई थी, जब गैस का द्रव रूप में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ था। पर उस समय वह पृथ्वीतल के बजाय वाष्प-रूप में वायु-मण्डल में अवस्थित था, क्योंकि पृथ्वी की सतह और कुछ दूर तक की हवा इतनी अधिक गर्म थी कि उसमें पानी के द्रव-रूप में ठहर सकने की सम्भावना ही न थी। इसलिए सम्भव है कि आरम्भ में हजारों वर्ष तक मेंह बरसते रहने पर भी उसकी एक बूँद भी पृथ्वीतल तक न पहुँची हो और वह गर्म हवा में पहुँचते-पहुँचते भाप बन कर उड़ गया हो। पर अन्त में जब

पृथ्वी के ठोस आवरण की बहुत सी गर्मी निकल गई तो उबलता हुआ पानी गर्मों में एकत्रित हो गया। अब पृथ्वीतल पर आग और पानी का भीषण द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ, जो अभी तक जारी है। पर इसमें पानी की बहुत-कुछ विजय हो चुकी है और हम वर्तमान काल में पृथ्वी की जो सुन्दर आकृति देख रहे हैं वह उसी की करामात है। गर्म पानी के गढ़े और झीलें धीरे-धीरे समुद्रों के रूप में परिवर्तित हो गए और इस समय उन्होंने भूमण्डल के अधिकांश भाग को आच्छादित कर लिया है। इस प्रकार हमारी पृथ्वी अब कई आवरणों से ढकी हुई है। उसका अन्तरस्थ भाग गैस के रूप में है। उसके ऊपर जलते हुए द्रव पदार्थ का आवरण है। इस द्रव पदार्थ को ठोस आवरण ने घेर रखा है। यह ठोस आवरण पानी से ढका हुआ है। पानी के चारों तरफ वायु का आवरण है। भूमण्डल के इस अद्भुत सङ्गठन को समझने के लिए यह जान रखना आवश्यक है कि इन विभिन्न आवरणों की गुरुता भीतर की तरफ क्रमशः अधिक होती जाती है।

समुद्रों की उत्पत्ति से प्राचीन पहाड़ों में बहुत परिवर्तन होने लगा। उनकी गर्म लहरों से उनका एक-एक अंश टूट कर पानी में मिलने लगा। इन समुद्रों का पानी खनिज पदार्थों से भरपूर था। जैसे-जैसे पानी की गर्मी कम पड़ने लगी, ये खनिज पदार्थ भी घनीभूत होकर नीचे बैठने लगे। फिर समय समय पर भूकम्प आदि प्राकृतिक उपद्रवों ने इन पदार्थों की तहों को उठा कर पहाड़ों की चोटी पर पहुँचा दिया। वहाँ मेंह के कारण वे फिर गलने लगे और उनका कुछ भाग तो पहाड़ों के अगल-बगल गिर कर जम गया और कुछ नदियों द्वारा फिर समुद्र में जा पहुँचा। पहाड़ के जिन आग्नेय-पत्थरों पर मेंह का प्रभाव न पड़ा उनको बर्फ ने तोड़-फोड़ दिया। इस प्रकार पानी के द्वारा पृथ्वी का ठोस भाग एक स्थान से दूसरे स्थान में परिवर्तित होने लगा और वृक्षों तथा जीवों के निवास योग्य मैदानों तथा घाटियों की उत्पत्ति हुई।

पृथ्वी के उस प्राचीन युग में, जिसमें महाद्वीपों, पहाड़ों और समुद्रों की रचना हुई थी, उसके चारों तरफ का वायुमण्डल इतना घनीभूत था कि उसमें होकर आकाश-स्थित अन्य पिण्डों का प्रकाश भीतर



नहीं आ सकता था। उस समय पृथ्वीतल पर जो कुछ प्रकाश था वह केवल ज्वालामुखियों और बहते हुए लावा का था। उस अवस्था में किसी जीवित प्राणी के अस्तित्व की सम्भावना न थी। उस समय वायुमण्डल ज्वालामुखियों के वज्र-निनाद से परिपूर्ण रहता था और हवा में कार्बोनिक एसिड गैस, जो जीवधारियों के लिए विष है, बहुत बड़ी मात्रा में पाया जाता था। यह सच है कि यह कार्बोनिक एसिड गैस वृक्षों के लिए जीवनाधार है, पर उनके अस्तित्व के लिए प्रकाश की भी आवश्यकता है, जिसका उस युग में अभाव था। सम्भवतः उस समय सूर्य का भी अस्तित्व न था, अथवा वह अपनी आरम्भिक दशा में अत्यन्त क्षीण रूप में चमकता था। कुछ भी हो उसकी किरणें पृथ्वी के घनीभूत वायुमण्डल को भेद सकने में असमर्थ थीं। हमको स्मरण रखना चाहिए कि जिस युग की बात हम कह रहे हैं, उसे व्यतीत हुए कम से कम पचास करोड़ वर्ष हो चुके होंगे। आकाश-स्थित अन्य सूर्यों के निरीक्षण करने से हम यह कह सकते हैं कि उस समय हमारा सूर्य अब से बहुत अधिक बड़ा, पर अल्प प्रकाशयुक्त अवस्था में था और उससे गर्मी भी बहुत कम निकलती थी। यद्यपि उस समय भी वह हमारे सौर-लोक का केन्द्र था और हमारी पृथ्वी निरन्तर उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाती थी, परन्तु उसका महत्व पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों के लिए कुछ भी न था। उस समय हमारी पृथ्वी में ही कार्बोनी गैस थी और वह स्वयं एक सूर्य के रूप में थी जिसका अन्त पास आता जाता था। उस समय न ऋतुओं का अस्तित्व था, न गर्म और ठण्डे भूभाग पाए जाते थे और न रात-दिन का कोई भेद था। इस युग को भूतत्त्वज्ञान 'आर्केइक' युग के नाम से पुकारते हैं। इसी युग में उन प्राचीन आग्नेय चट्टानों का निर्माण हुआ था जिनका जिक्र हम कई बार कर चुके हैं। ये चट्टानें भूमण्डल में सर्वत्र अत्यन्त गहराई पर पाई जाती हैं। वैज्ञानिकों ने अनेक स्थानों पर उनकी परीक्षा की। पर कहीं उनमें चैतन्य अथवा अचैतन्य जीवधारियों का चिह्न नहीं पाया जाता।

'आर्केइक' युग की ये चट्टानें कहीं-कहीं खनिज पदार्थों की पतली तह से ढकी हुई हैं। यह तह स्पष्टतः समुद्र के नीचे एकत्रित मिट्टी से बनी है। इन्हीं तहों में हमको सबसे प्रथम एक प्रकार के जीवधारी का पक्षर प्राप्त

होता है, जिसे अत्यन्त क्षुद्र श्रेणी का कीड़ा कहा जा सकता है। यह प्राणी वर्तमान समय में भूमण्डल पर पाए जाने वाले समस्त प्राणियों से भिन्न प्रकार का है और उस तरह के कीड़े अत्यन्त गहरे समुद्र में ही रह सकते हैं। इससे अगर हम यह अनुमान करें कि भूमण्डल पर जीवन का प्रथम आविर्भाव स्थल के बजाय जल में हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु प्रश्न होता है कि वहाँ जीवन-तत्व कहाँ से पहुँचा? इतना ही क्यों, प्रत्येक व्यक्ति को यह भी जिज्ञासा होगी कि इस भूमण्डल पर, जो कुछ समय पहले अग्नि का भीषण समुद्र बना हुआ था और जिसमें अत्यधिक उष्णता के कारण जीवन के किसी 'जर्म' (कीटाणु) का बच सकना असम्भव था, जीवन-तत्व का उद्भव कैसे हुआ?

इसके उत्तर में कुछ लोग कहेंगे कि भूमण्डल पर जीवन का उद्भव अपने आप हुआ है। पर यह उत्तर ऐसा नहीं है जिसे सब लोग सहज में मान सकें। वैज्ञानिकों के एक दल का मत है कि जब पृथ्वी की अवस्था इस योग्य हुई कि उस पर जीवधारियों का निर्वाह हो सके तो हवा, पानी और मिट्टी के रासायनिक संयोग से जीवों की उत्पत्ति स्वयमेव होने लगी। पर इस बात के मान लेने में कठिनाई यह है कि अचैतन्य अथवा मृत समके जाने वाले तत्व में चैतन्यता कहाँ से आई? सृष्टि के मूल उपादान में जो स्वाभाविक गति मानी गई है और रासायनिक परिवर्तन द्वारा उसके जो रूपान्तर होते हैं उनसे प्रकृति की अन्य घटनाओं का तो समाधान हो जाता है, पर चैतन्यता अथवा अनुभूति का गुण ऐसा है जिसकी उत्पत्ति गति द्वारा हो सकनी सम्भव नहीं जान पड़ती। कुछ जीवतत्त्व-विशारदों का कथन है कि संसार में कोई वस्तु मृत नहीं है और जीवन-तत्व सृष्टि के उपादान में आरम्भ से ही उपस्थित है। इस मत के अनुसार एक पर्यर में भी जान है और यदि उसे ठोका जाय तो वह इसे अनुभव करता है। पर उसका अनुभव करना अत्यन्त अपूर्व ढङ्ग का है। उसके कोई ऐसी इन्द्रिय नहीं है जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूति को प्रकट कर सके। इस सिद्धान्त के अनुसार पेड़ों में भी अनुभूति को प्रकट करने का साधन अत्यन्त अल्प है और इसलिए कुछ समय पूर्व तक उनको अचैतन्य माना जाता था।



वैज्ञानिकों के इस मत में केवल एक त्रुटि यह है कि जिस प्रकार इसे असत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता उसी प्रकार सत्य भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि मनुष्य को ऐसा साधन प्राप्त हो सकने की सम्भावना नहीं है जिसके द्वारा पथर में जीवन तत्व का निरक्षण किया जा सके, और इसलिए यह बात भी निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि उसे किसी प्रकार की अनुभूति होती है। उपर्युक्त मत के मानने वाले वैज्ञानिकों का कथन है कि विश्व की प्रत्येक वस्तु सरल से गूढ़ अथवा पेचीदा रूप ग्रहण करती जाती है और यह परिवर्तन विकास-सिद्धान्त के अनुसार बहुत धीरे-धीरे हुआ है। यह बात विश्व के पिण्डों, उन पर बसने वाले प्राणियों, चैतन्यता तथा मानवीय बुद्धि आदि प्रत्येक विषय में लागू होती है। पर इसके विपरीत कुछ लोगों का यह भी मत है कि जब यह पृथ्वी जीवधारियों के निवास योग्य ठण्डी हो गई तो एक चमत्कार अथवा करिश्मे द्वारा भूमण्डल पर जीवन-तत्व का उदय हुआ। क्योंकि यह स्पष्ट है कि जीवन-तत्व के 'जर्म' जलती हुई पृथ्वी में मौजूद न थे। इसलिए विश्व के समस्त विकास का आधार इस करिश्मे पर ही है। और सब घटनाएँ, जो इसके पहले और बाद में हुईं, किसी तरह समझी जा सकती हैं, यद्यपि वे भी अभी विवादरहित नहीं कही जा सकतीं।

ये तमाम बातें अनेकांश में धर्म-विश्वास की तरह जान पड़ती हैं। कोई भी पक्ष अपने मत को प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं कर सकता। सब बातों पर विचार करने के पश्चात् यह मानना पड़ता है कि सृष्टि के उपादान तथा उसमें निहित गति के समान चैतन्यता अथवा जीवन-तत्व भी अनादिकाल से मौजूद है। इसी तीसरे तत्व को मानने से विश्व-रचना की समस्या सुलभ सकती है। परन्तु यह तीसरा तत्व कोई आधिभौतिक अथवा अति प्राकृत (Supernatural) द्रव्य नहीं है। यद्यपि वह अन्य दो तत्वों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, परन्तु यह श्रेष्ठता वैसी ही है जैसे कि कोई कहे कि मस्तिष्क का केन्द्रीय स्नायु-मण्डल मांस-पेशियों के स्नायु-मण्डल से अधिक श्रेष्ठ है।

वास्तव में जीवन-तत्व की उत्पत्ति की यह कठिन समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि कुछ लोग यह समझ

लेते हैं, हमारी पृथ्वी विश्व के अन्य पिण्डों से सर्वथा अलग है और केवल इसी पर जीवधारियों की स्थिति है। पर जब हम यह जान लेते हैं कि विश्व के समस्त पिण्डों की रचना एक ही भाँति होती है और उनका मूल उपादान कारण भी समान है तो यह कल्पना कर सकना कठिन नहीं कि अन्य पिण्डों में भी जीवधारियों की स्थिति होगी। हमारे पास यह मान सकने का कोई कारण नहीं है कि ब्रह्माण्ड के अनगिनती पिण्डों में से केवल हमारी पृथ्वी को ही जीवधारियों को आश्रय देने का सौभाग्य प्राप्त है और अन्य तमाम पिण्ड जीवन-विहीन दशा में हैं। इस प्रकार यदि हम अन्य पिण्डों में जीवधारियों का होना स्वीकार कर लें तो फिर इसमें कोई शङ्का नहीं रह जाती कि जीवन-तत्व अनादि है और वह कुछ पिण्डों में सदा बना ही रहता है। ये जीवन के 'जर्म' जिनको 'बैक्ट्रिया' भी कहते हैं इतने सूक्ष्म होते हैं कि जब वे हवा द्वारा अधिक ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का भी उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। यह परीक्षण द्वारा सिद्ध हो चुका है कि ये 'बैक्ट्रिया' केवल प्रकाश के दबाव से ही एक पिण्ड से दूसरे पिण्ड में पहुँच जाते हैं। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि ये 'बैक्ट्रिया' और अन्य उच्चकोटि के इन्द्रिय-युक्त पदार्थों के 'जर्म' भी बिना किसी च्छति के शून्य आकाश में पाए जाने वाले शीत को सहन कर सकते हैं और अन्य पिण्ड में, जिसकी प्रकृति उनके पिण्ड से सम्बन्ध रखती हो, पहुँच कर विकसित हो सकते हैं। इस प्रकार हमको यह मान सकने में कोई कठिनाई नहीं जान पड़ती कि जीवन-तत्व के 'जर्म' एक लोक से दूसरे लोक में पहुँच कर वहाँ जीवन की सृष्टि किया करते हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे यों भी कह सकते हैं कि आकाश से पृथ्वी पर जीवन-तत्व मेंह की तरह बरसता है। यह घटना सदैव होती रहती है और आज भी हो रही है। इस प्रकार के अन्य लोकों से आए हुए जीवन तत्व के 'जर्म' हमारे आस-पास की हवा में प्रचुर परिमाण में पाए जाते हैं।

जब तक पृथ्वी की सतह और आस-पास का वायु-मण्डल अत्यधिक गर्म था तब तक ये 'जर्म' नष्ट हो जाते थे। धीरे-धीरे वे हवा के ऊपरी भाग में जीवित रहने लगे। वहाँ से वे मेंह के साथ नीचे आते थे। पर



उस समय भी पृथ्वी की सतह इतनी गर्म थी कि उनके विकसित होने की कोई सम्भावना न थी। पर धीरे-धीरे समुद्र के पानी की गर्मी घटने लगी, और उसका तल विशेष रूप से ठण्डा हो गया। तब उन जीवन-कणों को विकसित होने का अवसर मिला और सबसे पहले समुद्र के सबसे गहरे भाग में जीवों का आविर्भाव हुआ। जैसा हम उस काल की चट्टानों में पाए जाने वाले कङ्कालों से पता लगा चुके हैं, ये जीव जल में रेंगने वाले कीड़ों की तरह थे और बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते थे। उनकी क्रिस्में भी अधिक न थीं। उस काल की चट्टानों में वे बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। समुद्र के भीतर प्रकाश के अभाव से वे सब बिना नेत्रों के होते थे।

जब हम इस कीड़े वाले पत्त के बाद के पत्तों की जाँच करते हैं, तो उनमें क्रमशः हमको ऐसे प्राणियों के कङ्काल मिलते हैं, जो क्रमशः एक-दूसरे से अधिक इन्द्रिययुक्त हैं। ये प्राणी भिन्न-भिन्न आकृति और आकार के थे। जब हम यह स्वीकार करते हैं कि एक समय था, जबकि पृथ्वी पर जीवधारियों का अस्तित्व ही न था, तो हमको स्वभावतः यह मानना होगा कि उनकी वृद्धि अथवा विकास क्रमशः हुआ। यह परिवर्तन का कार्य किस प्रकार सम्पन्न हुआ, यह बात दूसरी है। हो सकता है कि डार्विन के मतानुसार जीवन-संग्राम में अपना अस्तित्व स्थिर रखने के लिए नीची श्रेणी के प्राणी ऊँची श्रेणी के रूप में परिवर्तित होते गए अथवा लैमार्क के मतानुसार पृथ्वी की प्राकृतिक अवस्था के बदलते जाने से उनमें उसी के अनुसार परिवर्तन होता गया।

कुछ समय पश्चात् स्थल का उत्ताप भी कम हो

गया और कुछ पौधे उत्पन्न होने लगे। थोड़े ही काल में उन्होंने महाविशाल जङ्गलों का रूप धारण कर लिया। क्योंकि उस समय वायु-मण्डल में कार्बोनिक एसिड गैस की अधिकता थी, जिसे ग्रहण करके पौधों की इतनी अधिक वृद्धि हुई कि आज उनसे तुलना कर सकने लायक पेड़ों और बेलों का कहीं भी मिल सकना असम्भव है। प्राचीन काल के ये जङ्गल प्रायः दलदल की भूमि में उगे हुए थे और अन्त में उसी में मिल कर उन्होंने पत्थर के कोयले का रूप धारण कर लिया, जिसे खानों से खोद कर आज हम अपना समस्त कारबार चला रहे हैं। इन वृक्षों में किसी तरह के फूल नहीं खिलते थे, क्योंकि रक्त-विरक्ते फूलों को सूर्य की उज्ज्वल धूप की आवश्यकता पड़ती है, जबकि उस काल में धूप बहुत मन्द रूप में थी। इन जङ्गलों में कई तरह के कीड़े भी पाए जाते थे, जिनमें से कुछ दीमकों की तरह थे।

इसके पश्चात् पृथ्वी के धरातल तथा जलवायु की अवस्था जैसे-जैसे परिवर्तित होकर प्राणियों के जीवन-निर्वाह के अधिक उपयुक्त होती गई, उस पर नए-नए जीवधारियों का आविर्भाव होता गया। यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ, इसके सम्बन्ध में विभिन्न लोगों की विभिन्न सम्मतियाँ हैं। पर इसे प्रायः सभी विचारवान व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि भूमण्डल पर किसी प्राणी का आविर्भाव, चाहे वह मनुष्य हो अथवा पशु, अकस्मात् अथवा अलौकिक ढङ्ग से नहीं हुआ। यद्यपि विकास सिद्धान्त का आधार भी बहुत कुछ अनुमान पर है, पर तो भी उसके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण पाए जाते हैं। पर संसार और प्राणियों की उत्पत्ति दैवी रीति से मानना केवल अन्ध-श्रद्धा द्वारा सम्भव हो सकता है।

अनूठे-अगुआ !

[श्री० 'रसिकेन्द्र']

पीटेंगे अवश्य लोक; राह हो भले न ठीक, अपना ही तानेंगे समाज में विराज के।

कञ्चन की ओट में प्रपञ्च करता है चोट; कौतुक विचित्र हैं प्रपञ्ची पञ्चराज के।

'रसिकेन्द्र' उनका सुधार कर सके कौन ? दम्भ से मढ़े जो बने खम्भ लोकलाज के।

भूटे किए शिक्षा-मन्थ, रुठे हैं सरस्वती से; अगुआ अनूठे कहलाते हैं समाज के।

मेरे जीवन की प्रकाश-रेखा,

किस अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से हम एक-दूसरे के जीवन में इतने निकट आ गए, यह मैं कैसे बताऊँ ? आज तो यह कहने के लिए बैठा हूँ कि तुमसे अलग होकर, मैं कहाँ का कहाँ जा पहुँचा। हमारा संयोग बहुत ही थोड़े समय का था, और वह समय कब बीत गया, यह तब मालूम हुआ जब हम एक-दूसरे से अनिश्चित काल के लिए अलग हो गए। इसलिए मैं सोचा करता था :—

जी भर कर मिल लो आज, ठिकाना कल का ?
युग का वियोग संयोग एक ही पल का।

हम लोग अनेक बार मिले। जी भर कर खूब मिले, परन्तु फिर भी हसरत बाज़ी ही रही, सचमुच जी न भरा। क्यों ? इसलिए कि :—

युग-युग का वियोग,
पल भर का प्रियतम का सहवास।
तृपित नयन, मन तृपित श्रवण,
रह गई अपूरन आस।
सखि री प्रचल प्रेम की प्यास।
तृप्ति असम्भव यहाँ, सदा है,
मृग-वृष्टा का त्रास।
बुझ न सकी है, बुझ न सकेगी,
सजनि प्रेम की प्यास॥

सचमुच आज तुमसे सैकड़ों मील दूर बैठा हुआ इस 'प्रेम की प्यास' को अनुभव कर रहा हूँ। मैं युवक हूँ। मेरा हृदय उमड़ों से भरपूर है। मेरा जीवन एक विचित्र प्रकार की मस्ती से ओत-प्रोत है, ऐसी मस्ती से जो संसार के कष्टकाकीर्ण पथ में दुःख, शोक, कलह-क्लेश के विषैले वातावरण से प्रतिक्षण घिरा रहने पर भी, अपनी धुव में मस्त है। मेरे नीरस जीवन में प्रवेश कर, तुमने जो ग़ज़ब की बिजली की चमक दे दी, उससे

मेरा दीवानापन, अपनी साधारण सीमा को पार कर बड़े वेग से आगे बढ़ा जा रहा है। अब तो मेरे जीवन की सचमुच दूसरी ही दुनिया बन रही है, उस दुनिया में केवल तुम्हारी ही मञ्जुल मूर्ति अपने स्वाभाविक रूप में, थिरक-थिरक कर अठखेलियाँ करती हुई दिखाई पड़ती है। मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए ? आत्म-विस्तृति का आनन्द सचमुच अपना सानी नहीं रखता।

और मैं ? मैं कहाँ हूँ ? इसे क्या बताऊँ ? कभी अचानक आकर, अगर जी चाहे तो मेरी वास्तविक दशा देख लेना।

जौ वाके तन की दसा, देख्यौ चाहत आप।
तौ बलि नैकु बिलोकिए, चलि औचक चुपचाप॥

कल रात को तुम्हें याद करते-करते, रीत-रीते क्षण भर के लिए आँख भपकी। कहाँ ? स्टेशन पर। अचानक सामने आकर तुमने हाथ पकड़ कर आवाज़ देते हुए कहा—कैसी तबियत है ?

आधी रात—ठीक बारह बजे तुम स्टेशन पर कैसे आ गई ? कई मिनट तक सोचता रहा, क्या स्वप्न देख रहा हूँ ? परन्तु तुम्हारी मञ्जुल मूर्ति सामने थी। मैंने कहा—इस समय तुमने इतना कष्ट क्यों उठाया ? तुम बोलीं—आपकी तबियत खराब है। बीमारी की दशा में तो ग़ैर को भी देख लेते हैं ! मैंने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया और अपने भाग्य की सराहना की।

ऐ दिल, कहाँ खबर है शबे वस्ते यार की।
कुछ बेखुदी की याद भी आती नहीं मुझे॥

ओह ! क्या जीवन है। यही जीवन है। तुम्हारी याद में तड़पने में जो मज़ा है, वह अब कहीं नहीं है। मैंने तुम्हें प्यार किया, तुम मिल गई ! चाहे बहुत थोड़े ही समय के लिए सही। तुम्हारे शब्दों में सचमुच ईश्वर ने मेरी इच्छा पूरी कर दी ! परन्तु यह तुम्हारा भ्रम है कि इससे मुझे शान्ति मिल गई ! अरे, शान्ति ? नहीं,



जीवन में प्रति क्षण की बेकरारी पैदा हो गई ! जीवन में ज्वार आ गया। रोम-रोम एक विचित्र प्रकार की हल-चल से ओत-प्रोत हो गया। नस-नस में दीवानापन समा गया।

मिथ्या आचार-विचार, दम्भ, स्वार्थ, मूढ़ता और अन्ध-विश्वासों के गहरे गर्त में गिरी हुई बेवकूफ दुनिया सचमुच मेरे ऐसे दीवानों को देख कर हँसेगी और उपेक्षा की दृष्टि से देखने की मूर्खता करेगी। परन्तु इससे क्या, मेरी मस्ती से भरी हुई हस्ती का कोई मूल्य ही नहीं है ?

दीवानापन है पाप ? नहीं जीवन है, ज्ञानी का केवल ज्ञान व्यर्थ क्रन्दन है। ममता पर निशिदिन हँस-हँस कर धुल-धुल कर मरने वाले का यहाँ मृत्यु ही धन है। कामना कसक है और तृप्ति सूनापन, हँसना ही तो है मृत्यु, रुदन है जीवन।

पता नहीं, तुम मेरे इन विचारों से कहाँ तक सहमत होगी। अरे, मैं कैसी भूल कर रहा हूँ ! कहाँ तुम और कहाँ मैं ? तुम तो कह चुकी हो कि अब तो मेरे सम्बन्ध की बीती हुई बातों की तुम्हें याद भी नहीं आती। नित्य नए मित्रों के साथ सैर-सपाटा करने और आमोद-प्रमोद में निमग्न रह कर अपने आपको सुखी और सन्तुष्ट रखने की लालसा में तुम व्यस्त हो। तुमने यह कहा भी था कि अगर मेरी तरह तुम भी खाना-पीना छोड़ कर बीती हुई बातों की याद में पड़ी रहो, तो मेरी तरह तुम्हारा स्वास्थ्य भी नष्ट हो जायगा। इस दशा में, फिर भला मैं क्यों तुमसे यह आशा करूँ कि तुम भी धुल-धुल कर मेरे लिए प्राण दे दो ? मैंने तुम्हारे लिए क्या किया है, जो तुमसे किसी प्रकार की आशा रखूँ। तुमसे बिना किसी प्रकार की आशा रखे, मैं तो केवल अपनी ओर देखता हूँ। और आज, केवल अपने ही मनोभाव व्यक्त करने की धुन में दीवाना हो रहा हूँ। तुम्हारे मनोभावों पर दृष्टिपात करने का तो समय ही निकल गया।

जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ जाओ, और जो इच्छा हो, वह करो। पूरी आज़ादी है। कोई खटका नहीं है। परन्तु ज़रा आँखें खोल कर चलना, यही

कहना है। तुम्हारी पुण्य-स्मृति की प्रकाश-रेखा के सहारे मेरे सामने मेरा सुनहला आदर्श स्पष्ट चमक रहा है। भगवान करे, तुम्हारी मधुर स्मृति ही सदा के लिए, मुझे आत्म-विस्मृति के अनिर्वचनीय आनन्द में डुबा कर दीवानों की उस दुनिया में पहुँचा दे, जहाँ सांसारिक वासना, पारस्परिक स्वार्थ, राग-द्वेष, आदि विकारों की गन्ध तक न हो। जहाँ आज की दुनिया की पाप-पुण्य की कोई सङ्कुचित सीमा न हो और जहाँ पहुँच कर मेरा मन और मस्तिष्क नहीं, रोम-रोम सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठ कर उस प्रकाश-पुञ्ज की तेजोमय प्रभा से प्रकाशित होकर जगमगा उठे, जिसकी प्रभा इस इरय-जगत के कण-कण में व्याप्त है।

हाँ, तो सचमुच मेरी और तुम्हारी दुनिया, मेरा और तुम्हारा दृष्टिकोण बिल्कुल अलग है। यह बात मैं आज, बहुत दिन के बाद जान पाया हूँ। यदि पहले से पता होता कि तुम्हारी मनोवृत्ति, तुम्हारा दृष्टिकोण, तुम्हारे जीवन का उद्देश्य, उस हिन्दू-सभ्यता, शिक्षा और संस्कृति के विपरीत है, जो किसी भी हिन्दू नारी के लिए गर्व से मस्तक ऊँचा उठाने का कारण हो सकती है, तो सचमुच मैं आरम्भ ही से तुमसे बहुत समझ-सौच कर मिलता और द्वासकर प्रेम का नाम तो बहुत सावधान होकर लेता। परन्तु अब क्या करूँ ? उस समय तो तुम्हें देखते ही आँखें बन्द हो गई थीं। शाकिल हो गया था।

तुम्हें देखा और मैं तुम्हारा हो गया। और तुम ? सच बात तो यह है कि उस समय तुम भी मेरी हो गई। क्या तुम आज इस सचाई से इन्कार करने का साहस कर सकती हो ?

ऐ निगाहे यास यह क्या रङ्गे महकिल हो गया, मैंने जिस दिल की तरफ देखा मेरा दिल हो गया।

जो हो गया, सो हो गया। मुझे उसके लिए तनिक भी अफ़सोस नहीं है, इसलिए कि प्रेम का अङ्कुर अपने स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हो गया। उस समय, जब कि मेरे मन में तुम्हारे दर्शन से प्रेम का अङ्कुर फूट निकला, तब उसमें कोई विकार नहीं था। और स्वार्थ ? स्वार्थ की तो उसमें गन्ध तक नहीं थी। हाँ, उसका आरम्भ हुआ है वासना से। किन्तु वासना की भट्टी में गिर कर



भी उसका अन्त नहीं हुआ। वासना पूरी होने पर ही उसका ख़ात्मा नहीं हो गया। यही मेरे प्रेम की ख़ूबी है। सांसारिक वासना की मनोरम बाटिका में उसका जन्म हुआ, किन्तु वह वहाँ पहुँच कर सदा के लिए विलासिता के भँवर में नहीं फँसा। मेरे हृदय का वह प्रेम, वासना की अनुराग-बाटिका से निकल कर बीड़ वन के दुर्गम पहाड़ी पथ से मुझे बरबस उस ओर लिए जा रहा है, जहाँ पहुँच कर जीव अपने चरम लक्ष्य को पाकर लीलामय के अनन्त रूप में लय हो जाता है।

यदि तुम्हारे अन्दर हृदय हो; वह हृदय, जो दूसरों के दर्द की पीड़ा अनुभव करता है; वह हृदय, जो दूसरों को दुःख में देख कर, अपना सब कुछ देकर भी उसकी व्यथा को दूर कर देने के लिए एकदम तड़प उठता है, तो सचमुच आज मेरे निर्मल और निष्कपट प्रेम की भाँकी देख लो। अब वहाँ वासना की गन्ध तक नहीं है। सांसारिक कामना, स्वार्थ-लिप्सा और वासना की कालकोठरी से बाहर आकर मेरा प्रेम अब अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हो रहा है। यह सब होते हुए भी, न जाने क्यों, तुम्हें प्रतिक्षण देखते रहने की उत्सुकता वैसी ही बनी हुई है। यदि मेरे प्रेम में कोई स्वार्थ है, तो केवल इतना ही है—

दर्शन के प्यासे नयन, लगे तुम्हारी ओर।

नाच रहा नटराज मन, बाँध प्रेम की डोर ॥

प्रेम ! ऐ मेरे हृदय का सार प्रेम !

प्रेम की हाट का पथ बड़ा दुर्गम है। इस हाट में साधारण आदमी का काम नहीं। यहाँ तो वही आदमी आवे, जो अपने प्राणों की बाज़ी लगा सके। जो हर समय अपना सर हथेली पर लेकर रह सके। क्यों ? इसलिए कि प्रेमी को अपने आदर्श को पाने के लिए, प्राण देकर भी उसका पूरा मूल्य चुकाना पड़ता है। स्वार्थ और छल-प्रपञ्चों से भरे संसार के बाज़ार में प्रेम ऐसे दुर्लभ और अनमोल रत्न को ख़रीदने की इच्छा करने वाले लोग याद रखें—

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।

सीस काटि मुँह में धरै तब पैठे इहि माहिं ॥

सीस काटि मुँह में धरै तापर राखे पाँव।

दास कबीरा यों कहै ऐसा होइ तो आव ॥

इस दशा में प्रेम करना कोरा मज़ाक़ नहीं है। मैंने बहुत दिन पहले एक पत्र में तुम्हें उक्त लाइनें लिख कर, प्रेम के वास्तविक आदर्श की ओर सज्जित किया था। मेरा यह सब लिखने का मतलब केवल यही था कि तुम युवती हो, प्रेम के नाम पर यौवन की उमङ्गों में कहीं बह न जाओ। संसार-सागर की उताल तरङ्गों में होकर, अपनी जीवन-नौका को सही-सलामत पार ले जाना अत्यन्त कठिन है। और फिर, जिसने प्रेम के कूचे में अपना क्रदम रख दिया तो उसने सचमुच अपने लिए बरबस मृत्यु-देवी को अपने निकट बुला लिया। जो मौत से घबड़ाता हो, जिसे दुनिया के राग-रङ्ग में फँस कर उसका क्षणिक मज़ा लूटना हो, वह सब कुछ करे, पर प्रेम के कूचे में क्रदम हर्गिज़ न रखे ! इसलिए कि प्रेम की हाट में तो चारों ओर यही ध्वनि सुनाई पड़ती है—

चातक से सीखो तड़प-तड़प मर जाना,

सीखो पतङ्ग से निज अस्तित्व भिटाना।

वह ज़माना चला गया, जब लोग मधुकर के प्रेम के गीत गाते हुए नहीं अघाते थे। आज की दुनिया तो बहुत आगे बढ़ गई है। आज की दुनिया में, कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं, जिनका प्रेम अब वासना पूरी करने का साधन नहीं रह गया है। वे अब प्रेम को सांसारिक कामना और जीवन को सर्वनाश की भट्टी में भोंकने वाली वासनाओं के क्षणिक आनन्द से जँचा उठा कर, उस अनिर्वचनीय आनन्द-सागर में निमग्न कर देना चाहते हैं, जो अपने विशुद्ध रूप में निस्पृह सेवा, त्याग और बलिदान की भावनाओं से ओत-प्रोत है और जहाँ प्रतिक्षण यह आनन्दमयी प्रतिध्वनि गूँजा करती है—

मधुकर क्या जानें प्रेम, प्रेम है पीड़ा,

पीड़ा है अविकल त्याग, सौख्य की ब्रीड़ा।

कलिका का ले सर्वस्व नष्ट कर उसको,

उड़ जाने ही में है मधुकर की क्रीड़ा।

रस में मिल जाना ही है रस का पीना,

जो मिट न सका वह नहीं जानता जीना।

×

×

×

लेना पल भर का, युग-युग भर का देना,

निज का देना ही है जीवन का लेना।



बाजार उठ रही और दूर जाना है,
जितना बन पावे, कर लो लेना देना ।
उर की लाली से मुख की कालिख धो लो,
सर आज हथेली पर है बोली बोलो ।
यह खेल नहीं है, प्राणों का विक्रय है,
जीवन पर भिट-भिट जाओ, किसका भय है ?

सचमुच प्रेम-पन्थ ऐसा ही है । वे लोग जो मधुकर की तरह कली-कली का रस लेने की अभिरुचि रखते हैं, बेचारे नहीं जानते कि वास्तविक प्रेम क्या चीज़ है । मधुकर की प्रवृत्ति आज युवक और युवतियों दोनों ही के हृदयों में घर कर रही है । यह प्रवृत्ति देश और समाज के लिए बहुत ही खतरनाक है । मैं आज इस ओर से तुम्हें बहुत सावधान किए देता हूँ । यदि तुम्हारे अन्दर इतना साहस नहीं है कि प्रेम के कण्टकाकीर्ण मार्ग में, जीवन के अन्तिम क्षण तक, मेरे साथ एक भाव, एक ही उद्देश्य और एक ही साधना में तल्लीन रह कर चल सको, तो मुझसे स्पष्ट कह दो, मैं अपना रास्ता पकड़ूँगा । मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और जीवन के अन्तिम क्षण तक उसे निबाहूँगा । परन्तु मेरा प्रेम निरर्थक, आदर्शहीन और महज़ कामुकता और विलासिता का साधन ही नहीं है । मैं स्वयं न तो मधुकर बन कर कली-कली पर मँढ़राने और उसका रस लेकर सदा के लिए उसे नष्ट कर देने का क्रायल हूँ, और न एक क्षण के लिए भी यह सहन कर सकता हूँ कि तुम हिन्दू नारी के—उस हिन्दू नारी के, जो अपने सतीत्व का मूल्य प्राणों से भी अधिक समझती है—उज्ज्वल और सुनहले आदर्श को तिलाञ्जलि देकर, तितली के रूप में आज एक युवक के साथ मौज उड़ाती हुई उड़ती फिरो, तो कल ही दूमरे के । मैंने तां कभी स्वप्न में भी अपने और तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए यह निन्दनीय ढङ्ग अङ्गित्यार करने की कल्पना भी नहीं की । जिस क्षण तुम्हारे अन्दर यह निन्दनीय भाव आवे, उसी क्षण—हाँ, उसी क्षण, भगवान करे, हमारे जीवन का भी अन्त हो जाय !

जिस दिल में किसी के लिए एक बार प्रेम की आग सुलग उठी, वह दिल मधुकर नहीं, पतङ्ग बन सकता है । प्रेमी की तो बिल्कुल दूसरी ही दुनिया हो जाती है,

प्रेमी के सामने तो दीप-शिखा पर पतङ्ग के मर मिटने का आदर्श ही हो सकता है । अपनी प्रेमिका को छोड़ कर, कोई दूसरी सूरत तो सच्चे प्रेमी के दिल में समा ही नहीं सकती । प्रेमी तो इस दुनिया से अलग, बिल्कुल एक दूसरी ही दुनिया में जाकर बसेरा ले लेता है ।

जो लोग हैं किसी की तमन्ना लिए हुए ।

दुनिया से वह अलग हैं एक दुनिया लिए हुए ॥

तुम कहोगी कि ऐसा प्रेम भी क्या, जो प्रेमी अपनी प्रेमिका की याद में तड़प-तड़प कर मर जाय ! परन्तु क्या तुमने कभी स्वप्न में भी सोचने की तकलीफ़ उठाई है कि आदर्श के लिए मर मिटना, मृत्यु नहीं, बरिक् सचमुच जीवन है ।

खाँके-परवानः से आती हैं सदाँ पैहम ।

ज़िन्दगी है ग़मे दिलबर मे फ़ना हो जाना ॥

अपने प्यारे के शम में मर मिटने का नाम ही ज़िन्दगी है, इस बात का वास्तविक रहस्य भला आज-कल मधुकर और तितलियों के रूप में प्रेम का अभिनय करने वाले नादान लोग क्या समझें ? प्रेम का यह सुनहला आदर्श तो उन्हीं लोगों को अपनी ओर खींच सकता है, जिनके अन्दर मनुष्यता है, वास्तविकता है, सच्चाई है, और है वह दर्द-भरा दिल, जो दूसरों की पीड़ा को दूर करने की पवित्र साधना में तड़प उठता है, और अपना सब कुछ देकर भी, अपनी साधना पूरी करके ही विश्राम लेता है ।

एक दिन, जबकि अपने घरेलू पचड़ों से तङ्ग आकर मैंने तुम्हारे सामने कहा कि मैं अपने साथी, तथा सारे परिवार की चिन्ता छोड़ कर मर जाऊँ, उस समय मेरी व्यथा का अनुभव कर तुम रो पड़ीं । तुम फूट फूट कर रोने लगीं, इसलिये कि मैं मरने की बात सोच रहा हूँ, और अब मेरा सारा परिवार ही उजड़ जायगा ! मैंने मन में सोचा कि तुम्हारे अन्दर सचमुच ईश्वर ने वह दर्द भरा दिल दिया है, जो तुम मेरी व्यथा को अनुभव कर, उसके दूर करने में सहायता कर सकोगी । तुम्हारे उमड़ते हुए आँसुओं के पारावार को देख कर मेरी व्यथा बहुत कुछ शान्त हो गई थी । परन्तु आज, जबकि तुम मुझे खुला चुकी हो, मेरे दुःखी दिल का दर्द दूर करने के लिए, तुम मेरे पास क्यों आओगी ? अब इस दर्द



की दवा करने कौन आवे, जिसका कारण तुम स्वयं ही बन गई हो ?

जो कुछ हो, मेरे मन में तो केवल एक ही बात बसी हुई है—

“Trust love even if it brings sorrow,
D. not close up your heart.”

अर्थात्—“प्रेम पर विश्वास करो, अगर यह दुःख ही दुःख लावे तो भी अपने हृदय-प्रदेश का द्वार बन्द मत करो।”

अब तो मैंने यही ठान लिया है कि जीवन के अन्तिम क्षण तक तुम्हारे प्रेम की मादक मदिरा में सराबोर रहूँगा, परन्तु तुमसे कुछ न कहूँगा। तुमसे कुछ चाहूँगा भी नहीं। अब केवल तुम्हारे प्रेम की पुनीत साधना में निमग्न रह कर अपना जीवन बिताऊँगा। सांसारिक प्रलोभनों और तुम्हारी निन्दा-स्तुति से सदा दूर रहूँगा। इस बात की इच्छा भी न करूँगा कि मैं तुम्हें जीवन-संश्राम में पार होने के लिए कुछ काम की बातें सिखा दूँ। तुम स्वयं अपना भला-बुरा समझती हो। चाहो तो, अपना जीवन बना लो, चाहो तो उसे पशु से भी गया-बीता बना कर नष्ट कर डालो। मैंने तुम्हारे या किसी के भी जीवन के बनाने का ठेका थोड़े ही लिया है ? यह इसलिए कि एक बात मैंने केवल तुम्हारे भले के लिए कही थी, किन्तु तुमने बड़े गर्व से उसकी उपेक्षा करते हुए कहा—“यदि आप मेरी ज़रूरतें पूरी नहीं कर सकते, तो मैं बाहर के लोगों से क्यों न पूरी करा लूँ ?” क्या खूब ! अब, इसके बाद केवल तुमसे मेरा एक ही नाता है। वह है प्रेम का। हृदय का सम्बन्ध है। तुम्हारी ओर से नहीं, न सही। तुम तो अपने जीवन का सर्वनाश करने वाली ज़रूरतों के फेर में पड़ कर उसे भुला ही चुकीं। खुल कर तुमने मुझसे कह भी दिया कि तुम मुझे भूल गई हो। इस दशा में अब तुम्हें मुझसे कुछ भी कहने की गुंजाइश नहीं रह गई। अब तो केवल मेरी ओर से, मेरे हृदय का प्रेम-सम्बन्ध रह गया है। मेरे सामने अब उस निर्मल प्रेम का सलिल-सागर है, जिसमें डुबकी लगाते ही

मानव-जीवन कुन्दन के समान दमक उठता है और भूतल से बहुत ऊँचा उठ कर स्वर्गीय राज्य में विचरण करता है।

“Humble Love,

And not proud reason keeps the door
of heaven,

Love finds admission where proud
science fails.”

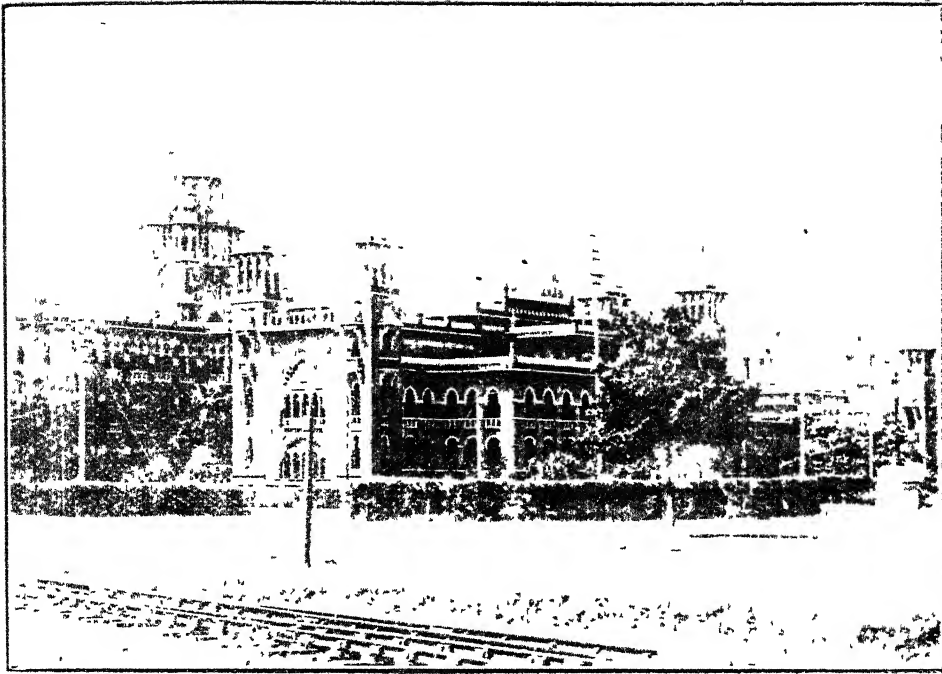
अर्थात्—“विनम्र प्रेम ही स्वर्ग के प्रवेश-द्वार की रक्षा करता है, अभिमान-भरा तर्क नहीं। जहाँ अभिमान भरा विज्ञान असफल होता है, वहाँ प्रेम ही प्रवेश कर पाता है।”

बस इन स्वर्गीय भावों के आनन्द-सागर में डुबकी लगा कर आज से मेरी प्रेम-साधना का श्रीगणेश होता है। तुमसे अलग रह कर, मैं अपनी इस प्रेम-साधना में आजीवन तल्लीन रहूँगा। अब तुम्हारे यहाँ आने का भी समय नहीं रहा। समय होता तो भी अब मैं न आता, इसलिए कि बार-बार जाने पर तुमने मेरा जी भर कर अपमान कर लिया। कभी मुझे गर्व-भरी टेढ़ी-तिरछी नज़र से देख कर, ज़रा सी बात के लिए झगड़ा दिखाया तो कभी झुंझला कर घोर उपेक्षा की हँसी हँस कर कह दिया—“मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि आपको भूल गई !” इस दशा में अब कभी अगर तुम्हारे द्वार पर होकर निकलूँगा और वहाँ तुम्हारी याद कलेजे में एक दर्द-भरी टीस भी पैदा करेगी, तो मैं आज क्रसम खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे उस घर की ओर देखूँगा तक नहीं ! जिस घर में मुझे याद करने वाला कोई नहीं रह गया, वहाँ अब क्यों और किस लिए जाऊँगा ? जिस घर की राज-लक्ष्मी मुझसे रूठ चुकी है, वहाँ की दरो-दीवार मुझे काटने दौड़ेंगे। जिस अन्तःपुर की रानी मुझे अपने हृदय से निकाल चुकी है, वहाँ यदि अब मेरे लिए स्वर्ण का राज-सिंहासन भी बिछा हो तो मेरे किस काम का ?

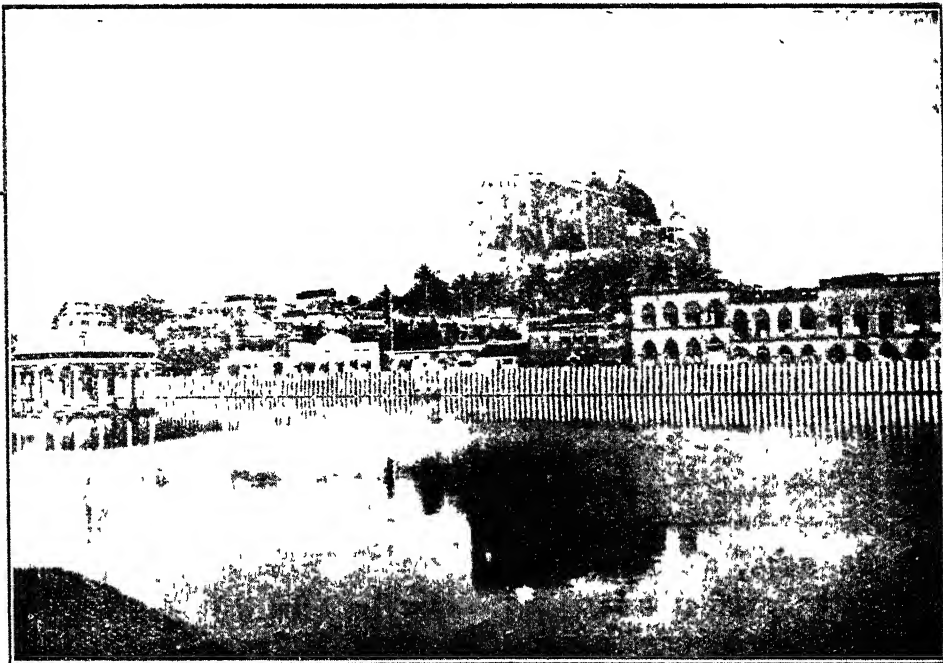
तुम्हारा वही,

—‘प्रमोद’





मद्रास हाईकोर्ट-भवन का एक दृश्य ।



त्रिचिनापोली (मद्रास) के विख्यात पहाड़ी मन्दिर और विशाल जलाशय का एक मनोरम दृश्य ।



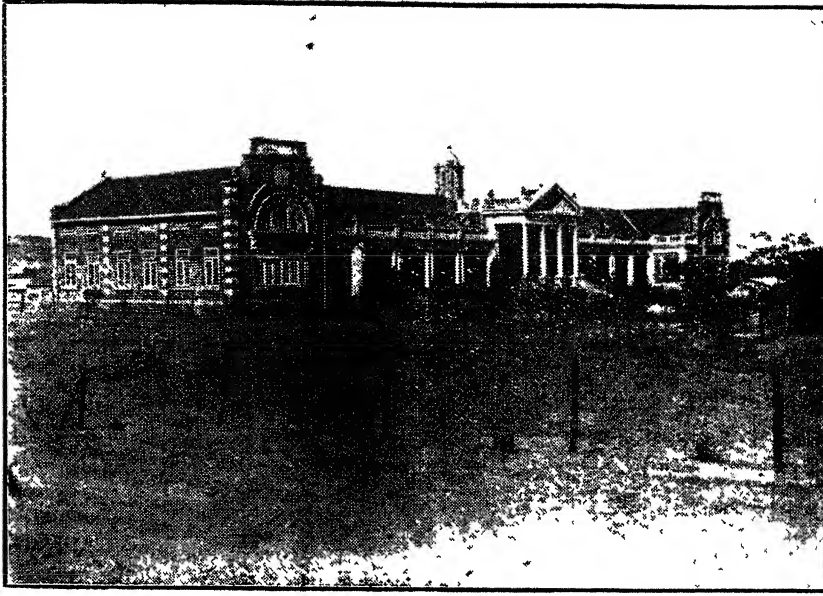
दो हिन्दी-प्रेमिनी यूरोपियन महिलाएँ—मिस मेरी इवरसन (बाईं ओर) और मिस बोलवडी वल्ला (दाहिनी ओर)—जिन्होंने अल्प-काल में ही हिन्दी भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है। पाठक इनके लेख इस मास के 'चाँद' के 'विविध विषय' में पढ़ें।



श्रीमती पूनेन लखोसे, बी० ए०, एम० बी० बी० एस०, सीनियर सर्जन आप द्रावड्कोर रियासत के चिकित्सा-विभाग की प्रधाना नियुक्त हुई हैं और दरबार फ़ीज़ीशियन के पद पर कार्य करती हैं।



कुमारी के० एस० राधा आप दिल्ली के हिन्दू कॉलेज की छात्रा हैं। अखिल भारतीय साहित्यिक तर्क-युद्ध में विजय प्राप्त करने के हेतु आपने उक्त कॉलेज द्वारा निर्दिष्ट 'स्त्री-पुरस्कार' प्राप्त किया है।



स्वनाम-धन्य प्रोफेसर कर्वे द्वारा स्थापित पूना का
विख्यात महिला-विश्वविद्यालय-भवन



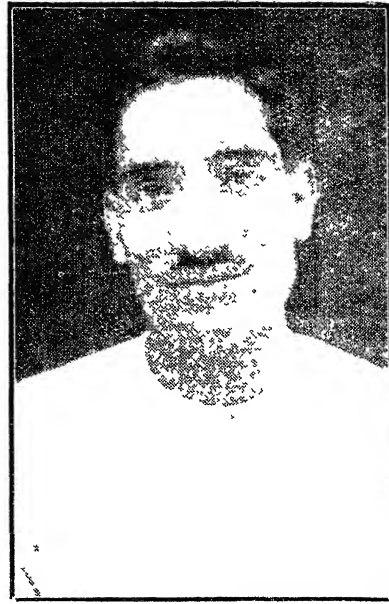
कुमारी सावित्रीदेवी खत्री (उम्र १३ वर्ष)—यह
बालिका काशी के श्री० नन्दलाल जी खत्री की
पुत्री है। गत ५ अप्रैल को काशी में लड़कियों
की एक सन्तरण प्रतियोगिता हुई थी,
उसमें इस बालिका का प्रथम
स्थान रहा।



चिरजीव जगमोहन (उम्र ४ वर्ष) और चिरजीव
राधेमोहन (उम्र ७ वर्ष)—ये दोनों बालक काशी-
निवासी श्री० नन्दलाल जी खत्री के पुत्र हैं।
इन्होंने गत ५ अप्रैल सन् १९३३ को तैर कर
गङ्गा पार किया। इसके लिए इन्हें कई
पदक प्राप्त हुए हैं।



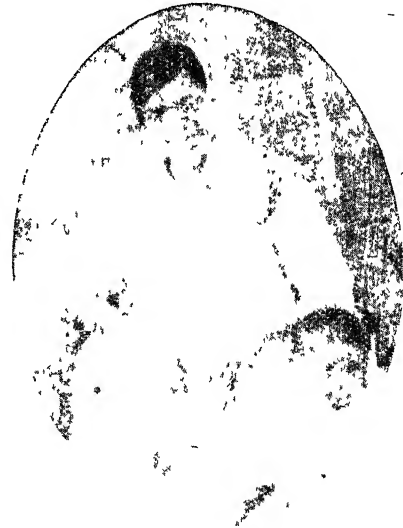
कुमारी कान्तिदेवी श्रीवास्तवा—यह ११ वर्षीया बालिका प्रयाग-निवासी श्री० बल्लभहादुर की सुपुत्री है। इसने मैसपुरी में हाने वाले, सन् १९३३ की म्यूज़िक-कॉन्फ़ेन्स में गाने और हारमोनियम बजाने में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है।



श्री० वीर विजयकुमार—आप गूजराँवाला (पञ्जाब) की राष्ट्रीय हिन्दू-सभा के प्रधान-मन्त्री हैं और आजकल हरिजनों की सेवा में दिलोजान से लगे हैं। महात्मा गाँधी के उपवास-काल में २१ दिनों तक आपने हरिजनों की गलियाँ साफ़ की थीं। गूजराँवाला के अन्य बहुत से नवयुवकों ने भी आपका साथ दिया था।



श्रीमती एस० नीलावती, बी० ए०—आप त्रिचिनापोली (मद्रास) की एक सम्भ्रान्त कुल की विदुषी महिला हैं और आजकल हरिजनों के उत्थान-कार्य में विशेष दिलचस्पी ले रही हैं।



श्रीमती बलवन्ती देवी वैद्या (स्त्री-चिकित्सिका)—आप 'चाँद' के भूतपूर्व सम्पादक और हिन्दी-संसार के सुपरिचित डॉक्टर धनीराम जी प्रेम महोदय की चचेरी बहिन और दिल्ली के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्री० दामोदरदास जी वैद्य की धर्मपत्नी हैं। दिल्ली की राष्ट्र-सेविका महिलाओं में देवी जी का प्रमुख स्थान है।

गर्भवतियों में भोजन-लालसा

[श्री० ब्रजमोहन वर्मा]



ई वर्ष पहले की बात है। एक प्रतिष्ठित मित्र के यहाँ देखा कि प्रायः नित्य-प्रति दो-चार थालियों में तरह-तरह के फल-फूल, मिठाइयाँ, मेवे तथा अन्य खाने-पीने की चीज़ें आया करती थीं। दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि मित्र महाशय की पत्नी गर्भवती थीं। उनकी पहली सन्तान उत्पन्न होने वाली थी। उनके नाते-रिस्तेदारों, सम्बन्धियों, बन्धुओं और व्यवहारियों का दापरा काफ़ी बढ़ा था। ये वस्तुएँ उन्हीं लोगों के यहाँ से मित्र महाशय की स्त्री के खाने के लिए उपहार में आती थीं।

इसके बाद भी अनेक अवसरों पर गर्भवती स्त्रियों के लिए इस प्रकार के उपहार भेजते देखा है। वास्तव में भारत की अनेक जातियों में यह प्रथा प्रचलित है कि जब स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं—विशेष कर प्रथम बार—तब उनके भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी और मेली-मुलाकाती उन्हें इस प्रकार का उपहार भेजा करते हैं। परन्तु इन उपहारों में एक विशेषता होती है; वह यह कि इस प्रकार की उपहार-वस्तुओं में निन्यानबे प्रतिशत फल-फूल, मिठाइयाँ, नमकीन, दालमोठ और पकवान आदि—खाने-पीने की चीज़ें ही—हुआ करती हैं। हाँ, बुन्देल-खण्ड के एक नगर में यह भी देखा है कि गर्मी के दिनों में खाने-पीने की चीज़ों के साथ-साथ एक कोरी सुराही में भरा हुआ पानी और एक दस्ती पट्टा भी उपहार में भेजा जाता है।

इन उपहारों का आरम्भ कैसे हुआ? यह पद्धति कैसे चली? फिर कपड़े, लत्ते, गहने, शृङ्गार-सामग्री आदि हज़ारों वस्तुएँ अन्य अवसरों पर भेंट और उपहार

में दी जाती हैं, परन्तु इस अवसर पर दिए जाने वाले उपहार केवल खाद्य-सामग्रियों—विविध वृक्षजनों—तक ही परिमित क्यों हैं? इसका कारण यही जान पड़ता है कि गर्भावस्था में स्त्रियों का मन भाँति-भाँति की चीज़ें खाने के लिए चला करता है। वे बहुधा कुछ विशेष पदार्थों को खाने के लिए लालायित रहा करती हैं। इसलिए उनकी इस भोजन सम्बन्धी लालसा को तृप्त करने के लिए ही उन्हें नाना प्रकार के सुस्वादु खाने उपहार में देने की प्रथा है।

यों तो सहज ही प्रत्येक व्यक्ति का मन—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष—कभी-कभी किसी विशेष भोजन या फल आदि खाने के लिए चल उठता है, मगर गर्भवती स्त्री में किसी विशेष पदार्थ के खाने की इच्छा खास तौर पर दिखाई देती है। उसकी इस लालसा में दो विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो यह कि उसकी यह लालसा अक्सर उग्र रूप धारण कर लिया करती है। दूसरे यह कि उसकी इच्छा बहुधा ऐसी चीज़ें खाने के लिए चला करती है, जो संसार की किसी भी जाति की भोजन-सूची में नहीं हैं।

यह लालसा साधारण अवस्था में नहीं हुआ करती। साधारण अवस्था में तो अन्य व्यक्तियों की भाँति कभी किसी चीज़ पर मन चल जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, मगर वह कभी प्रबल रूप नहीं धारण किया करती। लेकिन गर्भिणी की भोजन-लालसा बहुधा इतनी प्रबल हो उठती है कि वह उसे दवाने में असमर्थ हो जाती है, और उसे तृप्त करने के लिए वह ऐसे काम कर बैठती है—जैसे चोरी आदि—जिसे साधारण अवस्था में वह स्वयं में भी करने को तैयार न होगी। एक बहुत ऊँचे घराने की यूरोपियन महिला (गर्भावस्था में) अपनी बहिन के साथ 'स्ट्राबेरी' के खेतों के पास से घूमने



के लिए निकली। सहसा उसके मन में 'स्ट्राबेरी' खाने की अदम्य इच्छा उठ खड़ी हुई। बहिन के लाख मना करने और रोकने पर भी वह ज़बर्दस्ती खेत में घुस गई और इतनी 'स्ट्राबेरी' खाई, जिसे देख कर बेचारी बहिन परेशान रह गई! एक सम्भ्रान्त कुल की महिला का खेत में बैठ कर इस प्रकार 'स्ट्राबेरी' खाना बड़ी बेतुकी बात है। साधारण अवस्था में वह ऐसा करना कभी गवारा न करती। इसी प्रकार एक दूसरी युवती स्त्री को गर्भावस्था में तम्बाकू पीने की इच्छा इतनी बलवती हो उठती थी कि जब तक वह तम्बाकू न पी लेती, उसे चैन ही न पड़ता था, यद्यपि गर्भ से पहले न तो उसने कभी तम्बाकू पी थी, और न उसे कभी तम्बाकू पीने की इच्छा ही हुई थी और न प्रसव के बाद भी कभी उसे धूम्रपान की इच्छा हुई। इस प्रकार के लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों उदाहरण मिलेंगे। साथ ही यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक गर्भिणी में यह लालसा नहीं होती। बहुतों में किसी प्रकार की कोई इच्छा नहीं होती, परन्तु जिनमें यह इच्छा दिखाई देती है, उनकी संख्या भी कम नहीं है।

यह लालसा कोई नई अथवा सभ्यता-जनित चीज़ नहीं है। यह मनुष्य के आदि काल से चली आती है और संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों की स्त्रियों में एक-सी नज़र आती है।

डॉक्टर और वैद्यों ने भी इसकी छान-बीन की है और उसके पूरे होने और न पूरे होने का फलाफल भी बताया है। भारत के प्राचीन वैद्याचार्यों ने गर्भिणी का मन जिन चीज़ों पर चलता है, उनका एक विशेष नाम ही रख दिया है, वह है "दौहद", जिसका अपभ्रंश 'दोहद' आज भी कहीं-कहीं देहातों में प्रचलित है। "दौहद" शब्द का अर्थ है द्विहृदया (गर्भवती) स्त्री का वाञ्छित पदार्थ।

हमारे देश में गर्भिणी स्त्रियों में मिट्टी खाने की इच्छा बहुधा दिखाई देती है। मैंने बहुत सी स्त्रियों को सुराहियाँ, हाँडियाँ, कुल्हड़ आदि तोड़ कर खाते देखा है। कोई-कोई गङ्गा-यमुना की रेतीली मिट्टी खाती देखी गई है। बहुतेरी चूल्हे के भीतर की जली हुई मिट्टी स्वाद ले-लेकर खाती हैं। लखनऊ, बनारस, कलकत्ता आदि नगरों में कुन्हार लोग गर्भिणी स्त्रियों की इस मिट्टी की भूख को तृप्त करने के लिए मिट्टी की बहुत पतली-पतली,

औंवे में पकाई हुई छोटी-छोटी टिकियाँ बेचते हैं। ये टिकियाँ गर्भिणी स्त्रियों के सिवा दुनिया में और किसी के काम नहीं आतीं। लखनऊ में वे "सनकियाँ" कहलाती हैं। अन्य नगरों में उनके अलग-अलग नाम हैं। मिट्टी के अतिरिक्त खड़िया, लकड़ी की चीपें, कोयला (लकड़ी का) आदि चीज़ें भी खाई जाती हैं। अन्य भोज्य-पदार्थों में, जिनकी ओर महिलाओं की अधिक रुचि हुआ करती है, फलों की बहुतायत है। बेफ़सल के फलों की ओर उनका मन अकसर चला करता है। सोंधी चीज़ें गर्भिणी को प्रायः अधिक प्रिय होती हैं, इसलिए सब प्रकार के भुने हुए अन्न—चबेने—विशेषकर भुने हुए चनों की ओर बहुतों की रुचि दिखाई देती है। एक महिला को तेल का अचार बहुत भाता था। एक अन्य महिला गर्भावस्था में महीनों तक एक वक्क केवल दही खाकर ही रही थी। आलू-कचालू की ओर भी एकाग्र का मन चल जाता है।

यूरोपियन महिलाएँ भी नाना प्रकार की चीज़ें खाया करती हैं, जिनमें बालू प्रधान है। प्रसिद्ध यूरो-पियन विद्वान शूरिंग ने अपने किलोजिया (Chylogia) नामक ग्रन्थ में (सन् १७२५) गर्भिणी की इस लालसा के सम्बन्ध में एक पूरा अध्याय ही लिखा है। वे कहते हैं कि एक इटैलियन महिला ने कई पौण्ड बालू बड़े स्वाद से खा डाला था। बालू के अलावा यूरोपियन स्त्रियाँ चूना, कीचड़, खड़िया, कोयला, अल्कतरा आदि भी खाती देखी जाती हैं! एक स्त्री तन्दूर से निकली हुई गरमागरम पावरोटी बहुत परिमाण में खाती थी। एक महिला ने एक दिन में एक सौ चालीस मीठे केक खाए थे! गेहूँ, जौ तथा दूसरे अनाजों और फल-तरकारियों की ओर मन चलना यूरोपियनों में भी साधारण बात है, परन्तु एक लेडी ने गर्भावस्था में दस सेर काली मिर्चों का खाल्ला कर डाला था! एक दूसरी महिला अदरक बहुत खाती थी। एक महिला अपने तकिए के नीचे जावित्री रक्खा करती थी। एक ने एक रात में तीस-चालीस नींबू चूस डाले थे। दालचीनी, नमक, राब और बादाम का शरबत भी बहुतों को भाता है।

यूरोपियन मांसाहारी होते हैं। अतः उनमें नाना प्रकार की मछलियों—Mulletts, Oyster, Crabes Livc-eel (सिप्पी, कैंकड़े, साँप के आकार की मछली



आदि) —की ओर बहुधा रुचि देखी जाती है। परन्तु इतने से ही समाप्ति नहीं हो जाती। उनमें मेढक, छिपकिली, मकड़ी और पतङ्गों तक का स्वाद लेने की लाबसा देखी गई है। शूरिंग ने लिखा है कि एक तैंतीस वर्ष की स्त्री ने, जो साधारण दशा में बहुत शान्त और वात-प्रधान स्वाभाव की थी, एक बार गर्भावस्था में एक जीवित पच्ची पकड़ कर बड़े स्वाद से खाया था। चमड़ा, रुई, ऊन, कपड़ा, ग्लाटिङ्ग पेपर और नाक की रेंट जैसे अखाद्य और घृणोत्पादक वस्तुओं की ओर भी गर्भिणी का मन चलता हुआ देखा गया है। सिरका और बर्फ की ओर भी आकर्षण दिखाई पड़ता है। कोई-कोई लोहा और चाँदी आदि धातुएँ भी निगलती देखी गई हैं। एक स्त्री की इच्छा नर-मांस-भक्षण की थी, अतः वह कभी-कभी लोगों का हाथ काट खाती थी !

भारत में निरामिष-भोजियों की संख्या काफ़ी बड़ी है। आमिषभोजियों में नाना प्रकार के जीवों के मांस खाने की इच्छा हो सकती है और होती है। निरामिष-भोजी गर्भिणी में भी कभी-कभी मांस खाने की इच्छा होती है, मगर सैकड़ों में एक-आध को। परन्तु कभी हमारी भारतीय माताओं का मन भी यूरोपियन लेडियों की भाँति मेढक, छिपकिली, पतङ्ग और मकड़ी आदि की ओर चलता है या नहीं, इसका कहीं 'रेकॉर्ड' नहीं है।

गर्भिणी में केवल किसी पदार्थ विशेष के खाने की उग्र रुचि ही उत्पन्न नहीं होती, बल्कि किसी पदार्थ विशेष के लिए वैसी ही प्रबल अरुचि और घृणा भी उत्पन्न होते हुए देखी जाती है। कोई दूध पीने में असमर्थ होती है, तो किसी को फल-तरकारी बिल्कुल नहीं भाती। प्रायः दालों के प्रति गर्भिणियों में अक्सर अरुचि दिखाई देती है। मेरी एक परिचित महिला पान-तम्बाकू की बहुत आदी हैं, परन्तु गर्भावस्था में उन्हें पान-तम्बाकू फूटी आँखों नहीं सुहाती। यूरोपियन महिलाओं में जिन वस्तुओं के प्रति अरुचि और घृणा उत्पन्न होते देखी गई है, शूरिंग ने उनकी एक सूची दी है। इस सूची में रोटी, मांस, मछली, चिड़ियों का मांस, केंकड़े, दूध, मक्खन, पनीर, शहद, शकर, नमक, अण्डे, प्याज़, कालीमिर्च, राई, सिरका, बिल्ली, मेढक, मकड़ी, बर्, तलवार आदि हैं। उसने लिखा है कि बहुतों को सेब बुरा लगता है और बहुतों को उसकी खुशबू। गुलाब

और उसकी गन्ध के प्रति भी बहुतों में अरुचि होती है। इस सूची से यह प्रकट होता है कि यह घृणा केवल भोज्य पदार्थों तक ही सीमित नहीं है।

मिस्टर आर्थर गाइस्स ने इस विषय की बड़ी खोज की है। उनका कहना है कि गर्भिणी में केवल खाने-पीने की चीज़ों को छोड़ कर अन्य किसी वस्तु या अन्य किसी काम की प्रबल—अदमनीय—इच्छा उत्पन्न होते हुए नहीं देखी गई। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं जान पड़ता। एक महिला के तम्बाकू पीने की लालसा का ज़िक्र ऊपर हो चुका है। शूरिंग ने लिखा है कि एक स्त्री को अपने पति के मुख पर अण्डे फेंकने की इच्छा होती थी, तथा एक अन्य स्त्री अपने ऊपर अण्डे फिक्काने के लिए लालायित रहती थी। भारतीय आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी यह बताया गया है कि 'दौहद' केवल खाने-पीने की तृप्ति ही का नहीं होता, वरन् वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रियों के सभी भोगों का होता है। अर्थात् गर्भिणी स्त्री में खाने-पीने के अतिरिक्त कोई विशेष शब्द सुनने, किसी ख़ास चीज़ को छूने, किसी पदार्थ विशेष या दृश्य विशेष को देखने अथवा किसी विशेष गन्ध को सूँघने आदि बातों की भी लालसाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं।

गर्भिणी की यह लालसा सभी देशों, सभी जातियों और सभी युगों में मिलती है। यूरोप में वह बहुत दिनों से ज्ञात है। पुराने काल के यहूदी वैद्य उससे परिचित थे। भारतीय आयुर्वेद के ज्ञाताओं को उसका पूरा ज्ञान था। 'चरक', 'सुश्रुत', 'वाग्भट्ट' आदि ग्रन्थों में "दौहद" का वर्णन मिलता है। महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'रघुवंश' के तीसरे सर्ग के प्रथम श्लोक में सुदक्षिणा के दौहद का वर्णन है। उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका के रेड इण्डियनों को, अफ़्रीका में सूडान और नील नदी के तट पर बसने वाली बर्बर हब्शी जातियों को, तथा ओशीनिया में मलाया द्वीप-पुञ्ज की असभ्य

ॐ अथेप्सितं भर्तृरूपस्थितोदयं

सखीजनोद्गीचण कौमुदी सुखम् ।

निदानमिच्चाकुलस्य सन्ततेः

सुदक्षिणा दौहद लक्षणं दधौ ।

—रघुवंश, ३रा सर्ग, ३ला श्लोक



किया था। तरकारियों में टोमाटो (विलायती बैंगन) छै स्त्रियों को भाता था। बाक़ी ने भिन्न-भिन्न चीज़ों की इच्छा प्रकट की थी।

मिस्टर हैवलाक एलिस कहते हैं—“हम लोगों को यही समझना चाहिए कि यह लालसा देह-धर्म और मनो-वृत्ति के झुकाव (Physiological and Psychic Tendency) पर अवलम्बित है। यह झुकाव जगत-व्यापक और एक स्वाभाविक—नॉर्मल—बात है।”

अब यह सवाल पैदा होता है कि गर्भिणी की लालसा पूर्ण होने या अपूर्ण रह जाने का गर्भिणी या सन्तान पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

चरक कहते हैं—“गर्भिणी के दौहद की अवहेलना नहीं करना चाहिए। अवहेलना करने से गर्भ नष्ट या विकृत हो जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि में माता और गर्भ को समान इच्छा होती है, इसलिए गर्भिणी के प्रिय और हित पदार्थों से उसका उपचार करना चाहिए।”

वाग्भट्ट का कथन है—“गर्भिणी की इच्छा का विघात अच्छा नहीं। हित (गुणकारी) वस्तुओं के साथ-साथ यदि अहित (हानिकर) वस्तुओं की ओर गर्भिणी का मन चले, तो उन्हें भी अल्प मात्रा में दे सकते हैं। क्योंकि उसकी इच्छा का विघात होने से गर्भ नष्ट किम्बा विकृत हो जाता है।”

सुश्रुत ने लिखा है—“दौहद न मिलने से बालक कुबड़ा, लूला, पागल, मूर्ख, बौना आर विकारयुक्त होता है ; परन्तु दौहद प्राप्त होने से बालक पराक्रमी, दीर्घायु और उत्तम होता है।”

“गोह के मांस का दौहद होने से बालक अधिक सोने वाला ; गो-मांस के दौहद से बालक बलवान और कष्ट सहने वाला ; महिष के मांस के दौहद से बालक शूरवीर, लाल नेत्र और रोम वाला ; वराह के मांस के दौहद से बालक सोने वाला, परन्तु शूरवीर ; मृग के मांस के दौहद से बालक बड़ी-बड़ी जाँघों वाला तथा वन-वन में घूमने वाला ; तीतर के मांस के दौहद से बालक डरपोक ; और साबर के मांस के दौहद से बालक उद्विग्न होता है।”

भोजन-सम्बन्धी दौहद के विषय में सुश्रुत ने केवल उपर्युक्त मांस ही गिनाए हैं। संसार के अन्य सब

पदार्थों के लिए एक साधारण सिद्धान्त लिख दिया गया है कि—“इसके सिवा जिन चीज़ों का वर्णन नहीं है, उन पर दौहद हो तो उनके शरीर, आचार और शील के समान बालक उत्पन्न होता है।”

इस पर एक टीकाकार महाशय कहते हैं—“पहले मांसभक्षी, वनवासी मनुष्य अधिक होते थे, इसलिए सुश्रुत जी ने उनके अनुसार ही दौहद कह दिए हैं, परन्तु अनेक व्यञ्जन और फलादि, धान्यादि नहीं कहे, इसलिए उनके गुण, प्रकृति आदि देख कर अब के वैद्यों को विचार कर लेना चाहिए।”

भोजन-लालसा के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों के दौहद के विषय में सुश्रुत कहते हैं—“राजा के दर्शन का दौहद होने से सन्तान द्रव्यवान, भाग्यशाली होती है ; रेशम, पाट और टसर के अच्छे वस्त्र और आभूषणों का दौहद होने से सन्तान अलङ्कार की इच्छुक और शौकीन होती है; आश्रम, मन्दिर और महात्मा आदि के दर्शन की इच्छा होने से पुत्र धर्मशील, सत्पात्र होता है ; और सर्पादि हिंसक जन्तुओं को देखने की इच्छा होने से बालक क्रूर और हिंस होता है। गर्भिणी की जिस इन्द्रिय की लालसा तृप्त न होगी, सन्तान की उसी इन्द्रिय में विकार हो जायगा।”

भारतीय आयुर्वेद के अन्य आचार्यों ने भी सुश्रुत से मिलती-जुलती बातें कही हैं। परन्तु उनके कथन और निरीक्षण में कितना सत्य है, इसका निर्णय आधुनिक विज्ञान के द्वारा अभी तक नहीं हो सका। यूरोपियन विज्ञान तो अभी तक केवल इसी परिणाम पर ही पहुँच सके हैं कि गर्भिणी की लालसा तृप्त न होने से सन्तान पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। उसका क्या कुप्रभाव होता है, अथवा क्या दुष्परिणाम निकलता है, इसका वे अभी तक निर्णय नहीं कर सके हैं। हाँ, यूरोप के जनसाधारण में इसके विषय में एक दूसरा ही विश्वास अवश्य फैला है।

बहुतेरे बच्चों के शरीर (खाल) पर कहीं-कहीं एक धब्बे-सा दाग हुआ करता है। इस दाग या धब्बे का रङ्ग आस-पास की खाल के रङ्ग से किञ्चित गहरा होता है और उसका आकार नाना प्रकार का हुआ करता है। यह निशान पैदायशी होता है। हिन्दी में उसे प्रायः “लहसुन”

के नाम से पुकारते हैं * और अङ्गरेजी में वह 'Mothers Mark'—'माता का चिन्ह'—कहलाता है। यूरोप के जनसाधारण का विश्वास है कि गर्भिणी की लालसा पूरी न होने से ही उसकी सन्तान के शरीर पर यह दाग—लहसुन—पड़ जाता है। वे यह भी कहते हैं कि गर्भिणी के मन में जिस चीज़ की लालसा होती है, उसके पूरा न होने पर बच्चे के शरीर का लहसुन उसी वस्तु के आकार का होता है। मान लीजिए कि गर्भिणी को नाशपाती खाने की इच्छा थी, जो पूरी न हो सकी, तो बच्चे के शरीर पर नाशपाती की शकल का लहसुन होगा।

हमारे यहाँ, युक्तप्रान्त की ओर, बहुत सी जातियों में यह धारणा प्रचलित है कि गर्भिणी की भोजन-लालसा पूरी न होने से उसकी सन्तान की लार बहुत बहा करती है। बच्चों की लार बहते देख कर लोगों को माताओं से यह भी पूछते देखा है—“तुम्हारी किस चीज़ की इच्छा पूरी नहीं हुई, जो तुम्हारे बच्चे की इतनी लार बहती है?”

मैंने देखा है कि बहुधा लोग गर्भिणी स्त्रियों को वंशलोचन खिलाया करते हैं। आयुर्वेद और यूनानी भैषज-शास्त्रों के अनुसार वंशलोचन एक बहुत गुणकारी और पौष्टिक औषधि है। आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि 'शीतोपलाद चूर्ण' में वंशलोचन एक प्रधान वस्तु होती है। वंशलोचन का स्वाद मिट्टी के स्वाद से मिलता-जुलता है, अतः जिन स्त्रियों में मिट्टी खाने की लालसा होती है, उनकी उस लालसा की किसी क्रूर वृत्ति वंशलोचन के द्वारा हो जाती है। लोग कहते हैं कि गर्भिणी को वंशलोचन खिलाने से उसकी सन्तान गोरी

* जैसे—

तिल, भौरी, लहसुन, मसा, होय दाहिने अङ्ग।
बन-बन में घूमत फिरे, लछो न छोड़ें सङ्ग ॥

—सामुद्रिक लक्षण

और सुन्दर होती है। मालूम नहीं, इस कथन में तथ्य कहाँ तक है, परन्तु एक घटना स्वयं मुझे मालूम है। मेरी एक आत्मीय महिला ने एक बार गर्भावस्था में वंशलोचन बहुत खाया था। उनकी वह सन्तान उनकी अन्य सब सन्तानों की अपेक्षा गोरी और सुन्दर हुई।

कलकत्ते के एक अनुभवी कविराज ने मुझसे बताया कि गर्भिणी स्त्री को कच्चे नारियल की गिरी खिलाने और उसका पानी पिलाने से सन्तान गोरी और बड़ी-बड़ी आँखों वाली होती है। उन्होंने यह भी कहा कि वे स्वयं कई गर्भिणी स्त्रियों पर इसका प्रयोग करके इसे आजमा चुके हैं।

बहुत सी जातियों में यह लालसा बड़ी पवित्र मानी गई है। यूरोप के ब्लाक फ़ारेस्ट में—जर्मनी और ऑस्ट्रिया के सीमान्त-प्रदेश में—यह दस्तूर था कि गर्भिणी स्त्री किसी भी व्यक्ति के बाग में घुस कर जो फल चाहे बिना मूल्य ले सकती थी, बशर्ते वह उसे उसी स्थान पर बैठ कर खा ले। प्राचीन काल में इङ्ग्लैण्ड में गर्भिणी स्त्रियाँ अपनी लालसा को पूरी करने के लिए जो कुछ कर डालती थीं, उसके लिए वे उत्तरदायी नहीं समझी जाती थीं। मिस्टर कीरनन (Kiernan) ने अपने एक लेख में इस नियम का समर्थन किया है और उसे उचित बतलाया है। फ़्रान्स में राजक्रान्ति के बाद जो क़ानून बने थे, उनमें गर्भिणी स्त्रियों के अनुत्तरदायित्व को स्वीकार किया गया था। कुछ अन्य क़ानून-शास्त्रियों के मतानुसार भी गर्भिणी स्त्रियाँ गर्भावस्था में किसी अदालत के सामने विचार के लिए उपस्थित नहीं की जा सकती थीं। फ़्रान्स में यह नियम नेपोलियन बोनापार्ट के शासन तक प्रचलित रहे। नेपोलियन के समय में वे तोड़ दिए गए, क्योंकि मोशियो पिनार्द का मत था कि गर्भिणी स्त्री की लालसा अदमनीय बात नहीं है। यदि गर्भिणी चाहे तो उसे अपने क़ाबू में रख सकती है। फलतः गर्भिणी अपने कर्मों के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी है।



वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट०]

(गताङ्क से आगे)

कृषि की उन्नति



छले दस वर्ष में मुस्लिम जगत ने कृषि, व्यवसाय, वाणिज्य आदि में भी बड़ी उन्नति की है। भारत-वर्ष की भाँति तुर्की भी कृषि-प्रधान देश है। इसलिए वहाँ की प्रजातन्त्र सरकार ने कृषि को उन्नत करने तथा कृषकों की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किए हैं। राष्ट्रपति कमालपाशा अपने आपको तुर्की कृषक कहता है और उसके पास बड़ा विस्तृत खेत है, जिसमें आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के द्वारा खेती की जाती है। कमालपाशा तुर्की का आदर्श कृषक है और उसका खेत कृषकों के लिए आदर्श शिखालय है। राष्ट्रपति के लिए यह शोभा की बात है कि वह खेती करता है और अपने को कृषक कहता है। मार्च सन् १९२२ में जब सरकार ने महात्मा गाँधी पर मुकदमा चलाया था और मैजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा था कि आपकी जाति और पेशा क्या है, तो आपने कहा था कि मैं जुलाहा तथा किसान हूँ। मुस्तफ़ा कमालपाशा का खेत अज़ोरा के पास रेलवे-स्टेशन से सटा हुआ है। इसके निकट एक बड़ा झरना है, जिससे सिंचाई का काम होता है। खेत के पास कई सुन्दर इमारतें बनी हुई हैं। इसमें १८ ट्रेक्टर, ६ कूटने की मशीनें, २ मोटरें और अन्य छोटी-मोटी कई कलों से काम लिया जाता है। इस खेत में अन्न, तरकारी तथा फल पैदा होते हैं और पशुपालन भी किया जाता है। यहाँ पर ७० सुन्दर और स्वस्थ गाँव, कई स्विट्ज़रलैण्ड के साँड, पाँच हज़ार भेड़ें, कई हज़ार छड़े हुए बकरे और बकरियाँ और हज़ारों मुर्गे-मुर्तियाँ रखे जाते हैं। मक्खियों द्वारा शहद भी

उत्पन्न किया जाता है। इसके अतिरिक्त ८ सरकारी पाठशालाओं में केवल कृषि-शिखा दी जाती है। इनमें कृषि-सिद्धान्त भी बतलाए जाते हैं और व्यवहारिक काम भी सिखलाया जाता है। देश में कई खेतों में राज्य की ओर से नवीन वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती की जाती है, जिसके द्वारा कृषकों को उन्नत साधनों का उपयोग करने की शिखा मिलती है। कृषि-विद्या के विशेषज्ञ देश में घूम-घूम कर कृषि को उन्नत तथा लाभकारी बनाने के उपाय बतलाते रहते हैं। तुर्की राज्य की जन-संख्या ९० लाख और क्षेत्रफल २ लाख वर्गमील है। सन् १९२४ और १९२६ के बीच १,००० हेक्टर वहाँ बिक चुके हैं। ऐसे छोटे से देश में कृषि-शिखा का इतना प्रबन्ध अत्यन्त सराहनीय है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यह सब उन्नति पिछले आठ वर्ष में की गई है। इसके पहिले कृषि की उन्नति का किसी को खयाल भी न था। तो भी अभी कृषक बहुत पिछड़े हुए हैं।

तीनों स्वतन्त्र मुस्लिम देशों में रेल, तार, डाक-खाने तथा सड़कों आदि की भी बड़ी उन्नति हुई है। ईराक़, सीरिया, पलस्तीन और मिश्र आदि में भी कुछ इस ओर तरक्की हुई है, परन्तु उसकी गति मन्द है। स्वतन्त्र देश और सुरक्षित देशों में अन्तर होना ही चाहिए। सुल्तान खलीफ़ाओं के शासन-काल में तुर्की में जितनी रेलें बनी थीं, सब जर्मन, फ़्रेंच या इंग्लिश कम्पनियों ने बनवाई थीं, जिनसे उनको विपुल लाभ होता था। प्रजातन्त्र सरकार ने यह प्रथा बन्द कर दी और स्वदेशी कम्पनियों द्वारा या सरकारी पूँजी द्वारा रेलें खोली जाने लगी हैं। पिछले १० वर्ष में कितनी ही नई रेलवे खुल चुकी हैं और अब भी खुलती जाती हैं।



सड़कें और रेल

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में भी पिछले १०-१२ वर्षों में कितनी ही नई-नई सड़कें बन गई हैं। महा-समर के समय में रूसियों और अङ्गरेजों ने अपने मतलब से उत्तर और दक्षिण ईरान में लम्बी-लम्बी सड़कें बनवाई थीं। रूस ने तो रेलवे लाइनों का भी निर्माण किया था। अपने यहाँ राज्यक्रान्ति के बाद रूस ने ईरान से जो सन्धि की, उसके अनुकूल उत्तर ईरान की सब सड़कें और लाइनें बिना मूल्य ईरान को दे दी गई और जब रिज़ाअली ने स्वातन्त्र्य संग्राम छेड़ा तो अङ्गरेज लोग भी अपनी बनाई हुई सड़कों को छोड़ भागे। स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के पश्चात् ही ईरान में कई हजार मील लम्बी सड़कें बन चुकी हैं। सब प्रधान नगर और कस्बे इनसे जुड़े हुए हैं और अनेक मोटर लॉरियाँ इन पर दौड़ती हैं। नई रेलवे लाइनें भी प्रति वर्ष खुलती जाती हैं। अफ़ग़ानिस्तान में भी कितनी ही लम्बी-लम्बी, कच्ची और पक्की सड़कें बनी हुई हैं। इस विषय में अमीर अमानुल्ला ने बहुत उन्नति की थी; उन्होंने कई रेलें बनवाने की भी योजना की थी और फ़्रेञ्च तथा जर्मन कम्पनियों को इसके ठेके भी दिए जा चुके थे, पर इस बीच ही में बच्चासक्रा के उत्पात के कारण उनको देश छोड़ कर जाना पड़ा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में रेलवे लाइनों के ठेके फ़्रेञ्च या जर्मन कम्पनियों को ही दिए गए हैं और अङ्गरेजी कम्पनियों का प्रायः बहिष्कार सा रहता है। तुर्की में तो अब कई स्वदेशी कम्पनियाँ भी बन गई हैं और व्यापारियों को मोटर लॉरियों का उपयोग करने के लिए उत्साहित करना आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी माना गया है। अफ़ग़ानिस्तान में अभी कोई रेलवे खुली नहीं है और ईरान में जो कुछ खुली है उसमें अत्यधिक व्यय हुआ है।

सड़कें बन जाने से और मोटर का उपयोग होने से राज्य-प्रबन्ध में उत्तमता आ गई है। कर वसूल करना और लूट-मार को दबाना सरल हो गया है। राजधानी में क्या हो रहा है, इसका जनता को शीघ्र पता लग जाता है। प्रान्तिक अफ़सरों के अत्याचार भी इस कारण से मित से गए हैं। राजनीतिक समाचार देश में शीघ्रता और आसानी से फैल जाते हैं, इसलिए जनता में राष्ट्रीय

विषयों पर अधिक बातचीत होती है और सरकार निरङ्कुश नहीं बन सकती। डाकखाने लोगों को आधुनिक बनाते जाते हैं। रूस, जर्मन आदि नवीन प्रजातन्त्रों के राजनीतिज्ञों के विचार ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की दुर्गम पर्वतमालाओं में भी पहुँच जाते हैं। मुस्लिम-संसार अब वाह्य जगत से पृथक् नहीं है। वह संसार का एक अङ्ग है। पिछले अफ़ग़ानिस्तान-युद्ध में काबुल, कन्धार तथा हिरात की ख़बरें बात की बात में सारे संसार में फैल जाया करती थीं। इस समय काबुल, कन्धार, बग़दाद और इस्फ़ाह आदि नगरों में यूरोप की कई भाषाओं के दैनिक पत्र पहुँचते हैं। रेडियो (बेतार के तार) द्वारा काबुल, खीवा, बुख़ारा आदि नगर ही क्या, दूरस्थ गाँवों में भी संसार के दैनिक समाचार पहुँचते हैं। सब मुस्लिम देशों में और विशेषकर तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का व्यापार बढ़ता जाता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्न आदि मोटरों द्वारा पहुँच जाने के कारण दुर्भिक्षों की भयङ्करता घट गई है। काबुल, बग़दाद, बसरा, इस्फ़ाह, अम्मन आदि नगरों में तारघर स्थापित हो चुके हैं। इन नगरों में अच्छे ऊँचे दर्जे के आधुनिक अस्पताल बन गए हैं और अन्य छोटे नगरों में भी बनते जाते हैं।

शिक्षा

१९१९ से पूर्व अन्य मुस्लिम-संसार का तो कहना ही क्या, तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान जो प्रायः स्वतन्त्र देश थे, उनमें भी शिक्षा की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं थी। तुर्की में यूनान, फ़्रान्स, रूस और अमेरिका की जो बस्तियाँ या मिल्लतें थीं उन्होंने अपने स्कूल, कॉलेज और एक-दो विश्वविद्यालय खोल रखे थे, परन्तु ये संस्थाएँ स्वयं उनके बच्चों के लिए थीं और उनकी भाषाओं में ही वहाँ शिक्षा दी जाती थी। इनमें तुर्की विद्यार्थी भी पढ़ते थे और कई तुर्क नवयुवक यहाँ से अच्छे देशभक्त और विद्वान बन कर निकले थे। पर यह संयोग की बात थी, वरना यहाँ राष्ट्रीय शिक्षा नहीं मिलती थी। सरकार की तरफ़ से शिक्षा-विभाग था और मसजिदों के मकतबों को भी सहायता मिलती थी, परन्तु इनका कोई निरीक्षण न था। पठन-पाठन की वहाँ कोई निश्चित व्यवस्था न थी, मसजिदों में लड़के एकत्र हो



जाया करते थे और मुस्ल्ला उनको बिना समझाए कुरान रटाया करते थे। जो परिवार यूरोप के सम्पर्क में आ चुके थे वे अपने बच्चों को विदेशियों द्वारा स्थापित संस्थाओं में पढ़ाते थे या विदेशों में भेज दिया करते थे। वास्तव में प्रजातन्त्र की स्थापना से पूर्व तुर्की में इन विदेशियों की संस्थाओं से ही जो कुछ शिक्षा का प्रचार होता था वह होता था। ईरान की दशा और भी हीन थी। किसी समय ईरान मुस्लिम सभ्यता का केन्द्र था, परन्तु यूरोप की वैज्ञानिक उन्नति और अङ्ग्रेज़ तथा रूसियों की हड़प-नीति ने इनको पीस डाला था। जब वहाँ शासन-व्यवस्था ही ठीक न थी तो शिक्षा-प्रचार क्या होता? प्रधान-प्रधान नगरों में परम्परागत पाठशालाएँ थीं, जिनमें कुरान-हदीस और साहित्य आदि विषय पढ़ाए जाते थे। विज्ञान, भूगोल, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र आदि उपयोगी विषयों की कोई चर्चा ही नहीं थी। जो लोग विदेशों में घूम चुके थे और विज्ञान-शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव करते थे, वे अपने बच्चों को शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेशों में भेजा करते थे। पश्चिमी पुस्तकों का अनुवाद फ़ारसी में होने लगा था और एक समाचार-पत्र भी ऐसा प्रकाशित होने लग गया था, जिसमें वर्तमान राजनीतिक विषयों का जिक्र होता था। पर वर्तमान दङ्ग पर शिक्षा की कोई व्यवस्था सरकार ने नहीं की थी। अमीर अमानुल्ला से पहले अफ़ग़ानिस्तान में भी यही दशा थी। ईरान में तो फिर भी कुछ लोगों में साहित्य-चर्चा हुआ करती थी और काव्य से प्रेम था, पर अफ़ग़ानिस्तान में तो यह भी नहीं था। अफ़ग़ान जनता को विद्या, संस्कृति और कला से कोई प्रेम नहीं था। दस-पाँच परिवारों में यदि सभ्यता और शिष्टता हुई भी, तो यह किस गिनती में। अधिकांश जनता इन गुणों से शून्य थी। धर्म के ठेकेदार मुस्ल्ला लोग भी नाम मात्र के पढ़े-लिखे थे। काबुल और कन्धार जैसे नगरों में भी गिनती के मकतब थे, जिनकी व्यवस्था की सरकार को कोई चिन्ता न थी।

तुर्की में स्वतन्त्र देशी स्कूल

अस्तु, प्रजातन्त्र स्थापित होते ही विदेशियों की शिक्षा-संस्थाओं पर तुर्की सरकार का आधिपत्य होने लगा। क्योंकि इन संस्थाओं के कारण तुर्की सरकार का

शिक्षा-विभाग दबा हुआ था और राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं होने पाती थी। राष्ट्रीय आवश्यकताओं को लक्ष्य में रख कर वहाँ शिक्षा नहीं दी जाती थी। और विदेशी बस्तियों को तुर्की राज्य की आवश्यकताओं से सम्बन्ध ही क्या था। उस समय सब अच्छे स्कूल और कॉलेज विदेशियों के ही थे। सरकारी स्कूलों में उच्च विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध उत्तम नहीं था। इस प्रकार शिक्षा-विभाग अधिकांश विदेशियों के हाथ में होने से एक प्रकार से तुर्की का दिमाग ही विदेशियों के हाथ में था। इन स्कूलों में प्रधानता फ़्रेञ्च स्कूलों की थी, जिनमें कई हज़ार तुर्की लड़के पढ़ते थे। यही कारण है कि इस समय तुर्की में फ़्रेञ्च भाषा का इतना अधिक प्रचार है। लोसान की सन्धि के बाद जब तुर्की की विदेशी ईसाई बस्तियाँ तुर्की को छोड़ कर अपने-अपने देश में जाने लगीं तो इन संस्थाओं का रूपान्तर होने लगा। इनका सञ्चालन तो विदेशियों के ही हाथ में रहा, परन्तु ध्येय में परिवर्तन होने लगा। इनमें तुर्की विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी और ईसाई विद्यार्थियों की संख्या घटने लगी। इनके पाठ्यक्रम का तथा सञ्चालन का निरीक्षण तुर्की शिक्षा-विभाग के कर्मचारीगण करने लगे। विदेशी मिशनरी स्कूल, जो पहले स्वतन्त्र थे, सब शिक्षा-विभाग के अधीन हो गए। इनमें बहुत से बन्द भी हो गए। १९२२ से पूर्व तुर्की में अमेरिका के तीन कॉलेज, एक विश्वविद्यालय और पाँच सौ से ऊपर अन्य छोटी संस्थाएँ थीं और सब तुर्की सरकार से स्वतन्त्र थीं, पर अब सबका शिक्षा-विभाग निरीक्षण करता था। विदेशी संस्थाओं का रूपान्तर होता जाता है या वे बन्द होते जाते हैं। इन स्कूलों में तुर्की विषयों का अध्ययन और कुछ तुर्की अध्यापकों का होना अनिवार्य कर दिया गया है। किसी धर्म-विशेष की शिक्षा देना, तुर्की राज्य के विरुद्ध किसी प्रकार की बातें बतलाना मना है। जहाँ इन बातों का उल्लङ्घन होता है, उन संस्थाओं को बन्द होना पड़ता है।

नवीन शिक्षा-प्रणाली

वैसे तो यूरोप की नक़ल करने के लिए १९१३ में ही तुर्की राज्य में शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी, पर इसका

पालन नहीं होता था और विदेशी स्कूलों के कारण कोई एक प्रकार का ढङ्ग निश्चित नहीं होने पाता था। अब शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है और इस नियम का पालन करवाया जाता है। सात और सोलह वर्ष के बीच के सब बच्चों का स्कूलों में पढ़ना लाज़िमी है। शिक्षा का माध्यम तुर्की भाषा है। ऊँची कक्षाओं में पहुँचने पर फ़्रेञ्च दूसरी भाषा की भाँति पढ़ाई जाती है। सरकारी या अन्य स्कूलों में किसी प्रकार के धर्म की शिक्षा देना मना है। सन् २८ में दो अमेरिकन महिलाओं पर इस नियम का उल्लङ्घन करने पर मुकदमा चलाया गया था। सन् १९२४ में सब धार्मिक स्कूल तोड़ दिए गए और उनकी सम्पत्ति शिक्षा-विभाग में दे दी गई। कुस्तुन्तुनियाँ में पहिले जो नाममात्र का विश्वविद्यालय था वह अब वास्तव में विश्वविद्यालय बन गया। वहाँ पर अनेक उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती है और उनके विभाग प्रति वर्ष उन्नत तथा विस्तृत किए जा रहे हैं। विज्ञान, राजनीति, इज़ी-नियरिङ्ग और चिकित्साशास्त्र पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। देश भर में और विशेषकर एनेटोलिया में कितने ही कृषि-स्कूल भी खोल दिए गए हैं। अब तक तुर्की भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती थी, पर अब स्कूल, कॉलेज, दफ़्तर आदि सब जगह तुर्की भाषा रोमन लिपि में लिखी जाने लगी है। तुर्की के अनेक विद्यार्थी फ़्रान्स और जर्मनी आदि देशों में शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त भेजे गए हैं। जिन लोगों की आयु स्कूलों में पढ़ने योग्य नहीं है और अपने काम-धन्धों के कारण यथानियम पढ़ भी नहीं सकते, ऐसे लोगों को साक्षर बनाने का विशेष प्रयत्न किया गया है। सन् १९२८ में इस कार्य को करने के लिए चौदह हजार अध्यापक थे। तुर्की स्कूलों में ऐसी पुस्तकें पढ़ाना मना है, जिनमें यूनानी वीरों का उल्लेख हो या तुर्की की निन्दा हो।

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में शिक्षा-प्रचार

ईरान में अभी शिक्षा का इतना प्रचार नहीं हुआ है, परन्तु उन्नति अवश्य होती जाती है। ईसाइयों के मिशनरी स्कूलों में भी फ़ारसी का पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया है और प्रारम्भिक ६ कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम भी फ़ारसी ही रखा गया है। सरकार ने एक शिक्षा-विभाग की व्यवस्था की है और स्कूलों में

यूरोपीय प्रणाली से शिक्षा दी जाती है, जिसमें विज्ञान और राजनीति का स्थान दिन-दिन बढ़ता जाता है। गत वर्ष नौका-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सोलह विद्यार्थी फ़्रान्स भेजे गए थे। अन्यान्य कला और व्यवसाय की शिक्षा के लिए भी विद्यार्थी बाहर भेजे जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में शिक्षा का प्रचार अमानुषाने किया था। राज्य-क्रान्ति के पश्चात् जब रूसी सरकार ने पश्चिमी तुर्किस्तान में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर दिया और वहाँ प्रबल वेग से उन्नति होने लगी, तो अफ़ग़ानिस्तान पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १९२० में अफ़ग़ानिस्तान ने चीन, फ़्रान्स और इटली से सन्धियाँ कीं और रूसी, तुर्की, फ़्रेञ्च तथा इटेलियन अफ़सरों की सहायता से अपने राज्य के विभागों की उन्नति आरम्भ की। इन देशों से कितने ही इज़िनियर और अध्यापक बुलवाए गए और अफ़ग़ानी नवयुवक इनसे शिक्षा पाने लगे। छापाखाने का प्रचार तेज़ी के साथ बढ़ाया जाने लगा और समाचार-पत्रों को लोक-प्रिय बनाने के यत्न होने लगे। सन् १९२३ में अकेले काबुल से ९ पत्र प्रकाशित होने लगे और प्रत्येक उच्च कर्मचारी के लिए कम से कम दो पत्रों का ग्राहक होना अनिवार्य कर दिया गया। सारे देश में प्रारम्भिक और मिडिल स्कूल खोले गए और प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क कर दी गई। कला-कौशल सिखाने का भी प्रबन्ध किया गया। १९२४ में दो कॉलेज भी स्थापित किए गए। एक में फ़्रेञ्च और दूसरे में जर्मन अध्यापक रखे गए। उच्च और सम्पन्न परिवारों के लड़के शिक्षा-प्राप्ति के लिए यूरोपीय देशों में भेजे गए। बच्चपुसत्रका के क्षणिक शासन में शिक्षा को गहरा धक्का पहुँचा था। कॉलेज बन्द हो गए थे और पुस्तकालय तथा अजायबघर और पुरातत्व-विभाग का संग्रहालय सब नष्ट कर दिए गए थे। स्कूल बन्द कर देने का आदेश हो गया था।

महिला-स्वातन्त्र्य

महासमर से पूर्व मुस्लिम-जगत में महिलाओं की दशा अच्छी नहीं थी। सर्वत्र घोर परदे का प्रचार था और इस कारण वे अविद्या के अन्धकार में डूबी हुई थीं। तुर्की के कुछ परिवारों में शिक्षा और स्वातन्त्र्य का



आरम्भ होने लगा। पर इसमें अनेक राजनीतिक बाधाओं का सामना करना पड़ा था। एक समय तुर्की में यह दशा थी कि यदि किसी स्त्री की उज्जली भी बुर्के में से दीखती हो या वह किसी पुरुष की तरफ कुछ सङ्केत करती हुई जान पड़ती हो या रात में आठ बजे के बाद कहीं घूमती हो, तो उसको पुलिस गिरफ्तार कर सकती थी। ईरान में भी स्त्रियाँ बिना बुर्के के बाहर नहीं निकल सकती थीं और गाड़ी या मोटर में पुरुष के पास नहीं बैठ सकती थीं और न थिएटर आदि देखने जा सकती थीं। सुलतान के अन्तःपुर में तो सैकड़ों स्त्रियाँ भरी ही रहती थीं, परन्तु साधारण तुर्क भी प्रायः एक से अधिक स्त्रियाँ रखता था। कुर्दिस्तान में तो बिरला ही पुरुष ऐसा होता था, जिसके एक ही स्त्री हो। यही प्रथा अरब, मिस्र, ईराक, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में भी पूर्णरूप से प्रचलित थी। लेकिन परदा सर्वत्र एक सा नहीं था। कुर्दिस्तान में स्त्रियाँ खेतों पर काम करती थीं, अरब में वेदूयी जाति की महिलाएँ भी बाहर निकला करती थीं और मोरक्को आदि राज्यों में तो पुरुषों का सब कार्य स्त्रियाँ करती थीं। परन्तु उच्च कुलों में सर्वत्र परदा था। इतने बन्धन होते हुए भी स्त्रियों के क़ानूनी अधिकार बहुत ऊँचे थे। अन्य देशों की स्त्रियों की अपेक्षा मुस्लिम स्त्रियों को स्वतन्त्रता तो अत्यन्त कम थी—बल्कि नहीं सी थी—परन्तु जायदाद वगैरह पर उनके अधिकार काफ़ी अच्छे थे।

स्वातन्त्र्य नियम

यूरोप के सम्पर्क से सबके विचारों में परिवर्तन तो होता जाता था, पर राज-नियम का विरोध करने को किसी का साहस नहीं होता था और अविद्या के कारण अधिकांश लोग परम्परा को भी नहीं त्यागना चाहते थे। तुर्की, मिस्र और ईरान आदि देशों में वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में ही अनेक मुस्लिम परिवार सभ्यता के रँग में इतने रँग गए थे कि उनकी महिलाएँ यूरोपीय पोशाक पहिने लगी थीं और यूरोपीय भाषाओं के उपन्यास पढ़ती थीं। इतनी उन्नत होने पर उनको परदा तो कब पसन्द हो सकता था, परन्तु सामाजिक निन्दा और राज्य-भय उनको रोके हुए थे। महासमर के समय यूरोपीय सभ्यता की चरचा मुस्लिम-संसार में घर-घर

होने लगी और मुस्लिम महिलाओं में सामाजिक स्वातन्त्र्य की अभिलाषा बढ़ने लगी। तुर्की में तो स्त्रियाँ इतनी उन्नत और अधीर हो गई थीं कि यदि महिला-स्वातन्त्र्य के विरुद्ध राजनियम बने रहते, तो सामाजिक विप्लव हो जाता। हतीदा अदीब हानुम और लतीफ़ ख़ानुम जैसी उच्च शिक्षिता महिलाएँ परदे की प्रथा को कहाँ तक स्वीकार कर सकती थीं। प्रजातन्त्र स्थापित होने पर कमालपाशा ने इस ओर ध्यान दिया। महिला-स्वातन्त्र्य के महत्त्व को वह पहिले ही समझता था, इसलिए उनमें बढ़ती हुई जागृति से उनको और भी उत्साह मिल गया। परदे के सम्बन्ध में जो राजनियम था वह तोड़ दिया गया और यह राजनियम हो गया कि जब तक एक स्त्री जीवित हो, तब तक दूसरी स्त्री से कोई विवाह न करे। मिस्र में भी परदा-क़ानून तोड़ दिया गया और ईरान के शाह ने भी इस नियम को शनैः-शनैः शिथिल करके अन्त में बिल्कुल तोड़ डाला। वहाँ पहले तो यह नियम बनाया गया था कि स्त्रियाँ अपने पति, भाई या पिता के साथ खुली हुई गाड़ी या मोटर में घूम सकती हैं और सिनेमा तथा थियेट्रों में भी जा सकती हैं, परन्तु पुरुषों से अलग बैठें। तदनन्तर १९२८ में यह निश्चय हुआ कि जो स्त्रियाँ परदा छोड़ना चाहें वे छोड़ सकती हैं। राजनियम न इसके विपरीत है न अनुकूल। यह व्यक्तिगत आचरण की बात है। अफ़ग़ानिस्तान में भी अमीर अमानुल्ला ने ऐसा राजनियम बनाया और स्वयं महाराणी सूरिया ने परदा हटा दिया। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में बहुविवाह के विरुद्ध भी क़ानून बने, परन्तु इनका पूर्ण रूप से अभी पालन नहीं होता।

वर्तमान दशा

मुस्लिम-जगत में तुर्की और मिस्र की स्त्रियाँ सर्वाधिक स्वतन्त्र हैं! परन्तु वहाँ भी अभी गाँवों की स्त्रियों की दशा वैसी ही बनी हुई है। तुर्की में साक्षर स्त्रियों की संख्या सौ में चार है, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ की दशा भारतवर्ष से अधिक अच्छी नहीं है। ईरान में महिलोद्धार का कार्य हो रहा है, पर अभी अन्धकार विशेष न्यून नहीं हुआ है। अफ़ग़ानिस्तान तो अमीर अमानुल्ला के बाद से पुनः उसी

गर्त में गिर गया है, जिसमें वह सन् १९१४ तक था। सीरिया में भी अन्य उन्नत देशों की भाँति स्त्रियों को स्वतन्त्रता है, पर अरब, नज्द और ईराक में अभी महिला-सुधार का आरम्भ भी नहीं होने पाया है। उत्तर अफ्रिका के मुस्लिम प्रदेशों में स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर पहले ही घोर बन्धन नहीं थे और अब्दुलकरीम के स्वातन्त्र्य-संग्राम के समय उन्होंने पुरुषों का साथ भी दिया था। परन्तु उनमें आधुनिक संस्कृति तथा शिक्षा का अभाव है। सबसे अधिक हीन दशा अरब स्त्रियों की है और भारत के मुसलमान भी अरब का अनुकरण करने में ही अपना गौरव समझते हैं। रूसी तुर्किस्तान में स्त्रियों का उद्धार अत्यन्त शीघ्र गति से हो रहा है

प्रसिद्ध महिलाएँ

मुस्लिम महिलाओं के स्वातन्त्र्य का श्रेय अधिकतर लतीफा हानुम, हलीदा अदीब हानुम, डॉक्टर सक्रिया अली हानुम, महाराणी सुरिया, मिस ज़करिया सुलेमान और अबीदवा आदि को है। लतीफा हानुम कमालपाशा की योग्य तथा सुशिक्षिता धर्मपत्नी हैं और स्त्री-शिक्षा तथा महिलाओं के अधिकारों को उन्नत करने में लगी रहती हैं। कमालपाशा के राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों में इन्होंने सदैव सहयोग दिया है। हलीदा अदीब हानुम तुर्की महिलाओं की शिरोरत्न हैं। यह तुर्की, अङ्गरेज़ी तथा फ़्रेञ्च भाषाओं की पारङ्गत पण्डिता हैं और शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी विषयों की विशेषज्ञा हैं। यूरोपीय देशों के अतिरिक्त इन्होंने अमेरिका में भी भ्रमण किया है। स्त्री-शिक्षा के प्रचार में इन्होंने कमालपाशा की गहरी सहायता की। कुछ समय के लिए यह तुर्की मन्त्रि-मण्डल की सदस्या भी रह चुकी हैं। इन्होंने तुर्की जीवन, समाज, राजनीति आदि विषयों पर कई सुन्दर ग्रन्थ लिखे हैं। इनका रहन-सहन सब यूरोपीय है। डॉक्टर सक्रिया अली हानुम भी तुर्की में एक उच्च कोटि की महिला हैं। अपने कार्य में सिद्धहस्त होने के अतिरिक्त यह एक योग्य नेत्री भी हैं। अभी दो-तीन वर्ष पूर्व इसने तुर्की-महिला-सङ्घ की स्थापना की है, जिसका उद्देश्य है तुर्की महिलाओं के लिए निर्वाचन के अधिकारों की प्राप्ति। यह धुरन्धर वक्ता तथा योग्य लेखिका हैं। सन् १९२७ में दमिस्क में इन्होंने पूर्वी महिला-सङ्घ का वार्षिक

अधिवेशन करवाया था, जिसमें भारतवर्ष, चीन, अफ़ग़ानिस्तान आदि सब एशियाई देशों की स्त्रियों को अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए निवेदन किया गया था। तब से इस सङ्घ का अधिवेशन प्रति वर्ष दमिस्क में हुआ करता है। इस वर्ष इस अधिवेशन में अन्यान्य सुधार-प्रस्तावों के सिवाय यह भी प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था कि १८ वर्ष के पूर्व लड़कियों का विवाह न होना चाहिए। महाराणी सुरैया को भारतवर्ष में कौन नहीं जानता? यह अमीर अमानुल्ला की योग्य धर्मपत्नी हैं। इनके पिता का स्थान सीरिया में है और बचपन में इसने फ़्रेञ्च अध्यापिकाओं से शिक्षा पाई थी। कट्टर मुसलमानों ने इनके लिए यह अफ़वाह फैलाई थी कि यह ईसाई-धर्म को मानती हैं, पर वास्तव में बात यह है कि वह इस्लाम-भक्त होते हुए भी अन्य धर्मों को आदर की दृष्टि से देखती थीं। इनको फ़्रेञ्च सभ्यता से प्रेम है। इन्होंने अफ़ग़ानिस्तान में स्त्रियों की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किए थे और यदि अफ़ग़ानिस्तान का भाग्य सुलटा होता और अमीर अमानुल्ला को अपना प्यारा देश छोड़ना न पड़ता तो कुछ ही वर्षों में महाराणी सुरैया अफ़ग़ान महिलाओं को उन्नत, शिक्षित, संस्कृत तथा आधुनिक बना देतीं। यूरोप में यात्रा करते समय इन्होंने एक बार एक समाचार-पत्र के प्रतिनिधि से कहा था कि—“महिलाओं के स्थान के विषय में प्रारम्भिक इस्लाम-सिद्धान्त और ये और अब और हो गए हैं। इस्लाम ने स्त्रियों को विचार-स्वातन्त्र्य तथा कार्य-स्वातन्त्र्य दिया था और उनका पद पुरुषों के समान रक्खा था। राजनैतिक विषयों में भी स्त्रियों को पुरुषों से हीन नहीं समझा जाता था। स्त्रियों के लिए अपने शरीर को तो ढका रखना आवश्यक था, लेकिन चेहरा, हाथ तथा पैरों को भी ढकने का विधान नहीं था। परदे की प्रथा इस्लाम में उस समय जारी हुई थी, जब अब्बासी खलीफ़ों के शासन-काल में ईरानी सभ्यता की प्रधानता बढ़ने लगी थी। पूर्वी संसार की महिलाओं को चाहिए कि वे परदे को त्याग दें, वरना उन्नति की कोई आशा नहीं है। विशेषकर मुसलमानों की तो उन्नति नहीं होगी। पर साथ ही पूर्वी संसार की महिलाओं को आँखें मूँद कर पश्चिम का अनुकरण भी नहीं करना चाहिए।”



मिस ज़करिया सुलेमान मिस्त्र के एक सम्पन्न व्यापारी की पुत्री हैं। इन्होंने भी विदेशों में बहुत भ्रमण किया है और छोटे बच्चों की शिक्षा-प्रणाली को सुधारने में अथक परिश्रम किया है। यह किण्डर गारटन और मोन्टीसरी पद्धति पर विशेष जोर देती हैं। यह भारत में भी भ्रमण करने आई थीं। श्रीमती अबीदवा तुर्किस्तान की महिला हैं। इनका जीवन सफल परिश्रम, उत्साह और उद्यम की प्रदर्शनी है। इस महिला को बारह वर्ष की आयु में उसके सौन्दर्य के कारण एक ६० वर्ष के विलासी मुसलमान सरदार ने खरीद लिया था, जिसके तीन स्त्रियाँ पहिले ही से थीं। वहाँ इसको पैर से चोटी तक बुर्के से ढक दिया गया और कैदी की भाँति रक्खी जाने लगी। उस नरक-निवास में दो वर्ष सड़क के साथ बिताने के बाद यह वहाँ से किसी प्रकार भाग निकली। ताशकन्द नगर में जाकर यह एक पतिता की भाँति छिप कर रहने लगी। यदि इसका पता लग जाता तो इसके प्राण बचना भी कठिन था। ताशकन्द में इसने लिखना-पढ़ना सीखा और उस समय रूसी साम्राज्य में जो साम्यवाद की लहर फैलती जाती थी, उसमें यह भी सम्मिलित हो गई। धीरे-धीरे उसकी प्रतिभा प्रतिस्फुटित होने लगी और वह अति योग्य महिला बन गई। सन् १९१७ में रूस में राज्य-क्रान्ति हुई और स्त्री-स्वातन्त्र्य की घोषणा कर दी गई। तब अबीदवा प्रकट रूप से रूसी सरकार का साथ देने लगी और साम्यवाद का प्रचार करने लगी। इस कार्य में इसने अपनी अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति, प्रचार-योग्यता तथा सङ्गठन-सामर्थ्य का अच्छा परिचय दिया। और इसके कारण यह तुर्किस्तान में प्रसिद्ध हो गई। इस समय यह उज़बेकिस्तान के प्रजातन्त्र राज्य की उप-प्रधाना हैं। समरकन्द में महिलाओं के लिए इन्होंने कई संस्थाएँ

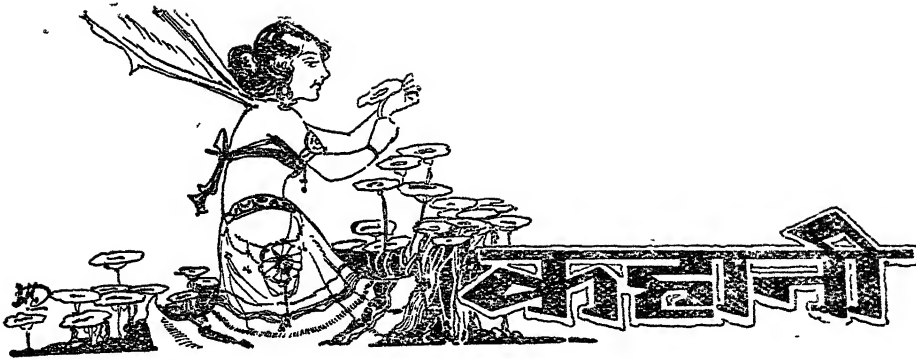
खोली हैं और सारा तुर्किस्तान स्त्री-शिक्षा प्रचार तथा विचार-स्वातन्त्र्य के प्रसार के लिए इनका ऋणी है।

वर्तमान स्वातन्त्र्य

ऐसी योग्य और परोपकार-परायणा महिलाओं के परिश्रम से तथा उन्नत शासन की सहायता से मुस्लिम देशों की महिलाएँ दिन-दिन उन्नति करती जाती हैं। तुर्की में अब परदा नाम को भी नहीं है और ईरान और मिस्त्र में इसके विरुद्ध जो राज-नियम थे, वे हटा लिए गए। तुर्की में तो परदा करना अपराध है। स्त्रियों का खुले मुँह और यूरोपीय पोशाक पहने हुए बाज़ार में घूमना, पर-पुरुषों से बातचीत करना, स्वयं सौदा करना, भाषण देना, बहस करना आदि तो साधारण बात हो गई है। मिस्त्र में भी इन बातों का प्रचार होता जाता है। ईरान में यदि स्त्रियाँ बिना नकाब पहने हुए बाज़ार में निकलें या पुरुष से बातचीत करें या अकेली गाड़ी या मोटर में बैठी हुई हों, तो अब पुलिस कोई आपत्ति नहीं करती। पहिले यह सम्भव नहीं था। रूसी तुर्किस्तान में रूस की ओर से स्त्रियों की दशा सुधारने का जोरों से प्रयत्न हो रहा है और यूरोप की नकल की जा रही है। केवल अफ़ग़ानिस्तान ही एक ऐसा मुस्लिम देश है, जहाँ इस विषय की उन्नति शिथिल पड़ गई है। मिस्त्र, ईराक़, तुर्किस्तान, ईरान आदि देशों में अभी समाज महिला-स्वातन्त्र्य को प्रायः अच्छा नहीं समझता, पर शिक्षित लोगों में इसके विरोधी इर्ने-गिने ही मिलते हैं। भारतवर्ष में भी कुछ मुसलमान महिलाओं ने इस ओर कदम बढ़ाया है, लेकिन इनकी संस्था अभी बहुत थोड़ी है।

(क्रमशः)





बिवाह और कान्हा

[श्री० पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए० (ऑनर्स), एल्-एल्० बी०]



ली के अन्त में उसका मकान था। था तो वह एक छोटा सा कमरा, परन्तु लोगों ने उसको मकान की पदवी दे रखी थी। उसकी दीवारें किसी आने वाले भूचाल की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। वर्षा का पानी पनाले के रास्ते बाहर निकलने की अपेक्षा कोई आधे दर्जन छिद्रों द्वारा छत में से कमरे के अन्दर आना आसान समझता था। वहाँ एक चास्पाई, जो बीसियों बड़इयों की ठोकरें खा चुकी थी, बिछ रही थी। उस पर एक कई रङ्गी गुदड़ी पड़ी थी। यही कान्हा की शयन-शय्या थी। इसी पर पड़ा-पड़ा वह भावी श्रीमती कान्हा के स्वप्न देखा करता था।

कान्हा के वंश का किसी को कुछ ज्ञान न था। उसके विषय में लोगों को केवल यही पता था कि पच्चीस वर्ष पहले स्थान-स्थान से फटा हुआ बढ़िया गर्म कोट, घिसी हुई रेशमी किनारे की धोती और टूटा हुआ मज्जमल का जूता पहिने उसने उस मुहल्ले में प्रवेश किया था और फिर मुहल्ला छोड़ने का नाम तक नहीं लिया। उस समय वह कोई तेरह वर्ष के लगभग होगा।

कोई दस वर्ष तक तो उसने मासिक नौकरी की। गली के प्रत्येक पुरुष को उसका स्वामी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दस वर्ष की फुटकल नौकरी के

अनन्तर उसने किसी व्यक्ति-विशेष की नौकरी न करने की शपथ ले ली। अब वह उस गली का स्वतन्त्र नौकर था। जिसका काम उसका जी चाहता था, करता था। किसी का उस पर दबाव न था। परन्तु वह गली उससे प्रेम करती थी। वह उस गली पर जान देता था।

२

“क्या बात है कान्हा?”—देवधर ने किताब मेज़ पर रखते हुए पूछा।

“बाबू जी, एक प्रार्थना है।”—कान्हा उसके पैरों में बैठता हुआ बोला।

देवधर चकित हो गया। कान्हा और इतनी नम्रता! कान्हा तो उससे ऐसे बोला करता था जैसे एक बिगड़ा हुआ लड़का बाप से बोलता है और आज यह प्रार्थना? अवश्य कोई भेद है! उसने ध्यानपूर्वक कान्हा की ओर देखा।

आज कान्हा कुछ और था। कपड़े दूध की भाँति श्वेत थे। बड़ी हुई दाढ़ी गायब थी। अन्दर धँसी हुई आँखों में सुर्मा लग रहा था।

देवधर ने सोचा, आज रङ्ग कुछ बेढब है। पूछा—क्या?

कान्हा ने देवधर की ओर सहानुभूतिकांक्षी मुख से देखा और बोला—बाबू जी, आप जानते हैं, मानवीय हृदय आशावादी होता है। मनुष्य लालसा का पुतला



है। यदि धनाढ्य को अपनी लालसा शान्त करने का अधिकार है तो क्या निर्धन को नहीं? क्या निर्धन का हृदय अपनी आशा पूर्ण करने के लिए नहीं छटपटाता?

देवधर दङ्ग रह गया। उसने कभी यह स्वप्न में भी न सोचा था कि कान्हा जैसे मनुष्य के मुख से ऐसे परि-मार्जित शब्द निकलेंगे। उसे क्या पता कि कान्हा की प्रारम्भिक शिक्षा कितनी ज़बरदस्त थी। उसे क्या पता कि कान्हा वहाँ विधाता का पानी भर रहा था।

देवधर ने ज़रा सँभल कर कहा—क्यों नहीं?

“अच्छा यदि यह बात है”—कान्हा बोला “तो क्या मैं अपनी लालसा पूर्ण नहीं कर सकता?”

“तुम्हारी लालसा क्या है?”

“मेरी लालसा?”—उसने उत्तर दिया—“मेरी लालसा × × × यदि आप मेरी हँसी न उड़ाएँ तो बताता हूँ।”

“कहे जाओ।”—देवधर ने कोमल स्वर में कहा।

“मेरी लालसा विवाह करने की है।”

यह तीसरी विस्मयजनक बात थी। देवधर कुर्सी पर बैठा था। उठ खड़ा हुआ। कान्हा की ओर शौर से देखा। फिर बैठ गया। सोचने लगा, क्या किसी पुरुष की प्रकृति जानने के लिए पच्चीस वर्ष भी कम है? क्या कोई पच्चीस वर्ष तक संसार को पागल बना सकता है? मुझे यह पता न था कि कान्हा इतना रहस्यमय है।

“अच्छा फिर?”

“यदि आप सहायता करें तो सब कुछ ठीक हो सकता है।”

“कैसी सहायता?”

“मुझे सौ रुपए मिल जाएँ तो आठ दिन के अन्दर-अन्दर मेरा कमरा ‘घर’ बन सकता है।”

सबसे पहिले कान्हा उस गली में देवधर के यहाँ रहा था। उसने जितनी सेवा देवधर की की थी, वह भूला न था। वह कान्हा को सचमुच प्यार करता था। बोला—बस एक सौ?

“हाँ जी।”

“मिल जाएगा।”

कान्हा का हृदय आनन्द से नाचने लगा। छोटी-छोटी आँखों से एक-दो बूँद आँसू टपक पड़े। धन्यवाद

के शब्द भी मुँह से न निकल सके। वह उठ कर कमरे से बाहर चला आया।

३

“बाबू जी”—वह आनन्द से विह्वल होकर बोला—“मैं उसे देख भी आया हूँ।”

“कैसे?”

“लड़की को।”—यह कहते-कहते कान्हा कुछ लजित हो गया। बाबू जी से दृष्टि हटा कर ज़मीन की ओर देखने लगा।

“कैसी है?”—देवधर ने पूछा।

“रङ्ग तो इतना गोरा नहीं, परन्तु सुखाकृति तो सचमुच रानियों जैसी है।”—यह कहते-कहते कान्हा खिल उठा।

कुछ क्षण ठहर कर देवधर ने फिर प्रश्न किया—परन्तु यह तो बताओ, बात कैसे बनी?

“यह कहानी भी खूब रोचक है।”—कान्हा मुस्करा कर कहने लगा—“पुराने अनारकली बाज़ार में रङ्ग तम्बोली की दूकान है। उसकी मेरी बहुत बन आई है। मैं प्रायः उसके यहाँ जाता-आता रहता हूँ। पिछले इतवार को मैं कुछ उदास था। रङ्ग से मिले भी कुछ दिन हो गए थे। इसलिए उसकी दूकान पर जा पहुँचा। परन्तु जाकर क्या देखता हूँ कि दूकान के अन्दर रङ्ग से कुछ दूर एक अंधेड़ स्त्री बैठी सुपारी काट रही है। मैं उसे देख कर सकुचा गया। जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रह गया। मेरी यह अवस्था देख कर रङ्ग मुस्कराया और बोला—घबरा क्यों गए हो? चले आओ, यह तुम्हारी भाभी है। पालागन करो।

“मेरी भाभी?”—मैं हैरान हो गया। यह भी खूब रही। अभी ठीक आठ दिन पहिले उसी दूकान के अन्दर वह और मैं बहुत रात तक बैठे अपने घर बसाने के उपाय सोच रहे थे और अब वह बहू लिए बैठा है। मैं अपने आपको न रोक सका। उसकी स्त्री के सामने ही बोल उठा—“परन्तु तुम तो मुझे शुरू से कहते आ रहे हो कि तुम्हारा विवाह नहीं हुआ?”

रङ्ग खिलखिला कर हँसा और बोला—मेरे विवाह को आज चौथा दिन है।

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। एक बार उसकी स्त्री की ओर देख कर फिर रङ्ग की ओर देखने लगा।



परन्तु औरत के सामने और कुछ पूछना मैंने उचित न समझा। कुछ देर बैठ कर लौट आया। परन्तु सारी रात जाग कर काटी। कुतूहल और उत्सुकता ने मुझे सोने न दिया। दिन चढ़ते ही रङ्ग की दुकान पर पहुँचा। भाग्य से उसकी पत्नी उस समय अन्दर की कोठरी में थी।

पूछने पर पता चला कि शहर के अन्दर एक 'प्रेम विवाह एजेन्सी' है। सौ रुपया फीस देकर वहाँ से रङ्ग बहू ब्याह लाया है। सौ रुपए से मेरा विवाह हो सकता है, जीवन की साध पूरी हो सकती है, यह सुन कर मैं प्रसन्नता से उछल पड़ा। उसी समय एजेन्सी में जाने के लिए रङ्ग से आग्रह करने लगा। उसने दूसरे दिन की तारीख डालने की कोशिश की। पर मैं कब मानने वाला था। उसे मना कर ही छोड़ा। भागा-भागा घर आया। बाल आदि बनवा कर तथा नहा-धोकर कपड़े बदले और एक घण्टे के अन्दर-अन्दर ही उसकी दुकान पर लौट गया। वह पहले से ही तैयार बैठा था। उठ कर मेरे सङ्ग हो लिया।

कोई आधे घण्टे में एजेन्सी के दफ्तर जा पहुँचे। बाबू अभी आकर बैठा ही था। उसने मुस्करा कर हमारा स्वागत किया। बैठने को एक-एक कुर्सी दी। उसके पूछने पर रङ्ग ने सारी बात समझा दी।

“तो ये विवाह कब तक चाहते हैं?”

“बहुत जल्दी!”—रङ्ग ने जवाब दिया—“एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर।”

“एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर?”

वह मेज़ पर पड़े हुए एक कागज़ की ओर देख कर बोला—“तो फीस अधिक देनी पड़ेगी। डेढ़ सौ रुपया।

“सौ रुपया मिलने की तो मुझे बहुत कुछ आशा थी। परन्तु डेढ़ सौ रुपया मिले न मिले।” मैंने उदास और उल्लाहना भरे मुँह से रङ्ग की ओर देखा।

शायद रङ्ग को इसी ने स्फूर्ति प्रदान कर दी। वह इस ज़ोर से मेरी वकालत करने लगा, इस ढङ्ग से अनुनय-विनय करने लगा कि बाबू पिघल ही गया। दस मिनट में ही रङ्ग उसे सौ रुपए पर ले आया।

यह कह कर कान्हा खिलखिला कर हँसा और कई चण्ड हँसता रहा।

आवश्यकता से अधिक आनन्द की एक रेखा भी मनुष्य को पागल बना देती है।

४

हलके-हलके बादल छाए हुए थे। ठण्डी हवा कपड़ों को चीर कर शरीर को छूने के लिए बेचैन हो रही थी। कोई दस बजे का समय होगा, जब मुहल्ले वालों को साथ ले लाल-लाल चमकते हुए कपड़े पहिने कान्हा विवाह के लिए निकला। मोटे-मोटे होठों पर रह-रह कर हँसी खेल रही थी। हृदय लगातार धड़क रहा था। एजेन्सी के द्वार पर शीघ्र पहुँचने के लिए उसका मन छटपटा रहा था।

कोई पन्द्रह मिनट के अनन्तर वे वहाँ जा पहुँचे।

“ऊपर जाने का यही रास्ता है?” कह कर कान्हा उतावली से सब लोगों के आगे-आगे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। परन्तु उपर की सीढ़ी पर पहुँचते ही ठिठक कर खड़ा हो गया। एजेन्सी के दफ्तर में ताला लग रहा था। कान्हा का हृदय धक् से रह गया।

“क्या मामला है?”—देवधर ने पूछा।

“ताला लग रहा है।”

“हम कुछ सवेरे तो नहीं आ गए!”—यह कह कर देवधर सबके साथ नीचे उतर आया। देखा तो एजेन्सी का साइनबोर्ड भी गायब था। उसे कुछ सन्देह हुआ। कुछ दूरी पर एक दुकान थी। देवधर वहाँ पहुँचने के लिए चला। दुकानदार देवधर को देखते ही बोला—“क्या आप यह मकान भाड़े पर लेना चाहते हैं?”

“क्या कहा, भाड़े पर?”—देवधर बोल उठा—“एजेन्सी वाले क्या छोड़ कर चले गए?”

“हाँ।”

“अब कहाँ गए हैं?”

“क्या पता”—दुकानदार ने कहा—“हम तो परसों से ढूँढ़ रहे हैं। आज-कल करते-करते हमारा महीने भर का किराया ले भागे हैं।”

कान्हा ने सब कुछ सुन लिया। परन्तु उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। मुँह पर मानों किसी ने मुहर लगा दी हो। पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा एजेन्सी वाले मकान की ओर टुकुर-टुकुर देखने लगा। अपने हृदय का वेग वह कैसे बताता?

कुछ चरणों के अनन्तर इधर से उसने सहसा मुँह मोड़ा। देवधर की ओर देख कर बोला—रङ्ग से मिलना चाहता हूँ।



आवाज़ बेतरह टूटी हुई थी।
 देवधर बाक़ी साथियों से छुट्टी ले कान्हा को साथ
 लिए रङ्गू की ओर चल दिया। पास ही ताँगा मिल
 गया। कुछ ही देर में वे रङ्गू की दुकान पर जा पहुँचे।
 परन्तु वहाँ भी ताला लगा था। परसों से वह भी
 शायब था।
 “रङ्गू के साथ तुम्हारी जान-पहचान कब हुई?”—
 देवधर ने पूछा।

“कोई डेढ़ महीना हुआ होगा।”— कान्हा ने जवाब
 दिया और फिर चुप हो गया।
 कुछ क्षण ठहर कर देवधर ने कहा—कान्हा, इन
 सब लोगों के इकट्ठा शायब होने का रहस्य समझते हो?
 “सब समझता हूँ”—कान्हा कहने लगा—“बाबू
 जी, भला संसार में इतनी दुष्टता क्यों है?”
 कान्हा की दोनों आँखों से एक-एक आँसू ढलक
 पड़ा। आखिर हृदय की प्रलय न छिप सकी।

विहग के प्रति—

[श्री० “केसरी”]

प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

छोड़ गगन की शून्य कुटी ; वसुधा में सुधा बहा जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

किस अदृश्य की रिक्त गोद में मुक्त गगन-उपवन में।
 खोज रहे हो अन्धकार में, भूले सघन गहन में।
 जगती के मधुवन के लालन, वह है सुखद बसेरा।
 होती है निशि जहाँ वहाँ होता है स्वर्ण सवेरा।

शून्य सुप्त है, आ अपने कलरव से उसे जगा जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

जीवन का पल-पल बीता जिस ममता सने सदन में,
 प्राणों की साँसों से जिसके अकथ अनन्त चयन में।
 खर पातों का नीड़ उषा का प्रथम सुहाग-झरोखा।
 यही स्वर्ग है हुआ तुम्हें किस झूठ स्वर्ग का धोखा ?

अरे लौट आ लौट विहङ्गम ! खुला पड़ा दरवाजा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

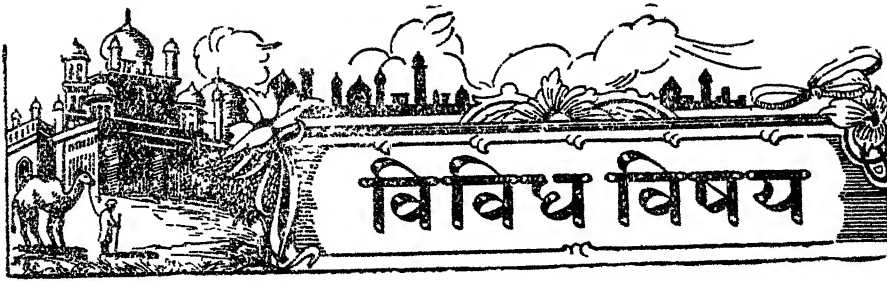
लिपटी है जिसके प्राणों में तेरी ममता माया।
 खिंची हुई मानस-पट जिसके तेरी धूमिल छाया।
 अरे वेदनामय यात्री क्यों उससे यों घबराया।
 ठहर तनिक ओ ठहर अभी क्या खाया है क्या गाया।

ताल-ताल से डाल-डाल बिटपों का फिर सरसा जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।

खोज रहे कब से बेसुध बेचैन पङ्क फैलाए।
 अहो विहग नादान ! अभी सुख-दुख कुछ जान न पाए।
 कहाँ शान्ति है वहाँ, वहाँ दुखिया ही दुखिया सारे।
 अरे फफोले हैं अम्बर के हिम से क्लिप्त तारे।

सपना है सुख-शान्ति कहाँ, अपना है जो अपना जा। प्रिय ! एक बार फिर गा जा।





जातीय क्षय रोग

— 586 —

हमारे मरने-जीने का सवाल

देश के विचारवान् लोगों का ध्यान जब से देश की दशा पर गया है, वे बराबर उसके कारणों की खोज में लगे हुए हैं। यह सभी जानते हैं कि हमारी दशा हर प्रकार से नीचे गिर गई है और दिन प्रतिदिन गिरती ही चली जाती है। हममें से अधिकांश ऐसे बेग़बबर हैं कि उन्हें यह भी पता नहीं कि आज हमारी दशा कितनी शोचनीय हो गई है।

हमारी जाति में जो घुन—जो भयङ्कर रोग—सदियों पहिले लग चुका है, वह धीरे-धीरे बराबर हमारी शक्तियों का क्षय करता चला आ रहा है। किन्तु हमें उसका कुछ ज्ञान नहीं। आज उसने भयङ्कर रूप धारण कर लिया है, तब हमारी आँखें कुछ खुली हैं। यदि पहिले ही हम चेत जाते तो हमारी यह दशा न होती। किन्तु जब रोग का आरम्भ था और वह बहुत धीमे रूप में था, हमने उसका कुछ उपाय नहीं किया। यदि उसी समय उस पर नज़र लग जाता तो आज का दिन न देखना पड़ता। अब जब रोग ने पूर्ण तौर से हमें जकड़ लिया, तब हमारी कुछ आँखें खुलीं! किन्तु अब भी बहुत से अपनी प्यारी निद्रा को नहीं छोड़ना चाहते। पहिले तो निद्रावस्था में हमें रोग लगा था, किन्तु अब रोग ही ने हमारी निद्रा को और भी प्रगाढ़ कर दिया है। यही कारण है कि अभी बहुत से लोग अधखुली आँखों से देखते हैं और फिर सो जाते हैं। इस निद्रा के कारण उन्हें भयङ्कर रोग का पता ही नहीं है। किन्तु जिन लोगों ने उस क्षय रोग की भयङ्करता को समझ लिया है, वे उसका उपाय करने के यत्न में लग गये हैं—

वे अपने जाति-भाइयों को उसकी भयङ्करता तथा उसके कारण समझाना चाहते हैं। पर निद्रा के कारण उनकी सुनने को कोई तैयार नहीं होता। इस निद्रा का इतना प्रभाव पड़ गया है कि हम जाग जाने पर भी सोते ही से रहते हैं। गहरी नींद के बाद उठने से जैसी दशा होती है, वैसी ही हमारी भी हो रही है। अपने भाइयों की चिल्लाहट की आवाज़ हमें नहीं जगा सकती। हमें तो बाहर के प्रहार ही कुछ सचेत कर सकते हैं। किन्तु प्रहार पर प्रहार लगने पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। हमारा सिर भी ठोकरें खाने का आदी हो गया है। अतः वह मामूली ठोकरों की कुछ परवाह नहीं करता। जो जाग उठे हैं वे कुछ हलचल मचाना चाहते हैं, तो अपने चारों तरफ़ इस तरह की रस्सियाँ जकड़ी पाते हैं कि पैर नहीं हिला सकते। निद्रा के मोह से तथा रोग के प्रभाव से हमारा शरीर इतना शिथिल हो गया है कि हममें उठने की शक्ति नहीं, फिर इन रस्सियों को तोड़ने की शक्ति कहाँ से आ सकती है? अतः जो जाग भी उठे हैं, वे भी पैर फटफटा कर रह जाते हैं।

हम समझते हैं कि शायद किसी के जादू से हमें निद्रा आ गई है। किसी बाहरी शक्ति ने हमको रोग-ग्रस्त कर दिया है तथा किसी ने हमारे हाथ-पैर जकड़ दिए हैं। किन्तु यह सब हमारी ही करतूतों का फल है। अपनी ही लापरवाही से हमने रोग बुलाया है, अपनी ही शिथिलता से निद्रावश हुए हैं तथा अपने ही हाथों से हमने अपने हाथ-पैर दृढ़ बन्धनों से जकड़ लिए हैं। अपने ही हाथ से हमने अपने क़ैदख़ाने की मज़बूत दीवार उठाई है तथा अपनी ही करतूतों से अपने घर को हमने बन्दीख़ाना बना दिया है। हमको इस प्रकार अपने ही बन्धनों में बँधा देख शत्रुओं ने हमारे क़िले पर अधिकार कर लिया है। गुसाईं जी ने ठीक कहा है कि :—



अपने करन डोर दृढ़ कीन्हीं ।

अपने करन गाँठि दृढ़ दीन्हीं ॥

श्री० रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि में एक कविता है, जिसका आशय भी यही है । अस्तु,

रूपक बहुत हो गया, अब सीधी बातों पर आना चाहिए । यह शिथिलता, क्षय रोग, निद्रा तथा बन्धन क्या है, यह देखना आवश्यक है । हमारे समाज-रूपी शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों की एकता नष्ट हो गई है, उनका सङ्गठन बिगड़ गया है । उसके अङ्ग एक दूसरे के सहयोग से काम नहीं करते । अतः वह खड़ा नहीं हो सकता । सङ्गठन-हीनता से इस समाज-रूपी शरीर की दृढ़ता नष्ट होकर शिथिलता आ गई है, जिसके कारण वह कुछ काम नहीं कर सकता । इसी शिथिलता का फल क्षय रोग है, जोकि प्रति क्षण हमारी शक्ति क्षीण करता जा रहा है । हमारे अङ्ग हमसे अलग होकर दूसरों की संख्या बढ़ा रहे हैं । हमारी शक्तियाँ हमसे अलग होकर दूसरों की शक्ति बढ़ा रही हैं । हमारे शरीर को मजबूत रखने के लिए पाचन-शक्ति की बहुत ज़रूरत है, किन्तु रोग के प्रभाव से हमारा हाज़मा बिगड़ गया है । बाहर के भोजन को पचा कर हम अपने शरीर को पुष्ट नहीं कर सकते । दूसरों को अपने ढाँचे में ढाल कर अपनी ताकत नहीं बढ़ाना जानते, अपने को ही दूसरों में ढकेल कर—अपने अङ्गों को काट कर दूसरों की शक्तियाँ इतनी बढ़ा दी हैं कि अब वे हमारा सारा शरीर हड़प जाने को तैयार हैं ।

यही हमारी जाति का क्षय रोग है । सब शक्तियाँ क्षीण होती जा रही हैं—उनकी पूर्ति का कुछ उपाय नहीं किया जाता । क्षति-पूर्ति के लिए यदि कुछ भी भोजन बाहर से ढाला जाता है, तो हम उसे हज़म नहीं कर सकते—अपने में नहीं मिला सकते, आँत इतनी कमज़ोर हो गई है कि बाहर से ज़रा भी चीज़ आते ही हमें क़ै-दस्त जारी हो जाते हैं और हम आपे हुए शक्तिदायक भोजन को भी फिर बाहर फेंक देते हैं । इस प्रकार हमारी शक्तियों का क्षय अनन्त काल से जारी है और उसकी पूर्ति का कुछ साधन नहीं है ।

हमारा समाज उस ख़ज़ाने के समान हो गया है, जिसमें ख़र्च ही ख़र्च हो और आमदनी कुछ भी नहीं ।

हमारा समाज उस तालाब के समान हो गया है, जिसमें से सैकड़ों नदियाँ बह कर बाहर जाती हैं और आमद एक बूँद पानी की भी नहीं है ।

इस क्षय रोग ने हमारे अनजान में सब शक्तियों का क्षय करके अब हृदय पर हमला किया है—ज्याज खा चुकने पर अब पूँजी ही को हड़प कर जाने का नम्बर है । मगर हम ऐसे अचेत हैं कि आज जब सिर पर आ पड़ा तब ज़रा करवट बदली । ऐसे ख़राब भरने वाले हैं कि यहाँ घर चाहे लुटता रहे—अङ्गों को कोई काटता रहे, पर हमें ख़बर ही नहीं—चिन्ता ही नहीं ।

निद्रावश इस क्षय रोग का पता ही हमें अब तक नहीं लगा । जब इसने पूरा अधिकार जमा लिया, तब कुछ चेत हुआ । बहुत से ऐसे भी हैं, जिनको अभी तक कुछ भान नहीं है । इनकी आँखें चिता पर ही खुलेंगी । यदि क्षय का क्रम इसी प्रकार जारी रहा, तो वह समय भी दूर नहीं है, जब इस प्राचीन सड़े, गले, घुने, प्राण-विहीन समाज के वृहत शरीर का सम्यक् रूप से अभि-संस्कार करना पड़ेगा ।

ऊपर से देखने में यह बड़ा भारी दीख पड़ता है; किन्तु यह उस खोखले वृक्ष के समान है, जो ऊपर से तो बड़ा मजबूत दिखता है, किन्तु हवा के एक झोंके से ही धराशायी हो जाता है । हमारे विशाल समाज-वृक्ष की जड़ें भी कट चुकी हैं, उसका मूलाधार नष्ट हो चुका है और वह क्षय रोग से खोखला हो गया है । अब उसे गिराने के लिए बाहरी हवा का एक हलका सा झोंका ही काफी है ।

प्रति क्षण मृत्यु उसकी ओर देख रही है । प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गए हैं, पाचन-शक्ति बिगड़ने से शक्ति का सञ्चार बन्द हो गया है । तथा इन दोनों के फल-स्वरूप सारे शरीर में जो गर्म रक्त-सञ्चार होना चाहिए वह बन्द हो गया है । जब सारे समाज-शरीर में एक ही प्रकार का प्रेम-रक्त नहीं बहता, तब हृदय की गति बन्द हो जाने में कुछ भी देर नहीं है । एक से दूसरे अङ्गों को जोड़ने वाली नस ही कट गई, तब रक्त-सञ्चार सब में एक बराबर किस प्रकार हो सकता है ? इसलिए जातीय उत्साह रूपी नाड़ी की गति भी बन्द हो गई है और शक्ति की स्वाँस चलना भी बन्द होता जाता है ।



जीने का अधिकार सबको

एक दूसरे अङ्गों में परस्पर सम्बन्ध की सब नसे कट जाने का ही कारण है कि एक अङ्ग के कट जाने पर दूसरे को उसका दुःख होना दूर रहा, उसका बोध तक नहीं होता। जब पैर, सिर और हाथों में सम्बन्ध होता है और जब वे दोनों अपने को एक ही शरीर का अङ्ग समझते हैं, तभी पैर में काँटा लगते ही सिर को वेदना होती है और वह पैरों पर झुक जाता है तथा हाथ तुरन्त उसे निकालने को दौड़ पड़ता है। नीचे दब कर पैर शरीर को चलाते हैं, उसका सारा भार सहन कर भी कुछ नहीं बोलते। सिर को जो ऊँचा स्थान मिला है, वह पैर के द्वारा ही मिला है; किन्तु वह कन्धों पर चढ़ कर पैर की तरफ़ देखना या उनको छूना भी पाप समझता है। पैरों की वेदना का उसे अनुभव ही नहीं होता। हाथ यह समझने लगे हैं कि पैरों के काँटे निकालने में हम अपवित्र हो जावेंगे। पैर भी क्रोध में कभी-कभी सिर पर चढ़ने की छटता करने लगते हैं।

बात यह है कि सब अङ्गों का विच्छेद हो गया है। अगर सब वर्ण अपने को उसी समाज-शरीर का अङ्ग समझते, तो उनके दुःख-सुख अलग-अलग न रह जाते। यहाँ तो सभी अङ्ग अपने को अलग तथा एक-दूसरे से ऊँचा समझने लगे हैं। ब्राह्मण-रूपी सिर को शूद्र रूपी पैरों के काँटों का अनुभव नहीं होता और क्षत्रिय-हाथ उसके काँटे निकालने में अग्रसर नहीं होता। ये सब अङ्ग एक-दूसरे से अलग-अलग कटे पड़े हैं, फिर एक-दूसरे के कट का कैसे अनुभव हो सकता है? जब सब अङ्ग ही कट गए, तब समाज-शरीर ही स्थिर नहीं रह सकता। उसका जीवन तो सब अङ्गों के सङ्गठन और कर्तव्य-पालन पर निर्भर था।

जब सब अङ्ग कट-कट कर अलग हो जावें, शरीर क्षय रोग से बिल्कुल अशक्त हो गया हो, रक्त-सञ्चार बन्द हो जावे, हृदय की गति तथा साँस बन्द हो जावे, तब उस शरीर के लिए सबसे अच्छी गति यही है कि जितनी जल्द हो सके, एक सुन्दर चिता बना कर उसको कालाग्नि के सुपुर्द कर दिया जावे। ऐसा शरीर यदि दुनिया में एक मिनट भी रहेगा, तो गन्दगी और बदबू फैलाने के सिवा और कुछ न करेगा।

—व्योहार राजेन्द्रसिंह, भूतपूर्व एम० एल० सी०

स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने गत फ़रवरी के 'चाँद' में "जीने का अधिकार किसको?"

नामक एक लेख प्रकाशित करवाया है, जिसमें बहुत सी बातें बड़े मार्के की हैं। फिर भी आपका सिद्धान्त कार्य-रूप में परिणत नहीं हो सकता। मैं आपको यहाँ यह बताने का उद्योग करूँगा कि ये निर्बल और निकम्मे किस प्रकार बलवान और काम के बन सकते हैं। आशा है, आप मेरी छटता को क्षमा करेंगे।

किसान ने आपसे कहा था—“इस खेत में, जहाँ आप काम करेंगे, बहुत से निकम्मे पौधे जम गए हैं, वे मकई की खेती को नुकसान पहुँचावेगे, अतएव आप कृपा करके सबसे पहिले इन्हें उखाड़ कर फेंक दीजिए, ताकि वे जमने न पावें $\times \times \times$ ।” वहाँ खेत में दो प्रकार के पौधे थे। एक तो मकई के और दूसरे उन्हें हानि पहुँचाने वाले। इनमें से आपने केवल निकम्मे और फ़सल को हानि पहुँचाने वाले पौधे ही उखाड़े होंगे। एक भी मकई का पौधा नहीं उखाड़ा होगा, चाहे वह दुर्बल ही क्यों न रहा हो। जिस प्रकार मकई के सब पौधे एक समान होते हैं, उनके दाने, पौधे और फल इत्यादि सब एक ही समान होते हैं, मानव-समाज के सब प्राणी भी इसी तरह से समान हैं। अतएव इनमें से कुछ नष्ट नहीं किए जा सकते। आज संसार के सभ्य देश विश्व-भ्रातृ-प्रेम (Universal brotherhood) की न्यूनता का अनुभव कर रहे हैं। आपने भी अपने लेख में अन्याय करने वाले धनवानों को धिक्कारा है। क्योंकि वे अपने दुर्बल भाइयों पर अन्याय और लूट का खड्ग चलाते हैं। ठीक है, आप अपने दुर्बल भाइयों पर होने वाले अत्याचार को कैसे सहन कर सकते हैं? फिर आप इनके नाश करने की बात क्यों सोच रहे हैं? अब रहा निकम्मे पौधे का प्रश्न। वास्तव में हमारे समाज में प्रचलित कुरीतियाँ हैं, जिन्होंने हमारी जापरवाही और हमारे अन्धविश्वास के कारण समाज और देश में अपनी जड़ जमा ली है। हज़ारों मनुष्य-रत्न इसके दाँतों के तले पिस गए हैं। इसके प्रमाण में मैं फिर उसी किसान के कथन को रखता हूँ—“ये पौधे उस खाद को खा



जावेंगे, जो मैं मकई की खेती के लिए इस भूमि में डालूंगा। वे केवल खाद ही को नहीं खाएंगे, बल्कि मक्का की बढ़ती को रोक देंगे और उसके भोजन को स्वयं उड़ा जायेंगे। ऐसी अवस्था में इनका उखाड़ फेंकना ही कल्याणकारी है, $\times \times \times$ ।” अब आप स्वयं ही हमारे देश की कुरीतियों और अन्धविश्वास का मिलान निकम्मे पौधों से करके देख लें।

अब यह प्रश्न उठता है कि हम दुर्बल किसको कहें? क्या अन्धे, बहरे, गूंगे आदि दुर्बल हैं? नहीं। किसी भी मनुष्य का एक अङ्ग कमजोर होने से वह दुर्बल और निकम्मा नहीं कहा जा सकता। इन्द्रियों का केन्द्र और चालक मस्तिष्क है। क्या अन्धे का मस्तिष्क विकृत है? यदि उन विकृताङ्गों की उचित सहायता की जाय, तो वे हमारे सबल कहे जाने वालों के कान बहुत सी बातों में काट लें। इसका प्रमाण हमें श्रीमती हेलन किलर (Helen Keller) के जीवन-चरित्र से मिलता है। जब उसकी अवस्था केवल ग्यारह महीने की थी, तभी एक रोग (Cerebro-spinal meningitis) के कारण वह अन्धी, बहरी और गूंगी हो गई। आपके सिद्धान्तानुसार तो वह निकम्मी—बिल्कुल निकम्मी हो गई थी। अस्तु, उसे उखाड़ फेंकना ही उचित था। क्योंकि शब्दाघात प्राप्त कराने वाली तीनों इन्द्रियाँ—कान, नेत्र और बोलने की शक्ति—विनष्ट हो गई थीं। परन्तु ईश्वर की दृष्टि में मनुष्य की आत्मा का मूल्य बहुत है। एक बार महात्मा ईसा ने कहा था—‘यदि कोई मनुष्य सारा संसार कमावे और अपनी आत्मा को खोवे; तो उसे क्या लाभ?’ इससे प्रत्यक्ष है कि सारा संसार भी एक मानव प्राणी की बराबरी नहीं कर सकता। अस्तु, हेलन की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। एक शिक्षिका आई और उसने हेलन को सूँघने, चखने और छूने की शक्तियों द्वारा शब्द-ज्ञान कराना आरम्भ किया। जिस समय उसने पहिला शब्द W-A-T-E-R सीखा तो उसके आनन्द की सीमा न रही और उस समय उसे ज्ञात हुआ कि संसार में हर एक वस्तु के पृथक्-पृथक् नाम हैं। कुछ ही महीनों में वह शब्द और फिर वाक्य और बाद में भली भाँति बोलना सीख गई। यही गूंगी, बहरी, अन्धी लड़की युवावस्था में रेड क्लीफ (Red-cliffe College) से ऑनर्स में बी० ए० पास

हुई। वहाँ पढ़ाई जाने वाली लेटिन, ग्रीक, फ्रेञ्च, जर्मन और अङ्गरेज़ी भाषाओं में उसने निपुणता प्राप्त की, कविता और इतिहास की परिदृष्टि बनी, शुद्ध अङ्गरेज़ी लिखने में अद्वितीया रही और दर्शन-शास्त्रियों में ऊँचा स्थान प्राप्त किया। यह है मानवीय प्रयत्न का उज्ज्वल नमूना, जिससे दुर्बलों को नाश करने वालों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमें याद है कि नाश करने वाले से बचाने वाला बड़ा है। हमारा बलवानपन और आनन्द दुर्बलों का नाश करने में नहीं, परन्तु उनके उत्थान में होना चाहिए। एक समय मैंने एक डॉक्टर महाशय से पूछा—आपको सरकारी नौकरी में बहुत कम आय है, तो भी आप उसे छोड़ कर कोई दूकान लगाने का उद्योग नहीं करते। डॉक्टर साहब बोले—महाशय जी, आपको इस डॉक्टरी का मज़ा मालूम नहीं। मुझे एक गरीब रोगी को अच्छा करने में जो मज़ा आता है, वह लाखों रुपए प्राप्त करने पर भी न आएगा।

रही हज़ारों हट्टे-कट्टे मुस्तखड़े साधु-फ़कीरों की और वैरागी आदि की समस्या, तो उसे भी भारत चाहे तो एक ही वर्ष में हल कर सकता है। हमारे देश का लगभग एक अरब रुपया ये लोग हड़प कर जाते हैं और लोगों की कोई भलाई इनसे नहीं बन पड़ती। इन लोगों ने जो आडम्बर रच रखे हैं, उनका भण्डाफोड़ करना पड़ेगा। साथ में भारतवासियों को धर्म का वास्तविक अर्थ समझा कर इन जालसाज़ों से बचने का उपाय करना होगा। न इन्हें बैठे-ठाले एक पैसा मिले और न ये साधू बन कर समाज का भार बने रहें। इस तरह ये निकम्मे से अच्छे बन जावेंगे।

रोटी का प्रश्न सचमुच बढ़ा जटिल है, और होता जा रहा है। हज़ारों मन गेहूँ कोठिलों में सड़ रहा है, फिर भी दुनिया दाने-दाने को तरस रही है। मिल के गोदामों में हज़ारों गाँठें कपड़े कीड़ों का घर बन रही हैं, फिर भी बहुतों को एक हाथ कपड़ा नसीब नहीं हो रहा है। यह भूसे पर बैठे हुए कुत्ते भूखों को भी नहीं खाने देते। हाल ही में एक फ़ोर्ड ने धनी राष्ट्र अमेरिका को लोहे के चने चबवा दिए। यह उसने केवल अपना रुपया बैङ्कों में जमा न करके किया। फल यह हुआ कि अच्छे-अच्छे धनियों को बनियों के हाथ जोड़ने पड़े।



इन पूँजीपतियों की स्वार्थपरता ज्यों-ज्यों बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों संसार दाने-दाने को तरसता जायगा। संसार को अपनी नीति में गहन परिवर्तन करना होगा, रीतियों में घोर क्रान्ति मचानी होगी, नहीं तो कुछ ही वर्षों में संसार रसातल को चला जायगा।

एक स्थान पर आप लिखते हैं—“भला सोचिए तो सही कि निर्बल, व्याधिग्रस्त और वीर्यहीन स्त्री-पुरुषों को विवाह कर, निकम्मे बच्चे पैदा करने का क्या अधिकार है? × × ×” यह कथन माननीय है, मार्के की बात है। पर इसमें तो समाज ही का दोष अधिक है। इस उत्थान के युग में भी मनुष्य प्रति सैकड़ा स्त्री-पुरुष, बालकों के सामने बात-बात में भद्दी गालियाँ देते हैं, जिन्हें बच्चे बाल्यावस्था ही से अच्छी तरह सीख लेते हैं। कुछ बड़े होने पर वे उनका अर्थ भी समय से प्रथमही समझने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार वे गालियाँ उन्हें कुप्रवृत्ति की ओर ले जाती हैं और कुप्रवृत्ति पापाचार के दलदल में ढकेल देती है। तब उनकी आँखें खुलती हैं। परन्तु हाय! बहुत देर में, सर्वनाश होने के बाद, मौत के जबड़ों में पहुँचने पर उन्हें अपने पतन—घोर पतन का पता लगता है। हमें समाज में अपनी त्रुटियों ही के कारण वीर्यहीन स्त्री-पुरुष मिलते हैं। गालियाँ बोई गई थीं, अब उसका फल बटोर रहे हैं वीर्यहीन स्त्री-पुरुष के रूप में। हमारी समझ में इसका भी उपाय हो सकता है।

इसके बाद आपने दुर्बलों को लक्ष्य करके कहा है—“भारतवासियों को शीघ्र ही इस कूड़े-कचरे को साफ़ करना होगा, नहीं तो उनकी आबादी उन्हें इस पर मजबूर करेगी × × ×।” तनिक विचार तो करो, क्या यह मानव प्राणी कूड़ा-कचरा है। महाशय जी! मनुष्य को आप कचरा बना रहे हैं। कचरा तो हमारी बुरी टेवें हैं, जो समाज में दुर्गन्ध फैला रही हैं। उन्हें छोड़ने से हमारे देश का वायु शुद्ध होगा, न कि इन दुर्बलों को मारने से। हमें समय के अनुकूल चलना होगा, नहीं तो हमारी खैर नहीं। गर्मी आते ही शरीर से गर्म कपड़े उतार कर ठण्डे कपड़े पहिने जाते हैं। क्यों? मौसम बदल गया। बस, यही बात समाज के नियम और कानूनों की होना चाहिए। हमारे रीति-रिवाज ऑर्डिनेन्स हैं, जो किसी विशेष दशा को रोकने के लिए बने थे, परन्तु काम निकलते ही उन नियमों

की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे प्राचीन रीति-रिवाज सब उस समय के लिए ठीक थे। परन्तु अब समय कुछ और है। अब नई समस्या का युग है, इसलिए नए समाज-ऑर्डिनेन्स होने चाहिए।

अब रहा युद्ध का प्रश्न, जिसके सम्बन्ध में आपका मत है—“युद्धों में तो समाज का सर्वश्रेष्ठ तरुण दल ही मारा जाता है, निकम्मे पौधे तो मज्जे में चरा करते हैं। × × ×।” मनुष्य युद्ध अपने स्वार्थ के लिए करता है। बलवान राष्ट्र दुर्बल को जीत कर उस पर अत्याचार कर अपना मतलब गाँठने के लिए हज़ारों को मृत्यु देवी की भेंट करता है। यह तरुण दल ही संसार को त्राहि-त्राहि करा देता है। परन्तु, आपके कहे अनुसार, निकम्मे ही मनुष्य का गुण रखते हैं। वे अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट नहीं देते। जब तक कुछ स्वाधीन जीव शरीरों को चतुराई से लूट कर अपनी जेब गर्म करना नहीं त्याग देंगे, तब तक यह रोटी का प्रश्न और युद्ध का भय दिन-दिन बढ़ता जायगा। आपका कथन क्या ही मर्मस्पर्शी है—“वे धन के ज्ञातिर दूसरों के मकान नीलाम करा लेंगे। दुधमुँहे बच्चों को उनकी भोपड़ी से निकलवा कर उन पर कब्ज़ा कर लेंगे; विधवाओं पर भारी जुलम करेंगे और नारी जाति के अधिकारों का कभी भी आदर नहीं करेंगे। × × ×” वास्तव में यह धनी, शक्तिशाली और इनका पैसा बलवान है। किसी ने कहा है कि ‘राम के भक्त फिरें बन-बन में; रुपया राज करे लन्दन में।’ आज यह रुपया (सिक्का) संसार का सम्राट है, ईश्वर बन बैठा है। यही वजह है कि परिश्रम करने वाले ईमानदार एक समय पेट भर रोटी भी नहीं जुटा सकते और बेईमान मज्जा मार रहे हैं। तिस पर भी हम उन्हें बड़े कहते, उनके सामने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते और उन्हें अन्नदाता कह कर पुकारते हैं। समय दूर नहीं है, जब यह धनवान मेहतरों से भी तुच्छ समझे जावेंगे।

तब दुर्बलों के साथ क्या किया जाना चाहिए? अब यही महत्वपूर्ण प्रश्न मन में उठता है। संसार यदि सभ्य बना है तो वह केवल शिक्षा ही के कारण बना है। जन्मते समय बालक और जानवर के मस्तिष्क में कोई अन्तर नहीं होता। यदि आदमी “आदमी” है तो केवल शिक्षा ही से है। यदि दुर्बल भी शिक्षा पा जाय तो



सबल हो जावेंगे। मेरी तो आप से यही राय है कि आप अपने नाश करने वाले सिद्धान्त को त्याग कर इन दुर्बलों के उत्थान में जी-जान से लग जायें, तो देश और समाज का बड़ा उपकार हो।

—योहन सुरेन्द्रपाल 'पाल'

❁

❁

❁

कथा रामायण की कथा

काल्पनिक है ?

(प्रत्यालोचना)

अक्टूबर (१९३२) के 'चाँद' में मेरा जो 'क्या रामायण की कथा काल्पनिक है ?' शीर्षक लेख निकला था, उसकी एक आलोचना मैंने दिसम्बर (१९३२) के 'चाँद' में पढ़ी। आलोचक महाशय ने अपनी आलोचना में बहुत सी ऐसी बेसिर-पैर की बातें लिख मारी हैं, जिन पर विचार करना अपनी शक्ति तथा समय को केवल व्यर्थ नष्ट करना है। अतः इस लेख में हम आपके केवल मुख्य-मुख्य आक्षेपों पर ही विचार करेंगे।

(१) रामायण का रचना-काल

आपका कथन है कि रामायण की रचना ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुई थी। परन्तु स्वयं रामायण का यह दावा है कि उसे ब्रह्मा जी तथा देवर्षि नारद की प्रेरणा से आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने, जो रामायण के ही अनुसार रामचन्द्र के समकालीन थे, रच कर पति-प्रत्याख्याता, निजशरणापन्ना, सीता के लव-कुश नाम-धारी यमज पुत्रों को पढ़ाया और रामारवमेध के समय उन्हें अयोध्या ले जाकर रामचन्द्र के दरबार में रामायण गवाया, जिससे यह ध्वनि निकलती है कि यह ग्रन्थ रामचन्द्र के समय में ही रचा गया था। अतः आपका पूर्वोक्त कथन कि रामायण ईसा से ५०० वर्ष पूर्व अर्थात् गौतम बुद्ध के समय में लिखी गई थी, उसके रचना-काल-विषयक दावे को किस प्रकार जड़ से उन्मूलित कर, इस ग्रन्थ के अन्य सभी विवरणों को भी अविश्वसनीय तथा सन्दिग्ध बना दिया, इसे पाठकबुद्ध स्वयं देख लें। आपके ही उक्त कथन के द्वारा आपके रामायण-विषयक

चिरपोषित मत को कि इसकी सभी कथाएँ सत्य घटनाओं पर अवलम्बित हैं, इस प्रकार खण्डित होते देख मुझे उस मौलाना साहब का लतीफ़ा याद आ गया, जिन्होंने स्वप्न में शैतान को देख उसकी दाढ़ी उखाड़ डाली; पर दाढ़ी के फिटकने से जो आपकी आँखें खुलीं तो देखा कि अपनी ही दाढ़ी का सकाया कर डाला है !!

(२) रामायण की वंशावली

यह कोई आवश्यक नहीं कि जो ग्रन्थ पहले लिखे जायें वे पीछे लिखे जाने वाले ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक माननीय हैं। मानव-ज्ञान की परिधि उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जिस बात को हम पहले सत्य मानते थे, वह अब असत्य सिद्ध होती जा रही है। पहले लोगों की धारणा थी कि पृथ्वी अचल है। प्राचीन ज्योतिषियों ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में इसी मत का प्रतिपादन किया है। पर आधुनिक ज्योतिष ने पृथ्वी की स्थिरता-विषयक उक्त मत का पूर्णतः खण्डन कर दिया है। अतः अब हम इस विषय में पूर्वलिखित ग्रन्थों की अपेक्षा नवीन ग्रन्थों को ही सत्य मानते हैं। इस तर्क-पद्धति का आश्रय लेने से तो वंशावलियों के विषय में रामायण की अपेक्षा पुराण ही अधिक ग्रामाणिक जँचते हैं, यों तो असम्भव बातें थोड़ी-बहुत दोनों में ही हैं।

वंशावलियों के विषय में रामायण की अपेक्षा पुराण अधिक महत्व रखते हैं; इसके अन्य भी कई कारण हैं। प्रथम तो वंशावलियों का वर्णन करना, पुराणों का विशेष कर्तव्य सा है, पर रामायण जैसे पुराण-भिन्न ग्रन्थों का इस विषय में चर्चा करना उनकी अनधिकार चेष्टा है; और यदि उन्होंने किसी कारणवश चर्चा की भी, तो वह प्रमाण-कोटि में स्वीकृत नहीं हो सकती। स्वयं पुराणकारों ने ही पुराणों के लक्षण बताते हुए लिखा है :—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वान्तराणि च ।

वंशानुचरितं चेति, पुराणं पञ्च लक्षणम् ॥

अर्थ—“सृष्टि, प्रलय के बाद पुनः सृष्टि, देवताओं, असुरों तथा मानव राजाओं की विविध वंशावलियाँ तथा उन वंशों में उत्पन्न हुए राजाओं की चरितावली जिन ग्रन्थों में लिखी जायें वे ही इन पञ्च लक्षणों से युक्त पुराण ग्रन्थ हैं।”



उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि वंश-वर्णन पुराणों का विशेष उद्देश्य है; अतः इस विषय में रामायण की अपेक्षा पुराण अधिक माननीय हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन, एवं प्राच्य तथा पाश्चात्य, सभी विद्वानों ने हिन्दू-सभ्यता की आयु और प्राचीन राजवंशों के समय का पता लगाने के लिए, प्रागैतिहासकालीन भारत में किसी स्थिर सन्-सम्बन्ध के अभाव के कारण, पौराणिक वंशावलिओं का ही आश्रय लिया है। जिस प्रकार क्रानून के लिए वकील और बैरिस्टर तथा दवा के लिए हकीम, वैद्य और डॉक्टर अपने-अपने विषय के प्रमाण (Authority) माने जाते हैं, उसी प्रकार वंश-विषय में पुराण ही प्रमाण समझे जाने चाहिए, रामायण नहीं।

द्वितीय, रामायण की वंशावली पर दृष्टिपात करते ही यह बात साफ़-साफ़ मालूम पड़ जाती है कि यह जाली और प्रचिस है। इस वंशावली में परस्पर पिता-पुत्र का सम्बन्ध रखते हुए नहुष और ययाति रामचन्द्र के समीपी पूर्वज दिखलाए गए हैं, जो पूर्णतः असत्य है। ये दोनों पिता-पुत्र चन्द्रवंश के विख्यात राजा हों गए हैं। नहुष वे थे जिन्होंने जबरदस्ती इन्द्राणी से विवाह करना चाहा था और उनके पुत्र ययाति वे थे, जिन्होंने बुढ़ापे में भी विषय-भोग की तृप्ति के लिए अपने पुत्रों से युवावस्था मँगनी माँगी थी। वस्तुतः ये श्रीकृष्ण के पूर्वज थे, न कि श्रीरामचन्द्र के। यदि कोई कहे कि एक नाम के दो भिन्न व्यक्तियों का दो भिन्न वंशों में उत्पन्न होना कोई असम्भव नहीं है, तो ऐसी बात भी यहाँ नहीं है। यहाँ तो दो नामों के साथ-साथ उन नामों के धारण करने वाले एक नहीं दो-दो व्यक्तियों के बीच परस्पर पिता-पुत्र के सम्बन्ध की भी समता दिखलाई गई है, जिसकी सत्यता किसी भी विचारशील मनुष्य की अन्तरात्मा स्वीकार नहीं कर सकती। प्रामाण्य ग्रन्थों के अनुसार प्रतिलोम गणना द्वारा रामचन्द्र के समीपी पूर्वज ये हैं :—राम १, दशरथ २, अज ३, रघु ४, दिलीप ५, खट्वाङ्ग ६ आदि; न कि राम १, दशरथ २, अज ३, नाभाग ४, ययाति ५, नहुष ६ आदि जैसा कि रामायण की वंशावली में लिखे गए हैं। दिसम्बर १९३२ का 'चौद्र' पृ० २३१ पढ़िए। रामायण में रघु, दिलीप और खट्वाङ्ग की जगह क्रमशः नाभाग, ययाति और नहुष लिखे गए हैं, जो सरासर झूठ है। जान पड़ता है

कि किसी धूर्त ने रामायण को, जिसे आदि कवि ने केवल एक शिक्षाप्रद कहानी समझ कर ही लिखा था, ऐतिहासिक रूप देने के लिए, सच्ची वंशावली का ज्ञान न रखने के कारण, एक जाली तथा झूठी वंशावली पीछे से उसमें धुसेड़ दी।

रामायण की उक्त जाली वंशावली के अतिरिक्त एक और जाली वंशावली का नमूना देखिए। महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को साथ लेकर जनकपुर जाते हुए मार्ग में रामचन्द्र से अपनी वंशावली का इस प्रकार वर्णन करते हैं—ब्रह्मा १, कुश २, कुशनाभ ३, गाधि ४, विश्वामित्र ५, जिससे विश्वामित्र का ब्रह्मा की ५वीं पीढ़ी में जन्म लेना जान पड़ता है। पर भागवत आदि महा-पुराणों के अनुसार वे ब्रह्मा की १७वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे। यथा :—ब्रह्मा १, अत्रि २, चन्द्र ३, बुध ४, पुरूरवा ५, विजय ६, भीम ७, काञ्चन ८, होत्रक ९, जह्नु १०, पुरु ११, वलाक १२, अज १३, कुश १४, कुशाश्व १५, गाधि १६ और विश्वामित्र १७। अन्य पुराणों के अवलोकन से भी यही पता लगता है कि गाधि-सुत विश्वामित्र ब्रह्मा की १७वीं पीढ़ी में ही उत्पन्न हुए थे। अतः पूर्वोक्त कारणों से स्पष्ट है कि रामायण की वंशावलियाँ, चाहे वह कभी भी लिखी गई हों, पुराणों की वंशावलियों के मुकाबले में कुछ भी मूल्य नहीं रखती और उनके बल पर श्रीरामचन्द्र और सीता की सम-कालीनता सिद्ध करने का प्रयास बलू की दीवार खड़ी करने के तुल्य है।

(३) पीढ़ी और राज्यकाल

मुझे यह देख कर बड़ी हँसी आई कि आप आलोचना करने तो बैठे, पर आपने आयु, पीढ़ी-परिवर्तन-काल और राज्यकाल, इन तीनों का अन्तर नहीं समझा। जन्म से लेकर मरण तक के समय को आयु कहते हैं। वंश-परम्परा में प्रत्येक सन्तान वा अनेक समकक्ष सन्तानों का प्रत्येक समूह का नाम एक-एक पीढ़ी है। किसी भी एक पीढ़ी से व्यवधान-रहित दूसरी पीढ़ी में वंश-परम्परा का पहुँचना पीढ़ी-परिवर्तन है और राज्यकाल का अर्थ है राजाओं का शासन-काल। मैंने जो अपने मूललेख में सूर्यवंश की प्रत्येक पीढ़ी के लिए औसत (Average) न कि वास्तविक (Actual) रूप से २५ वर्ष माने हैं,



उसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रत्येक पीढ़ी की सन्तान ने राज्य किया और उसका शासनकाल का औसत मान २५ वर्ष था; बल्कि उसका साफ़-साफ़ अर्थ यही है जिसे सभी देख सकते हैं कि प्रत्येक पीढ़ी औसत रूप से हर २५वें वर्ष आगे बढ़ती गई; असमझ जैसे चाहे किसी भी पीढ़ी की सन्तान राजगद्दी पर बैठी हो वा न बैठी हो, इसका यहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं। पर आपने पीढ़ी और राज्यकाल को अमिश्रण एक ही समझ कर भारी गड़बड़ी मचा दी है। इस विषय को पूर्णतः समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—विजयी मिलियम् की जन्म-तिथि से लेकर सम्राट् पञ्चम जॉर्ज की जन्म-तिथि तक बीती हुई पीढ़ियों (Generations) न कि विविध राज्यकालों, (Periods of reigns) की संख्या से मध्यवर्ती वर्ष-संख्या में भाग देने से प्रत्येक पीढ़ी का औसत परिवर्तन-काल निकलेगा। आश्चर्य है कि एक M. A., B. L., D. A. विद्वान् इस मोटी सी बात को न समझ सका और पीढ़ी और राज्यकाल को एक समझ राम-सीता की समकालीनता सिद्ध करने बैठ गया।

—रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०

मेरी बहिन

हम सात बहिनें थीं और एक ही माता की गोद में पली थीं। सबसे पहले हमने उन्हीं के मुख से परमेश्वर का पवित्र वचन सुना था। मेरी जो चौथी बहिन थी, वह सबसे लाड़ली और हर समय मग्न रहा करती थी, साथ ही सहनशील और हर एक से बढ़े आनन्द की बातें किया करती थी। इसलिए वह माता-पिता तथा अन्य घराने के लोगों को बहुत ही प्रिय हो गई थी। उसका मन प्रत्येक सुन्दर चीज़ को प्यार करता। मेरी छोटी बहिन, जो उस समय डेढ़ वर्ष की थी, उसके साथ खूब मग्न रहती और वह भी सदा अपनी छोटी बहिन की सहायता किया करती। वह सदा अपनी माता के ही पास रहती। जब पिता जी घर आते तो वह दौड़ कर सबसे पहिले उनकी गोद में आ बैठती और वे उसे अपने कन्धों पर बिठा कर झुंझ-उधर दह-

लाया करते। इस प्रकार हमारे दिन खुशी से बीता करते, परन्तु इस सारी खुशी में एक दुर्घटना उपस्थित हो गई।

शरद ऋतु आने को थी। घास-लकड़ी काटने का सब काम-काज पूरतम हो चुका था, भण्डार भर लिए गए थे और किसी प्रकार की विशेष चिन्ता न थी। सर्दों के कारण गाय, बैल, भेड़, बकरी और घोड़े इत्यादि सब पशुओं को अपनी-अपनी गऊशाला तथा घुड़शाला में ही खिलाते-पिलाते हैं, क्योंकि खेत और जङ्गल पाँच-छः महीने तक बर्फ से ढके रहते हैं। तितलियों और मधु-मन्त्रियों से लेकर बड़े-बड़े पशुओं तक अपने-अपने बचाव के स्थानों में जाकर छिपे रहते हैं। सुन्दर और मनोहर चिड़ियाएँ, जो भोर होते ही अपने-अपने घोंसलों में से निकल कर अपनी कोमल और मधुर वाणी से प्रत्येक मनुष्य को आनन्दित किया करती हैं और जिनके गायन से यह प्रतीत होता है कि उस सर्वशक्तिमान, ईश्वर का गुणानुवाद कर रही हैं और मनुष्य-मात्र को ईश्वर का धन्यवाद करने की स्वेतावनी दे रही हैं, वे भी उस विकट सर्दों के आने के पहिले ही हम सबसे बिदा होकर केवल कुछ मास के लिए दक्षिण दिशा की ओर जा चुकी थीं। परन्तु मेरी बहिन इस बिछोह के होने पर भी सदा के समान प्रसन्न और हँसमुख रहती। यह सब कुछ होने के पीछे प्रकृति अपना दूसरा रूप बदलती और इसके बदले में सुन्दर बर्फ हमको देती थी। बर्फ पड़ते समय ऐसा जान पड़ता था, मानों कई स्वर्ग-दूत स्वेत वस्त्र धारण किए पृथ्वी की ओर चले आ रहे हैं। बर्फ पड़ती देख कर हम मग्न हो ज.या करते और इस दृश्य को केवल घर की खिड़की में से देख कर हम सब बच्चे तृप्त न होते और बाहर बर्फ में खेलने के लिए बहुत बेचैन हो जाते थे। माता-पिता हमको बहुधा डाँटते कि बाहर बर्फ में न जाया करो, बर्फ में जाने से ठण्ड लगना बहुत सम्भव है और विशेषकर छोटे बच्चों को तो यह ठण्ड बहुत ही हानिकारक है। परन्तु हमारे बहुत हठ करने पर और हमें प्रसन्न करने के लिए वे कभी-कभी आँगन में और घर के आस-पास जाने दिया करते थे। उस साल भी सदैव की भाँति बर्फ पड़ी और हम सब बहिनें अवसर पाकर खेलने के लिए बाहर निकल गईं। दुर्भाग्य से माता-पिता की सबसे प्यारी बेटी को, जो उस समय



सात साल की थी, ठण्ड लग गई और अकस्मात् उसका गला सूज गया और बहुत पीड़ा होने लगी। माता-पिता ने डॉक्टर को बुलवाया और उसने रोगिनी की परीक्षा करके नियमानुसार औषधि दे दी। मेरी प्यारी बहिन ने दवा का नाम सुनते ही कहा—“पिता जी, मैं दवा पीना नहीं चाहती, क्योंकि मैं तो स्वर्ग को जा रही हूँ। जिस प्रकार मेरी बहिन प्यारे यीशू मसीह के पास गई हैं, उसी प्रकार मैं भी जाती हूँ और वहाँ जाकर उनके साथ आनन्द मनाऊँगी।” बच्ची को इस प्रकार गम्भीरता से बातें करते देख कर माँ-बाप घबरा उठे और कुछ न बोल सके; केवल दुःखित होकर रोने लगे। उनको रोता देख प्यारी पुत्री फिर बोली—“प्यारे माता-पिता जी, आप व्यर्थ ही मत रोइए। मैं स्वर्ग को जा रही हूँ। वहाँ हमारे प्यारे यीशू जी हैं, जो बच्चों से बहुत ही प्रेम करते हैं और जैसा आपने मुझे सुनाया और बताया है, मैं उनकी वैसी ही महिमा इस समय देख रही हूँ।” उसको ऐसी बातें करते देख हमको ज्ञात हुआ कि उसको अवश्य वह अद्भुत स्थान दिखाई दे रहा है। माता जी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—“बेटी, तू हमको छोड़ कर कहाँ जा रही है?” “माता जी आप और पिता जी भी एक दिन वहाँ आएँगे और यीशू के साथ सदा रहेंगे।” वह बोली। माता जी ने सब बच्चों से कहा कि “तुम्हारी बहिन अब थोड़े ही समय के लिए यहाँ है, अब उसको बिदा करो।” मैंने उसका चमकता हुआ मुख देख कर उसी के साथ मरना चाहा और माता जी के गले लग कर कहा—“मैं भी मरूँगी।” माता जी ने उत्तर दिया—“परमेश्वर की आज्ञा के बिना, समय पूरा होने से पहले तू कदापि नहीं जा सकती।” मेरी छोटी बहिन मरते-मरते बोली कि “सब यीशू पर विश्वास रखिए, हम सब सङ्ग मिल जाएँगे। आप लोग न रोइए, क्योंकि यीशू मेरे सामने हैं और मैं उसका मुख देख रही हूँ। क्या आप उसे नहीं देख रही हैं? वह मेरे ही लिए आए हैं। आप मेरे लिए न रोइए, मैं सदा के लिए अमर स्थान को जा रही हूँ।” बस यही उसके अन्तिम शब्द थे। इसके पीछे वह हमेशा की मीठी नींद सो गई।

जिस प्रकार सारे जीव-जन्तु उस स्थान को छोड़ कर चले गए थे, उसी तरह मेरी बहिन भी हम सबको

छोड़ कर चली गई। वह केवल तीन दिन बीमार रही और अपने स्वभाव के अनुसार बीमारी में भी सदा प्रसन्न ही रही, जिससे माता-पिता तथा अन्य घराने वालों की शान्ति भङ्ग न हुई। वह अपने स्वर्गीय पिता यीशू मसीह की महिमा में मग्न थी। मेरी बहिन का काम इस संसार में पूरा हो चुका था। उस काम का फल हमेशा बढ़ता रहेगा। परमेश्वर का प्रेम उससे बहुत था, इसीलिए वह परमेश्वर को इतनी प्यारी हुई कि उसने उसे हमसे छीन लिया। सबसे बड़ कर यीशू मसीह का सच्चा प्रेम और अनुग्रह हम पर है, हमें उससे कदापि मुख नहीं मोड़ना चाहिए, क्योंकि यीशू ने कहा है—“बच्चों को मेरे पास आने दो और उन्हें मना न करो, क्योंकि परमेश्वर का राज्य ऐसी ही का है।”

—मिस मेरी इवरसन

सच्ची प्रार्थना का फल

जब हम हिन्दुस्तान को आई तो हमारी कमाई किसी मनुष्य द्वारा नियत नहीं थी, पर भक्त लोगों ने हमारे साथ प्रार्थना की कि जो कुछ हमारे लिए आवश्यक हो, परमेश्वर की कृपा से हमको अवश्य दिया जाएगा। हमारे मिशनरी बोर्ड ने, जो नया था और जिसके बहुत मिशनरी थे, उन स्टेशनों को जिस पर बहुत काम करने वाले थे, पहले पैसा भेजा और फिर बँगले बनवाने के लिए भी बहुत पैसा दिया। हमारे हिन्दुस्तान आने के एक साल पीछे अलाइन्स बैंक, जिसमें हमारे पैसे थे, टूट गया और इससे हमको भी बहुत हानि पहुँची। परन्तु परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं के अनुसार सब कुछ हमारे लिए अच्छा हो गया। हमने तो ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि तू चाहता है कि हम यहाँ रहें तो हमको काफ़ी पैसा प्राप्त होवे।

हमको भराड़ी में एक बनिया से ढाई सौ रुपया वार्षिक किराए पर मकान मिल गया। उस समय जब पट्टा लिखा गया था तो हमारे पास कुछ भी पैसे न थे। पर परमेश्वर के वचन स्थिर हैं और उसने हमको इस साल के हर एक महीने में मित्रों द्वारा काफ़ी पैसे भेज दिए। एक दिन हमको मोने नामक नगर से जो आलास्का की उत्तरी ओर है, एक चिट्ठी आई जो छै



हफ्ते पहिले लिखी गई थी। इस चिट्ठी में दो दस-दस डालर के नोट थे। चिट्ठी लिखने वाली हमारे देश की एक स्त्री थी, जिसको बारह वर्ष पहले मिस इवरसन नॉरवे में मिली थी। चिट्ठी में लिखा था कि एक समय जब मेरे पति ने और मैंने साथ-साथ प्रार्थना की तो परमेश्वर ने हमको आशा दी कि बहिनों को, जो हिमालय

पहाड़ पर रहती हैं, बीस डालर भेज दो और ऐसा करने से हमको बहुत आनन्द मिला।

यह हमारे लिए एक सच्ची प्रार्थना का फल था, क्योंकि पिछले बारह वर्षों में हमको उन लोगों की दशा का कुछ भी पता न था कि वे कहाँ थे।

—मिस बोलवर्ग वाला*

* उपर्युक्त “मेरी बहिन” और “सच्ची प्रार्थना का फल” शीर्षक टिप्पणियों की लेखिकाएँ—मिस मेरी इवरसन और मिस बोलवर्ग वाला यूरोप के नॉर्वे देश की रहने वाली हैं और आजकल शिमला में रहती हैं। इनकी उमर प्रायः ५० वर्ष है। ये ईसाई मिशनरी हैं और इस देश में ईसाई-धर्म का प्रचार करने आई हैं। इन्हें हिन्दी भाषा से बड़ा प्रेम है। इन्होंने इस अवस्था में श्री० जे० डी० जोशी नाम के एक सज्जन की सहायता से हिन्दी सीखा है। उपर्युक्त नोट इनके हिन्दी के नमूने हैं। इन दोनों महिलाओं के चित्र भी इसी अङ्क में अन्यत्र छपे हैं। इनके लेख और चित्र हमें उपर्युक्त श्री० जे० डी० जोशी महोदय की कृपा से मिले हैं। इसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं।

—स० ‘चाँद’

५४

५४

५४

अपने गीत से—

[श्री० मोहनलाल महतो, ‘वियोगी’]

लिखूँगा जल पर अपने गीत,
पढ़ेगा आकर उन्हें अतीत।

अन्धकारमय है भविष्य ये अक्षर भी हैं काले,
सम्भव है लहरी आकर आँचल से इन्हें छिपा ले

याद कर अपनी भूली प्रीत,
लिखूँगा जल पर अपने गीत।

मेरा गत जीवन प्रदीप बन है प्रकाश फैलाता,
इस कारण ही भूतकाल तो है उज्ज्वल कहलाता,

यही है मन को पूर्ण प्रतीत,
लिखूँगा जल पर अपने गीत।

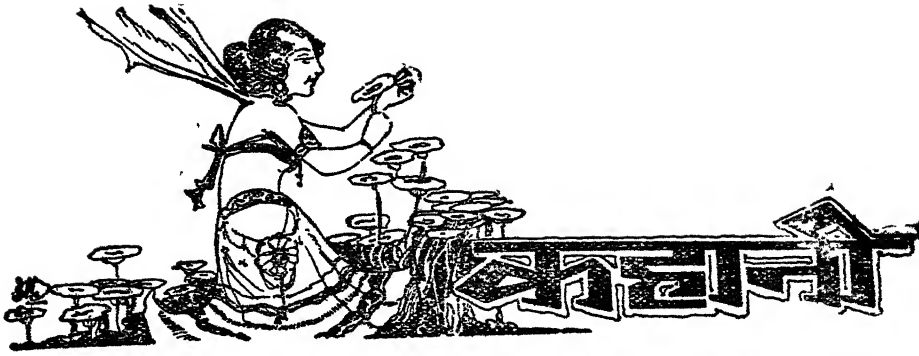
चली जा रही है तरणी क्षणभङ्गुर—रेखा छोड़,
नहीं देखती उसका मिटना पल भर भी मुँह मोड़,

हाय री सरस-सनातन रीत,
लिखूँगा जल पर अपने गीत।

बुदबुद बन कर कभी-कभी ये मेरे सकरुण गान,
क्षण भर हँस अपनापन का फिर कर देंगे अवसान,

हाथ मल कर रह जाना मीत।
लिखूँगा जल पर अपने गीत।





भुल

[श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद]



मरे में घुसते ही रानी ने पति से पूछा—कहिए, आज का पर्चा कैसा हुआ ?

“बहुत ही अच्छा। फ्रस्ट डिवीज़न नहीं तो सैकेण्ड तो कहीं गया नहीं है।”—हर्षपूर्वक कौशल ने उत्तर दिया।

“नतीजा कब तक आएगा ?”

“अभी आज तो परीक्षा

समाप्त हुई है, डेढ़-दो महीने में आएगा।”

२

दो महीने बाद।

प्रातःकाल का समय था। कौशल के पिता रामकिशोर घर के बाहर के आँगन में चारपाई पर बैठे थे। उसी समय हाथ में पत्र लिए कौशल ने प्रवेश किया। उसका मुख उतरा हुआ था। हृदय में उठते विचारों की अस्थिरता पल-पल पर उसके मुख के भावों को बदल रही थी। रामकिशोर के हृदय में भावी अमङ्गल की सूचना सी हुई। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक पूछा—नतीजा आया ?

“जी !”—उसने हाथ का पत्र पिता के सम्मुख चारपाई पर फेंक दिया।

“पास हुए ?”—पत्र के पन्ने लौटते हुए उन्होंने पूछा।

“ना !”—कौशल ने तनिक रुक कर उत्तर दिया। उसके स्वर में करुण था।

रामकिशोर ने देखा। वास्तव में कौशल का नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियों की सूची में न था। वे कुछ क्षण एकटक पत्र की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने सिर उठा कर कौशल की ओर देखा। वह दृष्टि नीची किए अब भी वैसे ही खड़ा था।

“यह बात क्या हुई ? पर्चे तो तुम कहते थे, सब अच्छे गए हैं।”

कौशल ने कुछ उत्तर न दिया। उसके पास इसका कुछ उत्तर न था। वह उदास-भाव से उसी प्रकार खड़ा रहा। रामकिशोर ने फिर पर्चे पर दृष्टि डाली।

“अरे ! गिरधारी पास है ?”

धीरे से सिर हिला कर कौशल ने कहा—हाँ !

“इसी के लिए तो तुम कहते थे कि यह चार बरस तक भी पास न हो सकेगा ?”

कौशल फिर चुप रहा। यह भेद स्वयं ही उसकी समझ में न आ रहा था।

“ज़ैर, कोई चिन्ता न करो। अगले साल पास हो जाओगे।”—रामकिशोर ने पुत्र को आश्वासन देते हुए कहा—“तुमने प्रयत्न तो किया, अब भाग्य साथ न दे तो किसका वश है।”

कौशल अभी तक धैर्यपूर्वक अपने अन्तस्त्वल के भावों को रोके हुए था, परन्तु पिता की सान्त्वना रूपी



ठेस से उसके धैर्य का बाँध टूट गया। आँखों में आँसू भरे वह भीतर चला गया।

३

उसके फ़ेल होने की बात सारे घर में फैल चुकी थी। रानी ने भी सुना था। कौशल के आते ही हाथ का बुनना पल भर को रोक उसने पूछा—पास नहीं हुए ?

कौशल ने कुछ उत्तर न दिया। रानी को अभी जीवन का कच्चा अनुभव था। वह कोई बात सोच-विचार कर और समय देख कर कहना नहीं जानती थी। बोली—आप तो कहते थे कि फ़र्स्ट नहीं तो सैकेन्ड तो कहीं गया ही नहीं है।

रानी ने यह बात कुछ ऐसे ढङ्ग से कही कि वह कौशल के हृदय में लग गई। पर वह कुछ बोला नहीं। उसी समय सावित्री ने कमरे में आकर कहा—“भाभी, तुम्हें माता जी बुला रही हैं।” हाथ का रेशम और सलाइयाँ रख कर रानी सास के पास चली गई।

कौशल पलङ्ग पर लेट गया। उस समय उसके मन में सहस्रों प्रकार के विचार उठ रहे थे। आज उसे न खाने की चिन्ता थी, न पीने की। प्रतिदिन के किसी कार्य में आज उसका मन नहीं लग रहा था।

चिराग जलने में अभी देर थी। कौशल उसी प्रकार अपने कल्पना-सागर में डूबा हुआ था। उस समय उसके भावों से ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी भयङ्कर कार्य की आयोजना कर रहा हो। सहसा वह उठा। एक गहरी साँस लेकर खड़ा हो गया और हाथ उठा कर अँगड़ाई ली। इस समय उसके मुख पर तनिक स्फूर्ति की आभा थी। वह सीधे बाहर चल दिया। पिता के कमरे में पहुँच कर उसने काग़ज़ निकाला और एक पत्र लिखा। और मेज़ पर पैड के नीचे रख दिया। वहाँ से निकल कर वह एक दूसरे कमरे में गया और आलमारी खोल कर एक नीली शीशी निकाली। इसमें बहुत दिन हुए उसने कॉलेज से विष लाकर रक्खा था। पल भर उसे देखने के उपरान्त उसने कार्क खोल कर उसे मुँह से लगाया और सारी शीशी झाली कर दी। उसके बाद शीशी वहीं फेंक कर अपने कमरे में जाकर पलँग पर लेट रहा।

४

रात्रि के आठ बजे रामकिशोर अपने कमरे में गए। बिजली बत्ती का स्विच दबाते ही उनकी दृष्टि सबसे

पहले कौशल के पत्र पर पड़ी। खोल कर ज्योंही उसे पढ़ा, चीख उठे। उसमें लिखा था, ‘पूज्य पिता जी, फ़ेल होकर लज्जा और अपमान का जीवन बिताने और ताने सहने से मृत्यु कहीं अच्छी है। अतएव उसी को अपनाने के लिए मैंने विष खा लिया है। अपराध क्षमा हो।—आपका कौशल।’

बिजली की भाँति यह ख़बर सारे घर में फैल गई। रामकिशोर झपटे हुए कौशल के कमरे में पहुँचे। देखा, वह अचेत पड़ा है। उसका मुख रक्त वर्ण हो रहा था। वे चीख कर उससे लिपट गए। कौशल की माँ की बुरी दशा थी। वह पागल की भाँति सिर पीट रही थी। रानी धाड़ें मार-मार कर रो रही थी। तनिक सुध आने पर रामकिशोर ने डॉक्टर बुलाने को आदमी भेजा। वे रिश्ते में कौशल के कुछ लगते थे। सुनते ही झपटे हुए आए। सबको तसल्ली देकर उन्होंने रोगी की परीक्षा की। रामकिशोर उत्सुक नेत्रों से उनकी ओर देख रहे थे। पूर्ण रूप से परीक्षा कर लेने के उपरान्त वे बोले—“विष तो इसने खाया नहीं है, कोई तेज़ दवा पी गया है, उसी के कारण ज़र हो गया है।”

पहले तो डॉक्टर की बात पर किसी को विश्वास न हुआ। परन्तु उनके बार-बार कहने पर सबको डारस बँध गया। रोना-बोना कम हुआ। रामकिशोर दवा वाले कमरे में गए। नीली शीशी नीचे पृथ्वी पर पड़ी थी। उसे देखते ही झपट कर उन्होंने उठा लिया और लाकर उसे डॉक्टर के हाथ में देते हुए बोले—“ठीक है, इसने मेरा वाला मिक्शर पी लिया है, जो आपने मुझे दिया था।” उनके स्वर में धैर्य तथा प्रसन्नता थी।

“परन्तु वह इसमें कैसे आ गया ?”—डॉक्टर ने पूछा।

“कल आप वाली शीशी का मुँह कार्क लगाते समय टूट गया तो मैंने इसी शीशी को निकाल कर दवा भर दी थी।”

“तो इसमें पहले विष ही रहा होगा ?”

“मुझे क्या पता। मैंने यह समझ कर कि कुछ होगा, उसे फेंकवा दिया।”

“झैर भाग्य अच्छे थे। कौशल की भूल ने उसके प्राण बचा दिये।”—कह कर डॉक्टर ने नुस्खा लिखना आरम्भ किया। यह बात सबको ज्ञात होते ही घर भर



के आनन्द का ठिकाना न रहा। कौशल की माँ को तो मानों आँखें मिल गईं।

कौशल को बड़े ज़ोर का ज्वर था। डॉक्टर ने नुस्खा लिखा और घण्टे-घण्टे भर बाद एक दवा पिलाने को और दूसरी सिर पर मलने को कह कर चले गए।

५

एक सप्ताह के उपरान्त।

कौशल का ज्वर कम हुआ। उसे चेत हुआ। आँख खुलते ही उसने चारों ओर देखना आरम्भ किया। पहले तो उसकी समझ में नहीं आया कि वह कहाँ है, परन्तु शनैः शनैः उसकी पूर्व स्मृति लौट आई। एक-एक करके उसे समस्त पिछली बातें याद आ गईं। वह सोचने लगा कि मैंने तो विष खाया था। मैं बच कैसे गया। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि किस प्रकार शीशी की दवा बदल जाने से उसके प्राण बच गए, तो वह आश्चर्य में पड़ गया। वह कभी भाग्य पर विश्वास न करता था, परन्तु अब उसे ज्ञात हो गया कि कर्म और यत्न के साथ-साथ भाग्य भी एक बड़ी शक्ति है, जो मनुष्य के जीवन में विचित्र उलट-फेर कर सकती है। आत्म-हत्या करके प्राण त्यागने की बात में भी उसे अपनी भूल प्रतीत होने लगी। भला असफलता के कारण प्राण त्याग देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? जीवन में असफलता की ओकरें खा-खाकर ही तो सफलता प्राप्त होती है। असफलता से डरने वाला मनुष्य कहीं सफलता पा सकता है?

सन्ध्या का समय था। पं० रामकिशोर बाहर के चौक में कुर्सी डाले पत्र पढ़ रहे थे। उसी समय कॉलेज के चपरासी ने आकर उन्हें एक पत्र दिया।

रामकिशोर ने पत्र खोला। वह पत्र प्रिन्सिपल ने भेजा था। उन्होंने लिखा था कि तार द्वारा यूनीवर्सिटी के रजिस्ट्रार से सूचना मिली है कि कौशल फ्रस्ट डिप्लोमा में बी० एस-सी० की परीक्षा में उत्तीर्ण है, क्लर्क की भूल से उसके नम्बरों में गड़बड़ी पड़ गई थी। पत्र के साथ में तार भी रक्खा था। हर्ष के मारे रामकिशोर उछल पड़े। जब से एक रुपया निकाल कर चपरासी को वे, बिदा किया और सीधे कौशल के कमरे की ओर लपके। वह आँखें मूंदे चुपचाप लेटा था। चारपाई के पास पहुँचते

॥

ही पिता ने कहा—“कौशल! तुम फ्रस्ट डिप्लोमा में पास हो गए। यूनीवर्सिटी से तार आया है।”

कौशल चौंक पड़ा—सचमुच?

रामकिशोर ने चिट्ठी उसकी ओर बढ़ा दी। कौशल उठ कर बैठ गया और पिता के हाथ से पत्र ले, पढ़ने लगा। उसके पढ़ते ही उसकी आँखें खिल उठीं, आनन्द की गहरी लाली उसके मुख पर फैल गई। वह आँखें फाड़-फाड़ कर उसे देखता रहा।

६

आठ वर्ष बाद।

कौशल कैनाल डिपार्टमेंट का एकज़ीक्यूटिव इन्जीनियर था। ऊँचा वेतन था। चैन से कट रही थी।

रानी दो बच्चों की माँ थी। जीवन का अनुभव भी बढ़ चला था। सुख से गुज़र रही थी। रामकिशोर पेन्शन ले चुके थे। अब वे पुत्र के साथ रह कर भगवद्-भजन कर जीवन के अन्तिम दिन बिता रहे थे। कौशल की माँ भी सावित्री का विवाह कर चिन्ता-रहित हो चुकी थीं। वह दोनों पौत्रों को खिजा कर अपने जीवन का सुख लूट रही थीं। सभी प्रसन्न थे, सभी सुखी थे।

केवल कभी-कभी उन पिछली बातों की याद कर सब अपनी भूलों पर हँसा करते, परन्तु उस हँसी में भी पश्चात्ताप और वेदना की कितनी गहरी झाप रहती थी?

एक दिन सावित्री ससुराल से आई। उसने रात्रि को अपनी नैकलेस रानी को रखने को दी। रानी जल्दी में थी। उसने कहाँ रख दी। प्रातःकाल सावित्री के माँगने पर वह न मिली। रानी उसे ढूँढ़ रही थी।

उसी समय कौशल आ पहुँचा, पूछा—सावित्री, क्या है?

“कुछ नहीं, रात नैकलेस भाभी को रखने को दी थी, कहीं रख कर भूल गईं।”

परिहास के शब्दों में कौशल ने कहा—बड़ी भूल-कड़ है।

रानी अलमारी देख रही थी, पति की बात सुन रुक गई और आँख मार कर हँसती हुई बोली—और आप तो कभी भूल करते ही नहीं हैं न?

कौशल झेंप गए। सावित्री खिलखिला पड़ी।

॥

॥



[जनाब “कुरता” साहब गयावी]

क्या कहें किस बेकसी से और किस मुश्किल से हम,
 धाम कर अपना जिगर निकले तेरी महफ़िल से हम ।
 इसको अपने दिल में लाए हैं बड़ी मुश्किल से हम,
 अब करें दिल से जुदा बिलफ़र्ज़ तो किस दिल से हम ?
 जब यहीं रहना, यहीं जीना, यहीं मरना भी है,
 तो कहाँ जायें निकल कर आपकी महफ़िल से हम ?
 उनकी महफ़िल में पहुँचने का यही निकला मञ्जाल^१,
 हो गया हमसे जुदा दिल, और अपने दिल से हम ।
 उम्र अपनी ख़त्म कर दी, राहें ज़ौक़ो शौक़ में,
 लेकिन इस पर भी निहायत दूर हैं मञ्जिल से हम ।
 ले गए पहलू से तुम लेकिन हो फिर भी बदगुमाँ^२,
 और को चाहेंगे तो चाहेंगे अब किस दिल से हम ?
 सख़्तियाँ सहने से तो बेहतर यह है मर जायें भी,
 अब नहीं डरने के हरगिज़ ख़जरे-क़ातिल से हम ।
 इसमें जलवा आपका, इसमें है मसकन^३ आपका,
 अपने पहलू से जुदा दिल को करें किस दिल से हम ?
 जब हैं खुद “कुरता” तो मरने से डरें मुश्किन नहीं,
 इसलिए बेज़ौक़ होकर मिलते हैं क़ातिल से हम ।

१—नतीजा, २—शक करना, ३—ठिकाना ।

[कविबर “बिस्मिल” इलाहाबादी]

वह हमें उठवा चुके, अब उठ चुके महफ़िल से हम,
 आए जिस मुश्किल से, जायेंगे उसी मुश्किल से हम ।
 इसको देंगे शम उठाने के लिए मुश्किल से हम,
 दिल न होगा, तो तुम्हें चाहेंगे फिर किस दिल से हम ?
 दिल नहीं तो अब है, दिल की आरजू दिल का ख़याल,
 फँस गए दो मुश्किलों में, छुट कर एक मुश्किल से हम ।
 दिल नहीं मिलता जो दिल से, तो यह मिलना कुछ नहीं,
 आप भी उस दिल से मिलिये मिलते हैं जिस दिल से हम ।
 जादू^४ उलफ़त में क्या-क्या शौक़ ने चक्कर दिए,
 थी कहाँ मञ्जिल, निकल आए कहाँ मञ्जिल से हम ।
 तेरी नज़रों में नहीं सय्याद^५ क्रदरे आशियाँ^६,
 कर सके हैं, जम्मा यह तिनके बड़ी मुश्किल से हम ।
 दिल से वह बातें किसी के दिल की जब सुनते नहीं,
 उनसे हाले-दिल कहें भी, तो कहें किस दिल से हम ?
 आपकी महफ़िल से, उठने का नतीजा यह हुआ,
 तज़ आकर उठ गए दुनिया की भी महफ़िल से हम,
 देखने में चार तिनकों के सिवा कुछ भी नहीं,
 अपने होते, आशियाँ को फूँक दें किस दिल से हम ?
 जोश में आकर कोई क़ातिल यह कह दे तो सही,
 कुछ भी हो, लेकिन मिलेंगे हज़रते “बिस्मिल” से हम ।

४—राह, ५—घातक, ६—घोंसला ।



स्वर्गवासिनी डॉक्टर (कुमारी) लीलावती, एल० डी०, एस-सी०, जो भारत की सर्व-प्रथम हिन्दू-महिला दन्त-चिकित्सक (Dental Surgeon) थीं और जिनका अभी हाल में ही स्वर्गवास हो गया है !

प्रयागस्थ द्विवेदी-मेला चित्रावली



आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी



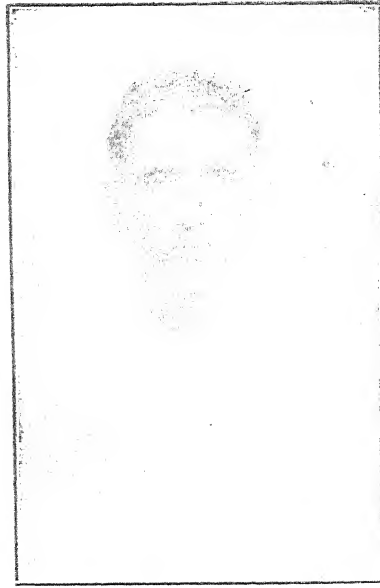
द्विवेदी-मेला के उद्घाटनकर्ता—
देशपूज्य पण्डित सदनमोहन जी मालवीय ।
आपके द्वारा ही इस अपूर्व साहित्यिक
समारोह का प्रारम्भ हुआ था ।



प्रयाग-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व चान्सलर महामहोपाध्याय
डॉक्टर गङ्गानाथ जी झा—जिन्होंने गत द्विवेदी-मेले
के शुभ अवसर पर मान-पत्र द्वारा आचार्य
द्विवेदी जी का अभिनन्दन किया था ।



प्रयाग के सुप्रसिद्ध धनवान और देशभक्त—
श्रीमान् पं० निरञ्जनलाल जी भार्गव—
जिन्होंने द्विवेदी-मेला में समागत
अतिथियों के आतिथ्य-सत्कार
का समस्त भार अपने
ऊपर लिया था।



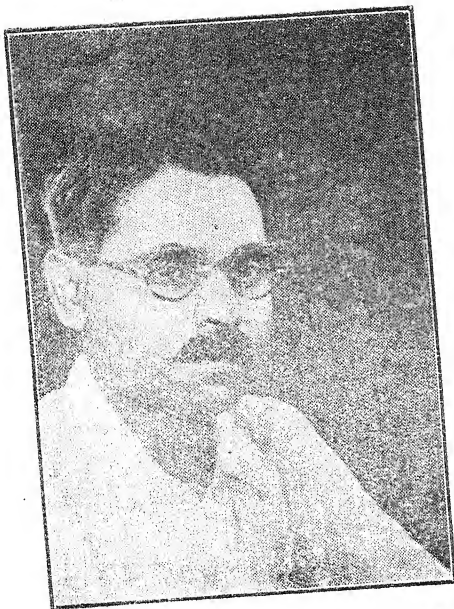
द्विवेदी-मेला (प्रयाग) के प्राण -
परिहृत लक्ष्मीधर जी वाजपेयी—
आपके ही अथक परिश्रम से
यह सुन्दर समारोह सुचारु
रूप से सम्पन्न
हो सका।

द्विवेदी-मेला के अवसर
पर होने वाले काव्य-परि-
हास सम्मेलन के उद्योग-
कर्ताओं का परिहासात्मक
परिचय—वड़े—(१)
दादीदार बैज्ञावी चेहरेवाले
श्री० विद्याभास्कर जी शुक्ल
और (२) चिकने चेहरेवाले
जिनके मस्तिष्क-कोख ने
यह बृहत् मेला प्रसन्न किया
था, श्री० ठाकुर श्रीनाथ-
सिंह जी 'बाल-सखा'।



‘कुरसियासीन’—

(१) चश्मा-विमण्डित-
चक्षु पैरधारी परिहृत
प्रयुक्तकृष्ण (वसुदेव
नहीं !) कौल, (२)
उभय सभ्य—“ब्रह्म जीव
विच साया जैसी”—
‘चाँद’-सम्पादक और
(३) गाँधी टोपी तथा
‘कतरित’ मुँहों वाले
श्री० (शुण्डहीन)
गणेश पाण्डेय।



प्रयाग में द्विवेदी-मेला के अवसर पर होने वाले
काव्य-परिहास-सम्मेलन के सभापति, हाथरस-आचार्य—
श्री० जी० पी० श्रीवास्तव महोदय ।



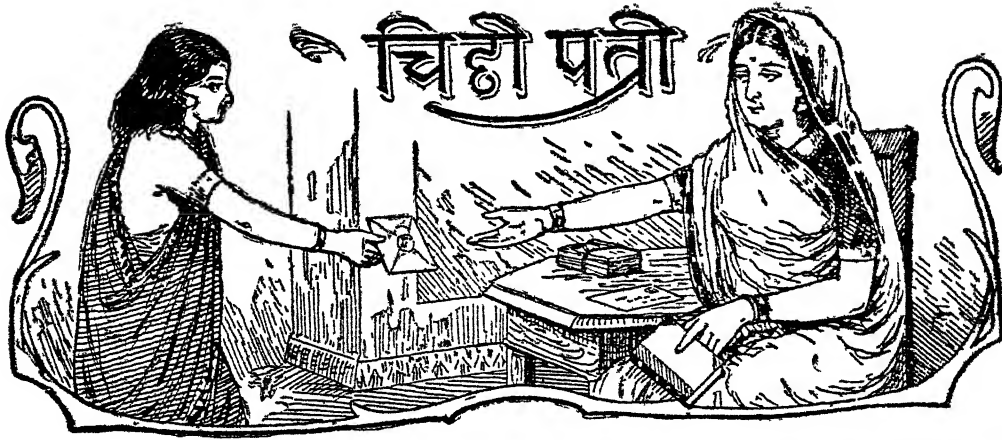
द्विवेदी-मेला-समिति के प्रधान-सन्धी—
पण्डित रघुनन्दन शर्मा ।



द्विवेदी-मेला-समिति के स्वागताध्यक्ष—
सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी कविवर
ठाकुर गोपालशरणसिंह ।



मुन्शी कन्हैयालाल जी एम० ए०, एडव केट,
भूतपूर्व उर्दू 'चाँद'-सम्पादक—जिनके उत्साह
उद्योग और सहायता से द्विवेदी-मेले का
कार्य अवसर हो सका था ।



वहम या मानसिक व्याधि

कलकत्ता से एक जैन युवती ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर प्रणाम ।

मैं आपका 'चाँद' सदा आदर और प्रेम से पढा करती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि आप दुखियों का दुःख निवारण करते हैं। मुझे भी एक मानसिक व्याधि लग गई है। आशा करती हूँ कि आप इसका कोई उपाय बतावेंगे, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो।

मैं जैन जाति के एक धनवान सेठ की पुत्रवधू हूँ। मेरे पति मुझ पर स्नेह रखते तथा प्रेम करते हैं, परन्तु मुझे न मालूम क्यों हर समय उद्विग्नता रहती है और उनका पहरना-ओढ़ना या किसी से बातचीत करना मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं इससे जला करती हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी वेश्या या पर-खी से प्रेम करते हैं। इन्हीं विचारों से मुझे हिस्टीरिया का भी दौरा होने लगा है। वे मेरे पास बैठना-उठना भी बहुत कम पसन्द करते हैं। हर समय अपने दोस्तों के पास बैठे रहते हैं या हारमोनियम वगैरह बजाया करते हैं। और रात को ११-११॥ बजे तक घर में नहीं आते। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। इसी उधेड़-बुन में हर समय रहने से मेरा स्वास्थ्य भी बिगड़ गया है। अब आप ऐसा उपाय बताइए कि मुझे शान्ति मिले। नहीं तो मेरी जिन्दगी बरबाद हो जावेगी।

आपकी,

—कुसुमकुमारी जैन

[हमारी समझ में तो ये किसी भीषण मानसिक व्याधि के पूर्व-लक्षण है। इसलिए इस बहिन को चाहिए कि अपना मनोभाव अपने पति तथा अपने अन्य अभिभावकों पर साफ-साफ प्रगट कर दे और इस व्यर्थ के वहम को अपने दिल से निकाल दे। हारमोनियम बजाने से या दोस्तों के साथ बैठ कर बातचीत करने से ही कोई दुराचारी नहीं हो जाता। इसलिए ऐसे सन्देह को मन में स्थान देना उचित नहीं है। कलकत्ता में तो आम तौर से लोग ११-११॥ बजे सोया करते हैं। इस बहिन के पतिदेव को चाहिए कि पत्नी के दिल से यह वहम निकाल देने की चेष्टा करे और उसे भावी मानसिक रोग से बचाने के लिए, उसे विश्वास दिला दें कि उसका अनुमान निराधार और गलत है।

—सम्पादक 'चाँद']

एक उपेक्षिता पत्नी

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर नमस्ते !

मैं भागलपुर जिले के एक प्रसिद्ध गाँव की रहने वाली क्षत्रिय जाति की युवती हूँ। मेरे पति एक बड़े जमींदार हैं। स्वभाव के बड़े कोमल, सरल और मृदुभाषी हैं। स्त्री-स्वतन्त्रता, युवती-विवाह और सह-भोज आदि के पक्षपाती हैं। पर न जाने उनकी यह ज्ञान-गरिमा और धर्मबुद्धि घर में आते ही गंधे के



सींग की नाईं कहाँ गायब हो जाती है ? क्योंकि न जानें किस कारण वे मुझसे रुठे हुए हैं। सुहाग-रात के सिवा और कभी भी उनके चरणों के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे नहीं हुआ। पहली शादी जो मेरे स्वामी ने की है, उनसे सन्तानादि होने की कोई सम्भावना न रहने से ही मैं इस घर को बसाने के लिए बुलाई गई थी। मुझे अपनी सौत के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि उस दुःखिनी की भी वही दर्दनाक कहानी है, जो मेरी है। मेरे स्वामी के कोई सन्तान नहीं है। इतनी बड़ी विशाल ज़मींदारी का कोई भी उत्तराधिकारी नहीं। मेरे एक विधवा ननद हैं, जो अकारण ही मुझ पर कुपित रह जा रही हैं। उनकी दो अविवाहिता लड़कियाँ भी हैं, जिनकी अवस्था कोई १८, २० साल की है। इन दोनों की अवस्था को देख कर भी दुःख होता है। न जाने विधाता ने हम शरीरिणों को पूर्व-जन्म के कौन से पाप को सुगतने के लिए यह नरक-कुण्ड तैयार कर रक्खा है।

इन सब अनर्थों की जड़ हैं मेरी मनचली सास, जो अपने सर्वाधिकार को सोलहो आने सुरक्षित रखना चाहती हैं। वे अपने इस अनुचित अधिकार में किसी का भी हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करना चाहतीं। स्टेट पर के अपने अनुचित प्रभाव के छिन जाने की आशङ्का से वे ही पतिदेव को मेरे पास नहीं आने देतीं।

नाजायज़ प्लर्च के बोझ से स्टेट ऋणग्रस्त हो रहा है। अगर यही चाल रही तो परमात्मा जाने ५-१० वर्ष में उसका नामोनिशान भी रह जायगा या नहीं। कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि हमारी सास की ओर से हमारे ऊपर नियुक्त किए गए पहरेदार लोग मेरी कल्याण-जनक स्थिति से दुःखी होकर मेरे पतिदेव को मुझसे मिलने का मौका देने के लिए खिसकने लगे हैं; पर हमारे स्वामी जी ने दृढ़तापूर्वक उन्हें फिर से नियुक्त कर मातृ-भक्ति का अनूठा परिचय दिया है। आप-दिन पूर्व-त्वौहार के अवसर पर जब दरिद्र घर की स्त्रियाँ भी अपने पतियों के साथ भोपड़ी की रानी बन कर सुख से निवास करती हैं, तब मैं महल की भिखारिन खारी बूँदों की घूँट पी-पीकर, करवटें बदल-बदल कर, और कराह-कराह कर रातें काटती हूँ। स्वामी को अपना देने की कितनी चेष्टाएँ कीं; पर सब निष्फल ! सब व्यर्थ !! ठीक वैसे

ही जैसे पत्थर पर दूब ! पहिले तो शासन से—पीछे स्वेच्छा से ही पति जी बाहर एकान्त स्थान में रहने लगे हैं। इधर सुनने में आया है कि × × × नाम के एक चतुर्दश वर्षीय बालक को अपना एकान्त साथी बना कर चौबीस घण्टे न मालूम उसे क्या-क्या उपदेश किया करते हैं। लोग इस एकान्त-सङ्गति का बुरा अर्थ करते हैं और मैं लज्जा तथा ग्लानि से गड़ी जाती हूँ। इन्हीं सब कारणों से मैं आजकल पीहर चली आई हूँ। राज-कर्मचारी आते हैं समाचार देने; स्त्रियाँ लोग आते हैं दुखड़ा रोने; पर सभी लौटते हैं कपाल ठोंकते—अपने भाग्य को कोसते। सभी को एक ही पेटेष्ट उत्तर मिलता है—“अवकाश नहीं है।”

मेरे पतिदेव आपके पत्र ‘चाँद’ के ग्राहक हैं। अब इस दुःखितावस्था में मुझे आपके सिवा कोई दूसरी शरण नहीं सूझती। अतएव आप मेरे इस पत्र को ‘चाँद’ में छाप कर मुझे उचित और नेक सलाह देने की कृपा करेंगे। आप हम दुःखिनीयों के सहारा हैं; और क्या कहूँ। मेरा नाम-पता गुप्त रखेंगे।

आपकी

—एक दुःखिनी बहिन

पुनश्च :—साथ ही मैं अपने पतिदेव के नाम भी एक पत्र भेजती हूँ। आशा है, आप उसे भी अक्षरशः ‘चाँद’ में छापने की कृपा करेंगे।

प्राणनाथ !

हन्तजारी करते-करते आँखें दुख गईं; मिश्रित करते-करते ज्ञान सूख गई। पर आप न पिघले न पिघले ! हे मेरे पत्थर के देवता ! अब भी तो पसीजो। इस पापिनी के प्राण कब तक दर्शन के लिए घुटते रहेंगे ? आशा-पथ पर आँखें बिड़ा कर बैठी हूँ। एक बार तो चरणों के दर्शन दीजिए। मेरी यही साध है। यही अरमान है। नहीं तो—

बाद मरने के मेरे बाद-सबा बोलेंगी,

जान देनी ही पड़ी, कोई भी चारा न रहा !

—आपकी उपेक्षिता

[विदुषी पत्र-लेखिका ने जो कुछ कहना चाहिए, स्वयं ही कह डाला है। अपने पत्थर के ‘प्राणनाथ’ के सामने उसने अपना कलेजा निकाल



कर रख दिया है। अगर इतने पर वह पत्थर-हृदय न पिघला तो दोऊख की आग ही उसे पिघला सकेगी। मातृभक्ति कोई बुरी बात नहीं है, परन्तु मूर्खा माता के अनुचित दबाव में पड़ कर या उसकी बेहूदी मनःशुष्टि के फेर में पड़ कर अकारण ही अपनी सुशीला पत्नी की उपेक्षा करना तो घोर मूर्खता है। परन्तु हमारा तो ध्यान इस पत्र की उन अन्तिम पंक्तियों की ओर ही बार-बार जा रहा है, जहाँ पत्र-लेखिका ने अपने पतिदेव के 'एकान्त साथी' का जिक्र किया है; और ऐसे मनुष्य के प्रति घृणा का एक भयङ्कर भाव हृदय में उठ रहा है। हम नहीं कह सकते कि ऐसे नरक-कीटों की किन शब्दों में भर्त्सना की जाए। हमारी तो राय है कि यदि यह पतित पति अपनी घृणित आदत से धाज्र न आए तो उसकी पत्नी का कर्तव्य है कि वह आजन्म उस नारकीय का मुँह न देखे।

—सम्पादक 'चाँद']



एक अत्याचार-पीड़िता

पटना जिला से एक बहिन ने लिखा है :—
प्रिय सम्पादक जी, सप्रेम बन्दे !

आज हिन्दू-महिलाओं की दशा इतनी कुरूपपूर्ण है कि उन्हें देख कलेजा मुँह को आता है। मेरा सङ्केत उन्हीं महिलाओं की ओर है, जो आजकल क्रूर समाज की बलि-वेदी पर जीवनोत्सर्ग करने को विवश की जा रही हैं, अन्यान्य रूप से सताई जा रही हैं एवं उनकी सारी हसरतों का खून किया जा रहा है। आज एक ऐसी ही दुःखित महिला की दुःख-गाथा आपके सामने रखती हूँ। आशा ही नहीं, विरवास है कि आप उसकी जीवन-रक्षा का कोई मार्ग प्रदर्शित करेंगे।

पटना जिले के एक ब्राह्मण की कन्या का विवाह उन्हीं की तरह सम्भ्रान्त कुल में हुआ, जिनकी मर्यादा पूरे बीघे भर की है। कन्या के स्वसुर महोदय क्राफ़ी सुशिक्षित हैं, रोज़ ही दो-तीन घण्टे पूजा-पाठ में व्यतीत करते हैं और अपने आगे संसार को तुल्यवद् मानते हैं। जिस युवक के साथ उस बालिका का

विवाह हुआ है, वह तो महान मूर्ख, लम्पट और उद्वेग है। माता-पिता एवं ग्रामवासियों से झगड़ा करना उसका मुख्य काम है। व्यभिचार की कुटेव तो उसे विवाह के पूर्व ही से है। दया उसे छू तक नहीं गई है। सत्य से वह कोसों दूर रहता है। झूठ बोलना उसका नित्य-कर्म है।

इन्हीं कुटेवों के विरुद्ध यदि वह लड़की कभी कुछ कहती है, कुछ समझाने की चेष्टा करती है, तो उसे डण्डों की मार खानी पड़ती है और गन्दी गालियाँ सुननी पड़ती हैं। ऐसे भी कभी-कभी अकारण ही उसकी पीठ-पूजा होती ही रहती है। चार-चार पाँच-पाँच दिनों तक लगातार बेचारी अपने पति के भय से भयभीत होकर घर का द्वार बन्द करके छिपी रहती है। यदि कभी सास-ससुर बहू को बचाने की चेष्टा करते हैं, तो बस लड़का उनकी आबरू लेने पर आमादा हो जाता है और उनकी सात पीढ़ियों का श्राद्ध करने लगता है। कई बार वह बालिका मौत के मुँह से बच चुकी है। एक दिन दस बजे रात में वह उस बेचारी शबला पर लुरा चलाने को तैयार हो गया। बेचारी भाग कर अपने जेठ के घर में चली गई। दोष उसका केवल इतना ही था कि वह अपने पति की आज्ञा के अनुसार अपनी ननद को मारने नहीं गई। सुबह होने पर यह झबरा गाँव में फैली तो लोगों ने उन्हें बहुत-कुछ बुरा-भला कहा। इस पर आप रुठ गए और कहने लगे कि मैं 'साधू' हो जाऊँगा या आत्म-हत्या कर लूँगा। इससे भी हारे तो खाना-पीना छोड़ कर रुठ बैठे। गाँव वालों ने तो उन्हें चुपचाप छोड़ दिया, किन्तु 'कुपुत्रो जायेत कचिदपि कुमाता न भवति' इस वाक्य के अनुसार माता अपने सुयोग्य पुत्र को मनाने गई, तो पुत्र ने ऐसा तौल कर उनके सर पर पत्थर मारा कि सर फूट गया और उससे खून की धारा बह चली।

जब यह शुभ-सम्बाद उनके पूज्यपाद पिता जी को मिला तो आपने बहू को मायके भेज दिया। इसके बाद एक दिन आप ससुराल पहुँचे और सास-ससुर को ऐसा लथाड़ा कि बेचारे ससुर जी उसी शोक में परलोक सिंघार गए ! अस्तु—

अभी वह बालिका अपने पिता के घर कुछ दिनों तक भी नहीं रहने पाई थी कि उसके श्वसुर महोदय ने



बिदा करा ले जाने के लिए धूम मचाई। आखिरश दिन नियत हुआ। बिदाई के लिए बालिका के श्वसुर जी आए हुए थे। कुछ समझदारों ने समझाया कि जब तक आपके पुत्र की हालत सुधर न जाए, तब तक के लिए रखसती मुलतवी रखिए। इस पर आप क्रुद्ध हो उठे और समझाने वालों पर घृणित आक्षेप करते हुए झुंझला कर बोले—“आप लोग लड़के के अवगुणों के फेर में पड़ कर लड़की को बिदा नहीं करते। परन्तु सज्जन कभी ब्याही लड़की को घर में नहीं रखते। आप लोग ब्याही लड़की को घर में रख कर अपने कुल को कलङ्कित करना चाहते हैं।” पण्डित जी के इस विकट तर्क ने सबको निरुत्तर कर दिया। लाचार रखसती कर देनी पड़ी।

सम्पादक जी, इसी अवस्था में वह बालिका पड़ी हुई है; और अपनी वर्तमान अवस्था से ऊब कर अपने जीवन का अन्त कर देना चाहती है। आप दूरदर्शी हैं। क्या आप कोई युक्ति बतलाने की कृपा करेंगे, जिसमें ऐसे दुष्ट पति से उस बेचारी निरीह बालिका का पिण्ड छूटे। यदि आप उचित समझें तो उसे अपने पत्र में स्थान दें। बस !

आपकी,

× × ×

[यह पत्र हमें उक्त अत्याचार-पीड़िता बालिका की बड़ी बहिन ने लिखा है और वे पढ़ी-लिखी तथा समझदार मालूम पड़ती हैं। फलतः वह स्वयं ही सोच सकती हैं कि हिन्दू-समाज के इस मर्ज की कोई दवा नहीं है। क्योंकि यहाँ का विवाह-बन्धन अछेद्य है। ऐसी दशा में यही हो सकता है कि बालिका किसी तरह—अगर सम्भव हो तो अदालत और क़ानून की मदद से—उस नरक-कुण्ड से निकाल ली जाए। लड़के के ‘पण्डित’ पिता ने यह जानते हुए भी कि लड़का नालायक है और अकारण ही बेचारी बालिका को सताया करता है, उसे ज़बरदस्ती रखसत करा कर नितान्त मूर्खता की है। उनका कर्तव्य था कि वे बहू को कुछ काल तक उसके माता-पिता के पास छोड़ देते और अपने पुत्र को सुधारने की चेष्टा करते।

परन्तु यहाँ तो सारे कुएँ में ही भाँग पड़ी है। जैसे लायक पतिदेव हैं, वैसे ही ‘पण्डित’। उनके पितृ-देव हैं। समाज का कोई धनीधोरी नहीं, ऐसे नालायकों से कोई पूछने वाला नहीं कि अगर सज्जन लोग ब्याही कन्या को घर में नहीं रखते तो क्या तुम्हारे और तुम्हारे पुत्र जैसे क़साई को सौंप देते हैं ? हमारा तो दृढ़ मत है कि ये ‘पण्डित’ उपाधिधारी जीव ही इस सारे अनर्थ की जड़ हैं। इनका अस्तित्व जब तक विलुप्त न होगा, तब तक इस तरह के अत्याचार भी जारी रहेंगे।

—सम्पादक ‘चाँद’]

✽

✽

✽

एक विवाहार्थिनी बाल-विधवा

महाशय,

गत मार्च के ‘चाँद’ में उपर्युक्त शीर्षक से मेरी चिट्ठी छाप कर आपने जो कृपा की है, उसके लिए मैं आपका आभार मानती हूँ।

इस सम्बन्ध में भारत के सभी प्रान्तों से मेरे पास बहुत से पत्र आये हैं। परन्तु मैं तो उड़ीसा प्रान्त की रहने वाली हूँ। हिन्दी बहुत थोड़ी जानती हूँ। कितने ही पत्र तो बहुत घसीट कर लिखे गये हैं, उन्हें तो मैं पढ़ भी नहीं सकती। इसलिए पत्र-प्रेरकों से प्रार्थना है कि मुझे अङ्गरेज़ी में पत्र लिखें। कुछ लोगों ने अपनी योग्यता का वर्णन स्वयं ही किया है। परन्तु विवाह तो जीवन-मरण का प्रश्न है, इसलिए ऐसे सज्जनों से मेरी प्रार्थना है कि अपना परिचय किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा लिखा कर भेजें। लड़की के पास कोई चित्र नहीं है। यहाँ देहात में फ़ोटो खींचने का कोई साधन भी नहीं है। परन्तु जो उसे देखना चाहते हैं, वे सहर्ष मेरे घर आकर देख सकते हैं। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

निवेदिका,

सरला देवी

पोस्ट जगतसिंहपुर

ज़िला कटक

✽

✽

✽



‘अस्तबल की बला बन्दर के सर’

कानपुर से एक सज्जन लिखते हैं :—

प्रिय सम्पादक जी,

यहाँ एक ब्राह्मण सज्जन हैं, जो अपनी आर्थिक दुरवस्था के कारण अपनी बहिन की शादी किसी ऐसे उदार विचार वाले सद्गंजित ब्राह्मण युवक से करना चाहते हैं, जो सुधारक प्रवृत्ति का हो और तिलक-दहेज न ले। परन्तु वे जहाँ कहीं जाते हैं, उनके पीछे-पीछे यह खबर भी पहुँच जाती है कि उनके ससुर ने एक नाइन से विवाह कर लिया था और उनकी स्त्री का जन्म उसी नाइन के पेट से हुआ है। बस, लोग हिचक जाते हैं और उनकी बहिन की शादी नहीं होती। परन्तु यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि लड़की के भाई के ससुर की स्त्री यदि नाइन है तो इसमें बेचारी लड़की का क्या अपराध है? भाई के ससुर ने नाइन से ब्याह कर लिया तो इससे उस लड़की के ब्राह्मणत्व में कैसे अन्तर पड़ गया? वह खुद तो ब्राह्मण की कन्या है और कुमारी है। फिर क्या कारण है कि ब्राह्मण-समाज ऐसी कन्या को ‘अजाती’ समझता है?

मैं स्वयं अविवाहित हूँ और तमाम अर्थहीन सामाजिक रुढ़ियों और दक्षिणानूसी विचारों का कट्टर विरोधी हूँ, और तिलक-दहेज, ठहरौनी और लेन-देन की प्रथा से घृणा करता हूँ। इसलिए मैं उपर्युक्त सज्जन की सुशीला बहिन के साथ बिना तिलक-दहेज लिए ही विवाह करने को राज़ी था और कतिपय विशेष कारणों से अन्त में इन्कार भी कर चुका था। परन्तु जब मुझे मालूम हुआ कि बेचारी निरपराध कन्या अपने भाई के ससुर के अपराध के कारण समाज द्वारा ठुकराई जा रही है, तो मेरी अन्तरात्मा मुझे विवश कर रही है कि मैं उससे विवाह कर लूँ। परन्तु ऐसा करने से मैं समाज द्वारा वहिष्कृत किया जाऊँगा; मेरे सगे-सम्बन्धी और नातेदार मुझे ‘अजाती’ कर देंगे। मुझे इसकी परवाह नहीं। मैं सहर्ष इस विरोध का सामना करने को तैयार हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि जब तक देश के नवयुवक साहसपूर्वक

पुरानी रुढ़ियों को पददलित करने को तैयार न होंगे, तब तक इस अन्धे समाज की आँखें न खुलेंगी।

इसलिए मैं कानपुर के समस्त शिक्षित नवयुवकों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस कार्य में मेरी सहायता करें। वे मेरे विवाह में उत्साहपूर्वक शामिल हों और पुराने विचार वालों के विरोध और वहिष्कार का मुक्ताबला करने में मेरी भरपूर सहायता करें। साथ ही मैं समस्त हिन्दू-समाज से इस कार्य में सहायता दान करने की प्रार्थना करता हूँ और सम्पादक महोदयों से निवेदन है कि इस सम्बन्ध में अपनी निष्पक्ष सम्मति देकर मुझे आप्तायित करें। आपसे भी मेरी प्रार्थना है कि अपनी उचित सम्मति के साथ इस पत्र को ‘चाँद’ में प्रकाशित कर दें।

आपका,

रामाधीन शुक्ल

कन्हैयालाल रामगोपाल का फाटक

पटकापुर, कानपुर

[श्री० शुक्ल जी ने उपर्युक्त पत्र हमें अङ्गरेजी में लिखा है, जिसका आशय हमने ऊपर दे दिया है। हम उनके उदार विचारों और इस सत्साहस के लिए उन्हें बधाई देते हैं। वे अपने आदर्श कृत्य द्वारा एक निर्दोष कन्या का उद्धार करेंगे और समाज के सामने एक नवीन आदर्श रक्खेंगे। हमें विश्वास है कि केवल कानपुर का ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष का युवक-समाज उनके साथ होगा। अगर मुट्ठी भर नगण्य, दक्षिणानूसी विचार वाले रुढ़ि-रोग-ग्रस्त उनका वहिष्कार करेंगे, तो एक विशाल जन-समुदाय उनका स्वागत करेगा। कानपुर के उत्साही नवयुवकों से हमारा अनुरोध है कि शुक्ल जी का विवाह खूब धूमधाम से हो। ऐसी शानदार बारात निकले कि रुढ़िग्रस्तों की छाती दहल जाय।

आशा है, हमारा निवेदन खाली न जायगा।

—सं० ‘चाँद’]



द्विवेदी मेला में श्री० जी० पी० श्रीवास्तव

['चाँद' के विशेष प्रतिनिधि द्वारा]



आ

चार्य द्विवेदी जी की सत्तरवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में प्रयाग का द्विवेदी मेला माननीय मालवीय जी द्वारा प्रारम्भ होकर बड़ी धूमधाम से, ४ मई से ७ मई तक हुआ। यह साहित्यिक मेला अपने

ढङ्ग का एक ही हुआ है। हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख साहित्यिकों ने इसमें भाग लिया था। महामहोपाध्याय डॉक्टर गङ्गानाथ झा के सभापतित्व में आचार्य द्विवेदी जी का अभिनन्दन किया गया। इसके उपरान्त कवि-सम्मेलन, वाद-विवाद सम्मेलन, व्याख्यान तथा निबन्ध पाठ, काव्य परिहास सम्मेलन, व्यायाम सम्मेलन और कवि-दरबार बड़ी सफलतापूर्वक हुए।

'काव्य परिहास सम्मेलन' जो 'चाँद' के सुपरिचित श्री० जी० पी० श्रीवास्तव के सभापतित्व में हुआ, वह अत्यन्त ही रोचक हुआ। सभा में काफ़ी भीड़ थी। इस अवसर पर श्रीवास्तव जी ने हास्य-रस पर जो भाषण दिया था, वह हिन्दी के लिए बिलकुल ही नई चीज़ है। लेखों की तरह श्रीवास्तव जी के भाषण भी बड़े ही मज़ेदार होते हैं। गत नवम्बर मास में पटना कॉलेज के हास्य-रस-सम्मेलन में सभापति के आसन से आपने जो साहित्य पर भाषण दिया था, वह भी हिन्दी के लिए अपूर्व वस्तु था। "अमृत बाज़ार पत्रिका" आदि विदेशी भाषा के पत्रों ने भी उसकी प्रशंसा की थी। 'पत्रिका' ने लिखा था :—

"The speech can rightly claim to have created a new era in Hindi literature."

अर्थात्—“यह भाषण सचमुच हिन्दी-साहित्य में एक नया युग पैदा करने का दावेदार हो सकता है।” 'चाँद' के पाठक, जिन्होंने श्रीवास्तव जी का 'लतखोरी-लाल' और 'दिल-जले की आह' पढ़ा है, उनकी चुलडुली

लेखनी के चमत्कार से परिचित हैं। अस्तु, द्विवेदी मेला में जो आपने हास्य-रस पर सुन्दर भाषण दिया था, उसका सारांश हम नीचे देते हैं। इस भाषण द्वारा आपने "हास्य-रस" पर विशेष प्रकाश डाला है :—

काव्य परिहास सम्मेलन में उपस्थित 'देवियों तथा भलेमानुस गण' के प्रति, अपने को सम्मेलन का सभापति निर्वाचित करने के लिए, अपनी विनोदपूर्ण भाषा में कृतज्ञता प्रगट करने के पश्चात् वक्ता ने साहित्य में हास्य-रस की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए कहा—“हास्य को, गम्भीरतापूर्ण पण्डिताई बघारने वाले, चाहे कितना ही भ्रष्ट, अश्लील या ओछा बतावें, मगर सच पूछिए तो बुराई-रूपी पापों के लिए इससे बढ़ कर कोई दूसरा गङ्गाजल नहीं है।” आगे चल कर आपने कहा—“मगर हाँ, इसका वश नहीं चलता तो बस जानवरों पर, क्योंकि इसकी बारीकी समझने के लिए ईश्वर ने उन बेचारों की खोपड़ी में न बुद्धि दी है और न हँसने के लिए उनके थूथन में कोई कमाना।”

इसके बाद आपने हास्य-रस की प्रशंसा करते हुए इसके अमृत प्रभाव पर विशद प्रकाश डाला और बताया कि तपेदिक के रोगियों को हास्य-रस की पुस्तकें दी जाती हैं। हास्य-रस के यूरोपियन लेखकों का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि इस अमोघ अस्त्र द्वारा उन्होंने कैसे-कैसे सामाजिक सुधार कर डाले। आपका यह कथन सर्वथा ठीक है कि “सुधार के नाते नहीं, बल्कि निज वर्ण-विचार से भी इसका स्थान साहित्य में सबसे ऊँचा है।” काव्य के नव-रसों में आपने हास्य को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करते हुए, कला की दृष्टि से उसका विवेचन करते हुए, उसकी कठिनाइयों का वर्णन किया और बताया कि हास्य-सेवियों की संख्या अन्य रस-सेवियों की अपेक्षा बहुत ही कम होती है। अर्थात् साहित्य में शृङ्गार, कल्याण, वीर तथा अन्य रसों की जितनी भरमार है, उतनी हास्य-रस की नहीं।



वास्तव में हास्य-रस का लिखना बड़ा ही कठिन कार्य है। इस रस के लेखक को 'संसार तथा मानवी स्वभाव का' सम्यक ज्ञान होना चाहिए। उसकी दृष्टि गिद्ध सी नहीं, वरन् कबूतर सी तीक्ष्ण होनी चाहिए। साथ ही हास्य-रस के लेखक की भाषा में भी गहरी पैठ होनी चाहिए। ज्ञान तथा भाषा की पूर्ण जानकारी के साथ ही उसे अन्य रसों का भी ज्ञाता होना चाहिए। इसके उदाहरण में आपने शेक्सपियर के मर्चेण्ट ऑफ़ वेनिस के अदालत वाले दृश्य का जिक्र किया, "जहाँ लेखक ने 'शाहूलाक' की कठोरता द्वारा करुण-रस को सीमा पर पहुँचा कर तब हास्य-रस की भाँकी दिखलाई है। × × × उसी तरह गोस्वामी तुलसीदास जी ने परशुराम और लक्ष्मण के सम्वाद में रौद्ररस का तमाशा दिखा कर हास्य की छींटे दी हैं।"

इसके आगे हास्य के मुख्य रहस्यों का विस्तृत विवेचन करके वक्ता ने उसे चार भागों में विभक्त किया है और बताया है कि "ये चार रहस्य हास्य के मानों वैसे ही चार स्वर हैं, जैसे बाजे के सात सरगम। इन चारों रहस्यों के आपके दिए हुए नाम ये हैं—(१) पतनपन, (२) बेतुकापन, (३) कठपुतलीपन, और (४) आशा तथा अवसर की प्रतिकूलता।"

इसके बाद ही प्राचीन संस्कृत साहित्य के आधार पर हास्य-रस के भेदों और उपभेदों का विस्तृत वर्णन करते हुए आपने बताया है—

"हमारे यहाँ इसका भेद-विचार, जो स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित में किया गया है, वह मुँह की बनावट पर निर्भर होने के कारण, साहित्य की तो नहीं, हाँ महफ़िल के अलबत्ता काम की चीज़ है। इसलिए इसका भेद बाहरी लक्षणों पर नहीं, बल्कि भीतरी गुणों पर स्वभाव और प्रभाव दोनों को देखते हुए करना चाहिए। स्वभाव के सम्बन्ध में इतना ही कहना काफ़ी है कि इसके चार दर्जे हैं—(१) कोमल (२) उदासीन (३) कठोर और (४) निर्दयी। इसलिए कभी यह गुदगुदाता है, कभी सुई चुभोता है और कभी पृक्कदम बरखा ही भोंक देता है। इनको ध्यान में रख कर हास्य के भेद जानने के लिए जब आप हँसने वाले और हँसाने वाले दोनों पर विचार करेंगे, तब सबसे पहिले इसके दो भेद मिलेंगे—१ अज्ञात हास्य, २ ज्ञात हास्य।

अज्ञात हास्य वह है, जिसमें हँसाने वाला अपनी मूर्खताओं या बेतुकेपन से बिलकुल अज्ञात रहता है और वह उन्हें अनजाने प्रगट करके लोगों को हँसाता है। × × × इसे अङ्गरेज़ी में 'Ludicrous' कहते हैं। इसमें हँसने वाले का भाव हास्य-पात्र के प्रति उदासीन रहता है। और हँसाने वाला उलटे हँसने वाले ही को बेवक्रूप समझ कर दिल में बिगड़ उठता है। जितना ही बिगड़ता है उतनी ही हँसी बढ़ती है।

ज्ञात हास्य वह है, जिसमें हँसाने वाला जान-बूझ कर हँसाता है। इसके दो अन्तर्भेद हैं—(क) परिहास (ख) उपहास।

परिहास

परिहास वह है, जिसमें हँसाने वाला अपने दोष पर स्वयं भी हँसता है और अपने साथ दूसरों को भी हँसाता है। इसे अङ्गरेज़ी में 'Humour' कहते हैं। इसमें हास्य-पात्र कहने को मूर्ख भी होता है, पर वैसे मूर्ख नहीं जैसा अज्ञात हास्य का पात्र, जो अपने दोष को न जाने। इसमें प्रायः उन दोषों की हँसी उड़ाई जाती है, जिनको धर्म, समाज या सभ्यता ने कुछ न कुछ सबके गले मढ़ रक्खा है। या परिस्थिति इतनी अमूर्ख होती है, जिसमें पढ़ कर हास्य-पात्र ही नहीं, बल्कि हर कोई हास्य-पात्र बन सकता है। इसलिए इसमें हँसी एक तरह से अपने ही ऊपर होती है और इसी कारण इसका स्वभाव कोमल और प्रभाव गुदगुदी की तरह होता है। इसका हास्य-पात्र चिड़चिड़ा नहीं, बल्कि हँसमुख होता है। हास्य का यही एक अङ्ग है, जो नम्रता और मधुरता से कुछ सींचा हुआ रहता है।

मगर अज्ञात हास्य और परिहास बारीकियों में जाकर अक्सर ऐसे गुथ जाते हैं कि दोनों के बीच कोई सरहदी लाइन नहीं खींची जा सकती।

उपहास

उपहास वह है, जिसमें हँसाने वाला अपने पर नहीं बल्कि दूसरे के दोषों पर आक्षेप करके हँसी पैदा करता है। इसके तीन उपभेद हैं—(अ) विनोद (आ) व्यङ्ग (इ) कटाक्ष।

विनोद

विनोद का अखाड़ा वार्तालाप है और वह अपना चमत्कार विशेष कर जवाब में दिखाता है। इसीलिए इसे



‘हाज़िर जवाबी’ भी कहते हैं। मगर इससे इसका गुण प्रगट नहीं होता। क्योंकि इसमें शब्दों का चुनाव इतना उत्तम होता है, जिसके प्रायः दो आशय निकलते हैं। प्रत्यक्ष और गुप्त। प्रत्यक्ष से यह सवाल का जवाब देता है और गुप्त से यह आक्षेप करने वाले के दिल में ऐसी गहरी चुटकी लेता है कि वह निरुत्तर होकर झेंप जाता है।

व्यङ्ग

व्यङ्ग की खूबसूरत छटा यद्यपि विनोद से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, तथापि अपने यहाँ के विनोद और व्यङ्ग के विचार से मेरी राय में व्यङ्ग को विनोद से पृथक् ही स्थान देना उचित है। मगर हास्य में वही व्यङ्ग स्थान पाने का अधिकारी है, जिसका उद्देश्य सुधार है। वरना हास्य-क्षेत्र को व्यङ्ग-वर्षा बरसाने वाली मन्थरा देवियाँ ऐसा छाप बैठेंगी कि बेचारे हास्य-लेखक सभी मुँह ताकते रह जाएँगे। खैर, यही कुशल है कि इनके सौभाग्य से हास्य स्वयं ही सास जी के व्यङ्गों को दूर ही से प्रणाम करता है। इसका पता तुलसीदास जी के दो पदों से चल जाएगा—

“कोउ नृप होइ हमें का हानी।

चेरी छाँड़ि का होउब रानी।”

यह व्यङ्ग का फटकता हुआ नमूना होने पर भी हास्य महोदय पास नहीं फटकते। क्यों? उनके बैठने के लिए इसमें सुधार का अड्डा ही नहीं है। अब दूसरा नमूना लीजिए—

“कहेउ लखन, मुनि सुयश तुम्हारा।

तुमहि अछत को बरनै पारा।”

देखिए, इसमें परशुराम की धमण्ड-रूपी बुराई को दूर करने का उद्देश्य देख कर हास्य साहब कैसे कमर कसके आ धमके हैं। व्यङ्ग में जब यह गुण होता है तभी हास्य उसे अपने गले लगाता है।

कटाक्ष

और जब यह सामने से वार करता है, जैसे—

“कोटि कुतिस सम बचन तुम्हारा।

वृथा धरहु धनु बान कुठारा ॥”

तब यह कटाक्ष यानी ‘Satire’ का निर्दयी रूप चारख करके कलेजे में एकदम बरछा ही भोंक देता है।

व्यङ्ग और कटाक्ष दोनों का मुख्य अखाड़ा कथन है। चाहे वह बातचीत के रूप में हो या निबन्ध के।

उपहास

मगर कटाक्ष के एक भाई और हैं, जो साधारणतया अपने बाप ही के नाम से पुकारे जाते हैं यानी उपहास अर्थात् नकल, मज़हक़ा या ‘Caricature’ यह अपनी करामात के चित्रण में ‘कार्टून’ की भाँति बुराईयों को बहुत बड़ा-चढ़ा कर दिखाते हैं। मगर इस सफ़ाई के साथ, जिसमें असलियत के पहचानने में धोखा न हो।

इस प्रकार हास्य-रस की वंशावली (भेद-उपभेद) का वर्णन करके वक्ता ने बताया कि—“यद्यपि हमारे यहाँ इसका भेद-विधान आज तक इस तरह नहीं हुआ है, तथापि इसके भेदों की नामावली से यह पता ज़रूर चलता है कि अब हास्य इतना शक्तिशाली हो गया है कि इसने अपना बँटवारा स्वयं करके अपने भेदों के भाव इन नामों में कूट-कूट कर भर दिए हैं।”

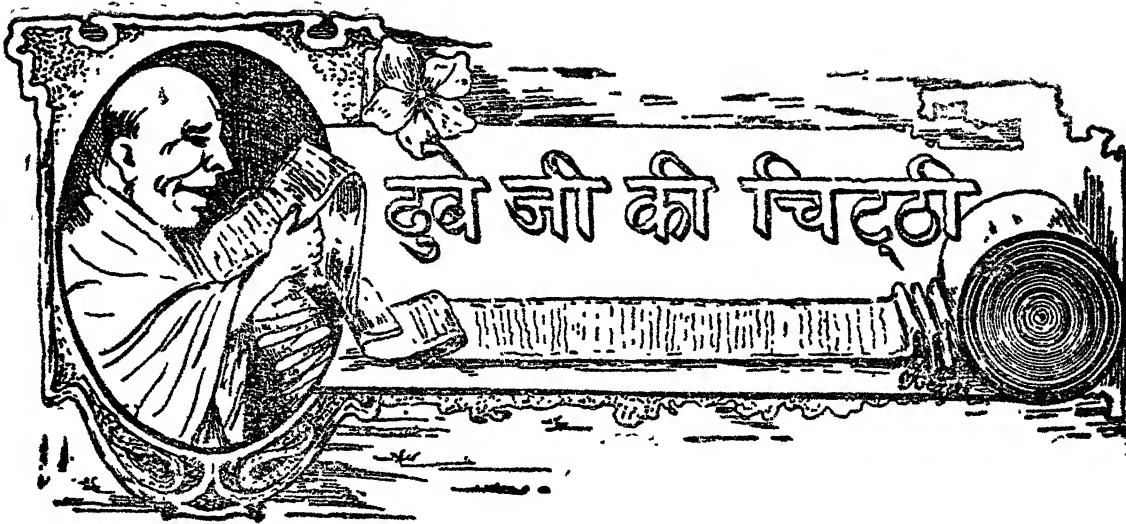
इसके आगे हिन्दी-साहित्य में हास्य-रस के अभाव का जिक्र करते हुए आपने बताया कि यह हिन्दी के लिए एक नई चीज़ है, और इसे अपनाने में “हिन्दुस्तानी दिमाग़ भटक रहा है।” संस्कृत साहित्य में हास्य-रस के अभाव का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि गद्य और छापेखाने के अभाव के कारण ही ऐसा हुआ। तथापि गोस्वामी तुलसीदास ने लाज रंख ली और इन्हीं की कृपा से हास्य-रस का स्थान नवरसों में रह गया, नहीं तो हमारे साहित्यिक उसे वहाँ से भी ढकेल देते।

इसके बाद आपने भारतेन्दु, ‘आनन्द’ के सम्पादक स्वर्गीय पण्डित शिवनाथ शर्मा और ‘मतवाला’ आदि का जिक्र करके इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि अब हिन्दी वाले इस ओर ध्यान देने लगे हैं।

हास्य पर हिन्दी-साहित्यिकों द्वारा अश्लीलता का दोषारोपण करने का जिक्र करके आपने बताया कि “अश्लीलता या वासना के नाम पर इसकी रोक-टोक करना साहित्य में ज्ञान और तत्व का द्वार बन्द करना है। मनोविज्ञान का गला घोटना है।”

इसके बाद अपनी परिहासपूर्ण भाषा में अपनी प्रुटियों का उल्लेख कर, आपने अपने ‘साहित्य का संपूर्ण’ नामक ग्रहण से कुछ मनोरञ्जक उद्धरण देकर अपना ललित भाषण समाप्त किया।





अजी सम्पादक जी महाराज,
जय राम जी की !

हरिजनों के उद्धार का कार्य आजकल बड़े ज़ोरों से हो रहा है। जिधर देखिए उधर ही लोग हरिजनों के उद्धार के विरह में व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। हरिजनों के उद्धार के लिए बेचारों की जीमें घिसी जा रही हैं। कभी-कभी हरिजनों के घरों में झाड़ू लगाते-लगाते हाथ थके जा रहे हैं, परन्तु फिर भी उद्धार की कलक नहीं दिखाई पड़ती? बड़े आश्चर्य की बात है! भगवान के दर्शन मात्र से मोक्ष मिल जाती है, महात्माओं के दर्शनों से पापों की डायरी के बहुत से पृष्ठ गायब हो जाते हैं, परन्तु बड़े-बड़े देशभक्तों की झाड़ू से हरिजनों का अछूतपन नहीं साफ़ होता, यह संसार का आठवाँ (अथवा नवाँ?) आश्चर्य नहीं तो फिर क्या है? महात्मा जी के आदेशानुसार इच्छा न होते हुए भी लोगों ने हरिजनों के लिए क्या नहीं किया? दो-चार दिन मन्दिर खुलवाने में नष्ट किए, कभी-कभी घण्टे दो घण्टे लेक्चरवाज़ी में गँवाए। अख़बारों के दो-चार कॉलम काले किए। जिस दिन स्वास्थ्य ठीक न होने से स्नान करना वर्जित था, उस दिन हरिजनों के घरों में झाड़ू स्पर्श करने के कारण स्नान भी करना पड़ा। इतना परिश्रम, इतना त्याग करने पर भी हरिजन बेचारे जहाँ के तहाँ ही हैं—इश्क़ भर भी आगे नहीं बढ़ते। यह हरिजनों की बद-क्रिस्मती नहीं तो क्या है? यदि इतना प्रयत्न किसी दूसरे "जनों" के साथ किया जाता तो वे स्वर्ग पहुँच जाते।

इसमें सन्देह नहीं कि इस समय हरिजनों के भाग्य का सितारा ज़ँचा बहुत है। यदि ऐसा न होता तो बड़े-बड़े पण्डित, शास्त्री, लाला, बाबू इत्यादि झाड़ू लेकर उनके द्वार पर कभी न पहुँचते। उचित तो यह था कि केवल इतने ही से हरिजनों का घोर उद्धार हो जाता, परन्तु जान पड़ता है कि सितारा स्वयम् तो उँचाई पर पहुँच गया, परन्तु उनकी दुम अभी नीचे ही लटकी हुई है। क्योंकि हरिजनों के भाग्य का सितारा दुमदार सितारा है। इसीलिए वह कभी उदय होता है और थोड़े ही दिनों रह कर फिर गायब हो जाता है। सम्पादक जी, एक दिन अपने राम को भी हरिजनों के उद्धार की सनक सवार हुई। सोचा कि कदाचित् ईश्वर ने यह यज्ञ अपने राम के ही भाग्य में रक्खा हो। बस यह विचार आते ही एक ब्रेण्ड न्यू झाड़ू का ऑर्डर दे ही तो डाला। साथ में एक बढ़िया सी टोकरी भी मँगवा ली। दूसरे दिन सवेरे ही उद्धार-कार्य करना था—अतएव रात भर नींद न आई। ऐसा मालूम होता था कि सवेरे कोई बड़ा भारी किला फ़तह करना है—भगवान सब प्रकार कुशल रखे। ख़ैर साहय, जैसे ही जैसे सवेरा होने लगा वैसे ही वैसे दिल कमबख़्त मदारी के बन्दर की भाँति कलाबाज़ियाँ करने लगा। यदि जीवन-डोर से बँधा न होता तो सीने से निकल कर भगवान जाने किस भाग्यवान के पास चला जाता। ख़ैर! सवेरा होते ही इच्छा हुई कि अच्छी तरह नहा-धोकर ठाठ से चला जाय। परन्तु फिर ख़याल



आया कि इस काम में नहा-धोकर जाना मना है—लौट कर नहाना चाहिए। उस दिन ज़रा सर्दी भी थी, इसलिए भगवान को धन्यवाद दिया कि कम से कम ज़िन्दगी में एक काम तो ऐसा मिला कि जिसमें सवेरे ही सवेरे नहाने की तकलीफ़ से नजात मिली। पहले तो विचार आया कि जो कपड़े रात को पहन कर सोए थे, उन्हीं कपड़ों से चल दें, परन्तु फिर सोचा कि उन कपड़ों में देख कर लोग कहीं सचमुच ही 'हरिजन' न समझ बैठें, इसलिए धुला हुआ खद्दर का कुर्ता निकाल, खद्दर की सफ़ेद टोपी निकाली। कपड़े पहन कर भाड़ पर तौलिए से पॉलिश की, टोकरी पर भी दो-तीन हाथ मार दिए। इस प्रकार साज सजा कर घर के बाहर निकले। हालाँ कि दिल कमबलत पीछे भागता था, परन्तु पैर आगे ही बढ़ रहे थे। अपने राम को भाड़ू-टोकरी लिए हुए देख कर कुछ लोगों ने प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा। बस फिर क्या था, सुरूर आगया। आगे बढ़े तो दो-चार बदतमीज़ मुँह फेर कर मुस्कराए और आवाज़ें कसने लगे। यह देख कर सुरूर क्रोध में बदल गया। मगर कर ही क्या सकते थे? एक ठण्डी साँस लेकर सोचा कि अच्छे कामों में ऐसी मुसीबतें पड़ती ही हैं। कल जब अज्ञवार में मोटे टाइट में हमारे इस कार्य का वर्णन छपेगा, तब इन लोगों को पता चलेगा कि हम क्या चीज़ हैं—अभी खूब हँस लेने दो। इसी प्रकार डूबते-उतराते हुए हरिजनों के मुहल्ले में पहुँचे और एक हरिजन के द्वार पर भाड़ू लगाना शुरू किया। हरिजन अपनी ब्योड़ी में बैठा हुक्का पी रहा था। वह अपने राम को देखते ही बोला—“इस साले बहुरूपि ने तो अच्छा पिण्ड पकड़ा है। आज भञ्जी बन कर आया है।” इसके पश्चात् अपने राम से बोला—“भइया बने तो, मगर बनना न आया। भञ्जी इतने सफ़ेद कपड़े पहन कर भाड़ू नहीं लगाते।” इतना सुनना था कि अपने राम को क्रोध आ गया। एक डाँट बता कर उससे कहा—“क्यों बे, आदमी नहीं पहचानता। हम तो तेरे उद्धार के लिए निकले और तू बहुरूपिया बनाता है। बहुरूपियों की सूरत ऐसी ही होती है?”

भञ्जी सिटपिटा कर बोला—साफ़ करना महाराज, मुझे धोका हो गया। तीन-चार दिन से एक बहुरूपिया आता है। एक दिन मेनुसिपलेटी का जमादार बन कर

आया था, एक दिन इन्स्पटर बना था, पर हमने हर दफ़ा पहचान लिया। हमारा वही ख्याल रहा। हमने समझा आज भञ्जी बन कर आया। पर महाराज, आप यह तकलीफ़ क्यों उठाते हैं—मेरे द्वार पर भाड़ू लगाने से क्या होगा?” इतना सुनना था कि अपने राम को जोश आ ही तो गया। कड़क कर बोले—“अबे हम तेरा पाख़ाना उठाएँगे, तूने समझा क्या है? बता तेरा पाख़ाना कहाँ है?”

उसने उत्तर दिया—अभी तो पेट ही मैं है अन्न-दाता, हुक्का पी रहा हूँ, ज़रा ढीला हो तो निकले।

“अच्छा तो ज़रा जल्दी कर, हमारे पास इतना समय नहीं है, जो व्यर्थ नष्ट किया जाय।” इतना कहते ही अकस्मात् अपने राम को यह ध्यान आया कि हरिजनों से बड़ा नम्र व्यवहार करना चाहिए। यह विचार आते ही अपने राम का क्रोध काफ़ूर हो गया। अतएव उससे बोले—भइया हरिजन जी, हम आज तुम्हारी सेवा करने के लिए निकले हैं। नित्य तुम हमारी सेवा करते हो, आज हम तुम्हारी सेवा करेंगे।”

“अरे महाराज, क्यों काँटों में घसीटते हो!”

“काँट नहीं, सच बात है।”

“तो महाराज, मेरी सेवा क्या करोगे? मैं तो अभी टट्टियाँ साफ़ करने जाऊँगा।”

“हम तेरी टट्टी साफ़ करेंगे।”

“मैं तो बमपुलिस में जाता हूँ।”

“तो आज बमपुलिस न जाओ—यहीं पास ही कहीं चले जाओ, जिससे हमें तुम्हारी टट्टी उठाने का पुण्य प्राप्त हो जाय।”

“अच्छा तो महाराज, जब आप सेवा करने ही पर उतारु हो तो एक काम करो।”

“बताओ, जल्दी बताओ। आज हम तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हैं।”

“जितने घर मैं कमाता हूँ, उतने सब घर आज आप कमा लीजिए, इससे मुझे एक दिन की छुट्टी मिल जायगी।” इतना सुनते ही अपने राम के कान खड़े हो गए। कमबलत ने कैसी कठिन प्ररमायश की है। कुछ साहस करके पूछा—“भला कितने घर होंगे?”

“बस एक बाइस-तेइस घर हैं।” बाइस-तेइस घर! बाइस-तेइस घरों का पाख़ाना ढोना पड़ेगा।

भगवान जाने एक-एक घर में कितने आदमी होंगे। इतने आदमियों का पाखाना ! और जब कि सबका रङ्ग और सबकी बू अलग-अलग होगी—तोबा ! खुदा मह-फ़ूज़ रखे इस बला से। आज न जाने किस कमबख्त का मुँह देख कर उठे थे। सोचा था कि दो-चार हरिजनों के दरवाज़े पर झाड़ू लगाकर—अधिक से अधिक एकाध का पाखाना उठाकर—उद्धार-कार्य समाप्त कर डालेंगे। परन्तु यहाँ तो छः सात घण्टे का, और निहायत ही गन्दा प्रोग्राम बना जा रहा है। अच्छे फँसे चिड़ड़ा गुलज़ैरू ! अब किसी तरह इससे छुटकारा मिले तो ख़ैर है, वरना अपने राम की मोच तो आज ही हो जायगी—हरिजनों का उद्धार हो या न हो। यह सोच कर उससे कहा—“भाई, अभी तो हमें जितना हुकम है उतना ही कर सकते हैं।”

“हुकम किसका महाराज ?”—भङ्गी ने पूछा।

“हमारे नेताओं का, महात्मा जी का। अब आज हम उनको चिट्ठी लिख कर पहुँचेंगे। यदि उन्होंने आज्ञा दे दी तो अगले दफ़ा हम तुम्हारी सब दृष्टियाँ कमा डालेंगे। यह समझ लो कि जब हमने तुम्हारे उद्धार पर क़मर बाँधी है, तो करके ही छोड़ेंगे, मानेंगे नहीं।”

“ऐसे पूछ-पूछ के काम करोगे तब तो महाराज हमारा उद्धार हो चुका।”

“भाई, बात यह है कि उद्धार तो जैसे होवेगा ही, इसमें तो तुम रत्ती भर भी शङ्का न करो। रही पूछने की बात, सो पूछना तो ज़रूरी है। मान लो हमने आज तुम्हारे कहने से सब दृष्टियाँ कमा डालीं और उन्हें ख़बर लग गई तो वह बहुत ही ख़फ़ा हो जायेंगे कि बिना हमारी इजाज़त के ऐसा क्यों किया। इसलिए पूछना तो हर हालत में पड़ेगा।”

भङ्गी एक क्षण तक चुप रह कर बोला—अच्छा महाराज, दृष्टियाँ न कमाओ तो न सही, एक काम करो।

अपने राम तो भगवान से यही चाहते थे कि किसी तरह पिण्ड छूटे। अतएव झट बोल उठे—बोलो, बोलो ! इस समय जो चाहो सो माँग लो।

“आप अपने भङ्गी को क्या देते हैं ?”

“चार आना महीना !”

“बस ! कितने आदमी हैं आप ?”

“यही कोई साढ़े तीन आदमी।”

“मेहमान वहमान आते रहते होंगे ?”

“हाँ, साल में नौ महीने दो-एक मुफ्तज़ोरे डटे ही रहते हैं।”

“तो आप एक काम करें।”

“एक नहीं दो ; कह चलो।”

“आप अपने भङ्गी को आज से एक रुपया महीना दिया कीजिए।”

इतना सुनते ही अपने राम के पैरों तले की मिट्टी खिसक गई। उसकी बातचीत के ढङ्ग से अपने राम ने यह अनुमान लगाया था कि वह यह कहेगा कि—“अपना भङ्गी छुड़ा कर मुझे लगा लीजिए—मैं तीन आने महीने में ही काम कर दिया करूँगा।” सो जनाब आशा एक आना घटने की थी यहाँ उल्टे बारह आने बढ़ गए। इससे तो अच्छा यह है कि इसकी सब दृष्टियाँ ही कमा दी जायँ। एक दिन का काया-कष्ट है, परन्तु बारह आने तो बचेंगे।

अपने राम यह सोच ही रहे थे कि हरिजन महोदय बोले—कहिणु महाराज, क्या सोचने लगे ?

“मैं यह सोच रहा हूँ कि यदि मैंने ऐसा कर दिया तो उसका नतीजा कुछ ख़राब तो न होगा ; क्योंकि अभी ऐसा करने का हुकम नहीं मिला है। कहीं नेता लोग बुरा न मान जायँ कि तुम्हें जी कमबख्त भाव बिगाड़े दे रहे हैं। दूसरी बात यह है कि घर का सब लेन-देन और हिसाब किताब लज्जा की महतारी के हाथ में है—अपने राम उसमें कभी दखल नहीं देते। हाँ, सिकारिश कर देंगे। यदि भङ्गी का भाग्य लड़ जायगा तो काम हो जायगा। अपने राम तो केवल तुम लोगों का उद्धार कर सकते हैं। उस उद्धार में फ़िलहाल इतनी बातें हैं। तुम नहा-धोकर और कपड़े बदल कर आओ तो तुम्हें छाती से चिपका सकते हैं। तुम्हारे द्वार पर झाड़ू लगा सकते हैं। एकाध आदमी का पाखाना उठा सकते हैं। तुम्हारे उद्धार के लिए कोई संस्था स्थापित हो तो उसके मन्त्री या सभापति बन सकते हैं। तुम लोगों के लिए आन्दोलन कर सकते हैं, क्योंकि इसमें कोई जोखिम नहीं है, न जेल जाने का डर न लाठी-चार्ज का खटक। व्याख्यान दे सकते हैं, लेख लिख सकते हैं। इतने काम करने पर भी तुम्हारा उद्धार न



हो, तो इसमें हमारा दोष नहीं, तुम्हारे भाग्य का दोष है—समझे !”

भङ्गी आँखें टेढ़ी करके बोला—तो महाराज, ऐसे उद्धार से हम बाज आए। आप छाती से लगा लेंगे तो मुझे क्या मिल जायगा ? आप इतने खूबसूरत भी तो नहीं हैं, जो आपकी छाती से लग कर मुझे कुछ सुख मिले। एकाध आदमी की टट्टी उठाने से मेरा कौन सा उद्धार हो जायगा ? दुनिया भर के काम करेंगे, परन्तु जो काम करने का है वह नहीं करेंगे। हमारी मजूरी बड़ा दीजिए—बस हमारा उद्धार अपने आप हो जायगा—आपको तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं। उस दिन एक झँधी खोपड़ी वाले बोले कि—“आज से तुम्हें जूठन नहीं मिलेगी। हरिजनों को जूठन नहीं देना चाहिए।” अब उनसे कोई पूछे कि जूठन मिलेगा नहीं, मजूरी बढ़ेगी नहीं तो फिर हम खाँयेंगे किसे ? अच्छा उद्धार किया ! इससे तो एक तरफ से सबको सङ्ख्या ही न दे दो, पूरा उद्धार हो जाय।

अपने राम बोले—जूठन नहीं मिलेगा, परन्तु शुद्ध भोजन तो मिलेगा।

“अजी बस रहने भी दीजिए—शुद्ध भोजन कौन भङ्गवा देता है। जूठन में तो हमें घर भर का खाना मिल जाता है। तीज-त्योहार, ब्याह-शादी में दस-दस, बारह-बारह दिनों का खाना खाली जूठन में मिल जाता

है, उतना कौन दे सकता है ? शुद्ध भोजन में आपने एक रोटी दे दी तो उससे हमारा क्या भला हो सकता है ? तीन-तीन दिन का बासी खाना तो आप चट कर जाते हैं, हमें शुद्ध भोजन आप कहाँ से देंगे, आप ही बताइए, आप मेरे खाने भर को नित्य शुद्ध भोजन देंगे ?”

अपने राम ने सोचा—यदि छटाँक आध पाव खाता होता तो मज्जूर भी कर लेते, पर यह कमबख्त सूरत से सेर भर का आसामी दिखाई पड़ता है, इसलिए मामला गड़बड़ है। उससे कहा—भई, देने को तो दे सकते हैं, पर पकाने की मुश्किल है—इतना पकावे कौन ?

“अच्छा आप खाली सीधा दे दिया करना, पका हम लिया करेंगे।”—भङ्गी ने कहा।

अपने राम ने सोचा—कमबख्त कितना हाज़िर-जवाब है। एक सेकेण्ड के भीतर ही जवाब दे देता है।

अपने राम बोले—“अच्छा अब इस विषय पर फिर किसी दिन बात करेंगे, आज देर काफ़ी हो गई है।”

यह कह कर अपने राम वहाँ से खिसके। जान बची लाखों पाए। सम्पादक जी, अछूतोद्धार का काम अपने राम ने बहुत सरल समझा था, पर वह कमबख्त भी टेढ़ी खीर ही निकला।

भवदीय,
—विजयानन्द (दुबे जी)

तुम और मैं

[श्री० कपिलदेव नारायण सिंह “सुहृद”]

तुम कोमल विकच कुसुम हो,
मैं रसिक मधुप मतवाला !
पीकर उन्मत्त बना हूँ,
तब रूप-सुधा का प्याला !!
तुम उषा काल के रवि हो,
मैं जलज सुमन हूँ सुन्दर !
तेरे पुनीत दर्शन से,
खिल उठता सदा विहँस कर !!

तुम आँखों की मदिरा हो,
तुम ज्वाला प्रेम-अनल की !
तुम लहर कल्पना की हो,
कविवर के अन्तस्तल की !!
तुम चन्द्र-चारु हो नभ के,
मैं ललित रूप रत्नाकर !
चख मुझे मुदित हो उठना,
पागल लहरें फैला कर !!



सङ्घर्ष—अनुवादक, श्री० कृष्णवल्लभ द्विवेदी, बी० ए०। आकार मफोला, पृष्ठ-संख्या ३२७, मूल्य २), सजिल्द २।।)

‘सङ्घर्ष’ सुप्रसिद्ध रूसी औपन्यासिक तुर्गनेव के एक विख्यात उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। काउण्ट डॉलस्टॉय की तरह तुर्गनेव भी विश्वविख्यात कलाविद हो गया है। यह उपन्यास रूस के इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ‘निहिलिस्ट’ दल का जन्मदाता कहा जाता है। लेखक ने इसमें आधुनिक प्रगति के साथ प्राचीन मनोवृत्ति के सङ्घर्ष का ज्वलन्त चित्र अङ्कित किया है। अनुवाद की भाषा सरल और बामुहावरा है।

बन्दी—मूल लेखक, रूस के विख्यात औपन्यासिक यूजने चिरकोब; अनुवादक, उपर्युक्त श्री० कृष्णवल्लभ द्विवेदी, बी० ए०; आकार मफोला; पृष्ठ-संख्या १०२, मूल्य ।।।)

यह भी रूस का एक मशहूर क्रान्तिकारी उपन्यास है। लेखक ने विद्रोही युवक-हृदय में धधकते विद्रोहानल का खासा खाका खींचा है। बन्दी ही रोचक पुस्तक है और हिन्दी अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—आदर्श ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग है।

श्रीतत्वोपनिषद् वा मूल दर्शन—ले० तत्त्व-वेत्ता डॉक्टर रामचन्द्र मुनि; प्रकाशक, तत्त्वविज्ञान आश्रम आनन्दकुटी, गजरौला, जिला मुरादाबाद। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ५२२, मूल्य सर्व-

साधारण के लिए १५), गरीबों के लिए ११) और बड़े आदमियों के लिए २१) है।

लेखक ने स्वयं अपनी पुस्तक का वर्णन इस प्रकार किया है—“चार काण्ड के चौसठ अङ्ग में, पाँच भूत एक लीङ्ग, इस दर्शन में चमक रहे हैं, एक मालिक दो धीङ्ग।” लेखक के कथनानुसार यह पुस्तक सर्व भूत, भविष्यत, वर्तमान काल के सब आधिभौतिक, आधि-दैविक और आध्यात्मिक रोगों का संपूर्ण गौणिक, कर्मिक और स्वाभाविक चिकित्सा का अपूर्व, अनुपम, अद्वितीय बहुमूल्य कर्मयोग शास्त्र है।

अस्तु, इस बड़ी सी पोथी में लेखक ने सब से पहले ईश्वर, प्रकृति और जीव की समस्याओं पर विचार किया है। इसके बाद चिकित्सा का सार दिया है, जिसमें रोगों के हिन्दी और अङ्गरेज़ी नाम, निदान तथा उपचार बताए गए हैं। प्रत्येक रोग के निवारणार्थ प्राकृतिक उपाय बताए गए हैं। इसका आधार ‘ट्रेमोपैथिक’ चिकित्सा-प्रणाली है, जिसका आविष्कार अभी हाल में ही हुआ है। इसे वर्ण (रङ्ग) चिकित्सा भी कहते हैं। जिसमें रङ्गीन पानी, रङ्गीन तेल और रङ्गीन रोशनी का प्रयोग किया जाता है। औषधि के स्थान पर पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल, इन पञ्चतत्वों का प्रयोग किया जाता है। पुस्तक में इन तत्वों के प्रयोग की विधि भी बताई गई है। पुस्तक में भाषा सम्बन्धी भूलों की भरमार है। छपाई भी अच्छी नहीं हुई है। परन्तु लेखन-शैली रोचक और मौलिक है। जो हो, इस विषय से प्रेम रखने वालों को एक बार यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।



नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या ३५

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर	उस नौकर ने किया तुम्हारे	सम्मति थी या नहीं तुम्हारी
मुझको हुआ परम सन्तोष,	सँग होता जो दुर्व्यवहार,	इस पर देता कभी न ध्यान,
कभी क्षम्य है नहीं जगत में	उसका फल जो होता, उससे	हो जाता बस वहीं तुम्हारी
लोलुप कामी जन का दोष ।	देता तुम्हें दोष संसार,	सब पवित्रता का अवसान ।

पूछा है तुमने जब होगा	जीवन कैसा होगा उनका
सम-बल नर-नारी जन में,	किन्तु कठिन इसका अनुमान,
होगा तब सम्बन्ध परस्पर	होगा इन प्रश्नों का उत्तर
कैसा उनके जीवन में,	बस नितान्त कल्पना-प्रधान ।

तिस पर भी मैं बतलाऊँगी	करें कदाचित मेरी बातें	नर-समाज, नारी-समाज में
सोचा जो मैं करती हूँ,	तनिक तुम्हारा मन-रञ्जन,	जो कि भीतरी है अनबन,
क्योंकि सोच कर उन बातों को	स्त्री-समाज के दुख के कारण	जिसे जानता गुप्त रीति से
सोच तनिक निज हरती हूँ ।	जो दुख है, उसका भञ्जन ।	आज उन्हीं दोनों का मन,

नहीं रहेगा तब वह बिलकुल,	अलग-अलग अधिकार रहेगा
यह सम्प्रति अधिकार-विवाद	उनका, अलग-अलग व्यापार,
भी न रहेगा, तब तो होगा	एक दूसरे से तब उनका
दूर परस्पर-जन्य-विषाद ।	होगा अलग-अलग संसार ।

हो जावेगा दूर उस समय	अधिक अलग रहने के कारण	एक तरह से विरह रहेगा,
उनका सतत-मिलन अवसाद,	दोनों स्वस्थ अधिक होंगे,	होगी अतः मिलन की चाह,
रह जावेंगे उनमें तब वे	जैसे अब हैं, नहीं उस तरह	बहुत अधिक उस समय करेंगे
नहीं जो कि है अभी प्रसाद ।	वे अस्वस्थ अधिक होंगे ।	एक दूसरे की परवाह ।

उनमें होगा ब्याह परस्पर,	सन्तानों के पालन-पोषण
पर घर अलग-अलग होंगे,	का ले आधा-आधा भार,
साथ रहेंगे कम, बहुधा	यत्न-सहित वे बना सकेंगे
पत्नीवर अलग-अलग होंगे ।	अपना-अपना सुख-संसार ।



बहुत स्वस्थ होगा तब उनका
जीवन उन्नतिशील सदा,
नहीं रहेगा अवलम्बन तब,
नहीं दासता की विपदा ।

दोनों स्पर्धा-सहित बढ़ेंगे
चरमोन्नति के शुभ पथ पर,
पृथ्वी उनकी अधिकृत होगी,
अधिकृत यह विस्तृत अम्बर ।

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
अब अपना आगे का हाल,
सुन कर मेरी बात, युवक की
हुई क्रोध से आँखें लाल ।

मैं भी क्रोधित हुई, कहा यह,
“लज्जा नहीं तुम्हें आती,
इस प्रकार की बुरी भावना
तुमको किस प्रकार भाती ?

बहिन बना कर मुझे कर रहे
अब मेरे सँग यह व्यवहार !”
सुन कर ऐसी बात हो गये
उसमें कुछ जागृत सुविचार ।

बोला वह, “कह रही ठीक हो,
क्षमा करो मुझको इस बार,
लज्जा है मुझको कृति से जो
प्रकट किया ऐसा कुविचार ।”

पत्र-संख्या ३६

[पत्र बाल-विधवा की ओर से बृद्ध-पत्नी को]

बहिन,
मिला शुभ पत्र, उसे
पढ़कर मुझको आनन्द हुआ,
जीवन-सञ्चित-दुख-प्रभाव मन
का मेरा कुछ मन्द हुआ ।

लख कर वह सम्बन्ध, और वह,
जीवन-भलक परम सुन्दर
अति प्रसन्न मैं हुई मुग्ध
रह गया हृदय मेरा क्षण भर !

चाहे यह कल्पना मात्र हो,
पर है भव्य चित्र यह एक,
जिसे देख कर हो जावेंगे
मुग्ध मनुज मतिमान अनेक ।

ईश्वर करे, बहिन, वन जावे
सच तब-कल्पित यह संसार,
यह होगा उन्नतिमय, वलमय
और चतुरता का आगार ।

पर है कुछ सन्देह, दुर्दशा
हो न उस समय शिशुजन की,
पालन-भार बटेगा दो में,
निर्भर गति पर दो मन की ।

कन्या-शिक्षा का प्रबन्ध तब
कैसा होगा, और विकाश,
उनके जीवन का होवेगा
कैसे-कैसे ज्ञान-प्रकाश,

डाला जावेगा उनके मन
पर, लिखना अब की यह बात,
लिखना कैसे कन्याओं के
तब व्यतीत होंगे दिन-रात ।

बहिन, सुनाती हूँ मैं तुमको
फिर अपना आगे का हाल,
उठी जिस समय, सहम गई मैं
लख कर वह कुदृश्य विकराल ।

माँगी मैंने क्षमा नाथ से,
और वहाँ से भगी तुरन्त,
मन में सोच रही थी, होवे
क्या जाने कब दुख का अन्त ।

छुरी छिपा ली वस्त्रों में चल
पड़ी तुरत बस्ती की ओर,
दिखता था मेरी विपत्ति के
सागर का उस काल न छोर ।



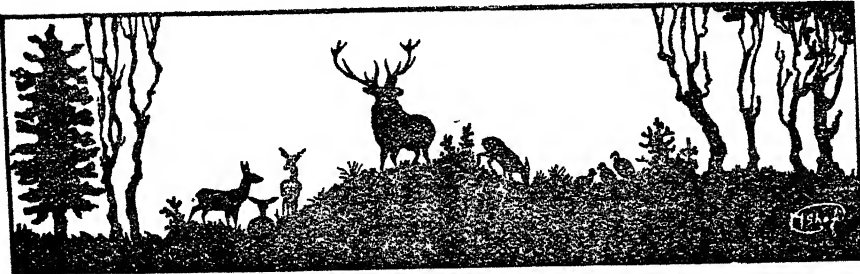
असहाया थी, पता न था यह— दिन चढ़ आया था, मैं पहुँची मैंने सोचा, कहीं नौकरी
जाती थी किस ओर कहाँ, बस्ती में सब लोग वहाँ, करूँ, कहीं दासी बन कर,
सोचा, चलो वहीं पर हमको अपने-अपने कामों में थे कुछ तो जीवन काल बिताऊँ,
जगदीश्वर ले जायँ जहाँ। लगे उन्हें विश्राम कहाँ ? दूँ कोई अच्छा सा घर।

बहुत मिले जो थे कर देते बहुत मिले जो मुझे देख कर
मुझ पर निज कटाक्ष का पात, खड़े राह मे थे हँसते,
बहुत मिले जो मुझे देखकर बहुत मिले जो रूप-जाल में
लगा रहे थे मुझ पर घात। जान पड़ रहे थे फँसते,

मिली न मुझको विमल दृष्टि ही, दासी एक निकलती देखी “छोटी मोटी एक नौकरी,
वदन-मुलक्षित विमल विचार, मैंने एक भले घर से, बहिन, दिला दो मुझे कहीं,
अधिक दोष का, कम गुणकारी उसे रोक कर बोली बस मैं बड़ी दया होगी तो मुझ पर,
सम्मिश्रण है यह संसार। उससे मृदु-विनीत स्वर से, उससे मूलङ्गी उपकार नहीं।”

पहले उसने प्रखर दृष्टि से उसने कहा—“चली आओ तुम
भली भाँति मुझको देखा, बात कहो घर के भीतर,
उसके भव्य वदन-मण्डल पर चली आ रही अभी कहाँ से
उदित दया की थी रेखा। तुम, है कहाँ तुम्हारा घर ?”

भीतर चली गई मैं, उसको
हाल न सच्चा बतलाया,
पर ऐसा बतलाया जिससे
उसने बहुत तोष पाया।



श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिन्दू होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरुपाक्ष]

यद्यपि भगवान् विष्णुमूर्ति को अछूतों के दृष्टि-स्पर्श से बाल-बाल बचा लेने वाले कालीकट के स्वनाम धन्य ज़मोरिन दादा की यश-गाथा आजकल पट पड़ गई है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने जो अमर-कीर्ति अर्जित कर ली है, वह ईश्वर के 'गार्जियन' मात्र के लिए श्लाघनीय है।

❀

कालीकट के ये ज़मोरिन हमारे अलवरेन्द्र बहादुर की तरह 'राजर्षि' नहीं हैं, काश्मीर के महाराज 'ए' की तरह यूरोप में नाम और यश भी नहीं प्राप्त किया है और न महाराज पटियाला की तरह उनकी गुण-गरिमा रूपी विलुप्त रत्न के उद्धारार्थ कभी कोई कमीशन ही बैठा है।

❀

मगर चूँकि उन्होंने भगवान् आनन्द-कन्द की जाति की रक्षा कर ली है, उन्हें पतित होने से—अछूतों के भी देवता होने से बचा लिया है और इसके लिए उन्होंने महात्मा गाँधी और श्री०केलप्पन के प्राणों की भी परवाह न की, इसलिए ऐसा सुयश और ऐसी सुख्याति प्राप्त कर ली कि चाहे इस धराधाम से सनातन धर्म का नाम विलुप्त हो जाय, परन्तु आपके नाम का बाल भी बाँका नहीं हो सकता।

❀

न हर्ष लगी न फिटकिरी और रङ्ग चोखा उतरा—न कोई क़िला फ़तह करना पड़ा और न कोई विजय-स्तम्भ बनवाना पड़ा, अथच 'विजय बड़ी' के साथ ही 'कीर्ति अति कमनीय' आकर पैरों पर लोट गई! यह अपूर्व लाभ देखकर यदि ईश्वर बाबा के अन्यान्य अभिभावकों के मुँह में पानी भर आवे और वे भी दादा ज़मोरिन के पदाङ्क का अनुसरण आरम्भ कर दें तो इसमें सन्देह ही क्या है?

❀

१४

फलतः, जनाव आली, ज़मोरिन का यह सौभाग्य देखकर पुरी के 'उडिया राजा' के मुँह में भी पानी भर आया हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। एक बार कह देने भर की ज़रूरत थी कि पुरी के मन्दिर में अछूत नहीं जाने पाएँगे। बस, चारों ओर धूम मच जाएगी। भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा जान जाएगा कि पुरी में जगन्नाथ ही नहीं, वरन् उनके भी 'नाथ' कोई राजा साहब भी रहते हैं।

❀

बात वही हुई साहब, एक दिन एकाएक उडिया राजा ने घोषणा कर दी कि जगन्नाथ जी के मन्दिर में हरिजन नहीं जाते। पण्डों ने कहा—“धर्मावतार, आपनी कण कउचि? अछूत तो एई मन्दिर अनादि-काल होइते जाउचि।” पण्डों ने अपने पुराने बही-खाते टटोले। हज़ारों डोमों, चमारों, पासियों और धोबियों के नाम—मय उनकी वसिदयत, क़ौमियत और सकूनत के—पेश करके साबित किया कि इस मन्दिर में कभी भी अछूतों के लिए रोक-टोक नहीं रही। परन्तु राजा साहब इस 'ज़मोरिनी ख्याति' के सुवर्ण सुयोग को हाथ से जाने देना नहीं चाहते! बाप रे बाप! ऐसा मौक़ा फिर मिलेगा कहाँ?

❀

पुरी के प्रायः एक दर्ज़न पण्डों ने अपने हस्ताक्षर से एक विज्ञापन निकाल कर बताया है कि यहाँ के जगन्नाथ बाबा किसी के बाप की मौरूसी नहीं हैं। ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक उनके दर्शन कर सकते हैं। उनका प्रसाद कुत्ते द्वारा उच्छिष्ट होने पर भी अशुद्ध नहीं होता। परन्तु राजा साहब इन बातों को मानने को तैयार नहीं हैं। क्योंकि अभी तक न तो अण्डवारों में आपकी धर्मनिष्ठा की पूरी तारीफ़ ही छपी और न चित्र ही छपा। ऐसी दशा में बेचारे सब्बी बात मानें तो कैसे मानें?

❀



देखिए न, पुरी के शङ्कराचार्य ने बात की बात में बाज़ी मार ली। काशी में हरिजनोद्धार के विरुद्ध एक जुलूस निकलवा दिया और कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक नाम हो गया। लोगों को नए सिरे से मालूम हो गया कि पुरी में श्रीमच्छङ्कराचार्य भी रहते हैं। भई, बात तो यह है कि इस विज्ञापनी युग में कुछ करने से ही नाम होता है, चुप रहने से नहीं।

❀

जो हो, अपने राम पुरी के राजा साहब की इस वूरदशिता के फ़ायल हैं। उड़ीसा के समाचार-पत्र इस मामले में विशेष दिलचस्पी ले रहे हैं। पण्डों में भी चहल-पहल मच गई है और अन्य अज्ञवारों में भी ईश्वर के इन नए बाँडीगार्ड की प्रशंसा छप रही है। ज़मोरिन के “विष्णु-मूर्ति” की अपेक्षा इनके लूले जगन्नाथ की ख्याति भी अधिक है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि पुरीपति नामवरी हासिल करने में ज़मोरिन को भी पछाड़ डालें।

❀

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि पुरी के इन नए ईश्वर-रक्षक महोदय की चर्चा देश में महीनों से चल रही है, परन्तु अभी तक न तो वर्णाश्रम स्वराज सङ्घ ने ही राजा साहब को ‘राजर्षि’ की पदवी प्रदान की और न भारत-धर्म-महामण्डल की ओर से ही आप ‘धर्म-धीर महावीर’ बनाए गए! पदवी-प्रदान कार्य में सनातनधर्म की ओर से ऐसी सुस्ती एक अघटन घटना है।

❀

अरे भई, सुना है, अलवर के धर्म-प्राण इस बुढ़ौती में दादा सनातनधर्म को अनाथ करके ‘लण्डन-वन’ में गौराङ्ग-पद-पद्म पराग प्राप्त करने जा रहे हैं। इसलिए ‘राजर्षि’ की गद्दी पर बतौर क़ायम मुक़ाम के अगर पुरीपति ही बिठा दिए जाएँ तो क्या हरज है! यद्यपि आपके धर्म-कार्यों की तालिका अलवरेंद्र बहादुर की भाँति लम्बी-चौड़ी नहीं है, परन्तु कम से कम स्थान तो ख़ाली नहीं रहना चाहिए।

❀

“वर रोवें कतरनी पान, तमोलिन गौने चली!”—परन्तु मथुरा की एक पानवाली मेहतरानी ‘कतरनी-पान’

के साथ ही, बहुत से हिन्दू जाति के उद्धारक पण्डों को भी रुला कर रफूचकर हो गई!

❀

खुलासा यों समझिए कि मथुरा के कोई उच्च कुलोद्भव सज्जन एक खूबसूरत मेहतरानी को कहीं से भगा लाए थे और उसे एक पान की दूकान करा दी थी। बेचारे का घर भी आबाद था और पानवाली बीबी की बंदौलत अण्ठी भी गरम रहती थी।

❀

शाम को भङ्ग-बूटी छानने के बाद आबेरवाँ के कुर्ते और बतासफेनी दुपट्टे से लैस पण्डा बाबुओं की टोली नवागता तमोलिन सुन्दरी की दूकान पर खड़ी हो जाती थी—जैसे नव-प्रस्फुटित मल्लिका के आस-पास भौरों की भीड़! हँसी, मज़ाक़, चुहलबाज़ी, तत्पश्चात् पान के बीड़े लेते-लेते अँगुली-स्पर्श!—वज्राह जब यह अनिर्वचनीय सुखद स्मृति यजमान प्रदत्त घृतपक् से पली तोंद में कुलाँचे भरने लगती है तो कलेजा मुँह को आ जाता है।

❀

हाँ, तो एक दिन एक मेहतर आया और कहने लगा, ‘यह तमोलिन नहीं, मेरी बीबी अर्थात् मेहतरानी है!’ बस, उसे लेकर चलता बना! बेचारे मथुरा के पण्डे कलेजा थाम कर रह गए और अब यार लोग जले पर नमक छिड़क रहे हैं, फ़वतियाँ कसी जा रही हैं। हाय हाय!

न खुदा ही मिला न विसाले सनम,
न इधर के हुए न उधर के हुए!

❀

किसी ने ठीक अन्दाज़ा लगाया है कि ‘हाथी के दाँत खाने के और होते हैं और दिखाने के और।’ सनातनधर्म की इन ‘मथुरिया’ हाथियों की भी यही दशा है। वे मेहतरानी के पान क्या, चाहें तो उसका जूठन चाट लें, परन्तु मन्दिरों में किसी मेहतर को नहीं जाने देंगे। आझिर इसी कट्टरता ने ही तो धर्म को अब तक बचा रखा है।





[सम्पादकीय]

महात्मा गाँधी का उपवास

यह बात प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह महात्मा गाँधी का समर्थक हो अथवा विरोधी, स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि उनका प्रत्येक कार्य अनूठा होता है और उसके द्वारा सर्वसाधारण का ध्यान उनके अभिलषित उद्देश्य की तरफ जितना शीघ्र और जितना अधिक आकर्षित हो जाता है, उतना और किसी उपाय से हो सकना असम्भव है। महात्मा जी की यह एक बहुत बड़ी खूबी है कि वे भारतवासियों की मानसिक स्थिति को पूर्णतया समझते हैं और उसे प्रभावित करने का सच्चा और वास्तविक मार्ग उनको ज्ञात है। यही कारण है कि जहाँ अन्य राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता वर्षों तक गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने और पश्चिमी तरीकों के अनुसार घोर आन्दोलन करके भी साधारण जनता की निद्रा अथवा उदासीनता जो भङ्ग नहीं कर पाते, वहाँ महात्मा जी एक ही दिन में उसके भीतर वह विद्युत्-तरङ्ग प्रवाहित कर देते हैं कि सारा देश क्रौरन चौकड़ा हो उठता है और प्रत्येक व्यक्ति सोचने लगता है कि यह क्या हो गया और उसका क्या कर्तव्य है? महात्मा जी की इस अपूर्व सर्वतोमुखी प्रतिभा का ही यह फल है कि उन्होंने कुछ ही वर्षों में भारत के राजनीतिक,

सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में ऐसी हलचल तथा जागृति उत्पन्न कर दी है, जिसका उनके आविर्भाव के पूर्व कहीं चिह्न भी दिखलाई नहीं देता था। महात्मा जी का पिछला उपवास भी इस विषय में एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। कितने ही लोगों ने उनकी इस कार्य-प्रणाली को नापसन्द किया, कितनों ही ने इस प्रकार भूखों रह कर प्राण देने की सम्भावना को पापपूर्ण बतलाया, कितने ही इसे एक प्रकार की अनुचित धमकी बतलाते थे, पर उन सबको महात्मा जी के त्याग तथा बलिदान के सम्मुख सर झुकाना पड़ा और यह भी स्वीकार करना पड़ा कि इस उपाय से अछूत आन्दोलन को जितना बल प्राप्त हुआ, वह किसी अन्य उपाय से सम्भव न था। वास्तव में अछूत-ग्रथा ऐसी सहज अथवा दिखावटी चीज़ नहीं हैं, जिसका नाश अथवा सुधार मामूली चेष्टा द्वारा किया जा सके। यह हजारों वर्षों से इस देश में प्रचलित है और हिन्दुओं के हाड़-मांस में घुस चुकी है। अति प्राचीन काल से बड़े-बड़े सुधारक और धर्म-प्रचारक इसमें परिवर्तन करने अथवा इसे मिटा देने की चेष्टा करते आए हैं, पर प्रायः उनको असफलता ही हुई है और हिन्दू-समाज ने उनके अनुयायियों को एक पृथक् सम्प्रदाय के रूप में सीमित कर दिया है। ऐसा महान कार्य किसी महान चेष्टा द्वारा ही सिद्ध हो सकता है और महात्मा गाँधी का



यह २१ दिन का उपवास उसी की भूमिका है। क्योंकि वे स्वयम् बता चुके हैं कि “मेरा यह उपवास इस तरह के उन अनेक उपवासों का श्रीगणेश है, जो मुझसे अधिक पवित्र और अधिक उपयुक्त व्यक्तियों को करने होंगे। गत सितम्बर मास के उपवास के पश्चात् से मैं बराबर इस सम्बन्ध के पत्रों और साहित्य का अनुशीलन करता रहा हूँ और पुरुषों तथा स्त्रियों, शिष्टियों तथा अशिष्टियों, हरिजनों और गैर हरिजनों से इस सम्बन्ध में बातचीत करता रहा हूँ। यह बुराई अथवा कुप्रथा उससे कहीं अधिक बड़ी है, जितना कि मैंने इसे ख्याल किया था। धन, बाहरी सङ्गठन और हरिजनों को राजनीतिक अधिकार मिल जाने से भी इसका मूलोच्छेद नहीं हो सकता, यद्यपि ये तीनों बातें आवश्यक हैं। इनको प्रभावशाली बनाने के लिए उनके साथ ही आन्तरिक सम्पत्ति, आन्तरिक सङ्गठन और आन्तरिक शक्ति दूसरे शब्दों में आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है। यह केवल उपवास और प्रार्थना द्वारा प्राप्त हो सकती है।” यह भी असम्भव नहीं है कि इस कार्य की सिद्धि के लिए इसके साधकों को और भी अधिक बलिदान करना पड़े। क्योंकि पुराने विचारों के अनेक विवेकहीन व्यक्ति इस सम्बन्ध में जैसी जड़ता और कट्टरता का परिचय दे रहे हैं और अधिकांश भारतवासियों के हृदयों में अपरिवर्तनशीलता अथवा स्थिति-पालकता का भाव जिस प्रकार गहरी जड़ जमाए हुए है, उसे देखते हुए यह आशा नहीं होती कि इस सम्बन्ध में कोई व्यापक परिवर्तन सुगमतापूर्वक हो सकेगा। ऐसी दशा में, जैसा गाँधी जी ने एक अन्य लेख में कहा है, कोई आश्चर्य नहीं जो इस कलङ्क को धोने के लिए अनेक साधु-चरित व्यक्तियों को अपने प्राण अर्पण करने पड़ें। म० गाँधी स्वयम् इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए आत्म-बलिदान करने का दृढ़ निश्चय कर चुके हैं और यद्यपि इस बार के उपवास को वे सफलतापूर्वक पार कर गए हैं, पर यह असम्भव नहीं यदि यह निष्ठुर प्रथा अन्त में उनकी बलि लेकर ही सन्तुष्ट हो। यद्यपि यह विचार आरम्भ में अत्यन्त अमानुषी जान पड़ता है और किसी भी कोमल हृदय व्यक्ति के लिए यह असहनीय प्रतीत होगा, पर परिस्थिति को देखते हुए इससे अधिक कारगर और प्रशस्त

मार्ग दूसरा नहीं हो सकता। अछूत आन्दोलन को इस मार्ग पर डाल कर महात्मा गाँधी हिन्दू-समाज की उस भीषण गृह-युद्ध अथवा भाई से भाई की लड़ाई से रक्षा कर रहे हैं, जिसके आरम्भिक चिन्ह हमको मद्रास और बम्बई प्रान्त में अभी दिखलाई पड़ रहे हैं और जो यदि स्वाभाविक रूप से बढ़ती गई तो निकट-भविष्य में हिन्दू-समाज का सर्वनाश कर देगी तथा उसे विरोधियों की भोज्य सामग्री बना देगी। यदि गाँधी जी सत्याग्रह, उपवास और कष्ट-सहन को अछूत आन्दोलन का साधन नहीं बनाते, तो दोनों पक्षों में कटुता के निरन्तर बढ़ते जाने और कुछ ही समय में हिंसात्मक कलह आरम्भ हो जाने की पूरी सम्भावना थी; और अब भी यदि दुर्भाग्यवश महात्मा जी अपने उद्देश्य में सफल-मनोरथ न हुए, तो हमको बाध्य होकर इसी परिणाम पर पहुँचना पड़ेगा। आशा का विषय इतना ही है कि अभी इस देश के निवासी तपस्या के महत्त्व और आकर्षण को सर्वथा भुला नहीं बैठे हैं और महात्मा गाँधी जैसे विश्व के एक सर्वोत्कृष्ट तथा पवित्र मानव का कष्ट-सहन उन्हें बिना प्रभावित किए रह सके, इस बात की सम्भावना बहुत कम है। महात्मा गाँधी के आत्मबलिदान की घोषणा ने और उस सादगी तथा विनयशीलता ने, जिसके साथ वह की गई है, देश के सभी सहृदय व्यक्तियों को अवाक् कर दिया है। महात्मा जी को अछूतों सम्बन्धी मिशन के ईश्वरीय होने पर इतना दृढ़ विश्वास है कि उसके लिए अपना जीवन अर्पण कर देना उनको बिल्कुल छोटी बात जान पड़ती है। गत सितम्बर के उपवास के समय उन्होंने लिखा था कि यदि मेरे पास कोई और बड़ी चीज़ होती तो मैं उसे भी इस उद्देश्य के लिए अर्पित कर देता, पर मेरे पास प्राणों से बढ़ कर और कुछ नहीं है। यह कल्पना करना कि इतना बड़ा त्यागभाव व्यर्थ चला जायगा और अछूतों के सम्बन्ध में उच्च जाति वाले जैसे के तैसे पत्थर बने रहेंगे, मनुष्यता के ऊपर से विश्वास हटा लेना है। हमको पूर्ण विश्वास है कि महात्मा जी की यह तपस्या निरर्थक न जायगी और जल्दी या देर में हिन्दू-समाज को इस कलङ्क से मुक्त करके छोड़ेगी।





देशी राज्यों को चेतावनी

भरतपुर और काश्मीर के बाद अलवर-नरेश के राजकीय अधिकारों पर अङ्गरेजी गवर्नमेण्ट का हस्तक्षेप होना एक ऐसी घटना है, जो प्रत्येक विवेकशील देशी नरेश के हृदय में खलबली मचा देगी। यह घटना बतलाती है कि देशी नरेशगण अपने स्वाधीन अधिकारों और सम्राट की सरकार से सीधा सम्बन्ध रखने के विषय में जो बड़ी-बड़ी बातें किया करते हैं, उनका वास्तव में क्या मूल्य है और अवसर पड़ने पर किस प्रकार उनके साथ एक साधारण मनुष्य की भाँति व्यवहार किया जा सकता है। हमारे कहने का आशय यह नहीं है कि इन घटनाओं में जिन नरेशों के अधिकारों में हस्तक्षेप किया गया है वे सर्वथा निर्दोष थे अथवा उन पर जो इलज़ाम लगाए गए हैं, उनमें कुछ भी तथ्य नहीं है। हम भली भाँति जानते हैं कि इन्हीं राजाओं का नहीं, वरन् दस-पाँच को छोड़ कर सभी राजाओं का व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन इतना निन्दनीय और कुत्सापूर्ण है कि यदि उनको एकदम राज्यच्युत करके देश-निकाले का अथवा उससे भी कठोर दण्ड दिया जाय तो भी कुछ अनुचित नहीं है। इन राजाओं में से अधिकांश ऐसे हैं, जिनको अपने भोग-विलास और कामवासना की पूर्ति के सिवा अपनी प्रजा के सुख-दुःख और भले-बुरे की रत्ती भर परवाह नहीं है। जब कि उनके राज्य में हज़ारों व्यक्ति बिना भोजन के मरते रहते हैं अथवा सागपात से पेट की ज्वाला शान्त करते हैं, वे एक बार की यूरोप-यात्रा में दस-बीस लाख रुपए खर्च कर देते हैं; और दो-दो लाख की एक मोटर अथवा पचास-पचास हज़ार का एक कुत्ता खरीद लाते हैं। वे लोग कष्ट-पीड़ित प्रजा पर नए-नए असहनीय करों का भार लाद कर निरर्थक महल या अन्य इमारतें बनवा कर अपना शौक पूरा करते हैं, या थिएटर और नाच-रङ्ग में लाखों रुपए बर्बाद कर देते हैं। ऐसे उत्तरदायित्व शून्य तथा नीच वृत्तियों के दास मनुष्यों को 'राजा' या 'शासक' के नाम से सम्बोधित करना दरअसल इन शब्दों को कलङ्कित करना है और इस दृष्टि से इन लोगों के साथ जो कुछ भी कठोरतापूर्ण व्यवहार किया

जाय उसके लिए हमें किसी प्रकार की शिकायत करने की आवश्यकता नहीं। पर हमको भारत-सरकार की कार्यवाही में जो बात अनुचित अथवा असन्तोषजनक जान पड़ती है, वह यह है कि वह जिस कुशासन के लिए इन लोगों को दण्ड देती है अथवा इनके अधिकारों को थोड़े समय अथवा सदैव के लिए छीन लेती है, उसका अन्त अङ्गरेजी अक्रसरों का अमल जारी हो जाने पर भी नहीं होता। इससे शासक के निजी खर्च में थोड़ी बहुत कमी अवश्य पड़ जाती है, पर प्रजा की दुर्दशा में नाम मात्र को भी अन्तर नहीं पड़ता। प्राचीन शासन के हानिकारक नियम प्रायः ज्यों के त्यों बने रहते हैं, और ब्रिटिश शासन की अच्छाईयों का प्रवेश होना तो दूर, देशी शासन की दो-चार स्वाभाविक लाभजनक बातों का भी अन्त हो जाता है। इन रियासतों में सरकारी हस्तक्षेप का दूसरा कुफल हमको यह जान पड़ता है कि उसके अधिकारी वहाँ की हिन्दू प्रजा के साथ प्रायः विशेष रूप से कठोर व्यवहार करते हैं तथा मुसलमानों के प्रति अनुचित पक्षपात दिखलाते हैं, जिससे रियासतों में भी उस अनिष्टकारी साम्प्रदायिक भेदभाव का बीज पड़ जाता है, जो ब्रिटिश भारत में इतने प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं। क्या यह उचित न होता कि सरकार शासकों को अधिकारच्युत करने के पश्चात् शासन-भार उसी स्थान के योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों के हाथ में देती तथा वहाँ की प्रजा को भी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के कुछ अधिकार प्रदान करती। ऐसा करने से रियासतों की अवस्था का कुछ वास्तविक सुधार हो सकता और समय आने पर वहाँ के निवासी भावी भारतीय फ़ेडरेशन में समुचित भाग ले सकते।

❖ — ❖ ❖

जापान की नृशंसता

‘लो ग ऑफ़ नेशनस’ और अन्य ‘शान्तिवादियों’ के लाख हाय-तोबा मचाने पर भी जापान ने चीन को कुचल ढाला और आज उत्तरी चीन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसी का प्रभुत्व है। इस अपहरणकार्य में जापान ने जिस निन्दनीय धूर्तता का परिचय



दिया है उसका उदाहरण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कहीं नहीं मिल सकता। चीन-जापान के बीच आज तक नियमित रूप से युद्ध-वोषणा नहीं की गई और जापान का राजदूत भी चीन की राजधानी में मौजूद है। पर इसका कुछ खयाल न करके केवल ऊपरी बहाने बतला कर जापानी सेनाएँ चीन के भीतर बढ़ती गई और अन्त में चीन की राजधानी पेकिन दस-बारह मील रह गई। यह अवस्था देख कर लाचार होकर चीनियों को जापान से तनिक सन्धि करनी पड़ी है और अनुमान से प्रतीत होता है कि अन्त में विवश होकर उसे जापान की तमाम शर्तें माननी ही पड़ेगी। जिस जापान को एशियाई राष्ट्र अपना नेता बनाने का स्वप्न देख रहे थे, उसकी अपने सब से पास के पड़ोसी के प्रति ऐसी नृशंसता देख कर किसको कष्ट न होगा। यह सच है कि जापान ने थोड़े ही वर्षों में सैनिक, राजनीति और उद्योग-धन्यों की दृष्टि से अपूर्व उन्नति करके यूरोपियन राष्ट्रों को भी मात कर दिया है और आज किसी में यह साहस नहीं कि बिना भीषण परियाम की आशङ्का किए उसे ललकार सके। उसकी शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस संसारव्यापी आर्थिक सङ्कट के युग में, जब कि इङ्ग्लैण्ड और अमेरिका जैसे राष्ट्रों के पैर लड़खड़ा रहे हैं और समस्त देश आत्मरक्षा के लिए व्याकुल हो रहे हैं, जापान निर्भय चित्त से एक ओर युद्ध में करोड़ों रूपए खर्च कर रहा है और दूसरी तरफ व्यापारिक संध्राम में अपने माल को इस प्रकार मिट्टी के मोल बेच रहा है, जिसे देख कर संसार के व्यवसाय के ठेकेदार यूरोपियनों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। पर यह सब होने पर भी वह जिस घोर स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर रहा है, वह उसके भविष्य के मङ्गलजनक होने की सूचना नहीं देती। वर्तमान समय में संसार में प्रजासत्तावाद तथा समानता की एक बलवती लहर फैल रही है और साम्राज्यवादी नीति के प्रति सर्वसाधारण के हृदय में स्वाभाविक रूप से तीव्र घृणा का भाव उत्पन्न हो रहा है। इस युग में साम्राज्यवाद का ऐसे नम्र रूप में बीड़ा उठाना कदापि कल्याणकर नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि चीन आज असङ्गठित तथा निर्बल दशा में होने से जापान की सुसङ्गठित

पाशविक शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकता, और यूरोपियन राष्ट्र तथा अमेरिका आदि भी अपनी समस्याओं में उलझे होने के कारण भगडा मोल लेना नहीं चाहते, पर यह अवस्था सदैव न बनी रहेगी। चाहे चीन इस समय जापान के सामने सर झुका दे, पर यह अपमानपूर्ण ठोकर उसकी तन्द्रा को भङ्ग कर देगी और उसके आन्तरिक भेदभावों तथा फूट को दूर करके उसे अधिक सङ्गठित और शक्तिशाली बना देगी। उधर यूरोपियन राष्ट्र अपने स्वार्थ पर आघात होते देख अधिक समय तक चुप न रह सकेंगे। ज्योंही उनकी समस्या किसी प्रकार हल हो जायगी, और जिसका उपक्रम विश्व-आर्थिक-कॉन्फ्रेंस के रूप में हो रहा है, त्योंही वे जापान से कैफ़ियत तलब करेंगे। उस अवस्था में जापान का दर्प अधिक देर तक कायम रह सके, यह सम्भव नहीं जान पड़ता। जापान की यह विजय अथवा सफलता क्षणस्थायी है और आश्चर्य नहीं कि इसका प्रतिफल उसके लिए विशेष रूप से शोचनीय हो।

❀ ❀ ❀

सिन्ध में शक्कर बनाने को कम्पनी

क राची के सुप्रसिद्ध व्यवसायी रावबहादुर सेठ शिवरतन मोहता और उनके अन्य मित्रों ने सिन्ध में एक नए और लाभजनक कारबार की नींव डाली है। यह प्रान्त अभी तक खासकर खेती-बारी में ही लगा हुआ है और कल-कारखानों की वहाँ बहुत कमी है। मोहता जी ने वहाँ पर एक ऐसी शक्कर बनाने वाली कम्पनी क़ायम करने की योजना की है, जो अपने काम के लिए ज़रूरी गन्ना भी खुद ही पैदा करेगी। इसके लिए कम्पनी ने सिन्ध की लायड बारेज नहर के पास एक काफ़ी बड़ी ज़मीन प्राप्त की है, जिसमें सिंचाई की बहुत अधिक सुविधा है और सिंचाई ही गन्ने की फ़सल के उत्तम होने का मुख्य आधार है। कम्पनी को दूसरी बड़ी सुविधा यह है कि वह एक ऐसे प्रान्त में खोली जा रही है जहाँ अभी तक शक्कर बनाने का कारबार बिल्कुल नहीं होता और इसलिए यहाँ हानिकारक चढ़ा-ऊपरी का कुछ भी भय नहीं है। पञ्जाब और यू० पी० जैसे अन्य प्रान्तों से, जहाँ शक्कर बनाने का कार्य विशेष रूप से होता



है, यदि शक्कर सिन्ध में भेजी जाय तो रेल का भाड़ा ही बेट से ढाई रुपए फ्री मन तक लग जाता है। ऐसी हालत में यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह कम्पनी दूसरी शक्कर की कम्पनियों की बनिस्बत ज़्यादा सुभीते में रहेगी और इसमें मुनाफ़ा भी अधिक रहेगा। सिन्ध में शक्कर की बिक्री का बहुत बड़ा बाज़ार भी मौजूद है। कराची के बन्दरगाह में प्रतिवर्ष दो लाख टन से अधिक शक्कर विदेशों से आती है, जिसका एक काफ़ी बड़ा भाग सिन्ध में ख़र्च होता है। जब यह कम्पनी उसी स्थान में रह कर शक्कर बनाएगी और रेल या जहाज़ के भाड़े की पूरी बचत हो जायगी तो स्पष्ट है कि इससे कम्पनी के हिस्सेदारों और ब्राह्मकों दोनों को काफ़ी लाभ हो सकेगा। ऐसे फ़ायदेमन्द कारबार की योजना करने के लिए मोहता जी और उनके सहकारी दूसरे डाइरेक्टरगण अवश्य ही उक्त प्रान्त-निवासियों के धन्यवाद के भाजन होंगे। हमें आशा है कि सर्व-साधारण तथा श्रीमान व्यक्ति इस कम्पनी में, जिसके तमाम सञ्चालक मशहूर और पक्के व्यवसायी हैं, भाग लेकर अपना और देश का हित-साधन करेंगे। इस विषय में ज़्यादा हाल जानने के लिए इसी अङ्क में दूसरी जगह दिया गया कम्पनी का प्रॉस्पेक्टस देखना चाहिए और कम्पनी के प्रधान कार्यालय से, जो मोहता बिल्डिङ्ग मैकलिओड रोड, कराची में है, पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

❖

❖

❖

द्विवेदी मेला

प्रयाग का द्विवेदी मेला, जिसका अधिवेशन ४ से ७ मई तक स्थानीय अग्रवाल विद्यालय में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ, हिन्दी-साहित्य-जगत के लिए एक सर्वथा अपूर्व घटना है। आज तक शायद किसी हिन्दी-लेखक या सम्पादक का इतना समादर नहीं किया गया और न कभी किसी लेखक की सम्बर्द्धना के लिए दूर-दूर के स्थानों के इतने प्रसिद्ध विद्वान् एकत्रित हुए थे। यद्यपि द्विवेदी जी के अभिनन्दन का सर्वप्रथम सङ्कल्प काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया था और इसके उपलब्ध में उसने जो 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित किया है वह विशालता, सुन्दरता तथा उच्च कोटि की साहित्यिक

सामग्री की दृष्टि से अपूर्व है, पर प्रयाग के साहित्य-प्रेमियों ने आचार्य द्विवेदी जी के प्रति अपनी आन्तरिक भक्ति का परिचय जिस उत्साह और धूमधाम के साथ दिया उसकी भी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आरम्भ में इस उत्सव का विचार कुछ स्थानीय हिन्दी-भक्तों के हृदय में साधारण रीति से उत्पन्न हुआ था और उन्होंने काम में हाथ भी लगा दिया। पर जब कार्य की महानता और कठिनाइयों का उनको अनुभव हुआ, तो वे चिन्तित होने लगे और मेले को स्थगित करने की चर्चा सुनाई पड़ने लगी। उस अवसर पर यदि श्री० लक्ष्मीधर जी वाजपेयी अग्रसर होकर अपनी पूरी शक्ति इस कार्य में न लगा देते, तो प्रयाग के गौरव की रक्षा हो सकनी कठिन हो जाती। जब वाजपेयी जी ने हिम्मत की और कार्य सिद्ध करने का रास्ता दिखलाया, तो अन्य लोगों में भी उत्साह का सञ्चार हुआ और निराशाजनक परिस्थिति फिर आशाजनक हो उठी। विशेषकर प्रयाग के प्रसिद्ध रहस और हिन्दी-प्रेमी श्री० निरञ्जनलाल जी भार्गव के आगत सज्जनों के ठहराने, खिलाने-पिलाने और सेवा-शुश्रूषा का भार अपने ऊपर ले लेने से कार्य बहुत कुछ सरल हो गया। अन्य सज्जनों ने भी धन द्वारा सहायता करके और प्रबन्ध तथा व्यवस्था का भार अपने ऊपर लेकर अपना कर्तव्य पालन किया और अन्त में सबके सहयोग से यह महान आयोजन जैसी सुन्दरता और सफलता के साथ पूर्ण हुआ, उसकी स्मृति हिन्दी-संसार में चिरस्मरणीय रहेगी। द्विवेदी जी के अभिनन्दनोत्सव के अतिरिक्त जो कवि-सम्मेलन (सभापति, कविवर पं० गयाप्रसाद जी शुक्ल 'सनेही'), साहित्य-चर्चा और वादविवाद सम्मेलन (सभापति, श्री० पं० जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी), साहित्यिक भाषण और निबन्ध-पाठ सम्मेलन (सभापति, पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी सम्पादक 'कर्मवीर'), काव्य-परिहास-सम्मेलन (सभापति, श्री० जी० पी० श्रीवास्तव), खेल-कूद सम्मेलन (सभापति, पं० हृदयनाथ जी कुँज़रु), प्रीतिभोज सम्मेलन, सङ्गीत सम्मेलन, कवि-दरबार आदि अन्य उत्सव हुए, वे भी उपादेयता, मनोरञ्जकता और जनता की उपस्थिति सभी दृष्टियों से पूर्णतया सफल हुए। हमें यह कहने में कुछ भी सङ्कोच नहीं है कि यह मेला आचार्य द्विवेदी जी के महत्व और



स्वरूप के सब तरह के अनुकूल ही हुआ और ऐसे पूजनीय तथा वयोवृद्ध मातृभाषा के सेवक का सम्मान करके प्रयाग के साहित्य-सेवियों ने एक आवश्यक कर्त्तव्य की पूर्ति की।

❀

❀

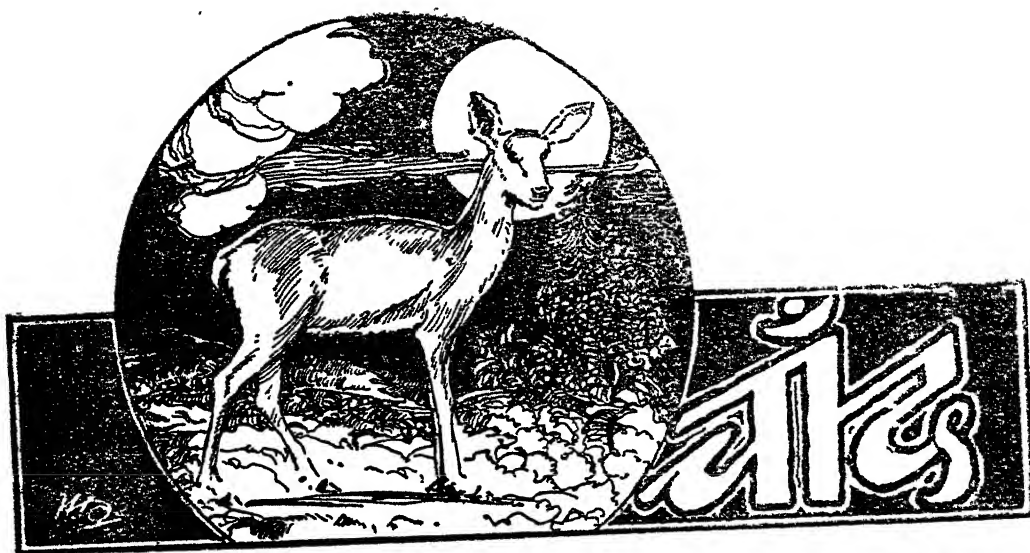
❀

स्वर्गीय डॉक्टर लीलावती

गत १२ मई को लाहौर में डॉक्टर (कुमारी) लीलावती की अकस्मात् मृत्यु हो गई। आपने कुछ ही समय पहले कलकत्ता के सुप्रसिद्ध डेप्टल कॉलेज की सर्वोच्च परीक्षा (एल० डी० एस० सी०) पास करके दिल्ली में दाँतों का एक अस्पताल खोला था। कुमारी लीलावती जी यद्यपि एक बहुत प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न घराने की थीं और आपके सभी सम्बन्धी बड़े-बड़े सरकारी पदों पर काम कर रहे हैं, पर आपका ध्यान सदैव धन-वैभव और सुखोपभोग के बजाय देश-सेवा और मातृभूमि के उद्धार की तरफ ही रहा। इलाहाबाद, कलकत्ता, दिल्ली जहाँ कहीं भी आप रहीं, राजनीतिक और सार्वजनिक कार्यों से आपका बराबर सम्बन्ध रहा। कलकत्ते में यद्यपि आपका प्रधान कार्य विद्याध्ययन करना था और स्वावलम्बन के भाव के कारण आप द्यूशन करके अपने लिए कुछ खर्च भी एकत्र करती रहती थीं, तो भी आप प्रत्येक राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए समय निकाल लेती थीं। जिन कामों के करने में पुरुष भी हिचकिचाते थे, उनके लिए लीलावती जी सबसे आगे बढ़ कर खड़ी होती थीं और सब तरह की कठिनाइयों को सह कर भी उनको पूरा करके छोड़ती थीं। षड्यन्त्रों में पकड़े गये राजनीतिक क्राइमों की सहायतार्थ वे प्रायः चन्दा माँगने का कार्य किया करती थीं और केवल भगतसिंह डिफेन्स-फ़ण्ड में उन्होंने

कई हजार रुपए की रकम इकट्ठी करके दी थी। इतना ही नहीं, सरकारी अधिकारियों को इस बात का पूरा सन्देह था कि आप क्रान्तिकारी दल वालों से गुप्त सम्बन्ध रखती हैं और उनके कार्यों में सहायता पहुँचाती रहती हैं। ऐसे ही कारणों से आप बङ्गाल ऑर्डिनेन्स के अनुसार गिरफ्तार की गईं, बङ्गाल की हद्द से निकाली गईं और उसके पश्चात् तीन मास तक अपने घर शेखपुरा (पञ्जाब) में नज़रबन्द रखी गईं। दिल्ली में भी अस्पताल खोलने के बाद आपको वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी गई, जो बहुत चेष्टा करने के पश्चात् वापस हुई। पर यह सब कुछ होने पर भी आपके देश-प्रेम में कुछ भी अन्तर न पड़ा और आप बराबर किसी न किसी रूप में सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती रहीं। दिल्ली में थोड़े ही समय में आपने जो ख्याति प्राप्त कर ली थी, उसका परिचय वहाँ के राष्ट्रीय नेता प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के उस पत्र से लगता है, जो इस शोकपूर्ण घटना के पश्चात् उन्होंने श्री० आर० सहगल के पास भेजा है। उसमें वे लिखते हैं—“डॉक्टर लीलावती की मृत्यु के सम्वाद ने तो दिल्ली में सनसनी पैदा कर दी है। आपने जो सुना है वह ठीक ही है। वह बेचारी अपने भाई की सगाई के सिलसिले में शेखपुरा गई थीं, वहाँ बीमार हो गईं। तीन ही दिन में मृत्यु ने आ दबाया। कितनी देशभक्त थीं, कितनी मिलनसार थीं, कितनी होनहार थीं! थोड़े ही समय में दिल्ली के देशभक्तों की लाडली बन गई थीं। वह तो अधखिली कली ही मुर्का गई। जिसने सुना आँसू बहाए। स्वर्ग ऐसों ही के लिए है।” निःसन्देह लीलावती जी की मृत्यु से भारतीय स्त्री-समाज का एक रत्न उठ गया और देश तथा समाज को उनसे जो बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, उन पर पानी फिर गया। इस गम्भीर शोक के अवसर पर हम इतना ही कह सकते हैं कि परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे और उनके शोकाकुल कुटुम्बियों को सान्त्वना प्रदान करे।





आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११,
खण्ड २

जुलाई, १९३३

संख्या ३,
पू० सं० १२९

अनुरोध

[श्रुत्युत 'निर्मल']

प्यारे ! मेरा भी घट भर दे !

खाली लिये खड़ा कब से जीवन ज्योतिर्मय कर दे !

तेरा पनघट बड़ा पुराना,

मैंने भी अब है पहचाना,

भर जावे अन्तर-तट सूना—

ऐसी एक लहर दे !

प्यारे० ।

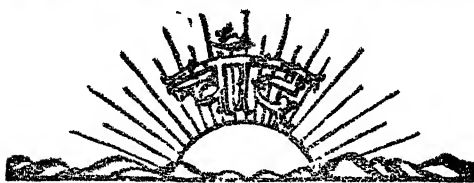
अपनेपन में आप समावे,

नीचे फिर ऊपर उतरावे,

वह भी डूबे मैं भी डूबूँ—

अमर यही तू वर दे !

प्यारे० ।



जुलाई, १९३३

सन्तान-निग्रह आन्दोलन पर एक दृष्टि



न्दी-संसार में सन्तान-निग्रह की चर्चा आरम्भ हुए अभी अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ, परन्तु इसी बीच में इसने जो विवादास्पद रूप धारण कर लिया है उससे मालूम होता है कि लोगों को इस विषय से दिलचस्पी हो रही है। सामयिक पत्रों में बहुधा इसके समर्थन या विरोध में लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। कुछ लोग तो इसे व्यक्तिगत कष्टों और राष्ट्रीय आपत्तियों के निवारणार्थ एक उत्कृष्ट उपाय मानते हैं और कुछ लोग इसे अप्राकृतिक, जघन्य, अश्लील और

समाज का विध्वंस करने वाला समझते हैं। ये दोनों प्रकार के मत एक दूसरे के ऐसे विपरीत हैं कि एक साधारण व्यक्ति के लिए उनके द्वारा किसी सिद्धान्त पर पहुँच सकना असम्भव हो जाता है। इसलिए वह इस सम्बन्ध में प्रायः अपनी निजी धारणा को ही, जो किसी कारणवश बद्धमूल हो गई है, सच मानने लगता है। यह अवस्था देश और समाज के व्यक्तियों के हित की दृष्टि से वाञ्छनीय नहीं कही जा सकती। क्योंकि अन्य शास्त्रीय विषयों की भाँति सन्तान-निग्रह केवल ज्ञान-वृद्धि, मनोरञ्जन अथवा बहस कर लेने की चीज नहीं, वरन् यह एक ऐसा व्यावहारिक विषय है जिसका व्यक्ति, समाज तथा संसार सब पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसलिए विचारवानों का कर्तव्य है कि इस सम्बन्ध में इधर-उधर की सुनी-सुनाई बातों के आधार पर कोई निर्णय कर लेने के बजाय स्वयम् गम्भीरतापूर्वक इस विषय का मनन करें और तब किसी निश्चिन्त सिद्धान्त पर पहुँचें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम यहाँ पर उन यूरोपियन और अन्य देशीय विद्वानों की सम्मतियों का सारांश देते हैं जो उन्होंने सन्तान-निग्रह अथवा गर्भ-निरोध के पक्ष या विपक्ष में दी हैं। पाश्चात्य देशों में इस उपाय का अवलम्बन कितने ही वर्षों से हो रहा है और वहाँ के निवासी इसके गुण-दोष का बहुत कुछ अनुभव कर चुके हैं।

आरम्भ में हम इसके विरोधियों की दलीलें देते हैं, जो दो भागों में बाँटी जा सकती हैं; जैसे—(१) जाति सम्बन्धी और (२) व्यक्ति सम्बन्धी।



(१) सन्तान-निग्रह का सब से अधिक विरोध करने वाले सैनिकवाद में विश्वास रखने वाले हैं। उनके मतानुसार किसी भी देश की प्रधानता का आधार उसकी सामरिक शक्ति है। उनका कहना है कि मनुष्य के स्वभाव को देखते हुए यह आशा नहीं की जा सकती कि भविष्य में किसी भी समय युद्ध की सम्भावना जाती रहेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि उनका देश ऐसी परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य रखता हो। चूँकि सन्तान-निग्रह देश की जन-संख्या को घटा कर उसे युद्ध के अनुपयुक्त बनाता है, इसलिए ये सैनिकवादी उसका विरोध करते हैं।

(२) कुछ लोग ऐसे भी हैं जो युद्ध के खयाल से नहीं, वरन् आर्थिक तथा अन्य कारणों से देश की जन-संख्या का घटना हानिकारक समझते हैं और इस प्रथा को समाज के लिए आत्म-हत्या करने के समान बतलाते हैं।

(३) जिन देशों का क्षेत्रफल अधिक, परन्तु जन-संख्या थोड़ी है; जैसे—ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड और अमेरिका आदि, वहाँ सन्तान-निग्रह का विरोध इसलिए किया जाता है कि यदि आबादी न बढ़ेगी तो देश का आर्थिक और औद्योगिक विकास किस प्रकार हो सकेगा? यद्यपि संसार के अन्य देशों में ऐसे बहुत से लोग मौजूद हैं, जिनको अपने देश में काम नहीं मिलता और जो खुशी से इन कम आबादी वाले देशों में जाकर बस सकते हैं। परन्तु कितने ही राजनीतिक कारणों से ऐसे देशों की सरकारें विदेशियों का अधिक संख्या में अपने यहाँ आना उचित नहीं समझती और उनकी यही आकांक्षा रहती है कि जन-संख्या की वृद्धि स्थायीय लोगों द्वारा ही हो।

(४) जिन देशों में पूँजीवादियों का प्रधानता है, परन्तु आबादी बहुत अधिक नहीं है, वहाँ की सरकारें चाहती हैं कि उन देशों की मज़दूर श्रेणी के लोगों की बिना बाधा के वृद्धि होती रहे, ताकि उनमें प्रति-योगिता बनी रहे और उनसे थोड़ी मज़दूरी पर काम कराया जा सके।

(५) जिन देशों का साम्राज्य बहुत विस्तृत है और संसार के विभिन्न भागों में फैला हुआ है, जैसा कि इंग्लैण्ड का, वहाँ स्वाभावतः इस बात का खयाल

रहता है कि जन-संख्या बराबर बढ़ती रहे और उसके कुछ भाग को समय-समय पर उपनिवेशों में भेजा जाया करे। इससे एक तरफ़ उत्कृष्ट श्रेणी के लोगों के पहुँचने से इन देशों की उन्नति में सहायता मिलेगी और दूसरी तरफ़ उनका सम्बन्ध साम्राज्य के साथ दृढ़ बना रहेगा।

ये तो जाति सम्बन्धी दलीलें हुईं। अब व्यक्तिगत दलीलों पर विचार कोजिए:—

(१) कितने ही चिकित्सक सन्तान-निग्रह का विरोध यह कह कर करते हैं कि इसके लिए जिन कृत्रिम उपायों का अवलम्बन किया जाता है, वे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उनसे कई तरह की जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियों के उत्पन्न होने की आशङ्का रहती है और शारीरिक शक्ति में भी अन्तर पड़ता है। इससे अनेक प्रकार के मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं और तन्तुओं पर उनका ख़राब असर पड़ता है। कोई भी स्त्री जब प्रथम बार इन उपायों को काम में लाती है तो उसके मन में अवश्य ही विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है। वह अनुभव करती है कि यह कार्य अपने आप प्राकृतिक रूप से होना चाहिए और उसमें जान-बूझ कर अड़झाल लگانा अनुचित है।

(२) कुछ लोग, जो सामाजिक रुढ़ियों के विशेष रूप से भक्त होते हैं, कहते हैं कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में इस प्रकार की चर्चा उठाना अश्लील, कुसुचिपूर्ण और घृणा-व्यञ्जक है। ऐसे लोग, यद्यपि विशेष धार्मिक भाव-सम्पन्न नहीं होते, पर सन्तान-निग्रह को चरित्र-हीनता का विषय मानते हैं।

(३) अन्य कितने ही लोग सन्तान-निग्रह का विरोध 'धर्म' के नाम पर करते हैं। इनमें मुख्य जापानी और रोमन कैथलिक ईसाई हैं। जापानियों का मज़हब विशेषतः अपने पूर्वजों की पूजा करने से सम्बन्ध रखता है। उनके मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि युवावस्था को प्राप्त होते ही विवाह करके जहाँ तक सम्भव हो अधिक से अधिक बच्चे, विशेष कर लड़के उत्पन्न करे, जो वंश की मर्यादा और परिपाटी को कायम रखें। इसके साथ ही जापानवासी अपने राजा 'मिकाडो' को साक्षात् ईश्वर का रूप समझते हैं और उसके लिए युद्ध करके प्राण दे देना मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य



तथा गौरव का विषय मानते हैं। इसलिए जिससे 'मिकाडो' को अधिक से अधिक सिपाही दिए जा सकें, वे अधिक सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक समझते हैं।

रोमन कैथलिक गर्भ को रोकने के लिए किसी प्रकार के रासायनिक पदार्थ या कृत्रिम उपाय को काम में लाना घोर पाप समझते हैं। उनके मतानुसार सन्तान-निग्रह का एकमात्र उपाय माता-पिता का संयमपूर्वक रहना है। पर यदि माता पिता में से कोई एक दूसरे की इच्छा के विरुद्ध सहवास का परित्याग कर दे, तो इसे भी वे घोर पाप मानते हैं। इस मत में पारियों के लिए ब्रह्मचर्ययुक्त जीवन व्यतीत करने पर विशेष जोर दिया जाता है। साथ ही यह भी विश्वास किया जाता है कि आध्यात्मिक और ईश्वरीय प्रेमयुक्त जीवन तभी व्यतीत किया जा सकता है, जब मनुष्य विषय-भोग में अधिक रत न हों।

इसलिए उनको भय होता है कि यदि लोग कृत्रिम उपायों से गर्भ धारण होने को रोकने लगे और बच्चों के पालन-पोषण का भार वहन करने का भय जाता रहेगा तो आत्म-संयम की एक अनिवार्य आवश्यकता का लोप हो जायगा और वे निर्भय होकर काम-वासना में लिप्त हो जायेंगे।

(४) कुछ शासक श्रेणी के व्यक्तियों का मत है कि 'सन्तान-निग्रह' का अधिकार सर्व-साधारण को न होकर राज्य को होना चाहिए। वही राष्ट्र के हित को दृष्टि में रख कर इस बात का निर्णय कर सकता है कि लोग कितने बच्चे उत्पन्न करें अथवा किस अवस्था में सन्तान उत्पन्न करना बन्द करें।

(५) सन्तान-निग्रह के विरुद्ध अन्तिम, पर सबसे ज़बरदस्त समझी जाने वाली दलील यह है कि साधारण जनता में इस विषय का प्रचार होने से विवाहित और अविवाहित सभी तरह के लोगों में व्यभिचार की बहुत अधिक वृद्धि हो जायगी। अगर लोगों को इस बात का विश्वास हो जायगा कि वे सहज ही में गर्भाधान रोक सकते हैं, तो अपनी कामवासना की अनुचित रीति से तृप्ति करने को उनकी विशेष रूप से इच्छा होने लगेगी, निर्दोष कुमारियों को चञ्चल में फँसाना सहज हो जायगा और वेश्यावृत्ति का प्रचार भी अधिक हो जायगा। यह सच है कि इस श्रेणी के जो लोग बच्चा उत्पन्न होने

के भय से इस कार्य से बचे रहते हैं, वे चरित्र की निगाह से विशेष प्रशंसनीय नहीं समझे जा सकते, पर तो भी इस भय के कारण समाज का बहुत-कुछ कल्याण होता है, इसमें सन्देह नहीं। इतना ही नहीं, सन्तान-निग्रह सम्बन्धी जिस साहित्य का प्रचार आजकल बेरोक-टोक हो रहा है, उससे भी व्यभिचार की वृद्धि में सहायता मिलती है। ऐसी पुस्तकों में स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रियों के जो चित्र आदि छापे जाते हैं तथा इन अङ्गों और गर्भ स्थापित होने की प्रक्रिया का जो सविस्तर वर्णन किया जाता है, उससे अविवाहित युवकों की काम-वासना भड़कती है और वे स्वास्थ्य-सम्बन्धी मिथ्या बहानों का आश्रय लेकर व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ दलीलें सन्तान-निग्रह के विरुद्ध सुनने में आती हैं, पर वे या तो अर्थ-हीन हैं अथवा उनका समावेश उपर्युक्त दलीलों में ही हो जाता है। उदाहरणार्थ, कितने ही लोग कह बैठते हैं कि सन्तान-निग्रह अप्राकृतिक है। परन्तु वे यह नहीं विचार करते कि मनुष्य आजकल न जाने कितने अप्राकृतिक कार्य करता रहता है, जिनके बिना उसका जीवन निर्वाह हो सकना असम्भव है।

अब हम सन्तान-निग्रह के पक्षपातियों की दलीलों पर विचार करते हैं। वे तीन प्रकार की हैं :—(१) अन्तर्राष्ट्रीय (२) सामाजिक और (३) व्यक्तिगत।

(१) आजकल यह भली भाँति सिद्ध हो चुका है कि जन-संख्या की अतिरिक्त वृद्धि और युद्धों में घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका भय उन देशों में विशेष रूप से होता है, जो उद्योग-धन्धों की दृष्टि से बढ़े हुए हैं और जिनमें राष्ट्रीयता का भाव ज़ोरों पर होता है। यदि ये दोनों बातें न हों तो जन-संख्या की अतिरिक्त वृद्धि से युद्ध का होना अनिवार्य नहीं है। उदाहरणार्थ भारत और चीन बहुत घनी बस्ती के देश हैं, पर वे कोई बड़ा युद्ध कर सकने के अनुपयुक्त हैं और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति को उनसे विशेष भय नहीं। ऐसे देशों में जन-संख्या की अतिरिक्त वृद्धि का प्रतिकार अकालों द्वारा होता है, जिनसे यद्यपि जनता को अकथनीय कष्ट उठाने पड़ते हैं, पर युद्ध छिड़ने की सम्भावना प्रायः नहीं होती। जन-संख्या की वृद्धि से युद्ध की सम्भावना



किस प्रकार उत्पन्न होती है, इसका उदाहरण जर्मनी और जापान में मिल सकता है। गत महायुद्ध से पूर्व जर्मनी की माताओं में यह भाव फैलाया गया था कि उनका कर्तव्य अधिक से अधिक लड़के उत्पन्न करना है, जो राष्ट्र के लिए सिपाही बन कर युद्ध कर सकें। इस भाव के कारण उस देश की जन-संख्या निरन्तर बढ़ती जाती थी और किसी को इस बात की चिन्ता न थी कि इतने लोगों के पालन-पोषण की सामर्थ्य देश में है या नहीं। यह सच है कि गत यूरोपीय महायुद्ध के और भी अनेक कारण थे, पर यह जन-संख्या वाली बात भी एक मुख्य कारण थी, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

जो अवस्था पहले जर्मनी की थी, वही आजकल जापान की हो रही है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, वहाँ के निवासी बिना भविष्य का विचार किए सन्तान उत्पन्न करते जाने को अपने धर्म का अङ्ग समझते हैं और इसका परिणाम यह हुआ है कि वहाँ लोगों को जीवन-निर्वाह कर सकने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। पहले इस बड़ी हुई जन-संख्या का कुछ भाग अमेरिका में जाकर बस जाता था, पर अब वहाँ की सरकार ने इसे प्रायः रोक दिया है। यह दशा देख कर जापान ने मन्चूरिया पर कब्ज़ा कर लिया है और जो कोई इस सम्बन्ध में उससे बोलता है उसीसे वह लड़ने को तैयार हो जाता है। बात यही है कि उसे अपनी बड़ी हुई जन-संख्या को खिलाने तथा बसाने की कुछ व्यवस्था करनी है और इसके लिए वह सब तरह के खतरे का सामना करने को तैयार है। जो दशा आज जापान की है, वही सौ-पचास वर्ष बाद अमेरिका की हो सकती है। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि यदि संसार के विभिन्न देशों की जन-संख्या बिना नियन्त्रण के मनमाने ढङ्ग से बढ़ती रहे, तो उसके फल से अवश्य ही युद्धों की उत्पत्ति होगी।

(१) जब हम सामाजिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करते हैं, तो मालूम होता है कि जिस समाज में सन्तानोत्पत्ति पर किसी प्रकार का प्राकृतिक अथवा कृत्रिम प्रतिबन्ध नहीं रखा जाता वह अधिक काल तक उन्नत दशा में नहीं रह सकता और न उसमें चिरस्थायी सुख-शान्ति का चिह्न मिल सकता है। क्योंकि जैसा सब प्रकार के प्राणियों में देखा जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों

में भी यदि सन्तानोत्पत्ति का कार्य स्वाभाविक रूप से होने दिया जाय तो कुछ ही समय में उनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ जायगी कि उनके लिए जीवन-निर्वाह की सामग्री प्राप्त हो सकना असम्भव हो जायगा। उदाहरणार्थ इङ्ग्लैण्ड और वेल्स की जन-संख्या, जो सन् १८२१ में १ करोड़ २० लाख थी, सन् १९२१ में बढ़ कर ३ करोड़ ८० लाख हो गई। पर इस बीच में इङ्ग्लैण्ड ने अभूतपूर्व औद्योगिक उन्नति की तथा सारे संसार में अपना व्यवसाय फैला दिया। इस कारण जन-संख्या की वृद्धि का कोई कुप्रभाव वहाँ दृष्टिगोचर नहीं हुआ और अन्य देशों से जीवन-निर्वाह की सामग्री प्राप्त करके इस बड़ी हुई जन-संख्या का काम सहज में चलता रहा। परन्तु वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से जब अन्य यूरोपीय देशों ने भी औद्योगिक क्षेत्र में विशेष रूप से उन्नति की और वे इङ्ग्लैण्ड की अपेक्षा भी सस्ता माल बेचने लगे तो इङ्ग्लैण्ड की अवस्था बदलने लगी और वहाँ बेकारी की समस्या उत्पन्न हो गई। आजकल वहाँ लाखों आदमी बिना किसी रोज़गार के मारे-मारे फिरते हैं और उनसे भी अधिक संख्या में आधा-चौथाई काम करके किसी तरह प्राण-रक्षा कर रहे हैं। यद्यपि इस अवस्था का एक कारण वर्तमान संसार-व्यापी व्यापार-सङ्कट भी है, परन्तु इङ्ग्लैण्ड जैसे देशों में इसका बहुत कुछ सम्बन्ध जन-संख्या से भी समझना चाहिए। इसका फल यह होगा कि कुछ समय पश्चात् व्यापार-सङ्कट के मिटने पर जहाँ अमेरिका के समान देशों की अवस्था पूर्ववत् हो जायगी, इङ्ग्लैण्ड में बेकारी का प्रश्न फिर भी बना रहेगा। क्योंकि अब इस बात की सम्भावना नहीं जान पड़ती कि इङ्ग्लैण्ड का व्यवसाय फिर से उसी पैमाने पर पहुँच जाय, जिस पर वह पचीस-तीस वर्ष पूर्व था। जब ऐसा न होगा तो या तो बाध्य होकर वहाँ के निवासियों को जीवन-निर्वाह का मानदण्ड (Standard of living) घटा देना पड़ेगा अथवा किन्हीं दैवी कारणों से वहाँ की जन-संख्या का हास हो जायगा।

सन्तान-निग्रह के अभाव से दूसरी भयङ्कर सामाजिक क्षति यह होती है कि क्षीणकाय, मस्तिष्क-हीन और अन्य दोषों, रोगों तथा दुर्गुणों से युक्त व्यक्तियों की संख्या बढ़ती है तथा योग्य, सामर्थ्यवान और प्रतिभाशाली लोगों



की संख्या घटती जाती है। क्योंकि उच्च श्रेणी के समझदार व्यक्ति जब देखते हैं कि उनकी आमदनी इतनी नहीं है कि वे अधिक बच्चों का भली प्रकार पालन-पोषण कर सकें और उन्हें आवश्यक शिक्षा दे सकें तो वे आत्म-संयम द्वारा या किसी अन्य उपाय द्वारा कम सन्तान उत्पन्न करते हैं। दूसरी ओर अशिक्षित तथा निम्न श्रेणी के लोग हैं, जिनको बच्चों तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व का कुछ भी ज्ञान नहीं होता और कष्ट सहते-सहते जिनमें सांसारिक कल्याण अथवा अकल्याण के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो जाता है, वे बिना किसी रोक-टोक के बच्चे उत्पन्न करते रहते हैं। इङ्ग्लैण्ड की 'बर्थरेट कमेटी' की रिपोर्ट से विदित होता है कि जहाँ प्रति हज़ार शिशुओं के ९५, पादरियों के १०१, डॉक्टरों के १०३, लेखकों के १०४ सन्तान होती है, वहाँ साधारण मज़दूरों के प्रति हज़ार ४३८ होती है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में अयोग्य और निकृष्ट श्रेणी के लोगों की संख्या अधिक होती जाती है और वह नीचे की तरफ़ गिरने लगता है।

(३) व्यक्तिगत दृष्टि से सन्तान-निग्रह की आवश्यकता सब से अधिक गरीब श्रेणी के लोगों को है। इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग जो एक के बाद दूसरा बच्चा उत्पन्न करते जाते हैं, उसमें प्रधान उत्तरदायित्व उनकी अज्ञानावस्था का ही होता है और इस प्रकार बच्चों की उत्पत्ति उनके लिए हर्ष की बात नहीं होती। यदि आप इस श्रेणी के लोगों से इस सम्बन्ध में प्रश्न करें तो आपको पता लगेगा कि ऐसे बच्चों में से अधिकांश माता-पिता की अनिच्छा से जन्म लेते हैं। इङ्ग्लैण्ड में कुछ नर्सों ने इस सम्बन्ध में उन मज़दूर स्त्रियों से पूछ-ताछ की थी, जिनको बच्चा जनाने वे गई थीं। इस जाँच में ७८ में से ४७ बच्चे अनावश्यक बतलाए गए और ३१ आवश्यक। जिन माताओं ने बच्चों को आवश्यक बतलाया उनमें से भी कितनों ही ने कहा कि गर्भ रहने के समय उनकी इच्छा बच्चे के लिए ज़रा भी न थी, परन्तु थब जब वह उत्पन्न हो गया है तो वे किसी प्रकार उसकी उपेक्षा नहीं कर सकतीं।

गरीब श्रेणी की स्त्रियों को इस प्रकार बार-बार बच्चा होने के कारण जितनी सुसुविधें उठानी पड़ती हैं, उनका पूरा वर्णन किया जा सकता कठिन है। पाठक

स्वयम् विचार करके देखें कि जो स्त्री प्रायः बीमार रहती है, पौष्टिक भोजन के अभाव से जिसकी देह में रक्त-मांस की कमी रहती है; बार-बार सन्तानोत्पत्ति अथवा किसी अन्य मूर्खतापूर्ण कार्य के कारण जिसकी जननेन्द्रिय विकृत हो गई है; जिसे किसी गन्दी अन्धकारपूर्ण कोठरी में समय बिताना पड़ता है; घर की देख-भाल, भोजन तैयार करना, चौका-बर्तन, बच्चों को पालना आदि तमाम कार्य जिसे अकेले करने पड़ते हैं; जिसे स्वच्छ हवा में घूमने-फिरने या किसी अन्य प्रकार से आमोद-प्रमोद करने का न अवसर मिलता है और न इसके लिए जिसके पास कोई साधन है, उसको प्रति वर्ष या प्रति दूसरे वर्ष बच्चा उत्पन्न होना कितना यन्त्रणादायक होगा। विशेषकर उस अवस्था में जब कि एक सन्तान उत्पन्न होने के दस-बीस दिन बाद ही पति फिर से उसी प्रकार अपने 'अधिकार' का उपयोग करने को तैयार रहता है और फिर वही विरक्ति-जनक चक्र चलने लगता है।

ऐसे परिवारों में बच्चों के प्रति उपेक्षा या उदासीनता का भाव होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि कर्तव्य-पालन की दृष्टि से माता को उनकी देख-भाल करनी ही पड़ती है, पर मातृ-स्नेह का स्वाभाविक झरना ऐसी घटनाओं के बार-बार होने से शुष्कप्राय हो जाता है। ऐसे बच्चे जब कुछ समय बाद दुनिया से चल बसते हैं, जैसा प्रायः होता है, तो माता थोड़ी देर शोक करके 'भगवान की मज़ी' कह कर सन्तोष कर लेती है। किसी-किसी अवसर पर तो स्त्रियाँ ऐसी घटनाओं पर अपने आन्तरिक सन्तोष के भाव को प्रकट भी कर देती हैं। उनको अपने बच्चे की मृत्यु का दुःख अवश्य होता है, पर साथ ही उनके हृदय में यह भाव भी पाया जाता है कि उनको और बच्चे को एक कष्टकर अवस्था से छुट्टी मिल गई।

इस श्रेणी की स्त्रियाँ प्रायः सन्तान-निग्रह के विषय से सर्वथा अनजान होती हैं और यदि किसी प्रकार उनको इस सम्बन्ध में कुछ मालूम भी हो जाता है, तो वे इतनी अधिक नासमझ और भाग्यवादिनी होती हैं कि इस सम्बन्ध में उनसे किसी प्रकार की चेष्टा करने की आशा नहीं रखी जा सकती। ऐसी स्त्रियों के मुँह से इस सम्बन्ध में प्रायः इस प्रकार के वाक्य सुनने में



आया करते हैं कि “जो कुछ सर पर आ पड़े उसे भोगना ही पड़ेगा”, “जो भाग्य में बड़ा है वह होकर रहेगा”, “भगवान की मर्जी के विरुद्ध हम क्या कर सकते हैं।”

सन्तान-निग्रह के वैज्ञानिक उपायों का यथोचित प्रचार न होने का एक परिणाम यह भी होता है कि नीची श्रेणी की कितनी ही स्त्रियाँ, जब उनको गर्भ रहने का पता लगता है तो उसे गिरा कर अपना पीड़ा बुझाने की चेष्टा करती हैं। यद्यपि इस सम्बन्ध में विश्वसनीय संख्याओं तथा प्रमाणों का मिल सकना असम्भव है, पर इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में और इससे भी अधिक यूरोप तथा अमेरिका में इस उपाय का अवलम्बन किया जाता है। इसके लिए ये मूल्य स्त्रियाँ जिन उपायों का अवलम्बन करती हैं, वे प्रायः बड़े भयङ्कर होते हैं और कितनी ही बार उनसे बहुत कुछ शारीरिक हानि उठानी पड़ती है। एक अङ्ग्रेज़-लेखक के कथनानुसार इङ्ग्लैण्ड की गर्भवती स्त्रियाँ, जो ऐसी चेष्टा करती हैं, किसी मेज़ पर चढ़ कर या सीढ़ी पर से तीन-चार बार ज़मीन पर कूदती हैं या बहुत सा सीसा निगल जाती हैं या अर्गट या कुनाइन के समान गर्म दवाएँ या कोई कै अथवा दस्त लाने वाली दवा खा लेती हैं। वहाँ पर कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो गर्भ गिराने का पेशा करते हैं और इसके लिए हानिकारक उपायों का प्रयोग करते हैं। इन सब मूर्खतापूर्ण कार्यों से स्त्रियों को जो कष्ट उठाना पड़ता है और विशेषकर उनकी जननेन्द्रिय के विकृत हो जाने का जो भय रहता है, उसका निराकरण सन्तान-निग्रह के ज्ञान के प्रचार द्वारा ही हो सकता है।

× × ×

जब हम इन दोनों पक्षों की दलीलों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं, तो प्रतीत होता है कि उनमें से प्रत्येक में कुछ न कुछ सचाई अवश्य है। उदाहरणार्थ सन्तान-निग्रह के विरोधियों की इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सन्तान-निग्रह के कृत्रिम उपायों को काम में लाने में कितनी ही स्त्रियाँ विरक्ति अथवा घृणा अनुभव करती हैं और कितने ही पुरुषों को ऐसी अवस्था में कुछ भी आनन्द प्राप्त नहीं होता। पर ऐसी स्त्रियाँ प्रायः वे ही होती हैं, जिनके अभी तक बच्चे उत्पन्न नहीं हुए हैं अथवा कम हुए हैं। पर जिन स्त्रियों के अनेक बच्चे पैदा हो चुके हैं और जिनकी इच्छा

अब अधिक की नहीं है, उनको सन्तान-निरोध के इन उपायों में सम्भवतः कुछ भी खराबी या विरक्तिजनक बात न जान पड़ेगी। ऐसी माताओं में सन्तान-निग्रह के प्रचार का विरोध कोई सहृदय व्यक्ति न करेगा।

नवविवाहिता स्त्रियों की समस्या इससे भिन्न प्रकार की है। यद्यपि अधिक सन्तानोत्पत्ति के कष्टों और दोषों से मुक्त होने के कारण उनको कृत्रिम उपाय रुचिकर प्रतीत नहीं होते, पर यदि उनके पति की आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि वह बच्चों का पालन कर सकें, तो उनको भी बाध्य होकर उनका अवलम्बन करना पड़ेगा। क्योंकि प्रायः यह देखने में आता है कि जिस अवस्था में मनुष्य स्त्री-सहवास और बच्चा उत्पन्न करने योग्य हो जाता है उस अवस्था में वह प्रायः भली-भाँति उपार्जन करने लायक नहीं होता। इसलिए उसके सामने दो ही मार्ग हो सकते हैं। या तो वह पाँच-सात वर्ष तक, जब तक उसकी आर्थिक अवस्था सन्तोषजनक न हो जाय, स्त्री-सहवास का परित्याग कर दे, अथवा सन्तान निरोध के कृत्रिम उपायों से काम ले। यदि वह इन दोनों उपायों में से एक से काम नहीं लेगा, तो असमय में उसके ऊपर उचित से अधिक भार पड़ जायगा, जिससे उसका समस्त जीवन दुःखपूर्ण अथवा अनुन्नत हो सकता है, या फिर उसे परमुखापेक्षी बन कर रहना पड़ेगा। पर दो युवक-युवतियों से, जिनमें पारस्परिक प्रगाढ़ प्रेम है और जो सदैव एक-दूसरे के समीप रहते हैं, यह आशा करनी कि वे वर्षों तक ब्रह्मचर्य की अवस्था में रह सकेंगे, असम्भव है। मृत्युलोक का रहने वाला कोई साधारण प्राणी इसके अनुसार आचरण नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे दम्पतियों के लिए व्यवहारिक मार्ग केवल यही हो सकता है कि जब तक वे परिवार का पालन करने योग्य न हों, अधिक से अधिक आत्म-संयम रक्खें और जब उनको सहवास की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत हो तो किसी योग्य चिकित्सक की सम्मति से सन्तान-निग्रह के किसी उपयुक्त उपाय का अवलम्बन करें।

सन्तान-निग्रह के साहित्य द्वारा अविवाहित लोगों पर जो अवाञ्छनीय प्रभाव पड़ने की बात कही जाती है वह सर्वथा सत्य है। इसमें सन्देह नहीं कि कितने ही नवयुवक स्त्री-पुरुषों के गुप्त अङ्गों का वर्णन जानने तथा



उनके चित्र आदि देखने के लिए भी ऐसी पुस्तकें पढ़ते हैं। इससे उनके हृदय में दूषित कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगती हैं और वे तरह-तरह के अनुचित कृत्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस दोष का निवारण तभी हो सकता है, जब कि सरकारी स्वास्थ्य-विभाग इस कार्य का भार अपने हाथ में ले और सन्तान-निग्रह के उपाय सरकार द्वारा स्थापित अस्पतालों और 'क्लिनिकों' में उपयुक्त तथा जिम्मेदार लोगों को ही बतलाए जायँ। उस अवस्था में इस सम्बन्ध के अनुपयुक्त साहित्य तथा समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले हानिकारक विज्ञापनों को, जिनके कारण यह विषय आजकल बदनाम हो रहा है, रोका जा सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर प्राइवेट तौर पर वही उपाय बतलाया जा सकेगा, जो विशेष रूप से उसके लिए उपयुक्त हो। पर जब तक शासक-वर्ग इस आवश्यक कार्य का भार अपने ऊपर नहीं लेता और योग्य तथा अधिकारी व्यक्ति इस सम्बन्ध में जनता के लिए मार्ग-प्रदर्शन नहीं करते तब तक अनधिकारी और स्वार्थवश इस विषय में हाथ डालने वाले लोग ही इसका प्रचार और विवेचना करने का कार्य करेंगे और सर्वसाधारण को आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं की शिक्षा के अनुसार आचरण करना पड़ेगा।

इस विवेचन के परचात् पाठकों को यह समझ सकने में कठिनाई न होगी कि समाज की वर्तमान अवस्था में सन्तान-निग्रह एक आवश्यक विषय है, चाहे उसके प्रचार करने के वर्तमान ढङ्ग तथा उसकी विधियों के व्यवहार करने में थोड़ी-बहुत बुराईयाँ तथा हानिकारक बातें क्यों न घुस गई हों। उदाहरण के लिए हम यह कह सकते हैं कि आजकल कितने ही पढ़े-लिखे लोग विशेषकर यूरोप के बड़े घरानों की विलासिनी क्रियाँ समाज के हित अथवा आर्थिक कारणों से नहीं, बरन् अपनी स्वतन्त्रता और भोग-लिप्सा में विघ्न न पड़ने देने के उद्देश्य से सन्तान-निग्रह करती हैं। कितनी ही शौकीन रमणियाँ तो इस भय से कि बच्चा उत्पन्न होने से उसे स्तन-पान कराना पड़ेगा और इससे उनकी आकृति तथा सौन्दर्य में अन्तर पड़ जायगा, समाज के प्रति अपने सन्तानोत्पत्ति के कर्तव्य से विमुख रहती हैं। इसलिए इस विषय के प्रचारकों अथवा इस सम्बन्ध में काम करने वाले सरकारी अधिकारियों को

यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए कि इस समय सन्तान-निग्रह की शिक्षा की आवश्यकता विशेष रूप से शारीर और मजदूर श्रेणी के लोगों को ही है। उनकी स्त्रियों को अवश्य यह बतलाया जाना चाहिए कि वे किस प्रकार अपने परिवार को एक नियत सीमा के भीतर रख सकती हैं और प्रत्येक सन्तान के बीच में पर्याप्त अन्तर रख सकती हैं। इसके विपरीत अमीरों तथा उच्च श्रेणी के लोगों को यह बतलाया जाना चाहिए कि वे जितने बच्चों का पालन-पोषण भली भाँति कर सकते हैं, उतने बच्चे अवश्य उत्पन्न करें, चाहे इसके फल-स्वरूप उनके पेश-आराम में कुछ कमी ही क्यों न पड़ जाय। क्योंकि यदि सन्तान उत्पन्न करके जाति की शृङ्खला को कायम रखना एक भार है तो उसे सभी श्रेणियों के लोगों को समान रूप से वहन करना चाहिए। यदि सुशिक्षित और सम्पन्न श्रेणी के व्यक्ति स्वार्थवश इस कर्तव्य के पालन करने से विमुख रहेंगे, और इस कार्य को अशिक्षित, अयोग्य, निर्धन तथा निर्बल लोगों के लिए छोड़ देंगे, तो इससे समाज अवश्य ही पतनोन्मुख हो जायगा।

संक्षेप में हमारे कथन का आशय यही है कि हम सन्तान-निग्रह को आवश्यकता तथा समाज के लिए कल्याणकारी विषय समझते हुए भी इस बात का समर्थन नहीं करते कि उसे अत्यन्त सामान्य बना दिया जाय तथा कच्ची समझ के लड़के-लड़कियाँ उसे मनो-विनोद के लिए पढ़ने लगे। ऐसा होने से उससे लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना ही अधिक होगी। इससे वास्तविक लाभ तभी उठाया जा सकेगा, जब इसका परिचालन सर्वमान्य सामाजिक संस्थाओं और राज्याधिकारियों द्वारा हो, और जिन दम्पतियों को वास्तव में इसकी आवश्यकता है उनको इसकी क्रियात्मक विधि बतलाई जाय तथा यदि वे असमर्थ हों तो आवश्यक वस्तुएँ भी सहायता की भाँति दी जायँ। यदि आजकल लोगों की बीमारियों और शारीरिक कष्टों का निवारण करने के लिए सार्वजनिक अस्पतालों में करोड़ों और अरबों रूपए दवाइयों और डॉक्टरों के लिए खर्च किए जाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि इस आवश्यक कार्य के लिए, जिसके कारण असंख्य माताओं को अनावश्यक कष्ट उठाना पड़ता है, कुछ धन



स्वर्च न किया जा सके। इस प्रकार सन्तान-निग्रह की शिक्षा तथा इस सम्बन्ध में सहायता किन-किन अवस्थाओं में दी जानी आवश्यक है, इसका नियंत्रण कर सकना कुछ विवादग्रस्त अवश्य है, पर साधारणतः हम निम्न-लिखित दशाओं में इसका औचित्य स्वीकार कर सकते हैं :—

(१) शादी होने के बाद तुरन्त ही गर्भ रह जाना अच्छा नहीं है। क्योंकि स्त्री के शारीरिक सङ्गठन में नवीन परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन होने में कुछ समय लगता है।

(२) एक बच्चा उत्पन्न होने के बाद तुरन्त ही दूसरे बच्चे का उपक्रम हो जाना हानिकारक है। शक्ति प्राप्त करने और पहले बच्चे को पालने के लिए माता को कम से कम एक वर्ष का अवसर अवश्य मिलना चाहिए। अनेक सुयोग्य चिकित्सकों तथा शरीर-शास्त्रवेत्ताओं के मतानुसार यह अन्तर कम से कम तीन वर्ष या इससे भी अधिक का होना चाहिए।

(३) जहाँ दम्पति में से किसी एक को कोई पैतृक बीमारी, जैसे पागलपन, मृगी, कोढ़ आदि हो, अथवा माता-पिता में से कोई किसी प्रकार के नशे में अग्रन्त लिप्त हो।

(४) जहाँ माता-पिता में से किसी को गर्मी, सूज़ाक आदि की बीमारी हो।

(५) जहाँ किसी का श्वश्रु पहले के तमाम बच्चे दुबले-पतले और अस्वास्थ्यकर दशा में हों।

(६) उन सब दशाओं में, जिनमें नए बच्चे के उत्पन्न होने से पहले के बच्चों को भरपेट भोजन मिलना कठिन हो जायगा अथवा स्वयम् माता को आधा पेट खाकर बच्चे का पालन करना पड़ेगा।

(७) उस दशा में, जब कि माता को छः सन्तानें उत्पन्न हो चुकी हैं। पर यदि उसकी शारीरिक शक्ति अच्छी हो और वह स्वयम् बच्चा उत्पन्न करना तथा पालना चाहती हो, तो वह खुशी से ऐसा कर सकती है।



आँसू

—+—

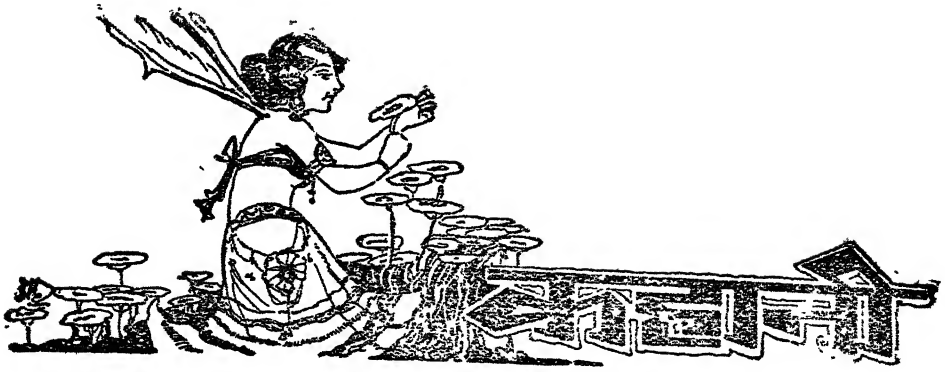
[श्रीमती कमलादेवी राय]

इनमें अतीत का सुख है
है वर्तमान की पीड़ा।
मेरे सन्तप्त हृदय से
मेरे अभाग्य की क्रीड़ा ॥
नीरव नेत्रों से गिरतीं
वे कोमल आँसू-लड़ियाँ।
जिनमें सोई जीवन की
हैं वे सपनों की घड़ियाँ !!

जब नोले नभ-मण्डल में
बल जाती दीपावलियाँ।
हँस हँस कर 'बे' बिखराते,
मेरे समीप सृति-लड़ियाँ ॥
जब हवा उलझ जाती थी
'उनकी' श्यामल अलकों में।
मैं मुग्ध हृदय से लखती।
सदिरा सी उन पलकों में ॥

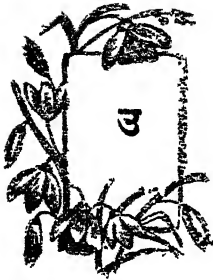
अथि वायु ! तनिक-सी रुक जा,
'उनका' सन्देश सुना जा।
सूखी हो, इन आँसू में
अपने को आर्द्र बना जा !!





लालारुख

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]



न दिनों काश्मीर का शासन बुझारिया के बादशाह के अधीन था और भारत में सम्राट् औरङ्गजेब राज्य करता था। बुझारिया के बादशाह वृद्ध हो गए थे। धार्मिक प्रवृत्ति के थे, अतः उन्हें मक़ा-मदीने जाने की सूझी। परन्तु वहाँ जाना और फिर लौट कर आना आसान काम न था। यात्रा में समय बहुत लगता था और अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वृद्ध बादशाह को यह आशङ्का हुई कि कदाचित् वे जीवित लौट कर न आ सकें। इसीलिए उन्होंने यात्रा से पहले ही शासन-भार अपने नवयुवक पुत्र के हाथों में सौंप दिया।

राज्य-प्रबन्ध में निश्चिन्त होने के बाद यात्रा का प्रबन्ध हुआ। यह तय हुआ था कि दिल्ली होकर सुरत जाया जाय और वहाँ से जहाज़ द्वारा मक़ा। यात्रा प्रारम्भ हुई और दिल्ली तक सकुशल समाप्त हुई। औरङ्गजेब ने बादशाह के आगमन का समाचार सुना। मुसलमान बादशाहों को अपने पक्ष में करने का उसे चाव था। बुझारिया के बादशाह का स्वागत करके वह उसे यह दिखाना चाहता था कि उसके हृदय में बुझारिया के प्रति कितना और कैसा सद्भाव था। इसीलिए जब बुझारिया के बादशाह के आगमन का समाचार उसे मिला, तो उसने स्वागत के लिए बड़े झोर-झोर से

तैयारियाँ करना शुरू कर दीं। चारों ओर भाग-दौड़ मचने लगी। अतिथि के आदर-सत्कार, ठहराने आदि का सामान होने लगा। दरबार के सजाने का प्रबन्ध किया जाने लगा। जिस समय बुझारिया के बादशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया, उस समय उसने वह सब कुछ देखा और पाया, जिसकी उसे दिल्ली के सम्राट् से आशा थी।

औरङ्गजेब की कई शाहज़ादियाँ थीं, परन्तु उसकी छोटी पुत्री लालारुख का नाम उसके अपूर्व सौन्दर्य के लिए विशेष विख्यात था। उसका रूप, उसके शरीर का सौष्ठव और उसके हावभाव—सभी कुछ उसे उस समय की सर्व-सुन्दरी रमणी बनाने में सहायक हुए थे। जैसा उसका नाम था, वैसे ही उसके गुण थे। औरङ्गजेब से पहले मुग़ल बादशाह अपनी पुत्रियों का विवाह नहीं करते थे। वे सारा जीवन कुमारी रह कर ही व्यतीत करती थीं। परन्तु औरङ्गजेब ने इस प्रथा का अन्त कर दिया। सर्व-प्रथम उसने अपनी पुत्रियों का नियमानुकूल विवाह किया। चूँकि लालारुख का भी किसी के साथ विवाह हो सकता था, इसलिए अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति उसे अपनी बनाने के लिए लालायित थे। बुझारिया के बादशाह ने भी लालारुख के विषय में सुना और सुनते ही उसे अपनी पुत्रवधू बनाने का विचार कर लिया।

“क्या यह प्रस्ताव आपको स्वीकार है?”—बुझारिया के बादशाह ने औरङ्गजेब से पूछा।



“बड़ी प्रसन्नता से।”—औरङ्गजेब ने उत्तर दिया।
उसे प्रसन्नता थी कि उसकी पुत्री का विवाह किसी सर-
दार के साथ न होकर एक बादशाह के साथ होगा।

शुआरिया के बादशाह का मुख-मण्डल प्रसन्नता से
खिल उठा।

“क्या आपके पुत्र को यह प्रस्ताव पसन्द आएगा?”
औरङ्गजेब ने कुछ देर ठहर कर पूछा।

“पसन्द आएगा? वह तो अपने को धन्य सम-
झेगा। लालारुख यदि भारत-सम्राट् की पुत्री न होती,
तब भी उसे प्राप्त करने में कोई भी व्यक्ति अपने
को भाग्यशाली समझता। मैं अपने पुत्र को यह समा-
चार भेजे देता हूँ। वह शीघ्र ही अपने कुछ सरदारों को
यहाँ भेजेगा, जो लालारुख को यहाँ से काश्मीर ले
जायँगे। मेरे विचार में विवाह वहीं होना उचित होगा।”

“मुझे सब कुछ स्वीकार है।”—औरङ्गजेब ने यह
कह कर लालारुख की सगाई की घोषणा अपने दरबार
में कर दी।

२

काश्मीर के राजभवन में एक चित्रशाला थी। उसमें
अनेक देशों की राजकुमारियों के चित्र टँगे हुए थे। उसी
चित्रशाला में सबसे पहले चित्र के नीचे राजकुमार उस
व्यक्ति के साथ खड़े थे, जो दिल्ली से सन्देश लेकर
आया था।

“तुम्हारी सम्मति में लालारुख संसार की सबसे
अधिक सुन्दर रमणी है?”—कुमार ने उस व्यक्ति
से पूछा।

“जी हाँ।”

“यह तुम सुनी हुई बात कह रहे हो?”

“जी नहीं, देखी हुई।”

“तुमने लालारुख को देखा है?”

“एक झलक। उसी से मैं समझ गया कि लोग जो
कुछ कहते हैं, वह सच है।”

राजकुमार कुछ देर तक सोचते रहे। फिर पहले
चित्र को ओर देख कर बोले—इस चित्र को ध्यान से
देखो!

“देख लिया, कुमार!”

“इसके विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है?”

“अत्यन्त सुन्दर है!”

“लालारुख इससे × × ×?”

“लालारुख से इसकी तुलना नहीं हो सकती,
कुमार! वह अनुपमेय है, अनुपमेय है।”

“और वह?”—कुमार ने दूसरे चित्र को दिखा कर
पूछा—“यह भी कुछ नहीं है?”

इसी प्रकार सारी चित्रशाला के चित्र समाप्त हो
गए। सन्देशवाहक की दृष्टि में लालारुख अब भी सबसे
अधिक सुन्दरी थी।

“अब भी तुम्हारी वही सम्मति है?”

“जी हाँ।”

“आश्चर्य है कि इतनी सुन्दरी रमणी का चित्र
आज तक कोई चित्रकार मेरे पास क्यों नहीं लाया!”

“इसमें आश्चर्य की क्या बात है, कुमार! किस
चित्रकार में इतनी सामर्थ्य है कि लालारुख की अनुपम
छटा का चित्र बना सके। प्रकृति ही में इतनी सामर्थ्य
हो सकती है, परन्तु वह भी लालारुख की प्रतिमूर्ति
बनाने में सफल न होगी!”

“तुम ठीक कहते हो! जब स्वयं लालारुख मेरी हो
रही है, तो उसके चित्र की अब क्या आवश्यकता!
जाओ, तैयारी करो। मेरे सरदार आज ही दिल्ली के
लिए प्रस्थान करेंगे।”

३

सखियों से घिरी हुई लालारुख अपने उद्यान में
विहार कर रही थी। चारों ओर बहार थी। विविध
प्रकार के फूल इधर-उधर खिले हुए थे। इधर लालारुख
और सखियों के मुख-मण्डल भी उन्हीं फूलों की भाँति
खिले हुए थे। आज लाला का जन्म-दिवस था। बहुत
देर तक वह अबोध शिशु की भाँति सखियों के साथ
केलि करती रही।

“क्या ही अच्छा होता, अगर ये दिन इसी तरह
बने रहते।”—लालारुख एकाएक बोल उठी। केलि
करते-करते और हँसी-खुशी के बीच न जाने उसके
विचार एक साथ कैसे बदल गए। उसके मुख से इस
कथन के साथ ही एक दबी हुई आह भी निकल गई।

सखियों ने यह देखा। उनकी हँसी भी एक साथ
बन्द हो गई।

“ऐसे हर्ष के अबसर पर ऐसे विचार क्यों,
कुमारी?”—एक सखी ने पूछा।



“यह हर्षक! अवसर ही शायद एक दिन विषाद का कारण बन जाय! यह जीवन कितना परिवर्तनशील है!”

“परन्तु यह परिवर्तन आपके लिए तो सुखकर ही होगा!”

“सुखकर? तुम ऐसा समझती हो?”

“क्यों नहीं? एक बादशाह की बेगम बनने जा रही हो, इससे बढ़ कर सुख की बात और कौन सी होगी?”

“बेगम? सुख? क्या तुम समझती हो कि बेगम बनना ही सुख है? क्या इसके परे और कोई सुख नहीं है? क्या एक अनजान व्यक्ति के साथ जीवन सुख से बीत सकता है, चाहे वह एक बादशाह ही क्यों न हो?”—वह कुछ सोचने लगी।

“सम्राट् ने अवश्य ही उसमें आपका भला सोचा होगा!”

“मेरा भला? नहीं! एक राजकुमारी के विवाह में उसका भला नहीं सोचा जाता, राज्य का भला सोचा जाता है। राज्य के लिए जव चाहे और जहाँ चाहे उसका बलिदान दिया जा सकता है।”

वह फिर कुछ सोचने लगी। सखियाँ भी सब चुप हो गईं। अभिक कहना उस समय उचित भी नहीं था। लाला के सामने सितार रक्खा था। धीरे-धीरे उसने उसे उठाया और अपनी पतली अँगुलियों से उसके तारों को छेड़ कर कुछ गाने लगी :—

आयो बसन्त न आयो पिया सजनी !

कू-कू करि कोयलिया बोलत,

खूब जरावत मोर जिया सजनी !

अभी लाला ने गायन समाप्त भी न किया था कि एक ओर से बड़े मधुर स्वर में एक गाना सुनाई दिया :—

आयो बसन्त पियाहू आयो सजनी !

लाला ने गाना बन्द कर दिया और उस ओर देखने लगी, जिधर से गाने की आवाज़ आ रही थी। एक नवयुवक बड़ी तल्लीनता से उस गाने को गा रहा था। लाला को उसे देख कर क्रोध आगया। उसने लाला का क्रोध देखा, थोड़ा मुसकराया और कुछ आगे बढ़ गया।

“क्या आप मेरे यहाँ आने से अप्रसन्न हुईं?”—उसने गम्भीरता से पूछा।

“पहले मैं यह जानना चाहती हूँ कि आपने मेरे गाने में बाधा क्यों डाली?”—लालारुख ने क्रोधित होकर पूछा।

“और आप यह नहीं जानना चाहतीं कि मैं कौन हूँ?”

“नहीं, पहले मेरी बात का जवाब मिलना चाहिए।”

“अगर आप यह जान लेतीं कि मैं कौन हूँ, तो शायद आपको अपनी बात का जवाब भी मिल जाता।”

लालारुख ने कुछ कहा नहीं। परन्तु उसकी उस समय की आकृति से यह स्पष्ट था कि वह पहले अपने प्रश्न का उत्तर चाहती थी।

“पहले आप अपना जवाब ही चाहती हैं? अच्छा, लीजिए मैं सब कुछ बताता हूँ। आप जिस गाने को गा रही थीं, वह आपके योग्य नहीं था। आपको तो सदा हँसते रहना चाहिए। आपका मुख-मण्डल उन भावों के लिए नहीं बना है, जिन्हें वह गाना जन्म देता है।”

“तब क्या तुम्हारे गाने का भी कोई अर्थ है?”

“हाँ! वह आपके गाने का उत्तर है। आपने कहा था—बसन्त आगया है, परन्तु पिया नहीं आए। उसमें विरह-वेदना और नैराश्य के भाव प्रगट होते थे। मैंने कहा था—बसन्त आगया है, और पिया भी आगए। इसमें आशा, उल्लास, प्रतीक्षा के भाव भरे हुए हैं।”

“पिया आगए हैं? पिया आगए हैं?”—सब सखियाँ पूछने लगीं।

“हाँ, प्रायः आगए हैं!”

“इसका अर्थ?”—लाला ने पूछा।

“आप काश्मीर की महारानी होने जा रही हैं?”

“हाँ?”

“कल आप वहाँ के लिए प्रस्थान कर रही हैं।”

“तो क्या तुम × × ×?”

“मैं काश्मीर के बादशाह का राज-कवि हूँ।”

“राजकवि? नाम × × ×?”

“मुझे क्रामरोज कहते हैं। मुझे बादशाह ने आपको साथ ले चलने के लिए यहाँ भेजा है।”

“मार्ग में मेरी रक्षा करने के लिए?”



“नहीं, उसके लिए तो सैनिक साथ में हैं। मेरा काम मार्ग में आपका जी बहलाना है।”

“क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम मेरे दूटे हुए जी को मार्ग में बहला सकोगे?”

“दूटे हुए जी को? क्या आप फारमीर जाने के लिए प्रसन्न नहीं हैं?”

“नहीं!”

“क्या $\times \times \times$?”

“यह तुम नहीं समझ सकोगे, फरामरोज़! यह राजघराने के लोग ही समझ सकते हैं। मुझे एक बात का हर्ष है कि तुम मेरे साथ होगे। तुम्हारा हँसोड़ा स्वभाव देख कर मुझे विश्वास होता है कि मेरी यात्रा के दिन भीरस न रहेंगे।”

लालारुख ने यह कह कर फरामरोज़ की ओर देखा। फरामरोज़ ने भी लालारुख की ओर देखा। फिर बिना कुछ कहे फरामरोज़ कुछ झुका और वहाँ से एक ओर को चला गया।

लालारुख उसकी ओर कुछ देर तक देखती रही और फिर उसके मुख से धीरे से निकल गया—“फरामरोज़!”

४

सन्ध्या का समय हो गया था। लालारुख अकेली उद्यान में बैठी थी। वह कुछ सोच रही थी। कभी वह अपनी बात सोचती, कभी फरामरोज़ की, कभी फारमीर के कुमार की, जिसके जीवन के साथ उसका जीवन कुछ ही दिनों में बँध जावेगा। कुमार कैसा होगा, उसकी प्रकृति कैसी होगी, इन सब बातों का उसे कुछ भी पता नहीं, फिर एक साथ उसके सामने फरामरोज़ की मञ्जुल मूर्ति आ जाती। वह उसकी याद करके गाने लगती—

आयो बसन्त पियाहू आयो सजनी!

आय गए सुख के दिन आली,

बीति गई बिरहा की रजनी!

वह गाने में तल्लीन थी कि पीछे से किसी ने उसका हाथ पकड़ा। गाना बन्द करके वह मुकाएक पीछे की ओर मुड़ी।

“अहमद!”—वह चिरखा कर बोली!

“हाँ, लाजा!”

“यहाँ इस समय तुम कैसे?”

“जो गाना तुम गा रही थीं, उसे सुन कर भल $\times \times \times$ ।”

“इस तरह की बातें न करो, मैं जो पूछती हूँ, उसका जवाब दो!”

“आज तुम्हारा जन्म-दिन है, लाजा!”

“हाँ!”

“तुम्हारे लिए एक उपहार लाया हूँ।”

अहमद ने अपनी जेब से एक छोटी सी डिब्बी निकाली और उसमें से एक बहुमूल्य अँगूठी निकाल कर लाजा की उँगली में पहना दी।

“धन्यवाद, अहमद! अब तुम जाओ!”

अहमद खड़ा रहा।

“अब और क्या चाहते हो?”

“बहुत कुछ, लाजा!”

“बहुत कुछ सम्भव नहीं है, अहमद! मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूँ।”

“मैं जानता हूँ लाजा, यह सम्भव नहीं! कज तुम फारमीर जा रही हो! वहाँ की रानी बनोगी। लेकिन मैं केवल एक बार तुम्हारे मुख से यह सुना चाहता था कि $\times \times \times$ ”

“अहमद, तुम नहीं समझ सकते!”

“तो फिर एक बात का वचन ही दे दो!”

“क्या?”

“मैं तुम्हारे साथ फारमीर तक जाने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे ऐसा करने की आज्ञा दे दो!”

लालारुख ने अहमद को ऐसा करने की स्वीकृति दे दी।

५

सम्राट औरङ्गजेब ने बड़ी शान से लालारुख को बिदा किया। पालकियाँ, हाथी, घोड़े आदि से सुसज्जित जुलूस नगर में घूमा। चारों ओर हर्षनाद हुआ और उस हर्षनाद के बीच लालारुख अपने सम्बन्धियों और अपने नगर को छोड़ कर अपने भावी पति के देश की ओर चली।



मार्ग में कहाँ-कहाँ पड़ाव पड़ेगा, यह सब पहले से ही निश्चित हो चुका था। अहमद को पड़ावों पर सारा प्रबन्ध करने के लिए सम्राट ने लालारुख के साथ भेजा था। लालारुख के जी बहलाने के लिए जो प्रबन्ध सम्भव था, वह सब किया गया था, ताकि वह यात्रा के कष्टों और अकेलेपन का अनुभव न करे।

परन्तु फिर भी लालारुख उदास थी। न किसी से बोलती थी, न किसी की सुनती थी। न हँसती थी, न खेलती थी। नाच कराने के लिए कहा जाता, वह मना कर देती। गाने के लिए कहा जाता, वह सर हिला कर अस्वीकार कर देती।

पहला पड़ाव था। उसे उदास देख कर अहमद उसके शिविर में गया। वह खड़ा हो गया, लालारुख ने उसकी ओर ध्यान न दिया।

“लाला !”—उसने पुकारा।

“किसलिए आए हो, अहमद ?”

“यह पूछने कि यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ।”

“अभी से क्या पूछते हो, अभी तो प्रारम्भ है।”

“मैं समझता हूँ, लालारुख ! क्या मैं कुछ × × × ?”

“इसकी दवा तुम्हारे पास नहीं है।”

“है तो सही, अगर तुम स्वीकार करो।”

“व्यर्थ है अहमद ! यदि बीमार का दवा पर विश्वास न हो, तो उससे उसे क्या लाभ हो सकता है ?”

“क्या किसी तरह जी बहला सकता हूँ ?”

“किस तरह ?”

“गाना-नाचना !”

“नहीं !”

“मेरे साथ चलो, सामने की नदी में कुछ देर नाव चलाएँगे। सम्भव है, तुम्हारा जी बहल जाए।”

“नहीं अहमद, मुझे यहीं अकेली रहने दो।” इतने ही में एक ओर से गाने का शब्द हुआ। लाला का वही पुराना सुना हुआ गाना—

आयो बसन्त पियाहू आयो सजनी !

लाला चौकड़ी हुई, मानों मूर्च्छा से जागी हो। फिर आपही आप उसका मुख-मण्डल खिल उठा।

“यह कौन गा रहा है ?”—उसने पूछा।

“काश्मीर के बादशाह का एक नौकर !”

“करामरोज़ ?”

“हाँ।”

“वह अभी तक मार्ग में दिखाई नहीं दिया !”

“मैंने उसे पीछे रहने के लिए आज्ञा दे दी थी !”

“क्यों ?”

“क्योंकि × × × क्योंकि उसे गाने का खूबत है।

हर समय गाने लगता है। मुझे डर था कि उसके गाने से तुम्हें कष्ट होता !”

“कष्ट ? उसे अभी यहाँ बुला कर लाओ !”

“लाला !”

“उसे अभी यहाँ बुला कर लाओ !”

अहमद चला गया और कुछ ही देर में करामरोज़ को साथ लेकर चला आया ! करामरोज़ ने झुक कर लाला को सलाम किया।

“अब तक कहाँ थे, करामरोज़ ?”

“आपसे अलग !”

“क्यों ?”

“हुकम की तामील !”

“मैं जानती हूँ और उस भूल के लिए मुझे दुःख है। अब तुम हर समय मेरे साथ रहा करो।”

करामरोज़ ने सर झुकाया और कनखियों से एक बार अहमद के मुख की ओर भी देख लिया। अहमद का मुख इस समय क्रोध से रक्त वर्ण हो रहा था !

“वह गाना मुझे सुनाओ !”—लाला बोली।

“यहाँ ?”

“क्यों नहीं ?”

“अगर आप नदी तक चलों, तो हम एक नाव लेकर खेवें। उसी में मैं गाऊँगा। उस वातावरण में गाने का अर्थ आपकी समझ में आएगा।”

“अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो चलो !”

दोनों द्वार तक आए। अहमद पीछे-पीछे साथ था। लाला ने अहमद की ओर देखा और कहा—तुम खाने का प्रबन्ध कराना, अहमद !

अहमद जल कर झाँक हो गया और वहीं खड़ा रह गया।

लाला और करामरोज़ नाव में बैठे हुए जा रहे थे। करामरोज़ मस्तानी अंश से ‘आयो बसन्त पियाहू आयो सजनी’ गा रहा था। लाला ध्यान में विमग्न हुई



उसे सुन रही थी। सहसा वह चौंकी और चिन्हा कर बोली—गाना बन्द कर दो, फ़रामरोज़ !

“क्यों ?”—उसने गाना बन्द करके पूछा।

“वह मेरी सारी आत्मा को जलाए डालता है।”

“आप घबराती क्यों हैं ? काश्मीर पहुँच कर आपके लिए वह गाना यथार्थ हो जायगा।”

“नहीं फ़रामरोज़, मेरा दुख वहाँ और भी बढ़ जायगा।”

“क्या आप कुमार से प्रेम नहीं करती ?”

“प्रेम ? कैसे कर सकती हूँ। न मैंने कभी उनके विषय में कुछ सुना, न उन्हें देखा। इसीलिए मुझे भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई देता है। बादशाहों की अनेक बेगमें होती हैं। न जाने प्रेमहीन, रसहीन जीवन किस प्रकार कटेगा ?”

“जब आप कुमार को देखेंगी, तो उनसे प्रेम किए बिना आप से रहा न जायगा।”

“अच्छा, इस समय इन बातों को छोड़ कर कोई और गीत सुनाओ !”

फ़रामरोज़ ने गीत सुनाया और लालारुख उसी को रात भर गुनगुनाती रही।

६

उसी रात को जब फ़रामरोज़ अपने शिविर में सो रहा था, एक अजनबी चुपके से भीतर घुस गया। फ़रामरोज़ गाड़ी निद्रा में सो रहा था। उसके सिरहाने ही एक टिमटिमाती हुई मोमबत्ती जल रही थी। आगन्तुक ने धीरे से मोमबत्ती बुझा दी। कुछ देर इधर-उधर देखा। फिर ध्यान से तलवार खींच कर फ़रामरोज़ के मुख की ओर देखा। फिर तलवार से फ़रामरोज़ पर वार करना चाहा, परन्तु वह वार कर भी न पाया था कि फ़रामरोज़ एक साथ उठा, आगन्तुक का हाथ पकड़ा और तलवार ज़मीन पर गिरा दी।

शोर सुन कर वहाँ काफी आदमियों की भीड़ लग गई। पहरेदारों की मशालों के प्रकाश में फ़रामरोज़ ने देखा, उस पर वार करने वाला अहमद था।

“छिप कर वार करना कायरों का काम है। अगर कुछ मर्दानगी है, तो सामने दो हाथ चला कर देख लो !”—फ़रामरोज़ बोला।

“मैं शाही ख़ानदान का हूँ। तू काश्मीर का भाँड़ है। तेरे साथ मैं क्या लड़ूँ ?”—अहमद ने उत्तर दिया ?

“शाही ख़ानदान ? उसका नाम क्यों लज्जित करते हो ! लो, यह है तुम्हारी तलवार। ज़रा इस भाँड़ से भी लोहा लेकर देख लो !”—इतना कह कर फ़रामरोज़ ने अहमद की तलवार ज़मीन से उठा कर उसके हाथ में दे दी। देखने वाले सभी चुपचाप खड़े थे। अहमद ने उनकी ओर देखा। उसे प्रतीत हुआ, मानों सबकी आँखें उसे लड़ने के लिए ललकार रही थीं। उसने तलवार संभाली। जो व्यक्ति केवल प्रेम के गीत गाकर ही अपना जीवन ध्येय करता है, वह तलवार क्या चलाएगा ? यह सब फ़रामरोज़ की धमकी ही थी। यह सोचकर उसने अपनी छाती फुलाई और बोला—आओ !

फ़रामरोज़ ने भी तलवार संभाली और कहा—आओ !

दोनों के हाथ चलने लगे। अहमद अच्छी तरह तलवार चला सकता था। परन्तु अब उसे मालूम हुआ कि फ़रामरोज़ के सामने वह कुछ भी नहीं था। उसने आत्म-रक्षा की बहुत कोशिश की। परन्तु फ़रामरोज़ की तलवार उसकी छाती के भीतर जा ही पहुँची। अहमद ‘आह’ करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इतने ही में लालारुख वहाँ दौड़ी हुई आई।

“क्या हुआ ?”—उसने पूछा।

किसी ने अहमद की ओर उँगली की।

लालारुख उस ओर को दौड़ी। अहमद को इधर-उधर से देखा। उसका प्राण निकल चुका था। आखिर वह था अपने ही खून का। उसे मरा हुआ देख कर लालारुख का खून खौलने लगा। उसने अपना सर उठाया। सामने फ़रामरोज़ नीरव निरचल खड़ा था।

“यह तुमने किया ?”—उसने पूछा।

“हाँ।”

“बदला लेने के लिए ? खून की प्यास बुझाने के लिए ? मैं नहीं जानती थी कि तुम्हारे अन्दर ऐसा ज़हर भरा है। जिसे मैं दया समझती थी, वह मृत्यु निकली। जिसे मैं माथुर्य समझती थी, वह विष निकला।”

“लालारुख !”—फ़रामरोज़ बोला।



“चुप रहो ! मैं घातक के साथ बात नहीं करना चाहती। काश्मीर पहुँच कर तुम्हें बादशाह के सामने न्याय के लिए पेश किया जायगा।” उसके इतना कहते ही फ़रामरोज़ एक ओर चलने लगा, बिना कुछ कहे, बिना कुछ सुने। लाला ने उधर देखा, उसके वस्त्रों से रक्त की धारा बह रही थी।

“फ़रामरोज़ !”—उसने चिल्लाकर पुकारा।

फ़रामरोज़ ठहर गया। लालारुद्र उसके पास आ गई !

“क्या तुम्हें भी चोट आई है ?”

“नहीं।”

“फिर खून कैसा ?”

“मेरे खून की तुम्हें परवाह ? तुम्हें तो अपने ज्ञान-दान के खून ने इस समय अन्धी बना दिया है।”

यह कह कर फ़रामरोज़ आगे बढ़ा। लालारुद्र चुपचाप उसकी ओर देखती रही। इतने ही में फ़रामरोज़ धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। लालारुद्र दौड़ी हुई उधर गई। फ़रामरोज़ बेहोश पड़ा था। लाला ने उसका वस्त्र हटाया। एक गहरे घाव से रक्त की धार बह रही थी ! लाला चिल्ला उठी—या खुदा, क्या मैंने इसको भी खो दिया !

उसी समय लाला फ़रामरोज़ को अपने शिविर में उठवा कर ले गई।

७

लालारुद्र की परिचर्या से फ़रामरोज़ अच्छा हो गया। तब तक लालारुद्र को वास्तविकता का पता लग गया था और वह अपने अपराध के लिए फ़रामरोज़ से क्षमा माँग चुकी थी। इस बीच फ़रामरोज़ के साथ इतने दिन रह कर, उसकी बातें सुन कर, उसका सन्नीत सुन कर वह उसे अपना हृदय अर्पण कर चुकी थी।

वे श्रीनगर के निकट आ पहुँचे थे। सम्झा हो चुकी थी, इसलिए पड़ाव वहीं डाला गया था। फ़रामरोज़ उसी समय नगर में ख़बर देने के लिए यात्रा की तैयारी कर रहा था।

लालारुद्र बहुत उदास थी। उसका फूल सा चेहरा मुर्का गया था। आज का दिन ही फ़रामरोज़ और उसके मिलन का अन्तिम दिन था। कुछ ही

घण्टों का स्वर्गीय सुख था, जिसे वह कुछ दिनों से अनुभव कर रही थी। इसके बाद हरम का बन्दीगृह और उसका पति, जिसके लिए उसके हृदय में तनिक भी प्रेम नहीं था, तनिक भी स्थान नहीं था।

वह फ़रामरोज़ के साथ कुछ देर के लिए घूमने निकली। सामने एक छोटी सी पहाड़ी दिखाई दे रही थी। दोनों उसी पर चढ़ कर पश्चिम में डूबते हुए सूर्य की ओर देखने लगे।

“कुछ समय में ही सूर्य अस्त हो जायगा !”—फ़रामरोज़ बोला।

“हाँ, और फिर काली रात आ जायगी !”—लाला ने उत्तर दिया।

“परन्तु कुछ घण्टों के बाद ही।”

“नहीं, फ़रामरोज़, मेरी रात्रि चिरस्थायिनी होगी ! तुम्हारे बिना, ओह फ़रामरोज़ !”

“मुझे भूल जाओ लाला !”

“भूल जाऊँ, कैसे ?”

“जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने पूर्वजन्म को भूल जाता है। कज श्रीनगर में तुम्हारा दूसरा जन्म होगा, लाला !”

“बोलो, फ़रामरोज़, मुझे प्यार करते हो ?”

“क्या विश्वास नहीं है, लाला ?”

“कैसे हो ? तुम्हें खो रही हूँ, शायद तुम्हारे प्रेम से भी हाथ धो बैठूँ।”

“ऐसा नहीं हो सकता, लाला ! मैं सदा, चुपचाप तुम्हारी ही स्मृति में लीन रहूँगा !”

“तब मैं राजकुमार के साथ अपने बन्दी-जीवन को आसानी से बिता सकूँगी। प्रेम की स्मृति में मनुष्य सब कुछ सहन कर सकता है।”

वे दोनों चुप रहे। फिर लाला धीरे से बोली !

“अगर मैं शाही खून से पैदा न होती × × ×।”

“तो × × × ?”

“तो मैं तुम्हें पा सकती। तुम्हारे साथ सुखी रह सकती। शाही खून से पैदा होना एक शाप है। लोग इसे अहोभाग्य समझते हैं, परन्तु यह महान दुर्भाग्य है !”

“बलो, नीचे चलो, जाने का समय हो गया !”



“नीचे चलो ? इतना ऊँचा आकर फिर नीचे ? क्या ही अच्छा होता, यदि ऊपर न आते। जो नीचे हैं वे सुखी हैं, क्योंकि उन्हें कहीं नीचे जाने का डर तो नहीं।”

यह कह कर लालारुख के कोमल गाँवों पर दो आँसू ढुलक आए। फ़रामरोज़ ने उन आँसुओं को पोंछा और लाला को अपने वक्षस्थल में छिपा लिया।

८

श्रीनगर के प्रवेश-द्वार पर लालारुख का शाही स्वागत हुआ। शानदार जुलूस के साथ वह राजमहल में पहुँचाई गई। वहाँ राजकुमार उसके स्वागत के लिए तैयार खड़े थे। दरबार दरबारियों से खचाख़ बरा था। राजकुमार ने लालारुख के प्रवेश करते ही उसका स्वागत किया। परन्तु लाला ने कुमार की ओर देखा भी नहीं। वह इधर-उधर दृष्टि फिरा कर कुछ देखने लगी।

“क्या कुछ खो गया है, लालारुख ?”—कुमार ने पूछा।

“हाँ × × × नहीं, नहीं !”—लाला ने विचार-निद्रा से जाग कर उत्तर दिया।

“शायद यह देख रही हो कि यह दरबार दिल्ली के दरबार से कितना छोटा है !”

“नहीं, नहीं !”

“तो फिर मेरी ओर क्यों नहीं देखती ? मैं कितने दिनों से निर्निमेष नेत्रों से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।”

“मुझे चमा करें। यात्रा की थकान ने मेरे होश गायब कर दिए हैं ! मैं कुछ देर अकेली रहना चाहती हूँ !”

“अच्छा अभी इसका प्रबन्ध किए देता हूँ।”

इतना कह कर कुमार लाला का हाथ पकड़ कर उसके कमरे की ओर ले गए।

कुछ देर बाद कुमार लाला के पास फिर पहुँचे।

“क्या अब जी अच्छा है ?”—उन्होंने पूछा।

“अभी बिलकुल अच्छा नहीं है।”

“शायद अकेले में जी घबरा रहा हो, चलो बाहर चलो। तुम्हारे स्वागत में आज सारा नगर उत्सव मना रहा है। नगर की रोशनी और आतिशबाज़ी ऊपर

से अच्छी तरह दीख सकती है। बड़ा मनोरम दृश्य होगा।”

लालारुख ने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप कुमार के साथ चली गई। सामने रत्नबिरङ्गे चक्रवान घूम रहे थे। उनका थोड़ा प्रकाश लाजा के मुख पर पड़ कर यह स्पष्ट कर रहा था कि उस पर उदासी छाई हुई थी। कुमार ने यह देखा। उन्होंने लाला की बेरुखी और अन्यमनस्कता भी देखी। उन्होंने लाला का हाथ पकड़ा और चुपचाप बाग की ओर चले गए। लाला भी कठपुतली की भाँति उनके साथ चली गई।

बाग में एक कोच पड़ी थी। दोनों उसी पर बैठ गए।

“चन्द्रमा की किरणें कितनी शीतल हैं !”—कुमार बोले।

लाला ने कुछ उत्तर न दिया।

“क्या तुम्हें यह अच्छी नहीं लगती ?”

“नहीं !”—लाला ने उत्तर दिया।

“शायद मेरे कारण !”

“क्यों ?”

“क्योंकि, शायद तुम्हें मैं अच्छा नहीं लगता।”

लाला चुप रही।

“क्या तुम्हें प्रसन्न करने के लिए कुछ कर सकता हूँ ?”

“कुछ नहीं ?”

“सज्जीत ?”

लाला ने कुछ देर सोचा। फिर बोली—अगर आपकी इच्छा है, तो मैं गाना सुन लूँगी।

कुमार ने ताली बजाई। एक नौकर उसी समय वहाँ आ गया। कुमार ने उससे जाकर कुछ कहा। थोड़ी देर में ही दस सुन्दर युवतियाँ विभिन्न प्रकार के वाद्यों के साथ वहाँ आ उपस्थित हुईं।

“क्या सुनोगी ?”—कुमार ने पूछा।

लाला ने गाने वालियों की ओर ध्यान से देखा और फिर बोली—क्या आपके यहाँ यही गाने वालियाँ हैं ?

“अर्थात् ?”

“क्या कोई और गाने वाला दरबार में नहीं है ?”

“तुम्हारा अर्थ है, कोई पुद्गल ?”



“हाँ !”

“पुरुष ? देखूँ ज़रा ! हाँ, ठीक है, फ़रामरोज़ है !”

“फ़रामरोज़ ?”—लाला की आकृति खिल गई ।

“तुम तो उसे जानती हो । मैं उसे तो भूल ही गया था । मालूम होता है, उसने मार्ग में तुम्हारा जी खूब बहलाया होगा !”

“हाँ, खूब !”

“वह गाना बहुत अच्छा जानता है !”

“बहुत अच्छा !”

“और प्रेम करना भी खूब जानता है !”

“हाँ × × × नहीं × × × मैं इसे नहीं जानती !”

“कुछ परवाह नहीं, मैं उसे अभी यहाँ भेजे देता हूँ ।”—इतना कह कर कुमार गाने वालियों को साथ लेकर यहाँ से चले गए ।

९

थोड़ी देर में ही फ़रामरोज़, लाला के सामने आकर खड़ा हो गया । लाला उसे देख कर फूली नहीं समाई । वह यह भूल गई कि वह उस देश के शासक की स्त्री होने वाली थी । वह फ़रामरोज़ के गले से दौड़ कर लिपट गई ।

“ओह, फ़रामरोज़, मुझे यहाँ से ले चलो । तुम्हारे बिना जीवन × × × !”

“ऐसा न कहो लाला, कुमार सुन लेंगे तो × × × !”

“सुनने दो ! मुझे कुछ परवाह नहीं ! तुम और मैं, बस यही याद रखो !”

“ऐसा नहीं हो सकता, लाला ! मुझे भूल जाओ; मेरे लिए नहीं, अपने लिए । तुम यहाँ की रानी होने वाली हो !”

वह समाप्त भी न कर पाया था कि कुछ सिपाहियों ने वहाँ प्रवेश किया । एक ने फ़रामरोज़ के हाथ में एक कागज़ दिया ।

“यह क्या है ?”—लाला ने व्यग्र होकर पूछा ।

“मेरी गिरफ़्तारी का हुक्म ।”

“गिरफ़्तारी का ? नहीं, मैं ऐसा न होने दूँगी । कुमार को आने दो, मैं उनसे अपील करूँगी ।”

“व्यर्थ है, लाला, कुमार सब कुछ जान गए हैं, ऐसा मालूम होता है ।”

फ़रामरोज़ सिपाहियों के साथ चला गया । लाला भौंचक्की होकर उधर देखती रही । कुछ देर बाद वह उधर देख कर चिह्नाने लगी—“फ़रामरोज़, फ़रामरोज़ !”

“लाला !”—पीछे से शब्द आया ।

लाला ने मुड़ कर देखा । कुमार पीछे खड़े थे ।

“आपने फ़रामरोज़ को गिरफ़्तार कराया है ?”—

उसने पूछा ।

“तुम क्या चाहती हो ?”

“उसे छोड़ दीजिए !”

“क्या तुम उसे प्यार करती हो ?”

“प्यार ? नहीं !”

“फिर उसके लिए इतनी चिन्ता क्यों ?”

“कारण कुछ नहीं, परन्तु × × × !”

“एक बादशाह की बेटी को यह शोभा नहीं देता । तुम्हें इस प्रकार के अनेक दृश्य देखने पड़ेंगे ।”

“परन्तु इस बार ऐसा न करो !”

“जिस व्यक्ति ने तुम्हारा अपमान किया × × ×”

“अपमान ?”

“जिसने तुमसे प्रेम करने का साहस किया, उसे दण्ड अवश्य मिलेगा ।”

“दण्ड ? तो क्या उसे × × × ?”

“फाँसी होगी !”

“नहीं, नहीं, ऐसा न करो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ । मेरे लिए उस पर दया करो !”

“तुम्हारे लिए ? तब तुम उसे प्यार करती हो !”

लाला ने कुछ देर सोचा, फिर धीरे से कहा—हाँ !

“तब बात दूसरी है !”—कुमार शान्ति से बोले ।

“तो क्या तुम उसे मुक्त कर दोगे ?”

“एक शर्त पर ।”

“क्या ?”

“यदि तुम उससे फिर कभी न मिलने का वचन दो ।”

“मैं वचन देती हूँ ।”

कुमार ने लाला को साथ लिया और एक कमरे में पहुँचे । वहाँ फ़रामरोज़ के वस्त्र बिखरे हुए पड़े थे । लाला उन्हें देख कर पागल की भाँति बोली—यह क्या ?

“शायद वे उसे ले गए !”



“और × × ×”

“उसे समाप्त कर दिया होगा !”

“या खुदा !”—कह कर लालारुद्र एक कोच पर गिर कर सिसक-सिसक कर रोने लगी ।

कुमार ने शीघ्र ही अपने वस्त्र उतारे और फ़रामरोज़ के वस्त्र पहन लिए ।

“क्या मैं तुम्हारे लिए फ़रामरोज़ नहीं बन सकता ?”—कुमार ने पूछा ।

लाला रोती ही रही ।

“मैं भी देखने में फ़रामरोज़ ही लग सकता हूँ, उसी की तरह बात कर सकता हूँ, उसी की तरह गा सकता हूँ ।”

लाला ने फिर भी कुछ ध्यान न दिया । कुमार ने गाना प्रारम्भ किया—

आयो वसन्त पियाहू आयो सजनां !

लाला चौंकी । उसने मुड़ कर उधर देखा और

आश्चर्य से बोली—कुमार, आप × × × ?

“हाँ, लालारुद्र !”

वह निकट आ गई ।

“फिर इस तरह मुझे क्यों झुला था, छलिया ?”

“तुम्हारे प्रेम को जीतने के लिए, जो सारे राज्य

की शक्ति से भी नहीं जीता जा सकता था ।”

इस बार लालारुद्र के मुख से भी निकल गया—

आयो वसन्त पियाहू आयो सजनी !

उस पार

[श्री० नरेन्द्र]

चलो, प्रिय, जीवन के उस पार !

विश्व के कोलाहल से दूर,

जगत के बन्धन से भी दूर,

दूर—दुनिया से दूर ।

चलो, प्रिय, जीवन के उस पार !

अरे, यह अन्धकार आगार—

वियोगी का सूना संसार !

खोल दो निज आलिङ्गन, प्राण !

प्रिये ! हैं मेरे दुर्बल प्राण,

तुमुल तम छाया एकाकार—

सहूँगा कैसे इसका भार ?

चलो, प्रिय, जीवन के उस पार !

प्राण ! हूँ तृणवत्, बिन आधार,

गरजता सागर भीमाकार—

निराश्रय चिड़टी-से लघु प्राण,

अगम सागर बिन छोर अजान !

प्राण ! जल-जल सब ओर अपार,

अरे आओ, मेरे संसार !

चलो, प्रिय, जीवन के उस पार !

वहाँ होंगे केवल दो प्राण—

सजग, उन्मन, प्रेमातुर प्राण !

डुबा देना वैभव में, चन्द्र !

ज्योत्स्ना-लय हों प्राण अमन्द,

खोलना उर-आकाश अपार—

स्नेहमय सौरभमय संसार !

चलो, प्रिय, जीवन के उस पार !



जापान का साम्राज्यवाद और चीन

[श्री० रामकिशोर मालवीय]



प में भी कुचले जाने पर ही बदला लेने का भाव उत्पन्न होता है। सर्प ही क्या, प्राणी मात्र का यह सहज स्वभाव है। मनुष्य प्राणधारियों में सबसे अधिक बुद्धिमान है, उसमें चिन्तन-शक्ति सर्वाधिक है, मानापमान को समझने की बुद्धि उसमें विशेष है और इसीलिए अपने व्यक्तित्व पर अथवा सम्मान पर आक्रमण वह सहन नहीं कर सकता। आक्रमणकारी के प्रति प्रतिकार की भावना उसमें निश्चय ही उत्पन्न हो जाती है। यही भावना इस समय जापान में अवाधित रूप से नृत्य कर रही है। जापान पूर्वीय देश है, पूर्वीयता का उसे गर्व है और पूर्वीय देशों का सङ्घटन तथा उनकी उन्नति का भी वह अभिलाषी है। आज ही नहीं, पिछले पच्चीस-तीस वर्षों से एक नहीं, अनेक ज़िम्मेदार जापानी राजनीतिज्ञों ने एशियाई देशों के उद्धार और सङ्घटन की कामनाएँ समय-समय पर प्रकट की हैं और इस दिशा में प्रयत्न करने के भी वचन दिए हैं। उनकी इन बातों को एशिया के अन्य देशों ने, जिनमें भारत भी सम्मिलित है, बहुत आशापूर्वक दृष्टि से देखा था। समझा यह गया था कि एशिया के छिन्न-भिन्न और जर्जर देशों को उन्नति-पथ पर लाने का श्रेय जापान को ही प्राप्त होगा। परन्तु पश्चिमीय देशों की स्वार्थलोलुपता, कपट-चाल और निन्द्य कूटनीति के कारण जापानियों की मति-गति परिवर्तित हो गई और संसार जापान को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। अनेक दिशा से यह आवाज़ आने लगी है कि जापान एशिया के उद्धार के बहाने शक्ति प्राप्त कर रहा है और शक्ति-मद से मत्त होकर अपने पड़ोसी देशों को कुचल रहा है। परन्तु यह आरोप सर्वथा उचित नहीं है। यद्यपि यह अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा

सकता कि जापान ने एशियाई देशों के उद्धार और सङ्घटन की जो मधुर भावनाएँ संसार के समस्त रक्षार्थी, वह सब उसकी महज़ चाल थी और केवल स्वार्थ-साधन के लिए उसने एशिया के अन्य देशों की सहाय-भूति प्राप्त करने के हेतु उन्हें सब्र बाग़ दिखलाए थे, तथापि दुनिया की नज़रों में इस समय तो वह निस्सन्देह अपने निर्दिष्ट मार्ग से पराङ्मुख प्रतीत हो रहा है। इसका कारण क्या है? अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की क्या गुलियाँ इसमें उलझी हुई हैं और स्वार्थ तथा साम्राज्यवाद का रङ्ग उस पर कैसे चढ़ गया, इन्हीं बातों पर इस लेख में विचार किया जायगा।

जापान प्राचीन सभ्यता का देश है। ईसा के जन्म से लगभग ६०० वर्ष पूर्व से वहाँ बादशाह द्वारा सुसङ्गठित शासन होता चला आ रहा है। अन्य पूर्वीय देशों की भाँति वहाँ भी बादशाह को शासक के अतिरिक्त धार्मिक महापुरुष माना जाता है। धार्मिक मत में जापान भारत का अनुयायी है। बौद्ध-काल में भारत की ओर से धर्म-प्रचारक जापान में भी भेजे गए थे और उस समय समस्त जापान बौद्ध-धर्म का अनुयायी हो गया था। इस समय भी वहाँ बौद्ध-धर्म की ही प्रधानता है। अब तक जापानी लोग भारत को धर्मगुरु मानते हैं और भारत से प्रेम और श्रद्धा रखते हैं। ईसा के जन्म के बाद पन्द्रहवीं शताब्दी तक जापान निर्विघ्न रूप से अपना शासन करता चला आ रहा था और विदेशों की ओर उसका ध्यान नहीं आकृष्ट हुआ था। परन्तु सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीय देशों की दृष्टि उधर गई और सबसे पहले पुर्तगाल वालों ने सन् १५४३ में व्यापार करने के लिए जापान में प्रवेश किया। व्यापार करते-करते पुर्तगालियों की संख्या वहाँ बढ़ी और उन लोगों ने धीरे-धीरे ईसाई-धर्म का प्रचार भी करना आरम्भ किया। प्रायः ७५ वर्ष तक पुर्तगालियों का प्रभाव वहाँ जमा रहा। परन्तु इसके बाद जापान के बादशाह ने

पुर्तगालियों के बढ़ते हुए आतङ्क के साथ ही ईसाई-धर्म को अपने देश के लिए हानिकर समझा और सन् १६२४ में उन्होंने यह आज्ञा प्रचारित की कि समस्त विदेशी जापान को छोड़ कर चले जायें और ईसाई-धर्म का प्रचार बिल्कुल बन्द कर दिया जाय। परन्तु इस आज्ञा के बाद भी पुर्तगाल वाले कुछ वर्षों तक लुक-छिप कर ईसाई-धर्म का प्रचार करते ही रहे। जापान-बादशाह को जब यह ज्ञात हुआ, तो वे बहुत क्रुद्ध हुए और ईसाइयों का बड़ी क्रूरता के साथ उन्होंने दमन किया। ५० हजार ईसाई तलवार के घाट उतारे गए और पोप आदि धर्म-गुरुओं का खुलेआम क़त्ल किया गया। उस समय से विदेशियों का आतङ्क जापान पर से उठ गया और प्रायः २०० वर्षों तक किसी विदेशी को वहाँ प्रवेश करने का साहस न हुआ। पर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अमेरिका ने ज़बरदस्त जङ्गी बेड़ों के साथ जापान पर चढ़ाई कर दी। जापान को अन्ततः अमेरिका से व्यापारिक सन्धि करनी पड़ी और अमेरिकनों को अपने राज्य में व्यापार करने का अधिकार देना पड़ा। उसी समय से जापान का द्वार विदेशियों के लिए खुल गया, साथ ही जापान के लिए विष से अमृत उत्पन्न भी हुआ। जापानियों को भी विदेशियों के सम्पर्क से अपनी उन्नति करने का अवसर प्राप्त हुआ। अमेरिका के बाद जापान ने सभी देशों से व्यापारिक सन्धि स्थापित की। सन् १८५८ में इङ्ग्लैण्ड से, १८५९ में फ़्रान्स से, १८६० में पुर्तगाल से, १८६१ में जर्मनी से, १८६४ में स्विज़र-लैण्ड से, १८६६ में इटली से और १८६७ में डेनमार्क से उसकी सन्धियाँ हुईं। उसके याकोहामा, नागासाकी, कानागावा, नीगाटा, हीगो, ओसाका, हीकोदाई आदि सभी बन्दरगाह बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्र बन गए और जापान उत्तरोत्तर समृद्धि प्राप्त करता गया।

कूपमण्डूकता को त्याग कर व्यापारिक उन्नति करने का जापान का यह संचित इतिहास है। विदेशियों के सम्पर्क से उसे ज्ञात हुआ कि अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए वे किस कूटनीति से काम लेते हैं। इसलिए उसे पहिले अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए यूरोपीय कूटनीति का अवलम्बन करना पड़ा।

इसके अतिरिक्त कमज़ोर का पड़ोसी होने से सबल में भी निर्बलता आ जाती है और वह पाप-बुद्धि का

शिकार हो जाता है। उसका पड़ोसी चीन जर्जर और पीनक की अवस्था में पड़ा था, यूरोप के विभिन्न देश उस पर अपना पञ्जा फैला रहे थे। अपने निर्बल पड़ोसी चीन के प्रदेशों को यूरोपीय देशों द्वारा हड़पा जाना देख कर जापान ने यह सोचा कि चीन पर यदि यूरोप का प्रभुत्व स्थापित हो गया, तो एशिया में यूरोप की स्थिति प्रबल हो जायगी और उस दशा में एशियाई देशों के पुनरुद्धार का कार्य दुस्तर हो जायगा। इसके अतिरिक्त उसने यह भी विचार किया कि बग़ल में ही यूरोपीय देशों का आतङ्क बढ़ने देना अपने लिए भी अच्छा नहीं और जबकि दूर-दूर की अन्य शक्तियाँ चीन पर अपना अधिकार बढ़ाती जा रही हैं, तो इस अवसर से हम ही क्यों चूकें और चीन को अपने ही कब्ज़े में क्यों न लावे। चीन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में जापान ने दो लाभ देखे। एक तो यह कि चीन पर अधिकार प्राप्त करने में असमर्थ होकर यूरोपीय देश एशिया पर और अधिक पैर न जमा सकेंगे और दूसरा यह कि चीनी प्रदेशों को अपने अधिकार में लाकर जापान चीन की सब प्रकार की उपजों से लाभ उठा कर अधिक शक्तिशाली हो जायगा और उस दशा में वह अपने उद्देश्य की पूर्ति बड़ी सरलता और सफलता के साथ कर लेगा। इसीलिए जापान ने अपना कार्य-क्षेत्र बदल दिया और एशिया के सङ्घटन से पहिले उसने अपना सङ्घटन करना तथा शक्ति प्राप्त करना आवश्यक समझा।

यही जापान की साम्राज्य-विस्तार-लिप्सा का मूल कारण है। इसके बाद ज्यों-ज्यों संसार की राजनीतिक परिस्थिति बदलती गई और विशेषतः यूरोपीय देश जिस प्रकार अधिकाधिक कूटनीति का सहारा लेते गए, त्यों-त्यों जापान की साम्राज्यवादिता भी उत्तरोत्तर वृद्धि हो लाने लगी गई और चूँकि चीन ही जापान की कार्य-वृद्धि का सुनिकट तथा सुलभ शिकार था, इसलिए चीन और जापान की शत्रुता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। जापान वर्तमान समय से ही नहीं, गत ३० वर्षों से अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिए सचेष्ट है और समस्त पूर्वीय एशिया पर अधिकार प्राप्त करने का व्यर्थ उसने अपने सामने रख छोड़ा है। कोरिया, मन्चूरिया और चीन के सम्बन्ध में उसने जो नीति



अख्यार कर रखी है, उसका अध्ययन करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है और तीन लड़ाइयाँ मन्चूरिया में, दो कोरिया में तथा चीन और रूस से उसने जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं, वे सब जापान की इसी उद्देश्य की द्योतक हैं। अपने इसी ध्येय और इसी नीति के कारण जापान संसार के देखते-देखते इतना शक्ति-शाली राष्ट्र बन गया है। केवल अस्सी वर्ष के थोड़े से समय में जापान एक नगण्य द्वीप की स्थिति से बढ़ कर आज संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्तियों में हो गया है। सन् १८५४ में अमेरिकियों के कारण जापान संसार के सामने आया और उसी समय से जापान ने भी परिचामीय राष्ट्रों की शक्तियों का अवलोकन किया। यूरोप की सैनिक शक्ति क्या है, उसने विज्ञान में, सभ्यता में, आर्थिक और व्यावसायिक स्थितियों में कितनी उन्नति की है, यह सब जापान ने देखा। उसने देखा कि तलवार के ज़ोर से यूरोपीय राष्ट्र दूर-दूर देशों पर शासन कर रहे हैं। उसने देखा कि यूरोप ही नहीं, समूचे अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और कैनाडा पर तथा एशिया के भी बहुत बड़े भाग पर यूरोप की गोरी जातियों का शासन स्थापित है और सर्वत्र उन्हीं का झण्डा फहरा रहा है और उसने यह भी देखा कि इन सभी स्थानों का द्वार एशिया की भूरी जातियों के लिए—जिनमें जापानी भी स्वभावतः सम्मिलित हैं—बन्द है। यह सब देख कर जापान की आँखें खुल गईं। उसने समझ लिया कि राष्ट्रों का बल उनकी सैनिक शक्ति और साम्राज्य-विस्तार ही है और उसी समय से वह इन वस्तुओं की प्राप्ति में लीन हो गया। उसके सौभाग्य से उसे अपनी शक्ति-वृद्धि के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं हुई। पड़ोस ही में चीन का विशाल-काय साम्राज्य निर्बल की सम्पत्ति-सा पड़ा था। उसे मुर्दा समझ कर यूरोप के बड़े-बड़े राष्ट्र गिद्धों की भाँति चारों ओर से चोंथ रहे थे। जापान के मुँह में भी चीन को देख कर पानी भर आया और उसने यहाँ से साम्राज्य और शक्ति-विस्तार का श्रीगणेश किया।

जापान ने इस जागरण के बाद पहले-पहल सन् १८९४-९५ में चीन के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में जापान की विजय रही और ऐसी विजय हुई कि संसार की नज़रों में जापान बहुत ऊँचा उठ गया। थोड़ी-सी

जन-संख्या के जापानियों ने विशालकाय चीन को—उस चीन को, जिसकी जन-संख्या जापानियों से पन्द्रह गुनी अधिक अर्थात् समस्त संसार की जन-संख्या की चौथाई है—जो शिक्स्त दी, उससे जापान के शौर्य और वीरता को देख कर संसार आश्चर्य-चकित हो गया। चीन भी उसी समय से जापान से भयभीत रहने लगा और जापानियों का प्रवेश तथा अधिकार चीनी प्रदेशों में आरम्भ हो गया। जापान ने चीन के औद्योगिक और कृषि-प्रधान प्रदेशों पर अधिकार प्राप्त करना शुरू किया। पहिले उसने कोरिया को अपनाया। कोरिया यद्यपि कहने को स्वतन्त्र राष्ट्र है और उसका शासन भी एक स्वतन्त्र बादशाह द्वारा होता है, किन्तु यह सब होते हुए भी चीन के पड़ोस में होने के कारण वह चीन का संरक्षित राज्य था और चीन के ही इशारों पर उसे चलना पड़ता था। उसकी उपज और उत्तम सामग्रियों से चीन ही लाभ उठाता था और उसके कारण चीन की शक्ति और अधिक बढ़ गई थी। अतः जापान ने सर उठाने पर सबसे पहिले कोरिया की ओर दृष्टि फेंकी। उसने देखा कि चीन मुफ्त में ही कोरिया से लाभ उठा रहा है, इसलिए इससे हम ही क्यों न लाभ उठावें। कोरिया में ४०,००,००० पौण्ड का वार्षिक व्यापार होता था और इसके अतिरिक्त लोहा, सोना, कोयला, अन्न आदि की बहुत बड़ी उपज होती थी। यह सब देख कर जापान को प्रलोभन हुआ और उसने कोरिया को अपनी संरक्षकता में करना चाहा। कोरिया में चीन की संरक्षकता के समय से ही जापानी भी यथेष्ट संख्या में रहते थे और कोरिया की भाषा का जापानी भाषा से बहुत सामंजस्य था। अतः जापानियों के हित की रक्षा के नाम पर जापान ने कोरिया को अपने साथ व्यापारिक सन्धि करने के लिए बाध्य किया और सन् १९०७ में जापान और कोरिया के बीच व्यापारिक सन्धि ही गई। इसके पहिले किसी विदेशी राष्ट्र को कोरिया में उसके बादशाह ने प्रवेश नहीं करने दिया था। डच लोगों ने सन् १६५४ में कोरिया में व्यापार करने का प्रयत्न किया था, किन्तु कोरिया के शासक ने इसे स्वीकार नहीं किया। पर इधर जापान के बाद अन्य यूरोपीय देशों ने भी इस ओर कदम बढ़ाया और एक के बाद दूसरे ने कोरिया से व्यवसायिक



सन्धि स्थापित की। सन् १८८३ में ब्रिटेन ने, उसी वर्ष में जर्मनी ने, १८८४ में इटली और रूस ने, १८८६ में फ्रान्स ने, १८९२ में आस्ट्रिया ने और १८९९ में चीन ने कोरिया में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त किया। अभी तक कोरिया का संरक्षक केवल चीन ही था, किन्तु अब जापान भी खड़ा हो गया और इसी प्रश्न को लेकर सन् १८९४ में चीन और जापान में द्वन्द्व हो गया। युद्ध में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जापान की विजय हुई और चीन ने कोरिया में जापान के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार कोरिया जापान का एक प्रदेश सा हो गया और जापानियों को वहाँ सब प्रकार की सुविधा प्राप्त हो गई।

कोरिया को अपनी अधिराज्य में लेने के दावे जापान की दृष्टि मन्चूरिया पर गड़ गई। मन्चूरिया चीन का निजी प्रदेश और उसके विशाल शरीर का एक अङ्ग है। कोरिया की भाँति यह प्रदेश भी कितना उपजाऊँ और कितना महत्वपूर्ण है, इसका भी थोड़ा सा परिचय दे देना आवश्यक है। मन्चूरिया चीन के लिए जितना आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उतना ही राजनीतिक दृष्टि से भी है। चीन के लिए वह अन्न का भण्डार है। तेल, कोयला, सोना आदि बहुमूल्य खनिज पदार्थों का खज़ाना है, चीन की बढ़ी हुई जन-संख्या के रहने का ठिकाना है और राजनीतिक दृष्टि से चीन को विदेशी आक्रमण से बचाने का ज़बरदस्त पहरेदार है। जितना काम यह चीन का करता है, उतना ही यह जापान के लिए भी गाढ़े समय में काम आ सकता है और इसी कारण से जापान के दाँत उस पर गड़ गए। वह सदा इसी ताक में रहने लगा कि कब अवसर प्राप्त हो और मन्चूरिया को हस्तगत किया जाय। यह अवसर भी कोरिया के युद्ध के बाद ही मिला गया। कोरिया के सम्बन्ध में जापान से युद्ध करने में चीन ने रूस से लम्बा कर्ज़ लिया था और उसी कर्ज़ के अदा न होने तक के लिए चीन ने मन्चूरिया को रूस के पास बन्धक-स्वरूप रख दिया था। रूस ने मन्चूरिया को प्राप्त कर उसमें रेलवे बनवाई, तार लगवाए, सबकें बनवाई, सब प्रकार की सुविधाएँ कीं और मन्चूरिया का शासन भी अपने हाथों में ले लिया। रूस के इस कार्य से जापान की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। एक तो उसके हाथों से उसका

शिकार निकल गया और दूसरे बगल में ही एक और प्रतिद्वन्द्वी, एक ज़बरदस्त शक्ति आ गई। उसने रूस को मन्चूरिया में पैर जमाने देने के पहिले ही उसके विरुद्ध खड्ग-हस्त हो खड़ा हो गया। परन्तु इस युद्ध में भी विजय का सेहरा जापानियों के मस्तक पर ही बँधा। युवा जापान के अजेय उन्माद के समक्ष विलासिता के प्राङ्गण में बेसुध होकर झूमने वाले रूस की क्या हस्ती थी? रूस का अपरिमित जन-बल निष्प्राण-सा खड़ा रह गया और मुट्ठी भर देशभक्त जापानी रणबाँकुरों ने मन्चूरिया पर अपना विजय का झण्डा फहरा दिया। रूस मुँह में तिनका ढाब मन्धि के लिए जापान के सामने आया। मन्चूरिया के जितने भाग पर रूस का अधिकार था, वह सब उसे जापान को दे देना पड़ा। जापान ने दक्षिण मन्चूरिया पर अधिकार प्राप्त कर उसकी और साथ ही साथ अपनी भी बड़ी उन्नति की। जो रेलवे रूस ने केवल सैनिक सुविधाओं के लिए बनवाई थी, उससे जापान ने व्यापार बढ़ाने का काम लिया। मन्चूरिया का व्यापार उसने अपने हाथों में ले लिया। इसके अतिरिक्त मन्चूरिया निवासियों की सहायुभूति प्राप्त करने और उन पर अपना प्रभाव ढालने के लिए जापान ने रेलवे के आस-पास उजाड़ स्थानों में अनेक नगर बसाए, स्कूल और कॉलेज स्थापित किए तथा डाक, तार, सबकें, बिजली आदि आधुनिक आराम की वस्तुएँ बनवाईं। इस प्रकार जापान की बहुत दिनों की मुराद पूरी हुई और दक्षिण मन्चूरिया पर उसे बहुत कुछ अधिकार मिल गया। इसके कुछ ही वर्षों बाद जापान के सौभाग्य से यूरोपीय महाभारत छिड़ गया। उस समय अन्य राष्ट्रों का ध्यान युद्ध में लगा जान कर जापान ने चीन को दबाया और सन् १९१५ में अपनी २१ शर्तें उसके सामने उपस्थित कर दक्षिण मन्चूरिया पर पूर्ण अधिकार, शासन का भी और व्यापार का भी, तथा चीन में भी व्यापार करने, जापान से ही युद्ध की सामग्रियाँ खरीदने, शासन-कार्य में जापानियों की सलाह लेने आदि के वचन प्राप्त किए। चीन पङ्खु था, निर्बल था, जापान के आगे उसे सर झुकाना पड़ा और उपरोक्त समस्त सुविधाएँ उसने जापान को दीं। परन्तु यूरोपीय महाभारत की समाप्ति के बाद, यूरोपीय शक्तियों ने जापान की



इस ज़बरदस्ती की ओर ध्यान दिया। उन लोगों ने देखा कि जापान ने चीन का समस्त व्यापार अपने ही हाथों में कर लिया और मन्चूरिया पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर वह बलशाली हो जायगा। अतः उन राष्ट्रों ने और विशेषतः अमेरिका ने सन् १९२१-२२ में जापान को चीन से प्राप्त अधिकार वापस करने पर बाध्य किया। निश्चय हुआ कि जापान चीन के मामलों में हस्तक्षेप न करे, उसे अपना शासन स्वतन्त्र रूप से करने दे और मन्चूरिया पर से भी अपना अधिकार हटा ले। यह सब हुआ ज़रूर, किन्तु जापान भीतर ही भीतर अपनी ही नीति पर अटल रहा और मन्चूरिया के दक्षिणी भाग को वह अपना विजित प्रदेश समझ कर उस पर अपना शासन करता रहा। ६-७ वर्ष की इस चुप्पी के बाद सन् १९२८ में जापान ने फिर चीन को यह सूचित किया कि दक्षिण मन्चूरिया पर से उसने अपना अधिकार हटाया नहीं है और उसे पूर्ण रूप से अपने शासन में लाने के लिए कोई बात उठा नहीं रखेगा। चीन जापान की इस घोषणा पर तिलमिला उठा। अन्य राष्ट्रों का ध्यान उसने जापान के इस निश्चय की ओर आकृष्ट किया, पर कोई क्या कर सकता था? चीन अपने पक्ष की बातें कहता था और जापान अपने पक्ष की। दो-तीन वर्षों तक यही दशा चलती रही और अन्त में गत १९३१ के सितम्बर मास में एक दिन अर्ध रात्रि के समय जापान ने मन्चूरिया की राजधानी मुकदन-स्थित चीनी सेना पर आक्रमण कर दिया और एक ही आघ सप्ताह के शुद्ध में मन्चूरिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके बाद चीन ने किस प्रकार जापान की इस ज़बरदस्ती के विरुद्ध राष्ट्र-सङ्घ की पञ्चायत में आवाज़ उठाई, राष्ट्र-सङ्घ ने किस तरह इस मामले को निबटाने के लिए एक जाँच-कमीशन नियुक्त किया, जापान ने कमीशन की रिपोर्ट और राष्ट्र-सङ्घ के निर्णय को कैसे ठुकराया, अन्त में चीन और जापान में कैसे युद्ध हुआ, जापान की उसमें किस प्रकार विजय हुई, मन्चूरिया पर अधिकार प्राप्त कर चीन के अन्य भागों पर भी उसने कैसे हाथ बढ़ाए और अब अन्त में चीन और जापान में सन्धि किन शर्तों पर हो रही है, इत्यादि कल की बातें हैं और समाचार-पत्रों के पाठक इन सभी बातों से अवगत होंगे।

एक एशिया-भक्त और एशियाई देश जापान के साम्राज्यवादी, स्वार्थी और दूसरे एशियाई देश चीन का शत्रु हो जाने का यह क्रिस्ता है और इससे यह स्पष्ट है कि एक प्रतिभाशाली और उदार देश के स्वार्थ और पर-पीड़न का पुजारी हो जाने का उत्तरदायित्व यूरोप के कूटनीतिज्ञ और चालबाज़ देशों को ही है। यूरोप की पिछली राजनीति पर दृष्टि रखने वाले यह भूले न होंगे कि वार्सलीज़ की कॉन्फ़्रेंस में जापान की यह प्रार्थना न स्वीकार करने के कारण कि समस्त जातियों के साथ समानता का व्यवहार किया जाय, जापान ने उसी क्षण से अपना तर्जेंअमल और रुज़ बदल दिया और वह शक्ति का पुजारी हो गया। उसने समझ लिया कि यूरोपीय देशों के साथ उसी समय बराबरी का व्यवहार किया जा सकता है, जब उनके ही सदृश शक्ति-सम्पन्न और चालबाज़ बना जाय। उसी समय से जापान ने इसे अपना बीज-मन्त्र बना लिया और उसकी एशिया के सङ्घटन, एशियाई देशों के उद्धार आदि की समस्त आकांक्षाएँ हवा हो गईं। जापान को अपना ध्येय और क्रम इस प्रकार बदल देने का ज़ासा बहाना है और वैदेशिक राजनीति का ज्ञान रखने वाले अनेक व्यक्तियों का कहना है कि जापान की इस कार्य की निन्दा नहीं की जा सकती, क्योंकि जब एक ओर यूरोपीय देश इसी नीति का अवलम्बन कर रहे हैं, तो एशियाई देश जापान उनका मुक़ाबला क्यों न करे और क्यों साधुता का राग अलापे? यदि यूरोप की शक्तियाँ चीन को अपना ग्रास बनाए जा रही हैं, तो एशिया का ही देश और उसका पड़ोसी जापान ही क्यों न चीन को अपनी अधिरक्षा में ले ले और एशिया के एक देश का लाभ एशिया ही को क्यों न होने दे?

खैर, कारण कुछ भी हो, किन्तु यह निस्सन्देह एशिया के लिए बड़े दुर्भाग्य और सन्ताप का विषय है कि उसका एक सुपुत और भावी आशा-स्वरूप देश जापान अपना ध्येय और कार्य-दिशा बदल दे। उसकी चीन सम्बन्धिनी नीति के कारण एशिया के सङ्घटन सम्बन्धी उसके सद्भावों पर अवश्य शङ्का होती है और लोगों के इस दोषारोपण में वज़न मालूम होता है कि जापान परमार्थ और एशिया के कल्याण के नाम पर अपने साम्राज्य का विस्तार बढ़ा रहा है। कहने वाले तो

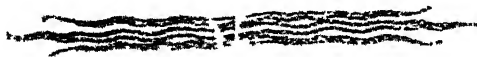


यहाँ तक कहते हैं कि जापान की यह साम्राज्यवाद की नीति भारत के लिए भी घातक है। चीन के भूतपूर्व वैदेशिक सचिव यूजेन चेन ने चीन के शंघाई नगर से निकलने वाले “दि पीपिल्स ट्रिब्यून” नामक पत्र में हाल ही में एक लेख लिखते हुए लिखा है कि—“जापान चीन पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद भारत की ओर दृष्टि फेंकेगा और ईश्वर न करे यदि अङ्गरेज लोग भारत को छोड़ कर चले गए तो जापान फौरन भारत पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। इसलिए भारतवर्ष को अभी से सावधान हो जाना चाहिए और अपने यहाँ जापान के बढ़ते हुए व्यावसायिक प्रभुत्व को रोक देना चाहिए।

एक ओर यह है, दूसरी ओर आशा की एक चूँधली रेखा जापान की ओर से भी दिखाई दे रही है। जापान इस समय भी एशियाई देशों के सङ्गठन की चर्चा छेद रहा है। चर्चा ही नहीं, वह इस दिशा में प्रयत्न भी कर रहा है। अभी पिछले जनवरी मास में जापान की राजधानी टोकियो के एसेम्बली-भवन में जापान के अनेक प्रमुख राजनीतिज्ञों और बड़े-बड़े शासकों की एक सभा इसलिए हुई थी कि महान एशियाई सङ्घ (Great Asiatic League) नामक एक संस्था स्थापित की जाय। इस संस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करने वालों में टोकियो इम्पीरियल यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर डॉक्टर मुराकावा, प्रधान सैनिक अफसर लेफ्टिनेण्ट जनरल मात्सु, राजकुमार कोनोई, रूस के भूतपूर्व राजदूत मि० हीरोतो, वैदेशिक विभाग के सुक्रिया विभाग के डाइरेक्टर मि० शिराटोरी, स्पेन के भूतपूर्व सचिव मि० होरीयूची, पुलीस ब्यूरो के भूतपूर्व डाइरेक्टर मि० ओत्सुका तथा इम्पीरियल यूनीवर्सिटी, वास्दा यूनीवर्सिटी, होसी यूनीवर्सिटी के अनेक प्रोफेसर-गण हैं। संस्था का नियमित रूप से अभी सङ्गठन नहीं हुआ। उसके लिए नियम बनाए गए हैं और यह निश्चय किया गया है कि चार-पाँच महीने बाद सङ्घ का नियमित रूप से अधिवेशन हो। उसमें चीन, भारत आदि के भी सम्मिलित करने पर विचार किया जाय। संस्था के

नियमों में कुछ नियम ये रखे गए हैं—(१) एशिया के विभिन्न देशों में अध्यापकों और विद्यार्थियों का परिवर्तन हुआ करे तथा एक देश के अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ, सम्पादक, पर्यटक दूसरे देशों में जायें। (२) पान-एशियाटिक कॉन्फ्रेंस बुलाई जाय। (३) इस सम्बन्ध में समाचार-पत्र तथा अन्य साहित्य प्रकाशित किए जायें। सङ्घ के लिए एक हॉल बनवाया जाय, आदि। इसके अतिरिक्त सङ्घ का प्रमुख उद्देश्य एशिया के विभिन्न देशों की संस्कृति, राजनीति, आर्थिक दशा आदि का अध्ययन, परस्पर प्रेम और सौहार्द स्थापित करना है।

अतः परिस्थिति अभी भी आशामय है। यदि अब भी यूरोपीय शक्तियाँ वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों का सम्बालन ईमानदारी और नेक-नीयती से करें। स्वार्थ को ही सबसे ऊपर स्थान न दें, निर्बलों को भी दुनिया में रहने देने की क्षमता प्राप्त करें तो जापान भी राह-रास्त पर आ सकता है और चीन का घोर शत्रु होने के स्थान पर उसका सच्चा मित्र और सहायक बन सकता है। इङ्ग्लैण्ड के प्रमुख राजनीतिज्ञ और यशस्वी लेखक विस्काउण्ट स्नोडेन ने ‘मैनचेस्टर गार्जियन’ में बहुत ठीक लिखा है कि यदि जापान की वर्तमान नीति फल-वती होने दी गई, तो संसार महान युद्ध और सङ्कट में पड़ जायगा और यूरोपीय सभ्यता नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। परन्तु इसका निवारण हो सकता है और उसका उपाय यही है कि यूरोप के देश अपनी नीति बदलें और जापान इस भावना को जोर पकड़ने दें कि चीन आदि निर्बल देशों का सताना बन्द किया जाय। अन्त में स्नोडेन महाशय ने लिखा है और इन पंक्तियों का लेखक उनका अक्षरशः समर्थन करता है कि जापान ने पिछले पचास वर्षों के अन्दर जो महान उन्नति की है, उससे उसकी महती शक्ति और योग्यता का पता चलता है; ऐसी दशा में यदि उसने पशु-बल की पूजा का त्याग कर दिया, तो उससे संसार में इस समय की अपेक्षा उसका स्थान बहुत ऊँचा होगा और उसके द्वारा एशिया ही नहीं, संसार का कल्याण होगा।



कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

करुण-रस

Our sincerest laughter,
With some pain is fraught ;
Our sweetest songs are those that tell of
saddest thought.

—P. B. Shelley

मानव-जीवन क्या है ? हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, आशा-निराशा और वैभव-दारिद्र्य के जीवित इतिहास का नाम मानव-जीवन है। जीवन में आनन्द और विषाद की अनुभूति होती है। इसी प्रकार साहित्य में, जो जीवन का चित्रण है, जीवन की व्याख्या है—जहाँ एक ओर प्रेम की पुनीत मन्दाकिनी का स्रोत अपनी अद्भुत छटा दिखलाता है, वहाँ दूसरी ओर विषाद का गम्भीर सागर हमें अपने जीवन की कठिनाताओं का दिग्दर्शन कराता है। करुण-रस, वास्तव में, हमारे मनोभावों को परिष्कृत कर हमें आत्मा का साक्षात्कार करने योग्य बनाता है; यह बड़ा अनुपम रस है; इसके द्वारा न जाने कितनी सन्तप्त आत्माओं को शान्ति मिली है, इसके द्वारा न जाने कितने मलीन हृदयों में विमल ज्योति का प्रकाश हुआ है, इसके द्वारा मानव-मानस के सीमा-विस्तार में न जाने कितना योग मिला है। नाटककार, औपन्यासिक, काव्यकार, सभी ने करुण-रस को अपनी रचनाओं में श्रेष्ठ स्थान दिया है। तब कहानी इसके बिना कैसे रह सकती है।

एक प्रसिद्ध अङ्गरेजी विद्वान् का कथन है कि सामान्य रूप में जिसके द्वारा सहानुभूतिपूर्ण दया की आनन्दमयी कार्यशीलता का जागरण हो, उसे साहित्य-क्षेत्र में, करुण कहते हैं। जो प्रेम शोक के स्पर्श से कोमल बन जाता है, वह करुण का रूप धारण कर लेता है ?

मनोविज्ञानवेत्ता जेम्स सल्वी ने करुण के लक्षण इस प्रकार किए हैं—‘करुण एक कोमल भाव-तरङ्ग है, जो कुछ मनुष्यों में लेखक के सङ्कट की कल्पना या प्रत्यक्षी-

करण से प्रवाहित होने लगती है।’ मानव को जिन भावों से महान आनन्द प्राप्त होता है, करुण की उनमें गणना की गई है।

करुण-रस की रचना में हमें आनन्द प्राप्त होता है। यह इसलिए कि मानव करुण मनोभावों का उत्तर जिस भावना से देता है, उसमें आनन्द की स्वीकृति निहित होती है। यदि कोई मनुष्य आपद-ग्रस्त पुरुष को देख कर समवेदना का अनुभव करता है और उसकी वेदना की अनुभूति के प्रभाव से वह उसके कष्ट-निवारण के लिए यत्नशील होता है तो इस समस्त प्रक्रिया में आनन्द का सञ्चार है।

करुण भावों के अनेक प्रकार माने गए हैं :—

१—वह करुण-भाव जो मानव-हृदय में वेदना उत्पन्न करता है।

२—वह करुण-भाव, जिसकी अभिव्यक्ति स्मित हास्य के रूप में होती है।

३—वह करुण-भाव जो स्मित हास्य का अतिक्रमण कर तीव्र उपहास के रूप में व्यक्त होता है।

४—वह कटु करुण-रस जो दुःख से घनिष्टता रखता है। इससे दुःखान्त (Tragedy) और करुण-रस (Pathos) में भेद करना कठिन है।

कारुणिक कहानी की सफलता, सर्वप्रथम, सत्यतः, सच्चे कारुणिक पात्र या घटना पर निर्भर है। हृदय-स्पर्शिता गुण से विहीन करुण-रस की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है।

“बन्धु-बान्धवों ने देखा कि कमला विचित्र होती जा रही है ! उन्होंने उसकी दशा का अवलोकन करने के उपरान्त यह पता लगाया कि वह आत्म-हत्या करना चाहती है। वे उसकी जीवन-रक्षा के लिए बराबर युक्तियाँ सोचते रहे। जब तीन सप्ताह इस प्रकार व्यतीत हो गए तो उसका शव श्मशान-भूमि में अपने मृत पुत्र की चिता या समाधि के निकट मिला।”

ऐसा वर्णन सम्बाद-पत्र के समाचारों से अधिक मर्मस्पर्शी नहीं होता। उक्त वर्णन मानव-हृदय में करुण-रस का सञ्चार करने में नितान्त अशक्त है। यदि सम्बाद-पत्र के विषादपूर्ण समाचारों को पढ़ कर पाठक किञ्चित् मात्र भी शोक अनुभव करने लगे, तो सम्बाद पत्र अशुभधारा में बह जाएँ और जो पाठक अनेक समाचार-पत्रों को पढ़ते हैं, वे अवश्य ही 'हिस्टीरिया' के शिकार बन जायँ। पर ऐसा देखने में नहीं आया।

करुण-रस की उत्पत्ति के लिए यथार्थ करुण भावों की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति अपेक्षित है। कारुणिक कहानियों में जहाँ शोक की अभिव्यञ्जना की जाय, वहाँ ऊहापोहात्मक पद्धति का अवलम्बन न किया जाय। क्योंकि सच्चा शोक, प्रेम के समान मूक होता है।

मनोभाव की गोपनीयता, संरक्षण, सुकुमारता और कमलता उत्कृष्ट करुण-भाव के लिए आवश्यक है। लेखनी की नोक के एक स्पर्श में पात्र के करुण-भाव की रचना या विनाश करने की क्षमता है।

आजकल की अधिकांश कहानियाँ अपने अन्तिम परिणाम में विषादान्त या कारुणिक होती हैं। कारुणिक दृश्य के चित्रण में बढ़ी सतर्कता की आवश्यकता है। क्योंकि इस सम्बन्ध में थोड़ी सी भूल उसके सौन्दर्य के नाश का कारण बन जाती है। चित्रण में सच्ची भावुकता नहीं आने पाती; उसका स्थान भाव-प्रवणता और ऊहापोह ले लेते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन भारतीय आर्य साहित्य में दुःखान्त-तत्व का सन्निवेश नहीं है। सदैव भारतीय साहित्य की मुख्य विशिष्टता प्रसादान्त रही है। भारतीय जीवन का यही आदर्श है कि वह शान्ति और परमानन्द में अपने जीवन का अन्त मानता है। ऐसी स्थिति में विषादान्त तत्व (Tragic Element) का प्रयोग भारतीय साहित्यिक पद्धति के ही प्रतिकूल नहीं है, वरन् आर्य-संस्कृति तथा सभ्यता के विरुद्ध है। इस विषय में साहित्याचार्य, समालोचक-शिरोमणि स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा के विचार मनन योग्य तथा आश्रय हैं :—

“प्राश्चात्य उपन्यास साहित्य में किसी कथा के पात्र या नाटक के नायक को बात की बात में मार डालना एक मामूली बात है। वहाँ कथा की 'दुःखा-

न्तता' रचना-कौशल का प्रभावोत्पादक साधन समझी जाती है। यह वहाँ की परिस्थिति के अनुकूल हो सकता है; क्योंकि ऐसी आत्महत्या की दुर्घटना वहाँ एक साधारण घटना समझी जाती है। नई सभ्यता में परलोक की सत्ता, आत्मा की नित्यता और कर्मफल-भोग की अवश्यम्भाविता पर आस्था का अभाव है! वहाँ यही सब कुछ है—'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः'—मरे और सब दुःखों से, सारे कर्मफलों से छूटे। प्राश्चात्य साहित्य-संसार की इसी दुःखान्तता या मरणान्त प्रथा का अन्धाधुन्ध अनुकरण भारत के वर्तमान उपन्यास-विधाता और नाटककार भी आँख मीच कर करने लगे हैं। इन्हें भी अपने कथा-नायकों को चटपट मारने में मज़ा आने लगा है। कोई-कोई तो इस कला में यूरोप वालों के भी कान काटने लगे हैं। × × × उपन्यास-प्रणाली की इस मरणान्त लीला को रोकना चाहिए। मारने से जिलाना कहीं पुष्ट्य का काम है। भारत के प्राचीन साहित्य-विधाता मारने के नहीं, जिलाने के पक्षपाती थे। उनकी प्रायः सब कथाएँ और नाटक 'सुखान्त' हैं। मरने का कोई अनिवार्य प्रसङ्ग आ ही जाता है, तो 'जात प्रयं तु तद् वच्यं चेतसाऽऽकाङ्क्षितं तथा' तक ही रहने देते हैं। या मरने वाले ने किसी तरह नहीं माना, ज़बरदस्ती मर ही गया, तो अन्त में अपनी कल्पना-सुधा से उसे जिला देते हैं।”

साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह जी का उपर्युक्त कथन अचरशः सत्य है। इस पर टीका-टिप्पणी अपेक्षित नहीं है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे साहित्य में हमारे धर्म, संस्कृति, आदर्श की अक्षय सम्पदा सुरक्षित रहे तो हमारा कर्तव्य है कि हम उनके संरक्षण के लिए सदैव तत्पर रहें। जिस भारतीय प्रेम का परिचय शर्मा जी के उक्त उद्धरण में मिलता है, वह हम सबके लिए अनुकरण करने योग्य है।

कहानी में वेदना का प्रयोग कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। जिस प्रकार वेदना-शून्य जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार साहित्य में वेदना-तत्व के अभाव में आनन्द की कल्पना सम्भव नहीं हो सकती। 'वेदना

ॐ 'सुधा' मासिक पत्रिका आवण सं० १९८१ वि०
की संख्या में 'हृदय की प्यास' की आलोचना पढ़ें।



पवित्र विचार-धारा का स्रोत बहाने में एवं हृदय को अति शीघ्र आकर्षित करने में—बड़ी शक्ति रखती है। अतएव जिसकी आत्मा में, स्वर में, भाव में, सर्वत्र वेदना है, वह समाज को ऐसा साहित्य देगा, जिससे पवित्रता, कोमलता और गम्भीरता का सार्वजनिक उदय होगा। यदि सर्वसाधारण में पवित्रता, कोमलता, गम्भीरता, इन तीन गुणों का स्वाभाविक उदय हो जाय तो समझिए कि मानव-समाज मानव-श्रेणी में उन्नत पद प्राप्त कर चुका। परन्तु यदि समाज को ऐसे लेखक प्राप्त नहीं हुए जिनकी स्वर-लहरी में वेदना तड़पती फिर रही हो, तो फिर कोमल भाव उन्हें शृङ्गार की ओर ले जायेंगे और यह सम्भव ही नहीं कि शृङ्गार के आवेश में वे संयत रह सकें। ज्यों-ज्यों भाव-गाम्भीर्य और सूक्ष्म-दर्शन की वृद्धि होगी, शृङ्गार गहन और साथ ही नम्र होता जायगा।”

हास्य-रस

संस्कृत भाषा के साहित्याचार्यों ने हास्य को नव-रस के अन्तर्गत माना है। हास्य-रस अपनी निजी विशेषता रखता है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि भारत जैसे ‘प्रसादान्त’ साहित्य के निर्माता देश में हास्य-रस के ग्रन्थों का बड़ा अभाव है। हास्य-रस की कृतियाँ अत्यन्त न्यून हैं। अस्तु—

हास्य-रस जीवन के लिए प्रेम से कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। स्वास्थ्य-शास्त्रियों का कथन है कि हास्य का स्वास्थ्य-निर्माण में उच्च स्थान है! प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन कुछ न कुछ हँसना चाहिए। हास्य हममें माधुर्य, सरसता और अमित आशा का सञ्चार करता है। हास्य-रस के अन्तर्गत हास, परिहास, विनोद, व्यंग्य इत्यादि माने गए हैं। हास वह मानसिक गुण है, जो भावों या विचारों को ऐसा रूप प्रदान कर देता है, जिससे हमें हँसी आ जाती है। हास में मधुरता और कोमलता होती है। यदि आप किसी व्यक्ति पर खूब क्रुद्ध हो लगे हैं, उसे कुछ तक्रार भी करें, उसके धीरे से एक घूँसा भी अड़ दें, फिर उस पर दया दिखलाने के लिए आँसू बहा दें, उस पर खूब दया दिखलावें, तो इस सब प्रक्रिया के सञ्चालन में हास्य-भाव (Spirit of Humour) काम करता दिखलाई पड़ेगा।

व्यंग्य (Satire) उस साहित्यिक रचना का नाम है, जिसमें नर-नारी, सामाजिक रीति-रिवाज तथा कार्यों पर कटुतापूर्वक आक्रमण किए जाते हैं। व्यंग्य में नीति का पालन किया जाता है और व्यंग्यकार एक नैतिक उपदेष्टा होता है। समाज-संशोधन तथा परिष्कार का कार्य, साहित्य-क्षेत्र में व्यंग्य को सौंपा गया है।

विनोद भी हास्य का एक प्रकार है। विनोद का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन होता है; कभी-कभी विनोद में शिक्षा का समावेश कर दिया जाता है। इससे पाठक मनोरञ्जन के साथ ही साथ शिक्षा भी ग्रहण कर सकता है। व्यंग्य और उपहास की भाँति विनोद में किसी प्रकार की कटुता या तीक्ष्णता नहीं होती। उच्च कोटि का सभ्य विनोद किसी समाज की सभ्यता का परिचय देने के लिए एक अमूल्य साधन है।

एक प्रसिद्ध आँग्ल विद्वान ने इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रगट किया है कि पूर्व में, जहाँ के लोग हास्य-रस-प्रेमी हैं, विनोदी साहित्य का पूर्ण अभाव है। इसी विद्वान का कथन है कि जहाँ विनोद नहीं है—विनोदी साहित्य नहीं है—वहाँ सभ्यता सम्भव नहीं है। जहाँ नारी-जाति स्वतन्त्रता का उपभोग करती है, वहाँ विनोद का सच्चा स्वरूप व्यक्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि नारी-जाति की परतन्त्रता ने हमारे गार्हस्थ्य जीवन के विनोद और हास्य का ही अपहरण नहीं किया है, वरन् उसने हमारे सामाजिक जीवन से हास्य-रस को लुप्त कर हमें अवाञ्छनीय गम्भीर बना दिया है। जैम्स हॉल मद्बोदय का कथन है कि यथार्थ हास्य और विनोद के लिए स्वस्थ एवं शक्तिशाली अन्तःकरण की आवश्यकता है, जो सदैव गम्भीर रहता हो।

इसका तात्पर्य यह है कि हास्य और विनोद के लिए सुसंस्कृत मस्तिष्क अपेक्षित है। इसमें यह भी निर्देश किया गया है कि हास्य में केवल सुख-व्यायाम ही नहीं होता, वरन् उसमें गम्भीर समस्याओं पर विचार किए जाते हैं। इसीलिए George Meredith ने कहा है—“महान् हास्यकार की लेखनी का एक स्पर्श विश्व-व्यापी होता है; उसकी हँसी में ‘दुःखान्तता’ की झलक होती है।”

* “The stroke of the great humourist is



कहानी में हास, परिहास, विनोद, व्यंग्य तथा Irony का प्रयोग किया जाय; परन्तु बड़े कौशल और नैपुण्य के साथ। क्योंकि इनका दुरुपयोग कहानी की कला को दूषित कर देगा। हास्य का प्रयोग शिष्ट, सम्य और सौम्य रूप में ही किया जाना चाहिए। अट्टहास के लिए कहानी में गुञ्जाइश नहीं होती, विनोद में ग्राम्यता न आनी चाहिए। विनोद मनुष्य-समाज का हो, अमानव का नहीं। इसके साथ ही हास्य का प्रयोग करते समय परिस्थिति और अवसर का भी ध्यान रखना चाहिए। कार्टूनिश चित्र में हास्य का रङ्ग देना उसे सुन्दर बनाने के स्थान में कुरूप बना देना है।

शैली

शैली उत्कृष्ट साहित्यिक रचना का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। इसलिए रचना पर विचार करते समय शैली का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। अनेक लेखकों की यह धारणा है कि कहानी में शैली की कोई आवश्यकता नहीं है; वह एक मनोरञ्जन की वस्तु है। यदि कथा-वस्तु उत्तम है, तो उसकी अभिव्यञ्जना के लिए चाहे निरुद्ध शैली का प्रयोग क्यों न किया जाय, वह उत्तम कह-लाएगी। कहानी के सौन्दर्य में किसी प्रकार की श्रुति न आने पावेगी। परन्तु यह विचार निर्मूल है।

शैली लेखक के विचार और मनोभावों की अभिव्यक्ति के उत्कृष्ट ढङ्ग को कहते हैं। और शैली की उत्कृष्टता एवं निरुद्धता लेखक के मनोभावों पर निर्भर है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली विचारों का परिधान नहीं है। उसका लेखक की कल्पना, विचार और मनोभाव से घनिष्ठ सम्पर्क है। शैली को लेखक के विचारों से पृथक् करना असम्भव है।

जब गवर्नर मारीस से पूछा गया कि अङ्गरेज़ी में सबसे अच्छी कहानी कौन सी है, तो इसके उत्तर में उन्होंने बहुत सी कहानियों का नाम लेते हुए अन्त में हँसते हुए कहा :—

“I like mine own stories better than anybody elses—until they are written.”

world-wide, with lights of Tragedy in his laughter.”

—George Meredith's Comedy and the use of Comic Spirit.

ऊपर के वाक्य में शैली का कितना अधिक मर्म भरा हुआ है। कोई भी कहानी कितनी ही अच्छी क्यों न हो, जब तक वह सुन्दर शैली में लिखी न जाय, उसका कुछ भी असर नहीं हो सकता। शैली ही मञ्च है, जिस पर आकर भाव और विचार अपना सुन्दर अभिनय दिखाते हैं। बिना मञ्च के वे परदे के भीतर ही छिपे रह जाते हैं। इसलिए शैली का इतना अधिक महत्व है।

शैली पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। शैली के दो मुख्य अङ्ग हैं—उपादान (Matter) और रूप (Form)। उपादानात्मक ढङ्ग के अन्तर्गत शब्द-भाण्डार, शब्द-योजना, प्रसङ्ग-गर्भत्व, सालङ्कारिता, वाक्य-विन्यास एवं पद-विन्यास आते हैं।

सुन्दर शैली के लिए विशद् शब्द-भाण्डार की विशेष आवश्यकता है। लेखक जितना उच्च कोटि का होगा, उतना ही उसका शब्द-भाण्डार विशद् और पूर्ण होगा। उसे अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव की अभिव्यञ्जना के लिए तत्क्षण ही शब्द मिल जाते हैं। उसे शब्दों की खोज में अधिक समय नहीं लगाना पड़ता।

शब्द-योजना का विशेष महत्व है। क्योंकि विषय के अनुकूल शब्द-योजना शैली के लिए अनिवार्य है। एक प्रसिद्ध साहित्यिक ने शैली की विशिष्टताओं में ‘सत्य’ को भी स्थान दिया है।

शैली में सत्य से अभिप्राय शब्द की निर्दिष्टता एवं समीचीन प्रयोग से है। यदि शब्द उपयुक्त है और लेखक के भाव की अभिव्यक्ति करने में सर्वश्रेष्ठ है तो, चाहे वह सरल ही क्यों, न हो, उसका प्रयोग अभिप्रेत है। यदि अनुपयुक्त शब्द का प्रयोग केवल तत्समता या कोमल पदावली के आभिर्भाव के उद्देश्य से किया जायगा, तो वह उत्तम शैली की रचना में साहाय्य न दे सकेगा।

प्रसङ्ग-गर्भत्व (Allusiveness) से तात्पर्य यह है कि प्रकृत विषय को सुस्पष्ट करने तथा हृदयग्राही बनाने के लिए उपादान, कथा अथवा सन्दर्भ का प्रयोग किया जाता है। कहानी में कथा या सन्दर्भ का अधिकता से सन्निवेश ठीक नहीं है। इसका प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सन्दर्भ कहानी को जटिल तो नहीं बनाते। यदि कहानी के प्रवाह में कुछ बाधा आती हो, तो इसका प्रयोग न किया जाय।

कहानी में अलङ्कार-प्रयोग द्वारा चमत्कार उत्पन्न



किया जाता है। अलङ्कार का अधिक प्रयोग वाङ्मयीय नहीं है। क्योंकि अलङ्कार के आलबाल में कहानी का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। अलङ्कारों के प्रयोग का उद्देश्य है भाव, विचार और क्रियाओं को तीव्रतम रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत करना। जहाँ अलङ्कार भावों में तीव्रता नहीं लाते, वहाँ उनका प्रयोग असफल रहता है। कहानी में अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास इत्यादि का प्रयोग होता है। उपमान सरल, स्वाभाविक और विषय के अनुरूप होने चाहिए।

पद-विन्यास और वाक्य-विन्यास का निर्वाह बड़ी सुन्दरता से होना चाहिए। कहानी का सच्चा स्वरूप कथोपकथन में झलकता है और कथोपकथन की उत्तमता तथा स्वाभाविकता उसके शब्द-सौष्ठव, वाक्य-विन्यास और पद-प्रयोग की समीचीनता पर निर्भर है।

कथोपकथन के तारतम्य में विमल निर्भरिणी के स्वच्छ जल का सा प्रवाह होना चाहिए। यह सर्व-सम्मत है कि कथोपकथन में व्यावहारिकता का समावेश होना चाहिए। व्यवहार में हम साहित्यिक शैली का निर्वाह नहीं पाते। शब्द अति सरल, भाव-गर्भित और आभ्यता लिए होते हैं। वाक्यांश और वाक्यों का अवधारण व्याकरण के नियमानुसार नहीं होता। सारांश यह है कि व्यवहार-क्षेत्र में नाट्य-प्रणाली का अनुसरण किया जाता है। अतः जिस शैली में इस प्रणाली का सन्निवेश होगा, वही कथोपकथन के लिए अधिक उपयुक्त होती है। हम साधारण बोलचाल में कहते हैं :—

१ —“क्यों जी, कहाँ है वह ?”

२ —“कहारी तो थी, फिर क्यों लगा डर ?”

३ —“असल में स्थान है भी निर्जन !”

इन वाक्यों में नाट्य-प्रणाली का अनुसरण है।

जब से अङ्गरेज़ी भाषा का प्रचार प्रचुरता से हुआ है, तब से हिन्दी की वाक्य-रचना का रूप ही बदल गया है। किसी सीमा तक रूप-परिवर्तन अभिनन्दनीय है। परन्तु अङ्गरेज़ी वाक्यों का अनुरूप हिन्दी-वाक्यों में लाना उचित नहीं है। जिस प्रकार अङ्गरेज़ी में कथन का कुछ अंश कह कर वक्ता के नाम का उल्लेख होता है और पुनः कथन का अवशेष अंश आरम्भ किया जाता है, उसी प्रकार हिन्दी में भी कुछ लेखकों ने वाक्यों की रचना शुरू कर दी है। यह अनुसरण ठीक नहीं है।

कहानी में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग—अत्यधिक प्रयोग धारावाहिकता की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं है। इतना अवश्य है कि उससे भाव-व्यञ्जना में सुगमता आ जाती है। परन्तु कहानी में धारा-प्रवाह का व्यतिक्रम असङ्गत प्रतीत होता है। छोटे-छोटे वाक्यों में सामञ्जस्य नहीं रहता। अतः कहानी में, जो अधिकांश में भाव-प्रधान है, पद-योजना तथा वाक्य-सङ्गठन इस प्रकार से होना चाहिए कि एक वाक्य दूसरे से पूर्ण सामञ्जस्य रखे तथा जिस भाव या जिन भावों की अभिव्यञ्जना की जाय, उसका या उनका सुन्दरता से धाराप्रवाह रूप में निर्वाह हो। वाक्य-प्रसून एक हृत् में गुँथे हुए हों।

एक ही आवेश में अनेक बातों का कह जाना। बार-बार कहना बड़ा रोचक और हृदय-आकर्षक होता है। निम्न-लिखित अवतरण में धारावाहिकता और भाव-व्यञ्जना का कैसा उग्र रूप व्यक्त हुआ है :—

“हर साल बसन्त आता है। बूढ़े-से-बूढ़ा रसाल माथे पर मौर धारण कर ऋतुराज के दरबार में खड़ा होकर झूमता है। सौरभ-सम्पन्न शीतल समीर मन्द गति से प्रकृति के कोने-कोने में उन्माद भरता है। कोयल मस्त होकर “कुहू” “कुहू” करने लगती है। मुहल्ले-टोले के हँसते हुए गुलाब—नवयुवक—उन्माद की सरिता में सब कुछ भूल कर, विहार करने लगते हैं; खिलखिलते हैं, धूम-चौकड़ी मारते हैं, चूमते हैं, खुम्बित होते हैं, लिपटते हैं, लिपटाते हैं; दुनिया के पतन को उत्थान का और सर्वनाश को मञ्जल का जामा पहनाते हैं और मैं टका-सा मुँह लिए, कोरी आँखों तथा निर्जीव हृदय से इस दृश्य को देखता हूँ। उस समय मालूम पड़ता है कि बुढ़ापा ही नरक है !

“हर साल मतवाली वर्षा-ऋतु आती है। हर साल प्रकृति के प्राङ्गण में यौवन और उन्माद, सुख और विज्ञास, आनन्द और आमोद की तीव्र मदिरा का घड़ा डुलकाया जाता है। लड़कपन मुग्ध होकर लोट-पोट हो जाता है—“काले मेघा पानी दे !” जवानी पगली होकर गाने लगती है—“आई कारी बदरिया ना !” और मेरा बुढ़ापा ? अभागा ऐसे स्वर्गीय सुख के भोग के समय कभी सदी के चक्कुल में फँस कर खाँसता-खखारता रहता है। कभी गर्मी के फेर में पड़ कर पङ्के तोड़ता है। सामने की परोसी हुई थाली भी हम

अपने दुर्भाग्य के कारण नहीं खा सकते ! तड़प-तड़प कर रह जाते हैं ; उफ़ !”

—‘बुढ़ापा’ पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’

‘उग्र’ जी की शैली भावात्मक होती है। कहानी के लिए भाव-प्रधान शैली ही अपेक्षित है। हिन्दी में हमारी अनुमति में, पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ और आचार्य चतुरसेन शास्त्री की शैली सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि इनकी शैली में वह श्रोज और उत्कर्ष है, जो कथन में धारावाहिकता का सञ्चार कर देता है; भावावेश की अतीव उग्रता रहती है। कथन, उपकथन, वाद और विवाद, आन्दोलन और प्रचार तथा अन्तस्तल के भावों के चित्रण के लिए उपर्युक्त प्रकार की भावात्मक शैली सर्वथा समीचीन है। शैली की उपर्युक्त विशिष्टताओं के फल-स्वरूप उसके तीन गुण माने गए हैं। प्रसाद, माधुर्य और श्रोज—ये तीन गुण हैं। प्रसाद गुण प्रत्येक रचना को पाठ्य-सरल और बोधगम्य बनाता है। जिस रचना के भाव या विचार स्पष्ट न हों, समझना चाहिए उसमें प्रसाद गुण का अभाव है। कहानी में प्रसाद गुण की अतीव आवश्यकता है। कारण कि यह जन-साधारण के अध्ययन की वस्तु है।

जिस रचना को सुन कर हृदय द्रवीभूत हो जाय उसमें माधुर्य गुण का समावेश समझना चाहिए। माधुर्य गुण से रचना में एक प्रकार की मधुरता आ जाती है। जिस रचना के अध्ययन से हृदय में वीरता और उत्साह का आविर्भाव होने लगे, वे उसमें श्रोज का प्राधान्य होता है। इन गुणों का हमने निर्देश मात्र किया है।

‘कथोपकथन’ प्रकरण में हमने पात्र की स्वाभाविक, उपर्युक्त एवं स्थिति के अनुकूल भाषा पर जोर दिया है। इसी प्रकरण में ‘दुखवा मैं कासे कहुँ मोरी सजनी’ तथा ‘बिसाती’ कहानियों में से अवतरण देकर उत्कृष्ट, स्वाभाविक तथा पात्रोपयुक्त कथोपकथन का उदाहरण दिया है। ‘बिसाती’ के अवतरण से अस्वाभाविक तथा पात्र की स्थिति के प्रतिकूल कथोपकथन का नमूना पेश किया है। यहाँ हम अनावश्यक वान्विस्तार के भय से अधिक प्रकाश डालना समीचीन नहीं समझते !

यहाँ तक हमने शैली के एक अङ्ग का विवेचन किया है। अब हम शैली के रूपात्मक अङ्ग (Formal Aspect) पर संक्षेप में विचार कर लेना चाहते हैं।

शैली की रूपात्मक विशिष्टताएँ (Formal Characteristics) लेखक के व्यक्तित्व पर अवलम्बित हैं। लेखक की दार्शनिकता, हास्य-प्रियता, शील-प्रेम, उदासीनता; भावुकता, व्यंग्य-प्रियता, अतीत-प्रेम, आधुनिकता-प्रेम इत्यादि की उसकी रचना में स्पष्ट झलक रहती है। उसके चरित्र के तत्वों का उसकी रचना में पूर्ण समावेश रहता है।

“सहृदयता और नीरसता, हर्ष और विषाद, धार्मिकता और अधार्मिकता, तपोनिष्ठा और विलासिता शैली में इतनी अधिकता से प्रविष्ट हो जाती है कि सहृदय भावुक व्यक्ति केवल रीति-नियम का दास बनकर विडम्बना-प्रदर्शन नहीं कर सकता। एक दम्पति तपोमुनि के जीवन का अनुकरण नहीं कर सकता; धार्मिक सम्प्रदाय का संस्थापक नास्तिकता के अभिनय का नायक नहीं बन सकता; एक दुराचारी सदाचारी होने का ढोंग नहीं रच सकता।”

भावार्थ यह है कि महात्मा, क्रान्तदर्शी, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आस्तिक, नास्तिक सभी प्रकार के लेखकों की शैली में उनकी मनोवृत्तियों की झुआ दिखलाई पड़ती है। इसी को लेखक की वैयक्तिकता कहते हैं। इसी को दृष्टि में रख कर एक अँगरेज़ विद्वान ने Style is man शब्द कहे हैं। जिस आदेशात्मक शैली का प्रयोग महात्मा गाँधी करते हैं, उसका प्रयोग सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक श्री० प्रेमचन्द नहीं कर सकते। जिस भावात्मक शैली का प्रयोग ‘उग्र’ की कहानियों में मिलता है, वह ‘सुदर्शन’ की कहानियों में नहीं मिलता। कला में सदाचार का निर्वाह जिस उत्कृष्ट रूप में श्री० प्रेमचन्द में मिलता है, वैसा तो दूर रहा, उसका शतांश भी ‘उग्र’ में नहीं मिलता।

इस कथन का सार यह है कि लेखक की शैली में वैयक्तिकता का सन्निवेश अनिवार्य है। रचना में आत्मीयता की झलक इतनी स्पष्ट होनी चाहिए कि हम उसे पढ़ कर यह अनुभव करने लगें कि लेखक अपनी कथा को इसलिए सुना रहा है कि हम उसे सुन कर ‘तढ़ें, रोएँ, गाएँ और हँसें।’

ॐ मेरा लेख ‘रचना-शैली’ पविष्ट—‘सुधा’ ज्येष्ठ सम्बत् १९८९ वि०। —लेखक



विधवा

[श्री० वीरेश्वरसिंह]

सखि, घिर आए सावन-घन,
लहलहा उठी हरियाली,
मेदिनी मुदित हो फूली,
बिलरी कुसुमों की लाली ।

है मँहक उठी मिट्टी भी,
नव-नव अक्षुर हैं फूटे;
फूटे मद से भर गिरिवर,
धीरज से झरने छूटे ।

तब भूम-भूम रहते हैं,
नाचतीं नवल पातुलियाँ;
अलि, धूम-धूम रमते हैं,
झुक-झुक मिलती हैं कलियाँ ।

भर उमड़ किलकतीं नदियाँ,
भर कर सरवर चढ़ आए,
रस से भर आम टपकते;
जामुन के यौवन छाए ।

हैं कूक-कूक कर केकी,
रति-रँगो पल्ल फैलाते,
मोरनियाँ मन-मन पीतीं
वे नाच सुधा बरसाते ।

मैं चढ़ी अटारी अपनी
आँखें जिस ओर घुमाती,
मङ्गल उस ओर विहँसता,
छवि सँग-रँग में मुसकाती ।

कुछ मधुर हाथ दुखता सा
मैं अङ्ग-अङ्ग में पाती,
है ऊब-ऊब जाने क्यों,
रह-रह अँगड़ाई आती ।

कुछ कसक-कसक उठता है,
मेरे इस प्यासे जी में,
जाने क्या सुख मिलता है,
चातक की उस 'पी-पी' में ॥

श्यामल घन भरे लरजते,
मन ललक-ललक रहता है,
कुछ बैठ याद करती हूँ,
कुछ खोया सा मिलता है !

हाँ सखि, क्या सच मैं हूँ वह,
जो 'विधवा' कहलाती है ?
जो कभी न फिर इस जग में
जीते जी सुख पाती है ?

रुचि से रँग-रँग निज साड़ी
घर में सब ओर पहिनती,
मैं कोरा कफ़न लपेटे,
जीवन की वदियाँ गिनती !

गीले इंधन से चूल्हा,
मैं सिसक-सिसक सुलगाती,
मैं कलझुल और कड़ाही —
से अपना भाग्य लड़ाती ।

रह-रह मुझ मरी हुई को
है सास नोच कर खाती,
फुफ़कार मार कर ननदें
हैं अपना ज़हर बुझाती !

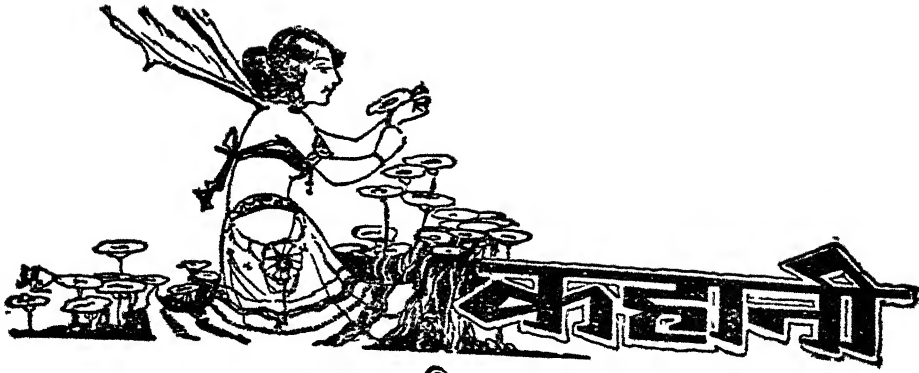
घर के कुत्ते से बच्चे
दिन-रात खेल करते हैं,
सखि ! पर मुझसे तो वे भी,
हा, दूर-दूर रहते हैं !

मेरे ईश्वर मैं क्या हूँ ?
कुछ समझ न हूँ मैं पाती,
क्यों हाथ मौत भी मुझको,
है छू-छू कर हट जाती !

फुझार रहे सावन-घन
सखि जलती है हरियाली,
तरुवर विकराल डराते,
डस रहीं लताएँ व्याली !

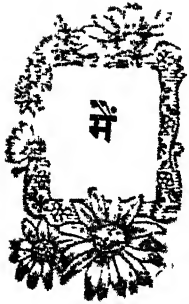
मुझको सखि हाथ, बचाओ,
विचिस हुई जाती हूँ,
मैं रो-रो बिलख अकेली
अब यहाँ थकी जाती हूँ ।





पाप की छाया

[श्री० वाचस्पति पाठक]



मे वर्षा के पहले दिनों में उसे देखा था। जिस दिन की चर्चा मैं करूँगा उस दिन दोपहर में खूब झकाझक वर्षा हुई थी। सम्पूर्ण उत्तम प्रकृति एक बार शीतल हो उठी। बादलों के छाए रहने से दूसरी जून के ४-२ बजे ही एक धूमिल प्रकाश शेष रहा। दीर्घ-कालीन गर्मी और धूप से हराया हुआ अस्तमन उस दिन जैसे अपनी उत्तेजना रोकना नहीं चाहता था। मैं जल्दी ही टहलने निकल पड़ा। यह तो मेरी रोज़ की भूख थी। किन्तु उस समय मैं एकान्त और खुला पथ नहीं पकड़ सका। जन-समुदाय की प्रसन्नता का उपभोग करने ही के लिए मैं जैसे शहर की ओर बढ़ आया। धूँ और गर्मी से डरने की भी ज़रूरत नहीं थी। बहुत दिनों पर जाकर उस चहल-पहल की दुनिया से कुछ रात ही लिए मैं लौट रहा था। रोज़ के साधारण समय से मुझे देर हो गई थी। फिर भी किसी प्रकार की चिन्ता अथवा अप्रसन्नता का भाव मन में नहीं आ पाया। मैं मौज में धीरे-धीरे चला आ रहा था।

कबूतरी की ओर शहर से जो सीधी और लम्बी सड़क चली आती है, उसके दोनों ओर घने वृक्षों की छाया है। झुसरोबाग की चहार-दीवारी से लगे हुए ऊँचे मुग़ल-कालीन फाटक अपने भीतर से इस सड़क

को निकाल देते हैं। दूमेरे फाटक से निकल कर मैं एक-दम शहर से जैसे बाहर आ गया था। इधर एकहरी और बिरलही बस्ती थी। उन छोटे घरों में से किसी ही किसी से चिमनीदार जालटेनों से फूट कर प्रकाश की एक छाया सामने आ जाती थी। सड़क की पटरियों के नीचे गड्ढों में जल भर रहा था। उनमें सुनहली किरणें लहरियों की गोट सी कलमला रही थीं। थोड़ी ही थोड़ी दूर पर पड़ने वाले ऐसे ही गड्ढों पर अपनी आँखें लगाए मैं बढ़ रहा था। इधर मैं स्वतन्त्र भी था। अब न वह चहल-पहल थी और न घोड़े-गाड़ी तथा सुन्दर मकानों की कतारें ही थीं। कहीं-कहीं पेड़ों के नीचे जो झोंपड़े माँद की तरह अपने को ढँके थे, वे इस अकेली रात में अपनी ही शून्यता में साँस ले रहे थे।

ऐसे ही एक झोंपड़े को पीछे छोड़ कर मैं बीस कदम भी न गया हूँगा कि एक बालिका पीछे से दौड़ कर मेरी बग़ल में आ खड़ी हुई। मैं उसे अच्छी तरह देख भी न पाया था कि उसने बहुत ही कोमल और धीमे स्वर में पूछा—बाबू जी, आप अपने चाकू पर शान दिलाइएगा?

मैं कुछ समझ न सका। मैंने पूछा—तुम क्या चाहती हो?

लड़की के सरल मुख की जिज्ञासा जैसे एक बार ही नष्ट हो गई। उसने धीरे से कहा—“कुछ नहीं।” और जैसे सझोच के कारण अपने को छिपा लेने के लिए ही वह जल्द मुड़ी।



किन्तु मैंने उसे पकड़ लिया और बोला—बतलाओ, क्या कहना चाहती थी? स्नेह से उसकी ठुड्डी पकड़ कर मैंने हिला दिया। पर वह कुछ ऐसी घबरा गई थी कि उसके मुँह से बात ही नहीं निकली। वह केवल अपना हाथ लुढ़ा लेना चाहती थी।

“पैसे लोगी?”—मैंने फिर सहायुभूति से पूछा।

“नहीं”—उसने हड़ता से उत्तर दिया—“आप कुछ काम कराना × × ×।”—उसने कुछ उत्साह से कहना चाहा था, पर फिर यकायक चुप हो गई।

“तुम कौन काम करोगी?”—मैंने कुछ अजीब उलझन में पढ़ कर पूछा।

“ओह × × × मेरे बाबा तो हैं”—उसने बड़ी चिन्ता के साथ कहा—“उन्हें आज कई दिनों से काम नहीं मिला है।”—कह कर वह फिर मेरी ओर एक बार विश्वासपूर्वक देखने लगी।

मैं असमंजस में पड़ गया था, किन्तु उस बालिका से तर्क न करके मैंने उससे पूछा—तुम्हारे बाबा कहाँ हैं? चलो!

मैं उसके सङ्ग चलने के लिए मुड़ पड़ा। वह मेरे आगे-आगे चल रही थी। चलते-चलते मैंने पूछा—तुम्हारे बाबा क्या करते हैं?

उसने तुरन्त उत्तर दिया—वही × × × वही तो सब चीज़ों पर शान चढ़ाते हैं। बाबा कारीगर हैं। वही तो कमा कर मुझे खिलाते हैं।

उसने ऐसी प्रौढ़ता से अपनी अन्तिम बात कही कि मैं हँस पड़ा। वह उसे सुन कर निश्चय ही अप्रतिभ हो गई होगी। इसी भय से अब मैंने उसके बाबा के पास पहुँच कर ही अपनी समझदारी पूरी करने का निश्चय किया। इसके लिए मुझे कुछ अधिक धैर्य की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह दस क्रदम भी आगे न गई होगी कि द्रुतगति से एक बिना जोड़ाई की ईंटों की खड़ी दीवारों की झोपड़ी में घुस पड़ी। मैं कुछ रुक कर बाहर ही खड़ा रह गया था। उसने धीरे से दो बार पुकारा—बाबा, बाबा! और कुतूहल भरी आँखों से मेरी ओर देखने लगी।

मुझे कुछ साहस सङ्कलित करने की आवश्यकता पड़ गई थी। ऐसा अब भी मैं अनुमान करता हूँ। क्योंकि मेरा लज्जालु और कभी न झुकने वाला

स्वभाव जैसे एक रहस्य में फँस रहा था। बालिका के उस कुतूहल-मिश्रित दृष्टि ने मुझे सहारा दिया। मैंने पूछा—तुम्हारे बाबा हैं? बालिका को उत्तर देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। एक जरठ मुँह के खोदों में विलीन तीक्ष्ण दृष्टियाँ पहिले ही प्रश्न कर बैठीं। मैं निरुत्तर न रह सका। पूछ बैठा—तुम कुछ काम कर सकते हो?

उसने एक क्षण तक अन्धकार में छिपे मेरे मुँह की ओर निहार कर, कड़ी पर ठण्डी आवाज़ में कहा—क्या काम है? इधर आइए, देख कर बता दूँगा।

मैं चुपचाप भीतर चला गया। मेरे पास कोई काम तो था नहीं। वह धारवाली चीज़ों पर शान चढ़ाता था। मैं वैसी कोई चीज़ लेकर कभी बाहर नहीं निकला करता। बुद्धि ही ऐसे सङ्कट के अवसर पर मनुष्य की रचा कर लेती है। मेरे भी मन के पकड़ में एक बात आ गई। मैंने उससे जाते ही पूछा—मेरे जूते की कीलें कुछ ढीली पड़ गई हैं। इन्हें पीट देने में तुम्हें कोई उज़्र तो न होगी?

उसने मेरी ओर देख कर इशारे ही से कहा—‘जूते को निकाल दो।’ उसकी मुद्रा गम्भीर थी।

मैं धीरे से जूते निकाल कर सामने बैठ गया। वस्तुतः उनकी कीलें निकली नहीं थीं। मैंने दोनों जूतों की कीलों की कतारों को दिखा कर कहा—ज़रा इन्हें ठीक कर दो!

अपने को इसी तरह बचा ले जाने के लिए मैं उसकी झोपड़ी में इधर-उधर देखने लगा। वहाँ था ही क्या? कुछ चीथड़े, पुवाल पर बिछा एक फिल्लिंगा और उसीके बगल में उसकी शान चढ़ाने की मशीन गड़ी हुई थी। दो-चार मिट्टी के बर्तन और रहे हों तो उनका मुझे स्मरण नहीं। हाँ, लकड़ी की सुरुचि के परिचायक दीवारों पर अक्षबारों के चित्रवाले लम्बे पन्ने ज़रूर टँग रहे थे। दो ही चार क्षण में उस स्थान पर मेरी नाक भर उठी। मिट्टी के तेल की डिबरी में जलती हुई रोशनी का धुँआ, उस झतरनाक गन्दगी में मिल कर वहाँ बैठना दूभर कर रहा था। मैं जैसे अपनी स्थिति के सङ्कट को समझते ही एकबारगी उठ कर खड़ा हो गया। तब तक बुद्ध ने भी दो-चार ठोकरें मार कर जूते को मेरे सामने रख दिया। मैंने उसे बिना



देखे ही अपने पैरों में डाल कर उसकी मजदूरी के लिए एक रुपया फेंक दिया। मेरे पास रुपए ही थे। मैं फिर भी सन्तोष के साथ उस पर एक नज़र डाल कर लौटना चाहता था।

बुढ़े ने कड़कती हुई आवाज़ में कहा—मेरे पास पैसे नहीं हैं।

“कोई हर्ज नहीं है”—उसे सान्त्वना देने के लिए मैं कहने लगा—“तुम इसे अपने पास रख लो। न होगा, मैं और भी काम तुमसे ले लूँगा।”

“मैं भीख न लूँगा बाबू, तुम अपना रुपया उठा लो।”—उसने मुझे दृढ़ता से उत्तर देकर रुपया मेरी ओर फेंक दिया।

इस उलझन से तो मैं और भी विस्मय में पड़ गया। कुछ कहने का साहस भी न हुआ और अब रुपया उठा लेना भी मेरे लिए कुछ कम ग्लानिप्रद न होता। मैं सकपका कर उस लड़की की ओर देखने लगा। उसने छूटते ही बड़ी सरलता से कहा—रख न लो बाबा! इन्हें फिर पैसे लौटा दिए जायेंगे।

बुढ़ा मुड़ कर बिस्तर की ओर बढ़ रहा था, उसने घूम कर एक तीक्ष्ण दृष्टि हम दोनों पर डाली। उसने जैसे ज़हर की घँट पी हो। उसका सम्पूर्ण मुख विकृत हो गया था। लड़की तो जैसे झुलस गई; मेरे लिए भी उस दृष्टि का सहना असम्भव था—“मैं तुमसे और भी काम करा लूँगा बुढ़े! यह भीख नहीं है।” कहता हुआ मैं धबरा कर बाहर निकल आया।

२

कुछ दूर तो वहाँ से दूर आने की जल्दी ही मैं तेज़ी से बढ़ आया, पर फिर अपनी स्वाभाविक गति में आते ही उस बुढ़े की कठोर मूर्ति सामने खड़ी हो गई। उसकी तेजस्विता ने मुझे जैसे श्रद्धा कर दिया था। पर यह कितना विद्रूप—अस्वाभाविकता से पूर्ण—उसका जीवन-दृश्य है। मन कटुता से बच न सका। सच्ची बात तो यही थी कि मन खीर उठा था। उपन्यासों तथा कथाओं में ऐसे आदर्श मैंने बहुत देखे-सुने हैं। किन्तु इस आदर्श का वस्तुतः जीवन में क्या मूल्य है? मैं तो ऐसे चरित्रों को आधुनिक नागरिकता से पूर्ण असात्विक आध्यात्मिकता का छल ही समझता

हूँ। और मुझे तो उससे विद्रोह करने का एक और भी कारण था। वह दरिद्र बुढ़ा उम छोटी और सरल बालिका को अपने इस आचरण से क्यों न दुख पहुँचाता होगा? मैं जो कुछ देख-सुन सका उससे अधिक जानने की चेष्टा, जो मेरे अप्रस्तुत रहने के कारण न हो सकी, इसका भी खेद अब मन को सताने लगा। अपनी मूर्खता से मैं स्वयं पीड़ित हो उठा। क्या मेरी बुद्धि इसका भी अवसर नहीं निकाल सकती थी? मैं उद्भिन्न और असन्तुष्ट घर लौट आया। उसे भूल जाने की कल्पना ही मुझे सन्तोष दे रही थी।

किन्तु वह हो न सका। यह घटना जो सम्पूर्ण रूप से निजी बन गई थी, वह भीतर ही भीतर खींचने लगी। सुलझाने के लिए उसकी इस कथा को कह कर मैं अपने घर अथवा मित्रों में उपहासास्पद भी बनना नहीं चाहता था। वह निरीह बालिका अपने बुढ़े बाप को काम देने के लिए जैसे चौबीस घंटे मेरे सामने आकर खड़ी रहती। ‘मैं भीख नहीं लेता’—बुढ़ा गर्जता रहता। मैं प्रायः उस पुकार पर दौड़ने लगा। घर की कितनी चीज़ें अपनी धार में चमकने लगीं। बुढ़ा फिर भी मेरे सामने अन्धकार ही बना रहा! उसकी दृष्टि की तीक्ष्णता ने बालिका को भी मेरे सामने कभी ऊर्जस्वित नहीं होने दिया। मैं जब कभी उधर जाता उससे कुछ काम करा लेता। बालिका कृतज्ञता से भर उठती थी। मेरा सन्तोष दूना हो जाता था। मैंने बुढ़े से कुछ अधिक जानने की चेष्टा नहीं की। मेरी रुचि उसकी कठोरता को समीप से परखने नहीं देना चाहती थी।

एक दिन मैं लौट रहा था। सन्ध्या की छाया दूर पड़ रही थी। कुछ जल्दी मैं बढ़ा आ रहा था। इतने में मेरे कानों में आवाज़ पड़ी—‘ओ बाबू जी!’ मैं जैसे होश में आ गया। जल्दी के कारण उस मोपड़ी की सुधि न रह गई थी। सामने देखा तो वही बुढ़ा मुझे बड़ी विकल दृष्टि से निहार रहा था। मैं आश्चर्य से भर उठा। बिलकुल उसके पास जाकर मैंने पूछा—क्या है भाई? आज रात में बाहर कैसे बैठे हो?

“तुम्हीं को देखने के लिए बैठा था बाबू!”—बुढ़े ने आँखों में आँसु भर कर कहा—“आज तीन दिन से अगोर रहा हूँ। अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा। तुम्हारे



दर्शन करना चाहता था।”—कह कर वह मेरे पैरों से लिपट जाने के लिए लोट पड़ा।

न जाने क्यों मेरा हृष्याकुल हृदय भर आया। मैंने उसे स्नेह से उठा कर कहा—“क्यों, तुम कहाँ जाओगे?” मैं स्वतः उसे लेकर झोपड़ी के भीतर बढ़ आया। उस बुढ़े ने ऐसी ही तरल आत्मीयता बहा दी थी। झोपड़े को खाली देख कर बुढ़े के पास बैठते हुए मैंने कहा—आज तुम्हारी लड़की कहाँ गई?

“उसको”—बुढ़े ने अपने को सँभालते हुए कहा—“उसके घर वालों को सहेज दिया। अब मैं खाली हो गया। उसका परसों ब्याह कर दिया। वह अपने घर चली गई। जिसकी चीज़ उसे सहेज दी, अच्छा किया न!”—कह कर उसने ठण्डी साँस भरी।

उसकी इस ग्रामीण विश्वास की बातों में हदता नहीं थी। वह जैसे बँधी लीक पर शिथिल होकर चल रहा था। मैंने उसकी हाँ में हाँ मिला कर कहा—अच्छा तो किया ही तुमने, इस बुढ़ाई में तुमने अपना अन्तिम काम भी पूरा कर दिया। अब क्या वहीं जाकर रहोगे?

बुढ़े को यह बात जैसे तीखी जान पड़ी, पर वह अपने भीतर ही कुछ ऐसा निर्वल-अशक्त हो उठा था कि उसने मेरी उपेक्षा करके उसी स्वर में कहा—“मैंने लड़की नहीं बेची है बाबू! पहिले ही से मेरा मुँह काला हो चुका है। अब इस अलकतरे पर कोई रज़ नहीं चढ़ेगा। मैं किसी दूसरे देश में रह लूँगा। तुमने न जाने कैसे जान या अनजान में मुझ पर दया दिखलाई थी, इसलिए एक बार तुमसे मिल लेना चाहता था। बस!”—कह कर बुढ़ा एकदम निर्लिप्त भाव से मौन होगया।

मुझसे जो अपराध हो गया था, उसमें अधिक छेड़ना उचित न था। मैंने झट उत्साह से भर कर कहा—“यह नहीं हो सकता? अब तुम मेरे यहाँ चल कर रहो। मैं बिलकुल निस्संकोच होकर कह रहा हूँ।” कह कर मैं जैसे चलने के लिए तैयार होगया था। तब भी बुढ़ा हिला तक नहीं। मैंने जो ध्यान से देखा तो उसकी आँखों से आँसू का प्रवाह चल रहा था। उसके कण्ठ में सिसकियाँ फँस रही थीं। मैं अवाक् रह गया।

उसने ही अपने गले को साफ़ करके कहा—“जो पाप मेरे भीतर फुफकार रहा है उसे लेकर भला मैं यहाँ कहाँ रह सकता हूँ? तुम तो आदमी नहीं देवता हो!

पर मुझ अभाग ने जिस दिन पहिले तुम्हें देखा था, उस दिन तो मैंने तुम्हें भी राक्षस ही समझा था। मुझे तो अनेक भेष में वही मिले थे। मैंने सारी दुनिया को वही समझा था। मुझे माफ़ कर दो बाबू। मैं सुख से चला जाऊँगा।”—कह कर उसने पैर पकड़ लिए।

मैंने देखा—एक सरल बुढ़ा! जिसके मुख पर कोई दुर्भाव नहीं। मैं चुप न रह सका। मैंने कहा—मैं क्या माफ़ कर दूँ? तुम सब भूल जाओ! इस दुनिया और उसके बखेड़ों को याद कर अब तुम्हें क्या करना है?

बुढ़े की आँखें चमक उठी थीं। उसने बहुत गम्भीर स्वर में कहा—“बाबू!” उसकी आँखें मेरी ओर गड़ी थीं—“आज दस साल हो गए। इन्ही दिनों में मैं जवान से बुढ़ा हो गया। मेरी बाँहों की ताकत पोपली खालें छोड़ कर चली गईं। इस निर्जीव शरीर में वह रामदास नहीं रह गया, जिसे प्यार करके ही मेरी पुतली की माँ ने अपना हृदय उसे सौंप दिया था। वह तो धुल-धुल कर मर गया। उसने बदला लेना नहीं चाहा था। उसके हाथ विरोध में नहीं उठे थे, नहीं तो वह भी उन्हीं राक्षसों की तरह × × × नहीं नहीं, उनकी क्या हस्ती थी, जो दुनिया को रौंद देने वाली पिशाच की शक्ति से वह जीता रहता। पर रामदास नहीं जीवित रहा। वह किस बल से विरोध करता? वह मर गया। बाबू, आज इसे दस वर्ष से उपर हो गए।”—कह कर वह मुझे बड़ी कातर-दृष्टि से देखने लगा।

मैं चुप निस्तब्ध था। उसने कहा—बाबू, मेरी पुतली की माँ सब छोड़ कर चली गई। अपने इस शव में आज भी रामदास उसके उस हृदय की याती को सँभाले हुए है। उसे इसकी याद होगी? न, वह भूल गई। वह भूल गई उस गाँव के मज़दूर को, जिसे उसने उसके सरदार की लड़की होकर भी खूबी रोटियों पर आँख भर देखने के लिए चली आई थी। जिसके शीतल बाहुओं की छाया में वह लता की तरह खिलती ही बढ़ती चली गई थी। जिसको उसने अपना बना लिया था। जो सबमुच उसका था।

बुढ़ा दरिया की भाँति उन्मुक्त बह रहा था। उसकी साँस लहरों की तरह उसे सिहरा रही थी। वह



दर्दभरी कलकल में तड़प रहा था—“बाबू ! पुतली उन दिनों साल भर की थी। मुझे इस नगर में आए दो-तीन ही साल बीते थे। मेरे काम की अच्छाई से मेरी दूकान में इन शहर वालों के आने की कमी न थी। उन सबने इस व्यापार की मण्डी में उसकी भी दूकान लगवा दी। अनजान में ही वह उसमें बिक गई। नक़ल करके कोई जीतता है बाबू !” उसने दृढ़ता से कहा—“देहात की लड़की, अपने को छोड़ कर उसकी गाँठ में क्या था ? उसने इस व्यापार की मण्डी में व्यापार की नक़ल की; हृदय को पाने वाली लड़की ने ! उन सबने उसे खूब ठगा ! उनके चमकदार कपड़ों की म्यान में ज़रूरी बातें वह न देख सकी और बने-ठने, तेल, इतरों से चुपड़े दूर से ही तस्वीर से बने उनके हृदय की सड़न वह क्या जान पाती ? उसे इन बाहरी चीज़ों की क्या आवश्यकता थी ? मैं सच कहता हूँ बाबू, वह इस सम्पूर्ण नगर के वैभव पर लात मार देती ! हज़ारों-लाखों स्त्रियाँ जो डूबती हैं, वे इन सबके लिए गले में रस्सी बाँध कर नदी में नहीं कूद पड़तीं। मरे जानवर के गोश्त का टुकड़ा इन आँख की अन्धी स्त्रियों के हाथ पर रख कर ये राक्षस कहते हैं—लो, यह मेरा हृदय है। इसे खो न देना। मैं मर जाऊँगा। दया की वे पुतलियाँ दौड़ जाती हैं।

“पुतली की माँ भी इसी तरह दौड़ पड़ी थी। सब ने उसके हाथ में ऐसे ही गोश्त का टुकड़ा रख कर हृदय देने का झूठ किया था। उनकी बातों में आकर ही उस ईमानदार लड़की ने अपनी जान दे दी। वह भूल गई। मैं अपना हृदय छोड़े जा रही हूँ। वह उस तीली दौड़ में अपनी प्यारी साल भर की पुतली को भी न देख सकी। उसके हृदय का घनी मैं विश्वास से आँखें बन्द किए पड़ा रहा ! बाबू, उस लड़की को वे राक्षस लूट ले गए।” कह कर बुढ़ा फूट-फूट कर रोने लगा। फिर भी वह अपने को रोक नहीं पाता था। वह कह रहा था—“वे उसे लेकर गले का हार बना सकेंगे ? उन्होंने देखा था, उसका जवानी में झलकता हुआ रूप और वह जैसे मदारी के खेल के पीछे बालक की तरह भटक कर दूर चली गई। यदि वह उसको समझते तो वे क्या कभी मुझसे या पुतली से छीन कर उसे सुखी करने के लिए ले जा पाते ? कभी नहीं। वे मनुष्य नहीं थे। बाबू, तभी से उस सब

को भूल कर इस भोपड़ी में उसकी पुतली को लेकर अपनी छाती में छिपाए रहा। कभी भी मैंने अपने हृदय का रस तीता नहीं होने दिया। नहीं तो वह दुधमुँही बच्ची माँ को छोड़ कर हृदय का मीठा पान कहाँ कर पाती ?” वह मुझसे करुण-स्वर में पूछ रहा था।

मैंने देखा कि वह आवेग के कारण डूबा जा रहा है। स्मृतियों की बाढ़ अपनी भँवर में उसे नीचे-ऊपर कर रही हैं। मैंने उसे रोक कर सच्चे दिल से कहा—“भाई, तुमने सरल हृदय से न्याय के साथ दोनों पलकों को तौल दिया है। इसके लिए अब कौन तुम्हारी ओर आँगुली उठा सकता है ?

उसने मुझे समझाने के स्वर में कहा—इस दुनिया को एक बड़ी खुशी मेरे ऐसे जन ही दे पाते हैं। ओह ! दस वर्ष ! इस भोपड़ी के अन्धकार में मैं उनकी दया के व्यङ्ग और मिजाप की जासूसी से बचा कर बड़ी कठिनता से बिता पाया हूँ ! बाबू, पुतली अब अपने घर गई। उसे जहाँ हृदय की शीतलता मिली, फिर मेरी क्या आवश्यकता रह जायगी ? इस दुनिया में मैं और किसी के किस काम की चीज़ हूँ। मनुष्य का जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ की वह सारी गन्दगी ढाँप कर बैठ रहता है। नहीं तो कितने मन्दिरों तक मैं फूल बदाने जाते हैं ? मुझे चले जाने दो बाबू ! एक बार किसी कोने में छिप कर खुले दिल से उसे पुकारूँ, जिसने मुझे इतना बख़्श देकर पार पहुँचा दिया है। हे भगवान ! उसने छाजन में आँखें गड़ा कर कहा—“दया करो !” उसकी पलकें अपने आप बन्द थीं।

मेरा मन करुणा से भीग न रहा हो, यह बात नहीं; किन्तु उस पहिले दिन की तरह आज भी वह मेरी रुचि के बाहर बहुत दूर जाकर विकृत हो रहा था। यह मनुष्य अपने हाथ से एक बन्धन तैयार कर पशु की तरह बँध जाता है। इसकी गति सदैव सीमित रह जाती है। आज भी जीवन के इस क्षण में जब इसे विश्राम की आवश्यकता है, एक असत्य कल्पना इसे बाँध रही है। मैंने कहा—ठीक है। तुम अपना सच्चा रास्ता स्वयम् पा लोगे। यदि तुम यहाँ रहोगे तो फिर भिल्लूंगा। अब छुट्टी दो। कह कर एक तीव्र नशे के झोंके में जैसे मैं उस भोपड़ी को अन्तिम बार देख कर चला आया।



३

उसकी भोपड़ी से बाहर आते ही मैं जैसे हलका पड़ गया। मैं समझता हूँ, इसके कारण मैं मेरी रुचि का एक कलुषित अंश हो सकता हूँ। समाज के ऐसे निम्न श्रेणी के लोग, जिनको अपने बुरे या भले दिन में किसी तरह से पेट भर लेना चाहिए, ये जब मेरी धारणा के प्रतिकूल किसी विशेष बुद्धि से आवृत दिखलाई पड़ते हैं, तो मैं जैसे उनकी मूर्खता से पागल हो जाता हूँ। मुझे उन पर विश्वास ही नहीं होता। ठीक यही बात इस बुढ़े के सम्बन्ध में भी आप समझ सकते हैं। प्रतिदिन अखबारों में कम से कम एक कॉलम का समाचार स्त्रियों के लुटने का रहा करता है। इस कदर्थित विषय को शुरू ही से छोड़ दिया जाय, तो क्या बुरा है? उपेक्षा एक निग्रह है, अखबार वाले इसे कभी न समझने देंगे! सो यह बुढ़ा अपने जीवन को एक काल्पनिक वेदना में डुबो कर इस भोपड़ी में थाती लिए बैठा रहा। इस दरिद्र और लघु मनुष्य को हटने अन्धकार में घुसने की क्या आवश्यकता थी। इस घटना को उसके व्यक्तित्व के साथ परखने का अवसर मिलने के कारण मेरा मन कुछ कम लुब्ध नहीं हुआ। उसकी जड़ता का प्रत्यक्ष ज्ञान होते ही मैंने समझा, यह मूर्ख है, और अपने मन को सहज विश्राम दे सकने में समर्थ हो गया!

अब तक उसे जो मैं जान-बूझ कर सहायता पहुँचाता रहा, वह उसकी वेदना का यथार्थ ज्ञान न होने ही का कारण था। जब तक मैं उसे ठीक से न जान सका था, उसके दुःशील मन का पारावार अकूल-अज्ञेय था। अब तो अपने ही भीतर तौल कर उसकी सीमा मैंने बाँध ली। जिस किसी अज्ञात कुलशील मनुष्य को स्मरण कर वह क्रोध से लाल हो जाता था, वह केवल मेरे सामने एक नाटक था। पुतली की माँ के हृदय पर विश्वास रख कर उसने कैसी कायरता की थी। दूसरों के लाञ्छित करने में उसका ही अपराध था। मुझे तो इसका भी विश्वास हो आया कि इसी ने उसकी लड़की को साथ न ले जाने दिया होगा। अपनी प्रतिहिंसा के लिए जो यह भी अस्त्र चाहता होगा। सुने प्रकाश में यह सब स्पष्ट थे। निर्द्वन्द्व भाव से अब इनसे वहीं अलग होकर मैंने अपनी राह पकड़ी!

वह सदैव मेरे विचार के दूसरे पहलू में रहा। उसको वहीं से देखा जा सकेगा। इसी सन् तैंतीस की बात है। प्रखर गर्मी के दिनों में महात्मा गाँधी ने अपनी आत्म-शुद्धि के लिए उपवास करने की घोषणा की थी। संयोगवश मेरे वे दिन काशी में बीते थे। आठ मई को बारह बजे दिन से उस महाव्रत का आरम्भ हुआ था। उस दिन का सम्पूर्ण क्षण जैसे बिजली पर नाचता हुआ अपने ही विस्तार में सब कुछ ले बीतता था। चारों ओर की व्यापक विकलता भीतर और बाहर आन्दोलित हो रही थी। तीन बजे के करीब मैं अपनी धर्मशाला के ऊपरी मञ्जिल के सायबान की रेलिङ्ग पकड़ कर सड़क की ओर देख रहा था। कहीं से कुछ आभास मिले, यही इष्ट था। तब तक किसी ने कहा, अखबार तो छप गया होगा। मुझे यह भी मालूम हुआ कि सात बजे शाम से पहले स्थानीय एजेण्टों को अखबार नहीं दिया जाता। इसलिए जिनको समाचार जानने की जल्दी होती है, वह पत्र को ऑफिस में ही जाकर खरीदते हैं। इस दयनीयता के कारण मुझे भी वहीं जाना पड़ा।

ऑफिस के फाटक पर पहुँच कर भीतर जाकर खरीदने में मुझे कुछ हिचकिचाहट होने लगी थी। मैं सोच रहा था कि कोई मुझसे ही आ जाय तो मैं अपना काम करा लूँ! फाटक पर एक बुढ़ा चपरासी दिवाल से लगा ऊँघ रहा था। मैंने दस-पाँच मिनट तक वैसे किसी आदमी के आने की प्रतीक्षा की थी; किन्तु जब किसी पर नज़र पड़ती दिखलाई न पड़ी, तब मैंने उसी के पास पहुँच कर धीरे से उसे पुकारा—“भाई!” उसने आँखें खोल दीं। मैं कह गया—“ज़रा तुम मुझे अखबार ला दोगे?” उसके उत्तर की बाट न जोह कर मैंने पत्र का मूल्य भी उसकी ओर बढ़ा दिया। वह आँख मलता हुआ अपनी झुकी हुई रीढ़ को ऊँची किए भीतर चला गया।

बुढ़े ने अखबार देते हुए मुझे गौर से देखा। एका-एक उसके होठों पर कुछ प्रसन्नता की रेखा भी झलकी और उसने पूछा—बाबू, आप यहाँ कहाँ?

“यहीं धर्मशाले में”—कहता मैं मुड़ चला। केवल हटने उपकार के लिए कृतज्ञता से भर कर परिचय बढ़ाना आज के वातावरण में जँचता ही नहीं।



बुढ़े ने जल्दी में कहा—“बाबू, एक मिनट ठहर जाइए। मैं भी आपके साथ ही चलता हूँ।”—कहता हुआ वह लपक कर भीतर चला गया।

मैं उसके व्यवहार के कारण को समझ न सका। इसलिए रुकना दण्ड जान पड़ता था। पर मैं जा भी न सका। खड़े-खड़े अग्न्यार देख रहा था। तब तक वह आ गया। उसने कहा—चलिए बाबू जी! मैं उसकी ओर देख कर फिर अग्न्यार पर ही इष्टि देकर बढ़ने लगा। मन में उसको भी सोच रहा था। यही सोच कर उसने स्वयं ही पूछा—आपने मुझे पहचाना बाबू जी!

“नहीं भाई!”—साधारण सा उत्तर देकर मैंने उसे फिर देखा।

“वही तो, मैं हूँ पुतली का बाप—शान चढ़ाने वाला।”—वह मेरे पीछे-पीछे हँसता हुआ बतलाता आ रहा था—“मेरी और उसकी सहायता कर जाते थे।”

“ठीक है”—मैंने उसे पहचान कर कहा—“तुम यहाँ आकर नौकरी कर रहे हो? अच्छा है, विश्वनाथ के दर्शन भी हो जाते होंगे।”

“उन्हीं की शरण में आकर × × ×” रुक कर वह मेरी ओर देखने लगा। फिर जैसे बहुत बड़े सक्कोच को तोड़ कर उसने कहा—“तो मैं फिर से जैसे जी पाया हूँ। बाबू, उन्होंने पुतली की माँ को मुझे लौटा दिया। ओह × × उन्हीं की दया थी। नहीं तो क्या वह आज इस दुनिया में जीवित रहती? वह मर रही थी। उन सबने उसे क्या वैसे ही छोड़ा था। बाबू जी, उसने अपने जीवन की आग में जितनों को परखा वे सब गल कर वह गए। वह उसी तरलता में निष्प्रभ होकर जीवन शेष कर रही थी। तभी मैं इनकी दया से वहाँ पहुँच गया।”

बुढ़े के कठोर और निर्जीव शरीर में जो एक सजीव सरलता आज देखने को मिली थी, वह कम उल्साह की वस्तु नहीं और उसकी निर्लज्जता अपनी सीमा को तोड़ कर जो भहरा पड़ी थी वह सभ्यता के पार थी। उसकी बात सुनने के लिए मैं केवल ‘हूँ’ करके शीर्षक भी देखता जाता था। वह उस दिन के सम्पूर्ण चित्र को उपस्थित कर देने के लिए विस्तार से बता रहा था—“वह एक गली में लथपथ पड़ी थी; न जाने कब से बीमार रहते जरी-मरी। उसका तन काला पड़ गया था और वह भी उसके चीथड़ों सा जीर्ण। उसके चेहरे पर सचमुच

मिट्टी की तह थी। मैं तीन दिन से बाबू उस गली में आते-जाते उसे देख रहा था। तीसरे दिन रुक कर पास की छ़ाया में अपने को ठण्डा कर रहा था। वह रह-रह कर तड़फड़ा रही थी।

“मुझसे रहा न गया। मैंने पास जाकर उससे पूछा—क्या हुआ है तुम्हें?”

“वह रोने लगी। तुम लौटा दो, लौटा दो। यही सुन पड़ता था। मैं मरूँगी तो क्या हुआ, उसे मेरे पास दे दो।”

“और का सच्चा रुदन उसकी आँखों से फूट कर बह रहा था। मैंने पानी दिया, उठा कर साक जगह में लिटाया और सोच रहा था कि क्या उपाय करें कि तब तक वहीं पास के घर की एक बालिका ने बतलाया—अरे यह तो पगली है। इसके पास एक बहुत छोटी लड़की थी। उसे अनाथालय में भेज दिया गया है। यह कहाँ जाती ही नहीं और न देने पर दवा या और कुछ खाती ही है! लड़की भी मर जाती। अब यह पड़े-पड़े उसके ही लिए रोया करती है। बाबू, वह सचमुच पगली नहीं थी। मैंने देखा कि ज़रा सा आराम पाते ही वह जैसे प्राण पाने लगी है। दो दिन बाद ही वह मुझे भी पहचान गई। मैंने उसकी लज्जा में अपने को देख लिया। मैं तो छिप जाना चाहता था, पर उसने मुझे पकड़ कर कहा—मेरे पाप की बेटी लौटा दो! उसे मुझसे मत छीनो। मुझे किसी की ज़रूरत नहीं—तुम्हारी भी नहीं।”

“उसकी लड़की उसकी गोद में फिर से आगई। वह उसमें अपने को छिपा कर जिस सक्कोच से मुझसे दूर हटना चाहती थी, वह उसके साहस का अम था। मैं उसे न छोड़ सका। हम दोनों मिल कर जीवन में एक डोर पकड़ कर बढ़ने के लिए फिर से चल पड़े। वह छोटी सी एक दूकान कर रही है। और मैं—मुझे तो देख ही चुके हैं। मेरी वह पुतली—मैं इस नई बच्ची को भी पुतली ही कहता हूँ—मेरे कन्धों पर फिर आकर झूलती है। और उसकी वही माँ आज मेरे साथ है।” कह कर बुढ़ा ज़ोरों से हँस पड़ा—“अब मैं जब भी मरूँगा सुख से मरूँगा बाबू! इस सुख से मरना भी बुरा नहीं है। यहाँ मेरी गति अब चारों ओर से बन जायगी।”—कह कर वह चुप हो गया।



“ज़रूर तेरी गति बन जायगी बुढ़े !”—यह कह कर मैं मुसकुरा पड़ा। उसने जैसे मेरा व्यङ्ग्य समझ लिया हो। वह फिर पहले सा ही कठोर, पर धूमिल हो उठा। मैं भी इतनी देर में एक बात और, वह भी इतनी खुलाई से कह कर पड़ताने लगा। इस बात को बनाने ही के लिए मैंने कहा—तुम उसे पाकर सुखी हो, इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

“बाबू, तुम लोगों की प्रसन्नता बड़े भाग्य से मिलती है। उतना भाग्य न भी हो तो क्या ? मैं गरीब आदमी हूँ। इस बुढ़ापे में मुझे जो सच्चा सहारा इस पुरी में पूर्व-पुण्य की भाँति मिला है, मैं उसके लिए ही भीख माँगने जैसे इनकी शरण में आया था। तुम

सोचते होगे, उस बदज़ात औरत को, जो घर से निकल कर कितने घर अपना मुँह काला कर चुकी थी; पर तुम यदि आज उसके हृदय को देखते तो ओह—मैं क्या कहूँ। वह निर्मल, जैसे गङ्गा की धारा की तरह बहुत दिनों पर मुझे पाकर एक होगई है। मैं उस पुतली की माँ को नहीं, आज की पुतली की माँ को पाकर धन्य हूँ।”

वह लौट गया। मैं सङ्कोच के कारण उस पुतली के लिए कुछ भी न पूछ सका। मैं तो सोच रहा था कि यह एक कठोर सत्य है अथवा पाप की द्वाया !

मैं उसी दिन शाम की गाड़ी से घर लौट पड़ा था।



महत्वाकांक्षी से—

[श्री० कविराज उमेशचन्द्र देव]

अरे उच्चता के पथगामी,
जिसको रजत मान जाता है यह हरियाली त्याग,
वहाँ शिशिर की जलती रहती निशि दिन शीतल आग
न उगने पाते तरु सुखमूल,
न फलते फल न फूलते फूल !

जहाँ मान कर इति आतप की
तू जाता अविराम,
कभी किसी ने भी पाया है
वहाँ पहुँच विश्राम ?

उँचाई का वह ऊँचा नाप,
नापता है उर का उत्ताप,
पहुँचते हैं न वहाँ पर पाप,
अकराणों के अति करुण विलाप !

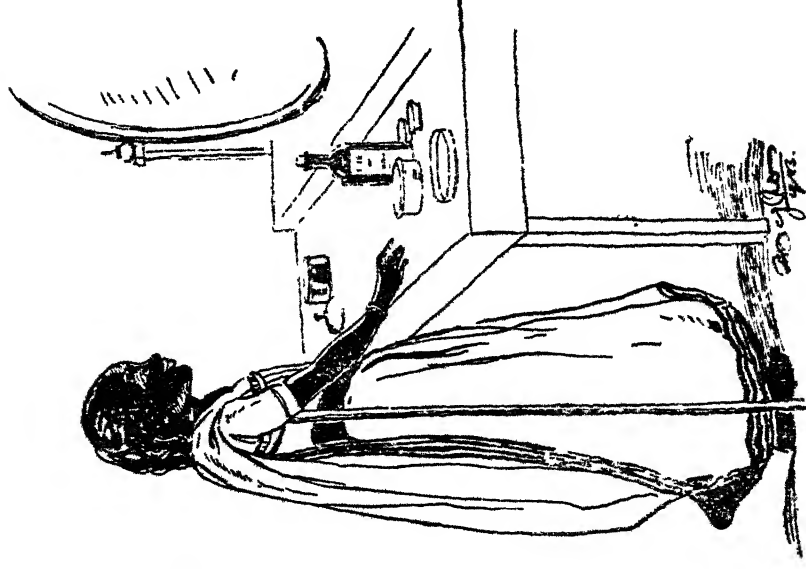
बस, नीरस श्वेतता दिखाई देती है भरपूर,
अपने से होते जाते हैं और—और भी दूर !
यदि जीवन की यही सफलता होती, हे अभिराम !
तो क्यों उतर-उतर कर तरते ये प्रपात धनश्याम ?

पांसु धानों को देते प्राण
पापियों का करते कल्याण,
मान कर उनको स्वात्म समान
ललक कर मिलते दीन-किसान ?

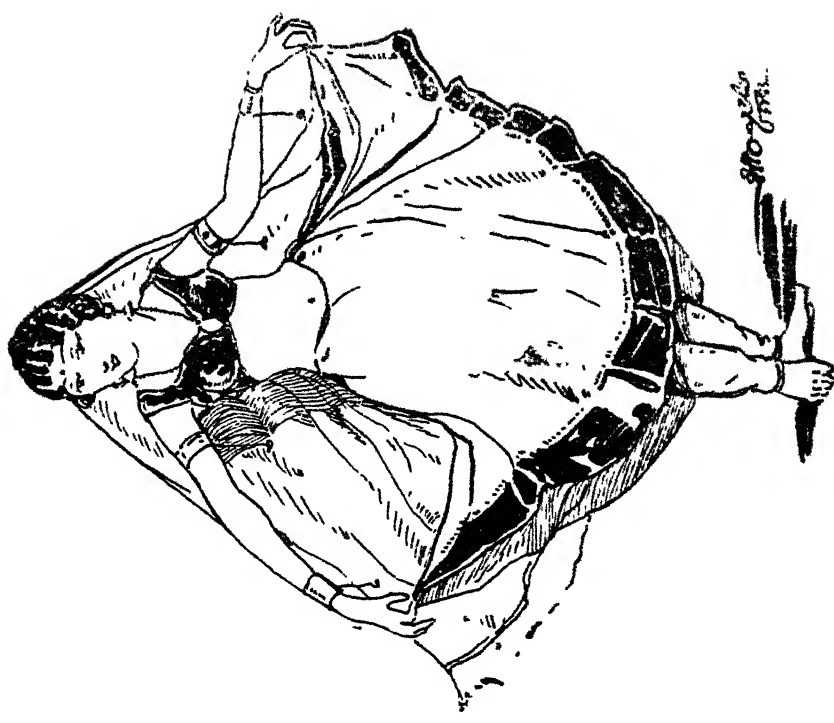
एक बार उर पर कर धर कर लीजिए विचार,
पद-ग्रहार पङ्कार गिरा कर ही सम्भव सत्कार,
विसर्जन कर यह पङ्क-पगार,
उमालय में रभिए सरकार !



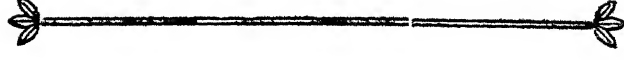
“नाम बड़े और दर्शन थोड़े !”



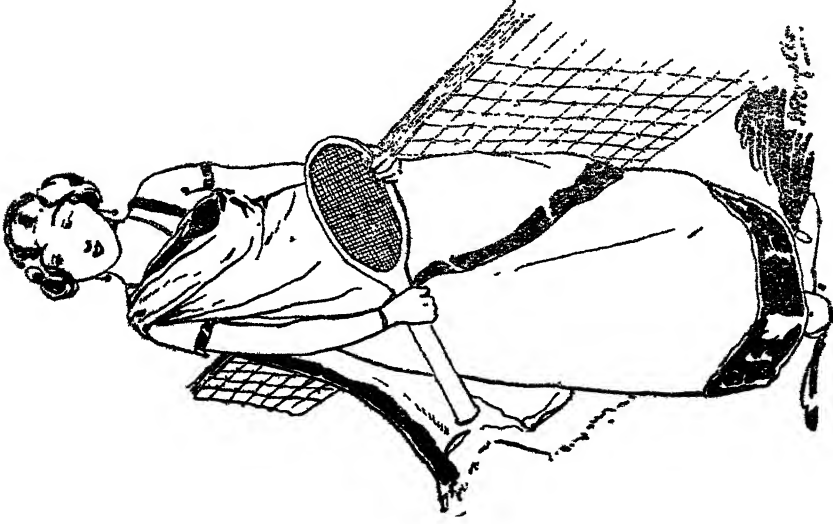
रूपकेशोरी !



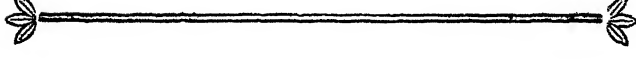
सावित्री !



“नाम बड़े और दर्शन थोड़े !”

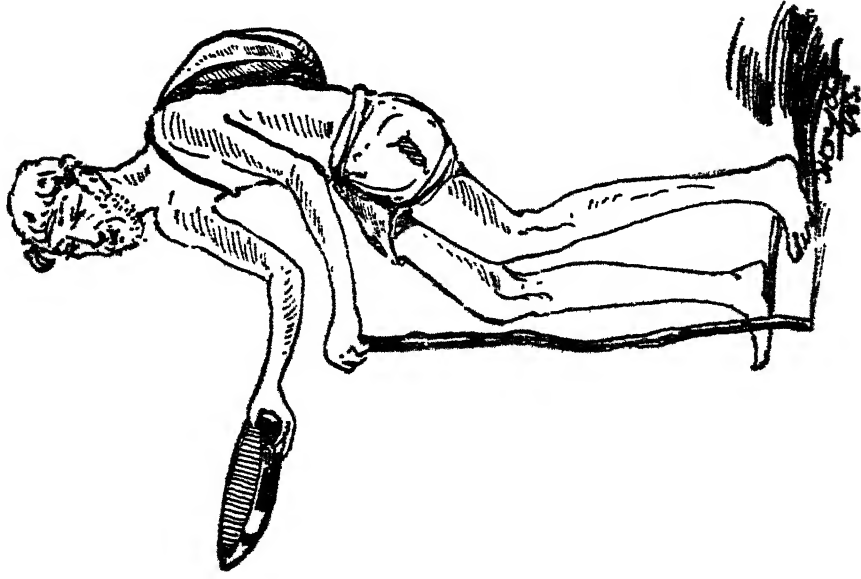


बज्जावती !

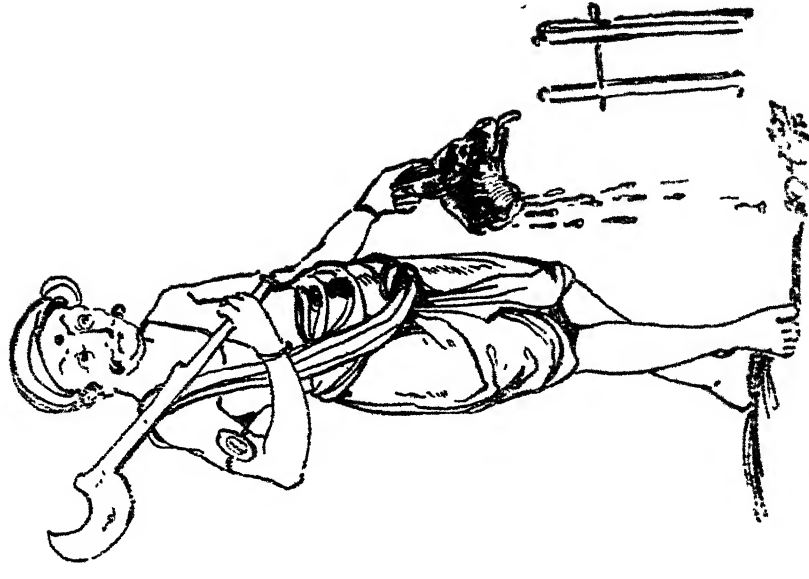


कुसुम लतिका !

“नाम बड़े और दर्शन थोड़े।”

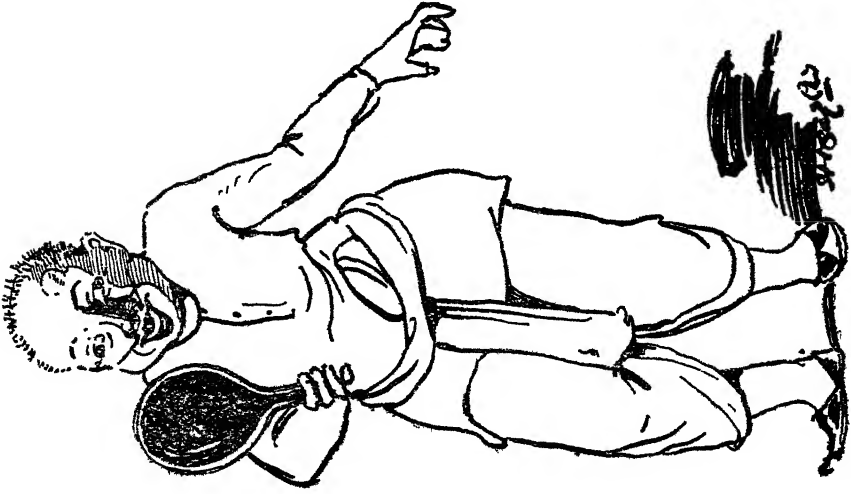


धनीराम !

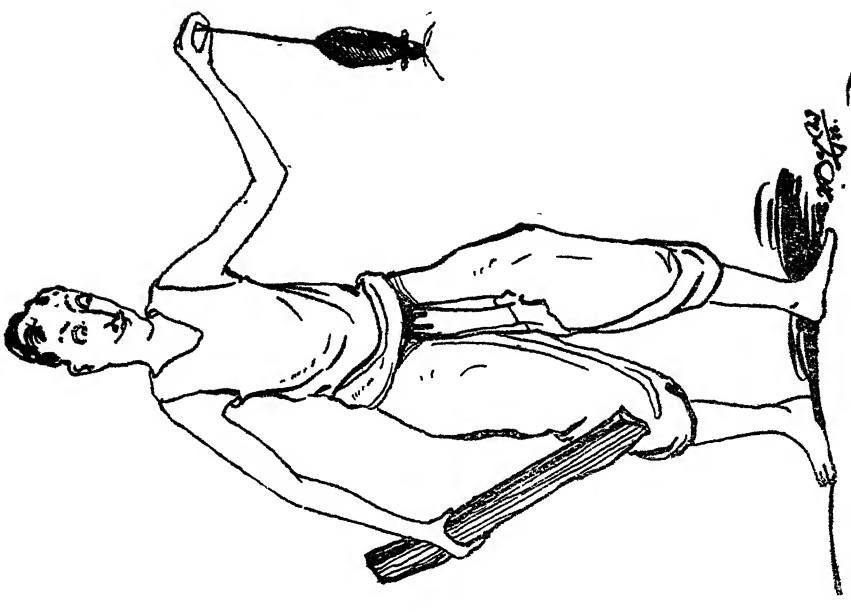


देयाराम !

“नाम बड़े और दर्शन थोड़े !”



सुन्दरलाल !



वीरबहादुर सिंह !

हरिजन आन्दोलन की कार्य-पद्धति

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', वी० ए०]

शिक्षा



चा केवल अक्षर-ज्ञान का ही नाम नहीं है। शिक्षा वास्तव में वही कहला सकती है, जिसमें आत्मिक, मानसिक और शारीरिक सुधार हो। 'हरिजनों' में उच्च शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। हर्ष की बात है कि 'हरिजन-सेवक-सङ्घ' ने 'डेविड स्क्रीम' को स्वीकार कर उच्च शिक्षा की ओर ध्यान दिया है। 'डेविड स्क्रीम' का उद्देश्य है, हरिजन छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उपयोगी और सुविधाजनक साधन प्रदान करना। उच्च वर्ण के धनवान हिन्दुओं से यह आशा की गई है कि उनमें से प्रत्येक एक 'हरिजन' छात्र की, पाँच वर्ष तक, शिक्षा का भार लेना स्वीकार करेगा। वार्षिक व्यय एक छात्र के लिए (५००) होगा और पाँच वर्ष के लिए (२५००)। परन्तु यह धन छात्र को दान के रूप में नहीं दिया जायगा। उसका रूप ऋण होगा और यह शर्त रखी जायगी कि वह उस रूप को अदा कर दे। यह आयोजना उच्च शिक्षा के लिए उत्कृष्ट है और दानवीरों का कर्तव्य है कि वे मुक्त हस्त हो अपने धन का सदुपयोग करें। ज्योंही शिक्षा का प्रचार और प्रसार होगा और योग्य व्यक्ति इस समाज में पैदा होंगे, वैसे ही इसकी अस्पृश्यता भी दूर हो जायगी। अस्पृश्यता का राक्षस तो अज्ञान के अन्धकार में ही जीवन का उपभोग करता है। जैसे ही विद्या का प्रकाश होगा, वह भी नष्ट हो जाएगा। इस योजना के अनुसार अल्प काल में ही वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर और डॉक्टर तैयार हो जाएँगे।

परन्तु शिक्षा के विषय में एक बात अत्यन्त विचार करने योग्य है। हम सब प्रकार की पृथक्ता के विरोधी

हैं। क्योंकि इस पृथक्ता के कारण ही अस्पृश्यता का संक्रामक रोग फैलता है। शिक्षा के क्षेत्र में तो पृथक्ता और भी भयानक है। 'हरिजन पाठशाला' 'हरिजन छात्रवृत्ति' का अर्थ अस्पृश्यता मानना है। हमारी राय में पृथक् छात्रवृत्ति और पृथक् स्कूल अनावश्यक हैं। इनसे 'हरिजन' हिन्दू-समाज में मित्र नहीं सकते; क्योंकि इनसे उनकी भावना पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा। 'हरिजन-सेवक-सङ्घ' के मुखपत्रों में पृथक् हरिजन पाठशाला, पृथक् हरिजन छात्रवृत्ति, पृथक् मन्दिर, पृथक् कुर्छे इत्यादि के समाचार प्रति मसाह पढ़ने को मिलते हैं। यह बड़ा दुःखद प्रसङ्ग है। क्या इस पृथक्ता को सुरक्षित रख कर अस्पृश्यता निवारण हो सकती है? क्या महात्मा जी हमें न्याय और अपनी नीति के अनुकूल समझते हैं कि हरिजनों के लिए पृथक् स्कूल और छात्रवृत्ति दोनों चाहिए। हम इस पृथक्तावाद की घोर निन्दा करते हैं और आशा करते हैं कि 'हरिजन-सेवक-सङ्घ' इस विषय में अपनी नीति में परिवर्तन करेगा। हरिजनों—केवल हरिजनों के लिए कोई पाठशाला न खोली जाय और न उनके लिए 'हरिजन' होने के कारण छात्रवृत्ति दी जाय। छात्रवृत्ति तो छात्र होने के नाते ही दी जानी चाहिए।

इसी पृथक्ता की बुरी प्रवृत्ति से दुःखित होकर महात्मा गाँधी जी के एक सहयोगी एवं प्रतिष्ठित मित्र ने अपना एक पत्र अङ्गरेजी 'हरिजन' पत्र में प्रकाशित कराया है, जो वास्तव में कार्यकर्ताओं के लिए चेतावनी है। हम उस पत्र का अनुवाद यहाँ देते हैं।

“जो कुछ आप तथा नेता लोग कह रहे हैं, उससे मैं आश्चर्यान्वित हूँ। यह भेद-भाव की प्रवृत्ति अधिक बढ़ती जा रही है—पृथक् पाठशाला, पृथक् छात्रवृत्ति और हर एक अलग वस्तु—और आप (महात्मा गाँधी)



इन बातों में प्रसन्नता अनुभव करते हुए प्रतीत होते हैं। उनसे मुझे बड़ा दुःख है। हरिजन अब पाँच करोड़ से दस करोड़ बन जावेंगे। कुछ नामधारी साधु और संन्यासी उनके धर्माभ्युच्च और पुरोहित बन जावेंगे और एक-दो शताब्दियों के उपरान्त एक नवीन मत की स्थापना हो जाएगी। आपकी स्मृति में प्रतिमाएँ स्थापित की जावेंगी। आप उस मत के प्रवर्तक माने जावेंगे। आपके विषय में यह कहा जायगा कि आपने हरिजनों को हिन्दुओं से अलग कर दिया। जिस पद्धति से कार्य हो रहा है, ऐसा प्रतीत होता है, मानों आप उन्हें यह अनुभव करने का अवसर दे रहे हैं कि वे हिन्दुओं से अलग हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि हिन्दुओं से अलग हो जाने में उनका हित है। आपने डॉक्टर आम्बेडकर और रावबहादुर श्रीनिवासन का पथ प्रशस्त कर दिया है। वे हिन्दुओं में कभी नहीं मिलेंगे। अपितु यह आवाज़ गूँजेगी—‘अछूत चिरजीवी हों।’ ‘हरिजन चिरजीवी हों।’ × × ×

‘मैंने यह सब कुछ बिना सोचे-विचारे नहीं कहा है। बल्कि जो कुछ मैं अपने आस-पास घटित देख रहा हूँ, उससे मुझे दुःख होता है। आप एक जाल में फँस गए हैं और अगर साहस करके उसमें से नहीं निकले तो आप उस कार्य को बड़ा आघात पहुँचाएँगे। जिसके लिए आप अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए तत्पर थे। × × × आपने उनकी रक्षा करने के बजाय उन्हें मोहक नाम देकर पृथक् कर दिया है। ऐसे लोभ से वे हिन्दुओं में नहीं मिलेंगे। स्वार्थ-परायण उपदेशक एक नवीन मत, एक नवीन धर्म, एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना करेंगे और आप उनके साधन × × ×।’

यह पत्र महात्मा गाँजी जी को ‘उनके प्रतिष्ठित मित्र’ ने लिखा है। इसमें प्रत्येक शब्द सत्य है और हरिजन आन्दोलन का समाजोच्चक इस पत्र की सत्यता को स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता। पत्र में एक अनुभवी कार्यकर्ता के सच्चे भाव हैं—वे केवल भावुक हृदय के उद्गार नहीं हैं। परन्तु खेद है कि महात्मा जी ने अपनी भावुकता के आवेश में इस पत्र के मूल भाव पर ध्यान न देकर अपने हृदय के उद्गारों को प्रगट करना ही अपनी टिप्पणी का उद्देश्य बनाया है। आप अपनी टिप्पणी में लिखते हैं :—

“यदि अछूत हिन्दुओं में नहीं मिलेंगे तो इसका उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं होगा। इसका दायित्व उन हिन्दुओं पर होगा, जो इसका विरोध करते हैं। × × × मैंने अस्पृश्यता के विरुद्ध केवल मात्र क्रान्ति का झण्डा ही नहीं उठाया है; बल्कि मैं तो लगातार यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि मैं स्वातन्त्र्य-यज्ञ में अपने प्राणों की हवि दे दूँ—मुझे यह स्पष्ट भासित होता है कि अस्पृश्यता का निवारण हो गया और अछूत अब सदैव के लिए दास न रहेंगे।”*

पूज्यास्पद महात्मा जी की दिव्य दृष्टि में तो अब ‘अस्पृश्यता का निवारण’ हो गया। परन्तु लोक-दृष्टि में अभी अस्पृश्यता पहले के समान ही भयङ्कर रूप में है। समाचार-पत्र-संसार से अलग होकर आप ‘हरिजनों’ की स्थिति का व्यक्तिगत निरीक्षण करिए, तो आपको हमारे कथन की सत्यता में विश्वास होगा। सम्बाद-पत्र आपको यथार्थ स्थिति का परिज्ञान नहीं करा सकते। क्योंकि इनमें केवल प्रदर्शन होता है। तिल का ताड़ बनाना सम्बाद-पत्र के जगत में सम्भव है। स्वार्थ-परायण कार्यकर्ता तथा यशोलिप्ता में उन्मत्त सुधारक नामधारी नेता अतिरञ्जित समाचार छपवाना प्रोपे-गेण्डा (प्रचार) की दृष्टि से उत्तम समझते हैं। अभी भारत के ग्रामों में हरिजन आन्दोलन का नाम भी नहीं है। भारत की सबसे अधिक आबादी ग्रामों में है। इसलिए आधी से अधिक हरिजनों की आबादी आन्दोलन से बिलकुल अपरिचित है। नगरों में भी यह देखा जाता है कि दो-चार बस्तियों में दो-चार व्याख्यान दे देना ही प्रचारक अपना कर्तव्य मान बैठे हैं। आगरा नगर में हरिजनों की आबादी ५० हजार से कहीं अधिक है। सैकड़ों बस्तियों में हरिजन निवास करते हैं। अभी विगत ‘हरिजन-दिवस’ के दिन केवल तीन बस्तियों—नौबस्ता, माटोला और जीवनीमण्डी में प्रचारक और सुधारक लोग अपना सन्देश सुनाने गए। यह है एक आगरा जैसे प्रमुख नगर के कार्यकर्ताओं की स्थिति और कार्य-प्रणाली। पाठक इस एक ही उदाहरण से आन्दोलन की प्रगति का अनुमान कर सकते हैं।

* ‘Harijan’ April 22, 1933—A Friend’s Warning—By M. K. Gandhi.



सहयोग

हमारा विश्वास है कि 'हरिजन आन्दोलन' बिना 'हरिजनों' के सहयोग के सफल नहीं हो सकता। सहयोग से मेरा अभिप्राय यह है कि 'हरिजन-सेवक-सङ्घ' में हरिजन कार्यकर्ताओं का समावेश हो। उन्हें अपनी बुराइयाँ और कमज़ोरियाँ दूर करने के लिए सुयोग दिया जाय। जहाँ तक हम जानते हैं, इन 'सेवक सङ्घों' में प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्त के अनुसार कार्य नहीं हो रहा है। इनमें 'हरिजन' प्रतिनिधियों की संख्या अत्यन्त न्यून तथा नाममात्र है। इनकी कार्यकारिणी समितियों में भी योग्य और अनुभवी हरिजन कार्यकर्ता नहीं हैं। प्रत्येक ज़िले में योग्य हरिजन नेता मिल सकते हैं। जहाँ नहीं मिल सकते वहाँ, सुधारकों का कर्तव्य है कि वे ऐसे नेता तैयार करें।

इस सम्बन्ध में महात्मा जी का यह मन्तव्य ग्राह्य नहीं हो सकता कि अस्पृश्यता का पाप उच्च जातियों ने किया है, इसलिए केवल वही इसे दूर करें। हम यह मानते हैं और विश्व भी यह मानता है कि उच्च वर्ण-भिमानीयों ने यह पाप किया है, वही इसका अनुताप करें। परन्तु वे इसमें किसी का सहयोग न लें, इसे हम नहीं मान सकते।

क्योंकि हमने यह प्रत्यक्ष देखा है कि अस्पृश्यता-निवारण के लिए महात्मा जी ने स्वयं ब्रिटिश सरकार से सहयोग किया; व्यवस्थापक-परिषद् से सहयोग कर 'अस्पृश्यता-निवारक क़ानून' बनवाने का प्रयास किया। तब उनका सहयोग प्राप्त क्यों न किया जाय, जिनका आप सुधार करना चाहते हैं।

हरिजनों के सहयोग से अनेक लाभ हैं। हानि कोई भी नहीं है। सहयोग से कार्य उत्तम ढङ्ग से होगा और शीघ्र भी हो जायगा। इससे उच्च-वर्गीय हिन्दुओं और हरिजनों में स्नेहपूर्ण तथा सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध बना रहेगा। आन्दोलन के मार्ग में 'हरिजनों' की ओर से जो रुकावटें हैं वे दूर हो जायँगी। विचारों के आदान-प्रदान से, विचार-विनिमय से आन्तरिक भाव प्रगट होंगे, जिससे इस समस्या के सुलझाने में विशेष सुविधा होगी। जो वैतनिक कर्मचारी कार्यालय में रक्खे जाते हैं, जो वैतनिक प्रचारक 'सङ्घों' में रक्खे

जाते हैं, उनके स्थान में 'हरिजनों' को ही रक्खा जाय। ऐसी व्यवस्था से उन्हें आर्थिक लाभ भी होगा।

सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह

महात्मा गाँधी ने अनेक बार यह लिखा है कि सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह का वर्तमान 'हरिजन आन्दोलन' से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि ये दोनों विषय व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर हैं। धर्म की इस विषय में कोई व्यवस्था नहीं है!

सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह इन दोनों संस्थाओं पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि सहभोज और अस्पृश्यता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जातिवाद या अस्पृश्यता की भावना में उच्चता और नीचता के भाव हैं। अब यह देखना है कि यह उच्चता और नीचता की भावना कब, क्यों और किस अवसर पर प्रादुर्भूत होती है। हम एक उदाहरण से अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हैं:—

कल्पना कीजिए, प्रताप नामक एक संस्कृत, विद्वान तथा स्वस्थ पुरुष शिवशङ्कर नामक एक ब्राह्मण देवता के साथ यात्रा कर रहा है। पहला किसी विरवविद्यालय का स्वान्तक है और दूसरा किसी होस्टल का 'रसोइया'। देखने में प्रताप अपनी वेष-भूषा आदि से क्षत्रिय-सा लगता है; परन्तु दुर्भाग्य से उसका जन्म Suppressed Hindus में हुआ है। दोनों घण्टों तक रेलगाड़ी में एक ही स्थान पर बैठे बड़े प्रेम से वार्तालाप कर रहे हैं। थोड़ी देर उपरान्त शिवशङ्कर को प्यास लगती है। स्टेशन बहुत दूर है। गरमी बहुत अधिक है। अब शिवशङ्कर के सामने बड़ी कठिन समस्या है। हाँ, तो क्या वह प्रताप से यह कहेगा कि मुझे पानी दिया जाय। प्रताप के पास शीतल सुराही में बड़ा ठण्डा जल है। परन्तु उसका साहस नहीं होता। इसलिए वह प्रताप से पानी की याचना करने के बजाय प्रश्न करता है—“आप किस वर्ण में हैं?” इस प्रश्न का उत्तर यदि यह दिया जाय कि प्रताप द्विज-वर्ण में नहीं है, तो अस्पृश्यता अपने राक्षसी रूप को लेकर आ जाती है। यदि प्रताप ऐसा उत्तर नहीं देता तो शिवशङ्कर बिना किसी सङ्कोच के जल ग्रहण कर लेगा।



इस उदाहरण से हम यह बतलाना चाहते हैं कि अस्पृश्यता भोजन और जलपान में है। जब तक भोजन और जलपान का प्रश्न उपस्थित नहीं होता, तब तक एक मेहतर एक महामहोपाध्याय की बगल में बैठ कर यात्रा कर सकता है। महामहोपाध्याय को, विना पूछे, यह ज्ञान भी नहीं हो सकता कि उसके समीप कौन बैठा है? क्योंकि यह उसके मस्तक पर लिखा तो नहीं है।

जिस उदाहरण की हमने कल्पना की है, वह कल्पित होते हुए भी यथार्थ है। क्योंकि ऐसी घटनाएँ नित्य-प्रति देखने में आती हैं। इससे यह सारांश निकलता है कि अस्पृश्यता और भोजन का वनिष्ठ सम्पर्क है। केवल सभा-सम्मेलनों में 'हरिजनों' को गले लगाने से अछूतपन दूर नहीं हो सकता। यदि 'हरिजन' का स्पर्श दोष-रहित है, तो फिर वह किसी भी पदार्थ का स्पर्श करे, वह पदार्थ दूषित नहीं माना जा सकता। यदि आपका शरीर, आपके वस्त्र इत्यादि उसके स्पर्श से दूषित नहीं होते, तब आपका भोजन कैसे दूषित हो सकता है? यदि ऐसी स्थिति में भोजन में दोष माना गया, तो अस्पृश्यता का नाश कहाँ हुआ? जब तक 'हरिजन' के हाथ से स्पर्श किया हुआ भोज्य पदार्थ दूषित माना जायगा और जब तक हरिजन का हृदय यह विश्वास करता रहेगा कि वह भोज्य पदार्थों का स्पर्श करने के अयोग्य है, तब तक उसका अछूतपन दूर ही नहीं हो सकता। जब तक उसकी यह अयोग्यता दूर न हो जायगी, तब तक वह समाज में समानता का अधिकारी नहीं बन सकता।

चाहे 'हरिजन' वकील बन जाय, चाहे बैरिस्टर, चाहे प्रोफेसर या चाहे व्यवस्थापिका परिषद् का माननीय सदस्य, उसकी अस्पृश्यता उस समय तक दूर नहीं हो सकती, जब तक उसकी यह अयोग्यता दूर न हो जाय। जब-जब सार्वजनिक भोज होंगे, तब-तब उसे अपनी इस अयोग्यता के कारण लज्जित होना पड़ेगा!

भोज के सम्बन्ध में दो मुख्य नियमों का पालन करना अनिवार्य है—पूर्ण शुद्धता और निरामिष भोज। नीति और धर्म के अनुसार इनका पालन उचित है। इसलिए इनके अतिरिक्त भोज में और प्रतिबन्ध न हों।

महात्मा जी की दृष्टि में मन्दिर-प्रवेश अस्पृश्यता-निवारण की कसौटी है; परन्तु हम भोज को अस्पृश्यता-निवारण की कसौटी मानते हैं।

हम यह मानते हैं कि सहभोज के सम्बन्ध में किसी प्रकार के दबाव या शक्ति का प्रयोग न किया जाय। यह कार्य स्वेच्छा से होना चाहिए। जिनका हृदय विमल है, मन में मलीनता नहीं है, अन्तःकरण विशुद्ध है, वह प्रेमपूर्वक भोज में सम्मिलित हो सकते हैं। परन्तु जिनके हृदय में द्वेष और घृणा के भाव हैं, मन मलीन है - उन्हें कदापि भोज में सम्मिलित न होना चाहिए। मेरा विश्वास है, ऐसे व्यक्ति स्वयं ही भोज में न पधारंगे। किसी व्यक्ति को भोज में सम्मिलित करने के लिए बाध्य न किया जाय। इस कार्य में स्वेच्छा की विशेष आवश्यकता है। सहभोज से इनकी अस्पृश्यता तो दूर होगी ही। परन्तु इससे इनके वर्तमान व्यवसाय में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायगा। आज पर्यन्त ये जातियाँ ऐसे व्यवसाय करने से वञ्चित रही हैं, जिनमें खाद्य और पेय पदार्थों का आदान-प्रदान होता है। इससे इनके व्यवसाय में बड़ा लाभ होगा। एक 'हरिजन' वस्तु खाद्य पदार्थों की दूकान खोल सकेगा।

आर्य-समाज ने सहभोज-प्रथा का बहुत दिन से प्रचार कर रखा है। परन्तु इन भोजों में हृदय की पवित्रता के दर्शन बहुत कम बार होते हैं। केवल प्रदर्शन के रूप में ही इसका प्रचलन है। यह बड़े खेद की बात है कि आर्य-समाज का कार्यकर्ता-वर्ग अभी अस्पृश्यता को सम्पूर्ण रूप से दूर नहीं कर सका है। उसमें सह-भोजों के प्रति उपेक्षा है।

जिस दिन उच्चवर्णाभिमानी हरिजन के स्पर्श किए हुए भोज्य-पदार्थ में दोष न मानेगा, उस दिन उसका हृदय पवित्र हो जायगा। यही उसकी आत्म-शुद्धि होगी। अस्पृश्यता उस समय गंधे के सींग की तरह लुप्त हो जायगी।

उपसंहार

महात्मा गाँधी जी के एक छोटे, परन्तु महत्वपूर्ण शब्द 'आत्मशुद्धि' में हरिजन आन्दोलन का उद्देश्य निहित है। वास्तव में अस्पृश्यता-निवारण, आत्मशुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सुधारक लोगों को



राजपूताना का महात्मा-रुद्र

फाइन आर्ट प्रिन्सिपल्स कॉलेज,
इलाहाबाद]

[चित्रकार—श्री० शम्भूनाथ मिश्र,
आर्ट कॉलेज, जयपुर



निःस्वार्थ भाव से कार्य करना चाहिए। जो कार्य स्वार्थ-परता की भावना को दूर रख कर किया जाता है, वही कार्य सफल होता है। उच्च नामधारी जातियों में यह प्रवृत्ति देखी गई है कि जब उन पर कोई सङ्कट आता है, जिसमें दूध पीड़ित दीन-दलित जातियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है, तो वे इन्हें 'हृदय के टुकड़े' और 'धर्म-भाई' कहते हैं। यहाँ तक देखा गया है कि सुधारक नेता अपने सङ्कट के समय अपनी टोपी तक इन भाइयों के चरणों में रखने को तैयार हो जाते हैं और रख भी देते हैं; परन्तु विपत्ति के टलने पर ये आँख दिखाते हैं। इस प्रकार की कूटनीति और स्वार्थ-परायणता से आत्मशुद्धि नहीं होगी। अब आपको अपने दृष्टिकोण में और परिवर्तन करना होगा। किसी राजनैतिक समस्या

को हल करने के लिए ही आपने यह सुधार का प्रयत्न रचा तो आपका प्रयास व्यर्थ जायगा, यह आप हृदय पर अङ्कित कर लें।

आपको अपनी विचार-पद्धति में घोर क्रान्ति करनी होगी। उन्नतिशील हिन्दूमात्र का यह परम कर्तव्य है कि वह स्वदेश, स्वातन्त्र्य और मानवता के नाम पर कूटनीति, चाण, दावपेंच, झल-झड़, कपट, दम्भ, अहङ्कार, भूमी उच्चता, समय पर काम निकालने की निन्दनीय दुष्ट-वृत्ति को त्याग कर समाज में समता, स्वातन्त्र्य और बन्धुत्व का जयघोष करें। हिन्दू-समाज में कोई दलित, अछूत और नीच न रहे। सब परमात्मा के अमृत पुत्र हैं। कोई 'हरिजन' और 'सर्वण हिन्दू' का भेद-भाव न रहे। सब 'हिन्दू' नाम से अपने को पुकारें।

अनुरोध

[श्री० उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव]

मधुवन के इस रम्य कुञ्ज में,
गा दो जीवन का कल-गान।
सखि, सुख की प्रिय चल-छाया को,
बीत न जाने दो अनजान ॥
सरसी की प्रति मुग्ध लहर लघु,
गुञ्जन कर अगणित आह्वान।
जगा रही निस्तब्ध हृदय के,
युग-युग के सोये अरमान ॥

अलि शतदल के मृदु पराग पर,
प्रति पल गुनगुन कर अभिसार।
स्वप्नों की मादक संसृति में,
भरता निज अन्तर का प्यार ॥
सुन्दर सुख-सौन्दर्य-सिक्त है,
आकर्षक कण-कण सुकुमार।
मुक्त-हास्य चञ्चल समीर का—
प्यासे जीवन की मनुहार ॥

चन्द्र-किरण निद्रित कुसुमों पर,
बिखराती अनन्त अनुराग।
प्यारे, एक बार बस गा दो,
अमर प्रेममय स्वर्ण-विहाग ॥





ह संसार परिवर्तनशील है। इसमें कोई भी वस्तु सदैव एक स्वरूप अथवा एक सी अवस्था में स्थिर नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु के साथ, चाहे वह चैतन्य हो या जड़, जन्म, वृद्धि और मृत्यु का नियम अनिवार्य रूप से लगा हुआ है। छोटे और बड़े प्राणी तथा मनुष्य ही इस नियम से बंधे नहीं हैं, वरन् सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और आकाश में दिखलाई देने वाले समस्त तारागण की भी यही दशा है। बात यह है कि इस विश्व में एक कुछ कण से लेकर प्राणियों के जीवनाधार सूर्य तक जो कुछ भी दिखलाई पड़ता है, उसका मूल उपादान एक ही है। ये तमाम वस्तुएँ कल्पनातीत सूक्ष्म परमाणुओं से बनी हैं और इन परमाणुओं में निरन्तर एक उथल-पुथल, एक अनन्त सङ्घर्षण मचा रहता है। इसलिए प्रत्येक जीवित वस्तु में से प्रत्येक क्षण शक्तिहीन अथवा निष्क्रिय परमाणुओं का स्थान सशक्त अथवा सक्रिय परमाणु ग्रहण करते रहते हैं। यह क्रिया जिस प्रकार हमारी जाग्रत अवस्था में हुआ करती है, उसी प्रकार निद्रितावस्था में भी जारी रहती है।

यद्यपि पृथ्वी तथा ब्रह्माण्ड के अन्य पिण्डों की विशालता, प्राचीनता और स्थिरता का विचार करने से तथा पृथ्वी के लाखों वर्ष के सङ्घर्ष तथा जीवन-संग्राम-पूर्ण इतिहास पर दृष्टि डालने से इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता कि कभी यह तमाम खेल खत्म हो जायगा और आज इस दुनिया में जो अगणित अद्भुत पदार्थ तथा विभिन्न आकृतियाँ दीख रही हैं, उनका चिह्न भी शेष न रह कर समस्त स्थान एक धुएँ के समान अव्यक्त सूक्ष्म पदार्थ के रूप में परिणत हो जायगा। इस विश्व में कोई भी पदार्थ अविनाशी नहीं है। जिसका जन्म हुआ है, जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसकी मृत्यु—उसका नाश भी अवश्यम्भावी है। हमारी

दुनिया किसी दृष्टि से पूर्ण अथवा आदर्श नहीं है और इसकी उन्नति अथवा विकास का आधार इसी पर है कि नवीन को स्थान देने के लिए प्राचीन मर कर हटता जाय। इस दृष्टि से विचार करने पर मृत्यु एक अत्यावश्यक तथा विश्व की प्रगति के लिए उपयोगी बात जान पड़ती है।

परन्तु मृत्यु से हमारा आशय वह नहीं है, जैसा कि लोग प्रायः समझते हैं। जिस प्रकार हम यह कहते हैं कि विश्व में कोई वस्तु अविनाशी अथवा चिरस्थायिनी नहीं है, उसी प्रकार हम यह भी जानते हैं कि विश्व में पूर्ण रूप से नाश भी किसी वस्तु का नहीं होता। जब हम कहते हैं कि 'अमुक वस्तु का नाश हो गया' तो हमारा तात्पर्य यही होता है कि वह जिस रूप में थी उसका अन्त होकर वह दूसरे रूप में होगई। रचना और विनाश इन दोनों का आधार वे प्राकृतिक शक्तियाँ हैं, जिनका अस्तित्व सदैव से है और जो अपरिवर्तनशील हैं। परन्तु यह कैसे सम्भव है कि ये शक्तियाँ जो करोड़ों-अरबों वर्षों तक किसी पिण्ड का निर्माण करती हैं, फिर उसी के नाश का कारण बन जाती हैं, यद्यपि स्वयम् उनमें तथा पिण्ड के मूल उपादान कारण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। इस पर विचार करने से हमको फिर इसी निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि किसी चीज़ का क्रमशः ध्वंस होना वास्तव में उसका नाश नहीं है, वरन् यह प्रकृति की लीला अथवा उसकी रचना-प्रणाली है। वह यदि एक चीज़ को नाश करती है, तो उसी के उपादान से दूसरी उससे भी उत्तम अथवा महान् चीज़ का निर्माण करती है। इसलिए यह भली भाँति समझ लेना आवश्यक है कि जिसे साधारण लोग विश्व का नाश अथवा अन्त समझते हैं, वह केवल उसका रूपान्तर मात्र है और उसका उद्देश्य उन्नति की ओर अग्रसर होना होता है।

इस दृष्टि से जब हम अपनी पृथ्वी की अवस्था पर विचार करते हैं तो विदित होता है कि यद्यपि अभी यह



अपनी युवावस्था में है और लाखों करोड़ों वर्ष तक इसके इसी प्रकार शस्य-श्यामला बनी रहने की आशा है, तो भी एक दिन अवश्य ऐसा आएगा जब इसे भी प्रकृति के अनिवार्य नियमानुसार काज के गर्भ में विलीन होना पड़ेगा और इस पर बसने वाले मनुष्यों तथा इतर प्राणियों का तो क्या, पहाड़ों, नदियों और समुद्रों तक का पता न लगेगा। परन्तु हमारा यह अनुमान तभी सत्य हो सकता है, जब कि पृथ्वी का नाश स्वाभाविक नियमानुसार हो। पर यदि इस बीच में कोई दुर्घटना हो जाय तो इसका अन्त कज भी हो सकना असम्भव नहीं है। जिस प्रकार हम किसी मनुष्य के स्वास्थ्य तथा परिस्थिति को देख कर निश्चय-पूर्वक कह देते हैं कि वह अभी कम से कम पच्चीस-तीस वर्ष और जीएगा, पर संयोगवश उसकी मृत्यु मोटर-गाड़ी या रेलगाड़ी से दब कर या साँप आदि के काटने से दूसरे ही दिन हो जाती है, वही अवस्था पृथ्वी और ब्रह्माण्ड के अन्य समस्त पिण्डों की है। उनका भी किसी क्षण आकस्मिक रूप से नाश हो सकना असम्भव नहीं है। परन्तु यदि ऐसी आकस्मिक घटना के खयाल से हम सदैव अपनी मृत्यु अथवा संसार के प्रलय के भय से भयभीत रहें तो यह हमारी बड़ी भूल है। मनुष्य का दुनिया में रह सकना तभी सम्भव है जब कि वह संयोगों का खयाल छोड़ कर स्वाभाविक नियमों पर विश्वास रखे और उनके अनुसार आचरण करे। इसके अतिरिक्त तूफान, भूचाल, ज्वालामुखी का फटना, जल-प्रलय आदि जिन आकस्मिक दुर्घटनाओं के कारण ब्रह्माण्ड के पिण्डों का अस्तित्व खतरे में रहता है, वे भी एक विशेष नियम के अधीन रहती हैं। यद्यपि अभी तक उस नियम का रहस्य हम लोग बहुत कम जान पाए हैं, तो भी इतना हमको दिखलाई देता है कि प्रकृति एक तरफ होने वाली हानि की प्रायः दूसरी तरफ पूर्ति कर देती है और जीवन की धारा तब तक थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ जारी रहती है, जब तक भूतल पूर्णतया उसके निवास के अयोग्य नहीं हो जाता।

जब हम इस प्रकार की प्राकृतिक दुर्घटनाओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं तो हमको विदित होता है कि जिन आन्तरिक तथा बाह्य परिवर्तनों के फल-स्वरूप ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं उनका सन्तोष-

जनक ज्ञान अभी तक मनुष्य को प्राप्त नहीं हो सका है। इस प्रकार की घटनाओं का हिमाय वैज्ञानिकगण केवल पिछले सौ सवा सौ वर्षों से रखने लगे हैं। यदि इस प्रकार का हिसाब प्राचीन काल से रखा गया होता तो सम्भवतः हम उनके विषय में अधिक निश्चयात्मक रूप से भविष्यवाणी कर सकते थे। क्योंकि इस प्रकार की घटनाओं का एक चक्र (Cycle) सा चला करता है और जहाँ हम इन घटनाओं के सञ्चालन करने वाले वास्तविक नियमों से अनजान होते हैं, वहाँ इसी हिसाब के द्वारा भविष्य का थोड़े बहुत अंशों में अनुमान लगा सकते हैं।

पृथ्वी पर जो दुर्घटनाएँ प्रायः देखने में आती हैं, उनमें सबसे साधारण तूफान है। कभी-कभी इन तूफानों की शक्ति इतनी अधिक होती है कि उनका प्रभाव पृथ्वी के आधे भाग में जान पड़ता है और उनसे धन-जन की असीम हानि होती है। तूफान साधारणतः पृथ्वी के विभिन्न भागों में ठण्ड और गर्मी के अन्तर द्वारा उत्पन्न होते हैं; पर अत्यन्त भीषण तूफानों के उठने का कारण पृथ्वी की धुरी (Axis) में अन्तर पड़ जाना होता है। ऐसे तूफानों से समुद्र इतना विक्षुब्ध हो उठता है कि उसकी लहरों से हज़ारों गाँव, शहर, जहाज़ तथा नावें दूब जाती हैं। परन्तु तो भी इस सम्बन्ध में पृथ्वी के प्राचीन इतिहास का अनुशीलन करने से जो कुछ विदित हुआ है, उससे अनुमान किया जा सकता है कि तूफान द्वारा दुनिया का अस्तित्व नष्ट होने की आशङ्का बहुत कम है। यदि ऐसा होता तो सम्भवतः मनुष्य जाति का अस्तित्व ही न होता, क्योंकि प्राचीन काल में तूफानों का जितना अधिक जोर था उतना आजकल नहीं है।

परन्तु ज्वालामुखियों के फटने तथा भूचाल की बात, जिनका सम्बन्ध पृथ्वी के आन्तरिक भाग से है, तूफान से न्यायी है। भयङ्कर भूचाल के समय प्रत्येक प्राणी को यही ज्ञात होता है कि दुनिया का अन्त पास आ गया और वास्तव में जहाँ उसका प्रकोप होता है वहाँ के निवासियों के लिए वैसा विचार करना सच भी है। सन् १९२३ का जापान का भूचाल, जिससे दो लाख व्यक्ति मरे थे और करीब इतने ही घायल हुए थे, उस भूभाग के प्राणियों के लिए एक प्रकार का



खण्ड-प्रलय ही था। इस घटना से कुछ ही समय पूर्व चीन के एक प्रान्त में भी पहाड़ों के अपने स्थान से हट जाने से दो लाख व्यक्ति पृथ्वी के गर्भ में समा गए। ८ मई सन् १९०१ को एक छोटे से ज्वालामुखी के भड़कने से, जो बिल्कुल शान्त जान पड़ता था, एक मिनट के भीतर सेण्टपिरे नगर के ५० हजार अधिवासी पृथ्वीतल से विलुप्त हो गए। इससे १८ वर्ष पूर्व एशिया के दक्षिणी भाग में जावा के पास कराकाटोआ के ज्वालामुखी के भड़कने से ४० हजार व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। इस घटना के समय यह पहाड़ बीच से फट कर दो टुकड़ों में बँट गया और समुद्र का पानी उसके जलते हुए मुख (क्रेटर) में जाने लगा। उधर भीतर से जले हुए पत्थरों का समुद्र उमड़ रहा था। इन दोनों के सङ्घर्ष से जो शब्द उत्पन्न हुआ वह हजारों तोपों के चलने से भी अधिक भीषण था और वह समस्त यूरोप के क्षेत्रफल-से अधिक घेरे में सुनाई दिया। इसके वेग से हवा में जो लहरें उठीं वे पृथ्वी का छः बार चक्कर लगाने के पश्चात् शान्त हुईं। इसी प्रकार समुद्र में जो लहरें उठीं उनसे भी समस्त भूमण्डल व्याप्त हो गया और उन्हीं के कारण आस-पास के टापुओं के ४० हजार व्यक्ति समुद्र के गर्भ में विलीन हो गए। जिस टापू में यह ज्वालामुखी अवस्थित था, उसका आधा अंश धूल होकर आकाश में बड़ी दूरी पर चला गया जिसके कारण जावा और आस-पास के टापुओं में कितने ही दिनों तक घोर अन्धकार छाया रहा। सर्वत्र भीषण तूफान उठने लगे और धूल तथा राख की कीचड़ के साथ गर्म मेंह बरसने लगा। क्या यह सम्भव है कि जो व्यक्ति उस भीषण उत्पात के समय वहाँ निवास करते थे और जिन्होंने उस वज्र-निनाद को सुना था तथा प्रकृति की संहारकारिणी मूर्ति के दर्शन किए थे, उनके हृदय में यह विचार उत्पन्न न हुआ होगा कि प्रलयकाल पास आ गया है और समस्त संसार खण्ड-खण्ड होकर अन्तरिक्ष में धावित हो रहा है।

यदि किसी समय इस प्रकार का ज्वालामुखियों का उत्पात समस्त संसार में बड़े परिमाण में होने लगे तो यह असम्भव नहीं जान पड़ता कि समस्त प्राणी भूमण्डल से विलुप्त हो जायें। तो भी पृथ्वी की वर्तमान दशा से यह स्पष्ट है कि ऐसी घटना साधारण अवस्था

में नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता तो जिस समय पृथ्वी अग्निमय आवरण से आच्छादित थी, उस समय उसके ऊपर ठोस आवरण का निर्माण ही न हो पाता। इससे विदित होता है कि यद्यपि हमारी पृथ्वी साबुन के बुलबुले की तरह है, जिसके भीतर गैस भरी हुई है तो भी उसके ऊपरी आवरण में इतनी दृढ़ता है कि वह आभ्यन्तरिक गैस और अग्नि के वेग को सहन करते हुए स्थिर रह सकता है। पर जैसे-जैसे वह आवरण विशेष रूप से दृढ़ तथा कठोर होता जायगा, भीतर के लावा तथा गैस का, जो समय-समय पर ज्वालामुखियों के छेद से निकलता रहता है, बाहर आ सकना कठिन होगा। इसका फल यह होता है कि ज्वालामुखी के फटने की घटनाएँ कम होती जाती हैं, पर जब ऐसी घटना होती है तो उसकी नाशक शक्ति पहली घटना की अपेक्षा अधिक होती है। इसलिए पृथ्वी के ऊपरी आवरण के कठोर पड़ते-पड़ते ऐसी अवस्था आ सकना असम्भव नहीं है, जब भूगर्भ से लावा और गैस का साधारण रूप से निकल सकना असम्भव हो जाय और धीरे-धीरे उसका बल इतना बढ़ जाय कि वह पृथ्वी के ऊपरी आवरण को तोड़-फोड़ डाले और उसे इस प्रकार दग्ध कर दे कि उस पर प्राणियों अथवा उद्भिज का अस्तित्व रह सकना असम्भव हो जाय। चन्द्रमा की, जो पृथ्वी का एक अंश ही है, ऐसी ही दशा हो चुकी है। उसका आकार पृथ्वी की अपेक्षा छोटा था, इसलिए वह जल्दी ही ठण्डा पड़ गया और उसके भीतरी लावा ने उसके ऊपरी आवरण को तोड़-फोड़ कर छिन्न-भिन्न कर दिया। वर्तमान समय में उसकी ऊपरी सतह अनगिनती क्रेटरों (ज्वालामुखियों के छेदों) से भरी पड़ी है। इनमें से प्रत्येक क्रेटर हमारी पृथ्वी के क्रेटरों से कहीं अधिक बड़ा है। ऐसी ही अवस्था किसी समय पृथ्वी की हो सकती है।

ज्वालामुखियों के फटने के सिवा पृथ्वी के स्तरों के हटने से भी भूकम्प उत्पन्न होते हैं और इनका प्रभाव पहले प्रकार के भूकम्पों से कहीं अधिक व्यापक होता है। यद्यपि इनके कारण पृथ्वी बार-बार नहीं हिलती, पर इस प्रकार के धक्के का असर हजारों मील की दूरी तक जान पड़ता है और उसके फल से बड़े-बड़े पहाड़ ज़मीन में धँस जाते हैं या और ऊपर को उठ जाते हैं।



इनके कारण पृथ्वी सैकड़ों मील तक फट जाती है और बड़े-बड़े गहरे गर्त उत्पन्न हो जाते हैं। प्राचीन काल में ऐसे भूकम्पों के कारण बड़े-बड़े महाद्वीप जल के गर्भ में डूब चुके हैं; और भविष्य में भी ऐसी घटनाएँ होती रहेंगी, इसकी पूरी सम्भावना है। ऐसे अवसरों पर जब ज़मीन के ऊपरी आवरण का हज़ारों कोस लम्बा-चौड़ा कोई टुकड़ा अकस्मात् कई मील नीचे की तरफ़ धँस जाता है और उसमें दूसरे समुद्रों का पानी भरने लगता है तो संसार में खरब प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जाता है और उसके फल से यदि मनुष्य जाति का पूर्णतया नाश नहीं हो जाता तो कम से कम पृथ्वीतल पर से प्रचलित मानवीय सभ्यता का तो लोप हो ही जाता है। हिन्दुओं के पुराणों, ईसाइयों की बाइबिल तथा अन्य मज़हबों के धर्म-ग्रन्थों में जिस जल-प्रलय का वर्णन मिलता है, उसका तात्पर्य वास्तव में किसी ऐसी ही घटना से है। ऐसे काल में समुद्र का पानी एक नहीं, सैकड़ों स्थानों में पृथ्वी के गर्भ में घुसने लगता है और जल तथा अग्नि के द्वन्द्व के फल-स्वरूप कराकाटोआ की सी घटनाएँ दिन में कई-कई बार होने लगती हैं। उस समय सूर्य छिप जाता और संसार में अन्धकार छा जाता है। पानी और धूल के कणों से वातावरण व्याप्त हो जाता है। कराकाटोआ की घटना के फल-स्वरूप जो धूल आसमान में छाई थी, वह कई वर्ष तक वायु-मण्डल के ऊपरी भाग में दिखलाई पड़ती रही और उसके कारण आस-पास के कितने ही प्रदेशों की ऋतुओं में बड़ा अन्तर पड़ गया था। पर जब ऐसी घटना पृथ्वी के एक बड़े अंश में होती है और लगातार कितने ही दिनों तक जारी रहती है, तो उसके कारण पृथ्वी के जलवायु में इतना परिवर्तन हो जाता है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आकाश में छाई हुई धूल के कारण सूर्य की गर्मी पृथ्वी तक पहले की भाँति नहीं पहुँच सकती और इसलिए पृथ्वी का तल तथा उसके चारों तरफ़ की हवा ठण्डी होने लगती है। फल स्वरूप मँह का परिमाण बहुत अधिक हो जाता है, क्योंकि ठण्डी हवा में गर्म हवा की अपेक्षा पानी की भाफ़ को संभाल सकने की शक्ति बहुत कम होती है। मँह के अधिक बरसने तथा आकाश के निरन्तर मेघाच्छन्न रहने के कारण सूर्य की गर्मी का

पृथ्वी तक आना और भी कम हो जाता है। इसके फल से समस्त पृथ्वी की आबहवा में अन्तर पड़ जाता है और पृथ्वी के अनेक भाग, जहाँ का जलवायु पहले औसत दर्जे का था, शीत-प्रधान बन जाते हैं तथा वहाँ की पृथ्वी हिम से ढक जाती है। भूकम्प और ज्वालामुखियों के प्रभाव के कारण प्राचीन काल में भी पृथ्वी पर हिमयुग का आविर्भाव हो चुका है। यद्यपि यह घटना कई लाख वर्ष पूर्व हुई थी, पर पृथ्वी के स्तरों की जाँच-पड़ताल करके वैज्ञानिकों ने उसकी सच्चाई भली प्रकार सिद्ध कर दी है। इस प्रकार की घटना के फल से यद्यपि मनुष्य जाति के नारा की सम्भावना नहीं की जा सकती, पर उसके फल से वर्तमान सभ्यता का लोप होकर एक नवीन युग का आविर्भाव होना अवश्य-म्भावी है।

यहाँ तक हमने भूमण्डल की आभ्यन्तरिक शक्तियों द्वारा उसके नाश होने के सम्बन्ध में विचार किया। अब हमको देखना है कि विश्व के अन्य पियड़ों द्वारा हमारी पृथ्वी को किसी प्रकार की आशङ्का है या नहीं। इस सम्बन्ध में धूमकेतु अथवा पुच्छल तारे अति प्राचीन काल से मनुष्यों के हृदय में भय का सञ्चार करते आए हैं। क्योंकि जहाँ अन्य तारागण आकाश में अपने-अपने स्थानों पर स्थित रहते हैं और उनकी कक्षा में कभी बाल बराबर अन्तर पड़ता दिखलाई नहीं देता, धूमकेतु न मालूम कहाँ से अकस्मात् आकाश में उदय होते हैं और कुछ काल पश्चात् न मालूम कहाँ चले जाते हैं। अन्य नक्षत्रों के बीच में उनका मार्ग बिना किसी नियम अथवा क्रायदे के जान पड़ता है। थोड़े ही समय में वे पृथ्वी के इतने निकट आ जाते हैं जिससे जान पड़ता है कि वे अवश्य ही उससे टकराने वाले हैं। इसके अतिरिक्त उनका आकार भी ऐसा विचित्र होता है जिसे देख कर साधारण व्यक्ति के हृदय में स्वभावतः आतङ्क का भाव उत्पन्न होता है। उनकी पूँछ जो कभी-कभी आकाश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली दिखलाई पड़ती है, दर्शकों के चित्त में एक अज्ञेय भय का सञ्चार करती है। यही कारण है कि वर्तमान समय में थियोसोफ़िकल समाज के अनेक सुशिक्षित व्यक्ति इन तारों को किसी आत्मा का सूक्ष्म शरीर बतलाते हैं और प्राचीन काल में जब फलित ज्योतिष का विशेष



प्रचार था, इस प्रकार के तारों का उदय होना युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष, अवर्षण आदि महान आपत्तियों का सूचक समझा जाता था।

वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने इन तारों के विषय में जो जाँच-पड़ताल की है, उससे विदित हुआ है कि धूमकेतु तारों का आकार प्रायः बहुत छोटा होता है और उनमें कोई प्रकाशयुक्त पदार्थ विशेष रूप से मौजूद रहता है। ये चन्द्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से अधिक दूरी पर रहते हैं। पर उनका मार्ग अन्य ग्रहों से भिन्न प्रकार है और इसलिए कभी-कभी उनके ग्रहों से टकराने की सम्भावना रहती है। इन तारों में से कुछ ऐसे भी होते हैं, जो नियमित रूप से आकाश में चक्कर लगाया करते हैं। ऐसा एक तारा 'बेला का धूमकेतु' कहलाता है जो प्रति ६१ वर्ष में एक बार पृथ्वी पर से दिखलाई देता है। वह पृथ्वी की कक्षा को उस स्थान पर काटता है जहाँ होकर वह नवम्बर मास में गुजरती है। इसलिए यदि कभी यह तारा नवम्बर मास में पृथ्वी की कक्षा के पास आ जाय तो उसकी तथा पृथ्वी की टकरा हो जाना अनिवार्य है। आकाश में इस प्रकार के तारों की संख्या बहुत अधिक है, पर पृथ्वी के निवासियों को वे बहुत कम संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं। अभी तक पृथ्वी के ज्योतिषी जिन धूमकेतुओं की परीक्षा कर चुके हैं उनका आकार प्रायः बहुत छोटा है और उनके पृथ्वी पर गिरने से विशेष हानि की सम्भावना नहीं की जाती। तो भी सम्भव है कि आकाश में इनसे भी कहीं बड़े धूमकेतु छिपे हों, जो अभी तक कभी पृथ्वी के निकट नहीं आए हैं। यदि ऐसा कोई धूमकेतु, जिसका आकार कम से कम पन्द्रह मील का हो, पृथ्वी से टकरा जाय तो यहाँ अवश्य खण्ड प्रलय का दृश्य दिखलाई देगा।

धूमकेतुओं की तरह उल्काएँ भी पृथ्वी के लिए भय का कारण हैं। धूमकेतुओं की भाँति उल्काओं का मार्ग भी अनिश्चित तथा अनिर्दिष्ट है। इसके सिवा धूमकेतु जहाँ हमारे सौर लोक की ही वस्तु हैं, उल्काएँ अन्य सौर लोकों से, जिनका अन्तर हमारी पृथ्वी से कल्पनातीत है, आती हैं। अभी तक जो उल्काएँ मनुष्यों द्वारा पृथ्वी पर गिरती देखी गई हैं उनका वज़न नौ-दस मन से अधिक नहीं है। ऐसी एक उल्का १२ मार्च सन् १८९९ को फ़िनलैण्ड में गिरी थी, जिसका वज़न ७१५

पौण्ड था। इसमें सन्देह नहीं कि इससे भी भारी उल्काएँ पृथ्वी पर कभी-कभी गिरती हैं, पर वे प्रायः समुद्र में अथवा सर्वथा जनशून्य स्थानों में गिरी हैं जिससे मनुष्यों को उनका कोई पता नहीं। चूँकि ये उल्काएँ उन सौर-लोकों से आती हैं, जिनके सम्बन्ध में हमको कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिए हम यह कह सकने में असमर्थ हैं कि उनका आकार अधिक से अधिक कितना बड़ा हो सकता है और वे पृथ्वी को कहाँ तक हानि पहुँचा सकती हैं। पर चूँकि अब तक उनके द्वारा पृथ्वी का विशेष अनिष्ट नहीं हुआ, इसलिए आशा की जा सकती है कि सम्भवतः भविष्य में भी वे इसके लिए अधिक हानिकारक सिद्ध न हों।

विश्व-न्यापी दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में अभी तक हमने जो अनुमान प्रकट किए हैं, उनका आधार हमारे तथा अन्य सौर-लोकों की वर्तमान परिस्थिति पर है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि आज से दस-बीस लाख अथवा इससे भी अधिक वर्ष बाद भी अवस्था ऐसी ही बनी रहेगी। यह सच है कि हमारा सौर-लोक आकाश-गङ्गा के ऐसे भाग में अवस्थित है जहाँ से अन्य सौर-लोक बहुत अधिक दूरी पर हैं। इसके चारों तरफ़ बहुत अधिक विस्तृत शून्य आकाश है जिसमें यह अवाध गति से भ्रमण कर सकता है। अन्य सौर-लोक जो आकाश-गङ्गा के मध्य में हैं, जहाँ शून्य आकाश का परिमाण यहाँ की अपेक्षा कम है, अधिक सङ्कटपूर्ण अवस्था में रहते हैं और वहाँ कभी-कभी दो विशाल पिण्डों के टकराने की घटनाएँ होती रहती हैं, जिनके फल से उन दोनों की प्रलय हो जाती है। यदि हमारी पृथ्वी को भी किसी काल में ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े तो यहाँ प्रलय हो जाना सुनिश्चित है। पर यह केवल एक कल्पना मात्र है। अभी तक समस्त नक्षत्रों में अपनी कक्षा के भीतर स्थित रहने का जो अटल नियम देखने में आता है उसे देखते हुए ऐसी घटना की आशङ्का बहुत समय तक नहीं की जा सकती।

पर यदि पृथ्वी सब प्रकार की आभ्यन्तरिक और बाह्य घटनाओं से बची रहे और लाखों-करोड़ों वर्ष तक इस पर जीवन की धारा इसी प्रकार प्रवाहित रहे तो भी अन्त में एक दिन अवश्य ऐसा होगा, जब यहाँ प्रलय होगा और पृथ्वी पर पाई जाने वाली समस्त वस्तुओं का



ही नहीं, वरन् एक-एक कण का नाश होकर यह अपने मूल स्वरूप में लय हो जायगा। क्योंकि जिसका आदि है उसका अन्त भी होना अनिवार्य है। इस नियम के अनुसार कभी न कभी हमारे सूर्य, पृथ्वी तथा अन्य समस्त ग्रहों और उपग्रहों को वृद्ध होकर मरना पड़ेगा। इसके पश्चात् फिर इनका नया जन्म होगा; क्योंकि प्रकृति में कोई वस्तु सदैव एक सी अवस्था में नहीं रह सकती। अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि पृथ्वी तथा हमारे सौर-लोक के ग्रहों का स्वाभाविक रूप से किस प्रकार अन्त हो सकता है?

यह बात हमको भली-भाँति मालूम है कि किसी काल में पृथ्वी की सतह वर्तमान समय की अपेक्षा बहुत अधिक गर्म थी। पिण्डों का इस प्रकार शीतल होना एक स्वाभाविक नियम है, जिसका प्रभाव विश्व के प्रत्येक पिण्ड पर समान रूप से पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारे चारों तरफ शून्य आकाश में सदैव चार सौ डिग्री से अधिक शीत बना रहता है और प्रत्येक पिण्ड में से गर्मी निकल कर उसमें व्याप्त होती रहती है। यद्यपि पिण्ड की आरम्भिक न्यून-घनत्व की अवस्था में, जैसी अवस्था आजकल हमारे सूर्य की है, जितनी गर्मी उससे निकलती है उससे अधिक उसके सङ्कुचित होने के कारण उत्पन्न होती है। इस फल से उसका उत्ताप क्रमशः अधिक होता जाता है। पर यह क्रिया सदैव जारी नहीं रह सकती। जैसे-जैसे घनत्व बढ़ता जायगा, उत्पन्न होने वाली गर्मी कम होती जायगी और अन्त में जब पूर्ण घनत्व की अवस्था आ जायगी तो गर्मी का उत्पन्न होना सर्वथा रुक जायगा और केवल निकलने का कार्य ही जारी रहेगा। इसलिए यदि किसी बाहरी प्रभाव का हस्तक्षेप न हो तो प्रत्येक पिण्ड का किसी न किसी समय शून्य आकाश के तुल्य शीतल हो जाना अनिवार्य है। स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव आरम्भ में ऊपरी धरातल पर पड़ता है। हमारा चन्द्रमा इसी अवस्था को प्राप्त होता जा रहा है। उसके ऊपरी धरातल का औसत तापमान वर्तमान समय में शून्य से १२० डिग्री नीचे है, जबकि हमारी पृथ्वी का औसत तापमान शून्य से ६० डिग्री ज़्यादा है। हमारे देश में शीतकाल के मध्य में भी शून्य से ५०-६० डिग्री ऊपर से अधिक ठण्ड नहीं पड़ती। शून्य से ३२ डिग्री ऊपर ठण्ड

होने से पानी जम कर बर्फ हो जाता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि शून्य से १२० डिग्री नीचे तापमान होने से चन्द्रमा में कितनी अधिक ठण्ड पड़ती होगी। चन्द्रमा का आकार पृथ्वी की अपेक्षा छोटा है, इसलिए वह जल्द ही ठण्डा पड़ गया है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि बीच में कोई घटना न हो गई तो एक दिन पृथ्वी को भी इसी प्रकार ठण्डा होकर मरना पड़ेगा। परीक्षा द्वारा सिद्ध हुआ है कि यद्यपि शून्य से चार सौ डिग्री नीचे की ठण्ड में जीवन के बीजाणु नष्ट नहीं होते, पर अधिकांश में उनका विकास रुक जाता है तथा उनकी शक्ति तिरोहित हो जाती है। इसलिए जब यह भीषण हिम-युग आरम्भ होगा, उससे पहले ही पृथ्वी पर से मनुष्यों अथवा इनसे भी उन्नत श्रेणी के प्राणियों का, जो उस समय धरातल पर मौजूद होंगे, नाम-निशान मिट जायगा। तो भी केवल शीत के द्वारा पृथ्वी का पूर्ण रूप से प्रलय नहीं हो सकता और न उसके ठोस स्वरूप का नाश हो सकता है। इसके विपरीत शीत के द्वारा साधारण वस्तुएँ और भी अधिक सुरक्षित अवस्था में रहती हैं। इसलिए अन्त में पृथ्वी अथवा अन्य पिण्ड उस महान बीज की तरह हो जाते हैं, जो जाड़े की ऋतु में शीतल भूमि में पड़े हुए नवीन रूप में विकसित होने के लिए वसन्त की राह देखा करते हैं।

पर इस अवस्था तक पहुँचने के पूर्व जीवन की धारा कठोर प्रकृति के मुक्तावले में सैकड़ों उपायों से अपनी रक्षा करने की चेष्टा करेगी। वास्तव में प्रकृति की कठोर शक्तियों के साथ युद्ध करते रहने से ही मनुष्य के मस्तिष्क का इतना विकास हो सका है। इसी के फल से वह इन विरोधी शक्तियों को वश में करके उन्हें अपने लिए लाभदायक बना सका है। प्राचीन काल से मनुष्य जाति ऐसे प्रदेशों में रह कर अपना अस्तित्व स्थिर रखती आई है, जहाँ का तापमान चन्द्रमा की अपेक्षा अधिक नहीं है। इसके सिवा यह भी अनिवार्य नहीं जान पड़ता कि प्राणियों का काम बिना वर्तमान समय में पाए जाने वाले जलवायु के न चल सके। हो सकता है कि तापमान के वर्तमान समय से बहुत नीचा या ऊँचा होने पर अन्य रासायनिक संयोगों की उत्पत्ति हो और संसार में उनके अनुकूल अन्य प्रकार



के प्राणियों का आविर्भाव हो। पर इस विषय में हमको विशेष कल्पना करने की आवश्यकता नहीं। हमको इतना ही जान लेना आवश्यक है कि आज तक अधिक से अधिक जितनी ठण्ड का अनुमान किया जा सका है—अर्थात् शून्य से ४७० डिग्री नीचे—उसमें जीवन के बीजाणुओं का नाश नहीं हो सकता और इसलिए पूर्णतया सृष्टि का प्रलय भी नहीं हो सकता।

प्रश्न होता है कि फिर क्या होगा? जबकि सौर-लोक के समस्त पिण्ड आकाश की भीषण ठण्ड से सर्वथा शीतल और निष्क्रिय होकर शून्य में लटके होंगे, तब उनमें बसन्त ऋतु का पुनरागमन कैसे होगा? क्या उक्त अवस्था को चिरस्थायी सृष्टि के तुल्य नहीं समझा जा सकता? उस समय सूर्य भी धीरे-धीरे ठण्डा पड़ता जायगा। तब हमको गर्मी और प्रकाश वहाँ से प्राप्त होगा, जिसके बिना जीवधारियों का अस्तित्व रह सकना असम्भव है?

इस अवस्था के प्रतिकारार्थ प्रकृति ने कितने ही उपाय कर रखे हैं, जिनके द्वारा किसी पिण्ड की जीवन-धारा थोड़े बहुत अंशों में उक्त अवस्था में भी स्थिर रह सकती है। जैसे-जैसे पिण्ड ठण्डा पड़ता जाता है, उसके आसपास का वायु-मण्डल भी रासायनिक परिवर्तनों द्वारा क्षीण हो जाता है। उस अवस्था में आकाश से गिरने वाली उल्काएँ अबाध रूप से पिण्ड के धरातल तक पहुँच जाती हैं और यदि वे विशेष बड़ी होती हैं तो उनके वेग से पिण्ड के ऊपरी आवरण में छिद्र होकर भीतर का लावा बाहर निकल आता है। जहाँ इस प्रकार की टक्कर लगती है, वहाँ के जीवाणु ऐसी चोट के फल से नष्ट हो जाते हैं, पर लावा के निकलने से जो गर्मी और गैस उत्पन्न होती है उसके द्वारा आस-पास के स्थानों में जीवाणुओं को फिर से विकसित होने का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार की घटना हमारे चन्द्रमा में वर्तमान काल में देखने में आती हैं। इस प्रकार उल्काओं का गिरना, जो बड़े भय का कारण माना जाता है, मरते हुए पिण्ड को कुछ समय के लिए नवजीवन प्रदान कर देता है। वास्तव में प्रकृति की लीला विचित्र है कि मरते हुए पिण्डों तक, जिनको उल्काओं के गिरने से लाभ होता है वे सहज में पहुँच जाती हैं, पर जिन पिण्डों में जीवन की धारा पूर्ण रूप

से बह रही है, उनको वायुमण्डल की ढाल से ऐसा सुरक्षित कर दिया गया है कि उल्काओं को उनके धरातल तक पहुँचने में अत्यन्त कठिनाई पड़ती है।

प्रकृति का दूसरा उपाय यह है कि जैसे-जैसे पिण्ड ठण्डे पड़ते जाते हैं, वे अपने सूर्य के अधिक पास आते जाते हैं, ताकि उनको जो कुछ गर्मी सूर्य में शेष है उससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। यह सत्य है कि आकर्षण शक्ति के नियम के अनुसार, जिसका विश्व के समस्त पिण्डों पर आधिपत्य है, सौर-लोक के वर्तमान क्रम में करोड़ों-अरबों वर्ष तक अन्तर नहीं पड़ सकता। इसलिए जब तक यह नियम स्थिर रहे और किसी बाहरी पिण्ड का प्रभाव हमारे सौर-लोक पर न पड़े, तब तक प्रत्येक ग्रह की दूरी सूर्य से इतनी ही रहेगी जितनी कि आजकल है। पर जैसा हम जानते हैं, शून्य आकाश सर्वथा खाली नहीं है। यह असंख्य उल्काओं, धूमकेतुओं और पिण्डों के मूल उपादान पदार्थ से भरा हुआ है। इनका कुछ न कुछ प्रभाव पिण्डों की चाल पर पड़ता रहता है और जिस प्रकार ब्रेक लगने से गाड़ी की गति धीमी पड़ती जाती है, उसी प्रकार बार-बार इनका खिंचाव पड़ने से पिण्डों की गति में भी कमी पड़ जाती है। इसके फल-स्वरूप जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, चन्द्रमा अपने-अपने ग्रहों के समीप तथा ग्रह अपने सूर्य के समीप आते जाते हैं, और अन्त में सूर्य भी एक दूसरे के पास पहुँचने लगते हैं। इस प्रकार सौर-लोकों का यह विचित्र जाल जो आज विभिन्न दूरवर्ती भागों में विभाजित दिखलाई देता है, सङ्कुचित होने लगता है और अन्त में एक वृहत् सौर-लोक का स्वरूप धारण करने की चेष्टा करने लगता है।

इस प्रकार काल-क्रम से सूर्य की गरमी में जो कमी पड़ती जाती है, उसकी पूर्ति ग्रहों के उसके अधिक निकट आते जाने से होती रहती है। ठीक यही दशा चन्द्रमाओं और ग्रहों की होती है। चूँकि चन्द्रमा छोटे होने से जल्दी ठण्डे पड़ जाते हैं और ग्रह बड़े आकार के होने से तब तक गर्म बने रहते हैं, इसलिए उस गरमी का लाभ उठाने के लिए वे उसके समीप आते जाते हैं।

प्रकृति ने एक और भी ऐसी अद्भुत योजना कर रखी है, जिससे आश्रित-पिण्ड अपने प्रधान-पिण्ड की



घटती हुई गरमी से अधिक से अधिक लाभ उठा सकने हैं। जैसे-जैसे चन्द्रमा अपने ग्रहों के अथवा ग्रह अपने सूर्य के पास पहुँचते जाते हैं, बड़े पिण्ड का छोटे पिण्ड पर ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिसके फल से छोटे पिण्ड का अपनी धुरी पर घूमना कम पड़ता जाता है। अन्त में ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है कि छोटे पिण्ड का अर्द्ध भाग ही सदैव बड़े पिण्ड की तरफ रहता है। ऐसी अवस्था आजकल हमारे चन्द्रमा की है और सम्भवतः अन्य ग्रहों के चन्द्रमाओं की भी ऐसी ही दशा है। जब तक प्रधान पिण्ड बहुत अधिक गरमी प्रदान करता है, तब तक आश्रित-पिण्ड अपनी धुरी पर अत्यन्त तेज़ी से घूमता रहता है, ताकि उसका प्रत्येक भाग थोड़े ही समय तक जलती हुई किरणों के सम्मुख रहे। अन्यथा गरमी की अधिकता से समस्त प्राणधारियों का नष्ट हो जाना सम्भव है। पर जैसे-जैसे प्रधान-पिण्ड से आने वाली गरमी का परिमाण कम पड़ता जाता है, वैसे-वैसे आश्रित-पिण्ड की गति में भी कमी पड़ती जाती है और उसका एक-एक भाग क्रमशः अधिक समय तक किरणों के सम्मुख रहता है। अन्त में जब प्रधान-पिण्ड की गरमी अत्यन्त क्षीण हो जाती है तो आश्रित-पिण्ड अपने आधे भाग को ही सदैव उसकी किरणों के सम्मुख रखता है, ताकि कम से कम उस भाग को इतनी गरमी प्राप्त हो सके जिससे जीवन-धारा की किन्हीं अंशों में रक्षा हो सके। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सूर्य के सबसे अधिक समीप के बुध और शुक्र के ग्रहों की अभी से ऐसी अवस्था हो चली है।

जो शक्ति निरन्तर विश्व के पिण्डों को एक दूसरे के समीप खींचती रहती है, उसके फल से अन्त में चन्द्रमा अपने ग्रहों से और ग्रह अपने सूर्य से सम्मिलित हो जाते हैं। इनमें से चन्द्रमा अपने ग्रहों से अधिक शीघ्र संयुक्त होते हैं; क्योंकि उनकी दूरी अपेक्षाकृत बहुत कम होती है। पृथ्वी और नेपच्यून को छोड़ कर प्रत्येक ग्रह के एक से अधिक चन्द्रमा या उपग्रह हैं। मङ्गल के दो, वृहस्पति के पाँच, शनि के आठ और यूरेनस के चार चन्द्रमा अथवा उपग्रह हैं। इनमें से जब कोई भी चन्द्रमा अपने उपग्रह पर गिरता है तो उसके फल-स्वरूप ग्रह में भीषण खण्ड प्रज्वल्य की सम्भावना रहती है। इसलिए प्रकृति ग्रहों की

रक्षा के लिए एक अन्य युक्ति से काम लेती है। इस प्रकार का उपग्रह जैसे-जैसे ग्रह के पास आता जाता है, उसकी गति क्रमशः अधिक तीव्र होती जाती है। अन्त में वह बड़े पिण्ड की आकर्षण शक्ति के प्रभाव से फट कर खण्ड-खण्ड हो जाता है और ग्रह के चारों तरफ एक चक्र की भाँति घूमने लगता है। तब उसका एक-एक खण्ड धरातल पर गिरता है, जिससे उसकी विशेष हानि नहीं होती। हाँ, छोटे आकार के चन्द्रमा, जिनकी आकर्षण शक्ति पिण्ड की अपेक्षा बहुत कम होती है, उल्काओं की भाँति एक साथ धरातल पर गिर सकते हैं। उनकी टकर से धरातल का एक भाग नष्ट होकर जो गर्मी उत्पन्न होती है उससे अन्य उपग्रहों को आवश्यकीय उष्णता प्राप्त होती है। इस प्रकार एक उपग्रह की आहुति अन्य उपग्रहों को लाभ पहुँचाती है। एक समय आएगा जबकि हमारा सूर्य भी इसी प्रकार अपनी एक-एक सन्तान (ग्रह) को भक्षण करके उनकी टकर से उत्पन्न हुई गर्मी से अन्य बचे हुए ग्रहों की जितने अधिक समय तक सम्भव होगा, रक्षा करेगा।

अन्त में एक समय ऐसा होगा, जबकि अन्तिम ग्रह सूर्य पर गिरेगा और उससे अन्तिम बार गर्मी उत्पन्न होकर शून्य आकाश में फैलेगी। वह समस्त उपादान, जिससे अद्भुत सौर-लोक तथा विभिन्न प्रकार की उद्भिज तथा प्राणिज सृष्टि की रचना हुई थी, अब केवल एक शीतल, अन्धकारपूर्ण, निष्क्रिय, वृद्धाकार गोले के रूप में होकर शून्य आकाश में बिना किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य के चकर लगाने लगेगा। यह सौर-लोक की अन्तिम—सबसे अन्तिम अवस्था है। क्या कोई उपाय ऐसा है, जो फिर इस मृतपिण्ड को जाग्रत कर सके—फिर इसे उष्णता देकर नवजीवन प्रदान कर सके?

विश्व का प्रत्येक पिण्ड निरन्तर शून्य आकाश में गमन करता रहता है। आकाश में एक भी ऐसा तारा नहीं है, जो अपने स्थान पर निश्चल रूप से ठहरा हुआ हो। वह चाहे किसी भी अवस्था में रहे, उसकी गति बन्द नहीं होती। पिण्ड की उष्णता समाप्त होकर ठण्डा तथा जीवन-विहीन हो जाने के बाद भी उसका आगे की तरफ बढ़ना नहीं रुक सकता। वह अमोघ शक्ति, जो इसे गति प्रदान करती है, किसी भी प्राकृतिक



उत्पात द्वारा नष्ट नहीं हो सकती। पर कोई मृत पिण्ड इस गमन करने की शक्ति को अपने पुनर्जीवन के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकता, क्योंकि कठोर पिण्ड के कणों में हलचल करने का कार्य दूसरी ही शक्ति का है। यह शक्ति तभी उत्पन्न हो सकती है, जब कोई अन्य पिण्ड इस जड़ उपादान पर अपना प्रभाव डाले।

पर हमको भली भाँति मालूम है कि आकाश-गङ्गा के जिस भाग में हमारा सूर्य अवस्थित है, वहाँ से अन्य तारे कितनी कल्पनातीत दूरी पर हैं। करोड़ों अरबों वर्ष व्यतीत हो जाने पर कहीं दो तारे एक दूसरे के इतने निकट पहुँचते हैं कि एक का प्रभाव दूसरे के जड़ बने हुए कणों में हलचल उत्पन्न कर सके। पर अन्त में एक दिन ऐसी घटना होती ही है। अगर ये दोनों तारे एक दूसरे के बहुत पास होकर नहीं निकलते तो एक दूसरे की कक्षा पर कुछ प्रभाव डाल कर सदा के लिए दूर चले जाते हैं। फिर यह उस पिण्ड के इतिहास की साधारण घटना हो जाती है। पर जब दो तारे अधिक पास आ जाते हैं तो उनमें से एक का दूसरे के सौर-मण्डल में प्रवेश हो जाता है। ऐसी दशा में बड़ा सूर्य छोटे सूर्य को अपने अधीन करने के लिए बल लगाता है। इसके फल से संयुक्त सूर्यों की उत्पत्ति होती है, जिनके अनेक नमूने हमको आकाश में दिखाई पड़ते हैं। इन तारों में से कितने ही एक दूसरे के इतने समीप होते हैं कि बढ़िया से बढ़िया दूरबीन द्वारा भी वे पृथक् नहीं जान पड़ते। पर जब 'स्पैक्ट्रोस्कोप' नामक यन्त्र से परीक्षा की जाती है, तो वे स्पष्टतः एक दूसरे से भिन्न तथा एक दूसरे के गिर्द बड़ी तेज़ी से चक्कर लगाते जान पड़ते हैं। कुछ तारे आकाश में ऐसे भी हैं जिनकी चमक में नियमित रूप से अन्तर पड़ा करता है। इसका यही एक कारण हो सकता है कि उनके पास कोई ठण्डा तारा चक्कर लगा रहा है, जो उनके प्रकाश को हमारी पृथ्वी तक पहुँचने से रोक देता है; ठीक उसी प्रकार जैसे कि सूर्य-ग्रहण के समय चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश को हमारे पास नहीं आने देता। इससे यह भी जान पड़ता है कि ये दोनों तारे एक दूसरे के बहुत ही पास आ पहुँचे हैं और समान शक्तिशाली होने के कारण एक दूसरे को बराबर ताकत से खींच रहे हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि कुछ ही काल में उन दोनों

का सङ्घर्ष होगा, और उसके फल से दोनों का नाश होकर एक नवीन जगत का सूत्रपात होगा।

इस प्रकार जब किन्हीं दो तारों का सङ्घर्ष होता है तब यदि उनमें से किसी पर कुछ जीवाणु शेष भी होते हैं तो वे पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, अगर आकाश-स्थित पिण्डों का निरीक्षण करने वाले ज्योतिषियों का कथन सत्य है, तो उस समय पञ्चतत्त्वों का भी सर्वथा नाश हो जाता है और शून्य आकाश का एक बड़ा भाग प्रकाशयुक्त धुएँ (Nebula) से परिपूर्ण हो जाता है। इस धुएँ के सूक्ष्म परमाणु (एलेक्ट्रॉन) विद्युतगत से चारों तरफ गमन करने लगते हैं और नवीन जगत की रचना में संलग्न हो जाते हैं। यहीं पर पृथ्वी और सौर-लोक के प्रलय की कथा का अन्त हो जाता है।

अन्त में एक और बात जान लेनी आवश्यक है कि यद्यपि प्रत्येक मृत सूर्य दूसरे सूर्य से टकराने के पूर्व असंख्य वर्ष तक आकाश में निरुद्देश्य चक्कर लगाता रहता है, पर इस अवस्था का भी प्रकृति एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग करती है। इस काल में यद्यपि पिण्ड का ऊपरी भाग सर्वथा मृत अथवा निष्क्रिय दिखलाई पड़ता है, पर उसके भीतर केन्द्र में प्रकाशयुक्त बीज की पुष्टि होती रहती है जो उसका पुनर्जन्म होने पर उसके विकास में सहायक होता है। यह बीज रेडियम अथवा उसी प्रकार के किसी अन्य पदार्थ के रूप में होता है, जिसकी वृद्धि पिण्ड के सर्वथा शीतल और इसके फल-स्वरूप अधिक से अधिक सङ्कुचित हो जाने की अवस्था में ही भली भाँति हो सकती है। जब यह पिण्ड किसी दूसरे पिण्ड से टकरा कर खण्ड-खण्ड होता है तो इसी रेडियम के अणु किसी सूखे हुए फल के बीजों की तरह चारों तरफ छिटक कर सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं और मूल उपादान में हलचल उत्पन्न कर देते हैं।

इस दृष्टि से देखने पर विश्व के पिण्डों की अवस्था सर्वथा अन्य प्राणियों से मिलती हुई जान पड़ती है। इनकी भाँति उनमें भी बराबर परिवर्तन होता रहता है। वे उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं और बीज की सृष्टि करके मर जाते हैं। जीवन-कलह के संग्राम में उनको व्यक्तियों की तरह दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता है, जिनसे



कभी-कभी अकाल में ही उनका अन्त हो जाता है। पर तो भी प्रत्येक समय प्रकृति माता की भाँति सदैव उनके हित का ध्यान रखती है और जहाँ तक सम्भव होता है, ऐसी दुर्घटनाओं से उनकी रक्षा करती है। अपने भूमण्डल की परिस्थिति पर विचार करने से हमको यह भी विदित होता है कि यदि बाहर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो तो भीतरी शक्तियों के सङ्घर्ष से इसके नष्ट होने अथवा प्रलय की कोई सम्भावना नहीं है। यद्यपि इन शक्तियों का सङ्घर्ष बीच-बीच में विकास की गति को कुछ काल के लिए स्थगित कर देता है, पर तो भी वास्तव में वह जीवन-धारा को और भी उत्तम प्रकार से जारी रखने में सहायक होता है। यद्यपि बाहरी पिण्डों का कुछ प्रभाव पृथ्वी पर सदैव पड़ा करता है, पर जितने पिण्डों का हमको पता है उनसे इस बात की आशङ्का नहीं की जा सकती कि वे कभी पृथ्वी पर प्रलय कर सकें। शेष रह गए वे पिण्ड, जो

शून्य आकाश में जगह-जगह पाए जाते हैं, पर जिनका हमको पता नहीं है। यद्यपि हम उनके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक यह कह सकने में असमर्थ हैं कि उनके द्वारा पृथ्वी का नाश हो सकता है या नहीं, तो भी यदि हम उनके भय से निरन्तर भयभीत बने रहें तो यह हमारी परम सूर्खता होगी। क्योंकि जिस चीज़ का आरम्भ है, उसका अन्त भी अवश्यम्भावी है और वह अन्त चाहे जय और जिस प्रकार हो सकना सम्भव है। पर इस प्रकार अन्त होने का आशय किसी वस्तु का सदैव के लिए मिट जाना नहीं कहा जा सकता। यदि पृथ्वी का ध्वंस होगा तो फिर कभी उसका नवीन जन्म भी होगा और फिर से उस पर इसी प्रकार प्राणियों तथा मनुष्यों की सृष्टि होगी। यह एक अनादि चक्र है। इसलिए जन्म या सृष्टि होने पर हर्ष करना और मृत्यु अथवा प्रलय से दुखी होना ज्ञानियों का काम नहीं है। सृष्टि होने के लिए प्रलय का होना अनिवार्य है।



अन्तर



[श्री० देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त"]

सरस है, सुन्दर है उद्यान ।

पुष्प-पुष्प पर गूँज रहा है, भौरों का मृदु-गान !

सरस है, सुन्दर है उद्यान ।

आओ, प्रेयसि ! हिल-मिल बैठें,

देखें यह संसार ।

प्रकृति-बधू ने कैसा सुन्दर,

सजा यहाँ शृङ्गार !

अङ्ग-अङ्ग तेरा भी प्रेयसि,

है सुषमा-आगार ।

मेरे मानस-जीवन की बस,

तू ही है मनुहार !

पर, आँखों की पुतली पर यह,

नाचा क्यों अरमान !

अश्रु-स्रोत ने गाया क्यों यह,

भर-भर करुणा-गान !

सरस है, सुन्दर है उद्यान ॥



रीना हैं। मधोन्मत्ता सुधासा के वाग्मपूरित निशाम से लड़खड़ाती दीप-शिखा की भाँति कवि भी प्रकृति सुन्दरी की 'यसन्त-अँगड़ाई' पर सुग्ध होकर करुण गान कर उठता है। परवानों का नशा वाला कवि किसका क्या लेता है, अपना ही तो सारा पल मात्र में लुटा देता है। फिर भी उसकी तान पर नारा जगत सदा ही क्यों नहीं थिरक उठता—फ़कीर की वंशी-टेर सुन कर नदी में डूब मरने वाले जानवरों की भाँति क्यों नहीं विस्मि हो जाता—आश्चर्य है ?

साधारण अनुभव है—प्रायः सभी को बाल्यकाल की घटनाओं का स्मरण होकर रोमाञ्चित हो जाता है। बहुतेरे तो शायद निर्जन स्थान में बचपन की भूली तोतली बोली का अभ्यास भी करते हों। विशेष कर जीवन के उत्तर काल में जब नित्यानवे के फेर में पड़ कर भी मनुष्य के हाथ कुछ नहीं आता, तब बाल्यावस्था की घटनाएँ एक-एक कर हमारे दुःख पर व्यङ्ग की हँसी हँसती हैं। लगानि और चोभ से सहज मानव बिलबिला उठता है, किसी सहायुधवी को ढूँढ़ता है, जिसके साथ मिल कर वह रोए और धीरज बाँधे। इस सत्य का अनुभव वह कर सकता है, जो उत्तर काल के इस विरोधी कष्ट को भेले। इसे अनुभवहीन व्यक्ति को वृहस्पति की वाक्चातुरी द्वारा कथित विश्व का सारा साहित्य भी नहीं बता सकता।

श्रीगुरुभक्तिसिंह 'भक्त' की बालस्मृति का जन्म भी जीवन के उत्तर काल की जगी वेदना के इसी अनुभूति-गर्भ से हुआ। निष्ठुर चक्र में पड़ कर कौन आह नहीं भरता ? बालकाल की ऊँची उड़ानों की बुद्धता पर तिरस्कार की हँसी हँस कर वास्तविक जीवन युवक पर अपनी तेज़ शान चुपके से रख देता है। युवक घबड़ा कर पीछे भागता है, परन्तु वहाँ तो तिलस्माती लौह-द्वार पहले से ही बन्द है। दूसरी ओर अनन्त खड्ड है। चुपचाप बेचारा ऊँची-नीची, पतली, चक्करदार पगड़बडी पर चल पड़ता है। पर उसमें ताब कहाँ ? बराबर सुँह की खानी पड़ती है। कातर, सृतप्राय उस शरीर को बालस्मृति होती है—

अभी था मेरा शैशव-काल,
न व्यापा था जग का जञ्जाल।

नहीं व्यापा था, माना, पर क्या दादी की कहा-नियाँ स्मृति-पटल में मिट गईं ? गोद में बैठे ब्रह्म-वाक्य की भाँति जो छाप उसकी एक एक अनहोनी कल्पना में विश्राम कर लेते थे, तब क्या कर्णपुटों में राँगा भरा था ? क्या दादी की प्रत्येक आख्यायिका में जग-जञ्जाल की कहानी निहित न थी ? उसके प्रत्येक वाक्य में क्या संन्यास की दीक्षा नहीं थी ? फिर क्यों अपनाएँ ये गरम सीकचे ? इस जग-जञ्जाल को क्यों चूमा ? शुक्रदेव भी तो बालक थे ? शङ्कर के पिता के घर में क्या अन्न नहीं था, या माता के अङ्ग में आचार्य के शरीर के काँटे जा घुसते। नियति है नियति, जो न कराए।

काव्यपाठी का कवि की रचना पढ़ कर उसकी कला पर वाह-वाह कर उठता उस रचना की उत्कृष्टता का कुछ बड़ा प्रमाण नहीं है। लाइन पढ़ कर जब पाठक कवि की रचना-वैचित्र्य के साथ ही अपने आपको भी भूल जाता है, तब कहीं उसकी समीक्षा पूरी होती है। सँपेरे के हाथ की जड़ी की कड़ी गन्ध से सुग्ध विक्राल गोंदुवन उसके बीन के ताल के साथ-साथ "ता यैया" नाचता है। इस बात को हृदयङ्गम करने की न तो उसमें सामर्थ्य है, न फुसंत, कि जड़ी और बीनविहीन सँपेरा उसकी एक हलकी फुफकार पर फ़रार हो जाता। तब उसकी अशक्तता पर हँसने वाले दर्शकों की भीड़ भी न होती। कवि और सँपेरे में बड़ा साम्य है। जब पाठक को भाषा का शैथिल्य नहीं खलता और वह भाव-तरङ्ग की पहली मौज पर ही बैठ कर उसके इङ्गित-स्थान पर पहुँच जाता है, तब कहीं कवि सफल होता है। 'अभी था मेरा शैशव-काल' में भी कुछ ऐसा ही जादू है। बच्चे से नहीं, किन्ती ऐसे पीड़ित से पूछो जिसे 'जग का जञ्जाल' व्याप गया हो। कौन धीर ऐसा है, जो इस स्मृति-चोट से भाग कर काल्पनिक शैशव के निविड़ बन में न जा छिपे, वरन् आक्रमणकारी का कौशल चमत्कार देखता रह जाय। फिर भी भाषा को, हम बिलकुल ही त्याग नहीं सकते। सरपट भागते डूंगे जाल लगे पाँवों वाले घोड़े की ठोकर से सबक के रोड़े आग बन जाते हैं। बेरोक दौड़ता हुआ आदमी ठोकर से गिर ही जाता है। 'अभी था मेरा शैशव-काल'—इस लाइन में कितनी व्यथा, कितना कारुण्य है। इसे गाकर कौन नहीं रो उठेगा। आगे आने वाली सारी कहानियाँ का बोध



हमें केवल इसी एक लाइन से हो जाता है। यदि कवि ने केवल यही लाइन लिख कर छोड़ दिया होता तब भी उसका प्रयास सफल हो जाता। आगे उसे जो कुछ कहना है, वह सबका होकर भी कुछ न कुछ अपना ही है। कोई इस 'अभी था मेरा शैशवकाल' को अपना-कर आगे स्वानुभूति जोड़ सकता है। वस्तुतः यह लाइन तो अकेली भी पूर्ण और सार्थक है। पर न, कवि क्यों रुके। उसका गान तो भिखारी के उस करताल की तरह है, जिसकी झङ्कार घर पहुँच कर ही बन्द होती है, चाहे भिखारी को राह में भिन्ना मिले या न मिले।

बालस्मृतिकार के मन की चाल बड़ी स्वच्छन्द थी। बालक के मन की चाल थी न ! पूजा के निमित्त घड़े में भरे जाह्नवी के पावन जल को केवल ध्वनि-लोभ से अपावन करते जिसे देर नहीं लगती, उसके 'मन की चाल' की स्वच्छन्दता के तो क्या कहने। उसकी 'धारा में प्रतिबन्ध' क्योंकि हो। जब वह गाँव के बरसाती जल से भरे गढ़े में अपनी गलितोन्मुखी कागज़ी नौका को 'अजित आरमाडा' (Invincible Armada) समझ उसके बूते अपने कल्पना-सागर की उत्ताल तरङ्गों की कुछ परवाह न कर सुदूर उस पार पहुँच जाने के हौसले करता है, तब बड़े-बड़े कवि-सम्राटों की कल्पना-बुद्धि अन्धी हो जाती है। उसके इस साहस के समक्ष 'Rule Britannia Britannia rules the waves' का चमत्कार भी फीका पड़ जाता है। फिर उसके लिए कौन सी रुकावट हो सकती है—'नहीं था धारा में प्रतिबन्ध।' अप्रतिरथ जा रहा है महारथी, कहीं चक्के नहीं धँसे, घोड़े नहीं अड़े, सजग सारथी बेरोक लिए जा रहा है, ले चल।

तार था बँधा न तालों में,
विहग था फँसा न जालों में।

विहग को अभी किसी ने फन्दे में नहीं डाला था। अभी वह बेधड़क उड़ता था। उसके उड़ने के 'तार' में 'ताल'-वृत्त प्रतिबन्ध नहीं होते थे। उसका मार्ग खुला अनन्त व्योम था। कम्पा वाले वृत्त राह में नहीं पड़ते थे। पीतल के 'तार' में क्या अभी जीवन नहीं था? चेतना थी पर बँधी न थी। वीणा की खूँटियों में अभी उसे किसी ने बाँधा न था। वह बालक आदि सभ्यता का

मनुष्य था। उसके सङ्गीत में कम्पन था, पर उसमें कला न थी, इसलिए उसके कम्पन की गति कहीं रुकती न थी। विताडित विद्युत् का तरङ्ग यदि शुष्क वैज्ञानिक जीव न रोके तो कहाँ जाकर रुके! सङ्गीत के लय-ताल गान-तरङ्ग को बाँध देते हैं। फिर तो गाने का 'तार' 'ताल'-नियम को मान कर ही जीता है। ताल अपने नियम के अनुसार ही तार को काटता-छाँटता और राह देता है। सो कवि के बाल-हृदय का कल्पना-क्रम, उसकी अप्रतिहत गति अभी स्वच्छन्द थी।

आगे कुछ वे लाइनें कवि ने अपनी अमर लेखनी द्वारा लिख दी हैं, जो बेजोड़ हैं। पढ़ कर भयङ्कर कष्ट-चेतना होती है। बुद्धि होठों पर उँगली रख कर कुण्ठित हो जाती है :—

किसी ने भरा न था निज स्वर।
बना वंशी स्वतन्त्रता हर।
हुए थे छेद नहीं तन में।
बाँस था लहराता बन में।
विपिन में मैं लहराता था।
राग मैं अपना गाता था।

इन पंक्तियों में दासत्व का सुन्दर अध्ययन है। वाद्य की जन्म-कथा लिखी है। अभी तक 'जग-जङ्गल' व्यास शरीरी वंशी नहीं बना था, स्वतन्त्र था। वंशी का रूप दासता की पराकाष्ठा है। ग्रामोफोन के एक प्रकार के रेकर्ड्स होते हैं, जिन्हें हिज़ मास्टर्स वायस (His Master's Voice) कहते हैं। इसका भाव यह है कि रेकर्ड में कलाविदों के भाव ज्यों के त्यों भरे हैं। वंशी का भी कुछ ऐसा ही हाल है। उस दूत को बड़ा चतुर कहते हैं, जो सम्बाद बिलकुल वैसा ही पहुँचा दे, परन्तु उससे भी झुटियाँ हो ही जाती हैं। किन्तु इस वंशी-दास से वह झुटि नहीं होती। बजाने वाला उसे मुँह से लगा कर जैसी तान भरता है, जो कुछ भी वह कहता है, बिना परिवर्तन किए वह वैसी ही टेर अलापता है। इतना सेवानिष्ठ क्रीतदास भी नहीं होता। यह दासता की चरम सीमा है। ऐसी वंशी में अभी किसी ने अपना स्वर नहीं भरा था। प्राचीन समय में जब मनुष्य को प्रभुत्व दर्शाना होता—उसे पराजित शत्रु को दास बनाना होता, तो वह उसकी नाक छेद कर नथ देता



था। यही दासत्व का चिन्ह था। इसको धरव के रहने वाले 'नाकिल' (नकेल) कहते थे। यही प्राचीन दासत्व-चिन्ह स्त्रियों के नय के रूप में अवशिष्ट हैं। जानवरों को भी नाथ कर ही उन्हें हम अपने प्रभुत्व का क्रायल बनाते हैं। सो वंशी का वह रूप तब नहीं था। दासता के चिन्ह-रूप उसमें ताल-छिद्र अभी नहीं बने थे। अभी वह बन में लहराने वाला बाँस थी। इस 'लहराने' शब्द में हमें सङ्गीत का आभास होता है। कवि ने जान-बूझ कर ही इसका प्रयोग किया है। इसमें केवल अलङ्कृष्य नहीं, गान-तरङ्ग है। बाँस के विपिन में लहराने और उसके वहाँ गाने में वाद्य-कज्ञा का इतिहास छिपा हुआ है। वंशी का आविष्कार बड़ा प्राचीन है। तब का है, जब आधुनिक संस्कृति ने हमें अक्षम नहीं बना दिया था। जब वे जातियाँ, जिन्हें हम बर्बर कहते हैं और जिन पर विद्रप की हँसी हँसते हैं, बनों में स्वच्छन्द विचरती थीं। जिन पर अभी ईसा की मसी-हाई और कृष्ण की रास की व्याप नहीं पड़ी थी, वे आदि जातियाँ कला-रहित नृत्य-गान का केन्द्र थीं। बाँस जङ्गल में सचमुच ही गाते हैं। उनमें सुराग्र होते हैं, जिन्हें वंशरन्ध्र कहते हैं। उनमें होकर जब हवा बहती है, तो प्रकृति-गान का वह राग प्रस्फुटित होता है, जिसे सुन कर बनवासी मुग्ध हो जाते हैं। जातियों ने इसी सूत्र के सहारे वंशी का आविष्कार किया। उसे छेद कर अपनी स्वर-लहरी उसमें तरङ्गित कर दी। इस प्रकार विपिन का रागमस्त बाँस छिद्र कर दास वंशी बन बैठा, जिसमें मालिक की आज्ञा न मानने की तनिक भी क्षमता न थी। कवि की इस कल्पना पर क्या निसार दें। है ही क्या? केवल उसका हृदय, उसके हाथ चूम कर रह जाता हूँ।

इसके बाद कवि के एकान्त जीवन की एक घटना वर्णित है, जो ग्राम्य जीवन की उन सरस घटनाओं में से है, जो कभी-कभी जीवन को इस भाँति बदल देती हैं कि उसका पहचानना कठिन हो जाता है। इस जीवन के प्रभात में कितनों ही पर इस साँचे में ढली 'हमजोली बाला' के प्रेम का अवतरण होता है, जिसमें खेल की सूठी 'कुट्टी' का भी अभाव हो जाता है। ऐसी प्रेममयी बाला के बाल, जो अपना श्वेत अञ्जल काला कर कवि को काली जामुन खिलाती थी, यदि उसने कुसुद तथा

सन्तरा के फूल लाकर सजाए तो क्या किया? कवि के बनाए कनक-कज्र के मूमक बाला के अधखिली कलियों के द्वार के सामने क्यों न तुच्छ हों!

अब कवि के ध्वनि-चातुर्य की एक बानगी लीजिए—

विठाए गए नए कुल्ल पेड़,
मैंड़ पर जिनके थे बगरेंड़।

लाल फूलों से लदे मेड़ के बगरेंड़ों का एक अलग ही रहस्य है। बगरेंड़ के दूध (रस) से लड़के एक बड़ा सुन्दर खेल करते हैं। एक दोने में उसका दूध भर कर एक डण्डल के फन्दे को भिगो कर जब उसे फूँकते हैं, तो सुन्दर बबूले बन कर आकाश में नाचने लगते हैं। इस क्रीड़ा के वर्णन करने का सामर्थ्य कवि की पंक्तियों के रहते हुए मुझमें नहीं है—

पल्लवित फुनगी उनकी तोड़,
बना दोना पत्तों को जोड़।
दूध से दोना लाते भर—
दूध का एक डण्डल लेकर।
गिरह दे, फन्दा उसमें डाल,
भिगो कर उसे फुला कर गाल।
फूँकता डण्डल ऊपर कर,
व्योम गोलों से जाता भर।
बुलबुले उठते जाते थे,
अनोखे रङ्ग दिखाते थे।

निरीक्षण में तो कवि ने क्रम तोड़ दी है। एक-एक काम जो खेलने वाले बच्चे करते हैं, कवि ने व्यक्त कर दिया है। जिस अभागे ने ग्राम्य-जीवन के इस दुर्लभ क्रीड़ा के दर्शन न किए, क्या उनके मस्तिष्क व नेत्रों के सम्मुख खेल स्थूल रूप में आकर नहीं खड़ा हो जाता? एक-एक बात, एक-एक गति का निरीक्षण कवि ने पूर्णतया किया है। बालकों की क्रीड़ा-सहचरी प्रकृति कवि की अनुचरी हो गई है—उसे अपना हृदय-भागदार ही जैसे खोज दिया हो। कालिदास और वर्बस्वर्थ के सिवा मुझे और तो कवि-हृदय नहीं जान पड़ते, जिनके कर्ण-कुहरों में प्रकृति ने मुस्कुरा कर अपना रहस्य डाल दिया हो। क्या नहीं कह दिया—बगरेंड़ की फुनगी तोड़ना, पत्तों को जोड़ कर दोना बनाना, फिर उसे दूध



से भरना, दूब का डण्डल लेकर उसमें गिरह देकर फन्दा डालना, उस फन्दे को दूध से भिगोकर सिर के ऊपर कर गाल फुला कर फूँकना और फलस्वरूप व्योम को दूध के गोलों से भर देना—क्या बाकी रक्खा ? कौन सा कवि है, जो इन पंक्तियों में किसी कल्पित कमी को पूरी कर देने का हौसला रखता है ? दूब के डण्डल में गिरह देकर फन्दा डालना, उसे दूध से भिगो कर गाल फुला कर फूँकना और व्योम को बने हुए बबूलों से भर देना तो जैसे हम देख रहे हों । गाल फुला कर डण्डल फूँकते हुए कवि की वायुगति भी जैसे सुन पड़ती है । ये बुलबुले बन कर ही मिट नहीं जाते, वरन् जैसा कि कवि ने अन्यत्र कहा है—

× ×
इस प्यारी दुनिया में आया,
फूला मैं भर कर उमङ्ग में ।
भूला मैं अपनी तरङ्ग में,
× ×
मुझे लहरियों ने अपनाया,
गोदी में ले बहुत खेलाया ।
थपक-थपक कर मुझे सुलाया,
फिरा थिरकता ताल-ताल पर ।
× ×

सूर्य-रश्मियों के प्रविष्ट होने से बबूलों में जो सात रङ्ग आ जाते हैं, कवि उनकी केवल कल्पना ही नहीं करता, दिखा देता है । प्रकृति-सहचर होने के कारण कवि को अपने अस्तित्व का भी ज्ञान है । सृष्टि का रहस्य वह जानता है । पुरुष और आत्मा की सहचरी इस प्रकृति का अव्यापक रूप वह जानता है । वर्णन में वह अपनी स्थिति को भूलता नहीं । अनन्त राग गाने वाले उस कवि को क्षणिक सुख-चेष्टा की कथा ज्ञात है । आनन्द की सीमा बढ़ कर जब व्योम में पहुँच जाती है, तो ज्ञानी को उसके नाश का भी भय हो आता है । अनोखे रङ्ग दिखाते हुए बुलबुले आकाश को भर कर प्रकृति की ताल-ताल पर थिरकते हैं, पर कब तक ? जब तक काल उनकी इठलाती चाल पर—उनके कल्पित अनन्त सुख पर—विद्रप की हँसी नहीं हँस देता । उसे भी बचपन सूझ जाता है । वायु-

बाण को हाथ में लेकर धीरे-धीरे वह दूध से बने बबूलों को फोड़ देता है । उनके अवयवों से जीवन-तन्तु तोड़ कर काल-सूत्र बढ़ता है । पूछता है—यही है अनन्त आनन्द । वायु की नींव को दृढ़ समझ कर अठखेलियाँ करने वाले, मदमस्ती में मटकने वाले बबूलो, ज़रा और थिरको ।

इस सृष्टि-संहारकर्ता के आगे कवि की भी एक नहीं चलती, रो उठता है । वेदना की इस ठेस पर निष्ठुर काल ने भी आँसू बहा दिए होंगे । कवि का कोमल हृदय चीत्कार कर उठता है—

यह मेरा नव विरचित संसार
हमारे जीवन सा सुकुमार
फूँक में बनता, मिट जाता,
तत्व जीवन का दिखलाता ।

अब क्यों रोता है कवि ? यह किसकी मार है ? किसने इनका निर्माण किया था ? किसने खोया ? तुने ही तो दूध के कोमल गोलों में रुद्र की वह संहारकर्त्री चोट भरी, जिसकी विकट मार ने तुम्हारे दुर्बल हृदय को चूर-चूर कर दिया । इन पंक्तियों की सार्थकता पर, जीवन के क्षणिक सामर्थ्य पर कौन नहीं रो देगा ? हमारा जीवन कितना सुकुमार है । रावण की प्रबल काया ने अगणित पुत्र-पौत्रों की सृष्टि की—एक नया संसार ही रच डाला, परन्तु कितना क्षणिक ! शीघ्र ही काल ने धीरे से अपनी काली चादर बटोर ली, जिसके तमपूरित गह्वरों में बड़े-बड़े इन्द्रजीत पिस गए । फिर इन बबूलों की क्या बिसात ? अरे यह तो तुम्हारे ही अमर शब्दों में फूँक में बनने और मिट जाने वाला संसार था, जिसे एक मौज ने बनाया था और जो जीवन-तत्व दिखलाता हुआ काल-निशा की गोद में सदा के लिए सो रहा । जीवन क्या इतना नाज़ुक है ? द्वीपक की लौ बड़ी स्नेह-रहित, सूखी ही जल रही है ? हाँ, मुझसे क्यों पूछ रहा है, उनसे पूछ जो अपनी जीवन-लीला बड़ी-बड़ी सेनाओं के रक्षा-व्यूह में समास कर गए । मक्रदूनिया का प्रबल प्रतापी फ़िलिप विश्व-विजय के लिए अधीर हो रहा था । बड़ी-बड़ी सेनाएँ टुकड़ी की । तैयारी दिग्विजय की थी । सोचा, लड़की की शादी समास कर सारी शक्तियाँ बस इसी ओर लगा दूँगा ।



विवाह की रात्रि में जब वह भविष्य के विश्वसिंहामन पर बैठा, काल्पनिक निद्रा में निमग्न था। अचानक एक निर्मम आनतायी ने उसका जीवन-द्वार खोल दिया। वह कौन था? केवल एक इत्यारा। फिलिप जब यूनान की विजय कर रहा था, उसके बेटे सिकन्दर का मस्तिष्क ज्ञानी अरस्तू द्वारा सँवारा जा रहा था। एक रोज़ उसने गुरु से पूछ ही तो दिया—देव, पिता देश पर देश जीतते जा रहे हैं। यदि यही रफ़्तार रही तो मेरे लिए क्या बच रहेगा? अरस्तू के बहाने काल ने जवाब में मुस्करा दिया। कहा—अच्छा अभी बालक है, ज़रा खेलता हुआ खटाखट सब से ऊँची चोटी पर चढ़ जा, वहाँ दताऊँगा। सिकन्दर ने ज़रक्सीज़ का बदला लिया। ईरान तथा सारा मध्य एशिया जीता। भारत का पञ्जाब लिया। विजयमद से वह भूम रहा था। एक साधु जाड़ों में घाम सेंक रहा था। विश्वविजयी को उस पर दया आई। कहा, विश्व-सम्राट तुम्हें कुछ देना चाहता है। तुम नहो हो, बोझो क्या चाहते हो? साधु ने मुस्करा कर कहा—सम्राट, ज़रा धूप छोड़ दो। और क्या माँगूँ, लेकर ही कब तक रख सकूँगा। सिकन्दर अप्रतिभ हो गया। उसका मस्तक लज्जा से अवनत हो गया। काल ने कहा—अरे ये तो केवल छुँटे हैं, अभी और चढ़। सिकन्दर बाबुल पहुँचा। विश्वविजयी सेना से घिरे अद्वितीय हकीम की देख-रेख में भी सिकन्दर के ऊपर साधारण ज्वर ने वह विजय प्राप्त की, जो मालवों का मर्मभेदी बाण भी न कर सका था। पार्थिव सुख की सबसे ऊँची चोटी पर चढ़ा कर काल ने बस एक हल्का सा धक्का दिया, छू मात्र दिया। फिर कहाँ सिकन्दर, कहाँ उसकी सेना? सब खो गए। प्राणी क्या है, यह संसार क्या है, कवि के ही शब्दों में अन्यत्र सुनिष्ट—

अकस्मात् एक भौंका आया,
जिसने जीवन-दीप बुझाया।
बस अनन्त में मुझे मिलाया।
अपनों ने मुझको अपनाया।
सूझा सब यह, था मैं भूला,
मैं था केवल एक बबूला।

उपनिषदों के भाव-तत्त्व का कितना सुन्दर अनुशीलन कितनी सरल भाषा में, कवि ने किया है। इस

विश्व-रहस्य की रहस्यमयी भाषा की सहायता बिना कितना सुगम बना दिया है। छायावाद की जटिल शब्दावली में से एक की भी ज़रूरत नहीं समझी। परन्तु सीधी आँखें हमने वह दृश्य देखे, जो दुष्प्राप्य हैं।

काव्य की चोट से हम बिलबिला उठे थे, परन्तु इस अवस्था में हमें छोड़ना कवि ने उचित नहीं समझा। बाल-लीला के एक सुन्दर दृश्य में उसने वह रङ्ग भर दिया, जिसे देख कर कम से कम थोड़ी देर के लिए तो हम अवश्य ही सांसारिक सत्यता को भूल जाते हैं। सावन की घटा देख कर कवि-कैफ़ी नाच उठता है। उसकी प्रकृति-कुमारी बरसाती रङ्गों से पूरित होकर गोदने का फूल चाहती है। प्रकृति-कुमारी का पुरुष-रूप हमारा कवि भी चित्रकार बन बैठा—रङ्ग भरने की तैयारी में लगा। पर भरवाए कौन? यहाँ तो सुई देखते ही बेत काँप गया, उसे 'चुभाते ही होगई अचेत'।

ज़रा संभली तो सुई तोड़,
दिखा कर दिया कुँ में झोंड़।

इस तरह दोना-टोटका भी संभाला, दूटी सुई दिखा कर विश्वास भी दिलाया कि इस निर्दयी को अब निर्वासित ही जानो। अगर ऐसा न करता तो उसे दुधिया घास के डण्डलों पर विश्वास क्योंकर होता। वे भी त उसे सुई से ही प्रतीत होते। सुई को तो देखा भ था, दुधिया घास के डण्डलों को तो देख भी नहीं सकते। उनके दर्शन से तो सारा चमत्कार ही चला जाता है। रङ्ग ही नहीं भरते, वरन् अपने आप भर जाते हैं। आँखें खोलते ही कर की सारी कलियाँ आप से आप खिल उठती हैं। आभ्य-जीवन का यह रूप बहुतों ने देखा, अनुभव किया होगा, पर कितनों को उसकी फिर याद आती है? कितने भावुक हमें इसकी याद दिलाते हैं? जीवन के थपेड़ों के सम्मुख सुख की याद तक तो भूल जाती है, उसका सञ्चर कौन करे, क्योंकर करे?

समय करवट बदलता है और प्रात-जीवन की कितनी ही ऐसी सखियाँ उसकी आँधी में उड़ जाती हैं। उसकी तलवार की धार उतर जाती हैं। कभी किनारे लगी जो मिल भी जाती हैं, तो उनका पहि-चानना मुश्किल है। खोई हुई उस कली को दूसरे अमर के प्रेमाङ्क में खिली पाकर हम दिख मसोस कर



रह जाते हैं। कुछ हिम्मत करते हैं तो वह रिस करती है। उसका संसार अब दूसरा है, हमारे मन्दिर का एक कोना चाहे सूना ही क्यों न पड़ा हो। पर सूना पड़ना कैसा ? काल तो बड़ा भारी पूरक है। वह कुछ भी झाली नहीं रहने देता। हमारा अङ्क भी भर ही जाता है। हम भी गोदना और फूल भूल ही जाते हैं। हमारे स्मृति-मणि पर भी कम से कम तब तक के लिए रेत चढ़ ही जाती है, जब तक कोई सौन्दर्य-‘भक्त’ कवि उसे काव्य-खराद पर चढ़ा कर चमका नहीं देता।

चक्करदार पगडण्डी पर विवश चलते हुए उस युवक को अभी का ‘शैशव-काल’ याद आया था। व्यथा के आवेग में वह बालपन की सारी कहानी सुना गया। कितनी सारी सुन्दर घटनाओं का सिंहावलोकन उसने किया, परन्तु दुख घटने के बदले और सघन हो गया। समय ने करवट बदल कर वह हाथ मारा, जिसकी तल-बार चलाने वाला ही तारीफ़ करता। करवट क्या थी, शस्त्रधारी की पैतरा थी। शीर्ष कर दिया समय के इस हाथ ने, उठने की ताब न रही। चक्कर में डाल कर छोड़ा। सीधा रास्ता नहीं, जो टट्टू तक तय कर ले। यहाँ तो चक्कर है और उस चक्कर में तेली के बैल की भाँति बस चलना ही चलना है। रास्ते का अन्त नहीं। उस पर काल के कोड़े अलग। ऐसे चक्र-व्यूह में पड़ कर बड़े-बड़े अर्जुन अभिमन्यु हो गए। सालोमन सरीखे चतुर इस चक्कर की धुरा में धूल हो गए। सालोमन और हार्लरशीद के नियम और न्याय की कहानियाँ हम आज भी पढ़ते हैं। उनकी मध्य एशिया अब भी है, पर वे कहाँ गए ? उन्हें कहाँ ढूँढ़ें, मिट्टी में ? उमर ख़य्याम के इस कारवान सराय ने अपने सुबह-शाम-रूपी दरवाज़ों से, बड़े-बड़े सुलतानों में से किसे मथ उसकी शानोशौकत के दो घण्टे ठहरा कर अनन्त यात्रा पर नहीं भेज दिया ? उमर सच ही पूछता है—क्या हुआ जमशेद और बहराम का ? जहाँ जमशेद की शान के डर से बड़े-बड़े योद्धा अधीर हो उठते थे, अब वहाँ शेर और छिपकलियों के दरबार होते हैं। शिकारी बहराम के तीरो-नज़र के सामने बड़े-बड़े सिंह दुम दबा जाते थे, उसकी क्रब को आज सूधा गधा तक लात मारता है और उसे सुध नहीं होती। क्यों ? फ़लाँटू और अरस्तू सरीखे विद्वान्, कणाद तथा गौतम जैसे

तत्त्ववेत्ता अपनी बहस से संसार कँपा दिया करते थे, विद्यामद से सूमते फिरते थे ; समय ने उन्हें बेवकूफ़ समझ मिट्टी से उनके मुँह बन्द कर दिए।

उत्तरकाल के कोड़े सीधी राह भी नहीं चलने देते। निकाला जाता हुआ युवक बछेड़ा पुरानी स्वतन्त्र चाल की सुध कर नई चाल सीखने में शलतियाँ करता है, पर कालगुरु कोड़े दे-देकर सरपट, दुलकी, पोड़ियाँ सब सिखा देता है। अन्त में बेचारा बाज़ी जीतने के भरोसे चलता है, पर सामने साफ़ मैदान हो तो जीते भी; यहाँ तो समय का चक्कर है। यह तो तेली का घर है, मैदान नहीं। इसमें तो धीरे-धीरे पतन ही सम्भव है, चाहे जितना भी रो-रोकर सुनाओ—

आज तक चलते ही बीती,
नहीं बाज़ी लेकिन जीती।

भक्त जी की इस कृति को हिन्दी काव्य की मैं सर्वोत्तम रचना मानता हूँ। क्या शब्द-योजना, क्या ध्वनि-माधुर्य और क्या भावुकता, सब में ही यह कृति हिन्दी-काव्य को अपने बहुत पीछे छोड़ देती है। यह एक सुन्दर आदर्श स्थापित करती है, जिससे आधुनिक हिन्दी कवि, यदि वे चाहें, बहुत कुछ सीख सकते हैं। सीधी भाषा में उच्च, सुष्ठु भाव किस प्रकार लिखे जाते हैं, यह बात इनकी कविता खूब सिखाती है। सुन्दर सरस भावों का यह नमूना है। भावों को किस प्रकार शरीरी बनाया जाता है, कवि इसे यहाँ आकर सीखें। मनस्तत्व के निरीक्षण में कवि ने कहाँ तक सफलता पाई है, कोई यहाँ आकर देखे। यह कवि भी शृङ्गार की काफ़ी आराधना करता है, परन्तु इसमें प्रकृति की परिचर्या प्रचुरता में रहती है। ब्रजभाषा के कवि आँखें खोल कर देखें, केवल नखशिख वर्णन ही कविता नहीं है। बड़ी उच्च कोटि की कविता सरस भावों में पगी, सरल भाषा में लिखी जा सकती है। ‘बालस्मृति’ काव्य-तुला पर तुल कर यह बात सिद्ध कर देगी कि इस कवि की कृतियों में ही नहीं, बल्कि आधुनिक हिन्दी की सारी काव्य-निधि की यह सर्वोत्तम मणि है। इस भारतीय कोहनूर में वह शक्ति है, जो शीघ्र ही श्रीरवीन्द्र की भाँति किसी पारखी को आकर्षित करेगी, जो इसकी प्रतिभा को संसार के सम्मुख रखेगा। देखें भारतीय



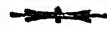
काव्य-कला के और विशेष कर हिन्दी-जगत के कलाविद् कय इस विश्व-कवि का स्वागत करते हैं। हिन्दी कविता में प्रकृति-मन्त्र फूँकने वाले इस काव्य-शासन द्वारा कौन-कौन से साहित्य कृतार्थ होते हैं, यह देखना है। यदि आज विक्रम और भंज का जमाना होता, तो 'भक्त' कालिदास का आसन ग्रहण करता। भोज का खजाना खाली होता। इस कवि को अपने दरबार में रख कर कवि-पारखी श्रीहर्ष और राजशेखर धन्य हो गए होते। फिर भी हिन्दी-जगत में कौन है, जो 'भक्त' जी की कविता एक बार पढ़ कर इनका न हो जाए। इस हिन्दी वर्डस्वर्य के कौन से राग में शैथिल्य है, कोई बताए ? इनकी कविता पढ़ कर कितने ही अपने 'जीवन की ग्रन्थियाँ' सुलझा लेंगे।

आधुनिक कवियों का कन से कम एक बात तो हृदयङ्गम कर ही लेनी चाहिए कि केवल प्रकृति और मनस्तत्त्व पर की गई कविताएँ ही चिरायु हो सकती हैं, क्योंकि ये दोनों ही मानव-सृष्टि के आदि से हैं और अन्त तक रहेंगे। नखशिखादर्श तो क्षणिक है। इसका आनन्द अल्पकालिक है। शीघ्र ही हम इस प्रकार की कविता से ऊब कर किसी स्थायी साहित्य की ओर आँखें लगा देते हैं। आज हिन्दी में नखशिख कविता का प्रचुर साहित्य है सही, पर हमें इसका सुख स्थायी नहीं

जँचता। मानव-सृष्टि के आदि काल से ही साहित्य का मूक अथवा व्यक्त रूप रहा है। तब भी लोग कल्पना के पुल बाँधते थे और अब भी। परन्तु तब की बहुत सी बातें मिट गईं, आज की कल मिट जाएँगी। काल की ऐसी ही गति है। मसीहा की मसीहाई की स्मृति शीघ्र ही हमारे हृदय-पटल से मिट जायगी। मन्सूर के 'अनल-हज़' की ध्वनि भी अब धीरे-धीरे कुछ धीमी पड़ती जानी है। भगवान बुद्ध के आदेश भी तब धराधाम से उठ जाएँगे, जब चक्र-रूप में परिवर्द्धित होने वाली यह मानव-संस्कृति फिर मध्य एशिया के ध्वंसकारियों की तलवार हो जाएगी। तब क्या शेष रह जायगा ? केवल वही प्रकृति और मन। इसका ध्यान केवल 'भक्त' कवि हमें कराता है। सच ही है—कवि जान लें कि सृष्टि के आदि से अन्त तक भी वन्योद्यान का नाश नहीं हो सकता। इसलिए प्रकृति-रस के प्याले ढालने वाले कवि ही अमर होंगे। याद रहे, नदी-कूल के वृक्ष से जासुन तोड़ कर नीचे गिराने वाले 'भक्त' और जल में खड़ी फलों से अपना अञ्जल काला करने वाली उसकी 'बाला' ही अमर हैं। वहाँ के लहराते हुए बाँस ही सदा वंशी की परवशता पर हँसते रहेंगे। 'बालस्मृति' की अमर तान ही विधि के लगाए बनों में सदा गँजती रहेगी।



रूपराशि



[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

जीवन का छोटो-सा बादल ।

एक विशाल शून्य के उर में, क्यों इस भाँति हुआ उच्छ्वङ्गल !!

दिशा नहीं है ज्ञात और—

है पथ विहीन सारा नभ-मण्डल ।

आ-आकर आकार विकृत—

कर जाता है भविष्य का प्रतिपल ॥

प्राण ! तुम्हारा हास—यही तो,

है मेरा अस्तित्व अचञ्चल ।

मेरे कण-कण में निर्मित हो,

सुखी विश्व का नव क्रीड़ास्थल ॥



कर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट०]

(गताङ्क से आगे)

शिक्षा-प्रचार



की की स्त्रियाँ यूरोपीय महिलाओं के समान बनती जाती हैं। पुरुषों के साथ बैठ कर दावतों में खाना, पुरुषों के साथ नाचना और गाना, अकेली सिनेमा आदि में जाना या सैर करना ऐसी बातों का खूब प्रचार हो चला है। ग्रामीण स्त्रियों में भी यह विचार-धारा पहुँच रही है। अब तो तुर्की स्त्रियाँ राजनैतिक अधिकार भी माँगने लगी हैं। गत वर्ष सरकार की ओर से भी प्रस्ताव किया गया था कि स्त्रियों को भी मताधिकार दिए जावें। शिक्षा-प्रचार के कारण लिखी-पढ़ी महिलाओं की संख्या भी दिन-दिन बढ़ती जाती है। तुर्की स्त्रियों में अनेक लेखिकाएँ और सम्पादिकाएँ हैं और कई अपनी भाषण-शक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। यों तो सन् १९०८ के बाद से ही तुर्की स्त्रियाँ उन्नत होने लग गई थीं। महासमर के समय में इन्होंने अपने देश का पूरा साथ दिया था। अनेक स्त्रियों ने जख्मी सैनिकों की सेवा की थी, चन्दा एकत्र किया था, मुफ्त में कपड़े दिए थे, रेड क्रेसेण्ट का काम किया था। दफ्तरों तथा दूकानों में काम किया और कभी-कभी रणक्षेत्र में भी पुरुषों का साथ दिया था। इस समय तुर्की स्त्रियाँ सरकारी दफ्तरों में नौकरियाँ करती थीं, दूकानों पर काम करती थीं, डाकखाने आदि संस्थाएँ, जहाँ हल्का कार्य होता था वहाँ नौकर होती थीं। अध्यापिकाएँ और डॉक्टरनिँ तो जिधर देखो उधर नज़र आती थीं।

हजाज और नज्द के सिवाय सब मुस्लिम देशों में शिक्षा का प्रचार शुरू हो गया है। तुर्की, मिसिर, ईराक, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान तथा मोरक्को आदि सब

देशों में स्त्री-शिक्षा के लिए संस्थाएँ स्थापित हो चुकी हैं, पर कहीं इसका प्रचार कम है और कहीं अधिक है। तुर्की में स्त्री-शिक्षा सबसे अधिक उन्नत है। कुस्तुन्युनिया में स्त्रियों के लिए एक बहुत बड़ा कॉलेज है और कई नगरों में उनके लिए हाईस्कूल हैं। इसके अतिरिक्त लड़कियों को लड़कों के साथ पढ़ने की भी इज़ाजत है। सन् १९१९ से पूर्व ९९० महिलाओं ने विश्वविद्यालय की ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त की थीं। २० ने उच्च कानूनी परीक्षा पास की थी, १४ ने डॉक्टरी योग्यता प्राप्त की थी, ३० ने साहित्य पढ़ा था और ७१ ने विज्ञान का अध्ययन किया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि हाई-स्कूल, मिडिल स्कूल तथा प्रारम्भिक पाठशालाओं में कितनी लड़कियाँ शिक्षा पाती होंगी। मिस्र और ईरान में भी स्त्री-शिक्षा बढ़ती जाती है। ईरान के कई परिवारों की स्त्रियाँ तो तुर्की लड़कियों की भाँति यूरोपीय देशों में शिक्षा पाती हैं और ईरान में भी कई स्त्री-स्कूल खुल गए हैं, परन्तु तुर्की जैसी उन्नति अभी यहाँ नहीं होने पाई है, क्योंकि ईरान का लोकमत अभी इतना उन्नत नहीं है। तुर्की में हज़ीदा आदिब हानुम ने देशभक्त तुर्की महिलाओं का एक ऐसा सङ्गठन किया है, जिसका कार्य गाँवों में स्त्रियों की स्वास्थ्य-रक्षा के नियम तथा प्रसूतिशास्त्र के सिद्धान्त बतलाना है। इस कार्य में उसको अपने पति डॉक्टर अदननबे से बहुत सहायता मिलती है। डॉक्टर बे कमालपाशा के मन्त्रि-मण्डल में शिक्षा-सचिव हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का प्रचार ईरान तथा ईराक में भी होता है, पर इनमें अधिक उन्नति नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि इन देशों में आधुनिकता का विरोध नष्ट नहीं हुआ है। सुधार और उद्धार को प्रायः लोग समाज तथा धर्म की मर्यादा का उल्लङ्घन समझते हैं। अफ़ग़ानिस्तान में लोकमत न होते हुए भी अमीर अमा-नुल्ला ने स्त्री-शिक्षा का प्रचार बड़े ज़ोरों के साथ किया

था। डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसने लगभग सौ लड़कियों को तुर्की भेजा था और काबुल में स्त्रियों की शिक्षा के लिए एक स्कूल भी खोला था। इसके अतिरिक्त मैजिक लालटेन तथा अन्यान्य चित्रों द्वारा ग्रामीण स्त्रियों को स्वास्थ्य-सिद्धान्त आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। ये लड़कियाँ यूरोप से शिक्षा ग्रहण करके तो आई हैं, लेकिन वर्तमान अफ़ग़ान शासन में ये क्या कार्य करेंगी और कैसे रहेंगी, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। रूसी तुर्किस्तान की मुस्लिम स्त्रियाँ भी शीघ्रता से उन्नति करती जाती हैं। वहाँ शिक्षा अनिवार्य है, जिसके कारण कुछ ही वर्ष बाद स्त्रियों की सङ्कुचितता तथा अन्धकारता नष्ट हो जावेगी। मोरक्को आदि उत्तर अफ़्रीका के प्रदेश तथा भारतवर्ष की मुस्लिम स्त्रियों में अभी शिक्षा नाम-मात्र को है। मुस्लिम देश की कृषक स्त्रियों की भाँति यहाँ की कृषक तथा मज़दूर मुस्लिम स्त्रियाँ भी परदा तो नहीं करतीं, पर विदेशी सरकार ने उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करने की चिन्ता नहीं की है। नगरों में रहने वाले सम्पन्न परिवारों में परदा होता है, इसलिए उनकी स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकतीं। इस विस्तृत देश में कुछ इने-गिने ख़ानदानों ने परदा छोड़ा है और कुछ महिलाओं ने उच्च शिक्षा प्राप्त की है, पर आठ करोड़ मुस्लिम-जनता में इनकी क्या गिनती की जा सकती है।

प्रेस

प्रेस की सफलता राजनैतिक जीवन पर निर्भर है। जिन देशों में निरङ्कुश शासन होता है और शासन-सञ्चालन में प्रजा का कोई हाथ नहीं होता तथा जनता को शासन के कार्यों की मीमांसा करने का अधिकार नहीं होता, वहाँ प्रेस का क्या प्रयोजन रह जाता है। इसलिए तुर्की के सिवाय १९१८ से पूर्व अन्य मुस्लिम देशों में एक-दो मामूली समाचार-पत्रों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। तुर्की में प्रेस-प्रचार के कई कारण थे। अमेरिकन, यूनानी, रूसी और फ़्रेञ्च आदि लोगों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ, जो वहाँ बसी हुई थीं, उनको अपने देशों का हाब जानने की स्वाभाविक इच्छा होती थी। इन बस्तियों में और तुर्की सरकार में प्रायः अनबन रहती थी, जिसके समाचारों की भी जनता को उत्सुकता

रहती थी। इसके अतिरिक्त इन लोगों में शिक्षा तथा साक्षरता भी अधिक थी, इसलिए इन लोगों में समाचार-पत्रों का १८ वीं शताब्दी से ही प्रचार था। इनके सम्पर्क से तुर्की में भी समाचार-पत्र पढ़ने की रुचि होने लगी थी। तुर्की पर यूरोपीय राष्ट्रों का दाँत हमेशा लगा रहता था और १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह हड़प-नीति और भी प्रबल होगई थी। बालकन-युद्ध, त्रिपोली-विजय, क्रिमियन-युद्ध तथा १९०८ की राज्य-क्रान्ति के कारण तुर्की लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय विषयों तथा अपनी घरू राजनीति में अधिक रुचि हो गई थी। इस कारण तुर्की में प्रेस के प्रचार को बहुत सहायता मिली थी। इन राजनीतिक घटनाओं के कारण तुर्की प्रेसों पर आपत्तियाँ भी बहुत आई थीं। १९०९ में कई प्रेस ज़ब्त हो गए थे और कई सम्पादकों को क़ैद कर लिया गया था। इससे पूर्व भी प्रेस को कोई स्वतन्त्रता नहीं थी। विदेशी बस्तियों के प्रेस पर तो तुर्की सरकार का अधिक वश नहीं चलता था, पर तुर्की प्रेस का चाहे जब गला घोट दिया जाता था। तो भी १९०८ में दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक सब मिल कर लगभग २५ अछड़े पत्र प्रकाशित हुआ करते थे, जिनमें कई सचित्र थे और हज़ारों उनके आहूक थे। इन पत्रों में 'सदाये मिल्हत', 'हबरत', 'वतन', 'हृशतरक' उल्लेखनीय हैं। १९२० में जब विजेता मित्रों ने कुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा कर लिया था, तो राष्ट्रीय नेताओं के साथ ही साथ मुख्य सम्पादकों को भी क़ैद करके मालदा द्वीप में भेज दिया गया था। नगर में सैनिक शासन स्थापित हो जाने के कारण सब पत्र बन्द हो गए थे। इन क़ैद किए गए सम्पादकों में अहमद अमीन भी थे, जो 'वफ़त' नामक दैनिक पत्र के सम्पादक थे। इस पत्र की आहूक-संख्या उस समय दस हज़ार से ऊपर थी। जब खोसान की सन्धि हुई, तो यह सब राजनैतिक क़ैदी मुक्त किए गए और पत्रों का प्रकाशन पुनः आरम्भ हुआ। इस समय तुर्की पत्रों का ख़ूब प्रचार है। जब से प्रजातन्त्र शासन स्थापित हुआ है और यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों से तुर्की ने बराबरी की हैसियत से सन्धियाँ की हैं, तब से तुर्की जनता में पत्र पढ़ने का अधिक प्रचार हो गया है। अनिवार्य शिक्षा के कारण साक्षर लोगों की संख्या काफ़ी बढ़ गई है और बढ़ती



जाती है। यह भी समाचार-पत्रों के प्रचार का कारण है। पत्रों के साथ ही साथ तुर्की शासन भी उन्नत होता जाता है। १९वीं शताब्दी के अन्तिम चतुरांश में तुर्की विद्वानों का ध्यान यूरोप की विज्ञान विद्या पर आकर्षित हो चुका था और उसी समय से यूरोपीय भाषाओं के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद तुर्की भाषा में होने लगा था। प्रजातन्त्र स्थापित होने के बाद साहित्य की ओर भी उन्नति होने लगी, परन्तु तुर्की सरकार का यह आदेश हो गया कि तुर्की भाषा लैटिन लिपि में लिखी जावे। सरकारी स्कूल, दफ्तर, डाकखाने, अदालतें आदि सब में इन अक्षरों का व्यवहार किया जाने लगा। यहाँ तक कि महाजनों को भी अपना हिसाब-किताब इन अक्षरों में लिखने का हुक्म हुआ। जिन लिफाफों पर अरबी अक्षरों के पते रहते थे, उनको ठिकाने पर पहुँचाना बन्द कर दिया। हज़ारों अध्यापक इल लिपि की शिक्षा देने के लिए देश में भेजे गए और राष्ट्रपति कमालपाशा ने स्वयं राज्य के उच्च कर्मचारियों को यह लिपि पढ़ाई। समाचार-पत्र, पुस्तकें, विज्ञापन आदि अरबी अक्षरों में छपने बन्द हो गए। इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण प्रेस को बड़ी हानि उठानी पड़ी और साहित्य-वृद्धि में भी भारी रोक लग गई। इस लिपि के जारी होने के बाद एक वर्ष में केवल एक पुस्तक का प्रकाशन हो सका था। अब लैटिन लिपि को पढ़ना लोगों ने सीख लिया है, पर तो भी जिनको तुर्की अक्षरों के पढ़ने का अभ्यास था, उनको अब भी बड़ी असुविधा होती है। पिछले ३ वर्षों में जितनी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है, उनकी संख्या यदि तुर्की लिपि ही बनी रहती तो कई गुनी होती। अभी देश को लैटिन लिपि का आदी बनने के लिए कुछ अरसा लगेगा। पाठकों को यह जान कर शायद आश्चर्य होगा कि अन्य यूरोपीय देशों के प्रेसों के समान तुर्की प्रेसों को स्वतन्त्रता नहीं है। पिछले वर्ष तक सरकारी नीति की तीव्र आलोचना करना अपराध समझा जाता था और कोई ऐसी पुस्तक, जिसमें यूनानी योद्धाओं की प्रशंसा हो और तुर्की जाति की निन्दा हो, ज्वत् कर ली जाती है।

मिस्र

मिस्र और ईरान में प्रेस का प्रचार गत शताब्दी में हो चुका था। मिस्र के समाचार-पत्र तीन प्रकार के

थे—(१) अङ्गरेजों का साथ देने वाले, (२) उनका विरोध करने वाले, और (३) केवल सामाजिक तथा धार्मिक विषयों पर मत प्रकट करने वाले। मिस्र के साहित्य की भी पिछली शताब्दी में बड़ा वृद्धि हो गई थी। इसमें अधिकांश ग्रन्थ राजनैतिक विषयों पर लिखे गए थे या यूरोप के वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद थे। जमालुद्दीन के समय में मुस्लिम-सङ्गठन विषयक साहित्य भी बहुत बढ़ा था। धार्मिक विषय के ग्रन्थ अलअज़र विश्वविद्यालय से प्रकाशित होते थे। भारत-वर्ष के प्रेस के समान यहाँ के प्रेस भी शासकों के हाथ में हैं। चाहे जब उनको दबा दिया जाता है। जब से अङ्गरेजों का आधिपत्य स्थापित हुआ है, तब से तो प्रेसों का खूब ही दमन हुआ है। लॉर्ड क्रोमर, एडनबी, किचनर, जॉर्ज लांगड, सबने प्रेसों को दबाया है। स्वतन्त्र साहित्य का इसलिए प्रचार नहीं हो सका और अच्छे-अच्छे योग्य लेखक तथा सम्पादकों की योग्यताएँ ही नष्ट हो गईं। इस समय भी मिस्र में 'प्रेस एक्ट' जारी है।

अदीब हशार मिस्र का क्रान्तिकारी कवि तथा लेखक था और 'मिस्र' नामक पत्र का सम्पादन करता था। इसने अपने पत्र में जमालुद्दीन के भाषणों को प्रकाशित किया था। उसी समय नेपोलियन, फ्रेञ्च राज्य-क्रान्ति, मेज़िनी, गेरीबाल्डी तथा अमेरिका की स्वातन्त्र्य-प्राप्ति आदि विषयों पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। अरबी भाषा में नेपोलियन की जीवनी पढ़ने से ही देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता का उदय हुआ था। 'अलमुकस्तम' नामक पत्र अरबी-भाषा में प्रकाशित होता था, लेकिन इसके सम्पादक सीरिया के निवासी दो ईसाई थे और पत्र का ध्येय था अङ्गरेजी शासन की स्तुति करना और मिस्री राष्ट्रीयता का विरोध करना। 'अलमुआज्जद' राष्ट्रीय पत्र था और इसका सम्पादन शैख अली यूसुफ के योग्य हाथों से होता था। अली यूसुफ गत शताब्दी के अन्त में मिस्र का धुरन्धर लेखक तथा अत्यन्त योग्य सम्पादक माना जाता था और इसके पत्र की ग्राहक-संख्या बहुत बढ़ी थी। अरबी के अलावा मिसिर में फ्रेञ्च भाषा का उस समय भी प्रचार था और अब भी उच्च शिक्षित लोगों में तुर्की लोगों की भाँति इसका प्रचार है। तुर्की में इस समय भी फ्रेञ्च भाषा के ग्रन्थ



बहुत पढ़े जाते हैं और यही हाल मिस्त्र का है। गत शताब्दी के मिस्त्री नेता कमालपाशा ने अपने देशवासियों में राष्ट्रीयता की जागृति करने के लिए अनेक पुस्तकें फ़्रेञ्च भाषा में लिखी थीं। शैख़ अब्दुल असीस शाविस का नाम भी मिस्त्र में प्रसिद्ध है। यह 'अलअलम' नामक पत्र का सम्पादक था। लॉर्ड क्रोमर ने इसको देशनिकाले की सज़ा दी थी। 'अलसियास्ता' नर्म दल का पत्र है। इसको भारतवर्ष के 'लीडर' पत्र का भाई कहा जा सकता है। 'बलग' राष्ट्रीय पत्र है।

ईरान

ईरानी साहित्य पर गत शताब्दी के मध्य में ही यूरोप के विचारों का प्रभाव पड़ने लग गया था। अब्बास मिर्ज़ा नामक एक उच्चाधिकारी का ध्यान इस ओर सबसे पहले आकर्षित हुआ था। उसने मास्को और लेनिनग्राड में कई नवयुवकों को प्रेस का काम सीखने के लिए भेजा और नेपोलियन, महानपीटर, सिकन्दर, बोल्शेयर आदि की जीवनियाँ फ़ारसी में लिखाई थीं। सन् १८५० में मिर्ज़ा तागीखाँ ने 'ईरान' नामक पत्र चलाना शुरू किया। यह ईरान का प्रथम पत्र था। इसके बाद कई पत्र प्रकट हुए और विलीन हो गए। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में 'कानून' नामक पत्र का लन्दन से प्रकाशन होने लगा। इस पत्र का सम्पादक मलकखाँ था, जो ईरान की ओर से इङ्ग्लैण्ड में राजदूत था। इसने शाह को अनेक शासन-सुधार की सलाह दी थी, परन्तु जब इसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया, तो इसने अपने पत्र द्वारा ईरान के लोकमत को जाग्रत करना शुरू किया। 'कानून' ने ईरानी राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में बड़ा काम किया है। इसकी हज़ारों प्रतियाँ लुक-छिप कर ईरान में पहुँचती थीं और जनता बड़े चाव से इन्हें पढ़ा करती थी। इस समय ईरान में दैनिक, पाक्षिक तथा मासिक कई पत्र प्रकाशित होते हैं और ईरानी साहित्य यूरोपीय साहित्य के अनुवाद से भरता जाता है।

अफ़ग़ानिस्तान

अफ़ग़ानिस्तान शिक्षा और सभ्यता में अभी कुछ वर्ष पहले तक बहुत पिछड़ा हुआ था। यों तो अब भी वहाँ विशेष उन्नति नहीं होने पाई है, तो भी अमीर

अमानुल्ला ने कुछ वर्ष में ही अद्भुत कार्य किया था। इस शताब्दी के आरम्भ से ही अफ़ग़ानिस्तान के समस्त दार लोगों का ध्यान यूरोपीय सभ्यता की ओर आकर्षित होने लगा था और कुछ पुस्तकें तथा पत्र भी प्रकाशित हुए थे, पर यह सब नाम-मात्र को था। प्रथम प्रसिद्ध पत्र 'तिराज अल अहबर' था, जिसका सम्पादक महमूद तार्जी था। इस पत्र का उद्देश्य था पूर्ण स्वातन्त्र्य की प्राप्ति, अङ्गरेज़ी आधिपत्य का विरोध तथा शासन-सुधार। इस पत्र की अमानुल्ला सहायता करता था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद काबुल में ८९ पत्रों का प्रकाशन होना आरम्भ हुआ और राज-कर्मचारियों के लिए कम से कम दो पत्रों का ग्राहक बनना अनिवार्य किया गया। इस समय साक्षर अफ़ग़ानों में अद्भुत प्रगति की रुचि बहुत बढ़ गई है। वर्तमान अमीर नादिरशाह जिस समय अमीर अमानुल्ला की आर्थिक सहायता से सिंहासन-प्राप्ति का यत्न कर रहा था, उस समय वह साइडो-स्टाइल द्वारा एक पत्र प्रकाशित करता था। उधर वच्चा सकाऊ भी एक पत्र में अपना पत्र पुष्ट करता था।

अन्य देश

रूसी तुर्किस्तान में समाचार-पत्रों का अच्छा प्रचार है, पर हज़ाज, सीरिया, पलस्तीन, ट्रान्सजार्डियान, उत्तरी अफ़्रीका तथा ईराक में अभी उनका आरम्भ ही हुआ है। जिन देशों में पुराने प्रेस हैं, वे विदेशियों के हैं। स्वदेशी प्रेसों को अभी पूर्ण स्वतन्त्रता भी नहीं है, परन्तु उनकी दशा अवश्य सुधरती जाती है।

धर्म

एक समय इस्लाम धर्म संसार के मुख्य धर्मों में सबसे अधिक कट्टर और असहिष्णु था, लेकिन इस समय यह अधिकाधिक उदार और सहनशील होता जाता था। पहले शासक का प्रथम कर्तव्य इस्लाम का प्रचार ही समझा जाता था और अन्य धर्मावलम्बियों को तलवार के बल से इस्लाम-धर्म स्वीकार कराना तथा इस प्रयत्न में अपने प्राणों को निछावर कर देना बड़ा पुण्य काम माना जाता था। अब यह सिद्धान्त बिल्कुल बदल गए हैं। यह तो किसी भी देश में स्पष्ट नहीं कहा जाता कि क़ुरान और मोहम्मद अल्ला के पात्र नहीं हैं, परन्तु आधुनिक मुसलमान नेता, शासक तथा विद्वान



कुरान के कई प्रकार के अर्थ लगाने लग गए हैं; जैसे आधुनिक हिन्दुओं को, जो वे चाहें सो ही वेद और उपनिषद् में मिल जाता है, उसी प्रकार मुसलमानों को भी अपने उन्नत तथा आधुनिक विचार और योजनाओं की प्रतिध्वनि फौरन कुरान में मिल जाती है। जहाँ सामाजिक प्रथाएँ तथा सरकारी नियम इस्लाम से इतने दूर हट गए हैं कि उनका विधान खींचतान करने से भी कुरान में नहीं मिल सकता, वहाँ यह कहा जाने लगा है कि धर्म का क्षेत्र अलग है और राजनीति का अलग है।

तुर्की

यों तो सर्वत्र इस्लाम-धर्म में उदारता आती जाती है, लेकिन तुर्की में तो धर्म केवल व्यक्तिगत श्रद्धा का विषय रह गया है। ज़जिया कर तो अब केवल इतिहास के पृष्ठों में मिलता है। लेकिन तुर्की में तो धार्मिक विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता है। इतना ही नहीं, वहाँ यह भी घोषित कर दिया गया है कि इस्लाम राजधर्म नहीं है। वास्तव में तुर्की के राज्य-प्रबन्ध में कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे यह पता चले कि वहाँ मुस्लिम राज्य है। पहले वहाँ शुक्रवार को सरकारी दफ्तर बन्द रहते थे, परन्तु अब रविवार को तातिल मनाई जाती है। पहले मसजिदों में जो पाठशालाएँ थीं, वहाँ कुरान की शिक्षा दी जाती थी और राज्य तथा जनता की ओर से इनको सहायता दी जाती थी। ये संस्थाएँ अब सब तोड़ दी गई हैं और सरकारी सहायता बन्द कर दी गई है। सरकारी स्कूलों में इस्लाम ही क्या, किसी भी धर्म की शिक्षा देना अपराध माना जाता है। जिन स्कूलों को सरकार की ओर से सहायता मिलती है, उनमें भी धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। सन् १९२८ में दो अमरीकन ईसाई अध्यापिकाओं पर इस नियम का उल्लङ्घन करने के लिए मुकदमा चला था, उनमें से एक ने स्कूल में धार्मिक गीत गाया था और दूसरी ने धर्म-विषय पर क्लास में शास्त्रार्थ किया था। इस अपराध के लिए एक पर जुर्माना हुआ था और दूसरी को तीन दिन कैद की सज़ा हुई थी। मुस्लिम-न्यौहार भी सरकार की तरफ से नहीं मनाए जाते। मुस्लिम तथा मौलवियों को जो पहले सरकार से वेतन मिला करता था, वह सब बन्द हो गया। सरकार की इज़ाजत के बिना कोई

मुस्लिम धर्म-प्रचार नहीं कर सकता। खलीफा जो मुस्लिम-जगत का धार्मिक नेता माना जाता था और सम्पूर्ण मुस्लिम-संसार जिसको आदर की दृष्टि से देखता था, उसको पदच्युत करके देश से निकाल दिया गया है। ख़िलाफ़त की संस्था ही नष्ट कर दी गई है। उसका पक्ष करना और उसको पुनर्जीवित करने के विषय में बातचीत भी करना षड्यन्त्र माना जाता है। कुरान को अनादर की दृष्टि से नहीं देखा जाता, पर उसको भी अब राष्ट्रीय बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। सरकार की तरफ से कुछ विद्वानों की एक समिति बनाई गई थी, जिसने कुरान का अनुवाद तुर्की भाषा में किया है। फ़ेजदार टोपियाँ, जो भारतवर्ष में किसी समय मुसलमान-धर्म का एक अभिन्न अङ्ग मानी जाती थीं, उनका पहनना क़ानूनन मना है। शरीयती पाजामे कहीं दिखाई नहीं देते।

मिस्र

अन्य देशों में यह दशा अभी नहीं है, परन्तु गति इधर की ओर ही है। मिस्र में मुसलमान तथा क़ैम लोग जो ईसाई हैं, बहुत मिल-जुल कर रहते हैं। स्वातन्त्र्य संग्राम में दोनों कन्धे से कन्धा मिला कर काम करते हैं। मुस्लिम मुस्लिम और ईसाई पादरियों में पारस्परिक काफ़ी हेलमेल है। जो स्थान कभी धर्म का था, वह अब राजनीति और देशभक्ति का होता जाता है। कमालपाशा, जगलूलपाशा तथा नहासपाशा को इस्लाम-प्रचार की नहीं, वरन् स्वातन्त्र्य-प्राप्ति की चिन्ता थी। वर्तमान नवयुवक अधिकाधिक उदार होते जाते हैं।

मोरक्को, एलजियर्स आदि, सीरिया, पलस्तीन, हज़ाज तथा ईराक़ में अभी कट्टरता बनी हुई है। पहले से कम अवश्य होती जाती है, पर तो भी कभी-कभी अब तक वह भयङ्कर रूप धारण कर लेती है। हज़ाज में तो इस्लाम धर्म की शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध है। देश भर में जगह-जगह इसके लिए पाठशालाएँ हैं और मक्का में इसका विश्वविद्यालय है। इस देश की धार्मिक कट्टरता तथा असहिष्णुता में भारतीय मुसलमानों के सिवाय और किसी अन्य मुस्लिम देश का सहयोग नहीं है।

ईरान

ईरान में धार्मिक कट्टरता कम होती जाती है और उदारता बढ़ती जाती है, लेकिन राज्य-धर्म अभी इस्लाम ही माना जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि मिश्री स्कूलों में भी कुरान का अध्ययन अनिवार्य है। इस पढाई का प्रबन्ध सरकार की तरफ से कर दिया जाता है, पर संस्था के प्रबन्धक इस पर आपत्ति नहीं करते। इसके सिवाय अन्य कट्टरता कम होती जाती है। प्रबन्ध विषयों में या कानून में मौलवी या मुल्लाओं का कोई हाथ नहीं है। समाज पर भी इनका प्रभुत्व कम होता जाता है। जैसे प्रेस के प्रचार के बाद बाइबिल का अनुवाद हो जाने पर यूरोप में पादरियों की महत्ता कम हो गई थी और प्रत्येक व्यक्ति स्वयं बाइबिल को पढ़ने तथा धार्मिक विषयों पर मनन करने लगा गया था, वही दशा इस समय मुस्लिम देशों की होती जाती है। कुरान का देशी भाषाओं में अनुवाद होता जाता है, जिसके कारण प्रत्येक मनुष्य, जो पढ़ा-लिखा है, जान सकता है कि इस्लाम क्या है।

अफ़ग़ानिस्तान तथा भारतवर्ष

अफ़ग़ानिस्तान में मुल्लाओं का अब भी ज़ोर है और अशिष्टा के कारण कट्टरता बहुत है। अमीर अमानुल्ला ने अनेक सुधार किए थे, पर लोकमत इसके विरुद्ध था। उसके शासन-काल में ज़जिया कर बन्द कर दिया गया था और धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी गई थी। अमीर अमानुल्ला शिया तथा हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों में एक-दो बार सम्मिलित हुआ था।

भारतवर्ष में मुसलमानों में अभी कट्टरता ज्यों की त्यों बनी हुई है। कुछ इने-गिने लोगों में उदारता आने लगी है। पर इनकी संख्या अत्यन्त अल्प है। खलीफ़ा को पदच्युत कर तुर्की ने देश से निकाल दिया, परन्तु तो भी भारतवर्ष के मुसलमानों ने ख़िलाफ़त सभाएँ ज़ारी कर रखी हैं। तुर्की में फ़ैज पहनना क़ानून बन्द है, पर यहाँ के मुसलमान इसको इस्लामी सभ्यता का अङ्ग मानते हैं। बिना समझे-बूझे कुरान की आयतों को रटना अधिक पुण्यप्रद समझा जाता है। उसके अनुवाद को पढ़ना उचित नहीं माना जाता। हिन्दू तथा मुसलमानों में जितने झगड़े-क्रसाद होते हैं,

उन सबका कारण कोई न कोई धार्मिक त्योहार होता है। मुसलमान शायद अपनी कट्टरता को इसलिए नहीं छोड़ते कि उनको उदार बनने पर हिन्दू-संस्कृति के आधिपत्य का भय है। रूसी तुर्किस्तान से इस्लाम बिदा ही हो रहा है। रूसी सरकार किसी प्रकार के धर्म की आवश्यकता नहीं समझती।

सामाजिक जीवन

सामाजिक जीवन में मुस्लिम-संसार यूरोप का अधिकाधिक अनुकरण करता जाता है। तुर्की, मिस्र तथा सीरिया आदि देशों में, जो यूरोप से निकट हैं, यह अनुकरण अधिक दिखाई देता है, परन्तु अन्य देशों में भी यह दिन-दिन बढ़ता जाता है। भोजन, पोशाक, गृह-जीवन, विवाह, आमोद-प्रमोद आदि सब में मुस्लिम-संसार यूरोप की ओर बढ़ता जाता है। तुर्की ने मर्नों पूर्णरूपेण यूरोपीय देश बनने का निश्चय कर लिया है। इस्लाम धर्म की शिक्षा स्कूलों में धर्म-विरुद्ध तो मानी ही जाती है, पर उनकी लिपि भी अब यूरोपियन होगई है। इसके अतिरिक्त देशभर में प्राचीन पोशाक पहनना क़ानूनन् मना कर दिया गया है। सब पुरुषों को हैट-कोट तथा पतलून पहनने पड़ते हैं। स्त्रियों की पोशाक भी नगरों में बिल्कुल बदल दी गई है, केवल गाँवों में कुछ प्राचीनता बची हुई है, सो भी एक-दो वर्ष की बात है। मिस्र, सीरिया, ईराक़ आदि अरबी देशों में भी यूरोपीय पोशाक शिक्षित तथा सम्पन्न लोगों में बढ़ती जाती है। परन्तु इन मुल्कों में अङ्गरेज़ी टोपी का प्रचार अधिक नहीं है। बादशाह फ़जद, फ़ज़ल तथा अब्दुल्ला, तीनों अङ्गरेज़ी कपड़े पहिनते हैं, पर शायद अङ्गरेज़ी टोपी नहीं पहिनते। मिस्र में फ़ैज अभी तक चलता है। इन देशों की कुछ स्त्रियाँ भी यूरोपीय पोशाक पहनने लगी हैं। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में भी शिक्षित और उन्नत पुरुष यूरोपीय पोशाक पहनते हैं, पर सिर पर यूरोपीय टोपी अफ़ग़ानिस्तान में अब नहीं लगाई जाती। अमीर अमानुल्ला ने तो जिरगा (पार्लामेण्ट) के सदस्यों के लिए सिर से पैर तक यूरोपीय पोशाक पहनना अनिवार्य कर दिया था। ईरान में इस समय यदि कोई महिला यूरोपीय पोशाक पहन कर बाज़ार या आम रास्ते में होकर निकले या थिएटर



आदि में जावे या बाग-बगीचों में घूमे, तो सरकार की ओर से कोई बाधा नहीं है। गाँवों के लोगों के कपड़े अभी तुर्की के सिवाय अन्य मुस्लिम देशों में नहीं बदले हैं। कृषक लोग प्रायः निर्धन हैं और शिचा ने उनको अभी उदार नहीं बनाया है। जो इस समय नागरिक सभ्यता है, वह कल ग्रामीण सभ्यता बन जाया करती है, इसलिए या तो विकास-नियम के अनुकूल ही मुस्लिम देशों के कृषक नागरिकों की भाँति यूरोपीय साँचे में ढल जायेंगे या सम्भव है कि कमालपाशा की भाँति कोई शक्तिशाली नेता बात की बात में सब प्राचीन ढङ्गों का लोप करके लोगों को आधुनिक बना डाले।

परदे के लोप के साथ ही साथ बहुविवाह प्रथा का भी लोप होता जाता है। अभी बहुविवाह के प्रतिकूल किसी देश में शायद राज-नियम नहीं बना है। अफ़ग़ानिस्तान में अमीर अमानुल्ला ने उच्च कर्म-चारियों के लिए यह नियम बनाया था। पर यह अब भी वहाँ पर जारी है या नहीं, इसका पता नहीं। तुर्की में भी बहुविवाह का बाधक सीधा सरकारी नियम तो नहीं है, पर एक से अधिक विवाह करने वाले को अन्य कई क़ानूनी भ्रूण्टों का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वहाँ उन्नत समाज में बहुविवाह प्रायः लोप सा होता जाता है। कृषक लोगों में अभी कहीं-कहीं जारी है, पर सर्वत्र लोगों का झुकाव इसको बन्द करने की तरफ़ ही है। आधुनिक शिचा पाए हुए पुरुष और स्त्री दोनों ही इस प्रथा को निन्ध समझते हैं। एक शिक्षित महिला के लिए यह असम्भव बात है कि वह किसी की सहपत्नी बने। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि अगले दस-पाँच साल के अन्दर सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत् से यह बहुविवाह-प्रथा उठ जायगी। अरब और नज्द भी लोकमत की कहाँ तक उपेक्षा करेगा? विवाह-रस्म भी बहुत बदलते जाते हैं। एक समय सम्पूर्ण मुस्लिम देशों में एक प्रकार से विवाह होते थे, पर अब केवल वर-वधू की पारस्परिक प्रतिज्ञाओं में ही समानता रह गई है। शेष बातों में यूरोपीयपन आता जाता है। कपड़े, भेंट, दावतें, विवाह के बाद

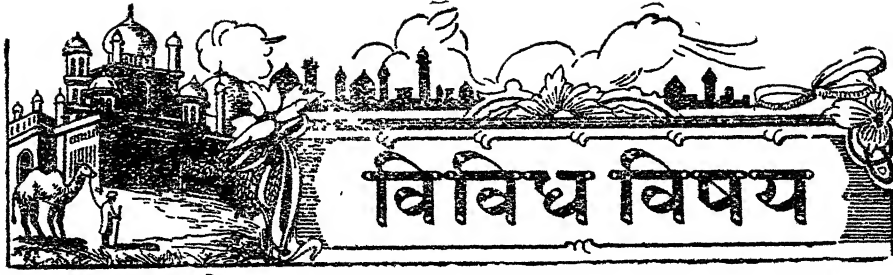
देशाटन या अन्य किसी रमणीय स्थान में कुछ काल तक निवास आदि सब बातें यूरोप से मिलती-जुलती हैं। उन्नत और सम्पन्न घरों में यूरोपीय महिला से विवाह करना भी बुरा नहीं माना जाता। ऐसे विवाह अनेक हुआ करते हैं। कभी कभी तो यह भी आवश्यक नहीं समझा जाता कि स्त्री इस्लाम-धर्म को स्वीकार कर ले।

खाना-पीना, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद आदि सब में भी यूरोप की नज़रें होती जाती हैं। सभ्य समाज का भोजन कुर्सी-टेबुलों पर होता है, चाय और शराब का प्रयोग बढ़ता जाता है। भोजन के समय भाषण दिए जाते हैं। होटलों में अङ्गरेज़ी भोजन का भी प्रबन्ध होता है। घरों का निर्माण, सजावट आदि सब यूरोप की भाँति होने लगा है। मर्दाना अलग, ज़नाना अलग, अब यह बात नहीं है। सभ्य लोगों के मकान यूरोपीय कोठियों या बङ्गलों के ढङ्ग के होते हैं। मकानों को चित्रों से सजाना इस्लाम-धर्म के विपरीत नहीं समझा जाता। दावतों में पुरुष और स्त्रियाँ सब सम्मिलित होने लगे हैं। वहाँ पर नाच-गान, बैण्ड वगैरह सब वैसे ही होते हैं, जैसे यूरोपीय समाज में हुआ करते हैं। रेडियो सेट का मुस्लिम देशों में भी प्रचार बढ़ता जाता है। इनके द्वारा रूसी तुर्किस्तान तथा अफ़ग़ानिस्तान की महिलाएँ भी यूरोपीय गाने सुना करती हैं। सम्पन्न घरानों में पियानो रखने का भी रिवाज बढ़ता जाता है।

इन पृष्ठों को पढ़ कर पाठक के हृदय में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि जब खलीफ़ा नहीं रहा, बहुविवाह की प्रथा जाती रही, इस्लाम-धर्म की शिचा देना राजनियम के विरुद्ध समझा जाता है, राष्ट्रीयता मुसलमानों का धर्म बनता जाता है, खान-पान, रहन-सहन, यहाँ तक कि उनकी परम्परागत लिपि भी बदलती जा रही है, तो तुर्की, मिसिर आदि देश वास्तव में मुसलमान देश कहे भी जा सकते हैं या नहीं? इसका उत्तर हम इतना ही देंगे कि रूपान्तर प्रकृति का नियम है। इतिहास मानव-संस्कृति के रूपान्तरों की कहानी है।

(समाप्त)





संयुक्त-प्रान्त में शिक्षा की उन्नति

(सन् १९२७ से ३२ तक)

डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन संयुक्त-प्रान्त ने सन् १९२७ से ३२ तक की पञ्चवर्षीय शिक्षा-रिपोर्ट अभी प्रकाशित कराई है। उससे पता चलता है कि इस प्रान्त में शिक्षा के मार्ग में अन्तिम दो वर्षों में दो प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो गईं। पहली बाधा तो क्रसलों की खराबी थी और दूसरी प्रान्त की राजनीतिक उथल-पुथल।

इन उपर्युक्त दोनों बातों के कारण संयुक्त-प्रान्त में विद्यार्थियों की भर्ती का औसत अगले पञ्चवर्ष की अपेक्षा कम हुआ। इन बातों का पूरा-पूरा प्रभाव तो अभी भली प्रकार नहीं दिखाई दे रहा है, परन्तु अगले पञ्चवर्ष में डाइरेक्टर साहब के कथनानुसार इसका भली प्रकार अनुमान किया जा सकेगा। अन्तिम दो वर्षों में सरकारी खज़ाने में कमी होने के कारण प्रारम्भिक शिक्षा की उन्नति में रुकावट पड़ गई तथा साथ ही गाँवों में अनिवार्य भी न की जा सकी।

करीब दश वर्षों से प्रारम्भिक और सेकेंडरी हिन्दी शालाओं की शिक्षा जनता के सिपुर्द कर दी गई है। पिछले पाँच वर्षों में तो इनका निरीक्षण ज़िला-बोर्डों और उनके निर्वाचित चेयरमैनो द्वारा होता था, परन्तु इन पाँच वर्षों में आमीण शिक्षा को और भी महत्वपूर्ण बनाने का उद्योग किया गया है। शिक्षा के निरीक्षकों की संख्या में कमी तथा स्त्रियों, अछूतों और मुसलमानों की शिक्षा के लिए भी गुंजाइश की गई है। गाँवों में

सेकेंडरी अङ्गरेज़ी तालीम दी जाने का भी भरसक प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी का शिक्षा-प्रबन्ध अब ज़िला-बोर्डों की शिक्षा-समितियों द्वारा होता है। यह संस्थाएँ ज़िला-बोर्डों से स्वतन्त्र होती हैं और स्वयं अपना चेयरमैन चुनती हैं। डाइरेक्टर महोदय की शिकायत है कि बहुत सी शिक्षा-समितियाँ अपनी जवाबदेही को उसी प्रकार नहीं समझती, जिस प्रकार बहुत से ज़िला-बोर्ड नहीं समझते। व्यक्तिगत स्वार्थ, आपसी द्वेष और स्थानिक फूट का आवश्यकता से अधिक प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है और टैक्स देनेवालों का रुपया समुचित रूप से न खर्च किया जाकर अन्य कामों में फ़ज़ूल खर्च होता है। इस पर भी, डाइरेक्टर महोदय को आशा है कि ज्यों-ज्यों लोगों को अपनी ज़िम्मेदारी का अनुभव होता जायगा, त्यों-त्यों वे इधर ध्यान देते जायँगे। इस प्रकार वह समय शीघ्र ही आ जायगा, जब कि शिक्षा-समितियाँ अपने ठीक काम—अर्थात् ग्रामों में शिक्षा के प्रचार में लग जायँगी।

संयुक्त-प्रान्त में अनिवार्य शिक्षा का श्रीगणेश इसी समय में हुआ। इससे जनता को जो लाभ हुआ, उसका अब अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। डाइरेक्टर साहब फ़रमाते हैं कि छोटे-छोटे स्थानों में, जहाँ अनिवार्य शिक्षा प्रचलित की गई है, वहाँ कोई विशेष लाभ तो दृष्टिगोचर नहीं हुआ, पर उनकी राय में, वहाँ भविष्य में और काम किया जा सकता है, परन्तु बड़ी-बड़ी जगहों में जहाँ कहीं अनिवार्य शिक्षा जारी की गई, वहाँ उससे लाभ अवश्य हुआ है। इन पाँच वर्षों में अनिवार्य शिक्षा से इस प्रान्त की जो उन्नति हुई है, उसको देखते हुए डाइरेक्टर महोदय कहते हैं कि यदि शिक्षा के लिए

अधिक धन इकट्ठा किया जाय, तो सब बाधाओं या रुकावटों को सहज ही में हटाया जा सकता है।

इन पाँच वर्षों के अन्त में इस प्रान्त में एक राजनीतिक हलचल उपस्थित हुई। उसके कारण शिचालयों के विद्यार्थियों की मनोवृत्ति में अन्तर पड़ गया। इसका प्रभाव खास करके सेकेण्डरी स्कूलों तथा कॉलेजों में ग्रामीण स्कूलों की अपेक्षा अधिक पड़ा। परन्तु इन ग्रामीण शालाओं में भी अध्यापकों की आज्ञा की अवहेलना और आचरण तथा पढ़ाई में हास होने की नौबत आई। डाइरेक्टर साहब फ़रमाते हैं कि उनके डिप्टी इन्स्पेक्टरों ने इस बात की शिकायतें की हैं कि उनकी हिदायतों की पाबन्दी अध्यापकों ने नहीं की और कहीं-कहीं उन्होंने खुले-आम विरोध भी किया। कुशल यही हुई कि राजनीतिक हलचलों के कारण हिन्दी-शिचालयों को उतना नुक़सान नहीं पहुँच सका, जितना कि सेकेण्डरी पाठशालाओं को पहुँचा। रिपोर्ट से विदित होता है कि १५ से २० वर्ष की उमर वाले सेकेण्डरी स्कूलों के बालकों ने अपनी प्राकृतिक शिष्टता को बिगाड़ डाला। परन्तु ग़नीमत यह हुई कि ग्रामीण स्कूलों के बालक इस रोग से बहुत कुछ बचे रहे।

हिन्दी-शिचालयों में कई नए-नए परिवर्तन हुए हैं, जिनसे शिचालय-पद्धति में विशेष सुधार हुआ है। पढ़ाई को और भी उत्तम बनाने के ख़याल से गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल ट्रेनिंग स्कूल, जो पहले-पहल गत पाँच वर्षों में स्थापित किए गए थे, इस दरम्यान में कुछ और स्थानों में खोले गए। इन स्कूलों में इण्टरमीडिएट सी० टी० पास व्यक्तियों (Inter C. T.) को हेडमास्टर नियत कर देने से बहुत-कुछ लाभ हुआ है। यहाँ की शिचालयों ज़िला-बोर्डों द्वारा स्थापित ट्रेनिंग स्कूलों से कहीं अच्छी होती है। यहाँ के उत्तीर्ण अध्यापक अच्छी शिचालय देते हैं। इस प्रकार अच्छी शिचालय देने के ये सरकारी स्कूल केन्द्र हो गए हैं। बोर्डों के उन ट्रेनिंग स्कूलों की, जिनमें सुधार किए जाने की गुज़ाहश थी, इमारतों को बड़ा कर तथा अध्यापकों में एक को और शिचालय-पद्धति पढ़ाने के लिए नौकर रख कर सरकार ने सहायता की। इससे शिचालय की और भी उन्नति हुई है। हिन्दी-मिडिल स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों को बढ़ा दिया गया है, जिससे कि शिचालय और भी

फ़ायदेमन्द और उपयोगी हो जाय। ग्रामीण ज्ञान अर्थात् सफ़ाई, कृषि और समाज-शास्त्र की थोड़ी शिचालय और भी अब दी जाने लगी है।

कुछ समय से शहरों के स्कूलों में आरोग्य-निरीक्षण का काम भी हो रहा है, परन्तु बाद में यह काम पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेण्ट के हाथों में कर दिया गया। जिससे जहाँ तक विद्यार्थियों के स्वास्थ्य-सुधार के आँकड़े मिलते हैं, फ़ायदा ही दृष्टिगोचर हो रहा है। ज़िलों में स्वास्थ्य-विभाग के अफ़सरों ने बालकों में सफ़ाई के प्रचार में बहुत काम किया है और जूनियर रेड क्रॉस सोसाइटी; विलेज एड स्क्रीम; तथा मैकेन्ज़ी कोर्स इन फ़र्स्ट एड एण्ड हाइजिन जैसे कार्यों को अज्ञान और रोग के नाश करने में तथा सफ़ाई और स्वच्छता का प्रचार करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है।

लड़कों को क़वायद की भी शिचालय दी जाती है, जिससे प्रकट है कि उनको स्वस्थ बनाने के लिए एक प्रकार का और भी प्रबन्ध किया गया है।

व्यापार के मन्दा पड़ जाने से शिचित्त लोगों की बेकारी बढ़ गई है। डाइरेक्टर साहब कहते हैं कि इस बात को रोकने का भी प्रयत्न किया गया है। बहुत से स्कूलों के हेडमास्टरों से कहा गया है कि वे अपने-अपने स्कूलों के पास किए हुए उन विद्यार्थियों की एक फ़ेहरिस्त तैयार करें, जिनको काम पाने की इच्छा हो, और स्थानीय बड़े-बड़े रूपयों वालों से मिल कर वे उन विद्यार्थियों को काम दिलावें।

इन पाँच वर्षों का अन्तिम भाग, रिपोर्ट के कथनानुसार, बड़ा उपद्रवी था, क्योंकि कॉङ्ग्रेस ने इस काल में स्कूलों पर धावा कर दिया था। डाइरेक्टर साहब फ़रमाते हैं कि कॉङ्ग्रेस के इस धावे का मुक़ाबला नहीं किया जा सकता था। क्योंकि देश के क़ानून में उसके रोकने का कोई उपाय नहीं था। फलतः स्कूलों से बाहर शोर-गुल करने वालों का बोलबाला रहा। इस प्रकार जिन स्कूलों की हालत पहले अच्छी नहीं थी, उनकी समस्त बुराइयाँ सब पर प्रगट होने लगीं। परन्तु जहाँ पर शिष्टता और नियमों की पाबन्दी पहले से होती चली आ रही थी, वहाँ पर कुछ भी उपद्रव न हो सका। सरकारी स्कूल तो बड़े मज़े में रहे। उनका कुछ भी नहीं



बिगड़ा। परन्तु औरों पर इनका बड़ा खराब प्रभाव पड़ा। रिपोर्ट के अनुसार असहयोग आन्दोलन के द्वारा विद्यार्थियों के माता-पिता का प्रभाव उन पर से कम हो ही गया था। ऐसी दशा में कुछ स्कूल तो अपने तत्कालीन हेडमास्टरों की निगरानी में न रह सके और कुछ मुट्ठी भर नौजवान राजनीतिज्ञों की इच्छा के अनुसार या तो क्रायम रहे या बन्द हो गए। ताहम डाइरेक्टर साहब को सन्तोष है कि बाद में अध्यापकों का शीघ्र ही फिर आदर होने लगा और मदरसों की हालत फिर से सुधर गई। यह काम इतनी मुत्तैदी से हुआ कि डाइरेक्टर महोदय को आशा है कि भविष्य में इस प्रकार के उत्पातों का उन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ सकेगा। क्योंकि अब बालकों को पढ़ने के अलावा अन्य कई तरह के कामों में भी लगाया जाने लगा है, जिससे वे इस प्रकार के लोगों के चङ्गुल में सहज ही में न फँस सकेंगे।

इस रिपोर्ट में संयुक्त प्रान्तीय डाइरेक्टर साहब कहते हैं कि इस काल के अन्तिम भाग में कॉङ्ग्रेस वालों ने विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को सरकार के खिलाफ आन्दोलन करने को बहुत कुछ उभाड़ने की कोशिश की थी। प्रयाग, लखनऊ और बनारस के विश्वविद्यालयों में तथा आगरा-विश्वविद्यालय के कुछ कॉलेजों में उनको इस काम में आशातीत सफलता भी मिली थी। विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों के अध्यापकों ने इसको रोकने का भरसक प्रयत्न किया था, परन्तु फिर भी कभी-कभी वे स्थानीय 'डिक्टेटर्स' के कहने में आ जाते थे।

सन् १९३०-३१ के प्रारम्भ में राजनीतिक हलचलों के कारण प्रयाग-विश्वविद्यालय कुछ समय के लिए बन्द कर दिया गया था और कुछ विद्यार्थियों ने इस समय कॉङ्ग्रेस वालों के कहने में आकर आन्दोलन में भाग भी लिया था। परन्तु इस उत्पात का प्रभाव अलीगढ़ विश्वविद्यालय पर कुछ भी नहीं पड़ा, जिससे वहाँ शिष्टता के क्रायम रखने में कोई मुश्किल नहीं पेश आई।

—सूर्यवर्मा, एम० ए० (प्रिवि०)

❁

❁

❁

भारत में स्त्री और पुरुषों की संख्या*

सन् १९३१ ई० की मनुष्य-गणना से यह बात और भी सिद्ध हो गई है कि भारतवर्ष में पुरुषों से स्त्रियों की संख्या कम है। नीचे के कोष्टक में भारत की अन्य देशों से तुलना की जाती है :—

देश तथा मनुष्य गणना का वर्ष	प्रति १,००० पुरुषों पीछे स्त्रियों की संख्या
पुर्तगाल (१९२०)	१,११२
ऑस्ट्रिया (१९२०)	१,०८९
इङ्ग्लैण्ड-वेल्स (१९३१)	१,०८७
स्कॉटलैण्ड (१९२१)	१,०८०
स्वीट्ज़रलैण्ड (१९२०)	१,०७४
जर्मनी (१९२४)	१,०६७
स्पेन (१९२०)	१,०६२
डेन्मार्क (१९२१)	१,०५३
बेल्जियम (१९२०)	१,०३३
इटली (१९२१)	१,०२८
जापान (१९३०)	९६०
संयुक्त राज्य अमेरिका (१९३०)	९७६
ऑस्ट्रेलिया (१९३१)	९६७
दक्षिणी अफ्रीका (१९२१)	९५९
केनाडा (१९२१)	९४०
भारतवर्ष (१९३१)	९४०

भारत के भिन्न-भिन्न भागों की मनुष्य-गणना से एक बात यह भी प्रमाणित हुई है कि उत्तरीय और पश्चिमीय प्रान्तों में स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत कम हैं और उनकी संख्या पूर्वीय और दक्षिणी प्रान्तों की ओर बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि बिहार, उड़ीसा, मद्रास, मलाबार, कोचीन इत्यादि देशों में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक संख्या में हैं। नीचे के कोष्टक में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों की स्त्री-संख्या दी जाती है :—

❁ यह लेख भारतवर्ष की मनुष्य-गणना की रिपोर्टों के आधार पर लिखा गया है—लेखक।



प्रान्त, राज्य इत्यादि	स्त्रियों की संख्या प्रति १,००० पुरुष पीछे ।
ब्लूचिस्तान	७७८
सिन्ध	७८२
पञ्जाब और देहली	८२९
अजमेर-मेरवाड़ा	८९२
संयुक्त-प्रान्त	९०४
राजपूताना एजेन्सी	९०८
बम्बई	९०९
आसाम	९०९
बङ्गाल	९२४
बड़ौदा	९४२
मध्य भारत	९४८
मैसूर	९५५
ब्रह्मदेश	९५८
हैदराबाद	९६१
मध्य-प्रान्त	१,०००
बिहार-उड़ीसा	१,००८
मद्रास	१,०२४
कोचीन-राज्य	१,०४३
मलाबार	१,०५९
भारतवर्ष का औसत	९४०

उपर्युक्त कोष्टक में बम्बई, आसाम और बङ्गाल में स्त्रियों की संख्या इतनी कम होने का कारण कदाचित् एक यह भी हो कि इन प्रान्तों में बाहर से अन्य प्रान्तों के पुरुष नौकरी इत्यादि के लिए विशेषतः कलकत्ता और बम्बई आदि नगरों और आसाम के चाय के बगीचों में अधिक आए हैं। यह भी कहा जाता है कि डेविड वंशीय मनुष्यों के यहाँ आर्य-वंशीय मनुष्यों के यहाँ से अधिक संख्या में कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। कदाचित् यही कारण हो कि उड़ीसा प्रान्त तथा दक्षिणी भारत में स्त्रियों की संख्या अधिक है।

प्रकृति का यह एक नियम सा प्रतीत होता है कि संसार में प्रतिवर्ष बालक, बालिकाओं से अधिक जन्मते हैं। संसार के अनेक देशों की मनुष्य-गणना से यह नियम सिद्ध होता है। भारत में भी भिन्न-भिन्न

प्रान्तों में यही प्राकृतिक नियम लागू होता हुआ पाया गया है।

नीचे जो कोष्टक दिया गया है, उसके अध्ययन से कई ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं, जिनमें से कुछ ये हैं :—

(१) भारत के प्रत्येक भाग में बालकों से बालिकाएँ कम उत्पन्न होती हैं।

(२) प्रथम तीन वर्षों तक नवजात बालिकाओं पर ईश्वर की विशेष कृपा रहती है, अथवा वे बालकों से अधिक जीवनी-शक्ति रखती हैं, जिसके फल-स्वरूप तीसरे वर्ष के अन्त में (द्रावन्कोर और कोचीन के अतिरिक्त) प्रत्येक प्रान्त में बालिकाओं की संख्या बालकों से अधिक हो जाती है।

(३) तीसरे वर्ष के उपरान्त बालकों से बालिकाएँ अधिक कालग्रसित होती हैं। पाँच वर्ष तक की तथा ५ से १० वर्ष तक की आयु वाली बालिकाओं की संख्याओं की तुलना में महान अन्तर पाया जाता है, जिससे विदित होता है कि ५ वर्ष की आयु के बाद बालिकाओं की अधिक मृत्यु होती है। इसका कारण कदाचित् यह हो कि हम भारतीय स्वार्थवश अपनी बालिकाओं की देख-रेख तथा लालन-पालन उतनी अच्छी तरह नहीं करते जितना अपने बालकों का।

(४) १०-१५ वर्ष के आयु-काल में बालिकाओं की संख्या बहुत ही घट जाती है। इसी काल में अनेक प्रान्तों में भारतीय कन्याओं के विवाह हो जाते हैं। लड़कियों की संख्या की इतनी न्यूनता का कारण इस अल्प-आयु के विवाह तथा उसके फल-स्वरूप प्रसव-काल की मृत्यु हो सकती है।

(५) इस समय के पश्चात् अकस्मात् ही प्रत्येक स्थान में १५-२० वर्ष की आयु की लड़कियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इससे विदित होता है कि इस आयु की बालिकाएँ ही अधिक स्वस्थ होती हैं। विवाह-योग्य आयु १५-२० वर्ष की ही उचित प्रतीत होती है। शारदा महोदय के बिल के पक्ष में एक यह भी अकाव्य प्रमाण रक्खा जा सकता है।

उपरोक्त सिद्धान्तों के समर्थन में पाठकों के विचारार्थ निम्न-लिखित कोष्टक दिया जाता है :—



प्रान्त अथवा राज्य	जन्म लेने वाली बालिकाओं की संख्या प्रति १,००० बालकों पीछे	भिन्न-भिन्न आयु के प्रति १,००० लड़कों पीछे लड़कियों की संख्याएँ								
		आयु ०-१ वर्ष	आयु १-२ वर्ष	आयु २-३ वर्ष	आयु ३-४ वर्ष	आयु ४-५ वर्ष	०-५ वर्ष की आयु का मीजान	५-१० वर्ष की आयु	१०-१५ वर्ष की आयु	१५-२० वर्ष की आयु
मद्रास	१५६	१०३५	१०३७	१०५०	१०३६	१०११	१०३४	९८३	९५२	१०८०
बिहार-उड़ीसा	९५४	१०२०	१०७१	११०६	१०५५	११२४	१०४९	९२५	८९३	१०४३
मध्य प्रान्त	९४९	१०२०	१०६५	१०७४	११२४	१०३२	१०४१	११०	१३६	१०५३
मैसूर	१४५	१०३६	१०४१	१०५८	१०४७	१०१८	१०४०	१००१	९३८	१०३३
द्रावन्कोर	९४४	१११	१००२	१०८७	१०८९	१०८०	९८८	९७१	९७०	१०४६
कोचीन	१४३	११४	९९९	११७	९९०	१०६	९६२	१०३	१०८	११०७
आसाम	९३५	१००५	१०३५	१०५०	१०२८	१०२६	१०२३	११२	१०१	११०८
बङ्गाल	१२२	१००४	१०५८	१०७३	१०२४	९७०	१०२४	८८८	८६४	१११५
बङ्गोदा	८९५	९७५	१०२४	१०२४	१०२४	१०२४	९७८	१०१	१००	१०८
संयुक्त-प्रान्त	८९३	१००२	१०४०	१०६०	१००७	१०३१	१००७	८६२	८१५	८७४
अजमेर-मेरवाड़ा	८५२	१०१२	१०१८	१०४५	१०१७	१०६४	१०१२	८८३	८४७	८८४
राजपूताना एजेन्सी	...	१०१२	१०३०	१०४८	१००६	१०३३	१०११	८७६	८३१	८८६

—निरञ्जनलाल शर्मा, एम० एस्.सी०

धर्म और अछूत-समस्या

संसार परिवर्तनशील है। मनुष्य भी स्वयम् परिवर्तनशील है। उसकी भी एक सी दशा नहीं रहती। उसके विचारों, आचारों तथा बुद्धि आदि में अवस्थानुसार परिवर्तन होता रहता है। कालचक्र कभी भी किसी प्राणी या वस्तु को एक दशा में नहीं रहने देता। जिसका उत्थान है उसका पतन है, और जिसका पतन है उसका उत्थान भी अवश्यम्भावी है।

इसी प्रकार समाज पर भी यही नियम लागू है। यदि हम समाज-सङ्गठन के आदि काल के इतिहास को देखें, तो मालूम होगा कि समय-समय पर समाज की रचना में बड़े-बड़े परिवर्तन करने पड़े हैं। यदि हम रामायण या महाभारत-काल के समाज को देखें तो पता चलता है कि उस समय जातीय बन्धन इतने कड़े तथा अनुदार नहीं थे। अन्तर्जातीय विवाह-प्रथा उस समय

प्रचलित थी और ऐसी उत्पन्न हुई सन्तान बाप की उत्तराधिकारिणी होती थी। केवट-कन्या से उत्पन्न व्यासदेव ब्रह्मर्षि हो सकते थे; सूत जी धर्मोपदेशक हो सकते थे; वाल्मीकि जी व्याधा से आदि कवि तथा ब्रह्मर्षि हो सकते थे। इसी प्रकार मर्यादा-पुरुषोत्तम पतित-पावन भगवान् राम भी निषादराज गुह को गले लगाने में कोई भी आपत्ति नहीं करते, बल्कि शवरी के जूटे बेर खाने में भी उन्हें कुछ भी सङ्कोच नहीं हुआ। इसी से राम 'पतित-पावन' नाम से विख्यात हुए। यदि राम पतितोद्धारक नहीं होते, तो राम को भारतवर्ष भूल गया होता। उस काल में छुआछूत का यह रोग इस प्रकार नहीं फैला हुआ था। उस समय आचार को ही प्रधानता दी जाती थी। पेशे से कोई नीच नहीं गिना जाता था।

हमारा अद्वैत ब्रह्मवाद भी ऊँच-नीच का भेद नहीं सिखाता है। उसमें तो द्वैत-भाव को स्थान ही नहीं। वह सब में ईश्वर को समा हुआ बतलाता है। उसके



बिना कोई भी वस्तु नहीं। वह ब्रह्म सब में समान रूप से विद्यमान है। विद्वान् लोग किसी को घृणा करके कैसे पाप के भागी बन सकते हैं? योगेश्वर श्रीकृष्ण ने भी कहा है—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ॥

वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं होता। प्रकृति भी कोई ऐसा विशेष चिन्ह नहीं लगाती, जिससे ऊँच-नीच का ज्ञान हो सके। वैसे तो सभी 'जन्मना जायते शूद्रः' हैं। यद्यपि कर्म से ही जाति बनी है, पर सेवा करने से शूद्र जाति अछूत नहीं हो सकती। जन्म से जाति की उत्पत्ति नहीं है। कर्मों से जाति बनी है, इसलिए कर्म ही प्रधान है। परन्तु कर्म मनुष्यत्व में कोई भेद पैदा नहीं कर सकता। भगवान् कृष्ण भी कहते हैं—“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।”

हिन्दू-धर्म की दृढ़ शिला की नींव सदाचार के ऊपर है। पेशे से उसका कोई वास्ता नहीं। यदि नीच पेशा करने वाला सदाचारी, सच्चा तथा ईश्वर में विश्वास करने वाला है, तो वह उस ब्राह्मण से अच्छा है, जो कि उपरिलिखित गुणों से विहीन है। ईश्वर में अटल विश्वास और सदाचारमय जीवन हिन्दू-धर्म की विशेषता है। हमारे ग्रन्थों में अधिक जोर सदाचार पर ही दिया गया है।

मनुष्य-मात्र ही क्यों, प्राणिमात्र का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है। हमारा शास्त्र जहाँ वनस्पतियों में भी जीव का अस्तित्व मानता है और उनको सताने तथा अनुकूलन पहुँचाने का निषेध करता है, वहाँ यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह मनुष्य के प्रति मनुष्य को घृणा का उपदेश दे। स्मृतियों में परस्पर बढ़ी विभिन्नता है। एक स्थान पर जिस बात का मण्डन किया गया है, अन्य स्थान में उसका खण्डन पाया जाता है। पर आचार तथा कर्म को सब जगह प्रधानता दी गई है। अकर्म करके ब्राह्मण भी पतित हो जाता है और सुकर्म करके शूद्र भी ब्रह्मत्व को प्राप्त कर सकता है।

हमारे शास्त्रों में यह कहीं भी उपदेश नहीं दिया गया है कि मनुष्य से घृणा करो या उनके प्रति, जो हमारे

जाति-बन्धन को भली प्रकार बनाए रखते हैं, अत्याचार करो या उनको ईश्वर-भक्ति से वञ्चित रखो। परमात्मा सबका है, उस पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं हो सकता। सच्चा ज्ञानी या पण्डित वही है, जो सब पर दया करता है और किसी को ऊँच-नीच नहीं समझता। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है :—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः समे प्रियः ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।

शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।

शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥

इस प्रकार सुन्दर उपदेशों के होते हुए भी हम अछूत कहे जाने वाले भाइयों के साथ ऐसा व्यवहार करते चले आए हैं, यह कलङ्क की बात है। कई सदियों से हम उन्हें अत्याचार की चक्की में पीस रहे हैं और उनके साथ पशु से भी बदतर सलूक कर रहे हैं। परन्तु परमात्मा बड़ा न्यायी है। जब उसने देखा कि ये अन्धे अपने उन भाइयों पर, जो इनकी सबसे ज्यादा सेवा करते हैं, घोर अत्याचार करते हैं, तो उसने दण्ड-स्वरूप हमें पराधीन बना दिया। हम अत्याचारों से कुचले गए, तब हमारी आँखें खुलीं। इस पराधीनता से अब हमारे हृदय में भारी परिवर्तन हो गया है और दलितों के प्रति मैत्री के भाव बढ़ रहे हैं।

परन्तु हमारे कुछ सनातनी भाई इसका विरोध कर रहे हैं। यह केवल उनकी कठवादिता है। उन भाइयों को मन्दिर-प्रवेश में सम्भवतः धर्म की हानि मालूम होती होगी। पर उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि वह धर्म, जोकि अछूत के मन्दिर-प्रवेश से नष्ट हो जाता हो, वह धर्म कहलाने योग्य नहीं हो सकता है। हमारे शास्त्र में तो धर्म की व्याख्या इस प्रकार है :—

“जो धारण करता है, उसको धर्म कहते हैं।

धर्म से ही प्रजा सँभली हुई है। जो वस्तु धारण-संयुक्त अर्थात् प्रजा को संयुक्त रखने वाली या बिखराई हुई को एक करने वाली हो, उसको निश्चय करके धर्म



जानो। जीवों के प्रभव अर्थात् कल्याण के लिए धर्म का विधान किया गया है। जो वस्तु प्रभव-संयुक्त हो अर्थात् जिससे प्रजा का कल्याण हो, उसको निश्चय करके धर्म जानो। चोरी, अन्याय, हत्या, अत्याचार, विषमता-पूर्ण व्यवहार, गृह-कलह आदि से प्रजा को छेश न हो, इसलिए धर्म का विधान किया गया है। जो वस्तु अहिंसायुक्त हो अर्थात् प्रजा के छेश और दुःख को दूर करने वाली हो, उसी को निश्चय करके धर्म जानो।”

इस प्रकार वास्तव में सच्चा धर्म और जीवित धर्म वही है, जो मनुष्य-जीवन को नियमित करे और मनुष्य को ऐसी विधि बतलावे, जिसमें वह इस संसार के घोर संग्राम में अपने भीतर और बाहर के शत्रुओं को जीतते हुए अपने देशवासियों, नहीं-नहीं, मनुष्य मात्र की उन्नति में हाथ बढ़ाते हुए, सब प्रकार के बन्धनों को तोड़ते हुए, पूर्ण स्वतन्त्रता अर्थात् मोक्ष प्राप्त करे।

धर्म की इस कसौटी पर हम जब अछूत-आन्दोलन के विरोधियों की दलीलों को कसते हैं तो धर्म में छुआछूत का कोई प्रश्न नहीं रह जाता। सब प्रजा का जिसमें कल्याण हो वही वास्तविक धर्म है। जो प्रजा को संयुक्त रखे वही धर्म है; न कि प्रजा में भेद-भाव पैदा करने वाला, और उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर देने वाला।

मनुस्मृति तथा अन्य ग्रन्थों में भी यह पाया जाता है कि उत्सव के समय, मेलों में, देवतायत में, ग्राम में अग्नि लग जाने पर और विवाह आदि में छुआछूत का ध्यान नहीं रक्खा जाता। जब हम अपने शास्त्रों में इस प्रकार के उदाहरण पाते हैं, तब इस समय के अनुसार छुआछूत को उठा देने में कोई हानि होने की सम्भावना नहीं, प्रत्युत लाभ ही है।

अछूतों के मन्दिर-प्रवेश से भगवान् की मूर्ति अष्ट हो जायगी, ऐसा कहना परमात्मा का घोर अपमान करना है। जो सबों को तारने वाला है, जिसके स्मरण-मात्र से हृदय शुद्ध हो जाता है, केवल अछूतों के दर्शन करने से उसकी प्रतिष्ठा में धक्का लगता है, यह केवल एक झूठी कल्पना है। इसमें कुछ भी सार नहीं।

हिन्दू-जाति गङ्गा की निर्मल धारा है। इसमें पड़ कर न जाने कितने अशुद्ध नाले और परनाले शुद्ध हो गए। न जाने कितनी, जातियाँ जो बाहर से आकर बसीं, सब इसमें लीन हो गईं। हिन्दुत्व के अब तक

कायम रहने का यही रहस्य है कि इसके धार्मिक सिद्धान्त बहुत ही उदार तथा आचार की दृढ़ शिला पर स्थापित हैं। इसका आदर्श कितना उच्च है। कहते हैं :—

अयं निजं परो वेत्ति गणना लघु चेतसाम्।

उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

जिसमें संसार को कुटुम्ब बनाने की समता है, जिसमें एकत्व स्थापित करने की महत् आकांक्षा है, वह भला अपने अछूत कहे जाने वाले भाइयों को क्यों अपना नहीं समझेगा? आज अछूतों के लिए पुराने से पुराने विचार रखने वाले हमारे विद्वान् शास्त्री सज्जन भी तैयार हैं। वे समय की गति को जानते हैं, वे शास्त्रों के रहस्यों को भली प्रकार समझे हुए हैं।

आज यदि हम अपने समाज को भले प्रकार ध्यान से देखें तो क्या वह स्मृतियों के धर्मानुसार अपने-अपने वर्णकृत कर्मों पर चल रहा है? क्या आज ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि अपने-अपने कर्तव्यों तथा उन धर्मों के अनुसार आचरण कर रहे हैं, जो हमारे धर्मादि नियम-प्रणेत ऋषिवरों ने अपने ग्रन्थों में लिखे हैं? आज समाज में ऐसे दुरचरित तथा मनुष्य के रूप में राक्षस मिलेंगे कि यदि उनका 'प्राई-वेट' चरित्र देखा जाय, तो चाण्डाल से भी पतित बिकलेंगे। परन्तु समाज इन बातों को जानता हुआ भी चुप है। उनके विरुद्ध आवाज़ तक नहीं उठा सकता। वास्तव में यह समाज की भीरुता तथा कायरता है। अस्तु, अछूत कहे जाने वाले भाई तो अब भी वही कार्य कर रहे हैं, जो उन्हें पूर्व-काल से सौंपा गया है। आज भी वे सेवा-धर्म से विमुख नहीं हैं। फिर उनको हम इतनी भी सुविधा नहीं दे सकते, जोकि हम अपने कुत्ते-बिल्ली को देते हैं। यह हमारी बुद्धि के दिवालिखा-पने का चिन्ह नहीं तो और क्या है?

अछूत भी मनुष्य हैं। तुम्हारी ही तरह वे भी परमात्मा की सन्तान हैं। तुम अपने भाइयों का निरादर करके कैसे ईश्वर के प्रेम-भाजन बन सकते हो?

आओ, आज हम इस अछूतपने की कलङ्क-कालिमा को सर्वदा के लिए धोकर बहा दें। चिरकाल से जिनको हमने त्याग दिया था, उनको पुनः हृदय से लमा लें। उनकी जो सुविधाएँ हमने जबरन छीन ली हैं,



उनके स्वाभाविक अधिकार जो हमने हथिया लिए हैं, उनको वापिस दे दें और उस परम पिता परमात्मा के प्रेम-भाजन बनें ।

•—ठाकुर परमसिंह 'प्रेम'

विधवा-विवाह की मौलिकता

विधवा-विवाह की मौलिकता पर विचार करने के पूर्व 'विधवा' पर और इससे भी पूर्व 'विवाह' पर विचार करना आवश्यक है ।

माना कि विवाह को व्यवहार में धार्मिक रूप दिया जाता है, किन्तु यथार्थ में वैवाहिक जीवन आदर्श एवं धार्मिक नहीं है । आदर्श तो पूर्ण ब्रह्मचर्य ही है । चूँकि मनुष्य सृष्टि की सर्वोच्च विभूति है, अतः सृष्टि का सर्वोच्च चरित्र भी मनुष्य-जीवन पर चरितार्थ होना चाहिए । इसीलिए पूर्ण यानी आजीवन ब्रह्मचर्य अतीव कठोर व्रत होते हुए भी मनुष्य के लिए आदर्श है । परन्तु यह आदर्श व्रत सर्वसाधारण के लिए शक्य नहीं है, इसीलिए विवाह को कर्तव्य-रूप में स्वीकार किया गया है । अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने में असमर्थ मनुष्य के लिए ही विवाह कर्तव्य है । इससे यह स्पष्ट है कि प्रथम प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पूर्ण ब्रह्मचर्यमय जीवन की ओर ही अग्रसर होना चाहिए, इस पर जहाँ उसे ऐसा प्रतीत हो कि वह उक्त आदर्श पथ पर अब अधिक चलने में असमर्थ है, वहाँ वह उचित प्रचलित रीत्यानुसार विवाह कर ले । कोई इस सिद्धान्त का दुरुपयोग न करे, इसीलिए हिन्दू-धर्मशास्त्रों में पुरुष के लिए २५ और स्त्री के लिए १६ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य अनिवार्य माना गया है, जो अब राजकीय व्यवस्था में क्रमशः १८ और १४ वर्ष कर दिया गया है । इससे यह ध्वनित होता है कि पुरुष का १८ वर्ष और स्त्री का १४ वर्ष के पूर्व विवाह होना, अधार्मिक वा अनियमित है । साथ ही इसका यह भी अभिप्राय नहीं कि १८ और १४ वर्षायु पूरी होते न होते चटपट विवाह कर दिया जाय, बल्कि यह उचित ही नहीं, धर्म है कि १८ और १४ वर्ष के बाद भी पुरुष-स्त्री यथाशक्य ब्रह्मचारी रहें । ब्रह्मचर्य से हमारा अभिप्राय केवल

अविवाहित अवस्था से ही नहीं, अपितु मनसा, वाचा, कर्मणा से पालन किए जाने वाले ब्रह्मचर्य से है । विवश होकर नहीं, स्वेच्छापूर्वक साङ्गोपाङ्ग ब्रह्मचर्य ही श्लाघ्य है ।

उपर्युक्त विधि से किया हुआ विवाह ही विवाह है । ऐसी विवाहित जोड़ी को 'पति-पत्नी' कहते हैं । पति का देहावसान होने पर पत्नी को 'विधवा' और पत्नी के देहावसान होने पर पति को 'विधुर' कहते हैं । राजकीय व्यवस्था की मर्यादा भङ्ग करके किया हुआ विवाह तो अनियमित है ही । पुरुष अथवा स्त्री की इच्छा के विरुद्ध यानी अनमेल विवाह भी अनियमित ही है । क्योंकि यथार्थ में विवाह दूसरों द्वारा सम्पन्न होने की वस्तु नहीं है, बल्कि वह तो स्त्री-पुरुष रूपी दो भिन्न आत्माओं का अभिन्न अवस्था में परिणत होने की क्रिया है, जो पवित्र आकर्षण या कामना के बिना हो ही नहीं सकता । बालक, बालिका और बुढ़े तथा बच्चियों के मध्य पवित्र आकर्षण वा कामना नहीं होती, अतएव ऐसे गठबन्धन को विवाह नहीं कहा जा सकता । स्त्री-पुरुष के वयस्क होने पर ही उनका विवाह स्थायी और नियमित होता है । अतः इसके पूर्व दैवयोग से किसी का विछोह (देहावसान) होने पर अक्षत पुरुष और स्त्री को विधुर वा विधवा नहीं कहा जा सकता । इसी तरह अनमेल विवाह में पुरुष के देहावसान होने पर अक्षत-योनि स्त्री को विधवा नहीं कहा जा सकता । अस्तु ये दोनों प्रकार की अक्षत-योनि स्त्रियाँ कुमारी ही हैं और इन्हें कुमारी का अधिकार मिलना चाहिए ।

नियमित विवाह में वर-वधू का चुनाव एकमात्र माँ-बाप अथवा परिजनों द्वारा ही नहीं, बल्कि वर-वधू द्वारा भी होना चाहिए । इस प्रकार के विवाह में भर-सक धोखा-धड़ी की गुञ्जाइश नहीं रहती, पर यदि दैवयोग से हो ही जाय अर्थात् पुरुष नपुंसक निकले, तो ऐसे पुरुष से विवाहित अक्षत-योनि स्त्री भी कुमारी के समान ही मानी जानी चाहिए ।

कालचक्र की गति मनुष्य की इच्छा के बाहर की बात है । सम्भव है, उचित विवाह की जोड़ी का भी असमय में ही विछोह हो जाय, तो ऐसी अप्रिय अवस्था में आदर्श तो यही है कि विधवा वा विधुर अपने



दिवङ्गत आत्मीय के प्रति अपने शेष जीवन को पवित्रता-मय ब्रह्मचर्यपूर्वक व्यतीत करे। ऐसी विधवा और ऐसे विधुर धन्य और प्रातःस्मरणीय हैं। परन्तु यदि वे अपनी पवित्रता की रक्षा करने में असमर्थ हों, यानी साङ्गोपाङ्ग ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकें, तो वे पुनर्विवाह कर लें। क्योंकि ऐसी अवस्था में पुनर्विवाह न करने से व्यभिचार फैलता है। यह पुनर्विवाह भी प्रथम विवाह की कोटि में ही नियमित वा मान्य है, क्योंकि विवाह का जो निमित्त (यानी सांसारिक सुख की कामना) प्रथम विवाह में रहता है, वही इस पुनर्विवाह में भी है। यह पुनर्विवाह भी प्रथम विवाह की ही विधि से सम्पन्न होता है। यही क्यों, योग्य अवस्था में उक्त सिद्धान्त पर किया हुआ तीसरा और चौथा आदि विवाह भी पूर्ववत् ही वाञ्छनीय है।

किन्तु आज हिन्दू-समाज में क्या होता है? बच्चे-बच्ची का; बूढ़े-बालिका का और युवती-बच्चा का भी विवाह किया जाता है, यानी बाल-विवाह और अनमेल विवाह होता है और खूब होता है। फलस्वरूप हज़ारों अक्षत योनि बालिकाएँ विधवा करार दे दी गई हैं। लाखों युवती विधवाएँ कराह रही हैं, जिनकी आह से हिन्दू-जाति जर्जरित हो रही है। विधुर तो युवक हो चाहे जरठ, उसे मरण-काल तक दुधमुँही बालिका को भी पत्नी बनाने का ठीका प्राप्त है, उसके लिए विधुर रह कर पवित्रता-पूर्वक जीवन व्यतीत करना आवश्यक नहीं माना जाता, परन्तु विधवा चाहे वह अक्षत-योनि ही क्यों न हो, युवती और पुनर्विवाह के लिए तदफती ही क्यों न हो, उसे साङ्गोपाङ्ग ब्रह्मचर्य—हाँ, वही ब्रह्मचर्य, जिसको पालने में विरले ही माई के लाल समर्थ होते हैं—से रहने को बाध्य होना पड़ता है। शोक! उसके दुख का यहीं अन्त नहीं होता। ऐसा भी देखने में आता है कि विधवाओं के लिए उक्त कठोर नियम के नियामक धर्म-ध्वजियों में से, कितने ही विधवाओं के श्रुत को खण्डित करके उन्हें पतित करते हैं। भरसक पाप छिपाने की कोशिश की जाती है। परदा फ्राश होने पर वे धूर्त पाखण्डी तो कूद कर दूसरे किनारे जा खड़े होते हैं और छाती फुला कर मुँहों पर ताव ही नहीं देते, बल्कि आगे बढ़-बढ़ कर अभागिनी विधवा को कुलटा और व्यभिचारिणी आदि नामों से अभिहित करते हैं। आखिर

विधवा को कान पकड़ कर घर से बाहर निकाल दिया जाता है। इसके बाद प्राण-रक्षा के लिए उस दुखिया, अनाथिनी को नाना प्रकार से निर्लज्जतापूर्वक जीवन बिताना पड़ता है या किसी गुण्डे की वासना का शिकार होना पड़ता है। बलात् वैधव्य के परिणाम-स्वरूप समाज में व्यभिचार और भ्रूण-हत्या जैसे जघन्य पाप का बाज़ार गर्म है। विधवा-विवाह के विरोधी, विरोध तो करते हैं धर्म-रक्षा के नाम पर, परन्तु उनके विरोध के फल-स्वरूप विधवा-विवाह में बाधा पड़ने तथा बलात् वैधव्य रखाने से विधवाओं को जो दारुण कष्ट होता है और जितना अनर्थ होता है, उसको देखते हुए तो यही कहना चाहिए कि ये विवाह के विरोधी, धर्मध्वंसक और पाप-प्रचारक हैं।

हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक विधवा को विवाह कर लेने के लिए बाध्य किया जाय, बल्कि हमारा मतलब तो यही है कि जब बलात् वैधव्य से व्यभिचार और पाप होता है, तब विधवाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक वैधव्य अथवा वैवाहिक जीवन व्यतीत करने का अधिकार मिलना चाहिए। अर्थात् जो अधिकार विधुरों के हैं, वही विधवाओं को भी होना चाहिए। एक विधुर को अधिकार है कि वह चाहे और उसकी अवस्था विवाह के योग्य हो, तो वह बेखटके पुनर्विवाह कर सकता है। तो भी कितने ही विधुर स्वेच्छा से पुनर्विवाह नहीं करते। उसी प्रकार विवाह योग्य विधवाओं को पुनर्विवाह की स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी ऐसी विधवाओं की संख्या कम न होगी, जो पवित्र वैधव्य ही बिताना श्रेष्ठ समझेंगी। विवाह तो वही करेंगी, जिन्हें विवाह की आवश्यकता वा इच्छा होगी। यदि यही मान लिया जाय कि विधवा-विवाह की रुकावट हटा लिए जाने पर समस्त युवती विधवाएँ विवाह करना चाहेंगी, तो भी कोई हानि नज़र नहीं आती। परन्तु यह कल्पना तो वही कर सकता है, जो भारतीय वीराङ्गनाओं के उज्ज्वल चरित्र से नितान्त अपरिचित हो। यथार्थ में चरित्रहीन, धूर्त, पाखण्डी, पाप-परायण पुरुष ही विधवाओं को पथ-भ्रष्ट करने वाले होते हैं। इस विषम परिस्थिति में भी पवित्र वैधव्य बिताने वाली त्यागमूर्तियों की कमी नहीं है। पर शोक है कि ऐसी प्रातःस्मरणीय पूजनीया देवियों को भी पाखण्डी-



समाज अभिशाप के रूप में देखता है। यहाँ तक कि यात्रा के समय उनका मुँह देखना अपशकुन माना जाता है। जब हम विधवाओं के शारीरिक तथा मानसिक कष्ट और विधवा-विवाह के विरोधियों के चरित्र का ध्यान रख कर उनकी विधवाओं के प्रति अपमानजनक आश-ङ्काओं पर विचार करते हैं, तब हमारी सहिष्णुता की मर्यादा टूटने लगती है और यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इन पाप-परायण धर्म के ठीकेदारों को विधवा बहिनों के चरित्र का नियन्त्रण करने का क्या हक है ?

कहने के लिए तो आज भी कानूनन विधवा विवाह जायज़ है। धर्मशास्त्र और इतिहास भी इसका समर्थन करते हैं। लेकिन जब तक विरोधियों का बोलबाला है, तब तक विधवा-विवाह का सामान्य रूप नहीं हो सकता और न गुप्त अनाचार ही कम हो सकता है। लेखक ने स्वयम् विधवा-विवाह करके भली भाँति अनुभव कर लिया है कि विरोधी समाज में विधवा-विवाह करने वाले को जो जातीय अपमान तथा आर्थिक कष्ट भोगना पड़ता है, वह सर्वसाधारण के लिए सह्य नहीं है। इसी भय से विवाह की इच्छा करने वाली विधवाओं तथा पुरुषों को गुप्त पाप करने को बाध्य होना पड़ता है। अवश्य ही इस प्रकार के समस्त पाप-कर्मों का श्रेय विरोधियों को ही है। ऐसा नहीं है कि विरोधी, बलात् वैधव्य के दुष्परिणामों से अनभिज्ञ हैं। वे पूर्ण परिचित हैं। प्रति वर्ष हजारों अग्र-हत्याएँ उनकी छत्रछाया में ही होती हैं। ये हिन्दू-कुल-जलनाओं को अपने हाथों यवनों की बीबियाँ बनाते हैं और वेश्यावृत्ति द्वारा जीविकोपार्जन करते देखते हैं। कितने ही नाता और गोत्र की हत्या करके स्वयम् मुँह काजा करते हैं। ऐसे पापियों को बिरादरी में स्थान ही नहीं मिलता, बल्कि वे बिरादरी के शिरमौर

भी माने जाते हैं और विधवा-विवाह करने वालों को जातिव्युत्तर करने में उनका हाथ सबसे अधिक होता है।

विधवा बहिनों के संयमी जीवन का जितना पक्ष-पाती विरोधी पक्ष है, उससे कहीं अधिक हम हैं। परन्तु हम जानते हैं कि वर्तमान वातावरण में युवती विधवाओं का पूर्णतया संयमी रहना यानी विशुद्ध जीवन बिताना अति कठिन ही नहीं, लगभग असम्भव है। यही जानकर हम विरोधियों के प्रतिबन्ध को अत्याचारपूर्ण मानते हैं। अगर युवती विधवाएँ संयमी जीवन बिता सकती हैं, तो अवश्य ही किसी युवती का विवाह करना सरासर बलात्कार और अत्याचार है और बालिका का विवाह करने की तो कल्पना करना भी महापाप है। परन्तु जब युवक और अधेड़ पुरुष भी संयमी जीवन बिताने में असमर्थ होते देखे जाते हैं, तो युवती विधवाओं को बाध्य करना क्या मूर्खता नहीं है ? इसलिए प्रत्येक समाज, जाति और देश के शुभचिन्तक का परम कर्तव्य है कि वह विधवा-विवाह की सामाजिक रुकावट का अवश्य ही मूलोच्छेदन करे।

ऐसा देखा जाता है कि विरोधी शास्त्रीय प्रमाण और तर्क-वितर्क को नहीं मानते। शास्त्रीय प्रमाण और तर्क-वितर्क तो न्यायशील, सहृदय मनुष्य के लिए ही होते हैं। विरोधी न तो न्याय करना चाहते हैं और न उनके हृदय ही है। वे केवल एक बात जानते और मानते हैं। वह है “लोकाचार या परम्परा”, इसलिए परम्परा के प्रवाह को बदलने के लिए अधिक से अधिक संख्या में विधवा-विवाह के समर्थकों का होना आवश्यक है।

—गौरीशङ्कर सिंह चन्देल





श्रीमती ई० के० जानकी अम्मल, एम० ए०, डी० एस-
सी०; एफ० एल० एस०; प्रोफेसर ऑव बोटानी, एच०
एच० दी महाराजा कॉलेज ऑव सायन्स, त्रिवेन्द्रम्
(त्रिवाङ्कुर राज्य)—आप त्रिवाङ्कुर राज्य की विज्ञान-
परिषद की एक सदस्या भी हैं।



श्रीमती सरूपरानी किचलू—जोकि ग्वालियर के वीमेन
एसोसिएशन की सेक्रेटरी नियुक्त हुई हैं। यह
एसोसिएशन अभी हाल में ही ग्वालियर
राज्य की महिलाओं द्वारा
स्थापित हुआ है।

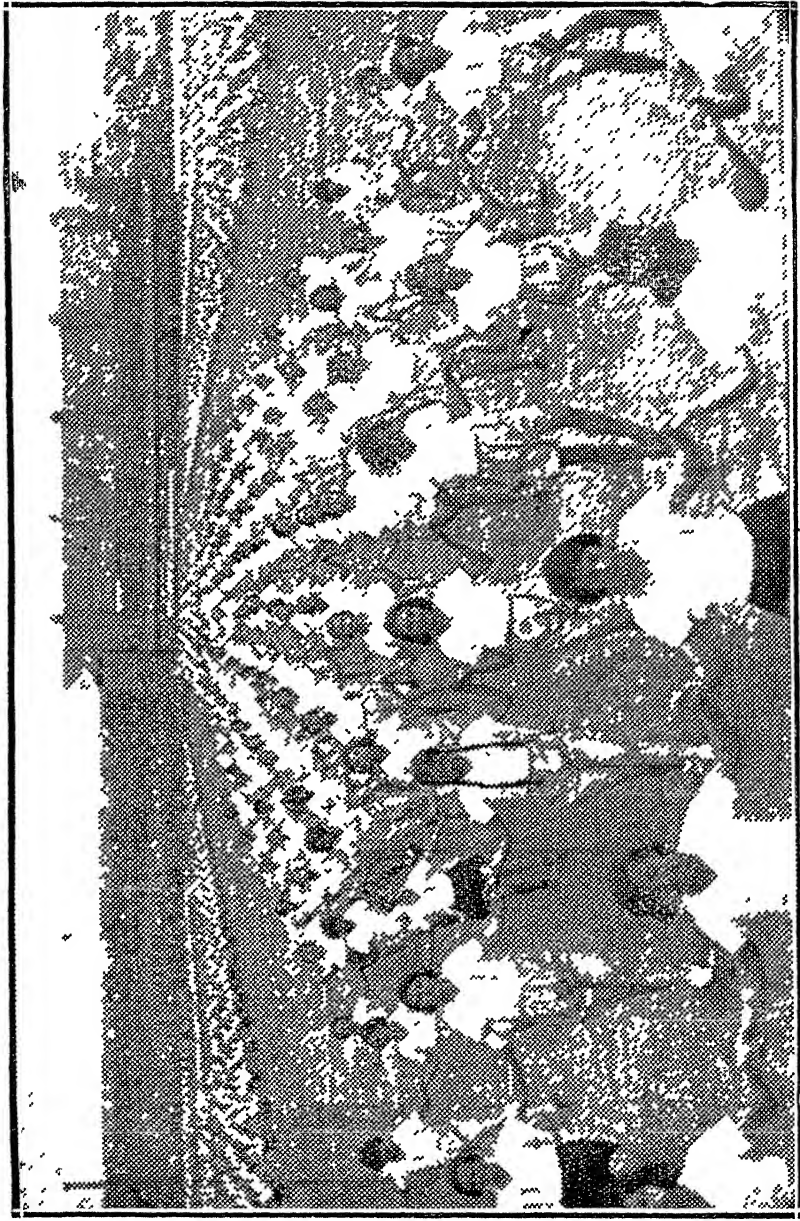


श्रीमती मातिनी देवी—आप आजमगढ़ म्युनिसिपल
बोर्ड की सदस्या निर्वाचित हुई हैं।



श्रीमती मरडल—आप भागलपुर (बिहार) के
म्युनिसिपल बोर्ड की सदस्या हैं।

चौक



हंगरी में महिलाओं का शारीरिक व्यायाम



सौदा

[श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद]



तीस वर्ष के अघेड़ लाला बन-वारीलाल ने एक किम्बकी सी दृष्टि मोती पर डाली। उसके सुन्दर गोल मुख पर जड़ी दो आकर्षक आँखों से केवल चण भर को ही उनकी दृष्टि मिली। दूसरे ही चण उनका मस्तक आप से आप झुक गया।

परन्तु अल्प काल ही में सङ्कोच का बहुत-कुछ भाव उनके हृदय से दूर हो गया और उन्होंने पुनः एक बार आलोचनात्मक दृष्टि से मोती की ओर देखा। मोती अठारह-बीस वर्ष की पूर्ण युवती थी। लम्बे, हल्के गुलाब के से रङ्ग के शरीर की कान्ति उसके महीन वस्त्रों से छन-छन कर चारों ओर फैल रही थी। गोल, सुन्दर मुख से मुकी काली-काली आँखें पृथ्वी पर कुछ खोज सी रही थी। उसके कपोलों पर यौवन की आभा थी, और होंठों पर पान की लाली।

“कैसी सुन्दरी है यह, मुख × × आँखें × × नाक और कपोल × × और × ×।”

उनकी दृष्टि ऊपर से नीचे तक फिर गई। कुछ चण पृथ्वी की ओर देखने के उपरान्त उन्होंने समीप बैठे पहाड़ी हरीसिंह की ओर देखा। वह शान्तिपूर्वक इनकी ओर देख रहा था।

“कहिए ?”—दृष्टि उठाते हुए मूक-शब्दों में उसने पूछा।

उसके स्वभाव में लज्जा नाम-मात्र को न थी। कुछ उत्तर न दे, बनवारीलाल फिर पृथ्वी की ओर देखने लगे। वे कदाचित् कुछ सोच रहे थे। तुरन्त ही उन्होंने फिर दृष्टि उठाई और एक बार पुनः मोती की ओर देखते हुए हरीसिंह की ओर देखा।

“ठीक है।”—बहुत धीमे स्वर में उन्होंने कहा। उनके अधरों पर सूखा हास्य था।

“तो फिर × × ×।” कहते-कहते हरीसिंह रुक गया। वह जल्दी से मामले को तय कर डालना चाहता था। अतएव बनवारीलाल की किम्बकी उसे अखर सी रही थी। बनवारी उसकी ओर देख कर कुछ विचार कर रहे थे। उसे रुकते देख कर बोले—“हाँ, तो फिर × × ×।”

अन्दर-अन्दर हरीसिंह कुछ उठा, परन्तु कुछ बोला नहीं। एक बार उसने दृष्टि मोती पर डाली और फिर बनवारी की ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लगा।

इसी समय मोती घर के अन्दर चली गई। बनवारीलाल ने सोचा, पृथ्वी को आहिस्ते-आहिस्ते दबाते उसके पैर हृदय में कैसी गुदगुदी पैदा करते हैं ?

“हाँ, तो फिर कहिए ?”—सूखी हँसी हँसते हुए अन्त में उन्होंने कहा।

“मैं तो पहले ही आपसे कह चुका हूँ।”



“परन्तु उतना तो बहुत है।”

“बहुत तो नहीं है।”—हरीसिंह कहने ही जा रहा था, परन्तु रुक गया और बनवारी की ओर देखने लगा।

“कुछ कमी करो।”—बनवारी ने कहा।

हरी सोचने लगा। बोला—अच्छा पच्चीस रूपए कम सही।

“नहीं, कुछ और।”

“और नहीं। आखिर $\times \times \times$ भी तो है।”

“अच्छा ४५०) दे दूँगा। बस इतना ठीक है।”—उठते-उठते बनवारी ने कह दिया।

“झैरे”—कुछ सोच कर हरीसिंह बोला—“परन्तु कब तक?”

“बस कल शाम तक मिल जाएँगा, तभी इसे भेज देना।”—हँसते हुए बनवारी ने कहा।

इस बार अवश्य उनकी हँसी में कुछ मिठास थी। फिर वह चले गए।

२

रास्ते भर बनवारीलाल मोती के रूप पर विचार करते रहे। उसकी आँखें, नाक, कान, मुँह सभी बारी-बारी से उनकी दृष्टि के सम्मुख फिर रहे थे और वे अब उनका मानसिक आनन्द बढ़ा रहे थे।

“यह पहाड़ी स्त्रियाँ कैसी रूपवती होती हैं—फूल-जैसी $\times \times \times$ परन्तु $\times \times \times$ पाँच सौ? बहुत $\times \times \times$ साढ़े चार सौ ही उचित हैं, बस $\times \times \times$ ।

घर पहुँच कर उन्होंने अपना कमरा खोल कर सन्दूक से रूपए की पोटली निकाली। गिना, पूरे ३००) निकले। वे रूपए गिनते जाते थे और मोती और उसके रूप पर विचार करते जा रहे थे। कहीं वे ठगे तो नहीं जा रहे थे? नहीं, रूप भी तो है।

वे थैली लेकर दूकान को चले। मार्ग में ध्यान आया, यदि कल को उसने ५००) माँगे तो? उनके पास कुल ५००) तो रूपए ही होंगे। वही उनकी दो वर्ष की—जब से मीना की माँ मरी—कमाई थी। और कितनी गाढ़ी? आजकल दूकानदारी में वैसे ही क्या धरा है? रुपया लगाओ बारह आने मिलते हैं। फिर उन्होंने कितनी आवश्यकताओं को रोक कर यह धन एकत्रित कर पाया था।

“नहीं, मैं चार सौ पचास से एक कौड़ी भी अधिक न दूँगा।”—उन्होंने सोचा—“मोती आवेगी तो और भी तो खर्च चाहिए। आज यह, कल वह। न, इससे अधिक नहीं दे सकता।”

दूकान पर पहुँच कर उन्होंने अपनी सन्दूकची खोली। ढक्कन की दराज़ से नोटों का लिफाफा निकाल कर खोला; गिने पूरे दो सौ पन्द्रह के नोट थे—दो सौ-सौ के, एक दस का, एक पाँच का। उन्होंने इसमें से दो नोट थैली में रक्खे और ५०) निकाल कर सन्दूकची में डाल दिए। फिर सन्दूकची बन्द कर दी। परन्तु कुछ सोच कर फिर खोली और १०) निकाल कर भीतर की जेब में रख लिया। फिर सन्दूकची बन्द कर हिसाब की बही उठाई। इसी समय इनके मित्र सुन्दरसिंह आते दिखाई पड़े। उनकी हुलिया बताना व्यर्थ ही है। ऐसे ही साधारण आदमी थे, जैसे हम और आप। उनकी कपड़े की दूकान थी।

“जैराम जी की। आइए!”

“जैराम जी की”—बैठते हुए सुन्दर ने कहा—“कहिपु, आजकल $\times \times \times$ ।”

आँख का सङ्केत कर वह हँसने लगे।

बनवारी तनिक केंप से गए। कुछ उत्तर न देकर वे उनकी ओर देखने लगे।

“कहो कितने में तय हुआ?”—हँसते हुए सुन्दर ने पूछा।

“क्या?”

“ओ-ख-खो! मित्रों से! मानों मुझे कुछ पता ही नहीं है। अजी जनाब, वही पहाड़िन छोकड़ी, मोती, जिसे देखने आप गए थे और जो शीघ्र ही आपके घर की शोभा बढ़ाने वाली है।”

बनवारीलाल सच्चाटे में आ गए। इन्हें उसका क्या पता? वे तो प्रत्येक बात बहुत गुप्त रूप से कर रहे थे। सुन्दर ने इतनी देर बनवारी के भावों को पढ़ने में व्यय की। फिर बोला—हाँ, तो फिर कितने में तय किया?

बनवारी ने देखा, अब छिपाना व्यर्थ है। बोले—यही साढ़े चार सौ देने पड़ेंगे। बड़ा मँहगा सौदा है भाई!

“साढ़े चार सौ?”



बनवारी ने सिर हिलाया ।

“बहुत लगा दिए, भला वह इतने के योग्य है ?”

बनवारी के नेत्रों के सम्मुख एक बार मोती की छाया-मूर्ति फिर गई । वही सुन्दर सुगठित शरीर, वही पूर्णविकसित यौवन × × × । फिर बोले—परन्तु अब तो देने ही होंगे । वचन दे चुका हूँ ।

“कब लाओगे ?”

“कल सन्ध्या के लिए कह आया हूँ ।”

सुन्दरसिंह तनिक और निकट सरक आए और धीमे स्वर में बोले—है कैसी ?

बनवारी चुप होकर डुङ्कुर-डुङ्कुर सुन्दर को देखने लगे ।

“वाह यार ! हमें—मित्रों को ही—नहीं बतलाओगे ?”

“क्या करोगे सुन कर, ऐसी ही साधारण है ।”

“आखिर मैं उसे लिए तो जा ही नहीं रहा हूँ ।

फिर बताते क्यों नहीं ? कैसा रङ्ग है ? कैसा रूप है ?”

रुक-रुक कर धीरे-धीरे बनवारी ने बतलाना आरम्भ किया । आप क्या कीजिएगा सुन कर । आप तो वैसे ही बहुत जान गए हैं । आइए !

३

दूसरे दिन सूर्यास्त होने पर बनवारीलाल बन्द कॉलर का काजा कोट पहने हरीसिंह के मकान की ओर चले जा रहे थे । वे शीघ्र ही इस मामले को तय कर डालना चाहते थे ; कारण यह था कि वे समझते थे कि जितनी ही देर होगी, उतनी ही दूर तक इसकी चर्चा फैलेगी और उतनी ही अनुचित बात होगी । अतएव वे तेज़ी से पैर बढ़ाए सशक्त दृष्टि से चारों ओर देखते चले जा रहे थे ।

अन्त में वे हरीसिंह के द्वार पर जा पहुँचे । धीरे से आवाज़ दी । थोड़ी देर तक कोई उत्तर न मिला । उन्होंने फिर तनिक ज़ोर से पुकारा । परन्तु फिर भी कोई बाहर न आया । बनवारी को आश्चर्य हुआ । वह और तो कहीं नहीं चला गया ?

उसी समय हरीसिंह बाहर निकल आया । मुस्कराते हुए उनकी ओर देख कर उसने उन्हें बैठने के लिए मोड़ा डाल दिया । मोढ़े पर बैठते ही जेब में पड़ी झेली को

टोलते हुए बनवारीलाल ने पूछा—“कहिए ठीक है ?” उनके मुख पर आनन्द की आभा थी, हृदय में जल्दी ।

“न, आज तो न हो सकेगा ।”

“क्यों ?”

“कल वह अपने एक रिश्तेदार से मिलने चली गई है । बोली, जाने से पहले एक बार तो मिल लूँ ।”

“कब तक लौटेगी ?”

“पहाड़ गई है न, कम से कम छः-सात दिन लौंगे ।”

बनवारीलाल चुपचाप सिर झुकाए कुछ सोचते रहे । हरीसिंह भी मूक-भाव से उनकी ओर देखता रहा । फिर बोला—अधिक समय नहीं लगेगा, वह जल्द ही आ जाएगी ।

सहसा बनवारी ने कहा—और तो कोई बात नहीं है ? दस-बीस रुपयों की परवाह न करना ।

“नहीं-नहीं, सो बात नहीं है ।”

“नहीं, अगर कम समझते हो तो मैं २५ और दे दूँगा ।”

“नहीं, उसकी कोई बात नहीं है । वह जभी आएगी, मैं आपको इत्तिला कर दूँगा । आप निश्चिन्त रहें ।”

“अच्छी बात है ।”—उठते हुए बनवारीलाल ने कहा—“जितनी जल्दी हो सके, उसे बुला लो, मामला तय हो जावे ।”

“हाँ-हाँ, सब बहुत जल्द हो जाएगा, आप चिन्ता न करें ।”

फिर बनवारीलाल चले आए ।

४

आठ दिन व्यतीत हो गए । यह दिन बनवारीलाल ने किस प्रकार बिताए, यह बताना कठिन है । दिन-रात अनेकों प्रकार के विचार उनके मस्तिष्क में घूमते । कभी सोचते, रुपय कम दिए इसी से उसने मना कर दिया । कभी कहते, यह बात नहीं है, वह वास्तव में अपने सम्बन्धी के यहाँ गई है । आखिर यहाँ आने से पूर्व सबसे मिल आने में क्या हानि है ? दो-चार दिन ही तो लौंगे ? इसी प्रकार और न जाने क्या विचारते-विचारते वे उसके रूप आदि की कल्पना करने लगते । कैसी रूप-वती है वह ! कैसा गठा शरीर है ! आकर्षक ! मधुर !



आठ दिन बीत गए। बनवारीलाल की आशा, चिन्ता, अभिलाषा दिन-दिन बढ़ती ही जाती थी। अब वे प्रतिदिन आजकल-आजकल करके बिता रहे थे। उनका हृदय मोती के लिए ध्याकुल हो उठा। वे प्रतिदिन हरीसिंह की खोज में जाते, परन्तु वह न मालूम कहाँ चला गया था।

मङ्गलवार का दिन था। सन्ध्या-समय बनवारीलाल दुकान पर बैठे मोती की चिन्ता में लीन थे। आज नौ दिन हो गए, परन्तु हरीसिंह अभी नहीं आया है। क्या कारण है? सामने से सुन्दरसिंह आते दिखाई पड़े। उनका मुख उतरा हुआ था। दस दिन के बाद आज वे इधर दिखाई दिए थे।

“जै राम जी की भाई सुन्दर, क्या बात है?”—बनवारी ने पूछा।

“कुछ न पूछो यार × × ×।”

“क्या हुआ, बताओ तो?”

“मित्रों के साथ धोका करने का फल है।”

“क्या हुआ? किसे धोका दिया?”

सुन्दरसिंह ने आश्चर्य भरी एक तीव्र दृष्टि से बनवारीलाल की ओर देखा।

“तुम्हें नहीं मालूम?”

“क्या?”

“तुम मोती को लेने नहीं गए थे क्या?”

“गया तो था। वह अपने किसी सम्बन्धी से मिलने चली गई है। आजकल मैं आने वाली है।”

“अरे राज़ब! कभी मत विश्वास करना उस पर। मैं तो चौपट हो गया।”

“क्यों, क्यों? क्या हुआ? तुमने क्या किया?”

“कुछ न पूछो।” सुन्दरसिंह ने तनिक शान्त होकर कहा—“उस दिन मैं तुमसे मिल कर हरीसिंह के पास गया और मोती को देख कर ५००) देकर उसे ले आया। मैंने उससे कह दिया था कि वह तुम्हें मेरा नाम न बतलाए। आठ दिन तक मैं उसके साथ रहा। उसे किसी प्रकार का कष्ट न था। आनन्द से थी। कल उसे बहुत प्रसन्न छोड़ कर दुकान को गया, परन्तु शाम को जब पहुँचा तो देखता हूँ कि मोती गायब है।”

“क्या भाग गई?”

“यही नहीं, घर से हजार दो हजार के गहने आदि भी ले गई। मैं तो लुट गया।”—सुन्दर की आँखों में आँसु भर आए।

बनवारीलाल स्तब्ध रह गए। वे सुन्दर की ओर देखते रह गए। उनके विचार उस समय न जाने कहाँ उड़ रहे थे। तो क्या हरीसिंह ने उसे धोका दिया? क्या मोती के पहाड़ जाने की बात झूठी थी? क्या हरीसिंह ने उसे ठगने ही को यह षड्यन्त्र रचा था?

फिर उन्होंने पूछा—पुलिस में रिपोर्ट कर दी न?

कुछ सोचते हुए सुन्दर ने कहा—नहीं; क्या लाभ? अब जो गया वह तो मिलने से रहा, उलटे दोड़-धूप अलग करो और पुलिस की जेब भरो।

कुछ सोचने की सी मुद्रा बना कर बनवारीलाल चुप हो रहे।

५

उपर्युक्त घटना को हुए दो दिन व्यतीत हो चुके थे। यद्यपि बनवारीलाल ने यह तय कर लिया था कि वे इस सौदे से दूर रहेंगे, परन्तु फिर भी उनका हृदय अभी मोती को भूल न सका था। उन्हें रह-रह कर उसकी याद आती और हृदय में आशा-अभिलाषा के मानसिक क्लिबे बन जाते, परन्तु तुरन्त ही बुद्धि उन्हें मिट्टी में मिला देती। उनके मन और बुद्धि में होड़ सी लगी थी। एक ओर हृदय मोती से मिलना चाहता, दूसरी ओर बुद्धि उनके विपरीत सम्मति देती। बुद्धि कहती, मोती विश्वसनीय नहीं है। मन कहता, कहीं इतना रूप, इतना भोलापन ऐसा कार्य कर सकता है?

दो दिन से इसी झूझ में बनवारीलाल पड़े थे। परन्तु अभी तक कुछ तय न कर पाए थे। यद्यपि हरीसिंह के आने की आशा अब उन्हें न थी और होती भी कैसे? अब वह क्या मुँह लेकर लौटेगा? परन्तु फिर भी मोती की स्मृति को अपने हृदय से निकाल देने में वे असमर्थ थे।

दीपक अभी जले ही थे कि बनवारीलाल घर आने की चिन्ता में लगे। उनका मन अब काम में कम लगता था। सहसा हरीसिंह दुकान के आगे आकर खड़ा हो गया। बनवारीलाल चौक पड़े, जैसे उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास ही न हो।

“कौन, हरीसिंह?”



“जी, वह आ गई।”

“कौन ? मोती ?”

“जी।”

एक बार तो बनवारीलाल की इच्छा हुई कि इसे फटकार बता कर पुलिस का भय दिखा कर भगा दें। परन्तु इसका न जाने क्यों, उन्हें साहस न हुआ। उन्होंने केवल इतना कहा—हरीसिंह ! तुम बड़े विश्वास-घाती हो। मुझसे तुमने कहा कि मोती पहाड़ पर गई है और भेज दिया उसे सुन्दरसिंह के यहाँ। छिः ! कितनी बुरी बात है।

तनिक देर तक तो हरीसिंह कुछ न बोला, तदुपरान्त धीरे से उसने कहा—अपराध अवश्य हुआ, परन्तु क्या करूँ, सुन्दरसिंह ने मुझे वास्तविक बात बताने को मना कर दिया था। यही नहीं, वह उसे हठ करके बलपूर्वक ही ले गए। मेरी इच्छा कदापि उन्हें देने की न थी।

बनवारीलाल कुछ देर तक सोचते रहे।

“सुन्दरसिंह परसों आए थे। कह रहे थे कि मोती मेरा बेद-दो हज़ार का गहना लेकर भाग गई।”

“ज़ेवर ? अरे राम ! उन्होंने तो उस बेचारी को इतना कष्ट दिया। न जी भर खाने को, न तन भर पहनने को और फिर सज़ती तथा काम-काज अलग। ऊपर से बात-बात पर कहना कि रुपए देकर खरीदा है, कोई मुफ्त में नहीं आ गई हो। भला भाग न आती तो क्या करती ? और ज़ेवर ? वह बेचारी तो वहाँ से एक फूटी कौड़ी भी नहीं लेकर आई। और क्या सुन्दरसिंह इतने रुपए मुझ पर छोड़ देंगे ?” उसके मुख की मुद्रा गम्भीर थी।

बनवारीलाल ने कुछ उत्तर न दिया। उनका हृदय स्वयं ही उस पर विश्वास करने को तैयार था। अब

उन्होंने सोचा, कदाचित् इसी से सुन्दर ने पुलिस में रिपोर्ट नहीं की।

हरीसिंह फिर कहने लगा—पहाड़ी कितने ईमान-दार होते हैं, इस बात को कौन नहीं जानता। सुन्दर ने अवश्य ही यह सब आपको भड़काने के लिए कहा है। आप विश्वास रखिए, हरीसिंह कभी आपसे धोके की बात न कहेगा।

बनवारी को पूर्णरूप से हरी पर विश्वास हो चला था। वे बोले—मुझे तुम पर विश्वास है।

“यही नहीं, मोती जैसी सीधी-सादी लड़की से ऐसी आशा ! उसे यदि अच्छी तरह से रक्खा जाए, खाने-पीने और कपड़े-जुते का सुख हो तो फिर देखिए।”

बनवारीलाल के मुख पर आन्तरिक आनन्द की छाजिमा दौड़ गई। उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। हरीसिंह गम्भीर भाव से चण भर तक उनके मुख की ओर देखता रहा।

“तो फिर कब जाऊँ ? आज ही ?”—मुस्कुराने का प्रयत्न करते हुए हरीसिंह बोला।

बनवारीलाल कुछ देर तक विचारस्थ रहे, फिर मुस्करा कर उत्तर दिया—आज ही सही।

उसी दिन मोती रानी ने बनवारी के उलट्टे घर को सन्दन-कानन बना दिया।

६

सवा महीने के बाद एक दिन लाला बनवारीलाल धवराए से लपके पुलिस के थाने की ओर चले जा रहे थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि मोती उनके घर का समस्त गहना, कपड़ा और रुपया-पैसा लेकर भाग गई है।





नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या — ३७

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
शान्ति हृदय में कुछ आई,
आती थी इस बार तुम्हारे
लिए परिस्थिति मन-भाई;

किन्तु कौन जाने क्या होवे
निपट व्यर्थ करना अनुमान,
बड़ा कठिन होना भविष्य की
बातों का है कुछ भी ज्ञान।

करते हैं अनुमान बहुत जन
पर होता वह ठीक नहीं,
वर्तमान होता भविष्य जब
तब होता वह विदित कहीं।

बहिन, तुम्हारी शक्काएँ हैं
व्यर्थ, अभी भी आधा भार
पति पर, आधा पत्नी पर है
जग में शिशु-जन का सुकुमार;

दोनों मिल कर उन्हें पालते
अब, पर घर होता है एक,
बटे हुए हैं शिशु-सम्बन्धी
अब भी उनमें कार्य अनेक;

बट जावेंगे वहीं और भी
स्पष्ट रीति से भली प्रकार,
जिससे अब जो अनबन होती,
होगा बस उसका प्रतिकार।

शिशु-जन को अति सुविधा होगी
उनके हित दो घर होंगे,
पृथक्-पृथक् वे स्नेहभाव बहु
उनके हित सुखकर होंगे।

कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा
तब अति श्रेयस्कर होगी,
इस शिक्षा से तो वह शिक्षा
बहु प्रकार सुन्दर होगी।

पहले उनको तन की शिक्षा
भली भाँति दी जावेगी,
जिससे उनकी कली देह की
भली भाँति खिल पावेगी।

उन्हें तैरना आदि सभी कुछ
प्रथम सिखाया जावेगा,
तब उसके पश्चात् पढ़ाया
और लिखाया जावेगा।

उन्हें नाव खेने की शिक्षा,
और चलाने की जलयान
दी जावेगी, वायुयान के
सञ्चालन का होगा ज्ञान,

मत्स्य-वेध करना आवेगा
शब्द-वेध करना भी स्यात,
आवश्यक जितनी बातें हैं
उनमें से न एक अज्ञात,

उच्च कोटि साहित्य-अध्ययन,
लेखन-कला-ज्ञान अवदात,
आदि सभी उन कन्याओं के
होंगे सब जग में विख्यात।

दौड़ सकेंगी वे मीलों तक,
तब भी क्या फूलेगी श्वास,
मुष्टि प्रहारों, मल्ल युद्ध का
भी होगा उनको अभ्यास।

अश्वारोहण आदि सभी कुछ
वे सीखेंगी भली प्रकार,
किसी बात का सिखना
उनके लिए नहीं होगा तब भार।



भूमि और आकाश सभी पर होगी उनकी गति निर्बाध, कामुक साधें छोड़ और सब पूरी होगी उनकी साध ।	लड़के भी स्पर्धा कर करके आगे और बढ़ेंगे तब, द्रुतगति से उन्नति की सीढ़ी पर वे युगल चढ़ेंगे तब ।	आगे कभी लिखूंगी तुमको उन कन्याओं के विख्यात किस सुस्वस्थ सुन्दर प्रकार से तब व्यतीत होंगे दिन-रात ।
---	--	--

बहिन सुनाती हूँ मैं तुमको अब अपना आगे का हाल, उसने चूमा माँग ली, पर था बुरा हो गया मेरा हाल ।	अब तो मनुज-जाति के ऊपर से हट गया प्यार-विश्वास, मैंने सोचा अब स्वतन्त्र ही रहने का मैं करूँ प्रयास ।
--	---

मैंने कहा कि रह सकती मैं नहीं तुम्हारे घर में अब, उसने कहा कि जो इच्छा, मत रहो हमारे घर में अब ।	यह सुन कर मैं उसके घर से बाहर ही हो गई तुरन्त, हुई निराश्रय, मुझको सूने लगने लगे समस्त दिगन्त ।	मिल जाती थी आँख किसी से तो लगता था भय मुझको, ज्ञात कुटिलतापूर्ण सभी का होता था आशय मुझको ।
---	--	---

पत्र संख्या—३८

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

मिला शुभ-पत्र तुम्हारा पढ़ करके सुख मुझे हुआ, क्षण भर को तो अपना सारा सपना सा दुख मुझे हुआ ।	सुभग कल्पनाओं का होता मानस पर सुविचित्र प्रभाव, सुभग भविष्य किसी का भी हो लाता मन में सुन्दर भाव ।	बहिन चाहती हूँ मैं हावे तब विचार के ही अनुसार घटनाओं का क्रम, जिससे हो जावे अद्भुत यह संसार ।
---	---	--

इन सुपरिस्थितियों में जितनी उन्नति कर सकता संसार अकथनीय है वह, स्पर्धा का अद्भुत होगा वह व्यापार ।	बढ़ जाना चाहेंगी नारी— जन तब नर-जन के आगे, नर-जन उनसे होड़ करेंगे रह कर सदा प्रेम-पागे ।
---	---

हो जावेगा हवा जगत से नर-जन का सब अत्याचार, कष्ट-मुक्ति से नारी-जन के मन में वर्धित होगा प्यार ।	बहिन, लिखा था किसी पत्र में तुमने, लेकर के अवतार कोई अति प्रतिभाभय ललना कर लेगी ललना-उद्धार ।	तो क्या जब तक जगती भर की ललना-जन का व्यूह-विशाल नहीं बनेगा, तब तक यह हो नहीं सकेगा कार्य रसाल ?
--	--	--

क्या यह सम्भव नहीं कि केवल एक-देश-गत-ललना जन के द्वारा हो जाय उसी की ललनाओं का उर्ध्व-गमन ?	फिर उसके पश्चात् उसीके आदर्शों के ही अनुसार और और देशों की ललना— जन का हो जावे उद्धार ।
--	--



क्या यह सम्भव है कि सर्व-जग
के हो जावे दो सुविभाग ?
उड़ जावेंगे के क्या जगती से
राष्ट्रीयता देश-अनुराग ?

बहिन स्पष्ट करके समझाना
आगे पत्रों में यह बात,
यह भी कहना कब तक होगा
नारी-जन का जीवन-प्रात ।

तुमने जो लिख दिया कि ऐसा
हो जावेगा किसी समय
स्पष्ट कहो यह है भी ऐसा,
कभी न हो सकने का भय ?

बहिन सुनाती हूँ मैं तुमको
अब अपना आगे का हाल,
उस दासी के अनुकम्पामय
दीखे मुझको नयन विशाल,

मुझे जान पड़ता था, वह थी
पहले कभी भले घर की,
क्योंकि देख कर मुख उसका थी
होती भ्रान्ति कलाधर की ।

रही कुछ समय मौन, बाद वह
आश्वासन देती बोली,
मानों मेरी बाधाओं को
स्मिति से हर लेती बोली—

धीरज धरो, दिला दूँगी मैं
बेटी तुमको कोई काम
चुलो इस समय मेरे घर में
करो कुछ समय तुम आराम ।

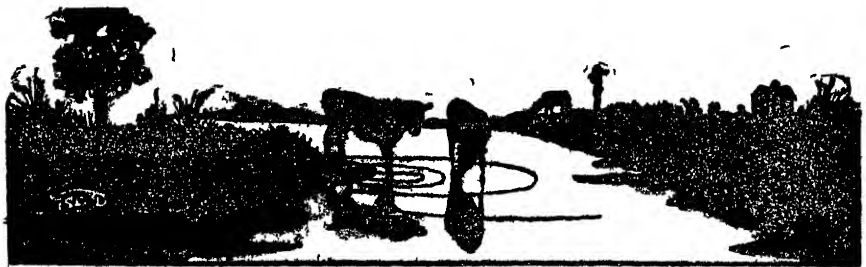
मैंने सोचा, यही ठीक है
थका हुआ था मन मेरा
निश्चय विकृत रहा होगा उस
समय बहुत आनन मेरा ।

चली गई मैं साथ उसी के,
उसके घर जाकर सोई,
जब जागी, एकान्त उस समय
था, तब मैं खुल कर रोई,

किन्तु कभी भगवान दीन का
रोंना क्या सुनते हैं हाय !
मुझे जान पड़ता है, वे भी
हैं मानव के सम असहाय ।

क्या उनके रोके रुकते हैं
नहीं जगत के अत्याचार,
क्या वे करते नहीं जगत में
पूर्ण-न्याय से भरा विचार ।

जो कुछ हो, मैंने उनको ही
हाथ जोड़ कर किया प्रणाम,
तब उसके पश्चात लेट कर
करने लगी पुनः आराम ।





विधवा या वेश्या कन्या की आवश्यकता

महाशय जी, मेरे एक हिन्दू मित्र हैं, जिनकी आयु लगभग २० वर्ष की है और आयुदनी ५०० रु० मासिक है। वे आधुनिक विचार के हैं। और किसी भी जाति की बाल-विधवा या वेश्या-कन्या के साथ अपना विवाह करने को तैयार हैं। वे अपने समाज में एक आदर्श रखना चाहते हैं। यदि इस सम्बन्ध में किसी को पत्र-व्यवहार करना हो तो नीचे लिखे पते से करें।

एम० एल० शर्मा

मिशन हाउस, मु० महोबा, जि० हमीरपुर

❁ ❁ ❁

श्रीमान् सम्पादक जी,

मेरा एक पत्र जनवरी मास के 'चाँद' में 'एक युवक की सदाकांक्षा' शीर्षक से चिट्ठी-पत्री सम्भ में प्रकाशित हुआ था। सो कृपा करके उसी सम्बन्ध में यह दूसरा पत्र भी प्रकाशित कर दीजिए। क्योंकि लोग लाजच देते हैं और क़ारी कन्या के लिए विशेष आग्रह करते हैं। परन्तु युवक का उद्देश्य तो किसी विधवा का उद्धार करके विधवा-विवाह-प्रथा अपने समाज में प्रचलित करना है। इस कारण वह धन का लोभ छोड़ कर इस ओर अग्रसर हुआ है। कृपा करके पाठकगण विधवा के सम्बन्ध में ही पत्र-व्यवहार करें; क़ारी कन्या के विवाह के लिए लिखा-पढ़ी करके ध्यर्थ तज़ न करें। भवदीय,

डॉ० शिवदत्तप्रसाद शर्मा

एच० एम० बी०

पो० अजगैन, ज़िला उधवा

❁ ❁ ❁

सुपात्र की आवश्यकता

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर नमस्ते !

मैं एक गरीब कायस्थ-कुल की की हूँ। निम्न-लिखित विषय में आप से सहायता चाहती हूँ। आशा है, सहायता प्रदान कर मुझे कृतार्थ करेंगे। मुझे एक लड़की के लिए, जिसकी उम्र करीब १६, १७ साल की है, मैट्रिक में पढ़ रही है और दस्तकारी का काम बहुत अच्छा जानती है, एक ग्रेजुएट कायस्थ वर की आवश्यकता है, जो सुधारवादी और आधुनिक विचार के हों। गरीबी के कारण मैं तिलकादि नहीं दे सकती हूँ। इस विषय में ज़्यादा जो कुछ पूछना हो, पूछ सकते हैं।

भवदीया

अध्यापिका आर्य-कन्या-पाठशाला, अबूरपुल, भारा

❁ ❁ ❁

एक सक्सेना वर की ज़रूरत

प्रयाग से ही एक विद्यार्थी ने लिखा है :—

पूज्य सम्पादक जी, प्रणाम !

'चाँद' की 'चिट्ठी-पत्री' पढ़ कर मैं यह पत्र आपकी सेवा में भेजने का साहस कर रहा हूँ। आशा है, आप इसे 'चाँद' की चिट्ठी-पत्री में स्थान देकर मेरा उपकार करेंगे। मैं सक्सेना कायस्थ जाति का एक मातृ-पितृहीन गरीब विद्यार्थी हूँ और प्रयाग के एक हाई-स्कूल में ९वीं कक्षा में पढ़ता हूँ। मुझे अपनी बहिन के लिए एक ऐसे सक्सेना कायस्थ जातीय शिक्षित पात्र की ज़रूरत है, जिसके विचार उदार तथा स्वास्थ्य अच्छा हो और जो बिना तिलक-दहेज लिए शादी करने को तैयार हो। क्योंकि मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। खड़की



स्वस्थ, रङ्ग गोरा, हिन्दी पढ़ी-लिखी और गृह-कार्य में निपुण है। जो कोई भाई इस सम्बन्ध में मेरी सहायता करेंगे, मैं उनका आजन्म आभारी रहूँगा।

आपका,

एक गरीब विद्यार्थी

[सकसेना कायस्थ जाति में उदार विचार के युवकों की कमी नहीं है। आशा है, कोई युवक इस गरीब विद्यार्थी की सहायता के लिए तैयार हो जाएगा। जो सज्जन इस सम्बन्ध में आवश्यक बातें जानना चाहते हो, वे कृपा करके जवान के लिए टिकिट भेज कर हमसे पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।]

—सम्पादक 'चाँद']



रोगियों के पत्र

'चाँद' में बहुत से असाध्य या दुस्साध्य रोग-ग्रस्त भाई-बहिन अपने पत्र भेजा करते हैं। ऐसे पत्रों को छापने का उद्देश्य यह होता है कि रोगियों को परीक्षित और आज्ञामाई हुई औषधियाँ मालूम हो जायँ और 'चाँद' के अन्यान्य पाठक भी आवश्यकता पड़ने पर उन औषधियों से लाभ उठा सकें। परन्तु बहुत से सज्जन कोई आज्ञामूढ़ औषधि न बता कर रोगियों के पते हमसे पूछा करते हैं या अपने पते हमारे पास प्रकाशनार्थ भेज देते हैं। कुछ लोग अपनी 'पेटेण्ट' दवाओं के नाम और अपना पता भेज कर मुफ्त में ही अपना विज्ञापन करा लेना चाहते हैं। कोई उदार-हृदय सज्जन रोगी को अपने पास बुलाते हैं और कोई किसी डॉक्टर या वैद्य का पता लिख भेजते हैं। फलतः ऐसे पत्रों को विवश होकर हमें रद्दी की टोकरी के हवाले करना पड़ता है। पत्र-लेखकों का परिश्रम और पैसा - साथ ही उन पत्रों को पढ़ने और उन्हें फाड़ कर फेंकने में हमारा भी बहुत सा समय व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। इसलिए पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में केवल अपनी आज्ञामाई हुई दवाएँ और उन्हें तैयार करने की विधि ही लिखा करें, अन्य प्रकार की बातें लिखने की कृपा न करें। नीचे कुछ रोगियों के पत्र प्रकाशित किए जाते हैं, यदि किसी को इनके सम्बन्ध में कोई परीक्षित दवा

या कोई क्रिया आदि मालूम हो, तो लिख कर भेजने की कृपा करें। हम उसे सहर्ष 'चाँद' के आगामी अङ्क में छाप देंगे।

—सम्पादक 'चाँद'

विषम वधिरता

सम्पादक जी, प्रणाम !

मेरा पत्र 'चाँद' में छाप दें और इसका उत्तर भी 'चाँद' द्वारा देने की कृपा करें। मैं राजपूत की लड़की हूँ। थोड़ा पढ़ना लिखना जानती हूँ। मैं अनाथिनी हूँ। घर में सौतेली माता हैं। पिता जी नौकरी पर रहते हैं। मुझे सुनाई कम देता है। कान भी साफ़ हैं। उनमें कोई कसर नहीं है। सिर्फ सुनाई कम देता है। मेरी सौतेली माँ कोई दवा इलाज तो करती नहीं, परन्तु उनकी बातें नहीं सुनती हूँ तो आकर मारने लगती हैं। आप ज़रूर कोई दवा बतावे। भगवान आपका भला करेंगे। मेरा नाम-पता कुछ मत छापिएगा, नहीं तो बहुत मारी जाऊँगी।

आपकी,

× × ×

[इस लड़की ने बहुत बड़ा पत्र अपनी टूटी-फूटी भाषा और लिपि में लिखा है, जिसका आशय ऊपर दिया गया है। इसके पत्र में कुछ ऐसी अस्पष्ट लाइनें हैं, जिनका अर्थ शायद यह है कि वधिरता के कारण उसके विवाह में भी बाधा पड़ रही है। आशा है, कोई सज्जन इस अनाथिनी का उपकार करेगा।]

—स० 'चाँद']

एक रुग्ण विद्यार्थी

सम्पादक जी, सादर प्रणाम !

मैं एक हाईस्कूल का विद्यार्थी हूँ और मेरी अवस्था १६ साल की है। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। यहाँ तक कि चलने-फिरने से भी विवश हूँ। कारण यह कि एक भयङ्कर रोग का शिकार बन गया हूँ। इसका नाम तिन्ही या Spleen है। यह रोग मुझे दो साल से सताए हुए है। अनेक प्रकार की औषधियाँ की, परन्तु अभी तक इस रोग से छुटकारा नहीं मिला। मैंने आपके 'चाँद' की शरण ली है। शायद इसमें सफलता प्राप्त हो।

आपका,

× × × निगम



असाधारण मोटापन

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते !

मैं इतना मोटा हो गया हूँ कि अच्छी तरह चल-फिर भी नहीं सकता। मेरी उम्र अभी बहुत थोड़ी है। मैं १० वीं श्रेणी का विद्यार्थी हूँ। मेरी स्थूलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। मैंने अपने शिक्षक महोदय के कहने से खाना कम कर दिया, नित्य व्यायाम करना आरम्भ किया। परन्तु सब निष्फल ! कृपया आप 'चाँद' में मेरा पत्र छाप दें, शायद कोई भाई मेरा कुछ उपकार कर सकें।

आपका,

आर० एन० बनर्जी,

[उपर्युक्त पत्र इस विद्यार्थी ने हमारे पास दरभङ्गा से भेजा है। ऐसे और भी कई पत्र हमारे पास आए हैं। बुरहानपुर से एक गुजराती विद्यार्थी ने लिखा है कि मेरा पेट असाधारण रूप से मोटा हो गया है। बिहार प्रान्त से ही एक बहिन लिखती हैं, कि मेरी स्थूलता इतनी बढ़ गई है कि उठना-बैठना भी कठिन हो गया है। आशा है, कोई सज्जन इन रोगियों की कोई सहायता करेगे।

—स० 'चाँद']

भयानक मोटापन

एक बहिन ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

मैं एक विवाहिता स्त्री हूँ। मेरी उम्र २२ साल की है। मैं बहुत मोटी हो गई हूँ। शरीर का वजन १६ स्टेन है। इसलिए मेरे पतिदेव मुझे पसन्द नहीं करते। मैंने दुबली होने के लिए बहुत तदवीरें कीं। कसरत करती हूँ, उपवास भी करती हूँ। घर का काम-काज भी करती हूँ। परन्तु कोई फल नहीं होता। मैं परदानशील हूँ। अब मैं आपकी शरण में आई हूँ और आशा करती हूँ कि आप कोई ऐसी तदवीर बताएँ, जिससे मेरा मोटापन दूर हो जाय। आप इस पत्र को 'चाँद' में छाप दें और उपाय भी छाप दें। पर कृपा करके मेरा पता न छापें।

आपकी,

—एक दुखिनी

[निश्चय ही यह एक भयानक रोग है, और परदा इसका मददगार है। इस बहिन को चाहिए कि सबसे पहले तो परदे को छोड़े। प्रातःकाल दो तीन घण्टे खुली हवा में टहले, किसी अच्छे वैद्य से चिकित्सा कराएँ और वैद्य ही की सलाह लेकर 'तक्र' का सेवन करें। तक्र के सेवन से इन्हे विशेष लाभ हो सकता है। चक्की पीसना भी स्थूलता कम करने के लिए बहुत लाभदायक है। अतएव प्रातःकाल कम से कम २ घण्टा प्रति दिन चक्की पीसा करें। साथ ही 'चाँद' के परोपकारी पाठको से भी हमारा निवेदन है कि यदि कोई सज्जन इस रोग की कोई परीक्षित दवा जानते हो, तो कृपा कर हमें लिखें, ताकि हम इसे 'चाँद' में छाप दें। इससे इस बहिन का तो उपकार होगा ही, साथ ही दूसरे ऐसे रोगियों का भी उपकार होगा।

—सम्पादक 'चाँद']

'परवार'

महाशय जी,

'चाँद' के पाठकों में से किसी भाई या बहिन को परवारो की कोई आज्ञामाई हुई दवा मालूम हो तो कृपा करके 'चाँद' द्वारा बताएँ। मेरी स्त्री की आँखों में 'परवार' हो गए हैं। अञ्जन और सुरमा लगाते-लगाते हैरान हो गया हूँ। क्या यह रोग असाध्य है ?

आपका,

—एक दुखी

कान की चोट

श्रीमान् सम्पादक जी,

मैं 'चाँद' के सुविज्ञ पाठकों से निम्न-लिखित सहायता चाहता हूँ। आशा है, आप इन पंक्तियों को अपनी 'चिट्ठी-पत्री' स्तम्भ में स्थान देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

मेरी माता जी की कनपटी में एक आघात हुआ था, जिसे लगभग ६ मास हो चुके। तब से उनके कान से निरन्तर मवाद निकलता है। कभी बीच में २-३ रोज़ के लिए बन्द हो जाता है। श्रवण-शक्ति कम हो गई है और मस्तिष्क भी कमजोर हो गया है। हर तीसरे-चौथे रोज़ पिचकारी लगाने पर मवाद निकलने के अतिरिक्त



कुछ लाभ नहीं होता। कभी भीषण शिरदर्द हो जाता है। डॉक्टर महोदय 'Chronic Suppurative-otitis Media' बतलाते हैं। सामान्य उपचारों से, जिनको करते लगभग ५ माह व्यतीत हो चुके हैं, कुछ लाभ होने की आशा नहीं है। यदि कोई महाशय इस व्याधि की अनुभूत औषधि या परामर्श मुझे 'चाँद' में प्रकाशित कर सूचित करें, तो उनकी अशेष कृपा का मैं सदैव आभारी रहूँगा।

आपका कृपाकाँची,

ईश्वरीदत्त पाण्डेय

कोष्ठबद्धता

श्रीयुत सम्पादक जी, नमस्ते !

आपकी अत्यन्त कृपा होगी, यदि आप मेरे इस पत्र का उत्तर 'चाँद' द्वारा दें।

मुझे करीब-करीब दस साल से कोष्ठबद्धता (Constipation) है। कभी सुबह को पाखाना नहीं होता। जब दोपहर को खा लेता हूँ, तब करीब २ बजे के पाखाना होता है। कभी-कभी तो दो-दो दिन पाखाना नहीं होता और जब होता है, तब सूखा। यदि किसी प्रकार का व्यायाम करने लगता हूँ, तो पाखाना फिर बिल्कुल नहीं होता और पाखाना शुष्क हो जाने के कारण स्वमदोष होने लगता है।

मैं चाहता हूँ कि रोज़ाना दो दफ़ा पाखाना हो जाय करे तो मेरी तबीयत ठीक रहे। दवाइयाँ खाकर हैरान हो चुका हूँ। जिस दिन दस्तावर दवाई शाम को नहीं खाता, सुबह पाखाना नहीं होता। आजकल शाम को त्रिफला ६ माशे खाता तथा सुबह को ५ बजे १ सेर पानी पीता, फिर १ घण्टा टहलता हूँ, तब पाखाना होता है। कभी-कभी इतना करने पर भी पाखाना नहीं होता। बहुत कष्ट में हूँ।

क्या कोई ऐसी यौगिक क्रिया अथवा दवा है जिससे मेरा रोग जाता रहे और व्यायाम कर सकूँ। मेरी आयु ३२ साल की है तथा विवाहित हूँ।

कृपाकाँची,

—एक रोगी

महिला-सेवा-सदन, प्रयाग

१०० स्त्रियों के लिए मुफ्त भोजन का प्रबन्ध

धन और अन्न की आवश्यकता

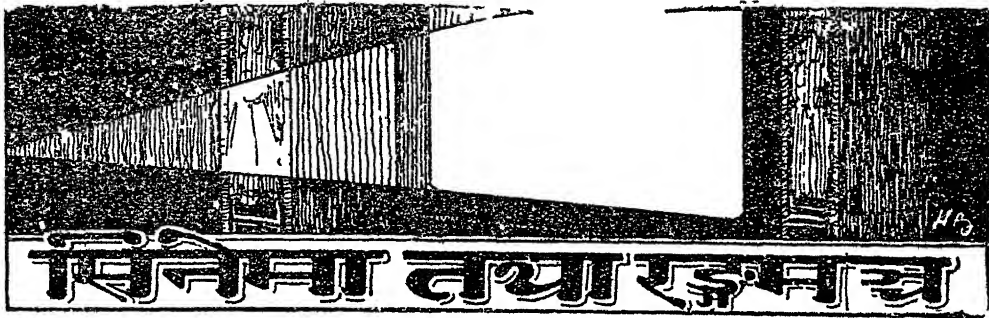
सेवा-सदन स्त्री-समाज की सेवा करता चला आ रहा है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को समाज सेविकाएँ बनाना तथा उनको ऐसी शिक्षा देना है, जिससे वह स्वतन्त्र आर्थिक जीवन व्यतीत कर सकें। ऐसी स्त्रियाँ, जिनको नागरी अक्षर का साधारण ज्ञान है, भर्ती की जाती हैं और उनको एक ही वर्ष में ४ वर्ग या अपर प्राइमरी की और २ वर्ष में मिडिल परीक्षा दिलाई जाती है। साथ ही साथ सिलाई, सज़ीत इत्यादि विषय में भी उनको निपुण बनाया जाता है।

दो वर्ष के पहले बहुत सी स्त्रियाँ सेवा-सदन में भर्ती होने के लिए आईं, लेकिन बोर्डिंग-हाउस की फीस देने में असमर्थ होने के कारण उनको लौट जाना पड़ा। इस बार सेवासदन की विद्यार्थिनियों ने प्रयत्न करके सन् १९३१ में एक फ़ण्ड खोला, जिसको "महिला सहायक कोष" कहते हैं। इसके द्वारा १०० ऐसी असहाय स्त्रियों को मुफ्त भोजन दिए जाने का प्रबन्ध किया गया है, जो सेवासदन के बोर्डिंग में भर्ती होंगी। सेवा-सदन के अधिकारियों ने यह निश्चय किया है कि ऐसी स्त्रियों से, जिनको कोष से भोजन मिलेगा, बोर्डिंग की फीस न लेंगे। जो भोजन इन असहाय स्त्रियों को दिया जाता है, वह बहुत साधारण श्रेणी का होता है। प्रातःकाल और सन्ध्या समय रोटी और दाल या किसी एक शाक का प्रबन्ध किया जाता है। उनके लिए नौकर का भी प्रबन्ध नहीं है, स्वयम् भोजन बनाना तथा बर्तन की सफ़ाई करना पड़ता है।

उदार देवियों तथा सज्जनों से निवेदन है कि अन्न तथा द्रव्य द्वारा सहायता पहुँचा कर पुण्य के भागी बनें। जो सज्जन अन्न भेजना चाहते हों, उनको सूचना भेजनी चाहिए, जिससे अन्न उठा लाने का प्रबन्ध किया जाय तथा जिनको द्रव्य भेजना हो तथा पत्र-व्यवहार करना हो, उनको निम्नलिखित पते से द्रव्य तथा पत्र भेजना चाहिए :—

सङ्गमजाल अग्रवाल,

प्रबन्धक, महिला-सेवा-सदन, प्रयाग



हॉलीवुड में हाहाकार

['चाँद' के प्रतिनिधि द्वारा]

अमरीका में अभी कुछ समय हुआ बैङ्कों के द्वार बन्द हो जाने के कारण हाहाकार मच गया था। वहाँ लोग धन को घरों में न रख कर बैङ्कों में जमा कर देते हैं। जब बैङ्कों ने रुपया देना बन्द कर दिया, तो इस प्रकार के व्यक्तियों को बड़ी कठिनाता का सामना करना पड़ा। विशेषकर हॉलीवुड में यह कठिनाई और भी अधिक भयङ्कर रूप में दिखाई पड़ी, क्योंकि हॉलीवुड में बिना रुपए के एक मिनट भी काम चलना कठिन है और खर्च के लिए वहाँ प्रतिदिन लाखों रुपए की आवश्यकता होती है।

परन्तु हॉलीवुड, हॉलीवुड ही ठहरा। लोगों ने अपना काम चलाने के लिए एक उपाय निकाला। जो वस्तु खरीदी जाती थी, उसके बदले में अभिनेता और अभिनेत्रियाँ एक चिट लिख कर दे देते थे, ताकि जब बैङ्क खुल जायँ, तो वह चिट दिखा कर लोग अपने पैसे ले लें। इस चिट देने की प्रथा का इतना प्रचार हो गया था कि बात-बात में चिटों से ही काम लिया जाता था। खाना खाने के लिए चिट, नाई के लिए चिट, धोबी के लिए चिट, नौकर को इनाम देने के लिए चिट, होटलों में तो इस प्रकार की चिटों के ढेर लग गए थे। पैसे वसूल करने के लिए होटल वालों को इन चिटों के छुट्टने में काफ़ी समय लगाना पड़ेगा। हाँ, क्या अभिनेता और अभिनेत्रियों को उनका वेतन नहीं मिलता, यह प्रश्न उठ सकता है। इसका उत्तर भी यही है कि उन्हें वेतन मिलता तो है, परन्तु चिट पर, नक़द नहीं।

इस प्रकार काफ़ी समय तक सभी को चिटों पर ही जीवन निर्वाह करना पड़ा। आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण अभिनेताओं, डाइरेक्टरों तथा फ़िल्मों से सम्बन्ध रखने वाले सभी प्रकार के व्यक्तियों के वेतन में ५० प्रतिशत कमी कर दी गई है।

इतना होने पर भी हॉलीवुड की शान-शौकत में कमी नहीं हुई। हँसना, और खूब हँसना—यह वहाँ का मूलमन्त्र है। और आजकल के दिनों में भी लोग उसी मूलमन्त्र का जाप कर रहे हैं। अब भी पार्टियाँ दी जाती हैं, जिनमें सहस्रो व्यक्ति सम्मिलित होते हैं, भोज उड़ाए जाते हैं, नाच रङ्ग होता है, और अब तो सुरादेवी का भी पान होता है। परन्तु यह सब चिट पर, नक़द नहीं।

कुछ विश्वविख्यात डाइरेक्टर

फ़िल्मों के बनाने में डाइरेक्टर का एक मुख्य भाग रहता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लेखक, ऐक्टर, फ़ोटोग्राफ़र, इन्जिनियर आदि सभी इसमें आवश्यक होते हैं, परन्तु डाइरेक्टर की ही यह विशेषता है कि वह इन सबको एक सूत्र में बाँध कर इनसे मनचाहा काम ले सकता है। डाइरेक्टर की तुलना एक सेना के सेनापति से की जा सकती है। सेनापति अपने शौर्य से अथवा बुद्धिबलता से युद्ध में विजयी हो सकता है अथवा पराजय प्राप्त करता है। उसी प्रकार सारे कार्यकर्ताओं के अच्छे होने पर भी डाइरेक्टर अपनी मूर्खता से एक फ़िल्म को बिगाड़ सकता है। डाइरेक्टर प्रत्येक व्यक्ति



नहीं हो सकता। भारत में तो अनेक व्यक्ति डाइरेक्टर का पद पाए हुए हैं, यद्यपि उन्हें आता-जाता कुछ भी नहीं। परन्तु विदेशों में डाइरेक्टर का आसन उन्हीं व्यक्तियों को मिलता है, जो अपनी योग्यता और कार्य-कुशलता द्वारा कम्पनी के मालिकों को अपनी सफलता का प्रमाण दे देते हैं।

अमेरिका ने सभी सर्वश्रेष्ठ डाइरेक्टरों को जन्म वहीं दिया, परन्तु उसने उनमें से अनेकों को डाइरेक्शन-कला की सर्वोच्च चोटी पर चढ़ा दिया है। इनमें से अधिक प्रसिद्ध डाइरेक्टरों के विषय में यहाँ कुछ लिखा जायगा।

सेसिल डी० मिल्ले और डी० डब्ल्यू० ग्रिफ़िथ, इन दो डाइरेक्टरों के नाम सिनेमा-जगत के इतिहास में अमर रहेंगे। इनको सिनेमा का पिता कहा जा सकता है। इन्होंने इस कला और व्यवसाय को उन्नत बनाने में बड़ा भाग लिया है। सेसिल ने होलीवुड में सबसे पहली स्टुडियो खोली थी और एक फ़िल्म बनाया था। उसके बाद से लेकर अब तक उसने हमें अनेक अद्भुत फ़िल्म दिए हैं। उसका नाम विशाल फ़िल्म बनाने के लिए अधिक प्रसिद्ध है, जिनमें वह सहस्रों व्यक्तियों से काम लेता है और करोड़ों रुपया व्यय करता है। उसके कुछ प्रसिद्ध फ़िल्म ये हैं—‘टेन कमाण्डमेण्ट्स’, ‘किंग ऑफ़ किंग्स’, ‘साइन ऑफ़ दी क्रॉस’। पिछला फ़िल्म उसने हाल में ही तैयार किया है और वह बोलता फ़िल्म है। प्रायः इन सभी फ़िल्मों में ईसा के जीवन अथवा ईसाई-धर्म के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली घटनाएँ दिखाई जाती हैं।

डी० डब्ल्यू० ग्रिफ़िथ ने भी फ़िल्मों में कई प्रकार की नवीनताओं का आविष्कार किया है। ‘क्लोज़ अप’, ‘प्रलेश बैक’ आदि का आविष्कर्ता वही है। बोलते फ़िल्मों में उसकी प्रसिद्धि कुछ कम हो गई है।

आधुनिक डाइरेक्टरों में अर्नस्ट लूविश का नाम बहुत प्रसिद्ध है। मॉरिस शेवेलियर के चित्रों को डाइरेक्ट करके उसने काफ़ी ख्याति पाई है। लूविश बहुत दिन पूर्व स्वयम् एक ऐक्टर था। लन्दन में सैवॉय थियेटर में एक बार उसने कॉमिक पार्ट किया था। फिर वह फ़िल्मों में आगया। अमेरिका में सबसे पहले उसने मेरी पिक फ़ोर्ड को ‘रौसिटा’ में डाइरेक्ट किया था।

ऐक्टरों को ‘बना देना’ उसके बाएँ हाथ का खेल है। उसी के कारण मॉरिस शेवेलियर, जीनेट मैकडोनाल्ड, क्लौडेट कौलवर्ट आदि के नाम अब भी विख्यात हैं।

जॉसेफ़ फ़्रॉन स्टर्नवर्ग भी जर्मन है और प्रसिद्ध डाइरेक्टर है। फ़िल्मों में पहले उसने एक चपरासी की भाँति काम किया। एमिल जेनिङ्स के पहले बोलते फ़िल्म ‘ब्ल्यू ऐन्ज़ल’ को उसी ने डाइरेक्ट किया था और उसी ने मारलीन दी त्रिच को अमेरिका लाकर कुछ समय में ही इतना आगे बढ़ा दिया है।

एरिक फ़्रॉन स्ट्रोहैइम को लोग एक प्रसिद्ध ऐक्टर के रूप में जानते हैं। परन्तु वह पहले एक प्रसिद्ध डाइरेक्टर रह चुका है और अब भी डाइरेक्टर का काम कर रहा है। उसके फ़िल्म कला की दृष्टि से श्रेष्ठ होते थे, परन्तु जनता को वे पसन्द न आते थे। वह समय पर काम करके न देता था और रुपया भी बहुत व्यय करता था। एक बार एक फ़िल्म के लिए तीन महीने तक सोचकर उसने अपना कार्य-क्रम तैयार किया। परन्तु जब कम्पनी वालों को यह पता चला कि एरिक ने दस हजार पौण्ड का एक नक़ली गाँव मॉंगा है और पाँच हजार पौण्ड की पोशाकें, तो उन्होंने फ़िल्म न बनाना तै किया और एरिक को एक हजार पौण्ड का चेक देकर विदा किया। अब उसने अपनी उन आदतों में सुधार कर लिया है।

फ़्रान डाइक का नाम असम्भव प्रकार के फ़िल्म बनाने के लिए प्रसिद्ध है। जहाँ कोई न जाना चाहे, वह वहाँ जाकर फ़िल्म बनाने के लिए तैयार हो जाता है। अफ्रीका के जङ्गलों में जाकर उसने ‘ट्रेडर हॉर्न’ बनाया और अभी आर्कटिक लाइन में जाकर एस्कीमो लोगों के विषय में फ़िल्म बनाया है।

यूरोप के डाइरेक्टरों में तीन-चार का नाम प्रसिद्ध है। डाइरेक्टर वहाँ अनेक हैं, परन्तु हम लोग अधिक को नहीं जानते, क्योंकि यूरोप के देशों में बने हुए फ़िल्म भारत में कम आते हैं। इन चार में से रेने क्लेशर फ़्रेञ्च है, आइसेन्स टाइन रूसी है और एरिक पोमर तथा फ़्रिज़ लाङ्ग जर्मन हैं। इन लोगों के फ़िल्मों में अमेरिका के फ़िल्मों से कई भिन्नताएँ रहती हैं।

किसी आगामी अङ्क में भारतीय डाइरेक्टरों का वर्णन किया जायगा।





पिता और पुत्र—मूल लेखक, सुप्रसिद्ध रूसी औपन्यासिक मो० तुर्गनेव, अनुवादक ठाकुर राजबहादुरसिंह, आकार मझोला, पृष्ठ संख्या ४५२, छपाई और कागज साफ, मूल्य दो रुपए।

“दी फादर्स एण्ड सन्स” आइवन तुर्गनेव का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। रूस का गत शताब्दी का इतिहास अपनी विचित्र राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल के लिए विख्यात है। वहाँ शताब्दियों तक प्राचीन और नवीन विचारों का सङ्घर्ष चल चुका है। तुर्गनेव की इस पुस्तक में उसी सङ्घर्ष का विचित्र और अत्यन्त हृदयग्राही चित्रण है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उस समय की रूस की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति हमारे देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। सुयोग्य अनुवादक ने तुर्गनेव महोदय के भावों का अविकल अनुवाद करने में यथेष्ट सफलता प्राप्त की है। अनुवाद की भाषा परिमार्जित और वामुहावरा है।

❀

राष्ट्रधर्म—लेखक, श्री० सत्यदेव विद्यालङ्कार। प्रकाशक, राष्ट्रग्रन्थमाला कार्यालय, न० ३ सुख-लाल जौहरी लेन, कलकत्ता। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या १२६, मूल्य ॥

यह छोटी सी पुस्तिका बड़े काम की चीज़ है। प्रारम्भ में धर्म के नाम पर रचे गए ढोंगों और उनसे होने वाली हानियों का वर्णन है। जनता को धर्म का वास्तविक अर्थ समझाने की चेष्टा की गई है। शाजी कमालपाशा आदि नवीन राष्ट्र-निर्माताओं का

उदाहरण देकर भारतीय जनता का ध्यान वर्तमान समयोपयोगी राष्ट्रधर्म की ओर आकर्षित किया गया है। साथ ही राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने वालों को पुराने धार्मिक ढकोसलो, रूढ़ियों और पारस्परिक ऊँच-नीच के भेद-भावों को बालाये-ताक रख कर मैदान में उतरने को कहा गया है। यद्यपि पुराने विचारों के लोग लेखक के मत का समर्थन नहीं करेंगे, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने जिस प्रश्न की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है, वह एक विचारणीय प्रश्न है।

❀

सस्ता साहित्य-मण्डल अजमेर की चार पुस्तकें

(१) बुदबुद—लेखक, श्री० हरिभाऊ जी उपाध्याय, आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या १२२, मूल्य ॥

‘बुदबुद’ का परिचय लेखक ने यों दिया है—

ज्ञान-खानि का रत्न नहीं हूँ,

और न काव्यकला गुम्बद।

मैं तो कोरा चार सिन्धु के,

जलका हलका-सा बुदबुद ॥

परन्तु वास्तव में इस ‘बुदबुद’ नाम की पुस्तक में ज्ञान-खानि के रत्नों की ढेर है। इसमें सूक्तियों के रूप में नीति, कर्तव्य, देशभक्ति और धर्म के स्रवन्ध में अमूल्य उपदेश प्रदान किए गए हैं। इन सूक्तियों को पढ़ने से चित्त को शान्ति और आत्मा को बल प्राप्त होता है। इसे प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पढ़ना चाहिए। पुस्तक की भाषा सरल और मधुर है।



(२) जीवन-सूत्र—लेखक, श्री० रामनाथलाल 'सुमन', आकार मभोला, पृष्ठ-संख्या १९१, मूल्य ॥॥)

टामस ए० केम्पिस का "इमीडेशन ऑफ़ क्राइस्ट" एक विश्व-विख्यात ग्रन्थ है। ईसाई धर्म-ग्रन्थों में बाइबिल के बाद ही इस पुस्तक का स्थान, आदर और प्रचार है। उसी 'इमीडेशन ऑफ़ क्राइस्ट' के कुछ अंशों का—जो सर्व धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी है—यह स्वतन्त्र अनुवाद श्री० सुमन जी ने किया है। इसमें सदाचार और भक्तित्व का उपदेश दिया गया है। अनुवादक के कथनानुसार "इसकी शिचाएँ गीता तथा अन्य हिन्दू सद्ग्रन्थों से मिलती-जुलती हैं।" निस्सन्देह पुस्तक ऐसी ही है। इसमें दिए गए उपदेशों के पढ़ने से बड़ी शान्ति प्राप्त होती है। ऐसे उपयोगी ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद करके सुमन जी ने हिन्दी वालों का बड़ा उपकार किया है। पुस्तक की भाषा सीधी-सादी और शैली रोचक है।

(३) सङ्घर्ष या सहयोग—अनुवादक, श्री० शोभालाल गुप्त, आकार मभोला। पृष्ठ-संख्या ४०१, मूल्य ॥॥)

रूस के विख्यात क्रान्तिकारी लेखक प्रिन्स क्रोपाटकिन ने 'म्यूचुअल एंड' नाम का एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें दिखाया गया है कि विश्व का विकास सङ्घर्ष द्वारा नहीं, वरन् सहयोग द्वारा हुआ है। प्राणी-मात्र के जीवन का आधार सहयोग है। जो लोग संसार के विकास का कारण सङ्घर्ष मानते हैं, वे भूलते हैं। लेखक ने बड़ी ही योग्यता से अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। साथ ही पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त को संसार के सामने रख कर उसने मानव-जाति का विशेष उपकार किया है। गुप्त जी का यह अनुवाद भी बड़ा ही अच्छा हुआ है। मूल लेखक के गम्भीर भावों को हिन्दी-भाषा में लाने में आपने अथेष्ट सफलता प्राप्त की है।

(४) हमारा कलङ्क—लेखक, महात्मा गाँधी, आकार मभोला, पृष्ठ-संख्या २८९, मूल्य केवल ॥८॥

इस पुस्तक में अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में महात्मा जी के लिखे कतिपय लेख संग्रहीत हैं। बस

इसका इतना ही परिचय काफी है। 'चाँद' के प्रत्येक पाठक से हमारा अनुरोध है, वे इस पुस्तक को एक बार आदि से अन्त तक अवश्य पढ़ जायँ। अपने मित्रों को भी पढ़ाएँ और अस्पृश्यता के कारण महान् हिन्दू जाति के मस्तक पर जो कलङ्क का टीका लगा है, उसे मिटाने के लिए कुछ उठा न रखें। इस पुस्तक के पढ़ने से उन्हें मालूम होगा कि अपने करोड़ों भाइयों को अस्पृश्य बनाने में उनका कितना हाथ है और इस महान् पाप से वे कैसे मुक्त हो सकते हैं।

❀

"हलधर"—सम्पादक, प० गौरीनाथ भा, बाबू रघुवीरनारायण, आकार क्राउन, पृष्ठ-संख्या १२, मूल्य प्रति संख्या ॥॥ और वार्षिक २॥, मिलने का पता—मैनेजर "हलधर", भागलपुर।

इस रूपकोपयोगी साप्ताहिक समाचार-पत्र के अब तक ६ अङ्क हमने देखे हैं। यह ख़ास करके किसानों के लिए निकाला गया है, परन्तु इसमें सप्ताह भर के मुख्य समाचारों का भी संग्रह रहता है। खेती-बारी सम्बन्धी विषयों के प्रति एक कहानी और व्यापार-वाणिज्य सम्बन्धी ख़बरें भी छपा करती हैं। भाषा सरल होती है। हमारी आन्तरिक कामना है कि 'हलधर' द्वारा देश के हलधरों का उपकार हो और 'हलधर' अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करे।

❀

वैशाली—सम्पादक, श्री० भुवनेश्वरसिंह जी 'भुवन'। आकार 'चाँद' जैसा, पृष्ठ-संख्या प्रायः ८०। वार्षिक मूल्य ३॥, साधारण अङ्क १८॥ पता—'वैशाली' कार्यालय, मुजफ्फरपुर।

'वैशाली' अभी हाल से ही निकलने लगी है। इसमें विशुद्ध साहित्यिक लेख छपा करते हैं। सम्पादन अच्छा होता है। इसकी चौथी और पाँचवीं संयुक्त संख्या, जो 'बसन्ताङ्क' के नाम से निकली है, हमारे सामने है। इसमें कई बसन्तोपयोगी लेख और कविताएँ हैं। छपाई भी रङ्ग-विरङ्गी है। हम 'वैशाली' की उन्नति चाहते हैं।





अन्तरा

ग रे ग म प ध नी सं — सं सं सं — सं —
 क अ म्बु क अ एठ कअ ल हा — र बि रा — जै —
 पी ई त ब स न कअ टि सु — न्द र सो — है —

नी रे ग रे सं नी ध नी ग म प ध नी रे सं —
 म णि म य मो ओ र सु कु ट शि र छा आ जै —
 र त न ज टि त कु उ ण्ड ल म न मो ओ है —

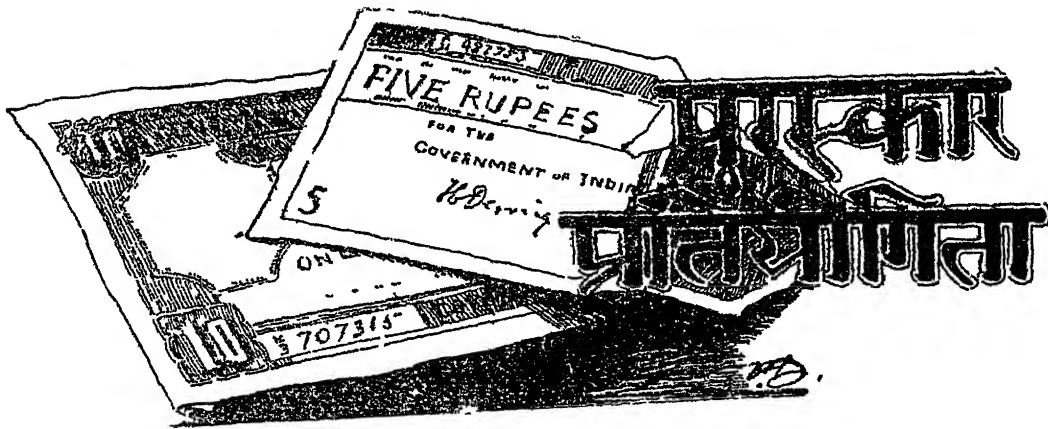
ग — ग रे ग म प ध नी सं ध नी प म ग ग
 भा — ल ति ल क के ए स र उ र च अ न्द न
 को — म ल यु ग प ग पै ऐ ज नी रा आ जि त

ग ग रे ग स रे ग ग प — रे ग नी रे स —
 सु उ न्द र धुँ घ रा आ ली — ल ट का आ ली —
 व अ शी ई अ ध र ध रे — ब न मा आ ली —

ग ग रे ग सं नी ध ध ग म प ध नी रे सं सं
 क अ वज ल पू उ रि त न व ल सु र स म य
 रा आ धे ए स ग ठा आ दे ए ब्र ज मो ओ ह न

ग ग रे ग स रे ग ग प प रे ग नी रे स —
 अ म ल क म ल स म ह ग म त वा आ ली —
 भाँ आ की ई अ तु ल अ मि य र स ठा आ ली —





इस मास की पहेली

नियमावली

१—इस पहेली का उत्तर 'चाँद' के सभी पाठक भेज सकते हैं। जो ग्राहक हैं उन्हें उत्तर के साथ १) का और जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें ॥) डाक टिकिट उत्तर के साथ भेजना चाहिए।

२—उत्तर साफ़ हों। कटे-छूटे उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

(३) उत्तर १५ अगस्त तक हमारे पास आ जाना चाहिए।

(४) इस पहेली का उत्तर हमारे पास सुरक्षित है, जिसका उत्तर हमारे पास रखे उत्तर से ठीक-ठीक मिल जायगा, उसे २५) नक़द पुरस्कार मिलेगा। कई उत्तर ठीक आने पर पुरस्कार बराबर हिस्सों में बाँट दिया जाएगा। परन्तु यदि कोई उत्तर ठीक न होगा, तो सबसे कम अशुद्धि वाले को पुरस्कार की रक़म दे दी जाएगी।

(५) चाँद प्रेस लिमिटेड का कोई कर्मचारी इसमें भाग न ले सकेगा।

(६) उत्तर भेजने का पता—

प्रबन्धक प्रतियोगिता विभाग,
चाँद प्रेस लि०, इलाहाबाद

कूपन

१	
२	
३	
४	
५	
६	

ग्राहक नं० _____

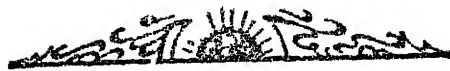
नाम _____

पता _____

प्रतिज्ञा

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उनका पालन करूँगा। सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा तथा इस सम्बन्ध में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा।

(सूचना—जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपा करके उत्तर न भेजें।)



पहेली

१			र	एक प्रकार की जमीन
२			र	कमी न मरने वाला
३				एक सरख्या
४			र	खोना निकलने का स्थान
५			र	एक पक्षी
६				एक पशु

उदाहरण

ऊपर दी हुई पहेली में ६ नम्बर हैं और प्रत्येक नम्बर के सामने वाले खानों में किसी वस्तु के चित्र, कोई अक्षर, या कोई मात्रा है। उत्तरदाता को प्रत्येक खाने के चित्र के प्रथम अक्षर के साथ उसके आगे का अक्षर और मात्रा जोड़ कर एक शब्द बनाना होगा। जैसे खाना नं० २ में 'अमरुद' और 'मछली' के चित्र हैं। उसके आगे 'र' है। दोनों चित्रों के प्रथम अक्षरों के साथ 'र' जोड़ने से 'अमर' शब्द बनता है।

गत मार्च मास की पहेली के सम्बन्ध में

गत मार्च मास की "एक कहावत की खोज" शीर्षक पहेली के सम्बन्ध में, गत मई के 'चाँद' द्वारा जो

प्रस्ताव हमने उसके विजेताओं के सामने रखा था, अफसोस है कि बहुत कम सज्जनों ने उसकी ओर ध्यान दिया है। ३७७ पुरस्कार-विजेताओं में से कुल ९ सज्जनों ने हमें इस सम्बन्ध में पत्र लिखने की कृपा की है। जिनका आशय यह है कि पुरस्कार-विजेताओं की संख्या चाहे कितनी ही हो, परन्तु पुरस्कार की रकम उन्हीं को या उनकी बताई हुई संस्था को दे दी जावे। एक सज्जन की राय है कि पुरस्कार उन्हें ही दे दिया जावे, नहीं तो वे नाराज़ होकर 'विश्वमित्र' में हमारी शिकायत छपवा देंगे। हमें इन सज्जनों की ऐसी मनोवृत्ति के लिए दुःख है और हमने निश्चय किया है कि इस पहेली के विजेतागण एक बार फिर तत्कदीर आजमाई करें और इस बार जो पहेली दी गई है, उसका उत्तर बिना टिकट के ही हमारे पास भेजें। उन्हें चाहिए कि पहेली के उत्तर-पत्र पर अपने नाम-पता (अगर ग्राहक हो तो नम्बर) के साथ "पूर्व पुरस्कार-विजेता" यह वाक्य अवश्य लिख दें। इस तरह उन्हें एक बार और, बिना टिकट के ही तत्कदीर आजमाई का अवसर मिलेगा। आशा है, यह प्रस्ताव उन्हें स्वीकार होगा।

—सम्पादक प्रतियोगिता विभाग

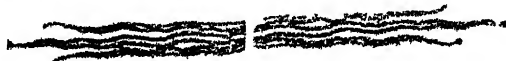
अप्रैल मास की पहेली

का परिणाम

पहेली का ठीक उत्तर

१	सिंहगढ़	२	मदनमोहन
३	रूपरखलाल	४	दो पल
५	जीवनधन	६	कलामुँहा

किसी उत्तरदाता का उत्तर ठीक न था। श्रीमती लक्ष्मी, पूना (आ० नं० १३१९८) की एक अशुद्धि थी। अतः पारितोषिक उन्हें मिलेगा।





[जनाब “कमाल” साहब, लखनवी]

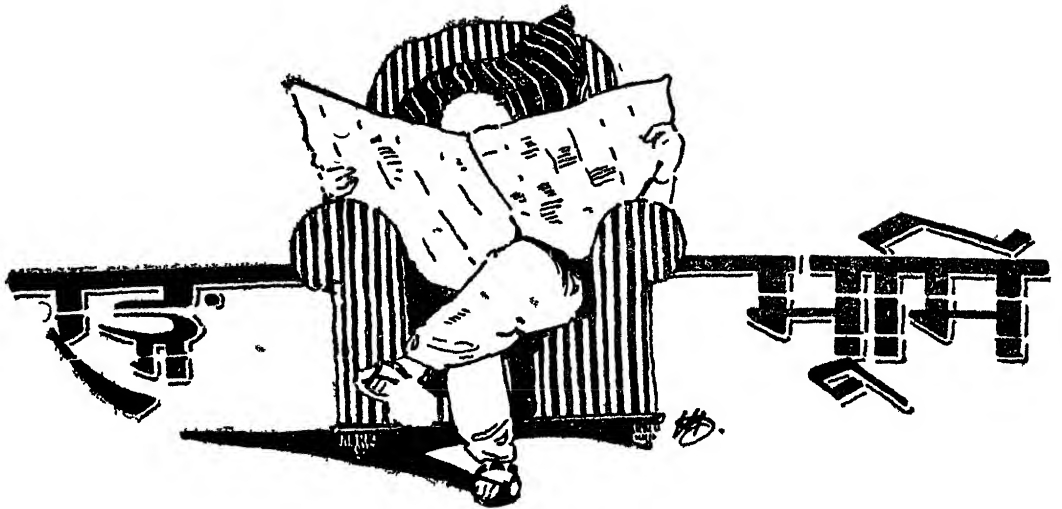
[कविचर “विस्मिल” इलाहाबादी]

अगर हमसे कशीदा^१ तुम नहीं हो,
तो फिर क्या बात है क्यों खशमगी^२ हो ?
निगाहे-शोख ने किसको किया कल्ल,
बताओ तो ज़रा क्यों शर्मगी^३ हो ?
क्रयामत तक नहीं मुमकिन यह कासिद,
किसी के आने का हमको यक़ी हो ।
हम उस तीरे-नज़र को ढूँढ़ते हैं,
कि जो घर करके दिल में दिलनशी^४ हो ।
हृदय आँखें बुलाती हैं, उधर दिल,
कोई आख़िर कहाँ जाकर मकी^५ हो ?
चले आओ हृदय भी नाज़ करते,
ज़रा देखें तो कैसे नाज़नी हो ।
कल्लक^६ ! यह तक्ररका^७ तक्रदीर में था,
कहीं मैं, दिल कहीं, दिलबर^८ कहीं हो ।
समझा है ब-रब्बे-काबा^९ ऐ बुत,
कि तेरा आस्ता^{१०} मेरी ज़बी^{११} हो ।
‘कमाल’ नीमज^{१२} मरता है तुम पर,
अभी तक इससे क्या चाक्रिक नहीं हो ?

हरम^{१३} में, बुतक़दे^{१४} में भी नहीं हो,
बताओ किस मक़ी के तुम मकी हो ।
हँसी हो, महज़बी^{१५} हो, नाज़नी हो,
ज़माने में तरहदार^{१६} अब तुम्हीं हो ।
वह ठुकरा कर मेरे मरक़द^{१७} को बोले,
बड़े आराम से ज़रे ज़मी हो ।
तुम्हें हम देख ही लेंगे कहीं से,
कहाँ के तुम बड़े ख़लवतनशी^{१८} हो ।
किसी की जुल्फ^{१९} पर हम मर मिटे हैं,
हमें उल्लभन न क्यों ज़रे ज़मी हो ?
ख़ताएँ कौन सी हमसे हुई हैं,
जो यो बेफ़ायदा ची बरज़बी^{२०} हो ।
ज़बाँ देकर मुकर जाते हो अकसर,
तुम्हारी बात का क्योंकर यक़ी हो ?
मज़र आप न क्यों जलवा खुदा का,
अगर हज़बी^{२१} निगाहे दूरबी हो ।
निगाहे-नाज़ का कुरता हूँ ‘विस्मिल’,
मुझे आराम क्या ज़रे ज़मी हो ?

१—खिंचे हुए, २—क्रोध में, ३—लजित,
४—हृदयस्थित, ५—ठहरे, ६—आकाश, ७—अन्तर,
८—प्रियतम, ९—ईश्वर और काबा की शपथ, १०—
चौखट, ११—माथा, १२—अधमरा ।

१३—काबा, १४—मन्दिर, १५—चाँद सा चेहरा,
१६—अच्छे, १७—क़ज़, १८—पकान्त में रहने वाले,
१९—केश, २०—बिगड़े हुए, २१—ईश्वर की देखने
वाली ।



[सम्पादकीय]

जापानी वस्त्र पर कर-वृद्धि

जापान की प्रतियोगिता के कारण कुछ दिनों से भारतीय कपड़े की मिलों की जैसी दुर्दशा हो गई है, उससे समाचार-पत्रों के प्रायः सभी पाठक अभिज्ञ हैं। जापानी कपड़े के मुकाबले में सस्ता कपड़ा न बेच सकने के कारण कितनी ही भारतीय मिलों को अपना काम बन्द कर देना पड़ा है और कितनी ही आधे चौथाई समय काम करती हैं। इस अवस्था के अनेक कारण हैं। सबसे मुख्य बात तो यह है कि जापान एक स्वाधीन राष्ट्र है और वहाँ की सरकार सदैव अपने यहाँ के व्यवसाय की वृद्धि के लिए सचेष्ट रहती है तथा सब प्रकार से उसकी सहायता किया करती है। दूसरी बात यह है कि जापानी व्यवसायियों के सामने उन्नति के सभी मार्ग खुले हुए हैं और वे आधुनिक से आधुनिक ढङ्गों से काम लेकर माल तैयार होने के खर्च में कमी करते रहते हैं। तीसरी बात यह है कि जापानी मज़दूर बहुत ही किफायतशार, समझदार तथा उद्योगी होते हैं और वे बहुत थोड़ा वेतन लेकर दूसरे देशों के अच्छे से अच्छे मज़दूरों के समान काम कर दिखाते हैं। इन तमाम कारणों के सिवा एक विशेष बात यह है कि जापान के सभी व्यक्तियों के हृदय, चाहे वे शासक हों, चाहे पूँजीपति हों, और चाहे मज़दूर हों, देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं और वे अपनी मातृभूमि की श्री वृद्धि के लिए—उसके गौरव को अक्षुण्ण रखने के

लिए—सब तरह का बलिदान करने को तैयार रहते हैं। जापानियों का भोजन तथा वस्त्र भी अत्यन्त सस्ते होते हैं और उसे वे पूर्णतया अपने देश में ही उत्पन्न कर लेते हैं। इस कारण चाहे संसार में कितनी भी आर्थिक अव्यवस्था क्यों न हो, उनके जीवन-निर्वाह के साधनों पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी अनेक विशेषताओं के कारण जापानी लोगों ने थोड़े ही वर्षों में व्यवसाय सम्बन्धी इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि भारतवर्ष जैसे पिछड़े हुए देश की तो क्या बात, इंग्लैण्ड और जर्मनी जैसे आधुनिक व्यवसाय के जन्म-दाता देश भी उसका मुकाबला नहीं कर सकते। हाल ही में समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था कि कई तरह के जापानी कपड़े खुद इंग्लैण्ड के बाज़ारों में वहाँ के बने हुए कपड़ों की अपेक्षा सस्ते भाव में बिक रहे हैं। इतनी अधिक सुविधाओं के होने पर भी जब से जापान ने गोल्ड स्टैण्डर्ड को त्याग दिया है और वहाँ के सिक्के 'येन' की दर एकदम गिर गई है; तब से तो जापान के व्यावसायिक क्षेत्र में एक बाढ़ सी आ गई है और उसके माल ने ससार भर के बाज़ारों पर भीषण वेग से आक्रमण करना आरम्भ कर दिया है। ऐसी दशा में भारतीय व्यवसाय के लिए, जिसकी अवस्था बहुत निर्बल तथा असङ्गठित है, उसका मुकाबला कर सकना कठिन ही नहीं, सर्वथा असम्भव है। यदि उसकी विशेष उपायों से रक्षा न की गई तो कुछ ही समय में वह पूर्णतया नष्ट हो जायगा और तब जापानी व्यवसायी अपने माल को मनमाने भाव पर बेच कर तमाम घटी



को पूरा कर लेंगे। इसलिए भारतवर्ष के बाज़ार में जापानी वस्त्रों की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई खपत को देख कर सभी देशभक्त भारतीय बड़े चिन्तित हो रहे थे और अपने देश के व्यवसाय के सम्बन्ध में उनके हृदय में अनेक प्रकार की दुर्भावनाएँ उत्पन्न होने लगी थीं। यह सच है कि गत वर्ष सरकार ने जापानी वस्त्रों पर ५० प्रति सैकड़ा कर लगा दिया था और इससे स्वदेशी वस्त्रों के व्यवसाय को कुछ सहायता भी मिली थी, पर इधर कुछ महीनों से 'येन' की दर के और भी गिर जाने तथा माल के सस्ता कर देने से फिर वही समस्या उत्पन्न हो गई थी। इससे व्यवसाय-क्षेत्र में फिर हलचल मचने लगी और सभी प्रान्तों के व्यापारी-सङ्घ सरकार से इस अवस्था के सुधार की चेष्टा करने का आग्रह करने लगे। पर खेद है कि सरकार ने इस सम्बन्ध में समयोचित तत्परता दिखलाने के बजाय अपनी स्वाभाविक पेचीदा और उलझनपूर्ण कार्य-प्रणाली से ही काम लिया और इसका फल यह हुआ कि अनेक कपड़े की मिलों को बहुत-कुछ हानि सह कर अपना कार्य स्थगित कर देना पड़ा। जब दुर्दशा बहुत बढ़ गई और चारों तरफ से पुकार होने लगी तब सरकार चेती और उसने जापानी वस्त्रों का महसूल ५० के बजाय ७५ प्रति सैकड़ा कर दिया। यद्यपि सरकार ने इस कार्य में उचित से अधिक विलम्ब कर दिया है, तो भी इससे भारतीय व्यवसाय-क्षेत्र में बहुत कुछ आशा का सञ्चार हुआ है और उसकी अवस्था फिर कुछ सुधरने लग गई है। कुछ राष्ट्रीय समाचार-पत्र इस नवीन कर-वृद्धि को इस दृष्टि से हानिकारक समझते हैं कि इसके फल से इङ्ग्लैण्ड के वस्त्र-व्यवसाय को भी विशेष रूप से सहायता मिलेगी और इसका समस्त भार भारतीय जनता को उठाना पड़ेगा। यद्यपि हम इस बात को मानते हैं कि सरकार ने जो योजना की है, उसमें ब्रिटिश व्यवसायियों के हित का भी ध्यान रक्खा गया है, तो भी वर्तमान समय में जापान की प्रतियोगिता हमारे व्यवसाय के लिए जैसी हानिकारक सिद्ध हो रही है, इङ्ग्लैण्ड की प्रतियोगिता कभी वैसी सिद्ध नहीं हुई थी और न कभी उसके कारण भारतीय वस्त्र-व्यवसाय को ऐसी सङ्कटपूर्ण परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। इसलिए यदि

इस योजना के फल-स्वरूप यहाँ की जनता को कुछ हानि उठानी पड़े और उससे भारतीय व्यवसायियों के साथ इङ्ग्लैण्ड के वस्त्र-व्यवसायियों का भी कुछ लाभ हो जाय तो हम "सर्वनाश का अवसर आने पर बुद्धिमान लोग आघे पर ही सन्तोष कर लेते हैं"—इस संस्कृत-कहावत के अनुसार उसे भी देश के लिए कल्याणजनक ही समझेंगे। यदि कोई कहे कि इङ्ग्लैण्ड के लाभ का समर्थन करना अपनी पराधीनता की बेडियों को मज़बूत बनाने के समान है, तो हम इसके उत्तर में कहेंगे कि जापान भी दूध का धुला नहीं है। उसकी शनि-दृष्टि भी अभी से हिन्दुस्तान पर लगी हुई है, और जैसा चीन के भूतपूर्व वैदेशिक सचिव मि० यू जेन चेन ने अपने भाषण में कहा है, जब कभी भारतवर्ष को ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त होगी, उसे तुरन्त ही जापानी नौ-शक्ति का सामना करना पड़ेगा जिसकी तुलना ससार की थोड़ी ही नौ-सेनाएँ कर सकती हैं। जापान इङ्ग्लैण्ड से भी बढ़ कर साम्राज्यवादी है और क्रूरता तथा निरक्रुशता में भी वह बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ा है। अपने निकटतम पड़ोसी, सहधर्मी तथा प्राचीन काल के गुरु चीन के साथ वह जैसा पाशविक व्यवहार कर रहा है, वह उसकी घोर स्वार्थपरता का स्पष्ट उदाहरण है। इसलिए उसके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति रखना अथवा उसके लाभ-हानि की चिन्ता करना भी अपने लिए भविष्य में काँटे बो लेने के समान है। फिर यदि इस बात का विचार कुछ देर के लिए छोड़ भी दिया जाय तो प्रत्येक न्यायशील व्यक्ति को यह मानना ही पड़ेगा कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धों की रक्षा करने का अधिकार है। उसका कर्तव्य है कि अन्य राष्ट्रों के न्याययुक्त अधिकारों का ध्यान रखते हुए जिस प्रकार सम्भव हो अपने व्यवसाय को संरक्षण प्रदान करे। अगर कोई राष्ट्र ताकत के ज़ोर से या रुपए के बल पर लागत से भी सस्ते दामों में माल बेच कर किसी अन्य देश के बाज़ार पर कब्ज़ा कर ले और फिर कहे कि उस देश को बराबर लूटते रहना उसका न्यायपूर्ण अधिकार है, तो इस प्रकार के दावे को किसी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि किसी देश की राजनीतिक सत्ता की भाँति वहाँ की व्यावसायिक सत्ता पर भी न्यायानुसार उसी देश के अधिवासियों का अधिकार रहना चाहिए। संसार के



सभी स्वतन्त्र राष्ट्र अपने लिए इस सिद्धान्त की सत्यता स्वीकार करते हैं और इसके अनुसार जिस किसी देश के किसी पदार्थ से उनके यहाँ के किसी व्यवसाय को धक्का लगता है, उसे वे तुरन्त ही अधिक से अधिक कर लगा कर रोक देते हैं। स्वयम् जापान ने विदेशी माल पर भारी-भारी कर लगा कर तथा कानून द्वारा उसका आना सर्वथा रोक कर अपने व्यवसाय की उन्नति की है। ऐसी अवस्था में यदि भारतवासी स्वदेशी व्यवसायों की रक्षा के लिए किसी देश के माल को अपने यहाँ आने से रोकने की चेष्टा करें, तो इसे कोई नीति विरुद्ध अथवा निन्दनीय नहीं बतला सकता।

देशी राज्यों की रक्षा का वास्तविक उपाय

हाल में अलवर-नरेश तथा इससे पहले भरतपुर, नाभा आदि के शासकों को जैसी शोचनीय परिस्थिति का सामना करना पड़ा है, उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि हमारे देशी नरेशों की स्थिति बहुत ही निर्बल है। यद्यपि अपनी प्रजा के लिए वे सर्वथा निरङ्कुश हैं, उसके हर्ता-कर्ता-विधाता बनने का दावा करते हैं, पर जब ज़बर्दस्त से काम पड़ता है तो उनको भीगी बिल्ली बन जाना पड़ता है, और चाहे कैसी भी लाञ्छना हो, कितना भी अपमान हो, सब कुछ सर झुका कर चुपचाप सहन कर लेना पड़ता है। हम नहीं कह सकते कि उपर्युक्त उदाहरणों को देख कर अन्य देशी नरेशों की आँखें अब भी खुली हैं या नहीं? अपनी निरङ्कुशतापूर्ण कर्तव्यों के लिए अब भी उनके हृदय में परचात्पाप का भाव उदय हुआ है या नहीं? पर जो लोग इन दृश्यों को एक निष्पक्ष दर्शक की दृष्टि से देख रहे हैं उनको इन नरेशों की दयनीय दशा पर तरस आता है और उनको विश्वास हो गया है कि यदि इन लोगों ने अपने ढङ्ग में सुधार न किया तो कुछ ही समय में अधिकांश नरेशों को ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा। इस समस्या पर विचार करते हुए भाँसी में होने वाली मध्य-भारत प्रजा-परिषद् ने प्रस्ताव किया है कि देशी नरेशों को बिना विज्ञापन अपनी प्रजा को

उत्तरदायी शासन के अधिकार देकर भारतीय फ़ेडरेशन में सम्मिलित हो जाना चाहिए। यद्यपि हम यह आशा नहीं कर सकते कि ऐसे प्रस्तावों से राजाओं की मनोवृत्ति पर कुछ प्रभाव पड़ेगा, पर यदि उनमें कुछ भी बुद्धि होगी और वे अपने वास्तविक हित को समझते होंगे तो उनको अवश्य ही प्रतीत होगा कि इस प्रस्ताव में उनको जो मार्ग बतलाया गया है, वह उनके लिए प्रत्येक दृष्टि से कल्याणकारी है और वही भविष्य में उनकी रक्षा की बड़ी से बड़ी गारण्टी हो सकती है। अभी तक देशी राजा समझते रहे हैं कि प्रजा का अज्ञान और असङ्गठित अवस्था में पड़े रहना ही उनके लिए हितकर है, क्योंकि ऐसी अवस्था में उससे यह आशङ्का नहीं की जा सकती कि वह उनके स्वेच्छाचार का किसी प्रकार विरोध करेगी। इसके विपरीत यदि उनकी प्रजा सुसङ्गठित तथा विवेकशील बन जायगी तो बात-बात में तर्क करके तथा उनके अन्यायपूर्ण कृत्यों का विरोध करके तङ्क करने लगेगी। पर अब उनको मालूम हो गया होगा कि अपनी प्रजा को ऐसी पतित अवस्था में रख कर उन्होंने स्वयम् अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मार ली है। यदि इन राज्यों की प्रजा को प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन के वास्तविक अधिकार प्राप्त होते और वहाँ का शासन प्रजा के सच्चे प्रतिनिधियों की सलाह द्वारा होता तो न तो वहाँ ऐसी शोचनीय परिस्थिति उत्पन्न होती और न भारत-सरकार को इस प्रकार हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता। उस दशा में यदि किसी नरेश से कोई गलती हो भी जाती तो भी कोई बाहरी शक्ति जल्दी ही उसके अधिकारों की तरफ हाथ नहीं बढ़ा सकती थी, क्योंकि राजा के पीछे प्रजा की जाग्रत तथा सङ्गठित शक्ति होती, जिसे छेड़ना कोई बुद्धिमान राजनीतिज्ञ उचित नहीं समझता। पर इस समय बाहरी शक्ति को अकेले राजा के विरोध का ही झूयाल करना पड़ता है, जिसकी प्रजा प्रायः उसकी विरोधी अथवा कम से कम उसके प्रति उदासीन होती है। इसलिए यदि देशी नरेशगण अब भी अपना भला चाहते हैं और भविष्य में इस प्रकार की लाञ्छनापूर्ण परिस्थिति में पड़ना नहीं चाहते तो उनका कर्तव्य है कि अपनी प्रजा को शीघ्र से शीघ्र उसके न्याय्य अधिकार प्रदान करें।

भारतवर्ष और वायुयान

आधुनिक सभ्यता का मूलमन्त्र यात्रा और आवा-गमन के साधनों की गति को तेज़ करना और एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र से शीघ्र सन्देश भेज सकना है। सच पूछा जाय तो आधुनिक युग का सूत्रपात तभी से हुआ है, जब से भाप के इंजिन का आविष्कार हुआ और उसके सहारे रेल तथा स्टीमशिप का निर्माण होकर स्थल तथा जल द्वारा यात्रा करना सरल हो गया। इसके बाद जब मोटर का आविष्कार हुआ तो सभ्यता की वृद्धि और भी तीव्र गति से होने लगी। अन्त में वायुयान का युग आया और यदि भविष्य-दर्शियों की बातों पर विश्वास किया जाय तो वह अवश्य ही कुछ समय में मानवीय सभ्यता की काया-पलट कर देगा। हम जानते हैं कि हमारे कितने ही भाई इन परिवर्तनों को संसार की उन्नति अथवा प्रगति का द्योतक नहीं समझते, वरन् इनको मानव-समाज के लिए अकल्याणजनक अथवा हानिकर ही मानते हैं। उनके मत से यह गति-लिप्सा शैतानी माया है और इससे मनुष्य का जीवन सुखपूर्ण बनने के बजाय अधिकांश में दुखी ही होता जाता है। पर हमारी इच्छा यहाँ न्याय, नीति अथवा मानव-समाज के आदर्श सम्बन्धी विवाद में न पड़ कर केवल यह बतलाने की है कि वर्तमान समय में संसार के जो राष्ट्र शक्ति, धन तथा ज्ञान के स्वामी बन कर उन्नत कहला रहे हैं तथा अन्य पिछड़े हुए राष्ट्रों को जिनका अनुगामी बन कर चलना पड़ रहा है, वे किन साधनों से इस अवस्था को प्राप्त हुए हैं। जब तक दूसरा कोई उदाहरण सामने न हो, तब तक उनका मार्ग ही सभ्यता तथा उन्नति का मूलमन्त्र समझा जायगा। सम्भव है आगे चल कर किसी ज़माने में सभ्यता की गति बदल जाय और मनुष्य केवल सादगी तथा सरलतापूर्वक जीवन-निर्वाह करना ही अभीष्ट समझने लगे। पर ऐसा ज़माना अभी कम से कम कई सौ वर्ष तक नहीं आ सकता, और जब तक ऐसा परिवर्तन नहीं होता तब तक मनुष्य प्रत्येक उपाय से अपनी गति को तीव्र करने की चेष्टा में लगे रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। क्योंकि जिसके पास अधिक से

अधिक तीव्र गति का साधन होगा उसके ही दूसरों पर प्रधानता प्राप्त करने की अधिक सम्भावना होगी। युद्ध के समय वह अपने शत्रु पर पहले आक्रमण कर सकेगा और शान्ति के समय संसार के विभिन्न देशों से अपना व्यवसायिक सम्बन्ध अधिक दृढ़ रख सकेगा। इससे उसके आन्तरिक सङ्गठन के मज़बूत होने में भी सहायता मिलेगी और अन्य देशों को उसकी प्रतियोगिता कर सकना कठिन होगा। इन तमाम बातों पर ध्यान रख कर आज संसार के समस्त उन्नतिशील राष्ट्र गति के इस नए साधन—वायुयान के निर्माण तथा प्रचार में संलग्न हैं। क्योंकि जहाँ रेलगाड़ी और मोटर प्रति घण्टा पचास-साठ मील की चाल से अधिक साधारणतः नहीं चलाई जा सकती, उसकी मामूली चाल प्रति घण्टा सौ, सवा सौ मील है और अभी उसके अधिक बढ़ने की आशा है। इसके सिवा उसे टेढ़े मार्ग से या चकर खाकर जाने की ज़रूरत नहीं होती और इसलिए वह रेल और मोटर की अपेक्षा प्रायः चौथाई समय में ही अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच सकता है। वायुयानों के लिए रेल की भाँति पटरी बिछाने या मोटर की भाँति सड़कें बनाने की आवश्यकता नहीं है, वरन् उसको आकाश की इतनी चौड़ी तथा विस्तृत सड़क प्राप्त है, जिसमें कभी किसी तरह की तज़्जी की शिकायत हो ही नहीं सकती। इन सब विशेषताओं के कारण आजकल यूरोप, अमेरिका के देशों में वायुयान द्वारा यात्रा करने तथा डाक भेजने का काम दिन पर दिन बढ़ रहा है और राष्ट्र की रक्षा की दृष्टि से भी उसका महत्व अधिक होता जा रहा है। उन देशों में इस कार्य के लिए अनेकों बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ स्थापित हो गई हैं, जिनको वहाँ की सरकारों से भी काफ़ी सहायता (सबसिडी) दी जाती है। ऐसी अवस्था में जब हम भारत की परिस्थिति पर विचार करते हैं तो हृदय में दुःख का भाव उत्पन्न होता है। अभी तक हमारे यहाँ वायुयान का जो कुछ प्रचार हुआ है उसे तमाशा अथवा मनोरंजन के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता। हमारे यहाँ कुछ बड़े-बड़े नगरों में 'फ़्लाइट क्लब' स्थापित हो गए हैं, जिनमें कुछ बड़े लोग दिलबहालाव के लिए घण्टे दो घण्टे आकाश की सैर कर लेते हैं अथवा दो-चार सौ कोस की यात्रा कर आते हैं। पर सर्वसाधारण के लिए वह



अभी केवल एक आश्चर्य की वस्तु ही है। देश के सार्वजनिक जीवन से अभी उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। वायुयान द्वारा कुछ डाक का कार्य यहाँ अवश्य होने लगा है, पर उसमें भारतवासियों का कोई हाथ नहीं और वह प्रायः अङ्गरेजों के ही अधिकार में है। यह अवस्था किसी तरह सन्तोषजनक नहीं समझी जा सकती और प्रत्येक देशप्रेमी का कर्तव्य है कि राष्ट्रीय जीवन की इस बड़ी कमी को दूर करने का प्रयत्न करे। हर्ष का विषय है कि इस सम्बन्ध में डॉक्टर मुञ्जे ने, जो भारतवासियों में सैनिकता का प्रचार करने के बड़े पक्षपाती हैं, कुछ उद्योग आरम्भ किया है। वैसे तो आप कई वर्षों से भारत में 'प्रलाइज़ क्लबों' की स्थापना कराने तथा उनको सरकार द्वारा सहायता दिलाने की चेष्टा कर रहे हैं, पर अब आपने श्री० रामनाथ चावला नामक पञ्जाबी युवक को वायुयान द्वारा पृथ्वी-परिक्रमा के लिए भेजने का आयोजन किया है, जिससे इस देश के निवासियों में इस प्रकार के साहसपूर्ण कार्यों के लिए उत्साह उत्पन्न हो और विदेशों के लोग यह जान सकें कि भारतनिवासी भी इस क्षेत्र में आगे बढ़ने का उपक्रम कर रहे हैं। वास्तव में जब तक हमारे यहाँ के अनेक युवक दूर देशों की यात्रा करके ख़तरों में पड़ कर बचना न सीखेंगे और इस कला के रहस्यों का भली प्रकार अनुभव न करेंगे तब तक हमारे यहाँ यूरोप और अमेरिका के समान साहसी तथा दृढ़ उड़ाने के उत्पन्न होने की आशा नहीं की जा सकती। इसके सिवा जब तक ऐसे उड़ाने तैयार न होंगे तब तक हम आत्म-रक्षा की दृष्टि से दूसरे लोगों पर निर्भर समझे जाएँगे। जैसा डॉक्टर मुञ्जे ने कहा है यह बात हमारे लिए लज्जाजनक है और यदि हमारे स्वराज्य के दावे में कुछ भी तत्व है तो हमारा कर्तव्य है कि अपने को सब प्रकार से अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकने के उपयुक्त सिद्ध कर दें। वर्तमान दशा में तो यदि अङ्गरेज सचमुच हमको आत्म-शासन का अधिकार प्रदान कर दें तो हम कदाचित् ही उसकी रक्षा कर सकेंगे और सम्भवतः किसी न किसी अन्य शक्ति-शाली राष्ट्र के भक्ष्य बन जायेंगे। व्यवसायिक दृष्टि से भी यह परिस्थिति बड़ी हानिकारक है। क्योंकि जैसा अनेक वायुयान-कला-विशारदों का मत है, भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ का जलवायु वायुयान-यात्रा के

अत्यन्त अनुकूल है। इसलिए यदि हम लोग इस तरफ ध्यान न देंगे तो कुछ समय पश्चात् अन्य देशों के निवासी रेल और ट्राम आदि के व्यवसायों की भाँति इस रोज़गार को भी हथिया लेंगे और तब हमारे लिए सिवा पछताने के कुछ न रह जायगा।

❀

❀

❀

बेकारी और ठगी

आजकल देश में बेकारी ने इतना भयङ्कर रूप धारण कर रखा है और बेकार लोग नौकरी के लिए ऐसे पागल हुए फिरते हैं कि कितने ही नीच-वृत्ति के व्यक्तियों ने उनको ठग कर अपनी जेब गरम करना ही अपना पेशा बना लिया है। इनमें से कुछ तो इधर-उधर घूम कर ऐसे लोगों को मूँड़ते रहते हैं और कुछ बाकायदा 'सर्विस सीक्योरिज़ एजन्सी' आदि खोल कर तथा समाचार-पत्रों में नोटिस छपा कर सीधे-सादे मनुष्यों को अपने जाल में फँसाते हैं। इस प्रकार के कई व्यक्तियों के एक गुट पर हाल ही देहली में मुकदमा चलाया गया था, यद्यपि यह मालूम नहीं हो सका कि उसका अन्तिम परिणाम क्या हुआ। इन लोगों ने कई व्यक्तियों को नौकरी दिलाने का सब्ज़-बाग़ दिखला कर बहुत सा रुपया पेंड लिया था। पर जब नौकरी माँगी गई तो वे भूटे-सच्चे बहाने बना कर उम्मेदवारों को दर-काने की कोशिश करने लगे। ऐसा ही समाचार बम्बई से भी आया है। वहाँ गनपत नामक व्यक्ति ने तीन हिन्दुओं से करन्सी बैङ्क में चपरासी की नौकरी दिलाने का धावा करके ५७ रु० वसूल कर लिया और बाद में शायब हो गया। वास्तव में ऐसे व्यक्ति जो निराश्रय फिरने वाले गरीब लोगों के बचे-खुचे जीवन-निर्वाह के साधन को भी इस प्रकार बहका कर छीन लेते हैं, पर नर-पिशाच समझे जाने चाहिए। जिस मनुष्य की दीन दशा पर प्रत्येक सहृदय व्यक्ति को करुणा आनी चाहिए उसे ये अविचलित चित्त से कौड़ी-कौड़ी के लिए मुह-ताज करके सबक पर मरने को छोड़ देते हैं। इस प्रकार की घटनाओं में यद्यपि उन सीधे-सादे लोगों का भी कुछ दोष समझा जा सकता है, जो बिना कुछ भी समझे-बुझे और जाँच किए ऐसे भूतों पर विश्वास कर लेते हैं। पर

वे प्रायः अपनी दुर्दशा से इतने विह्वल होते हैं और उन वक्त्रक व्यक्तियों की ऊपरी वेष-भूषा तथा वात्चीत ऐसी प्रभावोत्पादक होती है कि इस प्रकार की चाल का चल जाना विशेष आश्चर्यजनक नहीं होता। इसके प्रतिकार का उपाय यही है कि सेवा-समितियों और अन्य ऐसी ही सार्वजनिक परोपकारिणी संस्थाएँ जनता की ऐसे धूर्तों से रक्षा करें और हो सके तो स्वयं ऐसे बेकार फिरने वालों को उचित सूचनाएँ तथा सम्मति दें। अन्य देशों में तो वहाँ की सरकारों ने बेकार लोगों की व्यवस्था अपने ऊपर ले रखी है और उनको काम पर लगाने के लिए बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी व्यवस्था किया करते हैं। यदि हमारे देश के शासक भी इस तरह कुछ ध्यान दें तो ऐसे दुखी लोगों के कष्ट कुछ अंशों में अवश्य कम हो सकते हैं।

❀ ❀ ❀

नैपाल में समाज-सुधार

नैपाल एक पुराने ढङ्ग का देश है, जिस पर संसार के परिवर्तनों का प्रभाव बहुत कम पड़ा है। वह हिमालय पर्वत की चहार-दीवारी के भीतर एक प्रकार का एकान्त-जीवन व्यतीत कर रहा है। संसार के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का इस देश में बहुत कम प्रवेश हुआ है। वहाँ न रेल और तार का विशेष प्रचार है, न सड़कों पर सदैव मोटरों का कर्णकटु शब्द सुनाई देता है। विदेशी लोगों को उसके भीतर प्रवेश करने की आज्ञा बहुत कम और बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है। इस प्रकार संसार की वर्तमान गति से अपरिचित रहने के कारण वहाँ के निवासी प्राचीनता को ही अधिक पसन्द करते हैं और अधिकांश में परम्परा से चली आई रूढ़ियों के अनुसार ही जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे देश से जब हमको समाज-सुधार के समाचार मिलते हैं और यह भी मालूम होता है कि ये सुधार वहाँ के प्रधान शासक द्वारा किए गए हैं, तो एक बार अवश्य ही उनके प्रति हृदय में श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है। इससे प्रतीत होता है कि वहाँ के प्रधान-मन्त्री, जिनके हाथ में शासन के पूर्ण अधिकार रहते हैं, अपनी प्रजा की हृदय से मङ्गल-कामना करते हैं। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि

इस प्रकार के अशिक्षित तथा रूढ़ियों के उपासक लोगों में प्रचलित सामाजिक नियमों में जब कोई व्यक्ति प्रकट रूप से परिवर्तन करने की चेष्टा करता है तो विरोध का एक तूफान खड़ा हो जाता है, जिसका परिणाम प्रायः सुधार करने वाले के लिए लाभजनक नहीं होता। अफ़ग़ानिस्तान का उदाहरण हमारे सामने ही है कि किस प्रकार समाज-सुधार की चेष्टा करने से अमीर अमानुष्ठा धर्मान्ध व्यक्तियों के कोपभाजन होकर राज-सिंहासन से हाथ धो बैठे। पर जो शासक वास्तव में अपने कर्तव्य को समझते हैं और अपनी प्रजा को पुत्रवत् मान कर उसका कल्याण साधन करना ही जिनका लक्ष्य होता है, वे कभी अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ की चिन्ता नहीं करते और परिस्थिति के अनुसार जो कुछ उनको जनता के लिए हितकारी जान पड़ता है, उसी पर आरुढ़ रहते हैं। इसी राजधर्म के अनुसार नैपाल-धीश ने यह देख कर कि बाल-विवाह की कुप्रथा के कारण वहाँ की जनता का अकल्याण हो रहा है तथा अनेक सामाजिक दोष उत्पन्न होते हैं, एक नया क़ानून जारी किया है, जिसके अनुसार ब्राह्मण बालिकाओं का ११ वर्ष से पूर्व और क्षत्रिय बालिकाओं का १४ वर्ष से पूर्व विवाह न हो सकेगा। ब्राह्मणों के लिए भिन्न प्रकार का नियम बनाने का कारण यह है कि वे लोग ऋतु-काल के पश्चात् विवाह किए जाने के विरुद्ध हैं। पर बालको के सम्बन्ध में दोनों जातियों के लिए एक ही नियम रखा गया है कि किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय बालक का विवाह १६ वर्ष की अवस्था से पूर्व न किया जाय। यह भी नियम बनाया गया है कि ४८ वर्ष की अवस्था से अधिक का कोई ब्राह्मण १२ साल से कम उम्र की लड़की से और ६० वर्ष की अवस्था से अधिक का क्षत्री २० वर्ष से कम की लड़की से विवाह न करे। यद्यपि हम समझते हैं कि उपरोक्त नियमों में उन्नति की काफी गुत्तायश है, पर प्रथम चेष्टा होने के कारण जो कुछ किया गया है वह भी प्रशंसनीय है। इसके सिवा एक बात यह है कि नैपाल में, जहाँ राजाज्ञा वेद-वाक्य के समान शिरोधार्य की जाती है, उपरोक्त नियमों का पूर्ण रीति से पालन होगा, न कि हमारे देश के क़ानूनों की भाँति तरह-तरह के छिद्र ढूँढ़ कर लोग उनके उद्देश्य की हत्या करने की चेष्टा करेंगे। जब एक बार



सुधार का कार्य आरम्भ हो जायगा और लोग उसके लाभों से परिचित हो जायेंगे तो फिर उसका चक्र स्वयम् ही चलने लगेगा और कुछ ही समय में वहाँ का समाज सब प्रकार के दोषों से मुक्त होकर उन्नति-शील बन सकेगा ।

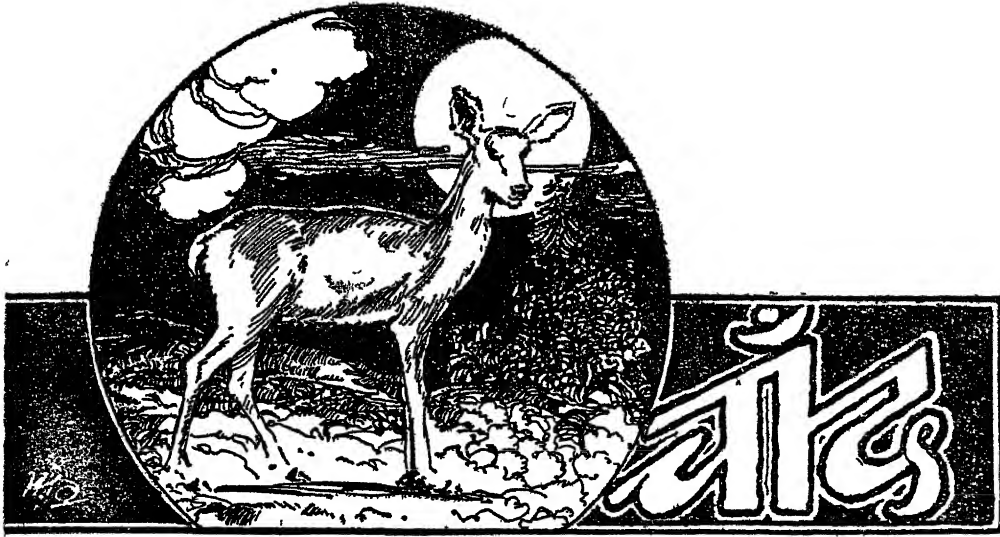
❀ ❀ ❀

धूम्रपान-निषेधक बिल

युक्त प्रान्तीय कौन्सिल के आगामी अधिवेशन में श्री० अहमद शाह एक बिल पेश करने वाले हैं, जिसका उद्देश्य बालकों को धूम्रपान से रोकना है । इसमें प्रस्ताव किया गया है कि जो कोई सोलह वर्ष से कम उम्र के लड़के के हाथ तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि बेचे, उस पर पहली बार १० रुपया और अगली बार वही अपराध करने पर ५० रुपया जुर्माना किया जाय । ऐसे मामले में इस बात पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं कि वह तम्बाकू लड़का अपने लिए खरीद रहा है अथवा किसी दूसरे के लिए । इसके सिवा यदि कोई सोलह वर्ष से कम का बालक किसी सार्वजनिक स्थान में तम्बाकू पीता देखा जाय, तो प्रत्येक नम्बरदार, मुकद्दम, स्कूल और कॉलेज के शिक्षक, वकील, डॉक्टर, मैजिस्ट्रेट म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रान्तीय कौन्सिल, अथवा एसेम्बली के मेम्बर को कानूनन यह अधिकार होगा कि उससे तम्बाकू छीन कर नष्ट कर दे । प्रान्तीय सरकार किसी भी सेक्रेटरी या थर्ड क्लास के मैजिस्ट्रेट को यह अधिकार दे सकेगी कि वह इस कानून को भङ्ग करने वालों का फ़ैसला मुक़तसर में कर सकें । इस बिल को पेश करने का उद्देश्य यह बतलाया गया है कि देश के छोटे-छोटे बालकों में तम्बाकू पीने की प्रवृत्ति फैलती जा रही है और इसका प्रतिकार करने के लिए कुछ प्रान्तों में कानून बनाए भी जा चुके हैं । यद्यपि इस प्रकार के कानून तब तक भली प्रकार अमल में नहीं लाए जा सकते, जब तक जनता उनसे सहयोग करने को तैयार न हो, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि इससे समाज-सेवकों को इस सम्बन्ध में कार्य करने में सुविधा होगी और इस कुप्रवृत्ति का कुछ अंशों में उच्छेद अवश्य हो सकेगा ।

न्याय का पक्षपात

हमारे देश के न्यायालयों में प्रायः न्याय की विधि लीला के उदाहरण देखने में आया करते हैं । साधारण कानूनी नियमों के विपरीत आचरण करने पर अनेक लोगों को एक-एक और दो-दो साल की कड़ी कैद की सज़ाएँ दे डाली जाती हैं और कुछ लोग गुस्तर अपराध करके भी नाम-मात्र की सज़ा पर ही छुट्टी पा जाते हैं । इस प्रकार का एक समाचार हाल ही में बम्बई से आया है । वहाँ किसी दुकानदार ने, जो काफ़ी मालदार बतलाया जाता है, एक अछूत बालक को ऐसी निर्दयता से मारा कि वह उसी स्थान पर मर गया । आरम्भ में उस पर हत्या का अभियोग लगाया गया, पर बाद में ज़ूरी ने उसे केवल जान-बूझ कर सफ़्त चोट पहुँचाने का दोषी माना और तीन महीने की सादी कैद की सज़ा दी । सम्भव है, जज ने अभियुक्त की अवस्था अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा का इयाल करके उसके साथ इस प्रकार की रियायत की हो, तो भी हमारी सम्मति में एक ऐसे अपराध के लिए, जिसमें किसी व्यक्ति की नृशंसता के कारण दूसरे व्यक्ति के प्राण चले गए हों, यह दण्ड बहुत ही अनुपयुक्त है, और यदि इस प्रकार के फ़ैसले अधिकांश न्यायालयों में होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं कि सामर्थ्यवान लोग गरीबों के प्राणों का मूल्य बहुत कम समझने लगे । इस मामले में विशेष खेद हमको इस बात का है कि नृशंसता का शिकार होने वाला व्यक्ति अछूत जाति का था, जिन पर प्रायः शहरों और देहातों में आमतौर पर अत्याचार हुआ करते हैं और जिनको मारना-पीटना अनेक उच्च जातियों के व्यक्ति अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझे बैठे हैं । ऐसे फ़ैसले के कारण इन अभागों प्राणियों की दशा और भी शोचनीय हो सकती है, क्योंकि इन गरीबों के पास बड़े लोगों के विरुद्ध मुक़दमा लड़ सकने का न साधन होता है न बुद्धि । अछूत-सहायक संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे ऐसे मामलों को अपने हाथ में लेकर अत्याचार करने वालों को न्यायालयों से उचित शिक्षा दिलाने की चेष्टा करें ।



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की सख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११,
खण्ड २

अगस्त, १९३३

सख्या ४,
पृ० सं० १३०

चित्र-रेखा

[प्रोफ़ेसर रामकुमार ~~...~~, एम० ए०]

(काले बादल में पानी की बँद)

काले तन के उज्ज्वल मन !

कलुष-रहित हो तुम, फिर भी—

क्यों इतना प्रिय है अधःपतन ?

यह नीला आकाश—(जहाँ,
करते हैं कितने विश्व अटन ।

अपना विस्तृत रूप भूल कर

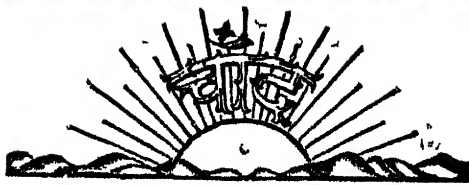
बन कर लघु प्रकाश के कन ।)—

फैला है मेरे जीवन-सा,

जिसमें है स्वर्गिक गायन ।

पतन तुम्हारा आज बनेगा,

इस बसुधा का अभिनन्दन ।



अगस्त, १९३३

अमजीवी और गृह-समस्या



चीन काल में जब कि शिल्प तथा कारीगरी का काम हाथ से किया जाता था, बड़े-बड़े नगरों की संख्या बहुत कम थी। क्योंकि शिल्पकार अथवा कारीगर अपने व्यवसाय को अपने घर अथवा छोटी सी दूकान में बैठ कर ही कर सकते थे। उस

समय प्रायः प्रत्येक बड़ा गाँव अधिकांश में स्वावलम्बी होता था और उसे बड़े नगरों से सम्बन्ध रखने की बहुत ही कम आवश्यकता पड़ती थी। पर जब से भाप और बिजली की शक्ति का आविष्कार हुआ और जीवन-निर्वाह की वस्तुओं को तैयार करने का काम घरों और दूकानों में होने के बजाय मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कारखानों

और फैक्टरियों में होने लगा, तब से उपर्युक्त अवस्था बदल गई। अब दिन पर दिन ऐसे बड़े-बड़े शहरों का निर्माण हो रहा है जिनकी प्राचीन काल में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

जब कारखानों की स्थापना होने के कारण गाँवों और छोटे कस्बों के शिल्पकारों का काम छिन गया तो उनके लिए ये ही उपाय रह गए कि वे या तो अपना घर-बार छोड़ कर शहरों में जाकर कारखानों की नौकरी करें या केवल खेती-बारी द्वारा अपना निर्वाह करें। पर खेती की ज़मीन पहले से ही नपी-तुली है, अतः जैसे-जैसे जन-संख्या की वृद्धि होती जाती है उसकी माँग भी बढ़ती जाती है। इसके सिवा सामाजिक प्रथाओं में परिवर्तन होने से संयुक्त-कुटुम्ब की प्रथा भी अधिकांश में लोप हो गई है, अतः जो भूमि पहले एक ही परिवार के अधिकार में थी, वह अब अनेक छोटे-छोटे हिस्सों में बँटती जाती है और इन छोटे-छोटे भूमि-खण्डों में इतनी पैदावार नहीं होती, जिससे एक कुटुम्ब का काम भली प्रकार चल सके। ऐसे भूमि-खण्डों के स्वामी अगर केवल खेती पर ही निर्भर रहें तो इसका फल यह होगा कि उनको अपना बहुत सा समय ठाले-बैठे गँवाना पड़ेगा और पेट भर सकना भी कठिन हो जायगा। इसलिए इस प्रकार के लोगों को भी साल में कुछ महीने शहरों में रह कर नौकरी करना आवश्यक जान पड़ता है। इस प्रकार कल-कारखानों के केन्द्र-स्थानों में ऐसे लोगों का एक बड़ा समूह इकट्ठा हो जाता है, जिनका वहाँ घर-द्वार कुछ भी नहीं होता और जिनमें से

अधिकांश वहाँ अस्थायी रूप से रहने को आते हैं। फल-स्वरूप उन स्थानों में गृह-समस्या बड़ी कठिन हो उठती है और थोड़े से स्थान में बहुत से लोगों के भर जाने से स्वच्छता का हास होने लगता है। इसका अनुमान हमको तब होता है जब यह पता लगता है कि बम्बई में १०० में से ६६ और कानपुर में ६४ व्यक्ति केवल एक कमरे में रहते हैं। यह औसत नगर की समस्त आबादी के हिसाब से है। यदि केवल मज़दूरों के मुहल्लों का ही हिसाब लगाया जाय तो वहाँ १०० में ९५ मनुष्य अपने परिवार सहित एक ही कमरे में रहते हैं। इतना ही नहीं, इन शहरों के एक छोटे से कमरे में आठ-आठ और दस-दस व्यक्तियों को गुज़ारा करना पड़ता है। यद्यपि इस विषय में विभिन्न नगरों की समस्या एक दूसरे से कुछ भिन्न प्रकार की है तो भी यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि आजकल सभी बड़े शहरों में, जहाँ उद्योग-धन्धों का कुछ जोर है, जगह की कमी की शिकायत पाई जाती है। यद्यपि बम्बई को छोड़ कर, जो चारों तरफ़ समुद्र से घिरा है और जहाँ आबादी को फैला सकने की गुंजायश नहीं है, अन्य स्थानों में शहर के आस-पास भूमि की कमी नहीं है, पर सभी व्यवसायी और मज़दूर अपने काम करने के स्थान के पास ही रहना पसन्द करते हैं। इसका फल यह होता है या तो मकान ऊँचे बनाने पड़ते हैं जिससे प्रकाश और हवा के मिलने में बाधा पड़ती है, या फिर गन्दे और त्याज्य स्थानों में बिना किसी प्रकार की सफ़ाई तथा आराम के प्रबन्ध के रद्दी मकान या झोंपड़े बना कर खड़े कर दिए जाते हैं और ग़रीब लोग उन्हीं में पशुओं की भोंति रहने लगते हैं। इन स्थानों में स्वच्छता और स्वास्थ्य के नियमों का कितना अधिक उल्लङ्घन किया जाता है और उसके फल से वहाँ के रहने वालों का कैसा शारीरिक और चार्ित्रिक पतन होता है, इसका अनुमान वे लोग ही भली-भाँति कर सकते हैं, जिन्होंने ऐसे स्थानों का भली प्रकार निरीक्षण किया है अथवा जो उनसे किसी तरह का सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि भारतीय श्रमजीवी आन्दोलन-कर्ता इस सम्बन्ध में बराबर शिकायत करते रहे हैं और मज़दूरों की दुरवस्था का वर्णन समाचारपत्रों द्वारा तथा अन्य प्रकार से प्रकट करते रहे हैं, पर उनकी

सम्मति पर एकपक्षीय होने का आरोप हो सकने के कारण हम सम्राट द्वारा नियुक्त 'रॉयल कमीशन ऑफ़ लेबर' की रिपोर्ट से विभिन्न नगरों की मज़दूर-बस्तियों का सक्षिप्त विवरण यहाँ देते हैं।

कलकत्ता

कलकत्ता और हवड़ा की सीमा के भीतर उद्योग-धन्धों की शीघ्रतापूर्वक वृद्धि होने से भूमि का बड़ा अभाव हो गया है और उसके लिए बहुत अधिक मूल्य देना पड़ता है। इस नगर में बहुत वर्षों से मज़दूरों को रहने का स्थान मिल सकना कठिन हो गया है और इस अभाव की पूर्ति के लिए कुछ मातदार लोगों ने और ख़ास कर मिलों में काम करने वाले सरदारों ने कार-ख़ानों के पास ही घर या झोंपड़े खड़े कर दिए हैं और उनका इतना अधिक किराया लिया जाता है कि मज़दूर की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा उसी में चला जाता है। इन घरों के बनाने में लोगों को सुविधा और आराम का ज़रा भी ध्यान नहीं रक्खा गया है, और जहाँ तक बन पड़ा है एक-एक वित्ता ज़मीन को मकान बनाने के काम में लाया गया है। इस कारण इस शहर की कितनी ही बस्तियों में लोगों को इतनी अधिक तज़्जी में रहना पड़ता है जिसका उदाहरण सम्भवतः समस्त देश में नहीं मिल सकता।

बम्बई

बम्बई में मज़दूरों के निवास के लिए प्रायः 'चालें' बनाई गई हैं, जो तीन या चार मण्डिजल तक की होती हैं और उनके एक छोटे कमरे में कम से कम एक परिवार रहता है। ये 'चालें' इस ढङ्ग से बूझाई जाती हैं कि कमरों की दो लम्बी क्रतारों के बीच में एक तन्त गली रहती है और प्रत्येक कमरे का दर्वाज़ा इसी गली में होता है। इससे इन घरों में रोशनी और हवा की पहुँच बहुत कम हो पाती है। ये स्थान बड़े गन्दे रहते हैं और सफ़ाई के नियमों का वहाँ पूर्णतया अभाव होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुराने ढङ्ग की 'चालें' उनमें रहने वालों के स्वास्थ्य के लिए बड़ी हानिकार हैं और यद्यपि अब वे कम होती जाती हैं तो भी अधिकांश लोगों को अभी तक उन्हीं में रहना पड़ता है। इसके सिवा वे प्रायः मिलों के पास बनाई गई हैं, इसलिए



कितने ही लोग असुविधाओं को भोगते हुए भी उनमें रहना पसन्द करते हैं। इन 'चालों' में से ज्यादातर ऐसी हैं कि उनका सुधार हो सकना असम्भव है और एकमात्र उपाय उनको नष्ट कर देना ही है।

मद्रास

मद्रास, मद्रा, कोयम्बटूर तथा दक्षिण भारत के अन्य उद्योग-धन्धे के केन्द्रों की दशा भी ऐसी ही असन्तोषपूर्ण है। मद्रास शहर में एक कमरे वाले २५,००० घरों में, जिनको वहाँ 'चेरी' कहते हैं, डेढ़ लाख व्यक्ति निवास करते हैं। वहाँ मकानों की इतनी ज्यादा कमी है कि हजारों लोगों को बिना घर के ही रहना पड़ता है। ये लोग या तो सड़कों पर पड़ रहते हैं या बन्दरगाह के पास गोदामों के बाहरी बरामदों में गुजर करते हैं। मद्रा की, जहाँ कितनी ही कपड़े की मिलें हैं, अवस्था और भी खुरी है। वहाँ की म्युनिसिपैलिटी ने इस समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है और न एक को छोड़ कर किसी मिल ने मजदूरों के रहने को मकान बनाये हैं। कोयम्बटूर और तृतीकोरिन में भी यही हालत है और वहाँ कितने ही गरीब लोग खाली पड़ी हुई ज़मीन पर झोंपड़े बना कर गुज़ारा करते हैं। जब उन ज़मीनों के मालिक उनमें बहुत अधिक किराया माँगने लगते हैं, तो वे उस स्थान को छोड़ कर उसी प्रकार के किसी अन्य गन्दे और कष्टपूर्ण स्थान में जा बसते हैं। अन्त में उन लोगों की एक 'चेरी' बन जाती है, और वहाँ उन्हें इतनी तज़्जी और गन्दगी में रहना पड़ता है कि उससे उनके स्वास्थ्य की बड़ी हानि होती है। अधिकांश में सरकारी अधिकारी या म्युनिसिपैलिटियाँ इन 'चेरियों' की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देते। वहाँ पर जीवन की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने की भी कुछ चेष्टा नहीं की जाती। जिन स्थानों में पानी के नलों का प्रबन्ध भी है, वहाँ भी प्रायः वे इतनी अधिक दूर होते हैं कि लोग अरक्षित अवस्था में पड़े कुओं के पानी से ही काम चलाते हैं। सड़कों की कमी का बहाना करके म्युनिसिपैलिटी वाले वहाँ मैला उठाने वाली गाड़ियाँ भी नहीं भेजते। नाखियों और पाखानों के अभाव से पाखाना-पेशाब रास्ते पर बहता रहता है। ऐसी अवस्था में कोई

आश्चर्य नहीं कि इन स्थानों में प्रायः महामारियाँ फैलती रहती हैं और लोगों की मृत्यु की औसत बहुत अधिक है।

कानपुर

कानपुर में मजदूरों की संख्या १० हजार है और वहाँ की बस्ती बड़ी घनी और अस्वास्थ्यकर है। शहर का पौन हिस्सा बस्तियों और हाटों के रूप में है, जिनमें बने हुए घर या तो मनुष्यों के रहने के लायक नहीं हैं या उनमें सुधार की बड़ी ज़रूरत है। अधिकांश घरों में केवल एक कमरा होता है, जिसकी चौड़ाई ८ फीट और लम्बाई १० फीट होती है। इनमें से किसी के सामने बरामदा होता है और किसी में नहीं होता। ऐसे एक कमरे में दो, तीन और चार परिवार तक रहते हैं। अनेक घरों का फर्श सड़क से भी नीचा होता है। उनमें पानी निकलने, हवा आने तथा सफ़ाई का कोई साधन नहीं होता।

अहमदाबाद

अहमदाबाद का वह भाग, जिसमें मजदूर रहते हैं, गन्दगी का जीता-जागता नमूना है। सौ में से करीब ९२ घर केवल एक कमरे के हैं। उनकी बनावट बड़ी ख़राब और अस्वास्थ्यकर है तथा उनमें हवा आने को कोई रास्ता नहीं है। वहाँ लोगों को पानी ज़रूरत से बहुत कम मिलता है और पाखानों का कुछ भी इन्तज़ाम नहीं है। इसके फल से लोग प्रायः रोगी और कमज़ोर रहते हैं। बच्चे बहुत अधिक सख्या में मरते हैं और अन्य लोगों की मृत्यु का औसत भी बहुत अधिक है। इस शहर की पैंतीस मिलों ने अपने मजदूरों के रहने के लिए घर बनाए हैं, जिनमें उन मिलों में काम करने वाले १६ प्रति सैकड़ा व्यक्ति रह सकते हैं। पर एक या दो स्थानों को छोड़ कर सभी घरों में जगह की तज़्जी है और सफ़ाई का कोई इन्तज़ाम नहीं है।

अन्य स्थान

ऊपर लिखे नगरों के मजदूरों की जो दुर्दशा है, वही करीब-करीब उद्योग-धन्धों के अन्य केन्द्रों में भी पाई जाती है। पर कराची और अजमेर में इस सम्बन्ध में जैसी लापरवाही की जाती है और देख-भाल का जैसा



अभाव है, उसका उदाहरण कहीं नहीं पाया जाता। कराची में कुछ कारखाने वालों ने अपने मजदूरों के लिए मकान बना दिए हैं और कुछ उनको अपने लिए भोपड़ा बना लेने का सामान दे देते हैं। वहाँ पर एक घर में कई-कई परिवारों के मिल कर रहने का रिवाज बहुत अधिक है और इससे बड़ी हानि होती है। अजमेर में अधिकांश मजदूर शहर के भीतर मकान किराए पर लेकर रहते हैं और जगह की कमी से उनको बहुत ही तज़्जी में निर्वाह करना पड़ता है।

गन्दगी का परिणाम

मजदूरों और उनकी स्त्रियों तथा बच्चों के ऐसे तज़्ज और शुद्ध वायु-रहित स्थानों में रहने का परिणाम यह होता है कि वे प्रायः रोगी और निर्बल रहते हैं तथा किसी के मुख पर तेज अथवा कान्ति का चिन्ह दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसे स्थानों में जो बच्चे उत्पन्न होते हैं, वे जन्म लेने के दो-चार महीने के भीतर ही चल बसते हैं। जब कि इङ्ग्लैण्ड के उद्योग-धन्धों के केन्द्र-स्थानों में प्रति हज़ार १०० बच्चे मरते हैं, बम्बई में सरकारी जॉच द्वारा यह संख्या प्रति हज़ार २५० बतलाई गई है। मद्रास और रङ्गून की दशा इससे भी अधिक शोचनीय है, क्योंकि वहाँ जन्म लेने वाले एक हज़ार बच्चों में से ३०० से ३५० तक मर जाते हैं। पर उपर्युक्त अङ्कों में मजदूरों के अतिरिक्त अन्य श्रेणी वालों की गणना भी की गई है और यदि केवल मजदूरों के बच्चों की ही मृत्यु का हिसाब लगाया जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से आधे से भी अधिक अपनी आयु के पहले ही वर्ष में इस लोक से विदा हो जाते हैं।

शारीरिक अवनति

ऐसी गन्दी परिस्थिति में रहने के कारण मजदूरों का स्वास्थ्य भी कभी ठीक नहीं रहता और वे प्रायः रोगी बने रहते हैं। रोग की दशा में ठीक तौर पर इलाज करने के लिए प्रथम तो उनके पास पैसा नहीं होता और दूसरे जिन कारणों से रोग उत्पन्न होता है वे भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। नतीजा यह होता है कि दो-चार रोज़ में अच्छी हो सकने वाली बीमारी का असर उन पर महीनों तक रहता है और जब वे किसी प्रकार छोट-पोट कर चढ़े भी हो जाते हैं, तो बहुत समय तक

कमज़ोर बने रहते हैं। पर इस प्रकार महीनों तक बैठे रहने से इन गरीबों का पेट नहीं भर सकता, इसलिए जैसे ही रोग का वेग घटने लगता है, वे काम पर हाज़िर हो जाते हैं। इस प्रकार बीमारी के प्रत्येक आक्रमण के फलस्वरूप उनकी जीवनी-शक्ति का निरन्तर क्षय होता रहता है और वे प्रायः तीस-चालीस वर्ष की अवस्था के भीतर ही चल बसते हैं।

चरित्र की हानि

बड़े नगरों के जिन मकानों में मजदूरों को रहना पड़ता है, वे प्रायः एक कमरे के होते हैं और एक दरवाज़ा दूसरे से एक-दो गज़ के अन्तर पर ही होता है। इससे वहाँ किसी प्रकार का परदा अथवा दुराव रख सकना असम्भव होता है और भले-बुरे सभी प्रकार के चरित्र वाले पुरुषों के साथ मिल कर रहना पड़ता है। इसके फल से इन स्थानों में चरित्र सम्बन्धी अष्टता की बहुत सी शिकायतें सुनने में आया करती हैं। इसके अतिरिक्त जब एक ही कमरे में कई परिवारों को रहना पड़ता है और बड़ी उन्न के लड़के-लड़कियाँ भी वही पर उठते-बैठते हैं तो वहाँ पर लज्जा की क्या रक्षा होती होगी, इसका अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। इसका फल यह होता है कि लड़के-लड़कियाँ बहुत थोड़ी अवस्था में ही स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की सारी बातें जान लेते हैं और वे प्रायः अनेक प्रकार के दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं। जो लोग इस देश के निवासियों के स्वभाव से परिचित हैं, उनको यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि यहाँ पर नीची से नीची श्रेणी का व्यक्ति भी अपने दाम्पत्य जीवन का कुछ महत्व समझता है और जहाँ तक बन सकता है, उसे लज्जा के आवरण से ढँक कर रखना चाहता है। पर खेद है कि मजदूर-वस्तियों में परिस्थिति से लाचार होकर उन्हीं लोगों को सब प्रकार की शरम छोड़ कर पशुओं के समान आचरण करना पड़ता है।

चरित्र-सम्बन्धी हानि का दूसरा कारण यह होता है कि उपर्युक्त निवास-स्थान के अभाव और आमदनी की कमी के कारण अधिकांश मजदूर इन स्थानों में अकेले ही जाते हैं और कई-कई वर्ष तक अपने स्त्री-बच्चों से अलग रह कर वहाँ नौकरी करते हैं। हमारे इस कथन

का प्रमाण महुंमशुमारी की रिपोर्ट से भलीभाँति लग सकता है। उससे विदित होता है कि भारत के बड़े बड़े नगरों में, जहाँ कल-कारखानों का काम विशेष रूप से होता है, स्त्रियों की संख्या पुरुषों से आधी भी नहीं होती। सन् १९२१ में कलकत्ते में स्त्रियों की संख्या एक हजार पुरुषों के पीछे केवल ४७० थी। यही दशा बम्बई, कराची, कानपुर आदि की है। इन स्त्रियों में भी लड़कियों की संख्या अधिक होती है और यदि केवल वयस्क पुरुषों और स्त्रियों की गणना की जाय तो कलकत्ते में ८ पुरुषों के पीछे तीन स्त्री और दूसरे नगरों में ११ पुरुषों के पीछे ४ स्त्री का अनुपात पड़ता है। इसका परिणाम क्या होता है, वह महुंमशुमारी की रिपोर्ट के लेखक श्री० टामसन के शब्दों में सुनिष्ट —

“स्त्रियों से पुरुषों की संख्या बहुत अधिक होने का फल यह होता है कि इन स्थानों में अनुचित सम्बन्ध की घटनाएँ बहुत होती रहती हैं, और इसके कारण पुरुष अपनी स्त्रियों को साथ में लाने में और भी हिचकते हैं। उद्योग-धन्धों के बड़े केन्द्रों में पाई जाने वाली यह महान त्रुटि ऐसी है, जिसका सम्बन्ध केवल मज़दूरों की भलाई-बुराई से ही नहीं है, वरन् कारखानों के मालिकों का हित भी जिससे बहुत-कुछ सम्बन्ध रखता है। जब हम यह जानते हैं कि ये मज़दूर अधिकांश में विवाहित होते हैं, और उनकी स्त्रियाँ उनसे बहुत दूर रहती हैं, तो यह स्पष्ट है कि शहरों में उनको अप्राकृतिक जीवन बिताना पड़ता है। वहाँ उनको गृह सुख का सर्वथा अभाव होता है और चरित्र-हीनता के दोष में फँसने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है। इसलिए उनकी एकमात्र आकांक्षा यही रहती है कि किसी प्रकार आवश्यक रूपया कमा कर घर चले जायँ। ऐसी अवस्था में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनके मालिक काम के सम्बन्ध में उनकी लापरवाही की शिकायत करें और उनको सदैव अस्थिर पाएँ।”

एक दूसरे भारतीय लेखक, जिन्होंने देश के प्रायः सभी उद्योग-धन्धों के प्रधान केन्द्रों में जाकर इस समस्या की जाँच की है, लिखते हैं —

“हमारे अधिकांश कल कारखानों के नगरों में चरित्र-हीनता तथा अन्य दुर्गुणों का दौर-दौरा है। अभागों मज़दूरों को, जिन्हें अत्यधिक काम करने पर भी गुज़र

कर सकने के लायक वेतन नहीं मिलता और जिनका कुटुम्ब सैकड़ों मील की दूरी पर रहता है, शराब की दूकान ही एक ऐसा स्थान दिखलाई देता है जहाँ नाकर वे शारीरिक और मानसिक वेदना को भूल सकते हैं और थोड़ी देर के लिए अपनी तबीयत को खुश कर सकते हैं। बाज़ार और तैयार और वेश्याएँ ही उनके मनोविनोद का एकमात्र साधन होती हैं। घटिया दर्जों की देशी शराब से बहवास होकर वे गुण्डेपन और बदमाशी के काम करने लगते हैं। × × × कलकत्ते की जूट मिलों के डॉक्टरों के रजिस्टर की जाँच करने से विदित होता है कि जो मज़दूर उनके पास इलाज कराने आते हैं वे प्रायः आतशक या अन्य गुण्डेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में ग्रस्त होते हैं। यह स्पष्ट है कि इसका कारण इन स्थानों में उनका अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करना ही होता है। अन्य प्रान्तों की भी यही अवस्था है और वहाँ के मज़दूरों को भी ऐसी ही दुर्दशा में रहना पड़ता है।”

इन उद्धरणों से यह समझ सकना कठिन नहीं है कि आधुनिक उद्योग-धन्धों की लहर ने जहाँ इस देश-वासियों के कौटुम्बिक जीवन में उथल-पुथल मचा दी है वहाँ उनके चरित्र पर भी बड़ा गहरा आघात किया है। जो सीधे सादे ग्राम-निवासी छल-छिद्र का नाम नहीं जानते थे और आडम्बर-रहित प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना जिनका स्वभाव था, उनको इन जनाकीर्ण नगरों की दूषित परिस्थिति दुराचारी, शराबी और हुबलदबाज़ बना देती है। इसमें सन्देह नहीं कि सब रित्रता हमारे धर्म का एक प्रधान अङ्ग है और अब भी इस देश के निवासियों की दृष्टि में उसका महत्व अन्य देश वालों की अपेक्षा अधिक है, पर प्राकृतिक नियम अटल होते हैं और उनके विरुद्ध चलने पर मनुष्य का पतन अवश्यम्भावी है। जब हम देखते हैं कि सब प्रकार से समरूप, शिक्षित और साधन-सम्पन्न व्यक्ति भी, जिनके पास मनोविनोद की अनेक सामग्रियाँ रहती हैं, अपने मन को सयम से नहीं रख सकते तो फिर सर्वथा अशिक्षित तथा सस्कृति-विहीन लोगों से यह आशा किस प्रकार की जा सकती है कि वे वर्षों तक अपनी पत्नी से अलग रह कर चरित्र की रक्षा कर सकेंगे। इस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए जब हम शहरों में वेश्याओं की बढ़ती हुई संख्या के प्रश्न पर विचार



करते हैं तो हमारे हृदय में एक प्रकार की निराशा का भाव उत्पन्न होता है और सुधारकों की चेष्टा तथा सरकारी क्रायदे-क्रानून अधिकांश में निरर्थक जान पड़ते हैं। क्योंकि जब तक वहाँ स्त्री और पुरुषों की संख्या में घोर वैषम्य बना रहेगा और अधिकांश युवावस्था प्राप्त पुरुषों को बाध्य होकर वर्षों तक विपत्तीक जीवन बिताना पड़ेगा तब तक दुराचार और व्यभिचार का प्रसार भी बढ़ता ही रहेगा। हमारे सुधारकों को शायद ही इस बात का पता होगा कि जिस बात को वे केवल मनुष्यों के स्वभाव का दोष समझ कर कानून द्वारा रोकने की चेष्टा करते हैं, उसका एक बड़ा कारण शहरों में मकानों का अभाव और उनका अत्यधिक किराया होता है। यदि इन बातों का सुधार किया जा सके तो वेश्याओं की संख्या अपने आप बहुत कुछ कम हो सकती है।

मकानों का किराया

यहाँ पर शहरों में मकानों के किराए के सम्बन्ध में भी दो-एक बातें लिखनी आवश्यक हैं। मकानों के मालिक जब देखते हैं कि लोग उनके मकानों में रहने को लाचार हैं, तो वे बिना इस बात ख्याल किए कि उनमें रहने से लोगों को आराम मिलेगा या तकलीफ, इस ढङ्ग से मकान बनवाते हैं जिससे कम से कम खर्च में उनको अधिक से अधिक लाभ हो सके। इन मकानों में हवा और रोशनी के प्रवेश कर सकने का बहुत ही कम ध्यान रखा जाता है और लोगों के उठने-बैठने तथा बच्चों के खेलने के लिए खाली जगह भी बिल्कुल नहीं छोड़ी जाती। जहाँ इजलैण्ड के मज़दूरों के रहने के प्रत्येक घर में तीन शयन-गृहों, रसोई-घर, स्नान-गृह, और भण्डार आदि की व्यवस्था कानून द्वारा अनिवार्य कर दी गई है, हमारे यहाँ मज़दूरों को नहाने-धोने के लिए पूरा पानी भी नहीं मिलता और पाखाने के सम्बन्ध में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। मज़दूर-बस्तियों में जिन लोगों ने स्त्रियों और पुरुषों को घड़े लेकर पानी के नल पर घण्टों प्रतीक्षा करते देखा है और वहाँ प्रायः होने वाले झगड़ों का जिनको कुछ पता है वे भली-भाँति समझ सकते हैं कि इन गरीब लोगों को पानी तक के लिए किस प्रकार तरसना पड़ता है। यही दशा पाखानों की है। अनेक मज़दूर-बस्तियों में चालीस-चालीस और

पचास-पचास परिवारों के पीछे एक सार्वजनिक पाखाना होता है, जिसके सामने सुबह के वक्त पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की एक बड़ी भीड़ खड़ी रहती है और सभी प्रायः पहले जाने की चेष्टा किया करते हैं। ऐसी अवस्था में सङ्कोच, लज्जा अथवा भद्रता के नियमों का कहाँ तक पालन हो सकता है, यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। उदाहरणार्थ नागपुर के १४,४५५ घरों में पाखाना नहीं है। इनमें रहने वालों के लिए म्युनिसिपैलिटी की तरफ से ५६ पाखाने बनवाए गए हैं, जिनमें ११०० बैठकें हैं। तो भी लोगों की संख्या को देखते हुए यह प्रबन्ध यथेष्ट नहीं है और नतीजा यह होता है कि लड़के-लड़कियाँ प्रायः घरों के आस पास गली कूचों में ही पाखाना जाया करते हैं और मौका लगने पर बड़ी उम्र के व्यक्ति भी वही बैठ जाते हैं। इससे वहाँ कितनी गन्दगी रहती होगी तथा लोगों के स्वास्थ्य पर इसका कैसा प्रभाव पड़ता होगा, यह स्पष्ट है।

इतने पर भी इन मकानों का किराया इतना कस कर लिया जाता है कि थोड़े वेतन पाने वाले मज़दूरों के लिए उसका दे सकना बड़ा कष्टकर होता है। उदाहरण के लिए बम्बई में एक मामूली मज़दूर को कपड़े की मिलों में २० या २५ रु० मासिक वेतन दिया जाता है। इसमें से उसे एक अन्धकारपूर्ण और अशुद्ध वायु वाले कमरे के लिए, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई मुरिकल से १०-१० फीट होती है, ४ रु० से ७।१ रु० प्रति मास तक किराया देना पड़ता है। यह कमरा भी उसे मकान-मालिक की बहुत कुछ खुशामद करने अथवा किसी परिचित व्यक्ति की सिफारिश करने पर मिलता है। यदि उसे ऐसा कोई कमरा नहीं मिल सकता तो उसे सरकारी चालों में रहने को जाना पड़ता है, जिनके कमरे ग्राह्वेट चालों से कुछ अच्छे अवश्य होते हैं, पर उनका किराया १०।१ रु० से १३।१ रु० तक होता है। नतीजा यह होता है कि कितने ही मज़दूर जब यह देखते हैं कि उनकी आमदनी का एक तिहाई अथवा आधा भाग किराए में ही चला जायगा और वे अपने घर वालों के सहायतार्थ कुछ न भेज सकेंगे तो वे अपने किसी सम्बन्धी या मित्र के घर १० या १२ रु० प्रति मास में खाने का बन्दोबस्त कर लेते हैं और अपनी दो-चार ज़रूरत की चीजों को उसी के कमरे के एक कोने में रख देते हैं।

रात्रि के समय वे बरामदे में या खुली हुई जगह में सो रहते हैं। बम्बई में सयुक्त-प्रान्त और पञ्जाब के कम से कम ७०-८० हजार व्यक्ति इसी प्रकार गुज़ारा करते हैं।

सुधार के उपाय

भारतीय श्रमजीवियों की अवस्था जैसी निर्बल और असङ्गठित है तथा भाग्यवाद ने उनको जैसा निष्क्रिय और अनुचित रूप से सन्तोषी बना रक्खा है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे स्वयम् इस विषय में सुधार के लिए कोई चेष्टा करेंगे। यह सच है कि वे वर्तमान अवस्था में कष्ट अवश्य अनुभव करते हैं और अच्छे मकानों के लिए कुछ ज़्यादा खर्च करने को भी राज़ी हो जाते हैं, पर उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वे इस समस्या के वास्तविक महत्व को समझ सकेंगे और वर्तमान अवस्था में परिवर्तन करने के लिए जी-जान से कोशिश करेंगे। फिर यदि वे किसी प्रकार इसके लिए तैयार भी हो जायें तो उनके पास इतने साधन नहीं कि वे बिना किसी की सहायता के स्वयम् इस समस्या को हल कर सकें। यह कार्य तो सरकार, म्युनिसिपैलिटियों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का ही है कि वे इन गन्दे तथा अस्वास्थ्यकर स्थानों का, जिन्हें 'ब्लेग-स्पॉट' या बीमारियों का उद्गम-स्थान कहा जाता है, सुधार करे और उन्हें मनुष्यों के बसने योग्य बनावे। इस सम्बन्ध में रॉयल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में अनेक उपयोगी प्रस्ताव किए हैं, जिनमें से मुख्य मुख्य बातें हम यहाँ देते हैं।

म्युनिसिपैलिटियों का कर्तव्य

म्युनिसिपैलिटियों का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वे एक योग्य हेल्थ-ऑफ़ीसर नियुक्त करें, जो नगर के प्रत्येक भाग की सफ़ाई पर भली-भाँति ध्यान दे। स्वास्थ्य-रक्षा, गृह-निर्माण और सफ़ाई के सम्बन्ध में जितने नियम और उपनियम बनाए गए हों उनको पूरी तरह काम में लाया जाय और जहाँ तक सम्भव हो उनमें और सशोधन किए जाएँ। सबसे अधिक ध्यान नए मकानों के बनाने तथा पुराने मकानों में परिवर्तन करने की अर्ज़ियों पर देना आवश्यक है। उनकी मंजूरी देते समय इस बात पर पूरी निगाह रखी जाय कि इसके फल से तज़्जी पैदा न हो। इस

बात का ख़याल केवल रहने के घरों के सम्बन्ध में ही नहीं रखना चाहिए, वरन् फ़ैक्टरियों, कारख़ानों और अन्य इमारतों के सम्बन्ध में भी यह नियम लागू होना चाहिए। जिन शहरों में अभी उद्योग-धन्धों की वृद्धि हो रही है और नगर के बाहरी भाग में नए कारख़ाने और मुहल्ले तैयार हो रहे हैं, उनको अभी से ऐसे नक्शे के मुताबिक़ बनवाया जाय जिससे भविष्य में तज़्जी और गन्दगी की शिकायत पैदा न हो सके। यह सच है कि जब तक सर्वसाधारण में इस सम्बन्ध में जागृति न फैले तब तक इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकना कठिन है, पर यदि इन संस्थाओं में दो-चार सार्वजनिक कार्य-कर्ता भी ऐसे ढ़ हो कि वे इन बुराइयों को दूर करने का निश्चय कर लें तो जनता को भी इस विषय का महत्व समझाया जा सकता है।

कारख़ानों के मालिक

यह सच है कि नगर की गृह-व्यवस्था की नीति निर्धारित करना सरकार और म्युनिसिपैलिटियों के ही हाथ में है, तो भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि शहरों में अतिरिक्त जन संख्या का कारण उद्योग-धन्धों की वृद्धि ही है। ऐसी दशा में कारख़ाने वालों का कर्तव्य है कि वे अपने कर्मचारियों के रहने की व्यवस्था में यथासम्भव सहयोग करें। यद्यपि अब भी अनेक बड़े कारख़ाने वालों ने अपने मज़दूरों के लिए क्वार्टर्स बनाए हैं, जिनमें से कितने ही काफ़ी अच्छे हैं, पर कोई कारख़ाना इतने मकान नहीं बनवा सका है जिनमें उसके तमाम कर्मचारी रह सकें। इनमें ज़्यादा से ज़्यादा उनके ४० फ़ी सैकड़ा कर्मचारियों के लिए जगह है। मालिकों को यह समझ लेना चाहिए कि मकानों का ठीक प्रबन्ध होने में उनका भी बहुत कुछ हित है। इससे उनके मज़दूर सन्तुष्ट रहेंगे और लगातार अधिक समय तक नौकरी कर सकेंगे, जिससे उनकी योग्यता बढ़ेगी। इससे कारख़ाने को जो आर्थिक लाभ होगा उससे मकानों में खर्च होने वाली रकम का एक बड़ा हिस्सा वसूल हो जायगा।

इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट

बम्बई, कलकत्ता, रज़ून, कानपुर आदि अनेक बड़े शहरों में इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टों ने बहुत तज़्जी मुहल्लों को



तोड़-फोड़ कर और मकान बनाने के लिए नई ज़मीन प्रस्तुत करके इस समस्या को कुछ अरों में हल किया है। पर ये एक बड़ी गलती यह करते हैं कि मकानों को तोड़ने के साथ उनमें रहने वाले लोगों के लिए नए घरों की कुछ व्यवस्था नहीं करते। इसके फल से कुछ वर्षों के लिए मकानों की और भी कमी हो जाती है और लोगों को पहले की अपेक्षा भी अधिक तज़्जी में रहना पड़ता है। फिर कितने ही इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट मजदूरों के मुहल्लों का सुधार करने के बजाय उच्च और मध्यम श्रेणी के मुहल्लों को अधिक अच्छा बनाने की तरफ विशेष ध्यान देते हैं। बम्बई के इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ने मजदूरों के लिए कुछ नए ढ़ङ्ग की स्वास्थ्यकर चालें बनाई हैं, पर अन्य ट्रस्टों ने इस सम्बन्ध में अपने कर्तव्य का बहुत कम पालन किया है। यदि ये ट्रस्ट चेष्टा करें तो गरीब लोगों को बहुत कम किराए पर अथवा थोड़ी-थोड़ी रकम क्रिशत के तौर पर देकर अच्छे मकान मिल सकते हैं।

सहयोग समितियाँ

मकानों के बनवाने वाली सहयोग समितियाँ स्थापित करना भी एक ऐसा ढ़ङ्ग है, जिससे मजदूरों के लिए बहुत से नए मकान तैयार हो सकते हैं और मजदूर हमेशा के लिए इस विषय में निश्चिन्त हो सकते हैं। अहमदाबाद की कैलिको मिल ने इस सम्बन्ध में चेष्टा करके अपने कर्मचारियों के लिए रहने की व्यवस्था की है। वह इसके लिए मजदूरों को कुछ रकम पेशगी देती है और बाकी रुपया सहयोग समिति से लेकर मकान बनाया जाता है। फिर मजदूर के वेतन में से धीरे-धीरे कुछ रकम काट कर सहयोग समिति का रुपया चुका दिया जाता है और वह खुद अपने मकान का मालिक बन जाता है। इससे मकानों की कमी दूर होती है, मजदूरों को अपनी पसन्द के घर मिल जाते हैं और साथ ही उनको किरायतशायरी की आड़त पड़ती है।

सरकार का कर्तव्य

पर इस सम्बन्ध में सब से अधिक भार सरकार के ऊपर है। क्योंकि उसकी सहायता और प्रोत्साहन के बिना इनमें से कोई काम सफल नहीं हो सकता। इसके सिवा वह क़ानून बना कर भी गरीब लोगों के मकान

सम्बन्धी कष्टों में बहुत कुछ कमी करा सकती है। उदाहरण के लिए जब महायुद्ध के समय मकान-मालिक दुगुना-चौगुना किराया बढ़ाने लग गए थे और इस कारण गरीबों का निर्वाह हो सकना असम्भव हो चला था, तो सरकार ने एक क़ानून द्वारा किराए की एक हद बाँध दी थी, जिससे अधिक उसका बढ़ा सकना असम्भव था। बम्बई में वह क़ानून अभी तक प्रचलित था और उससे मजदूरों को बहुत सहायता मिलती थी। इसके सिवाय सरकार स्वयम् मकान बनवा कर शहरों में रहने वाले गरीब मजदूरों के रहने की व्यवस्था कर सकती है। क्योंकि जैसा लीग ऑफ़ नेशनस की रिपोर्ट से विदित होता है, किसी भी देश में सार्वजनिक रूप से मकान तैयार कराना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं है और इसलिए धनवान लोगों अथवा निजी स्थाओं से यह आशा करना कि वे इस कार्य को निस्सङ्कोच भाव से अपने हाथ में ले सकेंगी सम्भव नहीं है। पर सरकार जैसे जनता के उपयोग के लिए रेल, तार, सड़क, नहरें, पुल आदि बनवाती है और इस बात का ध्यान नहीं रखता जाता कि इनसे लाभ होगा या हानि, उसी प्रकार सरकार ही सर्वसाधारण के लिए ऐसे मकानों का निर्माण करा सकती है, जिनमें आर्थिक हानि-लाभ का ख़याल छोड़ कर लोगों के सुख और स्वास्थ्य रक्षा पर ही लक्ष्य रखा जाय। यद्यपि कुछ लोगों के मतानुसार सरकार के इस प्रकार के कामों में हाथ डालने से लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अपहरण होने का भय है और कुछ लोग इससे लोगों के आलसी अथवा निरुद्योगी हो जाने का भय करते हैं, पर ये आशङ्काएँ निराधार हैं। सरकार अब भी अनेक सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है और उसमें हानि की अपेक्षा लाभ ही अधिक होता जान पड़ता है। मकानों का प्रश्न समाज के कल्याण की दृष्टि से बड़े महत्व का है और इस पर सब लोगों के स्वास्थ्य का आधार है, इसलिए यदि सरकार इसको अपने नियन्त्रण में रखे तो इसे अलुचित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि अभी वह दिन दूर है, जब यह प्रस्ताव पूर्णतया कार्यरूप में परिणत हो सके, तो भी इङ्ग्लैण्ड और अन्य अनेक उन्नतिशील देशों की सरकारें हजारों की तादाद में मकान जनता के उपयोग के लिए बनवाती रहती हैं।



अन्त में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यद्यपि श्रमजीवियों की यह समस्या ऊपरी दृष्टि से एक साधारण विषय जान पड़ता है, पर वास्तव में यह इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इस पर देश और समाज का हित अनेक अर्थों में निर्भर है। मजदूर भी हमारे समाज के एक अङ्ग हैं और यदि वे गन्दगी तथा अस्वास्थ्यकर परिस्थिति में रहेंगे तो उसका कुछ न कुछ प्रभाव हमारे ऊपर भी अवश्य पड़ेगा। क्या हम नहीं देखते कि जो

महामारी अथवा छूत की बीमारी पहले शहर के गन्दे गल्लों में फैलती है, वह धीरे-धीरे वैभवशाली लोगों के महलों और कोठियों तक भी जा पहुँचती है। मनुष्यता और सहृदयता के नाते तो गरीब मजदूर हमारी सहाय-भूति के पात्र हैं ही, पर साथ ही उनकी उन्नति के बिना देश के उद्योग-धन्यों की भी उन्नति नहीं हो सकती, और इसके बिना कोई देश संसार में उच्च पद प्राप्त नहीं कर सकता।

तिरस्कृत

[श्री० रमाशङ्कर मिश्र, 'श्रीपति']

उलझा-सा मेरा जीवन,
भङ्गना के भोके खाता।
उझने उत्पीड़न भर कर,
उलझन है कौन बढ़ाता ?

आशा का उपवन मेरा,
क्यों सहसा झुलसा जाता ?
मेरी मञ्जुल अभिलाषा,
भिट्टी में कौन मिलाता ?

पुलकित अवली अलियों की,
परिहास-भरी इतराती।
सुरभित सुमनावलियाँ क्यों,
कण्टक-सी चुभ-चुभ जाती ?

मधु-मिश्रित स्वर कोरिल का,
पीड़ा-सी है उपजाता।
मलयानिल दावानल सा,
चिनगारी है भड़काता।

अभ्यन्तर उत्कण्ठित हो,
अपना अस्तित्व मिटाता।
उच्छ्वासो में साधो का,
चिर सञ्चित कोष लुटाता।

फूटे फोलो से तप कर,
ब्रीड़ा है बहती जौली।
निस्पन्दस्वर में विसृति
अपनी वेदना दिखाती।

निधियों का पाला जीवन,
आँसू-सा पिखरा जाता।
अभिशाप-भरा, कातर हो,
तजता निर्मम जग-नाता।

उन्मन-सा गोबूली में,
विक्षिप्त हृदय बलखाता।
लज्जित हो सूनेपन को,
अपना अपमान दिखाता।

यौवन जिसमें सुषमा थी,
करुणा जिसमें थी क्षमता।
वह हास्य ललक उठता जो,
जीवन जिसमें थी ममता।

उन्मादक रसधारा थी,
वाणी से बहती रहती।
शिशु-सा सारल्य जहाँ से,
सुषमा भी सुषमा लहती।

लालन जिनका पलको-सा,
पालन जीवन-सृष्टियों-सा।
स्वागत होता था जिनका,
अभिसारो की घड़ियों-सा।

उस प्रणय-सलिल-सागर में,
यह भङ्गना कहाँ समाया ?
उस सौन्दर्य सुधा-धारा में,
यह गरल कहाँ से आया ?

किन घृणा-भरी कोरो ने,
किसको विदीर्ण कर डाला ?
आरक्त अधर ने किसके,
यह घोली कैसी हाला ?

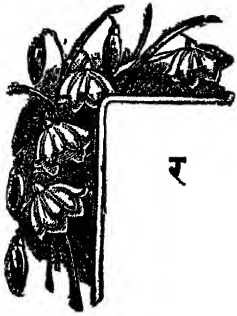
प्रेमासृत जिसे पिला कर, प्रमुदित प्राणो-सा पाला।
सहसा ही मन-मन्दिर से, ठुकरा बाहर कर डाला ॥





ईदगाह

[श्री० प्रेमचन्द]



र

मज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना, मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लाहिमा है।

आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानों ससार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर से सुई तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते फड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रक्खा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं। लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बड़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ा ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पढ़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं

चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन। सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी चला से, ये तो सेवैयों खायेंगे। वह क्या जानें अब्बा-जान क्यों बदहवास चौधरी काथमग्रती के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाय। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकाल कर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। मइसूद गिनता है, एक, दो, दस, बारह। उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लाएँगे - खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेद और जाने क्या-क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका पाप गत वर्ष हैज़े की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो ससार से बिदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपए कमाने गए हैं। बहुत सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अब्बीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी

अच्छी अच्छी चीजें लाने गई हैं। इसलिए हमिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हमिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अम्मीजान थैलियों और अम्मीजान नियामते लेकर आएँगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती ! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोबी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है। लेकिन हमिद ! उसे किसी के मरने जीने से क्या मतलब ? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल बल लेकर आए, हमिद की आनन्द भरी चितवन उसका विश्वास कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हमिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है। उसे कैसे अकेले मेले जाने दें। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाय तो क्या हो। नहीं, अमीना उसे थो न जाने देगी। नन्हीं सी जान ! तीन कोस चलेगा कैसे ! पैर में छाले पड़ जायेंगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी। लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा ? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फ़हीमन के कपड़े सिर्फ़ थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए। लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती। हमिद के लिए कुछ नहीं है तो दो पैसे का रोज़ा बूध तो चाहिए ही। अब कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हमिद की जेब में, पाँच अमीना

के बटवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार, अल्लाह ही बेबा पार लगावे। धोवन और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारन सभी तो आएँगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए। और थोड़ा किसी की ओखो नहीं लगता। किस किस से मुँह चुराएगी। और मुँह क्यों चुराए ? साल भर का त्यौहार है। ज़िन्दगी ख़ैरियत से रहे। उनकी तकवीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायेंगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हमिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़ कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इन्तज़ार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे धीरे चल रहे हैं। हमिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है। शहर का दामन आ गया। सबक के दोनो ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और कीचियाँ लगी हुई हैं। कभी कभी कोई लड़का कड़वी उठा कर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फ़र्लाज़ पर हैं। ज़ूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगी। यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लबघर है। इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे ! सब लड़के नहीं हैं जी ! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे। और क्या करेंगे इतना पढ़ कर। हमिद के मदरसे में दो-तीन बड़े बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन फौदी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे, और क्या। क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं। पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों ढाढ़ी वाले। और मेंमें भी खेलती हैं, सच। हमारी अम्माँ को तो वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें। घुमाते ही लुढ़क जायें।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।



मोहमिन बोला - चलो, मनों आटा पीस डालती है। जरा सा बैठ पकड़ लेगी तो हाथ काँपने लगेंगे। सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी भैस को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा आ जाय।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकती।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नहीं सकती। लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतना तेज दौड़ीं कि मैं उन्हें न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाइयों की दूकानें शुरू हुई। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयों कौन खाता है। देखो न, एक-एक दूकान पर मनो होंगी। सुना है, रात को जिज्ञात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है। और सचमुच के रुपए देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपए।

हामिद को यक्रीन न आया—ऐसे रुपए जिज्ञात को कहाँ से मिल जायेंगे ?

मोहसिन ने कहा—जिज्ञात को रुपयों की कमी। जिस खजाने में चाहें चले जायें। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहाँ बैठे हैं, पाँच मिनट में कहो कलकत्ता पहुँच जायें।

हामिद ने फिर पूछा—जिज्ञात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे ?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। जमीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे। मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायें।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे। कोई मुझे वह मन्तर बता दे तो एक जिज्ञात को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिज्ञात हैं। कोई चीज चोरी जाय, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमेराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न

मिला। तब रुक मार कर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरन्त बता दिया मवेशी खाने में है। और वही मिला। जिज्ञात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।

अब सबकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबल कवायद करते हैं। रैटन। फाम फो। रात को बेचारे घूम-घूम कर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जायें।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं। जभी तुम बहुत जानते हो, अजी हजरत यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपए आते हैं। मेरे माँमू एक थाने में कानिसटिबल हैं। बीस रुपए महीना पाते हैं। लेकिन पचास रुपए घर भेजते हैं। अल्ला कसम। मैंने एक बार पूछा था कि माँमू, आप इतने रुपए कहाँ से लाते हैं। हँस कर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाय।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं ?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखा कर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा। पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं। लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े दिन हुए माँमू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाए तो बरतन भाँडे आए।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?

कहाँ पचास कहाँ एक सौ। पचास एक थैली भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आवें।

अब बस्ती घनी होने लगी थी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं। एक से एक भड़कीले



वज्र पहने हुए। कोई इनके-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी वज्र में बसे, सभी के दिलों में उमड़। ग्रामीणों का यह छोटा सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीज़ें अनोखी थीं। जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा इंदगाह नज़र आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों का साया है। नीचे पक्का फ़र्श है, जिस पर जाज़िम बिछा हुआ है। और रोज़ेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाज़िम भी नहीं है। नए आने वाले आकर पीछे की क़तार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वज़ू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुन्दर सञ्चालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब के सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जायँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थी, मानों आतृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लकी में पिरोए हुए है।

२

नमाज़ ख़त्म हो गई है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौनों की दूकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए। यह चख़ी है। लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट सरियों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पक्षीस चक्करों का मज़ा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन

घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई ज़रा सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्चियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दूकानों की क़तार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, और राजा और वकील, और भिश्ती और धोबिन और साधू। वाह! कितने सुन्दर खिलौने हैं। अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, झाकी वर्दी और लाल पगड़ी वाला, कन्धे पर बन्दूक रखे हुए, मालूम होता है अभी क़वायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है, मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उडेलना ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उनके मुख पर, काबू चुगा, नीचे सफ़ेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी की सुनहरी ज़ज़ीर, एक हाथ में क़ानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं। इतने मँहगे खिलौने वह कैसे ले ? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े तो चूर-चूर हो जाय। ज़रा पानी पड़ा तो सारा रज़़ धुल जाय। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के।

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जायगा, सॉफ़ सवेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा तो फौरन बन्दूक फ़ैर कर देगा।

नूरे—और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज़ कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जायँ। लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक़ है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौनों के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेडियाँ ली है, किसी ने गुलाब जामुन, किसी ने सोहन-हलवा। मझे से खा रहे हैं। हामिद उनकी बिरादरी से प्रथक् है। अभागों के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई औखों से सबकी ओर देखता है। मोहसिन कहता है—हामिद यह रेडडी ले जा, कितनी खुशबूदार है!

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेडडी निकाल कर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेडडी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजा कर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम ले जाव।

हामिद—रक्खे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं।

सम्मी—तीन ही पैसे तो है। तीन पैसे में क्या लोगे?

महमूद—हमसे गुलाब जामुन ले जाव हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद—हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएंगे तो हमें ललचा-ललचा कर खायगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीजों की हैं। कुछ गिल्ट और नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रक्खे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तब से रोटियाँ उतारती हैं तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे तो वह कितनी प्रसन्न होगी! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज़ हो जायगी। खिलौनों से क्या फायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। ज़रा देर

ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठा कर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायेंगे, या छोटे बच्चे जो मेले नहीं आए हैं, ज़िद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे। चिमटा कितने काम की चीज़ है। रोटियाँ तब से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आवे तो चटपट चूल्हे से आग निकाल कर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाज़ार आएँ, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज़ हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सबके सब शर्बत पी रहे हैं। देखो सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूँगा। खायें मिठाइयाँ, आप मुँह सडेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुराएँगे और मार खायेंगे। किताब में सूझी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी। अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़ कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—‘मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है’। हज़ारों दुआएँ देंगी। फिर पबोस की औरतों को दिखाएँगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेंगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और खायें मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सँहूँ। मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी न कभी आएँगे। अम्माँ भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा कितने खिलौने लोगे। एक-एक को टोकरीयों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेडियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब के सब खूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें। मेरी बला से, उसने दूकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?



दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देख कर कहा—वह तुम्हारे काम का नहीं है जी।

‘जिकाऊ है कि नहीं?’

‘जिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाए हैं?’

‘तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?’

‘छै पैसे लगेंगे।’

हामिद का दिल बैठ गया।

‘ठीक-ठीक बताओ।’

‘ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।’

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा—तीन पैसे लोंगे?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार की छुड़कियाँ न सुने।

लेकिन दूकानदार ने छुड़कियाँ नहीं दीं। बुला कर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रक्खा मानों बन्दूक है और शान से अकड़ता हुआ सड़ियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब के सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँस कर कहा यह चिमटा क्यों लाया पगले! इसे क्या करेगा?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटक कर कहा—जरा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जायँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं है। अभी कन्धे पर रक्खा, बन्दूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहुँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस

एक चमड़े की फ़िल्मी लंगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफान में, बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कच के बज गए, धूप तेज़ हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। वाप से ज़िद भी करे तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बाज़कों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा भिखा। लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक दो-दो साल बढ़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक थोर मिट्टी है, दूसरी थोर लोहा, जो इस वक्त अपने को फ़ौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है, अग़र कोई शेर आ जाय, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जायँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोड़ कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाय, चुगों में मुँह छिपा कर ज़मीन पर लेट जायँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रूस्तमे हिन्द लपक कर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने पड़ी-चोटी का ज़ोर लगा कर कहा—अच्छा पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डॉट बताएगा तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने क्रुमक पहुँचाई—अगर बचा पकड़ जायँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेगे। तब तो वकील साहब ही के पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पछा—हमें पकड़ने कौन आएगा?

नूरे ने अकड़ कर कहा—यह सिपाही बन्दूक वाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ा कर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रूस्तमे हिन्द को पकड़ेंगे! अच्छा लाओ अभी



जरा कुरती हो जाय । इसकी सूरत देख कर दूर से भागेंगे । पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा, लेकिन यह बात न हुई । हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेंडियों की तरह घर में घुस जायेंगे । आग में कूदना वह काम है जो यह रस्ते में हिन्दू ही कर सकता है ।

महमूद ने एक जोर लगाया—वकील साहब कुरसी मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावरचीखाने में जमीन पर पड़ा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया । कितने ठिकाने की बात कही है पढ़े ने । चिमटा बावरचीखाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है ।

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बावरचीखाने में नहीं रहेगा । वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा ।

बात कुछ बनी नहीं । झांसी गाली-गलौज थी । लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गई । ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए, मानों कोई धेलचा कँकौआ किसी डण्डे वाले कँकौए को काट गया हो । कानून मुँह से बाहर निकलने वाली चीज़ है । उसको पेट के अन्दर डाल दिया जावे, बेतुकी सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है । हामिद ने मैदान मार लिया । उसका चिमटा रस्ते में हिन्दू है । अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती ।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला । औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने वाले खर्च किए, पर कोई काम की चीज़ न ले सके । हामिद ने तीन पैसों में रज्ज जमा लिया । सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा ! दूट-फूट जायेंगे । हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों !

३

सन्धि की शर्तें तय होने लगीं । मोहसिन ने कहा—जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें । तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो ।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए ।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी । चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए । कितने खूबसूरत खिलौने हैं ।

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच । वह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा । मालूम होता है, अब बोले, अब बोले ।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सन्तोष नहीं होता । चिमटे का सिका खूब बैठ गया है । चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है ।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा ।

महमूद—दुआ की लिए फिरते हो । उलटे मार न पड़े । अम्माँ जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले ।

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देख कर किसी की माँ इतनी खुश न होगी जितनी दादी चिमटे को देख कर होगी । तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी । फिर अब तो चिमटा रस्ते में हिन्दू है और सभी खिलौनों का बादशाह ।

रास्ते में महमूद के भूख लगी । उसके बाप ने केले खाने को दिए । महमूद ने केवल हामिद को सामी बनाया । उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए । यह उस चिमटे का प्रसाद था ।

३

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई । मेले वाले आए । मोहसिन की छोटी बहिन ने दौड़ कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे । इस पर भाई-बहिन में मारपीट हुई । दोनों



खूब रोए। उनकी अम्माँ यह शोर सुन कर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उनकी प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील ज़मीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूँटियाँ गाड़ी गईं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रक्खा गया। पटरे पर कागज़ का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भोंति इस सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पट्टा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पङ्के रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पट्टा भी न हो! क़ानून की गर्मी दिमाग़ पर चढ़ जायगी कि नहीं। बाँस का पट्टा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं पङ्के की हवा से, या पङ्के की चोट से वकील साहब स्वर्ग-लोक से मर्त्यलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया। फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि पारसियों के प्रथा-नुसार घूर पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई। उसमें कुछ लाल रङ्ग के फटे-पुराने चीथड़े बिछाए गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटें। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ़ से 'छोने वाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अंधेरी होनी ही चाहिए। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फ़ानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्योंही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शक्य क्रिया असफल हुई तब उसकी दूसरी

टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम से कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफ़ा खुरच दिया गया है। इससे अब उसका जितना रूपान्तर चाहो कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाव सुनिए। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठा कर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देख कर वह चौंकी।

‘यह चिमटा कहाँ था?’

‘मैंने मोल लिया है।’

‘कैसे मैं?’

‘तीन पैसे दिए।’

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या यह चिमटा। सारे मेले में तुम्हें और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?

हामिद ने अपराधी भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तब से जल जाती थीं। इसलिए मैंने इसे ले लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देख कर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना ज़ब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैला कर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता !!

टर्की का पुनर्निर्माण

[श्री० शिवनारायण टण्डन]



स्तफ़ा कमालपाशा के शासन-काल में टर्की की चतुर्मुखी उन्नति हो रही है। बात यह है कि रूस की लाल क्रान्ति का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा है। उसके आर्थिक सङ्गठन, पुनर्निर्माण के कार्य-क्रम और पञ्चवर्षीय आयोजन ने संसार भर को अपनी ओर आकर्षित किया है। उसी से टर्की ने भी कुछ सबक सीखा है।

कोई सौ वर्षों से यूरोप वाले टर्की के शरीर पर जोंक की तरह चिपटे हुए थे। वहाँ के राज्याधिकारी सुल्तान मूर्ख और दबू होते थे। उनके वज़ीर और कार-कुन स्वार्थी और घूसखोर होते थे, अतएव विदेश वाले टर्की को मनमानी तौर से लुटते थे। टर्की में बड़े-बड़े यूरोपियन राष्ट्रों के एजेण्ट, ग्रीक और आरमेनियन थे, जो तुर्क-साम्राज्य के जन्मजात शत्रु थे।

कमालपाशा ने शासनारूढ़ होते ही विदेशियों के प्रभुत्व को नष्ट कर दिया। बाहर वाली विदेशी शक्तियाँ 'घबराई', 'चिल्लाई' और समझा कि टर्की का आर्थिक सङ्गठन नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा, पर बात बिल्कुल उल्टी थी। विदेशी राष्ट्र एक ओर यूरोप के आयात और दूसरी ओर टर्की के निर्यात पर कब्ज़ा जमाए हुए थे। किसानों के पास पैसे की कमी थी, अतएव विदेशी चीज़ें कच्चे माल के बदले मोल ली जाया करती थीं। अनाज और रुई देकर सुई से लेकर हैज़लीन तक खरीदा जाता था। एक ओर विलायती माल की सारी कीमत इङ्ग्लैण्ड, फ़्रान्स और जर्मनी पहुँच जाती और दूसरी ओर कमीशन एजेण्टी और बीच के मुनाफ़े की मोटी रकम ग्रीस और आरमीनिया चली जाती। बेचारे किसानों की मिट्टी खराब थी। दरिद्रता दिन पर दिन बढ़ रही थी। आरमेनियन और ग्रीक सौदागरों के

पास बड़ी-बड़ी हवेलियाँ और बेशक़ीमती मोटर-गाड़ियाँ थीं और टर्की की जनता बिल्कुल फटेहाल, टूटी भोपड़ियों में गर्दिश के दिन काट रही थी। सारांश यह कि विदेशी चीज़ों के व्यवहार और प्रचार के कारण जहाँ एक ओर देश में निर्धनता बढ़ती है, वहाँ दूसरी ओर भयावह बेकारी फैलती है। टर्की में इन दोनों ही समस्याओं ने विराट रूप धारण किया था।

टर्की की नई सरकार यूरोपियनों के व्यापार-लोभ से अच्छी तरह परिचित थी। वह जानती थी कि यह व्यापारी-मण्डल शीघ्र ही शासक-मण्डल का रूप धारण कर लेता है। व्यापार की उन्नति के लिए कोई भी कार्य करना इनके लिए दुस्साध्य नहीं है। जहाँ इनके क्रदम जम जाते हैं, वहाँ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा शीघ्र ही चल पड़ती है और बेचारा दुर्बल राष्ट्र उनके बीच में पड़ कर धीरे-धीरे पिसने और घुलने लगता है। अतएव कमाल-पाशा की सरकार ने अपनी स्थापना के प्रारम्भिक काल से ही यह नियम बना दिया कि कोई भी विदेशी व्यापारी टर्की की ५० फ़ी सदी पूँजी लगाए बग़ैर किसी प्रकार का व्यापार मिल, या कारख़ाना आदि नहीं खोल सकता, परन्तु यह ५० फ़ी सदी का आँकड़ा तो कम से कम है। वास्तव में टर्की-सरकार उन्हीं फ़र्मों को प्रश्रय देती है, जिन्होंने ६० से ७० प्रतिशत तक टर्की का मूलधन अपने व्यवसाय में लगा रक्खा है। इसके अतिरिक्त समस्त विदेशी व्यापारियों के लिए क़ानूनन टर्की भाषा का पढ़ना आवश्यक है। क्योंकि सारा काम-काज और लिखा-पढ़ी राष्ट्रीय भाषा में होना अनिवार्य रक्खा गया है।

निर्यात (Export) के उन पदार्थों को, जिनका संसार के बाज़ारों में महत्व है, टर्की की सरकार ने अपने ही अधीन रक्खा है। तम्बाकू और खनिज पदार्थों पर सरकार का पूर्ण अधिकार है। हाँ, विदेशी मैशीनरी को देश में लाने के लिए ३० फ़ी सदी रेल-भाड़े की



छूट रक्खी गई है, क्योंकि अभी तक टर्की में मैशीनों के बनाने की कोई बड़ी आयोजना पूरी नहीं हो पाई है।

टर्की के पुनर्निर्माण का पहला अध्याय तारीख २४ जुलाई सन् १९२१ की लासेन की सन्धि से प्रारम्भ होता है। लासेन में राजनीतिक सुलहनामे के साथ ही व्यापारिक सन्धि भी हुई थी और दरेदानियाह के स्टेटों के बाबत पैक्ट भी बना था, जिसके द्वारा टर्की को उसके आर्थिक सङ्गठन में पर्याप्त सहायता मिली है।

पर जब कमाल ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली, तब टर्की की आर्थिक स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी। बड़ी-बड़ी शक्तियों ने अपने-अपने कर्जों की अदायगी के लिए तकाजें करना शुरू किए। लेहनदारों में फ्रान्स का रूपया सब से ज्यादा था और उसका खर्च भी सब से कड़ा था। सुलतानी शासन-काल में फ्रान्स ने कोई सत्तर लाख स्वर्ण फ्रेड्स का कर्जा टर्की साम्राज्य, वहाँ की म्यूनिसिपैलिटियों और व्यापारियों को दे रक्खा था। व्याज की दर भी बहुत ज्यादा थी और जिन व्यवसायों में फ्रान्स का रूपया लगा हुआ था, उनकी नकेल फ्रान्सीसी व्यापारियों के हाथों में थी। दूसरा नम्बर इंग्लैण्ड का था और फिर बेल्जियम तथा नीदरलैण्ड की रकमें थीं। जर्मनी और ऑस्ट्रिया के कर्जों और कानूनी करार दिए जा चुके थे ज़रूर, पर वार्सलोज़ की सन्धि के अनुसार मित्र-राष्ट्र उन रकमों को स्वयं ही माँग रहे थे। आखिर पेरिस में एक सभा बैठी और बड़ी कहा-सुनी के बाद १३ जून सन् १९२८ को एक शर्तनामा ऐसा बन कर तैयार हुआ, जिसे सबने सर्व-सम्मति से स्वीकार किया। टर्की ने कर्जों की रकम को कई किस्तों में अदा करने का वादा किया।

देश की आर्थिक स्थिति की उन्नति के लिए अज़ोरा में अर्थशास्त्र विशेषज्ञों की एक अर्थ-समिति क़ायम की गई है, जिसका उद्देश्य देश के आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यों की देख-रेख, उन्नति और सुधार करना है। इस कौन्सिल का प्रधान मन्त्री डॉ॰ नूरुल्ला है, जिसने महायुद्ध के बाद टर्की को दिवालिया होने से बचाया था। वही 'बैङ्कर्स ट्रस्ट' का सभापति भी है। इस अर्थ-समिति से राज्य के मन्त्रिमण्डल से निकट सम्पर्क है। इसके अधिकारी बड़े हिसाबी हैं। इनकी तुलना पश्चात्तल देशों के अर्थ-शास्त्रियों से की जा सकती है।

पुनर्निर्माण के कार्यक्रम में, आर्थिक जीवन की प्रत्येक दिशा का ज्ञान रक्खा जाता है। जनता में वाणिज्य व्यवसाय और कला-कौशल का अच्छा प्रचार हो रहा है, सरकार की ओर से प्रतिष्ठित और ईमानदार 'फ़र्मों' को आर्थिक सहायता भी दी जाती है, जो या तो बिना व्याज के रहती है या उस पर एक या दो फ़ी सदी का स्वरूप सूद ले लिया जाता है।

टर्की के इतिहास में पहली बार राष्ट्रीय और तिज़ारती बैंकों की स्थापना हुई है। यद्यपि सुल्तान के शासन-काल में भी एक-दो बैंकें थीं, पर उनका लक्ष्य सार्वजनिक सहायता नहीं, प्रत्युत सुल्तान, अधिकारियों या बड़े-बड़े आदमियों को उधार देना मात्र था, जिससे देश के व्यापार या जनता के हित में कोई लाभ नहीं होता था।

टर्की की अच्छी बैंकों में बैंक ओटोमान, एग्रीकोल बैंक, इण्डस्ट्रियल और माइनिंग बैंक, और बैंक ऑफ़ नेशनल इकोनोमिक्स रिकॉन्स्ट्रक्शन के नाम लिए जा सकते हैं। बैंकों की आर्थिक अवस्था अच्छी है। साख भी काफ़ी है। ईमानदारी से काम होता है। नए नोटों का बनाना, बड़ी सफ़ाई और पाबन्दी के साथ, अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार होता है।

प्रारम्भ ही से कमालपाशा की सरकार ने इस बात का अनुभव किया है कि देश को अच्छे बन्दरगाह, रेलों और सब्कों की सज़त ज़रूरत है।

कमालपाशा के शासनारुढ़ होने के समय अज़ोरा, बाग़दाद, स्मर्ना रेलवे के सिवा कोई रेल-पथ न था। पूर्वीय अनातोलिया में रेलवे लाइन न होने से बड़ी असुविधा और क्षति होती थी। गत युद्ध के समय जब रूस से विग्रह चला था, तब टर्की को बड़ी कठिनाई पड़ी थी।

प्रजातन्त्र सरकार ने जर्मन और स्वीडेन की प्रसिद्ध फ़र्मों को ठीका देकर रेल-पथ की बहुत कुछ तरफ़्फ़ी कर ली है। अज़ोरा के सारे प्रदेश में रेलें बिछ गई हैं। राज्य भर में सभी बड़ी-बड़ी जगहों को मिलाती हुई रेलें फैली हुई हैं। रेलगाड़ियों में खाने-पीने और सोने का विशेष प्रबन्ध रहता है। गाड़ियाँ समय की खूब पाबन्दी करती हैं। कमालपाशा का प्रोग्राम है कि तमाम कान्के शिया, रूस, ब्लैक सी के किनारे तक रेलें बिछ जानी



चाहिए। अतएव पटंग बिछाने का काम बड़ी तेजी के साथ हो रहा है।

जल-मार्गों की भी खासी उन्नति हुई है। कैबीनेट ने एक करोड़ अङ्गरेज़ी पौण्ड अच्छे बन्दरगाहों के निर्माण के लिए मञ्जूर किए हैं। सड़कों और पुलों के बनाने की ओर भी काफ़ी ध्यान दिया गया है। मोटर-लॉरियों का चलन बढ़ रहा है।

म्यूनिशिपैलिटियों पाश्चात्य ढङ्ग की नई इमारतें बनवा रही हैं। अज़ोरा में जहाँ ४०,००० मनुष्य रहते थे, वहाँ अब डेढ़ लाख से ऊपर की आबादी है। सफ़ाई और पानी का भी बहुत बढ़िया बन्दोबस्त किया गया है। जल के लिए नई प्रणाली की कज़ों का इस्तेमाल होता है। अज़ोरा में पहले सदा पानी की कमी बनी रहती थी, अतएव कई करोड़ टर्किश पौण्ड लगा कर वाटर सप्लाई और आबपाशी के लिए एक बहुत बड़ी मीठे पानी की झील बनाई गई है।

निस्सन्देह पुनर्निर्माण के इस आयोजन ने टर्की के हज़ारों व्यक्तियों को कार्य और रोज़गार दिया है। बड़े-बड़े शहरों में बिजली के कारख़ानों की स्थापना हो चुकी है और कहीं-कहीं अब भी हो रही है।

लासेन के सन्धि-पत्र की स्याही मुश्किल से सूखने पाई थी कि कितने ही विदेशी व्यापारी और सट्टेबाज़ यूरोप तथा अमेरिका से आकर टर्की में डट गए और भिन्न-भिन्न कामों के ठेके मँगाने लगे और इतने कम दरों पर टेण्डर दिए, जो उनकी लागत से भी कम थे, कारण यह था कि वे घूस आदि देकर सरकारी अफ़सरों के ऑर्डर पास करा लेने के अभ्यस्त थे। वे शाहों और सुल्तानों का ज़माना देख चुके थे। कमालपाशा तथा अन्य राष्ट्रीय दल वालों को, जिनके लिए राज्य का एक पैसा भी बेईमानी से खाना हARAM था, वे अच्छी तरह नहीं पहचानते थे। सुल्तानियत के उठते ही बख़्शिश की रस्म भी टर्की से उठा दी गई थी। कमालिस्ट गवर्नमेण्ट बड़ी सफ़्ती और ईमानदारी से काम चला रही थी। ज़रा सा ग़बन या घूस साबित होते ही बड़े से बड़े अफ़सर को कड़ी सज़ा दी जाती। जल-सेना विभाग के मन्त्री मुहम्मद इक़्शान तथा दूसरे अफ़सरों को सन् १९२७-२८ में ग़बन के अपराध में कड़ी सज़ाएँ दी गईं, जिससे लोग चौकन्ने हो गए। टर्की के सरकारी

काम जिस किफ़ायत और ख़ूबी से चल रहे हैं, वैसे बहुत कम मुल्कों में चलते होंगे।

टर्की की आय के दो मुख्य साधन हैं। एक तो खेती और दूसरे खनिज पदार्थों की आय। सुल्तान के राजत्व-काल में न तो वैज्ञानिक तौर-तरीके ही बतलाए जाते थे और न अच्छी खाद, न अच्छे औज़ार वगैरह ही उपलब्ध थे। खनिज पदार्थों में अधिकांशतया थोड़ी बिना खुदे ज़मीन के नीचे दबे पड़े रहते थे।

वहाँ की खेती-बारी के तीन विभाग किए जा सकते हैं। पहला अन्न की उपज, जिससे जनता का पेट भरे, दूसरे तम्बाकू, रुई, अफीम, अज़ीर और फल, जिनके निर्यात से लाभ पहुँचे और तीसरे पशु-पालन, डेयरी फ़ारमिज़, भेड़ों की चराई वगैरह जिससे ऊन और खाल उपलब्ध हो सके। दुनिया में बढ़ती हुई सिगरेट की माँग के कारण टर्की की तम्बाकू की पैदावार ख़ूब बढ़ रही है और उसमें किसानों को मुनाफ़ा भी अच्छा होता है। टर्की की तम्बाकू सारे संसार में प्रसिद्ध है, अच्छी दर पर तम्बाकू खपाने का प्रबन्ध वहाँ की सरकार स्वयं करती है, जिससे किसान लुटने से बच जाते हैं। इसीलिए सरकार ने तम्बाकू के निर्यात को अपने हाथों में रक्खा है।

ज़ैतून और ज़ैतून का तेल भी टर्की से बाहर ख़ूब भेजा जाता है। स्मर्ना उसका केन्द्र है। जो लोग इस व्यापार में दिलचस्पी रखते हों उन्हें टर्की के काउन्सिल जनरल को लिख कर स्मर्ना के व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

पशुओं की वृद्धि, उनके नस्ल की तरक्की और उनके स्वास्थ्य पर बहुत ध्यान दिया जाता है। आस्ट्रेलिया, इङ्ग्लैण्ड, फ़्रान्स और अमेरिका से घोड़े, बैल, भेड़ें और गायें बहुतायत से मँगवाई गई हैं। टर्की की सरकार जनता को पशु-धन की उपयोगिता, पशुपालन की विधि और उनकी तरक्की की बातों पर बराबर प्रकाश डालती रहती है। टर्की में—उस टर्की में, जहाँ मुसलमान ही मुसलमान रहते हैं और जो मुसलमानों का राष्ट्र और राज्य है—दूध देने वाले पशुओं और वह भी खास कर गायों के कटने की सज़ा मनाही है।

पश्चिमीय अनातोलिया में कितनी ही धातुओं की खानें हैं। लौह, कोयला, लोहा, नमक, पाषाण, सीसा,



अल्मोनियम और चमड़ा वगैरह काफ़ी तादाद में पाया जाता है। इनकी खुदाई से राज्य को काफ़ी लाभ हो रहा है।

इन सब में पेट्रोलेियम बहुत लाभप्रद साबित हुआ है। अभी मैसोपोटामिया और मोसल के प्रदेशों में बहुत बड़ी मिकदार में पेट्रोले धरती के नीचे सुरक्षित रक्खा है। कहते हैं कि वह इतना अधिक है कि ५० वर्ष तक उसके द्वारा पूर्वीय देशों की जरूरत पूरी की जा सकती है।

टर्की ने अपने जहाज़ बनाए हैं, जो १,००,००००० टन से ज्यादा के हैं। टर्की का समुद्री किनारा बहुत बड़ा है। अतएव इतने जहाज़ों से पूरा नहीं पड़ता है। केवल ४५ प्रतिशत काम टर्की के जहाज़ कर पाते हैं और बाक़ी ५५ फ़ीसदी व्यापारिक काम विदेशी जहाज़ी कम्पनियाँ कर रही हैं, जिनकी दर सरकार ने निर्धारित कर रखी है। आशा की जाती है कि आगामी दो-तीन वर्षों में टर्की का बेडा ७५ फ़ीसदी काम निबटा सकने, योग्य हो जायगा। जर्मनी और इटली में, टर्की की राष्ट्रीय सरकार के आज्ञानुसार कई जहाज़ों का निर्माण हो रहा है, जिनका उपयोग व्यापार और युद्ध दोनों ही कामों के लिए किया जा सकता है।

टर्की में समाचार-पत्रों की खूब उन्नति हो रही है, स्तम्बोल और अज़ोरा में कई बड़े-बड़े प्रेस हैं, जो सुसज्जित राजनीतिक क्षेत्र में शक्तिशाली और सार्वजनिक शिक्षा के लिए बड़े उपयोगी साबित हुए हैं।

टर्की के समूचे इतिहास में समाचार-पत्र कभी इतने शक्तिशाली नहीं थे, जितने आज हैं। उनका प्रबन्ध और सम्पादन बिस्कुल अङ्गरेज़ी ढङ्ग से हो रहा है। उनके सम्बाददाता यूरोप के समस्त बड़े-बड़े नगरों में रहते हैं, जो नित्य नई-नई ख़बरें शीघ्र से शीघ्र, क्रुस्तन्नुनियों अफ़्रिस को भेजा करते हैं। टर्की की तार और बेतार की सर्विस एकदम नवीन, वैज्ञानिक प्रणाली की है, रेडियो का भी पर्याप्त उपयोग होता है। मासिक और साप्ताहिक पत्रों की संख्या भी काफ़ी है। इस समय टर्की में कोई १५० समाचार-पत्र और १०० के करीब मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक निकल रहे हैं, जिनकी तात्त्विका इस प्रकार है।

किस भाषा में	समाचार-पत्र	मैगज़ीन्स
टर्की	१२७	८६
फ़्रेञ्च	७	२
ग्रीक	५	१
स्पेनिश	३	१
आरमीनियन	५	५
जर्मन	१	.
इटालियन	१	.
रूसी	१	१

दैनिक पत्र, यूरोप की बनी हुई रोटरी मैशीनों पर छपते हैं, इसलिए नई से नई ख़बरें दो घण्टे के अन्दर वहाँ छप जाया करती हैं। एक-एक पत्र के तीन-तीन और चार-चार संस्करण निकलते हैं।

टर्की के पत्रकार ही प्रकाशन का काम भी करते हैं। जहाँ से दैनिक या मासिक निकलते हैं, वहीं से पुस्तकें भी निकलती हैं। टर्की में जङ्गलात बहुत हैं, इसलिए सरकार ने क्रागज़ बनाने के लिए काले समुद्र के किनारे, वनों के बीच में 'पेपर मिल्स' खोले हैं। सन् १९२९ की पहली जनवरी से टर्की भाषा की लिपि बदल कर लैटिन कर दी गई है, जिससे प्रकाशन कार्य को बड़ी सरलता और प्रोत्साहन मिला है। अरबी भाषा की ऊँची-नीची, संयुक्ताक्षर और विचित्र लेखन प्रणाली के कारण प्रकाशन के कार्य में दिक्कत और देर होती थी तथा लागत भी अधिक पड़ जाती थी। यह कमालपाशा ही जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति का काम है कि ऐसे दक्कियानूस देश में लिपि तक बदल देने में उन्हें सफलता मिली।

लैटिन लिपि के बढ़ते हुए प्रचार के कारण टर्की में टाइपराइटर्स की माँग बहुत बढ़ गई। पहले ही साल सरकार ने ६,००० टाइपराइटर अर्द्धर देकर विदेशों से मँगवाए थे। कमालपाशा का हुकम है कि अधिकतर स्त्रियाँ ही टाइपिस्ट के पद पर रखी जायँ। सरकारी अफ़िसों में टाइप करने का सारा काम महिलाओं के हाथ में है। महिलाएँ वेतन कम लेती हैं और काम पुरुषों से बेहतर करती हैं। टर्की से बुरका विदा हो चुका है। इसलिए आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ ही साथ इस कार्य-क्षेत्र में आने से महिला-समाज में शिक्षा का भी काफ़ी प्रचार हुआ है, क्योंकि बिना पढ़े-लिखे और

भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किए टाइप का काम करना असम्भव है।

कमाल ने जितने सुधार किए हैं, और जितनी नियामतें टर्की को बख्शी हैं, उन सब में स्त्रियों की स्वतन्त्रता का मुख्य और महत्व बहुत अधिक है। कमालपाशा ने स्कूल मास्टर की तरह, चाबुक लेकर टर्की की सामाजिक कुरीतियों को दूर किया है और महिलाओं को—पराधीनता और परदे की बेड़ियों में कसी हुई महिलाओं को—स्वाधीन जगत का स्वाद चखाया है। वह समाज और वह जाति कभी स्वाधीनता का उपभोग करने योग्य नहीं हो सकती, जो अपनी जननियों, ललनाओं और बहु-बेटियों को घर की चहार-दिवारी के अन्दर, परदे की पिटारी में बन्द रखने का अनुचित और अमानुषिक अत्याचार और प्रयास करती है। हम स्वयम् तो स्वराज्य चाहें और अपने आश्रितों, और अपने आधे अन्न को पिंजड़े में डाल कर जुलूम करते रहें, यह कहाँ का न्याय है? कोई रुढ़ि की दुहाई देता है, कोई प्राचीनता का पाठ पढ़ाता है और कोई होने वाले पापों और व्यभिचारों की दजीलें पेश करता है, पर परदे के अन्दर कितने पाप होते हैं, इसका लेखा और ब्यौरा कब किसने जानने या कहने का साहस किया है? घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं, मानवीय दुर्बलताएँ हैं। ज़रा सोचने की बात है कि गुलाम, दब्यु, कूपमण्डूक, परधानशीन औरतें क्या कभी स्वाधीन उमरों के बच्चों की जननी बन सकती हैं? पाश्चात्य देशों—अमेरिका और जापान प्रभृति मुलकों की स्वाधीन स्त्रियों और उनकी सन्तानों से जब हम पूर्वीय देशों—मिश्र, अफ़गा-निस्तान और हिन्दुस्तान की माताओं और बच्चों से तुलना करते हैं, तो मानसिक और शारीरिक क्षेत्र में आकाश-पाताल का अन्तर पाते हैं। मानों वे शासन करने और शिक्षा देने के लिए जन्म लेते हैं और ये शासित होने एवम् उनकी गुलामी करने के लिए। इसका कारण और कुछ नहीं, माताओं की स्वाधीन और पराधीन प्रकृति है, रहन-सहन, रीति-रिवाज और मनोवृत्ति है। कमालपाशा ने इन्हीं पहलुओं पर विचार करके अपने देश की स्त्रियों को कानूनन स्वतन्त्रता का

अधिकार दिलवा कर बुरके और बेवकूफी को टर्की से निकाल फेंका है।

पहले की टर्की में अमीर-उमरा और साधारण स्थिति वाले 'हरम' रखते थे, यानी प्रत्येक सदगृहस्थ के घर में बीबियों का एक क्राफ़िला होता था। परन्तु अब वहाँ से बहुविवाह-प्रथा उठा दी गई है। एक से अधिक बीबी रखना जुर्म माना गया है। हाँ, तलाक़ जायज़ है और उसमें भी स्त्री और पुरुष दोनों को समानाधिकार प्राप्त है।

टर्की के दैनिक अख़बारों, मासिक और साप्ताहिकों को देखने से ज्ञात होता है कि वहाँ के समाचार-पत्र महिलाओं के मतलब की कितनी बातें छापने लगे हैं। लाखों महिलाएँ नित्य अख़बार पढ़ती हैं और उनमें अपने विनोद और उपभोग की सामग्री खोजती हैं। बाल कटाने के अच्छे सैलूनों, तेल, पॉमेड, वैसलीन, हैज़लीन और व्यूटीकीम वगैरह के विज्ञापन बहुतायत से प्रत्येक पत्र में देखे जाते हैं। फ़ैशन की ख़ूब वृद्धि हो रही है। स्त्रियों में बाल कटाने और ऊँची ऐड़ी के जूते पहनने का रिवाज चल पड़ा है। उन्हें अपने लिए स्वयं पति चुनने का अधिकार है। विवाह में मिली हुई दहेज़ में प्राप्त वस्तुओं पर कानूनन पत्नी को अधिकार दे दिया गया है। जो पति अपनी पत्नी पर जुलूम करे, उसे मारे-पीटे या उसकी बेइज्जती करे, तो उसे जेल तक होती है। पुराने ज़माने की तलाक़-प्रथा बेचारी अनबोल, बुरके से ढँकी हुई टर्की की महिलाओं पर कितना जुलूम डालती थी। स्त्रियाँ भेड़-बकरी समझी जाती थीं। तब टर्की की दशा गिरी हुई थी, परन्तु आज वही टर्की अपनी उन्नति और प्रगति से संसार को आश्चर्य में डाल रही है। टर्की ने इतना शीघ्र हरगिज़-हरगिज़ तरकीब न की होती, यदि वहाँ की स्त्रियों को परदे से बाहर न निकाला गया होता और उन्हें पुरुषों के साथ समानता का अधिकार न मिला होता। स्त्री और पुरुष जीवन-रूपी रथ के दो पहिए हैं, या यों कहना चाहिए कि जीवन-नौका के दो नाविक हैं। संसार के अपार-सागर के पार जाने के दोनों समान सहारे हैं। जो एक की सहायता के बिना अकेले सफलता और स्वाधीनता पाने की आशा करते हैं, उनकी बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया है, वे परले सिर के मूख हैं।



यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि किसी एक पदार्थ की स्थिति, रूप और आकार-प्रकार में रूपान्तर किसी बाह्य शक्ति के आघात अथवा सम्पर्क से होता है। यदि यह बाह्य शक्ति अधिक बलवती हुई तो परिवर्तन की गति तीव्र नहीं, तो मन्द पड़ जाती है। यही सिद्धान्त एक देश और राष्ट्र की भाषा और साहित्य पर भी लागू होता है। एक देश की भाषा और साहित्य में परिवर्तन दूसरे देश के सम्पर्क से होता है, विकसित और श्रीसम्पन्न भाषा का निर्बल और अविकसित भाषा पर बड़ा स्थायी प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो अवनत भाषा उन्नत भाषा के कारण अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। जो भाषा जितनी ही निर्बल और अविकसित होती है, उसको निकटस्थ भाषाओं की उतनी ही अधिक चोटें भी सहन करनी पड़ती हैं। हिन्दी भाषा की कुछ ऐसी ही दशा है। वह निर्बल है, अधखिली है और अभी तक वियोगावस्था ही में है। इसलिए पड़ोस की भाषाओं के रोगी कीटाणु भी इसको शीघ्र आ दबाते हैं। कुछ ही समय पहले इसको छायावाद का रोग लगा था। इस व्याधि का प्रभाव हिन्दी कविता पर क्या पड़ा, इसको प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी जानता है। जितनी छीछालेदर इस एक 'छायावाद' शब्द की हिन्दी साहित्य में हुई है, वैसी संसार के किसी भी देश की किसी भी भाषा के किसी भी शब्द की हुई होगी, इसमें सन्देह है। अङ्गरेजी साहित्य में भी ऐसे शब्द हैं, जिनके अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। मिण्डन के ब्लाइण्ड माउथ (Blind Mouth) और टू हैण्डेड एंजिन (Two Handed Engine) और शेर्सपियर के शार्ड बॉर्न (Shard Borne) और फ्री ग्रीफ (Free Grief) आदि शब्द इसी श्रेणी में आते हैं। परन्तु इन सब पर मिला कर भी इतने पृष्ठ नहीं रंगे गए थे, जितने इस एक 'छायावाद' शब्द पर। अच्छा हुआ जो यह फगड़ा अब बन्द हो गया है, क्योंकि इतनी दाँता किट्-किट् के पश्चात् भी आज तक कोई सन्तोषजनक निर्णय नहीं हो सका तो आगे क्या आशा थी। आज भी तो छायावादी कवि इसका मनमाना अर्थ लेते हैं, और अस्पष्ट, भावशून्य, अर्थ-शून्य और नम्र कविता को ही छायावाद की कविता बतलाते हैं। अस्तु—

रुचि-परिवर्तन के कारण कहिए वा साहित्य-सम्पर्क के कारण, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि हमारे हिन्दी साहित्य में ली गई नई विशेषताओं का प्रादुर्भाव हो रहा है। छायावाद के साथ ही कभी-कभी गद्य-काव्य की भी चर्चा हो जाती है। हिन्दी की कई पत्रिकाओं में अक्सर गद्य-काव्य निकला करते हैं। हिन्दी की वर्तमान अवस्था पर दृष्टिपात करने से आभासित होने लगता है कि हिन्दी-कवियों की रुचि द्रुतगति से बदल रही है। खड़ी बोली में कविताएँ रच कर उन्होंने रुढ़िगत छन्दों और विषयों के परिहार का मार्ग निकाला था। अब गद्य-काव्य लिख कर वे दो कदम और आगे बढ़ रहे हैं। यह कोई बुरी बात नहीं। कवि निरङ्कुश कहे जाते हैं। कवियों में निरङ्कुशता कोई दोष नहीं—गुण है। एक अच्छा कवि पुरानी शैली और परिपाटी का अन्ध-अनुयायी नहीं हो सकता। संसार में अच्छे कवि वे ही हुए हैं, जिन्होंने कभी किसी प्राचीन कवि-परम्परा का अनुकरण नहीं किया। ऐसी दशा में हमारे कवि भी कविता करने का कोई नया ढङ्ग निकालें तो क्या हानि है? गद्य काव्य संसार के लिए न सही, हमारे लिए तो नई ही वस्तु है। प्रश्न हो सकता है कि यह दूसरों का जूटन और दूसरों के मस्तिष्क की उपलब्धि की नक़ल हिन्दी में क्यों? इसका एक मात्र उत्तर यही है कि इस विश्वबन्धुत्व के वातावरण और युग में, हमारा और तुम्हारा—मैं-मैं और तू-तू—करने की क्या आवश्यकता है। कवियों के लिए सारा संसार एक है, उनकी दृष्टि में कोई अपना-पराया नहीं। एक मनुष्य दूसरे को सहायता दे और ले सकता है, और फिर सहायता में ले तो करें क्या? हिन्दी कवियों में मौलिकता कहाँ? वे तो उन कारीगरों के समान हैं, जो ताजमहल के फोटो को सामने रख कर और मिट्टी के ताजमहल बना कर अपना पेट भरते हैं। ऐसे कवि धन्यवाद के पात्र अवश्य हैं। परन्तु उनका परिश्रम व्यर्थ है। जिन्होंने मुगल-सम्राट शाहजहाँ का विश्व-विख्यात ताजमहल नहीं देखा है, वे इन छोटे-छोटे मिट्टी के खिलौनों को देख कर ही सन्तोष कर लेते और असली ताजमहल की प्रशंसा करने लगते हैं। परन्तु जिन्होंने जमुना-तट-स्थित रजत-वर्ण और गगन-चुम्बी समाधि का अवलोकन किया है, उनके सामने इनका क्या और कितना मूल्य हो



सकता है ? याद रखने की बात है कि नमूने को सामने रख कर बनाई हुई वस्तु कभी नमूने से श्रेष्ठतर नहीं हो सकती। यही कारण है कि हिन्दी के आधुनिक गद्य-काव्यों को पढ़ कर निराशा ही होती है। इन नकली गद्य-काव्यों ने इतना भयङ्कर, विकृत और अष्ट रूप धारण कर लिया है कि जब इनके भावी साफल्य की बात सोचते हैं, तो भय लगता है और लाख रोकने पर भी हृदय की धड़कन बनी ही रहती है।

गद्य-काव्य के पहले कवि और जन्मदाता अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान विटमेन (Whitman) माने जाते हैं। इनके पहले भी महाकवि वर्डस्वर्थ ने छन्दों की बेडियों को तोड़ कर अपनी कविताओं को गद्य-काव्यों का रूप देने का उद्योग किया था, परन्तु उनको सफलता न मिली। वे कहा करते थे कि 'पद्य और गद्य में कोई अन्तर नहीं, और कविता की भाषा बोल-चाल की ही होनी चाहिए।' अच्छी कविता के लिए न छन्द की आवश्यकता है न अलङ्कार की। उसकी जन्मभूमि आत्मा है। परन्तु जब वे स्वयं ही अपने सिद्धान्तों का ठीक रूपेण पालन न कर सके तो दूसरे उनसे क्यों प्रभावित होने लगे। परन्तु विटमेन ने तो एक प्रकार से क्रान्ति ही पैदा कर दी। परम्परागत समस्त साहित्यिक आदर्शों और छन्दों का बहिष्कार किया और एक अनोखे ढङ्ग से अपने विचारों और विश्वासों को प्रकट करने लगे। जिस समय उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'लीव्स ऑफ़ ग्रास' (Leaves of Grass) प्रकाशित हुई, उस समय अमेरिका में तहलका मच गया। उसकी कड़ी से कड़ी आलोचनाएँ और टीका-टिप्पणियाँ होने लगीं। कहते हैं कि उन दिनों विटमेन का घर से बाहर निकलना तक बन्द हो गया था। परन्तु उस समय कुछ ऐसे भी गुण-ब्राह्मी और निष्पक्ष विद्वान थे, जिन्होंने विटमेन के भावों और उसकी भावुकता को समझने और समझाने का प्रयत्न किया। ऐसे सज्जनों में इमर्सन (Emerson) भी एक थे। उन्होंने विटमेन को ढाढ़स बँधाया और एक पत्र में लिखा कि 'बुद्धिमत्ता और वाक् विदग्धता के दृष्टिकोण से तुम्हारी पुस्तक अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है।' फलतः पुस्तक की माँग बढ़ी और एक ही महीने में उसके प्रकाशकों को कई संस्करण निकालने पड़े। फिर क्या था, विटमेन के पास धन्यवाद के पत्र पर पत्र

आने लगे—उन पर सम्मान की वर्षा होने लगी। उस वक्त जैसी धूम उक्त पुस्तक की साहित्य-समाज में कभी वह अकथनीय है। धीरे-धीरे गद्य-काव्य का प्रचार बढ़ा। यहाँ तक कि जिन्होंने विटमेन की कटु से कटु से आलोचनाएँ की थीं, उनमें से भी कुछ कवियों ने गद्य-काव्य लिखे। परन्तु कोई भी अपनी प्रतिभा अथवा लेखनी के वाण से विटमेन के आसन को न ढिगा सका। उनके गद्य-काव्य अद्वितीय ही रहे। इस प्रकार गद्य-काव्य की पतली धारा ने बढ़ते-बढ़ते महानद का रूप धारण कर लिया और अन्य देशों में भी इस नवीन काव्य-शैली का प्रचार हुआ। कई वर्षों बाद या यों कहिए कि सब से पीछे महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे अपनाया और अपनी अद्भुत कवित्व-शक्ति और कल्पना का जीवन फूँक-फूँक कर गद्य-काव्य लिखने लगे। रवीन्द्रनाथ के गद्य-काव्यों के कई संग्रह—फ्रूट गेदरिङ्ग और फ्र्यूजीटिव आदि—ससार के साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। हिन्दी में भी इनके अनुवाद हुए और कुछ लोगों ने इनके आधार अथवा इनकी छाया पर भी कई गद्य-काव्य लिखे।

छायानुवादों की गति जब मन्द पड़ी तो कुछ लोगों ने मौलिक रचनाएँ भी कीं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'अन्तस्तल' लिख कर इसका श्रीगणेश किया। इस समय वियोगी हरि के कुछ गद्य-काव्य (निबन्ध ?) 'प्रभा', 'सरस्वती' और सम्मेलन पत्रिका में भी छपा करते थे। कुछ वर्षों बाद आपके 'अन्तर्नाद' का जन्म हुआ। परन्तु इस समय तक गद्य-काव्यों का कोई निश्चित रूप स्थिर नहीं हुआ था। 'अन्तस्तल' और 'अन्तर्नाद' को गद्य निबन्धों के मनोबेगों पर, संग्रह ही समझना चाहिए। इसलिए श्री० रायकृष्ण दास की 'साधना' के प्रकाशन के समय को ही गद्य-काव्य का प्रारम्भिक काल मानना ठीक होगा। गद्य-काव्य का परिमार्जित और सच्चा स्वरूप इसी काल से हमारे सामने आता है। इसके पश्चात् और भी चार-पाँच संग्रह, 'प्रवाल', 'छाया-पत्र' और 'चित्रपट' के नाम से निकले हैं—पत्र-पत्रिकाओं में तो कभी-कभी इनका अच्छा जमघट रहता है। परन्तु उच्छुष्ट गद्य-काव्य के संग्रह चार अथवा पाँच से अधिक नहीं हैं। यही गद्य-काव्य का संक्षिप्त इतिहास है।



‘गद्य-काव्य’ दो शब्दों से मिल कर बना है—गद्य और काव्य। इसलिए एक ऊँचे गद्य-काव्य के लिए आवश्यक है कि उसमें ‘गद्य’ और ‘काव्य’ दोनों के लक्षणों का समन्वय हो। यहाँ पर हमें यह देखना पड़ेगा कि ‘गद्य और काव्य’ किये कहते हैं और दोनों के संयोग से बने हुए ‘गद्य-काव्य’ शब्द का क्या अर्थ होता है और होना चाहिए। वह लेखन-प्रणाली, जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या और स्थान आदि का कोई नियम न हो, उसे गद्य कहते हैं। गद्य में छन्द और वृत्त का प्रतिबन्ध नहीं होता—बाकी अलङ्कार, रस आदि सब गुण होते हैं। गद्य का काम सरल और सुबोध भाषा में वास्तविकता को पाठकों के सामने रख देना है। छन्दों की बेड़ी न होने से गद्य-लेखक को कल्पना के समुद्र में स्वतन्त्रतापूर्वक गोते लगाने का पूरा-पूरा मौका रहता है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि गद्य-लेखक भाषा के समस्त नियमों का उल्लङ्घन करता है। नहीं, गद्य-लेखक उन्हीं नियमों की अवहेलना करता है, जो छन्द-शास्त्रों पर निर्भर हैं, लालित्य, सौन्दर्य और सुसज्जति की उसको भी आवश्यकता रहती है।

यह तो हुई गद्य की बात। अब काव्य की ओर आइए। काव्य के लक्षणों के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। सबने अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ दी हैं। रस गङ्गाधर ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों को काव्य कहा है। अर्थ की रमणीयता के अन्तर्गत शब्द की रमणीयता भी समझ कर लोग इसे स्वीकार करते हैं। इसलिए यह लक्षण स्पष्ट नहीं है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने ‘रसात्मक वाक्य’ को काव्य कहा है और किसी ने चमत्कारयुक्त उक्ति को काव्य कहा है, परन्तु इतने से हमें सन्तोष नहीं होता। कविता वास्तव में वह कला है, जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों पर प्रभाव डाला जाता है। काव्य में तीन बातें विषय, स्वरूप और भाव (Form, and Theme Spirit) अवश्य और सदैव देखने में आती हैं। और सङ्गीत का तो काव्य से नैसर्गिक सम्बन्ध है। कविता में सङ्गीत का न होना अनल्प न्यूनता है, इसलिए गद्य और काव्य एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु समझे जाते हैं। गद्य-लेखक सत्य की खोज में धूमता है, परन्तु यथार्थवाद कवि को दरिद्र बनाता है और पदच्युत

करता है। कवि एक विचित्र कीमियागर है, जिस वस्तु को वह छूना है, उसे सुवर्ण बना डालता है—उसके लिए कोई वस्तु तुच्छ नहीं। सूखे हुए पत्ते, घास और वृक्षों में से वह अपनी स्वर्णीय वाणी के सहारे सौरभ और सौन्दर्य उत्पन्न करता है। वर्डस्वर्थ ने सच कहा है कि—

To me the meanest flower that blows
Can give thoughts that often lie too
deep for tears

अर्थात्—“साधारण से साधारण फूल भी मुझे ऐसे भाव प्रदान करते हैं, जो शब्दों द्वारा क्या आँसुओं से भी व्यक्त नहीं किए जा सकते।”

गद्य और काव्य के इस विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि भेद दोनों में है अवश्य, परन्तु बहुत सूक्ष्म। मोटी दृष्टि से देखने में तो यही मालूम होता है कि इन दोनों में भेद है तो केवल छन्द और वृत्त का। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि छन्दोबद्ध होने से ही कोई रचना कविता कहलाने लग जायगी। जिस पद्य रचना में न कल्पना का प्राचुर्य है और न मनोवेगों का प्राबल्य, वह कविता नहीं, पद्य है। वह एक पद्य का नमूना हो सकती है, कविता का नहीं, और गद्य तो निस्सन्देह वह है ही नहीं। इसके विपरीत एक रचना में कल्पना, व्यंग्य, ध्वनि आदि कान्योचित गुण मिलते हैं, तो हम उसे, गद्य होने पर भी, काव्य कहेंगे। निष्कर्ष यह है कि गद्य में भी अच्छी कविता हो सकती है और पद्य में होने से ही किसी रचना को कविता कहलाने का श्रेय नहीं मिल सकता। अतः गद्य-काव्य में गद्य के लक्षणों के अनुसार केवल छन्दों का प्रतिबन्ध नहीं होगा, बाकी गद्य और काव्य के सब लक्षणों का विद्यमान होना अनिवार्य है। ये लक्षण होंगे सरलता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, माधुर्य, लालित्य, प्रासाद, भावुकता, कामना और मनोवेगों का बाहुल्य।

यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि बहुत से कवियों ने जो अपने गद्य-काव्यों के संग्रहों पर ‘गद्य-गीत’ लिखा है, वह भूल है। गीत का सम्बन्ध गायन से है। केवल वही कविताएँ गद्य हो सकती हैं, जो रस के अनुसार विशेष राग-रागिनियों में बौंध दी गई हैं। सूर, तुलसी आदि के पद गीत-काव्य की श्रेणी में



अवश्य आ सकते हैं। गद्य नहीं गाया जा सकता। हम उसे 'गद्य-काव्य', 'गीत-काव्य' और 'गद्य-निबन्ध' अवश्य कह सकते हैं, परन्तु 'गद्य-गीत' कभी नहीं।

हिन्दी में प्रचलित गद्य-काव्य को जब हम काव्य और गद्य की उपर्युक्त कसौटी पर कसते हैं, तो हमको निराशा ही होती है। इनमें कुछ तो ऐसे हैं, जिनको कसौटी के सामने लाते ही लज्जा आती है, दूसरे ऐसे हैं जो अङ्गरेजी और बँगला से अनूदित किए गए अथवा उनकी छाया पर लिखे गए हैं। परन्तु साथ ही कहीं-कहीं ऐसे भी गद्य-काव्य देखने में आते हैं, जिनको देख कर हृदय उछलने लगता है और उनके रचयिताओं की सुवर्ण लेखनी चूमने को जी चाहता है। परन्तु ऐसे गद्य-काव्यों की संख्या है बहुत कम। अधिकांश ऐसे ही हैं, जिनमें न कवित्व है न, गद्यत्व। जिसके उदाहरण लीजिए—

“आशा की झलक

विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक जो महान सङ्गीत गूँज रहा है, उसे आज मेरी हृदय-तन्त्री पर बजाने का प्रयत्न कौन कर रहा है ?

क्या मेरे कमज़ोर तार इस महान सङ्गीत को सह सकेंगे। ओ अज्ञात, इसका भी तो ध्यान किया होता।

परन्तु, इन तारों को मसल कर फेंक दें, यह भी तो मेरे कमज़ोर हृदय से नहीं होता, क्योंकि यह आशा अभी विलुप्त कहाँ हुई है कि मेरे ये बिखरे पत्ते संसार में बसन्त को न ले आएँगे ?”

(‘हंस’ विशेषाङ्क, पृष्ठ २८)

कवि को समस्त संसार दिव्य सङ्गीत से गूँजता हुआ सुनाई पड़ता है और साथ ही आज ऐसा भी प्रतीत होता है कि कोई अज्ञात शक्ति तारों को बजाने का प्रयत्न कर रही है। कवि की यह कल्पना अनुचित और अस्वाभाविक है। एक कमरे में यदि कई वाद्य-यन्त्र एक स्वर में मिले पड़े हुए हों, यदि उनमें से एक बजाया जाय अथवा कमरे में किसी प्रकार का शब्द वा गूँज पैदा की जाय, तो यह प्रकृति का नियम है कि वे सब वाद्य-यन्त्र, सद्दानुभूतिक प्रकम्पन के कारण एक सा स्वर निकालने लगते हैं, सब में वही ध्वनि निकलती है। ऐसा नहीं हो सकता कि उनमें से एक तो बजने लग जाय और दूसरे योंही पड़े रह जायें। यहाँ पर

कवि ने जब यह कह दिया कि सङ्गीत से सारा संसार ‘एक छोर से दूसरे छोर तक’ ध्वनित हो रहा है, तो फिर क्या कारण है कि कवि की हृदय-तन्त्री में झटकार नहीं उठती, जब कि संसार में रङ्गी हुई है, विश्व के सुर से मिली हुई है—आध्यात्मिक पक्ष में ईश्वरीय अंश उसमें भी विद्यमान है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कवि की हृदय-तन्त्री विश्व के बाहर कहीं खूँटी पर टँगी हुई है, दूसरा यह हो सकता है कि उसकी हृदय-तन्त्री टूटी हुई हो, परन्तु जैसा कि आगे कहा गया है, वह टूटी हुई नहीं, केवल कमज़ोर है। मेरा खयाल है, कवि ने श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर की इन पक्तियों के आधार पर अपनी कल्पना को खड़ा किया है।

✓ I bring you a voiceless instrument.
I strained to reach a note which was too high in my heart, and the string broke

परन्तु ध्यान रखने की बात है कि रवि बाबू का यन्त्र Voiceless (निःशब्द) है, इसलिए उसमें से यथेष्ट स्वर नहीं निकल रहे हैं। गद्य काव्य के लेखक ने कहीं इसका उल्लेख भी नहीं किया है। ऐसी दशा में यही मानना पड़ता है कि अज्ञात शक्ति (कवि नहीं ?) पागल है। आगे महान सङ्गीत लिखा है। महान सङ्गीत और कमज़ोर तार से कोई सम्बन्ध नहीं। एक सितार पर यदि एक राग सुगमता से निकलता है, तो दूसरा भी निकलेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि सैरवी तो बज जाय और मालकौस न निकले। यह तभी हो सकता है, जब बजाने वाला क्षतुर न हो। परन्तु अज्ञात शक्ति जो संसार को गुञ्जायमान कर चुकी है, पत्थर, पेड़ और पानी में से सुर निकाल चुकी है, क्या हृदय-तन्त्री को न बजा सकेगी। रवीन्द्रनाथ की वीणा के टूटने के तीन कारण हैं—voiceless instrument (निःशब्द यन्त्र) strain (कठिन उद्योग) too high a note (बहुत ऊँचा स्वर) ऐसी दशा में सुर न निकले और तार टूट जायँ, इसमें क्या आश्चर्य है। वर्णन बढ़ा ही अजीब, स्वाभाविक और सरल है, गद्य-काव्य के लेखक ने एक महान् शब्द से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया है, परन्तु उससे उनको कुछ भी सफलता नहीं मिली है। उल्टा वर्णन निर्जीव और भद्दा हो गया है।

फिर देखिए, कवि तारों को मसलना चाहता है। फूल मसले जाते हैं, कलियाँ मसली जाती हैं। परन्तु तारों का मसलना कहीं नहीं सुना। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द अन्तिम (Final) होना चाहिए। वह ऐसा होना चाहिए जिससे कथित विषय का चित्र सामने आ जाय और साथ ही ऐसा होना चाहिए जिसकी जगह दूसरा शब्द और शब्द-समूह काम ही न दे सके। तार टूटता है, असावधानी से रखने पर उलझ भी जाता है, और कम मूल्य का होने पर, अथवा गीली जगह में पड़े रहने के कारण चिकटा जाता है। परन्तु मसल कर फेंकना तो तभी हो सकता है, जब कोई चीज़ जैसा वीर हाथ में ले।

बात हृदय-तन्त्री और सङ्गीत की हो रही थी, बीच ही में 'बिखरे पत्ते' आ कूड़े। इनके कारण वर्णन बड़ा ही अरुचिकर और अरोचक हो गया है। बसन्त में पत्ते अवश्य नए आते हैं, परन्तु उन दिनों पवन बहुत चलता है और इसलिए सूखे पत्ते वृक्षों के नीचे नहीं पड़े रहते। वे उड़ कर चले जाते हैं, फिर बिखरे पत्ते किस तरह बसन्त को लावेंगे, यह भी बात समझने की है। साथ ही भाव भी अस्पष्ट हैं, क्योंकि ऐसे शब्द-विन्यास और शब्द-शोधन से कवि का क्या तात्पर्य है, साफ़ नहीं होता है। जिस संसार में सङ्गीत की गूँज हो रही है, वहाँ निराशा कैसी? सङ्गीत—और फिर महान सङ्गीत तो आनन्द और आशा का आगार ही है। कवि की अन्त की—दो पंक्तियों का भाव बिहारी के इस दोहे से मिलता है—इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल। ऐहे बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वै फूल ॥

परन्तु जो भव्यता और प्रकाश बिहारी के दोहे में है, वह गद्य-काव्य में नहीं। आशा की झलक उक्त दोहे में है, गद्य-काव्य में नहीं। बिहारी के दोहे ने न जाने कितने निराश हृदयों में आशा का सञ्चार किया होगा, इसका क्या ठिकाना है? दो पंक्तियों में जो आशावाद का भाव भरा है, उसका अल्पांश भी गद्य-काव्य के इस लम्बे-चौड़े और सूने भूतमहल में नहीं मिलता है। भाव, ध्वनि, व्यंग्य, अलङ्कार और रस सब रहे, परन्तु कुछ अर्थ भी तो नहीं है।

‘तारों को मसल कर फेंक दूँ’ इसमें कितनी अस-जति है। हृदय ही के तार और हृदय ही से फेंकना कैसे

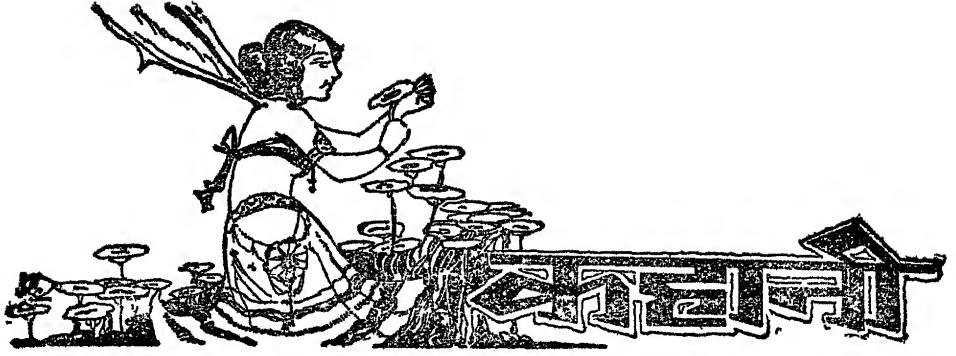
हो सकेगा। यह तभी सम्भव है, जब कवि के दो हृदय हो और यहाँ तो एक भी पूरा नहीं है, ‘कमजोर है’, फिर फेंकने का काम हाथों का है, हृदय का नहीं। आधुनिक गद्य काव्य के विधाताओं में ‘हृदय-तन्त्री’ शब्द का प्रयोग अधिक देखा जाता है। इसमें भी मौजूद है। एक ने शुरू कर दिया, दूसरे भी लिखने लगे। एक भेब कुएँ में गिरी, दूसरी भी उसके साथ। किसी ने यह नहीं सोचा कि यह अनुचित है अथवा उचित। शायद इन कवियों को यह मालूम नहीं होगा कि हृदय तारों का बना हुआ नहीं होता। वह मांस का एक पिण्ड होता है। किसी भी अच्छे प्राचीन और अर्वाचीन कवि ने हृदय-तन्त्री नहीं लिखा। जायसी ने नसों को तौत की उपमा दी है, और यह बहुत उचित है। इससे कवि की कल्पना-शक्ति की प्रौढ़ता का ही परिचय मिलता है —

हाड़ भए सब किङ्गरी, नसै भई सब तौति ।

रोम-रोम से धुनि उठै, कहौ बिथा केहि भौति ॥

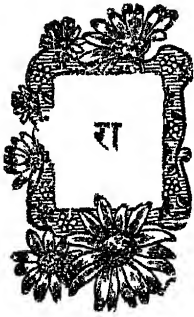
गद्य-काव्य के रचयिता और उनके कुछ भक्तों को ऐसी स्पष्ट, अस्वाभाविक और असम्बद्ध कविताएँ भले ही अच्छी लगें, परन्तु दूसरों का भी इनसे मनोरञ्जन हो सकेगा, ऐसी आशा रखना भूल है। बात ऐसी लिखनी चाहिए जो सबकी समझ में आ जाय। यदि आप ही ने लिखा और आनही समझे तो फिर परिश्रम व्यर्थ है। कुछ लोग कहेंगे कि काव्य में इतना सत्य और सूक्ष्मता ढँढ़ने की क्या आवश्यकता है। काव्य क्या विज्ञान थोड़े ही है, जिसमें पग-पग पर सत्य के दर्शन होते हैं। यह ठीक है, हम भी मानते हैं और यह आवश्यक भी नहीं कि कवि सत्य ही बोले। कवि-सत्य साधारण सत्य नहीं होता, वह हार्दिक सत्य होता है। जिस क्षण को कवि सत्य समझता है, चाहे वह झूठ ही क्यों न हो, इस प्रकार कहता है कि ओता अथवा पढ़ने वाले उसको ठीक उसी भाव में समझ जायें जिस भाव में कवि समझता है। अर्थात्, उसमें उसकी वृत्ति रम जाय, यही कवि-सत्य कहाता है। परन्तु साथ ही यहाँ यह भी कहना पड़ेगा कि योंही किसी भाव अथवा वृत्ति में लीन हुए बिना, कुछ का कुछ अण्ड-सण्ड लिख बैठना और बाँके-टेढ़े चित्र खड़े करना कविता नहीं—वह कवि-प्रलाप है। बस, आज यहीं तक—विस्तारपूर्वक फिर कभी।





मूल

[श्री० विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक]



त के आठ बज चुके थे। सबकों पर मनुष्यों का आवागमन कम हो चला था। इसी समय एक युवक जिसका वर्ण गौर, शरीर सुढौल तथा पुष्ट—अच्छे वस्त्र पहने, आँखों पर चश्मा चढ़ाए, सिगरेट पीता हुआ चला जा रहा था। सहसा वह एक गली की ओर मुड़ा और थोड़ी दूर चल कर एक मकान के सामने रुक गया। उसने सिर उठा कर दोमन्जिले की ओर देखा। दोमन्जिले के कमरे में बिजली की रोशनी फैली थी। युवक ने सिगरेट का एक गहरा कश लेकर उसे फेंक दिया और आवाज़ लगाई—“रमेश !” कोई उत्तर न मिलने पर उसने पुनः वही आवाज़ लगाई। इसी समय कमरे के द्वार पर एक मनुष्य की मूर्ति दिखाई दी। उस मूर्ति ने पूछा—“ओङ्कार ?” युवक के ‘हाँ’ कहने पर मूर्ति ने कहा—“आओ ! आओ ! ऊपर चले आओ।” युवक के सम्मुख ही एक ज़ीना था। युवक ज़ीने से होकर ऊपर कमरे में पहुँचा। कमरा छोट्टा था। बीच में एक गोल मेज़ रखी थी और उसके चारों ओर कुर्सियाँ लगी थीं। एक ओर कोने में एक अलमारी थी, जिसमें पुस्तकें चुनी हुई थीं। एक कुर्सी पर हाथ रखे एक युवक खड़ा था। यह व्यक्ति साधारण ढीलढौल का था

और ओङ्कार का समवयस्क प्रतीत होता था। यह व्यक्ति भी आँखों पर चश्मा लगाए हुए था। ओङ्कार को देखते ही वह बोला—क्यों, खड़े क्यों हो गए थे ? जीना तो खुला था—चले आते। ओङ्कार ने कुछ सङ्कोच का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—“मैंने सोचा, कदाचित्त तुम हो या न हो।”

“न भी होता तो क्या था, तुम्हें निस्सङ्कोच चले आना था। ऐसा सङ्कोच करोगे तो कैसे काम चलेगा।” रमेश ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

ओङ्कार ने इसका कोई उत्तर न दिया, चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया।

कमरे के एक ओर एक द्वार था, जिससे मकान के भीतर आने-जाने का रास्ता था। रमेश ने उस द्वार पर खड़े होकर पुकारा—“शान्ता, तुम्हारे मास्टर साहब आ गए।” इतना कह कर रमेश ओङ्कार की ओर देख कर मुस्कराया। ओङ्कार भी मुस्करा दिया। कुछ क्षणों पश्चात् एक युवती, जिसकी वयस बीस वर्ष के लगभग होगी—नख-शिख की सुन्दर, श्वेत साड़ी तथा श्वेत ही जम्पर पहने हुए आई और द्वार के पास आकर लज्जा का भाव दिखाते हुए ठिठुक गई। रमेश ने कहा—खड़ी क्यों हो गई—जाओ बैठो ! ऐसी लज्जा करोगी तो फिर सीखोगी क्या ? युवती किञ्चित् मुस्करा कर सिर झुकाए हुए आई और ओङ्कार के सामने बैठ गई। ओङ्कार ने कहा—“बाबा कहाँ है ?” युवती ने दाँतों



तले जीभ दाब कर धीमे स्वर में कहा—“अरे ! बाजा तो भूल ही आई।” इतना कह कर उसने उठना चाहा, परन्तु रमेश उसे रोक कर बोला—“तुम बैठी रहो, मैं लाए देता हूँ।” यह कह कर रमेश भीतर चला गया और कुछ क्षणों पश्चात् एक हारमोनियम लिए हुए वापस आया। हारमोनियम को मेज़ पर रखते हुए कहा—“कल से स्वयम् ले आया करना, मैं रोज़-रोज़ यह ड्यूटी अदा नहीं कर सकूँगा।”

शान्ता मुस्कराते हुए दबे स्वर में बोली—मैंने आपसे लाने को कब कहा था—मैं तो स्वयम् जा रही थी।

ओङ्कार उठ कर शान्ता की बगल वाली कुर्सी पर आ बैठा और बोला—कल का सबक सुनाओ।

युवती ने धोती को सँभाल कर, सिर का पल्ला ठीक करके बाजा अपने आगे खिसकाया और धौंकनी खोली। ओङ्कार बोल उठा—“कल मैंने तुम्हें समझाया था कि पहले ‘स्टॉप’ खींचा करो, तब धौंकनी खोला करो। यदि तुम स्टॉप खोलने के पहले धौंकनी खोल लोगी और यदि धौंकनी चला दी तो बाजा खराब होने की सम्भावना रहेगी, क्योंकि स्टॉप तो बन्द है।”

युवती ने शर्मा कर स्टॉप खींचे। रमेश बोल उठा—जो बातें बताई जाया करे, उन्हें याद रखना करो। ये बातें याद रखना बहुत ज़रूरी हैं। क्या बताऊँ यार ओङ्कार ! मेरी बहुत इच्छा रही कि बाजा सीखूँ, पर कुछ ऐसी परिस्थिति रही कि सीख ही न सका। खैर ! यदि देवी जी सीख जायें तो मैं उसे भी अपने ही सीखने के बराबर समझूँगा। भला कितने दिनों में सीख जायेंगी ?

“यदि ठीक ढङ्ग से और नियमित रूप से सीखेगी तो छः महीने में इस योग्य हो जायेंगी कि तुम्हारा जी बहला सकें।”—ओङ्कार ने उत्तर दिया।

“तब तो जल्दी सीखेंगी। अच्छा तो अब तुम लोग अपना कार्य करो।”—इतना कह कर रमेश एक कुर्सी खिसका कर पुस्तकों की अलमारी के पास बैठ गया और अलमारी से एक पुस्तक निकाल कर उसके पृष्ठ उलटने लगा।

ओङ्कार शान्तादेवी को सरगम तथा पलटे बताने लगे। कभी-कभी ओङ्कार को शान्ता का हाथ पकड़ कर भी बताना पड़ता था। जब शान्ता का हाथ ओङ्कार के हाथ में आता तो ओङ्कार को शान्ता का हाथ काँपता

हुआ सा प्रतीत होता था, परन्तु ओङ्कार ने इस पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। रमेश कभी-कभी कन-खियों से इन दोनों की ओर देख लेता था।

अकस्मात् ओङ्कार बोल उठा—जब तक तुम बाजे के स्वर के साथ अपने गले का स्वर न मिलाओगी तब तक स्वरों का ज्ञान होना कठिन है।

शान्ता ने कुछ उत्तर न दिया। रमेश इन दोनों की ओर मुख करके शान्ता से बोला—सरगम मुँह से भी तो कहती जाओ, नहीं तो याद कैसे होगा।

शान्ता कुछ क्षणों तक लज्जा का भाव दिखा करके धीमे स्वर में स रे ग म, रे ग म प इत्यादि कहने लगी। रमेश मुस्करा कर बोला—ओहो क्या स्वर है। मालूम होता है, गले पर कोयल बीट कर गई है।

शान्ता कंप गई और झुंझला कर बोली—जाओ हम नहीं सीखते बाजा-वाजा !

रमेश हँसते हुए बोला—और सुनो, गुस्सा बाजे पर उतारा जा रहा है।

ओङ्कार बोल उठा—भई तुम बीच में मत बोलो, हर्ज होता है।

“अरे भई, मेरा तो मतलब यह था कि जरा खुल कर ऊँचे स्वरों में कहे। ऐसा मालूम होता है, जैसे घड़े में मुँह डाले बोल रही हो। खैर, अब मैं नहीं बोलूँगा।”

“हाँ, आप मत बोलिए।” रमेश से इतना कह कर ओङ्कार शान्ता से बोला—“चलो तुम अपना काम करो।”

“बस अब कज्ञ देखा जायगा।”—कम्पित रूँधे हुए गले से शान्ता ने यह कहा और उठ कर सीधी भीतर चली गई। ओङ्कार उसकी ओर ताकता रह गया। रमेश भी कुछ न बोल सका।

शान्ता के चले जाने पर ओङ्कार बोला—भई, तुमने श्रीमती जी को रुष्ट कर दिया।

“अच्छा मैंने गलत कहा था ?”—रमेश ने कुछ कंपे हुए मुख से पूछा।

ओङ्कार बोला—कहा तो गलत नहीं था, पर कहने का ढङ्ग गलत था। और फिर अभी तीन-चार ही दिन तो हुए। अभी उनकी शर्म नहीं गई और न मेरी शर्म गई है।



रमेशप्रसाद नेत्र विस्फारित करके बोले—अच्छा ! आप भी शर्माते हैं ?

“हाँ, कुछ भिन्नक तो हुई है।”

“इससे तो लडकी हुए होते तो अच्छा था, किसी भलेमानस का घर बसता।”

ओङ्कार हँस पड़ा। कुछ क्षणों परन्वात् उसने कहा—अच्छा तो अब चलो—आज का काम तो तुमने बिगाड़ ही दिया।

रमेश ने पुस्तक अस्मारी में रखते हुए कहा—अच्छा, परन्तु कल आना जरूर।

“हाँ आऊँगा ! परन्तु यार, मेज़-कुर्सी पर हाथ का बाजा बजाने में दिक्कत होती है—भूमि पर बैठने का प्रबन्ध होना चाहिए।”

“तो इस बगल वाले कमरे में फर्श बिछवा दूँगा। ठीक रहेगा न ?”

“हाँ, ठीक रहेगा।”

यह कह कर ओङ्कारनाथ विदा हुए।

२

रमेश और ओङ्कार में मित्रता थी। दोनों एक दूसरे से बहुत स्नेह रखते थे। यद्यपि ओङ्कारनाथ एक धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र था और रमेशप्रसाद अस्सी रूपए मासिक पाने वाला एक साधारण अध्यापक, परन्तु फिर भी दोनों में कोई भेदभाव न था। ओङ्कार, सजीत विद्या में पटु था और हारमोनियम बहुत अच्छा बजाता था।

एक दिन रमेश ने कहा—यार ओङ्कार मेरी पत्नी ने जब से तुम्हारा हारमोनियम सुना है, तब से उसकी हारमोनियम सीखने की बड़ी इच्छा है। क्या तुम सिखा सकोगे ?

ओङ्कार ने उत्तर दिया—हाँ-हाँ, क्यों नहीं। यदि श्रीमती जी नियमित रूप से सीखे तो सिखा दूँगा। बाजा है ?

“बाजा तो नहीं है, परन्तु मँगा लूँगा। कितने में मिल जायगा ?”

“अभी खरीद कर क्या करोगे। मेरे पास एक फ़ालतू बाजा पड़ा है, वह मैं दे दूँगा। जब सीख जायँ तब दूसरा खरीद लेना।”

इस योजना के अनुसार ओङ्कार ने शान्ता देवी को हारमोनियम सिखाना आरम्भ किया।

दो मास तक तो यह क्रम रहा कि जब शान्ता देवी हारमोनियम सीखती तो रमेशप्रसाद भी कमरे में बैठे रहते थे। एक दिन रमेशप्रसाद ने ओङ्कार से कहा—भाई, कल मैं बाहर जा रहा हूँ।

“अच्छा ! कहाँ जाओगे ?”—ओङ्कार ने पूछा।

“बनारस।”—रमेश ने उत्तर दिया।

“कुछ काम है ?”

“हाँ, रिश्तेदारी में एक विवाह है, उसी में सम्मिलित होने जाऊँगा।”

“कब लौटोगे ?”

“चेष्टा तो करूँगा परसों ही लौटने की, परन्तु शायद परसों न लौट सका तो उसके अगले दिन अवश्य लौट आऊँगा।

“श्रीमती भी जायँगी ?”

“नहीं जी, उन्हें कहाँ ले जाऊँगा।”

“तो वहाँ दो-तीन दिन आपको लगेंगे।”

“हाँ, इससे कम में तो क्या लौट सकूँगा। तुम देवी जी को सिखाने आते रहना। ऐसा न हो सक्कोच के मारे न आओ। क्योंकि तुम बड़े सेपूला हो।”

“अगर न भी आऊँ तो क्या कोई हर्ज है ?”

“उसके सीखने का हर्ज होगा।”

“अजी हर्ज-वर्ज कुछ नहीं होगा।”

“परन्तु आओ क्यों न ? प्रश्न तो यह है।”

“तुम यहाँ रहोगे नहीं, इसलिए अकेले × × ×”

रमेशप्रसाद बान काट कर बोले—तुम्हारी ऐसी-तैसी।

ओङ्कार ने कहा—तो यदि दो-तीन दिन न सीखेंगी तो कौन सा बड़ा हर्ज हो जायगा ?

“परन्तु सीखें क्यों न, कोई तुम हवा हो जो अकेले में उसे खा जाओगे ?”

ओङ्कारनाथ निरुत्तर हो गए।

रमेशप्रसाद बोले—तुम जो यहाँ आते रहोगे तो ज़रा श्रीमती जी की खोज-खबर भी लेते रहोगे—कोई काम हो, कोई आवश्यकता हो। वैसे तो बाज़ार का काम करने को नथू है, परन्तु है वह अभी छोकरा ही।

ओङ्कार बोल उठे छोकरा काहे को है—चौदह-पन्द्रह बरस का तो होगा।



“हाँ—आँ—परन्तु फिर भी छोकरा ही है—चौदह-पन्द्रह बरस में कोई जवान या बुढ़ा नहीं हो जाता। फिर तुम्हारी उसकी तुलना क्या, वह नौकर, तुम मित्र। जो काम तुमसे निकल सकता है वह उससे थोड़ा ही निकलेगा। अतः तुम्हारा आना आवश्यक है। समझे ?”

“अच्छी बात है ! यद्यपि मेरे सिद्धान्त के प्रतिकूल है, परन्तु तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है।”

“क्यों साहब, सिद्धान्त के प्रतिकूल क्यों है ?”

“अब मैं यह तुम्हें क्या बताऊँ ? मैं इसे अच्छा नहीं समझता।”

“बेवकूफ हो ! अभी तुम्हारे हृदय पर दकियानूसी सिद्धान्तों का प्रभाव जमा हुआ है ? भाई साहब, अब वह ज़माना नहीं रहा। आजकल समय दूसरा है। यह उन्नति का युग है। इस युग में स्वतन्त्रता का दौरा है। आजकल स्त्री-पुरुषों को स्वतन्त्र रहना चाहिए। अब वह समय नहीं है कि कोई व्यक्ति द्वार पर आवे तो पुरुष की अनुपस्थिति में उसे यह भी पता न लगे कि घर में कोई है या नहीं। मुझे तो बड़ा बुरा मालूम होता है। एक दिन मैं अपने एक मित्र के यहाँ गया—मित्र काहे को सहयोगी कहना चाहिए। वह भी उसी स्कूल में टीचर है। मैंने द्वार पर खड़े होकर कोई छ' सात आवाज़ें तो दी-होंगी, पर किसी ने अन्दर से यह न कहा कि वह घर में नहीं हैं—हालाँकि घर में दो-तीन स्त्रियाँ थीं। मूर्खता की हद है ! यदि कोई स्त्री अन्दर ही से कह देती कि घर में नहीं हैं, तो क्या बिगड़ जाता ? आखिर मैं रुख मार कर और स्वयम् यह अनुमान लगा कर चला आया कि वह घर में न होंगे।”

ओङ्कारनाथ हँस पड़े और बोले—झैर, मैं इतनी कट्टरता का पक्षपाती नहीं हूँ और न मैं आवश्यकता से अधिक परदे का पक्षपाती हूँ। स्त्री को इतनी स्वतन्त्रता तो अवश्य ही होनी चाहिए कि वह प्रत्येक काम में पुरुष की मोहताज न रहे। यदि पुरुष घर में नहीं है तो वह गृहस्थी के सब काम स्वयम् चला ले—बाज़ार से सौदा-सुलह ले आवे। कोई आवे तो उसकी बात सुन कर उसका उत्तर दे दे—इतना तो ठीक है। परन्तु इससे अधिक ठीक नहीं।

“तो क्या इसे आप ठीक नहीं समझते कि आप जो मेरे मित्र हैं, मेरी अनुपस्थिति में आकर मेरे घर में

कुछ देर बैठें और मेरी पत्नी आपकी कुछ ख़ातिर करे, आपके पास कुछ देर बैठ कर बातें करे ?”

“हाँ, मुझे तो इसमें सङ्कोच ही मालूम होता है।”

“तुम्हें सङ्कोच मालूम होता है, पर इसमें यह नतीजा तो नहीं निकलता कि यह अनुचित है। यह तो तुम्हारा मेलपन है, तुम्हारे हृदय की कमजोरी है। परन्तु किसी एक व्यक्ति के हृदय की कमजोरी अथवा इच्छा नियम या सिद्धान्त नहीं बन सकती।”

“सम्भव है, तुम्हारा विचार ठीक हो। परन्तु भाई, मेरा हृदय तो इसे स्वीकार नहीं करता।”

“झैर, और कही स्वीकार करे या न करे, परन्तु मेरे यहाँ स्वीकार करना पड़ेगा। समझे ? आपको नित्य समय पर आना पड़ेगा और श्रीमती जी को सबक सिखाना पड़ेगा। यह अन्तिम फ़ैसला है।”

“फ़ैसला है या नादिरशाही हुक्म !”—ओङ्कार ने मुस्करा कर कहा।

“चाहे जो समझो, अर्थ एक ही है।”

“अच्छा हुआ ! जो हुक्म !”

३

शान्ता देवी ओङ्कारनाथ पर मुग्ध थीं। ओङ्कारनाथ शान्ता देवी के पति की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट था। पहले ओङ्कार का गाना और हारमोनियम सुन कर शान्ता देवी के हृदय में ओङ्कार के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का भाव उत्पन्न हुआ। उसी भाव ने क्रमशः मुग्धता का रूप ले लिया। ओङ्कारनाथ के पास बैठने में, उससे बातें करने में, उसका हारमोनियम तथा गाना सुनने में शान्ता देवी को जो सुख मिलता था, वह रमेशप्रसाद जैसे नीरस तथा पाठ्य-पुस्तकों के समान शुष्क हृदय रखने वाले अध्यापक में कहाँ मिल सकता था। उसने ओङ्कारनाथ से हारमोनियम सीखने की इच्छा जो प्रकट की थी, यद्यपि उसमें हारमोनियम सीखने की इच्छा भी सम्मिश्रित थी, परन्तु प्राधान्य इस बात का था कि इस बहाने उसे ओङ्कारनाथ के पास बैठने, उनसे बातचीत करने का सुयोग प्राप्त होगा।

रमेशप्रसाद बनारस चले गए। रात को ओङ्कारनाथ नियमानुसार रमेशप्रसाद के घर पहुँचे। शान्ता देवी बड़े हावभाव से मोहनी चेष्टाएँ करती हुई आकर



ओङ्कारनाथ के पास बैठीं। ओङ्कारनाथ गम्भीरता की मूर्ति बने बैठे थे। उन्होंने शान्ता देवी से कहा—कल का सबक सुनाओ।

शान्ता देवी अत्यन्त मृदुतापूर्वक बोलीं—क्या आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?

ओङ्कारनाथ ने कहा—कहो।

“आपने उस दिन जो गाना गाया था, वह पहले सुना दीजिए।”

“कौन सा गाना ?”

“वही, ‘छमाछम पानी भरे रे किसी अलबेले की नार’।”

ओङ्कारनाथ मुँह बना कर बोले—“वह तो बहुत ही मामूली गाना है।”

“आपके लिए वह मामूली है, परन्तु मुझे तो बड़ा ही अच्छा लगता है।”

“अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा।”—कह कर ओङ्कारनाथ ने बाजा खोला और गाना आरम्भ किया। जब तक वह गाते रहे, तब तक शान्ता देवी आश्चर्य-चकित नेत्रों से उनकी ओर ताकती रहीं। जब गाना समाप्त हुआ तो शान्ता देवी ने अपना सिर ओङ्कारनाथ के कंधे पर धर दिया और कहा—ओङ्कार बाबू, आपका गाना-बजाना स्वर्गीय है। क्या कभी मैं भी ऐसा गा-बजा सकूंगी ?

यद्यपि ओङ्कारनाथ को शान्ता देवी का यह व्यवहार अच्छा न लगा, परन्तु इसका विरोध करने का साहस भी उनमें उत्पन्न नहीं हुआ। वह बोले—यदि परिश्रम करोगी तो अवश्य आ जायगा। आखिर मुझे भी सीखने से ही आया है। अच्छा तो अब अपना कार्य आरम्भ करो।

शान्ता देवी ने ओङ्कारनाथ के कंधे पर से सिर उठा लिया और सबक सुनाना आरम्भ किया।

आज ओङ्कारनाथ को कुछ अधिक देर तक बैठना पड़ा। शान्ता देवी ने उन्हें ऐसा उलझाया कि उन्हें बैठना ही पड़ा। दूसरे दिन भी बड़ी देर तक बैठे और तीसरे दिन तो उन्हें शान्ता देवी ने ग्यारह बजे के पहले उठने ही न दिया।

चौथे दिन रमेशप्रसाद आ गए। जब रात में ओङ्कारनाथ पहुँचे तो रमेशप्रसाद कुशल-समाचार पूछने के बाद बोले—कहो भई, कोई नागा तो नहीं किया ?

“यह आप मुझसे न पूछ कर श्रीमती जी से पूछ लीजिए।”—ओङ्कारनाथ ने उत्तर दिया।

“उनसे तो मैंने पूछ लिया।”

“तो फिर मुझसे पूछना व्यर्थ है। कहो, बनारस में कैसी कटी ?”

“अच्छी कटी, कोई विशेष बात नहीं थी।”

इस बातचीत के पश्चात् शान्ता देवी ने अपना पाठ लेना आरम्भ किया। रमेशप्रसाद अपने स्थान पर (अल्मारी के पास) बैठ कर पुस्तक देखने लगे। शान्ता देवी बीच-बीच में ओङ्कारनाथ की ओर एक रहस्यपूर्ण दृष्टि डाल कर मुस्करा देती थीं। उस समय ओङ्कारनाथ भी किञ्चित् मुस्कराकर पुनः गम्भीर बन जाते थे और रमेशप्रसाद की ओर देखने लगते थे। कभी शान्ता देवी के मुस्कराने पर वह भुकुटी चढ़ा कर आँखों के इशारे से उसे मना करते।

एक घण्टा समाप्त हो जाने पर रमेशप्रसाद ने पुस्तक बन्द करके पूछा—कहिए, आपका काम समाप्त हो गया ?

“हाँ, समाप्त हो गया।”—ओङ्कारनाथ ने उत्तर दिया।

इतना सुनते ही रमेशप्रसाद उठ कर खड़े हो गए। शान्ता देवी ने बाजा बन्द किया और अन्दर चली गईं। ओङ्कारनाथ भी उठ खड़े हुए और बोले—अच्छा तो मैं भी चलता हूँ। रमेशप्रसाद ने कहा—अच्छी बात है। यार, क्या कहूँ, मैं तुम्हें बड़ा कष्ट दे रहा हूँ।

ओङ्कारनाथ ने मुस्करा कर पूछा—क्यों, क्यों ! यह विचार क्यों आया ?

“कुछ नहीं, ऐसे ही ! तुम्हें नित्य आना पड़ता है, अपना समय देना पड़ता है।”

“बनारस जाकर कुछ तकल्लुफ़ सीख आए क्या ?”

“तकल्लुफ़ के लिए बनारस नहीं, लखनऊ प्रसिद्ध है। यह आपको वाज़े रहे।”—रमेशप्रसाद ने मुस्करा कर कहा।

“गए थे तो लखनऊ ही होकर, इसलिए सम्भव है हवा लग गई हो।”

रमेशप्रसाद हँसने लगे। ओङ्कारनाथ विदा हुए।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन ओङ्कारनाथ ने कहा—भई रमेशप्रसाद, कल मैं नहीं आ सकूँगा।

“क्यों, कहीं बाहर जाओगे क्या ?”



“नहीं, बाहर तो नहीं जाऊँगा।”

“फिर ? न आ सकने का कारण ?”

“कल मैं एक दावत में जाऊँगा।”

“रात को जाओगे ?”

“हाँ, आठ बजे वहाँ पहुँच जाना है।”

रमेशप्रसाद बोले—“अच्छा !” परन्तु पुनः कुछ सोच कर बोले—“परन्तु दोपहर में तो तुम्हें छुटी रहती है ?”

“हाँ, दोपहर में तो छुटी रहती है।”

“तो दोपहर में आकर बता जाना। कष्ट तो होगा, यार, पर मैं चाहता हूँ कि जब प्रारम्भ हुआ है तो उसमें बाधा न पड़े।”

“तो क्या एक दिन में बाधा पड़ जायगी ?”

“भई, मैं तो अध्यापक हूँ। अध्यापक को एक दिन का नागा भी अखरता है।”

“अच्छा भई, अच्छा ! दोपहर ही में आ जाऊँगा। जिसमें तुम्हें अखरे नहीं, वही बात होनी चाहिए।”—ओङ्कारनाथ ने हँसते हुए कहा।

“यह समझ लो कि यदि श्रीमती जी को तुमने सिखा दिया तो तुम्हारा एक शिष्य तैयार हो जायगा और मुझे भी बड़ा सुख हो जायगा। जन्म भर तुम्हारा गुण मानूँगा।”

“अच्छा ! अच्छा ! पहले सीख तो जाने दो।”—इतना कह कर ओङ्कारनाथ विदा हुए।

४

अब ओङ्कारनाथ दोपहर में भी जाने लगे। जब उन्हें रात को कुछ काम लग जाता तो दोपहर में हो आते थे। जब से दोपहर में जाने का श्रीगणेश हुआ तब से ओङ्कारनाथ को बहुधा रात में कोई आवश्यक कार्य लग जाता था। दोपहर में रमेशप्रसाद घर पर न होकर स्कूल में होते थे।

एक दिन रमेशप्रसाद का नौकर नत्थू उनसे बोला—बाबू जी, ओङ्कार बाबू बड़े खराब आदमी हैं।

रमेशप्रसाद श्रुतुटी चढ़ा कर बोले—क्यों ?

नत्थू रमेशप्रसाद की मुख-मुद्रा देख, कुछ भयभीत होकर बोला—अब क्या बतावें—आप खफा होंगे।

रमेशप्रसाद ने कहा—नहीं, खफा नहीं हूँगा, बता।

“ओङ्कार बाबू बहू जी से दिल्लगी किया करते हैं।”

“दिल्लगी कैसी ?”

“अब क्या बतावें बाबू जी, बड़ी खराब बात है।”

रमेशप्रसाद आँखें लाज करके बोले—तो बताता क्यों नहीं, साफ़-साफ़ बोल, क्या बात है ?

“बाबू जी, कल दुपहरिया में ओङ्कार बाबू बहू जी को प्यार कर रहे थे।

रमेशप्रसाद की आँखों तले अँधेरा छा गया। कुछ क्षणों तक वह स्तम्भित खड़े रहे। इसके पश्चात् उन्होंने सँभल कर पूछा—तुने कैसे देखा ?

“हम पडे सो रहे थे। सोते-सोते हमें प्यास लगी—उठ कर पानी पिया। बहू जी के कमरे में सजाटा था—बाजा नहीं बज रहा था। हमने समझा ओङ्कार बाबू चले गए। हम यह देखने के लिए कि बहू जी सो रही हैं या जाग रही हैं, उस ओर गए। कमरे का किवाड़ ज़रा सा खुला था, उसी से हमने झाँका था।”

रमेशप्रसाद “हूँ” कह कर विचार में पड़ गए।

× × ×

रात को ओङ्कारनाथ रमेशप्रसाद के घर पहुँचे। शान्ता देवी बैठी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। ओङ्कार को देखते ही मुस्करा कर बोलीं—आइए !

ओङ्कारनाथ इधर-उधर देख कर बोले—रमेश कहाँ हैं ?

“वह तो एक दावत में गए हैं।”

“अच्छा ! कब गए ?”

“अभी-अभी, आपके आने से पाँच मिनिट पहले गए हैं।”

“अच्छा” कह कर मुस्कराते हुए ओङ्कार बाबू अपने स्थान पर जा बैठे। शान्ता देवी आकर उनसे बिस्कुल सट कर बैठीं। ओङ्कारनाथ ने उनकी पीठ पर हाथ रख कर कहा—कल का सबक सुनाओ !

शान्तादेवी ने सबक सुनाना आरम्भ किया। सबक समाप्त करके उन्होंने पूछा—ठीक है ?

ओङ्कारनाथ बोले—“बिस्कुल ठीक !” इतना कहकर उन्होंने शान्तादेवी का मुख चूम लिया। ठीक इसी समय भीतरी द्वार से निकल कर रमेशप्रसाद इन दोनों के सामने आ खड़े हुए। शान्ता देवी घबरा कर अलग हट गई। ओङ्कारनाथ हक्का-बक्का होकर रमेशप्रसाद का



मुँह ताकने लगे । रमेशप्रसाद क्रोध के मारे काँप रहे थे । हठात् वह बोले—क्यों ओङ्कारनाथ, यह मित्रता का हक़ अदा किया जा रहा है ?

ओङ्कारनाथ का चेहरा श्वेत हो गया । उन्होंने सिर झुका लिया ।

“मैंने अपना मित्र समझ कर तुम पर विश्वास किया, उसका तुमने यह बदला दिया ।”

ओङ्कारनाथ मौन थे । शान्ता देवी ने आँचल से मुँह ढँक लिया ।

“क्यों ? उत्तर क्यों नहीं देते ?”

ओङ्कारनाथ सिर झुकाए चुप बैठे थे । उनकी यह दशा थी कि काटो तो लहू नहीं ।

“बदमाश ! यदि मैं तुम्हें ऐसा जानता तो अपने पास भी न फटकने देता । तूने तो नीचता की हद कर दी ।”

ओङ्कारनाथ मूर्ति की तरह निश्चल तथा निस्तब्ध थे ।

“धूर्त, विश्वासघातक, मित्रद्रोही, दगाबाज़, पापी ।”

सहसा ओङ्कारनाथ ने ऊपर सिर उठाया । उनका मुख तमतमा उठा, आँखें उबल आईं । उन्होंने कहा—
“बस रमेश, ज़बान बन्द करो । बहुत हुआ । मैं पापी हो सकता हूँ, परन्तु विश्वासघातक, मित्रद्रोही, दगाबाज़ नहीं हूँ । और यदि हूँ तो मुझसे पहले तुम हो । सच पूछो तो तुमने मेरे साथ दगाबाज़ी की, विश्वासघात किया ।”

रमेशप्रसाद कुछ अप्रतिभ होकर बोले—“मैंने ?”

“हाँ तुमने ! तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध, मेरे विरोध करते रहने पर भी मुझे इस परिस्थिति में लाकर डाला । तुमने मुझे विश्वासघात और दगाबाज़ी करने के लिए

मजबूर किया । मैं नहीं चाहता था कि मैं तुम्हारी अनुपस्थिति में यहाँ आऊँ, पर तुमने मुझे आने के लिए मजबूर किया । तुमने मुझे पापी बनाया । इसलिए सबसे पहले तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया, दगाबाज़ी की ।”

“मैंने तुम पर विश्वास करके ऐसा किया था ।”—
रमेश ने भराई हुई आवाज़ में कहा ।

“तुम्हें विश्वास करने का कोई अधिकार नहीं था । क्या तुम मुझे इन्द्रियजित समझते थे ? क्या तुम अपनी इस पत्नी को सीता-सावित्री समझे हुए थे ? आखिर किस बल पर तुमने मुझ पर विश्वास किया ? मैं भी जवान हूँ, मेरे पास भी हृदय है । मैं कोई देवता नहीं, मनुष्य हूँ और मनुष्यों में जो कमज़ोरियाँ होती हैं, वे मुझमें भी मौजूद हैं । मैंने प्रकृति पर, अपनी कमज़ोरियों पर विजय पाने की बहुत चेष्टा की, पर सफल नहीं हुआ—बस ! मेरा अपराध अथवा पाप—जो समझो—इतना ही है ।”

“वाह ओङ्कार वाह ! मेरी सरलता के तुमने अच्छे अर्थ लगाए ।”

“तुम सरल नहीं, बेवकूफ हो, गधे हो । आग-फूस इकट्ठा करके यह आशा रखने वाला कि आग न लगे, पागल, अहमक, गधा कहलाता है । तुम्हें संसार का ज्ञान नहीं है, मानव-प्रकृति का ज्ञान नहीं है । बस आज से मेरी तुम्हारी मित्रता समाप्त है । तुम्हारे जैसे आदमी अपने मित्रों के लिए खतरनाक होते हैं ।”

इतना कह कर ओङ्कारनाथ एकदम खड़े हो गए और जूता पहन कर तुरन्त कमरे के बाहर निकल गए । रमेशप्रसाद हतबुद्धि होकर ताकते रह गए ।



कसक



[श्री० मदनमोहन मिश्र]

मेरे जी की कसक न पूछो,
योही उसे छिपी रहने दो ।
अपने रोम-रोम की पीड़ा,
मुझे शिला बन कर सहने दो ।

तनिक हवा तक मत लगने दो,
धधक उठेगी आग हृदय की ।
अपनी धीमी मधुर आह मे—
मुझे तड़पने दो, दहने दो ।



प्राचीन काल की विवाह-प्रथा

[श्री० सत्यभक्त]



व

तर्तमान समय में मनुष्य समाज का जैसा स्वरूप देखने में आता है, वह अनादि काल से ऐसा ही है अथवा उसमें परिवर्तन होता रहा है—यह प्रश्न प्रायः सभी विचार-शील व्यक्तियों के हृदयों में किसी न किसी समय उत्पन्न होता है।

अधिकांश लोग तो, जो धर्मोपदेशकों अथवा धर्मशास्त्र कहलाने वाले ग्रन्थों के वाक्यों को प्रमाण मानते हैं, समझते हैं कि मनुष्य-समाज को सृष्टि के आदि में किसी अविनाशी पुरुष ने उसी रूप में रचा था, जिसमें आज वह हमको दिखलाई पड़ रहा है। उनका यह भी विश्वास है कि मनुष्य-समाज में जो रीति-रिवाज देखने में आ रहे हैं, उनका विधान भी उसीने किया है। परन्तु जो लोग बुद्धिवाद के अनुयायी हैं और प्रत्येक सिद्धान्त को परीक्षा करने के पश्चात् स्वीकार करते हैं, उनका मत है कि जिस प्रकार सब प्रकार के पदार्थों और प्राणियों का क्रम-विकाश हुआ है, उसी प्रकार मनुष्य-समाज में भी आर्थिक परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं और विभिन्न स्वरूपों में होकर वह वर्तमान दशा तक पहुँचा है।

मनुष्य-समाज के विकास की इस प्रकार की जाँच-पड़ताल सौ वर्ष से भी कम समय से आरम्भ हुई है। उसके पूर्व भी यद्यपि विद्वानों को यह पता था कि संसार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रथाएँ पाई जाती हैं, पर उन प्रथाओं में किसी तरह का सम्बन्ध है अथवा वे विकास की शृङ्खला के विभिन्न स्वरूपों की परिचायक हैं, इसका निर्णय करने की चेष्टा किसी ने नहीं की थी। वे लोग पश्चिमीय देशों में प्रचलित एक पत्नी की प्रथा, पूर्वीय देशों में पाई जाने वाली एक पुरुष की अनेक पत्नियों की प्रथा तथा तिब्बत जैसे देशों में प्रचलित एक स्त्री के अनेक पतियों की प्रथा का हाल जानते थे। उनको यह भी मालूम था कि प्राचीन काल

की कितनी ही जातियाँ और वर्तमान समय में भी कितने ही जङ्गली क्रिकें अपना वंशानुक्रम पिता से नहीं, वरन् माता से बतलाते हैं। पर वे इन तमाम बातों को 'अजीब रीति-रिवाज' ही समझते थे और इनके वास्तविक महत्व का उनको पता न था। पर अन्त में इस सम्बन्ध का बहुत सा साहित्य प्रस्तुत हो जाने पर तथा अनेक दूरवर्ती देशों में रहने वाली जातियों की प्रथाओं में विलक्षण समानता देख कर विज्ञान-वेत्ताओं का ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट हुआ और उन्होंने प्राचीन साहित्य में पाए जाने वाले उदाहरणों तथा वर्तमान काल में प्रचलित विभिन्न प्रकार की प्रथाओं का विश्लेषण करके मनुष्य-जाति की विवाह तथा कुटुम्ब-सम्बन्धी प्रथाओं का एक क्रमबद्ध इतिहास तैयार किया। यद्यपि इन लोगों ने जो निर्णय किया है उसमें अनेक बातें अनुमान के आधार पर हैं, तो भी वे युक्तियुक्त अवश्य हैं और धर्मशास्त्रों में पाए जाने वाले एक दूसरे से विपरीत तथा बेसिर-पैर के क्रिस्सों से अधिक प्रमाणिक हैं।

वैज्ञानिकों के मतानुसार मनुष्य-समाज के विकास का इतिहास तीन प्रधान भागों में बँटा हुआ है—प्रथम जङ्गली अथवा आदिम युग, दूसरा अर्द्धसभ्य अथवा बर्बर युग और तीसरा सभ्य अथवा आधुनिक युग। इनमें से प्रत्येक युग निम्न, मध्यम और उच्च—इन तीन भागों में विभाजित है। इनमें से प्रत्येक काल में पूर्व-वर्ती काल की अपेक्षा उन्नति का परिमाण अधिक था और जीवन-निर्वाह के साधन उन्नत अवस्था में थे। जीवन-निर्वाह के साधनों पर विशेष रूप से ध्यान देने का कारण यह है कि प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व तथा उसकी उन्नति-अवनति का आधार भोजन पर ही है। और समस्त जीवधारियों में केवल मनुष्य को ही यह शक्ति मिली है कि वह चाहे जितने परिमाण में भोजन-सामग्री उत्पन्न कर सकता है और इसी के द्वारा वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ बन सका है।



आदिम युग

इस युग की सबसे पहली अवस्था वह है, जबकि मनुष्य पेड़ों पर बन्दरों के समान जीवन यापन करता था और वहाँ मिलने वाले फल, कन्द, मूल आदि ही उसके भोजन थे। पेड़ों पर रहने से खूँझार जङ्गली जानवरों से उसकी रक्षा होती थी। मनोभाव प्रकाशित करने के लिए मौखिक भाषा की उत्पत्ति इस युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। दूसरे काल में मनुष्य को अग्नि के व्यवहार की विधि मालूम हुई और उसकी सहायता से वह मछलियों तथा अन्य छोटे जल-जन्तुओं को भून कर खाने लगा। इस आविष्कार के कारण नदियाँ और समुद्र के किनारे रहने में मनुष्यों को विशेष सुविधा होने लगी और उनकी संख्या भी तेज़ी से बढ़ने लगी। इस समय मनुष्य पत्थर के बेढङ्गे हथियार बना कर तथा सङ्घबद्ध होकर जङ्गली जानवरों से अपनी रक्षा करने लगा। तीसरा काल तब आरम्भ हुआ जब मनुष्य को तीर-कमान का उपयोग करना आया और उसकी सहायता से वह तरह-तरह के पशु-पक्षियों को मार-मार कर अपना निर्वाह सुगमतापूर्वक करने लगा।

बर्बर-युग

जब मनुष्य मिट्टी के बर्तन बनाने लगे, दूध और मास के लिए जानवरों को पालने लगे और खेती-बारी करने लगे, तो उनके जीवन-निर्वाह की समस्या बहुत सुगम हो गई। इसी समय पृथ्वी के दूरवर्ती स्थलों और देश के भीतरी भागों में मनुष्यों की बस्ती बढ़ने लगी। क्योंकि ये लोग जहाँ कहीं जानवरों को चराने का सुभीता देखते थे, वहीं जाकर रहने लगते थे। फिर जब धातुओं और विशेष कर लोहे का आविष्कार हुआ और हल तथा बैलों से खेत जोतने की प्रथा आरम्भ हुई तो लोग बर्बर युग की सर्वोच्च चोटी पर जा पहुँचे। अब उनको अपने भोजन तथा वस्त्रों की चिन्ता बहुत कम हो गई और संस्कृति तथा कला-कौशल की उन्नति का अवसर मिलने लगा। इसी काल में लिखने की लिपि का निर्माण हुआ और ग्रन्थ-रचना होने लगी। इसके पश्चात् मनुष्य ने सम्य अथवा आधुनिक युग में प्रवेश किया। इस युग की विशेषता प्राकृतिक शक्तियों, जैसे वाष्प, विद्युत आदि से जीवन-निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं

को पूरा करना है। इसमें मनुष्य की शारीरिक शक्ति का महत्व दिन पर दिन कम होता जाता है और सब प्रकार के काम यन्त्रों द्वारा होते हैं।

विवाह का आरम्भ

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि किसी काल में मनुष्य एक प्रकार का पशु ही था और प्रायः उन्हीं की भाँति जीवन व्यतीत करता था। उस अवस्था में विवाह अथवा कुटुम्ब जैसी किसी बात की कल्पना करना अज्ञानता का सूचक है। जिस प्रकार हम पशुओं में पति पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहिन आदि की कोई धारणा नहीं देखते, वही अवस्था उस समय मनुष्य की हो सकना असम्भव थी। हम समझते हैं कि कितने ही परम्परा-भक्त इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाले प्राणी को मनुष्य के नाम से पुकारना स्वीकार न करेंगे। वास्तव में उसमें तथा वर्तमान काल के मनुष्य में बहुत बड़ा अन्तर है, तो भी सुविधा के लिए और इसलिए भी कि मनुष्य का विकास उसी से हुआ है, हम उसको मनुष्य ही कहेंगे। हमारे पास यह जानने का कोई माधन नहीं है कि जिस समय यह प्राणी सर्वथा पाशविक अवस्था में था, उस समय वह एक स्त्री के साथ अलग रहता था अथवा अन्य लोगों के साथ मिल कर। जैसा अधिकांश पशुओं और अन्य कितने ही प्राणियों में देखने में आता है कि उनके नर स्त्री-सहवास के सम्बन्ध में दूसरे नर को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं और यदि कभी दो नर एक ही मादा पर आसक्त हो जाते हैं तो उनमें भयङ्कर युद्ध होता है, जिसके फल से दोनों में से एक या तो मर जाता है या भाग जाता है, उसी प्रकार सम्भव है, आरम्भ में एक स्त्री का सम्बन्ध एक ही पुरुष से होता हो और वे कितने ही जङ्गली पशुओं की भाँति अपना कुटुम्ब लेकर पृथक् रहते हों। पर इसमें सन्देह नहीं कि जब प्रकृति की प्रेरणावश अथवा आत्मरक्षा के लिए मनुष्य दल बना कर रहने लगा और विभिन्न दलों ने क्रिडों का रूप ग्रहण कर लिया, तब परिस्थिति से लाचार होकर मनुष्य ने अपना स्वभाव बदल दिया और एक क्रिडों के समस्त स्त्री-पुरुषों में अबाध सहवास का नियम प्रचलित हो गया। उस अवस्था में क्रिडों की प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष की पत्नी



होती थी और उससे जो बच्चे उत्पन्न होते थे, वे सभी लोगों के पुत्र या पुत्री समझे जाते थे। कितने ही लेखकों का, जो एक पुरुष और एक स्त्री के सम्बन्ध को ही मनुष्यत्व का आभूषण अथवा सबसे बड़ा सद्गुण समझते हैं, मत है कि चूँकि उच्च श्रेणी के पशुओं और सब प्रकार के पक्षियों में, जो मनुष्यों के ससर्ग से दूर अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहते हैं, एक मादा का अनेक नरों से सम्बन्ध देखने में नहीं आता, इसलिए मनुष्य के सम्बन्ध में यह कल्पना करना कि आदिम अवस्था में एक स्त्री किन्हीं के तमाम पुरुषों की पत्नी होती थी, अनुचित है। पर उनका यह तर्क विशेष युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। यदि मनुष्य सब प्रकार से पशुओं के ही समान होता और उसके स्वभाव में कुछ विशेषता न होती तो वह भी सदैव उसी अवस्था में पड़ा रहता, जिसमें पशु अब तक मौजूद हैं। पर मनुष्य के भीतर विचार करने की और परिस्थिति के अनुकूल अपने को बना लेने की विलक्षण शक्ति है और इसीके द्वारा वह अपने से कहीं अधिक बलवान पशुओं और उनसे भी अधिक शक्तिशाली प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करके संसार का स्वामी बन सका है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य के समान निर्बल प्राणी का जगत में अस्तित्व रह सकता असम्भव था। मनुष्य में न तो हाथी के समान बल है, न शेर के समान उसके दाँत-पंजे तेज़ हैं, न उसका शरीर गेंडे के समान कठोर खाल से ढका है, न उसकी देह पर साही की भाँति तीक्ष्ण काँटे हैं, और न वह गिरगिट की भाँति अपना रङ्ग बदल कर चाहे जहाँ छिप सकता है। ऐसे आत्मरक्षा के साधनों से रहित और सर्वथा असहाय प्राणी के दुनिया में स्थिर रह सकने और उन्नति तथा वृद्धि कर सकने का एकमात्र आधार यही था कि उसकी जाति के सब व्यक्ति एक सूत्र में बँध कर रहें। कई सौ अथवा कई हजार मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक शक्ति के सम्मिलित हो जाने से एक ऐसे समाज-रूपी प्राणी का आविर्भाव हो सकता है जो हाथी के बल और शेर के दाँत तथा नाज़ूनों को भी सहज में परास्त कर सकता है। पर इस प्रकार का सङ्गठन तब तक असम्भव था, जब तक मनुष्य एक स्त्री को अपनी ही वस्तु बना लेता और किसी अन्य पुरुष के उसकी तरफ़ आकृष्ट होने से ज़बने-मरने को तैयार हो जाता। क्योंकि

जिस काल में न मनुष्यों के रहने के लिए पृथक्-पृथक् घर थे, न भोजन-सामग्री से भण्डार भरा था और सभी स्त्री पुरुष बिना वस्त्रों के प्रकृति की गौद में स्वच्छन्द विचरते थे, यह सम्भव न था कि किसी समय किसी स्त्री पर दूसरे व्यक्ति का चित्त चलायमान न हो जाय। इसलिए अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मनुष्य ने धीरे-धीरे स्त्री-सहवास सम्बन्धी ईर्ष्या पर विजय पा ली और एक प्रकार की सामूहिक-विवाह (Group marriage) की प्रथा प्रचलित हो गई। इसके अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध किन्हीं के स्त्री-पुरुषों तक ही सीमित था और अन्य किन्हीं या दल के स्त्री-पुरुष से कोई सम्बन्ध नहीं कर सकता था। यही विवाह अथवा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को किसी सीमा तक नियमित करने की सबसे पहली प्रथा थी और आज तक कहीं-कहीं इसके चिन्ह पाए जाते हैं।

भाई-बहिन का विवाह

जैसे-जैसे समय व्यतीत होने लगा, उपर्युक्त सामूहिक विवाह की प्रथा में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होने लगा और उससे क्रमशः अनेक प्रकार की विवाह प्रथाओं का आविर्भाव हुआ। इनमें सबसे पहली 'कन्सैन्गुइन' (Consanguine) विवाह-प्रथा थी। इसमें पति-पत्नी का सम्बन्ध पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से रक्खा गया था। अर्थात् एक विशेष परिवार के भीतर समस्त पितामह और पितामही परस्पर में पति-पत्नी होते थे। फिर उनके जितने लड़के-लड़कियाँ होते थे, वे एक दूसरे के पति-पत्नी होते थे। इसी प्रकार यह क्रम आगे चलता जाता था। इस प्रकार इस प्रथा में भाई और बहिनों में पति-पत्नी का सम्बन्ध होता था, चाहे वे सगे हों अथवा चचेरे और ममेरे। इस काल में केवल विभिन्न पीढ़ी वालों का जैसे पिता और पुत्री अथवा पुत्र और माता का पति-पत्नी-सम्बन्ध वजित माना गया था। अब भी अनेक जातियों में, जो सभ्य मानी जाती हैं, चचेरी और ममेरी बहिन से विवाह करने का नियम पाया जाता है। पर सगी बहिन से विवाह करने की प्रथा का अब कहीं चिन्ह नहीं मिलता और प्राचीन साहित्य में भी इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम प्राप्त होते हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण नावें के प्राचीन ग्रन्थों में, जो वेदों के संक्षेप

प्रमाणिक माने जाते हैं, मिलता है। उसमें एक स्थान पर कहा गया है—“देवताओं के सम्मुख तुम अपने सगे भाई का आलिङ्गन करो।” आगे चल कर लिखा है—“अपनी बहिन से तुम एक पुत्र उत्पन्न करो।” हमारे पुराणों में भी ऐसी कथाएँ कहीं-कहीं पाई जाती हैं। वैसे भी यदि पुराणों की इस कथा को, कि सृष्टिस्वायम्भुव मनु और शतरूपा से आरम्भ हुई, सच मानें, तो स्पष्ट है कि उनकी सन्तानों में, जो परस्पर में भाई-बहिन थीं, विवाह-सम्बन्ध अवश्य हुआ होगा। पर आजकल भाई-बहिन के सहवास की बात हतनी गर्हित तथा धृष्टित हो गई है कि कोई व्यक्ति उसका उल्लेख बिना नाक-भौं सिकोड़े नहीं कर सकता। कितने ही लोगों को तो यह विषय इतना ‘लजाजनक’ प्रतीत होगा कि वे यह स्वीकार ही न करेंगे कि दुनिया में कभी इस प्रकार की प्रथा प्रचलित रही होगी। पर समाज के विकास की सम्भावनाओं को समझ कर और हवाई टाप् में प्रचलित कुछ प्रथाओं के आधार पर यह निश्चय होता है कि कभी न कभी दुनिया में यह प्रथा अवश्य प्रचलित रही होगी।

सगोत्र-विवाह

जब प्रथम प्रकार की विवाह-प्रथा कुछ काल तक प्रचलित रह चुकी और लोगों को किन्हीं कारणों से भाई-बहिन का सहवास-सम्बन्ध हानिकारक प्रतीत होने लगा, तो एक दूसरी प्रथा का आविर्भाव हुआ, जिसके अनुसार भाई-बहिन का विवाह उसी प्रकार वर्जित मान लिया गया जैसे पहली प्रथा के अनुसार पिता और पुत्री का विवाह माना गया था। पर ऐसा परिवर्तन एकदम नहीं हो सकता था, इसलिए आरम्भ में एक माँ की सन्तान अर्थात् सगे भाई-बहिनों का सहवास-सम्बन्ध वर्जित हुआ। इसके पश्चात् अन्य पास के रिश्ते की बहिनों से विवाह करना भी अनुचित समझा जाने लगा। सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक मार्गन के मतानुसार यह नवीन प्रथा “कहीं अधिक सुविधाजनक थी और जिन क्रिस्तों में इसका प्रचार हुआ उनकी शीघ्रतापूर्वक वृद्धि होने लगी। क्योंकि जब एक परिवार की एक ही पीढ़ी के भीतर विवाह-सम्बन्ध होने का नियम टूट गया और पुरुष किसी भी स्त्री के साथ सम्बन्ध कर सकने

को स्वतन्त्र हो गए, तो जन-संख्या का विशेष रूप से बढ़ना स्वाभाविक था।

इस प्रथा का एक परिणाम यह भी हुआ कि प्रत्येक वंश कुछ पीढ़ियों के पश्चात् कई भागों में बँट जाने लगा। क्योंकि अब भाइयों का वंश अलग चलना था और बहिनों का अलग। इस प्रकार जब परिवार के लोगों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती थी और अनेक बहरी व्यक्ति भी आकर उसमें सम्मिलित हो जाते थे, तो उसके सञ्चालन में बाधा पड़ने लगती थी और लोग अपनी सुविधा के अनुसार अलग होकर रहने लगते थे। यद्यपि आजकल उक्त प्राचीन प्रथा में बहुत परिवर्तन हो गया है, तो भी आजकल एक-एक व्यक्ति के परिवार में सौ-सौ और दो-दो सौ प्राणी देखने में आते हैं। ऐसी दशा में कोई आश्चर्य नहीं कि प्राचीन काल में एक-एक परिवार के व्यक्तियों की संख्या हजारों तक पहुँच जाती हो और कुछ पीढ़ियों के पश्चात् वे अपने पुराने रिश्ते को भूल कर अपना पृथक् वंश स्थिर करते हो।

सामूहिक विवाह-प्रथा के जिन स्वरूपों का ऊपर वर्णन किया गया है, उनमें किसी बच्चे के पिता का पता लग सकना असम्भव था, पर माता का निश्चय कर सकना कुछ भी कठिन न था। यद्यपि उक्त प्रथा के अनुसार प्रत्येक स्त्री अपनी समस्त बहिनों और भाइयों के बच्चों को अपना ही बच्चा बतलाती थी और उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करती थी, तो भी वह अपने गर्भ से उत्पन्न बच्चों को पहिचान सकती थी। इसलिए जब तक सामूहिक विवाह की प्रथा जारी रही, तब तक वंश-क्रम केवल स्त्रियों से ही स्थिर किया जा सकता था। जङ्गली और निम्न श्रेणी के बर्बर लोगों में सदैव यही नियम प्रचलित रहा है और अब भी पाया जाता है। हमारे देश के मालाबार प्रान्त और द्रावनकोर रियासत के ब्राह्मणों में इसी से मिलती-जुलती प्रथा अभी तक मौजूद है और वहाँ घर की उत्तराधिकारिणी सदैव पुत्री ही होती है।

सामूहिक विवाह का एक उदाहरण

जिस सामूहिक विवाह की प्रथा का उल्लेख हमने ऊपर किया है, उसका उदाहरण अभी भी आस्ट्रेलिया



के आदिम निवासियों में, जो पैपन कहलाते हैं, पाया जाता है। यह प्रथा ऐसी विचित्र और पेचीदा है कि अन्य देशीय व्यक्ति को उसका पता अनेक वर्षों तक जॉच-पड़ताल करने पर ही लग सकता है। इस प्रथा का लोरीमर क्रिसन नामक अज़रेज़ पादरी ने, जो मुह्त तक इन लोगों में रहा था, बड़ा रोचक वर्णन किया है। उससे विदित होता है कि दक्षिणी आस्ट्रेलिया में गैम्बियर पहाड़ के पास रहने वाले पैपन दो बड़े समूहों में बंटे हुए हैं, जिनमें से एक को क्रोकी और दूसरे को कुमाइट कहते हैं। इन दोनों समूहों के भीतर स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक सहवास सर्वथा वर्जित है। पर एक समूह का कोई भी पुरुष जन्म से दूसरे समूह की किसी भी स्त्री का पति माना जाता है। इन लोगों में किसी स्त्रास व्यक्ति का स्त्रास स्त्री से विवाह नहीं होता, वरन् एक समूह का दूसरे समूह से विवाह-सम्बन्ध माना जाता है। इसके अतिरिक्त उन्न या किसी अन्य सम्बन्ध का भी इन लोगों में ज़्यादा नहीं रक्खा जाता। क्रोकी दल का प्रत्येक व्यक्ति कुमाइट दल की किसी भी स्त्री के साथ इच्छानुसार सहवास कर सकता है। ऐसी कुमाइट स्त्री से जो कन्या उत्पन्न होगी, वह यद्यपि उसकी पुत्री होगी तो भी कुमाइट दल की होने से वह उसकी स्त्री ही मानी जायगी। यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये लोग व्यवहार में इस प्रकार का आचरण करते हैं या नहीं, पर उनमें जो नियम प्रचलित है, उसके अनुसार पिता-पुत्री का सम्बन्ध अवैध नहीं कहा जा सकता। यह भी जान सकना कठिन है कि इस प्रथा का आविर्भाव उस काल में हुआ था, जब कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष में अवाध रूप से सहवास-सम्बन्ध होता था अथवा ऐसे किसी काल में, जब कि पिता और पुत्री का संयोग सामाजिक नियमों के अनुसार जायज़ माना जाता था।

यह दो क्रिज़ों वाली विवाह-प्रथा गैम्बियर पहाड़ के समीप ही नहीं पाई जाती, वरन् आस्ट्रेलिया के अनेक भागों में इसका प्रचार है। इसके अनुसार केवल सगे भाई-बहिनों और भाइयों की सन्तान तथा बहिनों की सन्तान का विवाह-सम्बन्ध वर्जित समझा जाता है। डारलिंग नदी के आस-पास रहने वाले आदिम निवासियों में दो के बजाय चार

समूह पाए जाते हैं। इन लोगों में पहले और दूसरे समूहों में क्रोकी और कुमाइट लोगों की भाँति विवाह सम्बन्ध होता है और उनकी सन्तानें क्रम से तीसरे चौथे समूह में शामिल कर दी जाती हैं। इसी प्रकार तीसरे और चौथे समूह में परस्पर विवाह-सम्बन्ध होता और उनकी सन्तानें पहले और दूसरे समूह में सम्मिलित कर ली जाती हैं। इस प्रकार इस प्रथा के अनुसार सगे भाई-बहिनों की सन्तान का परस्पर में विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता, पर उनकी अगली पीढ़ी में इस प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है।

इस प्रकार आस्ट्रेलिया के निवासियों में यह सामूहिक विवाह की प्रथा सर्वत्र फैली हुई है और इसने एक ऐसी सामाजिक रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लिया है, जो सब प्रकार से वैध समझी जाती है और जिसके नियमों का पालन प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य करना पड़ता है। ऊपरी दृष्टि से यह बड़ी घृणित जान पड़ती है, पर यदि विचार किया जाय तो वर्तमान समय में प्रायः सभी सभ्य देशों में प्रचलित बेरया-प्रथा की अपेक्षा इसे घृणित नहीं कहा जा सकता। इन सभ्य देशों में पिता, पुत्र, भाई सब एक ही वेश्या के पास जाते हैं और उससे उत्पन्न सन्तान के साथ सहवास करने में भी किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं किया जाता। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों की प्रथा यद्यपि एक अनजान व्यक्ति को स्त्री-पुरुषों के अवाध सम्बन्ध की तरह जान पड़ती है, पर जब उसके विषय में खोज की जाती है तो वह हृदय नियमों के आधर पर जान पड़ती है। इस प्रथा के फल-स्वरूप पैपन जाति के एक व्यक्ति को अपने घर से सैकड़ों कोस दूर अनजान प्रदेश में पहुँच जाने पर भी ऐसी स्त्री मिल जाती है, जो बिना सङ्कोच के उसको अपना पति स्वीकार करती है और उसकी मनो-कामना पूर्ण करती है। क्योंकि वह स्त्री उसके सहयोगी समूह की होने से अपने को जन्म से ही उस व्यक्ति की पत्नी समझती है। पर यदि वही स्त्री या पुरुष इन दोनों समूहों के बाहर के किसी व्यक्ति से सम्बन्ध कर लें तो भेद खुलने पर वे तुरन्त मार डाले जायें। इस प्रकार जो प्रथा विदेशियों को सर्वथा अनियमपूर्ण तथा स्वेच्छा-चारयुक्त जान पड़ती है, वह दरअसल हमारे वैवाहिक-जीवन से कम सुदृढ़ और विधियुक्त नहीं है।

इन जातियों में कहीं-कहीं स्त्रियों के अपहरण की प्रथा भी पाई जाती है, पर उसके भी नियम बंधे हुए हैं। जब कोई नवयुवक अपने मित्रों की सहायता से किसी कन्या को हरण करके लाता है, तो आरम्भ में वे सब उसके साथ सहवास करते हैं, पर बाद में वह उसी व्यक्ति की पत्नी मानी जाती है, जिसने हरण करने की योजना की थी। अगर वह स्त्री कुछ काल पश्चात् उसे छोड़ कर चले दे और कोई दूसरा व्यक्ति उसे पकड़ ले तो वह फिर उसकी पत्नी हो जाती है।

युगल-विवाह

जिस काल में समाज में सामूहिक विवाह की प्रथा प्रचलित थी, तब भी अथवा उससे भी पहिले युगल-विवाह अर्थात् एक स्त्री से एक पुरुष का सम्बन्ध कुछ अंशों में प्रचलित था। उस समय यह सम्भव था कि एक पुरुष का जिन अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध हो उनमें से किसी एक को वह मुख्य रूप से अपनी समझता हो, और स्त्री भी अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखते हुए भी किसी एक की विशेष रूप से अनुगत हो। यह एक ऐसी बात है, जिसके समझने में लोगों को कठिनाई पड़ती है और इसी के आधार पर यूरोपियन लेखक असभ्य जाति की स्त्रियों पर प्रायः व्यभिचार का दोष लगाने लगते हैं। ज्यों-ज्यों समाज में सहवास-सम्बन्धी बन्धन उत्पन्न होते जाते हैं और एक ही वंश के विभिन्न रिश्तों की स्त्रियों से विवाह-सम्बन्ध वर्जित माना जाने लगता है वैसे-वैसे ही युगल-विवाह की प्रथा ज़ोर पकड़ने लगती है। इसका उदाहरण हमको अमेरिका-निवासी रेड इण्डियन्स लोगों की सामाजिक अवस्था पर ध्यान देने से मिल सकता है, जिनमें कई सौ रिश्तों में सहवास करना नियम-विरुद्ध माना जाता है। समाज में ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाने पर सामूहिक विवाह की रीति का स्थिर रह सकना कठिन हो जाता है और पुरुष प्रायः एक ही स्त्री को पत्नी बना कर रखना सुविधाजनक समझते हैं, यद्यपि कभी-कभी वे एक से अधिक स्त्रियों से भी विवाह कर लेते हैं और कभी बिना विवाह के भी सहवास सम्बन्ध कर लेते हैं। पर स्त्रियों से यह आशा अवश्य की जाती है कि जब तक वे एक पुरुष की पत्नी रहें तब तक दूसरे से सम्बन्ध न रखें। यदि वे इस नियम का उल्लङ्घन करती हैं तो उनको बड़ी निर्दयता-

पूर्वक दण्ड दिया जाता है। पर साथ ही यह भी नियम होता है कि यह विवाह-सम्बन्ध पति-पत्नी में से किसी के चाहने पर बड़ी जल्दी भंग हो सकता है। ऐसी अवस्था में बच्चे माँ के साथ रहते हैं। हमारे देश की अनेक शूद्र जातियों में इसी प्रकार की अथवा इससे कुछ ही भिन्न प्रथा अब भी प्रचलित है।

एक ही वंश के अन्तर्गत विवाह-सम्बन्ध की प्रथा के मिटने का एक कारण यह भी है कि प्राकृतिक दृष्टि से विभिन्न वंशों का विवाह-सम्बन्ध अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। इस सम्बन्ध में मार्गन ने लिखा है कि “एक दो क्रिडों में विवाह-सम्बन्ध होने से, जो एक ही वंश के नहीं हैं, भावी पीढ़ी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अधिक शक्तिशालिनी उत्पन्न होती है। दो उन्नति-शील वंशों का संयोग होने से नवीन मस्तिष्क की उत्पत्ति होती है और भावी सन्तान में दोनों वंशों के गुणों का समावेश हो जाता है।” इसलिए जो जातियाँ गोत्रों में बँटी होती हैं, वे शीघ्र ही अन्य जातियों पर प्रधानता प्राप्त कर लेती हैं अथवा दूसरी जातियाँ भी उन्हीं का अनुकरण करने लगती हैं।

इस प्रकार विदित होता है कि कुटुम्ब और विवाह का क्रम-विकाश विवाह-सम्बन्ध के घेरे के निरन्तर सङ्कुचित होते जाने के कारण हुआ है। पहले जहाँ एक क्रिडों के समस्त स्त्री-पुरुष पारस्परिक सहवास के सम्बन्ध में स्वतन्त्र थे, बाद में इस विषय में अनेक प्रकार की रूकावटें उत्पन्न होने लगीं। आरम्भ में समीप के और तत्पश्चात् दूर के रिश्तेदारों में, और अन्त में जिनसे किसी प्रकार का कानूनी रिश्ता भी हो उनसे विवाह कर सकना नियम-विरुद्ध माना जाने लगा। अन्त में ऐसी अवस्था हो गई कि एक पुरुष को केवल एक ही स्त्री से सहवास सम्बन्ध रखने को बाध्य होना पड़ा। इस दृष्टि से विचार करने पर उन लोगों का कथन असत्य जान पड़ता है, जो कहते हैं कि एक पुरुष और एक स्त्री के सम्बन्ध की प्रथा का जन्म प्रेम के कारण हुआ है। विवाह के घेरे के सङ्कुचित होने का एक परिणाम यह हुआ कि पहले जहाँ प्रत्येक पुरुष को आवश्यकता से अधिक स्त्रियाँ मिल जाती थी, अब वे दुर्लभ हो गईं और उनको प्राप्त करने के लिए उद्योग करना आवश्यक हो गया। इसलिए युगल-विवाह की प्रथा जारी होने पर स्त्री-अपहरण और



स्त्री-विक्रय की प्रथाएँ ज़ोर भकड़ने लगी। दूसरा परिणाम यह हुआ, जिसका उदाहरण भारतीय समाज में सर्वत्र मिल सकता है, कि विवाह-सम्बन्ध निश्चित करने का अधिकार वर तथा कन्या के बजाय उनके माता-पिताओं अथवा अन्य वृद्ध जनों के हाथ में चला गया। इसलिए प्रायः ऐसा होता है कि जिन दो व्यक्तियों का विवाह-सम्बन्ध किया जाता है वे प्रायः एक-दूसरे से सर्वथा अनजान होते हैं और जब तक विवाह का अवसर बिल्कुल समीप नहीं आ जाता तब तक उनको इसका पता भी नहीं लगता। अमेरिका के असम्प्र रेड इण्डियन्स में भी यही नियम प्रचलित है और वहाँ कन्याओं के विवाह का सम्पूर्ण अधिकार उनकी माताओं को ही होता है।

परिवर्तन के चिन्ह

इस प्रकार परिस्थितियों के कारण यद्यपि सामूहिक विवाह की प्रथा का लोप होकर युगल-विवाह की प्रथा चल पड़ी, तो भी संसार के अधिकांश देशों में अभी तक ऐसे चिह्न पाए जाते हैं, जिनसे वहाँ पर किसी काल में सामूहिक विवाह की प्रथा का अस्तित्व सिद्ध होता है। कैलीफोर्निया (अमेरिका) के निवासी रेड इण्डियन्स कुछ ऐसे त्योहार मनाते हैं, जिनमें अनेक क्रिकों के स्त्री-पुरुष सम्मिलित होकर अबाध रूप से सहवास करते हैं। ये त्योहार सम्भवतः उस युग के स्मारक स्वरूप हैं, जब कि एक क्रिकों को समस्त स्त्रियाँ दूसरे क्रिकों के समस्त पुरुषों की पत्नियाँ मानी जाती थीं। आस्ट्रेलिया में भी इस प्रकार का रिवाज पाया जाता है। 'विवाह के इतिहास' के लेखक वेस्टरमार्क ने भारत की सन्धाल, पुजा और कोटार नामक कितनी ही जातियों में इस प्रकार के त्योहारों के होने का उल्लेख किया है। अनेक दूसरी सभ्य जातियों में भी ऐसे ही रिवाजों के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं, पर वर्तमान काल में सभी देशों के सुशिक्षित व्यक्तियों द्वारा ऐसी प्रथाओं के विरुद्ध घृणा प्रकट किए जाने के कारण लोग या तो उनको त्यागते जाते हैं अथवा गुप्त रूप से करते हैं।

कुछ प्राचीन और अर्वाचीन जातियों ने इन रिवाजों को धार्मिक रूप दे दिया है। बैबीलोनिया में स्त्रियाँ वर्ष में एक बार मिलटा के देव-मन्दिर में भेजी जाती थीं, जहाँ उनको स्वेच्छानुसार सहवास करने का अधिकार प्राप्त होता था। पश्चिमी एशिया की अन्य

जातियाँ अपनी युवती स्त्रियों को कई वर्ष के लिए एनेटिस के मन्दिर में भेज देती थीं, जहाँ वे अपनी पसन्द के युवकों से सम्बन्ध रखती थीं और इसके पश्चात् उनका विवाह होता था। इस प्रकार की अनेक प्रथाएँ धार्मिक आवरण में एशिया के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। हमारे देश के दक्षिणी प्रदेशों में जो देवदासियों की प्रथा पाई जाती है, वह भी इसी प्रकार की है। इसके सिवा अनेक जातियों में कुमारी कन्याओं का देव-मूर्तियों अथवा पीपल के पेड़, नारियल आदि जड़ पदार्थों के साथ विवाह करके तत्पश्चात् उनको स्वच्छन्द रूप से छोड़ देने की प्रथा पाई जाती है। इन प्रथाओं का अनुशीलन करने से यह भी विदित होता है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ये प्रथाएँ शिथिल पड़ती जाती हैं। उदाहरणार्थ जिन प्रदेशों में प्राचीन काल में प्रौढ़ा स्त्रियों के स्वतन्त्र रूप से सहवास करने का रिवाज था, अब वहाँ केवल कन्याएँ ही ऐसा करती हैं। जहाँ प्रत्येक वर्ष स्त्रियाँ कुछ समय के लिए पत्नीत्व के बन्धन से स्वतन्त्र कर दी जाती थीं, वहाँ अब जीवन में केवल एक बार ऐसा किया जाता है। जहाँ विवाह के पश्चात् अबाध रूप से सहवास की रस्म प्रचलित थी, अब वहाँ उसे विवाह के पूर्व सम्पन्न किया जाता है। जहाँ शादी के समय वर के समस्त सहकारियों और मित्रों को नव-वधू के साथ सहवास करने का अधिकार था, वहाँ अब वह केवल कुछ विशेष व्यक्तियों तक नियमित कर दिया गया है। भारत, मलाया और दक्षिणी टापुओं के कितने ही आदिम निवासियों और अमेरिका के रेड इण्डियन्स के कितने ही क्रिकों में आज तक विवाह के पूर्व कन्याओं को इच्छानुसार सहवास करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अमेरिका के रेड इण्डियन्स के विषय में अगैसीज़ नामक लेखक ने एक क्रिसा लिखा है कि एक बार उसने एक वैभवशाली तथा सुशिक्षित वंश की कन्या से पूछा कि तुम्हारा बाप कहाँ है? कन्या कुछ न कह सकी, पर उसकी माँ ने मुस्करा कर कहा - "उसका बाप नहीं है, वह संयोगवश उत्पन्न हुई है।" यही लेखक आगे चल कर कहता है—“रेड इण्डियन और रेड इण्डियन तथा यूरोपियनों के संयोग से उत्पन्न स्त्रियाँ सदैव अपने नाजायज़ बच्चों के सम्बन्ध में इसी प्रकार बातें करती हैं, और उनके कथन में



लज्जा अथवा दुःख का कोई भाव नहीं पाया जाता। उनका हृदय इस सम्बन्ध में निष्पाप होता है और वे कभी यह कल्पना भी नहीं करती कि उन्होंने कोई दूषित कार्य किया है। इन लोगों में बच्चे केवल अपनी माँ को जानते हैं, क्योंकि वही उनका पालन-पोषण करती है। बाप के सम्बन्ध में वे प्रायः अनजान होते हैं। उनको तथा उनकी माताओं को कभी यह खयाल भी नहीं आता कि बाप पर उनका किसी प्रकार का दावा है।” यद्यपि यह अवस्था अनेक बाहरी लोगों को अद्भुत जान पड़ती है, पर वास्तव में वह सामूहिक विवाह और माता से वंशानुक्रम की प्रथाओं से उत्पन्न हुई है।

फिर कितनी ही जातियों में यह प्रथा पाई जाती थी कि वर के साथ जाने वाले बराती और मेहमान परम्परा के अनुसार बधू के साथ सहवास करने का दावा करते थे और वर की पारी सबसे अन्त में आती थी। यह प्रथा एबीसीनिया (अफ्रीका) की बारिआ नामक जाति में अभी तक मौजूद है। अन्य स्थानों में कोई प्रधान पुरुष, जो क्रिकें का सरदार, धर्मगुरु या राजा होता है, जाति या समाज के प्रतिनिधि की हैसियत से सबसे पहली रात को बधू के साथ सहगमन करता है। हमारे देश में कुछ अत्यन्त धार्मिक तथा आचारशील समझी जाने वाली जातियों में विवाह के पश्चात् अपनी नवबधू को अपने धर्मगुरु अथवा आचार्य के पास ले जाते हैं और उससे संयोग हो जाने के पश्चात् प्रसाद स्वरूप उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करते हैं। यूरोप के एरेगोनिया नामक प्रदेश में जब किसान सरदारों के गुलाम समझे जाते थे, तो प्रत्येक नवविवाहिता स्त्री को प्रथम रात उनसे सहवास करना पड़ता था। सन् १४८६ में फ्रडोनिश नाम के शासक ने इस प्रथा का अन्त कर दिया। उसने इस सम्बन्ध में जो आज्ञा-पत्र प्रचारित किया था, उसमें लिखा है—“हम निश्चय करते हैं और घोषणा करते हैं कि अब से आगे कोई सरदार विवाह की प्रथम रात्रि को किसी किसान की स्त्री के साथ न सो सकेगा। पहली रात्रि को जब वह स्त्री अपने शयनागार में जायगी, तो किसी सरदार को यह अधिकार न होगा कि वह अपने पद की हैसियत से उस स्त्री के पास जाय। ये सरदार किसी किसान के पुत्र अथवा पुत्री का उसकी मर्जी के विरुद्ध मिहनताना देकर या बिना मिहनताने के उप-

योग न कर सकेंगे।” हमने सुना है और अखबारों में भी पढ़ा है कि राजपूताने के कितने ही जागीरदार अब भी इस प्रकार का दावा करते हैं और जो विशेष रूप से लम्पट हैं, वे उसे किसी हद तक उपयोग में भी लाते हैं।

आधुनिक विवाह-प्रथा

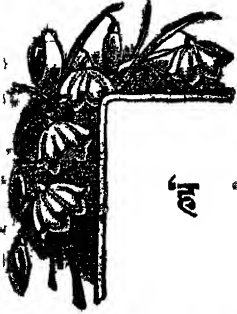
युगल-विवाह की प्रथा में क्रमशः परिवर्तन होकर एक पति और एक पत्नी के विवाह की प्रथा का आविर्भाव हुआ, जो वर्तमान सभ्यता का एक प्रधान लक्षण समझी जाती है। इसमें स्त्री की प्रधानता मिट कर कुटुम्ब का कर्ताधर्ता पुरुष बन गया है और वही अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए सन्तान उत्पन्न करता है। इस विवाह-प्रथा में युगल-विवाह की अपेक्षा एक विशेष अन्तर यह है कि इसमें विवाह-सम्बन्ध प्राचीन काल की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़ हो गया और वह पति-पत्नी में से किसी की इच्छा से ही भङ्ग नहीं हो सकता। अब यदि ऐसा करने की आवश्यकता हो तो इसका अधिकार प्रायः पुरुष को ही होता है और वही स्त्री को त्याग सकता है। पुरुष को सामाजिक रुढ़ियों के अनुसार अन्य स्त्रियों से सहवास-सम्बन्ध स्थिर करने का भी अधिकार अधिकांश में माना जाता है और जैसे-जैसे सभ्यता की वृद्धि होती जाती है, यह प्रवृत्ति जोर पकड़ती जाती है। पर यदि स्त्री अपने सहवास-सम्बन्धी प्राचीन अधिकार को फिर से उपयोग में लाने की चेष्टा करे तो उसे पूर्वकाल की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्राचीन समय की सरलता तथा सत्यता का अन्त होकर कपटाचरण की वृद्धि हो रही है। अब भी पुरुष और स्त्रियाँ अपने सगे से सगे सम्बन्धियों से सहवास-सम्बन्ध स्थिर कर लेती हैं; पर यह कार्य समाज की दृष्टि बचा कर किया जाता है। इसके कारण गुप्त व्यभिचार, अण-हत्या आदि के दोष भी समाज में विशेष रूप से बढ़ रहे हैं। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक विवाह-प्रणाली प्राचीन काल की प्रणालियों से अवश्य ही श्रेष्ठ अथवा लाभजनक है। दोनों में कुछ गुण और कुछ दोष हैं और उनका आविर्भाव तथा प्रचार भलाई बुराई की दृष्टि से नहीं, वरन् समाज के आर्थिक सङ्गठन और जीवन-निर्वाह के साधनों में परिवर्तन न होने से हुआ है।



कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कला का उद्देश्य



हमारी तो यह धारणा है कि जिस मनुष्य में सौन्दर्य-भावना पूर्ण रूप से विकसित हो जायगी, उसकी चञ्चलता आप ही आप नष्ट हो जायगी। सच्चा कलाकार वही है, जो हमारे मन की चञ्चलता को शान्त

करके हमें सत्य की ओर ले जाय।'

—प्रेमचन्द

इस प्रसङ्ग में हम कहानी-कला के उद्देश्य पर विचार करना चाहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि कहानी-कला का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन है। परन्तु हम इस मत से सहमत नहीं हैं। कहानी का उद्देश्य 'मनोरञ्जन' के अतिरिक्त कुछ और भी है। मनोरञ्जन कहानी की सर्वोपरि विशिष्टता है, परन्तु वह उसका उद्देश्य नहीं है।

कला क्या है? कला का जीवन से क्या सम्बन्ध है? इन प्रश्नों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

सरस अनुभव की अभिव्यक्ति ही कला है—'Art is the expression of Aesthetic experience'।

सरस अनुभव में मनोभाव, विचार और कल्पनाओं का समन्वित होना है। बर्बार्ड शॉ का कथन है कि 'सुखद अनुभव को ही सरस अनुभव कहते हैं।' इससे यह निष्कर्ष निकला कि सुखद, आनन्दप्रद, सुन्दर मनोभावों की अभिव्यक्ति ही कला है।

अभिव्यक्ति के प्रकार अनेक हैं :—यथा काव्य, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी।

जिन भावनाओं और सरस अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की जाती है, उनका मूल स्रोत क्या है? इसका

एक शब्द में उत्तर है 'जीवन'। कला और जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योंकि कला अपने उपकरण जीवन से प्राप्त करती है। कला की विशेषता इसी में है कि वह मानव-जीवन की अन्तर्वस्तियों का चित्रण करती है और जीवन की विशेषता इसी में है कि वह कला में अपनी छाया देख कर प्रफुल्लित हो जाता है। 'जीवन कला का स्रोत है, अनादि निर्भर है।' आदि-काल से जीवन और कला में अभेद्य सम्बन्ध रहा है।

कला जीवन की छाया है, इसलिए दिव्य कलाकार हमें जीवन के सौन्दर्य के दर्शन कराता है। ऐसा कलाविद् शील, सदाचार और संयम की ओर उदासीन भाव नहीं रख सकता। जिस प्रकार असंयत जीवन में सुख नहीं, उसी प्रकार वह कृति हमें आनन्द प्रदान नहीं कर सकती, जिसमें शीलोत्कर्ष का अभाव हो।

'यथार्थवादी' सम्प्रदाय के अन्ध-भक्त 'कला को कला के लिए' मानते हैं। वे कला में सदाचार और शील की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते। परन्तु, यथार्थ में, यह 'वाद' ग्राह्य नहीं हो सकता। क्योंकि कला का अन्तिम लक्ष्य आनन्द है। कला मानव-हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द का उद्गार करती है। अतः जब तक कला उद्देश्य-विहीन रहेगी, तब तक वह हमें आनन्द प्राप्त नहीं करा सकती।

पूर्व और पश्चिम की कला-उपासना में बड़ा महत्व-पूर्ण अन्तर है। एक वाद्य सौन्दर्य के प्रत्यक्षीकरण में अपने लक्ष्य की सफलता मानती है, तो दूसरी आत्मा के साक्षात्कार—विरवदर्शन को कला का अन्तिम ध्येय मानती है। भारतीय संस्कृति की सबसे अनूठी विशिष्टता ही यह है कि हमारी संस्थाओं, संस्कारों, कलाओं और साहित्य का अन्तिम ध्येय 'आनन्द' है। सबका प्रयास विश्वात्मा की खोज है।

आर्य-धर्म तथा दर्शन परमात्मा के दर्शन का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। परन्तु 'दर्शन' में कला की सरसता

नहीं होती। कला में यही विशेष गुण है कि वह सौन्दर्यानुभूति के द्वारा सत्य विश्व के दर्शन कराती है। उपन्यास-सम्राट श्री० प्रेमचन्द जी के शब्दों में—“कला का प्रधान गुण सुन्दर और सत्य है। जो असुन्दर और असत्य में डूबा हो, वह अपनी कला में गुण कहाँ से पैदा करेगा? जो मन में है वही तो कलम से निकलेगा। हो सकता है कि कोई कलाकार नास्तिक होकर भी भक्तिपूर्ण चित्रों की या भक्तिरस की कविता की रचना करे, पर इस रचना में कदापि वह ओज और प्रभाव नहीं हो सकता, जो एक आस्तिक की रचना में हो सकता है। सदाचार का उद्देश्य संयम है, संयम में शक्ति है, और शक्ति ही आनन्द की बुनियाद है। × × × जो स्वयं संयमहीन है, वह शक्तिहीन भी होगा और शक्तिहीन आदमी न आनन्द का अनुभव कर सकता है और न उसकी कल्पना ही कर सकता है।”

इसलिए कलाकार का कर्तव्य है कि वह आनन्द की सृष्टि करने के लिए—सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण करने के लिए—संयम और सदाचार का पालन करे। सौन्दर्य की अनुभूति के लिए तप और साधना की आवश्यकता है।

कहानी में भी सौन्दर्य की सृष्टि के लिए साधना और संयम अपेक्षित हैं। कहानी में चरित्र-चित्रण द्वारा आत्मा के सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण कराया जाता है। यही सौन्दर्य हमारे हृदय की—मानव-हृदय की सात्विक वृत्ति को जाग्रत कर मानव के लिए उत्कर्ष, विकास

❀ “उच्च सदाचार मनुष्य को यह आदेश देता है कि जो उपयोगी हो, उसे वह ग्रहण करे। वह आदर्शों की आज्ञा का पालन करने की अनुमति देता है। इस परिस्थिति में, सौन्दर्य की खोज करने से, वीरात्मक आदर्शों का सौन्दर्यात्मक आदर्शों के साथ सामञ्जस्य हो जाता है। प्रत्येक वीरात्मक कार्य सुन्दर हो जाता है, और सौन्दर्य के लिए आत्मत्याग का प्रत्येक कार्य वीरात्मक हो जाता है।

जिस दिन ऐसा होगा, उसी दिन कला की सार्थकता सिद्ध हो जायगी।”

—पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

‘विश्व-साहित्य’ पु० सं० २१६

और आनन्द का मार्ग प्रशस्त कर देता है। कहानी में ‘प्रचार’ और शिक्षा के लिए भी गुञ्जाइश है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि वे सरस अनुभव के अन्तर्गत ही रहें। यदि सरसता से हीन होकर ‘प्रचार’ का कहानी में सन्निवेश किया जायगा, तो वह ‘विशुद्ध प्रचार’ (Pure and simple propaganda) होगा, साहित्य या कला नहीं।

कहानी में दर्शन और धर्म के तथ्यों का निर्वाह सम्भव है। इसलिए कलाकार का कर्तव्य है कि वह केवल मनोभावों की अभिव्यक्ति को ही अपना लक्ष्य न बनावे, वरन् दार्शनिक और धार्मिक पहेलियों को अपनी कला में स्थान दे। सुप्रसिद्ध साहित्यिक एवं दार्शनिक ब्रैडले का कथन है कि कविता, कला और धर्म विश्व की अन्तिम पहेलियों से अपना सम्पर्क न रक्खेंगे, तो अध्यात्मशास्त्र (Metaphysics) का कुछ भी मूल्य न रहेगा।

लेखक कहानी इसलिए लिखता है कि वह उस सत्य और सौन्दर्य का अनुभव जगत को कराना चाहता है, जिसका उसने प्रत्यक्षीकरण किया है—साक्षात्कार किया है। यदि कलाकार इस सत्य का अपने पाठकों को अनुभव करा सकता है, तो वह सफल कलाकार है।

❀

❀

❀

‘डोरा’

जब कहानी-लेखक किसी कहानी की रचना करना चाहता है, तो सबसे पहले वह उस भाव को अपनी विचार-पद्धति का केन्द्र बना लेता है, जो किसी घटना के उपरान्त, उसके हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। ऐसी घटना कभी काल्पनिक होती है, कभी सत्य। ‘डोरा’ एक उच्च कोटि की प्रेम-कहानी है। इसलिए स्वभावतः उसका मौलिक भाव प्रेम है। प्रेम के इस स्वरूप ने लेखक को एक ‘उद्देश्य’ प्रदान किया है। ‘डोरा’ का आधार चाहे सत्य घटना हो या काल्पनिक, परन्तु वह हमें वास्तविक और सत्य प्रतीत होती है। इसमें आत्म-चरित्र-पद्धति का आश्रय लिया गया है। पात्र स्वयम् अपनी कथा कहता है। डोरा का कथानक बड़ा सरल, उत्कृष्ट और रोचक है।

‘डोरा’ कहानी का नायक भारतीय नवयुवक है, वह अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए लन्दन जाता है। वहाँ



दो मास रह कर स्कॉटलैण्ड के हार्डलैण्डर्स में आकर वहाँ की एक रम्य घाटी में अपना निवास-स्थान बनाता है। एक गर्मी की रात को पहाड़ी पर सैर करने के लिए वह चल पड़ता है। नीचे घाटी में एक शिकारी कुत्ता एक युवती पर आक्रमण करता है। युवक उसका आर्त-नाद सुन कर उधर दौड़ पड़ता है और युवती की प्राण-रक्षा करता है। युवती अपने ग्राम को चली जाती है। युवक पर उसके सौन्दर्य, सादगी, शील और लज्जा-शीलता का बड़ा गहरा असर पड़ता है। वह पहेली की तरह घपटों उसके इन गुणों का चिन्तन करता रहता है।

अब वह नित्य सायंकाल को उसी घाटी में घूमने जाना अपना नियम बना लेता है। सातवें दिन फिर उस युवती से भेंट हो जाती है। युवती उस रूमाल को वापस करती है, जो युवक ने उस दिन उसके घाव पर फाड़ कर बाँधा था। रूमाल में युवती ने 'D' लिख दिया है। युवक के आग्रह से युवती घास पर बैठ जाती है और दोनों में कथोपकथन होता है। नाम-पता पूछा जाता है। युवक का नाम मोहन है और युवती का 'डैरोथी विल्सन' जिसे 'डोरा' भी कहते हैं। युवक और कुछ पूछना चाहता है, परन्तु डोरा भाग जाती है, पर रविवार को मिलने का वादा करके जाती है।

रविवार को दिल खोल कर बातें होती हैं। युवक पर डोरा की साहित्यिक-रुचि, विद्वत्ता और विमल चरित्र का बड़ा प्रभाव पड़ता है। वह डोरा के भारतीय प्रेम पर मुग्ध है। प्रतिदान स्वरूप डोरा में भी मोहन के लिए प्रेम का उदय हो जाता है।

एक दिन डोरा मोहन को चाय पीने का निमन्त्रण देती है। मोहन आता है। वहाँ उसकी मि० लन से भेंट हो जाती है। भोजन पान करते समय डोरा और मोहन में परस्पर प्रेमपूर्वक वार्तालाप होता है। पर मि० लन की त्वोरियो में बल पड़ जाते हैं। मि० लन और मोहन में विवाद हो जाता है। जब मोहन नाच के लिए डोरा का हाथ पकड़ता है, तो मि० लन आपत्ति उपस्थित करता है। डोरा के निवेदन पर मि० लन चल देता है। नृत्य होता है। अन्त में मि० लन के विषय में चर्चा छिड़ जाती है। मि० लन डोरा के पिता के मित्र हैं, मृत्यु के समय डोरा के पिता मि० लन को डोरा की कभी-कभी देख-भाल के लिए कह गए थे। एक बार

मि० लन डोरा से विवाह का प्रस्ताव भी कर चुका है। परन्तु डोरा ने उसे अस्वीकार कर दिया है।

एक दिन महीनो बाद, उसी घास पर सन्ध्या समय मोहन बैठा है। अपने प्रेम-नाटक के अन्त के विषय में चिन्तन कर रहा है। इसी समय मि० लन आता है और कहता है कि 'डोरा मेरी है, उसे कोई अपनी नहीं बना सकता, जो उसे अपनी बनाने की चेष्टा करेगा उसे मैं मार डालूँगा।' मोहन उत्तर देता है कि डोरा का नाम भूल जाओ, वह तुमसे घृणा करती है। इसके उपरान्त दोनों में गाली-गलौज और हाथा-पाई शुरू हो जाती है। मोहन विजयी रहता है।

इस घटना के दूसरे दिन मोहन डोरा से मिलने आता है। सम्भाषण के सिलसिले में एक स्थान पर कहता है—'मैं शीघ्र लन्दन जाने वाला हूँ।' इस दुःखद वाक्य को सुन कर डोरा के हृदय पर आघात होता है। वह वियोग का कारण जानना चाहती है। डोरा आग्रह करती है कि यहीं रहो। मोहन आग्रह को स्वीकार कर प्रेम-पाश में बँध जाता है। प्रेमावेश में आकर जब डोरा मोहन के गले में हाथ डालती है, तो लन प्रवेश करके अपना अमर्ष व्यक्त करता है। वह इस मिलन को अनियमित ठहराता है। लन मोहन को अपने समीप बुलाता है। मोहन आता है। पर ज्योंही मि० लन मोहन की हत्या करने के लिए छुरी निकालता है, त्योंही डोरा बीच में आकर खड़ी हो जाती है। लन की छुरी डोरा के हृदय में घुस जाती है। डोरा के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।

इस प्रकार जो युवक अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए स्कॉटलैण्ड गया था, वह अपना हृदय तोड़ कर वापस आता है।

संक्षेप में यही कहानी का कथानक है।

इस कहानी में केवल तीन पात्र हैं, जिनमें एक स्त्री तथा दो पुरुष हैं। मोहन और डोरा में प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। परन्तु लन इस प्रेम-सम्बन्ध में बाधा डालता है। इस कथानक में घटनाओं की योजना ऐसे उत्तम ढङ्ग से हुई है कि वे एक सूत्र में पिरोए हुए मोतियों के हार के समान हैं। डोरा चरित्र-प्रधान कहानी है। इसलिए घटनाएँ बहुत कम हैं। घटनाओं की शृङ्खला इतनी नियमबद्ध है कि एक के बाद दूसरी घटना घटित

होती है, परन्तु उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं दिखलाई पड़ती। इसी को संछिष्ट योजना कहते हैं। स्कॉटलैण्ड की घाटी में डोरा से प्रथम मिलन होता है। मोहन उसकी प्राण रक्षा करता है। सातवें दिन मिलन होता है। यह निरुद्देश्य नहीं है। इसमें डोरा के प्रेम का परिचय मिलता है। फिर रविवार को मिलन होता है, इससे प्रेम में और भी दृढ़ता आ जाती है। चाय-पाटी की घटना तीव्रतम स्थिति के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। डोरा की आन्तरिक भावनाओं का परिचय इस मिलन में मिलता है। मि० लन और मोहन के मिलन की घटना का आयोजन बड़ी निपुणता से किया गया है। इस घटना का उद्देश्य है 'कार्य' की ओर पाठक को शीघ्र से शीघ्र मार्ग से ले जाना। कहानी की अन्तिम घटना वह है, जहाँ प्रेम-नाटक का पटाचेप होता है।

मोहन और डोरा के प्रथम मिलन में मोहन डोरा की प्राण-रक्षा करता है, परन्तु अन्तिम मिलन में डोरा मोहन की प्राण-रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करती है। कैसा विचित्र विधान है !!

कहानी की गति बड़ी तीव्र है और शीघ्र से शीघ्र वह अपने चरम ध्येय तक पहुँचना चाहती है। इस कहानी की तीव्रतम स्थिति उस स्थल पर है, जहाँ मि० लन मोहन की हत्या के लिए छुरी उठाता है। यही स्थल है, जहाँ पाठक की अभिरुचि चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। पाठक की मोहन के साथ हार्दिक सहानुभूति हो जाती है।

कहानी में नाटकीय तत्वों का सन्निवेश बड़ी निपुणता से हुआ है। नाटकीय तत्त्व-कार्य (Action) का प्रयोग कहानी की घटनाओं से स्पष्ट विदित होता है। जो घटनाएँ, कहानी में, घटित होती हैं, वे सामान्य नहीं हैं। उनका प्रभाव हमारे हृदय पर ही नहीं पड़ता, वरन् वे हमारे हृदय में विविध भावों को जाग्रत करती हैं। हमारा हृदय डोरा के साथ है, हम मोहन से सहानुभूति रखते हैं, पर मि० लन के प्रति हममें घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है।

लेखक ने मानव-प्रकृति का खूब निरीक्षण किया है। यही कारण है कि हम इसमें मनोयोग-तत्त्व का अच्छा निर्वाह पाते हैं। लेखक में मर्मस्पर्शी स्थलों को पहिचानने की पूरी क्षमता है। कहानी के मर्मस्पर्शी

स्थल ये हैं :—(१) घाटी में, शिकारी कुत्ते से डोरा की मुठभेड़। (२) मि० लन और मोहन का इन्द-युद्ध, (३) मोहन की हत्या के लिए मि० लन का प्रयत्न। इन तीनों मर्मस्पर्शी स्थलों का बड़ी कुशलता से निर्वाह किया गया है। यदि इन स्थलों में किञ्चित् भी भूल हो जाती तो कहानी का सब सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता। यदि डोरा की मोहन द्वारा रक्षा न होती, तो कहानी बन ही न पाती। यदि मि० लन और मोहन में इन्द युद्ध न होता तो 'कार्य' की सिद्धि के लिए समय अधिक लगता और यदि इसी समय माहन की मृत्यु हो जाती तो कहानी का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता। यदि लन ने मोहन की हत्या के लिए प्रयत्न न किया होता तो 'कार्य' (Action) की साधना न होती। डोरा को प्राणोत्सर्ग का सुवर्ण योग ही न मिलता।

कहानी में कार्य-कारण-तत्त्व का प्रयोग आद्यन्त मिलता है।

घटनाएँ कारण-कार्य के सम्बन्ध का ध्यान रख कर ही आयोजित की गई हैं। मोहन डोरा से क्यों प्रेम करता है? डोरा मोहन से क्यों विवाह करना चाहती है? मोहन डोरा से लन्दन जाने की बात क्यों कहता है? लन मोहन से क्यों द्वेष रखता है? डोरा लन से क्यों प्रेम नहीं करती? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर सकारण है, युक्तिपूर्ण है और है न्याय-सङ्गत।

मानव-अभिरुचि का परिचय तो कहानी के केवल अवलोकन-मात्र से मिल जाता है। डोरा के विमल चरित्र का सौन्दर्य, मोहन का राष्ट्र-प्रेम एवं आत्म-सम्मान, प्रेम में आत्म-समर्पण की स्वीकृति इत्यादि ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो लेखक का मानवता से अनुराग व्यक्त करते हैं। कहानीकार ने मानव-जीवन के कृष्ण-पक्ष और शुक्ल-पक्ष, दोनों ही पर प्रकाश डाला है। पर कहीं भी समाज-मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं हुआ। प्रकृति के नियमों की अवहेलना कहीं भी नहीं हुई है।

लेखक ने Unity of Impression (प्रभावान्वय) सिद्धान्त का पालन भी बड़ी उत्तमता से किया है। डोरा कहानी के पठन के उपरान्त पाठक के हृदय पर उसके आत्मोत्सर्ग एवं विमल प्रेम का जो प्रभाव पड़ता है, वह आदि से अन्त तक एक रस बना रहता है। यह



प्रभावान्वय इतना उत्कृष्ट है कि कहानी की वस्तु और दृश्य इस उत्सर्ग के सामने फीके दीख पड़ते हैं।

कहानी चरित्र-प्रधान है और इसका नामकरण नायिका के नाम पर हुआ है। शीर्षक-निर्वाचन में भी लेखक ने अपनी निपुणता का परिचय दिया है। नायिका का नाम 'डौरोथी मैथी विस्सन' है। लेखक ने इस बड़े लम्बे नाम की जगह 'डोरा' नाम रक्खा है। यह दो अक्षरों का नाम प्रेम का अनुरूप है।

'डोरा' में चरित्र-चित्रण बड़ा अनुठा हुआ है। इसके लिए लेखक महोदय ने कथोपकथनात्मक प्रणाली का आश्रय लिया है। डोरा के विमल, पवित्र और आदर्श चरित्र का चित्रण बड़ा उत्कृष्ट हुआ है। डोरा का भारतीय आदर्शों के प्रति बड़ा अनुराग है। डोरा का चरित्र आदर्श चित्रण की कोटि में आता है। कहानी में, डोरा का जितना चरित्र अङ्कित है, उतना सबसे विमल, सबसे निर्मल और सबसे निर्दोष है। डोरा के शारीरिक अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वर्णन बड़ा उपयुक्त और सूक्ष्म है। केवल निर्देश-पद्धति का निर्वाह किया गया है। डोरा में श्री० चण्डीप्रसाद जी 'हृदयेश' की विलासिनी का-सा कृत्रिम सौन्दर्य नहीं है। वरन् उसमें वह प्राकृतिक लावण्य है, जिस पर मूर्तिमान सौन्दर्य निछावर होना चाहता है। डोरा भोली, सरल स्वभाव की ग्रामीण कुमारी है, परन्तु उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। यही कारण है कि वह समुन्नत विचार रखती है। साहित्य, भूगोल, सङ्गीत और नृत्य में उसका अनुराग है। परन्तु सबसे अधिक आकर्षक गुण उसका पवित्र जीवन एवं विमल चरित्र है। डोरा अपने समाज के आधुनिक वातावरण से असन्तुष्ट है। लड़कियों का स्वेच्छाचार उसे पसन्द नहीं और न तलाक़ को ही उचित मानती है। डोरा की यह दृढ़ धारणा है कि इङ्गलिश समाज में दाम्पत्य प्रेम सच्चा नहीं है। इसका कारण है विवाह को Contract मानना। डोरा की एक पवित्रत-धर्म में पूर्ण आस्था है। वह गाँधी की फ़िलॉसफ़ी में श्रद्धा रखती है।

प्रेम-नाटक का सूत्रधार मोहन है। सबसे पूर्व मोहन में प्रेमोदय होता है। परन्तु प्रतिदान में, डोरा भी अपनी प्रेमाञ्जलि भेंट करती है।

डोरा का प्रेम सच्चा प्रेम है। वह अन्य अङ्गरेज महिलाओं के प्रेम की तरह मोह या लोभ नहीं है और

न गार्हस्थ्य-धर्म से विमुख करने वाला प्रेम है। इस प्रेम के लिए डोरा अपने प्राणोत्सर्ग का भी कुछ मूल्य नहीं आँकती।

इस कहानी का नायक मोहन है। वह धनवान और रसिक-हृदय है। प्राकृतिक जीवन से उसे बड़ा अनुराग है। मोहन पहले शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, फिर गुणों पर और अन्त में उसकी आत्मा एवं हृदय के अपूर्व सौन्दर्य पर। परन्तु मोहन में डोरा का-सा आध्यात्मिक प्रेम नहीं है। डोरा का चरित्र जैसा पुनीत और पवित्र है, वैसा मोहन का नहीं है। हम मोहन के चरित्र को सामान्य चित्रण की कोटि में मानते हैं। क्योंकि प्रकृति-भेद सूचक विभिन्नता के उसमें दर्शन होते हैं। मोहन में भारत के लिए प्रेम है—राष्ट्रीय गौरव का अभिमान है।

कहानी का तीसरा पात्र मि० लन है। यह उन ईर्ष्यालु प्रकृति के पुरुषों में से है, जिनकी समाज में कमी नहीं होती। ऐसे व्यक्ति लोक-समूह नहीं होते। वे दूसरों के उत्कर्ष को स्पर्धा की दृष्टि से देखते हैं। मि० लन डोरा के पिता का मित्र है। परन्तु वह डोरा का 'स्वामी' बनना चाहता है। लन डोरा-मोहन के प्रेम-नाटक में बाधक बनता है। अन्त में डोरा की हत्या कर देता है। मि० लन में गोरी चमड़ी का अभिमान है, इसलिए 'काले आदमी' की क्रोध करना उसे नहीं आता। वह प्रेम की महानता को भी नहीं समझता।

कहानी में कथोपकथन का प्रयोग मानवोचित, भाव-पूर्ण एवं पात्रोपयोगी हुआ है। सरल और सुबोध भाषा का व्यवहार हुआ है। स्कॉटलैण्ड की कुमारी डौरोथी की भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा है। उसने अनेक भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन किया है। इसीलिए उसकी भाषा में भारतीयता की छाप है।

कहानी का Setting (दृश्य) भी बड़ा मनोरम है। घटना स्थल, समय, पात्र एवं परिस्थिति का पाठक के हृदय पर चित्र खिंच जाता है। कहानी में जिन घटनाओं और पात्रों का प्रयोग किया गया है, वे अलौकिक नहीं हैं, प्रत्युत इसी लोक के हैं।

कहानी का कथानक बड़ा उत्कृष्ट है, यह कहा जा चुका है। कभी-कभी तो ऐसा आभास होने लगता है कि लेखक कहानी के बहाने अपनी आत्म-कथा सुना रहे

हैं। इसी कारण पाठक कहानी को पढ़ते समय लेखक के साथ हँसता है, रोता है। लेखक को प्रकृति से जो अनुराग है, उसकी अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर की गई है।

कहानी में स्थानान्वय, समयान्वय और कार्यान्वय का निर्वाह नाटकीय ढङ्ग के अनुकूल ही है। स्थानान्वय का निर्वाह तो इतना नियमित है कि कहानी के लिए केवल एक ही दृश्य है। उसी में प्रेम-नाटक का चित्र खींचा गया है। कहानी में समय भी अधिक आन्तिकारी नहीं लगता। घटनाएँ ऐसी मनोहरता से घटित होती हैं कि पाठक को समय का ध्यान भी नहीं रहता।

इसी प्रकार 'कार्यान्वय' (Unity of Action) का निर्वाह भी कुशलतापूर्वक हुआ है। इसके लिए सबसे मुख्य नियम यह है कि घटनाओं की सख्या कम रखी जाय। लेखक ने पूर्णतः इस नियम का पालन किया है। इस कहानी का कार्य है प्रेम की वेदी पर डोरा का प्राणोत्सर्ग।

'डोरा' कहानी में भारतीय आदर्शवाद (Idealism) एवं वास्तविकवाद (Realism) का जैसा हृदयहारी सामंजस्य दीख पड़ता है, वैसा यथार्थवादी लेखकों की रचनाओं में बहुत कम मिलता है। डोरा के चरित्र-चित्रण में आदर्शवाद का आश्रय लिया गया है। मानव-प्रकृति के शुद्ध-पक्ष का चित्रण ही उसमें मिलता है। दूसरी ओर मि० लन के चरित्र-चित्रण में वास्तविकवाद का मर्यादित प्रयोग मिलता है। यह मानव-प्रकृति के कृष्ण-पक्ष का चित्र है। डोरा की हत्या एक ऐसा प्रसङ्ग है, जो भारतीय आदर्श के प्रतिकूल आ पड़ता है। परन्तु लेखक ने अपनी 'कल्पना-सुधा' से डोरा को जिला दिया है।

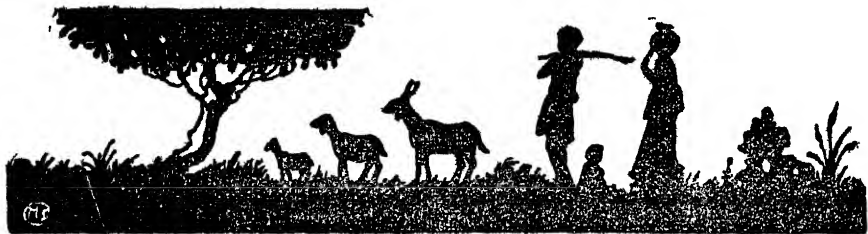
डोरा के अन्तिम शब्द इसकी साच्ची देते हैं। डोरा कहती है.—

‘आज हमारे प्रेम का दिन है—अनन्त प्रेम का दिन ॥ मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ, जो तुम्हारे लिए मर रही हूँ तथा तुम्हारे मुख से यह सुनने के अनन्तर कि तुम मुझसे प्रेम करते हो। अब तुम मेरे हो। कभी किसी जीवन में पुनर्मिलन होगा। मेरा सोच न करना। समझना स्वप्न था, बीत गया ॥’

इन शब्दों ने—डोरा के इन हृदयोद्गारों ने—एक दु खान्त नाटक को सुखान्त बना दिया है। यहाँ भारतीय आदर्श की रक्षा कैसी निपुणता और कौशल से की गई है।

लेखक की शैली प्रसाद-गुण-सम्पन्न है। भाषा में सुबोधता, स्पष्टता और माधुर्य है। माधुर्य के सन्निवेश से प्रेम-नाटक में जीवन आगया है। मधुरता और सरसता का ऐसा सञ्चार हुआ है कि मानव-हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता। भाषा में स्वाभाविकता है। कृत्रिमता का लेश भी नहीं है। यथास्थान उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। अङ्गरेज़ी में गीत उद्धृत करके लेखक ने स्वाभाविकता की रक्षा की है। हमारे विचार में 'डोरा' एक सर्वश्रेष्ठ प्रेम-कहानी है। ❀

❀ 'डोरा' कहानी के लेखक डॉ० धनीराम प्रेम, साहित्य-कोविद, S C P S भूतपूर्व सम्पादक 'चौद' प्रयाग हैं। यह कहानी राष्ट्रीय साप्ताहिक 'भविष्य' २३ अक्टूबर सन् १९३० ई० की संख्या में प्रकाशित हुई है। डॉक्टर साहब की 'वहूरी' नामक पुस्तक में भी यह कहानी छपी है, जो चौद प्रेस लिमिटेड से २॥ में प्राप्त हो सकती है। —लेखक



मेरा जीवन

[श्री० शारदाप्रसाद भण्डारी]

मेरी है करुण-कहानी, जिसको सुन जग रो देगा । जीवन की असफलता पर, अपना धीरज खो देखा ॥	रहने दो सुप्त व्यथा को, जग कर आफत लायेगी । पीड़ित को फिर पीड़ा से, हँस-हँस कर नहलायेगी ॥	यह दृश्य देख कर तुम भी, दुःख का अनुभव कर लोगे । सम्भव है, दुःख के कारण, आँसू-मोती खो दोगे ॥
--	---	--

शैशव-प्रभात था मेरा,
अवसाद-पूर्ण अधियाला ।
यौवन की दोपहरी मे,
होता था तनिक उजाला ॥

फिर उसी उजाले मे ही,
मित्रो की बारी आई ।
उनकी सङ्गति को पाकर,
मेरी प्रतिभा सुसकाई ॥

अपने मन्दिर मे मैने,
उनको सादर बैठाया ।
उनके स्वागतहित अपना,
पानी-सा द्रव्य बहाया ॥

पर धीरे-धीरे मैने,
मित्रो को हँसते देखा ।
इस हृदय-कसौटी पर कस,
मैने उनको अवरेखा ॥

तब मिली निराशा मुझको,
क्या कहूँ रङ्ग था अपना ।
मन से मैने हँस पूछा—
“यह जीवन है या सपना ?”

तब ज्ञान हो गया मुझको,
यह स्वार्थ-पूर्ण जीवन है ।
यह जगत् अनोखा वन है,
हिंसक है पर निर्जन है ॥

होकर हताश जीवन से,
बैठा था मैं उपवन मे ।
मेरा तो कटु-अनुभव था,
असफलता का जीवन मे ॥

मन्थर गति से आती थी,
लेकर सुमनो की माला ।
तन्मयता से सिञ्चित कर,
छलकाती यौवन-प्याला ॥

उसका था रूप अनोखा,
मादकता थी चितवन मे ।
पग-पग मे आकर्षण था,
‘जीवन’ था उस ‘जीवन मे’ ॥

सोचा, भरने आई है,
नवजीवन ‘इस जीवन’ मे ।
टूटी आशा जोड़ेगी,
उसको मुझसे उपवन मे ॥

उसने आकर यह पूछा—
“पथ क्या तुम भूल गए हो ?
होकर निराश जीवन से,
जग से क्या रूठ गए हो ?”

उसकी बातो को सुन कर,
जग गई व्यथाएँ सारी ।
आशा के उज्ज्वल नभ पर,
छा गई घोर अधियारी ॥

मैं सिसक-सिसक कर बोला,
“मत छोड़ो इस निर्जन मे ।
एकाकी ही काटूँगा,
अवशिष्ट घड़ी जीवन मे ॥”



सौ वर्ष पूर्व दिल्ली के लाल किले में

[श्री० बनारसीदास, बी० ए०]



किन्तु एक साधारण दर्शक इन भव्य भवनों में क्या देख सकता है ? वह इन भवनों की अनुपम पक्कीकारी, अनोखी नक्काशी को भले ही निर्निमेष नेत्रों से देखे, वह भले ही सङ्क्रमरमर के धवल प्रासादों में बैठ कर शीतलता का आनन्द ले, किन्तु फिर भी वह जो कुछ देखता है वह पत्थर, केवल पत्थर ही तो है। क्या वह यह भी सोचेगा कि इन सुने महलों में एक दिन जीवन के सभी आनन्द थे—सुकुमारियों की अठखेलियाँ और दरबारियों की चहल-पहल रहती थी।”

—सर यदुनाथ सरकार

प्रातःकाल के चार बजे तो धायें से तोप चली। बादशाह ‘अल्लाह-रसूल’ कहते बिस्तरे से उठे। बाँदियाँ चिलमची और आफताबा लिए अदब से खड़ी हैं। रुमालझाने वालियाँ, पाँव-पाक और नीनी-पाक (नाक साफ़ करने का रुमाल) लिए तैयार हैं। बादशाह उठे तो सबने मुजरा किया और मुबारकबादी दी। बादशाह तश्ते (चौकी) पर गए। वजू किया, नमाज़ पढ़ी और वज़ीफ़ा पढ़ने बैठ गए। एक घण्टे तक परमात्मा के ध्यान में मग्न रहे।

उसी समय तोशेझाने वालियाँ कमझबाब का दस्त-बुकचा लेकर उपस्थित हुईं। बादशाह ने पोशाक बदली। फिर हकीम जी आए और बादशाह की नब्ज़ देखी। शाही दवाख़ाने से ठण्डाई भिजवाई, जिसकी सुहर बादशाह के सामने तौड़ी गई। बादशाह ने ठण्डाई पी। फिर ‘दर्शनी लिफ़ाकी’ पर आए और अपने प्रजाजन को दर्शन दिया। इसके बाद महल की सवारी लाने का हुक्म दिया।

और उधर महलों में तो देखो। लौडियाँ-बाँदियाँ नौद के झोंके लेती गिरती-पड़ती उठीं और अपने-अपने काम-काज में लग गईं। ज़रा सूरज निकला तो मोरछल लेकर शाहजादियों के बिस्तरों के पास आ गईं, कि कोई मक्खी उन्हें जगा न दें।

शाहज़ादियों को तो देखो। काले, आसमानी, नीले, पीले बहुमूल्य दुशाले ओढे सुख से सो रही हैं। मखमल के गद्दे और रेशम के कोमल तकिये हैं। गोरे-गोरे हाथ तकियों पर पड़े हैं। किमी का मुख जो दुशाले से बाहर निकला तो सारी उपमाएँ झूठी पड़ गईं। धीरे-धीरे आँख खोलतीं, अँगड़ाई लेतीं, बाल सम्हालतीं उठी। बाँदियों ने कपड़े सँभाल दिये, और सोते में जो कोई बाली-बुन्दा गिर पड़ा तो फिर पहना दिया। अगर कोई कच्ची नींद जग पड़ी तो कह हो गया। बाँदियों की आक्रांत आ गई। जिसे सामने खड़ी पाया उसी पर नाराज़ होने लगीं—

“अलामा दहर, चुदैल, किसी दूसरे के दर्द को भी देखती है ? रात से मेरा सिर दर्द के मारे फटा जा रहा है। ज़रा मक्खियाँ तक नहीं उड़ाई जातीं। ऐसा दीदे का डर निकल गया ! भला री, देख तो तेरे कैसे बल निकालती हूँ !”

किसी बड़ी-बूढ़ी ने सुना तो समझाने लगी—

“चलो बहुत सो लीं। अब उठ बैठो। दिन निकले मुँह न बिगाडो। तुम्हें किसी दूसरे के घर जाना है। ज़रा सलीक़ो सीखो।”

“अच्छी बुआ, तुम्हें क्या ? सोते हैं, अपना वक्त खोते हैं। लो, तुम्हें बुरे लगते हैं तो कहीं और जा रहेंगे। बादशाह बेगम (साम्राज्ञी) के पास चले जायेंगे।”

दो-चार मिल कर आई तो अपने साथ लिया ले गईं।



देखो, दो-दो, चार-चार की टोलियों में हौजों पर पहुँच गई। छोटी-छोटी नहरों से सुगन्धित जल आकर हौजों में बहता है। मुँह-हाथ धोने के हौज अधिक गहरे नहीं हैं। वे खिले हुए कमल के समान बड़ी रक्वाबी के बराबर हैं। निर्मल जल से भर जाते हैं तो तले की पच्चीकारी साफ़ चमकती है। सुबह-शाम शाहजादियों यहीं मुँह-हाथ धोती हैं। जब से लाल किले का वैभव लुटा, शायद ही इन अभागों हौजों को कभी पानी मिला हो। गुलाबजल और इत्र पड़ा हुआ पानी तो कहाँ से आया, वर्षा का जल कभी-कभी इधर-उधर से बह कर आ जाता है। इनमें अब फूल कौन डाले, सफ़ाई तक नहीं होती। कूड़ा-कंकट भरा रहता है। सूखी पत्तियाँ न जाने कहाँ से उड़-उड़ कर यहाँ इकट्ठी हो जाती हैं। सड़भरभर के तले काई से काले पड़ गए हैं। महलों के इन हौजों को देखो तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे पृथ्वी के कलेजे में शोक से छेद हो गए हों।

हाँ तो, बादशाह की (महल की) सवारी निकली, बाँधियाँ हवादार लाई, बादशाह सवार हुए, बेगनियों मर्दाने कपड़े पहिने सर पर पगड़ी, कमर में डुपट्टे बाँधे, हाथ में ज़रेब लिए, साथ में जश्नियाँ, तुर्कनियाँ, कल्मा-कनियाँ ज़रेब पकड़े तज़त के साथ-साथ हैं। जसोलिनियाँ आगे-आगे हाथ में ज़रेब लिए पुकारती जाती हैं—ख़बरदार रहो ! ख़बरदार रहो !

दरगाह में सवारी आई, बादशाह ने उतर कर फ़ातहा पढ़ा और सवारी फिर वापिस गई।

हम्माम

महलों में कितने ही हम्माम हैं। इम्तियाज़ महल का हम्माम सबसे अच्छा है। सड़भरभर का अठपहलू बहुत अच्छा बना है। ऊपर दीवारों में रौशनदान हैं, जिनमें से रोशनी आती है, पर धूप नहीं आती।

इस हम्माम की अजब तासीर है। गर्मियों में ठण्डा और जाड़ों में गरम रहता है। बीच में एक बड़ा हौज़ है, जिसमें खुशबूदार पानी आता है। गुलाब के फूल पड़े रहते हैं। शाहजादियाँ यहाँ नहाने आती हैं। अजब अठखेलियाँ और नोक-झोंक रहती है। बस, इसका वर्णन यहीं तक है, आगे किसी ने कुछ नहीं देखा।

शाहजादियाँ भले ही एक दूसरे के शरीर को देखती और छूती हों, परन्तु इस संसार में तो कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जिसने चर्म-चक्षुओं से उन रूप-राशियों को नहाते देखा हो। कल्पना भी वहाँ नहीं पहुँच सकती।

कवियों ने मामूली स्त्रियों को अप्सरा, मृगलोचनी, चन्द्रबदना बना डाला और अपनी कल्पनाएँ समास कर दीं। जब उन्हें पनिहारियों ने ही “अमी-हवाहल-मद” के प्याले पिला दिए और वे जीवित हो गए, मर गए और भूमने लगे तो फिर उनका यहाँ क्या हाल होता ? कदाचित् हम्माम के द्वार पर ही उनका दम निकल जाता। शाहजादियों के शरीर से जो गन्ध की लपटें निकलती होंगी, उनसे तो उनका मस्तिष्क फट जाता और सारी कल्पनाएँ द्वार पर ही बिखर जातीं।

हम्माम में तो उस समय देवता भी नहीं झोंक सकते थे। सूर्य को सिर्फ़ रौशनदान तक आने की इजाज़त थी, भीतर किरण डाल कर किसी के अङ्ग को वह भी नहीं छू सकता था।

पवन भी हम्माम के द्वार तक ही आ सकता था, अन्दर जाने का काम नहीं, फिर मनुष्यों की क्या ताब ? हाँ, वह सूना हम्माम कदाचित् कुछ बता सके, किन्तु वह तो बेजुबान है। वह गुलाबजल भरा हुआ हौज़ सूखा पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई हम्माम का हृदय काट कर निकाल ले गया हो और ख़ाली घाव छोड़ गया हो, जो अब तक नहीं भर।

हम्माम की छत शताब्दियों से हौज़ की सूनी गोद को देख रही है, जिसमें वे कल्पनातीत सुन्दरियाँ केलि-क्रीडा करती थीं। इन्हें काल-चक्र का भयङ्कर अनुभव है।

❁

❁

❁

अब जुलूस की सवारी देखो। निशान के हाथी आए। तमामी का फ़रेरा, रेशम की डोरियाँ लटक रही हैं। छत्र का हाथी आया। ऊपर सोने की कलश लगी है। माही मरातिब के हाथी आए। सूरज की शकल, मछली की शकल, आदमी के पंजे आदि सोने के बना कर लकड़ियों पर लगा रखे हैं। ज़म्बूरों के ऊँट पीछे आए। ज़म्बूरची बन्दूकें छोड़ते हैं। फिर फ़ौज आई। सुदसवार, तिख़ज़े, बछेडा पलटन और अगारई पलटन आई। ताशा, मरफ़ा, तुरही बजती हैं। अहा, कैसे सजे

हुए घोड़े आए, सोने चाँदी के साज, हैकल, गण्डे, पूजी, हुमची, कलशियाँ, पाखुरे, मॉमन, कारचोबी गाशियों से कैसे सजे हुए हैं।

लो, बादशाह हाथी पर सवार होकर आए। सर पर दस्तार (पगड़ी), उस पर चेगा, सरपेच, गोशवारा, बादशाही ताज, मोतियों का तुराँ, गले में मोतियों का कण्ठा, मोती-मालाएँ, हीरों का हार, बाजू पर भुजबन्द, नौरतन, हाथों में ज़मुरद, याक़ूत की सुमिरने पहने हुए हैं। ऊँखे (अलबोला) का पेंच हाथ में लिए बैठे हैं। ख्वासी में युवराज बैठे मोरछल करते जाते हैं। पीछे बादशाह बेगम और शाहज़ादों की सवारियों आईं। इसके बाद राजा-अमीर इत्यादि आए। इसके पीछे फ़ौज निकली। बेले का हाथी तबल बजाता था। झैरात बँटती थी। नकीब चोबदार पुकारता था—“मुजाहिज़ा आदाब से करो, मुजरा जहाँपनाह बादशाह सलामत।” बादशाह बैठक में पधारे। बीबियों अपने-अपने पदानुसार दाईं ओर बैठ गईं। शाहज़ादे शाहज़ादियों और बेगमों सब बाईं ओर बैठ गईं। यहाँ आकर सत्राट ने अज़ियो पर हस्ताक्षर किए, हुक्म-ए-काम जारी किए।

फिर ख़ासा के दारोगा (भोजन-प्रबन्ध का अधिकारी) ने बड़े अदब से अज़ किया—जहाँपनाह, ख़ासा तैयार है।

जसोलनी ने ख़ासेवालिओं को आवाज़ दी—‘बीबियों, ख़ासा लाओ—नियामत खाना लाओ।’ यह नियामत-खाना एक प्रकार का लकड़ी का कठहरा होता था, जिस पर मक्खियाँ रोकने के लिए जाली लगी रहती थी। अस्तु—

कहारियाँ और कश्मीरिनें दौड़ीं। छोटा ख़ासा और बड़े ख़ासे के झ्वान सर पर लिए चली आती हैं। झ्वानों का तार लग रहा है।

चपातियाँ, फ़ुलके, पराँठे, रोगनी रोटी, बरीं रोटी, बेसनी रोटी, ख़मीरी रोटी, नान, शीरमाल, गावदीदा, गावज़मा, कुल्वा (पिट्टी की रोटी), बाकरख़ानी, गोसी रोटी, बादाम की रोटी, पिस्ते की रोटी, चावल की रोटी, गाजर की रोटी, मिसरी की रोटी, नान पब्बा, नान गुल्ज़पर, नान कम्माश, बादाम की नान ख़ताई, पिस्ते की नान ख़ताई, छुआरे की नान ख़ताई, पफ़्ती

पुलाव, मोती पुलाव, नूरमहली पुलाव, नुक्रती पुलाव, फ़ाक्सई पुलाव, आबी पुलाव, सुनहरी पुलाव, रुपहली पुलाव, बैज़ा पुलाव, अनन्नास पुलाव, कोफ़ता पुलाव, बिरियानी (भुना हुआ) पुलाव, सारे बकरे का पुलाव, बूट पुलाव आदि अनेक प्रकार के पुलाव हैं जिनके नाम तक नहीं गिनाए जा सकते। क़बूली ताहरी, सुतज़न, ज़र्दा, मुज़फ़्फ़ूर, सोनियों, फ़रनी, खीर, बादाम की खीर, कदू की खीर, गाजर की खीर, कज़नी की खीर तथा दूध बादाम के अनेक सामान हैं। मीठे नमकीन समौसे, शाख़े, सैकडों तरह के मुरब्बे, चटनी, गोश्त और फल इत्यादि हैं। जिसका जी चाहे वह खाए।

पहिले सब चीज़ें एक बड़ी सी रकाबी में बहुत थोड़ी-थोड़ी रखकर देखी गईं। कोई देखता तो समझता शायद किसी फ़कीर के लिए या चढ़ावे के लिए निकाजी जा रही हैं। नहीं, उस रकाबी से विष का पता चलता था। यदि भोजन में किसी प्रकार थोड़ा भी विष होता तो रकाबी का रङ्ग बदल जाता। ऐसी अमृत रकाबी अब नहीं बनती। परन्तु ऐसी एक रकाबी अब भी ताज के म्युज़ियम में रखी है। इन भोजनों के भी अब केवल नाम रह गए हैं, क्योंकि वे खानेवालिओं तो ग़दर में दिल्ली की सड़कों पर ठोकर खा-खाकर मर गईं, जङ्गलों में पड़ी-पड़ी सुख गईं या सूखी रोटियों के मोल मज़दूरों के हाथ बिक गईं। यह तो अब केवल स्वप्न की ही बातें हैं।

×

×

×

दोपहर हो गया। महलों में इधर से उधर सगङ्गे मारती फिरती हैं। कोई कबूतर चुगा रही है, कोई चिड़ियों को दाना डाल रही है, कहीं क्रिस्ते-कहानियाँ हो रही हैं और कहीं शतरंज और चौपड की बाज़ियाँ चल रही हैं। वह देखो, कितना अच्छा शामियाना लग रहा है। एक-एक करके कितनी इकट्ठी हो गईं! एक से एक अच्छे बनाव-सिज़ार करके आई हैं। बाँदियों, लौंडियों, अन्ना, मानी, हप्पा, झूझू ‘वारी गईं, बलिहारी गईं’ के तार बाँध रही हैं। शामियाने में नाच-रङ्ग जमने की तजवीज़ें हो रही हैं। लौंडियों, बाँदियों चाँदी के थालों में सोने का इत्रदान लाईं और सबके इत्र लगाने लगीं। यह लो, नाचने वाली आईं और अदा से नाचने लगीं! अब एक-एक पर बोलियाँ उठो बोलियाँ मार रही



हैं। भूल से जो बेचारी कोई बड़ी-बूढ़ी या फंसी तो उसकी आकृत आ गई। सबने उसे घेर कर बीच में बैठा लिया—

“अच्छी बुआ, तुम यहाँ क्यों आईं?”

“ज़रा देखो तो, सींग कटा के बछड़ो में मिली हैं।”

“अयहय, और इस पोपले मुँह में मिस्ती लगा कर आई हैं।”

“दरगारे, तुम्हारी सूरत! कब्र में जाने को बैठी हो, बिना नाच देखे अब भी चैन नहीं पड़ता।”

“ज़रा देखो तो क्या टमाक से बाले-बुन्दे लटकाए बैठी हैं।”

“झाक, क्या बुरे लगते हैं। अच्छी, उनके दिल से तो पूछो।”

“उनके मियाँ के दिल से तो पूछो।” बेचारी की आकृत आ गई।

चलो भाई, वक्त हो गया दर्बार में चलो—सब छम-छम करती महल के दर्बार में गईं। आज बादशाह की सालगिरह का महल में दर्बार होगा। खुशी से कोई फूली नहीं समाती।

चाँदी का तख्त बिछा हुआ है, उस पर गज़ब की नक्काशी है। पीछे की ओर तकिया, आगे तीन सीढियाँ हैं। पायों में अनेक प्रकार के फूल-पत्ते बने हुए हैं। ऊपर करकरी ताश का तख्त-पोश पड़ा हुआ है। बाईं ओर बादशाह-बेगम (साम्राज्ञी) मसनद के सहारे बैठी हुई हैं। खानिम के बाज़ार की सारी कला उनके शरीर पर शोभा पा रही है।

इनके बराबर और बीबियाँ अपनी-अपनी सोज-नियों पर आभूषणों से लदी हुई नाकों में नथें पहिने बैठी हैं। बाईं तरफ़ शाहज़ादियाँ हैं जो सर्वोत्तम

✽ खानिम का बाज़ार ज़ेवर जवाहरात का उस समय भारत का सबसे बड़ा बाज़ार था। सारे देश का कला-कौशल वहीं समाप्त होता था। शाही महल की सोने-चाँदी और जवाहरात की चीज़ें सब वही बनती थीं। यह बाज़ार किले के बिल्कुल पास था। अब तो उसकी एक दुकान का भी पता नहीं। एक सीधी कोल-तार की सबक उसकी जगह बन रही है। उस बाज़ार का निशान भी तो नहीं है।

वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आई हैं। सामने जभियाँ, तुकिनियाँ, कल्लाकनियाँ, अर्दाबेगनियाँ, जसोलनियाँ और ख्वाजासरा ज़रेबे पकड़े अदब से खड़े हैं। बादशाह महल में पधारे। जसोलनी ने आवाज़ दी—“ज़बरदार हो।” सब बेगमें खड़ी हो गई और मुजरा किया। तख्त पर से तख्त-पोश खोजों ने उठाया। कहारियों ने हवादार तख्त के बराबर लगा दिया। सम्राट तख्त पर चिराजे। ख्वाजासरा मोरछल लेकर तख्त के बराबर खड़े हो गए। पहिले बादशाह-बेगम ने मुजरा किया। नज़र दी और फिर मुजरा करके बैठ गईं। अब औरों ने भी अपने पदानुसार इसी प्रकार भेंटें दीं और मुजरा किया। सम्राट् ने स्वयं हाथों से सब को बहुमूल्य दुपट्टे दिए। सब ने खड़े होकर दुपट्टे लिए और मुजरा करके बैठ गई।

अब नाच-गाना शुरू हुआ। न जानें कहाँ से अचानक नाचने वाली बादशाह के सामने आकर नाचने लगी। साज़िन्दे पर्दे के पीछे बाजे बजा रहे हैं।

फिर तान रसखान आए तो दो-चार तानें उनकी सुनीं। दरबार समाप्त हुआ। बादशाह ने आराम किया। तीसरे पहर के बाद फिर सब आकर इकट्ठे हो गए। बादशाह मसनद पर आकर बैठे। मिठाई के ख़वान सजे हुए रक्खे हैं। एक चाँदी की कश्ती में बड़ा सा कलावा, पान के बीड़े, हरी दूब, मिस्ती के कूजे, चाँदी के छल्ले वगैरह रक्खे हैं। ऊपर कमज़ाब का कश्ती-पोश पड़ा है जिसमे कलावत्तू की झलकें फिलमिल कर रही हैं।

जसोलनी ने झुक कर कहा—हज़रत साहब तशरीफ़ लाए हैं।

बादशाह स्वागत करने के लिए खड़े हो गए और उन्हें मसनद पर बिठाया। हज़रत साहब ने पहले हज़रत फ़ातमा, बाबर बादशाह आदि की नयाज़ें दीं। फिर कश्ती में से कलावा निकाला। पहले “सुबहान अल्ला अलरहमान रहीम” कह कर उसमें एक गिरह लगाई। दूसरी गिरह में पान का बीड़ा बाँधा, तीसरी में हरी दूब और मिस्ती की डली बाँधी, चौथी में चाँदी का छल्ला बाँधा और पाँचवीं गिरह बादशाह के सिर से छुआ कर उस कलावे में लगाई। सबने खड़े होकर मुजरा किया और सुबारकबादी दी—यह एक साल



हज़ार साल और खुदा नसीब करे। सालगिरह के बाजे बजने लगे। अब महीनों मेहमानदारी रहेगी।

×

×

×

शाम हो गई। मशालिचियों ने रोशनी की। गश्त हुआ। किले के पहरेदारों की क़ौज क्रदम से क्रदम मिलाती आई। क़वायद की, और सलामी उतारी। पहरा लग गया।

रोशनी से सारे महल जगमगा रहे हैं। जलती हुई बत्तियों की सुगन्धि से सारा क़िला महक रहा है।

दिन के खेल-कूद से जो शाहज़ादी ज़रा थक गई तो नौ बहार, सन्ना बहार, नर्गिस, मान कुँवर, आनन्द कुँवर तलुए सहलाने लगीं, पाँव दाबने लगीं। ज़रा किती के माथे में दर्द होने लगा तो सबके पिण्डे फीके पड़ गए। बाँदियाँ, लौंडियाँ दौड़ी-दौड़ी शाही दवाख़ाने से दवा लाईं। अन्ना, मानी, हप्पा, छू-छू सब इकट्ठी हो गई।

“हाय, किस कलज़नी ने आज बिटिया को होंस दिया। मेरी बच्ची का मुँह फीका-फीका दिखाई देता है। अरी, ज़रा जइयो, करहारी के पाँव तले की मिट्टी चूरहे में जलइयो। हज़रत फ़ातमा, हज़रत महम्मद के नाम की ख़ैरात बोलूँ, सुबह होगा तो बहुत सी ख़ैरात कलूँगी।”

लो रात हो चली। सम्राट दीवाने-खास में साम्राज्य सम्बन्धी बातें अपने वज़ीरों से कर रहे हैं। आठ बजे तो वहाँ गाना हुआ और फिर ईशा की नमाज़ पढ़ कर महलों में आए। वहाँ फिर गाना-बजाना हुआ और किताबें पढ़ कर सुनाई गईं। बादशाह ने “आबे-हयात” माँगा और सुख लिया।

बाहर क्रिसेख़वाँ क्रिसे कड़ रहे हैं। चप्पीवालि़याँ चप्पी कर रही हैं। ड्योदियाँ सब भरी हुई हैं। अन्दर तुर्किनियाँ, जश्नियाँ, कलमाकनियाँ पहरा दे रही हैं। जगह-जगह कहानी, पहेली और पचीसी हो रही है।

बाहर हवशी, कलार, दरबान, परधे-प्यादे और सिपाही पहरे-चौकी पर होशियार हैं।

किसी दिन जो कोई महल में खेल-तमाशा हुआ तो दीवाने-खास में इन्तज़ाम हो गया। बेगमें शाह-ज़ादियाँ परदे में बैठ गईं। तमाशा देखा। खुश हो गईं तो छल्ला, अँगूठी, माला, अशक्की, मुहर, रुपए जो तबियत में आया दे आईं। गरीब तमाशे वाले को बात की बात में मालामाल कर दिया। फिर सब अपने-अपने महलों में गईं। सेजों पर सो गईं। भारी-भारी गहने आलों में पटक दिए। बाँदियाँ पैर दाबने लगीं।

रात में बाहर जमुना किनारे से जो कोई लाल क़िले को उस समय देखता तो परिस्तान को अवश्य हेच मानता—असंख्य दीपकों का प्रकाश सङ्गमरमर के धवल-धाम, सोने की कलियाँ और सङ्गीत स्वर-लहरी। उसी स्थान पर लाल क़िले के महल अब भी है। रात में अब देखो तो यही विचार आता है कि मनुष्य क्षण-भङ्गुर सुख के लिए क्यों इतने आडम्बर रचता है। काल-चक्र कितना भयङ्कर है !! चुपचाप क़िले के पास रात को अब भी कोई कहता है :—

सुबहे इशरत की शाम होती है,

बज्रम आखिर तमाम होती है।

हाँ अजल, आज आ जो आना है,

अञ्जुमन इख़तताम होती है।

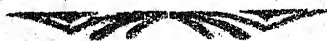
मुट्ठी भर हाड़ में !

[श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०]

सूट-बूट धारने पे ठूँठ जग दीखता है, खाँड़ सी मिठास भरी मखमल पाड़ में।

ऐनक की आँखों में प्रवेश पतिव्रता का न, रण्डी दालमण्डी की सुहाती खूब आड़ में ॥
कृश पीत होवें भले, हेज़लिन रोज़ मलें, अकड़-अकड़ चलें, पुंसत्व जाए भाड़ में।

मिट्टी के शरीर को सजाने से न छुट्टी कभी, क्या धरा है सारहीन मुट्ठी भर हाड़ में ॥





परम सौभाग्यवती स्वर्गीया दुर्गारानी कर्पूर—आप फ़र्रुखाबाद-निवासी श्री० जे० एन० कर्पूर की धर्मपत्नी थीं। अपने अटल पतिव्रत और सेवा से आपने अपने पतिदेव को मृत्यु-मुख से बचा लिया था। ४३ वर्ष की अवस्था में आपने परदा-प्रथा को त्याग दिया। आप दया और धर्म की मूर्ति थी और अन्त में पति से प्रेमालाप करती हुई एकाएक स्वर्ग सिंघार गईं।



कुमारी के० एन० डुनकम—आप दक्षिण भारत की प्रथम महिला हैं, जिन्होंने हवाई जहाज चलाने की योग्यता और अधिकार प्राप्त किया है। आपका सम्बन्ध मद्रास के स्कॉटलैण्ड चर्च से है।



पटना-निवासिनी श्रीमती पी० के० सेन—आप भारतीय स्त्रियों की प्रतिनिधि बन कर ज्वाइंट पार्लामेन्ट्री कमिटी में साक्षी देने के लिए लन्दन गई हैं।



श्रीमती सरला देवी
आप एक उद्योग महिला-रत्न हैं और कटक के सेण्ट्रल कोऑपरेटिव बैंक की डाइरेक्टर नियुक्त हुई हैं।



कुमारी विद्यावती श्रीवास्तव—जिन्होंने इस साल काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एडमिशन (मैट्रिक) परीक्षा पास की है और समस्त सफल परीक्षार्थिनियों में सर्व-प्रथम स्थान प्राप्त किया है। आप खण्डवा के सुप्रसिद्ध डॉक्टर नर्मदाप्रसाद सिविल सर्जन की सुपुत्री हैं। आप अभी केवल १५ वर्ष की हैं।



कुमारी जेनुभिसा बेगम

आप मुजफ्फरगढ़ के रहैस श्रीयुत अजीज़ मोहम्मद कुरेशी की पुत्री हैं ।
आपने केवल ११ वर्ष की आयु में ही पंजाब-यूनिवर्सिटी
की मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की है ।



श्री० रामकुमार जी माहेश्वरी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती श्रीबाई—यह जोड़ी कानपुर की रहने वाली है। श्रीबाई एक वेश्या की पुत्री है और भविष्य में पवित्र जीवन बिताने की इच्छा से श्रीरामकुमार जी से विवाह कर लिया है। श्रीमती जी हिन्दी, अङ्गरेजी, सङ्गीत तथा शिस्तर-कला आदि जानती हैं।



कुमारी बारवरा हलटन। आप अमेरिका के एक महान धनकुबेर की एकमात्र उत्तराधिकारिणी हैं। हाल में ही आपका विवाह एक राजकुमार से हुआ है। यह चित्र उसी विवाह की रजिस्ट्री के समय का है। मिस हलटन विवाह के रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर रही हैं।

स्वामी चौखटानन्द*

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

प्रेम की धुन



कार न बैठ, कुछ किया कर ।” यह धुन हमारे नायक स्वामी चौखटानन्द के सर पर हर वक्त सवार रहती थी। कुछ कर दिखाएँ और नष्ट ब्रह्म से, इसी क्रिक में दिन-रात रहा करते थे। मगर बेचारे अक्ल के बोझ से हैरान थे। कोई चीज हो, जहाँ जरूरत से

झ्यादा हुई, तहाँ वह बवालजान हो ही जाती है। यही हालत आपकी समझ की थी। जिस बात का पीछा करते उसके पीछे ढगडा लेकर इस बुरी तरह पड़ जाते कि अपनी खोपड़ी की सजामती की भी परवाह नहीं रखते थे। बस दूर ही की सूझा करती, पास की चीज कभी दिखाई नहीं पड़ती थी।

आजकल के हिन्दी मासिक पत्रों की आँधी में स्वामी जी भी चौंके और कान फटफटा कर उठ बैठे। आँखें फाड़ के देखा कि लेखक बनने का मौका बड़ा

छागभग सत्तरह-अठारह वर्ष हुए, मैंने इस उपन्यास को लिखना आरम्भ किया था और इसके अंश उन दिनों के मासिक ‘मनोरजन’ और ‘इन्दु’ आदि पत्रों में कुछ निकले भी थे। जिनका अनुवाद भी गुजराती भाषा की ‘बीसवीं सदी’ नामक पत्रिका में सचित्र अकाशित होता था। मगर अवकाशभाव के कारण मैं इसे उस समय सिलसिलेवार लिख न सका और न इसका विकास ही दिखला सका। अब ‘चौद’ के पाठकों की ध्यातिर इसकी दुनियाद फिर नष्ट सिरे से बाल रहा हूँ।

—लेखक

अच्छा है। अगर कहीं इस वक्त त्याकृत अच्छी तरह से फूट पड़ी तो फिर क्या, नाम भेग की तरह फैलेगा। यह सोच-विचार कर हिन्दी की बहुत सी किताबें चाट गए। मगर मजा न आया। गौर करने पर आपको पता यह चला कि अभी हिन्दी में बहुत सी बातों की कमी है, खास कर उपन्यास और नाटक-रचना में। भाव कहीं जाते हैं और भाषा कहीं। मुहावरा और बोल-चाल का तो कुछ पूछना ही नहीं। ऐसा मालूम होता है कि उपन्यास और नाटक के चरित्र अपनी अपनी स्पीचों को बोलने से पहले लिख कर रट लिया करते हैं। इसीलिए चाहे यह बालक हों, बेपढ़े हों, चोर या उठाईगीर हों, मगर जब मुँह खोलते हैं, तब व्याख्यान ही झाड़ने लगते हैं और वह भी ऐसे कड़े और टेढ़े शब्दों में कि सुनते ही होश उड़ जाएँ। बस आप समझ गए कि यह सारी गड़बड़ी बनावट की बू ने पैदा कर रखी है। जब लेखक दुनिया को बिना देखे दुनिया का हाल लिखने लगें, तब उनकी रचनाओं में असलियत का आनन्द भला कैसे मिलता? इसी को सुधारने के लिये हमारे स्वामी जी कमर कस कर तैयार हो गए और दिल में ठान लिया कि जो कुछ लिखेंगे, उसका पहले खुद तजुर्बा कर लेंगे, तब उस पर लेखनी चलाएँगे। शाबाश !

बात तो इन्हें तुक की सूझी। क्योंकि शकर जिसने ज़बान पर रखी ही नहीं, वह मिठास का मज़ा बताना क्या जाने? जिसे असलियत का खुद ही पता नहीं है, वह असलियत की छटा कैसे दिखला सकता है? इसलिए साहित्य के सौभाग्य से आप उसी साहित्य से असलियत की खोज में पेन्सिल और ‘पाकेट-बुक’ लिए गली-गली ठोकरें खाने लगे। जहाँ कोई नई बात देखी तहाँ अभियल टट्टू की तरह बीच सड़क पर खड़े होकर

फट उसे नोट करने लग जाते। ऐसा करने में एकाध दफे आपको ताँगे और मोटर वालों की गालियाँ भी सुनने की नौबत आई। मगर साहित्य के सच्चे अनुराग में आपने इसकी कुछ परवाह न की।

इसी तरह भटकते-भटकते शाम को पार्क में जा पहुँचे। वहाँ आपने एकान्त में एक बेज पर बैठे हुए एक प्रेमी जोड़े को आपस में प्रेमालाप करते हुए ताड़ा। आपने सोचा कि इन लोगों की बातचीत अगर कहीं मैं लिख लूँ, तो प्रेम में लोग कैसी बातें करते हैं, इसका सच्चा हाल मैं जान जाऊँगा। बस, आप जाकर भद से उसी बेज पर बैठ गए। मगर वह लोग इन्हें देखते ही एकदम चुप हो गए। आध घण्टा तक बेचारे मुँह बाएँ उनके मुँह ताकते ही रहे, मगर उन कम्बलतों ने ज़बान तक नहीं हिलाई। तब आजिज़ आकर आपने कहा—“क्यों जनाब, आप लोग अब बोलते क्यों नहीं? आपस में बातचीत किए जाइए। हाँ-हाँ, शौक से कीजिए। मैं आप लोगों की बातचीत अग़लबार में छपा दूँगा।”

दोनों बिगड़ कर उठ खड़े हो गए और एक तरफ़ चलाते बने। यहाँ पाकेट-बुक का सफ़ा साफ़ का साफ़ ही बना रहा।

रास्ते में आपको दो आदमी किसी मामले पर ज़ोरों से बहस करते हुए जाते मिले, जिसका कुछ अंश सुनते ही आप चौंक कर बोल उठे—“आ हा हा! कैसी ज़ोरदार बातचीत है।” यह कह कर आप उनके पीछे हो लिए। उनमें से एक ने उन्हें धूम कर देखा और क्रोध बढ़ाया। आप भी लपके। तब वे दोनों एक गली में मुड़ गए। वहाँ भी इन्हें साए की तरह अपने पीछे पाकर वे लोग पलट पड़े। गली से निकल कर उन लोगों ने देखा कि हज़रत दुम की तरह यहाँ भी लगे हुए हैं। तब तो दोनों घबड़ा कर कहने लगे—

“यह कम्बलत हमारे पीछे क्यों पड़ा है?”

“कोई सी० आई० डी० है।”

“नही जी, यह पाकेटमार मालूम होता है। बुलाओ पुलिस को।”

बेचारे स्वामी जी बड़े सङ्कट में पड़ गए। बड़ी मुरिकल से कान्सटेबल के चञ्चल से छूटे। मगर अभी आप घर लौटने की सोच ही रहे थे कि तरकारी मण्डी

में दो कुँजबिनों की लड़ाई देखते ही आप दीन-दुनिया फिर भूल गए। बहुत मूक मारने के बाद यह काम-याबी का मौक़ा इन्हें मिला था। क्योंकि इन लड़ाकों की न ज़बान बन्द होने का खटका था और न स्वामी जी से भडक कर कहा भागने का। ऐसा मौक़ा भला आप कैसे छोड़ सकते थे। लगे अँधेरे में पाकेटबुक पर अन्दाज़ से सरासर पेन्सिल घसीटने। मगर कहीं उन लोगों की कतरनी की तरह चलने वाली ज़बान और कहीं इनकी टटोल-टटोल कर रँगने वाली पेन्सिल? आखिर इनसे न रहा गया। एकाएक जोश में आकर बीच में पिल पड़े—

“तुम लोग अब बचकू मालूम होती हो। दोनों एक साथ क्यों लड़ती हो। एक-एक करके बोलो तो कुछ समझ मे भी आए। हाँ, तुम क्या कहती हो? मगर ज़रा रुक-रुक कर कहो। ख़बरदार, तुम अभी मत बोलना। हाँ-हाँ, कहो-कहो × × ×”

गज़ब हो गया। इन्हें एकाएक बीच में फट पड़ते देख कर पहले तो कुँजबिनें दङ्ग हो गईं। मगर इनकी बातें सुन कर समझीं कि यह हमारी हँसी कर रहा है। बस, आपस का लड़ना भूल कर दोनों ही इन पर बरस पड़ीं और इस बुरी तरह कि बेचारे को भागने तक का रास्ता न मिला। वह तो न जाने कहीं से ऐन मौक़े पर इनके चचा खटखटानन्द पहुँच गए, नहीं तो इनके बदन पर कोई कबूट्टा साबित नज़र न आता।

इनके चचा साहब बख़्त दिहाती और उजड़पन में तो इनसे भी दो-चार जूते बढ़े हुए थे। लिखने-पढ़ने के नाम पर बस वह अँगूठा ही दिखाते थे। इसलिए उन्हें अपद मूल्य समझ कर हमारे मिडिल पास स्वामी जी उनके बकने-भकने का कुछ ख़याल नहीं करते थे। मगर इस दफ़े घर पहुँचते-पहुँचते चचा साहब की गालियाँ इतनी बढ़ गईं कि घर की सभी औरतें घबड़ा उठीं और सोचने लगी कि आज स्वामी जी ने ज़रूर कोई ऐसा काम किया है, जिससे इनकी जान की ख़तरित नहीं। मगर स्वामी जी अपनी धुन के पक़े थे। इन्हें इन बातों की परवाह कब थी? चचा बकबक लगाए हुए थे और आप सोच रहे थे कि लेखक को अपने दिल में प्रेम का भी अनुभव कर लेना ज़रूरी है। बिना इसके साहित्य के अखाड़े में लेखनी का काम

नही चलता। रचना बिल्कुल फीकी पड़ जाती है। मगर यह सवाल अटका हुआ था कि प्रेम कहाँ और किससे किया जाय। एकबारगी खयाल आया कि घर में जोरू तो मौजूद ही है। फिर क्या, बाछें खिल पडीं। अपना काम का काम, ईश्वर भी खुश और साहित्य की सेवा घाते में। आज तक यह बात इन्हें कभी सूझी ही न थी। खैर, अब भी सबेरा था। सुबह का भूला शाम को घर आ जाय तो उसे भूला नहीं कहते। इसलिए प्रेम करने की पूरी तैयारी करके आप स्त्री के सामने जाकर बैठ गए और लगे धौंकनी की तरह आहें पर आहें भरने। मगर बोले एक लफ्ज भी नहीं।

बीबी बेचारी चचा की बातों से पहले ही से घबड़ाई हुई थी और अब इनका यह रङ्ग देखा तो उसके और होश उड़ गया। परेशान होकर वह बार-बार पूछने लगी कि—“क्या हुआ क्या? आखिर तुम पर कौन सी ऐसी मुसीबत आ गई है, कुछ बताओ तो।”

स्वामी जी और कस-कस के आहें भरने लगे। मगर ज़बान अब भी बन्द ही रखी। क्योंकि दिमाग तो इस समय कहने के लिए कोई प्रेम की बात सोचने में लगा हुआ था। आखिर स्वामी जी को जब कुछ न सूझा तो रो पड़े। स्वामिनी जी को भला अब धैर्य कहाँ? घबड़ा कर वह भी रोने लगीं। चौखटानन्द ने झट स्त्री के पैरों पर सर रख के जोरों से सिसकियाँ लेना शुरू कर दिया, ताकि इस तरह प्रेम का भाव कुछ तो दिल में पैदा हो जाए। उद्योग कुछ ज्यादा सफल नहीं हुआ। खैर, किसी नाटक के प्रेमी का एक जुमला याद आ गया। आप उसी को गिबगिड़ा कर कह बैठे—“तुम्हारे लिए मेरी जान जाती है। ईश्वर के नाम पर कुछ तो दया करो। नहीं तो यह अभागों बेमौत मरेगा।”

अब तो स्वामिनी जी को विश्वास हो गया कि स्वामी जी को जरूर फॉसी या कालापानी का हुक्म हो गया है या होने वाला है, तभी तो ऐसा कहते हैं, और चचा जी भी इसीलिए इतनी बक-भक्त लगाए हुए थे। आँसुओं की धारा बह चली। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं। स्वामी जी ने हाथ पकड़ कर समझाया कि—“देखो, शलती कर रही हो। तुम मत रोओ। रोना तो सिर्फ़ मुझी को चाहिए।”

बीबी ने कहा—नहीं, तुम्हीं पर नहीं, बल्कि असल में तो यह मुसीबत मेरे सर है। क्योंकि तुम्हारे बाद मैं भला किसके भरोसे रहूँगी।

स्वामी जी चौंक कर बोले—यह तुम क्या कह रही हो?

बीबी—बिल्कुल सच। तुम चले जाओगे × × ×

स्वामी जी—कहाँ?

बीबी—अभी तुम्हीं ने तो कहा था।

स्वामी जी—क्या कहा था?

बीबी—यही कि फॉसी पर बेमौत मरेंगे।

स्वामी जी—किस हरामजादे ने कहा था? बहरी कहीं की। हमारी सारी बनी बनाई भावना बिगाड़ दी।

बीबी दङ्ग हो गईं। उसकी समझ में ख़ाक-फ़थर कुछ न आया। इधर स्वामी जी ने फिर रोंधी सूरत बनाई और धीरे-धीरे सिसकने लगे। जब तौंद के भीतर थोड़ी सी भावना फिर तैयार हुई, तो स्त्री की ओर मुड़े और हाथ जोड़ कर कहने लगे—अरी निर्दयी, अब क्यों मुझे इतना सताती है?

बीबी—तुम्हें हो क्या गया है?

स्वामी जी—(बिगड़ कर) अरी कम्बख़्त, इस बक़ ज़रा झिड़क कर बोल, झिड़क कर। नहीं तो सब चौपट हुआ जाता है।

बीबी—सच बताओ, तुम्हें हुआ क्या है?

स्वामी जी—(रोकर) प्रेम की बीमारी।

बीबी—(घबड़ा कर) क्या? क्या? भोग की बीमारी?

स्वामी जी—(अपनी धुन में) हाँ प्यारी!

बीबी बदहवास होकर स्वामी जी की गर्दन और बगल टटोलने लगी।

बीबी—कहाँ है? यहाँ तो कुछ मालूम नहीं होता।

स्वामी जी—मालूम कैसे हो, दिल के भीतर है दिल के।

बीबी—यह कौन किसिम का भोग है?

स्वामी जी—भोग नहीं प्रेम प्रेम।

बीबी—प्रेम! क्या इसमें भी गिल्टी निकलती है?

स्वामी जी—गिल्टी नहीं, गिल्टा निकलता है।

उझू की पट्टी कहीं की। घण्टा भर से कह रहे हैं कि देख भावना न बिगाड़ने पावे। मगर कम्बख़्त को ज़रा भी



खयाल नहीं। मैं तो कह रहा हूँ कि मैं तेरी मुहब्बत में बेहाल हूँ और यह हरामजादी मेरा गला टटोल रही है।

बीबी ने जो दो-एक दफ़े भावना का नाम सुना और स्वामी जी की उल्टी-सुल्टी कार्रवाई देखी, तो उसने समझा कि जैसे औरतों पर भवानी आती हैं, वैसे मर्दों पर शायद 'भावना' आते हैं। बस यही सारी आक्रांतों की जड़ है। वह चिल्ला कर भागी और बाहर जाकर खबर कर दी कि उन पर कोई भूत सवार है। घड़ी में रोते हैं, घड़ी में बिगड़ते हैं। यह सुनते ही सब लोग दौड़ पड़े। कोई हॉबी में मिर्चा जला कर स्वामी

जी के मुँह के सामने ले गया। कोई जूता और झाड़ू सुँघाने छपका। स्वामी जी बहुत झुझाए और पिन-पिनाए कि यह क्या चाहियात बात है। इधर इसको डाँटा, उधर उसको मारा। मगर घर में सभी ओका गुनी थे। लोगों ने इन्हें देखते ही देखते बाँध-छाँद दिया और चचा साहब भङ्गघोटना लेकर लगे इनसे भूत का नाम कबुलवाने। भूत न बोला। मगर स्वामी जी की हड्डियाँ चुरचुराने लगीं, खैर जान बच गई। यही बड़ी गनीमत हुई।

(क्रमशः)

(Copyright)

आँसू



[श्रीमती कमलादेवी राय]

आशा की थपकी देकर
अब तक थी जिन्हें सुलाए,
अन्तर्जग के कोने में
पलकों की ओट लगाए।

वे मधुर वेदनाएँ अब
सुधि-अधरो का चुम्बन कर,
आँखों से निकल पड़ी हैं
अव्यक्त लालसा लेकर।

चिर दुख का आलिङ्गन पा
क्रन्दन कर उठा हृदय है,
निर्वाक, शान्त नेत्रों में
धिरता गम्भीर प्रलय है।

मानस उन्मुक्त करों से
सञ्चित निधियाँ बिखराता,
तिरती आँखों की पलकों—
से, मुक्ता-कण बरसाता।

इनमें अतीत का सुख है,
है वर्तमान की पीड़ा,
मेरे सन्तप्त हृदय से
मेरे अभाग्य की क्रीड़ा।

इनमें ही छिपी हुई है
जीवन की चिर अभिलाषा,
उन्मुक्त व्योम में फैले
मेघों-सी घन्टी निराशा।

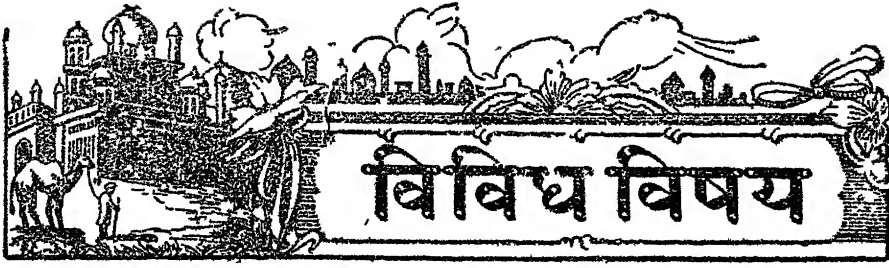
दुख मूर्तिमान होकर के
इनमें सोया है मेरा,
मीठा-सा अन्तर-क्रन्दन
करता है यहाँ बसेरा।

अन्तर्ज्वाला पानी बन
बहती रहती है इनमें,
यह छोटी जीवन-नौका
डूबी जाती है जिनमें।

चिर वृष्णामय, नीरस ही
रहने दो मेरा जीवन,
नित का सहचर हो क्रेवल
मीठी पीड़ा की कसकन।

इन आँखों में छाया हो
निशि-वासर सावन का घन,
आँसू की अविरल धारा
बहती रहती हो प्रति क्षण।





जीने का अधिकार सबको नहीं

पिछले फरवरी मास के 'चाँद' में "जीने का अधिकार किसको" शीर्षक एक लेख मेरी ओर से प्रकाशित हुआ था। वह लेख 'युगान्तर', 'सुधा', 'तेज' और 'प्रकाश' आदि कई पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत किया गया था। उसे हिन्दी पाठकों ने बहुत पसन्द किया। मेरे पास बहुत से पत्र उसके सम्बन्ध में आए। कई प्रेमियों ने प्रश्न भी पूछे, जिनका उत्तर मैंने "जीने का मोह" शीर्षक लेख में दिया है, जो जुलाई की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ है। परन्तु किसी कारणवश वह सम्पूर्ण लेख सरस्वती में नहीं छप सका, इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं ज़रा विस्तार से इस विषय पर और भी प्रकाश डालूँ। ईश्वर ने अनायास ही वह अवसर मुझे दे दिया और मैं बड़ा प्रसन्न हुआ, जब 'चाँद' के सुयोग्य सम्पादक मुन्शी नवजादिकलाश जी ने मेरे पास जून का 'चाँद' भिजवा दिया, जिसमें भाई मोहन सुरेन्द्रपाल 'पाल' ने मेरे उस लेख का उत्तर छपवाया है। अब मैं क्रौरन ही अपने विषय में प्रवेश करता हूँ।

संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं, एक सिद्धान्तवादी और दूसरे व्यवहारवादी। सिद्धान्तवादी केवल सिद्धान्त के ही स्वप्न देखते हैं और संसार की ठोस घटनाओं की विवेचना नहीं करते। आज से नहीं, जब से मनुष्य-समाज का सङ्गठन हुआ है, तभी से लोग आदर्शवाद के गीत गाते चले आते हैं और विश्व-बन्धुता के स्वप्न देखते रहे हैं। वेदों में "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष्यताम्"—ऐसे आशय के वाक्य बहुत मिलते हैं। परन्तु इसका यह तो अभिप्राय नहीं

कि उस काल के समाज ने विश्व-बन्धुता को पा लिया था। विश्व-बन्धुता का आदर्श बड़ा पुराना है और यह भविष्य में भी आदर्शवादियों के साथ जायगा। परन्तु हमें तो यह देखना है कि मनुष्य का लाखों वर्षों का अनुभव क्या कहता है? उसकी घोषणा यह है —

The good old plan—

He will have, who has the power,
He will keep who can

अर्थात्—"पुराना और भला नियम यही है कि जिसके पास शक्ति है, उसी को वस्तु मिलेगी और वही उसे संभाल सकेगा, जिसमें उसे रखने की शक्ति होगी।" आज सारा संसार महात्मा गाँधी को संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष घोषित कर रहा है, परन्तु उसी सर्वश्रेष्ठ पुरुष को भारतीय सरकार करोड़ों नर-नारियों की इच्छा के विरुद्ध जेल में बन्द कर देती है। आप उसका क्या कर सकते हैं? क्या है आपके पास शक्ति? अधिकार उसी दम तक सच्चा अधिकार है, जब तक उसकी रक्षा की शक्ति भी आपके पास है। आपके "अधिकार, अधिकार" चिह्नाने से आपको जीने का अधिकार नहीं मिल सकता। दो मामूली अङ्गरेज इतिनियरों को सोवियट रूस के अधिकारियों ने बन्द कर दिया था, परन्तु जब ब्रिटिश-सिंह गरजा और उसने अपने दाँत दिखलाए तो रूसी रीछ दब गया और क्रौरन दोनों अङ्गरेजों को छोड़ना पड़ा। भारद्वाज के तीस करोड़ नर-नारी महात्मा गाँधी को जेल से नहीं छोड़ा सकते, इसीलिए न कि उनके पास शक्ति नहीं है। यदि आज हमारे बाहुओं में भी बल होता, तो क्या हमारे जीते जी कोई बड़ी से बड़ी सरकार भी हमारे प्यारे नेताओं को जेल में बन्द रख सकती? अधिकार की पुकार व्यर्थ है, जब तक कि आपकी हड्डियों में उस अधिकार को लेने की



शक्ति नहीं। संसार में सभी मनुष्य उस शक्ति को नहीं पा सकते। इसलिए शक्तिहीन, आलसी, निकम्मे और भीरु नष्ट करने के योग्य हैं, पालने के योग्य नहीं। जब मानव-समाज दया-धर्म के नाम पर और अहिंसा के बहाने इन निकम्मे पौधों को पालना प्रारम्भ कर देता है, तभी उस समाज की तबाही आती है। हमें समाज में अच्छी नस्ल के बलशाली स्त्री-पुरुष रखने हैं, जो प्रभु के अनन्त ज्ञान की खोज कर सकें और संसार को आगे बढ़ा सकें। बेशक, आप ऐसे अन्धे, लूले, लैंगदों को, जो उपयोगी बन सकते हैं, लाभदायक बनाइए। मैं उस कार्य के विरुद्ध नहीं हूँ। परन्तु सबसे पहला हक नीरोग और सबल पौधों का है। उनका लालन-पालन करने के बाद यदि खाने की सामग्री बच जायगी और हमारे पास समय होगा, तो हम अवश्य ही दूसरे दर्जे के पौधों में से छान-बीन करेंगे, इसी प्रकार तीसरे दर्जे में से। परन्तु जब हमारे पास नीरोग पौधों के लिए ही काफ़ी भोजन नहीं है, तो हम निकम्मे पौधों के पालने में अपनी शक्ति नष्ट क्यों करें? केवल दया के नाम पर ऐसे निकम्मे पौधों में जीने का मोह उत्पन्न करना महात् पाप है। जीना, बड़ाते खुद कोई हक नहीं, बल्कि जीने वाले की योग्यता ही उसका हक पैदा करती है। जिन मकई के पौधों को कीड़ा लग जाता है, किसान उन्हें फ़ौरन उखाड़ कर फेंक देते हैं, ताकि दूसरे पौधों को भी वही कीड़े न लग जायें। इसी प्रकार जिन लोगों को भ्रम और चेचक हो जाती है, उन्हें भी नीरोग मनुष्य से अलग कर दिया जाता है। अब अगर राष्ट्र के पास इतना भोजन हो, जिसे वह केवल अपने नीरोग बच्चों को ही दे सकता है, तो मैं यही कहूँगा कि केवल उन्हीं को जीने का अधिकार मिले, बाक़ी सब नाश कर दिए जायें। मैं विश्व-बन्धुता के नाते भोजन को रोगी और निकम्मे मनुष्यों में नहीं बाँटूँगा। क्योंकि उसका परिणाम बड़ा भयङ्कर होगा और नीरोग पौधे भी निर्बल हो जाएँगे। मेरे लिए—

“The claim of the race is the claim of religion”—अर्थात्—“नस्ल की रक्षा का हक़ धर्म की सबसे कड़ी आज्ञा है।” हम संसार में किसी उद्देश्य के लिए आए हैं, केवल खाने और मैला करने के लिए नहीं। जो उस उद्देश्य को पूरा नहीं करते, उन्हें जीने

का कोई अधिकार नहीं। यूरोप और अमेरिका के राष्ट्र अपने अन्धे, लूले और अपाहिज सदस्यों के लिए जो कुछ कर रहे हैं, वह मेरे लिए नया नहीं है। परन्तु उन राष्ट्रों ने भी अभी तक जीवन के इस तत्व को समझना प्रारम्भ नहीं किया। उनके यहाँ अत्यन्त निकम्मे, सुस्त और व्यभिचारी पूँजीपति मज़े से चरते हैं और उन्हें कोई भी अनन्त ज्ञान की खोज में नहीं लगा सकता। मेरे जीवन की फ़िलॉसफ़ी में ऐसे पूँजीपतियों को जीने का कोई हक़ नहीं, जो दिन-रात भोग-विलास, ताश-शतरंज, सिनेमा-थियेटर और गप्पबाज़ी में अपना समय खोते हैं। समाज में बहुत से नियम धर्म के नाम पर ऐसे चला दिए गए हैं, जिनकी वजह से समाज अपने मुख्य उद्देश्य से पीछे हटता चला जाता है। उन गलत सिद्धान्तों में से एक यह जीने का मोह है। हम यह समझते हैं कि जिसे हम पैदा नहीं कर सकते, उसे मारने का हमको हक़ नहीं, हालाँकि हमी उसे पैदा करते हैं। हमारी सन्तान हमारे ही पुरुषार्थ का फल है। हमें उस सन्तान को, यदि वह समाज के लिए हितकर न हो, बलिदान करने को सदा तैयार रहना चाहिए।

आगे चल कर अपने लेख में आई पाल ने मेरे लेख का आशय बिल्कुल न समझ कर दूसरे ही विषय की चर्चा कर दी है और लगे हाथों हज़रत ईसा मसीह का एक वाक्य भी उद्धृत कर दिया है, जिसका आशय भी आप नहीं समझे। हज़रत ईसा मसीह कहते हैं—“यदि कोई मनुष्य सारे संसार का धन कमा ले और अपनी आत्मा खो दे, तो उसे क्या लाभ?” जिसका आशय यह है कि यदि तुमने दुनिया भर के छल-प्रपञ्च करके पैसा पैदा कर लिया, तो उससे तुमको लाभ ही क्या, क्योंकि इससे तुम्हारी आत्मा तो कलुषित हो गई। तुम अपनी आत्मा की रक्षा सच्चरित्रता और ईमानदारी से ही कर सकते हो। यहाँ केवल नैतिक सिद्धान्तों से अभिप्राय है, मारने और जिताने का कोई सम्बन्ध इस वाक्य से नहीं। खैर।

अन्त में मैं अपने सब प्रेमी पाठकों से यह निवेदन करता हूँ कि वे पहले मेरे अभिप्राय को भली प्रकार समझ लें। मैं किसी इलहामी किताब के सहारे मनुष्य का धर्म निश्चित नहीं करता। मैं तो संसार की ठोस घटनाओं को सामने रख कर और मनुष्य के अनुभव से

उसे तोल कर सत्य की परख करता हूँ। इसलिए मैं फिर बलपूर्वक यही कहता हूँ कि संसार में जीने का अधिकार सबको नहीं और सब कभी भी नहीं जी सकेंगे, चाहे राम-राज्य हो चाहे ईसा-राज्य। प्राकृतिक नियम अटल हैं, वे अपना काम बराबर करते चले जायेंगे। हमें परिस्थितियों को समझना चाहिए। देश-काल देखना चाहिए और अपने हर्द-गिर्द की हालतों को तोलना चाहिए और तब अपना कर्तव्य निश्चित कर आगे बढ़ना चाहिए। सदा चैतन्य और जागरूक रहिए और प्रत्येक मिनिट को कीमती समझिए। जो भी ज्ञान आपको मिल सकता है, उसे प्राप्त करने में कभी न चूकिए। जितना अधिक आप समाज के लिए उपयोगी होंगे, उतने ही आप सत्तम बनेंगे और उतना ही अधिक आपको जीने का अधिकार प्राप्त होगा।

—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रूस में स्त्रियों के अधिकार

ज़ार के शासन-काल में स्त्रियों की अवस्था

कुछ वर्ष पहले रूस में स्त्रियों की अवस्था ऐसी ही थी, जैसी आजकल भारतवर्ष में है। बोलशेविक क्रान्ति ने जब रूस का कायापलट कर दिया, तब स्त्रियों के भी भाग्य जागे। ज़ार के शासनकाल में स्त्री को कोई भी अधिकार प्राप्त न था। विवाह के पूर्व यदि वह पिता की पुत्री थी, तो विवाह के बाद वह पति की पत्नी बन जाती थी। विवाह के समय उसे प्रेम और आज्ञा-पालन का पाठ पढ़ाया जाता था। उसके अधिकारों में कोई अन्तर नहीं आता था। वह केवल घर में काम-काज करने वाली लौंडी समझी जाती थी। बहुधा उस पर मार भी पड़ती रहती थी। जायदाद पर उसका कोई अधिकार नहीं था। कोई उच्च पद प्राप्त करने का अधिकार उसे नहीं था। जीवन के किसी भी क्षेत्र में उसे उत्तरदायित्व का कोई अधिकार नहीं था।

स्त्रियों में परिवर्तन

समय के साथ रूस की स्त्रियों में भी परिवर्तन आया। साम्यवाद ने स्त्रियों को भी समानता का झंडा

दिया। सबसे प्रथम लेनिन और उसके साथियों ने स्त्रियों को वह अधिकार दिया, जिसका उन्होंने कभी स्वयं में भी ज्ञात नहीं किया था। राजनीति और सामाजिक क्षेत्रों में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ला बैठाया गया। आज वे सरकार के बड़े-बड़े कामों में पुरुषों से कन्धे भिड़ा कर चलती हैं। बड़े से बड़े पद उनके लिए खुले हैं। आज वे बड़े-बड़े कमीशनों की सदस्याएँ होती हैं और बड़े-बड़े व्यापार चलाती हैं।

स्त्री कार्यकर्त्रियाँ

रूस में आज १,४०,००० स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो सरकारी या लोगों के खेतों का प्रबन्ध करती हैं। १८५ स्त्रियाँ ऑल यूनियन सेन्ट्रल और ऑल रशियन सेन्ट्रल एक्जीक्यूटिव कमेटी की सदस्या हैं। कम्युनिस्ट पार्टी के कुल तीन लाख सदस्य हैं। उनमें स्त्रियों की संख्या ५० हजार के लगभग है। यही नहीं, काम करने वाली स्त्रियों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है। १९२३ में ४,०४,२०० स्त्रियाँ फ़ैक्टरियो तथा दूकानों में काम करती थीं, परन्तु १९३२ में उनकी संख्या १७,२०,७०० हो गई। इस प्रकार प्रत्येक कार्य में स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है।

स्कूलों में स्त्रियों की संख्या वृद्धि

रूस में स्त्रियों को सब प्रकार के काम सिखलाने के स्कूल हैं। गत महायुद्ध के बाद से पुरुषों के स्कूलों में स्त्रियों का प्रवेश भी होने लगा। स्त्रियों ने भी इस रियायत से पर्याप्त लाभ उठाया। १९२५ में स्त्री विद्यार्थियों की संख्या ६,८०० थी। १९३१ में उनकी संख्या ४७,७०० हो गई। इसी प्रकार प्रत्येक स्कूल में स्त्रियों की संख्या बढ़ी। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार १९३२ में ८० लाख स्त्रियों ने लिखना-पढ़ना सीखा।

इससे स्पष्ट है कि रूस की स्त्रियों में एक साथ बड़ी जागृति हुई। हर एक क्षेत्र में उन्होंने काफ़ी उन्नति की।

स्त्रियों में फ़ौजी शिक्षा

कम्युनिस्ट पार्टी ने स्त्रियों की अवस्था को सुधारने का बड़ा यत्न किया। स्त्रियों के लिए उन्होंने विशेष पत्रिकाएँ निकाली, जिनमें उनके सुधार-सम्बन्धी बातें रहती थी। ८ मार्च १९३३ को मॉस्को में “अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-दिवस” मनाया गया। उसमें १२ स्त्रियों को

लेनिन की सेना के समान सजाया गया और १७ को लाल झण्डे वाले मजदूरों के साथ। सोवियट सरकार न केवल स्त्रियों को अन्य क्षेत्रों के लिए तैयार करती है, बल्कि उन्हें प्रौद्योगिकी शिक्षा भी दी जाती है। प्रौद्योगिकी शिक्षा अनिवार्य नहीं है, फिर भी यह यत्न किया जाता है कि अधिक से अधिक संख्या में स्त्रियाँ अपनी छुट्टी के दिन स्त्रियों के प्रौद्योगिकी कैम्पों में बितावें। वहाँ उन्हें प्रौद्योगिकी कवायद और दूसरी बातों की शिक्षा दी जाती है।

इन कैम्पों में रहने का खर्च भी बहुत थोड़ा है। दो हफ्ते के लिए केवल १ डालर और ५० सैण्ट देने पड़ते हैं। वहाँ उनको बार-बार बताया जाता है कि पूँजीपति राष्ट्र रूस से सदा लड़ने को तैयार रहते हैं। यह स्त्रियाँ जब घर वापस जाती हैं, तो इन्हीं शब्दों को दोहराती हैं।

रूसी स्त्रियों का आदर्श

रूसी स्त्रियों का आदर्श अङ्गरेज महिलाओं के आदर्श से सर्वथा भिन्न है। पश्चिमी सभ्यता का उन पर कोई प्रभाव नहीं। वे कविता, कला और सौन्दर्य की उपासना में मस्त होकर अपनी गृहस्थी को नहीं भूल जातीं। वे अपने काम का सदा ध्यान रखती हैं।

सन्तान

रूस में विवाह कोई धार्मिक बन्धन नहीं है। बच्चा पैदा होते ही देश का समझा जाता है और देश जैसा चाहता है, उसे वैसे ही शिक्षा-दीक्षा देता रहता है। माता-पिता पर उसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती। उसका पालन-पोषण सरकार करती है।

विवाह

१९१८ में विवाह की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी। परन्तु १९२७ में वह नियम भी रद्द कर दिया गया। तब से विवाह की रजिस्ट्री कराना या न कराना एक बराबर है। रजिस्ट्री कराओ या न कराओ, सन्तान जायज़ समझी जाती है। रजिस्ट्री से केवल सरकार को सुभीता होता है। वह आसानी से उन पिताओं से कर वसूल कर सकती है, जो अपने बच्चों का पालन नहीं करते। इसलिए रूस के पारिवारिक जीवन में बड़ा परिवर्तन आ गया है, जिसकी मज़ी हो जिससे शादी

कर ले। शादी की कोई रस्म नही, रिवाज़ नहीं। अदालत में रजिस्ट्री कराने की भी कोई आवश्यकता नहीं। बच्चे पैदा होने में कोई कानूनी रोक-टोक नहीं। बच्चे होंगे उन्हें सरकार के सुपुर्द कर दो। माँ-बाप पर उनका कोई बोझ नहीं। यह एक नया आदर्श है, जो संसार के सामने आया है। देखें, इसका क्या प्रभाव अन्य देशों पर पड़ता है!

—जगदीशचन्द्र शास्त्री

(सहकारी समादक “अर्जुन”)

❁ ❁ ❁

इटली के कैदी और कैदखाने

राज-दुष्ट और प्रजा-दुष्ट में सदा से सङ्घर्ष होता चला आया है। शासन जब निरङ्कुश हो जाता है, जब उसका उद्देश्य प्रजा का रक्त-शोषण ही हो जाता है, उस समय प्रजा शासन के विरुद्ध खड़ी हो जाती है और शासकों को शासन-तन्त्र बदलने के लिए, उसमें सुधार करने के लिए बाध्य करती है। कभी-कभी शासन की प्रणाली और सामाजिक नियमों के सम्बन्ध में शासक और शासित अथवा प्रजा के ही दो दलों में भिन्न दृष्टि-कोणों को लेकर सङ्घर्ष हो जाता है और उस समय जिनके हाथों में शासन की बागडोर अथवा शक्ति रहती है, वे अपने विरोधियों को, अपने ही देश-भाइयों को बड़ी बेरहमी और बड़ी क्रूरता से कुचलने का प्रयत्न करते हैं। इस समय संसार के प्रायः सभी देशों में एक न एक प्रकार का सङ्घर्ष चल रहा है, किन्तु कहीं-कहीं तो राजसत्ताधारियों ने विरोधियों को परास्त करने के लिए दमन की इति कर दी है। इसी प्रकार की विषमताओं के युग से होकर गुज़रने वाले देशों में से इटली देश में वर्तमान शासन-तन्त्र के विरोधियों का किस निर्दयता के साथ दमन हो रहा है, शासन के सूत्रधार मुसोलिनी ने विरोधी दल के विद्वान और योग्य-तम प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जेलों में किस प्रकार दूँस रखा है और जेलों में उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है, उसी का संक्षिप्त परिचय पाठकों को दिया जा रहा है।

इटली का शासन इस समय एकतन्त्रवादी (फ़ैसिस्ट) दल के हाथों में है। इस दल के प्रवर्तक मुसोलिनी हैं और वही एकतन्त्र रूप से इटली का शासन कर रहे हैं। यद्यपि इटली के हिज़-मैजेस्टी किङ्ग विद्यमान हैं, उनकी एक राज-सभा है और मुसोलिनी कहने को प्रधान मन्त्री हैं, किन्तु वास्तव में मुसोलिनी ही इटली के सर्वेसर्वा हैं, डिक्टेटर हैं और देश का शासन उन्हीं की इच्छा के अनुसार होता है। मुसोलिनी पिछले दस वर्षों से इस प्रकार से इटली का शासन कर रहे हैं। फ़ैसिस्ट दल के शासन-काल से ही नहीं, उसके जन्म-काल से उसके विरोधी डिमोक्रेटिक और सोशलिस्ट, दो दल हैं। फ़ैसिस्ट दल और मुसोलिनी ने शासन-सूत्र हाथ में लेने के बाद किस अमानुषिकता और नृशंसता के साथ उपर्युक्त दोनों दलों को दबाया है, इसका एक काला इतिहास है, जिसका वर्णन करने के लिए न उपर्युक्त अवसर है और न स्थान ही। किन्तु यूरोप की ग़र्वीली सभ्यता का अनुगामी इटली का शासक-वर्ग इस बीसवीं सदी में अपने ही रक्त-मांस के भाइयों के साथ जेलों में कैसा बर्बरतापूर्ण व्यवहार कर रहा है और वहाँ की जेलों की क्या दशा है, इसका वर्णन कर देना आवश्यक है।

फ़ैसिस्ट दल के शासनारुढ़ होने के बाद सन् १९२२ से १९२६ तक डिमोक्रेटिक और सोशलिस्ट दलों का निरङ्कुशता के साथ दमन किया गया था। उन दिनों फ़ैसिस्ट दल वाले विरोधी दलों के लोगों का हरण कर लेते थे, लाठियों और बन्दूकों के कुन्दों से उन्हें आहत करते थे और कभी-कभी तो आम सबकों पर रिवाजवरों की गोलियों से उनके प्राण ले लेते थे। चार वर्षों तक यह धौंगा-धौंगी रही, किन्तु सन् १९२६ में नूतन सरकार का दबदबा सर्वत्र स्थापित हो जाने पर विशेष कानून बनाए गए और उन कानूनों की आड़ में विरोधियों को गिरफ़्तार कर राजनीतिक कैदियों के रूप में जेलखानों में रक्खा जाने लगा, लम्बी-लम्बी सज़ाएँ दी जाने लगीं और द्वीपान्तरवास का भी दण्ड दिया जाने लगा। इस प्रकार सन् १९२६ से लेकर १९३२ तक, अर्थात् ६ वर्षों के अन्दर दस हजार से अधिक विरोधी गिरफ़्तार किए गए और विशेष अदालतों द्वारा उन्हें कड़ी कैद की सज़ाएँ दी गयीं। इन

दस हजार में वे 'आतङ्ककारी' और उपद्रवी शामिल नहीं हैं, जो वर्ष-भर में फ़ैसिस्ट उत्सवों के अवसर पर अनेक बार हज़ारों की संख्या में गिरफ़्तार किए जाते हैं और उत्सवों की समाप्ति के बाद छोड़ दिए जाते हैं।

जेलों में यातनाएँ

कहते हैं कि इटली की जेलें यूरोप के अन्य देशों की जेलों के मुक़ाबले में सबसे निकृष्ट हैं। इटली की जेलों में कैदियों और विशेषतः राजनीतिक कैदियों को असह्य यातनाएँ पहुँचाई जाती हैं। यातनाएँ कैसी होती हैं और वहाँ के जेलखाने कैसे होते हैं, इस सम्बन्ध में कार्लो ऐसेली नामक एक मुक्तभोगी इटैलियन राजनीतिक कैदी ने इङ्ग्लैण्ड के 'मैनचेस्टर गार्जियन' नामक पत्र में एक पत्र प्रकाशित कर अपने कुछ अनुभव लिखे हैं। उन्होंने लिखा है कि इटली में विचाराधीन कैदियों को भी, जिनके मुक़द्दमे महीनों और कभी-कभी सालों चलते हैं, एकान्त में रक्खा जाता है, पुस्तकें या समाचार-पत्र भी नहीं दिए जाते और भोजन के लिए केवल रोटी तथा एक उबाला का शोरबा दिया जाता है। सैकड़ों मामलों में अमानुषिक रूप से शारीरिक यातनाएँ दी जाती हैं, पैर के नाखून नुचवा लिए जाते हैं। ख़ौलता हुआ पानी तलुवों पर छोड़ा जाता है, रबर के हथौड़ों से छातियों पर चोटें लगवाई जाती हैं और जिरह के समय लाठियों से पिटाया जाता है। राजनीतिक कैदियों को कागज़, क़लम, पेन्सिल, पुस्तकें आदि कुछ नहीं दी जाती। पिछली शरद ऋतु में बहुत से कैदियों को कई महीने के लिए तनहाई में रक्खा गया था और खाने के लिए सूखी रोटी तथा पानी दिया जाता था। जिन लोगों ने जेल की शक्त कभी नहीं देखी है, उनकी दृष्टि में तनहाई की बातें कदाचित् कुछ न समझ पड़ें। किन्तु उक्त इटैलियन का कहना है कि मैं अपने निजी अनुभव से उन्हें विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि जेल के एकान्तवास में लिखने और पढ़ने की स्वतन्त्रता न देना नैतिक यातना है और वह शारीरिक यातना से भी कहीं बढ़ कर है। जिन टापुओं में कालेपानी के कैदी भेजे जाते हैं, वहाँ की दशा भी अच्छी नहीं है। एक जेल में ६०० कैदी हैं, जिनमें बहुत सी स्त्रियाँ भी हैं। कैदियों के साथ भीषण दुर्व्यवहार किया जा रहा है।

उसके लिए बहुत चीत्कार मचाया जा चुका है। ज़मीन और आसमान के कुलाबे एक किए गए, किन्तु अधिकारियों के कानों पर जूँ नहीं रेंगी।

पिछले नवम्बर मास में शाही घोषणा के अनुसार प्रायः २० हजार कैदी छोड़े भी गए थे, किन्तु इनमें राजनीतिक कैदियों की संख्या केवल ५०० ही थी और वे भी हलकी तथा कम दिनों की सज़ा के कैदी थे। डेमोक्रेटिक और सोशलिस्ट दलों के प्रायः सभी नेता जेलों में ही बन्द रखे गए और शाही घोषणा के अनुसार वे नहीं छोड़े गए। इन लोगों को १५ से लेकर ३० वर्ष तक की सज़ाएँ दी गई हैं। कितने ही कैदी आठ-आठ और दस-दस वर्ष की सज़ा बिता भी चुके हैं, कितने ही निराश होकर जेलों में ही मर गए हैं और कितनों ही को राजयक्ष्मा, तपेदिक आदि रोग लग गए हैं। ग्रैमसी नामक एक कम्यूनिस्ट दल का सुप्रसिद्ध नेता गत सन् १९२७ से जेल में पड़ा सड़ रहा है और शाही घोषणा के अनुसार सज़ा घट जाने पर भी वह सन् १९४० तक छूट सकेगा। कितने ही शाही घोषणा के अनुसार मुक्त कैदी जेलों से ही सीधे कालेपानी के टापू भेज दिए गए और घर लौटने की उनको नौबत ही नहीं आई।

यह है, सचेत में, यूरोप के एक सुसभ्य देश के कैदियों और कैदज़ानों की दशा और सत्ताधारी शासकों के निर्मम अत्याचार, जिनके बल पर वे शासन कर रहे हैं। परन्तु वहाँ का प्रजा-हठ भी मुसोलिनी के दस वर्षों के लौह-शासन के बाद भी मन्द नहीं पड़ा है और एक न एक उपद्रव नित्य ही खड़ा रहता है।

—रामकिशोर मालवीय

अद्भुत स्वप्न

उस दिन एक सित्र के यहाँ प्रीति-भोज का निमन्त्रण होजे के कारण कुछ अधिक छन गई थी। इसी से जिस समय खोमचे वाले ने खट्टे, मीठे, चरपरे, आदि अनेक तरह के पदार्थों के दोने एकत्रित मित्र-मण्डली के सामने रखने शुरू किए, उस समय मेरे मुँह में अना-थुस ही पानी का सेता उमड़ पड़ा और साथ ही

पेट के रग-पट्टों में भी पेंडन सी होने लगी। फिर भी निमन्त्रित मित्र-मण्डली का नम्बर अधिक और खोमचे वाले खूबसूरत के सुस्त होने से मुझे कुछ देर तक मन को मार, दोनों से मुँह तक सरपट दौड़ लगाने की इच्छा वाले हाथ को रोक रखने के लिए जेब के हवाले करना पड़ा। परन्तु मेरी दोनो आँखें अद्विजल टट्टू की तरह दोनों पर ही अड़ी रहीं।

हमारी इस मण्डली में एक विलायती हिन्दुस्तानी भी थे, जो लन्दन शरीर में हिन्दुस्तानी आचार-विचार का क्रिया-कर्म करके हाल ही में भारत लौटे थे। यद्यपि अपने ही मुँह मियाँ-मिट्टू बनना अनुचित समझ, उन्होंने आज तक कभी अपने मुख से अपने इस धर्म-ऋण से उऋण होने का बखान नहीं किया था, तथापि उनका मातमी मुख और उस पर डाढ़ी-मूँछ का अभाव ही इसके पर्याप्त प्रमाण थे। आपका 'बख से शिख' तक का बनाव शृङ्गार तो 'टोडी बच्चे' का सा ही था, परन्तु आपका कर्म-लेख लिखने के समय विधाता की दावात उलट जाने अथवा आपके मर्त्यलोक में पदार्पण करने के वक्त अफ्रीका की गर्मी या कृष्णसागर के जल-वायु का असर हो जाने से आपका सौवत्ता-सलोना सफ़ाचट मुख पाउडर की पुताई से भी अपनी असलियत छोड़ने को तैयार न था।

खैर, किसी तरह राम-राम कर मुँह में स्थित द्रव्यों और दोनों में स्थित पदार्थों के बीच का युद्ध अभी आरम्भ हुआ ही था और जीम-रूपी चण्डी ने दाँतों द्वारा कुचले गए पदार्थों का रस पान करने के लिए अपना विकट तायडव शुरू किया ही था कि हमारे वे नर-नारी-रूपधारी अर्ध विलायती मित्र न जाने क्या देख कर एकाएक भड़क उठे और लगे विलायती सफ़ाई और खान-पान की प्रशंसा के साथ-साथ हिन्दुस्तानी आचार-विचार और आहार की निन्दा करने। यद्यपि उनके इस अनर्गल आलाप से विजया की हरियाली और उत्तमोत्तम भोज्य-पदार्थों की सरसता में शुष्कता और नीरसता छा गई और वहाँ पर उपस्थित अन्य मित्र इसे मिचै महारानी की महिमा समझ उन्हें थोड़ा सा मधुर पदार्थ मुख में डाल लेने का उपदेश देने लगे, तथापि अपने राम ने तो सामने रखी अन्नदेवता की अनेक प्रकार की सुहावनी मूर्तियों



को भक्ति-भाव से मुख के मार्ग द्वारा उदर-मन्दिर में प्रतिष्ठित करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझा। भला एक धर्मग्रन्थ हिन्दू के सामने यदि कोई उसके इष्टदेव की मूर्ति का अनादर करने को उद्यत हो जाय, तो क्या उसका पहला काम उन मूर्तियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचाना नहीं होगा ?

अस्तु, जिस किसी तरह मैं अपने कर्तव्य को पूर्ण कर दार्विन के मतानुसार स्त्री और पुरुष के बीच के उस जीव को कोसता हुआ घर आकर पड़ रहा। परन्तु थोड़ी ही देर में मुझे ऐसा भान होने लगा, जैसे मेरी 'पीनियल ग्लाय्ड' ने उभर कर तीसरे नेत्र का रूप धारण कर लिया है और मैं त्रिनेत्र होकर प्रकृति के प्रत्येक रहस्य को देखने में समर्थ हो रहा हूँ। इसी समय मुझे भोजन के समय की घटना का खयाल आ गया। परन्तु अभी मेरा ध्यान उधर गया ही था कि मैंने देखा, एक विशाल मञ्च पर खड़े धन्वन्तरि महाराज अपने सामने खड़े पास्चर आदि यूरोप और अमेरिका के अनेक वैज्ञानिकों और लब्धप्रतिष्ठ डॉक्टरों को डाँट-फटकार रहे हैं और कह रहे हैं—“जब तुम स्वयं मनुष्य-शरीर को रोगों का सामना करने में सशक्त बनाने के लिए उन रोगों के कीटाणुओं को इन्जैक्शन द्वारा उसमें प्रविष्ट करना आवश्यक समझते हो, तब तुम्हारा गरीब भारतवासियों के रहन-सहन और आहार-विहार की प्रथा पर उँगली ठठाना क्या अनुचित नहीं है ? क्या आँख और समझ रहते भी तुमने कभी इस तरह ध्यान दिया है कि जिस तरह यूरोप और अमेरिका के परिवारों में किसी एक के प्लेग, हैज़ा, चेचक, मात्रा-ज्वर आदि संक्रामक रोगों से आक्रान्त हो जाने पर उसके सारे ही कुटुम्बी नेह-नाता तोड़ उससे दूर भागते हैं, उस तरह काम करने पर भारतवासी क्यों नहीं भागते ? जिस तरह तुम्हारे देश में कृमि और आम के रोगी अपने जीवन से हताश हो जाते हैं, उस तरह हमारे देशवासी क्यों नहीं होते ? क्या तुम्हारा यह कर्तव्य न था कि तुम लोग भारतवासियों की बुराई करने के पूर्व इन बातों के कारणों का पता लगाते ? परन्तु तुमने तो गरीब भारत के तिल के समान दोष को भी त्रास के समान बना कर बिना प्रयास ही बाह-बाही लूटने का ठेका ले रखा है। यदि वास्तव में ही

तुम लोग भारतवासियों की खिल्ली उड़ाने का खयाल छोड़ विचार में काम लो तो तुम्हें उनके वैद्यक शास्त्र में ही नहीं, उनके धर्मशास्त्र तक में आचार-विचार और खान-पान के विषय में अनेक अमूल्य उपदेश भरे मिलेंगे। परन्तु तुम तो सब पर अपना ही रङ्ग चढ़ाने पर तुल्ले हो। तुम्हें भारतवासियों की वर्तमान परिस्थिति पर विचार करने का तो समय ही नहीं है। फिर भी यदि सोच कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारे धनाढ्य देशवासी रहन-सहन की सफाई और खान-पान की चुना-चुनी की 'अति' के कारण ही संक्रामक और कृमि, आम आदि रोगों का सामना करने की सामर्थ्य खो बैठे हैं। परन्तु गरीब भारतवासी इस 'अति' से दूर रह कर आज भी इस दोष से मुक्त हैं। परिस्थिति के कारण भारतवासियों को नित्य ही अनेक संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से सङ्घर्ष करना पड़ता है। इसीसे उनके शरीर में इन कीटाणुओं को मारने के लिए कीटाणु-नाशक रस बनता रहता है। इसी तरह मिर्च-मसाले के सेवन से भी उदर में पहुँचने वाले कृमि आदि पूरी तौर से बढ़ने के पूर्व ही यमलोक को पहुँच जाते हैं। याद रहे, प्रकृति का नियम है कि अरक्षित आदमी की रक्षा वह स्वयं करती है और सुरक्षित पर मौक़ा मिलते ही आक्रमण कर बैठती है। यदि ऐसा न होता तो शहरों में सफाई का काम करने वाली जातियाँ आज से बहुत समय पहले ही समाप्त हो गई होतीं और उनके अभाव में फैली हुई गन्दगी के कारण संक्रामक रोगों के कीटाणुओं द्वारा यह सारा संसार भी सूना पड़ा मिलता।

“शायद अब तुम्हारी सभ्रम में आनया होगा कि यूरोप और अमेरिका के धनाढ्य देशों में जो काम आज-कल करोड़ों रुपये खर्च करके तैयार किए गए कीटाणु-विष-नाशक इन्जैक्शन करते हैं, वही काम गरीब भारत ने प्रकृति को सौंप रक्खा है। परन्तु इतना होने पर भी तुम्हें अपनी शक्ति पर पूर्ण विरवास न होने से तुम अपने रोमाक्रान्त प्रियतम कुटुम्बी से भी दूर भागते हो; लेकिन भारतवासी प्रकृति के नियम को अटल समझ अपने पड़ोसी तक की सेवा-शुश्रूषा करने से मुँह नहीं मोड़ते।”

इसी समय धन्वन्तरि महाराज ने पास ही खड़े हुए बंदा जी की तरफ इशारा करके कहा कि “क्या तुमने



चेचक के टीके का रहस्य प्रकृति से ही नहीं सीखा है और क्या इस कृत्रिम विधि के प्रचलित होने के पूर्व इस काम को स्वयं प्रकृति नहीं करती थी ? हम अपने इस कथन के प्रमाण में संसार के मनुष्येतर प्राणियों को उपस्थित कर सकते हैं, जो आज भी अपने घावों को चाट कर बिना इन्जेक्शन के ही अपने शरीर में विष-माशक रस उत्पन्न कर लेते हैं और रोगों से मुक्त हो जाते हैं।

“किर अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि तुम्हारे ही भाई होमियोपैथ तुम्हारी ही इस धारणा को निरर्थक सिद्ध करते हैं। उनका मत है कि शरीर में इस प्रकार वाह्य-द्रव्यों (Foreign matters) का प्रवेश कराने से रोग का प्रकोप कुछ दिन के लिए भले ही रुक जाय, परन्तु कालान्तर में वही रोग और भी भयङ्कर रूप से अथवा किसी अन्य रूप से अवश्य ही प्रकट होगा। इसके अलावा तुम लोगों का करोड़ों रुपया तो शहरों में बड़े-बड़े अस्पताल बनवाने और व्यर्थ के आडम्बर रचने में ही खर्च हो जाता है। उससे ग्रामवासी उन कमाऊ पतों का, जिनकी पसीने की कमाई से ही आज तुम इस लायक बने हो, कुछ भी उपकार नहीं होता। उनकी रक्षा का भार तो आज भी प्रकृति को ही करना पड़ता है। ऐसी हालत में तुम्हारे अस्पतालों के ये विशाल भवन तुम्हारी अपने अन्नदाताओं के प्रति प्रदर्शित कृतघ्नता के मूर्तिमान स्मारक ही हैं।

“अदि इच्छा हो तो हाल ही में ऐंग्लिकलचरल कमीशन के सामने दिए अपने ही भाई पलाब के डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक हैल्थ के वक्तव्य और अमेरिकावासी डॉक्टर ऐस्फ्रेड पी० स्कौलज की लिखी ‘ Defective sight and how to cure it ’ नामक पुस्तक को पढ़ कर भी तुम अपना सन्देह निवृत्त कर सकते हो।”

धन्यन्तरि के इस कथन को सुन सामने खड़े सारे ही ओताओं ने लज्जा से अपना-अपना मुख नीचा कर लिया। यह देख मुझसे शान्त न रहा गया और मैं विजयोदकास से फूल कर ताली बजाने लगा। परन्तु इतने ही में एकाएक मुख पर पड़े शीतल जल के छींटों से मैं चौंक पड़ा। यद्यपि एक बार तो ऐसी घृष्टता करने वालों पर बड़ा ही क्रोध आया; परन्तु जब सामने खड़ी श्रीमती जी को, मुझे विजया से विचित्र होतानी पीढ़ते

जान, जल के छींटे मारते देखा, तो सारा आनन्द ही किरकिरा हो गया। —‘मौजी’

❁

❁

❁

जीवन और मृत्यु

युवकों और दार्शनिक विचारों से दूर भागने वाले पाठकों के लिए ऐसे विषय प्रायः रुचिकारक नहीं होते। साधारण मनुष्य जल की सतह पर दृष्टि डालते हैं, वे बुलबुले देखते हैं; परन्तु जिस वायु या जिन कारणों से बुलबुला उत्पन्न हुआ, उसका विचार नहीं करते।

जीना भला है, जीने में सुख-दुःख है, परन्तु जीने-जीने में भेद है। विज्ञान-शास्त्र (Science) के ज्ञाता की बुद्धि का परिचय उस धातु से किया जाता है, जिसे वह भिन्न-भिन्न द्रव्यों के संयोग से तैयार करता है। इसी तरह मृत्यु भी मनुष्य के जीवन की परीक्षा है। महान आत्माओं के जीवन, उनकी मृत्यु से पहिचाने जाते हैं। मृत्यु एक निबन्ध है, जो मनुष्यों के जीवन भर के कार्यों का फल प्रदर्शन करता है। किमी सत्पुरुष के जीवन को जानना चाहो, तो उसके जीवन-पर्यन्त के कार्यों की पढताल करो। परिणाम की सफलता में पुरुषार्थ का लाभ ज्ञात होता है। जो सेनापति युद्ध में विजयी हुआ, यशस्वी बना, और अन्त में रणक्षेत्र से प्राण बचा कर भाग निकला और परास्त होगया, उसका सारा यश अपयश में बदल जाता है। हम अपने सामने सैकड़ों मनुष्यों को देखते हैं, जो किसी समय उच्च कोटि के धर्मात्मा थे, किन्तु मोह, लोभ तथा काम के भँवर में पड़ कर गिर गए। अब उनके सद्गुणों को भूल कर भी कोई याद नहीं करता। जहाँ मनुष्य ने जीवन-सुधार पर दृष्टि डाली और छल-कपट को दूर किया, वहाँ सत्य का प्रकाश होने लगता है। जिस मनुष्य ने दुराचार, दुर्व्यसनों और कुसंस्कारों में समय खोया है, वह मृत्यु के समय शान्तचित्त और वीत-शोक नहीं हो सकता। पाप और कामनाओं के चित्र उसके सामने आते हैं, और उसके हृदय को कम्पायमान करते हैं। वह अपने जीवन के कुसंस्कारों को स्मरण कर घबराता और चिन्ताता है। यदि तुम आनन्दपूर्वक सारे



की विद्या सीखना चाहते हो, यदि तुम्हें यशस्वी और प्रतापी बनने की उत्कण्ठा है, तो मरने के पहले अपनी बुराइयों को मार दो। बुराइयों के दूर होते ही मानसिक शक्तियाँ शुद्ध होने लगेंगी। छल-कपट दूर हो जायेंगे। सत्य में अनुराग और श्रद्धा उत्पन्न होगी। पाप में घृणा और अश्रद्धा के भाव उठेंगे। सत्याभिमानी, सत्यपरायण, सत्यवादी बनने से जगत आनन्दमय प्रतीत होगा। वही मनुष्य आनन्द में है, जिसने मृत्यु के आने के पहले ही जीवन के कार्यक्रम को समाप्त कर लिया है। उसके लिए जब मृत्युकाल उपस्थित होता है, तो मरने के सिवाय उमके पास और कुछ कार्य ही नहीं होता। वह विलम्ब की कदापि कामना नहीं करता, क्योंकि अब उसे समय की आवश्यकता नहीं रही। मृत्यु से मत भागो, क्योंकि यह दुर्बलता का चिन्ह है। मृत्यु से भयभीत मत हो जाओ, क्योंकि तुम्हें ज्ञात नहीं कि यह क्या वस्तु है? सृष्टि का नियम ही है, जो “बनेगा सो बिगड़ेगा।” जो कुछ निश्चित रूप से तुम्हें ज्ञात है, वह यह है कि मृत्यु से तुम्हारे दुःखों का अन्त होगा।

स्वप्न में भी खयाल न करो कि अधिक दिन जीने में अधिक प्रसन्नता होगी। जो समय सब से उत्तम प्रयोग में आता है, उसी से मनुष्य का कल्याण होता है, क्योंकि उस समय के सुपरिणामों को याद करके मनुष्य स्वयं सुख को प्राप्त होता है। बस, जीवन और मृत्यु दो सापेक्ष शब्द हैं। यदि जीते हुए भी समय का सदुपयोग नहीं किया, तो यह जीना भी मृत्यु सदृश है, और यदि जीवन के कुछ भी काल को उत्तम कार्य में लगाया है तो उसका फल अमिट है।

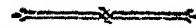
पाठक-वृन्द ! जीवन और मृत्यु का यह लेख किसी दार्शनिक विज्ञान के लिए नहीं, परन्तु हमारे नित्य के कार्यों और जीवन की सफलता के लिए है। सोचिए, संसार के इतिहास के पन्नों में क्या कभी वीरो (Nero) जैसे पापात्मा को किसी ने सुखी देखा ? इसके विपरीत साधनों द्वारा संयम करने वाले किसी धर्मात्मा को क्या कभी दुःख-सागर में डूबा हुआ सुना ?

जीवन और मृत्यु का प्रश्न हमारे लिए, प्रत्येक पग पर उपस्थित होता है। यह हमारे अपने ही अधीन है, कि धर्म और न्याय के पथ पर चल कर अक्षय जीवन को प्राप्त करें, अथवा पाप और अधर्म के मार्ग पर चल

कर लक्ष-क्षय में मृत्यु से भयभीत होकर दुःख-सागर में डूबे रहें।
—जगदीशचन्द्र फैके

❁ ❁ ❁

स्त्रियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए



उस परमपिता परमात्मा ने इस अनुपम सृष्टि को रच कर अपनी कार्य-कुशलता का परिचय भली-प्रकार दिया है। हम सृष्टि में उसने दो प्रकार के जीव बनाए हैं, एक तो वह जो केवल कर्मफल ही भोगते हैं, जैसे पशु, पक्षी, वृक्ष इत्यादि और दूसरे मनुष्य जो अपने पूर्वजन्म के कर्मफलों को भोगते हुए कर्म भी करते हैं। मनुष्य को ही ईश्वर ने इतनी बुद्धि दी है, जिसके द्वारा वह अपनी भलाई-बुराई का भली-प्रकार निखल कर सके, अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि को स्वच्छ रख कर उसके विकास की चेष्टा करे और उसका सदुपयोग करता हुआ सत्कर्म की ओर लगाए। बुद्धि का विकास मनुष्य के संस्कारों तथा शिक्षा पर निर्भर है। जिस प्रकार एक कुशल बढ़ई मही-टेढ़ी लकड़ी को झील कर सुन्दर लुभावनी चीज़ें बना सकता है, उसी प्रकार मनुष्य भी शिक्षा तथा संस्कारों द्वारा देव बनाया जा सकता है।

बालक के मस्तिष्क पर शिक्षा का प्रभाव गर्भ-काल से ही पड़ना आरम्भ हो जाता है और यदि बचपन से ही सदाचार और नीति की उत्तम शिक्षा मिल जाती है, तो बालक बड़ा होने पर सदाचारी और नीतिज्ञ होता है। इसी सिद्धान्त पर इंग्लिश में एक कहावत है—“Childhood is the father of the man” अर्थात्—“बचपन मनुष्य का पिता है।” चूँकि बाल्य-काल में बालक अपनी माता से ही शिक्षा ग्रहण करता है, अतः पुरुषों का कर्तव्य है कि भावी सन्तानोत्पादन तथा पालन करने वाली लड़कियों की शिक्षा का विशेष ध्यान रखें, जिससे कि भावी सन्तान अपनी माता द्वारा सुशिक्षित होकर सर्वगुणों से अलङ्कृत हो सकें।

अब प्रश्न यह है कि स्त्रियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए। इस विषय पर भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-



भिन्न सम्मति रखते हैं। मेरे विचार से चार-छः हिन्दी भाषा की पुस्तकें पढ़ा देने से ही स्त्री-शिक्षा का कार्य पूरा नहीं हो जाता, बल्कि स्त्रियोपयोगी प्रत्येक विषय का पूरा ज्ञान होना उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

गृह-प्रबन्ध शास्त्र की शिक्षा में प्रत्येक भोज्य पदार्थ के गुण-अवगुण जानना, कपड़े सीना, गृह को स्वच्छ रखना, पुष्टिकारक तथा शीघ्र पचने वाला भोजन बनाना तथा लौकिक व्यवहार, जो नीति से परिपूर्ण हो, सिखाना चाहिए। स्वास्थ्य-रक्षा तथा वैद्यक की थोड़ी जानकारी भी लड़कियों के लिए एक अत्यावश्यक विषय है। घर में ऐसी बहुत सी बीमारियाँ होती हैं, जो स्वयं ही दूर की जा सकती हैं। यदि स्त्रियाँ स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का थोड़ा भी ज्ञान रखती हों, तो ज़रा-ज़रा सी बातों में डॉक्टर या वैद्य बुलाने की आवश्यकता न पड़े। अक्सर ऐसी दैविक घटनाएँ हो जाती हैं, जिनमें डॉक्टर को बुलाते-बुलाते ही रोगी के प्राणों का भय हो जाता है। यदि स्त्रियाँ सुशिक्षिता हों तो तात्कालिक चिकित्सा कर लें और रोगी के प्राण सफ़ट में न पड़ें। इसके अतिरिक्त प्रत्येक रोग असावधानता से ही उत्पन्न होता है, यदि हमारा स्त्री-समाज इन सब बातों से पूरी जानकारी रखता हो तो असावधानी द्वारा उत्पन्न होने वाले कष्टों का यदि समूल नहीं तो बहुत अंशों में अवश्य नाश हो जावे। जन्म-मरण सम्बन्धी 'गज़ट' देखने से पता चलता है कि भारतवर्ष में बच्चों तथा स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है। हमारा वृद्ध दुखी भारत अपनी कमजोर आँखों से अपने लाड़ले बच्चों की ओर बढ़ी आशा से टकटकी लगाए हुए है। परन्तु आधे से अधिक बच्चे मेंह के बुलबुले की भाँति ससार में अपना मुँह दिखा कर सदा के लिए विदा हो जाते हैं! और जो जीवित रहते भी हैं वे निर्बल, रोगी तथा दुर्गुणी होते हैं! यदि ढ़ँका जाय तो हमको केवल उँगलियों पर गिनने लायक ऐसी माताएँ मिलेंगी, जिनके बच्चे स्वस्थ, सुन्दर तथा बुद्धिमान हैं। इसका कारण केवल यही है कि स्त्रियों को उचित शिक्षा नहीं दी जाती।

मनुष्य के लिए धार्मिक-शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। हमारा धर्मशास्त्र कहता है कि धार्मिक शिक्षा-विहीन मनुष्य पशु-सदृश है। परन्तु आजकल उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ भी धर्मशिक्षा को उच्च दृष्टि से नहीं देखती।

मेरे विचार से धर्मशिक्षा स्त्रियों के लिए अनिवार्य विषय होना चाहिए। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि विदेशी शिक्षा ने हम लोगों के हृदय में धर्म के लिए कोई स्थान ही नहीं रखा है। हम लोग अपने प्राचीन धर्म-धर्म तथा सभ्यता को भूल कर विदेशी सभ्यता को अपना रहे हैं। अतः धर्म-शिक्षा हम लोगों का पहला मुख्य विषय होना चाहिए, जिससे कि भारतवर्ष का स्त्री-समाज अधर्म के गह्वरे में न गिर कर अपने जगत-विख्यात आदर्श को पहले की भाँति उच्च तथा महत्त्वशाली बनाए रखे।

साहित्य एवं मातृ-भाषा भी अन्य आवश्यक्रीय विषयों में से एक मुख्य विषय है। अपने साहित्य-ज्ञान के बिना अपनी जन्मभूमि का आदर भली प्रकार नहीं होता। बहुत सी स्त्रियाँ यह भी नहीं जानती कि आज संसार के प्रत्येक क्षेत्र में क्या हो रहा है। अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य देशी भाषाओं की भी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे कि अपने तथा दूसरों के साहित्य की विशेषताओं का निर्णय कर सकें, और भागवत् वर्ष की दशा से भली प्रकार परिचित होकर देश-प्रेम की जागृति करें और उसमें कृतकार्य हों।

देश में जिस समय जिन लोगों का राज्य होता है, उस समय उन्हीं की भाषा राज-भाषा हो जाती है और उसी के द्वारा सारा राज-काज चलता है। अतः पद-पद पर प्रजा को उसकी आवश्यकता पड़ती है। जो राज-भाषा नहीं जानते, उनको प्रत्येक कार्य में कठिनाई उठानी पड़ती है। स्त्रियाँ राज-भाषा (English) बहुत कम जानती हैं (यद्यपि आजकल इसका प्रचार बहुत हो रहा है, परन्तु स्त्रियों की संख्या को देखते हुए इंग्लिश पढ़ी हुई स्त्रियों की संख्या अत्यन्त न्यून अथवा नहीं के बराबर है)। अतः स्त्रियों में राज-भाषा का प्रचार बढ़ाना चाहिए और प्रत्येक स्त्री तथा लड़की को कम से कम इतना अवश्य पढ़ा देना चाहिए कि वह अपनी बात दूसरे से कह सके और दूसरों के कहने का अभिप्राय समझ सके।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह समय शीघ्र आए, जब भारतवर्ष का प्रत्येक पवित्र गृह सुशिक्षित, धर्मज्ञ तथा वीर रमणियों से भरा हुआ दृष्टिगोचर हो।

—मिसेज सौभाग्यवती शङ्कर "विदुषी"





नरपशु

[कविवर श्री० मोहनलाल महतो 'बियोगी']



वैसाधारण से अधिक ऊँचा दिख-
लाई पढ़ने के लिए यह आव-
श्यक है कि किसी ऊँचे स्थान
पर खड़े होकर हम दूसरों को
यह विश्वास दिला दें कि 'वे
मुझसे बहुत ही निम्न-श्रेणी के
हैं।' बड़े आदमी के लिए यह
नितान्त वाञ्छनीय है कि वह
अपना बड़पन स्थिर रखने के लिए सदा कुछ ऐसे लोगों
को अपने दबाव में रखे, जिन्हें इसी काम के लिए
अनेक बलों से सहनशील बनाया जाता है। पूँजीवादी
युग का यही मुख्य धर्म है। बहुत से लेखक 'अगर'
'मगर' 'किन्तु' 'परन्तु' के जालावरण के भीतर इसी
तत्त्व को अपनी सज्ज भाषा में व्यक्त करते हैं, तो पाठक
आनन्द-विभोर होकर तालियाँ पीटने लगते हैं।

राजापुर के देवबहादुरसिंह भी बड़े आदमियों में से
थे और उनके अधिकार में भी छायाभयवर्धित, दृढ-
आसन्न, दृढगौरव, अर्धसूत और अधभूले मनुष्यों का
एक दल था, जिसे वे 'ब्रजा' के नाम से पुकारते थे।
देवाय इन्हीं देवबहादुरसिंह के विरुद्ध पिछले वर्ष एक
सखीन मुकदमा चल गया। घटना इस प्रकार सुनी
जाती है कि इनके पड़ोसी दूसरे जमींदार की एक घोड़ी
न जाने कैसे इनकी बगिया में घुस आई। जमींदारी
प्रतिष्ठ को एक क्षण में खँध कर उस घोड़ी ने जिस

दुस्साहस का जवन्म परिचय दिया था, वह किसी को भी
पसन्द न आया। बगिया के जङ्गलसिद्धि कोमल-हरित
तृण को जठरानल में झोंक देने का घोड़ी ने जो अपराध
किया था, उसकी गुरुता के साथ किसी की भी सहानु-
भूति नहीं थी, फलतः उसे काँजीहौस भेजने की व्यवस्था
की जाने लगी।

उस जमींदार को इस महा अपमानजनक व्यापार
की सव्याख्या सूचना दी गयी, जिसकी वह घोड़ी थी।
ससार में यह नियम अनादि काल से प्रचलित है कि
किसी भी वस्तु को दूर तक घसीटते हुए ले जाने से
उसका क्षय हो जाता है, पर बात के सम्बन्ध में श्वक्लृष्ट
ही उलटी है। यह जितनी दूर तक घसीटी जाती है,
घटने की अपेक्षा इसका रूप उत्तरोत्तर विकसित अवस्था
में परिणत होता जाता है।

उस जमींदार के अपमान-ज्वाला-दग्ध हृदय ने इस
अवसर पर लठैतों से लाभ उठाना उचित समझा। देव-
बहादुरसिंह के असावधान सिपाहियों को मारा-पीटा
गया और रास्ते में ही घोड़ी छीन ली गयी। अश्वमेध
के घोड़े की तरह उस अभागी घोड़ी ने प्याले में तूफान
उठा दिया। देवबहादुरसिंह आहत व्याघ्र की तरह
हुक्कार कर उठे और उचित अवसर की ताक में भक्त-
मसौस कर बैठ गए।

एक रात को जब उस अपराधी जमींदार के घर में
के अधिकांश मनुष्य किसी बड़े आदमी की कतल

पैसों की आतिशबाजी और 'जानकीबाई' की करामात देखने गए थे, तब देवबहादुरसिंह ने उसकी कचहरी पर छापा मारा। तीन झून करके तथा खलिहान में आग लगा कर यह दल सकुशल लौट आया। राजापुर के चिरबिजयी जमींदार की शान रूढ़ गई, पर दारोगा जनाब महोदरअली की पढताल परिपाटी के चलते दोनों दल को थोड़ी बहुत परेशानी उठानी पड़ी। अन्त में पञ्चमेल मिठाई की तरह रङ्गबिरङ्गी रिपोर्ट कचहरी पहुँची। वकीलों ने भी दारोगा जी की चिचोरी हुई हड्डी पर दाँत मारना शुरू किया। इस खण्ड प्रलय में देवबहादुरसिंह के हाथ से उनके तीन गाँव निकल गए और साथ ही यह भी सुना गया कि दूसरे दल की स्त्रियों के नृत्य, कड़े, छड़े तरु बाज़ार में बिकते हुए देवबहादुरसिंह के हितैषी गुप्तचरों के द्वारा देखे गए।

धीरे-धीरे मामला सज़ीन हो गया। देवबहादुरसिंह के सभी हितैषियों के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। पर इसी समय आबकारी के विख्यात ठेकेदार मिस्टर रेजीडेंट साहब का रङ्गमञ्च पर प्रवेश हुआ। साहब ने जज की बगल में कुर्सी पर बैठ कर ऐसी गवाही दी कि देवबहादुरसिंह का सारा मामला काई की तरह पल भर में साफ़ हो गया। यदि साहब बहादुर की अनुकम्पा न होती तो × × × उफ़। इस आक्रामक नागहानी से अपने आपको बचा जान कर देवबहादुरसिंह ने अघाकर साँस लीया और शासक जाति के जीवों के प्रति मन ही मन सदा कृतज्ञ रहने का अटल प्रण किया।

२

पुराने मैले कोट को बेचने वाला इस बात की कभी इच्छा नहीं करता कि उस कोट में रहने वाले चीज़ों का उसे अलग मूल्य मिले। कोट के साथ ही उसके चीज़ें भी बिक जाते हैं। यही दशा हमारे यहाँ ज़मींदारी प्रथा की है। भूमि के साथ हम किसानों को भी बेच डालते हैं। यद्यपि हमारे यहाँ मनुष्यों को बेच-विक्री के साथ बेच डालना कठोरतापूर्वक मना है, पर गुलाम-कर्म-विक्रय का एक अत्यन्त सुर्मस्कृत रूप देहातों में देखा जाता है। ज़मींदार जब अपनी ज़मींदारी को बेच-बाज़ार में लाता है, तब गाँव के कुत्ते, गधे, घोड़े, बैल आदि के साथ उस गाँव के निवासी भी

बिक जाते हैं। घर के साथ बिना मूल्य बिक जाने वाले छल्लूँइर, छिपकिली, चूहे, चिमगादड़ों की तरह किसानों का सम्बन्ध भी अपने भाग्य से ही है, खेत से नहीं। जिस प्रकार जाड़े की रात को हलवाई की बुझी हुई गरम भट्ठी से सट कर कुत्ते सोते हैं और प्रातःकाल हलवाई के द्वारा निष्ठुरतापूर्वक खदेड़ दिए जाते हैं, वस यही सम्बन्ध किसानों का उनके खेतों से है। न तो कुत्ते भट्ठियों पर अपनी होने का दावा कर सकते हैं और न किसान खेतों पर।

देवबहादुरसिंह ने जिन तीन गाँवों को लाचार होकर बेच डाला था, उनमें से एक था शिवपुर, और शिवपुर के कुत्ते, बिल्लियों, गधों, बैलों के साथ ही बिक जाने वाले किसानों में से एक था मनोहर।

मनोहर पाँच बीघे का छोटा सा कारतकार था। नये भू-स्वामी का शासन-चक्र घूमते-घूमते किस प्रकार मनोहर के सिर से अचानक टकरा गया, इसका इतिहास बहुत ही विस्तृत और संक्षेप है। मिट्टी के तुलुक वरौंदे पर वज्रपात होने का जो परिणाम हो सकता है, वही मनोहर के सिर से ज़मींदार के शासन-चक्र के टकराने का हुआ। अधमरे किसान का जीवन क्या है—बालू की भीत! हवा का एक हल्का सा झोंका ही उनके विनाश के लिए पर्याप्त है। ज़मींदार अपने अन्नदाता किसानों को कभी पनपने भी नहीं देते। हालाँकि एक बार एक कवि ने अपनी भाषा में प्रार्थना भी की थी कि—“हम वास बने हरियाया करें, चरि आप गधे से मुदाया करें!” पर किसी ज़मींदार ने इस प्रार्थना पर ध्यान दिया था या नहीं, हमें मालूम नहीं। अस्तु, यह बात ज़मींदारों पर भली भौक़ि विदित है कि पेट भरे हुए मनुष्यों पर बड़प्पन कायम रखना कोई आसान बात नहीं है।

खैर, शिवपुर के नये ज़मींदार हुए सुन्शी देवी-दयाल। देवीदयाल का गठन मनुष्यता के प्रतिकूल तत्वों से हुआ था। अर्थात् वे सम्पूर्ण अर्थों में पूँजीपति थे। जितनी कठिनाई से वे गाँव का पैसा खिसकते देते थे, उतनी ही कठोरता से दूसरे से अपनी अन्तिम पाई तक भी वसूल कर लेते थे। देवीदयाल के प्रबल प्रताप से किसी भी किसान के खपरैल पर एकाध कड़ू या कुम्हड़े का दर्शन पा लेना 'अष्टम आश्चर्य' माना



जाता था। देवीदयाल के एक पुत्र-रत्न भी थे और उन्होंने भी पिता का ही हृदय पाया था। अर्थात् पुत्र, पिता का नवीन संस्करण था। नाम था रामाधीन। कॉलेज के वायु-मण्डल में पलने के कारण नवयुवक रामाधीन उदार विचारों का पोषक था। मानों वह अपनी प्रजा से कह रहा हो कि हम तुम्हारे कष्टों के कारण को समझते हैं और यह भी जानते हैं कि उनसे तुम्हारा उद्धार किस प्रकार होगा। हमने यह निश्चय कर लिया है कि चाहे जिस उपाय से हो, हम तुम्हारा उद्धार कर ही डालेंगे, पर यदि तुमने मुझे अपने कन्धों से उतार डाला तो संसार तुम्हारी कृतघ्नता पर थूकेगा, इसलिये मैं सदा तुम्हारे कन्धों पर ही जदा रहूँगा और वहीं से तुम्हारे कल्याण की बातें सोचूँगा। दूसरी बात यह है कि तुम देख रहे हो कि मैं बहुत ही ऊँचे स्थान पर अर्थात् तुम्हारे कन्धे पर बैठा हूँ। परोसी हुई थाली तक मेरा हाथ पहुँचता ही नहीं, अतएव तुम अपने 'ग्रास' को ही मेरे मुँह में डाल दिया करो।

रामाधीन की उदारता गाँव भर में विख्यात थी। अर्थशास्त्र के सर्वोच्च सिद्धान्त के आधार पर रामाधीन अपनी प्रजा के हित की कामना करता था। बैल के साथ और बैलों की तरह ही खेतों में काम करने वाले नर-पुङ्गवों से मनुष्योचित व्यवहार क्यों किया जाय, इस प्रश्न को रामाधीन बहुत ही महत्व देता था। जिनका जन्म ही केवल सेवा करने के लिए हुआ है, उन्हें तभी तक संसार की वस्तुओं का उपभोग करने का कुछ-कुछ अधिकार है, जब तक वे अपने सेवा-धर्म से च्युत नहीं होते। रामाधीन एक सिद्धान्तवादी नवयुवक था। हाँ, जब-तब वह नौकरों पर कोड़े फटकार दिया करता था। उसके पिता जब किसी अधीनस्थ व्यक्ति पर जात-जूतों की वर्षा करवाते थे, तो उनका यह कार्य ज़मींदारी की सुव्यवस्था के लिए होता था। पर सुशिक्षित रामाधीन केवल उसी व्यक्ति की हित-कामना को मद्देनजर रख कर वैसे कर्म में प्रवृत्त होता था। शिक्षा-प्रदान की दृष्टि से मार-पीट करना उतना दोषावह नहीं माना जाता।

दो-तीन वर्ष तक जगातार फ़ेल कर लेने के बाद हमारे यही रामाधीन ने एक दिन हठात् वकील बन कर अपने पिता-माता, पुरजन, परिजन, मृत्यु, अमात्य,

सभों को ऐसा चकित कर दिया कि थोड़ी देर तक विलम्ब-विस्फारित नेत्रों से सभी एक दूसरे का मुँह ताकते रह गए। तत्काल आश्चर्य का कुहरा दूर हो गया। भानन्दोत्सव की तरफ़ सातवें आसमान को चूमने लगी। उत्सव समाप्त होते ही रामाधीन ने अपने पिता को अनेक अकाज्य युक्ति-तर्कों की सहायता से समझा दिया कि बिना मोटरकार के वकालत का रङ्ग झमना कठिन है। मोटर मानव-जन्म की पूर्णता का एक प्रधान अङ्ग है।

यावज्जीवन ताँगा, ट्यू, बैलगाड़ी और गदहिया सी घोड़ी पर चढ़ने वाले जाला देवीदयाल ने मोटर की महत्ता के विरोध में बहुत कुछ कहा-सुना, पर नये वकील की पैनी बुद्धि के सामने उन्हें स्वयम् अपने तर्क निस्सार जान पड़ने लगे। देवीदयाल के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ पुच्छल तारे की तरह चमकने लगीं। विशेषज्ञों की समिति बुलाई गई। मैत्री दोहर लपेटे अनेक बूढ़े-अधबूढ़े बड़े सरकार की बैस्क में जमा हुए। पयाल पर फटी हुई दूरी बिछी थी और एक कोने में एक टूटा सा खाट पड़ा था। यही बैठकजाने की सजावट थी। बड़े सरकार इसी खाट पर बैठ करते थे और अमात्य लोग नीचे पयाल पर।

अनेक आलोचना-प्रत्यालोचना के बाद सर्व-सम्मति से तय हुआ कि ज़मींदारी भर से 'मोटर-कर' वसूल किया जाय। दो रुपए प्रत्येक घर! इतने बड़े प्रश्न का निर्यय क्या भर में हो गया। हिसाब करके देखा गया कि अकेले शिवपुर से आठ सौ रुपयों की मोटी रकम मिलेगी। शिवपुर जैसे बीसों गाँव देवी-दयाल के अधिकार में थे।

इस योजना को कार्य-रूप में परिणत किया जाने लगा। तत्काल चारों ओर से तहसीलदारों के विरुद्ध नाना प्रकार के अत्याचारों की शिकायतें आने लगीं और आने लगे ढेर के ढेर रुपए। खून और आँसुओं से सने हुए चौकी के टुकड़ों से ज़मींदार की तिजोरी और फ़ेल मोटर कम्पनी का खाता भरने लगा। मोटर के साथ कलकत्ते से आने वाले सिक्कल डाइवर को देखने के लिए जोगों की भीड़ लग गई। पाँच हाथ खम्हा जवान, नाभी तक लटकती हुई घनी काली दाढ़ी, सिर पर काला मुरैठा और जुवान पर, पुरानी-माया की



रहस्यमयी गालियाँ ! सभी अहुत, सभी अनुपम !
अलाउद्दीन के चिराग का साचाव देव !

३

यथासमय मनोहर के दूटे हुए द्वार पर भी ज़मींदार के दूत दो रूपों के लिए आ पहुँचे । इसके तीन-चार दिन पहले ही मनोहर की स्त्री का अन्त बिना औषधि और उचित उपचार के हो चुका था । तीन-चार मास की एक चिरहना कन्या को छोड़, उसने रोदन-कातर पति की अस्थिचर्मावशिष्ट गोद में सिर रख कर सान्त्वना प्रदान करते हुए प्रस्थान किया था । घर के थाली, लोटे, धोती, कुरता, कुदाल, फावड़े आदि बेच कर किसी न किसी प्रकार मनोहर ने अपनी पत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया । आगे के राम मालिक !

मातृहीना रुना कन्या को लेकर वह रोना भी भूल गया था । मनोहर घर का अकेला था । दरिद्र के परिजन, कष्ट, हाहाकार, श्रुति, अपमान आदि ही होते हैं । यह बात सत्य है कि धनी बस्ती में रहते हुए भी दरिद्र अकेला ही है । मनोहर का घर सुना था, हृदय सुना था, संसार सुना था । “सर्वशून्या दरिद्रता !”

एक दिन सन्ध्या समय, जब कि वर्षा ग्राम की गलियों में कीचड़ के रूप में अपनी स्मृति छोड़ कर चली गई थी और धूमिल सन्ध्या जल से भरे हुए हरे-भरे खेतों के उस छोर पर उतर रही थी, ज़मींदार के तीन-चार दूत—जो वस्तुतः पालतू कुत्तों के अतिरिक्त और कुछ न थे—मनोहर के द्वार पर दुर्भाग्य की तरह आकर एकाएक खड़े हो गए ।

सिपाहियों ने मनोहर के पिता का नाम लेकर और उसके साथ मनोहर का स्वसुर-जामाता का असम्भव नाता स्थिर करते हुए पुकारा । मनोहर रुना कन्या को गोद में लिए घर से बाहर निकला । उसकी दोनों टाँगें काँप रही थीं, वह भयाकुल था ।

“क्यों बे, कल सरकार में क्यों नहीं हाज़िर हुआ ?” एक सिपाही ने डाँट कर पूछा । मनोहर ने काँपते हुए स्वर से निवेदन किया—“देखते नहीं सरकार ! मुझ पर दैव की मार पड़ी है । इस लड़की की माँ मर गई । यह लड़की × × × !”

एक सिपाही से मनोहर की यह ठिठकी न देखी गई । उसने वीर-दर्प से पैर पटक कर कहा—“चूल्हे में

जाय साली लड़की ! हम पूछ रहे हैं कि कल तुम सरकार में क्यों नहीं हाज़िर हुए ?

“बाबू जी”—मनोहर ने गिढ़गिढ़ा कर कहा—“लड़की छन भर के लिए भी मेरी जान नहीं छोड़ती !”

“तुम्हें अभी-अभी चलना होगा”—महाप्रभुओं की ओर से आदेश प्रदान किया गया । मनोहर ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—“आप माई-बाप हैं । रात भर की सुइलन मिले । कल सवेरे हाज़िर होऊँगा ।”

परन्तु मनोहर की प्रार्थना विफल हो गई । उसने पड़ोस की एक महारिन को पुकारा । वह न बोली तो रासबिहारी की माँ को, बेनी की चाची को, नरेश मैया की नानी को, पर कहीं से कोई उत्तर नहीं मिला । बड़ा साहस करके सुमेरु आए, पर दूर ही खड़े रहे । मनोहर ने अपनी रुना कन्या का भार उनके हाथों में सौंपना चाहा । लड़की चिल्ला उठी । सिपाहियों ने अनेक यत्न से रट-रट कर कण्ठस्थ किए हुए महावाक्यों की वर्षा कर दी । यहाँ तक कि मनोहर के घर, गली, आसपास के वृक्षों, पहाड़ और बार-बार ‘में-में’ करने वाली अभागी बकरी को भी लाख-लाख गालियों सुनाई । इस पर भी जब तृप्ति नहीं हुई तो उनमें से एक ने कहा—“यह हरामज़ादी लड़की बहुत चिल्लाती है । यदि अब चुप न रहेगी तो इसके मुँह में डण्डा ठूस देंगे ।” इस वक्तव्य के बाद उस नराधम ने डण्डा ठूसने का ऐसा सफल अभिनय किया कि मनोहर आपादमस्तक पीपल के पत्ते की तरह काँप उठा और लड़की को छाती से चिपका कर पीछे हट गया । इतने में एक सिपाही ने लपक कर मनोहर का एक हाथ पकड़ लिया और ऐसा सबल-भटका दिया कि वह गिरते-गिरते किसी प्रकार सँभल सका । चीखती हुई लड़की को छाती में छिपाकर मनोहर रोदन-मिश्रित स्वर से बोला—मरे को क्यों मारते हो सरकार ! चलो चलता हूँ । हा राम !

पड़ोस के दो-चार मजदूर नामधारी जीवित मुँहें यह सब कुछ छिप कर देख-सुन रहे थे । सबने मनोहर को ही एक स्वर से दोषी ठहराया । सुना है कि गुजामों के आत्मा नहीं होती । सुमेरु ने बड़ी कठिनता ने डरते-डरते मनोहर की कन्या का भार सँभाला । मनोहर ने धक्कते हुए हृदय से प्रस्थान किया । उसका मन आगे बढ़ने वाले जहाज़ की ध्वजा की तरह पीछे की ओर ही



मुँह कर फड़फड़ा रहा था। कन्या का रुदन वह गाँव के बाहर तक सुनता रहा। थोड़ी देर में शिकारी कुत्तों से घिरा हुआ मेमना सिंह की माँद के सामने पहुँचा दिया गया।

मनुष्यता और स्वार्थ से सदा अनबन रही है। दोनों का मेल किमी युग में नहीं देखा गया। देवीदयाल की दृष्टि किपानों के हृदय को नहीं टटोलती थी। वह तो सदा उनकी गाँठ पर ही अटकी रहती थी। ऐसी दशा में दरिद्र किपानों की दरिद्रता से देवीदयाल का किसी प्रकार का नाता रह सकना है या नहीं, यह तो सोचने की बात नहीं, समझने की बात है। ज़मींदार के लिए किसान सोने के अग्रसे देने वाली वह मुर्गी है, जो प्रत्येक बार जोर से दबा देने पर एक अग्रडा दे देती है।

देवीदयाल उस समय सन्ध्या का नारता कर रहे थे। अर्थात् चाँदी के स्वच्छ दुग्धनिभ कठोरे में रख कर वे सुने हुए चने और चावल हरी मिर्च के साथ धीरे-धीरे उदरस्थ कर रहे थे। तीन-चार सेवक जल का गिलास, हाथ पोछने का अँगोछा, हाथ धुलाने के लिए फ़ारी, कुह्ला करने के लिए चिलमची आदि-आदि उपकरण लिए खड़े थे। देवीदयाल स्वास्थ्यवर्धक चना-चबेना खा रहे थे। एक सिराही ने आगे बढ़ कर सलाम के बाद निवेदन किया—“सरकार, यही मनोहरा है। सरकारी हुक्म सुन कर इसने बड़ी शान से कहा कि हम देववहादुरसिंह की प्रजा हैं, ऐसे-ऐसे ज़मींदारों को भुनगे के बराबर भी नहीं समझते।” संक्षेप में अपना वक्तव्य समाप्त करके सियाही आज्ञा की प्रतीक्षा में पूरी जँचाई में तन कर खड़ा हो गया। वह भली भाँति जानता था कि आगे क्या होने वाला है।

सरकारी आदेश हुआ। अर्धमूर्छित मनोहर ने भी सुना—“इसका घर लूट लो। ज़ुमाने में इससे अभी-अभी पचीस रुपये वसूल किये जायें और जूतों से पीट कर साजे को गाँव से बाहर निकाल दिया जाय।”

मनोहर ने कुछ विनय प्रार्थना करने का प्रयत्न किया, पर उसका मुँह जूतों से बन्द कर दिया गया। माजिक के सामने बेभदबी—यूँ! इतना साहस ?

×

×

×

जिस समय निरपराध दरिद्र दुर्बल किसान पर जूते तोड़े जा रहे थे और उसकी मूर्छित देह पैरों से रौंदी

जा रही थी, उसी समय छोटे सरकार के सजे सजाए कमरे में मेंहदी से रज़ी हुई लखी दाढ़ी पर हाथ फेर कर उस्ताद मुन्ना ज़ाँ ईमन का तान छेड़ रहे थे। एक ही रक्तमञ्च पर दो दृश्य। हरि इच्छा !

देखते-देखते गोभूलि ने रजवी का रूप धारण किया। बन्दूकों के फाँक से पूर्वामा की शशिसम्भवा-विभा आकर मनोहर की संज्ञाहीन देह पर कफ़न की तरह लिपट गई। दूरस्थित मन्दिर के सिंह-पौर पर शहनाई बज उठी। मनोहर के मूर्छित पड़े रहने से संसार के किसी भी कार्य में रुकावट नहीं हुई, किसी ने भी उसका अभाव अनुभव नहीं किया।

धीरे-धीरे घटाएँ घिरने लगीं। पुरवा हवा के झकोरों के साथ जल के फ़ौवारे आकाश से छूटने लगे। महाशून्य का हृदय भी पपीज उठा। धीरे-धीरे कराह कर मनोहर ने कावट बदली। किपी ने कहा—“अभी मरा नहीं है।” उत्तर में किसी ने सन्जोष प्रकट करते हुए कहा—“ज़ैर !”

मनोहर ने दूसरी कावट बदली। मूसलाधार बृष्टि हो रही थी और बिजली कौंध रही थी। वह बड़े कष्ट से लिप्तकना हुआ निकटस्थ बृह के नीचे चला गया। पत्तों से छन कर पानी की बूँदें गिर रही थीं।

४

शहर के एक उजाड़ छोर पर, जहाँ की सड़कों के अच्छी न रहने के कारण अमीरों की और समाज-सुधारक नेताओं की दामी मोटरें वहाँ तक कभी नहीं पहुँच पाती थीं, एक “कजवरिया” संसार भर के धिक्कारों की आँधी से अपने आपको बचा कर उस स्थान की वीभत्सता और निष्ठुरता का अकेली सामना कर रही थी। इस कजवरिया के वायु-मयङ्गल को यदि बोलने की क्षमता प्रदान कर दी जाय, तो वह युग-युग की सुनी हुई कहानी को सुना कर संसार को निश्चय ही अवाक् कर दे। हमें केवल यही बतलाया जाता है कि कजवरिया चोर-बदमाशों का अड्डा है, ज़ूनी और डकैतों का क़ब्र है, भयानक पापियों का खीला-स्थल है। यदि हम समाज के इन घृणित अंगों का प्रारम्भिक इतिहास भूत झाड़ कर पढ़ें, तो हमें खीम, ही ज्ञात हो जायगा कि इन्हें पाप-पक्ष में स्थित करने का



श्रेय हमारे उस सभ्य समाज को भी है, जो आज धन-बल से संसार की शान्ति और व्यवस्था को मिटाने के लिए कृतसङ्कल्प बना बैठा है। सभ्यता के नाम पर हम नित्य कैसी असभ्यता का उदाहरण संसार में उपस्थित कर रहे हैं, उसका प्रमाण इस समय इस कलवरिया के अतिरिक्त दूसरा और हम कहाँ से लावें। असंख्य निर्बलों के मानवोचित स्वत्वों को हथिया कर हम नित्य उनका सामाजिक तथा नैतिक पतन करा डालते हैं। दुःख तो इस बात का है कि चोरी करने के लिए किसी को बाध्य करके हम उलटे उसे 'चोर' कह कर पुकारने लगते हैं। दूसरे पापों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है।

जो हो, शहर के एक उजाड़ छोर पर एक कलवरिया थी और उस कलवरिया में कुछ धन्तेड़ पियकड़ कोलाहल करते हुए चुकड़ पर चुकड़ चढ़ा रहे थे। बस।

मद्यपों में से एक ने कहा—“भाई कल दो हाथ में पाँच सौ हार गया।” दूसरे ने इस असम्भव सत्य का इस प्रकार प्रतिवाद किया—“साला झूठा है। इस दरिद्र के भाग्य में इतनी गहरी रकम का पा जाना कहाँ लिखा है।”

पाँच सौ हार जाने वाले ने इस मिथ्या कलङ्क का खूब चिह्ना कर खण्डन किया और एक सॉस में तरह-तरह की सैकड़ों क्रसमें खाकर चुप हो गया।

एक मद्यप ने कहा—“रामू भैया, कल कहाँ थे?” रामू भैया आवश्यकता से अधिक पी लेने के कारण किसी काल्पनिक शत्रु को एकाग्र चित्त से गालियाँ सुना रहे थे। अपना नाम सुनते ही मानों सोते से जाग उठे। इतने में किसी ने फिर पूछा—“रामू भैया, कल तुम कहाँ थे?” रामू भैया बोले—“हम कहाँ थे। हमने किसी के बाप का ऋजु खाया है?”

प्रथम वक्ता ने कहा—क्यों रामू चाचा, कल हम तुम्हारे साथ थे या नहीं? यह परतपवा साला कहता है कि × × ×।

प्रताप नामधारी मद्यप ने गरजते हुए कहा—खबर-दार, मेरा नाम लिखा तो नाक तराश लूँगा।

रामू भैया ने कहा—“कल तो सचमुच तुमने कसाल कर दिया। देखते-देखते पाँच सौ की थैली ले आए

और बस थोड़ी देर में सब स्वाहा।” एक मद्यप ने कलवार के पिता-पितामह को स्मरण करते हुए कहा कि साला पानी मिला कर बेचता है। कितना भी पियो, रक्त नहीं जमता। अब सच्चा मातृ कहीं भी नहीं मिलता। आज किधर चलोगे रामू चाचा? मेरा दाहिना हाथ खुजला रहा है।

रामू ने कहा—तू साला कायर है। तेरे चलते परसों हाथ में आई रकम निकल गई।

इस मद्यप ने बहुत-कुछ चाहा कि गले के ज़ोर से अपने आपको वीर सिद्ध कर दे, पर उसके सारगर्भित व्याख्यान को किसी ने भी नहीं सुना। हताश होकर उसने करुण कण्ठ से छेड़ दिया—

“तुम्हारी कसम जनियाँ नहीं दिल को चैन,
हों-हों तुम्हारी कसम। हौं-हौं।”

एक मद्यप जो अपने आगे एक अद्धा रक्खे विस्मय-विस्फारित नेत्रों से यह सब देख रहा था, धीरे-धीरे बोला—“पाँच सौ। बाप रे! एकदम पाँच सौ की थैली यह छन भर में हार गया। मैं लात-झूटे खाता-खाता ऊब उठा और जन्मभूमि त्याग करने को बाध्य हुआ, पर दो रूपयों की व्यवस्था न कर सका। यह कितना सुन्दर व्यवसाय है कि बात की बात में हज़ार-पाँच सौ पा जाना और बात की बात में स्वाहा कर देना।” साहस करके इसने रामू भैया से पूछा—“क्यों भाई, अचानक हज़ार-पाँच सौ कैसे मिल जाते हैं?”

सब लोगों ने एक स्वर से कहा—बहादुरी से और कैसे!

प्रश्नकर्ता ने पूछा—बहादुरी से?

रामू बोला—“अबे कह तो दिया, फिर क्या बड़बड़ा रहा है। हमारे साथ चल, फिर अपनी आँखों से देख कि रूपयों की वर्षा कैसे होती है।” सबने एक स्वर से हँस दिया। प्रश्नकर्ता चिन्तामग्न हो गया।

सड़क के उस छोर पर के टिमटिमाने वाले लैंप के धुँधले प्रकाश में प्रश्नकर्ता का आकार-प्रकार मनोहर जैसा जान पड़ता है। मनोहर एक सच्चा-सीधा किसान है। वह इस कुचक में कैसे फँस गया। नहीं, यह मनोहर नहीं हो सकता।

×

×

×



इस घटना के एक मास पूर्व की बात है। मनोहर की चिरहना कन्या का अग्न हो गया था। जन्म का अवश्यम्भावी परिणाम है मरण।

पूस की सुनसान रात थी। मनोहर की गोद में ही उसकी मातृहीना कन्या का शोकमय अन्त हो गया। ज़मींदार ने मनोहर के खेलों को छीन लिया था। घर में एक सूत भी नहीं था। महाजन क्रुद्ध दे तो किस बिरते पर। जिस समय मुन्शी देवीदयाल के प्रकाशपूर्ण गरम बैठकखाने में, उनके प्रथम पौत्र की 'बरही' के शुभ-उपलक्ष में ज़िले भर के छोटे, मँझले, बड़े साहबों का विधिवत् भोजन हो रहा था, कटि-छुरी की झनझनाहट से दिशाएँ गूँज रही थीं, उसी समय मनोहर की कन्या अपने निरुपाय पिता की गोद में पेंठ-पेंठ कर धीरे-धीरे दम तोड़ रही थी। घर अन्धकारपूर्ण था और पूस की प्रलयकारिणी हवा बाहर हाहाकार कर रही थी। मनुष्यों की कौन कहे, सर्दों के मारे पेड़-पत्ते तक काँप रहे थे।

सारी रात अपनी अन्तिम निधि को हृदय से चिपकाए और फटी हुई धोती से ढके मनोहर पत्थर की मूर्ति बना बैठा रहा। इस समय वह रोना भी भूल

गया था। रह-रह कर वह सूत-कन्या के बर्तन जैसे शीतल मुख को बड़े वेग से चूम लेता था।

× × ×

मनोहर ने शिवपुर का त्याग कर दिया। उसके घर की नज़्मी दीवारों पर नाना जाति की घास उग गई और आँगन में जला-पल्लवों का साम्राज्य स्थापित हो गया। मनोहर के कच्चे घर की दीवारों पर की काली रेखाएँ आज तक किसी समय के उज्ज्वल प्रकाश की याद दिला रही हैं। ऊँचे ताल पर काठ का एक छोटा सा घोड़ा रक्खा हुआ है। वह धूलि से जिस है। खँटी से लटक रही हैं तीन-चार लाल-लाल भूमिल चूड़ियाँ, मकड़ी के जाल से घिरी हुई।

कुछ लोगों का कथन है कि गाँव छोड़ देने के कोई छः मास बाद मनोहर बड़ी शान से एक दिन आया। बच्चों को उसने मिठाइयाँ खिलाई और दोनों हाथों से अठन्नी-चवन्नी वाँट कर तुरन्त चञ्चल बना। इस अफवाह का बहुतों ने खरबन किया, पर रामप्रसाद पाण्डेय इसकी सत्यता का प्रमाण "यज्ञोपवीत" की कसम खाकर देते हैं। उन्होंने स्वयम् उससे एक अठन्नी पाई थी।



सावन

[श्री० परमानन्द शुक्ल]

देखो बरस रहे सावनघन—

हरित प्रकृति के ऊपर सुन्दर
नील गगन में छाये जलधर
पूर्व-पवन शीतल चल सुखकर

जगती के ये जीवनधन बन !

देखो०

उमड़ उठे आतुर-से बादल
इन्द्र-धनुष-कर फैला, पागल
चूम रहे ये अधर-कुसुम-दल

भर-भर कर मादक आलिङ्गन !

देखो०

मिटा ताप, छाई हरियाली
बनी अवनि की छटा निराली
किसने ये मादकता ढाली

सिहर रही है पल-पल मुद-मन !

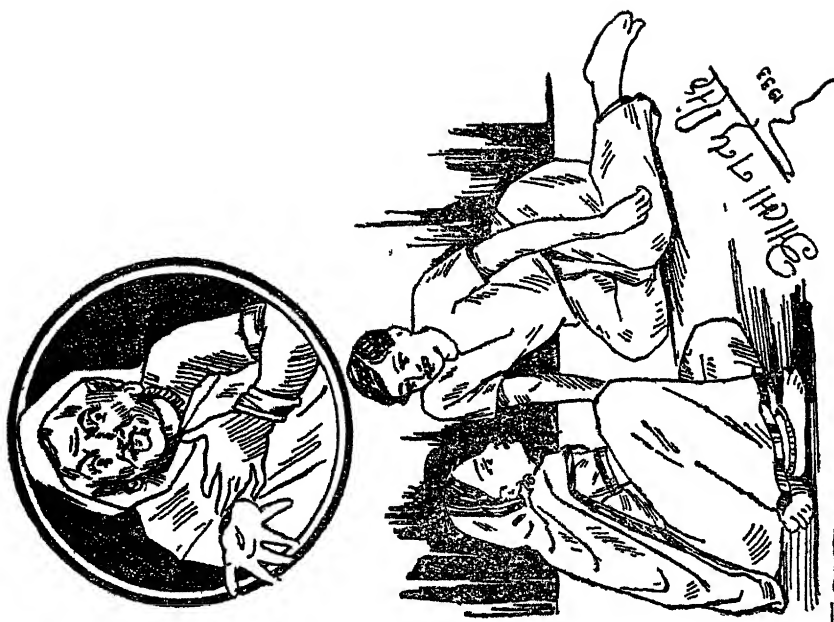
देखो०

अपनी आहों का ही यह बल
बिहँस रही है वसुधा अविकल
पर, मेरे ही आँसू निष्फल

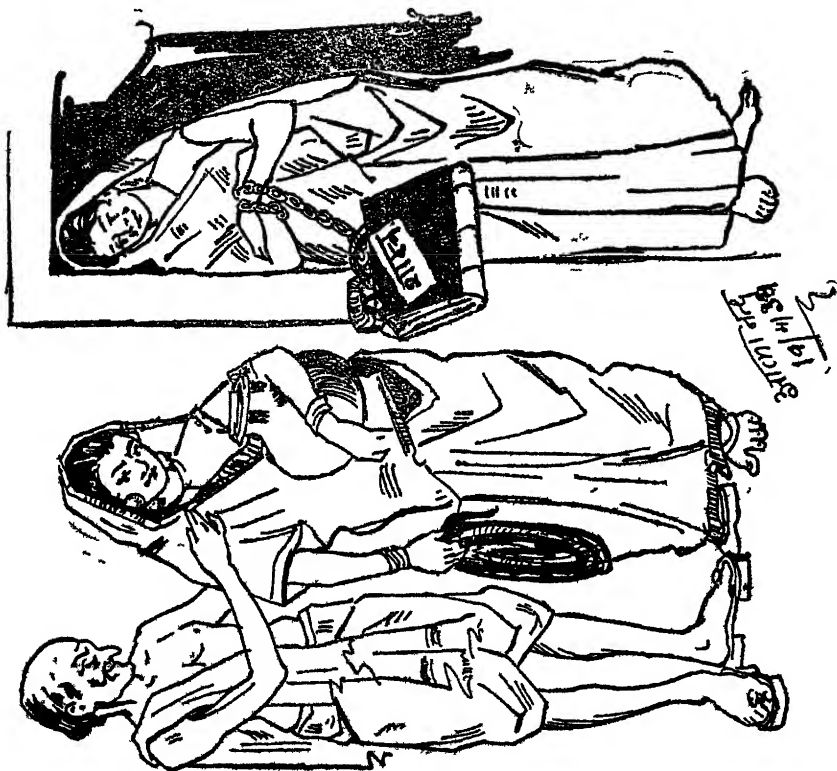
हुए, सद्य जो बने न हृदघन !

देखो०





परदा-प्रेमिनी माता—(झरोखे से झाँक कर) “हाय न
कलिकाल ! बेहयाई की हद हो गई ! देखो न,
लह्ना दिन-दहाड़े बहू से बातें कर रहा है।



बाहर बूढ़े ससुर जी घर की दासी से प्रेमपूर्ण वार्तालाप कर रहे हैं
और घर में वैधव्य की खलीर से जकड़ी हुई युवती बहू
अपने भाग्य को रो रही है।



कान और उसका सौन्दर्य

[श्री० बुद्धिसागर वर्मा, बी० ए०, एल० टी०, विशारद]

अ नाम देश में 'मोई' नाम की एक जाति है। वहाँ की जङ्गली माताओं का यह पहला कर्तव्य होता है कि वे कन्या के कान छेदें और उन छिद्रों को लकड़ी डाल-डाल कर बढ़ावें। फिर भारी-भारी बालियाँ पहनावें, ताकि कान लटक कर कन्धों तक पहुँच जावें। यदि इसके कारण कन्या का कान फट जावे, तो वह विवाह के लिए कुरूप समझी जाती है और यदि कान बोक से लटक कर स्तनों तक पहुँचने की प्रवृत्ति दिखावें तो युवती पूर्ण सुन्दरी मानी जाती है। बर्मा की स्त्रियों में भी कान छिदाने का रिवाज बहुत दिनों से चला आता है। वे भी कानों में लकड़ी डाल कर छिद्र बढ़ाती हैं और जब छिद्र काफी बड़े हो जाते हैं, तो उनमें एक इंच लम्बी और पौन इंच मोटी लकड़ी डाल दी जाती है। कहते हैं कि प्रशान्त महासागर के द्वीप-समूह में भी ऐसे नर-नारी रहते हैं, जिनकी यह धारणा है कि ईश्वर ने उनके कान इसलिए बनाए हैं कि वे उनमें फूलों के गुच्छे या तम्बाकू की चोंगियाँ खोंसें। वे लोग कान के नीचे के मासमय भाग को छेद कर धीरे-धारे उसे यहाँ तक बढ़ाते हैं कि मनुष्य अपना हाथ कोहनी समेत उस छिद्र में से सरलतापूर्वक आर-पार कर सकता है। वे लोग इसे ही सुन्दरता समझते हैं।

आमारे देश में भी कानों की सुन्दरता पर ध्यान नहीं दिया जाता। बचपन से ही दर्जनों छिद्र करके

उनमें बालियाँ डाली जाती हैं। जिस प्रकार चीनी महिलाएँ नाना कष्ट सह कर भी सुन्दरी बनने के लिए लोहे के जूते पहिनना स्वीकार करती थीं और जहाँ तक हो सकता था, पैर छोटा बनाने की चेष्टा करती थी, ठीक उसी प्रकार भारतवर्ष की मूल्य क्षियाँ भी नाना कष्ट सहन कर कानों के छिद्र बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं। कन्याएँ कष्ट से रोती हैं, चिह्वाती हैं और कभी-कभी कान पक भी जाते हैं, किन्तु गहना पहनने का शौक नहीं मानता। विशेष कर बुन्देलखण्ड में, जहाँ ढारो के पहनने की प्रथा है, कानों के छिद्र बढ़ा कर बहुत बड़े कर लिए जाते हैं, जिससे कानों का स्वरूप अत्यन्त भद्दा हो जाता है। एक समय था, जब इङ्ग्लैण्ड की स्त्रियाँ भी इस मूर्खतामय रिवाज का शिकार थीं, किन्तु अब उन्होंने इसे छोड़ दिया है।

आभूषण

कर्णकूल और कुमके आदि भारी आभूषणों के पहनने से कानों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। वे देखने में बहुत ही भद्दे मालूम होते हैं। कानों के लिए केवल हलके ज़ेवर—जैसे बुन्दे, रिङ्ग, आदि—पहनना ही श्रेयस्कर है। इसके लिए दर्जनों छेद कराने की आवश्यकता नहीं, कर्णवेध संस्कार के समय छेद आर छिदाना पर्याप्त है।

रक्षा और सफाई

कानों की सुन्दरता चाहने वालों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि उन पर अनुचित दबाव न पड़ने पावे, नहीं तो कालान्तर में कानों की आकृति बिगड़ जाती है। कानों में यदा-कदा कड़ुआ तेल डालते रहना चाहिए। इससे कान के परदे सुलायम और तर रहते हैं, कभी-कभी बहिरापन भी दूर हो जाता है, शिर और नेत्रों के लिए भी तेल डालना उपयोगी है। स्नान के समय कर्ण-विवरों में उँगली फेर कर गर्द-गुबार साफ़ करते रहना चाहिए। यदि कान में मैल अधिक हो जाय, तो थोड़े से पानी में सोंभर नमक घिस कर डाल देना चाहिए, इससे सारा मैल फूल जायगा, पश्चात् आधा छुटोंक गुनगुने पानी में २ रत्ती सोडा मिला कर इसकी पिचकारी से कान धो देना चाहिए। बिल्कुल साफ़ हो जायगा।

बबूल की फलियों का चूर्ण कान में डालने से उसका बहना बन्द हो जाता है। मूली के पत्तों को गरम करके उनका रस कान में छोड़ने से भी यही लाभ होता है।

✱

✱

✱

वर्षा



[कविवर आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

उज्ज्वल श्यामल जलद-दलो का
नभ में घुमड़-घुमड़ आना,
रिमझिम-रिमझिम जगती-तल पर
सुधा-सदृश जल बरसाना।

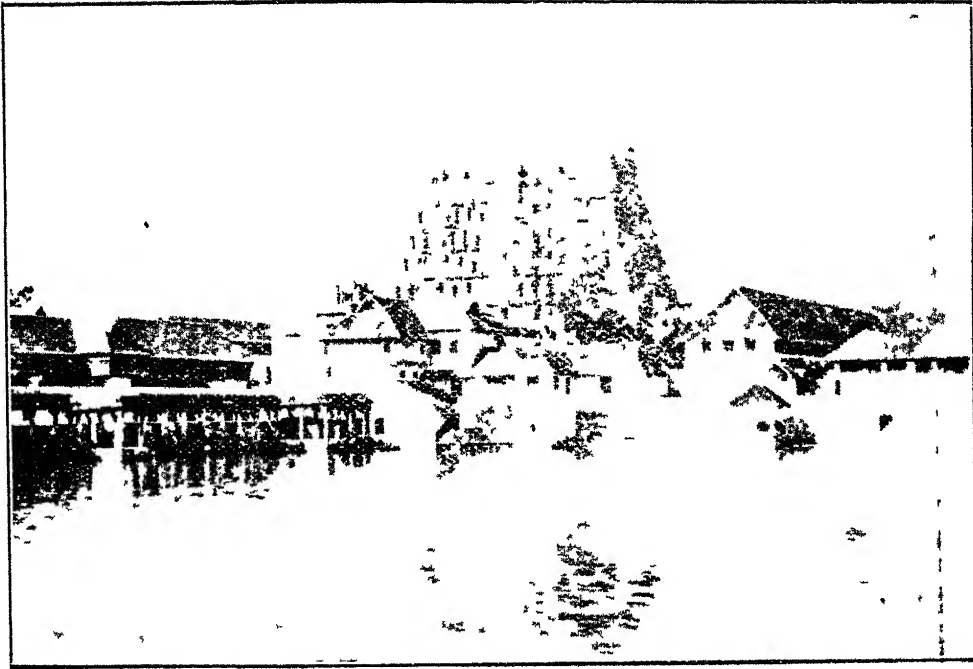
लता-सुमन-द्रुम-तृण समूह का
हरा भरा हो लहराना,
रहना मन्द कभी बतास का
कभी वेग से बह जाना।

कूक मारना पिक-भयूर का,
चिड़ियों का चह-चह गाना,
पुलक-पुलक पशुओं का फिरना
नगर-वनो मे मनमाना।

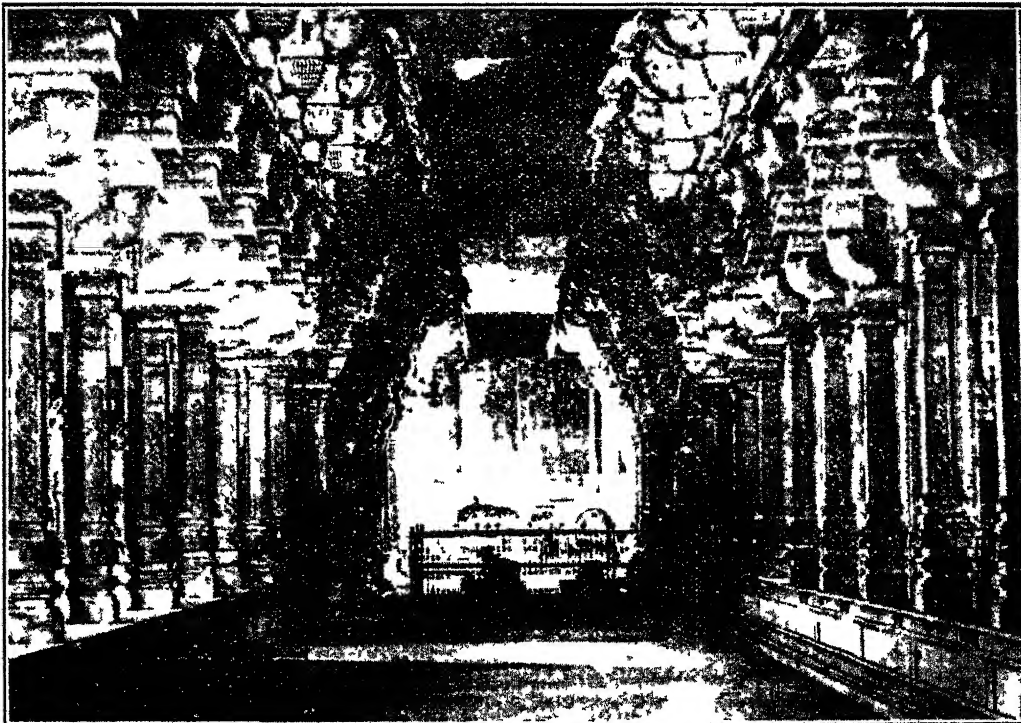
खेल मचाना बाल-वृन्द का
घर-घर मृदु उमङ्ग लाना,
विरह-रहित नर-नारी-जन मे
आना नव उमङ्ग नाना।

क्षितिज प्रान्त मे कान्त दृश्य ला
मृदु धूमिलता का छाना,
जीवन^१ के शीतल सावन मे
जग का नवजीवन पाना।





त्रिवान्द्रम् (मद्रास) के श्रीपन्ननाम स्वामी के विख्यात मन्दिर का एक मनोरम दृश्य ।



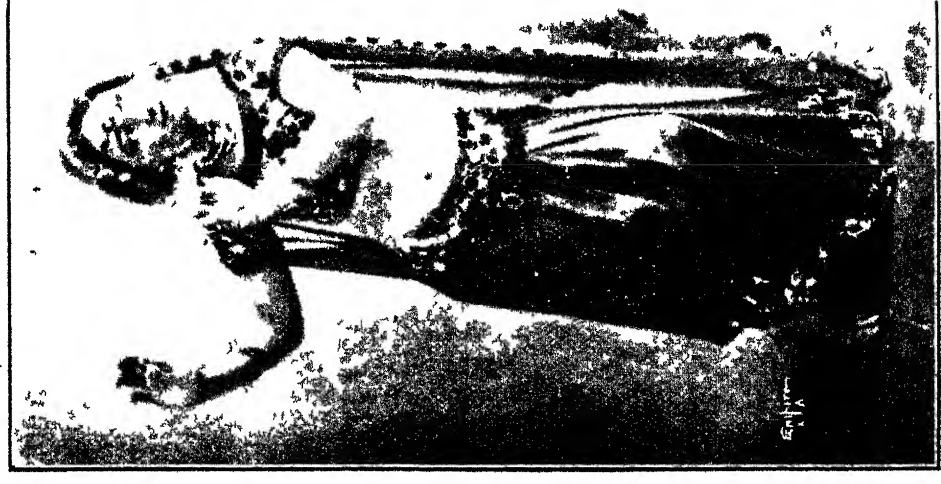
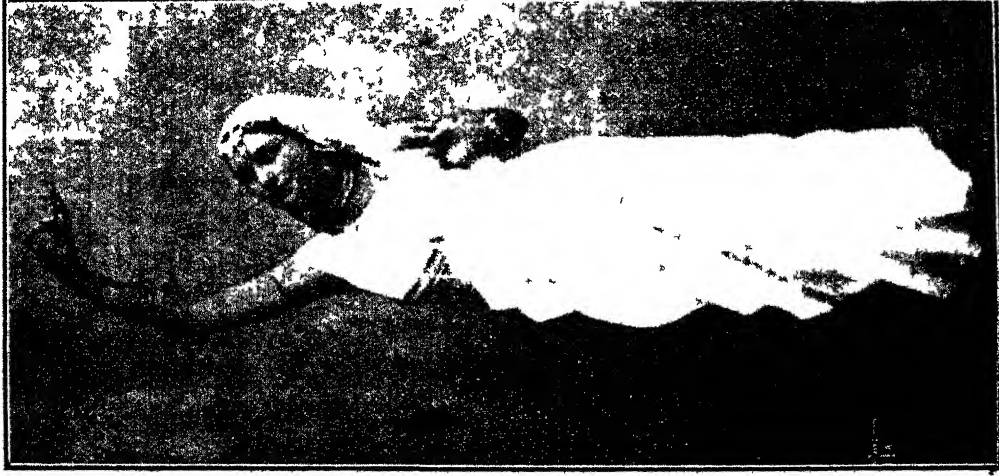
श्रीरङ्गम् (मद्रास) से एक मील के अन्तर पर स्थित विख्यात जम्बुकेश्वरम् मन्दिर का भीतरी दृश्य ।



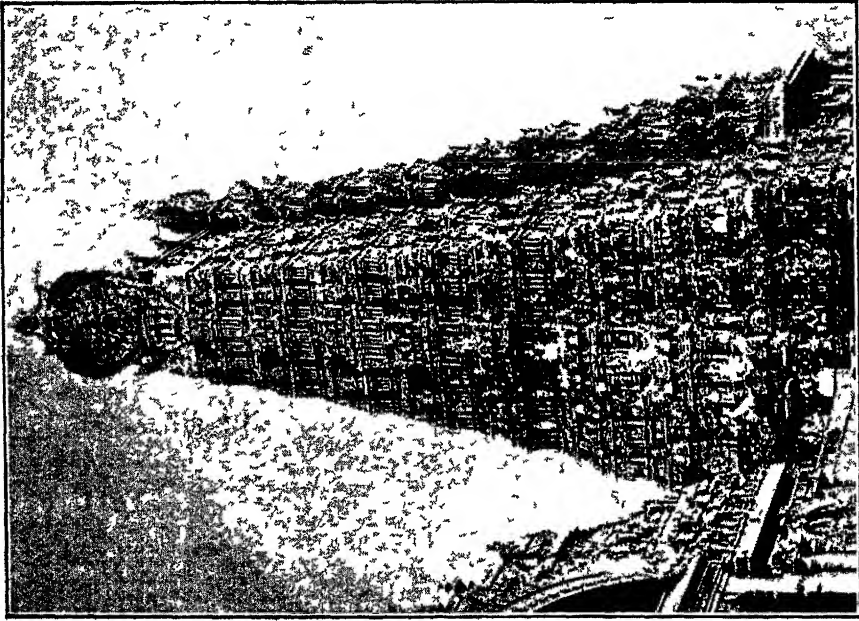
श्री० सतीशचन्द्रसिंह—आप फ़र्रुखाबाद ज़िले के रहने वाले हैं और हाल में ही अमेरिका से सिनेमा सम्बन्धी कला सीख कर भारत लौटे हैं। विशेष परिचय इसी अङ्क में अन्यत्र देखिए।



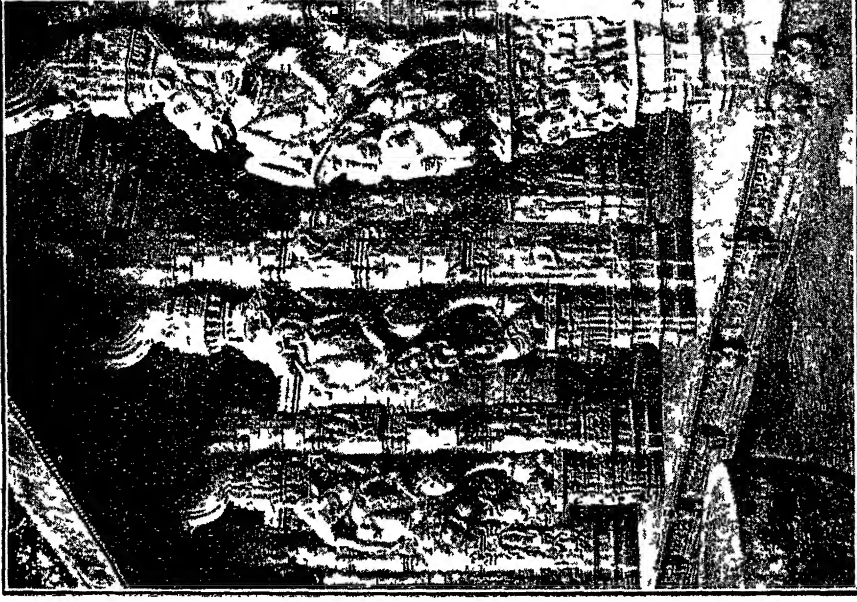
हॉलीवुड (अमेरिका) की प्रसिद्ध भारतीय नृत्य-कला-विशेषज्ञा कुमारी आयशा उर्फ़ मिस डोरिस बूथ। पूर्ण परिचय इसी अङ्क में अन्यत्र देखिए।



हॉलीवुड (अमेरिका) की प्रसिद्ध नर्तकी
कुमारी आयशा (डोरिस वूथ) द्वारा
भारतीय नृत्य-कला का प्रदर्शन



मधुरा (दक्षिण भारत) की एक सुउच्च मीनार । दक्षिण भारत में यही सबसे ऊँची मीनार है ।



मधुरा की मीनारों देवी के मन्दिर के सहस्र-स्तम्भ वाले मण्डप के खम्भों पर खुदाई का काम । इस मण्डप का प्रत्येक स्तम्भ एक ही पत्थर का बना है ।

मैत्रेयी और असृष्टत्व

[श्री० मैथिलीशरण 'नेहनिधि']



विश्व के किसी भी-चरित्र से नहीं की जा सकती। उसके जीवन में भारत की साधना और सस्कृति का एक विशेष रूप और एक विशेष ऐश्वर्य परिस्फुटित हुआ है। उसके चरित्र का अपूर्व माधुर्य और अतुलनीय आदर्श सम्यक् रूप से हृदयङ्गम करने से हमें वर्तमान अशान्ति, जीवन का द्वन्द्व और लाभ-हानि भूल कर मन्थर गति से भारतवर्ष की प्राचीन जीवनचारा के मध्य में पुनः अवगाहन करने का अवसर मिल सकता है।

उस समय संसार में इस प्रकार की विश्वव्यापी क्षुधा और हाहाकार नहीं था। मनुष्य मनुष्य में इस प्रकार का जटिल सङ्घर्ष नहीं हुआ था। शान्ति एवं स्वच्छन्दता के मध्य में मनुष्य की जीवनधारा अबाधित गति से प्रवाहित हो रही थी। चारों ओर अजस्र सुख-शान्ति विराज रही थी। उस आनन्दपूर्ण काल में, भारत के शान्तिमय सपोवन में, आरण्यक जीवन के पुलकोच्छ्वास के मध्य में, मैत्रेयी का अनुपम चरित्र विकसित हुआ था।

वैदिक युग में भारतवर्षीय धर्म-साधना के तीन स्तर देखने में आते हैं। सद्यः जाग्रत शिशु की आँखों में विश्व का चारु-छवि-समुद्र जिस प्रकार अपूर्व, अननु-भूत, एक विपुल आनन्द का सञ्चार करता है, उसी

प्रकार वैदिक ऋषि के प्रथम धर्म-बोध दीप्त अन्तर में, इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तु के अन्तराल में जो अज्ञेय, असीम लीला करता था, उसी का आभास जागरित होने से ऋषि पुलकिन छन्द में अग्नि, पवन, आकाश आदि का जयगान गाने लगे।

साधना जिस समय गम्भीरतर हुई, उस समय ऋषियों ने समझा, समस्त देवता एक ही देवादिदेव के विभूति मात्र हैं, एक ही देवता के विभिन्न प्रकाश और आविर्भाव ही भिन्न भिन्न देवताओं के नाम से पूजे जाते हैं। ब्रह्मविद् ध्यान समाधि से अवगत हुए—

इन्द्र मित्र वरुणमग्निम् आहुः

अथोदित्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सम विप्रा बहुधा वदन्ति

अग्नि यम मातरिश्वानम् आहुः ॥

अर्थात्—“इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि वास्तव में एक ही हैं। केवल द्रष्टा ऋषियों ने उनको विविध एवं विभिन्न उपाधि से परिकल्पित किया है।”

किन्तु अभी भी यात्रा समाप्त नहीं हुई। जो अनिवर्चनीय हैं उनको यहाँ एक शक्तिमान देवता रूप से विचार करते हैं। किन्तु परचात्, उपनिषद् के युग में, गम्भीर साधना से, जगत् का श्रेष्ठतम ज्ञान ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ऋषियों ने ब्रह्म-तत्त्व का प्रचार किया। इसी वेद के सार-भाग को वेदान्त कह कर पुकारते हैं। उपनिषद् के इसी ब्रह्म साधना के गौरवोज्ज्वल युग में हमारी चरित-नायिका ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने भारतवर्ष की धृति को पवित्र किया था। याज्ञवल्क्य की उद्यति वैदिक साहित्य में असामान्य है। बृहदारण्यक नामक सुविख्यात उप-निषद् के वे प्रधानतम उद्देश्य थे। बृहदारण्यक के छठे अध्याय के तृतीय ब्राह्मण को वाजसनेय कहा जाता है। याज्ञवल्क्य-प्रवर्तित शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेय साहित्य



कहते हैं। विदित होता है, याज्ञवल्क्य के किन्हीं पूर्व-पुरुष का नाम वाजसान रहा होगा। उनके (याज्ञवल्क्य के) समय में सर्वापेक्षा उन्होंने ही ब्रह्मज्ञान में पारदर्शिता लाभ किया था।

एक बार मिथिलाधिपति महाराज जनक ने सम-सामयिक ऋषियों के मध्य कौन सर्वापेक्षा ब्रह्मिष्ठ है, यह जानने के लिए समुत्सुक होकर यज्ञ किया। सुवर्ण-भण्डित शृङ्ग वाली एक सहस्र गौओं को समवेत कर उन्होंने ब्राह्मणों से कहा—“हे भूसुरगण ! आप लोगों के बीच में जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मिष्ठ हों, वे ही इन गौओं को ग्रहण करें।”

विराट् सभा-क्षेत्र में नाना देशों से आये हुए ब्राह्मणों के बीच में, किसी ने आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। उस समय परम ज्ञानी, आत्म-विश्वासी याज्ञवल्क्य ने निर्भय होकर सामश्रव नामक शिष्य को गायों को ले जाने को कहा। उस समय जनक की सभा में दर्शन की कूट-समस्या को लेकर अश्वत्थ, आर्त्तभाग, मुञ्जू, उषत्त, कहोल, उद्दालक और शाकल्य ब्रह्मविद् ऋषियों के सहित और वाचकरी गार्गी के साथ उपस्थित थे। सब ने याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया। परन्तु सभी उनके गम्भीर ब्रह्मज्ञान के सामने हार खा गये। उद्दालक, आरुणि उनके गुरु थे, किन्तु उन्होंने भी योग्य शिष्य के हाथों आनन्दोत्फुल्ल चित्त से पराजय स्वीकार किया। इन्हीं विदेह-निवासी असामान्य प्रतिभावान ऋषि की पत्नी मैत्रेयी थीं।

मैत्रेयी के साधारण जीवन का विशेष परिचय कुछ नहीं पाया जाता है। उसकी शैशव-शिक्षा और दीक्षा का, उसके यौवन-प्रेम और प्रीति का, उसके नारी-जीवन के सुख-दुख आदि का वृत्तान्त उपनिषत्कार ऋषियों के द्वारा हमें कुछ नहीं मिलता। उसके जीवन का विकास किस शुभ मुहूर्त में हुआ और कब उसमें ब्रह्म-पिपासा का उद्रेक हुआ था, किस प्रकार दिनोंदिन तपोनिष्ठ और ब्रह्मपरायण पति के सहवास में उसकी वृद्धि होती गई, इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। ऋषि-कन्यकाश्रमों के साथ, तपोवन के स्नेहावेष्टन में, मैत्रेयी के हास्य एवं लास्य से दिगन्त मुखरित हुआ था। ऋषि-बन्धु होकर त्याग और संयमोज्ज्वल, सुपवित्र एवं शुचि-सुन्दर जीवन

उसने यापन किया। केवल कल्पना के द्वारा उसके माधुर्य और सौन्दर्य का उपभोग करने के सिवा और अन्य कोई उपाय नहीं है।

ब्रह्मविद् याज्ञवल्क्य जी की दो पत्नियाँ थीं—कात्यायनी और मैत्रेयी। कात्यायनी ने धर्म और ब्रह्म-जिज्ञासा की ओर ध्यान नहीं दिया। साधारण नारी की तरह उसने जीवन यापन किया। उसको स्त्री प्रज्ञा कह कर अभिहित करते हैं। किन्तु मैत्रेयी ने वैराग्य, त्याग और मुमुक्षुता के जीवन का अनुभव करना सीखा था। योग्य स्वामी की योग्य पत्नी, शास्त्रों में ब्रह्मवादिनी कह कर पुकारी जाती है।

भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में उस समय चारों आश्रमों का अव्याहत प्रभाव था। गृही का सुकठोर कर्तव्य-निश्चय सम्पन्न करके याज्ञवल्क्य ने प्रव्रज्या अवलम्बन करने का निश्चय किया। किन्तु वानप्रस्थ ग्रहण करने के पूर्व प्रियतमा पत्नियों के मध्य अपनी यत्न-सामान्य सम्पत्ति वितरण करने का निश्चय किया।

कात्यायनी जीवन के अवशिष्ट दिन यापन करने के लिए, धनैश्वर्य के लिए व्यग्र थी। किन्तु मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य का वक्तव्य सुन कर प्रश्न किया—हे प्रभु, यदि ससागरा पृथ्वी धन से परिपूर्ण हो, तो मैं क्या ‘अमृत’ हो सकूँगी?

ऋषि प्रसन्न और विस्मित हुए। स्नेह-विगलित स्वर में उन्होंने कहा—धन और सम्पद अमृत-सुधा आहार नहीं कर सकते हैं। मैत्रेयी ने उस समय प्रफुल्ल कण्ठ से उत्तर दिया—“येनाह नामृतास्या किमहं तेन कुर्याम्?” अर्थात्—“जिससे अमृतत्व लाभ नहीं कर सकती उसे लेकर मैं क्या करूँगी?” कितने हजार वर्ष पहले यह महावाणी उच्चरित हुई थी! तथापि काल के व्यवधान और समस्त विवर्तन के मध्य होकर आज भी भारतवर्ष का यह शाश्वत सुर हमारे कानों में मधुर सुधा-धारा उँदेल देता है। यह हमारा कितना परिचित सुर है। हमारा शिल्प और साहित्य, हमारी आशा और आकांक्षा का यही अमृतत्व सुर चिरन्तन ध्वनि कर रहा है। भारत की यही संस्कृति, यही उसका वैशिष्ट्य और यही उसकी सभ्यता और साधना है।

भारतवर्ष साम्राज्य नहीं चाहता, वह विजय-कीर्ति नहीं चाहता, वह गौरव और अहङ्कार की सीमा का उल्लङ्घन करना नहीं चाहता। मृत्यु की गोद में उसने अमृत की पूजा की है। दुःख और लान्छना की उपेक्षा करके दारिद्र्य और चैतन्य को उसने वरण किया है। भारतवर्ष है अमृतत्व का भूखा। आज भी उसका हृदय-सम्राट् गाँधी उसी अमृतत्व के लिए अहर्निश व्यग्र रहता है। भिखारी शिव उसका देवता, जीवन का विष पान करके नीलकण्ठ के समान अमृत जागरण के लिए ही उसकी (भारत की) तपस्या है। काम और कामना उसकी तपस्या की अभिशिखा से दग्ध और भस्मीभूत हो गए हैं। ससार के बेबी-जाल को काट कर असीम के सहित ससीम जीवन को ऐक्य कर देने के लिए यहाँ के योगी और साधक कठोर साधना करते आए हैं।

मैत्रेयी की वाणी उसी भारतवर्ष की वाणी है। भारत की आत्मा आज भी मानों मैत्रेयी के स्वर में स्वर मिला कर गाती है—

“येनाह नामृतास्यां किमह तेन कुर्याम् ?”

मैत्रेयी का कथन ही हमारे लिए अनवय आनन्द का उत्स, असमास उत्साह की भित्ति, अशेष अनुराग की वस्तु है। याज्ञवल्क्य प्रियतमा पत्नी का यह अपूर्व प्रश्न और उत्तर सुन कर विस्मय, आनन्द-सागर में मानों डूब गए। ऋषि के मन में भी मानों खोया शौच-सुख जाग्रत हो उठा। प्रीतिसिक्त वाणी में वे बोले—“हे मैत्रेयी, तुम मेरी परम प्रिय पात्री हो, तुम्हारे मधुर वाक्य से मैं और भी प्रसन्न हुआ। आओ, तुम्हें अमृतत्व की व्याख्या सुनाऊँ।”

याज्ञवल्क्य ने उस समय मैत्रेयी को आत्मतत्त्व का उपदेश दिया। वे बोले—पति, पुत्र, जाया उनके विचार से अपने लिए प्रिय नहीं, आत्म-प्रीति के लिए ही पति, पुत्र, जाया प्रिय हैं। किन्तु ब्राह्मण, देवता और प्राणी किसी को अपने लिए प्रीतिभाजन नहीं, आत्मा की प्रीति के लिए ही सब वस्तु और सब प्राणी प्रिय हैं। अतएव इसी आत्मा को जानना चाहिए।

आत्मतत्त्व भारतवर्ष की दार्शनिक चिन्ता का और गम्भीर साधना का मूलाधार है। आत्मा का अर्थ था निश्वास। परचात्, आत्मा देह और प्राण के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। तत्परचात् चिन्ता और धारणा के

विकाश के साथ-साथ मनुष्य का अन्तर्निहित शक्ति वा पुरुष के विचार से आत्मा का प्रयोग होने लगा। अन्त में दार्शनिक जिज्ञासा की उन्नति के साथ-साथ आत्मा ने एक अपूर्व संज्ञा और अभिधा प्राप्त किया; जो सहज में समझ में नहीं आ सकता।

इस आत्मा को केवल मनुष्य का अन्तर्गामी पुरुष मान लेने से गलती होगी। देह के कुछ नीच में उसका आवास होते हुए भी नीच के बाहर विराट् को पाने के लिए उसकी लुब्ध दृष्टि लगी हुई है। नीच के नष्ट होने से यह जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है। उसी मृत्युहीन अक्षय एवं अमर शक्ति ने विरव-सुवन को ओत-प्रोत कर रखा है। मनुष्य के मन में जो अन्तर-देवता कार्य करता जाता है, असीम और अज्ञेय के साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। ज्ञानिक, जिस समय वस्तु-सम्भार को खण्ड-खण्ड करके देखता है, उसी समय उनको नहीं समझ सकता है। किन्तु जब समझ जाता है, उसका एक अखण्ड आनन्दरूप आत्मा उसी समय अज्ञान के तमोमय जाल को फाड़ देता है और हम सत्य के दिव्योज्ज्वल रूप के सम्मुख अनन्त आनन्द में आप्लुत होते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् के प्रजापति-इन्द्र सम्वाद में इसी आत्मतत्त्व के उद्भव का एक चमत्कारपूर्ण इतिहास पाया जाता है। प्रजापति ने इन्द्र से कहा—“जरा, मरण, दुःख, शोक, पाप, चुष्मा, जिमको रक्षण नहीं करते हैं, वही आत्मान्वेषण कर सकते हैं।” इन्द्र ने प्रथम समझा कि देह आत्मा नहीं है। कारण, देह का तो विनाश है, आत्मा का नहीं। इन्द्र ने क्रमानुसार आत्मा की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था की कथा सुनी।

प्रजापति ने समझाया—“स्वप्नावस्था में आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है। क्योंकि आत्मा उस समय शरीर के बन्धन से निकल मुक्तावस्था में अग्रगण्य करता है।” किन्तु इन्द्र को इससे तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने सोचा—“स्वप्न की कल्पना आत्मा की पीड़ित और व्यथित करती है। स्वप्नावस्था में मनुष्य चिन्ता-धारा के साथ प्रवाहित होता है।” प्रजापति उस समय बोले—“सुषुप्ति से आत्मा का साक्षात्कार पाया जाता है। सुषुप्ति में इन्द्रिय-ब्रह्म विषय नहीं रहता है। ज्ञेय वस्तु नहीं रहती है। किन्तु सुषुप्ति के पहले ज्ञान रहता है, परचात् भी रहता



है। इसी अवस्था-परिवर्तन के बीच ज्ञान की स्थिति, आत्मा की नित्यता का प्रमाण है।” इन्द्र ने पूछा—“ज्ञेय, ज्ञाता, विषय और विषयी यदि नहीं रहते हैं तब सुषुप्ति के समय आत्मा विनाश को प्राप्त होता है?” उस समय प्रजापति ने समझाया—“विषय को जो जानते हैं, जिन्होंने ज्ञान लाभ किया है, नेत्रों का नेत्र, ओत्रों का ओत्र वही आत्मा है। विषयी आत्मा जिस समय शरीर के सहित अपने को अभिन्न समझता है, उसी समय उसको दुःख और हर्ष अभिभूत करता है। शरीर के सहित अपने को भिन्न समझने से ही आत्मा का दुःख-क्लेश तिरोहित हो जाता है।”

उपनिषद् के विचार से आत्मा असीम, अनन्त, सर्वव्यापी, चैतन्यमय और विज्ञानमय है। समस्त विकल्प और विवर्तन के बीच होकर आत्मा अपनी ज्योति से ज्योतिर्मान होकर आनन्दरूप से वर्तमान है। जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर भिन्न भिन्न मतवाद हुए हैं। किसी के मत से जीवात्मा और परमात्मा अभेद है, अद्वैत आत्मा ही एक तत्त्व है। दूसरे कहते हैं, सर्वाधार अथच परमात्मा के सिवाय कुछ नहीं होने से भी व्यक्ति चैतन्य का पृथक् पारमार्थिक अस्तित्व है।

आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर अद्वैत-वाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, भेदोभेदवाद प्रभृति भिन्न-भिन्न मत और साधन-प्रणाली उत्पन्न हुई हैं। इस खेल में उसकी विशेष आलोचना करना सम्भव नहीं है।

याज्ञवल्क्य के मत से आत्मा अद्वैत, विषय और विषयी, ज्ञाता और ज्ञेय, ससीम और असीम, शान्त और अनन्त, खण्ड और अखण्ड है। वैचित्र्यमय विश्व की अनन्त वस्तुओं के मध्य में एक ही वस्तु नहीं, समस्त वस्तुएँ आत्मा के द्वारा अनुप्राणित होती हैं। आत्मा को न जानने से और उसके साथ विभिन्न वस्तुओं का सम्बन्ध न जानने से सम्यक् ज्ञान होने की सम्भावना नहीं है। आत्मतत्त्व के प्रति दृष्टिपात न कर वस्तुओं और विश्व के ज्ञान-लाभ का प्रयास करना व्यर्थ है।

याज्ञवल्क्य ने इसीलिए मैत्रेयी को उपदेश दिया कि जो व्यक्ति भूतसमूह को आत्मा से पृथक् मानते हैं, भूतसमूह उसे परित्याग कर देते हैं। जो व्यक्ति समुदाय-

वस्तु को आत्मा से पृथक् समझते हैं, समुदाय-वस्तु उसे त्याग कर देते हैं।

तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने कितने ही आध्यात्मिक तत्त्व मैत्रेयी को समझाये। उन्होंने कहा—“महान आत्मा इसी समुदायभूत से उत्थित होकर उसी में विनाश को प्राप्त होता है। मृत्यु के बाद आत्मा की और कोई संज्ञा नहीं है।”

मैत्रेयी ने श्रद्धावन्त चित्त से अपने ब्रह्मविद् पति की बातें सुनीं। मृत्यु के बाद आत्मा की कोई संज्ञा नहीं रहेगी, ज्ञान, प्रेम, चैतन्य, कर्मशक्ति प्रभृति आत्मा के प्रेय यदि नहीं हैं, तब संज्ञाहीन आत्मा के अनन्त अस्तित्व का क्या प्रयोजन? मैत्रेयी ने सङ्कोच और सन्देह के साथ कहा—“भगवन्, मृत्यु के बाद संज्ञा नहीं रहेगी, यह कह कर आप क्यों हमें मोहग्रस्त कर रहे हैं?” योगी सत्तम याज्ञवल्क्य ने कहा—“हे प्रिये! मैं कुछ मोह पैदा करने वाली बात नहीं कह रहा हूँ। आत्मा अविनाशी और उच्छेद-विहीन है। जीविता-वस्था में मनुष्य की बुद्धि में ज्ञेय-ज्ञाता, विषय-विषयी के भेद हैं, किन्तु मृत्यु के बाद यह भेद चला जाता है, सुतरां कोई ज्ञान नहीं रहता है। ज्ञान के लिए ज्ञेय और ज्ञाता होना चाहिए।”

याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी की परम रमणीय आख्यायिका यहाँ समाप्त होती है। भारतवर्ष नारी, धन, जन, सम्पद और विलास का मोह भूल कर अमृतत्व की रसधारा चाहता था, यह कल्पना करने ही से मन अपूर्व आनन्द-रस में सिक्त हो जाता है। भारतवासी स्त्रियों को इस समय दासी बना कर रखना चाहते हैं। उन्हें खयाल रखना चाहिए कि भारत की स्त्रियाँ पुरुषों की सहधर्मिणी हैं। उन्हें पैर की जूती समझने ही से आज भारत अन्धकार के भयङ्कर गर्त में पतित हुआ है। जिस दिन अभागा भारत स्त्रियों की क्रोध करना पुनः सीख लेगा, वह दिन अवश्य ही उसके लिए मङ्गल-प्रभात लावेगा। सत्य और ज्ञान के चिर-वर्द्धमान यात्रा-पथ में नारी पुरुष की प्रिया सहचरी है। तमसाच्छन्न भारतवर्ष पुनः मैत्रेयी सरीखी रमणियों का जनक हो, यही हमारी आन्तरिक कामना है।





[सम्पादक—श्रीयुत
नीलू बाबू]

सुघरई—भूपताला मात्रा १०

[शब्दकार तथा स्वरकार—
श्रीयुत नीलू बाबू]

स्थायी—रिमक्तिम पनिर्थाँ तो बरसन लागे, श्याम बिना कछु नीको न लागे ।

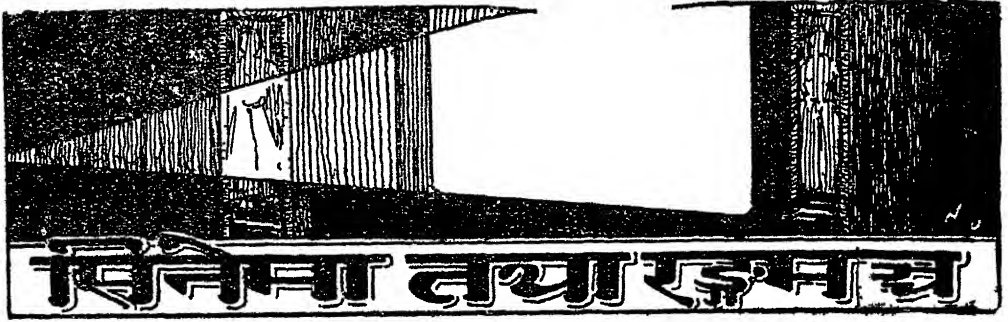
अन्तरा—निशि अंधियारी कारी मोहे डरपावे, काह करूँ मोरा जिया नही लागे ॥

स्थायी

×		३		०		१			
		क				क			
सं	सं	नी	घ	प	म	प	मग	रेस	रे
रि	म	क्ति	इ	म	प	नि	योआ	आआ	तो
क	क								
ग	ग	म	—	प	रे	—	स	—	—
ब	र	स	—	न	ला	—	गे	—	—
स	रे	म	—	प	ध	प	नी	—	ध
श्या	आ	म	—	वि	ना	आ	क	—	छु
म	प	मप	ध	प	ग	रे	स	—	—
नी	ई	को	ओ	न	ला	आ	गे	—	—

अन्तरा

म	म	प	नी	नी	सं	सं	सं	—	सं
नि	शि	अँ	अँ	धि	या	री	का	—	री
नी	सं	नीसं	रें	सं	ध	सं	नी	—	ध
मो	हि	डअ	अ	र	पा	आ	वे	—	ए
सं	—	नी	ध	प	म	प	मग	रेस	रे
का	—	ह	अ	क	रूँ	ऊँ	मोआ	ओओ	र
क	क								
ग	ग	म	—	प	रे	—	स	—	—
जि	या	न	—	हि	ला	—	गे	—	—



हॉलीवुड के मेरे कुछ अनुभव

[श्री० सतीशचन्द्रसिंह]

लगभग डेढ़ वर्ष हुआ, एक अकेला परदेशी फ़िल्म डिरेक्टर् की कला सीखने के लिए हॉलीवुड पहुँचा। वह किसी को न जानता था। हाँ, रुपया थोड़ा-बहुत उसके पास था। वही उसका साथी, मित्र, सब-कुछ था। वह परदेशी था मैं !

मुझे यह ज्ञात होने में अधिक समय न लगा कि मैंने भी वही भयानक भूल की थी, जो जवानी के जोश में आकर अधिकतर नवयुवक करते हैं। मैं एक ऐसे कार्य में अग्रसर हो पड़ा था, जिसके विषय में कुछ अधिक जानकारी न थी। तात्पर्य यह है कि हॉलीवुड में यह कला सीखने के लिए कैसे प्रवेश किया जाय, किससे कहा जाय और किससे मिला जाय। इन सब बातों की मुझे कोई जानकारी न थी। फलतः ऐसी दशा में जो होता है वही हुआ। मैंने एक संस्था के पश्चात् दूसरी संस्था में प्रवेश करके धन बहाना प्रारम्भ किया। परन्तु उससे कुछ लाभ न हुआ। हाँ, इतना अवश्य ज्ञान हो गया कि एक कला की चहारदीवारी के अन्दर बैठ कर प्रोफ़ेसर का लेक्चर सुनने से उस कला का ज्ञान तथा अनुभव नहीं प्राप्त हो सकता, जोकि एक योग्य डिरेक्टर को चाहिए। केवल स्टुडियो (Studios) ही ऐसे स्थान थे, जहाँ कुछ लाभ हो सकता था। परन्तु किसी की विशेष ज्ञान-पटिवान तथा सिफ़ारिश के बिना स्टुडियो में काम करना तो दूर, प्रवेश करना भी कितना कठिन है, यह मेरे मस्तिष्क में शीघ्र ही घुस गया। खिलनापूर्णा निराशा से मेरा हृदय भर आया। इन बेढङ्गी संस्थाओं के

लेक्चरों से अनुभव प्राप्त करने में धन नष्ट करने के लिए मैं अब तैयार न था। इसलिए मैंने अपनी नोटबुक और पेन्सिल उठाई और लास एंजिल्स (Los Angeles) और हॉलीवुड (Hollywood) के थियेटरों में नवीन से नवीन फ़िल्मों को देखना और उनसे नोट लिखना मैंने प्रारम्भ किया। शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि सावधानी से चुनी हुई फ़िल्मों से लिए गए ये नोट कहीं अधिक मूल्यवान थे, बनिस्वत उन सब लेक्चरों के नोटों के, जिन्हें मैंने तमाम हॉलीवुड की संस्थाओं में रह कर लिए थे।

एक दिन मैं नोट लेने के हेतु एक फ़िल्म चुनने के विचार से 'लास एंजिल्स टाइम्स', नामक पत्र देख रहा था कि मेरी दृष्टि एक सङ्गीत-समारोह की सूचना पर पड़ी। श्रीमती 'आयशा' एक नाट्य-भवन में नृत्यकला दिखाने वाली थी, जिसके विषय में इससे पहले मैं 'चौद' में लिख चुका हूँ। परन्तु उसमें दो-एक विशेष बातों का उल्लेख नहीं कर सका हूँ। इसलिए उन्हें अब पाठकों के सम्मुख रखता हूँ।

जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, मुझे अन्यन्त गर्व हो रहा था कि आज भी भारतवर्ष अपनी ही पुत्रियों में से एक को, एक बार फिर कला की वेदी पर भेंट चढ़ा कर, इस प्रसिद्ध थियेटर में उस समय का स्मरण कराने भेज रहा है, जबकि प्रसिद्ध कलाविज्ञ पारलोरा, रौशनभारा, रूथ सेयट डेनिस और पैदेवस्की ने गायन-वादन-नृत्य की कला को इस सप्ताह में एक बार ही अमर कर दिया था।



जैसे मैं श्रीमती आयशा से भेंट करने गया और किस तरह मुझे ज्ञात हुआ कि आप भारतीय नहीं, अमेरिकन हैं, यह सब मैं पाठकों को अपने पहिले लेख में बता चुका हूँ। हाँ, मिलने पर आपने कहा—

“कठिनाई तो यह है कि यहाँ ठीक भारतीय नृत्य सीखना असंभव है। मैंने जो कुछ भी किया है, वह कुछ भारतीय पुस्तकों को पढ़ कर और कुछ भारतीय चित्र देख कर। परन्तु मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं भारत-वर्ष से ठीक भारतीय नृत्य सीख कर आऊँ और यहाँ के लोगों को, जिनके लिए भारतीय नृत्य कियों के अर्द्धनग्न-अवस्था में “tom—tom” (टोल) के साथ भड़े भाव प्रदर्शन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—प्राचीन भारतीय नृत्य का सभी आध्यात्मिक रूप दिखा सकूँ।”

इसके पश्चात् आप मेरा कुछ हाल जानने के लिए उत्सुक प्रतीत हुईं। मैंने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ आपको अपनी प्रबल इच्छाओं के विषय में, जिनकी पूर्ति के लिए मैं हॉलीवुड आया था, बताया। यह भी बताया कि अभी तक कितनी कठिनाइयों का सामना होता आया है। आपने कहा—“हाँ, कठिनाइयाँ तो अवश्य हैं। पर क्या आपको मेरी किसी प्रकार की सहायता स्वीकार होगी?” मैं भला ऐसे अवसर से क्यों चूकता? बोला—“धन्यवाद, क्यों नहीं? बड़ी कृपा होगी।” आप उस समय फ्रॉक्स स्टुडियो के सङ्गीत और नृत्य-विभाग की परामर्शदात्री थीं। दूसरे दिवस आज्ञानुसार स्टुडियो में मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ और आपने कई डिरेक्टरों से मेरा परिचय करवाया। उन्हीं के द्वारा मुझे स्टुडियो में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ और जिसके लिए मैंने इतनी कठिनाइयाँ उठाई थीं, उसकी ओर तीव्र वेग से अग्रसर हुआ।

यह कदाचित् उनके लिए, जिनके हृदय में हॉलीवुड जाने की नई उमङ्गें उठ रही हैं, एक लाभदायक उदाहरण होगा।

आयशा

अब मैं श्रीमती आयशा का थोड़ा सा परिचय ‘चर्चा’ के पाठकों को देना चाहता हूँ। आपका जन्म सन् १९११ ई० के जनवरी मास में न्यूयॉर्क में हुआ था। आपके पिता एक बैंक के साधारण क्लर्क थे और आपकी

माता एक नर्स थीं। आपकी माता की प्रबल इच्छा थी कि वे एक नर्तकी हो सकें, पर उनका शरीर असाधारणतया कठोर था। नृत्य के लिए बड़े ही, कोमल शरीर की आवश्यकता होती है। इससे वे उसमें सफल न हो सकीं। परन्तु वे नृत्य के पीछे पागल थीं।

आप समझ ही सकते हैं कि ऐसी माँ की प्रकृति का बच्चे के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा। वही हुआ। जैसे ही आयशा ने, जिनका अमेरिकन नाम डोरिस बूथ (Doris Booth) है, चलना आरम्भ किया, वैसे ही नृत्य करना भी आरम्भ हो गया। कहीं सङ्गीत होता, आप ठीक ताल देने लगतीं।

एक दिन आपके पिता बैंक की ओर से एक पार्टी में निमन्त्रित थे। अपनी माता के साथ आप भी वहाँ गई थीं। उस समय आपकी अवस्था केवल २१ वर्ष की थी। वहाँ लोगों को नाचते देख आपको भी नाचने की सूझी। सब लोग अपने-अपने पार्टनर्स (साथी) के साथ नृत्य कर रहे थे। आपको भी पार्टनर्स की खोज हुई। कहते हैं, आपको वचन में सुन्दर फुकीबी प्रैन्च दाढ़ी वाले पुरुष अधिक पसन्द थे। बस आपने नाचते हुए भीड़ में से एक दाढ़ी वाले को अपनी ओर आकर्षित किया और उसे अपने साथ नृत्य करने को आमन्त्रित किया। संयोगवश यह सज्जन थे डैनियल-फ्रोमैन, जो कि आजकल भी न्यूयॉर्क में हैं और संसार में रङ्गमञ्च विद्या के सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं।

वे आपके साथ नाच कर बड़े प्रसन्न हुए और आप में इतनी छोटी अवस्था में ही नाचने की असाधारण योग्यता देख कर आपकी माँ के पास गए और आपका को अपने साथ रख कर नृत्य सिखाने की आज्ञा माँगी। माता के हर्ष का वारापार न रहा। भला कुँआ प्यासे के पास आश! फिर क्या, आयशा की शिक्षा आरम्भ हुई और ४ से २ वर्ष की अवस्था में ही आप संसार में सबसे छोटी आयु वाली, सबसे निपुण भाव-नृत्य करने वाली प्रसिद्ध हुईं। आपका नाम चारों ओर फैल गया। यहाँ तक कि भूतपूर्व क्रैसर ने आपको भोज के लिए निमन्त्रित किया। आपको चैन कहाँ? बाजा बज ही रहा था। आपने खाना भी नाच-नाच कर ही खाना आरम्भ किया। क्रैसर बहुत प्रभावित हुए। आयशा की माँ को बचाई दी और कई इनामों के अतिरिक्त



आपको अपने नाम का एक विशेष पदक प्रदान किया। मेरी पिकनोर्क, जोकि आजकल की सबसे विख्यात नर्तकियों में से एक हैं, भी बड़ी प्रभावित हुई। आपने भी एक दावत आपको दे ही डाली। तब से अभी तक आप दोनों में बड़ी मित्रता है।

खैर, लगभग नौ वर्ष तक आपकी बड़ी धूम रही। पश्चात् न्यूयॉर्क के एक लखपती ने आपको शिक्षा देने के लिए, आपकी माँ से आपको माँगा। माँ बेचारी ने भी सच्चे त्यागी का उदाहरण दिया। प्रगाढ़ ममता होते हुए भी वह आपसे पृथक् होने को तैयार हुई और आप उक्त सज्जन के यहाँ रह कर शिक्षा पाने लगी। पर आप थी बड़ी स्वतन्त्रता-प्रिय। माँ से भी आपका प्रगाढ़ स्नेह था। आपने हठ प्रारम्भ किया कि माँ के पास जाऊँगी। आप पर सख्ती की गई। फल यह हुआ कि लगभग १० वर्ष की अवस्था में आप पहला अवसर पाते ही घर से भाग खड़ी हुई और फिर अपनी माँ की सेवा में उपस्थित हुईं। माँ के हर्ष का पारावार तो कदाचित् स्नेहमयी माताएँ ही पा सकती हैं।

माता ने भी कुछ दिनों पश्चात् आपको स्कूल जाने की सम्मति दी। आपने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। लगभग १६ वर्ष की अवस्था में आपने हाई-स्कूल की परीक्षा पास की। आप इससे अधिक नहीं पढ़ना चाहती थीं। माँ ने जोर दिया कि और पढ़ा जाय। आपने कुछ न कहा। माता के झिझाऊ कुछ कहना तो आपने सीखा ही न था। चुपचाप फिर कॉलेज में

दाखिल हुईं। लेकिन मन आपका रङ्गमञ्च पर था। फलतः आप उदासीन रहने लगीं। आपके स्वास्थ्य पर भी इसका असर पड़ने लगा। शरीर भी कुछ भारी हो चला।

छुट्टियों में माँ ने जो यह देखा तो ताड़ गई। आखिर वे भी तो इनकी नस-नस पहिचानती थीं। चुपके से इनका मुँह चूमा और चूमा माँग ली। फिर क्या था? बरसों की छिपी हुई आग फिर भड़की। एक बार फिर आपकी अमेरिका भर में धूम हो गई। आपको सब स्थानों से बुलावे आने लगे। फलतः आपने अमेरिका भर में विचरण करना प्रारम्भ किया और तीन वर्ष तक बराबर घूमती रही। सन् १९३० में आप केलीफोर्निया पहुँचीं और लास-एञ्जिल्स तथा हॉलीवुड में अपनी कला दिखाई। वहाँ बड़ी सफलता प्राप्त हुई और आपको स्टूडियो से बुलावे मिले। पर आप ऐक्टिंग करना पसन्द नहीं करतीं। यह एक नवीन बात है, जो साधारणतया वहाँ की किसी और स्त्री में कदाचित् ही मिले। इसलिए आपने परामर्शदात्री की पदवी स्वीकार कर ली। आप बहुत सादा और धार्मिक जीवन व्यतीत करती हैं और सन्ध्या समय सोने से पहिले नित्य ही गीता का पाठ करती हैं। यही आपका छोटा सा जीवन-चरित्र है।

आपके जीवन में ऐसी भी कुछ विशेष घटनाएँ हुई हैं, जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। समय आने पर वह भी कदाचित् इन्हीं पंक्तियों में पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो।

मेरी बात

[कुमारी शान्ति देवी भार्गव, 'हिन्दी-भूषण']

ठहर ! ठहर ॥ मत छेड़ निर्दयी ! टूटी हृत्तन्त्री के तार ।

मूक हृदय की विषम वेदना जान न पाए यह ससार ॥

गाने दे मुझको विद्रोही अरे ! वही प्रलयङ्कर गान ।

उस अनन्त के अगम राग मे होने दे मेरा अवसान ॥

क्या कर सकता है भूतल पर एक दीन का यह बलिदान ।

दिखलाने दे निर्मम दुनिया को अपना जीवन अनजान ॥





अन्ना—रूसी उपन्यास। मूल लेखक, काउण्ट लीओ टाल्सटॉय, अनुवादक, पण्डित छविनाथ पाण्डेय, प्रकाशक, पुस्तक-मन्दिर, काशी, पृष्ठ-संख्या ७१७, मूल्य ३) रुपए।

रूसी उपन्यासकारों में ही नहीं, समस्त संसार के उपन्यासकारों में टाल्सटॉय का स्थान बहुत ऊँचा है। अनेक प्रमुख विद्वानों का मत तो यह है कि टाल्सटॉय सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक थे। यह सत्य हो या नहीं, किन्तु यह तो अवश्य है कि कल्पना-शक्ति, रचना-शैली चरित्र-चित्रण आदि में टाल्सटॉय का समकक्ष कोई दूसरा कलाकार नज़र नहीं आता। इस सबसे ऊपर टाल्सटॉय में एक विशेषता थी और वह यह कि वह श्रेष्ठ कलाकार होने के साथ ही सुधारक थे, राजनीतिज्ञ थे, पीड़ितों के सहायक थे और इसलिए उनके उपन्यास केवल मनोरंजन की सामग्री नहीं, अन्तरात्मा को जाग्रत करने वाले और उसमें क्रान्ति उत्पन्न करने वाले होते थे। इनके उपन्यासों ने रूस की सुषुप्त और पद-दलित जनता में वह जागरण उत्पन्न किया कि ज़ार का राज-मद भराशायी हो गया। टाल्सटॉय ने अपने उपन्यासों से रूस ही नहीं, विश्व मात्र के पदाक्रान्तों और निर्धनों की महान् सेवा की है। इन्हीं कारणों से टाल्सटॉय और उनके उपन्यासों को जो सम्मान प्राप्त हुआ है, वैसा आदर किसी दूसरे को नसीब नहीं हुआ।

उन्हीं टाल्सटॉय की 'अन्ना करेनिन' नामक सुप्रसिद्ध उपन्यास का यह अनुवाद है। 'अन्ना करेनिन' टाल्सटॉय के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से है। 'वार एण्ड पीस' और 'अन्ना करेनिन' ये दो उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं। कुछ लोगों की राय है कि 'वार एण्ड पीस'

को सर्वश्रेष्ठ पद मिलना चाहिए और कुछ लोगों की राय में 'अन्ना करेनिन' को। कुछ भी हो, यदि प्रथम नहीं तो द्वितीय स्थान तो 'अन्ना करेनिन' का है ही और ऐसी दशा में 'अन्ना' की श्रेष्ठता के लिए और क्या सुबूत चाहिए? 'अन्ना' में राजनीति है, समाज-सुधार है और की हृदय का सुस्पष्ट, वास्तविक और सजीव वर्णन है। रूप और यौवन से आनन्द लाभ करने वाली स्त्री को विलास-कामना उसे किस ओर ले जाती है और पति-परायणा, सद्गृहस्था स्त्रियों को कैसी शान्ति प्राप्त होती है, इसका चित्रण 'अन्ना' से बढ़ कर और किसी पुस्तक में मिल नहीं सकता। मूल पुस्तक में जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी उपलब्धि अनुवाद में नहीं होती। किन्तु फिर भी हिन्दी के पाठकों को 'अन्ना' सुलभ करने के लिए अनुवादक और प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

वेश्या का हृदय—लेखक डॉक्टर धनीराम 'प्रेम', प्रकाशक भारत राष्ट्रीय कार्यालय, अलीगढ़, पृष्ठ-संख्या २२२ और मूल्य १।।) रुपए।

डॉक्टर 'प्रेम' हिन्दी-संसार में और विशेषतः कहानी-संसार में सुप्रसिद्ध हैं। कहानी लिखने में आप कमाल करते हैं और इस कथन में अत्युक्ति नहीं कि आपने नए कहानी-लेखकों को ही नहीं, कितने ही पुराने लेखकों को भी अपने पीछे कर दिया है। आप में कहानी लिखने की कैसी अद्भुत प्रतिभा है, इसे हिन्दी-संसार ने आपकी आरम्भिक कहानियों से ही समझ लिया था। प्रसन्नता की बात है कि डॉ० 'प्रेम' ने अपना कार्य-क्षेत्र और विस्तृत कर दिया है और कहानी के अतिरिक्त आप उपन्यास, नाटक, जीवनियाँ आदि लिखने लगे हैं।



‘वेश्या का हृदय’ आपका पहला उपन्यास है। इसमें आपने वेश्या के हृदय को, वेश्या-जीवन को और वेश्याओं को जन्म देने वाली सामाजिक रीति-नीति को बड़ी सफलता के साथ प्रदर्शित किया है। समाज की सीधी-सादी लड़कियों को पुरुष-वर्ग किस प्रकार पतित करता है, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं में समाज-सेवा की आद में काम करने वाले रंगे स्थार, अज्ञात-अवलोकनों के रक्त के स्थान पर भक्त बन कर किस प्रकार उनका चरित्र अष्ट करते हैं; यही नहीं, समाज के प्रत्येक विभाग से स्त्रियों को वेश्या बनने का किस प्रकार प्रलोभन दिया जाता है, इसका नम्र चित्र डॉ० ‘प्रेम’ ने बड़ी चुटीली लेखनी से चित्रित किया है। इसके साथ ही उन्होंने इसमें यह भी दिखलाया है कि यदि समाज वेश्याओं को हेय न समझ कर उनके सुधार का प्रयत्न करे, तो उनमें भी हृदय होता है, उनमें भी भाव होते हैं, मनुष्य वे भी हैं, और उनका सुधार हो सकता है। पुस्तक एक बार पढ़ने की चीज़ है।

प्राकृतिक स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन—

लेखक तथा प्रकाशक, श्री० ठाकुरदास जी, हल-दौर, जिला बिजनौर, आकार ममोला, पृष्ठ-संख्या १२१, मूल्य ॥)

“स्वास्थ्य-विद्या का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक और अनिवार्य है।” इसी सिद्धान्त को लेकर वयोवृद्ध लेखक ने इस पुस्तक की रचना की है। स्वास्थ्य-विद्या सम्बन्धी जितनी पुस्तकें अब तक हमने देखी हैं, उनमें यह निराली है। इसमें प्रत्येक रोग का कारण और उसके प्रतिकार के लिए प्राकृतिक उपाय बताए गए हैं। प्राकृतिक जीवन बिताने के उपायों का भी वर्णन है। पुस्तक की भाषा सरल और छपाई आदि साफ है।

विद्यापति—लेखक, प्रोफेसर जनार्दन मिश्र, एम० ए०। प्रकाशक, श्री० अर्जुन मिश्र, ग्राम मिश्रपुर, पोस्ट असरगञ्ज, जिला भागलपुर। आकार ममोला, पृष्ठ-संख्या १८०, दाम १)

प्रस्तुत पुस्तक मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति ठाकुर के सम्बन्ध में लिखे हुए कतिपय आलोचनात्मक

निबन्धों का संग्रह है। जिनमें ‘विद्यापति का युग’, ‘विद्यापति का धर्म’, ‘विद्यापति की विचार-धारा’ और ‘हिन्दी-साहित्य में विद्यापति’ आदि कई विषयों का विवेचन किया गया है। अन्त में महाकवि के कुछ चुने हुए पदों का संग्रह भी है। इस पुस्तक के पढ़ने से विद्यापति ठाकुर के सम्बन्ध में बहुत सी नई बातें मालूम हुईं। भाषा-शैली रोचक और मँजी हुई है।

आओ हँसें—लेखक, श्री० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०, प्रकाशक भीष्म एण्ड जादर्स, पटकापुर, कानपुर, आकार ममोला, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ॥)

यह पुस्तिका अरोड़ा जी ने गोंडा जेल में लिखी थी और इसकी प्रस्तावना लिखी है श्री० पुरुषोत्तमदास टण्डन महोदय ने। इसमें हास्यरस सम्बन्धी प्रायः पौने दो सौ चुटकुले संग्रहीत हैं। कोई चुटकुला ऐसा नहीं, जिसे पढ़ कर पाठक हँस न पड़े। गम्भीर प्रकृति श्री० टण्डन जी की प्रस्तावना की भाषा भी बड़ी ही खुलबुली है। बड़ी ही मजेदार पुस्तिका है।

हत्यारे का ब्याह—लेखक, मुन्शी कन्हैयालाल, प्रकाशक, लीडर प्रेस, प्रयाग। आकार ममोला, पृष्ठ-संख्या २२९, छपाई और कागज साफ, मूल्य १॥)

इस पुस्तक में ‘हत्यारे का ब्याह’ के अतिरिक्त लेखक महोदय की ३३ और—अर्थात् कुल चौदह कहानियाँ संग्रहीत हैं। मुन्शी कन्हैयालाल जी अङ्गरेजी और उर्दू के विद्वान तो हैं ही, अब आपने हिन्दी पर भी कृपा की है और विशेष रूप से कहानी-रचना द्वारा। आपने ‘कहानी कैसे लिखनी चाहिए’, इस विषय पर भी एक छोटी सी पुस्तिका लिखी है। फलतः आप इस कला के जानकार हैं। प्रस्तुत पुस्तक की, यों तो सभी कहानियाँ रोचक हैं, परन्तु दो-तीन कहानियाँ तो हमें बड़ी ही अच्छी लगीं। मुन्शी जी की भाषा बामुहावरा और आम-फ्रहम होती है। हमारी समझ में मुन्शी जी ने इस सम्बन्ध में विशेष सफलता प्राप्त की है। आपने यह पुस्तक ‘सरस्वती’ के सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल, ठाकुर श्रीनार्थसिंह जी और मुन्शी हरिवशराय जी को



समर्पित की है। लोग एक डेले से अधिक से अधिक दो ही शिकार करने हैं, परन्तु मुन्शी जी ने तीन किए हैं।

अथ—लेखिका, श्रीमती यशोदादेवी, प्रकाशक लीडर प्रेस, प्रयाग। आकार मैफोला, पृष्ठ-संख्या २३५, छपाई आदि साफ, मूल्य १॥)

इस पुस्तक में पूर्व-प्रशंसित मुन्शी कन्हैयालाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती यशोदादेवी की २३ कहानियाँ संग्रहीत हैं, जो समय-समय पर 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'चाँद', 'सहेली', 'हंस', और 'कल्याण' आदि हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं, जो इन कहानियों के 'कहानियाँ' होने का काफी सबूत है। इसकी भूमिका 'सरस्वती' के सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल ने लिखी है। आपकी राय में '× × × इन कहानियों में कहीं-कहीं हृदय के सात्विक भावों का इस ढङ्ग से विश्लेषण किया है कि वस्तु-विन्यास में इसका परिपाक हुए बिना नहीं रह सका।' अस्तु, इस पुस्तक में संग्रहीत सभी कहानियाँ अच्छी हैं। भाषा भी मीठी-सादी और मुहावरेदार है।

होमियोपैथिक भैषज्य-रहस्य—अनुवादक डॉक्टर वी० एन० टण्डन; प्रकाशक, होमियोपैथिक पब्लिशिंग कम्पनी, १४ मदनमाहन चटर्जी लेन, कलकत्ता, मूल्य ३)

यह पुस्तक होमियोपैथी के जगत्-प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० एलन के Key notes of the leading remedies of the MATERIA MEDICA का हिन्दी भाषान्तर है। डॉ० एलन इस विद्या के अद्वितीय ज्ञाता माने जाते थे और उनका लिखा यह ग्रन्थ ससार के प्रायः सभी होमियोपैथिक कॉलेजों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता है। इस पुस्तक में लगभग दो सौ होमियोपैथिक दवाओं के लक्षण और विभिन्न रोगों पर उनका प्रभाव भली प्रकार समझा कर बतलाया गया है। साथ ही प्रत्येक औषधि के लक्षणों का वर्णन करते हुए अनेक तुलनात्मक दवाएँ बतलाई गई हैं, जो इस प्रणाली के चिकित्सकों के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। सुलभ, सस्ती और हानि-रहित होने के कारण आजकल होमियोपैथी का-अचार शहरों में ही नहीं, गाँवों तक में होता

जा रहा है और अनेक लोग परोपकारार्थ भी इन दवा-इयों को वितरण करने रहते हैं। इन लोगों में अङ्गरेजी भाषा का अच्छा ज्ञान रखने वाले थोड़े ही होते हैं। किन्तु ही लोग अङ्गरेजी ग्रन्थ ज़रीब भी लेते हैं, पर उन्हें ठीक-ठीक समझ नहीं सकते जिसमें अर्थ का अनर्थ होने का भय रहता है। ऐसे तमाम लोगों के लिए यह ग्रन्थ निस्सन्देह बड़ा उपयोगी होगा। अनुवाद सब प्रकार से सुन्दर और सरल हुआ है। कागज़, छपाई उत्तम है, कपड़े की मज़बूत जिल्द बंधी है, और मूल्य भी पृष्ठ संख्या लगभग पाँच सौ को देखने दुः अधिक नहीं है।

होमियोपैथिक चारुचिकित्सा—लेखक, डॉ० वावा सी० सी० सरकार, एन० एम० बी०, प्रकाशक, होमियोपैथिक चारुचिकित्सा कार्यालय, यदुनाथ सान्याल रोड, लखनऊ, मूल्य ३) रु०।

इस पुस्तक में सब प्रकार के उरों की चिकित्सा-विधि होमियोपैथी के सिद्धान्तानुसार बतलाई गई है। अब तक हिन्दी में होमियोपैथिक चिकित्सा की जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे प्रायः बतला या अङ्गरेजी से अनुवादित हैं और उनमें ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिन्हें इस चिकित्सा पद्धति की बाकायदा शिक्षा पाने वाले व्यक्ति ही भली भाँति समझ सकते हैं। जो लोग थोड़े ही समय से शौकिया इस चिकित्सा को करने लगे हैं, उनको इन शब्दों का आशय समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसी त्रुटि को दृष्टिगत रख कर लेखक ने इस पुस्तक को मौखिक ढङ्ग से लिखने की चेष्टा की है और इसका बहुत सा अंश पढ़ जाने के पश्चात् हमारी धारणा है कि लेखक का उद्देश्य अनेक अंशों में सफल हुआ है। पुस्तक की भाषा बहुत सरल और बामुहाविरा है और प्रत्येक रोग तथा दवा के लक्षण ऐसे स्पष्ट तथा सरल ढङ्ग से वर्णन किए गए हैं कि साधारण मनुष्य को भी उन्हें समझ सकने में कठिनाई न होगी। इसमें सन्देह नहीं कि यह पुस्तक चिकित्सकों के लिए तो उपयोगी है ही, पर साधारण गृहस्थ भी हममें बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। कागज़ बकिया है और छपाई बहुत साफ़ है।



नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या ३९

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

हस्तगत हुआ पत्र तब,
प्रभ किए इतने इस बार,
एक पत्र में जिनका उत्तर
जा न सकेगा किसी प्रकार ।

इसीलिए मैं पहले तुमको
लिखती हूँ केवल वह बात
इसके पहले जो पूछी थी
तुमने, वही प्रथम हो ज्ञात ।

कैसी होगी कन्या-जन की
दिनचर्या जा में उस काल,
लिख आई हूँ मैं पहले ही
उनकी शुभ शिक्षा का हाल ।

रजनी के अन्तिम सुप्रहर में
ही वे सब जग जावेंगी,
जिससे उस पावन सुकाल के
लाभ सभी वे पावेंगी ।

वृद्धत जलाशय, गुरु सरिताएँ
उनसे पूरित होवेंगी,
जिनमें विधि से निद्रा का सब
अलस भाव वे खोवेंगी ।

स्नान समय का उनका जल के
वक्षस्थल पर केलिवास,
इतना सुन्दर होगा जितना
होता नहीं स्वर्ग-आभास,

ज्ञात यही होगा कि उतर कर
स्वर्गोत्तर सुलोक से एक
मृदु बालाएँ उलझ रही हैं
क्रीडा करती हुई अनेक ।

इस सुस्नान के बाद लौट कर
होकर शुभ-आसन-आसीन,
ईश्वर की प्रार्थना मनोहर
करती होंगी सब तल्लीन ।

कहीं-कहीं सम्मिलित प्रार्थना
से गुञ्जित होगा आकाश,
जिसमें होगा मन्द पवन से
हिलोलोलित शुभ उषा-प्रकाश ।

तब उसके पश्चात् हयों पर
चढ़ कर उनका प्रात-भ्रमण,
उनमें से कुछ का मृगया-हित
नगर-परिधि का अतिक्रमण ।

किसी-किसी का व्यायामों के
गृह में जा करना व्यायाम,
होगा उनका तन-विकास के
हेतु यत्न यों सदा ललाम ।

तब इसके पश्चात् देह-भ्रम
को खोवेंगी वे कुछ काल,
तब सीखेंगी पाक-क्रिया, फिर
विद्यालय-गत परम विशाल

निरत अध्ययन में होंगी वे
कर मध्याह्न-समय विश्राम,
फिर सीखेंगी चित्रकला का
और दस्तकारी का काम ।

सन्ध्या समय करेंगी फिर वे
केलिपूर्ण मनहर व्यायाम,
इसके बाद सिखेंगी वे कुछ
देर गृहस्थी का कुछ काम ।

जल्दी शयन करेंगी वे सब,
भोजनादि उनके सब काल,
होंगे नियत समय पर, उनके
लिये न होगा रुज-जंजाज ।

दिनचर्या संचित लिखी है
उसे अधिक तुम कर लेना,
रत्न चित्र में जो न भर सकी
मैं उसको तुम भर लेना ।

बहिन सुनाती हूँ तुमको फिर
कुछ अपना आगे का हाल,
चली जा रही राजमार्ग पर
थी मैं, या वह नगर विशाल ।

कौन पूछता वहाँ किसे था,
किन्तु देख कर सब मुझको,
जाने क्या-क्या थे बक्ते, था
भला सदा यह सब मुझको ?

एक मनुज ने कही बात थी
कुछ, फिर कर कुछ मेरी ओर,
मैं सुन नहीं सकी कुछ भी
मच रहा वहाँ था भारी शोर ।

इतने मे कुछ पास आ गया
यवन एक, फिर यों करने
लगा कि मेरी औरत है यह
गई मायके थी रहने ।

सुन कर मुझे क्रोध आया अति,
मन ही मन विकराल हुई,
पर बोली कुछ मैं न, तीव्र कुछ
तब तो मेरी चान्न हुई ।

पर वह यवन शीघ्रतापूर्वक पीछा करने लगा तुरन्त,
मैं डर गई कि क्या होगा अब ? कब होगा इस दुःख का अन्त ?

पत्र-संख्या ४०

[पत्र बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
दिनचर्या शुभ ज्ञात हुई,
पर पढ़ कर वह हाल तुम्हारा
मैं तो कम्पित-गात हुई ।

दिनचर्या पढ़ कर प्रमोद जो
हुआ, हुआ वह भय मैं लीन,
जान इसीसे पड़ता है, हम
अबलाएँ हैं कितनी दीन ।

था हिन्दू का वेश तुम्हारा,
पर वह पत्नी कइता था,
कैसे यह अन्याय घोर मन
हिन्दू-जन का सइता था ?

बहिन, अधिक कुछ लिखना मुझको
अबकी तुम आगे का हाल,
हुई जा रही हूँ मैं तो उस
दृष्ट यवन पर अति विकराल ।

पीछा करने लगा तुम्हारा—
ऐसा था साहस उसको,
क्यों हो नहीं, सहायक तत्त्वण
मिलते होंगे दस उसको;

और अकेली तुम थीं, तुमको
कौन सहायक मिल सकता,
हिन्दू का हिन्दू-रमणी के
दुख पर हृदय न हिल सकता ।

यवन सहायक बन जाते हैं
यवनों के तत्काल अनेक,
पर हिन्दू के विपत्काश में
हिन्दू पास न आता एक ।

कहा न होगा हिन्दू-जनता
ने—“यह बहिन हमारी है,
नहीं यवन-पत्नी है, हिन्दू है
आक्रत की मारी है ।”

दिया न आश्रय होगा हिन्दू—
जन ने तुमको हाथ कभी,
भारत में भी हिन्दू रहते
अधिक दुर्दशा-ग्रस्त तभी ।

बहिन, बहुत उत्सुक हूँ पढ़ने
को आगे क्या बात हुई,
कितनी भय से पूर्ण तुम्हारे
हित आगे की रात हुई ।

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
मैं अपना आगे का हाल,
आई जब दासी कमरे में
मैंने था मन लिया समझा ।

उसने कहा कि, “एक भले घर
मैं तुम पा जाओगी काम,
पर देखो करना मत ऐसा
जिससे होऊँ मैं बदनाम ।”

मैंने कहा —“न सोच करो तुम,
इससे तुम निश्चिन्त रहो,
क्या वेतन देगे, रखेंगे
किस प्रकार यह बात कहो ।”

बोली वह, “हैं भले आदमी,
बड़े आदमी भोलानाथ,
उनकी पत्नी भी अच्छी हैं,
सुख पाओगी उनके साथ ।

चलो उन्हें दिखला लाऊँ मैं,
तब वेतन की होवे बात,
वेतन तो अच्छा होगा ही,
वहीं रहोगी तुम दिन रात ।”

मैंने कहा—“ठहर आओ कुछ,
कर लूँ स्नान, चलूँ तब साथ”
उसने धोती देकर मुझको
बड़े प्यार से चूमा माथ ।

बोली वह —“मैं बहिन समझती
हूँ, करती हूँ तुमको प्यार”
मैं रो पड़ी लिपट कर उससे,
हुआ हृदय का हलका भार ।

उसने कहा कि “जब से देखा
तुमको, स्नेह हुआ तुम पर,
सहना मत कुछ छोड़ समझना
मेरा घर अपना ही घर ।”





एक वेश्या का पत्र

बिहार प्रान्त की एक विख्यात नगरी रो एक वेश्या लिखती है.—

मान्यवर सम्पादक जी !

मैं एक वेश्या हूँ। नाचना-गाना मेरी वृत्ति है और यह वृत्ति मेरी खानदानी है। मैं जब तेरह वर्ष की थी तभी से मुझे यह वृत्ति कार्य आरम्भ करना पड़ा। छु सात महीने बाद एक धनी-मानी रईस के पुत्र मेरे यहाँ गाना सुनने के लिए आने लगे। फिर क्या था, मैं तो वेश्या की पुत्री थी ही, मैं पूरी कोशिश करने लगी कि वे मेरे जाल में फँस जायें। नतीजा यह हुआ कि वह मुझे अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार करने लगे। मैंने भी उनकी सुहृद्वत् में पड़ कर नाचना-गाना सब कुछ छोड़ दिया। मैं बाबू साहब को अपने पति-स्वरूप मानने लगी। मैं और बाबू साहब दोनों सच्चे प्रेम-बन्धन में एक-दूसरे के साथ बँध गए और कही हमारा परस्पर विछोह न हो जाय, इस ख्याल से हमने भरी गङ्गा और यमुना में तथा बड़े-बड़े देव-मन्दिरों में जाकर सौगन्धें खाईं कि चाहे कुछ हो जाय, अपार से अपार कष्ट सहना पड़े, परन्तु हम लोग एक दूसरे को कदापि नहीं छोड़ेंगे। सम्पादक जी महोदय, इसी तरह आठ बरस का ज़माना बीत गया। मैं एक गृहस्थ स्त्री की तरह रहने लगी। वेश्यावृत्ति एकदम छोड़ दिया। उधर मेरे कारण बाबू साहब का सारा परिवार उनसे नाराज़ हो गया। लेकिन बाबू साहब सब कुछ सह कर मुझे

वैसे ही मानते चले आए। मान्यवर, समय अति प्रबल है। सबका दिन एक-सा नहीं जाता। पारिवारिक कलह के कारण बाबू साहब को भी दुर्दिन के चञ्चल में फँसना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि साल भर से मुझे उनसे सपचा-पैसा मिलना बन्द हो गया है। यद्यपि बाबू साहब भीषण आर्थिक कष्ट में पड़ गए हैं, परन्तु तिस पर भी अभी तक हमारे भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध किए जाते हैं। इधर जब से मेरे घर वालों की आर्थिक आय बन्द होने लगी, तभी से मेरी माता और बहिन मुझसे रुष्ट रहने लगी और कहने लगी कि बाबू साहब को छोड़ो और अपनी वेश्यावृत्ति शुरू करो। अब मेरी हालत सॉप-छुन्दर की सी हो रही है। अगर माता-बहिन की बात मानती हूँ, तो देवताओं के सामने की हुई प्रतिज्ञा भङ्ग होती है और बाबू साहब के साथ भी दगाबाज़ी करनी पड़ती है। मैं शपथ खा चुकी हूँ कि वेश्यावृत्ति न करूँगी और बाबू साहब को न छोड़ूँगी। तब फिर मैं यह वृत्ति कैसे करूँ? अब आप ही कोई सुगम उपाय बताइए कि मेरा धर्म भी बचे और गृह-कलह से भी बचूँ, साथ ही साथ बाबू साहब को भी न छोड़ना पड़े। क्योंकि फिर से वृत्ति आरम्भ करने से वह क्रौरन आत्महत्या कर लेंगे। मैं बाबू साहब से प्रचुर धन लेकर माता-बहिन को दे चुकी हूँ। अब बुरे समय में बाबू साहब को छोड़ना क्या न्यायसङ्गत है? बाबू साहब का दिया हुआ एक पुत्र-रत्न भी मेरी गोद में है।

—एक वेश्या

[इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ कहना था, उसे पत्र-लेखिका ने स्वयं ही कह डाला है। उसे कदापि अपनी प्रतिष्ठा नहीं छोड़नी चाहिए और न धन के लोभ में पड़ कर फिर से नरक में जाना चाहिए। हमारी तो स्पष्ट रूप में यही सम्मति है कि वह अपनी माता और बहिन से सारा सम्बन्ध त्याग दे और अपने पति (बाबू साहब) के साथ वैदिक विधि से वैवाहिक-सम्बन्ध स्थापित करके पवित्र जीवन व्यतीत करे। साथ ही अपनी अन्य पतिता बहिनों को भी समझा-बुझा कर अपनी अनुगामिनी बनावे। उक्त बाबू साहब को भी चाहिए कि वे अब साहस करके शास्त्रानुसार उसका पाणिग्रहण कर लें। पत्र-लेखिका की माता और उसकी बहिन तक ये पत्कियाँ पहुँच सकें तो उन्हें भी हमारी सलाह है कि धन का लोभ छोड़ कर इस जघन्य नरक से निकलने की चेष्टा करें।

—स० 'चौद'

❀ ❀ ❀

एक दुःखिनी बहिन

श्रीमान् सम्पादक जी,

मेरी उम्र जब ११ साल की थी, तब मेरी शादी एक वृद्ध मारवाड़ी महाशय से हुई। जिनकी उम्र इस समय ५२ साल की है और मेरी उम्र १८ वर्ष की है। जब मैं इनके घर आई थी, तब घर में इनके सिवा कोई स्त्री या पुरुष नहीं था। इन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं की दासी समझ कर मुझ पर मनमाना अत्याचार किया, जिससे मुझे बहुत हानि पहुँची और कई रोग उत्पन्न हुए। यह महाशय गन्दे झ्यालातों के एक कट्टर सनातनधर्मी या यों कहिए कि पाखण्डी हैं। मैं इनके अत्याचारों को जब से शादी हुई, दुःखित-द्वय से सहती आई हूँ।

सन् १९३२ ई० में मैंने बहुत कठिनाइयों से सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। फल-स्वरूप ९ मास कारावास और १०० रु० जुर्माना - जुर्माना न देने पर एक साल कारावास का दण्ड मुझे मिला। इन महाशय जी ने जेल में भी मुझे शान्ति से नहीं रहने दिया। जेल

में आकर मुझमें माफ़ी माँगने का अनुरोध किया। मैं इनका कड़वा न मान कर अपने कर्तव्य पर डटी रही। इसके बाद जेल के कर्मचारियों से मुझे तड़ करने के लिए कहा, जिसमें मैं माफ़ी माँग लूँ। जब मेरी मज़ा समाप्त होने को आई, तब यह महाशय १०० रु० दाखिल करके अवधि से पहले ही मुझे छुड़ा लाया। अब मुझे फिर हर तरह से परेगान करते हैं। जैसा ये मुझमें व्यवहार करते हैं, मैं प्रकट नहीं कर सकती। क्योंकि मैं एक हिन्दू घर की लड़की हूँ, इसलिए मुझे उन गन्दे शब्दों को लिखने में सङ्कोच होता है। यह मेरी दृष्टत बिलकुल नहीं करते हैं। यह स्त्री-शिक्षा के भी बहुत विरोधी हैं। मुझे पढ़ने से बहुत प्रेम है, किन्तु अपना दिल मसोस कर रह जाती हूँ। जो कुछ मैंने पढ़ा है, वह ११ साल से पूर्व की उम्र में। इसके बाद मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मैं अन्य देश-नेत्रिकाओं के साथ मातृभूमि की सेवा करना चाहती हूँ, पर ये मुझे नित्य नई परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ना चाहते हैं। इसलिए दिन-रात अशान्ति और चिन्ता से मैं सुखी जाती हूँ। अब मुझे अपना जीवन भारी और उदास मालूम देना है। अब मैं हर वक्त यही सोचती रहती हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए और किस तरह उनके अत्याचारों से छूट सकती हूँ।

मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जाता है। जब मैं गिरफ्तार हुई थी, तब मेरा वज़न ७० पौण्ड था। बाद जेल से घर पहुँचने तक १०० पौण्ड हो गया था। अब न मालूम कितना है। भविष्य में मेरा क्या होगा? आप इस पीड़ित, अमहाशय के पत्र को अपनी मासिक-पत्रिका 'चौद' में छाप देने की कृपा करेंगे।

आपकी एक दुःखिनी बहिन

—हरीप्रिया

[हम नहीं समझते कि इस पत्र को केवल 'चौद' में छाप देने से ही इस बहिन का क्या उपकार होगा। हमारी तो राय है कि अगर इनमें साहस हो तो ये बावन वर्षीय वृद्ध दादा से किसी तरह अपना पिरड छुड़ा ले और देश-सेवा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दे। वृद्ध-विवाह के



विरुद्ध आन्दोलन तो काफी हो चुका है, परन्तु रुढ़ि-व्याधि-ग्रस्त हिन्दू-समाज पर अभी तक उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वासना-लोलुप, विवाहार्थी वृद्ध और धनलोलुप कन्याओं के पिता केवल समझाने-बुझाने से अपनी इस कुत्सित आदत से बाज्र आते नहीं दिखाई देते। इसलिए ऐसे बूढ़ों की पत्नियों को स्वयम् साहस करके इस घृणित प्रथा के प्रतिकार का उपाय करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि जिस तरह हो सके ऐसे बूढ़े पतियों से पल्ला छुड़ा ले। यद्यपि ऐसा करने में उन्हें कई प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। परन्तु साथ ही वे अपने जीवनोत्सर्ग द्वारा अन्य बहिनों का विशेष उपकार साधन कर सकेंगी।

—सम्पादक 'चाँद']



अणू-हत्या प्रतिबन्धक गृह

सामाजिक अत्याचार के कारण कई क़ाँरी और विधवा बहिनें गर्भ धारण कर लेती हैं। फिर वे उसे गिराने का पापमय और मूर्खतापूर्ण प्रयत्न करती हैं। गर्भ गिराने में पकड़े जाने पर वे क़ानूनी दण्ड भी पाती हैं और जीवन भर के लिए जाति से बाहर भी कर दी जाती हैं। इसलिए ऐसी बहिनों की रक्षा के लिए यह गृह खोला गया है। जिन बहिनों को अनुचिन गर्भ हो जाता है, इसमें उनका अत्यन्त गुप्त रीति से प्रसव कराकर बच्चा यही रख लिया जाता है और उन बहिनों को उनके घर वापस कर दिया जाता है। जिससे वे किसी प्रकार भी बदनाम न होकर सम्मानपूर्वक अपनी जाति में रह जाती हैं। इस तरह १९२८ से यह गृह हिन्दू-समाज की सेवा कर रहा है। प्रसिद्ध समाज-सुधारक श्रीमान् रामगोपाल जी मोहता की राय में “यह सद्-द्योग सर्वथा स्तुत्य एवं प्रत्येक सच्चे हिन्दू के लिए श्लाघनीय है।” ‘चाँद’ की सम्मति में “इस शुभ कार्य से इस अभाग्य देश में नित्य होने वाली सैकड़ों अणू-हत्याओं का जघन्य कार्य रुक जाएगा। इसके अतिरिक्त बहुत सी बहिनें जो अणू-हत्या करने की अपेक्षा विधर्मी हो जाती

हैं, उन्हें भी हिन्दू-समाज के बाहर नहीं जाना होगा। हिन्दू-समाज की आने वाली सन्तति इस पुण्य कार्य को आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखेगी।” अतएव प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है कि ऐसी सङ्कट में फँसी हुई बहिनों को यहाँ भेज कर समाज की रक्षा करें।

नोट—सारी बातें अत्यन्त गुप्त रखी जाती हैं।

पता—डॉक्टर बिहारीलाल

मातृ निवास, पोस्ट बालाघाट (सी० पी०)

[इस सम्बन्ध में पत्र-प्रेषक महोदय ने ‘चाँद’ की सम्मति स्वयम् ही उद्धृत कर दी है। जब तक समाज में विधवा-विवाह का पूर्ण प्रचार नहीं होता और अवैध सम्बन्ध के लिए जब तक छी और पुरुष समान रूप से अपराधी नहीं माने जाते, तब तक ऐसे गृहों का प्रचार जितना हो सके, वाञ्छनीय है।]

—सम्पादक 'चाँद']



विमाता का अत्याचार

ग्वालियर राज्य से एक विद्यार्थी ने लिखा है :—
प्रिय सम्पादक जी, नमस्ते !

मैं रहने वाला रियासत ग्वालियर का हूँ। मेरी उम्र करीबन १७ साल की होगी। जब मैं २ साल का था, उसी समय मेरी माँ मर गई थी। फिर मेरे पिता ने तीन पुनर्विवाह किए, लेकिन तीनों में एक भी नहीं जी सकीं। मेरे पिता ने फिर पुनर्विवाह करना चाहा। लोगों ने उनको बहुत कुछ समझाया कि ऐसी दशा में अब पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए, क्योंकि आपका पुत्र बड़ा हो गया है। लेकिन वह कब सुनने लगे। पाँचवाँ विवाह भी कर ही लिया। जब नई माँ ने घर में प्रवेश किया, उस वक्त मैं बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब मुझे सुख से रोटी मिला करेगी। लेकिन अब सुख की जगह दुःख होने लगा। जब मैं उनसे कभी बोलता हूँ, तो उसका जवाब कर्कश वाणी में मिलता है। न जाने सौतेली माताओं का कैसा स्वभाव होता है कि वे सौत-पुत्रों को देख ही नहीं सकतीं, घृणा और बैर तो उनके लिए सुरक्षित है। मैं क्या जानता था कि जिससे



मैं प्रेम करता हूँ, वही मेरे लिए काज है। मेरा हृदय बैठ गया। और तब से मेरा विमाता से बोलने का साहस जाता रहा। मेरी विमाता दूरों से बोलने में प्रसन्न रहती है, परन्तु मुझे देखने ही उनकी शृङ्खली चढ़ जाती और आँखें जादू हो जाती हैं। मैं अपने को अभाग समझने लगा। मेरे सिवाय मेरे पिता के और कोई सन्तान न थी, इसलिए उन्होंने मेरी शादी भी १६ साल की उम्र में कर दी। अब मुझे दूसरा रज भी होने लगा, क्योंकि जब से मेरी पत्नी घर में आई, तब से कलह का कोई ठिकाना न रहा। माता जी उसको जरा-जरा सी बात पर कोसने लगीं। रज के कारण मुझे छुट्टार आना शुरू हो गया। मैं अभी विद्यार्थी हूँ। कृपा कर अब आप बतलाइए कि मुझे क्या उपाय करना होगा, जिससे मैं इस विमाता से बच जाऊँ।

आपका,

—एक दुर्खा विद्यार्थी

[वास्तव में इस १७ वर्ष के अभागे विद्यार्थी की समस्या बड़ी ही कठिन है। इसके मूल्य पिता ने इन्द्रिय-लोलुपता के फेर में पड़ कर इसका जीवन नष्ट कर दिया है। इसी उम्र में इमे विवाह-बन्धन में जकड़ कर उसने इसकी रही-सही आशा पर भी पानी फेर दिया है। अस्तु। हमारी समझ में इस विद्यार्थी को चाहिए कि अपनी समुदाय वालों से कह कर अपनी पत्नी को उसके मायके भेजवा दे और स्वयम् कुछ शिक्षा प्राप्त करके किसी काम धन्धे में लग जाने की चेष्टा करे। इसके बाद पिता और माता से अलग रह कर जीवन यापन करे।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

गोदने की प्रथा

एक सज्जन लिखते हैं :—

मान्यवर सम्पादक जी, नमस्ते !

यों तो हिन्दू-समाज बाना प्रकार की कुरीतियों और विचित्र प्रथाओं का केन्द्र-स्थल ही है, परन्तु भारत

के कई प्रांतों में हिन्दू स्त्रियों के गोदना गुदवाने की एक विचित्र प्रथा जारी है। इस प्रथा के अनुसार प्रत्येक बच्चे को श्वसुर-गृह जाने पर गोदना गुदवाना पड़ता है। बरमान का मौजिम विशेष रूप से आर्य का महीना गोदना गुदवाने के लिए उपयुक्त समझा जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल वर्षा-काल में गोदना गोदवाया जाना हो। वास्तव में बारह महीने यह काम होता है। गाँवों में गुदनहरियाँ घूमा करती हैं और नव-वधुओं को ढूँढ़-ढूँढ़ कर उनकी बाँहों पर गोदने गोदती हैं और इनके बदले इनाम-द्वाराम पानी हैं। गोदना गोदवाने में बेचारी बधुओं को बड़ी तकलीफ होती है। क्योंकि गोदनहरियाँ उनके अङ्गों को एक लोहे की तीक्ष्ण कीज द्वारा छेदती हैं और उस पर एक प्रकार की स्याही लपेट देती हैं, जो घाव के अन्दर चली जाती है और आजन्म के लिए वहाँ एक काला दाग पड़ जाता है। गोदना गुदवाने के बाद अङ्ग फूज जाता है और कई दिनों तक उनमें विशेष पीड़ा रहती है। गोदवाने के समय स्त्रियाँ कष्ट से आँसू बहाती रहती हैं, परन्तु गोदना चूँकि एक अनिवार्य प्रथा है और मरने पर स्त्रियों के शरीर के साथ जाता है, इसलिए भयानक पीड़ा सह कर भी गोदना गोदवा लेना अच्छा समझा जाता है। कोई-कोई शीक्रीन देहाती को अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए बाँहों के अतिरिक्त अपनी ठुड्डी, गाल और दोनों भोंहों के बीच में भी एक काला बिन्दु गोदवा लेती हैं। चार गँवार स्त्रियाँ छाती पर भी गोदना गोदवाती हैं। यह गोदना एक प्रकार के विचित्र चित्र के रूप में होता है और बड़ा ही भद्दा मालूम होता है। यह स्त्रियों के स्वाभाविक सौन्दर्य को भी बिगाड़ देता है। मालूम नहीं, यह प्रथा कब से प्रचलित है और हमका सूझावार क्या है और क्यों यह एक धार्मिक कृत्य मान लिया गया है। 'चाँद' के पाठकों से निवेदन है कि यदि कोई सज्जन गोदने का इतिहास जानते हों, तो कृपा कर 'चाँद' में इस विषय पर कोई विस्तृत लेख छापवाने की कृपा करें। साथ ही यदि कोई सज्जन हमें मिटाने की कोई तदवीर बता सकें, तो बहुत सी स्त्रियों पर असीम कृपा हो। क्योंकि आजकल बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो इसे मिटा डालना चाहती हैं।

—'चाँद' का एक पाठक



[गोदने को मिटाने के सम्बन्ध में या इस प्रथा के इतिहास के सम्बन्ध में जो लेख या पत्र आएगा, वह अवश्य 'चौद' में प्रकाशित कर दिया जाएगा ।]

—सम्पादक 'चौद']



आवश्यकता

हमारे औषधालय के लखनऊ ब्राञ्च में दवाएँ विक्रय करने का काम करने के लिए एक ऐसी महिला की आवश्यकता है, जो हिन्दी का अच्छा ज्ञान, थोड़ी अङ्गरेज़ी और कुछ औषधि-सम्बन्धी ज्ञान अवश्य रखती हो। वेतन योग्यतानुसार ३०) दिए जायेंगे, रहने का प्रबन्ध स्वयं कर लेना होगा। जात-पाँत और विधवा-संभवा का कोई विचार न किया जाएगा। केवल उन्हीं महिलाओं को आवेदन-पत्र भेजना चाहिए, जो खुली दूकान में बैठने में लजाबोध न करें।

शङ्करसिंह प्रोग्राइटर

सत्य-सुख-सञ्चारक ब्रह्मशक्ति कम्पनी

बहराम घाट, ज़िला बाराबङ्की।

[हमने यह 'विज्ञापन' केवल एक महिला के उपकार के खयाल से छाप दिया है। भविष्य में ऐसे विज्ञापन 'चौद' में मुफ्त नहीं छापे जाएँगे।

—सम्पादक 'चौद']



आवश्यक सूचना

हिन्दी-प्रेमियों और विशेष कर अध्यात्मवादियों को सादर सूचित किया जाता है कि 'हिन्दीरत्न पुस्तकालय' द्वारा प्रकाशित 'सात्विक-जीवन' नामक पुस्तक, जोकि दो आने का पोस्टेज आने पर बिना मूल्य भेजी जाती

थी, अब स्टॉक में नहीं रही, अतः प्रार्थना है कि कोई भी सज्जन भविष्य में उक्त पुस्तक के लिए पोस्टेज स्टाम्प (टिकट) भेजने का कष्ट न उठावें।

व्यवस्थापक, हिन्दीरत्न पुस्तकालय,

चावल मण्डी, अमृतसर (पञ्जाब)

शुक्ल जी का प्रतिवाद

गत जून के 'चौद' में कानपुर के श्री० रामाधीन जी शुक्ल का एक पत्र छपा था, जिसमें आपने भाई के ससुर के अपराध के कारण एक ब्राह्मण कन्या के विवाह में अड़चन उपस्थित होने की बात लिखी थी और समाज की परवाह न करके उस कन्या के साथ विवाह करने को भी तैयार थे। परन्तु अब वह लिखते हैं कि वह पत्र मेरा नहीं, किसी दूसरे सज्जन का लिखा था और उन्होंने 'भूल से' उसमें शुक्ल जी का नाम लिख दिया था। शुक्ल जी ने उक्त सज्जन का नाम-पता भी लिखा है। इसके सिवा इस सम्बन्ध में कानपुर से हमारे पास और भी कई पत्र आए हैं, जिनका आशय यह है कि कान्यकुब्ज समाज में अभी ऐसे सत्साहसी युवकों की बहुत कमी है, जो समाज की रुढ़ियों को ठुकरा कर मनुष्योचित कार्य कर सकें। हम 'चौद' के इन स्तम्भों में कई बार लिख चुके हैं कि हमारे समाज में प्रचलित दकियानुसी विचारों के प्रधान प्रश्रयदाता यही नवयुवक हैं। ये अभागे यों तो बड़े भारी समाज-सुधारक बनते हैं, परन्तु जब कुछ कर दिखाने का मौक़ा आता है, तो बगले भाँकने लगते हैं। अस्तु, इन रँगे स्यारों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे वाहवाही लूटने के फेर में पड़ कर अपने साथ 'चौद' को भी बदनाम न करें।

—सम्पादक 'चौद'





[जनाव “आज़म” कुरेवी]

रज़ो गम सह-सह के जो ज़िन्दा बराए नाम है,
हो न हो किसका है वह मेरा दिले नाकाम^१ है ।

पाँव फैला कर न क्यों मरक़द^२ में सोयें चैन से,
हमको दुनिया से ज़यादा इस जगह आराम है ।

दर्दो रज़ो यासो गम^३ का गिर्द रहता है डूज़म^४,
बस इन्हीं दो-चार से हरदम हमारा काम है ।

सदक्के^५ हम तावक-ज़नी^६ के दिल को छलनी कर दिया,
अब कहाँ है खून है भी तो बराए नाम है ।

अल लुके हैं घर से वह दो-चार आहें जल्द खींच,
और थोड़ी सी कसूर बाक़ी दिले नाकाम है ।

यूँ तो देते हैं हज़ारों जान तुम पर और भी,
एक मेरा कमबख़्त दिल ही मोरिदे इलज़ाम^७ है ।

आप क्या जानें बसर होती है किस सुरिकल से रात,
आपको हम गमनसीबों से भला क्या काम है ?

बाश में कोई गुलों का पड़ने वाला नहीं,
खुलबुले नाशाद जिस दिन से असीरे दाम^८ है ।

हज़रते “आज़म” से हमने पारसा^९ देखे नहीं,
किसखिए वह इन जुतों के हरक़ में बदनाम हैं ।

१—इताश बह्य, २—क्रम, ३—निराशा, ४—
मीद, ५—निष्ठावर, ६—तीर चलाता, ७—अपराधी,
८—झेदी, ९—पवित्र ।

[कविबर “बिस्मिल” इलाहाबादी]

बायसे^{१०} गम दिलखा^{११} है या दिले नाकाम है,
आयसों कहने हैं जिसको मुक्त में बदनाम है ।

झाक होकर, झाक में मिलने का यह अज़ाम^{१२} है,
सो रहा हूँ चैन से अब क्रम में आराम है ।

एक है तक्रदीर उसकी, एक है मेरा नसीब,
मुझको तुमसे काम है, तुमको उदू^{१३} से काम है ।

पहले मैंने दिल दिया, फिर मैंने अपनी जान दी,
यह है आगाज़े-सुहबत^{१४}, और यह अज़ाम है ।

हर घड़ी जुल्मो-सितम करने का यह निकला मआल^{१५},
खल्क में बदनाम अब मैं हूँ कि तू बदनाम है ।

हम जो आए हैं ज़माने में तो जाने के लिए,
ज़िन्दगी ही खुद हमारी मौत का पैगाम है ।

मुझसे आगाज़े-सुहबत में यह कहता है कोई,
कुछ खबर भी है तुम्हें क्या हरक़ का अज़ाम है ?

मैक़दे^{१६} में हज़रते ज़ाहिद^{१७} कहाँ रखें क्रदम,
हर तरफ़ मीना^{१८} है साशर^{१९} है सुबू^{२०} है जाम है ।

वह तदपना देख कर कहने लगे अगब्यार^{२१} से,
जान लो पहचान लो “बिस्मिल” इन्हीं का नाम है ।

१०—सबब, ११—प्रियतम, १२—अन्त, १३—
दुश्मन, १४—प्रारम्भ, १५—परिणाम, १६—शराब-
खाना, १७—परहेज़गार, १८—शीशा, १९—प्याज़ा,
२०—मटका, २१—दूसरे लोग ।





श्रीजगद्गुरु का फतवा

[हिज होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरुपाक्ष]

सारी सावन की बहार फीकी पड़ गई थी। न दुधिया में कोई मज़ा था, न 'त्रिदले त्रिगुणाकार' विसव-पत्र में वह अम्ल मधुर स्वाद ! कैथी (काशी) निवासी बाबा मार्कण्डेश्वर मूँड़ पर हाथ धरे झुड़ रहे थे—

जाति गई अरु धर्म गयौ,
अब आखिर बैठि पर्यो पड़िताने !

❀

परम सत्यवादी, धर्मधुरन्धर भैया 'सूर्य' ने खबर दी थी कि कुछ कॉङ्ग्रेसियों ने बाबा विरवनाथ के परसनल असिस्टेंट बाबा मार्कण्डेश्वर जी को ज़बरदस्ती बेड़ीन कर दिया। अब बेचारे न घर के रहे न घाट के ! बुढ़ौती में दीन से हाथ धोना पड़ा और दुनिया से भी।

❀

कैथी मन्दिर के आस-पास रहने वालों ने तुलसी-गङ्गाजल स्पर्श करके 'भैया' को बताया था कि एक दिन चन्द हरिजनों के साथ कुछ कॉङ्ग्रेसियों ने एकाएक बाबा की कैथी वाली कोठी पर चढ़ाई कर दी और देखते-देखते उनकी मान-मर्यादा, जाति-पाँति और उनका धर्म-कर्म लेकर चम्पत हो गए।

❀

इसी शोक में बेचारे बाबा न भङ्ग-बूटी छानते थे और न गॉंजे का दम खगाते थे। मार्कण्डेश्वराइन हैंरान थीं। बाबा न तो गरुड से बोलते थे और न भवानी की ओर ताकते थे। बस, दिन-रात हाथ धर्म, हाथ जाति, हाथ बर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ और हाथ बाबा ज्ञानानन्द की स्त ज़ल्लत रहे थे। बड़ी बुरी दशा थी।

❀

इसी शोक-जनित बद्धवासी के कारण 'भैया' को यह खबर छापने की खुषि ही न रही कि इस कैथी-काण्ड के कारण कैजाश से लेकर ब्रह्मलोक तक कुहराम

मच गया था। देवतागण मूँड़ पटक रहे थे और देव-तानियाँ सर धुन रही थी। ब्रह्मा बाबा (प्रत्येक आँख से आठ आठ आँसू के हिसाब से) चौंमठ आँसू रो रहे थे। उनकी व्याकुलता देख कर आसन्न वैधव्य की आशङ्का से देव-पितामही बुढ़िया ब्रह्माइन का भी बुरा हाल था।

❀

परन्तु बेश जिए बाबा ज्ञानानन्द का। इस संसार में बेचारे सनातन-धर्म की अड़ी पर काम आने वाला अगर कोई मर्द है तो वही लम्बी दाढ़ी वाला ब्रह्माली बुढ़वा। जब तक आपके दम में दम है, तब तक सनातन-धर्म का न कोई बाज बाँका कर सकता है और न कोई किसी देवता का कुछ बिगाड़ सकता है। हिन्दुओं के तैंतीस करोड़ देवताओं के वल्लाह आर एकमात्र रक्क हैं।

❀

सो जनाव, बाबा ज्ञानानन्द को कैथी काण्ड की खबर मिली तो तत्क्षणात् आपने प्रस्तर-विनिर्मित देवादिदेव महादेव की शुद्धि की व्यवस्था कर दी। सर्व प्रथम मुण्डन, तत्परचात् गोमेथ-गोमूत्रादि-(पञ्च-गव्य)-स्नान और अन्त में स्वस्तिवाचन स्वरूप परम सिद्धिदाता, सर्व विघ्न-विनाशन श्रीमान् लाट साहब के सरक्को लेदरावृत्त चरणों में चित्त प्रार्थना। इसके बाद बोल सनातन धर्म की !

❀

अब कोई चिन्ता नहीं है, गोबर, गोमूत्र से मार्कण्डेश्वर महाराज की शुद्धि हो गई है। हरिजन-दृष्टि-स्पर्श से जो भीषण विस्फोटक उनके प्रस्तर कोमल कलेवर पर उभड़ आया था वह मिट गया है, धुकधुकी की धड़कन भी शान्त है। गोबर-गोमूत्र की बरौलत आसन्न वैधव्य से बाल-बाल बच कर, उनकी बीबियों ने भी मूले पर चढ़ कर कजली गाना आरम्भ कर दिया है।

❀



राम-राम, जब अष्टाहताज्ञा के क्रजन से गोबर-गोमूत्र मौजूद ही है और उनकी बर्बोसत ईश्वर के लकड़वादा 'महेश्वर' तक की शुद्धि हो जाती है, तो बेचारे हरिजनो के मन्दिर प्रवेश के विरुद्ध यह तूफाने बेनमीजी बरपा करने की आवश्यकता ही क्या है? मन्दिर के पुजारियों को चाहिए कि 'सनातनी फिनाइल' का एक ज़ख्मीरा प्रत्येक मन्दिर में एकत्र कर ले और जब कोई हरिजन दशन कर ले तो देवता जी को उठा कर उसी ज़ख्मीरे में उन्हे आपाद-मस्तक डुवा दें।

❀

बाह पट्टो, जीने रहो ! विमु-व्यापक अभयङ्कर शङ्कर को भी शुद्ध कर डाला ! वास्तव में निलंजिता मे बड़ी शक्ति है। वह जो न कर डाले वही थोड़ा है। और धन्य हैं छुई-मुई को भी मात करने वाले सनातनियों के ये विमु-व्यापक महाराज। इन्हें न अशुद्ध होते देर लगती है और न शुद्ध होते।

❀

हाँ, तो देवबन्धु बाबा ज्ञानानन्द ने अश्वकी मार्कण्डे-श्वर जी की जान बचा ली। जो काम बाबा 'कुत्तों कोट' और श्रीमान् प्रतिवादि-भयङ्कर जी से नहीं बन पड़ा, उसे लम्बी दाढ़ी वाले बाबा ने कर दिखाया। हमारी इद धारणा है कि अब ये लाट साहब से प्रार्थना करके काली, विश्वनाथ, गणेश और जगन्नाथ आदि सभी देवताओं को एक साथ हो एकदम 'अच्छून् प्रकू' करा कर छुँ देंगे।

❀

मार्कण्डेश्वर महाराज की रक्षा करने में बाबा और उनकी पत्नी ने श्रीमान् सत्य महाराज को ऐसे उल्टे घुरे से मूँका है कि अगर अश्व हैजा-प्लेग से बचे रह गए तो जन्म भर बाबा ज्ञानानन्द और वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ का नाम लेते रहेंगे। परम सत्यवादी महाराज युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र के वियोग का शोक भूज जायेंगे।

❀

वेदव्यास बाबा के अट्टारहो पुराणों को घाट जाहू और सारे महाभारत की पोथी को धोख कर उदरस्थ कर जाहू, हमारे वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ के सदस्यों की टङ्कर का आपाद-मस्तक सत्यवादी कहीं दूँके न मिलेगा। हमें तो चिन्ता लग रही है कि इन सज्जनों के परलोक-

पथान के बाद धर्म की नैया कौन पार लगाएगा, और बेचारा सत्य किसकी लुटिया में घोमड़े बना कर नित्य नए अण्डे दिया करेगा ?

❀

सुनिए न, ज्योही मार्कण्डेश्वर महाराज की इस मुसीबत का समाचार सियड़ीकेटी बाबा की धर्मकैवली से पहुँचा, त्योंही धर्म धुरन्धरों और सत्यसन्धों की एक तिकड़ी कैथी के लिए गरपट रवाना हो गई और उसने घटना सम्बन्धी सारा सत्य चूम कर बाबा कमण्डलु में भर दिया। वस, बाबा ने उसी के आधार पर सारी व्यवस्था कर दी।

❀

दूसरे सत्यवादी सज्जन हाके-पिमाये अवाजत दौड़े गए और मजिस्ट्रेट को बताया कि अगर सरकार ने शान्ति की कोई व्यवस्था न की तो सारी कैथी वहाँ के गुमनाई-मण्डल के साथ रवातन को रवाना हो जायगी। अन्त में जब बेचारे मजिस्ट्रेट को वर्णाश्रमी सत्य का सक्ता रूप दिखाई पड़ा और आपने उक्त सज्जन से ज़बाब तल्लब किया तो आप दाँत निपोर कर खड़े हो गए। अरे भाई, धर्म की रक्षा के लिए तो लोग क्या क्या नहीं करते, इन्होंने थोड़ा सा झूठ ही बोल दिया तो क्या हर्ष ?

❀

फलत कैथी-काण्ड में काशी के धर्मधुरन्धरों ने अपने जिस रूप का प्रदर्शन किया है, उसमें कोई नवीनता नहीं है। वर्तमान सनातन धर्म और वर्तमान काल के सनातनी सज्जनों की वही असली मूर्ति है। इस रूप-प्रदर्शन से हरिजन आन्दोलन की लड़ में अवश्य ही कुछ लग जायगा और सनातनधर्म की लड़ पोखता हो जायगी।

❀

सुनते हैं, श्रीमान् शङ्कराचार्य स्वामी कुर्तकोटी महाराज सर्व-धर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अमेरिका जा रहे हैं। फलतः सुभारक समाचार-पत्र चिन्तित हैं कि जब स्वामी जी स्वर्ण समुद्र-यात्रा के लिए तैयार हैं, तो अब सनातन-धर्म की जान कैसे बचेगी। अरे भाई, जब गोबर-पानी में शङ्कर को शुद्ध कर बाबूने की शक्ति है, तो शङ्कराचार्य को लौटने पर शुद्ध कर लेते उसे कितनी देर लगती है। आशा है, बाबा ज्ञानानन्द जी ने अभी से तैयारी आरम्भ कर दी होगी।

❀



सिन्ध के मीरपुर ख़ास से एक बड़ी मज़ेदार ख़बर आई है। खुदाबख़्श और अल्लानवाज़ की परदानशीन दूल्हनें एक ही दिन ससुराल आईं। सुहागरात को अल्लानवाज़ खुदाबख़्श की बीबी के पास गए और खुदाबख़्श अल्लानवाज़ की। दूसरी रात को दोनों मियाँ जब अपनी वास्तविक बीबियों के पास पहुँचे, तो राज़ खुला। अब मौलवी साहबों से क्रतवा माँगा गया है। परन्तु हिज़ होलीनेस का क्रतवा तो यह है कि दोनों बीबियों को परदे की बलिवेदी पर कुर्बानी कर दी जाय और मौलवी साहबों को दस्तरख़ान पर बिठा कर मुलाव खिलाया जाय, जिनकी क़पा से दोनों मियाओं को दोनों बीबियों का स्वाद मिल गया।

❀

परन्तु इस बीबी बदलौअल का सारा श्रेय परदा-प्रथा को ही नहीं, वरन् विवाह से पूर्व वर-कन्या को एक दूसरे से अपरिचित रखने वाली समीचीन प्रथा को भी है। विवाह से पहले वरों को कन्याओं की परछाई तक देखने नहीं दी जाती। इसलिफ़ घर-घर गज़ा और मदार की जोड़ी परिलक्षित होती है। कहीं ऊँट के गले में बकरी और कहीं किसी बंदरिया की बगल में शास्त्री हाथीराम जी।

❀

बाल-यह है कि लालबुझकों के चचा—इधर पुरोहित जी और उधर क़ाज़ी जी जन्मकुण्डली और 'जायचा' देख कर ही वर-कन्या के वाह्याभ्यन्तरीन गुण-दोष और रूप का पता लगा लेते हैं। दोनों के साक्षात् परिचय की कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। अरे भई, जब कागज़ के पत्ते उलटने से ही सारा काम बन जाता है, तो नाहक हाथ-पाँव वाले वर-कन्या को क्यों तकलीफ़ दी जाए ?

❀

इस मामले के सम्बन्ध में एक और जोरदार दलील भी अपने राम के दिमाग़ शरीफ़ में कुलौंचे भर रही है। अर्थात् जब कन्याओं के पिता वरों के पिताओं को सुँह-माँगा मोल देकर अपनी कन्या के लिए घर ख़रीदते हैं, तो वर बहादुर को अधिकार ही क्या है कि कन्या की परछाई भी देख सकें। पहले विवाह होना

चाहिए, उसके बाद जिन्दगी भर देखिए-दिलाइए। पहले से ही देख-सुन लेने की बात कैसी ?

❀

कुछ औंधी अकल वाले विवाह सम्बन्धी इन प्राचीन प्रथाओं की निन्दा किया करते हैं। इन्हें मालूम नहीं कि इनकी बदौलत सदगृहस्थों के घरों में कितनी चहल-पहल रहती है। बधू के घर में आते ही वर से उसका छत्तीस का स्थायी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और दोनों ही जी-जान खड़ा कर इसे कायम रखते हैं। घर की चहल-पहल कलकत्ते के चिडियाख़ाने की चहल-पहल को भी मात कर देती है।

❀

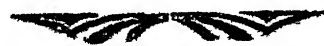
इस सारदा एकट ने तो 'मरे न माँचा छोड़े' इस कहावत को अक्षरशः चरितार्थ कर दिया। बेचारे धर्म-धुरन्धरों ने इसके श्राद्ध में अपनी कितनी ही दुधमुँही बच्चियों और बच्चों का 'वृषोत्सर्ग' कर दिया। कितने ही बेचारों ने पूर्व-जन्मकृत कर्मफल के अनुसार जेल और जुमाने का लुफ़ उठाया। परन्तु यह क़ानून न मरता है न मुटाता है।

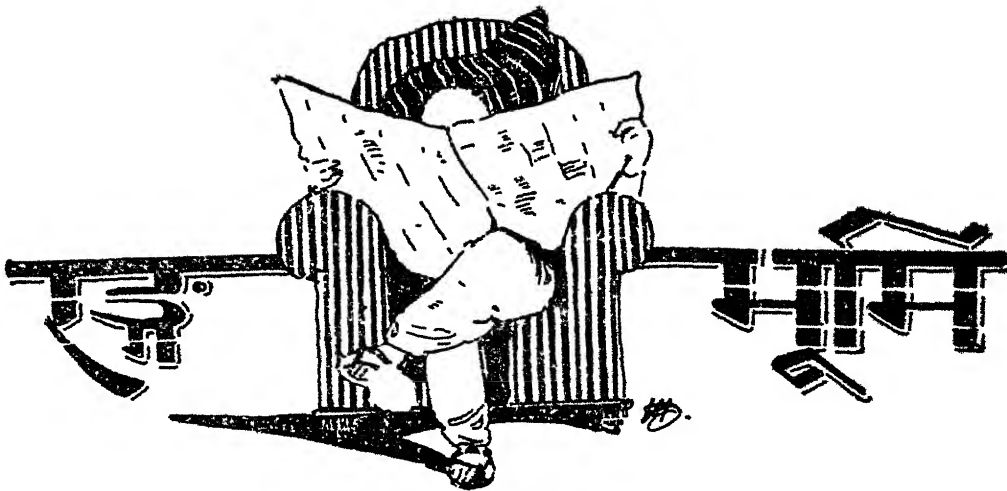
❀

यह ठीक है कि इसके चपेटाघात में पड़ जाने से कितनी ही पुरोहितानियों को अपने धर्मधीर पति पर अदालत द्वारा किए गए जुमाने की रक़म अदा करने के लिए अपनी सुलनी और भबिया तक बेच देनी पड़ती है। वर्षों की दक्षिणा एक दाँव में स्वाहा हो जाती है। कहीं-कहीं धर्म-प्रेमियों को लगे-हाथ सत्य का श्राद्ध भी कर देना पड़ता है। दस वर्ष की कन्या को चौदह वर्ष की बताने में न पुरोहित जी को सज़्जेच होता है और न कन्या के पिता जी को। गीता और गज़ा के नाम पर सरे इजलास यह काम अत्यन्त सफ़ाई के साथ हो जाता है।

❀

परन्तु घर से क्या जाता है भाई ! तिलक-वदेज़ की हराम की रक़म जुमाने में चली गई तो इसमें हानि ही क्या है ? और तुलसी गज़ाजल की तो सृष्टि ही सूठ बोलने के लिए हुई है। अदालत में खड़े होकर थोड़ा सा सूठ बोल देने से धर्म की रक्षा हो जाय, तो इसमें हर्ज ही क्या है ?





[सम्पादकीय]

शक्कर के व्यवसाय का भविष्य

जब से सरकार ने शक्कर के व्यवसाय को सरकारी प्रदान किया है और इस कारबार में लाभ होना एक प्रकार से निश्चित हो गया है, तब से शक्कर की नई फ़ैक्टरियों की बाढ़ सी आ गई है। जहाँ दो वर्ष पहले समस्त देश में २५ फ़ैक्टरियाँ थीं, अब उनकी संख्या सौ के लगभग जा पहुँची है, और अभी अनेक नई फ़ैक्टरियाँ खुलती जा रही हैं, जिससे सन् १९३४ या १९३५ में उनको संख्या कम से कम १२४ हो जायगी। इस सम्बन्ध में पूँजीपतियों में ऐसा उत्साह उत्पन्न हो गया है कि वे आँख बन्द करके इस काम में रुपये खर्चा रहे हैं और छोटी-छोटी जगहों में दो-दो तीन-तीन फ़ैक्टरियाँ खोली जा रही हैं। इस आकस्मिक और अस्वाभाविक वृद्धि को देख कर यदि भारतीय व्यवसाय के शुभ-चिन्तकों के हृदयों में हर्ष के साथ चिन्ता के भाव का भी उदय हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनको भय हो रहा है कि यदि वृद्धि की गति इसी प्रकार बनी रही तो कुछ ही समय में इतनी अधिक शक्कर बनने लगेगी कि उसका देश में खप सकना असम्भव होगा और इसके फल से विभिन्न व्यवसायों में हानिकारक प्रतिद्वन्द्विता का भाव उत्पन्न हो जायगा। इस समस्या पर विचार करने के लिए हाल ही में शिमले में एक

‘सुगर कॉन्फ़ेरेन्स’ हुई थी, जिसमें विभिन्न प्रान्तों के सरकारी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। कुछ जगहों की सम्मति थी कि सरकार इस सम्बन्ध में एक क़ानून बना दे कि कोई व्यक्ति बिना सरकारी मम्जूरी के शक्कर की फ़ैक्टरी न खोज सकेगा। संयुक्त-प्रान्त के प्रतिनिधि श्री० जे० पी० श्रीवास्तव ने इस आशय का एक बिल भी कॉन्फ़ेरेन्स के सामने विचारार्थ पेश किया था। पर अन्य प्रान्त वालों को सम्भवतः यह प्रस्ताव कुछ स्वार्थयुक्त प्रतीत हुआ, क्योंकि अभी तक जितनी शक्कर भारतवर्ष में तैयार होती है, उसमें से ६० प्रतिशत यू० पी० और बिहार की फ़ैक्टरियों में ही बनती है। ऐसी अवस्था में अन्य प्रान्त वालों को स्वभावतः ऐसा जान पड़ा कि यह प्रस्ताव कदाचित् अन्य प्रान्तों में शक्कर के व्यवसाय की वृद्धि को रोकने तथा इस व्यापार की मॉनोपॉली यू० पी० तथा बिहार के ही हाथ में रखने की नीयत से उपस्थित किया गया है। इस कारण कॉन्फ़ेरेन्स में ऐसा मतभेद हुआ कि उसे बिना कोई प्रस्ताव पास किए ही कार्रवाई ख़त्म कर देनी पड़ी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि इस प्रकार का कोई प्रस्ताव पास हो जाता तो वह देश के कल्याण की दृष्टि से बड़ा अनुचित और हानिकारक होता। इस देश में अब भी प्रति वर्ष कई करोड़ रुपए की शक्कर विदेशों से आ रही है, और उन देशों ने इस सम्बन्ध में इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि चौदह वर्ष के सरकाय के बाद भी भारतीय व्यवसायी



उनका मुकाबला कर सकेंगे, यह सन्देहजनक है। ऐसी अवस्था में नई फ़ैक्टरियों के निर्माण में बाधा खड़ी कर देना और जो फ़ैक्टरियाँ कायम हो चुकी हैं उनको हम बात की गारंटी कर देना कि वे अपना प्रबन्ध चाहे जैसा बुरा-भला करें, उनको लाभ होता रहेगा, एक दृष्टि से हम व्यवसाय की उन्नति में एक बहुत बड़ा अड़झाला देना है। क्योंकि आधुनिक उद्योग-धन्वों के विकास का मूल प्रतियोगिता ही है। इसी के फल से अधिकांश देशों में सस्ती से सस्ती और बढ़िया चीज़ें बनाने की मशीनें तैयार हो सकी हैं तथा इसी के द्वारा वे अपना व्यापार सर्वत्र फैला सके हैं। इसी-लिए अर्थशास्त्र के ज्ञाता जहाँ विदेशी प्रतियोगिता से स्वदेशी व्यवसाय की रक्षा करने का समर्थन करते हैं, देश के भीतर की प्रतियोगिता को वे कभी हानिकारक नहीं बतलाते। यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि दो-तीन साल में इस देश में शर्कर के इतने कारख़ाने स्थापित हो जायेंगे, जो भारतवासियों की आवश्यकता से अधिक मात्रा तैयार करने लगेंगे, तो इसका परिणाम यही होगा कि उनमें आपस में चढ़ा-ऊपरी होने लगेगी और वे जहाँ तक बन पड़ेगा, अपना प्रचर्च घटाने तथा अपनी चीज़ को सस्ते भाव में खेचने की चेष्टा करेंगे। इसके फल से तमाम कारख़ाने वाले ग़ले पैदा करने तथा शर्कर बनाने के नए-नए तरीक़ों से काम लेने लगेंगे और कुछ समय में वे भी इस सम्बन्ध में अन्य देशों के व्यवसायियों के समान दृढ़ हो जायेंगे। यह सम्भव है कि इस प्रतियोगिता में कुछ कंपनियों को हानि उठा कर बन्द हो जाना पड़े, पर जो कंपनियाँ बच रहेंगी उनकी कर्तृत्व-शक्ति बढ़ जायगी और इस देश का शर्कर का व्यवसाय सुदृढ़ नींव पर स्थापित हो जायगा। इसके विपरीत यदि कंपनियों की संख्या नियमित करके उनकी स्थिति निरापद तथा सुरक्षित कर दी गई तो अमीरों के उत्तराधिकारियों की तरह, जिनको खाने-कमाने की कुछ भी चिन्ता नहीं होती, वे निरुद्योगी हो जायेंगी और उन्नति के लिए विशेष रूप से चेष्टा न करेंगी। इसके सिवा यह भी नहीं कहा जा सकता कि आज जो कंपनियाँ स्थापित हो रही हैं, वे सब की सब योग्यतापूर्वक सम्बाधित होती रहेंगी। व मालूम उनमें से कितनी कंपनियों का काम बढ़-

इन्तज़ामी, फ़िज़ूलप्रर्ची अथवा पर्याप्त पूँजी के अभाव से बिगड़ जायगा और उनको दिवालिया हो जाने के लिए विवश होना पड़ेगा। फिर जब यह व्यवसाय वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की पूर्ण रूप से सहायता लेकर चलाया जायगा और इसके फल से बाज़ार में शर्कर सस्ती बिकने लगेगी तो उसकी बिक्री तथा प्रचर्च बढ़ जाना भी स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि दो साल बाद इस देश की फ़ैक्टरियाँ ज़रूरत से ज्यादा शर्कर बनाने लग जायेंगी। फिर यदि ऐसा अवसर आएगा भी, तो हम भी अन्य देशों की भाँति विदेशों में अपना मात्रा खपाने की चेष्टा क्यों न करेंगे? क्या भारतवर्ष ने इस बात की क़सम खाई है कि वह सदैव विदेशों का बना हुआ माल ख़रीदता ही रहेगा और अपने यहाँ का बना माल कभी बाहर न भेजेगा। इन सब दृष्टियों से कोई देशभक्त भारतवासी इस प्रकार व्यवसाय की सीमा बाँध देने वाले कानून का समर्थन न करेगा। सरकारी अधिकारियों को इस सम्बन्ध में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। व्यवसायी और पूँजी लगाने वाले लोग अपना भला-बुरा बहुत अच्छी तरह से समझते हैं और जब वे देख लेंगे कि इस व्यवसाय में रुपया फँसाना लाभदायक नहीं है, तो वे स्वयं उसमें हाथ न डालेंगे। सरकार का यदि इस सम्बन्ध में कुछ कर्तव्य है तो यही है कि वह ग़ना उत्पन्न करने वाले गरीब किसानों के हित की किसी उपाय से रक्षा करे। क्योंकि जब विदेश की सस्ती शर्कर पर भारी कर लगा कर इस व्यवसाय को संरक्षण प्रदान किया गया है और इसके कारण समस्त जनता को हानि उठा कर मँहगी चीज़ ख़रीदनी पड़ रही है, तो न्याय का तर्काज़ा यही है कि संरक्षण से केवल कारख़ाने वाले और पूँजीपति ही लाभ न उठाएँ, वरन् किसानों को भी उनका उचित भाग प्राप्त हो। हम समय कारख़ाने वालों की यही प्रवृत्ति जान पड़ती है कि वे गुड़ की सस्ती के आधार पर कम से कम दाम पर ग़ना ख़रीदने की चेष्टा करते हैं, जिससे प्रायः किसानों की लागत और मिहनत भी वसूल नहीं होती। यह दृष्ट देश के हित की दृष्टि से उद्भुत नहीं है। यदि किसानों की अवस्था असहनीय हो गई और उन्होंने ग़ले की खेती करना

कम कर दिया तो इससे अन्त में इस व्यवसाय को भी बहुत हानि पहुँचेगी। इसलिए सरकार यदि गन्ने की एक कम से कम दर नियत कर दे, जिससे कम में कोई कारखाने वाला गन्ना न खरीद सके, तो किसानों का बड़ा उपकार होगा और इस व्यवसाय के भविष्य की दृष्टि से भी यह कल्याणजनक होगा।

❀ ❀ ❀

रोग का सच्चा निदान

कुछ ही दिन बीते हैं कि कुछ बदमाश बम्बई के एक धनी गुजराती व्यापारी को पकड़ ले गए और उनके घर वालों को लिख भेजा कि या तो उसके छुटकारे के लिए ५ हजार रुपए दो, नहीं तो उसे मार डाला जायगा। घर वालों ने रुपया देने के बजाय पुलिस में हत्तला की। पुलिस बदमाशों का पता न लगा सकी और वे व्यापारी की हत्या करके उसकी लाश को रास्ते में डाल कर चले गए। हम रोमाञ्चकारी घटना के फलस्वरूप बम्बई और अन्य स्थानों के धनवानों में हलचल फैलना स्वाभाविक ही है। यदि यह नई बत्ता, जिसका और अभी तक विशेष रूप से अमेरिका में ही था, इस देश में फैली तो प्रत्येक सम्पत्तिशाली व्यक्ति और विशेषकर उसके बाल-बच्चों का जीवन सन्देह में पड़ जायगा। प्रत्येक व्यक्ति सदैव सशङ्कित बना रहेगा कि न मालूम कब उसके ऊपर यह अदृष्ट आपत्ति टूट पड़े। इस दृष्टि से इस नवीन महामारी का हमारे देश में आगमन अत्यन्त अशुभ है और समाज के प्रत्येक शुभचिन्तक का कर्तव्य है कि वह ऐसी चेष्टा करे जिससे वहाँ इसकी जड़ न जमने पाए। पर इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किस उपाय से काम लिया जाय, यह निश्चय कर सकना बड़ा कठिन है। क्योंकि अमेरिका में इसका मूलोद्भेद करने के लिए अत्यन्त कड़े कानून बनाए गए हैं और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं, तो भी अब तक इसमें किसी तरह की कमी नहीं पड़ी है। वहाँ के गुच्छे बड़े-बड़े सरकारी अधिकारियों तक की सम्मानों को उठा ले जाते हैं और यदि सुँह-माँगी रुकम नहीं पाते तो उनको मार डालते हैं। इसलिए यह खयाल करना कि इस बात का प्रतिकार करना सहज है, ठीक

नहीं। फिर भी हम देखते हैं कि हमारे यहाँ के कुछ विद्याभिमानी इस समस्या को लुटकियों में हल करने का दावा रखते हैं। उदाहरणार्थ एक हिन्दी पत्र के सम्पादक जी लिखते हैं कि यह कुप्रवृत्ति अमरीकन फ़िल्मों में इस प्रकार के दृश्य देखने के कारण उत्पन्न हुई है और इसलिए सरकार को सिनेमाओं में दृक्छाए जाने वाले फ़िल्मों पर विशेष रूप से दृष्टि रखनी भी चाहिए। वाह, कैसा बढ़िया निदान और कैसा सहज सुझाव है। शायद यहाँ के लोग चोरी करना और डाका डालना भी अमरीकन फ़िल्मों से सीखे होंगे और जो नीच व्यक्ति दो-चार दरर के ज़ेवरों के लिए ही बाज़कों की हत्या कर डालते हैं, वे सब सिनेमा देखने जाते होंगे। ऐसी बातें वे ही लोग करते हैं, जो समाजशास्त्र का कुछ भी ज्ञान प्राप्त किए बिना अटकल-पशु लिखने बैठ जाते हैं। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो इस बत्ता का ही नहीं, वरन् देश में होने वाले अधिकांश अपराधों का मूल कारण जन-साधारण की आर्थिक दुरवस्था और लोगों का बेकार रह कर भूखों मरना है। कहावत है—'मरता क्या न करता।' इसके अनुसार ऐसे लोग, जो उचित साधन पाने पर समाज में भले आदमी की तरह जीवन व्यतीत करते, परिस्थिति में पड़ कर चोर, बदमाश, डाकू, छुटेरे, डग आदि बन जाते हैं। कुछ समय बाद वे इन कार्यों में अभ्यस्त हो जाते हैं और फिर अन्य उपाय होने पर भी प्रायः अपनी निन्दनीय वृत्ति को ही करते रहना पसन्द करते हैं। ऐसी दशा में बम्बई में होने वाली घटना पर विस्मय में डूब जाना और उसे अमरीकन फ़िल्मों से उत्पन्न समझने लगना ध्यर्थ है। जब लोगों ने किसी कारण-वश अवैध मार्ग से जीवन-निर्वाह करना अपना लक्ष्य बना लिया है, वे सदैव कुछ न कुछ खोटा काम करेंगे और वह काम चाहे जिस रूप में हो, समाज के लिए अकल्याणजनक ही होगा। बम्बई की घटना से अगर लोगों में हलचल मच जाती है और वह हमको रोमाञ्चकारी ज्ञान पकती है, तो इसका कारण यही है कि वह इस देश में एक नई बात है। नही तो क्या देश में सदैव पढ़ने वाले डाके, जिनमें एक ही बार कई-कई व्यक्तियों को घोर निर्दयतापूर्वक मार डाला जाता है, कम क्रूरतापूर्ण तथा अपङ्कुर हैं? क्या क़ोटे से



दुधमुँहे बच्चे को साधारण ज़ेवर के लिए मार डालना जघन्यता की हद नहीं है ? इसलिए हमको भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार की घटनाएँ चाहे जिस रूप में हों, उनका मूल कारण एक ही है। इनके प्रतिकार का अगर कोई वास्तविक उपाय है तो यही कि अमीर लोग शरीरों पर अन्याय करना छोड़ें और उनको इतना न सताएँ कि वे मनुष्य के बजाय खूनी जानवर बन जाएँ। इसके सिवा किसी व्यक्ति के जीविका उत्पन्न करने के साधनों को सर्वथा बन्द कर देना और उसे बेकार रहने को विवश करना भी समाज के लिए महा भयङ्कर है। ऐसे बेकार लोग जब भूखों मरने लगेंगे तो अवश्य ही उनके सर पर शैतान सवार होगा और वे भले-बुरे का विचार एकदम छोड़ देंगे। यही कारण है कि प्रत्येक देश में बेकारों की संख्या जैसे-जैसे अधिक होती जाती है, अपराधों की संख्या भी उसी हिसाब से बढ़ती है। अकाल के समय चोरी, डाके और हत्याओं की संख्या के बढ़ जाने का सबब भी यही है। हमारे कहने का आशय यह नहीं है कि जन-साधारण की आर्थिक दुरवस्था और बेकारी को अमीर और शासक जान-बूझ कर उत्पन्न करते हैं अथवा यदि वे चाहें तो तुरन्त इनका प्रतिकार कर सकते हैं। वर्तमान समय में इनका बहुत कुछ आधार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर भी है और अनेक बार प्राकृतिक घटनाओं के फलस्वरूप भी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है। पर यदि समाज के कर्णधार तथा देश के शासक पूर्ण शक्ति द्वारा दीन-निर्यातन तथा बेकारी की वृद्धि को रोकने की चेष्टा करते रहें, तो इस प्रकार के अपराधों में बहुत कुछ कमी हो सकती है और अवस्था के विशेष रूप से भीषण होने की सम्भावना घट सकती है।

❁

❁

❁

सह-शिक्षा की उपयोगिता



स्कूल और कॉलेजों में लड़के तथा लड़कियों को एक साथ शिक्षा दी जाय या नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका विरोध केवल दक्षिणानुसी लोग ही नहीं करते, वरन् कितने ही आधुनिक शिक्षा

प्राप्त तथा सुधारक कहलाने वाले भी उसे हानिकारक बतलाते हैं। इन लोगों के मतानुसार इस प्रकार की व्यवस्था के फल से लड़के-लड़कियों का आचरण शिथिल हो जायगा और उनमें अन्य चरित्र सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न हो जाएँगे। पर सच यह है कि इन लोगों ने कभी इस विषय पर भली प्रकार सोचने का कष्ट नहीं उठाया है, वरन् केवल अपनी बद्धमूल धारणा तथा सुनी हुई बातों के आधार पर ही इस प्रकार की सम्मति स्थिर कर ली है। यदि वे पक्षपात और रुढ़ियों के भय को त्याग कर विचार करे तो उनको मालूम हो सकता है कि इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली समाज के लिए कितनी ही इष्टियों से कल्याणजनक है और हमारे देश का भी उससे बहुत कुछ हितसाधन हो सकता है। इस प्रश्न पर विचार करने को अभी हाल में शिमला की संयुक्तप्रान्तीय हिन्दू एसोसियेशन की तरफ से एक 'डिबेट' की व्यवस्था की गई थी, जिसमें अनेक सुयोग्य व्याख्यानदाताओं ने इसका ज़ोरों के साथ समर्थन किया। उन्होंने बतलाया कि आर्थिक और शिक्षा की उत्तमता की दृष्टि से सह-शिक्षा अत्यन्त उपयोगिनी और आवश्यकीय है। यद्यपि हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन आरम्भ हुए बहुत वर्ष हो गए, पर अभी तक लड़कियों के लिए बहुत थोड़े हाई-स्कूल और कॉलेज खोले जा सके हैं और जो खोले भी गए हैं, वे लड़कों के स्कूलों और कॉलेजों की तुलना में बहुत पिछड़े हुए हैं। विज्ञान, डॉक्टरी, कानून, इंजिनियरिंग आदि विषयों की शिक्षा का लड़कियों के लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया गया है और जो कोई लड़की इनमें से किसी विषय का अध्ययन करना चाहती है, उसे अब भी लड़कों के साथ ही पढ़ना पड़ता है। जब इन विद्यालयों में बड़ी उम्र की लड़कियों के, जिनमें से कितनी ही युवतियाँ होती हैं, लड़कों के साथ पढ़ने से कोई विशेष कुफल नहीं होता तो छोटी उम्र के लड़के-लड़कियों के एक साथ पढ़ाए जाने का विरोध किस प्रकार किया जा सकता है ? इसके विपरीत इस विषय के विशेषज्ञों की तो यह सम्मति है कि इस प्रकार की सह-शिक्षा से लड़कों के स्वभाव का उजड़पन और लड़कियों की अतिरिक्त भावुकता का बहुत-कुछ सुधार हो सकेगा। साथ ही बराबर मिलने-जुलने तथा विचार-विनिमय

करने से उनको एक दूसरे की प्रकृति का जो परिचय प्राप्त होगा, उससे वे भावी जीवन में बहुत-कुछ लाभ उठा सकेंगे। हम यह नहीं कहते कि जिन संस्थाओं में इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है अथवा भविष्य में प्रचलित होगी, उनमें आचरण की शिथिलता का कोई उदाहरण नहीं मिल सकता, पर यदि ऐसा हो तो यह दोष हम पद्धति का नहीं, वरन् व्यक्तियों का समझना चाहिए। अब भी अनेक लड़कियों के स्कूलों में इस प्रकार की घटनाएँ होने की बात सुनने में आती है, पर इसके आधार पर यह निर्याय नहीं किया जा सकता कि लड़कियों को स्कूली शिक्षा दिलाना बुरा है और उनके स्कूलों को बन्द कर देना चाहिए।

❀ ❀ ❀

विदेशी कम्पनियों की लूट

बर्मा ऑयल कम्पनी लिमिटेड की सालाना मीटिंग की, जिसकी बैठक हाल ही में लन्दन में हुई थी, कार्यवाही से विदित हुआ है कि सन् १९३२ में उक्त कम्पनी को १०,५८,१२४ पौण्ड (१ पौण्ड=१३।६०) मुनाफ़ा हुआ जिसमें से उसने अपने हिस्सेदारों को २० प्रति सैकड़ा मुनाफ़ा बाँटा और ४,८६,५११ पौण्ड अगले साल के लिए रख लिया। इस साल समस्त संसार का व्यवसाय बहुत ही गिरी दशा में रहा है और बर्मा ऑयल कम्पनी को बम्बई और उसके आस-पास के स्थानों में रूस से आने वाले पेट्रोलियम के मुकाबले में अपनी नियत दर १।१) गैलन के बजाय १) गैलन तक तेल बेचना पड़ा है। ऐसी अवस्था में भी उक्त कम्पनी ने अपने मूलधन का एक तिहाई मुनाफ़ा उठाया। इससे प्रकट होता है कि ये कम्पनियाँ, जिन्होंने किसी उपाय से जीवन की आवश्यक सामग्रियों का एकाधिकार प्राप्त कर लिया है, जनता को किस प्रकार लूटती हैं। इसका अर्थ यह भी है कि इस कम्पनी के हिस्सेदार इस व्यवसाय में लगाएँ हुई रकम की न मालूम कितनी गुनी रकम वसूल कर चुके होंगे और तब भी वे कम्पनी के मालिक तथा मुनाफ़े के हकदार बने हुए हैं। इसके विपरीत भारत और बर्मा के निवासियों को, जिनकी जन्म-भूमि

में ये तेल की खानें हैं और जिनकी मिहनत से ही तेल निकलता है केवल थोड़ी सी मज़दूरी मिलती है। आज-कल अधिकांश उन्नतिशील देशों के विद्वानों का यह मत है कि जिन व्यवसायों पर राष्ट्रीय जीवन का आधार है, जैसे रेल, रोशनी, पत्थर का कोयला, मिट्टी का तेल आदि उन पर व्यक्तिगत कम्पनियों के बजाय सरकार का अधिकार रहना चाहिए, ताकि व्यवसायी अपने स्वार्थ के लिए इन आवश्यक वस्तुओं का मूल्य अतिरिक्त रूप से बढ़ा कर जनता को कष्ट में न डाल सकें। यद्यपि यह सिद्धान्त अभी शायद ही कहीं पूर्णतया कार्य-रूप में परिणत हुआ है, पर सभी देशों के शासक इसकी आवश्यकता और उपयोगिता को अनुभव करने लगे हैं और इन व्यवसायों पर जहाँ तक सम्भव होता है सरकारी नियन्त्रण रखने की चेष्टा करते हैं। पर भारत में राष्ट्रीय सरकार का अभाव होने से इस प्रकार का उद्योग कदाचित् ही किया जाता है और यही कारण है कि व्यवसाय की ऐसी भीषण मन्दी तथा जनता की आर्थिक दुरवस्था में भी उक्त कम्पनी इतना लाभ उठा रही है। चूँकि पेट्रोल और मिट्टी का तेल जीवन की आवश्यक वस्तुएँ हैं, इनके बिना आजकल सर्वसाधारण का काम चल सकना कठिन है और इस क्षेत्र में प्रति-स्पर्द्धिता भी बहुत कम है, इसलिए ये कम्पनियाँ ग्राहकों के भले-बुरे का ज़याल छोड़ कर अपना जेब गर्म करती रहती हैं। इतना ही नहीं, कुत्री और साधारण कज़कों को छोड़ कर इन कम्पनियों में जितने अधिक वेतन पाने वाले उच्च कर्मचारी होते हैं वे प्रायः तमाम विदेशी होते हैं और उनके वेतन का अधिकांश रुपया विदेश ही जाता है। ये कम्पनियाँ भारतीय युवकों को इस कारबार की शिक्षा देने या दिलाने का भी कोई प्रयत्न नहीं करती, न उनकी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की सहायता करती हैं। इस प्रकार ये कम्पनियाँ एक ओर जनता को मनमाना लूटती हैं और दूसरी तरफ़ ऐसी अवस्था बनाए रखती हैं जिसमें इस विषय में हमको सदैव उन्हीं पर अवलम्बित रहना पड़े। देश-हित की दृष्टि से यह अवस्था बड़ी असन्तोषजनक है और हमारा कर्तव्य है कि जहाँ तक सम्भव हो इसका विरोध करके इसमें परिवर्तन कराने की चेष्टा करें।



भारत में मोटरों का व्यवसाय

आजकल हमारे देश में स्वदेशी की तरफ जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो रहा है और इससे उत्साहित होकर व्यवसायी लोग ऐसी-ऐसी वस्तुओं के निर्माण की चेष्टा कर रहे हैं, जिनको यहाँ बना सकना पहले असम्भव समझा जाता था। उदाहरण के लिए हम बिजली के पंखे, बिजली के लैम्प और सीने की मैशीन का नाम ले सकते हैं। पर अब भी ऐसी कितनी ही चीजें हैं, जिनकी यद्यपि देश में काफ़ी बिक्री है, पर किसी ने उनके बनाने की तरफ ध्यान नहीं दिया है। इन चीजों में सबसे मुख्य मोटर-गाड़ी है, जिसका प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जाता है और जिसके लिए इस देश का प्राय ६-७ करोड़ रु० प्रति वर्ष विदेश चला जाता है। अब केवल बड़े लोग ही मोटर पर नहीं चढ़ते, वरन् साधारण देहाती भी प्रायः मोटर कारियों द्वारा ही यात्रा करने लगे हैं। इस प्रकार मोटर केवल विलास की सामग्री ही नहीं रही है, वरन् एक जीवन सम्बन्धी आवश्यकता का रूप ग्रहण करती जाती है। उसके कारण अब गाड़ियों, इक्कों, ताँगों का व्यवसाय घटता जाता है और कोई आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ही हमारी आवागमन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति एक मात्र उसीसे होने लगे। उस अवस्था में हम अपनी एक बहुत बड़ी आवश्यकता के लिए विदेशियों के मुखापेक्षी हो जायेंगे। इन्हीं का विषय है कि परिस्थिति को समझने वाले व्यवसायियों का ध्यान इस तरफ आकर्षित होने लगा है और वे इसके महत्व तथा आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं। कुछ ही सप्ताह पूर्व लाहौर के सुप्रसिद्ध मोटर व्यवसायी श्री० मैडन ने रोडैरी क्लब के सम्मुख भाषण करते हुए इस प्रकार की एक कम्पनी की स्थापना का प्रस्ताव किया था और इस सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें बतलाई थीं। उन्होंने कहा कि इस कार्य के लिए यदि एक सुसज्जित कम्पनी बनाई जाय और वह ऐसे चतुर मोटर बनाने वाले कारीगरों से काम ले, जो इस देश के जलवायु के अनुकूल गाड़ी बना सकें, तो इस कार्य का सफल हो सकना असम्भव नहीं है। यद्यपि नाम के लिए अब भी इस

देश में मोटर बनाने वाली कम्पनियाँ हैं, पर वे केवल विदेशों से उसके विभिन्न भाग तथा खुले हुए पुर्जों मँगा कर यहाँ उनको जोड़ कर गाड़ी तैयार कर देती हैं। इससे उनको केवल भाड़े की कुछ बचत हो जाती है। इससे देश का कोई विशेष उपकार नहीं हो सकता। हमारा उद्देश्य तो ऐसी कम्पनी स्थापित करना होना चाहिए जो मोटर के तमाम मुख्य भागों और पुर्जों को यहीं उत्पन्न होने वाले पदार्थों से तैयार करे, और विदेशों से केवल उन्ही इने-गिने पुर्जों को मँगावे, जिनका यहाँ तुरन्त बन सकना सर्वथा असम्भव हो। कल-पुर्जों के काम में भारतवासी नितान्त अयोग्य नहीं हैं और यदि चेष्टा की जाय तथा देश के सम्पन्न व्यक्ति उसमें सहयोग प्रदान करें, तो यह काम कुछ भी कठिन नहीं है। अब से कुछ समय पहले एक बड़े नगर के म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ने मोटर का काम करने वाले एक मिस्त्री को एक सब प्रकार से स्वदेशी मोटर बनाने का ऑर्डर दिया था, जिसमें तीन हजार से अधिक रूप्य खर्च न हों। म्युनिसिपैलिटी उसके लिए २००० रूप्य दे चुकी है और उसके अधिकांश भाग तैयार हो चुके हैं। यद्यपि उस मिस्त्री ने तमाम काम देशी ढङ्ग के हाथ के साधारण औज़ारों से ही किया है, पर देखने वालों की राय है कि उसका काम किसी तरह खराब नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में यदि काफ़ी पूँजी लगा कर और देश के योग्य हज़ीनियरों और कारीगरों को रख कर आधुनिक मैशीनों से काम लिया जाय तो निश्चय ही सफलता हो सकती है। आजकल इस देश में १२ से २० हजार तक मोटर गाड़ियाँ, बहुत सी कारियाँ और फुटकर पुर्जे विदेशों से आते हैं। यदि यहाँ स्थापित होने वाली कम्पनी इस व्यवसाय का एक भाग भी हस्तगत कर ले तो उसे काफ़ी लाभ हो सकता है और हज़ारों बेकार व्यक्तियों को रोज़गार मिल सकता है।

जीव-दया का ढोंग

समाचार-पत्रों से विदित हुआ है कि देहली के पास नरेला नामक स्थान में एक पित्ररापोल बनाया जाने वाला है। जिसमें २० हजार बन्दरों के रहने की व्यवस्था की जायगी। सम्भवतः इसका व्यव कोई 'धर्म-



शील' महिला या सज्जन प्रदान करेंगे। अब तक तो हम निरुपयोगी गायों के पालनार्थ गौशालाएँ खोल कर धन नष्ट करने का रोना रोते थे, पर इस बन्दरों के पिछरापोल ने तो उसमे भी बाज़ी मार ली। बन्दर किसी दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी प्राणी नहीं हैं। उनसे हम लोगों का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ नहीं होना। इतना ही नहीं मनुष्यों को प्रायः उनके कारण कष्ट और हानि ही उठानी पड़ती है। केवल कुछ मदारी बालकों के मनोविनोदार्थ उन्हें नचाते फिरते हैं। उसना ही उनका उपयोग समझा जा सकता है। ऐसी दशा में बन्दरों को बहुत भारी संख्या में पालना और उसके लिए प्रति वर्ष हज़ारों रुपए खर्च करना कहीं की बुद्धिमानी है। जब हम देखते हैं कि हमारे करोड़ों देशवासियों को आधा पेट खाना भी नहीं मिलता और अनेक छोटे-छोटे बच्चे भोजन के अभाव से मर जाते हैं, तब इस प्रकार के निरर्थक दान को किस प्रकार प्रशसनीय कहा जा सकता है। इस प्रकार का कृत्य केवल हमारे समाज में फैले हुए अज्ञान और अन्ध विश्वास का ही परिचायक है। यदि यही मनोवृत्ति बनी रही, तो आश्चर्य नहीं कि किमी दिन गणेश जी के बाहन चूहों और चींटियों के लिए भी आश्रम बनाए जायें।

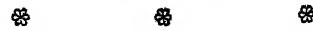


अन्तर्जातीय विवाह

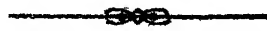


महात्मा गाँधी राजनीतिक आन्दोलनकारी होने के साथ ही प्रथम श्रेणी के समाज-सुधारक हैं। आपका समाज-सुधार केवल कड़ने का नहीं है, वरन् आप उदाहरण द्वारा जनता को सुधार की शिक्षा देते हैं। हिन्दू-समाज में पाए जाने वाले जाँत-पात के भेदों और उनमें परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध न हो सकने के बन्धन को वे हानिकारक समझते हैं, और इसलिए अब तक अपने कितने ही सहकारियों में अन्तर्जातीय विवाह-सम्बन्ध करा चुके हैं। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण आपके सुपुत्र श्री० देवीदास गाँधी ने श्री० राजगोपालाचार्य की पुत्री श्री० लक्ष्मी से विवाह करके उपस्थित किया है। इस सम्बन्ध से जहाँ सुधारप्रिय

लोगों को हार्दिक आनन्द हुआ है, कट्टर-पन्थी और कूप-मण्डक सड़ी-गली दलीलें देकर उसको निन्दनीय ठहराने की चेष्टा कर रहे हैं। उनका कथन है कि उच्च वर्ण की कन्या से नीच वर्ण के वर का विवाह होना शास्त्र-विरुद्ध है। कुछ नीच-प्रकृति लेखक यह कह कर कि विवाह के पूर्व एक वैदिक यज्ञ द्वारा श्री० देवीदास को ब्राह्मण बनाया गया था, इस पवित्र वटना का उपहास करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर उन लोगों को समझ लेना चाहिए कि उनकी ऊँच-नीच की व्याख्या की पूछ होने के दिन अब चले गए। अब साधारण लोग भी इसे ठकोसले के सिवा कुछ नहीं समझने, चाहे आत्म-बल के अभाव से अथवा परिस्थिति की कठिनता के कारण वे स्वयं उसके विरुद्ध न चल सकते हों। इसी प्रकार शुद्धि और प्रायश्चित्त आदि की क्रियाओं की आवश्यकता भी अन्धविश्वासी और निर्बल चरित्र के लोगों के लिए हुआ करती है। देवीदास और लक्ष्मी जैसे युवक-युवतियों के लिए, जिन्होंने देशोद्धार और जनता के उपकार के लिए अपने जीवन तक की समस्त त्याग दी है और जो बड़ी से बड़ी आपत्तियों को सहर्ष सहन कर रहे हैं, इस प्रकार का ढोंग करने की कोई आवश्यकता नहीं। नवीन भारत इसी प्रकार के विवाह-सम्बन्धों को अपना आदर्श मानता है और कट्टर-पन्थियों की 'काँव-काँव' तो क्या, दुनिया की कोई बड़ी शक्ति भी उसे इस मार्ग में अग्रसर होने से नहीं रोक सकती।



विश्व आर्थिक कॉन्फ्रेंस



विश्व आर्थिक कॉन्फ्रेंस का अधिवेशन समाप्त हो गया। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि जिस उद्देश्य के लिए कॉन्फ्रेंस की गई थी, वह सफल हुआ, पर अन्तिम दिन विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने जो सम्मेलन प्रकट की हैं, उनसे इतना कहा जा सकता है कि इसके फल से विभिन्न देश एक दूसरे के दृष्टिकोण को पहले की अपेक्षा अधिक समझ गए हैं और इसके फल से शायद भविष्य में वे किसी समझौते पर राजी हो सकें। यद्यपि लज्जा-निवारण के लिए कॉन्फ्रेंस



ने विभिन्न विषयों के लिए उप समितियाँ बना दी हैं, जो अपना कार्य जारी रखेंगी और आवश्यकता होगी तो किसी स्थान में अपना अधिवेशन भी कर सकेंगी। पर वर्तमान समय में परिस्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी और सर्व-साधारण को जिन आपत्तियों को सहन करना पड़ रहा है, उनमें भी अन्तर न पड़ेगा। कॉन्फ्रेंस का इस प्रकार का परिणाम निश्चय ही समस्त संसार के लिए अभाग्य का सूचक है। वर्तमान समय में विभिन्न देशों में जो आर्थिक संकट चल रहा है, वह सन् १९१४ में होने वाले अन्ध-शस्त्रों के संग्राम से भी अधिक भीषण है और जनता के लिए उसकी अपेक्षा कहीं अधिक घातक सिद्ध हो रहा है। उस युद्ध में जहाँ यूरोप के दस-पाँच राष्ट्रों ने प्रधान रूप से भाग लिया था, इस आर्थिक युद्ध में संसार का प्रत्येक देश पूर्णतया लिस है और प्रत्येक की जनता को अपार क्षति उठानी पड़ रही है। जो देश इस संग्राम में शामिल होना नहीं चाहते अथवा जिनमें इतनी शक्ति नहीं है कि इसमें भाग ले सकें, उन पर भी इसका प्रभाव समान रूप से पड़ रहा है। इसमें बिना गोली और गोलों के प्रयोग किए करोड़ों व्यक्तियों को बेकार होकर घुल-घुल कर मरना पड़ रहा है। किसानों की पैदावार का मूल्य और मजदूरों की मजदूरी इतनी कम होती जाती है कि उनका जीवन-निर्वाह असम्भव हो उठा है और वे निरन्तर दरिद्रता के कीचड़ में धँसते जा रहे हैं। विदेशों से आने वाले माल पर भारी-भारी कर, अपरिमित शुद्ध-श्रद्धा, सिक्कों के मूल्य का नकली तौर पर घटाया जाना और युद्ध-सामग्री में प्रतिवर्ष बड़ी-बड़ी रकमों खर्च होते रहना आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जिनसे इस व्याधि का जन्म हुआ है और वह बराबर जोर पकड़ती जाती है। कॉन्फ्रेंस का उद्देश्य इन्हीं तमाम हातिकारक प्रवृत्तियों का निराकरण करना था। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि विभिन्न राष्ट्रों के केवल अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखने से इनमें से किसी विषय का सन्तोषजनक निबटारा न हो सका और आज हम अपने को उसी जगह खड़े पाते हैं, जहाँ कॉन्फ्रेंस के पहले थे। यह तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वर्तमान उद्योग-धंधों तथा पूँजीवादी पद्धति का स्वाभाविक परिणाम इस प्रकार का अर्थसंकट तथा उसके फलस्वरूप पारस्परिक युद्ध ही है, तो भी अगर संसार

के प्रधान राष्ट्र बुद्धिमानी तथा न्याय से काम लेकर अपने उचित स्वत्व पर सन्तोष करके समझौता कर लेते, तो भावी विग्रह दस-बीस वर्ष के लिए टल सकता था और साधारण मनुष्य फिर कुछ काल के लिए शान्ति का उपभोग कर सकते थे। पर मालूम होता है कि वैभवशाली राष्ट्रों को उनकी वृष्ट्या ने अन्धा कर रक्खा है और वे चाहे लाचार होकर अपना सर्वस्व गँवा दें, पर खुशी से न्यायातुकूल बँटवारा करने को तैयार नहीं हैं। यदि वास्तव में यह समस्या तय नहीं हुई तो जैसी अनेक यूरोपियन विद्वानों ने भविष्यवाणी की है, इसका फल वर्तमान सभ्यता के नाश के सिवा और कुछ न होगा।

✻

✻

✻

भावी-सुधार योजना और स्त्रियाँ

इ इंग्लैंड का मन्त्रि-मण्डल भारतवर्ष के लिए जो सुधार-योजना तैयार कर रहा है और जिसका कच्चा मसौदा 'ह्लाइट पेपर' के रूप में हमारे सामने आ चुका है, उसमें स्त्रियों के मताधिकार का प्रश्न भी एक विवादग्रस्त विषय है। इस सम्बन्ध में भारतवर्ष की दो प्रमुख महिला संस्थाओं—'आल इण्डिया वीमेन्स कॉन्फ्रेंस' और 'वीमेन्स इण्डियन एसोसिएशन' ने ज्वाइंट पार्लामेण्टरी कमिटी के सामने एक मेमोरेण्डम पेश किया है, जिसमें कहा गया है कि 'ह्लाइट पेपर' में स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किए गए हैं, वे भारतीय स्त्रियों की माँगों से बहुत कम हैं और उनमें संशोधन की बड़ी गुंजायश है। स्त्रियों की माँग आरम्भ में यही थी कि पूर्णतया उनको पुरुषों के समान शर्तों पर मताधिकार दिया जाय। पर यह तभी सम्भव था जब इस देश के लिए वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता। क्योंकि इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग ऐसा नहीं है, जिससे स्त्रियों को पुरुषों के बराबर 'वोट' प्राप्त हो सकें। पर जब वर्तमान अवस्था में शीघ्र ही ऐसा होने की कोई आशा नहीं है, तो स्त्रियाँ चाहती हैं कि कम से कम उनके चुनाव के सम्बन्ध में कोई ऐसी शर्त न लगाई जाय, जिससे उनकी स्थिति



पराधीनतापूर्ण हो जाय और भविष्य में उनके उत्थान के मार्ग में रोड़े अटकने की सम्भावना हो। उदाहरणार्थ वे 'वोटर' होने के लिए शिक्षा की शर्त को तो स्वीकार करती हैं, पर हम शर्त पर उनको एतराज है कि उनको अपने जीवित या मृत पति की जायदाद के आधार पर वोट का अधिकार दिया जाय। इसका आशय यह होगा कि जो स्त्रियाँ विवाह न करेंगी, उनको वोट देने का अधिकार ही न होगा और वे देश के शासन कार्य में भाग न ले सकेंगी। दूसरी हानि इसने यह होगी कि धनवान लोगों को, जो प्रायः अनुदार विचारों के तथा सुधारों के विरोधी होते हैं, एक दृष्टि से दुगुने वोट मिल जायेंगे। अशिक्षित और पूर्ण रूप से पराधीन स्त्रियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अपने पतियों की मर्जी के खिलाफ सम्मति दे सकें। इसलिए स्त्रियों की नई माँग यह है कि कम से कम शहरों में २१ वर्ष की उम्र से अधिक की तमाम स्त्रियों को मताधिकार दे दिया जाय। इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से स्त्री वोटरों की संख्या करीब डेढ़ करोड़ हो जायगी, जो 'क्लैट पेपर' के प्रस्ताव के अनुसार १० लाख से ज्यादा नहीं हो सकती। इतना होने पर भी स्त्री-वोटरों की संख्या पुरुष वोटरों से चौथाई ही रहेगी। पर वर्तमान समय में स्त्री और पुरुष वोटरों के १ : २१ के अनुपात को देखते हुए इसे सन्तोषजनक वृद्धि कहा जा सकता है। हम आशा करते हैं कि सभ्यताभिमानी अङ्गरेज, जो अपने यहाँ की स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार दे चुके हैं, भारतीय स्त्रियों की इस न्यायोचित माँग की अवहेलना न करेंगे। स्त्रियों का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करना देश, समाज तथा सरकार, सभी के लिए लाभजनक है। स्वयं प्रधान मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड ने कहा है कि "यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि भारत संसार में जिस दर्जे पर पहुँचने की अभिलाषा रखता है, उस दर्जे तक तब तक कदापि नहीं पहुँच सकता, जब तक उसकी स्त्रियाँ शिक्षिता तथा प्रभावशाली नागरिक के रूप में परिणत न हो जायँ।" देखना है कि प्रधान मन्त्री और उनके सहकारी इस उद्देश्य की पूर्ति में भारतीय स्त्रियों को कहाँ तक सहायता देते हैं।

एक उपयुक्त प्रस्ताव

बेजारी (मद्रास) में एक 'महिला हितवादी मण्डल' है। उसने अपने चौथे वार्षिकोत्सव के अवसर पर भारतीय स्त्रियों के कल्याणार्थ कई उपयोगी प्रस्ताव पास किए हैं और समस्त भारतीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों से अपीज की है कि वे उनके अनुकूल कानून बनवा कर स्त्रियों पर होने वाले अन्यायों का कुछ अंशों में प्रतिकार करें। इन प्रस्तावों में से एक यह है कि चात्तीस वर्ष की उम्र से अधिक का कोई पुरुष २१ वर्ष से कम उम्र की स्त्री के साथ विवाह न कर सके और जो इस नियम के विरुद्ध आचरण करे उसे फौजदारी कानून के अनुसार दण्ड दिया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि बेजारी के 'महिला हितवादी मण्डल' ने समाज और धर्म की प्रचलित रूढ़ियों का भय त्याग कर एक ऐसा प्रस्ताव किया है, जो प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है। वर्तमान समय में हिन्दू-समाज में अनेक विवाह ऐसे होते हैं, जो व्यवहार की अपेक्षा भी अधिक दूषित समझे जाने चाहिए और जिनका उदाहरण घोर असभ्य तथा जड़ली लोगों में भी नहीं मिल सकता। जिन जातियों में विवाह-बन्धन बहुत ही शिथिल है और जिनकी स्त्रियाँ सहज ही में इच्छित पुरुष के साथ सम्बन्ध कर सकती हैं, उनमें भी यह नहीं देखा जाता कि एक दस-बारह वर्ष की लड़की को पचास या साठ वर्ष के व्यक्ति के साथ सहवास करने को बाध्य होना पड़े। इस प्रकार का सहवास-सम्बन्ध कितना अप्राकृतिक और अरुचिकर है, इसके लिए दलील देने की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति लड़की के द्वारा बाबा कहे जाने के योग्य है, वह उसे 'प्रिये' कह कर उसके साथ अपनी काम-वासना चरितार्थ करता है, वह वास्तव में पशु से भी अधम है। ऐसे सम्बन्ध के फल से समाज में अनेक घोर दोषों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। जिस समाज में ऐसे अनमेल विवाह अधिक संख्या में होंगे, उसका दिन पर दिन अधोगति के रास्ते में गिरते जाना अनिवार्य है। इसलिए यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं और सभ्य-समाज में अपने को उपहासास्पद सिद्ध करना नहीं चाहते तो हमको अवश्य ही इस प्रकार की



गर्हित प्रथा का अन्त करना पड़ेगा। इसके लिए पुराने शास्त्रों और रूढ़ियों की दुहाई देना व्यर्थ है। क्योंकि वर्तमान समय में न तो कोई व्यक्ति प्राचीन काल की भाँति चारों आश्रमों का पूर्ण रूप से पालन करता है और न वयों की व्यवस्था शुद्ध रूप में स्थिर है। प्राचीन काल में लोग प्रायः चालीस-पचास वर्ष की अवस्था में विधुर होने पर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लेते थे और केवल भ्रम कर्म में समय व्यतीत करते थे। पर आजकल देश-काल सर्वथा बदल गया है और इस कारण शास्त्रों और स्मृतियों के नियम अव्यवहारिक हो गए हैं। इस-लिए आवश्यकता है कि इस प्रकार के प्रश्नों का निर्णय हम उनकी बुराई-भलाई को समझ कर करें, और जो प्रथा प्रत्यक्षतः अस्वाभाविक तथा हानिकारक जान पड़ती हो, उसे निस्संकोच भाव से त्याग दें।

❀

❀

❀

श्री० सेन गुप्त का स्वर्गवास

गत २३ जुलाई को बङ्गाल के सुप्रसिद्ध नेता तथा राष्ट्र के सच्चे सपूत श्री० जे० एम० सेन गुप्त का स्वर्गवास हो गया। यह घटना ऐसी आकस्मिक हुई कि लोगों को उस पर जल्दी विश्वास भी नहीं हुआ। अद्यपि वे दीर्घकाल से नज़रबन्द रहने के कारण इधर कितने ही दिनों से अस्वस्थ थे और इसीलिए जलवायु परिवर्तनार्थ राँची लाए गए थे, पर उनका अन्त इतना शीघ्र हो जायगा, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। अभी उनकी उम्र केवल ४८ वर्ष की थी और देश उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए हुए था। पर कराल काज ने उन पर पानी फेर दिया। इस महान कष्ट से अधीर होकर भारतमाता दुःख के आँसू बहा रही है। आज बङ्गाल में कोई ऐसा नेता दिखलाई नहीं देता, जो उनके स्थान की पूर्ति कर सके। उनका समस्त जीवन त्यागसम्य था और देश-सेवा के लिए धन और

मान तो क्या, उन्होंने अपना तथा अपने परिवार का जीवन तक अर्पण कर दिया था। कॉङ्ग्रेस आन्दोलन में भाग लेने के कारण उनको बार-बार कैद और नज़र-बन्दी की सज़ाएँ दी गईं और प्रत्येक बार उनके स्वास्थ्य की बहुत कुछ हानि हुई, पर उन्होंने कभी पीछे पैर न हटाया और जब जैसी आवश्यकता हुई, उसी प्रकार वे देश की सेवा करने को तैयार हो गए। सरकार को भी उनकी हृदयता तथा योग्यता का इतना विश्वास था कि पिछली बार विलायत से लौटने पर उसने उनको देश में पैर रखने का भी अवसर नहीं दिया और जहाज़ पर ही कैद करके जेलखाने भेज दिया। पर वास्तव में यह सरकार की भूल थी और कदाचित् अब उसको इसका अनुभव होगा। बङ्गाल के नवयुवकों में जो असन्तोष की भीषण लहर फैली हुई है और उसके प्रभाव से जिस प्रकार वे सहज ही में आतङ्ककारी कार्यों में भाग लेने को तैयार हो जाते हैं, उसका प्रतिकार अगर कोई व्यक्ति कुछ अंशों में कर सकता था तो वे सेन गुप्त ही थे। अगर वे हजारों गर्म मित्राज के असन्तुष्ट युवकों को सयत्न करके शान्तिसमय आन्दोलन में न लगा देते तो आज बङ्गाल के आन्तिकारी आन्दोलन की अवस्था और भी विकट होती। उनके समान योग्य और देशभक्त व्यक्ति यदि किसी अन्य स्वतन्त्र राष्ट्र में होता तो उसे अवश्य ही कोई बहुत बड़ा और उत्तरदायित्वपूर्ण पद दिया जाता और उसकी गणना विश्वविख्यात राज-नीतिज्ञों में होती। पर इस अभाग्य देश में ऐसे व्यक्तियों को अपना जीवन कष्टों और लाञ्छनाओं को सहन करते हुए ही व्यतीत करना पड़ता है और इसी अवस्था में प्रायः उनका अन्त हो जाता है। वर्तमान समय में देश में जो विकट अवस्था उपस्थित हो रही है और चारों तरफ से व्यापक परिवर्तन की जैसी सम्भावना जान पड़ रही है, उसे देखते हुए श्री० सेन गुप्त का परलोक-गमन और भी दुःखदायी है। इस गम्भीर शोक के अवसर पर हम उनके परिवार वालों के साथ आन्तरिक सम-वेदना प्रकट करते हैं।





भ्रमर की आशा

यही आस अटक्यो रह्यो, अलि गुलाब के मूल ।
हैं हैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारनि वे फूल ॥

—बिहारी



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११,
खण्ड २

सितम्बर, १९३३

संख्या ५,
पृ० सं० १३१

चित्र-रेखा



[प्रोफेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

तितली के नश्वर दर्पण ।

ओस !—(वारि की पृथ्वी) ठहरो—

मेरी पृथ्वी पर दो क्षण ॥

किञ्चित् स्पर्श असह्य तुम्हे—

ओ कोमल ! यह कैसा है प्रण ?

एक बूँद ही के तन में—

कितना अथाह है आकर्षण ॥

मेरा भी जीवन वज्ज्वल है,

मेरा भी जीवन लघु-क्षण ।

प्रतिविम्बित कर लो इस तन में—

नभ से लेकर निर्बल क्षण ॥

कभी उसे जीवन-निर्वाह के सम्बन्ध में किसी कठिनाई का सामना करना पड़ा है, उसने उसको हल कर लिया है। इसीलिए मनुष्य ने विभिन्न युगों में क्रमशः शिकार, पशु-पालन, खेती और शिल्प का आश्रय लिया है। विशेष कर जब से मनुष्य ने शिल्प और व्यवसाय का सहारा लिया है, तब से तो उसकी उत्पादिका शक्ति कल्पनातीत रूप से बढ़ गई है। अब ससार में सब प्रकार की सामग्री इतने अधिक परिमाण में उत्पन्न होने लगी है कि मनुष्य उसे पूरा खर्च भी नहीं कर सकता। इससे उत्साहित होकर बहुत से लोग मात्स्थस के सिद्धान्त को सर्वथा भ्रामक बतलाने लगे हैं और दावा करते हैं कि चाहे ससार की जन-संख्या कितनी भी क्यों न बढ़ जाय, मनुष्य में वह शक्ति मौजूद है कि वह अपने निर्वाह योग्य सामग्री सहज ही में उत्पन्न कर सकता है।

पर यदि इस मत की भली प्रकार विवेचना की जाय तो मालूम होता है कि इसमें बहुत कम सच्चाई है। क्योंकि आधुनिक व्यापारिक सङ्गठन तथा यन्त्रों के फल से बने हुए माल का परिमाण चाहे कितना ही क्यों न बढ़ गया हो, पर उनसे खेती की पैदावार का बढ़ना सन्देह-जनक है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि हाथ के साधारण औजारों द्वारा खेत में जितनी उपज हो सकती है, मशीनों और मोटर से चलने वाले हलों से उतनी नहीं हो सकती। इस पर प्रश्न किया जायगा कि यदि यह सच है तो अमरीका आदि देशों में इतना अधिक अन्न, रूई तथा अन्य पदार्थ कैसे उत्पन्न हो रहे हैं, जो वहाँ के निवासियों द्वारा खर्च नहीं किए जा सकते। इसका उत्तर यह है कि अमरीका नया देश है और वहाँ अभी जन-संख्या की अपेक्षा भूमि का परिमाण अधिक है। वहाँ के लोग प्रतिवर्ष पहले की अपेक्षा अधिक भूमि पर खेती करते हैं और इस काम में यन्त्रों से विशेष रूप से सहायता मिलती है, क्योंकि यन्त्रों द्वारा थोड़े से आदमी बहुत सा काम कर सकते हैं। पर इसका अर्थ यह लगाना कि यन्त्रों से ज़मीन की पैदावार बढ़ जाती है, ठीक नहीं है। इससे इतना ही समझा जा सकता है कि हम पृथ्वी के साधनों की पूर्वापेक्षा अधिक उपयोग करने लगे हैं। पर चूँकि पृथ्वी के साधन परिमित हैं, इसलिए हम उससे जितनी

अधिक सामग्री उत्पन्न करते हैं, उतनी ही हमारे रक्षित-भण्डार में कमी होती जाती है।

यदि कहा जाय कि भविष्य में मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह की सामग्री ज़मीन और समुद्र के सिवा किसी अन्य उपाय से उत्पन्न करेगा, तो यह भी सन्देहपूर्ण है। कल्पनाशील लोग अब भी हवा से शक्कर और लकड़ी से आटा तैयार करने की फिक्र में हैं, पर ये स्वप्न कहीं तक सफल होंगे, यह कहना कठिन है। और यदि ऐसा हो भी जाय तो इससे मात्स्थस का यह सिद्धान्त झूठा सिद्ध नहीं होता कि जन-संख्या सदैव जीवन-निर्वाह के साधनों की अपेक्षा अधिक बढ़ती है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य ने अब तक जितनी उन्नति कर ली है, उससे जन-संख्या का प्रश्न हल हो गया होता और हमको ससार में कहीं भूख का रोना सुनाई न देता। पर बात ऐसी नहीं है। ज्योंही मनुष्य किसी उपाय से उत्पत्ति के साधनों की वृद्धि करता है, वैसे ही जन-संख्या पहले की अपेक्षा शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगती है और थोड़े ही दिनों में नवीन आविष्कार का तमाम लाभ जाता रहता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सन् १८०० ई० में संसार की समस्त जनसंख्या लगभग ५० और ८० करोड़ के बीच में थी और सन् १९०० में वह एक अरब सत्तर करोड़ तक जा पहुँची। इसका आशय यह हुआ कि ससार में जब से मनुष्य का आविर्भाव हुआ—वैज्ञानिकों के मतानुसार ससार में मनुष्य का आविर्भाव हुए कम से कम ५ लाख वर्ष हुए हैं—तब से सन् १८०० तक संसार की जन-संख्या जितनी बढ़ी उससे अधिक केवल इन सौ वर्षों में बढ़ गई। इस अस्वाभाविक तथा आकस्मिक वृद्धि का केवल एक यही कारण बतलाया जा सकता है कि इस काल में मनुष्य ने भाष और बिजली की सहायता से अपनी उत्पादिका शक्ति को बहुत बढ़ा लिया और उत्पन्न होने वाली वस्तुओं को संसार के दूर-दूर भागों में पहुँचाने की समस्या को बहुत ही सहज बना डाला, जिससे मनुष्यों का जीवन-निर्वाह पहले की अपेक्षा बहुत सुगम हो गया और इसलिए जन-संख्या भी अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगी।

साम्यवादी सिद्धान्तों के कुछ अनुयायी भी मात्स्थस के सिद्धान्त के विरोधी हैं और उसे पूँजीपतियों का पृष्ठ-पोषक बतलाते हैं। उनका कथन है कि जन-समाज के



कष्टों का कारण जन-संख्या की वृद्धि नहीं, वरन् संसार में पाई जाने वाली राजनीतिक तथा आर्थिक स्वार्थपरता है। यदि मानव-समाज निरङ्कुश शासन-कर्ताओं तथा पूँजीपतियों के अन्यायों से मुक्ति पा जाय तो प्रत्येक व्यक्ति को थोड़ा सा नियमित काम, जिसके करने में उसे कुछ भी कठिनाई न होगी, करना पड़ेगा और प्रत्येक जीवनोपयोगी वस्तु इतने परिमाण में उत्पन्न होगी कि न तो लोगों को उसके अभाव से कष्ट होगा और न वह व्यर्थ में नष्ट होगी। उनका विश्वास है कि यदि संसार को एक सूत्र में सङ्गठित करके तथा सबके हित का ध्यान रख कर कोई योजना बनाई जाय, तो इस उद्देश्य का सिद्ध हो सकना असम्भव नहीं है। हम स्वीकार करते हैं कि श्रम का उपयुक्त विभाग होने, मानवीय-शक्ति तथा प्राकृतिक सामग्री का क्षय यथासम्भव रोकने और उत्पन्न पदार्थों को आवश्यकतानुसार बाँटने से समाज का बहुत कुछ उपकार हो सकता है और वर्तमान समय में प्राप्त सामग्री द्वारा ही अधिक जन-संख्या का पालन हो सकता है। पर इससे जन-संख्या का प्रश्न तय नहीं होता। जिस प्रकार वैज्ञानिक आविष्कारों और मैशीनों द्वारा जीवन-निर्वाह के साधनों की उन्नति होने पर जन-संख्या स्वभावतः तेज़ी से बढ़ने लगती है, उसी प्रकार आर्थिक-सुधार द्वारा उन्नति होने पर भी जन-संख्या तेज़ी से बढ़ेगी और लोगों की शिकायतें ज्यों की त्यों बनी रहेंगी।

कितने ही लोग ऐसे भी हैं, जो प्रमाणों के बजाय केवल व्यंग्य और आक्षेपों द्वारा इस सिद्धान्त के महत्त्व को कम करने की चेष्टा करते हैं। उदाहरण के लिए एक धर्मोपदेशक ने एक बार कहा था—“क्या आप सचमुच यह विश्वास करते हैं कि कभी ऐसा समय आएगा, जब कोई मनुष्य परिश्रम करके भी अपना पेट न भर सकेगा।” खेद है, उक्त सज्जन को अपना पेट भरा होने के कारण यह पता नहीं कि आजकल किस प्रकार लाखों व्यक्ति नौकरी और मज़दूरी की तलाश में ठोकरें खाने पर भी कोई रोज़गार नहीं पाते और इसलिए परिश्रम करने को राज़ी होने पर भी उनको भूखों मरना पड़ता है अथवा किसी की उदारता का आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

यह भी कहा जाता है कि अभी संसार में जन-संख्या की वृद्धि के लिए बहुत गुंजायश है, क्योंकि विभिन्न

देशों में हज़ारों वर्गमील ज़मीन खाली पड़ी है लिए जब तक ये तमाम स्थान भर नहीं जाते तब हमको इस सम्बन्ध में चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। जब पृथ्वी सचमुच पूरी तरह भर जायगी और मनुष्यों की वृद्धि के लिए कहीं गुंजायश न होगी तो उस समय के मनुष्य इसके प्रतिकार का कोई न कोई उपाय सोच लेंगे। परन्तु यह दलील नितान्त ही तर्कशून्य तथा बुद्धि-मत्ता के विपरीत है। यदि हमको प्रत्येक भावी विपत्ति पर उसी समय विचार करना है, जब वह ठीक हमारे सर पर आ पहुँचे और हमको उसका प्रतिकार करने के लिए भली प्रकार सोचने-विचारने का भी अवसर न मिले, तो फिर हमारे भीतर दिमाग तथा विचार-शक्ति के होने से क्या फ़ायदा? इसके सिवा यह समस्या अब उतनी दूरवर्ती भी नहीं है जितना कि कितने ही लोग समझते हैं। अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि के निवासी अवश्य इस प्रकार की बातें कर सकते हैं, क्योंकि वहाँ सभ्य लोगो को बसे हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है और ज़मीन की बहुतायत है। पर भारत, चीन, जापान आदि जैसे देशों में तो यह समस्या कितने ही समय से मौजूद है और इसके कारण इनको बड़ी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

× × ×

अब हम माल्थस के मूल सिद्धान्त पर एक दृष्टि डालते हैं। यद्यपि इन वर्षों में अनेकों नई खोजें तथा जॉच-पडताल होने से इस सिद्धान्त का बहुत सा सशोधन और वृद्धि हुई है, पर तो भी उसकी मौलिकता में विशेष अन्तर नहीं पड़ा है। एक आधुनिक विद्वान् ने उसे संक्षेप में इस प्रकार बतलाया है.—

(१) मनुष्यों में एक ऐसी स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है, जिसे यदि यत्नपूर्वक निवारण न किया जाय, तो उसकी प्रेरणा से उनका ध्यान अवश्य ही विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करने की तरफ़ आकर्षित होता है।

(२) यह प्रत्यक्ष है कि यदि किसी देश में खाने-पीने की स्वच्छन्दता हो तो प्रत्येक व्यक्ति औसत के अनुसार दो से अधिक बच्चे उत्पन्न करके उनको पाल-पोस कर बढ़ा कर सकता है।



(३) साधारण गणित जानने वाला भी यह समझ सकता है कि यदि मनुष्य इसी नियम पर चलते रहें तो प्रत्येक पीढ़ी पहली पीढ़ी की अपेक्षा संख्या में अधिक होगी ।

(४) विज्ञान की चाहे जितनी उन्नति क्यों न हो जाय, ज़मीन की पैदावार एक नियत सीमा के भीतर ही रहेगी । प्रत्येक पौधे की जड़ तथा पत्तियों को फैलाने के लिए जितना स्थान चाहिए, उसमें कभी विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता ।

(५) यह भी अनुभव-सिद्ध बात है कि ज़मीन की पैदावार को जब बहुत अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती है तो शीघ्र ही ऐसा अवसर आता है जब परिश्रम के मुकाबले में पैदावार घटने लगती है । इसका कारण यह होता है कि निरन्तर जोती-बाई जाने से ज़मीन सारहीन होती चली जाती है । प्राचीन काल में अनेक जातियों के देश-त्याग करने का एक यह भी कारण होता था और वर्तमान समय में अपने कारख़ानों में बने माल को अधिक से अधिक परिमाण में बेचने की प्रतिस्पर्धा का मूल भी यही है ।

इन पाँच स्वयंसिद्ध बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि किसी भी देश के लिए अन्त में ऐसा अवसर अवश्य आता है, जब या तो वहाँ की जन-संख्या का बढ़ना बन्द होकर वह स्थिर हो जाती है अथवा उसे अपने जीवन-निर्वाह के लिए बाहरी स्थानों से सामग्री प्राप्त करनी पड़ती है । जन-संख्या को स्थिर करने के दो उपाय हैं । एक यह कि जन्म-संख्या घट जाय और दूसरा यह कि मृत्यु-संख्या बढ़ जाय । इसी प्रकार बाहरी भूभागों से सामग्री प्राप्त करने के दो मार्ग हैं । एक यह कि चनी आबादी वाले देश के निवासी अपने स्थान को त्याग कर नवीन स्थान में चले जायें और दूसरा यह कि वे उन स्थानों में अपने यहाँ की कारीगरी की चीज़ें बेच कर वहाँ से अन्न आदि प्राप्त करें ।

प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक देश इस प्रकार की समस्या उपस्थित होने पर इनमें से एक से अधिक उपायों से काम लेकर कठिनाई से बचने की चेष्टा किया करता है, पर तो भी प्रधानता किसी एक ही उपाय की होती है । कुछ देश फ़्रान्स के समान अपनी जन-संख्या को घटा देते हैं और कुछ देशों में, जैसे भारत तथा चीन, अतिरिक्त जन-संख्या के कारण लोग दरिद्र हो जाते हैं

और मृत्यु-संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है । जो देश इस दुर्दशा से बचना चाहते हैं, उन्हें इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा जापान की भाँति अन्य देशों में उपनिवेश स्थापित करने पड़ते हैं और अपने यहाँ के कारख़ानों में बना हुआ माल अन्य देशों में बेचने की चेष्टा करनी पड़ती है ।

इस बात का ठीक-ठीक हिसाब लगा सकना बड़ा कठिन है कि किसी देश की जन-संख्या किम हिसाब से बढ़ती है । क्योंकि जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, जब तक किसी देश में स्थान की कमी नहीं होती और जीवन-निर्वाह की सामग्री सुगमता से प्राप्त हो सकती है, तब तक जन-संख्या की वृद्धि का परिमाण अधिक रहता है । पर जब ज़मीन कम हो जाती है और खाने-पीने की सामग्री भी कठिनाई से प्राप्त होने लगती है, तो जन्म-संख्या घट जाती है और मृत्यु-संख्या बढ़ने लगती है । विशेषज्ञों ने मोटा हिसाब लगा कर मालूम किया है कि वर्तमान समय में संसार की जन-संख्या की वृद्धि का जो क्रम देखने में आ रहा है, उससे साठ वर्ष में उसका दुगुना हो जाना निश्चित है । इस गणना के अनुसार सन् ३००० ईस्वी में पृथ्वी की जन-संख्या १ अरब ८० करोड़ से बढ़ कर ३४ अरब हो जायगी ।

जब हम पृथ्वी के स्थल-भाग की ओर दृष्टि डालते हैं तो मालूम होता है कि उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव के हिम-प्रदेशों को छोड़ कर समस्त संसार में ३३ अरब एकड़ ज़मीन है, जिसमें से ४० प्रति सैकड़ा खेती के काम आ सकती है । वर्तमान समय में विभिन्न देशों में एक व्यक्ति के निर्वाह के लिए प्रायः दो से तीन एकड़ ज़मीन की आवश्यकता पड़ती है । यदि हम इस संख्या को ढाई एकड़ मान लें तो समस्त संसार की कृषि योग्य भूमि से पाँच अरब से अधिक व्यक्तियों का निर्वाह नहीं हो सकता ।

इस सिद्धान्त के कुछ विरोधी इस गणना को ठीक नहीं समझते । वे अपने पक्ष को प्रमाणित करने के लिए जापान की तरफ़ इशारा करते हैं । जापान की आबादी ५ करोड़ ६० लाख है और वहाँ सिर्फ़ १ करोड़ ८० लाख एकड़ भूमि में खेती की जाती है । वहाँ के किसान खाद का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं, यहाँ तक कि एक एकड़ भूमि में सौ मन से भी अधिक खाद डाली जाती है, जिससे उसकी पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाती है ।

इस प्रकार जापान में एक एकड़ भूमि से तीन व्यक्तियों का जीवन निर्वाह होता है ।

पर जब इस विषय में अच्छी तरह जाँच-पड़ताल की जाती है, तो जान पड़ता है कि जापान का उदाहरण सर्वथा सत्य नहीं है । पहली बात तो यह है कि वहाँ की समस्त जन-संख्या का पालन अपने देश की पैदावार से नहीं होता । करीब १ करोड़ ६० लाख व्यक्तियों का काम विदेश से आने वाली भोजन-सामग्री से चलता है, जो विदेशों में बिकने वाले जापानी माल के बदले में प्राप्त होती है । दूसरी बात यह है कि जापान में ज़मीन की शक्ति को अधिक से अधिक उपयोग में लाया जाता है और अब उसमें वृद्धि की कुछ भी गुंजायश नहीं है । वहाँ इस सम्बन्ध में यहाँ तक चेष्टा की जाती है कि कम उपजाऊ भूभागों के ऊपर की अच्छी मिट्टी को खोद कर उर्वर स्थानों में ढाल दिया जाता है, जिससे वह निरर्थक न जाय । इसलिए यदि अब वहाँ खेती की भूमि का परिमाण बढ़ाने की चेष्टा की जाय तो उससे बहुत ही कम लाभ होगा, क्योंकि शेष ज़मीन बहुत ही घटिया है और खाद के पदार्थ भी अब अधिक नहीं मिल सकते ।

तीसरी बात यह है कि जापान के निवासियों का रहन-सहन और खाना-पीना बहुत ही साधारण है । यदि वे अमेरिका और यूरोप के निवासियों के समान खाने लगे तो वहाँ की पैदावार से ४ करोड़ के बजाय केवल २ करोड़ व्यक्तियों का ही निर्वाह हो सके । वे लोग आकार में भी अमेरिकियों और यूरोपियों से छोटे होते हैं, और इसलिए उनकी खुराक कम होती है । इसलिए जैसा ऊपर अनुमान लगाया गया है, इस पृथ्वी पर पाँच अरब से अधिक व्यक्तियों का निर्वाह किमी प्रकार नहीं हो सकता और यदि जन-संख्या की वर्तमान वृद्धि स्थिर रहे, तो वह सौ वर्ष के भीतर ही इस सीमा तक पहुँच जायगी । इससे स्पष्ट है कि जनसंख्या की समस्या दूरवर्ती नहीं है, वरन् उस पर अभी से पूर्ण लक्ष्य रखने की आवश्यकता है ।

×

×

×

जब हम भारतवर्ष की जन-संख्या के प्रश्न पर विशेष रूप से विचार करते हैं, तो प्रतीत होता है कि यह देश अतिरिक्त जन-संख्या के भार से पीड़ित है और इसके अनेक कष्टों का कारण यही है । मात्थस का

सिद्धान्त है कि जब किसी देश की संख्या उचित से अधिक बढ़ जाती है, तो अनेक कारणों से उसकी गति मन्द पड़ जाती है । इस सिद्धान्त की सत्यता आजकल भारतवर्ष में पूर्णतया परिलक्षित हो रही है । सन् १८७२ से १९२१ तक भारतवर्ष की जन-संख्या में ११ करोड़ २० लाख की वृद्धि हुई, जिसमें से ५ करोड़ ६० लाख व्यक्ति नवीन प्रदेशों के सम्मिलित होने से बढ़े थे । इस प्रकार इन पचास वर्षों में इस देश की जन-संख्या में २० प्रति सैकड़ा की वृद्धि हुई, जब कि इसी बीच में यूरोप की जन-संख्या ४७ प्रति सैकड़ा बढ़ी । कनाडा, अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में जन-संख्या की गति इससे कहीं अधिक तीव्र है । इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इस देश की जन्म-संख्या घट गई है । इसके विपरीत अधिकांश देशों से यहाँ की जन्म-संख्या अब भी अधिक है । पर जितने व्यक्ति यहाँ जन्म लेते हैं, प्रायः उतने ही मर भी जाते हैं और फलस्वरूप जन-संख्या में नाम-मात्र की वृद्धि होती है । यूरोप के इंग्लैण्ड, फ्रान्स, बेल्जियम, जर्मनी, इटली और स्पेन आदि देशों में औसत तौर पर जन्म और मृत्यु-संख्या का अनुपात ३११ और २२० प्रति सैकड़ा है, भारत में वह ३१४ और ३०८ प्रति सैकड़ा है । इस प्रकार जहाँ यूरोप की जन-संख्या प्रति वर्ष ११ प्रति सैकड़ा बढ़ती है, भारत की जन-संख्या में केवल २६ प्रति सैकड़ा की वृद्धि होती है । यह हिसाब सन् १९१० तक का है । उसके बाद यह वृद्धि और भी क्षीण हो गई है और आजकल यहाँ की जन-संख्या की वृद्धि ४८ प्रति सैकड़ा से भी कम है ।

इस अतिरिक्त जन-संख्या का प्रभाव इस देश-वासियों के लिए बड़ा भीषण हुआ है । यद्यपि इस देश में सब प्रकार के प्राकृतिक साधन मौजूद हैं और यहाँ की भूमि भी उत्तम श्रेणी की है, तो भी यह संसार के समस्त देशों की अपेक्षा शरीर है । जब कि अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति की औसत वार्षिक आमदनी ६७२ रु०, इंग्लैण्ड में ६७६ रु०, फ्रान्स में ५१३ रु०, जर्मनी में ४०६ रु० और भारतवर्ष के एक व्यक्ति की आमदनी केवल ७४ रु० है । इस दरिद्रता का मुख्य कारण जन-संख्या के अतिरिक्त रूप से बढ़ जाने से यहाँ की उत्पादिका शक्ति का क्षीण हो जाना ही है । उद्योग-धन्धों के अभाव से यहाँ के निवासियों को मुख्यतः खेती पर ही



निर्भर रहना पड़ता है, और कृषि के योग्य ज़मीन का दिन पर दिन अभाव होता जाता है। इतना ही नहीं, यहाँ के निवासियों ने अन्य देशवासियों की भाँति भूमि की पैदावार को बढ़ाने की भी कोई चेष्टा नहीं की है और न उनके पास इसके लिए उपयुक्त साधन हैं। इसलिए ज़मीन की उर्वरा-शक्ति भी दिन पर दिन घटती जाती है और इस दृष्टि से भारत का स्थान संसार के देशों में बाईसवाँ है।

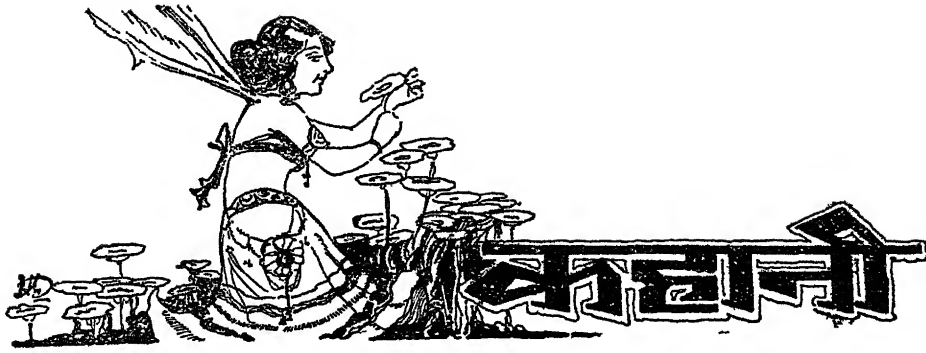
कितने ही लोगों का मत है कि भारत की इस दरिद्रता का मुख्य कारण विदेशी शासन है और यदि उसे स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार प्राप्त हो जाय, तो वह अपनी उत्पादिका शक्ति को बढ़ा कर अतिरिक्त जन-संख्या की समस्या को हल कर सकता है। पर वास्तव में यह उन लोगों की कल्पना मात्र है। अर्थशास्त्र के जिन विशेषज्ञों ने इस प्रश्न पर विचार किया है, उनकी सम्मति है कि चाहे इस देश में कैसा भी शासन स्थापित क्यों न हो जाय, इस समस्या का सन्तोषजनक निर्णय उससे नहीं हो सकता। अब भी भारत में सब मिला कर जितनी खाद्य सामग्री उत्पन्न होती है, वह यहाँ की समस्त जन-संख्या का भली प्रकार निर्वाह कर सकने के लिए पर्याप्त नहीं है। यह सच है कि अभी यहाँ की कृषि योग्य भूमि में से १५ प्रति सैकड़ा व्यवहार में आती है और ४५ प्रति सैकड़ा खाली पड़ी है। पर इस ४५ सैकड़ा ज़मीन को खेती के काम में लाने के लिए आबपाशी, पानी के निकास का प्रबन्ध, नवीन ढ़ाँची खाद और अन्य वैज्ञानिक साधनों से काम लेने की आवश्यकता है। इन तमाम विधियों में निपुणता प्राप्त करने तथा इनके लायक पूँजी इकट्ठा होने में पचास वर्ष से कम समय न लगेगा और तब तक यहाँ की आबादी भी अब से खोड़ी हो जायगी।

इस प्रकार साधनों की अल्पता और कार्य-शक्ति की हीनता के कारण वर्तमान समय में भारतवर्ष संसार में सबसे अधिक अतिरिक्त जन-संख्या वाला देश बना हुआ है। इसके फल से यहाँ सदा अकाल और महामारियों का प्रकोप रहता है और लोगों की जीवनी शक्ति बहुत ही घट गई है। इङ्ग्लैण्ड तथा यूरोप के अन्य

देशों में जहाँ सर्व-साधारण की परमायु औसत तौर पर ५० वर्ष है, हमारे यहाँ वह २५ वर्ष से भी कम है। हमारे देश में वृद्ध भी बहुत बड़ी संख्या में मरते हैं। जनता में फैली हुई अशिष्टा, गन्दगी तथा अन्य अनेक दोषों का कारण भी यही है। यदि हमने समय पर जन-संख्या को नियन्त्रण में रखने की चेष्टा की होती तो आज हमारी अवस्था वर्तमान दशा की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम होती।

हमारे पाठक प्रश्न करेंगे कि आखिर इस बात का निर्णय कैसे हो कि अमुक देश कितनी जन-संख्या के निवास के उपयुक्त है? इसका निर्णय तब तक सन्तोषजनक रूप से नहीं हो सकता, जब तक कि वहाँ की सब प्रकार की आर्थिक स्थिति सम्बन्धी सबे अङ्क सामने न हों। खेद का विषय है, भारत के सम्बन्ध में ये अङ्क बहुत अपूर्ण हैं। पर यदि हम अन्य देशों के अङ्कों पर ध्यान देकर उनसे अपनी अवस्था मिलान करें तो इस सम्बन्ध में किन्ही अंशों में सच्चा अनुमान हो सकता है। इस दृष्टि से विचार करने पर मालूम होता है कि यूरोप अथवा अमरीका की जन-संख्या को औसत तौर पर जितनी खाद्य सामग्री की आवश्यकता होती है, उसके हिसाब से हमारे यहाँ एक तिहाई सामग्री कम उत्पन्न होती है। दूसरी बात यह है कि भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाली खाद्य सामग्री में यूरोप और अमेरिका की खाद्य-सामग्री की अपेक्षा स्वत्व भी बहुत कम होता है। तीसरे इस देश में जितनी मानवीय शक्ति है, उसका एक तिहाई भाग पूरा काम न मिलने के कारण और एक तिहाई अशिष्टा और बीमारियों के कारण व्यर्थ ही नष्ट होता है। चौथे जैसा हम ऊपर दिखला चुके हैं, विद्वानों के मतानुसार एक व्यक्ति के निर्वाह के लिए १॥ एकड़ ज़मीन की आवश्यकता है, और भारत की ४८ करोड़ एकड़ कृषि योग्य भूमि को देखते हुए यहाँ केवल १९ करोड़ व्यक्तियों के रहने की गुंजायश हो सकती है। इन तमाम बातों को दृष्टिगोचर रखते हुए यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि इस देश में वर्तमान जन-संख्या का केवल एक तिहाई या अधिक से अधिक आधा भाग ही सुख तथा शान्तिपूर्वक निवास कर सकता है।





कल्पना

[श्री० वाचस्पति पाठक]



डे की सन्ध्या शहर के पीछे बसे इन गाँवों में उदासी छा देती है। आकाश से उतरते हुए कुहरे में बसे को लौटती हुई चिड़ियों का चहचहाना और पेड़ों की हिलती हरियाली उसमें दृब जाती है। परिश्रम से थके मनुष्य घरों में छिपने लगते हैं। यहाँ अल्लाव तो जलते नहीं, रात का पहला घण्टा ही सजाटा भरने लगता है। पर आज हजारों का मन तरङ्गे ले रहा था। वह अकेला ही अपनी भोंपड़ी के बाहर बैठ कर, जो एक तरह से मैदान ही था, कभी आकाश की ओर दृष्टि दौड़ाता और कभी अपने ही चारों ओर देख कर अपनी विजय का चित्र अंकित कर रहा था।

उसकी अभी जवानी थी, उसके स्वभाव में निर्भीकता थी। इसीलिए उसके भाई-बन्द उसे केवल अकड़-बाज़ समझते थे। उसकी बुद्धि पर किसी को विश्वास नहीं था। पर उसके विरुद्ध जाना वह पाप समझता था और आज सफलता के साथ उसने उसका परिचय भी दे दिया। उसके विरोधी उसका लोहा मान कर चुप हो गए थे। भीतर ही भीतर हामी भी भर ली थी और उनके गौरव को भी इसने अधिक चमका दिया था। इसी विश्वास के कारण वह प्रसन्न था।

२

बात यह हुई थी कि इन दिनों हरिजनों की दशा की जाँच हो रही थी। जब हजारों के गाँव में जाँच वाले पहुँचे तो गाँव के सब लोग इकट्ठे हो गए और आश्चर्य तथा सम्मान से आगन्तुकों को घेर लिया। हजारों ने पहुँच कर देखा कि ये पुराने उजबक, जैसा कि वह समझता था, उनके प्रश्नों का जैसा चाहिए वैसा उत्तर नहीं दे पाते हैं। उसने नेतृत्व अपने हाथ में लेकर खरा उत्तर देना शुरू किया। जाँच करने वालों ने उसे इसके लिए अवकाश भी दिया। हजारों से जब पूछा गया कि क्या हिन्दू तुमसे बुरा व्यवहार करते हैं? उसने मर्म-भेदी व्यङ्ग्य करने के लिए ही चिकनी बातों में कहा था—बाबू, मेरे इस हाथ को (जिसके काफ़ी खून और शक्ति का उसे गर्व था) चीर कर देख लो, इसके खून का रङ्ग भी वैसा ही लाल-लाल और दौड़ने वाला है, जैसा कि दुनिया के सब आदमियों का होता है। पर इसे किसने समझा है? आपने? क्या आप अपने ही ऐसा हमें भी समझते हैं? कभी नहीं। हम लोग शरीर हैं, हमारे शरीर पर वस्त्र नहीं, पेट में दाने नहीं, ऐसों को नीच नहीं तो क्या कोई देवता समझेगा? इन प्रश्नों का जाँच करने वालों ने जो उत्तर दिया था, उसका उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। जीत उसके हाथ रही।

हजारों वास्तव में बुरा आदमी न था। वह जवान था और जवानी की मस्ती उसके पास थी। वह किसी



का अन्याय नहीं सह सकता था। इसीसे उसका विरोध प्रबल हो उठता। किन्तु उसके विरोध का मूल्य इतना सीमित और व्यर्थ हो जाता कि जिसकी हीनता उसकी सम्पूर्ण शक्ति का गला घोट कर उसे निर्बल कर देती। उसने अपने साथियों के लिए जितने भी ऋण्डे मोल लिए उन सब में उसे मुँह की खानी पड़ी। कभी किसी ने उसे इसके लिए अच्छा नहीं समझा। अस्तु।

परन्तु उन आगन्तुको ने उसकी बात मान ली थी। उन्होंने आदर के साथ कहा था—“तुम ठीक कहते हो भाई! इस पाप के भागी भी हमी हैं। परन्तु अब जब हम चेतें हैं, तब तुम भी ऐसा हाथ बटाओ कि हम अपना कलङ्क मिटा सकें।” हजारों ने गर्व से इस विजय-विमण्डित सन्धि को स्वीकार कर लिया। यह उल्लास उसके मन को विह्वल कर देने के लिए कम न था। उसका मन स्वप्न की तरह मनोरम हो उठा। वह उसी में तल्लीन था। इतने में उसके कानों में आवाज़ आई—“हजारा!”

उसने चौंक कर देखा, बीरे खड़ा कह रहा है—क्या आज डेन साफ़ नहीं होगी? आठ बज गए हैं, चलो गाड़ी जोत लें।

हजारा ने होश में आकर कहा—चलो। और उठ कर खड़ा हो गया। इसके बाद अपने चारों ओर देख कर उसने कहा—“अभी तक बेटी की माँ नहीं आई। मैं उसी की बाट देख रहा था। खैर, वह राह में मिल जायगी। पर मैं कुछ खा न सका।” यह कहता हुआ वह बीरे के पीछे चलने लगा।

हजारा ने पूछा—तुमने तो खा लिया होगा। अच्छा ही किया। जाड़े की रात में गर्म-गर्म कुछ खा लेने से थोड़ी गर्मी तो शरीर में रहेगी।

उसकी तृप्ति को, जैसे उसके रङ्ग को गाढ़ा करके वह अपने सामने ही देख रहा था। पर बीरे का चुप रहना उसे अच्छा न लगा। उसने फिर कहा—तुम्हें आलस और कँपकपी सता रही है क्या?

बीरे ने अबकी सिर हिला कर कहा—नहीं। और अपनी चाल बड़ा दी।

वे दोनों अब अपनी गाड़ी के पास पहुँच गए थे। वहीं पास में मैसा बैठा था। बीरे ने उसे खोल कर गाड़ी में जोत लिया। दोनों उस पर जाकर बैठ गए।

बीरे ने उत्साह से गाड़ी को हॉक दिया। वह इसी पर कूड़ा और कीचड़ लाद कर फेंका करता था।

वे जिस बस्ती में रहते थे, वह शहर के मुहल्लों के पीछे सट कर बसी होने पर भी उसकी सत्ता ग्रामों से हीन थी। उसकी निर्जनता का भोग, अपने अपमानित जीवन के घृणित और परिश्रमपूर्ण कार्य का शेष कर, वे ही अपने को वहाँ छिपा कर, कर सकते थे। क्योंकि वहाँ सजीवता का—उस गढ़ही को छोड़ कर, जो वाटर-वर्क्स के गँदले पानी से स्वतः बन गई थी—कोई चिह्न न था। वही किसी करुणा के आँसू के जल की भाँति उनकी तलहटी को सींचती थी। जिसे पीकर वे प्यास बुझा लेते थे। उनकी यह बस्ती भी उस गाड़ी के पीछे विपरीत दशा में भाग कर ओझल हो गई थी।

उनकी गाड़ी अब बिजली की रोशनी से प्रकाशित पक्की सड़कों पर आगई थी। दोनों उत्साह में भर रहे थे। बीरे एक ग़ज़ल का टुकड़ा अपनी धीमी तानों में उड़ा रहा था। हजारा भी उसकी दाद देने में पीछे न रहा।

बीरे ने अपनी काली गाड़ी, जिसका नया नम्रर ही केवल चमक रहा था, शैतान की खूनी आँखों सी लाल थाने की ऊँची इमारत के सामने लाकर खड़ी कर दी। हजारा उसे देख कर “जमादार साहब सलाम!” की आवाज़ लगाता अपनी हाज़िरी देने के लिए उत्तर पढ़ा। क्योंकि इस जाति के लोग भी उनमें हैं, जो जन्मत-चोर, डाकू और उच्छेक समझे जाकर पुलिस के रजिस्टर में दर्ज होते हैं। इन्हें रात में निश्चित समय के बाहर घर से निकलने पर उसकी अवधि लिखानी पड़ती है।

थाने में वह अपनी दोनों की ड्यूटी लिखा कर फिर गाड़ी में था बैठा। गाड़ी चल पड़ी। वह अभी कुछ ही दूर गई थी कि पत्तलों से ढँकी भाँपी और बगल में एक नन्हें से बच्चे को संभाले सलोनी आती दिखलाई पड़ी। उसके साथ और भी दो-चार बच्चों थीं। हजारा चलती गाड़ी में ही उठ कर खड़ा हो गया। सलोनी उसे देख रही थी। हजारा कह रहा था—तूने बड़ी देर लगाई। चल, आ तू भी बैठ जा। अब साथ ही लौटेंगे।

बीरे ने गाड़ी रोक दी। सलोनी आ बैठी। हजारा खूँच रहा था, अब काम सरल हो गया। उस जाड़े की रात में एक दूसरे को देख कर प्रसन्न हो उठे।



ढेन की मोरी पर पहुँच कर बीरे ने गाड़ी रोकी। हजारों भी काम पर जुट गया। वह मोरी खोल कर नीचे उतर पड़ा। सलोनी बच्चे को वहाँ सबक के किनारे सुला कर रस्सी के सहारे कीचड़ से भरी बाखरी ऊपर को खींचने लगी। बीरे भी गाड़ी नज़दीक रख कर उसे भर रहा था। शहर की इन सबकों पर दिन में काम हो नहीं पाता। फिर वे जल्दी न करे तो क्या करे? तो भी दो तीन घण्टे तो लगते ही हैं। इतने ही समय के लिए वे समाज के आदमी हो पाते हैं। जिसका अभिशाप पुरत-दरपुरत से वे जीवन में ढो रहे हैं। फिर भी मिहनत से उन्होंने अपना काम ख़त्म किया। बीरे कीचड़ से भरी गाड़ी लेकर चला गया।

हजारा बाहर निकल कर अपने को देखने लगा। उसके हाथ-पैरों के ऊपर से सड़े कीचड़ का गीला पलस्तर ढीला होकर गिर रहा था। सलोनी ने उसे निराश दृष्टि से देख कर कहा—अब कल में पानी भी तो न होगा।

हजारा ने उदास मन से कहा—तो क्या गङ्गा भी सूख जायँगी?

उसे इस रात में जाड़े और जल्दी की मानों परवाह नहीं है। सलोनी ने बच्चे को उठा लिया और दोनों सबक की बगल की गलियों से चल कर गङ्गा-तट पर पहुँच गए। हजारा ने अच्छी तरह गङ्गा-स्नान करके अपने को साफ़ कर लिया।

हजारा सदैव का इतना उस्ताही था कि सलोनी को उसके आज के भीतरी उस्ताह का पता ही न लग सका। हजारा का परिश्रम-क्लान्त शरीर और भूख से सुर्माया हुआ मुख वह देख रही थी। उसने कहा—“न हो कुछ खाकर यही पानी पी लो। भूख तो लगी ही होगी।” पर वहाँ शीन तेज़ थी। कुहरे में जैसे चाँद भी धूमिल था। सलोनी यह देख कर काँप उठी। उसने जल्दी में कहा—ऊपर ही चले चलो। यहाँ ओस बहुत है।

हजारा राज़ी हो गया। दोनों सीढ़ियों चढ़ कर गङ्गा में आ गए, जहाँ का प्रकाश उनकी छाया लेने में भी असमर्थ था।

हजारा एक हलवाई की भट्टी के सामने आकर रुक गया। उसने उसके चारों ओर देख कर सलोनी से

कहा—यहाँ रुक जायँ? बारह तो बज ही गई होंगे। आखिर सबेरे ही सबक साफ़ करने को लौटना पड़ेगा। कुछ सोने को न मिलेगा। वह सोच रहा था कि कुछ खाने को तो साथ है ही। सलोनी शीत से डर कर बोली—कहाँ ठहरोगे?

उसे अपने बच्चे की भी फ़िक्र थी। भट्टी के पास जाने की हजारा की हिम्मत नहीं पड़ी। किसी के देख लेने पर उसका फल बुरा होता। उसने कहा—यहाँ भट्टी है, उसी के सामने नीचे सबक पर पड़ रहेंगे तो ख़ासी गर्मी मिलेगी।

वह वही भट्टी की दीवाल से टिक कर बैठ गया। सलोनी कितने ही पत्तजों से इकट्ठी की हुई रोटियों के टुकड़े सामने रख कर बोली—लो कुछ खा लो, पर थोड़ा ही तो है।

सहायभूति का परिचय पाकर हजारा के मन में फिर जाल पड़ गया। उसने उधर बिना देखे ही कहा—बहुत है। खाते-खाते उसने कहा—जॉच वाब्रे आए थे। उनका मतज़ब तुमने समझा? हमने भी तो ख़ूब जवाब दिया—हजारा ने उस्ताह से कहा—अब देखना है कि क्या करते हैं।

“कुछ न करके एक कुआँ ही बनवा देते!”—आह भर कर सलोनी ने कहा—“ठण्डा पानी जब लोगों के बच्चे पीते हैं, तो मेरा दिल जैसे रो उठता है। भला, पानी का तो आराम हो जाता।”

“नहीं, अब तो कुछ और भी काम सिखलाएँगे!” हजारा बतलाने लगा—“उसीसे कुछ और पैसे मिलते? कभी तो हाथ में पैसा ठहरा नहीं। अपना काम करते, अपने घर खाते, यह टुकड़े न बटोरना पड़ता तो कैसा अच्छा होता सलोनी?”—कह कर उसने सामने का पत्तल हटा दिया—“अब तो नहीं खाया जाता।”

“खा लो—अभी खाया ही क्या?”—कह कर सलोनी उसे रोकने लगी।

“सचमुच भूख नहीं है।”—हजारा ने कह कर हँसते हुए पूछा—“तब तो तू रानी ही बना चाहेगी। वाह रे सलोनी!”—वह जैसे प्यार से लड़खड़ा रहा था। वहीं सोने के लिए पड़ भी गया।

सलोनी लजा गई। उसने बात काट कर कहा—“तुम्हीं राजा बन लेना! मैं तो तब भी भिखारिनी ही

रहूंगी। अपने द्वार से लौटा तो न दोगे ?” उसकी आँखों में अब भी विश्वास की भीख थी।

हजारा भरे मेव की भाँति गम्भीर हो गया और बोला—तब तू क्या लेगी ?

“तुम्हीं को माँग लूँगी तब ?”—सलोनी ने हँस कर कहा और हजारा की गोद में छिप गई।।

हजारा के मन में स्वप्न सा नाचने लगा। सलोनी भी बच्चे को संभाल कर पड़ रही थी। दोनों को सो जाने की आवश्यकता थी। पर हजारा के मन की पेंग जीवन में एक अपरिचित आशा के धक्के खाकर बढ़ने लगी। वह सलोनी से कहने लगा—“सचमुच अगर एक बार कुछ पैसा बचोर पाता। देख न, उसी के बल से सब बिखरे रहते हैं। पैसे से ही इस नगर में कैसे आदमी रहते हैं। उनके सुख का भी कहीं अन्त है।” कह कर हजारा चुप हो गया।

हजारा सिर्फ एक पुराना कोट बदल पर डाले हुए था। ऊपर से एक फटी जाकेट जरूर उसे कसे हुए थी। उसने और भी सिक्का कर जाकेट की जेब में अपना हाथ छिपा लिया। उसकी आँखों में ऊँचे महल, सुन्दर बागीचों के खिले फूल और उनमें रहने वाले आदमियों के सुख के अनन्त साधन एक साथ ही उतर पड़े। वह भी उनके बीच अपने को मिला कर भूल पड़ा। यह पीकर भी होश में रहने वाला हजारा था। जिसने जीवन भर ग्लानि के ही चित्र देखे थे। वह आज अपने को संभाल न सका। वह बड़ी-बड़ी महफिलों के गाने-बजाने और राग-रङ्ग में भरे समुदाय के बीच लड़खड़ा रहा था। उसने पत्नी को प्यार से अपनी ओर खींच कर पुकारा—सलोनी !

“देखो बच्ची दवे न !”—कह कर वह संभल गई ! वह भी अपने परिश्रम के बल पर कल्पना कर रही थी। उसके साफ़-सुथरे घर के सामने बच्चे शोर करते हुए खेल रहे हैं। वह सखियों के सङ्ग बैठी काम कर रही है। वह बच्चों को डाँटती नहीं है। सुख से भरा उसका घर है। बहुत दिनों से जैसे उसने दुख समझा ही नहीं। उसके बीच से सलोनी फिर ज़मीन पर आ गई। उसे अच्छा न लगा—“सो भी लो !” हजारा से कह कर वह फिर अपने स्थान पर चली गई।

सचमुच उन्हें सो जाने की आवश्यकता थी। वे दिन भर के थके थे। सलोनी तो फिर शाम को काम पर गई थी। उसे एक भोज में कुछ रोटियाँ पाने की आशा थी। दिन भर के परिश्रम के बाद नींद बड़ी प्यारी होती है। किन्तु आज एक नई आशा, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी, आलोकमय भविष्य की अर्गला पर हाथ रख रही थी। वे उत्सुकता से विकल हो रहे थे। अभी आँखों में नींद भरपूर जम न पाई थी।

रात दो बजे के बीच चल रही थी। सिपाहियों की सीटियाँ और ‘जागते रहो’ का स्वर उसे चञ्चल कर रहा था। हजारा उनका स्मरण भी न कर पाता, पर सिपाहियों का दल आकर उसके सामने खड़ा हो गया। एक ने पूछा—यह कौन सोता है, धीरसिंह ?

हजारा सगबगा उठा था। पर उठ न पाया। उसने उन्हें भी कल्पना में देखा—वही घोड़े पर सवार होकर गरत में निकले, उसके जाने-पहिचाने थानेदार और साथ में उनके सिपाही ! पर सलोनी चौंक कर उठ बैठी थी। वह जल्दी-जल्दी बता रही थी—डेन साफ़ करने में देर हो गई थी सरकार ! सबेरे झाड़ू देने के लिए यहाँ लोट रहे !

“हूँ”—घोड़े पर वाले ने कहा—“पकड़ लो इनको। यह साले रात में इसी बहाने रह कर चोरी करते हैं। अभी परसों उस दूकान का ताला टूटा है।”

हजारा तब तक खड़ा हो गया था। उसने चमक कर पूछा—क्या ?

“क्या, क्या वे ? चल इधर !” कह कर सिपाही ने धक्का दिया। सलोनी मुँह खोल कर रो पड़ी। वह कुछ कह भी रही थी। थानेदार ने डाँट कर कहा—चुप रह। सिपाही से कहा—ले चलो इन्हें !

हजारा जैसे अभी तक स्वप्न देख रहा था। वह कुछ बोला ही नहीं। उसकी कल्पनाएँ न जाने कहाँ बिली गई थीं। उसके घटनाहीन जीवन में एक सुन्दर प्रभात आया था, पर वह उसे भी भर आँखों न देख पाया। कुछ ही क्षण बाद उसके विडम्बनापूर्ण जीवन का वही प्राचीन अध्याय लगा था। वह विस्मृत होकर उनके पीछे चला जा रहा था।



दिल्ली की अन्तिम ज्योति

[श्री० लक्ष्मणप्रसाद 'भारद्वाज']



गल-कालीन इतिहास के साथ भारतवर्ष के तीन नगरों—आगरा, दिल्ली और रङ्गून का विशेष सम्बन्ध है। इनमें से पहले दो नगरों की दीवारें अपनी मूल भाषा में मुगल-सम्राटों के उच्चतम कोटि के वैभव, उनकी अपार सम्पदा और उनके विश्व-विख्यात ऐश्वर्य की कहानी कहती हैं और रङ्गून की गलियाँ अपने दर्दनाक स्वर में—आहभरी कराह के साथ—उसके कष्टोपादक अन्त की कथा कह कर सुनने वालों को आँखों से आँसुओं की धारा बहाने को विवश कर देती हैं। आगरा का ताजमहल और दिल्ली का हुमायूँ का मक़बरा अपनी अपनी छायों में शाही शान शौकन को दबाए पड़े हैं—उनमें मुगल ज़माने का असीम ऐश्वर्य दफ़न है। ये दोनों इस वंश के तीन सौ और इकतीस वर्षों के शासन-काल के स्वर्णयुग की स्मृतियाँ हैं, जिन्हें देख कर उन सम्राटों की याद स्मृति पट पर आकर नाचने लगती है। जिनकी एक हुज़्जार से जगत् का कोना-कोना कोप उठता था, जिनकी कृपा-कटाक्ष से सैकड़ों के भाग्य खुल जाते थे—दुर्लभ से दुर्लभ सासारिक सुख उनके चरणों को चूमने लग जाते थे और जिनकी एक ही कोप-दृष्टि से—ज़रा सी तिरछी नज़र से—करोड़ों की क्रिस्मत बिगड़ जाती थी—बड़े-बड़े घराने घण्टे भर में तबाह होकर रोटी-कपड़े तक को मुहताज हो जाते थे, ऐसे प्रतापशाली सम्राटों की सन्तान को भी एक दिन खुद खाने-पीने को मुहताज होकर परमुखापेची होना पड़ा। उनके लाड़ले शाहज़ादों को पाँच-पाँच रुपए की पेन्शन पर गुज़ारा करने के लिए मजबूर होना पड़ा। उनकी भोली-भाली, सुकुमार और कोमलाङ्गी शाहज़ादियों को, जिनकी नाज़बंदारी के लिए दर्जनों दासियाँ हर समय हाथ बाँधे खड़ी रहती

थी, एक दिन विजन बन में भटकना पड़ा। जिनके पुरखे और पुरखिनों की क़र्ज़ों पर करोड़ों रुपए की लागत के सौध गौरव से अपना सिर उठाए खड़े हैं, उन्हीं के बख़्तों की क़र्ज़ों के लिए चार पक्की ईंटें तक नसीब न हो सकी। मानों वे कह रहे हैं—

आज दो फूल को मुहताज है तुरबत मेरी।

भारत के बड़े-बड़े राजे-महाराजे जिनके जनाज़े के साथ चलना सौभाग्य की बात समझते थे और जिनकी मृत्यु का समाचार सुन कर सारे संसार में सनसनी फैल जाती थी, उनकी श्रीलाद के मरने की ख़बर से किसी के कानों पर जूँ तक न रेंगी। जिनके रमणीक एवं सुरम्य निवास-स्थानों को देखकर शायद अमरपुरी तक के निवासियों का जी तरस जाता था, उनकी सन्तान को उन विशाल राजप्रासादों को छोड़ कर बन्दी-गृहों की अँबेरी कोठरियों में आँसू बहाते-बहाते जीवन यापन करना पड़ा। यद्यपि वे भवन आज तक ज्यों के त्यों खड़े, पुकार-पुकार कर कह रहे हैं—

जिनकी रोशनी थी ज़माने में,

आज उनके घर में चिराग़ नहीं।

जिनके दैनिक खर्च का हिसाब लाखों रुपए पर पहुँचता था, उन्हीं के लख्ते-जिगर मरते समय बाज़ार के छोटे-छोटे दूकानदारों के क़र्ज़ की कालिमा अपने साथ लेते गए और जिये बाद में ब्रिटिश सरकार को अपने ख़ज़ाने से चुकाना पड़ा—आदि ये सारी बातें ऐसी हैं, जिन पर सहमा विश्वास करना कठिन है। परन्तु जो ऐतिहासिक सत्य है, उसे स्वीकार करने में सङ्कोच को स्थान नहीं रहता। भगवान की इच्छा सर्वोपरि और प्रबल है। सम्भव को असम्भव और असम्भव को भी सम्भव कर दिखाना उसकी शक्ति से बाहर नहीं।

जिस राजवंश से हमारा यहाँ अभिप्राय है, उसकी स्थापना पानीपत के मैदान में सन् १५२६ ई० में हुई।

लोदी वंशीय अफगानों के साम्राज्य के पतन के बाद उसीके खण्डहरों पर बाबर ने मुगल-साम्राज्य की नींव का पथर रक्खा था। तब से लेकर इस साम्राज्य को बीच-बीच में कई करारी चोटें भी खानी पड़ीं, जिसके कारण इसकी नींव को बड़ा गहरा धक्का लगा और परिणाम-स्वरूप यह दिन-दिन जीर्ण-शीर्ण-वस्था को प्राप्त होता गया। परन्तु अभी तक इसका अस्तित्व सुरक्षित था। सन् १५५७ में ग्दर के रूप में जो भूकम्प उठा था, उसने इस भवन को जड़ से उखाड़ फेंका और संसार से इसका नामोनिशान मिटा कर ही दम लिया। जिस प्रकार वीर बाबर को इस वंश का आदि सम्राट् कहलाने का गौरव प्राप्त है, उसी तरह अभागे बहादुर-शाह को इस वंश का अन्तिम सम्राट् के नाम से याद किया जाता है। अतएव मुगल-काल के इतिहास में बाबर और बहादुरशाह दोनों ही का प्रमुख स्थान है, यद्यपि दोनों को यह स्थान दिए जाने के कारण वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

बहादुरशाह 'जफर'

बहादुरशाह का जन्म १५ अप्रैल सन् १७७५ ई० को दिल्ली में हुआ था। अपनी भगवद्भक्ति, नेकचलनी, रहमदिली और उदारता से बहादुरशाह ने लोगों के दिलों को प्रारम्भ ही से जीत लिया था। उसे गरीबों से बड़ी मुहब्बत थी। उसकी इत्साफ-पसन्दी यहाँ तक बढ़ी चढ़ी थी कि बिना नौकरों को खाना खिलाए खुद कुछ न खाता था। दिल्ली के बादशाह के लिए यह कोई छोटी बात न थी। वह अपने मज़हब का भी बड़ा पाबन्द था, यहाँ तक कि 'तद्जुद्' की नमाज़ तक कभी नागा न करता था। उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त वह बड़ा विद्या-व्यसनी था। विद्वानों की सङ्गति से उसे बड़ा प्रेम था। उसे कविता से विशेष प्रेम था। वह स्वयं भी बड़ी अच्छी कविता करता था। 'जफर' उसका तल्ललुस था। शुरू में वह उर्दू के अन्य कवियों की भाँति एक रङ्गीन तबियत का शायर था, जैसा कि उसके लिखे हुए निम्नलिखित शेरों से विदित होता है—

आँख चाहत की 'जफर' कोई भला छिपती है,
उससे शरमाते थे हम, हमसे वह शरमाता था।

कूचए जाना में जाना ही पड़ेगा हो सो हो,
क्या करूँ बेताब दिल फिर ऐ 'जफर' होने लगा।
तुम नज़र आजाओ शायद इस हविस में आज हम
सुबह से ताशाम सूप रहगुजर देखा किए।
गर नहीं है रब्त कुछ बाहम तो फिर महफिल में शब
तुम उन्हे और वह तुम्हे क्यों ऐ 'जफर' देखा किए ?

उपर्युक्त शेरों से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि 'जफर' के अन्दर प्रकृति-प्रदत्त कवित्व प्रतिभा थी, उसके बयान में कितनी सादगी है और कज़ाम में कितनी भावुकता।

दिल्ली की बादशाहत

'जफर' को अपने जीवन में आदि से लेकर अन्त तक कष्ट भोगने पड़े थे। उसका युवराज-काल भी दुःख, शोक और बेचैनियों में बीता था। उसके पिता अकबर-शाह (द्वितीय) उससे प्रायः नाराज़ रहा करते थे। १८३७ ई० में ६३ वर्ष की आयु में बहादुरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। देश का शासन सम्बन्धी काम तो उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में था, अतः शाही दरबार में दिन भर केवल साहित्य-चर्चा ही होती रहती थी। भगवद्भजन, वैराग्य-रस और अद्वैतवाद सम्बन्धी कविताएँ सुनने-सुनाने में ही बादशाह का दिन बीतता था। जब दरबारी लोग दीवाने-ख़ास में एकत्रित हो जाते थे, तो बादशाह सलामत महल से चलने की तैयारी करते थे। ज्योंही बादशाह की सवारी महल से उठती, महल की भाटिनी आवाज़ लगाती —“होशियार, अदब क़ायदा निगाहदार।” अर्थात् “सचेत हो जाओ, शिष्टाचार का ध्यान रखो।” इस स्त्री की आवाज़ सुन कर दरबारी भाट भी इन्हीं शब्दों को ऊँचे स्वर से दुहराते थे, जिनको सुन कर सब दरबारी यथास्थान ठीक-ठीक खड़े हो जाते थे। सारे दरबार में निस्तब्धता छा जाती थी। जिस समय बादशाह सलामत गुस द्वार से सिंहासन पर आ विराजते, उस समय चारण फिर पुकारता —“जल्ले इलाही बरामद, किर्द मुजरा या अदब।” अर्थात् —“ईश्वर की ज्योति (बादशाह) आ गई है, नम्रतापूर्वक अभिवादन करो।”

यह सुनते ही एक अमीर सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ता और बादशाह के सम्मुख आकर अभिवादन-

स्थान पर खड़ा होकर तीन बार झुक कर प्रणाम करता था। जिस समय प्रणाम किया जाता था, चौबदार अमीर की मान-मर्यादा के अनुसार उसका परिचय प्रदान कर बादशाह का ध्यान उसके अभिवादन की ओर आकर्षित करता था। इसी प्रकार सब दरबारी बारी-बारी से अभिवादन करते जाते थे।

सन् सत्तावन का ग़दर

उपर्युक्त वर्णन से पाठक जान गए होंगे कि बहादुर-शाह का जीवन साधुओं का सा था। अधिकार छिन जाने से उसे अपनी प्रजा को प्रसन्न करने का अवसर प्राप्त न हो सका, पर इतने पर भी प्रजा उसे दिल से चाहती थी—जी-जान से प्यार करती थी। बहादुरशाह स्वयं भी अपने इस जीवन से असन्तुष्ट न था—उसने इसी को गनीमत समझा था। पर दैव की दृष्टि में यह भी असहनीय था—उससे यह भी ठण्डे दिल से न देखा गया। सन् सत्तावन का साल आया। लॉर्ड डलहौज़ी अपनी नीति से प्रजा को अप्रसन्न कर गए थे—असन्तोष की आग सुलग गई थी। फलतः उनके भारत से बिदा होते ही विद्रोह के चिह्न प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होने लगे। सुलगी हुई आग अन्त में प्रज्वलित हो उठी। देखते-देखते सारे देश में विद्रोह का भीषण दवानल धधक उठा। मेरठ-छावनी के भारतीय सैनिकों ने अपने कई अक्रसरों पर गोलियाँ दारा दीं। यहीं से ग़दर का श्रीगणेश हुआ था दूसरे शब्दों में यों कहिए कि बड़े बहादुरशाह के अन्त का आरम्भ हुआ—मुगल-शासन के अभिनय की अन्तिम यवनिका-पतन की तैयारी हुई। विद्रोह बढ़ता ही गया। भारत के कई नगरों में, विशेष कर मेरठ, दिल्ली, कानपुर तथा लखनऊ में रणचण्डी का लोमहर्षण नृत्य हुआ। अनेक भारतीय और अङ्गरेजों की जानें गईं, कितनी ही सौभाग्यवतियाँ विधवाएँ बनीं और कितने ही बच्चे अनाथ हो गए। कुछ काल तक इसी प्रकार जगह-जगह रक्तपात होता रहा। बहादुरशाह यदि ग़दर की सुनीबत में न फँसता तो उसका साधु-जीवन बड़े आनन्द तथा शान्ति के साथ व्यतीत होता। किन्तु बेचारा विद्रोही सेना के चक्कर में पड़ गया। जब दिल्ली की बागी फ़ौजों ने पहाड़ी अङ्गरेजी सेना से हार खाई, उस दिन बहादुरशाह ने

प्रार्थना-स्थान में बैठ कर विशेष भक्ति के साथ यह प्रार्थना की थी—

“मुझ बूढ़े की परीक्षा का समय आ पहुँचा। हे ईश्वर, मुझे सन्तोष तथा साहस दे। मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकता। तेरे ही हाथ लाज है। भगवान्, इन कठोर तथा अभागों सिपाहियों को ज्ञान दे कि वे निर्दोष बच्चों तथा स्त्रियों पर जुल्म न करें। मैं बागियों के क्रूर कार्यों को बिल्कुल पसन्द नहीं करता। बस, तेरे अतिरिक्त किमसे कहूँ। तू ही हर किसी का हाकिम है।”

राजा से रड्ड

किसी प्रकार थोड़े दिनों बाद रणचण्डी की रक्त-पिमासा शान्त हुई। अङ्गरेजों ने अपना खोया हुआ प्रभुत्व पुनः प्राप्त किया। बागियों में से बहुत से फ़रार हो गए और बहुतों को दण्ड-स्वरूप अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। बहादुरशाह की भी बारी आई। उमे विद्रोहियों को भड़काने तथा उन्हें सहायता प्रदान करने का अपराधी ठहराया गया। बस—

खत नमूदार हुआ वस्ल की रातें आईं,
जिनका अन्देशा था मुँह पर वही बाते आईं।

जिन बातों की आशङ्का थी, वे ही क्रियात्मक रूप में सामने आईं। बहादुरशाह मय के मारे बाल-बच्चों को लेकर लाल किले से हुमायूँ के मक़बरे की ओर चला गया। परन्तु अङ्गरेजों के क्रोध से वहाँ भी उसकी रक्षा न हो सकी। उसे वहीं जाकर गिरफ्तार किया गया। बूढ़ा बहादुरशाह जिस समय गिरफ्तार करके दिल्ली लाया गया, उस समय भविष्य की चिन्ताओं के कारण उसका चेहरा उतरा हुआ था। सफ़ेद दाढ़ी पर धूल जमी हुई थी, जो निकट भविष्य में उसके धूल में मिल जाने की सूचना दे रही थी। समय का फेर है, जो कल बादशाह था, वही आज साधारण कैदी बना हुआ है। उस दिन डर के मारे दिल्ली-निवासियों की बोलती बन्द हो रही थी। गली-कूचों में सन्नाटा था। सब बादशाह की इस दयनीय दशा पर अक्रसोस कर रहे थे। हर एक की ज़बान पर उसी की चर्चा थी, परन्तु कोई कर क्या सकता था? बादशाह के बेदों की लाश देख कर खोग अपार शोक-सागर में डूब गए। सब अपनी बेबसी पर



हाथ मलते थे और अपने बूढ़े बादशाह की हृदय-द्रावक दशा पर आँसू बहाते थे। जो आता था वही शाहजादों की लाश देख कर शोक के दो आँसू गिरा जाता था और दिल पर पत्थर रख कर हाथ मलता हुआ चला आता था। सारी दिल्ली पर मातम की घटाएँ छाई हुई थीं। बूढ़े बादशाह को अपने आखिरी फैसले का इन्तज़ार था। उसे रज़ून भेजे जाने का हुक्म सुनाया गया। जन्मभूमि छोड़ने का दुःख वैसे ही बड़ा असह्य होता है—यह वेदना वैसे ही बड़ी विषम होती है, तब पर यदि बहादुरशाह की जैसी दशा में किमी को गुड़ छोड़ने को विवश किया जाय, तब उसकी जो अवस्था होगी उसे व्यक्त करना लेखनी की शक्ति से नितान्त परे है। ऐसा करने के लिए आँसुओं की कलम की आवश्यकता है।

विदाई का अन्तिम दृश्य

भाग्य का लिखा कौन मेट सकता है? निदान वह बड़ी भी आ पहुँची कि बादशाह को हठात् दिल्ली छोड़ कर रज़ून जाने के लिए विवश होना पड़ा। वह दृश्य बड़ा मार्मिक था। खाना होते समय बहादुरशाह की दशा बड़ी शोचनीय थी। उसकी एक-एक आँख से हजार-हजार आँसू जारी थे। वे अपने प्रेमीजनों से विदाई ले रहे थे और अश्रुपूर्ण नेत्रों से दिल्ली को दरो-दीवार को देखते थे, मानो उनकी अन्तरात्मा कह रही थी :—

दरो-दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं,
खुश रहो अहले-वतन हम तो सफर करते है।

शहर में हर तरफ़ रोने-पीटने का भीषण चीत्कार हो रहा था। हर गली-कूचे में एक शोरे-मातम बरपा था। दिल्ली वाले रोने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे?

हम बेकसी पै अपनी न रोवे तो क्या करें,
दिल सा रक़ीब हाय हमारा जुदा हुआ।

जिस वक्त बहादुरशाह की सवारी दिल्ली से गुज़र रही थी और दिल्ली-निवासी रो रहे थे, उस समय का दृश्य भगवान राम के अयोध्या छोड़ने के समय के दृश्य की याद दिलाता था। क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सभी को बहादुरशाह से अगाध प्रेम था। दिल्ली से रज़ून जाते समय उसने रोते-रोते यह ग़ज़ल कही थी—

जलाया थार ने ऐसा कि हम वतन से चले,
बतौर शमश के रोते इस अज़ुमन से चले।
न बागबाँ ने इजाजत दो सैर करने की,
खुशी से आए थे रोते हुए चमन से चले।
जो पायबन्दे सदाक़त है क़ौल से अपने,
कभी न ठोकरे खाए अगर चलन से चले।
मरे पै दामने-सहरा ने परदापोशी की,
बरहना आए थे लिपटे हुए कफ़न से चले।

थोड़ी देर में बहादुरशाह की सवारी लोगों की नज़रो से ओझल हो गई। सारे नगर में शोक के बाद आने वाली शान्ति छा गई। ऐसा प्रतीत होता था मानों दिल्ली का सुझा लुट गया—उसकी बहार उजड़ गई। मुग़ल-वंश के उद्धान की अन्तिम कली भी पतझड़ के झोंके से मुरझा गई—तैमूर-वंश की आखिरी निशानी मिट गई।

रज़ून में

हमके बाद की बूढ़े बादशाह की जीवनी एक दुःख-भरी कहानी है। रज़ून में वह अपने तब और अंधेरे कमरे में पड़ा रहता था। बाहर बहुत कम निकलता था। चारपाई पर पड़े पड़े हुक्का गुड़गुड़ाना, अपने शेरों को धीमे स्वर में गुनगुनाना और कई बार दिन में नमाज़ पढ़ना—यही उन दिनों दिल्ली के अन्तिम बादशाह की दिनचर्या थी। उज्ज्वल अतीत की याद आने पर पिंजड़े में पड़े हुए बूढ़े शेर के समान 'ज़रूर' का दिल तड़प उठता था—नेत्रों से बरबस आँसुओं की अविरल धारा बह निकलती थी। बड़ी देर बाद धीरे-धीरे आता था—कलेजा मसोसना पड़ता था। बादशाह की इन दिनों कैसी मनोवृत्ति हो गई थी, इसका पता हमें उसकी उन ग़ज़ल और शेरों से चलता है, जो इस अभाग ने अपने बन्दी-जीवन में लिखी थीं। यहाँ हम उनमें से कुछ उद्धृत करते हैं।—

न किसी की आँख का नूर हूँ,
न किसी के दिल का करार हूँ।
जो किसी के काम न आ सकूँ,
मैं वह एक मुरते गुबार हूँ।

मेरा रङ्ग-रूप बिगड़ गया,
मेरा इश्क मुझसे बिछुड़ गया ।
जो चमन खिज्रों से उजड़ गया,
मैं उसी की फस्ले बहार हूँ ।
पण फातिहा कोई आए क्यों,
कोई चार फूल चढ़ाए क्यों ।
कोई आके शम्भू जलाए क्यों,
मैं वह बेकसी का मजार हूँ ।

इन कविता में और 'जफर' की पहली शाही ज़माने की कविताओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। इनमें न हुस्नो-इश्क का नाम है और न तबियन का तुलतुला-पन। इनके एक-एक शब्द से उदासी टपकती है। प्रत्येक शब्द भग्न हृदय की व्यथा की सच्ची कहानी है, जो हृदय से फूट कर निकली है। पाठक देखेंगे कि ज़रूर के इन शब्दों में कितनी सचाई, कितनी अर्थार्थता भरी है—

‘मेरा रङ्ग-रूप बदल गया,
मेरा इश्क मुझसे बिछुड़ गया ।

वास्तव में रङ्गन में उसका 'रङ्ग-रूप' बदल गया था—
कभी यह दिल तमाशागाह था ऐशो-मसररत का,
अब इसमें हसरतो शौकौतमन्ना सैर करते हैं ।

इसी समय की एक दूसरी गज़ल है—
गई एक ब-एक जो हवा पलट,
नहीं दिल को अपने करार है,
करूँ गम-सितम का क्या बयाँ,
मेरा राम से सीना फिगार है ।
कोई क्या कहे ये सितम है क्यों,
हुए अहले हिन्द तबाह यो ।
जिसे देखा हाकिमे वक्त ने,
कहा यह भी काबिले वार है ।
न दबाया ज़ेरे चमन उन्हे,
न दिया किसी ने कफन उन्हे ।
न हुआ नसीब वतन उन्हे,
न कही निशाने मज्जार है ।
यह ज़माना वह है गुरा फलक,
चलो बच के सबसे अलग-अलग ।

न कोई किसी का रफीक है,
न किसी का यों कोई यार है ।
है 'जफर' भला तुम्हें किसका डर,
तू खुदा के फजल पै कर नज़र ।
तुम्हें है वसीला रसूल का,
वही तेरा हाकिमेकार है ।

'जफर' के इन शेरों में बेचैनी और रङ्ग का एक सागर छिपा है—हसरत और गम की एक दुनिया आबाद है। संसार की असरता का वर्णन कितने सुन्दर और दिल को पिघला देने वाले ढङ्ग से किया है। अन्त में किस खूबी से अपने आपको केवल एक भगवान के आसरे छोड़ा है—उसकी दया पर विश्वास प्रकट किया है। कितनी आस्तिकता है! कैसी उच्च श्रेणी की भक्ति है!!

रङ्गन बादशाह के लिए एक नई—बिरकुल अजीब जगह थी। न किमी से जान थी न पहिचान। इस दशा का वर्णन 'जफर' ने अपनी इस गज़ल में किया है—

कौन नगर से आए हम,
और कौन नगर मे बासे हैं,
जाएँगे हम कौन नगर को
होते मन मे हिरासे हैं ।
कैसा मुल्क है, कैसा रुपया,
कैसी चाल और कैसी ढाल,
याही मन को अन्देशे हैं
और याही जी को सासे है ।
देश नया है, भेष नया है
रङ्ग नया है, ढङ्ग नया,
कौन अनन्द करे है वाँ
और रहते कौन उदासे हैं ।
क्या-क्या पहलू देखे पहले
हमने इस फुलवारी मे,
अब जो फले इसमे फल हैं
कुछ और ही इसमे बासे हैं ।
बाद बन्दी सब है यों की
वाँ की है कुछ और हवा,
कोई जताये यह उनको
जो लड़ते लोग हवासे हैं ।



दुनिया है एक रैन बसेरा
बहुत गई रही थोड़ी सी,
उनसे कह दो, सो ना जावे,
नींद मे जो कि निंदासे हैं ।

परलोकवास

रङ्गून आकर एक तो वहाँ की जलवायु के कारण और दूसरे मानसिक कष्टों के कारण बादशाह का स्वास्थ्य बिगड़ गया था । जैसे तैसे किसी तरह पाँच वर्ष व्यतीत किए । तन्दुरुस्ती दिन पर दिन खराब ही होती चली गई । ऐसा सुनते हैं कि बादशाह ने इन दिनों अपनी प्यारी बेगम ज़ीनतमहल के आभूषणों को बेच कर अपनी रोटी चलाई, लेकिन ब्रिटिश सरकार से पेंशन की कौड़ी भी लेना स्वीकार न किया । बादशाह को गुर्दे के दर्द की बीमारी पहले ही से थी । बाद में दिमाग की एक नस फट गई और सन्निपात का भयानक रोग हो गया । निदान ७ नवम्बर १८६१ ई० को इस अभागे क़ैदी की आत्मा शरीर की क़ैद से आज़ाद हो गई और इस नरवर शरीर को त्याग कर परमात्मा से जा मिली । बन्दीगृह के अहाते में उसे दफनाया गया । बादशाह की क़ब्र के पास बेर का एक सुखा झुण्ड था, जो यह

बतलाता था कि दिल्ली की अन्तिम ज्योति इस स्थान पर दबी पड़ी है । बाद में उसके कद जाने से जफर की यह शेर उसी के ऊपर पूर्णतया चरितार्थ हुई ।—

पसेमर्ग मेरे मजार पै
जो दिया किसी ने जला दिया,
उसे आह दामने बाद ने
सरे शाम से ही बुझा दिया ।

अब दिल्ली के इस अन्तिम और अभागे बादशाह की क़ब्र का निशान बतलाने के लिए एक सङ्गमरमर के पत्थर के टुकड़े के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रहा, जिस पर लिखा है :—

“Bahadur Shah, Ex King of Delhi died at Rangoon, November 7th, 1862 and buried near this Spot”

अर्थात्—“दिल्ली का भूतपूर्व बादशाह बहादुरशाह ७ नवम्बर १८६२ ई० को रङ्गून में मरा और इस स्थान के निकट दफनाया गया ।”

× × ×

अभागे का कैसा दयनीय अन्त था । अपना-अपना भाग्य ही तो है ।

विधवा की अन्तिम चेतावनी

[श्री० देवीप्रसाद गुप्त ‘कुसुमाकर’ बी० ए०, एल्-एल् बी०]

नियमों के बन्धन में मुझको कब तक जकड़ रखोगे,
मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम कब तक पकड़ रखोगे ।
मन के भावों को मेरे यदि अब भी ठुकराओगे,
तो मैं जतलाए देती हूँ पीछे पड़ताओगे ।

यौवन की उमङ्ग को लेकर काटूँ रात अकेली,
देवर, जेठ, खसुर करते हों क्रीड़ाएँ अलबेली ।
सारी सखी-सहेली नित ही अपनी प्रणय-कथाएँ,
सुना सुना कर मुझको मेरे मन में काम जगाएँ ।

कैसे बचूँ कहाँ तक अब मैं रोऊँ अपने मन को,
उठती हुई उमङ्गों को मैं इस चढ़ते यौवन को ।
पैर डगमगा गए पतन ही अब मेरा होवेगा,
कर दो पुनर्विवाह अन्यथा फिर समाज रोवेगा ।



वर्तमान जाति-भेद और उससे हानियाँ

[श्री० नोखेलाल शर्मा, काव्यतीर्थ]



म अपने पूर्व लेख में बता चुके हैं कि वर्णव्यवस्था अप्राकृतिक है और आवश्यकता पड़ने पर मनुष्यों ने इसकी सृष्टि की थी। अब हमें यह देखना चाहिए कि वर्तमान परिस्थिति में यह कहाँ तक

हमारे अनुकूल या प्रतिकूल है। यदि यह हमारे अनुकूल सिद्ध हो तो हम इसे यथा-सम्भव संशोधन के साथ मानते रहें, अन्यथा यदि इससे भीषण हानियों की सम्भावना हो, तो शीघ्र इससे अपना पिण्ड छुड़ा लें।

जो वस्तु प्राकृतिक है, वह अविनश्यकर है, किन्तु जो वस्तु कृत्रिम है, वह किसी हेतु-विशेष से उत्पन्न होती है, अतः वह नाशवान् होती है। उस हेतु-विशेष के हट जाने पर उसका अस्तित्व असम्भव हो जाता है। “निमित्तापाये नैमित्तिकापाय” ऐसा न्याय है। फलतः वर्णव्यवस्था भी कृत्रिम होने के कारण नाशवान् है, ऐसा मानना पड़ता है। वैदिक काल में जिस हेतु से इसका प्रादुर्भाव हुआ, उस हेतु के हट जाने पर इसका विनाश निश्चित है। सच पूछिए तो वर्णव्यवस्था का सार—उसकी आत्मा—कब की प्रयाण कर चुकी है। अब तो उसके पक्षपाती केवल लकीर पीट रहे हैं। इसके सद्गुण, इसकी वास्तविकता और इसकी महत्ता सम्पूर्ण मिट चुकी है। अब जो इसका अवशिष्टांश बचा हुआ है, वह गन्दा, कूड़ा-कंकट, सड़ा हुआ और दुर्गन्धपूर्ण अस्थि-चर्म मात्र है, जिससे लाभ के बदले भयानक हानियाँ हो रही हैं और भविष्य में भी होने वाली हैं। परन्तु हमारी समझ में इससे भयभीत होने का कोई कारण नहीं। क्योंकि जिसका आदि है, उसका अन्त भी निश्चित है। ऐसी दशा में अक्रसोस के साथ इसको

पकड़े रहना उपहासास्पद होगा। ममता-वश हम निष्प्राण शरीर को भले ही गले लगाए रहें, परन्तु जो मर चुका उसका फिर जीना सम्भव नहीं। अस्तु।

समय और अवस्था सदा बदलते हैं, इनमें स्थिरता नहीं होती। अगर हम वैदिक-काल, पुराण-काल, यवन-काल और वर्तमान-काल पर सरसरी तौर से दृष्टि डालें, तो हमें मालूम हो जायगा कि प्रत्येक काल के आचार-विचार, रहन-सहन और सामाजिक व्यवस्था में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। हमें पहले समाज में स्वाभाविक जीवन, पीछे धर्म के नाम पर विविध कल्पनाओं से पूर्ण विचित्र स्थिति, तदनन्तर अन्धविश्वास का एकाधिपत्य और अन्त में स्वच्छन्द विचार-धारा का प्रभूत प्रभुत्व प्रत्यक्ष दिख ई देगा। वास्तव में समाज की गति को एक रूप में कोई भी बाँध कर नहीं रख सका। फलतः आगे भी यह धारा किस ओर बहती जायगी, इसका अनुमान कर लेना आसान काम नहीं। बात यह है कि जब समय बदल जाता है, तब मनुष्य की आवश्यकताएँ भी बदल जाती हैं और उनकी पूर्ति के साधन भी और ही हो जाते हैं। बौद्ध धर्म का अन्त होने पर जिन असम्भव और अनर्गल पौराणिक बातों से लोगों को आध्यात्मिक शान्ति मिल जाती थी, वे बातें अब इस विज्ञान के युग में नितान्त नीरस मालूम पड़ती हैं। हमारे दूरखे पैदल चल कर ही सैकड़ों कोस का रास्ता तय करते थे, परन्तु हम लोग इस ज़माने में दस-बीस कोस भी पैदल चलना पसन्द नहीं करते और क्रौडन रेलगाड़ी या मोटर-गाड़ी की शरण लेते हैं। कहा जा सकता है कि परिवर्तन के इस सिद्धान्त को समाज पर लागू करने की क्या ज़रूरत है? परन्तु वास्तव में देखा जाय तो समाज में भी समय-समय पर हेर-फेर होते ही गए हैं। जैसे वैदिक-काल में विधवा-विवाह, नियोग यहाँ तक कि गोमांस-भक्षण तक के प्रचलित होने के प्रमाण पाए जाते हैं, परन्तु आगे चल कर

उनकी मनाही हो गई है। वैदिक-काल में जो देवता थे, पौराणिक युग में उनका पता नहीं। उनमें कुछ तो भुला दिए गए, कितनों का नामोनिशान तक मिट गया और कुछ की गौण रूप से पूजा होती रही। ऋगु आदि कई देवताओं के नाम आगे वी पीढ़ियों के देवताओं की सूची में से मानों कट गए। अश्विनी, मरुत, उषा आदि विस्मृत-प्राय-से हो गए। इन्द्र, अग्नि आदि गौण-रूप से पूजे जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नए रूपधारी देवता मुख्य बन गए। स्मृतिकारों की विविध स्मृतियाँ भी इसी बात को पुष्ट करती हैं। क्योंकि यदि समाज का रूप एक-सा बना रहता, तो नई-नई स्मृतियों के बनने की क्या जरूरत थी? परन्तु ऐसा नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों समाज में नई-नई बातें उत्पन्न होती गईं, नए नए प्रश्न और नई-नई उलझनें सामने आती गईं, त्यों-त्यों नवीन स्मृतियों की, जिनमें उन नवीन पहलुओं पर विशेष जोर दिया जाता था, सृष्टि होती गई। इसी से हम प्रत्येक स्मृति में किसी विशेष पहलू पर जोर पाते हैं। जहाँ मनुस्मृति में कुछ सामाजिक नियम ही देना यथेष्ट समझा गया था, वहाँ याज्ञवल्क्य स्मृति में कानून के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय जोड़ना पड़ा। पुनः उनके टीकाकार के समय में सामाजिक स्थिति इतनी बदल गई कि एक-एक श्लोक के बहुव्यापक अर्थ करने पड़े। इन सब बातों का यही अर्थ निकलता है कि संसार की अन्यान्य व्यवस्थाओं के अनुसार ही समाज की व्यवस्था भी सदा बतलती रही है और भविष्य में भी अवश्य बदलती रहेगी। परिवर्तन होना स्वाभाविक और अनिवार्य है। हाँ, हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि अपनी संस्कृति की यथासम्भव रक्षा करें और समाज को अच्छे मार्ग पर ले चलें। इतना तो हुआ उनके लिए, जो समाज-सुधार और परिवर्तन के नाम ही से चौंकते हैं। अब यह देखना चाहिए कि वर्त्तमान जाति-भेद कहाँ तक धर्म-सङ्गत और लाभदायक है।

जैसा कि हम अपने पूर्व लेख में कह चुके हैं, प्राचीन वर्ण-व्यवस्था और आधुनिक जाति-भेद में बड़ा अन्तर है। उसमें जहाँ चार ही भेद थे, वहाँ आजकल चार हज़ार भेदोपभेद बन गए हैं। जो समाज को एक ही दशा में जकड़े रखने के पक्षपाती हैं, उन्हें इस बात से

शिंघा लेनी चाहिए। वे ज़रा सोचें कि यदि हिन्दू-जाति प्राचीनता की पक्षपातिनी है, तो उसमें इस प्रकार नई-नई बातें क्यों उत्पन्न होती गईं? वास्तव में यह प्राकृतिक सिद्धान्त है कि कोई भी वस्तु एक दशा में नहीं रह सकती। चाहे वह उन्नति की ओर जायगी या अवनति की ओर गिरेगी। वैज्ञानिकों का कहना है कि दस हज़ार वर्षों तक पर्वतादि जड़-पदार्थ भी एक अवस्था में नहीं रह सकते। उनमें भी अवश्यमेव परिवर्तन होता है। अस्तु।

अब प्रश्न यह है कि हम हिन्दू-जाति अपने को वेदानुयायी एवं धर्मप्राण बताते हुए भी इन कई हज़ार जातियों का अस्तित्व—जो वेद-शास्त्रों से असम्मत है—क्योंकर मानते हैं? हमारे इन हज़ारों जातियों के मानने का तात्पर्य एवं मूलाधार क्या है? शायद इसका आशिक आधार पुराणों में मिले और बाक़ी लोक तथा अन्ध-परम्परा के गहरे उदर में। परन्तु यह मानने की बात नहीं। क्योंकि परम्परा तो अन्धी हुआ करती है। उसमें प्रामाणिकता कहाँ? जहाँ वेद-शास्त्रों का हवाला देने की जरूरत है, वहाँ लोक और परम्परा का आश्रय लेने से काम न चलेगा। फिर वह धर्म भी नहीं। क्योंकि मनुस्मृति में कही हुई धर्म की परिभाषा उसे नहीं ठकती, वेद उसे अङ्गीकार नहीं करता, विद्वान् सज्जन भी उसे प्रायः नहीं मानते और न अपनी आत्मा ही उसे स्वीकार करती है। अतएव वेद से असम्मत, विद्वज्जन से असेवित एवं हृदय से अननुज्ञात होने के कारण सहस्रों उपजातियों का अस्तित्व धर्मसङ्गत नहीं माना जा सकता। हमारी आत्मा तो कहती है कि इनका अस्तित्व सम्पूर्ण निराधार है, मिथ्या है और हमारे राष्ट्र के लिए घातक है। यदि वेद भी इनका प्रतिपादन करते होते और श्रेष्ठ पुरुषों में से भी कुछ इन्हें मानने को तैयार रहते, तो भी पक्षपात-शून्य मनुष्यों का हृदय एक बार यह अवश्य कह उठता कि 'यह अन्याय है, अधर्म है, न मानने योग्य है।'

बहुत से लोग पुराणों के आधार पर कुछ जातियों का अस्तित्व मानते हैं। क्योंकि पुराणों में कुछ ऐसी जातियों का उल्लेख पाया जाता है, जिन्हें वर्णसङ्कर माना गया है। उनके अनुसार अधिकांश शूद्र वर्णसङ्कर ही माने गए हैं। यदि पुराणों की इन बातों को 'बाबा वाक्यम्'

प्रमाणम्" के सिद्धान्त के अनुसार अक्षरशः मान लिया जाय, तो भी वर्तमान समय की हज़ारों जातियों की व्याख्या तो शायद कहीं न मिलेगी। अतः पुराणो-ल्लिखित जातियों के अलावे अन्य जातियों का मानना सर्वथा निरर्थक एवं निराधार है। अब बाक़ी रही पुराणों में लिखी जातियों की बात, परन्तु वह भी मानने के योग्य नहीं। कारण नीचे दिए जाते हैं -

(क) यह असम्भव है कि सम्पूर्ण शूद्र जातियाँ वर्णसङ्कर हैं। शायद, इतनी जातियाँ कहाँ से आ गईं, इस बात की व्याख्या न कर सकने के कारण ही पुराण-प्रणेताओं ने ऐसी मनगढ़न्त बातें लिख दी हैं।

(ख) वेदों के समान पुराणों को प्रामाणिक होने का दावा नहीं है। क्योंकि इनमें कल्पित कहानियाँ, कल्पित घटनाएँ, असङ्गत राजवंश एवं असम्भव बातों की भरमार है।

(ग) प्राचीन काल में चेन्निय (वीर्य-निषेक्ता) के वर्ण के अनुसार वर्णसङ्कर लोगों का वर्ण निश्चित होना पाया जाता है। इस प्रकार उस समय अन्य जाति की सृष्टि नहीं हो पाती थी। इस व्यवस्था के रहते हुए टिड्डी-दल के समान जातियों का बन जाना, जैसा कि पुराणों में लिखा है, असम्भव प्रतीत होता है।

(घ) एक ही परिवार या श्रेणी के लोगों का भिन्न-भिन्न पेशों में लग कर तत्तद् जातित्व पाना विशेष स्वाभाविक और युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। सम्भवतः यही वास्तविक बात भी है।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ जातियाँ पुराणोक्त रीति से भी बनी हों। पर यह तो निश्चय है कि इतनी उप-जातियों का इस तरह बन जाना सम्भव नहीं। परन्तु यदि उनका ठीक उसी प्रकार बनना मान भी लिया जाय तो भी उन्हें शूद्र वर्ण से अलग रखने की कोई ज़रूरत नहीं दीखती। क्योंकि वेदों के अनुसार तो केवल चार ही वर्ण हैं। अतएव सम्भवतः जातियों का यह विभाजन पुराणकारों का किया हुआ नहीं है, वरन् उन्होंने जीविकानुसार स्वयं बनी हुई जातियों की व्याख्या-मात्र की है। यदि हमारा यह अनुमान सच है, तो इन जातियों का इतनी श्रेणियों में बँट जाना अशास्त्र-सङ्गत और अनुचित है। अतः वेद-शास्त्रों को मानते हुए यह सारांश निकलता है कि पेशे के अनुसार बँटी हुई

इतनी जातियों को भिन्न न मानने में कुछ हानि नहीं। इससे वर्ण-व्यवस्था को भी कोई धक्का नहीं लग सकता।

शूद्रों के सहस्र अन्य तीन वर्णों के उपभेद न मान कर जब केवल चार ही वर्ण बच रहते हैं, तो यह देखना चाहिए कि ये चार भेद भी रहने चाहिए या नहीं? सच तो यह है कि ये चार भेद हर जाति और हर क्रौम में मौजूद हैं। मस्तिष्क से काम लेने वाले, युद्ध करने वाले, व्यवसायी और नौकरी करने वाले लोग सर्वत्र हैं। यदि हम कर्म से वर्ण मानें तो ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुए। भेद इतना ही रहा कि वे अपने को उक्त नामों से नहीं पुकारते। पर ज़बर्दस्त भेद यह है कि यहाँ जन्म से वर्ण का होना माना जाता है। चाहे काला अक्षर भैल बराबर क्यों न हो, पर ब्राह्मण-कुलदीपक ब्राह्मण ही होगा। उसी प्रकार, जिनमें खटमल मानने की भी शक्ति नहीं, ऐसे क्षत्रिय-वशचर भी कहलाएँगे क्षत्रिय ही। यह भेद निम्न श्रेणियों के लिए तो घातक सिद्ध हुआ ही है, साथ ही ब्राह्मणों को भी इससे अपरिमित हानि उठानी पड़ी है। जहाँ निम्न श्रेणियों के लोग सामाजिक और व्यक्तिगत रुकावट के कारण उठ ही न सकते थे, चाहे उनमें कितनी भी ईश्वरदत्त प्रतिभा क्यों न हो, वहाँ ब्राह्मण भी प्रतिद्वन्द्विता-रहित हो जाने के कारण, अधिकांश में अनपढ़, लालची और आलसी हो गए। जो समाज का नेता था, जिसके हाथों में समाज की बागडोर थी, जब उसी का ऐसा अधःपतन हो गया तो अन्य लोग क्यों न अधोगति के गर्त में गिरें। अब इसकी तुलना ज़रा अन्य देशों से कीजिए। वहाँ ऐसी अदृचन न रहने के कारण सैकड़ों नहीं, हज़ारों निम्न-श्रेणी के लोग, जैसे कसाई, बढई और दर्ज़ी-आदि बड़े-बड़े कवि, नीतिज्ञ, लेखक और आविष्कारक बने, जिनके न होने से दुनिया अभी कितना पीछे रहती, यह बताना कठिन है। इस प्रकार कृत्रिम उपायों से प्रकृति का नियन्त्रण कर देने से आर्य-जाति को जो दण्ड भोगना पड़ा है, वह बहुत ही भयङ्कर है। हमारे वैदिक ऋषि इतने मूर्ख न थे कि अपनी सभ्यता की सीमा में आप हुए व्यक्तियों के ऊपर ऐसा अत्याचार करते। इसी कारण निम्न से निम्न श्रेणी तक के लोग केवल वेदाध्ययनादि तक ही न पहुँचे, वरन् ऋषि और वेदमन्त्रों के कर्ता तक बन गए। पीछे स्वार्थी लोगों ने उनके मार्ग में मनमानी



अदृक्चने डाल दी और उसका परिणाम अब दिनोंदिन क्या हो रहा है, उसे आँखे खोल कर अच्छी तरह देखिए।

“खबर है कि मालाथार ज़िले में इस्लाम एसोसिएशन द्वारा हज़ारों अछूत मुसलमान बनाये जा रहे हैं। गत ३१ वर्षों में इसने १७,१४२ हिन्दुओं को मुसलमान बनाया है।”—‘प्रताप’ ७ मई, १९३३।

इस तरह के समाचार सुन कर किस हिन्दू का हृदय एक बार न रो उठेगा ? परन्तु ऐसी रोमाञ्चकारी घटनाओं का हाल सुन कर भी हम अपनी तन्द्रा में पड़े हुए हैं। जाति-भेद का भूत हमारे सिर पर सवार है। अछूत और अदृक्चत का भूत हमें सता रही है। वास्तव में अधःपतित हिन्दू जाति की अवस्था ठीक वैसी ही है, जैसी उस गिरे हुए हाथी की, जिसे चारों ओर से स्यार और गृध्र नोच-नोच कर खा रहे हों और वह स्वयं अपनी पूँछ भी हिलाने में असमर्थ हो। पर यह आश्चर्य नहीं है कि इतने मनुष्य हमसे क्यों बिछुड़ते जाते हैं, वरं आश्चर्य तो यह है कि वे आज तक क्यों हमारे साथ सब रहे थे, जहाँ उनके लिए न आध्यात्मिक शान्ति की कोई व्यवस्था है और न सामाजिक दर्जा निश्चित है। खैर, इस बात को जाने दीजिए। उन्हें सुविधाएँ नहीं मिलती तो न सही, पर उन्हें अकारण ऐसी-ऐसी कठोरताएँ और जुल्म क्यों सहने पड़ते थे, जिन्हें लिखते हुए बोभ और ग्लानि से लेखनी भी काँप जाती है। देखिए।—

“यदि कोई नीच वर्ण का मनुष्य किसी उच्च वर्ण के मनुष्य को मार दे, तो उसका हाथ-पाँव काट डालना चाहिए। यदि वह किसी ऐसे मनुष्य को गाली दे तो उसकी जीभ काट डालनी चाहिए और यदि वह किसी ऐसे व्यक्ति को शिजा देने की चेष्टा करे, तो उसके मुँह में गर्म तेल डाल दिया जाय।”

—विष्णुस्मृति ५—१३, २३ और २४

“यदि कोई ऐसा मनुष्य, जो छूने के अयोग्य हो, किसी द्विज को छूकर अपवित्र कर दे, तो उसे ज़न से मार दिया जाय।”

—विष्णुस्मृति ५-१०४

“यदि कोई किसी ब्राह्मण को मार दे, तो उसके सर्वस्वहरण के साथ प्राणदण्ड मिलता था, पर यदि कोई उच्च वर्ण का मनुष्य निम्न वर्ण के मनुष्य को मार देता, तो उसके लिए दण्ड भिन्न था। क्षत्रिय को मार

देने से एक हज़ार मुद्रा, वैश्य को मार देने से एक सौ मुद्रा और शूद्र को मार देने से केवल दस मुद्रा दण्ड-स्वरूप दे देना यथेष्ट था।” (बौद्धायन १, १०, १८, १९ आर० सी० दत्त द्वारा उद्धृत पेज २४८)।

इसी प्रकार व्यवहार का दण्ड भी भिन्न था। याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि निम्न-वर्ण की स्त्रियों से व्यवहार दण्डनीय नहीं है (२, २६१)।

आधुनिक समय में उनकी हालत देखिए :—

“दक्षिण भारत में नायर के छूने से उच्च वर्ण वाले अपवित्र हो सकते हैं। वहाँ कम्मलन, जिममें राजमिस्त्री, लोहार, बढई, चमार आदि हैं, २४ फ्रीट की दूरी से उच्च-वर्ण वालों को अपवित्र बना सकते हैं। तिया लोगो के लिए यह दूरी ३० फ्रीट है। परन्तु गोमांस-भक्षक पारिया या पारियाह लोगो के लिए ६४ फ्रीट नियत है। (सेन्सस ऑफ इण्डिया वॉय सर हर्बर्ट रिजली पेज २४०)।

जहाँ हममें इतनी कमज़ोरी है, वहाँ दूसरे धर्म वालों की हालत देखिए। क्रिश्चियन मिशनरी पाश्चात्य सभ्यता के कुल आडम्बर, उच्च-पद की समस्त आराएँ, सामाजिक समानता के सम्पूर्ण प्रतीकन के साथ धन और राजकीय सहायता से सम्पन्न होकर उन असभ्य समाजों में घूम-घूम कर अपना उद्देश्य सिद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार ‘तबलीगा’ वाले भी अपने पूरे जोश के साथ आर्य-समाजियों के साथ बदला चुकाने की भरपूर कोशिश कर रहे हैं।

सच तो यह है कि धर्म और नियम जीवन संग्राम की सहायता के लिए बनते हैं, उनमें अड़चन डालने के लिए नहीं। मनुष्य-समाज का जैसा-जैसी आवश्यकता पड़ती है, तदनुकूल ही वह अपने लिए नियम-कानून भी बनाता है। आर्यों को आवश्यकता पड़ी और उन्होंने अपना रास्ता ढूँढ़ निकाला। अब हमें अपनी दुनिया देखनी है। इसके लिए हमें पूर्ण अधिकार है कि हम चाहे जिस तरह से इसका मुकाबला करें। आर्यों के सामने जो समस्या आई, उसे उन्होंने हल कर ली। अब हमारे आगे समस्या उपस्थित है, हमें इसे हल करने का उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिए। इस समय यदि हमारे पूर्वज आर्य उपस्थित होते, तो अवश्य ही कहते— “वत्स, हमने उपाय सोच कर अपना कार्य पूरा किया।

यदि उनमें तुम्हारा काम न चले तो उन्हें जाने दो। ऐसा उपाय सोचो, जिससे तुम्हें सब प्रकार का आनन्द मिले, ससार में अचन, अटन बने रहो। वरस इसी में हमें अपार आनन्द मिलेगा।”

वेदो, पुराणो एवं इतिहासादिकों के पढ़ने से पता लगता है कि मनुष्य-समाज में जीवन-सग्राम का प्रश्न ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा है। धर्म और नीति के पछे इसके चरण-दास हैं। जीवन-सग्राम के लिए ही इनका अस्तित्व है, न कि इनके लिए जीवन का। जो नीति या धर्म मनुष्य को दूब जाने को कहे वह धर्म और नीति हो ही नहीं सकता। हमारी तुच्छ सम्मति में मनुष्य-जीवन विभिन्न कठिनाइयों से पूर्ण एक अजायबघर है, और उसमें सफलता पाने के लिए उपाय सोचने में मनुष्य-मात्र सर्वथा स्वतन्त्र है। जो उसकी इस स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाला हो, चाहे वह व्यक्ति हो या समाज, नीति हो या धर्म, उसे वह पैरों तले कुचल डाले। श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र आदि भी, जिनकी जीवनियाँ पढ़ कर लोग अपने को कृतकृत्य मानते हैं, इसी युद्ध-क्षेत्र के योद्धा थे। जिस तरह उन्होंने उससे बच निकलने का रास्ता ढूँढ़ निकाला, उसी प्रकार हमें भी अपनी कठिनाइयों से बच निकलने का रास्ता खोज निकालना होगा। चाहे वह रास्ता उनका बताया हुआ हो या अपना बनाया हुआ।

वास्तव में इस अनुचित भेद-भाव से, जो जाति भेद के वृक्ष में फलते हैं, भयङ्कर हानियाँ हो रही हैं। हिन्दू-समाज टुकड़े-टुकड़े में बँट गया है। लोग आपस में एक दूसरे के साथ सहानुभूति नहीं रखते। जिससे राजनीति के क्षेत्र में भी, राष्ट्रीयता के अभाव से पैर आगे नहीं बढ़ सकते। बड़ई के लिए दुसाध वही है, जो हिन्दू के लिए सुसलमान या किश्चियन। खान-पान एवं व्याह-शादी की रोक-टोक ने इस भेद-भाव को महासागर बना रखा है, जिसके दोनों ओर में स्थित दो मनुष्य एक दूसरे की बातें नहीं सुन सकते। एक जाति का मनुष्य दूसरी जाति वाले को नीची दृष्टि से देखता है। बहुत सी जातियों के लोग तो अपनी जाति में भी सबसे व्याह-शादी नहीं करते, सबका लुआ नहीं खाते। कहावत प्रसिद्ध है कि “तीन कनौजिया तेरह चूल्हा।” भला, इससे बढ़ कर अनर्थकारी बात और

क्या होगी? इतना होने पर भी यह समाज इतने दिनों तक कैपे कायम रह सका, यह अति आश्चर्य की बात है, क्योंकि ऐसे समाज को तो इससे बहुत पूर्व नष्ट हो जाना चाहिए।

व्याह-शादी सम्बन्धी रोक-टोक के कारण प्रत्येक मनुष्य को अपने सङ्कीर्ण दायरे में ही ब्याह करना पड़ता है। इस प्रकार योग्य पुरुषों को योग्य स्त्रियों के न मिलने से एवं योग्य स्त्रियों को योग्य पुरुष न मिलने से दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं बीतता। अधिकतर घरों में कलह-देवी का अखण्ड साम्राज्य स्थापित रहता है। हजारों प्राणियों के जीवन रोते बीतते हैं। कहीं शान्ति आर सुख नज़र नहीं आता। रुढ़ि की इस पिशाची का पेट भरने के लिए न मालूम कितने जीवन नित्य स्वाहा होते रहते हैं। योग्य घर के न मिलने के डर से प्रायः खबकियों की शादी बाल्यावस्था में ही कर दी जाती है। इस प्रकार बाल-विवाह को भी इससे प्रोत्साहन मिलता है। सङ्कीर्ण समाज में विवाहादि प्रायः एक दूसरे से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध रखते हुए होते हैं। इस प्रकार परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध से शारीरिक अवनति की जब मज़बूत होती है। क्योंकि रक्त की भिन्नता से सन्तति पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है, ऐसा माना गया है।

बहुतेरे अच्छे कला कौशल को शास्त्रों में गर्हित माना गया है और उनके व्यवसायी भी नीच ठहराए गए हैं। इस प्रकार नैतिक बन्धन में जकड़े हुए लोग, अपने पेशे के कारण अपने आपको नीचा समझने वाले व्योमकर उन्नति के पथ पर अग्रसर होते? वास्तव में विद्या बुद्धि या कला कौशल किसी खास श्रेणी के लिए निर्दिष्ट कर देना तो ईश्वर, समाज, व्यक्ति और धर्म के प्रति घोर अन्याय है। इसी प्रकार समुद्र-यात्रा के निषेध से उच्च श्रेणी के लोग व्यापार में न लग सके, क्योंकि जाति खो जाने का डर था। इससे भारत को अपरिमित क्षति उठानी पड़ी। यह व्यापार ही का प्रभाव है कि इस समय यूरोप की जातियाँ संसार भर में राज्य कर रही हैं और इसी के छोड़ने से हमारा भारत—सोने का भारत—आज दाने-दाने को तरस रहा है, पराधीनता के शृङ्खल में जकड़ा हुआ है और संसार की प्रगति में सबसे पीछे पड़ा हुआ है। कृषि को भी जातिभेद के कारण बड़ा धक्का लगा

है। यह केवल अनपढ़ गँवारों के हाथों में छोड़ दिया गया, जो नवीन, उपयुक्त उपायों का अवलम्बन करने में असमर्थ रहे। इस प्रकार के कमाने वालों को छोड़ कर जो बचे, वे केवल खाने वाले थे। जहाँ इस प्रकार की दशा हो, वहाँ राष्ट्रीय सम्पत्ति की कैसे रक्षा हो सकती है ? अतएव भारत की वर्तमान गरीबी का उत्तरदायित्व भी अधिकतर यहाँ की जाति-व्यवस्था पर ही है। कहना न होगा कि वेदों में कला-कौशल आदि को कभी हीन नहीं समझा गया है। देखिए .—

श्रेष्ठ न पेशो अधिधायि दर्शतं
स्तोमो वाजा श्रुभवस्तं जुष्टन।
धीरासो हिष्टा कवयो विपश्चितस्तान्
व एना ब्राह्मणा वेदयामसि।

अर्थात्—“हे बुद्धिमान्, चतुर कलाकारो, तुम्हारी अत्युत्तम सुन्दर कला बहुत दूर तक विख्यात है। तुम धीर, चतुर और विद्वान् हो। ये ब्राह्मण तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। इनकी प्रशंसा स्वीकार करो।”

वेदों के समय में निम्नलिखित तरह के व्यवसाय और कला-कौशल प्रचलित थे—कृषि, सूत काटना और कपड़े बुनना, कारीगरी, बर्तन बनाना, चमड़े तैयार करना, नाव खेना, सुनारी, लुहारी, बढ़ईगिरी आदि-आदि। बड़े घर की औरतें भी सूत काततीं, कपड़े बुनतीं

और कपड़ों पर कशीदे काढ़तीं थी। इन सब की वेदों में बड़ी प्रशंसा की गई है। इनका अधःपतन हो जाने से यदि देश में दरिद्रता देवी का एकान्त आधिपत्य हो गया है, तो क्या आश्चर्य है ? अस्तु।

जो होना था वह तो हो चुका। अब देखना है कि हम अपना दायित्व, जो हमें समाज, देश और अपनी भावी सन्तति के प्रति है, कहाँ तक समझते हैं। यदि हम कुछ भी अपना दायित्व समझेंगे तो अवश्य इस घातक प्रथा को खदेड़ देंगे। इसी ने हमारा सर्व-नाश किया है और धीरे-धीरे हमारी जड़ को धुन के समान खा रहा है। प्रसन्नता की बात है कि “जाति-पाँति-तोड़क मण्डल” सदृश संस्थाएँ देश में सन्ध्या के तारे की तरह दृष्टिगोचर होने लगी हैं। पर इतने ही से हमारा काम न चलेगा। प्रत्येक सच्चे राष्ट्र-हितैषी को चाहिए कि वह एक बार ही सिंहनाद कर इस विनाश-कारी प्रथा के विनाश-सूचक शङ्खध्वनि द्वारा भारत के आकाश को गूँजित कर दें। अपने भूले-भटके भाइयों को गले लगा लें, क्योंकि यदि सवेरे का भूला साँझ को घर आ जाय तो वह भूला हुआ नहीं कहाता। इस प्रकार यदि हम चाहे तो अब भी इस दिनोंदिन खिसकते हुए हिन्दू-समाज को बचा सकते हैं। अन्यथा कोई दूसरा उपाय नहीं है।



भिखारी



[श्री० कपिलदेव नारायण सिंह ‘सुहृद्’]

रिक्त हुआ सब कोष,
भला दानी होने का फल पाया।
जीवन का सर्वस्व लुटा कर,
देख रहा तेरी माया !!

मौन हुई भङ्गार, रत्न से,
रिक्त हुआ इस कवि का घर।
आज दीन लख मुझे माँगते,
भीख द्वार पर चिर सुन्दर ॥

चला गया मेरा बसन्त,
जीवन की नव फुलवारी से।
चली गई कलियाँ बनने,
उपहार हमारी क्यारी से ॥

किन्तु लौट आवेगे कैसे ?
आज रिक्त है अतिथि-प्रवर।
तुम्हें सुनाऊँगा निर्जन में,
अपनी भग्न बीन का स्वर ॥

सूखी कलियाँ चुन-चुन कर
पूजूँगा, मन बहलाऊँगा।
फिर पतझड़ के शुष्क फूल-सा,
चरणों पर गिर जाऊँगा ॥



राज्य-संस्था

[श्री० चन्द्रराज भण्डारी, विशारद]



रा

ज्य-संस्था की उत्पत्ति के मूल कारणों का तात्त्विक विवेचन करने से पता चलता है कि मनुष्य-प्रकृति की विभिन्नता से समाज में जो विषमता का वातावरण पैदा हो जाता है तथा जिसकी वजह से, “जिसकी लाठी उसकी भैंस” वाले सिद्धान्त पर बल-

वान लोग दुर्बलों पर अत्याचार करते हैं और समाज में अपराधों की संख्या बढ़ती है, उस वातावरण को नियन्त्रित कर समाज में समतापूर्ण वातावरण की स्थापना करने के लिए ही राजसत्ता का उदय हुआ। प्रसङ्ग चाहे कितना ही भिन्न क्यों न हो, परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही भेदपूर्ण क्यों न हों, पर संसार की सारा राज्य-संस्थाओं के इतिहास को यदि तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो उसमें यही तत्त्व काम करता हुआ दिखाई पड़ेगा।

यह कहना कठिन है कि राज्य-संस्था ने अपने कर्तव्य का पालन करने में उदासीनता दिखाई। ऊपरी दृष्टि से यदि संसार की किसी भी राज्य संस्था का इतिहास देखा जाय, तो पता चलेगा कि यह संस्था किसी न किसी रूप में अपने कर्तव्य का पालन करती आई है। इतिहास डङ्के की चोट बतला रहा है कि इस संस्था ने मनुष्य की शिक्षणोन्नति के लिए समय-समय पर अनेक स्थानों पर अनेक बड़े-बड़े और छोटे-छोटे विद्यालय खोले। मनुष्य की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अनेक औषधालय और चिकित्सालय स्थापित किए, मनुष्य की चारित्रिक उन्नति के लिए अनेक नीति-ग्रन्थ प्रकाशित करवाए, मानवी अपराधों से समाज की रक्षा के लिए देश के प्रमुख स्थानों में न्यायालय स्थापित किए। इसी प्रकार मानवीय सुविधा और आराम के लिए इस संस्था ने और भी अनेक तरीके अख्तियार किए। ऐसी स्थिति

में यह कहना तो न्यायसङ्गत नहीं हो सकता कि इस संस्था ने अपने कर्तव्य का पालन करने में उदासीनता से काम लिया।

मगर इतना सब होते हुए भी जब हम इस संस्था के ऐतिहासिक परिणाम पर विचार करते हैं, तो हमें निराश होना पड़ता है। आरम्भ से इस संस्था के इतिहास पर अध्ययनपूर्ण दृष्टि डालने से पता चलता है कि ज्यों-ज्यों इसकी शिक्षण संस्थाओं से तैयार होने वाले लोग अधिकाधिक संख्या में आने लगे त्यों-त्यों समाज में समानता, सहानुभूति और सदाचार के स्थान पर विषमता और दुराचार की मात्रा बढ़ने लगी और जीवन-कलह के दृश्य बढ़ते गए। चोरी, धोखाधड़ी और असंयम तथा व्यभिचार की अति होने लगी। अपराधों का एक के पीछे एक ताँता सा बँध गया। यह घटना किसी एक काल या किसी एक देश की नहीं है, प्रत्युत जब से राज्य-संस्था का प्रारम्भ होता है, तभी से सारे संसार में यही क्रम जारी है।

इसी प्रकार अस्पतालों के इतिहास को देखिए। जब से अस्पतालों की सृष्टि हुई और नई-नई औषधियों के आविष्कार हुए, तब से संसार में नए-नए रोगों का आविर्भाव भी होने लगा और मनुष्य जाति उत्तरोत्तर अस्वस्थ, दुर्बल तथा अल्पायु होने लगी।

विचाराज्यों और न्यायालयों का इतिहास तो इससे भी अधिक भीषणतापूर्ण है। न्याय के नाम पर इन संस्थाओं ने अब तक कितने ही निरपराधियों को, कितने ही गरीबों को—ईसा, सुकरात, मनसूर और शम्श तबरेज़ जैसे कितने ही महान् व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया है, जिनके स्मरण मात्र से इतिहास की आत्मा काँप उठती है। इतना कर लेने पर भी क्या ये सभी न्यायालय अपने उद्देश्य को सफल बनाने में किञ्चित् मात्र भी सफल हुए? क्या समाज में होने वाले अपराधों की संख्या इनकी वजह से कुछ कम हुई? आप शुरु से आखिर तक इन संस्थाओं का इतिहास

देख जाइए, बराबर यही दिखाई देगा कि अपराधों को घटाने के लिए ज्यों-ज्यों इन संस्थाओं ने नए-नए तरीकों, नए-नए कानूनों और नए-नए दण्ड-विधानों का निर्माण किया है, त्यों त्यों मनुष्य की अपराध वृत्ति भी बराबर भड़कती और बढ़ती जा रही है। अपराधों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है और अपराध करने के नए-नए तरीके भी ईजाद हो रहे हैं। यह ऐतिहासिक सत्य इतना सप्रमाण है कि राज्य-संस्था का बड़े से बड़ा हामी भी इससे इन्कार नहीं कर सकता। इसी प्रकार अन्यान्य विभागों का भी यही हाल है।

तब क्या इन भिन्न-भिन्न विभागों की स्थापना करने में राज्य-संस्था का उद्देश्य अपवित्र था ? नहीं, हम जानते हैं कि संसार के इतिहास में ऐसे-ऐसे राजे, महाराजे और सम्राट् हुए हैं, जिन्होंने निहायत नेक-नियती, ईमानदारी और सहृदयता से मनुष्य जाति की सेवा की है। उन्होंने मनुष्य जाति का सुधार करने के लिए भरपूर चेष्टाएँ की हैं। परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि समाज की यह चिकित्सा ऊपरी चिकित्सा थी, अन्तरङ्ग चिकित्सा न थी। रोगी के रोग हो और उसे चिकित्सा के द्वारा आराम किया जाय, अपराधी अपराध करे और उसे सज़ा दी जाय, इससे सामाजिक कष्ट दूर नहीं हो सकता। असली कष्ट तो तभी दूर होंगे जब रोग और अपराध का अस्तित्व में आना ही बन्द हो जाए।

समाज में अपराधों का प्रादुर्भाव क्यों होता है, मनुष्य अपने को अपराध करने के लिए क्यों तैयार करता है, इन बातों पर तात्त्विक दृष्टि से विचार करें तो हमें इस बात का अच्छी तरह पता लगता है कि मनुष्य स्वभावतः अपराध करने का इच्छुक नहीं होता। उसकी अन्तरात्मा सदैव उसकी अपराध-वृत्ति के विरुद्ध विद्रोह करती रहती है। परन्तु इतने पर भी वह अपराध करता है, इसका एकमात्र कारण उसके सामाजिक वातावरण की विषमता है।

संसार में होने वाले असंख्य अपराधों का रेकॉर्ड (Record) उठा कर देखिए, आपको पता लगेगा कि इनमें से शत प्रतिशत अपराध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कामिनी और काञ्चन के लिए होते हैं। कुछ अपराध धर्म-संस्थाओं की बेदी पर भी होते हुए दिखाई देते

हैं। परन्तु धर्म-संस्थाओं के नाम पर होने वाले अपराधों की अगर गहराई से खानबीन की जाए, तो उनमें भी ये ही दो तत्व काम करते हुए दिखाई देगे।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि मनुष्यत्व की उच्चतम वृत्ति को खोकर मनुष्य इन दो बातों के लिए अपने समाज में अशान्ति के बीज क्यों बोता है ?

इसके उत्तर के लिए हमें मनोविज्ञान को बारीकी के साथ टटोलना होगा। उससे पता लगेगा कि मनुष्य के अन्तर्गत दो ही प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं, जिनका दमन करने में उसकी नैतिकता और उसकी उच्च प्रवृत्तियाँ असमर्थ होती हैं और अगर उनकी उचित रूप से वृत्ति न हो, तो मनुष्य उनकी वृत्ति के लिए भयङ्कर से भयङ्कर अपराध कर सकता है, फिर उसके विरुद्ध कितनी भी राज्य-संस्थाएँ या दण्ड-नीतियाँ क्यों न हों। इन प्रवृत्तियों में पहला प्रवृत्ति भूख की और दूसरी काम-वासना की है। आपको संसार के सारे अपराधों का केन्द्र इन्हीं दो प्रवृत्तियों में मिलेगा।

हम यह बलपूर्वक कह सकते हैं कि जब तक मनुष्य की इन दोनों वृत्तियों की पूर्ति समाज में सन्तोष के साथ होती रहेगी, तब तक वह कभी अपराध करने की ओर क़दम न बढ़ाएगा। संसार के किसी भी बड़े से बड़े अपराधी के जीवन-चरित्र को देखिए, आपको पता चलेगा कि इन्हीं दो वृत्तियों में से किसी के वृत्ति न होने के कारण ही उसने वह अपराध किया है।

अब अपराध-विज्ञान के इस महत्वपूर्ण तथ्य के साथ आप राज्य-संस्था के इतिहास का मिलान कीजिए। आपको पता लगेगा कि राज्य-संस्था ने विद्यालय, गुरुकुल, पाठशाला, औषधालय, न्यायालय, अदालतें तथा कानून और दण्ड-नीति बना कर ऊपरी तमाम बातों में समाज के सुसंयत रखने का प्रयत्न किया है, परन्तु उसने अपराध के मूल तत्वों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया। उसने मनुष्य की इन दोनों वृत्तियों का समतुल्य सन्तोष करने के बदले इनमें भारी विषमता पैदा कर दी। इस संस्था ने समाज में ऐसा वातावरण पैदा कर दिया, जिसमें रह कर मनुष्य अपराध किए बिना रह ही नहीं सकता।

पहला कार्य इस संस्था ने यह किया कि इसने मनुष्य की उस विषम प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया, जो समाज



में अमीर और गरीब इन दो प्रकार की मनोवृत्तियों को पैदा करती है। इसके सिवा इस संस्था ने समाज के ऐसे-ऐसे अनैसर्गिक सङ्गठनों को आश्रय दिया कि जिसकी वजह से समाज के एक हिस्से के लिए तो रोटी का सवाल कठिन हो गया और एक छोटा हिस्सा पेश और आराम में तल्लीन हो गया। इस व्यवस्था की वजह से एक ओर तो समाज में आनन्द, ऐश्वर्य और विलास की नदियाँ बहने लगीं और दूसरी ओर लोग भूख के मारे तड़पने लगे। परन्तु यदि भूख से तड़पता हुआ मनुष्य पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए अपने-सामने लहराते हुए ऐश्वर्य के दरिया में से एक मुट्ठी अन्न ले लेने की कोशिश करता है, तो राज्य-संस्था उसे अपराधी करार देती है। परन्तु गरीबों का रक्त चूस-चूस कर अमीर बनने वाले लोग इस संस्था की निगाह में अपराधी नहीं हैं। इस अस्वाभाविक व्यवस्था के कारण समाज के सारे धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य के स्वामी तो मुट्ठी भर लोग होगए और विशाल जन समुदाय रोटी के लिए तरसने लगा। ऐसी विषम अवस्था में यदि अपराधों की संख्या बढ़ती ही जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

रोटी के प्रश्न की तरह ही इस संस्था ने स्त्रियों के प्रश्न को भी जटिल कर दिया। इस संस्था ने समाज-संस्था के द्वारा बनाए गए उन सब अनैसागक नियमों को प्रश्रय दिया है, जिनके अनुसार स्त्री की गणना पुरुष की जङ्गम जायदाद में की गई है। इस विधान की वजह से एक ओर तो रोगी, जीर्ण, वृद्ध और विवाह के अयोग्य पुरुष भी अपने धन और मान की वजह से युवतियों और सुन्दर स्त्रियों के मालिक बन बैठते हैं, और दूसरी ओर अत्यन्त स्वस्थ, सुन्दर, बलिष्ठ और नीरोग युवक धन और मान के अभाव में जीवन-पर्यन्त अविवाहित रहते हैं। इस भयङ्कर प्रथा का परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो समाज की विवाह-संस्था अष्ट हो गई, दूसरी ओर उसका नारी-अङ्ग निर्माल्य हो गया और तीसरे अविवाहित तथा अयोग्य पत्नी से विवाहित नवयुवक तथा अयोग्य पतियों से विवाहित पत्नियाँ अपनी काम-वासना को न दबा सकने की वजह से गुप्त व्यभिचार के गर्त में जा पड़ीं। ऐसी स्थिति में यदि समाज में बलात्कार तथा नारी-हत्या सम्बन्धी अपराध बढ़ते जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है?

विज्ञान की उन्नति के पूर्व, जब कि जन-संख्या के मान से उत्पत्ति का औसत बहुत कम था और सब लोगों को मित्र सकें, इतनी वस्तुएं उत्पन्न न होती थीं, उस समय तो इन प्रश्नों का हल करना वास्तव में कठिन था। मगर जब से वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से उत्पादन होने लगा है, तब से उत्पत्ति का औसत पहले से कई गुना अधिक हो गया है। यहाँ तक कि इस समय तो संसार के कई महान् अर्थशास्त्रियों के दिमागों में ओवर-प्रॉडक्शन (Over Production) की समस्या बिना चोटी के भूत की तरह चक्कर लगा रही है। ऐसी स्थिति में भी आज संसार में रोटी का प्रश्न साधारण जनता के लिए पहले ही की तरह बल्कि उमसे भी दस गुना अधिक जटिल उपस्थित हो रहा है। एक ओर तो संसार का सारा सोना और धन थोड़े से पूँजीपतियों के पाम जाकर एकत्रित हो गया है, मिलों के गोदाम और अनाजों के बोरे ठसाठस भरे हुए पड़े हैं, और दूसरी ओर संसार के करोड़ों मजदूर और कृषक तथा गरीब लोग भयङ्कर बेकारी में रोटी के सवाल को हल न कर सकने की वजह से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं।

कहना न होगा कि इस सारी विषमता को आश्रय देने का श्रेय राज्य-संस्था को ही है, क्योंकि इस समय संसार की सारी सत्ता राज्य-संस्था में ही केन्द्रीभूत है। पूर्व-काल में जबकि उत्पत्ति ही आवश्यकता से कम थी, इस प्रश्न को हल करना वास्तव में कठिन था, मगर विज्ञान के इस प्रकाशमय युग में, जबकि उत्पत्ति का औसत इतना बढ़ गया है और भविष्य में इससे भी कई गुना अधिक बढ़ाया जा सकता है, यह समस्या बहुत आसानी से हल हो सकती है, यदि राज्य-संस्था विषमता को आश्रय देने के अपने चिरकालीन सिद्धान्त को बदल दे।

परन्तु जब तक यह विषमता इसी प्रकार कायम है, जब तक समाज के अन्दर समतापूर्ण वातावरण की स्थापना नहीं होती, तब तक हज़ारों राज्य-संस्थाएँ, हज़ारों न्यायालय और लाखों दण्ड-विधान भी अपराधों की संख्या को कम नहीं कर सकते। दण्डनीति के द्वारा अपराधों को दवाना एक ऐसी भयङ्कर भूल है, जैसी इतिहास में मनुष्य ने शायद दूसरी नहीं की। इस भूल का परिणाम भी मनुष्य को हाथों-हाथ मिल रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य क्यों-क्यों



न्यायालयों और दण्ड-विधानों की संख्या और कठोरता को बढ़ाता जा रहा है, त्यों-त्यों समाज में अपराधों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। मगर चूँकि उसके पास कोई दूसरा कामयाब हथियार नहीं है, इसलिए हज़ारों वर्षों से इसकी असफलता को जानते हुए भी इस बेकार हथियार को हाथ में थामे हुए है।

अस्पतालों का इतिहास भी ठीक इसी तरह का है। जिन लोगों को जेठ की कड़कड़ाती ठुपहरी में बारह-बारह घण्टे लगातार परिश्रम करने पर भी एक बेला रुचिपूर्ण अन्न प्राप्त न होता हो और जो हमेशा सड़े, वाली और अस्वास्थ्यकर भोजन के द्वारा अपने पेट की ज्वाला को शान्त करते हों, जिनके मस्तक के ऊपर राज्य, समाज और पूँजीपतियों का चक्र चौबीसो घण्टे चला करता है, उन लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा मनुष्यों के द्वारा स्थापित किए हुए क्या हज़ारों-लाखों अस्पताल कर सकते हैं? विज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् जब से कि बड़े-बड़े एंजिनों के धुँएँ से संसार का गगन-मण्डल आच्छादित होने लगा है और बड़े-बड़े कारख़ानों के गर्भ में हज़ारों मनुष्यों की घिचपिच पैदा हो गई है, जहाँ की भयङ्कर गड़गड़ाहट मनुष्य की श्रवण-शक्ति तक को नष्ट कर देती है, जहाँ की दूषित वायु अच्छे स्वस्थ मनुष्य के कलेजे को हिला देती है, उस वायु-मण्डल में बसने वाले मनुष्यों के स्वास्थ्य का क्या हाल होना है, इस बात को अन्तर्यामी ही जान सकता है। ऐसे कारख़ानों में, जहाँ दस-दस घण्टे लगातार काम करना और उसके पश्चात् भी सुखचिपूर्ण अन्न और सुख-दायिनी नौद का प्राप्त न होना पाया जाता हो, अस्पताल की दवाइयों के भरोसे मनुष्य कहाँ तक अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है। इसी का परिणाम हम देखते हैं कि एक रोग की पेटेयट औषधि निकलती है, वह औषधि मनुष्य की एक रोग-शक्ति को दबाती है, किन्तु फिर वही रोग-शक्ति और किसी दूसरे नाम और दूसरी रोग-शक्ति के रूप में उससे भी अधिक भयङ्कर होकर फूट निकलती है। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों हज़ारों दवाइयों का आविष्कार होता जाता है, त्यों-त्यों हज़ारों

रोगों का भी नया-नया अस्तित्व होता जाता है। ज्यों-ज्यों नये-नये अस्पतालों का निर्माण होता जाता है, त्यों त्यों मरीज़ों की बढ़ती हुई जन-संख्या से वे बराबर भरते चले जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य के स्वास्थ्य की यह समस्या हल नहीं होती, वरन् गोरखधन्धे की तरह बराबर उलझती ही चली जा रही है। अगर समाज की विषमता दूर हो जाय, मनुष्य के परिश्रम की मात्रा सुसाध्य हो जाय, उसके लिए सुखचिपूर्ण भोजन और सुखदायिनी नौद की व्यवस्था हो जाय, तो यह समस्या कितनी आसानी से हल हो सकती है।

बात असल यह है कि राज्य-संस्था ने सदैव समाज के रोगों की उपरी चिकित्सा की है। जिसने अपराध किया उसे सज़ा दे दी, जिसको रोग हुआ उसको दवा दे दी, बस अपराधों और रोगों के कारण-चिकित्सा पर उसने इतिहास के किसी भी पृष्ठ में आज तक ध्यान नहीं दिया। दूसरी भयङ्कर बात उसने यह पैदा की कि मनुष्य की मनोवृत्तियों को गुलाम बना दिया। उसकी शिक्षण व्यवस्था ऐसी की गई कि वह राजा को मालिक और ईश्वर का अंश समझने लगा और अपने सुख-दुख को कर्मों का फेर समझ कर उसे गुलामों की तरह सहन करने लगा। इसी गुलाम मनोवृत्ति का परिणाम है कि हज़ारों वर्षों तक मनुष्य इस संस्था के हाथ में कठ-पुतली की तरह नाचता रहा है। उसने इन राजाओं के छोटे-छोटे व्यक्तित्व के लिए हज़ारों की तादाद में अपनी जानों की कुर्बानी कर दी और इसी के फल-स्वरूप समाज में “धरती तो राजा की और बेटी बाप की” वाली कहावतें चरितार्थ हुईं।

अगर यह संस्था क़ानून और दण्ड के फेर में न पड़ कर मनुष्य की रोटी और काम तृप्ति की समस्या को यथेष्ट रूप से हल करने का प्रयत्न करती और समाज में ऐसी व्यवस्था हो जाती, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अच्छा भोजन और योग्य स्त्री नसीब हो सकती तो आज संसार को इस विकट स्थिति का सामना ही न करना पड़ता।





नेपोलियन की महत्ता

[श्री० गणेश पाण्डेय]



न १८०६ ई० के अक्टूबर महीने की सन्ध्या समय की बात है। फ्रेञ्च सरकार के प्रधान मन्त्री 'साले मोरिश डि तेलिरो पेरिगोर' बर्लिन नगर के उस समय के राज-मन्त्रालय-गृह में

अकेले बैठ कर राज-काज कर रहे थे। उस समय जेना के रणक्षेत्र में सारे प्रुशियन साम्राज्य ने ठिगाने क्रद के एक किसान के लडके के पैरों तले अपने जातीय गौरव को नष्ट कर स्वाधीनता अर्पित कर दी थी। शोभाहीन बर्लिन नगरी के वक्ष-स्थान पर उस समय भी विजयोन्मत्त फ्रान्सीसी सेना का ताण्डव-नृत्य हो रहा था। प्रुशिया के प्राचीन गौरव, कीर्ति और दुर्लभ शिल्प-कला की वस्तुएँ नष्ट की जा रही थीं। सम्राट् 'फ्रेडरिक दी ग्रेट' का समाधि-स्तम्भ, तख्तार और गौरव-सूचक उपाधि-चिन्ह आदि सभी वस्तुएँ प्रुशिया-विजय के चिन्ह-स्वरूप पेरिस को भेज दी गई थीं। पोर्टस्डम और बर्लिन की ऑर्ट गैलरी की शोभा बढ़ाने वाली, चित्रकारों और भास्करों की प्रतिभा-प्रसूत अमर-कीर्तियों से पेरिस की चित्रशाला को सुसज्जित कर दिव्यजयी बोनापार्ट अपनी लूट-खसोट की लालसा का अच्छा परिचय दे रहा था। प्रधान मन्त्री साले तेलिरो अपने स्वामी की नीच वृत्ति का कभी अनुमोदन करते थे या नहीं, यह जन-

साधारण में कभी प्रकट नहीं हुआ। इस असाधारण चतुर व्यक्ति में अपने स्वामी तथा निजी गोपनीय बातों और इरादों को गुप्त रखने की असाधारण क्षमता थी।

पूर्वोक्त १८०६ ई० के अक्टूबर मास के सन्ध्या-काल में साले तेलिरो राज-मन्त्रालय-गृह में ढेर के ढेर रखे हुए सरकारी कागज़ों से सज्जित मेज़ के सामने बैठ कर उन पर अपना मन्तव्य (Remark) लिख रहे थे। कुछ दूर लूट-खसोट में लगे फ्रान्सीसी सिपाहियों की जय-जयकार-ध्वनि उस कमरे में भी आ रही थी। इन कागज-पत्रों में हारे हुए प्रुशियनों के प्राणदण्ड, कारावास, निर्वासन दण्ड तथा फ्रेञ्च सिपाहियों के पदोन्नति और पुरस्कार आदि सम्बन्धी लिखी थीं। सब कागज़ों पर अपना मन्तव्य लिखने के बाद जब वे सम्राट् का हस्ताक्षर कराने के लिए उन्हें अलग रखने लगे, तो उनकी नज़र हाट्जक्रिल्ड के राजकुमार की गिरफ्तारी के परवाने पर पड़ी। मन्त्री ने गौर से उसे पढ़ा। इस परवाने में सम्राट् नेपोलियन के प्रति विश्वासघात-कता के अपराध में हाट्जक्रिल्ड के राजकुमार के लिए फाँसी की सज़ा की आज्ञा लिखी थी। मन्त्री के नेत्रों में उद्देग का चिन्ह दिखाई देने लगा। वे गहरी चिन्ता में डूब गए। इसके बाद एक पट्टेची केस खोल कर उन्होंने एक पत्र निकाला और थोड़ी देर झुंझ-झुंझ करने के बाद उसे पढ़ने लगे। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनके चौड़े ललाट पर सिक्कड़न पड़ गई। हाट्जक्रिल्ड के



राजकुमार पर उस समय सम्राट् नेपोलियन की रक्षा का भार था, परन्तु उस पत्र में लिखा था कि वे नेपोलियन के शत्रु होपेन जो को फ्रान्सीसियों की गति-विधि और अवस्था के सम्बन्ध में सारा हाल बताते हैं। परन्तु यह कैसे हुआ ? अभागे राजकुमार ने सिंह से चालाकी करने का साहस कैसे किया ?

इसी समय सहसा बाहर के सन्तरियों में एक हल-चल मच गई। उनकी कमर की तलवारें झनझना उठीं। मन्त्री के हाथ से पत्र छूट कर मेज़ पर गिर पड़ा। इतने में उन्होंने सम्राट् के आने की आशा से कमरे का दरवाज़ा खोल कर बाहर दृष्टि डाली, तो उन्हें एक अवगुण्ठनवती रमणी दिखलाई पड़ी। वह अत्यन्त उत्तेजित सी जान पड़ती थी और पहरेदारों को डेल कर सम्राट् के मन्त्रणागार में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही थी। मन्त्री ने एक ही दृष्टि में उसे पहचान लिया। उनका चेहरा काला पड़ गया। वह स्त्री हाट्जफिल्ड के राजकुमार की पत्नी प्रिन्सेस ऑफ़ हाट्जफिल्ड थी। वह प्रधान मन्त्री को देख कर कुछ क्षण तक किंकर्तव्य विमूढ़ सी होकर खड़ी रही। इसके बाद निर्भीकता-पूर्वक खड़ी होकर उसने मन्त्री को अपने पास आने के लिए इशारा किया। परन्तु मन्त्री ने उसकी आज्ञा का पालन करने का कोई भाव प्रकट न किया। केवल उनके होठों पर एक सूखी हँसी दौड़ गई और मानों घटना के प्रति उदासीनता का भाव प्रकट करने के लिए वे अपने कोट से गर्द झाड़ने लगे। मन्त्री का यह उपेक्षा का भाव देख कर बेचारी का सिर झुक गया। उसकी भावभङ्गी से लाचारी प्रकट होने लगी। उसने बड़ी ही नम्रता और दीनता के साथ तेलिरों को अपने पास आने का अनुरोध किया। अन्त में शायद उसके इस विनम्र भाव को देख कर मन्त्री का हृदय भी कुछ पिघला। क्योंकि दूसरे ही क्षण उन्होंने पहरेदारों को उस स्त्री के लिए मार्ग दे देने का हुक्म दिया।

हाट्जफिल्ड के राजकुमार की पत्नी, मन्त्री के इस अनुग्रह से बिना रोक-टोक, काँपती हुई एकदम बरामदे में आकर उनके सामने खड़ी हो गई और बिना अभिवादन किए ही झटपट उनके झुंड की ओर देखती हुई बोली—महाशय ! क्या आप बता सकते हैं, इस समय सम्राट् कहाँ हैं ?

मन्त्री ने उत्तर दिया—भद्रे, इस समय यहाँ पर सम्राट् नहीं हैं ?

युवराज्ञी बोली—तो मैं उनके लौटने तक यहीं रहूँगी। वोहाई श्रीमान् की ! मुझे तब तक मन्त्रणा-गृह में बैठने की आज्ञा दें।

मन्त्री—नहीं भद्रे ! सम्राट् के मन्त्रणा-गृह में किसी का भी आना मना है।

युवराज्ञी—महाशय, मैं हाट्जफिल्ड की युवराज्ञी हूँ।

मन्त्री—मैं महाप्रतापी फ्रान्स के सम्राट् नेपोलियन बोनापार्ट का मन्त्री प्रिन्स ऑफ़ वेनिवेलो साल्ले तेलिरों हूँ।

साल्ले तेलिरों का परिचय पाकर युवराज्ञी ने अपना अवगुण्ठन उतार दिया और क्षण भर किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह उनकी ओर चुपचाप देखती रही। तेलिरों ने चकित नेत्रों से देखा कि वह स्त्री अत्यन्त सुन्दरी है। परन्तु इस समय उमका सौन्दर्यपूर्ण मुख किसी मानसिक पीडा से रक्तहीन होकर मुरझा गया है।

युवराज्ञी ने बड़े ही कोमल स्वर में कहा—महाशय, मैं सम्राट् से अवश्य ही भेंट करूँगी।

मन्त्री—नहीं भद्रे ! आपसे इस स्थान पर सम्राट् से भेंट होना शिष्टुल असम्भव है।

युवराज्ञी—मैंने सुना है कि मेरे स्वामी किसी राजकीय अभियोग में शीघ्र ही प्रायदण्ड पाएँगे। परन्तु वारतव में उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है। वे बिल्कुल निर्दोष हैं। परन्तु वे इस समय नज़रबन्द हैं, इससे अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने में बिल्कुल असमर्थ हैं। उनकी अभागिनी स्त्री उनके प्रतिनिधि के रूप में सम्राट् से उनकी रिहाई के लिए प्रार्थना करेगी। वोहाई प्रधान मन्त्री महोदय की ! मुझे इस बरामदे में बैठने के लिए कोई आसन दिलवा दे।

मन्त्री—आप देख ही रही हैं, यह बरामदा बिल्कुल खाली है। यहाँ बैठने लायक कोई आसन नहीं है।

युवराज्ञी—सुनिए मन्त्री महोदय ! मैं आज सवेरे से शाम तक सम्राट् से भेंट करने का प्रयत्न करती रही हूँ। मुझे विश्वास है कि एक बार सम्राट् से भेंट होने पर, अपने स्वामी के ऊपर लगाए हुए मिथ्या अपराध के सम्बन्ध में मैं उनका सन्देह दूर करने में समर्थ होऊँगी। क्या आप मुझे इस कार्य में सहायता न देंगे ?



एक अभागिनी दुखिया अबला आपसे सहायता की भिन्ना मांगती है। उस पर दया कीजिए।

मोशिये तेलिरोँ उस समय नासदानी से एक चुटकी नास लेकर चुपचाप युवराज्ञी के सामने खड़े थे। उसकी दीनता-भरी याचना का उनके हृदय पर कोई प्रभाव न पड़ा। युवराज्ञी ने फिर निराशापूर्ण स्वर में कहा—धन्य ! मोशिये तेलिरो, धन्य ! विजयी फ्रान्सीसी पराजित जाति की एक स्त्री के प्रति बड़ा अच्छा भाव दिखला रहे है। फ्रेञ्च जाति की सज्जनता की जो ख्याति है वह तो कोरी गप्प ही जान पड़ती है। हाय ! जब एक फ्रान्सीसी युवराज अपनी बराबरी की स्त्री के प्रति इस प्रकार का उपेक्षापूर्ण रूखा व्यवहार दिखलाने में किमी प्रकार का सङ्कोच नहीं करता, तो साधारण फ्रान्सीसियों से तो कोई आशा ही नहीं की जा सकती।

प्रिन्सेस ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया। वह बहुत ही निराश दिखलाई पड़ती थी। उसका शरीर काँप रहा था। वह भूमि पर गिरना ही चाहती थी कि मन्त्री ने फुर्ती से उसे थाम लिया। उस समय युवराज्ञी ने एक आसन के लिए उनसे और भी अन्रता के साथ प्रार्थना की। परन्तु मन्त्री ने इन्कार करते हुए कहा—नहीं भद्रे, आपकी गाडी जहाँ पर आपका इन्त-ज़ार कर रही है, वहाँ तक आपको पहुँचा देने का मुझे गौरव प्रदान कीजिए।

युवराज्ञी—नहीं श्रीमान् ! मुझे बेहोशी आ रही है। मैं यहाँ से एक पग भी नहीं हटूँगी। दया करके मुझे बैठने के लिए आसन दीजिए।

मन्त्री—आपको बैठने के लिए कोई आसन नहीं दिखा सकता। आइए, जो कमरा पहरेदारों द्वारा रक्षित है, वहाँ आपको ले चलने की मुझे इजाज़त दीजिए।

युवराज्ञी—जमा कीजिए श्रीमान् ! मैं इस समय होश में हूँ। आपकी सहायता की मुझे आवश्यकता नहीं है।

मन्त्री ने कुछ मुस्कराते हुए कहा—इस प्रकार शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ कर लेने के लिए आपको धन्यवाद है।

युवराज्ञी—महाशय, मैं हृदय चित्त वाली स्त्री हूँ। (मन्त्री ने मन ही मन युवराज्ञी की हृदय-चित्तता को स्वीकार किया) मैं अपने स्वामी के जीवन-रक्षार्थ सन्नाह से भेंट करने की आशा से आई हूँ।

मन्त्री ने ऐसे प्रशंसनीय सङ्कल्प के लिए युवराज्ञी की बड़ी तारीफ़ की। परन्तु साथ ही उसके सङ्कल्प-सिद्धि के मार्ग में जो बाधा थी, उसके लिए दुःख प्रकट करना भी न भूले।

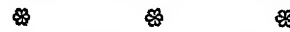
युवराज्ञी ने फिर कहा—नहीं, मन्त्री महाशय ! मेरे सङ्कल्प की सिद्धि कठिन नहीं है। मैं सम्राट् के लौटने तक यही रहूँगी, उनसे भेंट किए बिना एक पग भी न हटूँगी।

मन्त्री ने कहा—भद्रे ! इस समय यहाँ सम्राट् के आने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए आप व्यर्थ यहाँ अपना समय नष्ट करेंगी।

युवराज्ञी—कुछ भी हो, मैं तो यहीं रहूँगी।

मोशिये तेलिरोँ युवराज्ञी की इस प्रकार की चातुर्य भरी बात को सुन कर बिल्कुल उल्लिप्त हो उठे। वे इस राजनीति में कुशल चतुर नारी की बुद्धिमत्ता देख कर चकित से रह गए। उसे मुलावा देकर वहाँ से हटाने का कोई उपाय न कर सके। अन्त में लाचार होकर मुस्कराते हुए उसे मन्त्रणागार में चलने को कहा।

दोनों साथ ही कमरे में दाखिल हुए। मन्त्री ने युवराज्ञी को बड़े आदर से बैठने के लिए आसन दिया और थोड़ी देर के लिए ज़रूरी राजकीय कार्यों को पूरा करने के लिए उससे ज़मा माँगी। इसके बाद वे मेज़ के सामने बैठ कर अपना ज़रूरी काम पूरा करने में लग गए।



कुछ देर तक मोशिये तेलिरोँ के कलम की सरसरा-हट और थोड़ी दूर पर पहरेदारों के पैरों की आहट को छोड़ कर कमरे में और कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था। थोड़ी देर के बाद एकाएक कमरे की नीरवता को भङ्ग करती हुई युवराज्ञी बोल उठी—श्रीमान्, मैं देख रही हूँ कि आपको बहुत से राजकीय कागज़-पत्रों की देख-भाल करनी पड़ती है।

मोशिये तेलिरो ने उसी समय हाट्जफ़्रिट्ज के राज-कुमार की गिरफ़्तारी के परवाने को उस ढेर के ढेर कागज़ों के नीचे एक स्थान पर बड़ी सावधानी के साथ रक्खा और राजकुमार की विश्वासघातकता प्रसा-णित करने वाले कागज़ों को हाथ में लेकर प्रिन्सेस के प्रश्न के उत्तर में बड़े अदब के साथ कहा—हाँ भद्रे, मुझे बहुत से सरकारी कागज़ात देखने पड़ते हैं।



युवराज्ञी—क्या इन कागज़ों पर सन्नाह आकर हस्ताक्षर करेंगे ?

मन्त्री—हाँ, सन्नाह आकर इन पर हस्ताक्षर करेंगे।

युवराज्ञी—क्या आज रात को ही सन्नाह इन पर दस्तख़त करेंगे ?

मन्त्री—नहीं, कल दस्तख़त करेंगे।

प्रिन्सेस—तब तो अभी बहुत समय बाक़ी है। कल तक तो आप इन कागज़ों को लिख कर ख़त्म कर सकते हैं। लेकिन मैं तो देखती हूँ कि एक तरह से आपने इसके पहले ही लिख कर समाप्त कर लिया है। इस समय आप कृपा करके मेरे जाने से पहले क्या मुझे कुछ बातचीत तक करने का अवसर दे सकते हैं ?

मोशिये तेलिरोँ युवराज्ञी के प्रति तीव्र कटाक्ष करके उसकी प्रार्थना पूर्ण करेंगे या नहीं, इस सम्बन्ध में हतस्ततः करने लगे। इतने में युवराज्ञी ने तेलिरो की ओर बढ़ कर मन्द मुस्कान के साथ उनसे बातचीत करने के लिए अनुरोध किया।

तेलिरोँ ने देखा कि उनके हाथ में जो कार्य था, वह एक तरह से समाप्त हो चला है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सोचा, युवराज्ञी को भीठी बातों से सन्तुष्ट करके यहाँ से बिदा कर देना ही ठीक है। सौभाग्य से सन्नाह के नगर से लौटने में अभी एक घण्टे की देर थी।

युवराज्ञी क्षुब्ध स्वर में बोली—श्रीमान्, क्या मेरा अनुरोध आपको स्वीकार नहीं है ?

सुन्दरी के होंठ फड़कने लगे। मोशिये तेलिरोँ ने हाथ के पत्र को बक्स में बन्द कर दिया और युवराज्ञी के अनुरोध की रक्षा के लिए एक कुर्सी लेकर उसके बग़ल में बैठ गए।

मोशिये तेलिरोँ ने युवराज्ञी की ओर गहरी दृष्टि डालते हुए कहा—आप देखने में अत्यन्त सुन्दरी जान पड़ती हैं।

युवराज्ञी—नहीं श्रीमान्, मुझे तो ऐसा जान प्रक़ता है कि राजनीति-विशारदों को आकर्षित करने के लिए मेरे सौन्दर्य में ज़रा भी शक्ति नहीं है।

मन्त्री—नहीं भद्रे, वास्तव में राजनैतिक पुरुषों को आकर्षित करने के लिए आपके सौन्दर्य में अथेष्ट शक्ति है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। (युवराज्ञी के हाथ को सम्मान के साथ चूमते हुए) एक राजनीतिज्ञ की हैसि-

यत से आपके सौन्दर्य की आकर्षण-शक्ति का पच लेने की मुझे अनुमति दीजिए।

युवराज्ञी—(पहले से अधिक मधुर मुस्कान के साथ) मोशिये तेलिरोँ, आप पहले सेण्ट जेपलिस कॉलेज के छात्र थे ?

मन्त्री—हाँ, जब मैं ओतिउँ नगर का विशप था और जिस समय मोशिये मिराबो ने मेरे भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में महान् भविष्यवाणी की थी, उस समय मैं सेण्ट जेपलिस कॉलेज का छात्र था।

युवराज्ञी—हाँ, मिराबो की भविष्यवाणी आपके जीवन के सम्बन्ध में अचरशः सच निकली। आप एक बड़े भारी साम्राज्य के स्थापित करने वाले, एक बड़े भारी राष्ट्र की केन्द्रीभूत शक्ति और सन्नाह नेपोलियन के दाहिने हाथ हैं।

मन्त्री—चमा कीजिए, मेरी अधिक तारीफ़ न कीजिए। हम लोगों को नष्ट बनने का प्रयत्न करना चाहिए। आपको याद रखना चाहिए कि छुट्टे पोप पायस ने मुझे स्वर्ग के राज्य से च्युत किया है। हाय, मैं इस जीवन में सुख-सौभाग्य भले ही प्राप्त कर रहा हूँ, लेकिन धार्मिक जगत् के अधिकार से तो वञ्चित हो गया हूँ।

युवराज्ञी—मोशिये तेलिरोँ, मैं देख रही हूँ, आप अपने विशप-काल के स्वभाव को अब तक नहीं भूले हैं। अब भी आप धर्मोपदेशकों की तरह ही मुझे नष्ट बनने का उपदेश दे रहे हैं। वाह, आप कितने अच्छे उपदेशक हैं।

मन्त्री—परन्तु इसके विपरीत मैं तो आपको ही अपना उपदेश मानता हूँ।

युवराज्ञी—नहीं श्रीमान्, आप मेरी हँसी न करें।

मोशिये तेलिरोँ ने प्रिन्सेस के हाथ को पहले से भी अधिक सम्मान के साथ चूम कर कहा—नहीं भद्रे, मैं आपकी हँसी नहीं उड़ाता। वरन् मैं आपको सचमुच एक उपदेशिका समझता हूँ।

इसी समय बाहर नगाड़े की गड़गड़ाहट और अश्वारोही सैनिकों के घोड़ों की टापों की आवाज़ ने सन्नाह के नगर से लौटने की सूचना दी। हाट्जफ़िल्ड की युवराज्ञी फुर्ती से आसन छोड़ कर उठ खड़ी हुई और बार-बार अस्फुट स्वर में कहने लगी—सन्नाह नगर



से लौट आए। मन्त्री महोदय का मुँह सूख गया। वे उत्तेजित स्वर में युवराज्ञी को मना करते हुए बोले— नहीं भद्रे, अभी सम्राट् नहीं लौटे हैं। रात्रि अधिक बीत चुकी है, इसीसे पहरेदारों की बदली करने के लिए नगाडा बजाया जा रहा है।

इसके बाद वे युवराज्ञी के उतारे हुए लबादे को हाथ में लेकर बोले—आइए, इस लबादे को पहनाने की मुझे आज्ञा दीजिए। आपका अब घर लौट जाना ही उचित है। मैं स्वयं सम्राट् से आपके पति के छुटकारे के लिए प्रार्थना करूँगा।

युवराज्ञी—इसके लिए आपको अनेकशः धन्यवाद। आइए, इस प्रकाश के पास लबादे को पहनने में मेरी सहायता कीजिए। इसमें बहुत से बताम हैं। बिना चिराग की रोशनी के सामने खड़े हुए इसे पहनाने में आपको सुविधा न होगी।

मोशिये तेलिरो बड़े आदर से उस मेज़ के सामने लैम्प के पास युवराज्ञी को ले जाकर लबादा पहनने में उसकी सहायता करने लगे। इस सम्माननीय कार्य के समाप्त हो जाने पर उन्होंने विस्मित नेत्रों से देखा कि युवराज्ञी ने लबादा पहनने के समय, उनकी आँखें बचा कर अपने पति की गिरफ्तारी का परवाना ले लिया। उन्होंने उसे युवराज्ञी के हाथ से ले लेना चाहा, परन्तु युवराज्ञी ने इससे पहले ही उसके टुकड़े-टुकड़े करके चारों तरफ फेंक दिए।

यह देख कर मन्त्री-प्रवर बोले—युवराज्ञी, अफ-सोस! आपने ऐसा करके अपने पति को और भी झूतरे में डाल दिया।

युवराज्ञी—नहीं, मैंने ऐसा करके अपने पति को बचा लिया।

मन्त्री—खैर, अब आपको अपने घर चला जाना चाहिए। इस समय सम्राट् से भेंट होना बिल्कुल असम्भव है। आइये, गाड़ी तक पहुँचाने के लिए मुझे अनुमति दीजिए।

युवराज्ञी—नहीं, मैं यहाँ से एक पग भी न हटूँगी।

मन्त्री—खैर, अब आपको समझना चाहिए कि आपने अपने हाथों से अपने पति की हत्या कर डाली।

सत्नीनों की झुनझुनाहट ने सम्राट् के मन्त्रणा-गृह में आने की सूचना दी। युवराज्ञी कमरे के दरवाज़े पर

घुटनों के बल बैठ कर सम्राट् के आने की प्रतीक्षा करने लगी। थोड़ी ही देर में जिरह-बख़्तर पहने झांकी रक्त की वर्दी में ठिगने कद के सम्राट् नेपोलियन ने किसी तरफ़ निगाह न डाल कर सीधे मन्त्रणागार में पैर रक्खा। बेचारी युवराज्ञी इस प्रकार सम्राट् की दृष्टि आकर्षित करने में विफल-मनोरथ हो, दरवाज़े से उठ खड़ी हुई और दुस्साहस करके एकदम सम्राट् के पैरों पर गिर कर कातर-स्वर में कहने लगी—महा शक्तिशाली सम्राट्! अपने दास पर कृपा कीजिए।

इस बार बोनापार्ट की दृष्टि पैरों पर पड़ी हुई उस रमणी पर पड़ी। उसने तेलिरो से कहा—मोशिये, यह स्त्री कौन है?

तेलिरो—धर्मावतार! ये हाट्जक्रिस्ट के राजकुमार की गृहिणी हैं।

सम्राट्—भद्रे! आप मुझसे किस बात की प्रार्थना करती हैं?

युवराज्ञी—दयावतार! मैं आपसे अपने स्वामी के जीवन की भीख माँगती हूँ।

सम्राट्—अपने स्वामी के जीवन की भीख? वह तो इससे पहले ही अपनी विश्वासघातकता के लिए इस दुनिया से कूच कर गए होंगे।

युवराज्ञी—दयावतार! उन्होंने आपसे कभी विश्वास-घात नहीं किया है। वे आपके हितैषी राजा हैं। उनकी स्त्री की प्रार्थना पर ध्यान दीजिए।

युवराज्ञी हाथ जोड़ कर कण्ठ-स्वर में सम्राट् से दया की भीख माँगने लगी। नेपोलियन वहाँ से एक पग भी न हटा और न युवराज्ञी की बातों का कोई उत्तर ही दिया। परन्तु उसकी ईदनी हुई पैनी आँखों की दृष्टि उस आँसू भरे चेहरे से इधर-उधर न हुई।

युवराज्ञी ने और भी अधिक व्याकुलता के साथ प्रार्थना की—दयावतार! अगर मैं जानती या सोचती कि मेरे पति की विश्वासघातकता के सम्बन्ध में कोई प्रमाण मौजूद है, तो मैं सम्राट् से उनके जीवन की भीख कदापि न माँगती। परन्तु मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वे निर्दोष हैं। आज सवेरे से शाम तक आप से भेंट करने के लिए मैं भटकती रही हूँ। मेरे चेहरे को देखिए। मेरी मानसिक चिन्ता का झयाल कीजिए। जबकि कोई प्रमाण मौजूद नहीं है, तो मेरे पति को मुझे लौटा दीजिए।



नेपोलियन ने इसी समय मानों किसी कागज़ के पाने की आशा से मोशिये तेलिरों की ओर हाथ पसारा। मोशिये ने सम्राट् के मनोभाव को समझ कर बक्स में से एक पत्र निकाल कर सम्राट् के हाथ में दे दिया। सम्राट् ने पत्र को हाट्जफ्रिड की युवराज्ञी के हाथ में देकर कहा—भद्रे ! यह किसका लिखा पत्र है ?

युवराज्ञी पत्र को देखते ही सहसा ज़ोरों से चीख उठी। वह पत्र उसके हाथ से ज़मीन पर गिर पड़ा। सम्राट् नेपोलियन और मोशिये तेलिरों दोनों ने परस्पर अर्थपूर्ण दृष्टि-विनिमय किया।

सम्राट् ने फिर पूछा—क्या यह आपके पति के हाथ का लिखा हुआ नहीं है ?

भद्रप्राणा रमणी ने शोकपूर्ण निश्वास छोड़ कर केवल सम्राट् की बात का उत्तर दिया। नेपोलियन इस भीषण शोक और हृदय-विदारक निराशा की साक्षात् मूर्ति की ओर कुछ देर तक स्थिर नेत्रों से देखते रहे। उनके दोनों नेत्र कण्ठ के आँसुओं से भीग उठे।

सम्राट्—मोशिये तेलिरों !

तेलिरों—श्रीमान् !

सम्राट्—हाट्जफ्रिड के राजकुमार के विरुद्ध हम लोगों के पास क्या और कोई भी प्रमाण है ?

तेलिरों—नहीं श्रीमान्, इस पत्र के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है।

सम्राट्—(ग्रिन्सेस के कान में अस्पष्ट स्वर में) भद्रे, तो सामने की अँगठी में इस पत्र को फेंक दीजिए, ऐसा होने पर हम लोगों के पास उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न रह जायगा।

युवराज्ञी—(विस्मयपूर्वक) क्या आप सचमुच मुझे इस पत्र को अँगठी में डालने को कहते हैं ?

सम्राट्—हाँ, सचमुच कह रहा हूँ। आपके स्वामी ने सम्राट् के प्रति जो विश्वासघात किया है, उस पर आप सम्भवतः विश्वास करती हैं। आप इसके पहले जानती नहीं थीं कि वह वास्तव में अपराधी हैं। आप एक अतीव सुन्दरी रमणी हैं। आप जैसी सुन्दरी हैं, यदि आपके पति भी वैसे ही सुन्दर होते तो क्या ही अच्छा होता। आप इसी क्षण सामने के अग्नि-कुण्ड में इस पत्र को फेंक दीजिए।

हाट्जफ्रिड की-ग्रिन्सेस ने आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए नेपोलियन के हाथ को चूम लिया। क्षण भर में ही राजकुमार के प्रति विश्वासघातका का दोष सिद्ध करने वाला पत्र अग्नि-कुण्ड में जल कर भस्म हो गया। मोशिये ने सिर झुका कर कहा—ग्रिन्सेस, ऐसी महान् चरित्र वाली स्त्री जिसकी पत्नी है, उस व्यक्ति का चरित्र शीघ्र ही सुधर जायगा। मैं आपके स्वामी की जीवन-रक्षा के लिए आनन्द प्रकट करता हूँ।

युवराज्ञी—मन्त्रिवर ! मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

मन्त्री—मैं सम्राट् पर यह प्रकट करना न भूलूँगा कि आप उनके मन्त्रि-मण्डल की चतुर राजनीति-विशारदा मन्त्रिणी हो सकती हैं।

युवराज्ञी—इसके लिए आपको अनेकशः धन्यवाद है।

इसके बाद ढेर के ढेर कागज़ों से सजे हुए मेज़ के सामने बैठ कर उन पर हस्ताक्षर करते हुए नेपोलियन के सम्मुख उपस्थित होकर हाट्जफ्रिड की युवराज्ञी ने कहा—दयावतार, मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ। मैंने अपने हाथों से अपने पति की गिरफ्तारी का परवाना फाड़ डाला है। देखिए, आपके पैरों तले उसके टुकड़े पड़े हुए हैं।

नेपोलियन ज़मीन की ओर देखने लगा, लेकिन कोई उत्तर न दिया। ग्रिन्सेस ने फिर कहा—श्रीमान्, विदा दीजिए। आज रात के इस कार्य द्वारा आपने जो जयश्री प्राप्त की है, उसे आपकी इतनी बड़ी ज़बर्दस्त सेना भी नहीं प्राप्त कर सकती। आपने प्रशिया की सारी स्त्रियों की प्रीति और सहानुभूति को प्राप्त कर लिया। जिस समय आज की घटना चारों तरफ़ फैलेगी उस समय प्रशिया की समस्त स्त्रियाँ मेरे स्वर में स्वर मिला कर सम्राट् नेपोलियन के दीर्घ जीवन की कामना करेंगी—इसमें कोई सन्देह नहीं।

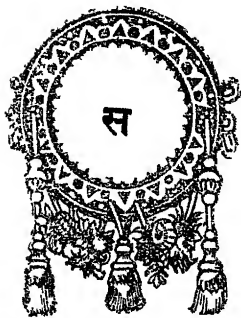
ग्रिन्सेस के दोनों नेत्र कृतज्ञता के आँसुओं से भर गये। ❀

❀ एक फ़्रेञ्च कहानी



ऑस्ट्रेलिया की शासन-प्रणाली

[श्री० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०]



वाङ्मन-पूर्ण प्रजा-सत्तात्मक शासन-प्रणाली का नमूना ढूँढ़ निकालना एक अत्यन्त कठिन काम है, क्योंकि भिन्न-भिन्न देशों की प्राकृतिक अवस्थाएँ और उनकी प्राचीन संस्थाएँ, उनके राष्ट्र निर्माण के विश्वास पर, भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव डालती हैं। इसीलिए प्रत्येक देश अपनी सत्ता के विकास को अपने विशेष ढङ्ग से सूचित करता है। परन्तु तो भी, अगर हम किसी ऐसे देश के इतिहास का अध्ययन करना चाहें, जिसकी प्रजा ने बाह्य कारणों से अविचलित होकर और अपने पूर्व-पुरुषों द्वारा प्राप्त राष्ट्र-ज्ञान से बहुत कम प्रभावित होकर, अपनी सत्ता स्थापित की हो, तो वह देश ऑस्ट्रेलिया ही है। इस देश ने बहुत तेजी से और बहुत दूर तक, उस मार्ग का अनुसरण किया है, जिसके द्वारा लोकसत्ता स्थापित की जा सकती है। अन्य देशों की अपेक्षा इस देश के इतिहास द्वारा हम भली भाँति समझ सकते हैं कि लोक-सत्तात्मक विधान को क्रियात्मक बनाने के लिए हमें किन-किन वृत्तियों और साधनों का सहारा लेना पड़ता है।

आरम्भ में इस देश और यहाँ के निवासियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेने से हमें उसके राष्ट्रीय जीवन के विकास के समझने में सुगमता होगी। इसलिए उसका थोड़ा सा हाल जान लेना परमावश्यक है।

ऑस्ट्रेलिया का महाद्वीप, यूरोप से छोटा, २९,७४,५८१ वर्ग मील का, एक बहुत विस्तृत मैदान है। इसका पूर्वी भाग पहाड़ों की एक लम्बी पंक्ति से घिरा हुआ है, जिनकी ऊँचाई ७५०० फीट से कहीं भी अधिक

नहीं है। कुछ पहाड़ ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिम कोण पर हैं और कुछ देश के अन्तर्भाग में भी जहाँ-तहाँ फैले हुए दिखाई देते हैं। यह विस्तृत मैदान इतना सूखा है कि शायद इसका कुछ भाग सदा उजाड़ ही पड़ा रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। इस भाग में पानी का नितान्त अभाव है। केवल दक्षिण-पूर्व भाग में कुछ नदियाँ हैं, जो पूर्वीय पहाड़ों से निकल कर दक्षिण-सागर की ओर धीरे-धीरे बहती हैं। ये नदियाँ गर्मियों में इतनी उथली हो जाती हैं कि उनमें जहाज नहीं चल सकते। केवल पूर्वीय और दक्षिण-पूर्वीय किनारे के पहाड़ी हिस्से भली-भाँति बसे हुए हैं। इन विभागों को समुद्र के किनारे रहने वालों ने बसाया था। धीरे-धीरे यह आबादी इतनी बढ़ती गई कि समुद्र के किनारे से, अन्दर के आबाद हिस्से तक, लगातार, करीब ६०० मील की आबादी हो गई। बहुत से हिस्सों में यह आबादी बिखरी हुई है, और पश्चिम ऑस्ट्रेलिया नामक प्रान्त का घना आबाद शहर अन्य शहरों से बहुत दूरी पर है। उदाहरणार्थ दक्षिण-ऑस्ट्रेलिया के 'एडिलेड' को ले लीजिए। उसका फ्रांसला, दक्षिण-ऑस्ट्रेलिया के सबसे पास वाले बड़े शहर से, रेल द्वारा ४२ मील है और जहाज द्वारा तीन दिन का सफ़र है। दूसरा 'टास्मानिया' है। यह बिल्कुल अलग एक द्वीप पर बसा हुआ है।

इसी तरह जिस समय ऑस्ट्रेलिया के प्रत्येक उप-निवेश के जीवन का विकास हो रहा था, उस समय उसके प्रान्त एक-दूसरे से बहुत दूर दूर थे, और एक स्थान के लोग दूसरे स्थान के लोगों के विषय में बहुत कम ज्ञान रखते थे। उनमें पारस्परिक हेल्-मेल बहुत समय के बाद हुआ है। सब अपने-अपने स्थानीय कारोबार और उन्नति में सलग्न थे। केवल औपनिवेशिक विभाग ही नहीं, किन्तु ऑस्ट्रेलिया का समस्त जीवन ही ऐसा रहा है। क्योंकि सन्निकट 'न्यूज़ीलैण्ड' के



अतिरिक्त, जो १२०० मील दूरी पर है, और कोई सभ्य देश नहीं है।

संसार के अन्य भागों से इस प्रकार विच्छिन्न होने पर भी यह देश प्रकृति-देवी की कृपा से अपनी सब आवश्यकताएँ अपने-आप पूरी करता रहा है, और किसी दूसरे का मोहताज नहीं रहा है। इस देश पर प्रकृति-देवी का केवल इतना ही प्रकोप है कि यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। एक तिहाई भाग में साल भर में केवल १० इंच से कम और दूसरे तिहाई में केवल २० इंच से कम वर्षा होती है। यहाँ पर यह एक आम कहावत है कि ऑस्ट्रेलिया में लोग ज़मीन नहीं खरीदते, बल्कि पानी खरीदते हैं। ऑस्ट्रेलिया के पूर्वीय भाग में उपजाऊ भूमि समुद्र के किनारे-किनारे है। यहाँ जल आवश्यकता के अनुसार रहता है। अन्दर के सूखे हिस्सों में भेड़ें पालने की खूब सुविधा है। यह भी देश की अर्थ वृद्धि का एक बड़ा और मुख्य कारण है।

हाल में भूगर्भस्थ जल राशि प्राप्त कर लेने के कारण नए-नए स्थानों को आबाद करने का मौका हाथ आ गया है। उत्तरीय गर्म भाग के अतिरिक्त यहाँ का जल-वायु मध्यम और स्वास्थ्यप्रद है। मृत्यु-संख्या हज़ार पीछे १० के करीब है। इसी विभिन्नता के कारण यहाँ सब प्रकार के अनाज उपजाए जाते हैं। गर्म प्रदेशों में शक्कर, कपास और बहुत से फल तथा मध्य-प्रदेश में गेहूँ आदि अन्य खाद्य-पदार्थ पैदा होते हैं। दो प्रान्तों को छोड़ कर कोयला सब जगह पाया जाता है। बहुतेरे ऊँच भागों में तो वह बहुतायत से होता है। सोने की जो खानें सन् १८९४ में प्राप्त हुई थीं, उनके अतिरिक्त चाँदी, सीसा और ताँबे की खानें भी हैं। इन सब बातों पर विचार करने से ऑस्ट्रेलिया के निवासियों का भविष्य सुखमय प्रतीत होता है। यहाँ के निवासियों की संख्या पचास लाख है।

जिन लोगों ने इस महाद्वीप में उपनिवेश बसाए थे, उन्होंने बड़ी योग्यता से इस देश की उन्नति की। ये लोग ब्रिटिश द्वीपों के थे। स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड, इंग्लैण्ड और वेल्स सभी देशों से आकर लोगों ने इसे आबाद किया था। उनमें से अधिकतर लोग मध्यम श्रेणी के थे; क्योंकि बहुत गरीब लोग धनाभाव से इतनी लम्बी यात्रा नहीं कर सकते थे। गरीबों में

वे ही लोग यहाँ आ सके, जिनको किसी अभियोग में देश-निकाहा हुआ था। ये अभियुक्त १८६८ तक टास्मानिया, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया और न्यूसाउथ वेल्स में बसाए गए थे। तीसरी पीढ़ी में ये लोग बिलकुल शुद्ध हो गए। इसलिए कहा जा सकता है कि ऑस्ट्रेलिया के निवासी एक जाति विशेष के हैं, जिनका शारीरिक और मानसिक विकास अपने निज के ढङ्ग से हुआ है। उनकी सजातीयता साफ़-साफ़ ज़ाहिर होती है। प्रत्येक प्रदेश अपने ढङ्ग से परिश्रम करके उन्नत हुआ है, परन्तु वहाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशों के निवासियों में मेलजोल बना रहा है। उनके मार्ग में प्राकृतिक रुकावटें किसी तरह बाधक नहीं हुईं। यहाँ के निवासियों में ब्रिटिश आचार-विचार की झलक अब भी बाकी है। केवल गर्म जल-वायु के कारण थोड़ा सा परिवर्तन हो गया है। उपनिवेश के आरम्भ-काल में जो कठिनाइयों का जीवन उन्हें व्यतीत करना पड़ा, उससे उनके चरित्र-सङ्गठन पर बहुत असर पड़ा है। गरीबी अथवा किसी और कठिनाई से ये लोग कभी हतोत्साह नहीं हुए। पश्चिमी और मध्य यूरोप की पाँच बड़ी जातियों में ब्रिटिश लोगों ने ही उपनिवेशों में अपने नये ढङ्ग के विकास होने का सबसे अच्छा परिचय दिया है। जर्मनी, फ़्रान्स, इटली और रूस के रहने वाले जब किसी नये स्थान पर बसने जाते हैं, तब वे अपने देश के अनुसार ही अपना रहन-सहन रखते हैं। किन्तु केवल अङ्गरेज ही, अपने देश का ढाँचा रखते हुए, नई अवस्था के अनुसार, नई परिस्थिति से प्रभावित होकर, बिलकुल नया रङ्ग-रूप स्वीकार कर लेते हैं।

ऑस्ट्रेलिया की आर्थिक परिस्थिति के अनुसार ही वहाँ के निवासियों का सामाजिक और राजनैतिक जीवन बना है। जब आगन्तुकों ने, आरम्भ में, मध्य भाग में बसना शुरू किया था, तब उन्हें भेड़ों का पालना ही सबसे अधिक लाभकारी रोज़गार जान पड़ा था। इस ऊँच खण्ड में भेड़ों को रखने के लिए प्रत्येक आदमी को अधिक से अधिक ज़मीन घेरनी पड़ी। सूखे के दिनों में बहुत भेड़ें मर जाया करती थीं; इसलिए अधिक संख्या में भेड़ों के रखने में ही अधिक लाभ और सुविधा होती थी। यही कारण है कि यहाँ कनाडा और संयुक्त-राज्य अमेरिका की भाँति, छोटे-छोटे खेतों

वाले किसान दिखाई नहीं देते। और इसीलिए यहाँ बड़े-बड़े शहर भी आबाद नहीं हो सके। वे कस्बे भी छोटे ही रहे, जहाँ से आसपास के गाँवों को सामग्री जाती थी। मेल्बोर्न और सिडनी बन्दरगाह होने के कारण बड़े-बड़े शहर हो गए। यहाँ से उन और लकड़ी अन्य देशों को भेजी जाती है। मेल्बोर्न के बढ़ जाने का एक कारण यह भी था कि उसके नज़दीक कई सोने की खानें पाई गई थीं, जिनके लिए लोग उत्सुकता से आकर बसे थे। सोने की खानों के समाप्त होने के पश्चात् वहाँ के लोगों ने कोयले की खानों का रोज़-गार आरम्भ कर दिया। इससे उन चन्द ज़िल्लों में घनी आबादी हो गई और दूसरे स्थानों में बहुत कम लोग बस पाए।

टास्मानिया प्रदेश को छोड़ कर अन्य स्थानों में जल का भी अभाव है। इसी कारण दो बड़े और दो छोटे (एडिलेड और ब्रसवेन) नगरों में कुल महाद्वीप की एक तिहाई आबादी बसती है। अन्य स्थानों में आबादी बहुत कम है और वहाँ का एक बड़ा हिस्सा बीहड़ पड़ा है। यहाँ की आबादी बहुत धीरे-धीरे बढ़ी है। कनाडा और उत्तरी संयुक्त-राज्य अमेरिका की भौति मध्य श्रेणी के लोग यहाँ कमज़ोर हैं। गरीब आदमी यहाँ कोई है ही नहीं, क्योंकि मजदूर भी यहाँ बड़े आराम से जीवन व्यतीत करते हैं। बहुत धनाढ्य लोगों की भी सख्या यहाँ कम है। शायद ही कोई करोड़पति यहाँ हो। यहाँ के धनवान व्यापारियों में आपस की स्पर्धा नहीं है, और न यहाँ संयुक्त-राज्य अमेरिका की तरह पूँजीपतियों और मज़दूरों में तनातनी रहती है। नए-नए लोगों के पास धन इकट्ठा होने के कारण गरीबों और धनवानों में समता का व्यवहार है। बड़े-बड़े प्रासादों और ऊँचे-ऊँचे महलों का यहाँ बिल्कुल अभाव है। सब क़रीब-क़रीब एक सा ही जीवन व्यतीत करते हैं। थोड़ी-बहुत आर्थिक विभिन्नता है अवश्य। परन्तु कोई भी धनवान अपने गरीब पड़ोसी को सताता हुआ कभी नहीं देखा गया।

जिन लोगों ने आकर इस उपनिवेश को बसाया है, वे अपनी मातृभूमि इंग्लैण्ड से ही कानून और व्यवस्था के विषय में आदर के भाव लेकर आए थे। इसीलिए यहाँ का सङ्गठन करने में उन्हें कोई दिक्कत

नहीं हुई। अन्य उपनिवेशों की भौति यहाँ आपस के लड़ाई-झगड़े भी बहुत दिनों तक नहीं चले। इन्होंने बड़ी जल्दी अपना सङ्गठन सुचारु रूप से कर लिया। उन्हें अपने मन में पूर्ण विश्वास था कि जब उनकी आबादी काफ़ी संख्या में हो जायगी, तब उन्हें स्वराज्य मिल जायगा। और जब उन्हें स्वराज्य मिला, जिसे वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे, तब उन्होंने उसे निबाहा भी खूब अच्छी तरह से। न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिण ऑस्ट्रेलिया और टास्मानियाँ को सन् १८५५-५६ में ही स्वराज्य मिल गया था। हर प्रान्त ने अपने लिए शासन-प्रणाली का एक खाका अलग बना लिया, जिसे थोड़े ही हेर-फेर के बाद पार्लामेण्ट ने पास कर दिया। क्वींसलैण्ड को सन् १८५९-६० में, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया को १८६० में ये अधिकार मिल गए। सन् १८८१ में जब यूरोप के राष्ट्र ससार की गैर-आबाद ज़मीन के लिए लड़ने-झगड़ने लगे और जब न्यूग्रायना, हेब्रिडीस द्वीपों के सम्बन्ध में ऑस्ट्रेलिया का प्रयोजन नष्ट होता हुआ दिखाई पड़ा, तब उनको मालूम हो गया कि यदि वे सब एक राष्ट्र होते, तो उनकी बात का अन्य जातियों के सामने कुछ विशेष महत्व होता। पहली बार सन् १८८१ में और दूसरी बार १८९६-९७ में सब प्रान्तों ने मिल कर सभाएँ कीं और एक व्यवस्था तैयार की। इस व्यवस्था को प्रत्येक प्रान्त के निवासियों ने अपने-अपने वोट से पास किया। सन् १९०० में वह ब्रिटिश पार्लामेण्ट में भी पास हो गई। इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया की “कामन-वेल्थ सरकार” का सङ्गठन हुआ है।

कामनवेल्थ सरकार

दक्षिण अफ्रीका और कनाडा की अपेक्षा ऑस्ट्रेलिया की कामनवेल्थ अथवा संयुक्त सरकार के अधिकार कुछ अशों में कम और ज़्यादा थे। जो अधिकार संयुक्त सरकार को नहीं दिए गए, वे प्रान्तीय सरकारों के हिस्से में समझे जाते हैं। व्यापार, व्यापार पर कर, बैंक और सिका, तोल-नाप, शादी-तलाक आदि बातें संयुक्त-सरकार के अधीन हैं। नागरिकता के अधिकार, कला-कौशल, रेलवे और शिक्षा के सब कार्य प्रान्तीय सरकारों की देख-भाल में रहते हैं। संयुक्त-सरकार के



अधिकार कई कारणों से धीरे-धीरे बढ़ते गए हैं और बहुत से अधिकार तो ऑस्ट्रेलिया की हाईकोर्ट ने अपने फ़ैसलों द्वारा संयुक्त-सरकार को दे दिए हैं।

ऑस्ट्रेलियन कामनवेल्थ में क़ानून बनाने वाली दो सभाएँ हैं। एक को सीनेट कहते हैं, और उसमें ३६ मेम्बर होते हैं। ६ मेम्बर हर प्रान्त से लिए जाते हैं। इनकी अवधि ६ वर्ष की होती है, और राज्य की सारी जनता मिल कर इनको चुनती है। हर तीसरे साल आधे मेम्बर पृथक् हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए आदमी चुने जाते हैं। दूसरी सभा को “प्रतिनिधि सभा” कहते हैं। इसमें ७५ मेम्बर होते हैं, और जनता ही इनका भी चुनाव करती है। इनकी मेम्बरी की मियाद तीन वर्ष की होती है। किन्तु गवर्नर अपने मन्त्रिमण्डल की सलाह से, मियाद के पहले भी उन्हें अलग कर सकता है। दोनों सभाओं के सदस्यों को १,००० पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता है। किसी क़ानून के पास हो जाने पर भी ब्रिटेन के बादशाह को, उसे रद्द कर देने का अधिकार है। किन्तु इस अधिकार का प्रयोग केवल उसी समय किया जाता है, जिस समय किसी बड़े सङ्कट की बात होती है। शेष समस्त अधिकार गवर्नरों और उनके मन्त्रियों को हैं। मन्त्रिमण्डल में केवल वे ही लोग होते हैं, जो व्यवस्थापक सभा के सदस्य हैं। चुनाव के समय आधे से अधिक मेम्बर उनके पक्ष में होने चाहिए। इङ्ग्लैण्ड की तरह यहाँ के उच्च कर्मचारियों की नियुक्ति भी बादशाह की ही ओर से होती है, परन्तु वस्तुतः मन्त्रिमण्डल ही सारी नियुक्तियाँ करता है।

मेलबोर्न और सिडनी के बीच में ‘केनबेरा’ नामक स्थान संयुक्त-सरकार का केन्द्र है। वहाँ पर बड़ी बड़ी हमारतें बन रही हैं। किन्तु अभी सारा काम मेलबोर्न ही में होता है।

संयुक्त-सरकार में हेर-फेर, दोनों सभाओं के बहुमत से, पार्लामेण्ट द्वारा किया जा सकता है। किन्तु एक सभा में, तीन महीने के अन्तर से, दो बार पास हो जाने पर भी कोई संशोधन स्वीकार किया जा सकता है। इस बहुमत के लिए यह भी आवश्यक है कि सब प्रान्तों की सरकारें और साथ ही साथ देश का जन-समूह भी उसके पक्ष में हो। पार्लामेण्ट भी कभी-

कभी कठिन समस्याओं पर सर्व-साधारण की सम्मति ले लेती है। सन् १९१५ और १९१७ में ऐसा ही हुआ था, क्योंकि उस समय लड़ाई पर सिपाही भेजना अनिवार्य था। जब किसी प्रस्ताव पर सर्व-साधारण का मत प्राप्त करना होता है, तब प्रत्येक वोटर के पास एक कागज़ भेजा जाता है, जिसमें मूल प्रस्ताव और उसके पक्ष तथा विपक्ष की सारी दलीले लिखी रहती है।

केनबेरा के अतिरिक्त संयुक्त सरकार दो प्रान्तों का प्रबन्ध करती है। एक है क्वीन्सलैण्ड और पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के बीच का, ९,३२,६२० वर्ग मील का प्रदेश, और दूसरा है न्यूगयाना, जिसमें १९,२०,७०,००० वर्ग मील जर्मनी से लेकर और शामिल कर दिया गया है।

प्रान्तीय सरकार

ऑस्ट्रेलिया में छ. प्रान्त हैं। उनकी शासन-पद्धति ब्रिटिश पार्लामेण्ट द्वारा निर्धारित हुई है। किन्तु ऑस्ट्रेलियन व्यवस्थापक सभाओं ने उस पद्धति में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। हर प्रान्त में दो सभाएँ हैं, छोटी को व्यवस्थापक सभा कहते हैं। न्यू साउथ वेल्स और क्वीन्सलैण्ड में इस सभा के सदस्यों को स्थानीय सरकार जीवन भर के लिए नामज़द करती है। विक्टोरिया, दक्षिण और पश्चिम ऑस्ट्रेलिया और टास्मानिया के सदस्य छ. वर्ष के लिए वोटरों द्वारा चुने जाते हैं। ये वोटर कुल वोटरों के ३० या ४० प्रतिशत होते हैं। बड़ी सभा (एसेम्बली) के सदस्य तीन वर्ष के लिए सर्व-साधारण द्वारा चुने जाते हैं। मेम्बरों की तनफ़्वाह १५० पौण्ड से लेकर ५०० पौण्ड तक होती है और सफ़र करने के लिए रेल के पास मिल जाते हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक गवर्नर होता है, जो इङ्ग्लैण्ड के सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता है। यही गवर्नर अपना मन्त्रिमण्डल बना लेता है और उसी के द्वारा समस्त राज-कार्य करता है। मन्त्री लोग सभा के बहुमत-पक्ष के लोग होते हैं। गवर्नर को सभा भङ्ग कर देने का अधिकार है। वह किसी नियम के पास होने पर उसे अस्वीकार भी कर सकता है। किन्तु यह अधिकार बहुत कम काम में लाया जाता है। जजों की नियुक्ति सरकार द्वारा जीवन भर के लिए होती है।



न्याय-विभाग

ऑस्ट्रेलिया का न्याय-विभाग इङ्ग्लैण्ड के सदृश है। जज लोग स्थायी रूप से जीवन भर के लिए नियुक्त होते हैं। सारे ऑस्ट्रेलिया में केवल एक ही हाईकोर्ट है, जिसमें हर प्रकार के मुकदमे होते हैं, चाहे वे प्रान्तीय हो और चाहे बड़ी सरकार के। उसके न्याय की आज़ाद सरकारी कर्मचारियों द्वारा जनता से मनवाई जाती है। न्यायाधीशों को काफ़ी वेतन मिलता है। ऑस्ट्रेलियन कामनवेल्थ की एक पञ्चायत और है, जो व्यवस्था-सम्बन्धी मामलों को तै करती है। इसके सदस्य सात वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे बीच में भी अलग किए जा सकते हैं।

कुछ अन्य बातें

ऑस्ट्रेलिया की राज्य-प्रणाली कहने को तो नियमित राजसत्तात्मक है, किन्तु वास्तव में वह हर प्रकार से प्रजासत्तात्मक राज्य-प्रणाली है। अन्य प्रजासत्तात्मक राज्यों की अपेक्षा ऑस्ट्रेलिया में जनता की सत्ता अधिक है। इङ्ग्लैण्ड से उसका सम्बन्ध बहुत अच्छा है। एक ही प्रकार का न्याय और एक ही प्रकार की व्यवस्था होने के कारण यहाँ के निवासी इङ्ग्लैण्ड

से बंधे नहीं हैं, बल्कि दोनों देशों का आर्थिक प्रश्न एक ही है, और इसी भाव से प्रेरित होकर वे इङ्ग्लैण्ड के प्रति जातीयता का भाव रखते हैं।

सङ्गठन

ऑस्ट्रेलियन कामनवेल्थ का सङ्गठन इस प्रकार है—

१—दोनों सभाओं के लिए सर्व-साधारण को वोट देने का अधिकार है।

२—प्रत्येक ज़िले से, जिसकी आबादी बराबर है, एक सदस्य का चुनाव होता है।

३—सदस्य हर तीसरे वर्ष चुने जाते हैं।

४—कोई भी मनुष्य एक से अधिक वोट नहीं दे सकता।

५—सदस्यों को वेतन मिलता है।

६—शासकों को अस्वीकृति का अधिकार है।

७—शासन-विभाग बड़ी व्यवस्थापक सभा के अधीन है।

८—व्यवस्थाओं पर कोई रोक नहीं है।

९—व्यवस्था-विधान में परिवर्तन करने की सरलता है।

मस्तक का सुभग-सुहाग

[एक व्यथिता]

मुझ अबला का हाथ कौन ले गया सुखद सौभाग्य ॥

शैशव की शिव सञ्चित सम्पति,

उभयानन्द अमित उर उत्पति,

पूजनीय पति-पद-पङ्कज प्रति,

अखिल अचल अनुराग ।

कल कन्दुक यौवन प्राङ्गण का,

पूर्ण इन्दु उर व्योमाङ्गन का,

उत्स-पुष्प नव उर-उपवन का,

अविगत विगत पराग ।

कुत्सित क्रूर काल का कोड़ा,

स्मृति-सरिता का सुखगत तोड़ा,

हा ! हा ! मम अञ्जल में छोड़ा,

विधि वैधव्य-विराग !

—मस्तक का सुभग सुहाग ॥



देवताओं की उत्पत्ति

[श्री० सत्यभक्त]



ज

ब से संसार में मनुष्य का आविर्भाव हुआ और उसमें विचार-शक्ति उत्पन्न हुई, तब से वह किसी न किसी निराकार, अव्यक्त और अतिप्राकृत शक्ति के अस्तित्व में विश्वास रखता आया है। इस विश्वास का मनुष्य जाति के विकास तथा सभ्यता की वृद्धि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इसी के आधार पर संसार में विविध मतमतान्तरों की सृष्टि हुई है और इसी के कारण मनुष्य जाति विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त हो गई है। ऐसी दशा में प्रश्न होता है कि आखिर यह विचार मनुष्य के हृदय में किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? एक ऐसी बात को, जिसका प्रकृति में कोई चिन्ह नहीं, मिलता और न जिसके सम्बन्ध में मनुष्य को किसी तरह का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हो सकने की सम्भावना है, सब देशों के निवासियों ने किस लिए स्वीकार कर लिया ? इस विषय की हमारे देश में प्राचीन काल से बहुत-कुछ चर्चा होती आई है और कितने ही व्यक्तियों ने तो अपना समस्त जीवन ही इसकी भीमसा में लगा दिया है। अब भी हमारे देश में ईश्वर की सत्ता, उसके स्वरूप तथा उसकी शक्तियों के सम्बन्ध में प्रायः वादविवाद और शास्त्रार्थ होते रहते हैं। परन्तु यह ईश्वर अथवा एक अतिप्राकृत शक्ति सम्बन्धी विश्वास आरम्भ में किस प्रकार मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हुआ और कैसे-कैसे परिवर्तनों में होकर वर्तमान अवस्था तक पहुँचा, इस पर बहुत ही थोड़े लोगों ने विचार किया है। इस विषय की चर्चा उठाने का श्रेय कुछ विदेशी दार्शनिकों को प्राप्त है, जिनमें हर्बर्ट स्पेन्सर, फ्रेज़र, आण्ट प्लन आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इन विद्वानों ने ईश्वर के अस्तित्व तथा विभिन्न धर्मग्रन्थों

में वर्णन किए गए उसके स्वरूप के प्रश्न को छोड़ कर केवल ऐतिहासिक दृष्टि से यह विचार किया है कि किन मनोवैज्ञानिक कारणों से मनुष्य के हृदय में इस विश्वास का जन्म हुआ और फिर किस प्रकार सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के बदलते जाने से क्रमशः इसकी पुष्टि होती गई। इन विद्वानों के लेख ईश्वर की सत्ता का खण्डन या मण्डन करने के बजाय उसके सम्बन्ध में एक नवीन विचार-प्रणाली का श्रीगणेश करने वाले हैं। वास्तव में इन लेखों का तात्पर्य मनुष्य के भीतर अन्ध-श्रद्धा के बजाय विचार-स्वातन्त्र्य की शक्ति को जाग्रत करना है। इस प्रकार का विचार-स्वातन्त्र्य ही सचाई तक पहुँचने का वास्तविक मार्ग है, फिर चाहे उसके परिणाम-स्वरूप लोगों में ईश्वर सम्बन्धी विश्वास हट हो अथवा शिथिल। हमारे देश में इस सम्बन्ध में सर्वसाधारण में जैसा अन्धकार छाया हुआ है और सैकड़ों प्रकार के परस्पर विरोधी सिद्धान्त फैले हुए हैं, उन्हें देखते हुए इस प्रकार के विचार-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता और भी अधिक है।

मरणोत्तर जीवन

ईश्वर अथवा अन्य अतिप्राकृत शक्तियों का, जिन्हें हम देवताओं के नाम से भी पुकार सकते हैं, उद्गम जानने के लिए जब हम संसार के अति-प्राचीन काल के इतिहास की खोज करते हैं, तो मालूम होता है कि इन धार्मिक सिद्धान्तों से भी प्राचीन एक और सिद्धान्त है, जिस पर संसार की प्रायः सभी सभ्य और असभ्य जातियाँ सदैव से विश्वास करती आई हैं और अब भी करती हैं। वह सिद्धान्त है मृत्यु के बाद मनुष्य के अस्तित्व का स्थिर रहना। संसार में ऐसी अनेक जङ्गली जातियाँ पाई जाती हैं और हमारे देश में भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, जिनमें ईश्वर की कल्पना कर सकने लायक बुद्धि नहीं है, परन्तु वे भी मृत-व्यक्तियों की आत्माओं तथा भूत-प्रेतों पर विश्वास रखते हैं। इस

तरह मृतात्मा सम्बन्धी विश्वास रखने वाले तीन श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं। सबसे नीची श्रेणी उन लोगों की है, जो जीवित और मृत-व्यक्ति में बहुत कम अन्तर समझते हैं और यह विश्वास रखते हैं कि मरने के बाद भी मनुष्य की स्थिति अदृश्य रूप में ज्यों की त्यों रहती है। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है, जो मृत्यु को वर्तमान जीवन का अस्थायी रूप से अन्त होना समझते हैं और जिनका विश्वास है कि कुछ समय पश्चात् वे पुनर्जीवित होंगे तथा दूसरी दुनिया में निवास करेंगे। तीसरे वे लोग हैं, जो आत्मा को शरीर से सर्वथा भिन्न समझते हैं और उसे अमर मानते हैं।

हम लोगों को अवश्य ही यह बात बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि दुनिया में ऐसे भी लोग थे और अब भी मौजूद हैं, जो जीवन और मृत्यु का अन्तर भी नहीं समझ सकते थे और मर जाने के बाद भी मनुष्य को जीवित मानते थे। कारण यह है कि हम लोग विशाल जन-समुदाय के बीच में रहते हैं, जहाँ मृत्यु का दृश्य सदैव देखने में आता है। हम इतिहास द्वारा यह भी जानते हैं कि हमसे पूर्व संसार में अनेक पीढ़ियाँ गुजर चुकी हैं, जिनका आज नाम-निशान तक नहीं पाया जाता। परन्तु उन घोर जङ्गली लोगों की अवस्था, जो प्राचीन काल में इस पृथ्वी पर रहते थे और अब भी दुनिया के दुर्गम स्थानों में बचे हुए हैं, इससे सर्वथा भिन्न थी। वे छोटे-छोटे समूह बना कर रहते थे, जिनमें स्वाभाविक मृत्यु की घटना बहुत ही कम होती थी। वे लोग या तो पारस्परिक युद्धों में मारे जाते थे या जङ्गली जानवरों द्वारा खा डाले जाते थे, या शिकार करते समय किसी दुर्घटना-वश मर जाते थे, अथवा भूख-प्यास के कारण मरते थे। रोग अथवा वृद्धावस्था के कारण उनमें कदाचित् ही कोई मृत्यु होती थी। इसलिए उनको यह अनुभव करने का अवसर ही नहीं मिलता था कि मृत्यु मनुष्य-जीवन का स्वाभाविक और अवश्यम्भावी परिणाम है। यदि सयोग-वश कोई आदमी बीमार होकर भी मरता था, तो उसका कारण प्रायः जाड़-टोना समझा जाता था। इसके सिवा उन लोगों में इतनी बुद्धि भी न थी कि चोट लगने या बीमारी से बेहोश और मृत व्यक्ति का अन्तर भली-भाँति समझ लें। वर्तमान समय में जब

कि चिकित्सा-विज्ञान की अद्भुत उन्नति हो चुकी है, डॉक्टर लोग कभी कभी बेहोश व्यक्ति को मृत समझ लेते हैं और लोग उसे दफनाने या जलाने की तैयारी करने लगते हैं, जब कि वह होश में आ जाता है। मनुष्य की जङ्गली अवस्था में इस प्रकार की घटनाओं का होना और भी अधिक सम्भव था और इस कारण उनके लिए यह सोचना आश्चर्यजनक न था कि जो व्यक्ति अभी अकड़ा हुआ और निर्जीव अवस्था में पड़ा है, वह न जाने कब फिर जीवित हो जाय। इसलिए जब कभी उनका कोई साथी शत्रु के आघात से अथवा किसी अन्य दुर्घटना के कारण अचैतन्य हो जाता था, तो वे तब तक उसकी रक्षा करते थे, जब तक उसके जीवित होने की सम्भावना रहती थी। धीरे-धीरे इस सम्बन्ध में उनके हृदय में यह धारणा बढमूल हो गई कि मनुष्य का शरीर दो भागों में बँटा हुआ है, एक स्थूल अथवा दृश्य और दूसरा सूक्ष्म अथवा अदृश्य। स्वप्न में मृत व्यक्ति की आकृति स्पष्ट रूप से दिखलाई पढ़ने से उनका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया और वे समझने लगे कि मरने के बाद भी आदमी अपने सूक्ष्म शरीर में दुनिया में उसी प्रकार निवास करता है, जैसे कि वह स्थूल शरीर में निवास करता था। इतना ही नहीं, वे यहाँ तक कल्पना करते थे कि कोई व्यक्ति, जिसकी मृत्यु वर्षों पूर्व हो चुकी है, फिर से सशरीर इस लोक में लौट कर आ सकता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि हमारे देश में प्रचलित लोगों के सशरीर स्वर्ग जाने और मृत व्यक्तियों के बहुत काल पश्चात् पुनर्जीवित हो जाने की कथाओं का उद्भव ऐसी ही कल्पनाओं के आधार पर हुआ हो।

जब मनुष्य के ज्ञान में कुछ वृद्धि हुई और वह सभ्यता की ओर अग्रसर होने लगा, तो उपर्युक्त सिद्धान्त में परिवर्तन होने लगा और यह विश्वास किया जाने लगा कि मरने के बाद मनुष्य की आत्मा किसी विशेष स्थान में रहती है और जब संसार का अन्त अथवा क्रयामत का दिन पास आएगा, तो समस्त मृत व्यक्ति फिर जीवित हो उठेंगे और अपने कृत कर्मों का फल भोगेंगे। इस विश्वास का प्रचार होने पर लोग मृत व्यक्तियों की देह को सुरक्षित रखने के बजाय क्रब में गाड़ने लगे। वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा सिद्ध किया है



कि मृत-व्यक्ति को दफनाने की प्रथा बड़ी पुरानी है और पृथ्वी पर सर्वत्र उसी का प्रचार था। उन्होंने दुर्गम पर्वतों और वीरान स्थानों में जिन क्रान्तियों का पता लगाया है, उनमें से कितनी ही एक लाख वर्ष से भी अधिक समय की हैं। उनका मत है कि सुदों को जलाने, खुले स्थान में रख देने अथवा किसी पवित्र नदी में डाल देने की जितनी अन्य प्रथाएँ संसार में पाई जाती हैं, वे थोड़े ही समय की हैं।

ममी-पूजा

ऊपर हमने मृतात्मा-सम्बन्धी जिन विभिन्न मतों का जिक्र किया है, उनका अतिप्राकृत शक्ति के विकास से बड़ा सम्बन्ध है। जिस युग में मनुष्य मरने के बाद भी सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व स्थिर रहने में तथा सूक्ष्म शरीरधारी की स्थूल शरीरधारियों की अपेक्षा विशेष शक्ति में विश्वास रखता था, उस युग में देवताओं और ईश्वर की सत्ता की किसी ने कल्पना नहीं की थी और न इसकी आवश्यकता थी। उस समय लोग अपने पूर्वजों और मित्रों के शवों की ही, जो किसी उपाय से सुखा कर अथवा 'ममी' बना कर घर में रखे जाते थे, पूजा करते थे और उन्हीं को भेंट आदि चढ़ाते थे। अब भी इस श्रेणी की जातियों में, जो विशेषतया अफ्रीका और अन्य छोटे-छोटे टापुओं में रहती हैं, इस प्रकार की प्रथा पाई जाती है। एलिस नाम के लेखक ने लिखा है कि उसने ताहिती प्रदेश में किसी सरदार के शव को एक बेदी पर बैठी हुई अवस्था में रखे देखा, जिसके सामने नित्यप्रति उसके सम्बन्धियों अथवा पुजारी द्वारा फल, भोज्य पदार्थ और फूलों की भेंट चढ़ाई जाती थी। ये लोग उस शव की उसी प्रकार पूजा करते थे जिस प्रकार हमारे यहाँ देव-प्रतिमाओं की पूजा की जाती है। न्यू-गायना में भी लोग अपने मृत पिताओं की इसी प्रकार पूजा करते हैं। इसी प्रथा ने कालान्तर में 'ममी' की पूजा का रूप ग्रहण कर लिया, जिसका किसी समय मिश्र में अत्यधिक प्रचार था। विशेषकर प्रसिद्ध बादशाहों और राजकर्मचारियों की ममियों के लिए वहाँ ऐसे-ऐसे विशाल तथा वैभव-सम्पन्न मन्दिर अथवा मकबरे बनाए जाते थे, जिनमें अरबों की लागत लगती थी और जिन्हें देख कर आज भी लोग चकित हो जाते हैं।

इस विवरण से मालूम होता है कि आरम्भ में लोग अपने मृत पूर्वजों की ही पूजा करते थे और उनकी मृत आत्मा अथवा उनके भूत से अपने कल्याण तथा अपनी रक्षा की प्रार्थना किया करते थे। इन मृत व्यक्तियों अथवा भूतों में से जो अपने जीवन-काल में अतिरिक्त रूप से शक्तिशाली, वीर तथा परोपकारी होता था, उसका विशेष रूप से सम्मान किया जाता था। धीरे-धीरे इन महत्वपूर्ण भूतों ने देवताओं का स्थान ग्रहण कर लिया और उनके वंशधरों के सिवा दूसरे लोग भी उनसे आवश्यक बातों के लिए प्रार्थना करने लगे। शक्तिशाली तथा प्रतापी सरदारों और राजाओं के आधिपत्य से इस विश्वास की जड़ और भी मज़बूत हुई। जो बादशाह अपने जीवन-काल में महान समझा जाता था तथा जिसकी सत्ता एक विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त होती थी, वह मरने के बाद भी एक बहुत महत्वपूर्ण देवता माना जाता था। इसीलिए जिस देश में राजाओं तथा बादशाहों के अधिकार की जितनी वृद्धि हुई थी, वहाँ के स्वर्गीय राज्य के अधीश्वर भी उतने ही अधिक शक्तिशाली माने गए।

जब हम शव को सुरक्षित रखने की पद्धति से आगे बढ़ कर उसके गाड़ने की पद्धति की दृष्टि से इस विषय पर विचार करते हैं, तो ऐसा अनुमान होता है कि इस दूसरे युग में सम्भवतः लोगो ने मृत व्यक्तियों की पूजा और उनको देवता की तरह मानना छोड़ दिया होगा। क्योंकि शव को गाड़ने का कारण मुख्यतः इस बात का भय ही होता था कि कदाचित् प्रेतात्मा लौट कर जीवित व्यक्तियों को कष्ट देगी। तो भी अपने माता-पिता अथवा मित्रों के प्रति स्वाभाविक प्रेम होने के कारण और इसलिए भी कि वे उनसे सन्तुष्ट रह कर उनकी सहायता करते रहें, अधिकांश व्यक्ति उनकी पूजा करते रहते थे। वे यद्यपि इस ज्ञान से कि मृत व्यक्ति कब से बाहर निकल सके, उसके ऊपर बड़ी-बड़ी चट्टानें रख देते थे, पर तो भी उनके सम्मुख सदैव भेंट चढ़ाई जाती अथवा पशुओं को बलिदान दिया जाता था।

बहुदेववाद

इस प्रकार पिछले दो युगों में मनुष्यों के विचारों में जो परिवर्तन हुआ और जिनके फल-स्वरूप शव की



गाढ़ने और उसके पश्चात् जलाने की प्रथाएँ प्रचलित हुई, उनसे देवताओं के व्यक्ति-व का विशेष रूप से विकास हुआ और साधारण प्रेतात्माओं से उनको भिन्न माना जाने लगा। जैसे-जैसे मन्दिरों और धर्माचार्यों का जोर बढ़ता गया, देवताओं के प्रभाव की भी वृद्धि होती गई। भूतों और देवताओं का अन्तर इस प्रकार समझा जा सकता है कि भूतगण जहाँ केवल शरीर-रहित मनुष्य ही थे और इस पृथ्वी पर इधर-उधर घूमा करते थे, देवता स्वर्गीय राज्य के निवासी थे और उनकी शक्ति तथा प्रभाव मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अधिक था। इतना ही नहीं, उनकी तुलना सूर्य तथा चन्द्रमा से की जाती थी। परन्तु तो भी जब तक बहुदेववाद का प्रचार रहा, इन देवताओं को किसी ने 'सर्वशक्तिमान' नहीं माना। प्राचीन यूनानी और रोमन पुराण-साहित्य का अनुशीलन करने से विदित होता है कि उस काल के देवता मनुष्यों से कुछ ही उन्नत श्रेणी के थे। इसी प्रकार हिन्दुओं के पुराणों के देवता भी मनुष्यों के समान ही ईर्ष्या-द्वेष-युक्त थे और अनेक अवसरों पर प्रभावशाली मनुष्यों से डरा भी करते थे। ये देवता कितनी ही बार मनुष्यों के सम्मुख पराजित भी हो जाते थे। ईश्वर के सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान होने की जो महान् धारणा इस समय प्रचलित है, उसका उद्भव एक देव के बाद के युग में हुआ है।

यह सत्य है कि विभिन्न वंशों के लोगों द्वारा अपने पूर्वजों की पूजा की जाने से गृह-धर्म और गृह-देवताओं की ही उत्पत्ति हो सकती है। ऐसी अवस्था में प्रश्न उठता है कि उन देवताओं का आविर्भाव कैसे हुआ, जिनकी पूजा सार्वजनिक रूप से की जाती थी। इसका विवेचन करते हुए मि० ड० मैकडानेल्ड ने मध्य अफ्रीका के धार्मिक विश्वासों का उदाहरण देकर बतलाया है कि किस प्रकार राजा के पूर्वजों की पूजा से क्रिश्चन अथवा गाँव के देवताओं की उत्पत्ति होती है। इससे यह भी प्रकट होता है कि जैसे-जैसे राजाओं की सत्ता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही उच्च श्रेणी के राष्ट्रीय अथवा सार्वदेशिक देवताओं की उत्पत्ति होती जाती है। इस सम्बन्ध में हमको यह नियम भी ध्यान में रखना चाहिए कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, बहुत पुराने पूर्वजों का व्यक्ति-व लोग भूल जाते हैं और केवल

एक अतिप्राकृत जीव के रूप में उनकी स्मृति शेष रह जाती है। इस प्रकार राज-पदवी का देवता सम्बन्धी विश्वास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। लोग सोचते हैं कि जब मौजूदा राजा इतना महान् और प्रतापशाली है, तो उसका पूर्वज न मालूम कितना महान् होगा, जिसकी वह स्वयम् पूजा करता है, और उस पूर्वज का पूर्वज अथवा आदि-पुरुष तो अवश्य ही अवर्णनीय सामर्थ्यवान् होगा, जिसकी आज तक तमाम राजे पूजा करते आए हैं। इस प्रकार देवताओं का एक ऐसा समूह उत्पन्न हो जाता है जिसमें सबसे प्राचीन पूर्वज अर्थात् जिसके सम्बन्ध में लोग सबसे कम जानते हैं, सब से बड़ा देवता बन जाता है।

जैसे-जैसे राज्यों और साम्राज्यों की जड़ पुष्ट होती गई और कला की वृद्धि हुई, देवताओं का प्रभाव बढ़ता गया। जब लिपि का आविष्कार हुआ तो इन देवताओं की महिमा और भी स्थायी हो गई और सर्वाधिक प्राचीन पूर्वज का सिंहासन अचञ्चल हो गया। जब लोग नितान्त जङ्गली अवस्था में थे, तो केवल अपने पिता और उससे दो-चार पिछली पीढ़ी के पूर्वजों की, जिनका नाम वे किसी प्रकार सुन लेते थे, प्रार्थना करते थे। अधिक प्राचीन काल के पूर्वजों की स्मृति सुरक्षित रखने का उनके पास कोई साधन न था। पर जब सभ्यता की उन्नति हुई, तो उन्नतिशील जातियों ने इस प्रकार के कितने ही उपाय ढूँढ़ निकाले जिनकी सहायता से प्राचीन पूर्वजों का विवरण भी स्थिर रखा जा सकता था। उदाहरणार्थ हमारे देश में एक पृथक् समुदाय भाटों का बनाया गया, जिसका काम बड़े लोगों के पूर्वजों की जीवनियाँ याद रखना ही था। वे लोग इन पूर्वजों का इस प्रकार वर्णन करते थे, जिससे विदित होता था कि वे वर्तमान राजा की अपेक्षा बहुत अधिक पराक्रमी और वैभवशाली थे। इस प्रकार उन्नतिशील जातियों में आधुनिक महात्माओं और देवताओं का स्थान छोटा समझा जाने लगा और जिन पुराकावीन व्यक्तियों के मानवीय चरित्र को लोग काल-प्रभाव से भूल चुके थे, उनको बहुत बड़ा माना जाने लगा।

जिन उपायों के अवलम्बन करने से साधारण प्रेतात्मा देवताओं के रूप में परिवर्तित हो गई, उनमें तीन उपाय मुख्य थे। वे तीन उपाय थे मन्दिरों, मूर्तियों तथा



पुजारियों अथवा धर्माचार्यों का उत्कर्ष। हम यहाँ इन तीनों विषयों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

मन्दिर

मन्दिरों की उत्पत्ति के कारण कितने ही हैं। पर यदि हम उनके आदि-स्वरूप के सम्बन्ध में खोज करें तो मालूम होगा कि उनका आविर्भाव या तो क्रशों से हुआ है अथवा उन स्थानों से, जहाँ मृत व्यक्तियों को भेंट चढ़ाई जाती थी। जब मनुष्य गुफाओं में जीवन निर्वाह करते थे, तो प्रायः मृत व्यक्ति के शरीर को उसी गुफा में छोड़ देते थे जिसमें वह अपने जीवन-काल में रहता था। लङ्का की वेदाह नामक जाति में अब भी यह प्रथा पाई जाती है। जिन जातियों ने गुफाओं में रहना छोड़ भी दिया है, उनमें से भी कितनी ही रूढ़ि की रक्षा के लिए मृत व्यक्ति की देह को किसी प्राकृतिक अथवा कृत्रिम गुफा में रख देती हैं। इन विभिन्न प्रकार की गुफाओं में मृत व्यक्ति के उपलक्ष्य में नियमित रूप से भेंट चढ़ाई जाती है और इस प्रकार वे गुफाएँ मन्दिर के रूप में परिणत हो जाती हैं। आरम्भ में ये गुफाएँ पहाड़ों की स्वाभाविक कन्दराएँ या साधारण रीति से खोदे हुए गढ़े होती थीं, पर शीघ्र ही उनको अलंकृत करने की प्रथा चल पड़ी। आरम्भ में यह सजावट बिलकुल भद्दी और गँवारू ढङ्ग की होती थी, पर बाद में ऐसे-ऐसे अद्भुत गुफा-मन्दिर बनाए जाने लगे, जिनकी कारीगरी को देख कर लोग आज भी चकित हो जाते हैं। इस प्रकार के मन्दिर संसार के कितने ही देशों में पाए जाते हैं और भारतवर्ष में भी उनका अभाव नहीं है।

इसी प्रकार जहाँ लोग झोंपड़ा बना कर रहते थे, वहाँ मृत व्यक्ति का शव उसी में रहने दिया जाता था और वह पूजा-स्थान अथवा मन्दिर का रूप ग्रहण कर लेता था। एक तीसरी प्रथा यह थी कि मृत व्यक्ति की कब्र के ऊपर प्रेतात्मा की रक्षा के लिए अथवा पूजा के लिए आने वाले जीवित व्यक्तियों के सुभीते के लिए एक छप्पर ढाड़ दिया जाता था और वही एक प्रकार का मन्दिर बन जाता था। इस प्रकार की मृत-पूजा, मरे हुए व्यक्ति के स्थान को उसके लिए छोड़ देना और उसके नाम पर नियमित रूप से जीवन-निर्वाह की समस्त आवश्यकीय वस्तुएँ उसमें करने की प्रथा हिन्दू-समाज में अभी तक पाई जाती है। अन्तर यही है कि काल-

प्रभाव से अथवा प्राचीन धर्म-सुधारकों की चेष्टा से लोग इन क्रियाओं को बारह दिन तक ही करते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि लोग प्रेतात्माओं के भय से कब्रिस्तान में अपने मृत सम्बन्धी की पूजा करना पसन्द नहीं करते और अपने घर के पास ही उसकी पूजा तथा प्रार्थना करना सुविधाजनक समझते हैं। विशेष कर जब लोग बड़े बड़े गाँव बना कर रहने लगे और कब्रिस्तान बस्ती से बाहर बनाए जाने लगे तो वहाँ नियमित रूप से पूजा करने को जाने में कठिनाई भी होती थी।

एक बात यह भी थी कि अब आत्मा को किन्हीं अंशों में देह से पृथक् माना जाने लगा था और यह धारणा बढ़ हो चली थी कि उसकी पूजा क्रम से दूर रह कर भी की जा सकती है। इस विश्वास के आधार पर अफ्रीका की अनेक जातियाँ अपने मृत सम्बन्धी की उपासना उसी स्थान में करती हैं जहाँ वह उनके साथ रहा करता था। वे इसके लिए प्रायः घर के आँगन में लगे पेड़ के नीचे पूजा-स्थान बनाती हैं और यदि वहाँ कोई पेड़ नहीं होता, तो एक छोट्टा-सा छप्पर बना कर उसमें धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इस विवरण से हमको एक भिन्न प्रकार के मन्दिरों की उत्पत्ति का रहस्य विदित होता है और विभिन्न देशों में प्रचलित वृक्ष-पूजा का भी एक कारण मालूम हो जाता है।

जिन मन्दिरों का सूत्रपात इन साधारण गुफाओं और झोंपड़ियों में हुआ था, उन्होंने साम्राज्यों की वृद्धि और कला के विकास के साथ बढ़ा विशाल तथा मन-मोहक रूप ग्रहण कर लिया। ख़ास कर जब किसी बादशाह ने अपने जीवन-काल में अपने लिए मक़बरा या समाधि-स्थल बनवाया अथवा अपने किसी अत्यन्त प्रियजन की स्मृति-रक्षा के लिए इस प्रकार का उद्योग किया तो प्रायः उसमें अत्यधिक धन-राशि खर्च होती थी और उसके सौन्दर्य को अधिक से अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती थी। मिश्र के विशाल पिरामिड तथा भारतवर्ष का ताजमहल का रौज़ा इसके अच्छे उदाहरण हैं।

इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि मन्दिरों की विशालता तथा उनके वैभव का उस देवता की महत्ता पर अवश्य प्रभाव पड़ता है, जो उसमें रहता है। भारत-

वर्ष में राम, कृष्ण और शिव के जो अनुपम मन्दिर बनाए गए हैं, उनके कारण इन देवताओं की महिमा निस्सन्देह बहुत अधिक बढ़ गई है। इसी प्रकार सेण्ट-पीटर और सेण्ट मार्क आदि के विशालकाय गिर्जाघरों से ईसाई मज़हब के प्रचार में बहुत कुछ सहायता मिली है। मुसलमानों ने भी अपने धर्म की महत्ता दिखलाने के लिए अनेक दर्शनीय मसजिदों और दरगाहों का निर्माण किया है। साधारण बुद्धि का मनुष्य जब इन हमारतो के असाधारण आकार तथा विचित्र कारीगरी को देखता है और उनके लिए व्यय की गई अपरिमित धन-राशि की कहरना करता है, तो वह यह विचारने का साहस नहीं कर सकता कि जिन व्यक्तियों के नाम पर वे मन्दिर बनाए गए हैं अथवा जिनकी मूर्तियाँ उनमें स्थापित हैं, वे किसी काल में उसी के समान मनुष्य थे और राग-द्वेष, हर्ष-शोक और सुख-दुःख आदि इन्हो से युक्त थे। पर जब निष्पक्ष भाव से पता लगाया जाता है, तो ये तमाम व्यक्ति अन्य लोगों की भाँति ही सामान्य प्राणी सिद्ध होते हैं।

मूर्तियाँ

मूर्तियों की उत्पत्ति 'ममी' की प्रथा से हुई है, क्योंकि ममी बनाने के लिए शव के ऊपर एक कपड़ा लपेट कर रङ्ग-विरङ्गी चित्रकारी की जाती थी, जिससे उसकी वास्तविक आकृति छुप कर वह एक मूर्ति की तरह दिखलाई देती थी। इसके सिवा जिस बक्स में ममी को रक्खा जाता था, वह भी मनुष्याकृति होता था। ममी बनाने के लिए मनुष्य की देह में कुछ परिवर्तन भी करना आवश्यक था। पेट की अर्तें तो अवश्य ही निकाल कर फेंक दी जाती थीं। न्यू-गायना में इसके लिए तमाम मांस अलग करके केवल हड्डियाँ और चमड़ा ही शेष रक्खा जाता था। कितने ही स्थानों में आँखों को निकाल कर उनकी जगह नकली आँखें लगा दी जाती थीं।

शव-पूजा की प्रथा धीरे-धीरे मूर्ति-पूजा के रूप में किस प्रकार परिवर्तित हो गई, इस सम्बन्ध में क्रोब्स नामक लेखक ने टिमौरलाट स्थान के अधिवासियों में प्रचलित रीति-रिवाजों का एक उदाहरण दिया है। इन लोगों में जो व्यक्ति शत्रुओं से युद्ध करते हुए अथवा शस्त्र द्वारा मारे जाते हैं, उनके शवों को गाढ़ा जाता है।

यदि शत्रु उनके मस्तक को काट कर ले जाता है तो क्रम में उसके स्थान पर एक नारियल रख दिया जाता है, जिससे प्रेतात्मा उसे सर्वाङ्गपूर्ण समझकर सन्तुष्ट हो जाय। और भी अनेक जातियों में मृत व्यक्ति के किसी अङ्ग के कट जाने या नष्ट हो जाने की अवस्था में इसी प्रकार नकली अङ्ग लगा दिए जाते हैं। यूकैटैनी जाति वाले अपने पिताओं की स्मृति में उनकी लकड़ी की मूर्ति बनवाते हैं। उस मूर्ति के भीतर मृत व्यक्ति की भस्म रक्खी जाती है और उसके मस्तक के पिछले भाग का चमड़ा भी निकाल कर उसमें लगा दिया जाता है। ये लकड़ी के पुतले, जिनको हम ममी और मूर्ति का सम्मिश्रण कह सकते हैं, घर के प्रार्थना-भवन में विराजमान किए जाते हैं और उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रक्खी जाती है। उत्सवों के अवसर पर इन मूर्तियों के सम्मुख भोज्य और पेय पदार्थ चढ़ाए जाते हैं। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मृतक को जलाने की प्रथा का प्रचार होने से शवपूजा के बजाय मूर्तिपूजा का जोर बढ़ना गया। जो जातियाँ सदा से मृतकों को गाढ़ती ही आई हैं, वे प्रायः मृत-व्यक्ति की खोपड़ी को सुरक्षित रखती हैं और उसी की पूजा करती हैं।

इस प्रकार जब हम धीरे-धीरे ममी-पूजा के युग से मूर्तिपूजा के युग की तरफ़ अग्रसर होते हैं, तो अन्त में ऐसे स्थल पर पहुँचते हैं, जहाँ ममी का अन्त होकर केवल मूर्ति ही शेष रह जाती है। प्राचीन काल के मैक्सिको-निवासी अपने मुर्दों को जलाते थे। उनमें यह प्रथा प्रचलित थी कि यदि युद्ध में मारे जाने वाले मृत व्यक्ति का शरीर प्राप्त नहीं हो सकता था, तो वे उसकी एक लकड़ी की प्रतिमूर्ति बना कर उसी का दाह-कर्म करते थे। मिश्र वाले भी मृतकों की ममियों के साथ उनका चित्र अथवा मूर्ति रख देते थे, ताकि यदि सयोगवश शरीर नष्ट हो जाय तो मृतात्मा मूर्ति में रह सके। रोम वाले अपने पूर्वजों की मोम की मुखाकृति बना कर उनकी स्मृति-रक्षा करते थे। इस प्रथा का सबसे मनोरञ्जक उदाहरण जो अभी तक सुरक्षित है, इङ्गलैण्ड के राजा रानियों के वे पुतले हैं, जो लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर ऐबी गिर्जाघर में रक्खे हैं।

मूर्तियों के दो उद्गम और भी हैं। एक क्रम को पहिचानने के लिए उस पर एक काष्ठ-फलक गाढ़ देना



और दूसरा मक़बरों में कब्र के ऊपर पत्थर खड़ा करना। ये लकड़ी और पत्थर के टुकड़े आरम्भ में कब्र को चिह्नित करने के लिए लगाए जाते थे, पर जैसे-जैसे लोगों में सौन्दर्य-प्रियता का भाव बढ़ता गया, उनको किसी आकृति के रूप में बनाया जाने लगा और अन्त में उन्होंने क्रमशः लकड़ी और पत्थर की मूर्तियों का रूप ग्रहण कर लिया।

यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे देव-मूर्तियाँ सुन्दर और कला की दृष्टि से आकर्षक होती गईं, उसी प्रकार उनकी शक्ति और महानता का भाव बढ़ता गया। मिश्र में इस प्रवृत्ति ने आकार की विशालता का रूप लिया और अवयवों की सुन्दरता का। हमारे देश में दोनों प्रकार की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। हमारे यहाँ बीस-बीस, पचीस-पचीस गज़ लम्बी मूर्तियाँ देखी जाती हैं और सुन्दरता की दृष्टि से अनेक मूर्तियाँ सर्वत्र विख्यात हैं। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि सभी महत्वपूर्ण मूर्तियाँ विशाल अथवा सुन्दर होती हैं। कितने ही मन्दिरों में, जो समुस्त संसार में अद्वितीय माने जाते हैं, केवल पत्थर के किसी अनगढ़ टुकड़े की अथवा अत्यन्त कुरूप तथा भद्दी मूर्ति की पूजा की जाती है। उनका महत्व प्राचीनता के कारण होता है। ये पत्थर आज से हजारों वर्ष पहले जड़ली अथवा असभ्य लोगों द्वारा पूजे जाते थे और उस अवस्था में उन्होंने इतनी ख्याति प्राप्त कर ली कि सभ्यता का प्रसार होने पर भी लोग अन्ध-अध्मा के कारण उनके भक्त बने रहे।

ईश्वर और देवताओं के प्रभाव को जमाने में मन्दिर तथा मूर्तियों से भी बढ़ कर काम पुजारियों अथवा धर्माचार्यों ने किया है। इनकी उत्पत्ति के दो मुख्य स्रोत हैं। एक तो जैसा कि अफ्रीका की जड़ली जातियों में देखने में आता है, गाँव या क्लिबे का सरदार ही सर्व-प्रधान धर्मयाजक होता है। वह प्राचीन सरदारों का वंशधर होने की हैसियत से परम पवित्र माना जाता है तथा एकमात्र उसी को अधिकार होता है कि उनको भेंट चढ़ाए तथा उनके साथ बातचीत करे। यदि गाँव का कोई साधारण व्यक्ति देवताओं से कुछ पूछना चाहता है तो यह कार्य सरदार की माफ़ी ही हो सकता है, क्योंकि वह उनके विचारों और स्वभाव को जानता है। इसलिए वे सरदार स्वभावतः पुरोहित भी होते हैं, उनका

समस्त परिवार विशेष रूप से पुनीत माना जाता है, क्योंकि वे देवताओं के उत्तराधिकारी होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को पुरोहित-शासक कह सकते हैं। यह प्रथा किञ्चित् परिवर्तित रूप में प्राचीन काल की अनेक प्रभावशालिनी जातियों में प्रचलित थी। फ्रेजर ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि राजकीय पदवी और पुरोहित के कर्तव्य का यह सम्मिलन प्राचीन इटली और ग्रीस में प्रायः देखने में आता था। रोम और अन्य इटालियन शहरों में पुरोहित को 'बलिदान का राजा' अथवा 'धार्मिक क्रियाओं का राजा' कहा जाता था और उसकी पत्नी 'धार्मिक क्रियाओं की रानी' कहलाती थी। एथेन्स के प्रजातन्त्र राज्य में द्वितीय न्यायाधिकारी राजा या सम्राट के नाम से और उसकी पत्नी रानी या सम्राज्ञी के नाम से पुकारी जाती थी। इन दोनों का काम धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न कराना होता था। ग्रीस के अन्य कितने ही प्रजातन्त्र राज्यों में भी राजा की पदवी धारण करने वाले व्यक्ति इसी तरह का काम करते थे। रोम में नियम था कि किसी बादशाह को राज्यच्युत करने के पश्चात् उसके धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए एक 'बलिदान का राजा' नियत किया जाता था। स्पार्टा में समस्त धार्मिक बलिदान राजा को अपने हाथ से करने पड़ते थे, क्योंकि वह उस देश के देवताओं का उत्तराधिकारी माना जाता था। एशिया माइनर में ऐसे अनेक नगर थे, जिनमें 'पवित्र गुलाम' बसते थे और उनके शासक राजकीय तथा धार्मिक दोनों प्रकार के अधिकार रखते थे। चीन के बादशाह भी देवताओं के वंशधर माने जाते थे और सार्वजनिक उत्सवों के समय अपने हाथ से बलिदान करते थे। भारत में भी अधिकांश राजकुल अपना उद्भव देवताओं से बतलाते हैं और इसलिए राजकीय शक्ति के अधिकारी होने के साथ ही धार्मिक दृष्टि से भी उनको पवित्र माना जाता है।

दूसरी श्रेणी के पुरोहित यद्यपि आरम्भ में साधारण व्यक्ति थे और उनका दर्जा सेवकों अथवा गुलामों से उच्च न था, पर धीरे-धीरे उन्होंने बड़ी उन्नति कर ली और समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया। जिन जातियों में अथवा जिस युग में राजा या बादशाह स्वयं पुरोहित का कार्य करते थे, उन जातियों में अथवा उस युग में देवताओं का महत्व अधिक बढ़ने नहीं पाता

था, क्योंकि ये शासक भी अपने को महान समझते थे। पर जब पूर्वजों की समाधियों अथवा मन्दिरों का प्रबन्ध एक पृथक श्रेणी के लोगों को दे दिया गया तो देवताओं की महिमा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और इसके फल-स्वरूप अन्त में उन धर्माचार्यों का उदय हुआ, जो बादशाहों पर भी हुकूम चलाते थे, और जिनके सम्मुख बड़े-बड़े सत्ताधारियों को नतमस्तक होना पड़ता था।

जब हम इस श्रेणी के पुरोहितों की उत्पत्ति के विषय में खोज करते हैं, तो विदित होता है कि उन्नत आरम्भ राजाओं और महान योद्धाओं की समाधियों की देख-भाल करने वाले सेवकों से हुआ है। मिश्र के प्राचीन मकबরों में जो लेख प्राप्त हुए हैं, उनमें भेंट-पूजा की रकम और जायदाद के साथ उन पुजारियों अथवा गुलामों की सूची भी दी गई है जो उस भेंट-पूजा को नियमित रूप से कब्रों पर चढ़ाने के लिए नियुक्त किए जाते थे। हमारे देश में भी जितने देवस्थान आज तक बनवाए गए हैं, उनमें एक या दो पुजारी नियुक्त करना आवश्यक माना जाता है। अधिकांश में ये पुजारी वंशानुक्रम के लिए होते हैं और क्रमशः उनका प्रभाव बढ़ता जाता है। अन्त में ऐसा समय आता है, जब वे पुजारी ही उस देवस्थान तथा उसके लिए समर्पित समस्त स्थावर और जङ्गम सम्पत्ति के स्वामी बन जाते हैं।

सदैव देवता के समीप रहने से सर्वसाधारण की दृष्टि में उनका महत्व बढ़ जाता है और लोग समझने लगते हैं कि केवल वे ही मन्दिर के अदृश्य अधीश्वर के स्वभाव से परिचित हैं। देवता के कानों तक किस प्रकार

प्रार्थना पहुँचाई जाय, इसकी विधि केवल इन पुजारियों को ही मालूम होती है और वे ही यह बतला सकते हैं कि किसी विषय में देवता प्रसन्न हैं या अप्रसन्न। इस प्रकार ये पुजारी देवता और भक्तियों के मध्यस्थ अथवा दलाल बन जाते हैं। चूँकि उनका प्रत्यक्ष स्वार्थ इसी में होता है कि देवता की महिमा अधिक से अधिक बढ़े और लोग उसके प्रति श्रद्धालु बनें, इसलिए वे तरह-तरह की युक्तियों से जनता के भक्तिभाव तथा अन्धविश्वास को दृढ़ करने की चेष्टा करते रहते हैं।

इस प्रकार विभिन्न विचार-धाराओं के घात-प्रति-घात के परिणाम-स्वरूप प्राग् ऐतिहासिक युग की 'मसी' अथवा प्रेतात्मा ने क्रमशः उन्नति करके महामहिमान्वित और अशेष शक्ति के अधीश्वर देवता का स्वरूप ग्रहण कर लिया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, उसकी मानवता को लोग भूलते गए, और उसे अतिप्राकृत शक्तियों से विभूषित किया जाने लगा। प्रत्येक देश के धार्मिक इतिहास में हमको यह तथ्य समान रूप से मिलता है कि जितने अर्वाचीन देवता या महात्मा होते हैं, वे सब मनुष्य-शरीरधारी माने जाते हैं, पर प्राचीन देवताओं के सम्बन्ध में, जिनका उद्गम सर्वथा विस्मृत हो गया है, लोगों में प्रायः यह धारणा पाई जाती है कि वे एक अतिप्राकृत शक्ति के सिवा और कुछ नहीं हैं। इसी अतिप्राकृत शक्ति के विश्वास ने अन्त में एक निराकार, अव्यक्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान परमात्मा की धारणा का स्वरूप ग्रहण कर लिया, जिसकी चर्चा दूसरे लेख में की जायगी।

✽

✽

✽

गीत



[श्री० नरेन्द्र]

खोलो, अवगुण्टन खोलो !

प्यासे नयन भ्रमर-से आकुल—
कमल-नयनि ! दर्शन को व्याकुल,
अधर अधीर मधुर चुम्बन को,
अवन तृपित कोकिल-कूजन को,
बोलो मधुमयि, कुछ बोलो !

रोम रोम जागृत उर कम्पित,
प्राण विकल, परितप्त, सशङ्कित,
विश्व अचेतन, स्तब्ध, विमूर्च्छित,
अङ्ग-अङ्ग पुलकित औ' प्रेरित,
बोलो मधुमयि ! कुछ बोलो !



फतहपुर सीकरी

[श्री० विक्रमादित्यसिंह निगम, एम० ए०]



तहपुर सीकरी का नाम तो बहुतों ने सुना होगा। सोलहवीं सदी में यह मुगल-वंश के प्रसिद्ध बादशाह सम्राट् अकबर की राजधानी थी। यह स्थान आगरा से लगभग २० मील दूर है और रेल, मोटर-जोरी या तंगे द्वारा जाया जाता है। यह एक अति सुन्दर स्थान है। सम्राट् अकबर के समय में यह एक बड़ा शहर था, जो कि ७ मील के घेरे में बसा था। यहाँ शाही महल, अमीर-उमरावों के सुन्दर निवास-स्थान और बहुत सी अन्य आलीशान इमारतें थीं। अब भी शाही महल और कई आलीशान इमारतें यहाँ मौजूद हैं, जो देखने योग्य हैं। यहाँ की कुल इमारतें लाल पत्थर की बनी हुई हैं।

कहा जाता है कि सम्राट् अकबर ने इसे बसाया था और यहीं पर अपनी राजधानी बनाई थी। इसके कई कारण थे। सबसे पहला कारण यह था कि अकबर के कई पुत्र आगरे के किले में, जहाँ पहले शाही निवास-स्थान था, जन्मे, पर दुर्भाग्यवश मर गए, जिससे अकबर को बड़ी निराशा हुई। यह स्थान भी अशुभ माना जाने लगा। इसलिए उसने हर साल अजमेर आकर सुईन-उद्दीन चिश्ती की दरगाह में पूजा-पाठ करना आरम्भ किया। कुछ दिनों बाद भाग्यवश ईश्वर ने उसकी प्रार्थना सुन ली और सीकरी में एक पहुँचे हुए फकीर शैख सलीम चिश्ती से भेंट हुई। शैख ने बताया कि तुम्हारी परनी से एक नहीं, तीन पुत्र जन्मेंगे। यह सुन कर अकबर को बड़ी खुशी हुई और शैख के आज्ञा-नुसार उसने अपनी प्रधान राजमहिषी को, (जो अम्बर के राजा भारमल की पुत्री थीं) सीकरी में शैख की स्त्रियों के साथ रहने को भेज दिया। ईश्वर की कृपा से साल भर के अन्दर ही अकबर की

मनोकामना पूर्ण हुई और सीकरी में ही बुधवार ३० अगस्त सन् १५६९ ई० ठीक दोपहर को सलीम का जन्म हुआ। पुत्र जन्मने का शुभ समाचार सुन कर अकबर के हर्ष की सीमा न रही। इसी की बदौलत सीकरी का भी सितारा चमका और कुछ दिनों बाद अकबर ने उसी को अपनी राजधानी बनाई।

जिप कमरे में सलीम का जन्म हुआ था, वह अब भी मौजूद है, परन्तु बड़ी गन्दी हालत में है। अस्तु, कुछ दिनों बाद अकबर के दूसरे पुत्र मुराद का भी यहीं जन्म हुआ।

कहा जाता है कि जिस समय अकबर की शैख से भेंट हुई थी, उस समय शैख के एक अबोध बालक था। अकबर के चले जाने पर इस अबोध बालक ने अपने पिता को उदास देख कर उसका कारण पूछा तो शैख ने कहा कि अकबर के एक पुत्र भी न जिएगा, जब तक कि कोई अपने पुत्र का उसके पुत्र के लिए बलिदान न करेगा। यह सुनते ही वह बाजक ज़मीन पर छोट गया और तुरन्त ही उसका प्राण निकल गया।

अकबर अपनी राजमहिषी को देखने के लिए बार-बार सीकरी जाया करता था, इसलिए कुछ दिनों के बाद वहाँ एक महल भी बनवा दिया। इसके बाद क्रम-क्रम से और भी महल तथा अन्य उत्कृष्ट इमारतें बनीं।

इसके अतिरिक्त यह स्थान उस समय सैनिक दृष्टि से भी बड़े मार्के का था। इसी स्थान पर अकबर के दादा बाबर तथा मेवाड़ के राना साँगा से घोर संग्राम हुआ था। इसके सिवा यह स्थान राजपूताने के भी निकट है, जिसे अकबर अपने अनुशासन में रखना चाहता था।

अकबर के दादा बाबर ने सबसे पहले यहाँ पर अपने लिए एक आनन्द-भवन तथा एक फुलवारी बनवाई थी और यहीं पर बाबरनामा नामक फ़ारसी का प्रसिद्ध ग्रन्थ भी लिखा गया था। यहाँ पर लाल पत्थर, चूना,



तथा इमारतें बनवाने की अन्य सामग्री भी बहुतायत से मिल सकती थी। इसके साथ ही अकबर को उक्त शैख से भी बड़ा प्रेम हो गया था। शैख की इच्छा सदैव यहाँ रहने की थी। इसीलिए अकबर ने भी यहीं स्थायी रूप से रहने का विचार कर लिया और शैख के लिए भी एक सुन्दर निवास-स्थान तथा एक मसजिद बनवा दी।

हम ऊपर बता चुके हैं कि सबसे पहले अकबर ने अपनी राजमहिषी के लिए एक सुन्दर महल बनवाया। फिर एक और महल अपनी एक दूसरी बेगम तुर्की सुलताना के लिए बनवाया। इसके बाद अपने गुरु शैख के लिए एक निवास-स्थान तथा जामए-मसजिद बनवाने का हुक्म दिया। इसके बाद राजा बीरबल, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल तथा और दूसरे उन्नतों ने भी अपने-अपने निवास-स्थान बनवाए। इस प्रकार पाँच वर्षों के अन्दर-अन्दर यह स्थान एक सुन्दर नगर बन गया, जिसका नाम फ़तेहपुर सीकरी रखा गया। रेज़प फ़िच (Ralph Fitch) नाम का एक अङ्गरेज़, जोकि इस समय (१५८५ ई०) यहाँ मौजूद था, लिखता है—“फ़तेहपुर सीकरी से लेकर आगरा तक एक बहुत बड़ा बाज़ार है, वहाँ अनेक प्रकार की वस्तुएँ मिलती हैं। इस बाज़ार में फ़ारस तथा अन्यान्य देशों के व्यापारी भाँति-भाँति की चीज़ें, जैसे कपड़ा, रेशम, जवाहरात और मोती आदि का व्यापार करते हैं।”

यहाँ अकबर की बनवाई हुई कई सुन्दर तथा उत्कृष्ट इमारतें, जैसे जामए-मसजिद, शैख सलीम चिरती का मकबरा, दीवाने-आम, दीवाने-खास, पञ्च-महल, रानी जोधबाई का महल, ख़ाब-गाह, तुर्की सुलताना का महल, हिरन मीनार, बुलन्द दरवाज़ा, इत्यादि इमारतें अब भी मौजूद हैं।

जामए-मसजिद

यह एक सबसे पुरानी मसजिद है, जिसे अकबर ने अपने मुशिद शैख की स्मृति में बनवाई थी। यह मसजिद शैख की मृत्यु के बाद, १५३१ ई० में बनकर तैयार हुई थी। इसे अकबर ने शैख को ही समर्पण किया था, इसलिए अब भी इसमें चिरती वंश के लोग दफ़न किए जाते हैं। यह मसजिद मक्का शरीफ़ की

मसजिद का प्रतिरूप है और अकबर की सब इमारतों से बड़ी तथा उत्कृष्ट इमारत है। अकबर इसी में नमाज़ पढ़ने जाया करता था। इसी में उसने अपने नए धर्म-दीने-इलाही का उपदेश दिया था। कहा जाता है कि जिस समय अकबर ने अपने नए धर्म का उपदेश देने के लिए मसजिद के ‘मिम्बर’ (प्रार्थना-स्थान) पर खड़े होकर ‘ख़ुतबा’ पढ़ा, उस समय एक विचित्र घटना हुई। ख़ुतबा पढ़ते पढ़ते एकबारगी ज़बान लड़खड़ा गई और वह पूरा ख़ुतबा न पढ़ सका। फ़लतः निराश होकर नीचे उतर आया और इमाम ने ख़ुतबा पढ़ कर पूरा किया। इस मसजिद में धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी। बहुत से मुसलमान फ़कीर और दरवेश यहाँ रहा करते थे। यहाँ प्रतिदिन भिचा भी बटा करती थी। आजकल भी त्योहारों पर यहाँ गरीबों को खाना दिया जाता है।

शैख सलीम चिरती का मकबरा

यह सुन्दर इमारत जामए-मसजिद के अन्दर है। हममें अकबर के मुशिद शैख सलीम चिरती दफ़न हैं। यह सङ्गमरमर की बनी इमारत है। इसके बनवाने में अकबर ने बहुत सा ख़र्च किया था। अकबर की सब इमारतें लाल पत्थर की हैं, परन्तु यह इमारत सङ्गमरमर की बनी है। दूर से देखने में यह एक मन्दिर की सी मालूम पड़ती है। उसमें सङ्गमरमर पर जाली का काम अत्यन्त ही सुन्दर बना है। क़ब्र के ऊपर और आस-पास सीपी की पच्चीकारी का काम भी बड़ा ही सुन्दर है, जो वास्तव में देखने योग्य है। क़ब्र के चारों ओर एक लकड़ी का मण्डप है, जो अकबर के समय का ही है।

दीवाने-आम और दीवाने-खास

दीवाने-आम में बादशाह आम दरबार किया करता था और दीवाने खास में खास-खास लोग—जैसे मन्त्री-गण तथा अन्य उच्च पदाधिकारी बादशाह को सलाह देने की गरज़ से एकत्र हुआ करते थे। दीवाने-खास बाहर से देखने में तो दोमज़िज़ा इमारत देख पड़ती है, परन्तु अन्दर जाने से एक मज़िज़ा है। इसके अन्दर बीच में एक आठ कोण का खम्भा है, जिसकी क़ारीगरी देखने योग्य है। खम्भे के ऊपरी भाग पर चारों ओर



बैठने की जगह बनी है, जहाँ अकबर बादशाह अपने मन्त्रियों सहित बैठा करता था।

पञ्च-महल

यह भी एक बड़ी सुन्दर पाँच खण्डों की इमारत है। इस इमारत की खूबी यह है कि इसका प्रत्येक खण्ड एक दूसरे से छोटा है और ज्यों-ज्यों ऊपर जाइए, प्रत्येक खण्ड छोटा होता जाता है। यहाँ तक कि अन्त में केवल एक बिलकुल छोटा सा खण्ड रह जाता है। इसके प्रत्येक खण्ड में खम्भे बने हैं, जिनमें ज़ाजीरों और घण्टों की कारीगरी दिखाई गई है। यह इमारत बौद्ध-विहारों के ढङ्ग की है। यहाँ अकबर की रानियाँ सन्ध्या समय वायु-सेवन के लिए आया करती थीं। स्वयं अकबर ऊपरी खण्डों में वायु-सेवन करता था और नीचे वाले खण्डों में, जिनमें जालीदार पत्थर के परदे लगे थे, (अब टूट गए हैं) उसकी रानियाँ बैठती थीं। इस प्रकार सन्ध्या-समय यहाँ बड़ा आनन्द समारोह रहता था। यहाँ से महारानी जोधबाई के महल तक एक जालीदार रास्ता बना था, जो अब टूट गया है।

रानी जोधबाई का महल

यह एक सबसे बड़ा और सुन्दर महल है। कहा जाता है कि यह रानी जोधबाई का महल था और इसी के निकट ख़ास महल तथा ख़्वाबगाह में बादशाह स्वयं रहा करता था। परन्तु यह विचार ग़लत है। वास्तव में अकबर उसी महल में रहा करता था, जो कि रानी जोधबाई का महल के नाम से विख्यात है। रेवरेण्ड हिरास ने यह सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि रानी जोधबाई का महल ही अकबर का महल था। ख़्वाबगाह में केवल दोपहर को अधिक गरमी पड़ने के समय जाया करता था।

ख़्वाबगाह

यह बड़े महल का केवल विस्तार है और एक छोटे से पक्के तालाब के निकट है। इसमें बादशाह अकबर दोपहर का समय अधिक गरमी पड़ने के कारण यहीं व्यतीत किया करता था। तालाब के निकट होने की वजह से यह बहुत ठण्डा रहा करता था। इसी के नीचे के खण्ड में अकबर भोजन भी किया करता था। कहा

जाता है कि ख़्वाबगाह के अन्दर जो बड़ा दालान बना हुआ है, उसमें एक योगी रहा करता था, जिससे बादशाह को बड़ा प्रेम था। परन्तु यह बात असत्य मालूम पड़ती है। वास्तव में यहाँ अकबर भोजन किया करता था और वह ऊँचा चबूतरा, जिस पर कहा जाता है कि योगी बैठा करता था, वास्तव में गाने वाले बैठ कर, जिस समय अकबर भोजन करता, गाया-बजाया करते थे। पहले ख़्वाबगाह से बड़े महल तक एक छिपा हुआ रास्ता बना था, जिससे होकर अकबर की मुख्य रानियाँ दोपहर के समय एकान्त में उससे मिलने आया करती थीं। यह विशेष अधिकार केवल कई मुख्य रानियों को ही प्राप्त था।

तुर्की सुलताना का निवास-स्थान

यह अकबर की रानी रुक़िया बेगम का निवास-स्थान था। रुक़िया बेगम पहले बैराम ख़ाँ की बीबी थी, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद अकबर ने इससे स्वयं विवाह कर लिया। यह एक बड़ी सुन्दर स्त्री थी और तुर्की भाषा भली-भाँति जानती थी। अकबर ने इसके रहने के लिए एक एकान्त स्थान बनवा दिया था। रुक़िया बेगम का कमरा अर्थात् तुर्की सुलताना का घर छोटा होने के कारण उसका शृङ्गार-घर था। पहले यहाँ से ख़्वाबगाह तक एक परदेदार रास्ता था, जिससे होकर बेगम साहबा अपने पति के पास जाया करती थीं। इसके उत्तर की ओर एक दोमन्ज़िला इमारत है, जिसे लड़कियों का मकतब कहते हैं, परन्तु ऐतिहासिकों का कहना है कि यहाँ कोई मकतब नहीं था। बल्कि अकबर की बेगम मरयम उज्जमानी, अधिक गरमी पड़ने के कारण यहाँ रहा करती थी। तालाब के निकट होने की वजह से यह भी ख़्वाबगाह की भाँति ही ठण्डा रहा करता था।

पचीसी महल

यहाँ अकबर पचीसी खेला करता था। अब भी यहाँ पचीसी की जगह बनी हुई है। अकबर स्वयम् बीच में एक पत्थर पर बैठ कर पचीसी खेला करता और गोट की जगह छोटी-छोटी लड़कियाँ रङ्ग-विरङ्गे कपड़े पहना कर खड़ी की जातीं और वे ही गोट का काम पूरा करती थीं।

हिरन-मीनार

यह बड़े महल के उत्तर की ओर है। यहाँ अकबर की रानियाँ वायुसेवन के लिए आया करती थीं। पहले बड़े महल से हिरन-मीनार तक एक रास्ता बना था, पर अब टूट गया है।

बुलन्द दरवाज़ा

यह अकबर की एक महान इमारत है। यह संसार के फाटकों में एक उत्कृष्ट फाटक है। इसकी ऊँचाई १३४ फीट है। इसे अकबर ने खानदेश तथा असीरगढ़ पर विजय प्राप्त करने की खुशी में बनवाया था। यह फ़ारस के फाटकों की तरह है। यह वास्तव में एक विशाल फाटक है। इसमें एक खूबी यह है कि फाटक के ऊपर अरबी की लिखाई सब तरफ से बराबर है, अर्थात् फाटक के नीचे तथा ऊपर के अक्षर सब एक समान मालूम देते हैं। बस यही यहाँ की प्रसिद्ध इमारतें हैं, जो देखने योग्य हैं।

अलावा इसके बागीचे, लङ्गरखाने, सराएँ, ताल, बावली, औषधालय इत्यादि भी अकबर ने बनवाए थे। बावली अब भी है, जिसके अन्दर ८० फीट की ऊँचाई से यहाँ के तैरने वाले, कुछ पैसे देने पर गोता लगा कर दिखाते हैं।

पानी का प्रबन्ध

अकबर ने पानी का प्रबन्ध बड़ा अच्छा किया था। जिसकी प्रशंसा आजकल के बड़े-बड़े इन्जीनियर भी करते हैं। पानी एक भील से, जो हिरन मीनार के निकट थी, लिया जाता था। यह भील ६ मील लम्बी थी और सारे शहर को पानी इसी से पहुँचाया जाता था। अब तो भील बिलकुल सूख गई है, परन्तु इसके चिन्ह मौजूद हैं। इसी भील के पास एक बड़ी सराय थी, जहाँ पर अन्य देशों के व्यापारी आकर ठहरा करते थे। पानी का इतना अच्छा प्रबन्ध था कि १०० फीट से अधिक ऊँचाई तक पानी चढ़ाया जाता था और सारे महल में पहुँचाया जाता था। पानी इस्तेमाल करने के बाद शहर के दूसरे कोने 'नगर-घाटी' में बह कर चला

जाता था। इस प्रकार पानी एक जगह इकट्ठा होकर गन्दा न होने पाता था। परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी भील गरमियों में सूख जाती और पानी न होने के कारण सबको बड़ा कष्ट पहुँचता था। इधर बरसात में अधिक पानी होने के कारण बहिया आ जाती और पानी भी गन्दा हो जाता। तात्पर्य यह कि पानी का इतना अच्छा प्रबन्ध होने पर भी एक ऐसी घटना हुई कि अकबर को सीकरी, जिसे उसने बड़े शौक से बनवाया था, छोड़नी पड़ी। दुर्भाग्यवश, १५८२ ई० में भील का बाँध टूट गया और बड़े ज़ोरों के साथ बाढ़ आई। फिर १५९० ई० में अकस्मात् भील में पानी कम पड़ गया। बादशाह ने इन्जीनियरों को हुक्म दिया कि पानी का ठीक प्रबन्ध करें। परन्तु इन्जीनियरों ने, सीकरी छोड़ने के १० दिन पहले, अपनी रिपोर्ट बादशाह की सेवा में भेजी कि पानी का प्रबन्ध होना असम्भव है। अकबर को यह सुन कर बड़ा दुःख हुआ और शीघ्र लाहौर हुक्म भेजा कि शाही महल के निवासियों के लिए लाहौर में प्रबन्ध किया जाए। कहते हैं कि इस समय कतिपय राजनीतिक कारणों से अकबर ने काश्मीर के निकट ही रहना उचित समझा। यह भी लिखा है कि अकबर के कई मित्रों की मृत्यु—जैसे टोडरमल, अम्बर के राजा, फैजी, अबुलफ़जल—यहाँ पर हुई, जिससे उसको अपार शोक हुआ। यहाँ तक कि राजा टोडरमल की जलती हुई चिता को देख कर अम्बर के राजा इतने दुःखित हुए कि मरघट से वापस आकर बीमार पड़े और कुछ दिनों के बाद ही मर गए। इसीलिए अकबर को सीकरी, जो उसकी बड़ी प्यारी राजधानी थी और जहाँ उसके दादा बाबर ने अपना आनन्दभवन बनाया था, निराश होकर छोड़नी पड़ी। इस प्रकार सीकरी बसाई गई और अन्त में त्याग दी गई। आजकल उसी स्थान को भारतीय तथा और देशों के यात्री हज़ारों की तादाद में देखने आते हैं और बेखटके सब जगह चले जाते हैं, जहाँ पर किसी समय में अकबर, उसकी पटरानियाँ तथा दरबारी और उमरा रहा करते थे। यह भी समय की बात है।





अन्तर्वेदना

[श्री० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त']

काली-काली अरी उनीदी,
आई रजनी मतवाली ।

पहिन रजत परिधान अङ्ग पर,
तारक मुक्ता-हार पहिन कर,
फैला माया-जाल विश्व पर,
सान्ध्य-सुनहरी बेला पर भी,
माया री ! इसने डाली ।
काली-काली अरी उनीदी,
आई रजनी मतवाली ।

बनी नवेली यह अलबेली,
नवल-नवल करती अठखेली,
इन्दु-करोँ से कर रँगरेली,
शुभ-सुहाग की सुखमय बेला,
मुझे दिखाने यह आली,
काली-काली अरी उनीदी,
आई रजनी मतवाली ।

स्वर्ग-सदन के नील अङ्क पर,
मादक स्वप्नो का अभिनय कर,
रहते सुख से मुझे भूल कर,
उनके ही ढिग ले चलने को,
मुझे लिखाने यह आली ;
काली-काली अरी उनीदी,
आई रजनी मतवाली ।

रहे सुखी वे, पर मैं उन्मन,
करती उनका ही आराधन,
मेरे उर के गीले क्रन्दन,
गुञ्जित होते, 'जाऊँ क्यों जब,
भूल गए मुझको आली ।
काली-काली अरी उनीदी,
आई रजनी मतवाली !!

सौन्दर्यमयी से—

[श्री० नर्मदाप्रसाद खरे]

मैं सुख-सँग खेल रहा हूँ,
जीवन मे सुख ही सुख है,
पर देवि ! तुम्हारे बिन यह
सुख मुझको दुख ही दुख है ।
यह जीवन है क्षणभङ्गुर
आशा-गढ़ व्यर्थ बनाना,
मनुहार लिए उस सुख की
क्या मुझको जग से जाना ?
नित असफलता के रण मे
मैं विजय-गीत गाता हूँ,
पर है यह कैसी माया
तुमको न कभी पाता हूँ ?
तुम 'रूप-राशि'-सी सुन्दर
दिखती हो भाव-गगन मे,
पाने को कर जब उठते
ओम्फल हो जाती क्षण में ।
मैं आहत सा रह जाता,
अम्बर पर नेत्र बिछाए,
तुम कहाँ चली जाती हो
अपना आकार छिपाए ?
तुम अनिल-यान में उड़ कर
बैठी विधु-सिंहासन पर
त्रिभुवन में राज्य तुम्हारा
है, हास्य विश्व-आनन पर ।
अब किरण-किरण से उतरो
विहँसो मेरे आँगन मे,
हँस उठे हृदय यह मेरा
मैं सुख पाऊँ जीवन में ।
मेरे जीवन-सागर मे
तुम लहरे बन कर आओ,
मैं तुममे मिल जाऊंगा
तुम मुझमे आ मिल जाओ ।



श्रीनाथद्वारे की कथा

[श्री० शिवनारायण टण्डन]



रा

जपूताना हिन्दुओं के लिए पवित्र और पूजनीय स्थान है। हिन्दू-भाति की प्राचीन गौरव-ध्वनि राजपूताना के रजकण से प्रतिध्वनित होती है। जहाँ बप्पारावल के वीर वंशजों का सहस्रों वर्षों तक प्रभुत्व रहा है, जहाँ राणा-संभ्राम और महाराणा प्रताप

जैसे धीर-वीरों ने जन्म लिया, जिसे राजसिंह, दुर्गादास-जैसे नरपुङ्गवों की जन्म-भूमि होने का गौरव प्राप्त है, जहाँ हस्तीनापुरी सा ऐतिहासिक युद्धक्षेत्र है, जहाँ पद्मिनी, कृष्णकुमारी और धात्री पत्नी जैसी महा महीयसी महिलाओं ने जन्म लिया था, वहाँ देवी चामुण्डा, श्रीनाथ जी, डाकर जी और भगवान एकलिंग से तीर्थ-स्थान हैं, वहाँ से बढ़ कर, आस्तिक हिन्दू किस पावन तीर्थ की यात्रा कर सकते हैं। हम तो एक बार नहीं, अनेक बार राजपूताना गए हैं और जब वहाँ जाते हैं तब मुग्ध रह जाते हैं। जोधपुर और उदयपुर-निवासियों के वल्लिष्ठ शरीर, भीमसेनी भुजाएँ और 'रदपुट फरकत नयन रिसौंहें' देख कर अपने पूर्वजों के बल और शौर्य का कुछ-कुछ आभास पा जाते हैं। एक बार उनके उल्लास ललाटों, चौड़े घनस्थलों तनी हुई गर्दनो और विशाल बाहुओं को देख कर जब हम अपनी मिट्टी हुई पेशानी, धँसी हुई छाती, झुकी हुई गर्दन और नन्ही-नन्हीं बाँहों की ओर दृष्टि डालते हैं, तो दोनों के अन्तर को देख कर लज्जा और सन्ताप से सङ्कुचित हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि क्या हम दोनों एक ही पूर्वजों की सन्तान हैं ? सूरत, शङ्ख, कद और पेशानी से वे अब भी आर्य जँचते हैं और हम उनके समक्ष बौने जैसे

दीखते हैं। कुछ भी हो, हम वहाँ जाकर अपनी शारीरिक हीनता और हाम का अनुभव ज़रूर करने लगते हैं।

राजपूताना जाने के लिए, देहली और आगरा से छोटी लाइन की गाड़ियाँ सदैव छूटा करती हैं। संयुक्त-प्रान्त और बिहार वालों के लिए ये गाड़ियाँ बड़े सुभीते की हैं। यात्रीगण स्नान, ध्यान और पेट पूजन से निवृत्त होकर, दिल्ली का क़िला या आगरा का ताज देख कर, आचार, मुरब्बा और दाजमोठ लेकर, बड़ी मौज से पैर पसार कर, एक-एक 'सीट' पर डट जाते हैं। भीड़-भाड़ कम रहती है। सफ़र में दो दिन लगते हैं। रास्ते में जयपुर पहुँचने तक खाने पीने का अच्छा सामान नहीं मिलता, अतएव राजपूताना जाने वाले यात्रियों को दिल्ली और आगरा से ही सारा बन्दोबस्त कर लेना पड़ता है।

राजपूताना राजपूतों की क्रीडाभूमि है, भारत का प्रसिद्ध समरक्षेत्र है। यहाँ सैकड़ों दर्शनीय स्थान हैं। परन्तु हमें यहाँ नाथद्वारे के सम्बन्ध में ही कुछ लिखना है। श्रीनाथद्वारा उदयपुर रियासत के अन्तर्गत है। अरावली पर्वतमाला के अन्तरतर में, उदयसागर के तट पर, उदयपुर की रमणीक राजधानी है। नाथद्वारा जाने के लिए चित्तौड़गढ़ से या उदयपुर से सरकारी रेलवे यू० सी० आर० द्वारा यात्रा करनी होती है। सरकारी रेलवे से हमारा मतलब स्टेट रेलवे से है। इस रेलवे का इन्तज़ाम बिल्कुल रियासती है। ऐसा इन्तज़ाम ससार में किसी रेलवे का नहीं है। सरदारों और दरबारियों के लिए ट्रेनों का घण्टों तक खड़ा रहना और उन्हें बुलाने के लिए इज़्जिन का बार-बार सीटी देना, इस रेलवे की विशेषता है। सुना है कि कोयले की कमी पड़ने पर इज़्जिनों में बहुधा ईंधन भी जलाया जाता है।

कुछ भी हो, परन्तु रास्ता बड़ा ही रमणीक है। दोनों ओर के दृश्य अत्यन्त नयनाभिराम हैं। चित्तौरगढ़ और उदयपुर के ठीक बीचोबीच भावली जङ्गल पड़ता है। यहाँ से नाथद्वारा कोई बीस मील है। पहले यहीं से यात्रीगण पैदल, बैलगाड़ियों द्वारा या तँगों पर जाया करते थे, परन्तु अब तो रेल बन गई है। स्वयं नाथद्वारा में ही स्टेशन बन गया है। यहाँ यात्रियों की ख़ासी भीड़ रहती है। दीपावली तथा अन्नकूट के अवसरों पर तो यात्रियों का पारावार नहीं रहता। बङ्गाली, बिहारी, हिन्दुस्तानी, पञ्जाबी, मारवाड़ी, गुजराती और मद्रासी, सभी प्रान्तों के वैष्णव अपनी श्रद्धालु चढ़ाने के लिए नाथद्वारा आते हैं। इनमें महिलाओं और ख़ासकर वृद्धा माताओं की संख्या तो बहुत अधिक रहती है। नाथद्वारा भारत भर के वैष्णव धर्मावलम्बियों का सबसे बड़ा तीर्थस्थान है।

स्टेशन से नाथद्वारा का मन्दिर और बस्ती कोई छः-सात मील दूर है। लॉरियों और तँगों की बहुतायत है। थका-मोड़ा यात्री यहाँही स्टेशन पर कदम रखता है, यहाँही चुन्नी वालों का दौरा आरम्भ हो जाता है। देशी रियासतों में जयपुर को छोड़ कर प्रायः प्रत्येक जगह चुन्नी वसूल करने का तरीका बहुत ही बेहूदा, उद्दण्डतापूर्ण और कष्टप्रद है। श्रीनाथ जी में तो चुन्नी वालों ने बिल्कुल नादिरशाही मचा रखी है। यात्रियों को तङ्ग करना, उनके बक्सों को खोल डालना, उनको टेंटों को टटोलना समान को घण्टों तक रोक रखना, लड़ाई-झगड़ा करना और जब तक कुछ मिल न जाय तब तक न जाने देना चुन्नी विभाग के अधिकारियों का दैनिक कार्यक्रम है। यात्री उनके इस दुर्व्यवहार से भुँभुका उठता है, उकता जाता है।

श्रीनाथद्वारा में ठहराने के लिए 'होटल' या काफ़े तो नहीं हैं, परन्तु दर्जनों धर्मशालाएँ अपने अतिथियों के स्वागत के लिए अर्हिनिश खुली रहती हैं। परन्तु ये धर्मशालाएँ बड़ी बेठङ्गी और गन्दी हैं। इनको 'धर्म-शाला' न कह कर यदि हम पशुशाला या गन्दगीशाला कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। धर्म के नाम पर चलने वाली ये संस्थाएँ सभ्य मनुष्यों के ठहरने लायक बिल्कुल नहीं हैं। केवल एक धर्मशाला अच्छी है, जो

देहली वालों की नज़ाकत और सफ़ाई-पसन्दी का नमूना है। अस्तु।

श्रीनाथद्वारा का मन्दिर बड़ा ही भव्य और विशाल है। मन्दिर क्या है, पूरा नगर है। एक बड़े फाटक से गुज़र कर मन्दिर के अहाते में प्रवेश करना होता है। पास ही एक बड़ा सा मैदान है, जो बाहर से आते रहने वाले पारसलों से प्रायः भरा रहता है। जिस समय हम पहुँचे, सुबह का वक्त था, आठ बज चुका था। मन्दिर के अधिकारियों ने पारसलों को खोलना शुरू किया था। किमी भी पारसल पर भेजने वाले का नाम नहीं था — 'पाने वाले श्रीनाथजी' बस इतना ही लिखा रहता था। ऐसे पारसलों में नित्य मनो मेवे, झौंझों अनार, अङ्गूर और सेव आया करते हैं। वहाँ का यही दैनिक कार्यक्रम है। सैकड़ों-हज़ारों रुपयों के मेवे, फल और दूसरे सामान न जाने कहाँ कहाँ से वहाँ नित्य आया करते हैं। हमने मन्दिर के गोदाम में जाकर देखा तो वहाँ सौ-सौ, दो-दो सौ मन के टैङ्कों को ज़मीन में गड़ा हुआ पाया, जिनमें घी, तैल और ढेर का ढेर अनाज भरा हुआ था। कहीं कोल्हू चल रहा था, कहीं बैलों की चक्रियों में आटा पिस रहा था। कहीं पिश्ते झिल रहे थे तो कहीं बादामों का ढेर लगा था। ज़िगर देखो उधर ही खाद्य पदार्थों का शाही इन्तज़ाम था। वहाँ वालों को मालपुवा और हलवा खाने के सिवा और कोई काम ही नहीं था। मनो खाने के लिए ही उनका शरीर बना था और खाने-पीने के लिए ही उनका दिन उगता और अस्त होता था।

सबसे मज़ेदार बात यहाँ यह दीख पड़ी कि केसर और कस्तूरी चाँदी की चक्रियों में पीसी जाती हैं। सेरों केसर से भरे ढब्बे चक्रियों पर उँडेल दिए जाते हैं। तरकारियों में, मुरब्बों में, रायतों में, हलुवों में, यहाँ तक कि पूड़ियों और कचौड़ियों तक में भी केसर का 'दामन' दिया जाता है। जैसे होली में रङ्ग चलता है या जैसे खाद्य पदार्थों में हल्दी काम में लाई जाती है, वैसे वहाँ केसर-कस्तूरी का दौर-दौरा है। पण्डों और पुजारियों से पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ नित्य का यही क्रम है। "इतनी क्रिज़लखर्ची, केसर की ऐसी बरबादी!"—हठात् मेरे मुँह से ऐसा निकल गया। "अरे कँगले! यह नाथद्वारा है, नाथद्वारा!"—

कहता हुआ एक पण्डा मुझे दिक्कारन की दृष्टि से देखता हुआ चला गया।

यहाँ इतना बढिया, इतना मूल्यवान और इतना स्वादिष्ट भोजन इतने कम दाम पर विकता है कि मैं एक दिन का विचार करके गया था और चार दिन ठहर चुकने के बाद भी चलने को मन न करता था। चार आने में वहाँ जितना राजसी भोजन मिलता है, उतना चालीस आने में भी दूसरी जगह नसीब नहीं हो सकता। कई तरह के मुरम्बे, कई प्रकार के अचार, तरह-तरह की खीर और बसौंधी, बीसों प्रकार की भाजी, क्रिस्म-क्रिस्म की दाल और कढ़ी, भात और रोटी और चाँदी-सोने के वस्त्रों से मढ़ी हुई पान की गिल्लौरियाँ प्रत्येक पत्तल की सामग्री थीं। रोदियों धी में डूबी हुई थी, तरकारियाँ खुशबू से बसी हुई थीं। फलों की बहार थी। चार पैसे में छिले छिलाए फलों के दोने यत्र-तत्र-सर्वत्र विक रहे थे। बात यह है कि सामान प्रतिदिन बहुत बनता है और खाने वाले कम रहते हैं। कोई पन्द्रह सौ रुपए रोज का भोग तो केवल श्रीनाथजी के मन्दिर में ही लगा करता है। वहाँ ऐसे-ऐसे और भी अनेक मन्दिर हैं, जिनके सम्मिलित भोग का मूल्य हजारों २० तक पहुँच जाता है। वहाँ एक यह भी नियम है कि जो भक्त एक बार ढाई-तीन सौ रुपए जमा कर देता है, वह ज़िन्दगी भर आराम से मन्दिर का प्रसाद पाया करता है। दूध और दही की तो यहाँ नदियाँ बहती हैं, बालाई मक्खन और रबड़ी की इफरात है। देश में एक ओर दरिद्रदेव अपने ताण्डव-नृत्य से बड़े-बड़े धैर्यवानों के हृदयों को भी कम्पित कर रहे हैं और दूसरी ओर दूध, दही और घी जल के मोल विक रहे हैं। बेकारी और भुखमरी के आप से आपित होकर जिस देश में शतशः युवक फाँसी लगा-लगा कर और घुल-घुल कर मर रहे हैं, उस देश के मन्दिरों में हजारों-लाखों रुपए रोज भोग और प्रसाद के नाम पर उड़ा करते हैं। कोटि-कोटि निर्धन भारतीयों के बच्चे, अपनी करुणापूर्ण आँखों में जल भर कर एक-एक टुकड़े के लिए फ़रियाद करते-करते अधमरे हो जाते हैं, पर गोसाइँयों और महन्तों के यहाँ रातदिन ऐशोद्भार के प्रौवारे छूटा करते हैं। अब इन महन्तों और मन्दिर के गोसाइँयों का जीवन कितना पवित्र, कितना सादा और कितना भगवद्भक्तिपूर्ण है,

पाठक इसका भी थोड़ा सा दिग्दर्शन आगे की पक्तियों में करें।

हम गोसाईँ जी के दर्शन करने गए। उनका नाम श्री श्री १०८ दामोदरलाल जी था। उम्र लगभग तीस साल, रङ्ग गोरा, बदन छरहरा और मुखड़ा सुन्दर। अङ्गरेज़ी कट के बालों से सुशोभित सिर, सोने की ठोस कुरसी पर, जो विलायती मज़मली गद्दे से मढ़ी हुई थी, आप विराजमान थे। शरीर पर बहुमुख्य रेशमी पोशाक थी और पैर में मूल्यवान 'पम्प शू'। जिस बड़े कमरे में आपका सिंहासन था, उसकी सारी ज़मीन पर सज़मरमर और सज़मूमा जड़ा हुआ था। सैकड़ों बेशक्रीमती फ़ाबों और फ़ानूसों से छत सजी हुई थी। कढ़े-आदम शीशो की क्रतारो से दीवारें ढकी हुई थी। मोतियों की झालरें लटक रही थीं। फर्श पर क्रीमती कालीन और गल्लीचे बिछे थे, जिन पर चाँदी, सोने और मीनाकारी की कुरसियाँ कई पक्तियों में रखी हुई थीं। कमरों में गौराङ्गी, कोमलाङ्गियों की नङ्गी तसवीरें लटक रही थीं। वही मालूम हुआ और यह आम तौर से प्रसिद्ध बात है कि गोसाईँ जी के नहाने का एक चाँदी का टब है, जिसमें बैठ कर आप अपनी सुन्दरी सलोनी भक्तियों से शरीर मलवाते हैं, देह पोछवाते हैं, गीली धोती खुलवाते हैं। ये ही अप्सरा सी सुन्दरियाँ उन्हें पीताम्बर भी धारण करवाती हैं। इन गोसाईँ जी महाराज के सम्बन्ध में हमें वहाँ के पण्डों ने बहुत सी बातें बताई थीं, जिनका उल्लेख निष्प्रयोजन है। क्योंकि दामोदरलाल जी जब से देहली की मशहूर वेश्या हंसाबाई को लेकर भागे हैं, तब से उनके कारनामे जग-जाहिर हो गए हैं। वे श्रीनाथद्वारा से कई लाख की सम्पत्ति लेकर भागे थे, उसके बाद नैनीताल और देहली में हसा के साथ खूब गुलज़रें उड़ाते रहे। हसा को लेकर वे श्रीनाथ जी भी गए थे, पर वहाँ प्रवेश न पा सके और विवश होकर लौट आए। सुना है, अब आप महन्त की गद्दी पर नहीं बैठ सकेंगे। श्रीनाथद्वारा के प्रबन्ध के लिए एक ट्रस्ट बन गया है, जिसमें कतिपय गण्य-मान्य गुजराती सज्जनों का सहयोग है। परन्तु दामोदरलाल जी गद्दी को अपनी बपौती समझे बैठे हैं और पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि हमीं उसके वास्तविक उत्तराधिकारी हैं और हम



मुकदमा लड़ कर अधिकार कायम करा सकने की क्षमता रखते हैं। आजकल आप अलमोडा ज़िले के रानीखेत नामक स्थान में हसा बीबी के साथ आनन्द कर रहे हैं। यह भी अफ़वाह है कि आप शीघ्र ही अपनी प्रेयसी के साथ विलायत की यात्रा करने वाले हैं।

धर्मान्ध हिन्दू जिन्हें धर्म का ठेकेदार और धर्मावतार समझते हैं, उनकी दशा कितनी पतित और पापपूर्ण है, पाठक इसी थोड़े से हाल को पढ़ कर अन्दाज़ा कर लें। पाप परदे के पीछे इन हिन्दुओं की जानकारी में होता रहता है और वे आगे की जगमग ज्योति में चौंधियाए रहते हैं। जहाँ धर्म के नाम पर अंधर्म होता हो, जहाँ तपस्वी जीवन के स्थान पर ऐयाशी की ज़िन्दगी बिताई जाती हो, जहाँ भोली मों-बहिनो के साथ व्यभिचार और बलात्कार होता हो, वहाँ के विषय में हिन्दू उन्मत्त सीन रहें, अज्ञानवाले मुकदमा चलाने के भय से कलम न उठावें, वक्तागण ज़बान से उज़्र भी न करें, यह कैसे

आश्चर्य और दुःख की बात है। ऐसे ही ऐसे स्थान सनातन-धर्म के गढ़ हैं, जहाँ करोड़ों की सम्पदा है और जहाँ उसका इतना दुरुपयोग है। हिन्दू-समाज की दानशैली भी विचित्र है। ज़रूरतमन्दों को, भुखमरो को, अनायासियों के मासूम बच्चों को, राष्ट्रीय सस्थाओं को और दीन-दुखी, असहाय अछूत वर्ग को दान देते इन्हें लाल आती है, इनका धर्म नष्ट होता है। परन्तु पण्डे-पण्डितों, चौबों और गोसाइयों के भरे हुए पेटों में “और और” भोक्ते रहने के लिए इनका भण्डार सदैव खुला रहता है।

अभागिनी हिन्दू जाति का विश्वास है कि इन्हीं पण्डे-पुजारियों के पास स्वर्ग के द्वार की चाबी रहती है। स्वर्ग पाने के लालच में फँसे हुए ये मूढ़ हिन्दू पण्डा समाज को दान-दक्षिणा के रूप में घूस देकर उनसे स्वर्ग का द्वार खुलवा लेना चाहते हैं। ‘विनाशकाले विपरीत बुद्धि !’

✱

✱

✱

निर्भर के प्रति

[श्री० हर्षवर्द्धन नैवाणी, बी० एस-सी०]

अय, सूनेपन के कोलाहल ।
निर्जनता के हाहाकार ।
अय, लघु धाराओं में अविरल
बहने वाले पारावार ।
अय, चट्टानों की चोटों को
सहने वाले कोमल प्राण ।
तरल उरो की उच्छ्वासों में
लुटने वाले पागल गान ।

अन्तरतम से आने वाले
अय, गिरि-कानन के उद्गार ।
किस प्रदेश की ओर बह रहे—
निष्फल रोदन के संसार ?
चुन-चुन कर कण-कण में बिखरे
कादम्बिनि के मुक्ताहार,
किसको अर्पण करने जाते
जीवन-पावस का उपहार ?

किन चरणों की सृति में निर्भर !
मस्तक तेरा नत रहता ?
गिरि से गिर कर किस पदरज का
चुम्बन करने को बहता ?





श्रीमती कमलाबाई
तिलक, एम० ए०—आप
अङ्गरेजी भाषा की
प्रोफेसर हैं और काशी-
विश्वविद्यालय के महिला-



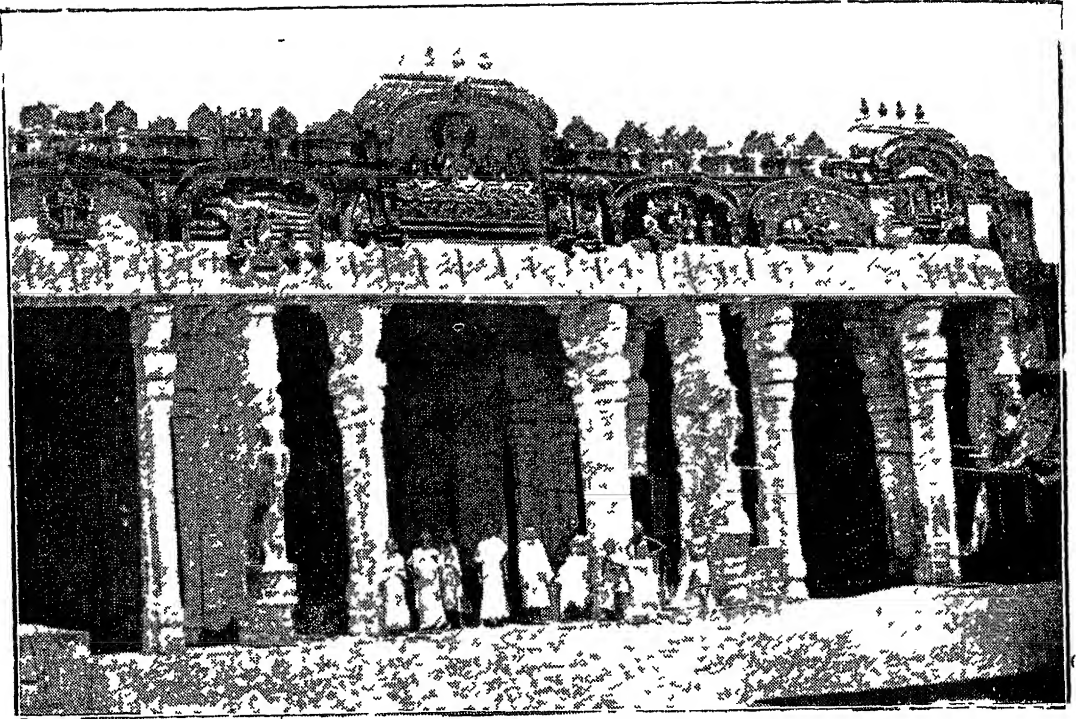
कॉलेज की प्रिन्सिपल
नियुक्त हुई हैं। आप उक्त
विश्वविद्यालय के सिखिङकेट
और सीनेट की प्रथम
महिला सदस्या भी हैं।



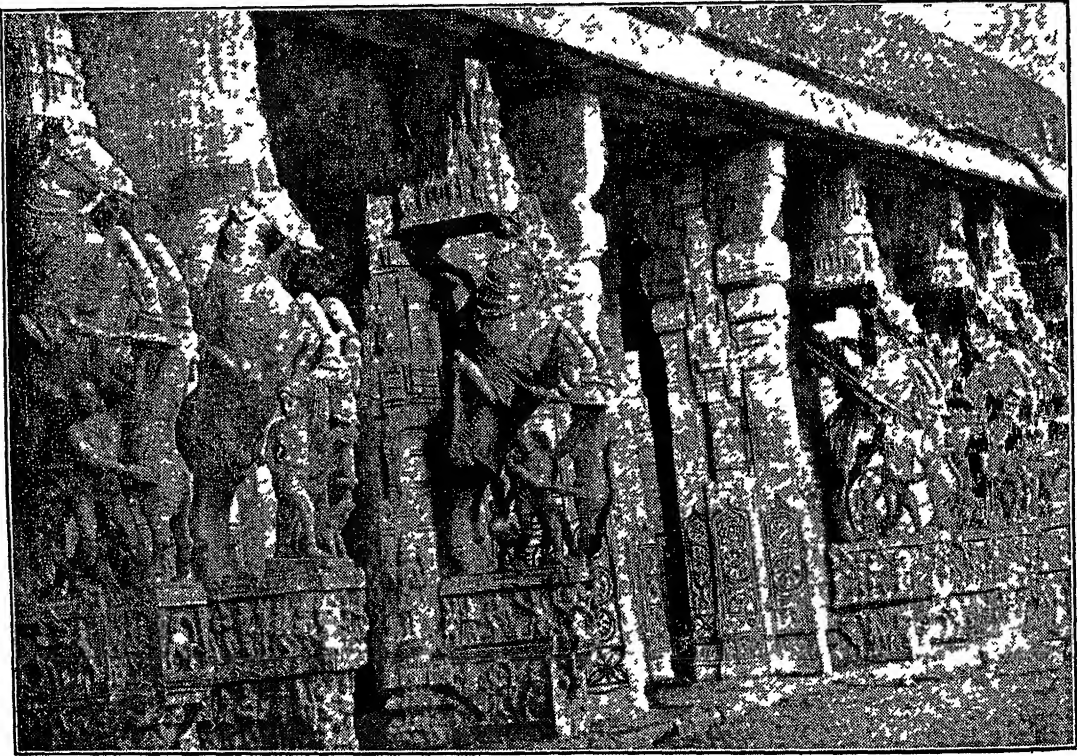
कुमारी शिवभागवती—यह बालिका बोहेरी (ज़िला
रायबरेली) के डॉ० शिवलाल जी दुवे की कन्या है।
इसने ९ वर्ष की उम्र में एंग्लो वर्नाक्युलर परीक्षा
द्वितीय श्रेणी में पास किया है।



श्रीमती रामेश्वरी देवी मिश्र—आप लखीमपुर-खीरी
की रहने वाली हैं। एक सुन्दर प्रबन्ध लिखने के लिए
यू० पी० पब्लिसिटी डिपार्टमेण्ट ने आपको 'लेडी हेल्थी
मेडिल' नाम का स्वर्णपदक प्रदान किया है।



श्रीरङ्गम् (मद्रास) के सुप्रसिद्ध श्रीरङ्गनाथ स्वामी के मन्दिर का एक भीतरी दृश्य ।



श्रीरङ्गम् (मद्रास) के श्रीरङ्गनाथ जी के मन्दिर के कुछ स्तम्भ—ये स्तम्भ और उन पर बनाई हुई मूर्तियाँ एक ही शिल्ला-खण्ड को काट कर बनी हैं । यह प्राचीन भारतीय मूर्ति-निर्माण कला का एक उज्ज्वल उदाहरण है ।



श्री० भगवानदास जी डागा, बी० ए० और श्रीमती गोदावरी देवी डागा—यह मारवाड़ी उम्पति जलपाईगुडी की रहने वाली है और समाज-सुधार सम्बन्धी कार्यों से विशेष प्रेम रखती है। श्रीमती जी ने परदे की प्रथा को टुकरा कर सत्साहस का परिचय दिया है।



श्रीमती जवाहरलाल—आप कानपुर के विख्यात डॉक्टर जवाहरलाल की धर्मपत्नी और कानपुर के हरिजन-सेवा-सङ्घ के महिला-विभाग की प्रधाना हैं।



श्रीमती कमलेश्वरी देवी, मुज़फ़्फ़रपुर—आप हैहय क्षत्रिय-कुल की एक विदुषी महिला हैं। आपने हरिजन-बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा के लिए एक निःशुल्क विद्यालय स्थापित किया है।



दिल्ली का अन्तिम मुगल बादशाह—
बहादुरशाह 'जफ़र' (राजवेश में)



दिल्ली के अन्तिम मुगल-सम्राट् बहादुरशाह 'जफ़र' रङ्गून में अन्तिम साँस ले रहे हैं ।
यह उनका असली अन्तिम चित्र है, जो उनकी मृत्यु के समय लिया गया था ।
विशेष विवरण "दिल्ली की अन्तिम ज्योति" शीर्षक लेख में अन्यत्र पढ़िए !

स्वामी बीखटानन्द

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

२



प्रे

म तू एक अजीब ही चीज़ है। जब से दुनिया कायम है, तब से लोग तेरे पीछे पड़े हैं। तेरी अमलियत जानने के लिए करोड़ों कवि, औपन्यासिक और नाटककारों ने न जाने क्या-क्या न कर डाला।

तेरे किस्से अनगिनतियों तरह से कहे गए और रोज़ कहे जा रहे हैं, और ईश्वर जाने और कितने उज्जों से कहे जायेंगे। मगर वाह रे प्रेम! तुझमें कौन सी बात है कि कभी तबियत ऊबने नहीं देता। इसका पता आज तक न चला। ज़ैर, खुदा सलामत रखे हमारे स्वामी जी को। बिना इसके रहस्य का उद्घाटन किए वे इसकी जान छोड़ने वाले असामी नहीं हैं। चचा के डण्डे ने इनके बदन का कचूर भले ही निकाल डाला, मगर साहित्य के सौभाग्य से उनका दिल साफ़ बच गया और उसके साथ मुहब्बत के बलबले भी।

घर में पिट जाने के कारण आपने घर के भीतर जाना ही छोड़ दिया। बैठक में बसेरा डाला और वही 'सीधा' मँगवा कर अपना भोजन बनाने लगे। घर के लोगों ने भी इन पर भूतों की सवारी जान कर इनसे दूर ही दूर रहने में अपनी भलाई समझी। स्वामी जी के मिजाज की गर्मी तो एक ही दिन में उतर गई, मगर उसके बाद चढ़ी दिल की गर्मी और मिला एकान्त-वास। ज़्यालात ने घुड़दौड़ मचा दी। प्रेम करने के नए-नए ढङ्ग सुझाई पड़ने लगे। अल पता चला कि प्रेम करने में ज़रा जल्दीबाज़ी हो गई। पहिले छेड़-छाड़ करना चाहिए, तब आहें भरना। हम एक सीढ़ी बेलाग उच्चक गए, इसी से गड़बड़ाधाय हो गया।

८

खी अच्छी थी या बुरी, मगर इनके प्रेम के लिए थी बेचारी वही एकमात्र प्रेमिका। सब ज़्यालात इनको विवश होकर उसी पर उडेलना पड़ता था। इधर नए तरीकों ने इनके दिमाग में घुस कर अपने प्रयोग के लिए ऐसा ऊधम मचाना शुरू किया कि स्वामी जी अब खी से मिलने को बेताब होने लगे। और उधर भीतर का आना-जाना बन्द। उसके पास जायें तो कैसे जायें? इस वृत्त में इनकी व्यग्रता और बढ़ गई। लगे "हाय-हाय" करने। आपने समझा कि बस हम अब प्रेम में पूरे तौर से पड़ गए। फिर क्या था, चारपाई पर पड़े-पड़े कभी हन्दर सभा गाते, कभी करवटे बदलते, कभी तारे गिनते और कभी सर धुनते। गरजे कि सब वही बातें करते, जो प्रेमियों को भेलनी पड़ती हैं। दिल को यों ममकाते, बल्कि इसे सच समझने की कोशिश करते कि वह निर्दयी हमसे बिगड़ गई है और उसे देखे बरसों गुज़र गए हैं। देखे उसके वियोग में मरते हैं या बूझते हैं।

इस 'हाय-हू' में दो-चार कविताएँ भी आप से आप बन गईं। बाछें खिल पड़ीं। विश्वास होगया कि प्रेम सचमुच ज़ोर किए हुए है, तभी साहित्य का भाग्य जागा है। इसी जोश में चार-पाँच कविताएँ और गढ़ डाली। यह और सुसीधत हुई। अब इन कविताओं के सुनने की व्याकुलता दिल में समाई। बाहर अपने कोठे की खिड़की की ओर मुँह करके दिन-दिन भर टहलने और अपनी कविताओं को गा-गाकर पढ़ने का प्रोग्राम बन गया। मगर इनकी खी ने एक दफा भी खिड़की से बाहर सर निकाल कर नहीं झाँका। हालाँकि कविताओं के बीच-बीच में ज़ोर-ज़ोर से खोंसना, डिकारना सब कुछ जारी रहता था। इधर दो दिन से इनके चाचा की आँखें बुरी तरह उठी हुई थीं। फिर भी इनकी यह क़वायद उनकी निगाहों से छिपी न रही। मगर वे

इसे भूत ही की काररवाई जान कर रह गए और दिल में ठान लिया कि आँखें अच्छी होने पर इसकी फ़िक्र करूँगा।

मगर स्वामी जी को ख़ाली कविताएँ पढ़ने से सन्तोष न हुआ। दिल में यह शक़ बना ही रहा कि शायद श्रीमती जी के कानों तक आवाज़ न पहुँची हो या अगर उन्होंने सुन भी लिया हो तो शायद उनके माने ठीक समझ न पाये हों। इसलिए आपने उन कविताओं को अन्वय समेत लिख डाला। फिर भी जी न भरी। तब आप टीका-टिप्पणी, भावार्थ सब कुछ घसीट गए। अब समस्या कठिन पड़ गई। यह प्रेम की सामग्री स्त्री के पास कैसे पहुँचाई जाए? डाक से भेजने में कई दिन की देर लगती थी और दस्तौ भेजने में न जाने क्यों दिल हिचकता था।

इन दिनों शीशे में बार-बार मुँह देखना भी बढ़ गया था। इसलिए शीशा हाथ में लिए आप इस मसले पर ग़ौर कर रहे थे कि यकायक सूर्य की किरण शीशे में चमक कर दीवाल पर पड़ी। आप उछल पड़े कि छेड़छाड़ करने की क्या मज़े की तारबक्की हाथ लग गई। पास जाने की ज़रूरत नहीं। दूर ही दूर से छेड़-छाड़ कर लीजिए और तारीफ़ यह कि ईश्वर तक को ख़बर न हो। बस आप अपने कोठे की खुली खिड़की पर रह-रह कर आइने की चमक फेंकने लगे। समझे हुए थे कि कभी तो इस पर श्रीमती जी की नज़र पड़ेगी और तब यह छेड़-छाड़ अपना कुछ न कुछ ज़रूर ही रज़ लाएगी। वह भुग्ध होकर फिर बिना झॉके नहीं रह सकती। बैसे ही बन्दे ने छिप कर उनके पास अपनी टीका-सहित कविताओं को फेंका और उधर क़िला फ़तेह हुआ। क्योंकि इस दफ़्ता प्रेम का धार क़ायदे-क़ानून से बिल्कुल दुरस्त होने के कारण कभी ख़ाली नहीं जा सकता। बेशक़। मगर सोची हुई बात हो तब तो!

ऊपर का कमरा एक तो योंही अँधेरा था, उस पर बाहर धूप में से देखने से और भी अँधेरा मालूम होता था। स्वामी जी को मुहल्ले वालों की नज़र बचा-बचा कर कई बार खिड़की पर चमक डालने के बाद पता चला कि हो न हो, कोठे पर श्रीमती जी हैं। अब किसी तरह सन्न न हो सका। बिना इसका इन्तज़ार किए कि श्रीमती जी झॉकने आती हैं या नहीं, आपने अपनी कविताओं को उनकी ओर ख़ाना कर दिया। मगर

हाथ से फेंका हुआ कागज़ अपने ठिकाने पर पहुँचने के बदले बीच ही से अपना मुँह लेकर लौट आया। किसी प्रकार भी दो-चार हाथ से आगे जा नहीं पाता था। तब स्वामी जी ने उसे एक बड़े से ढेले में लपेटा और किच-किचा कर फेंका।

वहाँ काकाराम मुँह लपेटे पड़े हुए थे। क्योंकि दोपहर को उनकी उठी हुई आँखों को कुछ आराम नहीं मिलता था। कविताएँ तो बाहर ही उड़ गईं, मगर ठेला जाकर तडाक से उनकी खोपड़ी में लगा। बेचारे भिन्ना कर उठ बैठे और किटकिटा कर खिड़की की ओर झॉकने लपके। वैसे ही उनकी चिमची आँखों में शीशे की चमक मिचें की तरह लगी। अब तब कहाँ? काकाराम भंग-घोटना लिए दन से उत्तर पड़े और स्वामी जी का भूत उतारने लगे। ३

बुरा हो इस मुहब्बत का। शुरू ही में चाँद ग़ज़ी हो गई। आगे का हाल तो ईश्वर ही जाने। मगर शाबाशी है स्वामी जी की हिम्मत की। जूते पढ़ें, ढखड़े पढ़ें, हड्डी-पसली टूटे, कुछ परवाह नहीं। मुहब्बत का दम भरते रहेंगे। पिछड़ने वाले और ही कोई होंगे। अगर अपनी स्त्री प्रेम करने क़ाबिल नहीं है तो न सही। हम और जगह प्रेम करेंगे। कहीं तो इसकी क़दर करने वाली मिलेगी। चाहे कोई इसको बुरा समझे या भला, मगर 'मिशन' भी तो देखना चाहिए कितना आला है। एकदम साहित्य का सुधार। हाँ, अगर अपने लिए प्रेम करना होता तो अलबत्ता वह बुरा कहा जा सकता था। मगर यहाँ तो मामूला ही दूसरा है। यों मैला ढोना सभी बुरा समझते हैं, मगर उत्तम पैदावार के लिए खाद उठाने में कोई बुराई नहीं है। उसी तरह हमारे भी अन्य जगह प्रेम करने में कोई बुराई नहीं हो सकती। क्योंकि हमारा भी उद्देश्य तो वैसा ही है यानी साहित्य की खेती की उत्तम पैदावार। अगर हमारी स्त्री हमारा कुछ साथ नहीं दे सकती तो इसमें हमारा दोष क्या? वह प्रेम का आदर करना क्या जाने? अगर जानती तो हमारी इतनी दुर्गति क्यों होती? 'भैंस के आगे बीन बजाए, भैंस खड़ी पगुराए'। तब ऐसी भैंस जाए अपनी ऐसी-मैसी में।

यही सोचते-सोचते स्वामी जी एक दिन अपने गाँव के रेलवे स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर आ धमके। तीन

गाडियों का मिलान था। एक ट्रेन के तीसरे दर्जे में स्वामी जी ने एक अच्छी सूरत देखी। तबियत फडक उठी। फ़ौरन ताड़ लिया कि यह है प्रेम के क्राविल। बस दौड़े टिकट लेने और भट जेब से चवन्नी निकाल कर लगे टिकट बाबू की जान खाने।

“बाबू जी, बाबू जी, एक चार आने का जल्दी से टिकट तो दे दीजिए।”

“अरे भलेमानस कहाँ जावेगा ?”

“कहाँ जाँवेंगे, आप से मतलब ? गाड़ी छूट रही है। जल्दी टिकट दो। चार आने का। हाँ, चार आने का। समझे ?”

“टिकट न हुआ कोई सौदा हुआ कि तराजू से तौल दूँ ? अरे भ्याँ ! कहाँ का टिकट दूँ ? किसी स्टेशन का नाम भी तो बताओ !”

“नाम कैसे बताएँ, क्या टाइमटेबिल रटे हुए हैं ? बाबा चवन्नी लो और टिकट दो जहाँ तक का मिले।”

“यह कहिए।”

झैर, टिकट लेकर आप सीधे उसी गाड़ी की तरफ लपके, जिसमें वह अच्छी सूरत देखी थी, और दरवाज़ा खोल कर उसमें घुसने लगे। अन्दर मज़मून खचाखच था। मुसाफ़िरों ने वह कोहराम मचाया कि कुछ न पूछिए। मगर स्वामी जी ने न माना। घुसते ही गए। पहले ज़बानी लड़ाई हुई। गाली-गलौज के साथ-साथ धक्कमधक्का शुरू हो गया। फिर हाथापाई की नौबत आई। चलिप चपतबाज़ी होने लगी। झैर, पिटते-पिटाते दाख़िल हो ही गए। मगर बैठने को जगह न मिली। आदमी थे अज़लमन्द। सोचा कि मारपीट के जारी रहने में ही अच्छाई है। इससे बढ़ कर अपनी मर्दानगी दिखा कर प्यारी को अपने ऊपर मोहित करने का दूसरा मौक़ा हो नहीं सकता। इसलिए बैठने की जगह करने के लिए आपने सामने वाले आदमी पर दन से हाथ चला दिया। उसने इन्हें कस के धौल दिया। फिर तो कुटम्बस ज़रा गर्म हो गई। जूतियाँ निकाल कर दोनों पिल पड़े और सब हट के तमाशा देखने लगे। किसी ने छुड़ाने का नाम नहीं लिया। गाड़ी अभी तक छूटी नहीं थी। इस दज़ा-फ़साद का शोरगुल सुन कर गार्ड आ गया। उसने इन लोगों को डाँट-डपट कर अलग किया और टिकट देखने लगा। स्वामी जी का टिकट देखते ही बोला—

“तुम कहाँ इस गाड़ी में ? उतरो उतरो। तुम्हारी गाड़ी यह नहीं है।”

स्वामी जी—हम तो इसी में जाँवेंगे। इसी के लिए टिकट लिया है।

गार्ड - ओ डैम, बज़ाडी फ़ूल ! उतरो !

स्वामी जी गर्दन में हाथ ढाल कर उतार दिए गए। वे फिर लपके। मगर उसने ठोकर दिखाई। इतने में गाड़ी छूट गई।

स्वामी जी - अरे ! छूट गई ! हाय ! हाय ! सब मर्दानगी बेकार गई।

स्वामी जी बदहवास इधर-उधर घूमने लगे। कुछ मसज़रे इनकी दुम के पीछे होगए। पूछा—“झैरियत तो है ? क्या हुआ क्या ?” आपने जल्दी में कहा—“टिकट बाबू ने टिकट ख़राब दे दिया।” “देखें-देखें कैसा टिकट है।” एक ने देख-भाल कर कहा—“ओहो ! यह तो ज़नानी गाड़ी का टिकट है।” “क्या ?” “हाँ-हाँ, इसको बदल लाइए, कहिए मर्दानी गाड़ी का टिकट दो।”

स्वामी जी की चाँद अभी तक गर्म थी। प्यारी के हाथ से निकल जाने का गम और परेशान किए हुए था। कोई बात ठीक समझ में नहीं आती थी। लोगों के बहकावे में पड़ गए। बस अगिया-बैताल बने टिकट-घर की खिड़की पर पहुँच ही तो गए।

“क्यों जी, तुम भले मानुसों से दिख़लगी करते हो ? तुमने क्या सोचा, जो मुझे ज़नानी गाड़ी का टिकट दे दिया ?”

“ज़नानी गाड़ी का टिकट ?”—कह कर टिकट बाबू चकराए, फिर हँस पड़े।

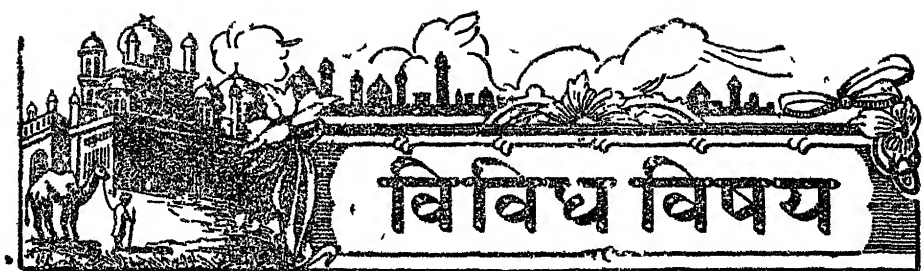
“हाँ-हाँ, ज़नानी गाड़ी का टिकट। खी खी खी खी, क्या करते हो। क्या तुम्हारी आँखें फूट गई थीं ? क्या मैं कोई औरत था ? तुमने मर्दानी गाड़ी का टिकट क्यों नहीं दिया ? हम उतार दिए गए। हमारा हज़ाँ कौन देगा × × ×”

तब तक झल्ला कर टिकट बाबू ने खिड़की का द्वार धड़ से बन्द कर दिया। बेचारे ने मुफ़्त में जूतियाँ की जूतियाँ खाईं और चवन्नी भी वापस न मिली। हव तेरे प्रेम की !”

(क्रमशः)

(Copyright)





संयुक्त-प्रान्त में कपास की खेती

भारतवर्ष में लगभग १ करोड़ ८० लाख एकड़ भूमि पर कपास की खेती होती है, जिसमें से संयुक्त-प्रान्त १ लाख एकड़ का सहारा देता है। संसार का प्रति वर्ष रुई का खर्च १११ करोड़ गाँठों के लगभग है, जिसमें ६० लाख गाँठें भारतवर्ष की ही होती हैं। अतः संसार की रुई की आवश्यकता की पूर्ति में भारतवर्ष का एक विशेष स्थान है। परन्तु अधिकांश भारतीय कपासों के रेशे कड़े और छोटे होते हैं, जिससे केवल ५-७ नम्बर तक का सूत ही काता जा सकता है। इस मोटे सूत से केवल खादी और गाढ़ा आदि मोटे कपड़े ही बन सकते हैं। भारतीय कपास की मज़बूती ही इसकी एक विशेषता है और इसी कारण विदेशी मिल वाले भारतीय कपास खरीदते हैं, जिसे वे अपने यहाँ की कमज़ोर कपास में मिला कर मज़बूत सूत तैयार करते हैं।

संयुक्त-प्रान्त में तो लम्बे रेशे वाली कपास का सर्वदा अभाव है। भदोंच की कपास से ११-२० नम्बर तक का सूत काता जा सकता है। बरार और पञ्जाब आदि प्रान्तों की कपास का रेशा बीच के मेल का सा है। अर्थात् न अधिक बड़ा और न बहुत छोटा। भारतवर्ष की सब सूती मिलों में १९२४-२५ से १९२६-२७ तक जो सूत काता गया था, उसका ५० प्रतिशत ११ से २० नम्बर तक का था। उन्हीं वर्षों में संयुक्त-प्रान्त की सूती मिलों ने कुल सूत का ७५ प्रतिशत वैसा ही सूत बनाया था। इससे विदित होता है कि संयुक्त-प्रान्त की सूती मिलों को अच्छा सूत बनाने के लिए अपने कच्चे माल (Raw material) अथवा रुई का ७२ प्रतिशत प्रान्त के बाहर से मँगाना पड़ता है। अब तो समय और भी पलट गया है और भारत में अधिकतर स्वदेशी बख

ही पहिने जाने लगे हैं। आजकल जब कि प्रत्येक भारत-वासी स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का व्रत ले चुका है, संयुक्त-प्रान्त को अपने कपास की उत्तमता बढ़ा कर अच्छे वस्त्रों के योग्य रुई पैदा करके लाभ उठाना चाहिए।

भारतवर्ष को बारीक कपड़ों के लिए प्रतिवर्ष बहुत सा रुपया विदेशों को भेजना पड़ता है। १९२६-२७ में भारत ने ४६७ करोड़ रुपए का कच्चा माल भेज कर बाहर से ३२ करोड़ रुपए का बना हुआ कपड़ा मँगाया था। यदि देश में अपनी गुज़र लायक लम्बे और मुलायम रेशे वाली कपास पैदा की जा सके, तो देश के धन का हटना बड़ा भाग देश में ही बना रहे।

कृषि-विभाग द्वारा संयुक्त प्रान्त में समय-समय पर बढ़िया रेशेवाली कपासों की खोज और प्रचार होता रहा है, परन्तु ये आन्दोलन सफल न हो सके। संयुक्त-प्रान्त के वैज्ञानिक अमेरिकन कपास को ही यहाँ के जल-वायु आदि के अनुकूल बनाने की चेष्टा कर रहे थे। अमेरिकन कपास से ३०-३५ नम्बर का सूत काता जा सकता है। दुर्भाग्यवश हमारे वैज्ञानिक इसमें सफल न हुए और अमेरिकन कपास के स्वभाव को संयुक्तप्रान्त की तकलीफों के सहने योग्य न बना सके और अन्त में उन्हें अपना प्रयोग अधूरा ही छोड़ना पड़ा और १८७२ ई० में यह निश्चित हो गया कि विदेशी कपासों का भारतवर्ष में बोया जाना सम्भव नहीं।

इसके पश्चात् संयुक्त-प्रान्त में केवल 'छुटाव' का काम ही रह गया और उसी के फल-स्वरूप अलीगढ़ की सफेद फूलवाली कपास अथवा 'ए-१६', 'जालौन नं० १', 'कलाई नं० २२' आदि अभी तक प्रचलित हैं। इन सब कपासों का रेशा कड़ा तथा छोटा है और सुरिकल से ४-६ नम्बर का सूत तैयार हो सकता है। परन्तु इनकी पैदावार अच्छी है और संयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी जिलों में किसानों ने इनको खूब पसन्द किया है।



हाल ही में कृषि-विभाग ने कुछ किस्मों की कपासों को जन्म दिया है, जिनका रेशा देशी कपासों से अपेक्षाकृत अच्छा है। उनमें से 'सी० नम्बर ४०२' श्रेष्ठ है और उससे १८ से २२ नम्बर तक का सूत तैयार किया जा सकता है। रुई भी कपास की ४० प्रतिशत निकल आती है। एक कपास 'सी० नम्बर ४२०' है, जिससे १०-१२ नम्बर का सूत काता जा सकता है। यह द्वितीय श्रेणी की है और पश्चिमी ज़िलों में अपना घर बनाती जा रही है। उक्त कपास की किस्में आसाम और देशी कपासों के सङ्कर (Cross) करने के पश्चात् निकाली गई है और संयुक्त-प्रान्त में लम्बे रेशे वाली कपास के अभाव की कुछ अंशों तक पूर्ति करती हैं।

'सी० ४०२' कपास के विषय में कानपुर की प्रसिद्ध जुगगीलाल कमलापति कॉटन मिल के डाइरेक्टर ने कहा है कि 'सी० ४०२' कपास का रेशा हमारे काम के लिए अति उत्तम है और इसे 'पञ्जाब-अमेरिकन' कपास के स्थान पर आसानी से व्यवहार किया जा सकता है।

जापान भारतवर्ष की लगभग आधी कपास का ग्राहक है। परन्तु उसकी माँग भी लम्बे रेशे वाली कपासों के लिए ही अधिक है।

लम्बे रेशे वाली कपास अधिकतर देर में पकने वाली होती है। अतएव उसे अधिक समय देने के विचार से पलेवा करके वर्षा से पहले ही बोना पड़ता है। आजकल हम संयुक्त-प्रान्त के एक बड़े भाग पर छोटे रेशेवाली कपासों को भी पलेवा करके बोते हुए पाते हैं। यदि उसी स्थान पर 'सी० ४०२' बोई जाय तो उसी खर्च में अधिक लाभ की आशा की जा सकती है।

प्रत्यक्ष में लम्बे रेशेवाली कपासों की उपज वर्तमान छोटे रेशेवाली कपासों से कम होती है। परन्तु उनके मूल्य में इतना अन्तर होता है कि लम्बे रेशेवाली 'सी० ४०२' कपास के बोने वालों को ही अधिक लाभ रहता है, जैसा कि पाठक निम्नलिखित राया फार्म (मथुरा) पर किए गए प्रयोग से देखेंगे :—

कपास 'सी० ४०२' का चिट्ठा

आमदनी	
एक एकड़ में ८ मन ३७ सेर कपास पैदा हुई थी, जिसमें २८८॥ पौण्ड रुई का मूल्य ३८॥॥ प्रति १०० पौण्ड के हिसाब से—	११२२॥॥
(रुई कपास की ३६-४ प्रतिशत निकली) ४४३ पौण्ड बिनौलों का मूल्य एक रुपया के १६ पौण्ड के हिसाब से—	२७॥३॥॥
कुल आय	१३९॥॥॥
खर्च काट कर आय	११०॥॥॥

कपास 'ए० १९' का चिट्ठा

आमदनी	
एक एकड़ में १० मन ६ सेर कपास पैदा हुई थी। जिसमें ३२४ पौण्ड रुई का मूल्य ३१॥ प्रति १०० पौण्ड के हिसाब से—	१००॥३॥
(रुई कपास की ४० प्रतिशत निकली) ५०८ पौण्ड बिनौलों का मूल्य एक रुपया के १६ पौण्ड के हिसाब से—	३१॥॥॥
कुल आय	१३२॥॥॥
खर्च काट कर, आय	१००॥॥॥

खर्च	
कपास-बिनाई एक पैसा पौण्ड के हिसाब से ७३२ पौण्ड की	११॥३॥
ओटाई (रुई निकलवाना)	१०॥१॥॥
गाँठ बँधवाई	४॥॥
रावतपुर (कानपुर) का किराया	२॥॥॥
जोड़	२८॥॥॥॥

खर्च	
कपास-बिनाई एक पैसा पौण्ड के हिसाब से ८३२ पौण्ड की	१३॥
ओटाई	१०॥३॥
गाँठ बँधवाई	४॥॥
रावतपुर (कानपुर) का किराया	२॥॥॥
जोड़	३१॥॥॥

‘सी० ४०२’ से १०२॥ प्रति एकड़ अधिक प्राप्त हुए ।

उपरोक्त तालिका से पाठकों ने देख लिया कि ‘सी० ४०२’ की उपज प्रति एकड़ कम होते हुए भी ‘ए० १९’ की अपेक्षा लाभ रहा । अतः बोस की कमी को कपास की उत्तमता ने पूर्ण कर दिया ।

मथुरा प्रान्त के किसानों को ‘सी० ४०२’ कपास का मुख्य और कपासों की अपेक्षा अधिक मिला था । प्रान्तीय कृषि-विभाग ने उक्त किसानों का कपास खरीद कर और रुई निकलवा कर बम्बई की एक मिल के हाथ बेचा था, जिसके फल-स्वरूप किसानों को २५ प्रति मन अधिक मिला ।

कपास के एक विशेषज्ञ का कहना है कि—“कपास की पैदावार का, अच्छी किसम के बीज होने के कारण से ही, अधिक होना निश्चित नहीं है, किन्तु अच्छी मेहनत और अनुकूल व्यवस्थाओं के साधन अच्छी उपज के लिए नितान्त ही आवश्यक हैं ।”

उपर्युक्त कथनानुसार इस स्थान पर कपास की खेती की विधि के विषय में कुछ चर्चा कर देना अप्रासङ्गिक न होगा ।

कपास बोए जाने वाले खेत को रबी की फसल के कट जाने पर किसी मिट्टी पलटने वाले हल से गहरा जोत कर धूप खाने के लिए छोड़ देना चाहिए । लम्बी रेखावाली कपास मई मास में ही बोई जाती है, अतः उसके उगने के लिए पलेवा करके ही बोना आवश्यक होता है । पलेवा के बाद एक जुताई देशी हल से की जाती है और भूमि को समतल करने के लिए पाटे का व्यवहार किया जाता है । जुवाई लाइनों अथवा कतारों में दो-ढाई फीट की दूरी पर करनी ठीक है । बीज लगभग ८ अथवा ९ सेर प्रति एकड़ काफ़ी होगा । कपास की फसल में किसी प्रकार के खाद का व्यवहार नहीं किया जाता । परन्तु उसके पूर्व अथवा पहिले की फसल में गोबर का दिया हुआ खाद कपास के लिए पर्याप्त होता है । सीधे कपास के खेत में खाद डालने से पत्ते आदि अधिक निकल आते हैं और कपास की पैदावार कम होती है ।

बीजों की, बोने से पहले भली-भाँति परीक्षा कर लेनी आवश्यक है । अच्छे उपजने वाले और बिना टूटे-

फूटे बीज ही बोने योग्य होते हैं । बोने से पहले बीजों को कड़ी धूप में ३-४ घण्टे अवश्य सुखा लेना चाहिए । ऐसा करने से उनके अन्दर के गुलाबी कीड़े (Pink boll worms) मर जाते हैं । यह काम गर्मी की तेज़ धूप में ही किसी दिन करना उचित है ।

कपास के उग आने पर खेत में खुरपी से निराई कर देनी आवश्यक है । ऐसा करने से सब घास-फूस दूर हो जाती है और पौधे सुगमतापूर्वक बढ़ सकते हैं । जब पौधे एक फुट ऊँचे बढ़ जायें, तब उनकी दूरी एक फुट रखने के लिए बीच के अनावश्यक पौधों को उखाड़ कर फेंक देना चाहिए । ऐसा करने से पौधों को बढ़ने के लिए पर्याप्त जगह मिल जाती है । इन पौधों के सिरे यदि इसी समय तोड़ दिए जायें तो वे चारों ओर खूब फैलते हैं, जिससे कपास अधिक मात्रा में मिल सकती है ।

लाइनों के बीच में कभी-कभी ‘कस्टीवेटर’ का प्रयोग करते रहने से बार-बार निराई का खर्च कम हो जाता है । जब पौधे अधिक बढ़ जायें, तब देशी हल की जुताई बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई है । यदि वर्षा कम हो तो कभी-कभी बीच-बीच में एक अथवा दो सिंचाई दे देनी पड़ती है, अन्यथा अच्छी वर्षा वाले स्थानों में पीछे की सिंचाइयों की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

‘सी० ४०२’ तथा और जल्दी पकने वाली कपासों से अगस्त अथवा सितम्बर में ही कपास मिलनी प्रारम्भ हो जाती है । अच्छी कपास के साथ पीली अथवा और किसी भाँति नष्ट की हुई कपास को नहीं मिलाना चाहिए, इससे अच्छा मूल्य नहीं मिलता । ‘सी० ४०२’ नम्बर की कपास जब तक बड़े-बड़े क्षेत्रों में न बोई जाय, तब तक इससे लाभ की आशा नहीं की जा सकती । क्योंकि थोड़े माल को मिल वाले नहीं खरीद सकते और मामूली व्यापारी उसकी क़द्र नहीं कर सकते ।

कपास की फसल में अन्य फसलों की भाँति कुछ शत्रु भी पैदा हो जाते हैं । नीची जगहों में पानी के भर जाने के कारण पौधे सड़ जाते हैं और उसी समय ‘फफूंदन’ (Fungus) की बीमारी भी पौधों को सुखा देती है । लगातार वर्षा से फूल और कपास के गुलर (Cotton Bolls) रुद्ध जाते हैं । कई भाँति के कीड़े भी कपास को भयङ्कर हानि पहुँचाते हैं ।



उन्नति-प्राप्त कपासों (Improved Cottons) को एक ही चक (Block) में बोना आवश्यक है, क्योंकि कपास के फूलों में पराग आसानी से (Cross Pollination) एक दूसरे फूल पर पहुँच कर कपास की नस्ल की उत्तमता को नष्ट कर देते हैं।

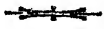
—कुँवर ब्रजेन्द्रप्रसाद पालीवाल,
बी० एस्-सी०, विशारद

❁

❁

❁

गृह-कलह



गत जून सन् १९३१ के 'चाँद' में हमने इस विषय पर, इसी शीर्षक में कुछ लिखा था। जैसा कि हमने उस लेख में लिख दिया था, वह लेख अपूर्ण था तथा उसमें विषय के कई पहलुओं पर विचार करना शेष रह गया था। इस लेख द्वारा तद्विषयक अपने अवशिष्ट सम्पूर्ण विचारों को प्रकट करने की चेष्टा की गई है।

खेद है कि सयुक्त हिन्दू-परिवार के इतिहास में गृह-कलह उतना ही पुराना है, जितना कि संयुक्त हिन्दू-परिवार। कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्या का अभाव ही इसका मुख्य कारण है। सम्भव है, सयुक्त परिवार के पुरुष-वर्ग में पारस्परिक कलह पुरुषों की मूर्खता के कारण न हो। बहुधा कुटुम्ब की आर्थिक स्थिति एवं व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण भी पुरुषों में मतभेद हो जाता है। परन्तु स्त्रियों में कलह केवल मूर्खता के कारण ही होता है। क्योंकि आर्थिक चिन्ता का भार उन पर नहीं है।

सूचसुच स्त्रियों का पारस्परिक कलह बड़ा ही भयानक है। यह कलह साधारणतः दो प्रकार का है—(१) सास और ननद का बहुओं से तथा (२) बहुओं का आपस में।

वस्तुतः आजकल की सासों पुराने ज़माने की ही स्त्रियाँ होती हैं। उन्होंने उस काल में जीवन की उन अनेक सुविधाओं का उपभोग नहीं किया था, जो आजकल की बहुओं को सुलभ हैं। उनका जीवन निश्चय ही अधिक कठिनातापूर्वक व्यतीत हुआ है। बस, उनको एक यही कारण दुखी होने और बहुओं से ईर्ष्या करने

का हो जाता है। जीवन की अनेक सुविधाओं से स्वयं लाभान्वित होने और अपने बच्चों को सुखी होते देख कर एक स्त्री को प्रसन्न होना चाहिए, परन्तु वह प्रसन्न तो तब हो, जब कि उसमें इस बात के समझने की बुद्धि हो।

बहुधा सास अपनी लड़की को बहु की अपेक्षा अधिक प्यार करती है। उससे अपने भेद कहती तथा बहु के विरुद्ध गुप्त परामर्श करती है। सास का साधारणतया यह खयाल होता है कि बहु तो दूसरे की बेटी है और इसने आकर मेरे लड़के को अपने वश में कर लिया है। मेरा पुत्र पहले मुझसे अच्छी तरह बोलता था, मेरी सेवा-सुश्रूषा करता था। परन्तु जब से यह आई है, वह मुझे भूल गया है, आदि। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये विचार भ्रममूलक हैं। पुत्र द्वारा बहु की आरोग्यता आदि का ध्यान रखने से ईर्ष्यावश ऐसे विचार उत्पन्न हो जाते हैं।

सासों का बहुओं के प्रति दुर्व्यवहार अनेक प्रकार से होता है। जैसे, ताना देना, बहुओं के माँ-बापों को कोसना, जो कुछ उनके पिता के घर से आया हो उसे कुछ न समझना, बहुओं के प्रत्येक कार्य में नुकतावीनी करना, अपने लड़के-लड़कियों के मुक्ताबले उनकी बेकदरी करना, प्रत्येक मामले में दुर्भात करना, उनको अच्छा खाना न देना अर्थात् जूठन और बासी आहार ही भोजन के लिए दिया जाना, उनको कोई वस्तु, वस्त्र अथवा आभूषण बनवाना या मँगाना तो उसका चौबीसों घण्टे जिक्र रखना तथा अहसान करना, चाहे बहु ने कैसा भी होशियारी अथवा बुद्धिमानी का काम क्यों न किया हो, उसकी कभी प्रशंसा न करना, उसका हृदय सदैव वाग्वाणो के प्रहार से बेधित रखना, काम काज का बोझ उस पर एकदम से जाद देना, सम्पन्न होते हुए भी गृहस्थी का कार्य करने के निमित्त सेवक-सेविकाएँ न रख कर बहुओं से ही काम लेना आदि।

सासों के इन अत्याचारों में उनकी सहायक होती हैं, उनकी लड़कियाँ, जिनको ननद कहते हैं। छोटी-छोटी लड़कियाँ भी बहुओं पर वाग्वाण छोड़ने में राज़ब दाती हैं। सात-पाँच के घर में तो सास और ननद मिल कर बहुओं के विरुद्ध बाक्रायदे दलबन्दी कर लेती हैं।



सासों के इस प्रकार के व्यवहार का बहुओं पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। वे भी इस असद्व्यवहार के कारण अपने घर को अपना घर नहीं समझती। उनकी सहायभूति उस घर से न होकर पीहर से हो जाती है। वे सास के बाल-बच्चों को वास्तव्य-भाव से नहीं देखती तथा उन बच्चों की उतनी परवाह अथवा देख-रेख नहीं करती, जितनी कि अपने बच्चों की। बहुओं की ऐसी प्रकृति हो जाना स्वाभाविक है, क्योंकि सास के दुर्व्यवहार के कारण उनकी सास के प्रति अन्ध-मनस्कता अनिवार्य ही है।

इसी प्रकार बहुएँ भी छोटी-छोटी बातों पर आपस में लड़ती हैं, और घर को संग्राम-स्थल बना देती हैं। यदि किसी बहू के लड़का है और दूसरी के लड़की है तो लड़की की माँ लड़के की माँ से ईर्ष्या करने लगती है। यदि एक के बच्चे कमजोर और रुग्ण रहते हैं तथा दूसरी के तन्दुरुस्त, तो पहली दूसरी से द्वेष रखने लग जाती है। निपुत्री स्त्रियों पुत्रवती स्त्रियों से डाह करती हैं और मन ही मन उनको कोसती हैं। बहुत-सी स्त्रियों की प्रवृत्ति इतनी मलिन होती है कि वे अपने से अच्छी स्थिति वाली स्त्रियों के अनिष्ट-चिन्तन के हेतु कितने ही मिर्याँ, सय्यद और कुएँवाले आदि की मानताएँ मानती हैं। अनेक बदमाश, सयाने ओम्मे और फकीरो द्वारा वाहियात टोटके और धूर्त पण्डित-पुजारियों द्वारा आवाहन इसलिए कराए जाते हैं कि किसी प्रकार दूसरी बहू का अनिष्ट हो। अविद्या के इस घोर अन्धकार में हमारा स्त्री-समाज विस्कुल अन्धा हो रहा है। यदि अपने कुटुम्ब की, घराने की अथवा नाते की कोई स्त्री धन-जन से सुखी है तो हमारे लिए यह बात और सन्तोष की होनी चाहिए, न कि दुःख और विचोभ की।

खेद तो यह है कि अबलाओं पर यह अत्याचार अबलाओं द्वारा ही किया जाता है। महिलाओं, तुम्हारी यह अपनी जाति पर ही अमानुषिक अत्याचार आज तुम्हारी अवनतावस्था का कारण हो रहा है। जब तुम स्वयम् मिलकर रहना नहीं जानती तो तुम अपने अधिकार पुरुषों से किस प्रकार लोगी? पुरुष-समाज क्यों न तुम्हारी इस मूर्खता से लाभ उठावे? तुम्हारे ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि और किसी को नहीं, तुम्हें ही भस्म कर रही है। तुमको जानना चाहिए कि तुम्हारी इस

कलह प्रिय प्रकृति ने तुमको और समाज को कितनी हानि पहुँचाई है? तुम अकारण ही स्वयं दुखी होती और दूसरों को क्लेशित करती हो। तुम्हारी शारीरिक और मानसिक हीनता का कारण बहुत बड़े अंश में तुम्हारी यह प्रकृति ही है। तुम्हारी इस निम्न टेन के कारण हजारों स्त्रियों ने असमय प्राण-याग किए हैं। अवि-श्रान्त चिन्ताग्रस्त रहने के कारण तुम्हारी पाचन-शक्ति कितनी खराब हो जाती है तथा तुममें से कितनों को इस क्लेश ने यक्ष्मा, प्रदर आदि भयङ्कर रोगों का शिकार बना लिया है, इसका तुमको ज्ञान क्यों नहीं होता? तुम्हारी इसी दशा में उत्पन्न हुई तुम्हारी सन्तान कितनी क्षीणकाय और रुग्ण होती है? भला, ऐसी सन्तान से समाज और ससार का क्या भला हो सकता है? तुम्हारी ऐसी सन्तान तुम्हारे पुरुषों के लिए कितनी चिन्ता का कारण हो जाती है? क्या तुमको नहीं मालूम कि आज की बहू कल सास होगी। तुमने उसको एक सफल सास बनने के लिए सिवा लड़ने, कोसने और कलह करने के कौन-सी शिक्षा दी है? अनुभव बता रहा है कि इस वातावरण में रह कर वे तुमसे भी निकृष्ट सास बनेंगी।

बहुत से पुरुष कौटुम्बिक कलह को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। ऐसा करना भयङ्कर भूल है। जिस प्रकार सहपाठियों द्वारा छेड़े जाने अथवा तिरस्कृत किए जाने को बच्चे, और अपमान एवं उपहास को पुरुष तीव्रता के साथ अनुभव करते हैं, ठीक उसी प्रकार अथवा उससे भी अधिक भावुक होने के कारण स्त्रियाँ अपमान एवं वाग्ग्रहजन्य मानसिक त्राघात का अनुभव करती हैं।

बालिकाओं को अशिक्षित रखने से हमको जो हानियाँ उठानी पड़ती हैं, उनमें गृह-कलह सर्वोपरि है।

—वृन्दावनदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

भारत में शिक्षा का अभाव*

स्व देशी आन्दोलन के समान एक और महान् आन्दोलन, जो हम लोगों को उठाना चाहिए, वह है भारत-भूमि पर से अविद्या-रूपी अन्धकार का

॥ इस लेख के आँकड़े भारत की सन् १९३१ ई० की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट से लिए गए हैं।—लेखक

विनाश। बड़ी लज्जा की बात है कि इस बीसवीं शताब्दी में हमारे देश में पाँच वर्ष से अधिक आयु के बालकों में से १० प्रतिशत भी अपनी भाषा के अक्षर पढ़ना-लिखना नहीं जानते। इस घोर अविद्या के विरुद्ध यदि आन्दोलन उठाया जाय तो भारत में विरला ही मनुष्य ऐसा होगा जो इस शुभ कार्य में सहयोग न दे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करने का जो सरकार का कर्तव्य है, उसको वह जब उचित समझे, पूर्ण करे। परन्तु क्या जनता का इस विषय में चुपचाप बैठे रहना श्रेयस्कर है? जिस चाल से हमारे देश में शिक्षा का प्रसार हो रहा है, उससे तो कदाचित् शताब्दियों में भी यह देश अन्य सम्य देशों की बराबरी में न आ सकेगा।

शिक्षा-प्रचार के कार्य में प्रत्येक शिक्षित मनुष्य निजी तौर पर बहुत-कुछ सहायता कर सकता है। उदाहरणार्थ, हम लोगों में अनेक के घरों में एक-दो नौकर रहते हैं, परन्तु हममें से कितने ऐसे निकलेंगे जो अपने नौकर को केवल अक्षर-ज्ञान करा देने का कष्ट उठावेंगे? हालाँ-

कि यह कार्य कुछ कठिन नहीं है। अनुभव बताता है कि यदि हम अपने छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाते समय अपने नौकर को भी पन्द्रह-बीस मिनिट प्रतिदिन कुछ बता दिया करें तो अधिक से अधिक एक वर्ष में उसको काफ़ी पढ़ना-लिखना आ जायगा। परन्तु इतना करे कौन?

सामूहिक रूप से भी हमारे शिक्षित नवयुवक बहुत कार्य कर सकते हैं। प्रत्येक ज़िले के स्कूल, कॉलेज, कचहरियाँ तथा अन्य दफ़्तर आपस में सहयोग करके एक ऐसा रचनात्मक कार्य-क्रम बना सकते हैं कि जिससे बड़ी-बड़ी छुट्टियों में प्रत्येक नवयुवक दस-पाँच मनुष्यों को सरलता से अक्षर-ज्ञान करा सके। हम लोग प्रायः छुट्टियों को गप्प-शप्प में व्यतीत कर देते हैं। यदि इस समय का सदुपयोग हम इस प्रकार के कार्य में भी करने को राज़ी न हों तो फिर देश के उत्थान की क्या आशा की जा सकती है?

निम्नलिखित कोष्ठक से प्रतीत होता है कि भारतवर्ष अन्य देशों से शिक्षा में कितना पिछड़ा हुआ है —

देश	वर्ष की आयु के मनुष्यों में	प्रति १००० मनुष्य पीछे पड़े- लिखे मनुष्यों की संख्या
ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड ...	५ वर्ष की तथा उससे अधिक आयु के	१०००
इटली	५ " "	१०००
डेन्मार्क	५ " "	१०००
जर्मनी	६ " "	१०००
जापान	६ " "	६६३
ऑस्ट्रेलिया	५ " "	६६७
संयुक्त राज्य, अमेरिका	१० " "	९२७
ज़ेकोस्लोवेकिया	सब आयुओं के ...	६२३
फ़्रान्स	१० वर्ष तथा उससे अधिक आयु के	९१८
बेल्जियम	५ वर्ष " "	८६३
हङ्गेरी	६ " "	८७८
रूस	सब आयुओं के ...	५१३
स्पेन	५ वर्ष तथा उससे अधिक आयु के	६१२
पुर्तगाल	५ " "	३२०
चीन	सब आयुओं के ...	२००
भारतवर्ष	५ वर्ष तथा उससे अधिक आयु के	९५
इजिप्ट	सब आयुओं के " "	७९



भारत के भिन्न-भिन्न भागों में पढ़ना-लिखना जानने वालों की संख्या नीचे के कोष्ठक में दी जाती है। उसी कोष्ठक में अङ्गरेज़ी भाषा जानने वालों की भी संख्या दी गई है, जिसमें पाठक देखेंगे कि भारत की राष्ट्रीय भाषा

अङ्गरेज़ी करना चाहने वाले लोगों के विचार कितने असम्भव हैं। परन्तु वे लोग इसे साधारण बात मान लेते हैं। भारतवासियों को अङ्गरेज़ी-भाषी बनाने के लिए अभी अनेक शताब्दियाँ चाहिए :—

प्रान्त अथवा राज्य	५ वर्ष तथा उससे अधिक आयु के प्रति हजार स्त्री या पुरुषों पीढ़े पढ़े-लिखों की संख्या		५ वर्ष या उससे अधिक आयु के प्रति हजार स्त्री या पुरुषों में अङ्गरेज़ी जानने वालों की संख्या	
	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ
भारतवर्ष (कुल मिला कर)	१५५	२६	२१	३
ब्रह्मदेश	५६०	१६५	२१	२
कोचीन राज्य ..	४६०	२२०	२८	१६
द्रावन्कोर राज्य .	४०८	१६८	३१	७
बड़ौदा राज्य .	३३१	७९	२८	२
देहली प्रान्त	२२६	७२	९०	१८
अजमेर मेरवाड़ा प्रान्त	२०३	३५	४५	७
बङ्गाल प्रान्त ...	१८०	३२	४३	५
मद्रास प्रान्त	१८८	३०	२६	४
बम्बई प्रान्त ..	१७४	३२	३२	७
मैसूर राज्य ..	१७४	३३	२७	५
आसाम प्रान्त	१५२	२३	२२	१
मध्य-प्रान्त और बरार	११०	११	११	१
पञ्जाब प्रान्त ...	९५	१५	२१	२
संयुक्त-प्रान्त ...	६४	११	११	१
बिहार-उड़ीसा ..	६५	८	१०	१
मध्य भारत एजेन्सी ..	९२	६	९	१
पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त .	८०	१२	२१	२
हैदराबाद राज्य ...	८३	१०	८	१
राजपूताना एजेन्सी ...	७६	६	६	०

उपर्युक्त कोष्ठक से निम्न-लिखित बातें मालूम होनी हैं.—

१—देशी भाषाओं में ब्रह्मदेश, कोचीन, द्रावन्कोर तथा बड़ौदा राज्य, देहली और अजमेर प्रान्त उन्नतिशील हैं। इनमें से ब्रह्मदेश की उन्नति का कारण उसके बौद्ध-मठों द्वारा शिक्षा दिया जाना है, जिससे जनता को देशी भाषा का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

कोचीन, देहली और अजमेर प्रान्त की उन्नति कदाचित्त उनके छोटे देश होने के कारण अधिक हो

गई है। हाँ, द्रावन्कोर और बड़ौदा उन्नतिशील राज्य हैं। बड़ौदा में तो प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य भी है।

भारत के बड़े-बड़े प्रान्तों में ब्रह्मदेश के बाद मद्रास, बङ्गाल और बम्बई पुरुषों की शिक्षा में अग्रसर हैं।

२—स्त्री-शिक्षा में कोचीन, द्रावन्कोर, ब्रह्मदेश, बड़ौदा और देहली अन्य प्रान्तों से बहुत आगे हैं।

३—अङ्गरेज़ी भाषा की शिक्षा में देहली, कोचीन, अजमेर मेरवाड़ा, बङ्गाल, बम्बई, द्रैविन्कोर, मैसूर, मद्रास और बड़ौदा अन्य स्थानों से कुछ आगे हैं। देहली प्रान्त

और कोचीन राज्य में स्त्रियों का अङ्गरेज़ी भाषा की ओर अधिक ध्यान आकर्षित हुआ प्रतीत होता है।

४—प्रत्येक दृष्टि से राजपूताना शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। हैदराबाद रियासत उन्नतिशील कही जाती है, परन्तु शिक्षा में इसका भी स्थान बहुत नीचा है।

५—भारतवर्ष में केवल १६ प्रतिशत पुरुष, ३ प्रतिशत स्त्रियाँ पढ़ना-लिखना जानती हैं। अङ्गरेज़ी भाषा का पढ़ना लिखना केवल २ प्रतिशत पुरुष और ३ प्रतिशत स्त्रियाँ जानती हैं। क्या भारतीय नवयुवक और नवयुवतियाँ इस अज्ञानता को शीघ्र दूर करने में तत्पर होंगे ?

—निरञ्जनलाल शर्मा, एम० एस्-सी०

मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन

मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन 'हरिजन आन्दोलन' का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। परन्तु यह 'हरिजनों' के लिए सबसे अधिक अहितकर है। क्योंकि मन्दिरों के प्रक्षाप (।) से यह लोग मानसिक दासता की शिक्षा प्राप्त करेंगे और फलतः वह उनको गुलामी की ज़न्जीरों में जकड़े रखेगी। मन्दिरों और मूर्तियों के कारण देश का कितना घोर अनिष्ट हुआ है, किस तरह लोग धार्मिक गुलामी के बन्धन में जकड़े गए हैं, यह किसी को बताना न होगा। इसके अतिरिक्त मन्दिर हमारी वैदिक सस्कृति और सभ्यता के विरुद्ध हैं। मूर्ति-पूजा वैदिक धर्म के प्रतिकूल है। हमारे धर्म-ग्रन्थ वेद में मूर्ति-पूजा का विधान नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक, अजर, अमर, सर्वान्तर्यामी और क़ाया-रहित है। वह सर्वान्तर्यामी होने से प्रत्येक स्थान में व्याप्त है। कोई कण उससे रहित नहीं है। तब अमर और अकाल परमात्मा को प्रस्तर-खण्ड की प्रतिमा का रूप देना नास्तिकता और अवैदिकता है।

मूर्ति-पूजा का प्रादुर्भाव वास्तव में उस समय हुआ, जब आर्य-जाति के हृदय-मन्दिर में वैदिक धर्म के

प्रति श्रद्धा न रही। लोग उपनिषद् और दर्शन के तात्त्विक ज्ञान को भूल गए।

वैदिक धर्म में यज्ञ का विशेष महत्व है। इसका प्रचलन ईस्वी सन् के आरम्भ तक आर्यों में था। वे इस समय तक मूर्ति-पूजा जानते न थे। ईस्वी सन् के उपरान्त बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्धों ने अपने पतन-काल में सबसे प्रथम एक स्त्री-समाधि पर स्तूप बनाया और उसकी पूजा की। यह वास्तव में स्तन का चिन्ह था। हिन्दुओं ने इससे चिढ़ कर शिवलिङ्ग की स्थापना की। गया में आपको हज़ारों छोटे-छोटे शिवलिङ्ग, स्तूप और बौद्ध के समाधि-चिन्ह देखने में आवेंगे। इसके पश्चात् पौराणिक काल के साथ ही हिन्दुओं में प्रतिमा-पूजन का प्रबल प्रचार हुआ।

जब हमारे धर्म का इनसे कोई सम्पर्क ही नहीं है, तब इनमें प्रवेश की क्या आवश्यकता है? नीति और सदाचार की दृष्टि से इनकी वर्तमान अवस्था अति हीनतर है। यदि किसी को हिन्दू-समाज के नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक पतन का दृश्य देखना हो, तो वह मन्दिरों के दर्शन करे। महन्त और पुजारियों की व्यभिचार और कामुक लीला का दृश्य बड़ा रोमाञ्चकारी और लोमहर्षण है। जो मन्दिर भारत के राष्ट्र के विकास में बाधक हैं, जिन मन्दिरों के कारण भारत की स्वतन्त्रता का अपहरण हुआ; जिन मन्दिरों ने हमारी वैदिक सभ्यता का सहार कर दिया, जिन मन्दिरों ने बाम-मार्ग को प्रोत्साहन दिया, जिन मन्दिरों ने मानव-हृदय से धार्मिक श्रद्धा और ईश्वर-भक्ति के पत भावों का विनाश किया और उनके स्थान पर अन्धविश्वासों और पाखण्ड का प्रचार किया; जिन मन्दिरों के धर्माध्यक्षों (।) ने सती-साध्वी महिलाओं के चरित्र को कलङ्कित किया, जिन मन्दिरों ने राष्ट्र की विपुल सम्पत्ति का दुरुपयोग किया, उन अनाचार के अङ्गों में आज दलित हिन्दुओं के प्रवेश के लिए आयोजन किया जा रहा है। आज इन्हीं मन्दिरों के विषय में महात्मा जी कहते हैं—
'To reject the necessity of temples is to reject the necessity of god, religion and earthly existence'

अर्थात्—'मन्दिरों की आवश्यकता का अस्वीकार करना मानों ईश्वर, धर्म और पार्थिव अस्तित्व की आव-

शक्यता का अस्वीकार करना है। परन्तु यह कथन मान्य नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म और ईश्वर की सत्ता असीम और अनन्त है। उन्हें आप मन्दिरों में सीमित नहीं कर सकते। मन्दिर का आस्तिकता से बिलकुल सम्बन्ध नहीं है। एक मनुष्य यदि गिर्जा, मसजिद या मन्दिर में न जाय, तो भी वह ईश्वर-भक्त और धार्मिक हो सकता है। यह कहना सर्वथा अन्याय है कि देव-मन्दिरों में न जाने वाले सब मनुष्य अधार्मिक होते हैं। आर्य-समाज एक ऐसी संस्था है, जो वैदिक-धर्म की प्रचारक है। परन्तु मन्दिरों की आवश्यकता को अस्वीकार करती है। अभिप्राय यह है कि मन्दिरों में आपको धर्म का उज्ज्वल स्वरूप नहीं मिल सकता। इसीलिए एक अमरीका के विद्वान् ने मन्दिरों की आवश्यकता के विषय में लिखा है :—

“धर्म के संस्थापकों ने जिन-जिन धार्मिक तत्वों को समझा-बूझा और प्रचार किया, उन तत्वों को जब-जब उनके शिष्यों ने मन्दिरों और धर्माध्यक्षों के हाथ में छोड़ दिया, तब-तब वे नष्ट ही हो गए। सत्य इतना विश्वव्यापी है कि सीमित और साम्प्रदायिक बनाया ही नहीं जा सकता।

“इसलिए मन्दिरों, मसजिदों और गिर्जाघरों को मैं धर्म का दुरुपयोग समझता हूँ। प्रत्येक राष्ट्र में हमने देखा है कि मन्दिरों में सत्य और सदाचार की दुर्दशा हुई है। मैं समझता हूँ कि सङ्गठित धर्म की मूल कल्पना ही ऐसी है कि स्वभावतः यह फल निकलता है।

× × ×

“इसलिए हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश की अनुमति मिल जाने में मैं कोई लाभ नहीं समझता। मैं जानैता हूँ कि न्याय का तक्राज़ा यह है कि उन्हें बुराई भी करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। परन्तु जब उन्हें वह स्वाभिमान सीखना है, जिससे वह हमारी सभ्यता के भविष्य के विकास में वर्षाधर्मियों के समान पद ले सकें, तो मैं समझता हूँ कि उन्हें मन्दिर और महन्त मात्र से स्वतन्त्र रहना भी सीखना चाहिए।”*

* The great religions truths, which the prophets of religions have apprehended and proclaimed have always been lost when their

मन्दिर प्रवेश-आन्दोलन ‘हरिजनों’ को महन्तों और पुजारियों का गुलाम बना देगा, इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है। उनके हृदय में अन्धविश्वासों और अन्ध-अज्ञा की वृद्धि होगी। इस प्रकार वे आरिभिक और सांस्कृतिक उन्नति से वञ्चित रह जायेंगे। आज उनमें जो थोड़ा-बहुत आत्म-सम्मान मौजूद है, वह मन्दिरों के प्रतिकूल वातावरण के प्रभाव से विनष्ट हो जायगा। ऐसी स्थिति में हरिजन भारतीय राष्ट्र और समाज के लिए भार-स्वरूप बन जाएंगे। कुछ समय उपरान्त ‘हरिजन’-समाज वैसा ही अन्धविश्वासी और कट्टरपन्थी बन जायगा, जैसा आजकल सनातनी-वर्ग है।

अतः आज आवश्यकता है हरिजनों को उत्कृष्ट और राष्ट्रोपयोगी स्वतन्त्र नागरिक बनने की। परन्तु मेरे इस कथन से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि उन्हें धार्मिक शिक्षा ही न दी जाय। मैं यह चाहता हूँ कि धार्मिक शिक्षा को उनकी शिक्षा में प्रमुख स्थान मिले। उन्हें आर्य-संस्कृति और वेदोक्त धर्म का परिज्ञान कराया जाय। परन्तु यह धार्मिक शिक्षा मन्दिरों के प्रभाव से अछूती रहे।

—रामनारायण ‘यादवेन्दु’, बी० ए०

✻

✻

✻

disciples have tried to localise them in priest craft and temples The truth is too universal to be confined and made sectarian Therefore I consider temples, mosques and churches to be a prostitution of religion In every nation we have witnessed the degradation of truth and righteousness in the temples, and in my opinion in the very conception of organised religion this is certain to follow as a natural consequence

Therefore I can see no advantage in gaining permission for Harijans to enter temples

I know that justice demand that they shall have the liberty even to do wrong But if they are to learn the lessons of self-respect which will enable them to take an equal place with cast people in the development of the future of our civilization I think they must learn an independence of all priests and temples

Harijan, Sturday 11th March, 1933—

Poona



क्या सुन्दर सन्तान पैदा हो सकती है ?

संसार में रूप और जीवन के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु रूप से खरीदी जा सकती है। भाई-बहिन, पति-पत्नी, धर्म और विद्या भी रूप की बेरी हैं। किसी कवि ने कहा है—‘धनाद्धर्मस्ततः सुखम्।’ धन से धर्म और सुख खरीद सकते हैं।

परन्तु वह चीज़, जिसको देख कर भूखा-प्यासा धन-कती हुई भूख और प्यास की ज्वाला को भूल जाता है, हिंसक की हिंसा-प्रवृत्ति, चमकती हुई तलवार भी, जिसको देखते ही छूट जाती है, जिसकी गाथा सुनते ही बड़े-बड़े क्रोधी और अभिमानी एकान्त में सिसकियाँ भरते देखे जाते हैं, इज्जत और दौलत तो क्या, जिसके लिए प्राणों की बाज़ी भी लगाई जा सकती है और देवता अपनी मर्यादा को छोड़ सकते हैं, वह चीज़ रूप है। रूप भी कुछ साधनाओं से, जिनको हमारे ऋषियों ने सदियों पहले अनुभव करके लिखा है, खरीदा जा सकता है।

हिन्दू-मन्त्र का बच्चा-बच्चा वीर अभिमन्यु की कथा से परिचित है। जिस समय गुरु द्रोणाचार्य की व्यूह-रचना से पाण्डव-दल में चिन्ता और घबराहट फैली हुई थी, भीम और युधिष्ठिर पराजय की आशङ्का से चिन्तित हो रहे थे, उस वक्त इस बालक ने ही अपनी वीरता से सबके चेहरों पर खुशी की रेखा अंकित की थी। मुरझाए हुए जीवनो में रक्त का सञ्चार किया था।

यह बात नहीं कि व्यूह-रचना को अभिमन्यु ने किसी गुरु से सीखा था। वरन् वह जन्म से ही उसके भेदों से परिचित था। हाँ, उन संस्कारों के विकास में शस्त्रविद्या की शिक्षा ने अवश्य सहायता दी होगी। जब वह सुभद्रा के उदर में था, तभी वह अपने पिता अर्जुन से इसके भेदों को सीख गया था। तत्कालीन क्षत्रिय-क्षत्राणियों शस्त्र-विद्या से विशेष प्रेम रखती थीं। गर्भावस्था में भी वह इसी आशा से कि हमारी सन्तान सच्ची वीर हो, शस्त्र-विद्या के भेदों को सीखने का प्रयत्न करती थीं। वह समझती थी कि गर्भावस्था में बोया

हुआ अच्छे संस्कारों का बीज अपनी महक से चारों तरफ सुगन्धि फैला देगा।

जिस प्रकार ‘केमेरा’ के सामने जैसी वस्तु आती है, वैसा ही चित्र वह खींच देता है, इसी तरह मासिक-धर्म के स्नान के बाद स्त्री के सम्मुख जैसी आकृति वाला पुरुष आता है, वैसी ही आकृति की सन्तान पैदा होती है। सुश्रुत में लिखा है.—

पूर्वं पश्येदनुस्नाता यादृश नरमगना । *

तादृश जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदत ॥

अर्थात्—ऋतु-स्नान करने के बाद स्त्री जैसे पुरुष को देखती है, तदनु रूप सन्तान पैदा होती है। इसलिये प्रथम पति के दर्शन करने चाहिए।

इन्हीं सिद्धान्त का दर्शन आज तक भी आपको गाँवों में मिल सकेगा। अब तक बूढ़ा स्त्रियाँ ऋतु-स्नान के बाद नववधुओं को, जिनके सन्तान है, सन्तान का मुख देखने के लिए और सन्तान-रहित युवतियों को देवर का या शीशे में अपना मुख देखने के लिए उत्साहित करती हैं। मेरा यह स्वयं अनुभव है कि इस दर्शन का सन्तान पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

मेरा पुत्र नरेन्द्र, जो इस समय ५-६ वर्ष का है, जिस समय यह गर्भावस्था में था, स्वामी जी के आदेश से एक सुन्दर बालक के चित्र देखना, ध्यान करना मैंने अपना दैनिक कार्यक्रम बना रखा था। समय पर उस चित्र से नरेन्द्र की आकृति मिलती-जुलती पाई गई।

यही चित्र मेरे स्वामी जी ने अपने मित्र श्री० राम-शरणदास गुप्त, बी० ए० (ऑनर्स), एल्.एल्. बी० को उनकी पत्नी को गर्भावस्था में देखने के लिए दिया। समय ने उसमें भी सफलता दी। वकील साहब के बच्चे की आकृति लगभग नरेन्द्र के समान है।

जैसे गर्भावस्था में अच्छे चित्र को देख कर गर्भस्थ शिशु की आकृति सुन्दर तथा तदनु रूप बनाई जा सकती है, उसी तरह गर्भावस्था में बच्चे को शिक्षित भी किया जा सकता है। चरक शारीरस्थान में लिखा है कि गर्भिणी जैसे पुत्र की इच्छा रखती है, उसको वैसे महा-पुरुषों के आचरण पर चलना चाहिए। अपना रहन-सहन उनके अनुरूप बनाना चाहिए। उनकी जीवनियों तथा उनके कार्यों पर ध्यान देना चाहिए। •



गर्भावस्था के पाँचवें मास में गर्भस्थ शिशु का हृदय विकसित हो जाता है। गर्भिणी की इस अवस्था को आयुर्वेद के शब्दों में 'द्विहृदया' माना है। ऐसी हालत में गर्भिणी को विशेष-विशेष पदार्थों के उपभोग की इच्छा होती है। यदि उसको उसकी इच्छित वस्तु नहीं दी जाती है, तो बच्चा दुर्बल-हृदय उत्पन्न होता है। हाँ, यदि गर्भिणी ऐसी चीज़ की इच्छा रखे, जो गर्भ के लिए हानिकारक हो तो एकदम डॉट-डपट करने से यह कहीं अच्छा है कि उसको उस वस्तु के हानिकर प्रभावों का ज्ञान करा दिया जाय या ऐसी वस्तु, जो उसके हानिकर गुणों को रोक सके, साथ में दी जाय।

इसके अतिरिक्त अच्छे भोजन का भी गर्भस्थ शिशु की आकृति पर असर पड़ता है। गर्भावस्था में गर्भिणी को दूध, फल, खीर और दूध-चावल का विशेष सेवन कराना चाहिए, गर्भस्थिति के दिन से ही गर्भिणी को खुश रखना चाहिए।

गर्भवती को अच्छी-अच्छी धार्मिक कहानियाँ पढ़नी-सुननी चाहिए। मेरा यह पूर्ण विश्वास है, जो बहिनें गत आन्दोलन में जेल गई थी और उस समय वे गर्भवती थी, स्वभाव से ही उनको गवर्नमेण्ट के कार्यों से घृणा थी, अतः उनसे उत्पन्न हुई सन्तान अवश्य ही संसार में क्रान्ति पैदा करने वाली होगी। भविष्य इस बात की सच्चाई की साक्षी देगा।

इस लेख से आप यह समझ गए होंगे कि उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए किन नियमों पर चलना चाहिए। सचेत से प्रत्येक गर्भवती को नीचे लिखे पाँच नियमों पर चलने से अच्छी सन्तान प्राप्त हो सकती है। मेरा यह खयाल है कि मेरी लड़की, जो इस समय १॥ वर्ष की है, भविष्य में यदि उसे ऐसी परिस्थितियों में नहीं डाला, जिससे वह लाचारी में पड़ नहीं सकी, तो अवश्य ही वह आयुर्वेद की विदुषी होगी, क्योंकि मैं उसकी गर्भावस्था से पहले ही आयुर्वेद को पढ़ना अपना लक्ष्य बनाए हुए थी। ये संस्कार-बीज अवश्य फलेंगे।

(१) गर्भ रहने के निश्चय-दिन से प्रसव तक एक ही चित्र को, जिसको आपके पति अच्छा समझें, देखती रहें, ध्यान करती रहें। स्नान करने के बाद प्रतिदिन घण्टा-आधा घण्टा बैठ कर उस चित्र को इस आशा से कि हमारी सन्तान ऐसी सुन्दर हो, देखा करें।

(२) गर्भ-स्थिति से प्रसव तक हमेशा खुश रहें।

(३) अच्छे-अच्छे महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ें-सुनें और उनके आचरणों पर चलें।

(४) गर्भावस्था में विषय से रक्षित रहें। श्वेत वस्त्रों से प्रेम रखें।

(५) यदि किसी वस्तु के खाने-पीने या पहनने की इच्छा हो तो उसको यथाशक्ति पूरा करें।

यदि आप इन बातों पर चलेंगी तो अवश्य मनो-नुकूल सन्तान पाएँगी।

—सरस्वती देवी भिन्न, वैद्य, आयुर्वेद-भिक्षु

वर्तमान रूस की सैनिक शक्ति

सं सार के बड़े-बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों ने पिछले वर्षों में जो सैनिक तैयारियाँ की हैं और जिनके लिए वे इस समय भी प्रयत्नशील हैं, वे विश्व-शान्ति की नहीं, वरन् विश्व की घोर अशान्ति की द्योतक हैं। कहने को तो प्रकट रूप से प्रयत्न यह हो रहा है कि जो यूरोपीय महाभारत हो चुका है, उसकी पुनरावृत्ति न हो सके और समस्त राष्ट्र अपनी-अपनी फौजी ताकत घटा दें, किन्तु वास्तव में गुप्त रूप से सभी शक्तियाँ अपना सैन्य-बल बढ़ा रही हैं और अन्दर ही अन्दर जो तैयारियाँ हो गई हैं, उनमें यह सिद्ध है कि घनघोर समर अवश्यम्भावी है। अभी तक फ़्रान्स ही अपनी सैन्य-शक्ति के लिए प्रसिद्ध था और कहा जाता था कि फ़्रान्स ने सबसे अधिक तैयारी की है और उसके पास जितनी सेना है, उतनी संसार में किसी अन्य देश के पास नहीं है। परन्तु उस दिन रूस में बोलशेविक शासन का पन्द्रहवाँ वार्षिकोत्सव मनाने के समय जो सैनिक प्रदर्शन हुआ है, उससे यह सिद्ध हो गया है कि फ़्रान्स ने नहीं, रूस ने इस दिशा में सबसे अधिक तैयारी की है और रूस के पास जितनी सेना तथा फौजी सामान है उतना संसार में किसी भी देश के पास नहीं है। रूस की सैनिक शक्ति कैसी है और पिछले वर्षों में उसने कितनी उन्नति की है, इसका ज़िक्र रूसी सेना-विभाग के सबसे बड़े अफसर क्लेमेण्टी ई० वोझेस्कोफ़, वार-कमिशनर ने प्रदर्शन के समय किया था। यह प्रदर्शन अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-

दिवस 'मे डे' अर्थात् १जी मई को हुआ था। यह दिवस रूस से ही आरम्भ हुआ है और प्रत्येक वर्ष इस दिन रूस की मज़दूर-सरकार का सैनिक प्रदर्शन हुआ करता था। किन्तु पिछले 'मे डे' को जो प्रदर्शन हुआ है, वह रूस के पञ्चवार्षिक आयोजन के पूर्ण होने के बाद पहिला ही अवसर था और संसार की सर्वश्रेष्ठ सैनिक शक्ति का परिचायक था। रूस की राजधानी मास्को में बड़ी शान के साथ विराट प्रदर्शन हुआ। केवल मास्को-स्थित सेना और शस्त्रास्त्रों का एक जुलूस लेनिन के समाधि-मन्दिर तक गया था, किन्तु जुलूस इतना लम्बा था कि उसे देखने के लिए दर्शकों को दो घण्टे लगे थे। प्रदर्शन के सम्बन्ध में रूसी नहीं, वरन् विदेशी दर्शकों का कहना है कि रूस के इतिहास में, विशेषतः बोलशेविक शासन की स्थापना के बाद, ऐसा ज़बरदस्त सैनिक प्रदर्शन कभी नहीं हुआ और साथ ही यह कि रूस सैनिक शक्ति की दृष्टि में सब राष्ट्राँ से बाज़ी मार ले गया। विदेशी दर्शकों का यह भी कहना है कि रूस ने गत पञ्चवार्षिक आयोजन में जो यह भीषण यौद्धिक तैयारी की है, उसे देख कर बोलशेविकों के देश-प्रेम और कार्यपटुता के साथ ही साथ भावी महाभारत और विरव की अशान्ति का भी आभास मिलता है। विदेशी दर्शकों के अतिरिक्त विदेशी समाचार-पत्रों ने भी—जिनमें बोल-शेविक-विरोधी समाचार-पत्र भी शामिल हैं—लेख लिख कर यह सिद्ध किया है कि रूस के पास इस समय जितनी फ़ौज और जितने फ़ौजी सामान हैं, उतने संसार के किसी भी देश के पास नहीं हैं। फ़्रान्स की राजधानी पेरिस से निकलने वाले "वैसोवाय" नामक एक बोलशेविक-विरोधी पत्र ने भी इस सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित किया है और उसमें उसने यह सिद्ध किया है कि बोलशेविक रूस की सैनिक शक्ति यूरोप में सबसे बड़ कर है। उसमें कहा गया है कि रूस का युद्ध-विभाग कहता है कि रूस के पास शान्ति के समय की सेना ५,६२,००० मनुष्यों की है, जिनमें ५,१४,००० मनुष्य मुख्य सेना में हैं। ३१,००० जल-सेना में हैं और १२,००० हवाई सेना में हैं। परन्तु वास्तव में रूसी सेना इससे कहीं अधिक है, क्योंकि सोवियट यूनियन के सभी सैनिक इसमें सम्मिलित नहीं किए गए हैं। केवल सोवियट सीक्रेट पुलिस डिपार्टमेंट में १,८०,००० मनुष्य

"स्पेशल ट्रूप्स" फ़ायिटर गार्ड्स आदि के सैनिक हैं। इसी प्रकार यदि रूस की समस्त विभिन्न सेनाओं के सैनिकों का हिसाब लगाया जाय, तो साधारण शान्ति के दिनों की सेना ९,००,००० मनुष्यों की है। इसके अतिरिक्त रेगुलर सेना है, जिनके लिए २,६०,००० युवक प्रति वर्ष सर्वसाधारण में से लिए जाते हैं। इसके साथ ही साथ हर साल ४,९०,००० युवक साधारण फ़ौजी शिक्षा देकर "आक्रमिक अवसरों के लिए" तैयार किए जाते हैं। इस प्रकार सोवियट सरकार ने ऐसा प्रबन्ध कर रखा है कि कोई भी रूसी पुरुष और स्त्री सैनिक शिक्षा से वञ्चित न रह सके और आवश्यकता पड़ने पर अपने देश को शत्रुओं के आक्रमण से बचा सके। इस समय रूस के पास ६५,००,००० मनुष्यों की "क्रस्ट क्लास सुरक्षित" सेना है।

यह तो हुआ सैनिकों के सम्बन्ध में। युद्ध-सामग्री रूस ने कितनी बढ़ाई है, इसका वर्णन रूप के उपर्युक्त युद्ध-कमिशनर वोरोशिलोव के शब्दों में सुन लीजिए। अपनी उन्नत देशभक्ति, अपनी कष्ट सहिष्णुता, अपने शौर्य और अपने अध्यवसाय के बल पर एक किमान बालक की श्रेणी से वोरोशिलोव महाशय ने बोलशेविक रूस की महती सेना की अप्यक्षता प्राप्त की है। उन्होंने बतलाया कि बन्दूकों और तोपों की हमारे यहाँ कमी थी। ज़ार के शासन-काल में हमारे देश में बन्दूक और तोपें बहुत कम बनती थीं, जो बनती भी थीं वे पुराने ढङ्ग की दुआ करती थीं और अधिकतया हमें उनके लिए विदेशों के आश्रित रहना पड़ता था। बटैलियनों के पास बन्दूकें होती ही न थीं, केवल बड़ी फ़ौज के सैनिकों के पास ही होती थीं। हवाई जहाज़ों पर आक्रमण करने वाली बन्दूकें यहाँ थीं ही नहीं। सबसे दुखदाई बात तो यह थी कि यहाँ तोप-बन्दूक बनाने के कारख़ाने ही नहीं थे। ये चीज़ें विदेशों से ख़रीद कर मँगवाई जाती थीं। परन्तु पिछले चार वर्षों में हमने इस दिशा में अधिक ध्यान दिया और इस प्रयत्न का फल यह है कि इस समय हमारे कारख़ाने किसी भी विदेशी कारख़ानों का मुकाबला कर सकते हैं। अपने देश के इतिहास में यह पहिला ही अवसर है कि यहाँ ये कारख़ाने तैयार हुए हैं। हमने छोटी-छोटी टुकड़ियों को भी तोपें और बन्दूकें दे रखी हैं। इन कारख़ानों में नए से



नए प्रकार की सब तरह की बन्दूकें और तोपें बनाई जाती हैं। सबसे अधिक लाभ हमें यह हुआ है कि इसी बढ़ाने हमारे यहाँ ये कारखाने खुल गए हैं और यदि कभी आवश्यकता आ पड़ी, तो हम जितना सामान चाहें तैयार कर सकेंगे। वैज्ञानिक प्रयोगों और बारूदों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि इसमें भी हम किसी देश से पीछे नहीं हैं। यह निश्चित है कि सन् १९१४ के पिछले महायुद्ध की अपेक्षा इस बार वैज्ञानिक बारूदों का अधिकाधिक प्रयोग किया जायगा। परन्तु हमें विश्वास है कि इस प्रकार के आक्रमणों से हम अपनी पूर्णतया रक्षा कर सकेंगे। जल और हवाई सेना भी हमने अपनी दुस्त कर ली है। इस समय हमारे पास २,००० हवाई जहाज़ ठीक हालत में हैं। अन्त में वीरोशिलोको ने रूस की इस तैयारी को न्यायोचित सिद्ध करते हुए कहा कि संसार के पूँजीवादी राष्ट्र सोवियट यूनियन के विरुद्ध जो युद्ध की तैयारी कर रहे हैं, उसी से अपनी रक्षा के लिए हमें यह सैन्य-वृद्धि करनी पड़ी है और हम सदा-सर्वदा

उनके मुकाबले के लिए तैयार हैं। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यूँ हम किसी से युद्ध करना नहीं चाहते, किन्तु हमारे देश पर यदि कोई आक्रमण करेगा, तो उसके लिए हम पूर्णतया तैयार हैं। हम किसी दूसरे देश की ज़मीन लेना नहीं चाहते, किन्तु इसके साथ ही हम अपने देश की भी एक इच्छा ज़मीन पर किसी को क्रब्ज़ा नहीं करने देंगे।

कहने को कोई कुछ भी कहे, किन्तु ये तैयारियाँ भीषण रक्तपात की सूचका हैं। पोलैण्ड, फ़्रान्स, जर्मनी, इटली आदि देशों ने जो यौद्धिक तैयारियाँ की हैं, उनके लिए तो कहा जा सकता है कि ये देश तो खुल्लमखुल्ला पूँजीवादी हैं ही, किन्तु रूस सदृश साम्यवादी और देश की सम्पत्ति केवल गरीब जनता के लिए खर्च करने का निनाद करने वाला देश इस प्रकार रुपए खर्च करके सैन्य-वृद्धि करे, यह बात कुछ अर्थ रखती है।

—रामकिशोर मालवीय



परदेशी



[श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०]

लाजवती सा अन्तर देकर अघट व्यथा का सम्बल डाल।
परिचय-हीन विषय में मुझको भेज दिया तुमने तत्काल ॥
मैं परदेशी हूँ, जग में बेसुरा-राग सा रहता हूँ।
इधर-उधर सागर-लहरों पर लघु तिनका सा बहता हूँ ॥
यह सच है, है सृष्टि तुम्हारी, कण-कण में प्रतिविम्ब भरा !
पर मैं उसका दीवाना हूँ, कैसा है वह लोक हरा ॥
भावुकता जो मिली न होती, कैसे व्यथा भूलता मैं ?
कवि-जीवन जो दिया न होता, कैसे रोता, गाता मैं ?
रोदन से मन बहलाता हूँ, बनी वेदना प्रिय वरदान।
मैं क्या जानूँ शौवन-सुख क्या, मेरा धन तो है भगवान ॥
जग-कोलाहल में मेरा जी हो जाता है बहुत विकल।
नदी किनारे स्नाह-जङ्गलों में सुख पाता हूँ कुछ पल ॥

धूरे नाली के फूलों को भी दुलार मैं करता हूँ।
काक-भेक के कटु गीतों को खूब प्यार मैं करता हूँ ॥
आँसू में जो रूप तुम्हारा, अट्टहास में कहाँ भला !
रवि से ज्यादा जुगनू मैं है प्रकट तुम्हारी ललित कला ॥
एक दर्द में लिए सखाओं में रहता मुसकाता हूँ।
लाख यत्न करने पर भी उस घर को भूल न पाता हूँ ॥
यही आह ! जी करता है, तब चरणों में फिर होऊँ मैं !
इस दुनिया की कुछ कहानियाँ तुम्हें सुनाऊँ, रोऊँ मैं !
सब कुछ ले लो, किन्तु तुम्हारी पूजा का अधिकार रहे।
प्यार रहे न रहे, पर प्रिय ! मुझ पर पूजा का भार रहे ॥
यहाँ भोजना जब-जब मुझको, कवि का जीवन ध्रुव देना।
प्रेम-राग गाने का साधन वीणा छीन नहीं लेना ॥





परिवर्तन

[श्री० वीरेश्वरसिंह, बी० ए०]



टी के लिए एक छोटा सा दीपक काफ़ी है, और मनुष्य-जीवन के लिए एक छोटी सी बात—परिवर्तन के प्रकाश में अन्धकार के अपरिचित सुख-राते हैं, आँखें मिलती हैं, बातें खुलती हैं और एक महान् क्षण में संसार बदल जाता है।

एक ज़रा सी नज़र, एक छोटी सी आह, एक उड़ती हुई सुसकान—दुनिया की इन्हीं छोटी-छोटी बातों में तो उसकी आत्मिक शक्ति भरी है—कलेजे में ये छुपी सी तैर जाती हैं, आत्मा कसक उठती है, दिल के साथ ही साथ ज़मीन-आसमान एक नए रङ्ग में खिल उठते हैं, और हम आश्चर्य से देखते हैं—अरे, यह क्या ?

आज रामू के हृदय को कोई देख सकता तो वह कह उठता—“अरे यह क्या ?” वह लबालब हो रहा था, और भरे हुए मानस में उसकी आत्मा ऊपर उठ कर खिल रही थी।

रामू फेरी लगाने निकला था। इस जीवन-स्वप्न में, मिट्टी की पृथ्वी पर, मोम के खिलौने बनाना और बेचना कोई अनुपयुक्त रोज़गार नहीं, और रामू यही करता था। वह मोम की चिड़िया बनाता, उनमें लाल, पीला, हरा रङ्ग देता, और उन्हें एक डोरे के सहारे अपनी लकड़ी से

झुला देता। वह रोज़ सुबह निकल जाता और शाम होते-होते कुछ न कुछ कमा लाता। रङ्ग बिरङ्गी मूमती हुई चिड़ियों की पंक्ति में बालकों के मन उड़ कर लटक रहते, और रामू ललचाती हुई आवाज़ से गाता—

“लल्ला की चिरैया हैं—भय्या की चिरैया हैं।
जिसके होवेगे खेलैया, वही लेवेगा चिरैया,
वाह, वाह री चिरैया ॥”

चलते-चलते रामू ने आवाज़ लगाई—“लल्ला की चिरैया हैं, भय्या की चिरैया हैं।”—उसकी भरी बेघती आवाज़ गाँव के घरों में गूँज उठी। बच्चे उछल पड़े। कितने ही घरों में “अम्माँ . ऊँ ऊँ” और रोना उसुकना मच गया।

रामू कहता जा रहा था—“जिसके होवेगे खेलैया, वही लेवेगा चिरैया, वाह, वाह री चिरैया ॥”

यह चोट थी। बिना बच्चों वालियों ने एक गहरी साँस भरी, और माताओं के अन्तर में, चुपके से, एक अनिर्वचनीय सुख दिप उठा।

रामू चला जा रहा था। खरीदने वाले उसे खुद बुलाते, मोल-भाव करते, और लेते या उसे लौटा देते। कितने ही बालकों ने उसे बुलाया, कितनों ही ने उससे मोल-भाव किया। वह एक चिड़िया दो पैसों में बेचता था, इससे कम में वह किसी को न देता था। जो लें सकते वे लेते, जो न ले सकते वे मन मार कर रह-



जाते। एकाएक किसी ने रामू को पुकारा—“ओ, चिरैया वाले !”—रामू लौट पड़ा।

एक द्वार पर एक बुद्धा और उसी के पास एक पाँच साल की बालिका, उसीसे लगी हुई, आधी उसी पर लदी हुई बैठी थी। रामू के पहुँचते ही वह खिल उठी। वह एक चिड़िया ज़रूर लेगी। मुनमुना कर उसने कहा—“नानी, वही वह लाल-लाल सी × × ×”

“अच्छा ठहर तो”—बुद्धा बोली—“भय्या कैसे कैसे दीं ये चिरैया ?”—बुद्धा ने रामू से पूछा।

‘दो-दो पैसे माई !’—रामू बोला।

“ठीक बतलाओ तो ले लूँ एक इस बच्ची के लिए।” बुद्धा ने कहा। बालिका का हृदय टुप-टुप कर रहा था। मन ही मन वह मना रही थी—“हे राम, यह चिरैया वाला मान जाय।” आशा, सन्देश, हर्ष, निराशा, उसके हृदय में कुछ चुभो से रहे थे। आकांक्षा तड़प रही थी, उम्मीद चक्कोर सी आँख लगाए बैठी थी। सौदागर क्या कहेगा ? वह क्या कहने वाला है ? यह उसके लिए भाग्य का प्रश्न था। उसके कान सुन रहे थे, जब रामू ने कहा—“नहीं माई, कम-इयादा न होगा, दो-दो पैसे तो सभी को देता हूँ।”

बुद्धा ने कहा—अच्छा, तो तुम्हारी मज़ीं। दो-दो पैसे तो बहुत हैं।

सौदागर मुड़ पड़ा। लड़की का चेहरा उतर गया—उसका दिल डूब गया। उसकी आशा कहाँ थी ? चिड़िया के साथ खेलने, उसे उड़ाते हुए दौड़ने और हँसने की खुशियाँ कहाँ थीं ?

“नानी, दो पैसे क्या बहुत हैं ?”—उसकी आत्मा चीख रही थी।

“सौदागर, तुम्हें एक पैसा कम करना भी क्या बहुत है ?”—उसकी आकांक्षा बिखर रही थी। बालिका की बड़ी-बड़ी आँखें उस सौदागर को, उन चिड़ियों को अपनी ओर खींच सी रही थीं। उनमें निराशा आशा गूँगी सी सुँह फैलाए कह रही थी—ज़रा ठहरो तो, जाते कहाँ हो ?

बुद्धा ने बालिका के सिर पर हाथ फेर कर पुत्कार कर कहा—“नाने दे बेटी, दूसरा कोई आवेगा तो ले दूँगी।” इस खोलले ढाँस को जैसे बालिका ने सुना

ही नहीं। वह उठी और डबडबाई आँखों से घर के भीतर चली गई।

किन्तु न जाने क्या बात थी कि आज सौदागर रामू के हृदय में उस भोली बालिका की निराश आँखें चुभ गईं। वह ‘नहीं’ करके लौटा तो, पर उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह गङ्गा के किनारे तक जाकर बिना नहाए लौट रहा हो। उसने इस भाव को भुलाने की कोशिश की, किन्तु जाने क्यों वह स्वयं उसमें भूल गया। उस पर जाने कहाँ से चिनगारियाँ बरसने लगीं—“नहीं, मैं ठीक नहीं कर रहा हूँ। उस बेचारी बच्ची के कोमल हृदय पर मैं हूँट मार कर चला आया। उसका चेहरा कैसा उतर गया था ! और उसकी आँखें—उफ़ !—कैसे देख रही थीं ! × × × नहीं, नहीं × × यह ठीक नहीं। रोज़गार के मतलब यह थोड़े ही हैं कि मैं इस तरह बे-दिल का हो जाऊँ। क्या होता, यदि मैं एक ही पैसे में उसे दे देता तो ? × × कोई घाटे का पहाड़ तो टूट न पड़ता। न सही, एक वक्त तम्बाकू न पीता, बिना साग के खा लेता। × × बच्चों का मन तोड़ना, राम-राम, भगवान् की मूर्ति तोड़ना है। चलो दे आऊँ × × पर × × अब क्या ? अब तो इतनी दूर चला आया और फिर, रामू, तुम भी पूरे बुद्धू हो। हैं; रोज़गार करने चले हो कि इन छोटी-छोटी बातों पर ताना-बाना बुनने। इसमें तो यह होता ही है। यही हाल रहा तो कर चुके अपना काम। कोई न ज़रीद सके तो इसमें अपना क्या बश ? राम की मज़ीं है। × × पर × × नहीं × ×।”

रामू ने, मानों जग कर, ठीक से सिर उठाया। एक साँस के बहाने दिल में हिम्मत भरी। इतने तर्क-वितर्क पर भी उसने देखा कि काम नहीं चल रहा है। कुछ है जो काट सा रहा है, जो मस्तिष्क के तर्क से अधिक बली है। रामू ने देखा कि खुप रहने से तो विचार उमड़ते चले आते हैं। जिस चीज़ को वह दबाना चाहता है वह उभड़ी ही पड़ती है। इसलिए उसने सोचा कि चिन्ता कर आवाज़ के बहाने, अन्दर वाली चीज़ का उफ़ान बाहर कर दूँ। इसीलिए “पर × × × नहीं” के बाद उसने सिर ऊपर किया और साँस के बहाने दिल में हिम्मत भरते हुए कहा—“बुद्धा की चि × × ×।” पर यह क्या ? उसकी आवाज़ बैठ सी



गई थी। शब्द उसके गले में अटक रहे। गले में वह ज़ोर ही नहीं रह गया। उसका मन बोलने को कर ही नहीं रहा था। उसकी वह शक्ति कहाँ चली गई? वह चाहता था कि बिना बोले ही उसकी चिड़ियाँ बिक जायें तो अच्छा। किन्तु किसी ने सामने से उसे रोक कर बड़ी गम्भीर आवाज़ में कहा—“चले कहाँ जा रहे हो?” रामू लौट पड़ा। चाहे जो हो, वह यह न करेगा। बच्चों के खून से सींच-सींच कर वह अपना बारा नहीं लगाना चाहता था। उनके मन के टूटे हुए टुकड़ों से अपना महल उठाना उसे असह्य था। उसी दरवाज़े पर पहुँच कर उसने पुकारा—माई, ले लो चिरैया।

घर के अन्दर आवाज़ पहुँची तो बूढ़ा ने कहा—“कौन है?” पर बालिका की आँखें चमक उठीं। निधि को लौटी समझ वह सुख-विह्वल हो गई। वह दौड़ कर बाहर गई, फिर दौड़ कर भीतर आई—“अरे नानी, वही, वही चिरैया वाला है!” वह कुहक उठी—“चल चल, जल्दी चल मेरी नानी, जँ जँ जँ।” वह बूढ़ा की उँगली पकड़ कर लौच ले गई।

“ले लो माई, पैसे ही पैसे ले लो।”—सौदागर ने बूढ़ा को देख, आँखों से बालिका पर आशीर्वाद बरसाते हुए कहा।

“लाओ, आखिर को हस्तना हैरान हुए, पहले ही दे देते तो?”—बूढ़ा बोली।

बालिका ने झट बढ़ कर एक लाल-लाल सी चिड़िया ले ली। वह खिल उठी। वह कभी हिलती हुई चिड़िया को देखती, कभी अपनी नानी को और कभी सौदागर को। उसका शिथु-हृदय सुख की एक ही तारिका से चमक उठा।

सौदागर चिड़िया पैसे ही पैसे को दे रहा है, यह बात फैलते देर न लगी। उसका सब माज देखते ही देखते बिक गया।

घर पहुँच कर रामू ने देखा कि मूल भी नहीं मिला। दो आने का घाटा रश् और मेहनत अलग। पर उसका हृदय आनन्द से ओत-प्रोत था। उसकी आत्मा खिल रही थी। मुस्कराते हुए पैसों की ओर देख कर वह कह उठा—रामू, तुम्हारे ऐसे खुद बिकने वालों से रोज़गार न होगा, इसके लिए काठ का हृदय चाहिए।

इतने ही में उसका छोटा बालक बाहर से दौड़ता हुआ आकर लिपट गया—“बाबू गोदी × × ×” रामू ने उसे उठा कर चूम लिया। “आज तू बड़ा अच्छा लगता है, मेरा लक्ष्मा।”—रामू ने उसे दुलारते हुए कहा। बालक गोद में और सिमट गया और रामू ने उसे फिर चूम कर हृदय से लिपटा लिया।

बालक को प्यार करके जितनी शान्ति उसे आज मिल रही थी, उतनी कभी न मिली थी।

सङ्कोच

[श्री० कालीप्रसाद “विरही”]

धूप, दीप, नैवेद्य, गङ्गजल,
अक्षत, सुरभित-माल,
अब हैं कहाँ? सजाऊँ जिनसे,
मैं पूजा का थाल!

जो कुछ था तन-मन-धन मुझ पर
वह सब, हौ निरुपाय!
पहली ही भाँकी मैं तो मैं—
चढ़ा चुकी हूँ हाय!

अब कुछ तो कह, किस विधि, सजनी!
मैं स्वागत-सत्कार—
करूँ ‘नाथ’ का रिक्त-करों से,
क्या दूँ अब ‘उपहार’!



नारी-जीवन

[कविवर आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या ४१

[पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

कल्पना ठीक तुम्हारी
हिन्दू भगे यवन को देख ।
बहुत लाज आती है मुझको
हिन्दू-जन के मन को देख ।

❀

वह होता भयभीत शीघ्र ही,
कायरता उसमे है व्याप्त,
वह बस कम्पित हो जाता है
करके विषम परिस्थिति प्राप्त ।

❀

पूछा था तुमने कि नहीं क्या
एक देश-गत ललना-जन
कर सकती हैं उसी देश की
ललनाओं का ऊर्ध्व-गमन ।

❀

हो सकता है यह भी, पर मैं
यही समझती हूँ मन मे
जाग्रति होगी एक साथ सब
देशों की ललना-गन मे

❀

बिना मिले इस जग की सारी
ललनाओं के बड़ा कठिन
होगा उनके लिए जगत मे
उठ सकना, पाना शुभ दिन ।

❀

उन सबकी सम्मिलित शक्ति ही
कर सकती उनको उद्धार,
सब मिल कर ही वे पा सकतीं
हैं अपने समुचित अधिकार ।

❀

उनमे राष्ट्रीयता कहाँ है ?
वह तो है पुरुषों मे बस,
जब वे सब मिल जावेगी तब
इस पर होंगे पुरुष विवश—

❀

कि कर त्याग राष्ट्रीय भाव निज
वे आपस में मिल जावें,
और लड़े ललना-जन से वे
अथवा उनको अपनावे ।

❀

बहिन, लिख रही हूँ मैं तुमको
यह तो केवल स्वीय विचार,
सम्भव है घटनाएँ होवे
तब विचार के ही अनुसार ।

❀

ललनाएँ हैं आज बढ़ रही
इससे यह होता अनुमान,
होगा आगे चल कर निश्चय
(चाहे जब) उनका उत्थान ।

❀

फिर भी नहीं बता सकती हूँ
इस उन्नति का निश्चित काल,
किन्तु अभी हैं दूर दिवस वे
उन्नति की धीमी है चाल ।

❀

बहिन, सुनाती हूँ, मैं तुमको
अब अपना आगे का हाल,
मेरे पीछे चला वेग से
यवन, देख मैं थी बेहाल ।

❀

बहुत बलिष्ठ नहीं था वह, यह
देख तनिक था धैर्य मुझे,
धोखा देता नहीं समय पर था
मम मन का स्थैर्य मुझे ।

❀

जब आया एकान्त, और-वह
पास आगया, तब अति शान्त
होकर उससे बोली मैं यों
वचन—“हो रहे हो तुम भ्रान्त,

❀

पास पड़ी थी लकड़ी, मैंने
उसे उठाया शीघ्र ब्रह्मी,
करने लगी प्रहार निरन्तर,
था मुझको विश्राम नहीं ।

❀

जो करके विश्वास नाथ पर
करते भुज-बल का सुप्रयोग,
नहीं भोगते वे जगती में
दुख, करते हैं वे सुख-भोग ।

❀

मैंने रो-रोकर के उनसे
अपना सारा हाल कहा ।
कहा उन्होंने—“बेटी तुमने
अब तक भारी कष्ट सहा ।

❀

मैं हूँ उनमें नहीं कि यो दब
जाऊँ एक तुच्छ नर से
है कुछ मुझमें शक्ति तभी तो
चली अकेली हूँ घर से ।

❀

चली गई मैं फिर बस्ती में,
भूख लग रही थी इस काल,
मिले एक जनवृद्ध मुझे तब,
उनकी थी गौरवयुत चाल

❀

मैं हूँ वृद्ध, डरो मत, कर लो
तुम मेरे ऊपर विश्वास,
कोई युवक नहीं है मेरे
घर में अथवा घर के पास ।

❀

लख कर मेरे सुख को तब तो
यवन तनिक भयभीत हुआ,
किन्तु शीघ्र ही साहस करके
आकर उसने मुझे छुआ ।

❀

था अशक्त वह, देख भयानक
मुझको, भागा लेकर जान,
चली गई मैं एक ओर तब
रक्तक स्वीय समझ भगवान ।

❀

मुझे देख कर कहा उन्होंने—
“बेटी, चली कहाँ किस ओर?”
सुन कर उनकी कोमल वाणी
उमड़ पड़ा मेरा दुख घोर ।

❀

चलो साथ मेरे, वृद्धा है
मेरी, उसके साथ रहो,
अन्य प्रबन्ध करूँ यदि तुमको
स्वीकृत यह प्रस्ताव न हो ।”

❀

पत्र-संख्या ४२

[पत्र बाज विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर
मुझको हुआ हर्ष अत्यन्त,
बड़ी वीरता से कर डाला
तुमने निज विपत्ति का अन्त ।

❀

निश्चय नहीं किया कुछ तुमने,
पर इतने पर है सन्तोष
किसी समय ललनाएँ उन्नति
करके प्राप्त करोगी तोष ।

यदि सहायता अपनी कोई
किया करे तो विपदाएँ
हट जाया करती हैं, चाहे
वे उस पर जितनी आएँ ।

❀

बहिन, न जाने कब आवेगा
वह नारी-उन्नति का काल,
दूर न जाने कब तक होगा
भारी दुःखो का जञ्जाल ।

❀

मैं निराश थी, यही समझती
थी ललनाओं का उद्धार
निपट असम्भव है, पावेगी
बे न कभी अपने अधिकार;



पर पढ़-पढ़ के पत्र तुम्हारे
हुई तनिक आशा मुझको
घेर रही है चिर-जीवन की
अब तो अभिलाषा मुझको,

❀

ललना-जन सौभाग्य सूर्य का
उदय देख लूँ मैं जिससे
उनकी महाशक्ति की सीमा
अलख लेख लूँ मैं जिससे ।

❀

बहिन, सुनाती हूँ फिर तुमको
अब अपना आगे का हाल,
करके स्नान शीघ्र मैं उसके
हो ली साथ, चली तत्काल ।

❀

एक विशाल भवन में पहुँची
उसके भीतर गई तुरन्त
दया-प्रपूर्ण बायुमण्डल लख
समझा अपने दुख का अन्त ।

❀

मुझे ठहरना पड़ा देर कुछ
दासी भीतर चली गई,
ऐसा ज्ञात हुआ मानों वह
अपने ही घर चली गई ।

❀

आकर शीघ्र मुझे लेकर वह
अन्तःपुर में हुई प्रविष्ट,
वहाँ एक कमरे के भीतर
महिला थी अनेक उपविष्ट ।

❀

उनके बीच पलंग पर सुन्दर,
एक परम सुन्दर नारी,
वयस अधेड़, परम गौरवयुत,
शान्ति मूर्ति, अति सुकुमारी

❀

थी आसीन बड़े सज-धज से,
मैंने उसको किया प्रणाम
उसने उत्तर दिया उठा कर अपने
कोमल-कर सुललाम ।

❀

पूछा उसने बड़े प्रेम से
कुशल, घूम कर मेरी ओर,
उसकी सुन्दरता, सुशीलता,
सद्गुता का था ओर न छोर ।

❀

मैंने हाथ जोड़ कर उसको
शुक्र कर फिर से किया प्रणाम,
कहा कि हूँ कृतकृत्य आपके
दर्शन पा सकुशल-परिणाम,

❀

और नहीं तो कुशल कहाँ थी— उसने कहा कि आओ मेरे
इतना कह कर मैं रोई साथ, आ गया जब एकान्त,
रही देखती वह मुझको तब, पूछा मेरा सभी हाल तब उसने
मेरी तो सुख-बुध खोई । करके मुझको शान्त ।

❀

❀

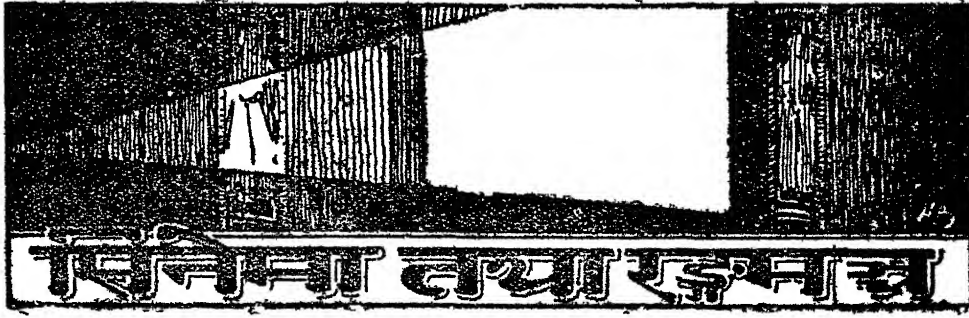
देख दया की मूर्ति छिपाई
मैंने कोई बात नहीं
पैर पकड़ कर बिनय बहुत की,
छुरिका सौपी उसे वही ।

❀

बहुत प्रसन्न हुई वह मुझसे,
दया-भाव बहु दिखलाए,
थे उस समय नेत्र में उसके
आँसू के बादल छाए ।

ढाढ़स दिया बहुत मुझको फिर
कहा कि मेरे यहाँ रहो,
बहुत हो गया, बहुत सह चुकीं,
अब आगे मत दुःख सहो ।





सिनेमा-स्टारों की विपत्तियाँ

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

सिनेमा में प्रसिद्धि पाए हुए सभी व्यक्तियों का जीवन सुखद घटनाओं से परिपूर्ण नहीं होता। उनमें से अनेक को अपनी सफलता प्राप्त करने के लिए अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। वर्षों तक झानने के बाद कहीं वे उस स्थान पर पहुँचे हैं, जहाँ उन्हें आज हम पाते हैं।

भारत में भी हम इस बात को देखते हैं, पर अधिकांश पुरुषों में ही। अभिनेत्रियों की सफलता के कई कारण हैं, और उनमें से एक यह भी है कि वे खियाँ हैं। बिटुल आदि कई अभिनेता अपार कष्टों का सामना करने के बाद उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं। बात यह है कि यहाँ गुणों की कमी नहीं होती। कोई अच्छे अभिनेताओं को खोजने का कष्ट नहीं स्वीकार करता। प्लुशमद, जान-पहचान, रिश्तेदारी और प्रभाव आदि के द्वारा लोग अभिनेता बनते हैं।

परन्तु विदेशों में यह बात नहीं है। वहाँ के लोग कीचड़ में से भी रत्न खोज लाते हैं और उसे रत्नों के पास ही स्थान देते हैं। उन्हें इस बात का सफ़ाच नहीं होता कि वह रत्न कीचड़ में पड़ा था। इसकी पुष्टि में अनेक उदाहरण पेश किए जा सकते हैं। आज जितने व्यक्ति सिनेमा के रत्न बन कर चमक रहे हैं, कभी उनकी प्रतिभा कीचड़ में डकी हुई पड़ी थी। उनकी ओर कोई देखता भी नहीं था।

चार्ली चैपलिन का नाम सभी जानते हैं। कुछ रूपों के बदले चार्ली इंग्लैण्ड की रङ्गभूमि पर काम किया करता था। परन्तु वहाँ उसकी कमाई किसी ने नहीं की। तब वह अमरीका पहुँचा। वहाँ कुछ दिनों रङ्गमञ्च पर काम करता हुआ गरीबी का जीवन बिताता रहा। अन्त में उस पर एक फ़िल्म डाइरेक्टर की दृष्टि पड़ी और आज वह हॉलीवुड के सबसे बड़े धनियों में से एक है।

हैरॉल्ड लॉयड का जीवन-वृत्तान्त 'चित्रपट' के पृष्ठों में प्रकाशित हो चुका है। उससे पाठकों को पता लग गया होगा कि उसने प्रसिद्ध होने से पूर्व कितनी कठिनाइयों का सामना किया था।

जोन ब्लोयहेल ने हाल ही में अच्छा नाम कमा लिया है और नाम के साथ दाम भी। परन्तु एक दिन उसे भूखों मरने की नीबत आगई थी। बड़ी खोज के बाद एक पुस्तकालय में उसे १८ डॉलर (लगभग ६० रुपए) प्रति सप्ताह पर एक जगह मिल गई। एक दिन पुस्तकालय के अध्यक्ष और जोन में कुछ कहा-सुनी हो गई। अध्यक्ष ने कहा—'ज़रा अपने आपको पहचानो।' जोन को वह बात चुभ गई। वह ठीक कह रहा था। जोन ने कुछ ही दिनों में अपने को पहचान लिया और केवल इसी कारण आज उसे १,००० डॉलर प्रति सप्ताह मिल रहे हैं।

जोन क्रॉफ़र्ड का नाम तो और भी अधिक प्रसिद्ध है। वह डगलस फ्रेयरवैक्स जूनियर की स्त्री थी। अभी उनमें तलाक़ हुआ है। रॉबर्ट मान्यगुमरी के साथ वह कई फ़िल्म बना कर अच्छा नाम प्राप्त कर चुकी है। उसका बाल्यकाल गरीबी में व्यतीत हुआ था। वह अपनी पढ़ाई का खर्च जुटाने के लिए स्कूल के चौके में खाना परोसा करती थी और कुछ रुपए इस प्रकार कमा लेती थी। आज वह इतनी मातृदार है कि वर्ष में कई बार वह अपने मकान की सजावट, फ़र्नीचर आदि बदलती रहती है। उसका पति डगलस फ्रेयरवैक्स जूनियर यद्यपि सुप्रसिद्ध और धनिक डगलस फ्रेयरवैक्स का पुत्र है, परन्तु वह भी विपत्ति के दिन देख चुका है। जिस समय डगलस ने जूनियर की माता को तलाक़ दिया था, उस समय उसने एक मुश्त रक़म उसे दे दी थी। कई कारणों से उसने वह रक़म कुछ ही समय में समाप्त कर डाली। इसी कारण जूनियर को रात और दिन कुछ-कुछ काम करके रुपया कमाना पड़ता था। आज वह १६ सिलिण्डर की एक कार, एक प्राइवेट सेक्रेटरी और नौकर रख कर भी बेङ्क में कुछ रुपए जमा कर सकता है।

ग्रीगारबो, जो आधुनिक सिनेमा की सम्राज्ञी कहलाती है, इनसे भी अधिक विपत्तियों का सामना अपने बाल्यकाल में कर चुकी है। परन्तु उसकी लम्बी-चौड़ी कथा पहले ही इन पृष्ठों में प्रकाशित हो चुकी है। जिस समय वह अमरीका पहुँची थी, उसे २५० डॉलर प्रति सप्ताह मिलते थे। आज वह कई लाख डॉलर की स्वामिनी है।

क्लैन् ट्रायफ़ेन का नाम आज अधिक सुनाई नहीं देता। मूक चित्रपटों के समय में वह एक अच्छा कॉमीडियन गिना जाता था। कई फ़िल्मों में उसने बड़े मार्के का काम किया था। आज वह २० हज़ार रुपए की कार में घूमता फिरता है। परन्तु कुछ वर्ष पूर्व उसे एक खेत में मज़दूर का काम करना पड़ता था। उसका वेतन दो डॉलर-बोझ था। खेत में ही एक और को वह सो रहता था और फटे-पुराने बोरे उसके बिस्तर का काम देते थे।

इसी प्रकार बैटी कॉम्पसन का नाम है। आजकल उसका नाम भी अधिक सुनाई नहीं पड़ता। परन्तु मूक चित्रपटों में और प्रारम्भ के कुछ संवाक् चित्रपटों में

वह खूब चमकी थी। 'वूमन टू वूमन' और 'स्ट्रीट गर्ल' आदि फ़िल्मों ने उसके नाम को काफ़ी बढ़ा दिया था। आज उसके पास हॉलीवुड में निज के दो शानदार भवन हैं। एक में वह स्वयं रहती है और दूसरे में एक और अभिनेत्री रहती है। हॉलीवुड में एक से एक बहुमूल्य मोटर रखने वाले व्यक्ति हैं। पर वे भी उसकी मोटर देख कर ईर्ष्या करते हैं। कहा जाता है कि वह अमेरिका की सबसे अधिक धनवान स्त्रियों में से है। उसने भी प्रारम्भिक जीवन में बुरे दिन देखे हैं। पहले वह वायलिन बजाने का काम करती थी (इसकी प्रवीणता उसने 'स्ट्रीट गर्ल' में खूब दिखाई है), परन्तु जब वह काम छूट गया, तो उसे भूखों मरने की नौबत आ गई। फिर उसे नर्स का काम करना पड़ा। वह उस समय क्या जानती थी कि एक दिन सम्पत्ति उसकी दासी होगी।

नील हैमिल्टन की कशानी भी बड़ी कष्टापूर्ण है। यह अभिनेता प्रथम श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता, परन्तु दूसरी श्रेणी में वह अवश्य आता है। आजकल उसे लम्बे कॉन्ट्रैक्ट पर १५०० डॉलर प्रति सप्ताह का वेतन मिलता है। एक समय ऐसा था कि उसका पिता गरीबी के कारण उसके लिए जूते भी नहीं खरीद सकता था और उसे अपने पहाड़ी प्रदेश में नङ्गे पैरों घूमना पड़ता था।

और वह कष्ट-रस के अभिनय की विशेषज्ञा जादूगरनी, रुथ चैटरटन। तीन-चार वर्ष पूर्व उसकी दशा बड़ी कष्टापूर्ण थी। पति से अलग हो चुकी थी, रङ्गमञ्च पर की नौकरी छूट गई थी, जब में दो डॉलर से अधिक नथे और काम मिलने की कोई विशेष आशा भी न थी। इतने में सवाक् चित्रपटों की धूम मची। रुथ को फिर अवसर मिल गया। वह बोल सकती थी। बोलते तो सभी हैं, पर वह हृदय की भाषा बोल सकती थी। भावों को व्यक्त करने के लिए ही मार्नो उसे विधाता ने वाणी प्रदान की है। उसने कष्ट-रस का अभिनय करने में कमाल कर दिया है। 'मैडम एक्स', 'ए डॉक्टर्स सीक्रेट' आदि फ़िल्मों में उसने गज़ब का काम किया है। फलतः उसे वेतन भी गज़ब का मिलता है ७५०० डॉलर अर्थात् लगभग तीस हज़ार रुपए प्रति सप्ताह।



अब तक क्लार्क गेपल का नाम सभी पाठकों ने सुन लिया होगा। मीट्रो गोल्डविन मायर कम्पनी ने विज्ञापनो द्वारा इसका नाम खूब बढ़ा दिया है। इस कम्पनी की प्रायः प्रत्येक प्रसिद्ध अभिनेत्री के साथ फिल्मों में यह अभिनय कर चुका है। परन्तु जब पाँच वर्ष पूर्व वह हॉलीवुड आया था, तो उसकी जेब में एक पैसा भी न था और न किसी कम्पनी में उसकी कोई पूछ होती थी।

हास्यरस को पसन्द करने वाले दर्शकों ने लॉरेल-हार्डी के हास्यरस के फ़िल्म अवश्य देखे होंगे। जहाँ कहीं भी कोई सिनेमा अङ्गरेज़ी के फ़िल्म दिखाने के लिए होगा, वहाँ इसके फ़िल्म अवश्य दिखाए गए होंगे। लॉरेल आज बड़ा आदमी है और उसका बड़ा नाम है। एक दिन ऐसा भी था, जब लॉरेल चार्ली चैपलिन के साथ अमेरिका आया था और कुछ डॉलर प्रति सप्ताह पर ही रूमज पर उसके साथ काम करता था।

इसी प्रकार की कहानियाँ हैं रिचर्ड आरलेन, डेविड मैनर्न, जॉनी आर्लेन, रिता ला रॉय, रीजिस टूमी,

चार्ल्स बिकफ़ोर्ड, हैडा हॉपर, मॉरीन ओ सलोवान आदि की। फ़िल्मों ने इन्हे कहीं से कहीं ला विठाया है। ससार में न जाने ये सब कहाँ-कहाँ मारे फिरते, यदि इन्हें फ़िल्म कम्पनियों के विघाता न खोज निकालते। इनमें प्रतिभा थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु अब-सर न मिलने के कारण वह प्रतिभा बिना चमके ही लुप्त हो जाती।

इंग्लैण्ड और जर्मनी में भी इसी प्रकार बिना ऊँच-नीच के भेद-भाव के प्रतिभा की खोज की जाती है। माइलीन कैरोल, मारलीन दीत्रिच, बैरी बालफ़ोर, ईब्लिन जे आदि इसी प्रकार खोज कर सफलता और यश की ऊँची चोटी पर बैठाई गई हैं।

भारत में भी इसी बात की आवश्यकता है। अनेक प्रतिभावान् व्यक्ति बिपे पड़े हैं। उन्हें खोजने वाला चाहिए। खोजने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है। उस खोज में भेद-भाव, चापलूसी, खुशामद, रिश्तेदारी आदि को स्थान न मिलना चाहिए। ऐसा हुआ तो भारतीय सिनेमा-जगत में भी हमारे सामने कुछ ही दिनों में अच्छे नाम सुनाई पड़ेंगे।



निद्रा से—



[श्री० प्यारेलाल श्रीवास्तव 'सम्तोषी']

अब आँख-मिचौनी खेलो—
इन ललचाई आँखों से,
कर लो प्रेयसि ! तुम क्रीड़ा
इन अलसाई आँखों से।

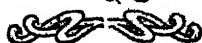
मृदु स्वप्निल मदिरा भर दो
इन रीती दो प्याली में,
यौवन की लाली ला दो
इस निशि काली काली मे ॥

सँसार नया हो मेरा—
अनुराग-उषा फिर आये,
मुसका-मुसका कर आशा
मृदु सोना तब बरसाये।

बन हृदय-रश्मि मिल जाये
रति-जल से प्रथम-प्रहर में,
अङ्कित हो 'उसकी' छाया—
जल की प्रति लहर-लहर मे।

अय अप्सरि ! तुम हो देती—
यह मुझे शान्त मधु-प्याली,
पर पाता हूँ मैं उसमें—
मादक मदिरा मतबाली।

मैं उस मदिरा के मद में
करता 'उसका' आलिङ्गन,
पागल हो शून्य-सुमन का
लेता फिरता हूँ चुम्बन।





कन्या-विक्रय की प्रथा के शिकार

एक सज्जन लिखते हैं :—

माननीय सम्पादक जी,

राजपूताने की तरफ खण्डेलवाल जैनियों में कन्या विक्रय का बड़ा प्रचार है। आधे से ज्यादा विवाह ऐसे होते हैं, जिनमें कन्या के पिता अपनी लड़की के बदले में दो से दस हजार तक की रकम वर से वसूल करते हैं। जो लोग बिना रुपया लिए लड़की का विवाह करते हैं, वे प्रायः कोई बहुत धनवान घर हूँदते हैं। इसके सबब से इस जाति में साधारण स्थिति के हजारों नवयुवक कारि रह जाते हैं, जिनमें से कितने ही विवश होकर अवैध उपायों का सहारा लेते हैं। इस समाज में शिचा का बड़ा अभाव है, खास कर स्त्रियाँ तो एकदम निरचरा होती हैं। इसलिए वे इस कुप्रथा का, जिसके कारण उनकी काँरी सन्तान के भावी सुख पर पानी फिर जाता है, कुछ भी विरोध नहीं करतीं। ऐसी हालत में जिन थोड़े से लोगों के हृदय में इस प्रथा के विरुद्ध घृणा का भाव उत्पन्न हो गया है और जो इस प्रकार का आचरण करना पाप समझते हैं, उनको बड़ी सुसीबत का सामना करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में मैं आपको अपने एक मित्र की कष्ट-कथा सुनाना चाहता हूँ। वे एक सुधार-प्रिय व्यक्ति हैं और कन्या-विक्रय की प्रथा को अपनी जाति का घोर कलङ्क समझते हैं। उन्होंने यह निरचय कर लिया था कि हम रुपया देकर विवाह न करेंगे। इसका नतीजा यह हुआ कि उनकी अवस्था ३७-३८ वर्ष की हो चुकी, पर अभी तक उनको काँरा ही रहना

पड़ा है। इस बलात ब्रह्मचर्य का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा पड़ा है और सब तरह सावधान रहने पर भी प्रायः बीमार होना पड़ता है। चिकित्सकों की सम्मति है कि जब तक विवाह न होगा, स्वास्थ्य का बिल्कुल ठीक हो सकना असम्भव है। इसके सिवा डाक-खाने की नौकरी के कारण उनको प्रायः इधर-उधर जाना पड़ता है और भोजन आदि के सम्बन्ध में भी बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है। इस कष्टपूर्ण स्थिति से छुटकारा पाने के लिए अब उनके सामने दो ही रास्ते हैं कि या तो दो-चार हजार रुपए देकर विवाह करें अथवा जाति के बन्धनों को तोड़ कर किसी अन्य जाति की लड़की या विधवा से विवाह कर लें। जैनियों की दूसरी उपजातियों में भी विवाह करने को वे तैयार हैं, पर इसका भी अभी तक इस जाति में प्रचार नहीं हुआ है। यदि कोई सज्जन इस सम्बन्ध में कोई अन्य श्रेष्ठ मार्ग बतला सकते हों अथवा उपयोगी सूचना दे सकते हों तो लिखने की कृपा करें। हमारे उक्त मित्र की मासिक आय १००) २० है और आर्थिक अवस्था भी सन्तोष-जनक है। वे अपने धार्मिक विचारों के कारण किसी जैन-मतावलम्बी वंश की कन्या या बाल-विधवा से विवाह करना अधिक पसन्द करेंगे। यदि ऐसा न हो सके तो किसी अन्य जाति की सुशीला और सदाचारिणी विधवा से भी पाणिग्रहण होना सम्भव है।

—एक जानकार

[जिस प्रकार की कुरीति का लेखक ने जिक्र किया है, उस तरह की कुरीतियाँ विभिन्न रूपों में



प्रायः सभी जातियों में पाई जाती हैं। इनके कारण व्यक्तियों को तो अपार कष्ट उठाना पड़ता ही है, देश और समाज की भी कम हानि नहीं होती। एक ओर बाल-विधवाएँ असीम कष्ट सहती रहती हैं, अथवा भ्रष्ट होकर कुल में दाग लगाती हैं और दूसरी ओर अनेक योग्य तथा कमाऊ युवक इच्छा के विरुद्ध अविवाहित रह कर अपना जीवन बर्बाद करते हैं। हम उक्त विवाहार्थी को सलाह देगे कि जात-पाँत के फेर में पड़ कर किसी कम उम्र की और सब प्रकार से अयोग्य लड़की के साथ विवाह करना और उसके लिए अपनी कष्ट से उपार्जित थोड़ी सी पूँजी को नष्ट कर देना बुद्धिमान्ता नहीं है। उनको उचित है कि किसी सजातीय अथवा विजातीय सद्गुण-सम्पन्ना युवती विधवा से विवाह करे, जिससे वास्तविक गृह-सुख प्राप्त हो सके। जो सज्जन इस विषय में किसी तरह की सहायता कर सकते हो अथवा कुछ जानना चाहते हों, वे हमारी मार्फत पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। सम्पादक 'चाँद']

बाल-हत्या प्रतिबन्धक गृह

श्रीमान् सम्पादक जी,

हमने 'हिन्दू-अनाथालय' कानपुर के अन्तर्गत, गत सन् १९२४ ईस्वी से एक 'बाल-हत्या प्रतिबन्धक गृह' नाम की संस्था स्थापित कर रखी है। यहाँ ऐसी क़ॉरी तथा विधवाएँ रखी जाती हैं, जिन्हें अवैध रूप से गर्भ रह जाता है और जिनको उनके घर वाले अपना पाप-कर्म छिपाने अथवा मिथ्या मान-मर्यादा के भय से घर से निकाल देते हैं। यहाँ उनको प्रसवकाल तक गुप्त रीति से रखा जाता है। बच्चा उनसे लेकर पाजा जाता है। वे यदि घर वापस जाना चाहती हैं, तो उनको घर भेज दिया जाता है अथवा योग्य वर के साथ उनका ब्याह करा दिया जाता है। सब बातें गुप्त रखी जाती हैं। स्त्रियों से भोजन आदि का कोई खर्च नहीं लिया जाता।

आपका, } मैनेजर, हिन्दू-अनाथालय
कन्हैयालाल वाशिष्ठ, } लाटूश रोड, कानपुर

मातृ-मन्दिर, खण्डवा (सी० पी०)

महाशय,

'आर्य-समाज, खण्डवा' की अधीनता में कुछ दिनों से 'मातृ-मन्दिर' नाम की एक संस्था की स्थापना हुई है, जिसका उद्देश्य—(१) बाल विवाह और वृद्ध-विवाह को रोकना, (२) हिन्दू-स्त्रियों तथा बच्चों को विधर्मी होने से बचाना, (३) बहका कर विधर्मी बनाए गए बच्चों तथा स्त्रियों को शुद्ध करके पुनः वैदिक-धर्म में लाना, (४) गर्भवती स्त्रियों को गर्भगत से बचाना और उनकी रक्षा करना, (५) स्त्रियों को योग्य शिक्षा देना, (६) विवाहेच्छुक विधवाओं का पुनर्विवाह कराना और (७) एतत् सम्बन्धी व्याख्यान तथा ट्रेक्ट आदि द्वारा प्रचार-कार्य कराना।

जो सज्जन इस उपयोगिनी संस्था की यथासाध्य सहायता करना चाहें, वे निम्नलिखित पते से कर सकते हैं :—

बिनीत,

डॉ० रघुनाथसिंह, एम० बी०, बी० एस०
प्रधान, आर्य-समाज, खण्डवा

बाल-विधवा की आवश्यकता

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर प्रणाम ! 'चाँद' के किसी गताङ्क में मैंने अपनी शादी के लिए 'बाल-विधवा की आवश्यकता' शीर्षक विज्ञापन छपवाया था। परन्तु अफ़सोस है कि मेरे पास इस सम्बन्ध में जितने पत्र आए हैं, सभी क़ॉरी कन्याओं के अभिभावकों के हैं। परन्तु मैं तो किसी बाल-विधवा से ही ब्याह करना चाहता हूँ। ताकि क्षत्रिय जाति में एक नवीन आदर्श उपस्थित कर सकूँ। इसलिए 'चाँद' के पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि यदि कोई सज्जन इस सम्बन्ध में मेरी कुछ सहायता कर सकें तो नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें।

आपका,

गिरधारीलालसिंह

C/o सम्पादक 'चाँद', इलाहाबाद



एक अग्रवाल वर की आवश्यकता

श्रद्धेय सम्पादक जी,

सादर नमस्ते ! मैं गोयल गोत्रीय अग्रवाल वैश्य हूँ। मेरी स्थिति साधारण है। मेरी एक चतुर्दश वर्षीया कन्या है, जो साधारण शिक्षित तथा गृह-कार्य में कुशल है। उसके विवाह के लिए मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। क्योंकि मेरे पास प्रचुर धन नहीं है और समाज के गण्यमान्य कुलीन सज्जन बिना थैली के राज़ी नहीं होते। मैं चाहता हूँ कि कोई शिक्षित, सदाचारी, स्वस्थ तथा साधारण स्थिति के सजातीय नवयुवक के साथ सम्बन्ध करूँ। परन्तु हमारे प्रान्त में ऐसे युवकों का अभाव है। इसलिए कृपा करके मेरा यह पत्र 'चाँद' में छाप दें, शायद अन्य प्रान्त में कोई ऐसा युवक मिल जाय।

भवदीय,

द्वारकादास चतुर्भुज चौधरी,
हिंगोली (निजाम स्टेट)

एक कन्या-भार-ग्रस्ता विधवा

पूजनीय सम्पादक जी,

सादर नमस्ते ! मैं कुर्मी जाति की अबला हूँ। मेरे पतिदेव को संसार छोड़े कई वर्ष बीत गए। मेरी कन्या व्याहने योग्य हो गई है। उसकी उम्र १६ साल की है और वह अपर प्राइमरी पास है। मैंने उसे गृह-कार्यों की भी अच्छी शिक्षा दी है। मैं उसके लिए एक ऐसा वर चाहती हूँ, जो पढ़ा-लिखा, सुन्दर, स्वस्थ, सदाचारी और स्वावलम्बी हो तथा बिना तिलक-दहेज लिए विवाह करने को तैयार हो। यदि कोई सज्जन ऐसे किसी पात्र का पता बता सकेंगे, तो मैं उनका बड़ा आभार मानूँगी।

आपकी,

एक दुःखिनी विधवा C/o शिवजी किशुनजी
किराना मर्चेण्ट, सरैयागञ्ज, मुजफ्फरपुर

पति या राक्षस ?

मध्य-प्रान्त से एक दुःखिनी ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

एक दुखिनी अबला का साष्टाङ्ग प्रणाम स्वीकृत हो। मेरी शादी बारह वर्ष पूर्व हुई थी। ससुराल में कम से

कम दस वर्ष से आई हूँ। जब मैं ससुराल आई, तब मेरे पति विद्याध्ययन में मशगूल थे। छः वर्ष ससुराल में मैंने ज्यों-त्यों बिता दिए। इसी दरमियान मेरे माता-पिता ने सोचा कि दामाद लड़की की कुछ फ़िकर ही नहीं करता है, अतः इसका पुनर्विवाह कर देना चाहिए। जब मैंने उनकी इस प्रकार की नीयत देखी तो मैं उनसे झगड़ कर अपने ससुराल चली आई और सास से सब हाल कहा। सास ने मुझे अपने जेष्ठ के साथ मेरे पति-देव के पास भेज दिया। इसी समय मुझे गर्भ रह गया। इसलिए मजबूरन पतिदेव को छोड़ना पड़ा। प्रसव-काल पिता के यहाँ व्यतीत हुआ। बाद में मैं ससुराल आई। लेकिन मेरे पिता जी के अस्वस्थ होने के कारण मुझे शीघ्र ही फिर उनके यहाँ जाना पड़ा। उस समय मेरे पिता के नाम से मेरे पतिदेव का पत्र आया, जो कटु वाक्यों से परिपूर्ण था। बस, आवेश में आकर पिता ने ननदोई के साथ मुझे मेरे पतिदेव के पास भेज दिया।

सम्पादक जी, इस मर्तबा जब से मैं ससुराल आई हूँ, तब से एक दिन भी ऐसा नहीं गया, जिस रोज़ मुझ पर लात, जूते, धूँसे, पथर, ईंटे, लकड़ियाँ वगैरह की वर्षा न हुई हो। अनेक समय तो मैं बेहोश तक हो गई। सिर कई मर्तबा फूटा, आँखें फूटते-फूटते कई मर्तबा बर्चीं, पाँव और कनपटी वगैरह अङ्ग भी कई मर्तबा फूटे, जिनके ज़ख्म महीनों पर्यन्त मुझे तकजीक देते रहे और जिनके दाग मेरे बदन पर मौजूद हैं। मारते वक्त पतिदेव के हाथ में जो वस्तु आ जाती है, उसी से बुरी तरह पीटते हैं। मैं मारने का कारण पूछती हूँ, तो और भी अधिक मार पड़ती है।

मेरे एक पुत्र है। उसकी उम्र सिर्फ २ साल की है। उसके साथ भी पतिदेव का वही व्यवहार है। आप उसे कोई वस्तु लाने को कहते हैं या और कोई अन्य आँर्डर देते हैं, पर वह बेचारा तो अभी बोल भी नहीं सकता, फिर समझ कहाँ से सकता है ? इसलिए वह नादान बच्चा आपके आँर्डर की तामील नहीं कर सकता, तो उस पर अनाप-शनाप मार पड़ती है। कई मर्तबा तो उसके दोनों हाथ पकड़ कर आठ-आठ, दस-दस फ़ीट के फ़ासले तक फेंक दिया, जिससे वह कई वक्त बेहोश हो गया। कई वक्त उसे फुटबॉल की तरह कीक मार कर फेंक दिया। पुत्र की ऐसी कसूरानजक हालत देख क



भला कौन सी कठोर-हृदया माता होगी, जो और कुछ नहीं तो रुदन भी न करेगी ? परन्तु अगर मैं ऐसी स्थिति में भी रुदन करती हूँ, तो झुरी तरह से पीठी जाती हूँ।

जबके की ऐसी हालत जब मुझसे न देखी गई, तो मैंने उसे सास जी के पास पहुँचा दिया। इसलिए अब पुत्र के हिस्से की भी मार मेरे ही हिस्से में आ गई है।

मैं अपने पिता को सखावस्था में ही छोड़ कर आई थी। उन्होंने मरते वक्त पति को तार भेजा कि मैं मरणासन्न अवस्था में हूँ। तुम अपने बच्चे और स्त्री को लेकर जल्द आओ। परन्तु न तो स्वयं गए और न मुझे जाने दिया। अगर अड़ोस-पड़ोस के सज्जन समझते हैं, तो वे सोचते हैं कि मैंने उनसे कहा है। इसलिए मुझे और भी अधिक त्रास देते हैं।

सम्पादक जी, अपने पति की गुणावली और अपने कष्टों का कहाँ तक बयान करूँ। अगर सविस्तर बयान करूँ तो एक पुस्तक तैयार हो जावे। इसलिए अन्य बातों का वर्णन न करके एक छोटी सी बात आपके सामने रखती हूँ।

प्रातः और सायंकाल चूल्हा जलाने के लिए मुझे सिर्फ दो काँडी दियासलाई की मिलती हैं। अगर इनसे चूल्हा नहीं सुलगता तो मुझे अपना सर फुटाने के लिए तैयार रहना पड़ता है।

इन सङ्कटों से छुटकारा पाने के लिए कई मर्तबा दिल में यह विचार आया कि आत्महत्या करके जीवन-लीला समाप्त कर दूँ, मगर अभी तक मेरे पति के एक मित्र सान्त्वना देते आए हैं, पर अब वे भी विवश हैं।

मेरे पतिदेव को मेरी चाल-चलन खराब मालूम पड़ती हो तो वैसा भी कोई कारण नहीं है। क्योंकि दिन भर मैं अपने मकान में बन्द रहती हूँ। मकान में कोई शरस पतिदेव की गैरमौजूदगी में आ भी नहीं सकता। क्योंकि दरवाज़े में ताला लगा रहता है और मैं दिन भर झैदी की तरह अपने घर में पड़ी रहती हूँ। इससे और त्रास से मेरी तन्दुरुस्ती भी खराब हो रही है। शरीर का रक्त पाण्डुरोगी जैसा हो रहा है। अगर अधिक समय तक ऐसी स्थिति रही, तो मैं अनेक रोगों का गृह बन कर मृत्यु का आहार हो जाऊँगी।

पतिदेव का आचरण अन्यत्र सब कहीं अच्छा है। वह मादक द्रव्यों को छूते तक नहीं। फिजहाल नौकरी कर रहे हैं। मगर घर में आते ही रौद्ररूप धारण कर लेते हैं, जिससे दोनों प्राणियों को सुख नहीं है।

सम्पादक जी, अपनी तकलीफें कहाँ तक गाऊँ, वे अपार हैं। इसलिए इतना ही कह कर बन्द करती हूँ। कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे मैं इन तकलीफों से छुड़ी पा सकूँ।

आपकी

× × ×

[इस अभागिनी अबला का पत्र पढ़ कर हमें तो रोमाञ्च हो आया। धिक्कार है ऐसे समाज को, जिसमें ऐसे राजस-प्रकृति मनुष्य हैं। इस अबला ने अपने पत्र में अपने पति के मित्र महोदय का जिक्र किया है। यद्यपि हमें विश्वास नहीं होता कि कोई भला आदमी ऐसे नीच-हृदय मनुष्य का मित्र होगा, तथापि इन सज्जन से हमारी प्रार्थना है कि वे अड़ोस-पड़ोस वालों की सहायता से इस मामले को अपने मित्र नामधारी जीव के समाज के सामने रखें। उसे अपनी स्त्री और बच्चे के साथ सहृदयता का व्यवहार करावे को बाध्य कराएँ, और अगर इससे काम न चले तो उसे समाज तथा अदालत द्वारा दण्ड दिलाने की चेष्टा करे। इस पत्र से हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि यह स्त्री जिस समाज की है, उसमें पुनर्विवाह प्रचलित है। यदि ऐसा है तो इसे चाहिए कि अपने तथा अपने मासूम बच्चे के कल्याण के लिए अपना पुनर्विवाह कर ले।

—सम्पादक 'चाँद']

✻ ✻ ✻

एक स्त्री की आकांक्षा

बुलन्दशहर जिले से एक देवी ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते।

आपके मासिक पत्र 'चाँद' का चिट्ठी-पत्री सम्बन्धी शीर्षक कई बार मेरी निगाह से गुज़रा है। जिससे ज्ञात

होता है कि आप हर दुखी को अपनी नेक सलाह देकर उसका दुःख निवारण करते हैं। इसलिए मैं भी अपनी कहानी आपके सामने पेश करती हूँ। वैसे तो मुझे कोई दुःख नहीं है। मेरे घर वाले मध्यम श्रेणी के हैं, ऐसी दशा में हो सकता था कि मैं अपना जीवन सुख-चैन से गुज़ारती, किन्तु मेरे दिल में देश-सेवा की अग्नि हमेशा धधकती रहती है। महात्मा जी के घोर व्रत ने तो इस अग्नि पर धी का काम किया है और अब मैं इतनी मजबूर होगई हूँ कि इसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान भी करने को तैयार हूँ। मेरी इच्छा है कि अपना जीवन हरिजन-सेवा के लिए अर्पण कर दूँ। परन्तु मेरे पतिदेव तथा अन्य सम्बन्धी मुझे ऐसा करने की आज्ञा कब दे सकते हैं? मेरे बार-बार प्रार्थना करने पर भी 'नहीं' में ही जवाब मिलता है। इसके अलावा मेरी इच्छा को दबाने के लिए वे लोग मेरे साथ व्यवहार भी सख्ती का करने लगे हैं और मुझ असहाय अबला को अपने स्वार्थ के लिए बन्दी बनाए रखना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। इधर मेरी इच्छा दिन प्रति दिन मुझे देश-सेवा के लिए विवश करती जा रही है। मेरी आँखों में दुनिया के सुख का कुछ भी मूल्य नहीं रह गया है और अब मुझे यह मालूम होने लगा है कि मैं यह कार्य अपने पति इत्यादि से बिना सम्बन्ध तोड़े न कर सकूँगी। अच्छा तो अब मेरे सामने दो मार्ग हैं, एक पति की आज्ञा मान कर घर में सबना और दूसरा अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करना। आपकी राय में मुझे कौनसा मार्ग ग्रहण करना चाहिए और वह किस प्रकार? यदि आप मुझे दूसरा मार्ग, जैसी कि आशा है, ग्रहण करने दें तो कृपया लिखिएगा कि मैं यह काम किस जगह और किस संस्था द्वारा अच्छी तरह कर सकती हूँ।

आपकी,

—सुनहरी देवी

[इस देवी को कुछ परामर्श देने से पहले हम इसके पतिदेव की सेवा में यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि वे इसके लिए गौरव का अनुभव करे कि उनकी स्त्री देश-सेवा जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए किञ्चित् अधिकार चाहती है। उन्हें चाहिए कि अपनी स्त्री की इस आकांक्षा की पूर्ति

में पुरानी रुढ़ियों का ख़याल छोड़ कर उदारतापूर्वक उसकी सहायता करे। परन्तु यदि ऐसा करने का साहस न हो, तो कम से कम अपनी ओर से दी गई बाधाओं को तो फौरन ही उठा ले। देवी जी को हमारी सलाह है कि अगर भरोसक अपने पति तथा परिवार वालों को समभावुक्ता कर, उनकी अनुमति लेकर हरिजनो की सेवा करे तो बेहतर होगा, अन्यथा उनका उद्देश्य सराहनीय है। अपने मार्ग की समस्त बाधाओं का साहसपूर्वक सामना करती हुई भी वे अपने उद्देश्य की सिद्धि में लग सकती हैं। हमारी समझ में वे अगर महात्मा गाँधी से परामर्श लेकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो सके तो और भी अच्छा होगा। उन्हें चाहिए कि महात्मा जी के स्वस्थ हो जाने पर उन्हें एक पत्र लिखे और उन्हीं के आदेशानुसार हरिजन-सेवा सम्बन्धी कार्य में लग जायें।

—सम्पादक 'चाँद']

❦

❦

❦

दो हरिजन विद्यार्थी

प्रिय सम्पादक महोदय,

सप्रेम नमस्ते !

'हरिजन'-समाज में शिक्षा का अत्यन्त अभाव है, यह आपसे अविदित नहीं। इसका मुख्य कारण उसकी हीन आर्थिक अवस्था है। जिनके पास यथेष्ट धन है वह अपने बालकों को अज्ञानता-वश शिक्षा नहीं दिलाते और जो शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं, मेधावी हैं और प्रतिभा-सम्पन्न हैं; उन्हें साधन नहीं मिलते। मैं ऐसे स्थानीय दो विद्यार्थियों के विषय में निवेदन करना चाहता हूँ, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु आर्थिक सङ्कट से विवश हैं। एक हरिजन विद्यार्थी, जिनका नाम श्री० बाबूजाल जी जाटव है, उन्होंने आज से ३ साल पूर्व मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। तदुपरान्त दिल्ली की एक प्राइवेट संस्था से सब-ओवरसियरी भी पास कर ली। आपका विचार है और प्रबल कामना है कि इजिनियरी सीखें; परन्तु विवशता है। आपके पूरा

परिवार है—माता, पिता, भाई, बहिन, बही। सबका भार आप ही पर है। अन्त में जब आपको कहीं जीविका के लिए साधन न मिला, तो एक ग्राहमरी पाठशाला में १२॥) रुपए मासिक पर नौकरी करना स्वीकार कर लिया।

इन विद्यार्थी ने प्रायः सभी दलितोद्धारक संस्थाओं, सभाओं इत्यादि से लिखा-पढ़ी की, अपनी कष्ट-गाथा बतलाई, परन्तु कहीं से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला।

श्रीमान् सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला से भी छात्र-वृत्ति के लिए प्रार्थना की, परन्तु वहाँ से भी निराश होना पड़ा। 'अखिल भारतीय हरिजन सेवक सङ्घ' दिल्ली तथा उसकी सयुक्त प्रान्तीय शाखा 'इलाहाबाद सेवक-सङ्घ' से भी निवेदन किया गया, परन्तु वहाँ भी इन दीन विद्यार्थी का निवेदन स्वीकार न किया गया। अनेक नेताओं ने वचन दिया, परन्तु निष्फल। आज-कल यह विद्यार्थी अत्यन्त सङ्कट में हैं। खेद है कि मैं किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देने में असमर्थ हूँ। इसलिए मैंने आपका सहारा लिया है। आप इसे अपने 'चाँद' में प्रकाशित करने की कृपा करें। 'चाँद' भारत भर में पढ़ा जाता है, कोई उदार-हृदय, परोपकारी, दानवीर इन विद्यार्थी की आर्थिक सहायता कर पुण्य लाभ करेंगे। यदि कोई Building Construction सम्बन्धी नौकरी मिल जाय तो अच्छा हो।

दूसरे विद्यार्थी कानून पढ़ रहे हैं। इन विद्यार्थी के संरक्षक सामान्य स्थिति के पुरुष हैं। परन्तु उन्होंने अपने ही धन से इतनी उच्च शिक्षा दिलाई है। अब तक उन्होंने किसी से एक पाई तक की आर्थिक सहायता नहीं ली। परन्तु अब आगे सहायता करने में संरक्षक असमर्थ हैं। केवल एक साल शेष है। यदि इस एक साल के लिए आर्थिक सहायता मिल जाय, तो सहज ही हरिजन-समाज में एक वकील तैयार हो जायगा। जो दयालु तथा दानशील महोदय हरिजन-आन्दोलन में सहजों रुपए खर्चा रहे हैं, क्या वे इस ओर ध्यान देंगे? मेरी सम्मति में यह ठोस कार्य है और इससे सच्चा उद्धार होगा। विद्या-दान सब दार्ष्टों से श्रेष्ठ है। इन दूसरे विद्यार्थी का नाम रामनारायण जाटव है।

—'यादवेन्दु' बी० ए०
राजामण्डी, आगरा (यू० पी०)

[हरिजनो में ही नहीं, वरन् सभी जातियों में ऐसे बहुत से विद्यार्थी हैं, जो अर्थभाव के कारण नहीं पढ़ सकते। साथ ही देश के दानियो और धनवानो के लिए भी यह सम्भव नहीं कि वे ऐसे सभी विद्यार्थियों की सहायता कर सकें। परन्तु हरिजनो का प्रश्न विशेष महत्वपूर्ण प्रश्न है, इसलिए हरिजन-सेवा-व्रती संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे ऐसे उत्साही हरिजन विद्यार्थियों की इस शर्त पर सहायता करें कि पढ़-लिख कर जब वे कुछ उपार्जन करने के लायक हो, तो अपने जैसे गरीब हरिजन विद्यार्थी की यथासाध्य सहायता करें। इस सम्बन्ध में कोई नियम बनाकर उनसे प्रतिज्ञा भी करा ली जावे। आशा है, इस प्रकार की संस्थाएँ इस ओर ध्यान देगी।

—सम्पादक 'चाँद']

✻ ✻ ✻

गङ्गा और मदार की जोड़ी

मध्यप्रान्त के एक बड़े शहर से एक सज्जन ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

बन्देमातरम् ।

मैं एक सीधा-सादा, थोड़ी सी हिन्दी जानने वाला मनुष्य हूँ और ३५) महीने की नौकरी करता हूँ। परन्तु मेरी धर्मपत्नी जी हिन्दी और अङ्गरेजी पढ़ी हुई हैं। हिन्दी में टूटी-फूटी कविता भी कर लेती हैं। उन्हें अङ्गरेजी रहन-सहन और अङ्गरेजी पोशाक से विशेष प्रेम है, और मैं हूँ स्वदेशी का प्रेमी, भारतीय वेश-भूषा को पसन्द करने वाला। मेरी माहवारी तबस्वाह ३५) है। अब यदि मैं उनके आदेशानुसार चलूँ तो ३५०) माहवार में भी काम न चले। अब तक मैं उनके आदेशानुसार चलता रहा, जिसका परिणाम यह हुआ है कि मुझ पर ३००) का ऋण है। भगवान जाने वह कैसे बढ़ा होया। मैंने सुख की आशा से विवाह किया था, परन्तु परिणाम उलटा ही हुआ। कभी-कभी दिल में आता है कि ऐसी स्त्री को छोड़ कर कहीं चला जाऊँ। गाँव के सभी स्त्री-पुरुष उनकी तो बड़ी प्रशंसा करते हैं और मुझे कोई



पूछता भी नहीं। 'चाँद' के पाठक शायद मेरी यह चिट्ठी पढ़ कर हँसेंगे, परन्तु मुरु पर जो बीतती है, वह तो मैं ही जानता हूँ। अब आप कृपा करके बताइए कि मैं क्या करूँ ?

आपका,

—एक अभागा

[वास्तव में इस भले आदमी की समस्या विषम है। परन्तु 'गले मढ़ी ढोल बजाये सिद्ध।' अयोग्य सम्बन्ध का परिणाम तो यह होना ही चाहिए। खैर, अब उपाय यही है कि ३५) माह-वार लाकर देवी जी को सौप दे और कह दे कि इसी में चाहे अङ्गरेजी लिबास पहनो या देशी। देवी जी अगर पढ़ी-लिखी हैं, तो उन्हें स्वयं भी कुछ उपार्जन करना चाहिए और बेचारे पति की कुछ सहायता करनी चाहिए। आखिर कर्ज के भरोसे साहबी ठाठ कब तक चल सकेगा ?

—सम्पादक 'चाँद']

✻ ✻ ✻

एक विचारणीय प्रस्ताव

प्रिय महोदय,

आपके 'चाँद' में अक्सर बेकार सज्जनों के पत्र छपा करते हैं। शायद 'चाँद' के उदार-हृदय पाठकों द्वारा उनमें से कुछ लोगों को थोड़ी-बहुत सहायता भी मिली है। परन्तु देश की असाधारण रूप से बड़ी हुई बेकारी को देखते हुए यह आशा व्यर्थ है कि ऐसे सभी लोगों को 'चाँद' के पाठक सहायता दे सकेंगे। इसलिए मेरी राय है कि देश के किसी प्रमुख स्थान में या प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख स्थानों में कई ऐसी संस्थाएँ क्रायम की जायें, जिनका उद्देश्य बेकारों को उनकी योग्यतानुसार काम दिलाना हो। ये संस्थाएँ अपने पास एक रजिस्टर रखें और उसमें बेकारों के पते तथा उनकी योग्यता दर्ज रहे। संस्था के उदार-हृदय और सेवा-व्यवधारी सञ्चालक चेष्टा करके उन्हें काम दिलाना करें या दिलाने की कोशिश करें। मेरे खयाल में ऐसी संस्थाओं द्वारा बेकारों का अवश्य ही कुछ न कुछ उपकार हो जाएगा। आशा है, आप अपने पाठकों का ध्यान मेरे इस प्रस्ताव की ओर आकर्षित करेंगे।

परन्तु जब तक कोई ऐसी संस्था नहीं बन जाती, तब तक के लिए बेकार भाई-बहिन अपनी योग्यता के साथ अपने पते लिख कर मेरे पास नीचे लिखे पते पर भेज दें। मैं यथासाध्य उन्हें काम दिलाने की चेष्टा करता रहूँगा।

—आपका

मैनेजर, सेवासदन

पोस्ट भोली, ज़िला गया

[इस प्रस्ताव के औचित्य में भला किसे सन्देह हो सकता है। निस्सन्देह यदि कलकत्ता, बम्बई, पटना, बनारस और कानपुर आदि देश के प्रधान और प्रमुख स्थानों में ऐसी संस्थाएँ स्थापित हो जायें, तो देश के बेकार भाइयों का बहुत कुछ उपकार हो सकता है। परन्तु इसके लिए पत्रों में काफी आन्दोलन होना चाहिए। उपर्युक्त पत्र के उदार-हृदय लेखक महोदय को चाहिए कि इस सम्बन्ध में हिन्दी तथा अङ्गरेजी पत्रों के सम्पादकों से लिखा-पढी करे और उनके द्वारा आन्दोलन कराने की चेष्टा करे। साथ ही 'चाँद' के पाठकों से भी हमारा निवेदन है कि वे इस प्रस्ताव पर समुचित रूप से विचार करे और अपने स्थानों में इस तरह की संस्थाएँ स्थापित कराने की कोशिश करें।

—सम्पादक 'चाँद']

✻ ✻ ✻

एक दुखी विधुर

मान्यवर सम्पादक जी, सादर प्रणाम।

मैं आपका 'चाँद' सादर और प्रेम के साथ पढ़ा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि समाज-सेवा आपका प्रधान लक्ष्य है। उसी नाते मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं 'चाँद' का ग्राहक भी हूँ। मित्रों में 'चाँद' की ग्राहक-संख्या बढ़ाने की कोशिश में रहता हूँ। आप दीन-दुखियों को उचित सन्तोषप्रद सलाह देते हैं। इसी आशा से मैं भी अपना मार्मिक दुख प्रकट करता हूँ।

जुलाई, १९३२ ई० में मेरी धर्मपत्नी मुझे जोड़ कर स्वर्गप्राप्त सिधार गई। उनको हृदय की धड़कन की



बीमारी थी। डॉक्टर की गलती से पूरा इलाज भी नहीं करा सके। यहाँ तक कि मरने के समय एक घूँट पानी माँगने पर भी नहीं दे सके। इन बातों का खयाल करके दिल में एक तरह की हूक सी उठती है। आँखों से आँसू गिरने लगता है।

मेरे चार लड़के और दो लड़कियाँ हैं। लड़कियों की शादी हो चुकी है। बड़े लड़के की शादी भी हो चुकी है। कुछ प्रेमी मित्र मुझे दूसरी शादी करने की सलाह देते हैं। कुछ बूढ़े आदमी भी दूसरी शादी कर लेने के लिए कहते हैं। मेरी उम्र करीब ३८ वर्ष की है। हमारी जाति में १० या ११ वर्ष से ज्यादा उम्र की लड़की नहीं मिलती हैं। हाँ, विधवाएँ मिलती हैं, सो भी जिसको केवल एकाध सन्तान हो गई रहती है। मेरा चित्त प्रेम के लिए कभी-कभी उद्भिन्न हो उठता है। मैं क्या करूँ, कुछ सूझ नहीं पड़ता। क्या सन्तोष करके जीवन बिता दूँ या दूसरी शादी कर लूँ?

आपका,

—एक ग्राहक

[पत्र-प्रेषक महोदय के चार लड़के और दो लड़कियाँ हैं। बड़े लड़के की बहू भी आगई है। गार्हस्थ्य सुख का उपभोग हमारे खयाल में अच्छी तरह कर चुके हैं। अब यदि अपना शेष जीवन विधुर-जीवन के रूप में ही व्यतीत करें तो क्या बुरा है? परन्तु लक्षणों से मालूम होता है कि इनके मित्रगण और शुभचिन्तक वृद्ध महोदय-गण ऐसा न होने देंगे। इसलिए हमारी राय है कि ये किसी विधवा से ब्याह कर ले। समाज में जब विधवाएँ मिलती ही हैं, तो ३८ वर्ष की उम्र में किसी कम उम्र की कन्या से विवाह करके उसकी जिन्दगी बरबाद करना उचित नहीं। विधवा अगर एक लड़के की माँ भी हो, तो कोई हानि नहीं, क्योंकि आप भी तो छः लड़के-लड़कियों के पिता हैं।

—सम्पादक 'चौद'

वेजोड़ विवाह का परिणाम

श्रीमान् सम्पादक जी, नमस्ते!

आप 'चौद' द्वारा न जाने कितनों को सान्त्वना देते रहते हैं। क्या आप मुझे उससे वञ्चित रखेंगे? मैं उन मनुष्यों में हूँ, जो पृथ्वी पर भार-स्वरूप हैं। किसी समय मेरा ससार भी स्वर्ण का था। परन्तु अब? अब वह मिट्टी में मिल गया है। मैं बारह वर्ष की अवस्था से ही विवाहित हूँ। परन्तु विवाहित जीवन प्रारम्भ हुआ १२ वर्ष की आयु से एक निरन्तरा समवयस्का के साथ। मैं कितना स्वस्थ होऊँगा, आप इसी से पता लगा सकते हैं। मैं उस समय स्कूल का विद्यार्थी था। पत्नी का आचार, विचार, व्यवहार तथा रूप इत्यादि देख कर बड़ा दुःख हुआ। परन्तु यह सोच कर सन्तोष हुआ कि 'शिष्टा' से सब दोष दूर हो जायेंगे। मैं तभी से अपनी पढ़ाई की ओर कम ध्यान देकर भी उसे शिक्षा देने लगा। परन्तु एक मूर्खा—मूर्खाओं के वायु-मण्डल में रही हुई स्त्री शिक्षा की कैसे क्रूर करेगी। कभी लज्जा का बहाना करती तो कभी समय न मिलने का। परिणाम यह हुआ कि मेरी पढ़ाई भी चौपट हुई और वह ज्यो की ल्यो बनी रही—'भैंस के आगे बीन बजाए, भैंस खड़ी पगुराय।' मैं मुश्किल से प्रथम वर्ष की श्रेणी तक पढ़ सका। लक्ष्मी देवी उसके चरण आते ही घर से धीरे-धीरे हट रही हैं। दास-दासियों को विवाह के दूसरे ही वर्ष श्रीमती महामारी सपरिवार घसीट ले गई। माँ तथा घर की अन्य स्त्रियों ने इस अवनति का कारण उसके एक चिह्न को माना है, जो उसके शरीर में विद्यमान है। वे इसके कई उदाहरण भी देती हैं। मैं भी कभी-कभी भ्रम में पड़ जाता हूँ; परन्तु जब मैं तर्कशास्त्र से काम लेता हूँ, तो कोई सकारण सम्बन्ध नहीं मालूम होता है। सम्पादक जी, आप क्या समझते हैं? वास्तविक जगत में क्या शुभाशुभ चिह्न भी कोई वस्तु है? वे मुझे दूसरा विवाह करने के लिए जोर दे रही हैं। परन्तु मैं ऐसा करना नहीं चाहता और न करूँगा। एक तो मेरा स्वास्थ्य ऐसा है कि विवाह करना तो क्या, उसका नाम भी न लेना चाहिए। दूसरे विवाह से भाग्य-परिवर्तन की आशा करनी मूर्खता है। सबसे अधिक दुःख तो मुझे उसके मूर्खा और गँवार होने के

कारण है। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। मेरे पत्र को ध्यान से पढ़ कर उचित अनुमति देने की कृपा कीजिएगा। कष्ट के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

आपका,

—एक ग्राहक

[शुभाशुभ चिन्हों पर विश्वास करना चाहिए या नहीं, यह एक जटिल प्रश्न है। क्योंकि ससार के प्रायः सभी देशों में हस्तरेखा आदि चिन्हों पर विश्वास करने वाले करोड़ों मनुष्य हैं। परन्तु हमने जहाँ तक विचार किया है, इस विश्वास का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। जो लोग विश्वास करते हैं, वे 'विश्वासम् फलदायकम्'—इस कहावत के ही पक्षपाती हैं। हमारे देश में घोड़ों के शरीर के चिह्नों के सम्बन्ध में बड़ी छानबीन की जाती है। परन्तु अङ्गरेज ऐसे चिन्हों पर विश्वास नहीं करते। इसलिए हम तो इस युवक को यही सलाह देंगे कि उन्हें ऐसी थोथी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए और एक बार फिर अपनी स्त्री को कुछ पढ़ाने-लिखाने की चेष्टा करनी चाहिए। एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करना तो नितान्त मूर्खता होगी। युवक को ऐसे चहले में नहीं फँसना चाहिए।

—सम्पादक 'चाँद']

एक ज्योतिषी का पत्र

श्रीयुत सम्पादक जी,

'चाँद' के 'चिट्ठी-पत्री' स्तम्भ में प्रायः यही देखने को मिलता है कि कई एक जोड़े वास्तविक वैवाहिक सुख से वञ्चित रहते हैं। उसके कई एक कारण हो सकते हैं।

हमेशा की तरह डॉक्टर रोग बतलाता है, वैद्य भी कुछ ऐसी ही बातें कहता है और ज्योतिषी ग्रहों की कुदृष्टि की प्रधानता मानता है। कुछ भी हो, आजकल १२ प्रति सैकड़ा ऐसे मनुष्य और स्त्रियाँ हैं, जिनका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं है। मेरी भी एक निराबी 'चिट्छाइट' है।

मैं कोई व्यवसायी हस्तरेखा विशारद नहीं हूँ, पर इसको आज तीन वर्षों से कार्य में ला रहा हूँ। मैं सिर्फ सामुद्रिक के ज़ोर से ही जीवन को सुमधुर तथा सुख की स्थापना करने की घोषणा करता हूँ। मैंने सैकड़ों मनुष्यों का जीवन इस सामुद्रिक की बुनियाद पर पड़ा है और उसको सुधारने के उपाय बतलाए हैं।

ऐसे जोड़ों से जिनको सामुद्रिक पर विश्वास है अथवा जिन्हें मेरे निवेदन का कुछ खयाल हो, प्रार्थना है कि वे अपने दोनों हाथों की छाप, जो बिलकुल साफ़ होनी चाहिए, मेरे पास भेज दें। मैं उनसे किसी तरह की फीस या भेंट नहीं चाहता। वे सिर्फ परिणाम भेजने के लिए टिकट रख दें।

कृपया इस पत्र को 'चाँद' में छाप दीजिए।

भवदीय,

अनन्तलाल चौबे

स्टेट एकाउन्टेन्ट, काँकेर

ज़िला रायपुर, सी० पी०

[हमारा स्वयं हस्तरेखा आदि पर विश्वास नहीं है। हमने केवल पाठकों के मनोरञ्जनार्थ इस पत्र को प्रकाशित कर दिया है। जिन्हें विश्वास हो वे अपना हस्तचिन्ह भेज कर चौबे जी की परीक्षा कर सकते हैं।

—सम्पादक 'चाँद']





चिकित्सा-चन्द्रोदय (चौथा भाग) —
लेखक, बाबू हरिदास वैद्य ; प्रकाशक, हरिदास
ऐण्ड कम्पनी, मथुरा । पृष्ठ-संख्या प्रायः ७०० ,
मूल्य अजिल्द का ४) और सजिल्द का ५),
छपाई साफ और कागज चिकना ।

इस अपूर्व चिकित्सा-ग्रन्थ के लेखक श्री० हरिदास जी वैद्य चिकित्सा-शास्त्र के पण्डित, अनुभवी वैद्य, अङ्गरेजी, फ़ारसी और संस्कृत आदि भाषाओं के लेखक, चतुर व्यवसायी और हिन्दी-भाषा के ख्यातनामा लेखक तथा प्रकाशक हैं । आपने विशद यश-ख्याति के साथ ही पुस्तकों, औषधियों तथा छापेखाने के व्यवसाय द्वारा यथेष्ट सम्पत्ति भी अर्जित की है । थोड़े शब्दों में आप एक आदर्श व्यक्ति हैं । प्रस्तुत पुस्तक—चिकित्सा-चन्द्रोदय—आपके ही कठिन परिश्रम का फल है । यह विशाल ग्रन्थ सात भागों में विभक्त है और अब तक इसके तीन संस्करण हो चुके हैं । इस समय इसका केवल चौथा भाग ही हमारे सामने है और उसी के आधार पर हम यह निस्सङ्कोच कह सकते हैं कि विद्वान् लेखक ने इसमें चिकित्सा-सम्बन्धी सभी विषयों का समावेश पूर्ण विस्तार के साथ कर दिया है, जिसे पढ़ कर साधारण भाषा-ज्ञान रखने वाला मनुष्य भी आयुर्वेदाचार्य की सी योग्यता प्राप्त कर सकता है । इसमें नाडी-ज्ञान, रोगों का निदान, उनकी चिकित्सा, औषधियाँ बनाने की विधि, औषधियों का सशोधन तथा धातुओं का भस्म आदि बनाना कोई ऐसा विषय नहीं है, जो छूट गया हो ।

इस पुस्तक का यह चौथा भाग, जो इस समय हमारे सामने है, बड़े ही महत्व का है । क्योंकि इसमें धातुचीयता सम्बन्धी रोगों का विशद वर्णन और उनकी

अनुभूत चिकित्सा बतलाई गई है, जिसकी दुर्भाग्यवश हमारे देश के अधिकांश नवयुवकों को अत्यन्त आवश्यकता है । आज हमारे देश के युवक-समुदाय का एक बहुत बड़ा भाग अपनी कुटेव और बुरी सङ्गति के फल से गर्मी, सूज़ाक, शीघ्रपतन, प्रमेह और नामदी आदि रोगों का शिकार बन रहा है । ऐसे नवयुवक लजावश अथवा धनाभाव आदि के कारण किसी अच्छे वैद्य से अपने रोग की दवा नहीं करा सकते और नीम हकीमों तथा इश्तहारवाज़ धूर्तों के मायाजाल में फँस कर, निकम्मी औषधियों का सेवन कर आरोग्यता लाभ करने की रही-सही आशा पर भी पानी फेर लेते हैं । चिकित्सा-चन्द्रोदय का यह चौथा भाग ऐसे जीवन-मृत रोगियों के लिए बड़े काम की चीज़ है । इसे अच्छी तरह पढ़ कर वे स्वयम् अपनी दवा कर सकते हैं । क्योंकि विद्वान् लेखक ने इसमें सब प्रकार के प्रमेहों और नपुंस्क-कृव के निदान और लक्षण अथवा पहिचान आदि अत्यन्त सीधी-सादी भाषा में लिख दिया है । ताकि हिन्दी भाषा का थोड़ा ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी आसानी से समझ सके । इसमें प्रमेह रोग का वर्णन, नपुंसकता और धातुरोग, धातुओं का शोधन और मारण, उपधातुओं और विषों को शुद्ध करने की विधि, नवीन चिकित्सकों और रोगियों की सुविधा और जानकारी के लिए बहुत सी नई-नई बातें, धातु-सम्बन्धी रोगियों की जानकारी के लिए कितने ही फलों के दोष-गुण तथा सैकड़ों परीक्षित नवीन तुल्य दिए गए हैं । तुल्य धनियों के लिए भी हैं और गरीब से गरीब रोगी के लिए भी । जिन तुल्यों की लेखक ने स्वयं आज्ञामाहश की है, उसके साथ 'अनुभूत' शब्द भी लिख दिया है । इस ग्रन्थ के लिखने में चरक,



सुश्रुत, वाग्भट्ट, चक्रदत्त और वज्रसेन आदि वैद्यक-शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों के सिवा बहुत से अर्वाचीन ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। वास्तव में ऐसा उपयोगी ग्रन्थ लिख कर वैद्य जी ने हिन्दी-भाषा-भाषियों का विशेष उपकार किया है। इस पुस्तक की उपयोगिता का यह एक प्रबल प्रमाण है कि थोड़े ही समय में इसके तीन संस्करण हो चुके हैं।

❀

❀

❀

स्वास्थ्य-रक्षा—लेखक, बाबू हरिदास जी वैद्य, प्रकाशक हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा। पृष्ठ-संख्या ५३३, कागज, छपाई और जिल्द सुन्दर। मूल्य ३॥)

यह पुस्तक भी वैद्य जी की अनुपम कीर्ति है। गत बीस वर्षों में यह दस बार छप चुकी है। प्रत्येक संस्करण तीन-तीन हजार के हुए हैं। यह पुस्तक की उपादेयता का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। सम्पूर्ण पुस्तक पाँच भागों में विभाजित है और परिशिष्ट भाग भी है। प्रथम भाग में नित्य कर्म-सोना, उठना, नहाना, धोना तथा खाने-पीने की वस्तुओं का वर्णन दिया गया है। इसके सिवा दूध, घी, तेल, शाक-सब्ज़ी के गुण-दोष तथा व्यायाम आदि सम्बन्धी अत्यावश्यक विषयों का वर्णन है। दूसरे भाग में स्त्री-पुरुषों के वीर्य-रक्षा सम्बन्धी बातों का वर्णन और आहार-विहार आदि के सम्बन्ध में उचित तथा उपयोगी सलाह दी गई है। वीर्य रक्षा सम्बन्धी उपाय तथा औषधियों का भी वर्णन है। तीसरे भाग में आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार ऋतु (मौसिम) सम्बन्धी विषयों—किस मौसिम में कैसे रहना और किन-किन पदार्थों का सेवन करना आदि सैकड़ों ज्ञातव्य विषयों पर प्रकाश डाला गया है। चौथे भाग में सैकड़ों रोगों के होने के कारण, उनसे बचने के उपाय और नुस्खे दिए गए हैं। पाँचवें भाग में वात-पित्त और कफ-जनित रोगों की चिकित्सा के साथ ही उनसे बचने के उपाय बतलाए गए हैं। परिशिष्ट भाग में छोटी-मोटी बीमारियों के होने का कारण तथा उनकी दवाएँ बतलाई गई हैं। अन्त में 'परमोपयोगी शिक्षा' शीर्षक के नीचे बड़े काम की बातें लिखी हैं। प्रत्येक बाल-बच्चे वाले गृहस्थ के काम की पुस्तक है।

❀

❀

❀

काश्मीर-दर्शक—लेखक और प्रकाशक, श्री० रामचन्द्र अरोड़ा, बी० एस्-सी०, अतरौली, अलीगढ़। पृष्ठ-संख्या १३४। मूल्य १॥)

हिन्दी भाषा में काश्मीर के सम्बन्ध में यद्यपि कई पुस्तकें निकल चुकी हैं, पर इस पुस्तक में उनकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। अन्य लेखकों ने केवल अपनी यात्राओं का ही विवरण लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक काश्मीर के सम्बन्ध में अङ्गरेज़ी में प्रकाशित विभिन्न स्थानों की गाइड्स के समान है। इस पुस्तक में काश्मीर में कहाँ ठहरें, वहाँ क्या क्या देखने योग्य है, उस प्रदेश का अमण कितने समय तथा कितने खर्च में हो सकता है, आदि अनेक अत्यावश्यक विषयों का इस ढङ्ग से वर्णन किया गया है कि एक नए यात्री को उससे बहुत कुछ सुविधा हो सकती है। पुस्तक में काश्मीर के प्राकृतिक दृश्यों के १६ हाफ्टोन चित्र तथा दो नक्शे भी दिए गए हैं।

❀

❀

❀

गोपालन—लेखक और प्रकाशक, श्री० भगवानदास वर्मा, भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी। पृष्ठ-संख्या ३१३, मूल्य १॥)

इस पुस्तक के लेखक श्री० भगवानदास वर्मा गोपालन की आधुनिक विधियों के विशेषज्ञ हैं। आपने बहुत वर्षों तक कर्नाल (पंजाब) की गवर्नमेण्ट मिलिटरी डेरीफ़ॉर्म में मैनेजर का काम लिया है और वर्तमान समय में अपनी स्वतन्त्र डेरी का सञ्चालन कर रहे हैं। इस प्रकार दूध के व्यवसाय और दूध देने वाले पशुओं के सम्बन्ध में आपको बहुत अनुभव है और इस कारण आपकी यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी बन गई है। इसके पाँच अध्यायों में दूध, मक्खन, घी को तैयार करने की विधि, पशुओं का चारा, उनके रोग और दूध के व्यवसाय का विस्तृत वर्णन किया गया है। विषय को समझाने के लिए बहुत से चित्र भी दिए गए हैं। गृहस्थियों और दूध का कारबार करने वालों के लिए निस्सन्देह बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य भी बहुत ठीक रक्खा गया है।

❀

❀

❀

साग-भाजी की खेती—लेखक और प्रकाशक, श्री० नारायण दुलीचन्द व्यास, एल० एजी० इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, पूसा (बिहार), पृष्ठ-संख्या ३००, मूल्य २)

भारतवर्ष प्राचीन काल से कृषि-प्रधान देश है और यहाँ के अधिकांश लोगों का जीवन-निर्वाह कृषि पर ही अवलम्बित है। पर अन्य विषयों की भाँति इस सम्बन्ध में भी यहाँ के निवासी लकीर के फ़कीर बने हुए हैं और परिस्थिति के बदल जाने पर भी उसी परिपाटी के अनुसार काम कर रहे हैं, जिसे उनके पूर्वजों ने हज़ारों वर्ष पहले स्थिर किया था। इस कारण उनको अपने परिश्रम का बहुत थोड़ा फल प्राप्त होता है और वे उन्नतिशील देशों की प्रतियोगिता में नहीं टिक सकते। इस त्रुटि को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि यहाँ के शिक्षित व्यक्ति इस तरफ ध्यान दें और कृषिकार्य में उन वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना आरम्भ करें, जिनके द्वारा अन्य देशों ने इस विषय में सफलता प्राप्त की है। आजकल साग-भाजी की खेती अन्न की खेती की अपेक्षा अधिक लाभजनक होती है और यदि उसे आधुनिक ढङ्ग से किया जाय तो और भी फलदायक हो सकती है। हम दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक बड़े काम की है। इसके लेखक पूसा के रिसर्च इन्स्टीट्यूट से सम्बन्ध रखते हैं, जो इस समय भारतवर्ष में कृषि-विद्या का सर्वोत्तम विद्यालय माना जाता है। इसलिए हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक में जो विधियाँ बतलाई गई हैं, यदि उनके अनुसार कार्य किया जाय तो देश का बहुत कुछ उपकार हो सकता है। इससे जहाँ एक तरफ हमारी आर्थिक अवस्था सुधरेगी वहाँ दूसरी तरफ अनेक लोगों को, जो आजकल बेकारी के कारण कष्ट पा रहे हैं, जीवन-निर्वाह का एक स्वतन्त्र मार्ग मिल जायगा।

❁ ❁ ❁

धम्मपद—अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक महाबोधि पुस्तक-भण्डार, ऋषिपतन सारनाथ, बनारस। पृष्ठ-संख्या २००। मूल्य छै आना।

धम्मपद बौद्ध साहित्य का एक प्रकाशमान रत्न है। वैदिक हिन्दुओं की दृष्टि में जो स्थान गीता का है, वही

स्थान बौद्ध धर्म वालों की दृष्टि में इस पुस्तक का है। इस पुस्तक के पहले भी हिन्दी में पाँच अनुवाद हो चुके हैं, पर यह एक बौद्ध विद्वान का अनुवाद है तथा बौद्धों की एक प्रधान सस्था ने इसे प्रकाशित किया है, इसलिए हममें कुछ विशेषता और यथार्थता होना स्वाभाविक है। कागज़ और छपाई बहुत उत्तम है तथा मूल्य भी प्रचार की दृष्टि से अत्यन्त सस्ता रक्खा गया है।

❁ ❁ ❁

शिशुमङ्गल—लेखक, डॉ० सुन्दरी मोहनदास, एम० बी०, प्रकाशक, श्री० प्रेमनन्द योगानन्द दास ५७/१/१ ए० राजा दीनेन्द्र स्ट्रीट कलकत्ता, पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य आठ आना।

इस छोटी सी पुस्तक में गर्भावस्था, प्रसूतकाज और नवजात शिशु की परिचर्या तथा रोगों की चिकित्सा का सन्धेप में वर्णन किया गया है। इसके लेखक धात्री-विद्या के पूर्ण ज्ञाता और अनुभवी हैं। इसलिए छोटी होने पर भी यह पुस्तक उन बड़े-बड़े पोथों से अधिक प्रामाणिक और उपयोगी है, जिन्हें अनधिकारी व्यक्ति धुंध-उधर से मसाला बटोर कर लिख डालते हैं।

हमारे देश में अभी तक इस प्रकार के साहित्य की बड़ी कमी है और इसके फलस्वरूप अधिकांश व्यक्ति इस सम्बन्ध में अनजान देखे जाते हैं। उनको उन अशिक्षित और कुर्मस्कारपूर्ण दाइयों के ही भरोसे रहना पड़ता है, जो स्वयम् अत्यन्त गन्दी होती हैं और ज़ुल्मा तथा बच्चा को भी वैसी ही दशा में रखती हैं। स्त्री के जननाङ्ग का भी उनको कुछ ज्ञान नहीं होता और अनेक बार वे ऐसा उल्टा-सीधा काम कर डालती हैं, जिससे प्रसूता तथा शिशु को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसी अवस्था में सभी दम्पतियों को यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध का कुछ ज्ञान स्वयम् प्राप्त कर लें और इसके लिए यह पुस्तक गुण और मूल्य दोनों दृष्टियों से उपयुक्त है।

❁ ❁ ❁

खवास का ब्याह—लेखक, श्री० चतुरसेन शास्त्री; प्रकाशक, गङ्गा-ग्रन्थागार ३६ लाटूश रोड, लखनऊ, पृष्ठ-संख्या १३७, मूल्य एक रुपया।

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें चन्द्रबर-दाई के पृथ्वीराजरासो के आधार पर पृथ्वीराज और सयोगिता के विवाह की कथा कही गई है। चन्द्रबरदाई पृथ्वीराज का भृत्य और परम मित्र भी था, इसलिए उसके वर्णन में अपने स्वामी और सखा की अतिरिक्त प्रशंसा पाया जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल के काव्यों में प्रत्येक घटना का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने की प्रथा भी विशेष रूप से प्रचलित थी। इन कारणों से 'रासो' की कथा ने सहज ही में सुन्दर उपन्यास का रूप ग्रहण कर लिया है। खास कर जहाँ युद्ध अथवा वीरता सम्बन्धी वर्णन किया गया है, वहाँ प्रत्येक घटना का चित्र सा खींच दिया गया है। इस समस्त कथा में ऐतिहासिक तथ्य कहाँ तक है, यह तो कह सकना कठिन है, पर मनोरञ्जन की दृष्टि से यह अन्य उपन्यासों से कम नहीं है। साथ ही इससे मध्य-कालीन सन्निय नरेशों की उस दृढ़ और अहङ्कारपूर्ण मनोवृत्ति तथा शोचनीय गृह-कलह पर भी प्रकाश पड़ता है, जिसके कारण निर्बल होकर भारतवर्ष को विदेशियों के सम्मुख नीचा देखना पड़ा।

❁

❁

❁

प्राप्ति-स्वीकार

चित्र-पट—यह सिनेमा-सम्बन्धी सच्चित्र साप्ताहिक पत्र श्री० ऋषभधरण जैन के सम्पादकत्व में देहली से प्रकाशित हुआ है। इसमें सिनेमा सम्बन्धी लेखों और टिप्पणियों के अतिरिक्त अन्य विषयों के उपयोगी लेख और कहानियाँ भी रहती हैं। इस विषय के जितने पत्र हाल में निकले हैं, उन सब में यह अधिक होनहार जान पड़ता है। वार्षिक मूल्य १) रु० है।

बाल-विनोद—यह मासिक पत्र पं० चुन्नीलाल शर्मा के सम्पादकत्व में मुरादाबाद से प्रकाशित हुआ है। इसका द्वितीयाङ्क, जो विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित हुआ है, विशेष रूप से सुन्दर बनाया गया है। इसमें कई रङ्गीन और सादे चित्रों तथा विविध विषयों के अनेक लेखों का समावेश किया गया है। पर सम्पादन और मेक-अप से प्रतीत होता है कि इसके सम्पादक तथा सहकारीगण अत्यन्त पुराने ढर्रे के व्यक्ति हैं,

जिनको आधुनिक सम्पादन तथा मुद्रण-कला का कुछ भी अनुभव नहीं है। सञ्चालकों का कर्तव्य है कि इस त्रुटि को दूर करने की चेष्टा करें। मू० २।) रु० है।

सनातन-धर्म—यह साप्ताहिक पत्र हाल ही में पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीय जी की सरचक्रता और सञ्चालकता में हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी से प्रकाशित हुआ है। स्वयं मालवीय जी और सनातन-धर्म के अन्य प्रकाण्ड विद्वानों के लेख इसमें नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। सनातन-धर्म का पृष्ठ-पोषक होने पर भी कुछ विषयों में यह सुधार का पक्ष-पाती है। वार्षिक मू० ३।) रु० है।

हैहय-वंश—यह दिल्ली से प्रकाशित होने वाला एक जातीय मासिक पत्र है। इसके चौथे वर्ष का प्रथमाङ्क स्वर्गीय गोविन्द हयारण की स्मृति में विशेषाङ्क के रूप में निकला है। इसमें हयारण जी के जीवन-कार्य के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के लेख और बहुत से चित्र दिए गए हैं।

विकास—यह साप्ताहिक पत्र कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर सहारनपुर से प्रकाशित हुआ है। इसका प्रधान उद्देश्य हिन्दू-समाज में नवजीवन तथा बलिदान की भावना जाग्रत करना है। पहला अङ्क साधारणतः अच्छा है। आशा है, आगे चल कर यह और भी उन्नति करेगा। वार्षिक मूल्य ३) रु० है।

ढावर पञ्चाङ्ग—प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी कर्कत्ता के डॉ० एस० के० बर्मन का पञ्चाङ्ग सुन्दर रूप में प्रकाशित हुआ है। सम्बत् १९६० के पञ्चाङ्ग में श्रीराधाकृष्ण का एक रङ्गीन तथा भीष्मपितामह के जीवन सम्बन्धी चार सादे चित्र भी दिए गए हैं।

बानर—यह मासिक पत्र गत दो वर्षों से हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद से श्री० रामनरेश त्रिपाठी के सम्पादकत्व में निकल रहा है। इसमें बालकों के मनोरञ्जन की बड़ी अच्छी सामग्री रहती है। दूसरे वर्ष के अन्तिम अङ्क के समस्त लेख विभिन्न जन्तुओं के सम्बन्ध में हैं, जो बालकों के लिए विशेष रूप से ज्ञानवर्द्धक हैं।





['चाँद' के गताङ्कों में कई रोगियों के पत्र छपे थे, जिनमें उन्होंने अपने रोगों के लिए अनुभूत दवाइयाँ पढ़ी थीं। इस सम्बन्ध में हमारे पास बहुत से पत्र आए हैं। किन्तु ही सज्जनों ने अपनी आजमाई हुई दवाएँ लिख कर भेजने की कृपा की है। हम कृपा के लिए हम उनके आभारी हैं और उनमें से कुछ नुस्खे नीचे प्रकाशित करते हैं। अवशिष्ट नुस्खे 'चाँद' के आगामी अङ्कों में अवकाशानुसार प्रकाशित होते रहेंगे।

—सम्पादक 'चाँद']

मुँहासे की दवा

(१) गाय के कच्चे दूध में जायफल घिस कर लगाने से मुँहासे दूर होते हैं।

(२) नींबू का रस निकाल कर झाली छिलका रगड़ने से भी मुँहासे नष्ट हो जाते हैं।

—गुलाब देवी

(३) एक अच्छा पुष्ट बैगन लेकर ऊपर का छिलका छील लेना चाहिए। परन्तु खूब पतला छील जाय। ऐसा न हो कि मोटा छिलका उतर जाय। इसके बाद नोकदार चाकू से उसके डगठल को खूब खोद कर निकाल लिया जाय। फिर उसमें शुद्ध पीली सरसों भर कर फिर डगठल लगा दी जाए और बैगन के चारों ओर गीली मिट्टी का प्रलेप लगा कर उसे 'भूमल' (भौरा) में पका लेना चाहिए। जब ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय यानी यह मालूम हो जाय कि बैगन अच्छी तरह पक गया है, तो उसे निकाल कर ठण्डा कर लेना चाहिए और उसमें की सरसों निकाल लेनी चाहिए। इस सरसों का नित्य-प्रति लेप लगाने से मुँहासे जाते रहेंगे।

—गिरीशकुमारी श्रीवास्तव

(४) नीम की जड़ खोद कर निकाली जाए। इसके बाद उसके छिलके उतार दिए जाएँ। अन्दर की

लकड़ी को चन्दन की तरह रगड़ कर मुँहासों पर प्रलेप लगाने से एक सप्ताह में ही मुँहासे दूर हो जाएँगे।

—बलरामदास

मोटापन दूर करने की दवा

(१) एक तोले भोजपत्र को लेकर पानी में उबाल लें और उसे चाय की तरह बना कर सुबह और शाम सेवन करें। इससे मोटापन दूर हो जायगा।

(२) दो तोले शहद गरम पानी में मिला कर दोनों वक्त सेवन करने से भी मोटापन दूर होता है।

इन दवाओं के सेवन करते समय घी, दूध और मक्खन का सेवन कम कर देना चाहिए।

—कमलादेवी भटनागर

(३) पानी को आग पर चढ़ाकर खूब औट लें और फिर उसे ठण्डा करके उसमें आधे नींबू का रस निचोड़ें। ऐसा पानी प्रतिदिन झाली पेट पीने से कुछ दिनों में मोटापन जरूर ही दूर हो जाएगा।

—सुनीलाल भार्गव

कोष्ठबद्धता

(१) सुबह उठते ही आधा गिलास सेंधानमक मिला हुआ जल पी लेना, पाछाने के समय बाएँ पैर पर जोर देकर बैठना, प्रतिदिन व्यायाम करना, प्रति-

दिन शीर्षासन लगाना और सुबह दौड़ना—इन तमाम क्रियाओं को लगातार कुछ दिन करने से कोष्ठबद्धता अवश्य दूर होगी। आजमाई हुई तरकीब है।

—विजयकुमार श्रीवास्तव, बी० ए०

(२) प्रतिदिन प्रातःकाल बिस्तरे से उठने से पहले एक गिलास बासी पानी पीकर शौच आदि जाने से कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है। अगर इस तरह पानी पीने से सर्दी हो जाए, तो भी उसे छोड़ना नहीं चाहिए।

—हीरालाल

(३) रात को सोने के समय २१ दाने मुनक्का डाल कर पकाया हुआ दूध या एक तोला घी डाल कर पकाया हुआ दूध पीने से कुछ दिनों में कोष्ठबद्धता अवश्य दूर हो जाएगी।

—वैद्य मुन्नालाल गुप्त

(४) प्रतिदिन तुलसी की पत्ती की चाय पीने से कोष्ठबद्धता जरूर ही दूर हो जाती है। पन्ध्र या सोलह पत्तियाँ (सूखी हों या हरी) खोलते पानी में छोड़ दें, साथ में एक छोटी इलायची, पाँच दाने काजीमिर्च और एक टुकड़ा अदरक भी कूट कर डाल दें। इसके बाद थोड़ी चीनी और थोड़ा सा दूध मिला कर उसे चाय की तरह इस्तेमाल करें। यह तुलसी की चाय बड़ी स्वादिष्ट और बड़ी उपकारी होती है।

—मगनकृष्ण दीक्षित

तिक्ष्णी की दवा

(१) अठन्नी भर कुनैन लेकर उसे बोटल भर सौंफ़ के अर्क में खूब मिला लें और बत्तीस खूराक बना लें। प्रति दिन एक-एक खूराक दवा सुबह और शाम को सेवन करने से एक महीने में तिक्ष्णी की शिकायत अवश्य ही दूर हो जायगी।

—कौशलया टॉगड़ी

(२) पाव भर पुराना गुड़ और पाव भर इमली—दोनों को चार सेर पानी में औंटा लेवे। जब पानी क़रीब दो सेर रह जाय तो उतार कर छान लेवे। इस पानी को प्रति दिन तीन वक्त (सुबह, दोपहर और शाम) एक-एक तोला लेकर उसमें दो रत्ती कच्चा चौकिया

सुहागा मिला कर पी जावे। चालीस रोज़ में पूर्ण आरोग्यता लाभ होगी।

—रघुनाथदास अग्रवाल

(३) कलमी शोरा २ तोला, नौसादर १ तोला, काला नमक १ तोला—इन्हें पीस कर कपड़े में छान ले, फिर छु-छु-माशे की पुड़िया बना कर रख ले। प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर १ पुड़िया दवा ताज़ा जल के साथ सेवन करे। मीठा खाना एकदम वर्जित है। उत्तम कलमी शोरा ही व्यवहार में लाना चाहिए।

—कन्हैयालाल वाशिष्ठ

परवाल की दवा

(१) एक कनखजरे को पकड़ कर विशुद्ध सरसों के तेल में पकावे। जब वह जल जावे तो उतार ले और तेल का दिया जला कर काजल तैयार करे। यह काजल परवाल की लाजवाब दवा है।

—लीलावती वाहरी

(२) नौसादर को पानी में पीस कर परवाल पर लगावे या नित्य नौसादर की डली से उसे घिस दे। इससे अवश्य लाभ होगा।

—वैद्य मुन्नालाल गुप्त

(३) कलमी शोरा, नीला थोथा, फिटिकरी, इन तीनों को समान वज़न में लेकर पीस ले। फिर उसे तवे पर रख कर गरम करे। जब पिघल कर तीनों एक में मिल जायें तो किसी नली में डाल कर सलाई बना ले। इस सलाई को सुबह-शाम आँखों में आँजने से परवाल की जड़ कट जायगी और आँखें अच्छी हो जायँगी।

(४) तुलसी के दो-तीन पत्ते लेकर शाम को पानी में मिला दे और सुबह उठ कर आँख में उसी के छीटें मारे। फिर एक काँसे की थाली में उन तुलसी के पत्तों को रख कर उन्हें सीपी से धीरे-धीरे खूब रगड़े। जब वे काजल के रूप में परिणत हो जायें तो उठा कर रख ले और आँखों में अच्छी तरह आँजे। इससे चार-पाँच दिन में परवाल अवश्य ही कट कर गिर जायँगे।

—कल्याणमल वैद्यभूषण





[सम्पादक—श्रीयुत
नीलू बाबू]

देश मलार—तीन ताल मात्रा १६

[शब्दकार तथा स्वरकार —
श्रीयुत नीलू बाबू]

स्थायी—आज कोइलिया कुहुक सुनावे, भावे मन अति जिया तरसावे ।

अन्तरा—अखियन सो मोरे नीर बहत इत, उत घन-घन उमड़ावत बरसत ।

श्याम दरश त्रिन नीद न आवत, ताहू पे निशि और डरावे ॥

स्थायी

०	१	×	२
नी सं नीरें सं	नीसं नीध	प — म प मप धप म ग रे —	
आ आ जअ कोओ	यय लिइ या	— कु हु कह सुउ ना आ वे —	
रे ग रे प म ग रेस	स रे रे ग प नी ध प —		
भा आ वे ए म न अअ	ति जि या त र सा आ वे —		
अन्तरा			
म म म म प —	नी नी सं — सं सं नीसं नीरें संनी सं		
अं खि य न सो —	मो रे नी — र ब हअ तअ इइ त		
नी सं रें मं रें रें सं सं नी सं रें सं नी नी प प			
उ त घ न घ न उ म डा आ व त ब र स त			
पध नी नी नी ध प म म रे — म म प — प प			
श्या आ म द र श बि न नी — द न आ — व त			
नी — सं — नीसं रें नीध प म प मप धप म ग रे —			
ता — हू — पेए ए निर्ई शि औ औ रअ डअ रा आ वे —			



स्वास्थ्य-रक्षा और चायपान

[श्री० जयकृष्ण शर्मा, वैद्य]

आयुर्वेद-शास्त्र में निदिष्ट स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करते रहने से मनुष्य दीर्घायु होता है। स्वास्थ्य शब्द की व्याख्या आयुर्वेदज्ञ इस प्रकार करते हैं :—

समदोषः समामिश्रश्च समधातुमल क्रियः ।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

अर्थात्—जिस मनुष्य की जठराग्नि तथा वात, पित्त, कफ सम स्थिति में हों, जिसके शरीर में रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—इन धातुओं की योग्य प्रमाण में उत्पत्ति होती हो, मल, मूत्र और स्वेद आदि शरीर-मलों की क्रियाएँ अर्थात् उनका उत्सर्ग समय पर (जो आगे निर्विष्ट किए जायेंगे) होता जाय तथा जिसकी मनोवृत्ति श्रोत्रत्वगादि पञ्चज्ञानेन्द्रिय तथा हस्त-पादादि पञ्च कर्मेन्द्रिय और मन प्रसन्न हों, उसी को स्वस्थ कहते हैं।

स्वस्थता के लक्षण वर्णन करने के पश्चात् स्वास्थ्य का किस प्रकार रक्षण करना चाहिए, इस विषय में शास्त्रकार कहते हैं :—

दिनचर्या निशाचर्या ऋतुचर्या यथोदिनाम् ।

आचरन्पुरुष स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा ॥

अर्थात्—आयुर्वेद-शास्त्र में निदर्शित जो दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या के नियम हैं, उन्हीं के अनुसार

व्यवहार करने से मनुष्य अपने को स्वस्थ रख सकता है, अन्यथा नहीं।

इन नियमों का उत्तलङ्घन करने वाला व्यक्ति अवश्य ही अस्वस्थ रहेगा। जैसा कि हम लोग आजकल अनुभव कर रहे हैं। आजकल जितने हमारे प्रतिदिन के व्यवहार हैं, वे सभी इस विधि के विरुद्ध होने के कारण भारतीय प्रजा में अस्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है।

अन्य देशों में रहने वाले मनुष्यों की दिनचर्या हमारे देश के लिए कदापि लाभदायक नहीं हो सकती। कारण यह है कि शीत-प्रधान देश वालों के बहुधा सभी ही व्यवहार उष्ण देश के रहने वालों से सदैव विरुद्ध हुआ करते हैं। उदाहरणार्थ, यूरोपवासियों के लिए २४ घण्टे पायजामा (Pant) पहनना लाभदायक हो सकेगा, परन्तु यदि भारतीय भी उन्हीं का अनुकरण करें, तो अवश्य ही उन्हें मूत्र सम्बन्धी विकार होंगे। शीत-देशवासियों के लिए उष्ण पेय लाभदायक होंगे, परन्तु हम लोगों के लिए नहीं हो सकते। आयुर्वेद-शास्त्रकारों ने तो इस विषय में इतना सूक्ष्म विवेचन किया है कि एक ही देश में रहने वाले, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को हानि या लाभ पहुँचाने वाले भिन्न-भिन्न पदार्थ होते हैं। अर्थात् वही उष्णपेय एक विशेष प्रकृति वाले मनुष्य को लाभदायक है तो दूसरे को

अपकारक होता है। इतना सूक्ष्म विवेचन अन्य किसी भी चिकित्सा-पद्धति में बहुत कम पाया जाता है।

प्रातः स्मरण

दिनचर्या के वर्णन के प्रारम्भ में शास्त्रकार कहते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।

तदासर्वाङ्गशात्यर्थं स्मरेच्च मधुसूदनम् ॥

ब्राह्म मुहूर्त रात्रि के १४वें मुहूर्त को कहते हैं। रात्रि की ३० घटिकाओं में १५ मुहूर्त होते हैं। चार घड़ी रात, अर्थात् प्रातःकाल सूर्योदय होने के डेढ़ घण्टे पूर्व करीब ४। बजे प्रत्येक मनुष्य को बिस्तरे से उठना चाहिए। कारण यह है कि इस समय का वायु बहुत शुद्ध होता है, और मन की प्रसन्नता तथा बुद्धि की तीव्रता इतनी विशेष होती है कि जो विद्यार्थी उस समय उठ कर अपने पाठ्य विषयों का अध्ययन करते हैं, उनको विषय तुरन्त ही याद हो जाता है। इसके सिवा सायंकाल को सोते समय तक विचार करने से जिन समस्याओं का समाधान नहीं होता, वे ही प्रातःकाल चार बाजे उठ कर विचार करने से क्रौरन हल हो जाती हैं।

शान्ति से किसी विषय पर सूक्ष्म विचार करने के लिए दिन-रात के चौबीस घण्टों में यही समय विशेष उपयोगी होता है। इसीलिए उठते ही एक आसन पर बैठ कर परमेश्वर का स्मरण करने की आज्ञा शास्त्र देता है। इस स्मरण से सर्व पाप अर्थात् पापकर्मों में प्रवृत्त करने वाले सब विचारों का नाश होकर ईश्वर-स्तुति से शुभ कर्मों की ओर मन की प्रवृत्ति होती है।

उषा-पान

१५ मिनिट ईश्वर का स्मरण करने के पश्चात् सारे शरीर में, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के मूल अर्थात् शरीर-क्रियाओं में बाधा लाने वाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनको शरीर से बाहर निकालना, यह पहला कार्य है। इस कार्य के लिए ईश्वर-स्मरण के पश्चात् मुँह को साफ करने के लिए ठण्डे पानी से दो-चार कुल्ले करने के बाद उषा-पान करना चाहिए।

इसके लिए रात्रि में सोते समय तोंबे के लोटे में ठण्डा ताज़ा जल रक्खा जाय तथा तोंबे ही के पात्र से वह ढक दिया जाय। कूप-जल ही सब जलों में श्रेष्ठ है,

ऐसा आयुर्वेदीय आधारों से सिद्ध किया जा सकता है। इस जल में से क़रीब तीन पात्र पिए। इसी को 'उषा-पान करना' कहते हैं। जो मनुष्य सूर्योदय के समय ६४ तोले जल पिए, वह रोग तथा वार्धक्य से बचता हुआ १०० वर्ष तक जीता है। नासिका से पानी पीना विशेष लाभदायक बतलाया गया है। क्योंकि पञ्चज्ञानेन्द्रियों की नाडियाँ मस्तक से ही सम्बन्ध रखती हैं। नाक से पानी पीने से जिन-जिन त्वचाओं को स्पर्श करता हुआ यह पानी जाता है, उन त्वचाओं से सम्बन्ध रखने वाली सब नाडियों ठण्डक पाकर मस्तक तथा आँखों को भी शीतल रखती हैं। मस्तक में तरावट आने से उसके समस्त रोमकूप भी ठण्डे रहते हैं और इससे असमय बालों का पकना बन्द हो जाता है। अन्य रोग भी उषा-पान से विनष्ट होते हैं, जैसे—

अर्शः शोथ ग्रहण्यो ज्वर

जठर जरा कुष्ठ मेदो विकाराः ।

मूत्राघातास्रपित्त श्रवण गल

शिरः श्रोणिशूलाक्षि रोगा ॥

ये चान्ये वात पित्त क्षतज कफकृता

व्याधयः सन्ति जन्तोः ।

तास्तानभ्यासयोगादपहरति

पयः पीतमन्ते निशायाः ॥

इस श्लोक से यह बात स्पष्ट है कि अनेक व्याधियाँ केवल उषा-पान से ही, जिसमें छुदाम का भी खर्च नहीं है, समूल नष्ट हो जाती हैं। अतः 'चौद' के पाठकों से मेरा निवेदन है कि इसकी अवश्य परीक्षा करें।

इस प्रकार उषा-पान करते ही मनुष्य को शौच की इच्छा होती है और मूल की शुद्धि होकर सब रोगों का मूल बीज शरीर से बाहर निकल जाता है।

चायपान

परन्तु समय की महिमा से आजकल तो सोकर उठते ही या कभी-कभी बिस्तरे पर ही पहले 'चाय' का कप चाहिए। अर्थात् जहाँ शीतल जल पीकर इन्द्रियों को शीतलता पहुँचाने की आवश्यकता थी, वहाँ अब उष्ण तथा विषयुक्त जल से रात भर के मुँह में एकत्र हुए अन्य दूषित पदार्थों को नीचे उतार दिया जाता है।

परन्तु यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि चाय मानवी शरीर को किसी प्रकार का भी लाभ न पहुँचा कर प्रत्यक्ष विष का कार्य करती है। वह देह के प्रत्येक अङ्ग में क्षीणता लाती है। उसका बस्ती मूत्राशय पर बहुत ही बुरा असर पड़ता है। यहाँ तक कि चाय पीने से मूत्र को धारण करने की बस्ती की शक्ति अत्यन्त क्षीण होती है। अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स के एक विख्यात रसायन-शास्त्री का कथन है कि चाय का सेवन करना मनुष्य के लिए धीरे धीरे आत्महत्या कर लेना है। क्योंकि उससे मस्तिष्क की शक्ति नितान्त क्षीण हो जाती है, स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है, तथा वार्धक्य आने के पूर्व ही हृन्द्गियों की शक्ति नष्ट हो जाती है। नाडियों की शक्ति क्षीण होने के कारण शरीर और मन उरसाहरीन हो जाते हैं और अन्त में उससे अर्द्धाङ्ग तथा सर्वाङ्ग वात भी होता है। सच पूछिए तो चाय में एक भी गुण नहीं है। वह प्रारम्भ से अन्त तक सदैव ही अपकारक होती है। परन्तु इसके मुख्य दुर्गुण दो हैं— (१) प्रारम्भ में इसका प्रत्यक्ष परिणाम नाडियों में शिथिलता लाना है। यह शिथिलता क्रम से शरीर के उन अङ्गों में भी पैदा हो जाती है, जिनका जीवन नाडियों पर निर्भर होता है, (२) चाय पीने वालों को दिन-प्रतिदिन उसकी आकांक्षा तथा माँग बढ़ती चली जाती है। यहाँ तक कि वार्धक्य में बालपन से कई गुनी अधिक चाय शरीर माँगता है। मनुष्य उसका आदी हो जाता है। इसलिए समय पर चाय न मिलने से बार-बार जमुहाइयाँ आने लगती हैं। बदन टूटने लगता है और चित्त अस्थिर हो जाता है। यहाँ तक कि कितने ही चाय-प्रेमियों को वक्त पर चाय न मिलने से जुकाम हो जाता है तथा सिर में असह्य पीड़ा होने लगती है। इसके सेवन से शरीर में आवश्यकता से अधिक गर्मी पहुँच जाने के कारण कफ सूख जाता है। इससे फेफड़े की बड़ी हानि पहुँचती है। चाय में ऐसा कोई गुण नहीं है, जिससे शरीर को किसी प्रकार का लाभ होता हो।

किन्तु शरीर को निकम्मा करने वाले विष विशेषतः नाडियों को शिथिल करने वाले तत्व तो इसमें भरे पड़े हैं। फलतः ऐसे प्राणनाशक पदार्थ का जानते हुए उपयोग करना मूर्खता है।

चाय धीरे-विष (Slow Poison) का कार्य करती है। इसका प्रभाव शरीर पर धीरे-धीरे पड़ता है और एक अत्यावश्यक तत्व सदा के लिए विलुप्त हो जाता है। बहुत से पीने वाले सोचते हैं कि एक कप पीने से विशेष नुकसान नहीं हो सकता। वास्तव में एक कप पीने से शरीर पर होने वाले दुष्परिणाम इतने सूक्ष्म होते हैं कि उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। परन्तु इतने ही से हृदय तथा जीवनी शक्ति की जो क्षति हो जाती है, उसकी पूर्ति फिर सारे जीवन में भी नहीं होती।

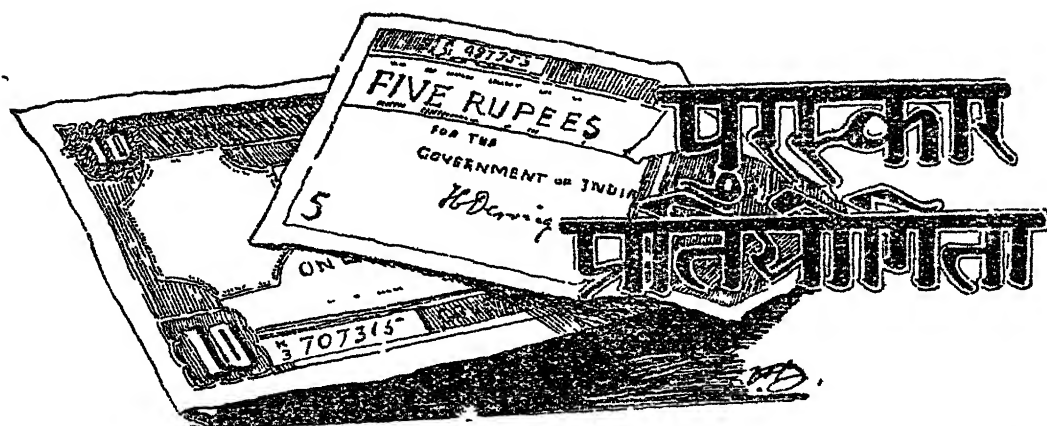
वृक्कों (Kidneys) की शिथिलता, फेफड़ों की क्रियाक्षीणता तथा आमाशय में मन्दाग्नि ये परिणाम कुछ दिनों तक चाय पीने से प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगते हैं। चाय का प्रत्येक प्याला इन विकारों को उत्पन्न करने में मदद देता है।

कुछ चाय-प्रेमी बच्चों को भी दो-चार चम्मच चाय पिना देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि रात-दिन उन्हें मूत्र-स्राव होता रहता है, जिसके लिए डॉक्टरों को दिखा कर कई प्रकार की औषधियाँ पिनाई जाती हैं। परन्तु मूल कारण बना रहने से उनका कोई परिणाम नहीं होता। उत्तेजित नाडियों को शान्त करने के प्रयत्न में कुछ समय के पश्चात् वे पूर्णतया मृतप्राय हो जाती हैं। जिन मनुष्यों को कोई दीर्घकालीन रोग नहीं होता, वे प्रायः अधिक चाय पीने के कारण अर्द्धाङ्ग-वात से पीड़ित होकर मरते हैं।

चाय पीने से हृदय-क्रिया इतनी मन्द हो जाती है कि कई लोग इसी बीमारी से जीवन खो बैठते हैं। नाडी-चक्रों के सब केन्द्र चाय पीने से शिथिल हो जाते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव से देखा गया है कि अर्द्धाङ्ग-वात से पीड़ित हजार रोगियों में १११ चाय पीने वाले होते हैं।

इसलिए प्रिय भाइयो ! चाय का व्यसन छोड़ कर अपने जीवन को सार्थक तथा नीरोगी बनाने में कटिबद्ध होकर, तथा इतर देशवासियों का अनुकरण न करते हुए, अपने पूर्वजों के बताए हुए स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का अवलम्बन कर स्वयं तथा अपनी सन्तति को दीर्घायु बनाइए।





गत जुलाई सन् १९३३ के 'चाँद' में दी गई पहेली का परिणाम पहेली का ठीक उत्तर

१	बदर	जड़	र	बजर
२	अमरुद	मछली	र	अमर
३	दाना		र	दो
४	खत	दरवाजा	र	खदान
५	मकड़ी	ओस	र	मोर
६	रात	सरोवर	भक्षण	रासभ

हमारे इस उत्तर से ठीक-ठीक मिलते हुए निम्न-लिखित आठ सज्जनों के उत्तर हमारे पास आए हैं। अतः पुरस्कार की रकम इन्हें बराबर भागों में बाँट दी जाएगी।

श्री० रामराज तिवारी ग्राहक नं० ३०१८ का उत्तर ठीक होने पर भी सन्दिग्ध है। क्योंकि आपने अपने उत्तर में 'बाँजर' या (बंजर) दो शब्दों का प्रयोग किया है। 'बंजर' शब्द आपने कोष्ठक में रक्खा है और 'बाँजर' शब्द को ही प्रधानता दी है, जो कि निर्दिष्ट

उत्तर के सर्वथा विपरीत है। अतः आपका नाम पुरस्कार-विजेताओं में नहीं रक्खा जा सका।

जिन सज्जनों के उत्तर ठीक-ठीक हमारे निर्दिष्ट उत्तर से मिलते हैं, उनके नाम ये हैं -

- (१) श्री० श्यामसुन्दरलाल शर्मा,
असिस्टेंट-स्टेशन मास्टर, सम्बलपुर
बी० एन० आर०
- (२) श्रीमती कमलादेवी, पुत्री ठाकुर परमानन्द सिंह, पो० सरईपाली (रायपुर)
- (३) श्री० बालकृष्ण दुबे C/o डिस्ट्रिक्ट मेडिकल हेल्थ ऑफिसर, आजमगढ़
- (४) श्री० एच० पी० राय, टीचर
पारासिया छिन्दवाड़ा, (सी० पी०)
- (५) श्रीमती प्रेमप्यारी देवी C/o बाबू कँवलकिशोर बैजल, इतिनियर
गणेश प्रताप मील, देहली
- (६) श्री० लखपतराय श्रीवास्तव,
पो० मलहौसी, बेला, (हटावा)
- (७) श्री० कालीचरण शर्मा,
३२, गनफाउण्डरी रोड, काशीपुर, कलकत्ता
- (८) श्री० युसुफ बी० लाल, हेड मास्टर
नार्मल स्कूल, जशपुर स्टेट

—सम्पादक पुरस्कार-प्रतियोगिता विभाग



श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

जिहे किस्मत कि एसेम्बली के स्वनामधन्य सरकारी मेम्बर मिस्टर शर्मा और श्रीमती सरकार के सहोदर सर हेग महोदय की कृपा से मन्दिर प्रवेश बिल पूरे दस मास के लिए 'गर्भस्थ' कर दिया गया। इसे ठेक-ठाल कर गर्भाशय तक पहुँचाने में इन दोनों महानुभावों ने बड़ी मशक़त की।

❧

इसलिए अपने राम अर्थात् हिज होलीनेस की राय है कि भारतधर्म महामण्डल की ओर से इन दोनों सज्जनों को अवश्य ही कोई बड़ी पदवी मिलनी चाहिए, ख़ास कर सर हेग बहादुर के इस सनातन-धर्म-प्रेम की तो जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। क्योंकि आपने बड़े आड़े समय पर मिस्टर शर्मा को 'पुश' किया। आप दूधों नहार्थ और पूतों फले और मरने पर नाती-पूत समेत अक्षय स्वर्गसुख का उपभोग करें।

❧

इस बिल के दस महीने के लिए बिल में चले जाने से देवताओं और देवतानियों की बाछें खिल गई होंगी, उनकी मन्दिरस्थ मूर्तियाँ मुस्करा उठी होंगी। फलतः अब की पितृपक्ष के साथ ही देवपक्ष भी बड़े आनन्द से कटेगा। परन्तु बक्रौल शख़से—अभी तो चैन से गुज़रती है, आक्रबत की खुदा जाने।

❧

अपने उपवासों के कारण, जब से महात्मा गाँधी ने हरिजन-आन्दोलन के शिथिल अंशों में नई रूढ़ फँकी है, तब से, देखते हैं, श्रीमती सरकार का सनातन-धर्म-प्रेम भी बुरी तरह फच्फचा उठा है और बदहवासी यहाँ तक बढ़ गई है कि एक ओर तो बिल-विरोधियों के सिरों पर अपना वरद-पाणि पसार देती हैं और दूसरी

ओर अछूतों की भलाई के लिए दिन-रात टिसवे बहाया करती हैं।

❧

ये लक्षण कुछ बहुत अच्छे नहीं हैं, जनाव ! अगर श्रीमती के भाई-बन्धुओं ने कुछ 'केयर' नहीं किया, तो मज़ लाइलाज होता जायगा और ताज्जुब नहीं कि श्रीमती एक रोज़ काशी की मणिकर्णिका पर मुँडा कर, बाबा ज्ञानानन्द की चेली बन जायें। प्रेम के परिणाम से तो आप वाकिफ़ ही हैं ! कमबख़्त ने कितने घर तबाह किए, कहीं ठिकाना है ?

❧

इस मौके पर एक देहाती कहावत याद आगई। कहते हैं—“पुतवउ मीठ, भतरवउ मीठ, किरिया केहि की खाउँ ?” बेवारी सरकार अछूतों को भी प्रसन्न रखना चाहती है और सनातनियों को भी। खेहाज़ा अगर अन्तिम परिणाम यही हो कि—“दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम” तो कोई आश्चर्य नहीं।

❧

खैर, कुछ भी हो, अब दस महीने तक तो चैन की वशी बजेगी। अछूत अपने भाग्य के परिवर्तन के लिए मन्दिर के बाहर से ही देवता जी की माँकी-दर्शन करेंगे, मन्दिर के पण्डे-पुजारी भावी मन्दिर-शुद्धि-कार्य के लिए गोबर-गोमूत्रादि एकत्र करेंगे और सरकार हेग-शर्मा की सहायता से 'पुतवउ, भतरवउ' दोनों को खुश करने के लिए कोई आसान तरीका ढूँढ़ निकालेगी।

❧

गत मास दानव-कुल-दिवाकर राहु महोदय की कृपा से पुण्य का भाव टका सेर से भी कम रहा। गत सूर्य-ग्रहण के समय सनातनियों ने गङ्गा आदि नदियों,



तालाबों तथा कुओं पर नहा-नहा कर सूर्य भगवान की भी जान बचा ली और अपने लिए भी मुक्ति का मार्ग बना लिया। तीर्थ के पण्डों ने तो माला मारा ही, बेचारे 'डोम' भी घाटे में न रहे। राहु महाराज की कृपा से दो-चार दिन तक भर पेट खाने का सामान इन्हें भी मिल गया।

❀

बाबा विश्वनाथ का क्या पड़ना था? भक्तों की भीड़ की सम्भावना समझ कर उस दिन तबके ही उठ बैठे। ग्रहण लगने वाला था न, इसलिए आठ बजे से पहले ही कागाबासी के साथ दोपहर की 'सत्यानाशी' भी छान ली। गङ्गा से भिड़न्त की पूरी सम्भावना थी, इसलिए ऊपर से मुट्ठी भर धतूरे के बीज भी चबा लिए और बैठ गए पञ्चमी मार कर। 'हर हर बम् बम्' के गगन-विदारी रव के साथ, बरसाती गङ्गा के कीचड़ मिले पानी के इतने लोटे खोपड़ी पर पड़े कि अगर जटा-जूट न होता तो चोंद गङ्गी हो जाती।

❀

मगर पुण्य लूटने की धुन में किसी भले आदमी ने इतना भी न सोचा कि जिस खोपड़ी पर लाखों लोटे पानी उँडेल दिए जाएँगे, उसकी क्या गति होगी? वह खोपड़ी वाला बेचारा जिपगा या मरेगा? इस तरह दम घोट कर किसी को मारना भला कौन सा पुण्य-कार्य है? हमें तो भय है कि कहीं दो-चार दिन तक लगातार इसी तरह का ग्रहण लग जाय तो बाबा विश्वनाथ कुण्डी-सोदा लेकर, कैलाश की राह ले। चलो, जान बची लाखों पाए।

❀

बाबा विश्वनाथ भले ही कैलाश की राह ले लें, उनका दम छुट जाय अथवा नाक-मुँह में पानी भर जाने के कारण बेचारे का प्राण निकल जाय, परन्तु ये पुण्यार्थी उनका पिण्ड नहीं छोड़ सकते। आखिर ये बेचारे भी तो कम तवाकलत नहीं उठाते। ये बहेलियों के बन्हाए हुए बन्दरों की तरह बच्चा-कच्चा समेत गाड़ियों में लदते हैं, धक्के खाते, नाक-मुँह तुड़वाते, भीड़-भड़के में खियों और बच्चों को खोकर प्रचुर पुण्य के साथ आँखों में आँसु भर घर लौटते हैं; कोई हैजे का शिकार होता है और कोई भीड़ के ठेले में पड़ कर पञ्चत्व को प्राप्त होता है।

❀

परम पुण्यार्थिनी देवियों की श्रद्धा-भक्ति का क्या पड़ना? इन्हें तो अपने तन और मान-मर्यादा तक की भी खबर नहीं रहती। विश्वनाथ मरे, पार्वती रोंद हो या कार्तिकेय बिलखते फिरें, इन्हें तो थोड़े से पुण्य से मतलब रहता है, बदले में चाहे सर्वस्व ही क्यों न लुट जाए। चोर गहनें छीन लें, गुण्डे सतीत्व तक पर भी आक्रमण कर बैठे अथवा नयनों का तारा लज्जा भीड़ में पड़ कर रफूचकर हो जाए। चिन्ता नहीं, मरने पर स्वर्ग में रहेंगी, पारिजात की माला पहनेंगी और इन्द्र के अखाड़े में अप्सराओं के नृत्य देखेगी। इस सुख के सामने इस थोड़ी सी जहमत की भला कौन परवाह करने जाए?

❀

हिज़ होलीनेस के अज़ीज़ुल क़दर भैया 'जागरण' चिन्तित हैं कि आखिर "यह स्नानों की बला हिन्दुस्तान के सिर से कभी टलेगी भी या नहीं।" नहीं, कम से कम जब तक बाबा शाह मदर की कृपा से घृतपक्वविध्वंसिनी मूजी की क़ब्र सी तोंदो का और ऊँचे टीले पर कुशा की झाड़ सी चोटी वाली चिकनी खोपड़ियों का अस्तित्व कायम रहेगा, तब तक न यह बला टलेगी, न बाबा विश्वनाथ चैन से भङ्ग-बूटी छानने पाएँगे और न चन्द्रमा और सूर्य राहु के कराल जबड़े से परित्राण पाएँगे।

❀

अज़ीज़म आश्चर्य में हैं कि 'कितने ही अच्छे-ख़ासे पढ़े-लिखे लोग भी इतनी आस्था से गङ्गा में डुबकियाँ लगाते हैं, मानों यही स्वर्ग द्वार हो।' और नहीं क्या, स्वर्ग द्वार के कोई दुम होती है या अज़ीज़म ने उसे 'ज़ूलोजिकल गार्डन' का फाटक समझ रक्खा है। अरे भाई साहब, इसी द्वार से तो महा 'अच्छे ख़ासे' और परम 'पढ़े-लिखे' देशपूज्य महामना मालवीय जी तक स्वर्ग के विस्तृत प्राङ्गण में प्रवेश करने को तैयार बैठे हैं। भला, इनसे बढ़ कर पढ़े-लिखे और अच्छे-ख़ासे इस देश में कितने हैं? समझे दादाराम, यहाँ सारे कुएँ में ही भाँग पड़ गई है।

❀

परम श्रद्धास्पद बूढ़े दादा पण्डित मदनमोहन जी मालवीय महोदय की विद्वत्ता और आपके असाधारण ज्ञान के विरुद्ध अँगुली उठाने का दुस्साहस हिज़ होली-

नेस तो क्या, हिज़ होलीनेस के लकड़दादा भी नहीं कर सकते। कौन अफ़ल का अन्धा कह सकता है कि मालवीय जी चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के वास्तविक कारण की जानकारी नहीं रखते, परन्तु यह जानकर आप मारे खुशी के फूल उठेंगे कि मालवीय जी के 'संरक्षणशिप' में प्रकाशित होने वाले नवजात 'सनातन-धर्म' ने इस वैज्ञानिक युग को दिन-दहाड़े अँगूठा दिखाते हुए डङ्के की चोट ग्रहणों के अवसर पर स्नान-दान की महिमा विधोषित की है।

❀

किसी कवि का कथन है—“मैंने अफ़लाक को बदलते देखा, क्रिस्मत के नविशते को न टलते देखा।” सो जनाब, बूढ़े विधाता दादा ने अपने लँगोटिया यार भारत दादा की तक्रदीर भी कुछ ऐसे ही 'ममी' वाले मसाले से लिखी है। इसीसे तो इसके 'अच्छे-झासे' और 'पढ़े-लिखे' भी विद्यादेवी को ठुकरा कर अविद्या देवी के साथ अलिङ्गन और जूम्भण में मशगूल हैं। आखिर, जो कुछ इसके भाग्य में बदा है, वह पूरा कैसे होगा ?

❀

ज़ैर, जब पुण्य-चर्चा करने बैठ गए हैं तो आइए, कुछ अच्छे-झासे और पढ़े-लिखे लोगों की थोड़ी सी कथा और सुन लीजिए। 'अधिकस्य अधिकम् फलम्।' यह चर्चा भी अगर काबों की राह पेट में पड़ी रहेगी तो वक्त पर बड़ा काम देगी।

❀

सखी 'सरस्वती' ने अपने बेशक्रीमती पृष्ठ-पटों पर जो 'मेमरेबुल इण्टर-व्यू' छपा है, उसकी ख़बर तो आपको अवश्य ही होगी ! वल्लाह ऐसा 'सत्यगर्भ' इण्टर-व्यू ससुर सत्ययुग को तो नसीब ही नहीं हुआ होगा, तो ये मिस मेयो जैसी सत्यवादिनियों के जन्म-दाता कलियुग महाराज को कहाँ से मिलेगा !

❀

इस 'इण्टर-व्यू' के कारण हिन्दी-महाराथी-समाज में ऐसी-ऐसी पैतरेबाज़ियाँ हो रही हैं कि बड़े-बड़े कमनैत

हैरान हैं। ख़ास करके खण्डवा-निवासी खलीफ़ा 'स्वराज्य' ने जो कज़ा दिखाई है, वह तो इतनी सुन्दर है कि बाह रे बाह ! न हुए आज लखनऊ के वाजिदअली शाह, वल्लाह, खलीफ़ा को आगोश में लेकर चूमे बिना हर्गिज़ न रहते।

❀

नीर-चीर-विवेकी भैया 'हंस' तो हंस ही ठहरा। ऐसी चोंच मारी कि 'इण्टर-व्यू' का सारा सार-तत्व मुँह में आ रहा। भैया की परम पवित्र 'घासलेटी' उड़ान देखकर बेचारे ठाकुर साहब, जो कलकत्ता से अपने दामन में यह 'इण्टर-व्यू' बटोर लाए थे, उससे सखी 'सरस्वती' का शृङ्गार करना भूल कर लडकपन के किसी 'बाल सखा' की याद में मढ़वे-तसव्वर हो गए और पण्डित बनारसीदास जी के 'विधुरत्व' की तो कुछ न पूछिए, होंठ चाटकर रह गए। वही दशा थी कि—मगन होइ गुड़ खाइ, मूक स्वाद किमि कहि सकै।

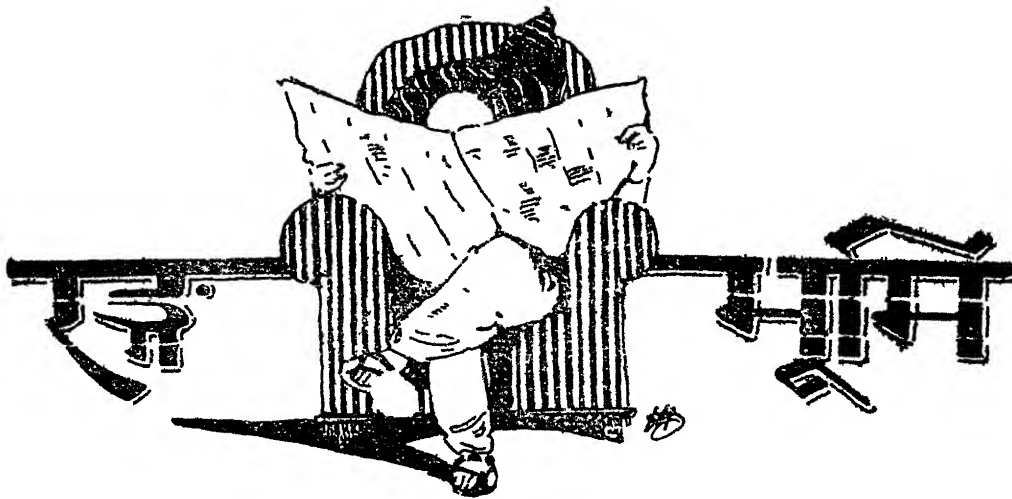
❀

इधर नीर-चीर-विवेचन की 'तल्लीनता' यहाँ तक बढ़ गई कि भैया को इस बात की ख़बर ही न रही कि दुम के नीचे कीचड़-पानी एक हुआ जा रहा है और चोंच की राह मोती के साथ धुँधचियाँ भी घँट में घुसी जा रही हैं तथा नास्तिकवाद पर लेख लिखने वाले दर्शनशास्त्रियों और दूसरे की पगडियाँ उछालने वाले बाज़ार के गुण्डों का गड्डमगड्ड—'श्वानम् युवानम् मधवानमाहू' की याद दिज़ा रहा है।

❀

जनाब 'हंस' की वह 'साहित्यिक गुण्डापन' शीर्षक टिप्पणी पढ़ कर केवल पण्डित बनारसीदास ही न खुश हुए होंगे, बल्कि 'हंस' के नवीन क़ैदख़ाने में, पगड़ी उछालने वाले गुण्डों के साथ ही अपने विरोधी नास्तिक-वाद पर लेख लिखने वाले पण्डितों को क़ैद देख कर ईश्वर बाबा भी निहाल हो गए होंगे।





[सम्पादकीय]

यूरोप में प्रजातन्त्रवाद की दुर्गति

एक समय था, जब कि यूरोप को प्रजातन्त्रवाद पर बड़ा गर्व था और इस सिद्धान्त को वह अपनी सभ्यता की एक बहुत बड़ी विशेषता समझता था। उसका दावा था कि ससार में इससे श्रेष्ठ शासन-पद्धति अभी तक नहीं निकली। पर यूरोप की वर्तमान अवस्था को देख कर इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि यूरोपियनों का यह अहङ्कार बिल्कुल दिखावटी था और उसे ज्योंही यूरोपीय महायुद्ध का धक्का लगा, वह ताश के मकान की तरह भहरा पड़ा। आज यूरोप के प्रायः सभी देशों में प्रजातन्त्रवाद की दुर्दशा हो रही है और उसका स्थान डिक्टेटरशिप अथवा अधिनायकवाद ले रहा है। रूस, इटली, जर्मनी और पोलैण्ड आदि अनेक देशों में प्रजातन्त्रवाद को पूरी तरह दफ़नाया जा चुका है और शासन का पूर्ण अधिकार दल विशेष के हाथ में आ गया है। अब आयरलैण्ड में भी यही तूफ़ान उठा है। वहाँ के जनरल ओडफ़्री ने चालीस हजार स्वयं-सेवक ऐसे इकट्ठे कर लिए हैं, जो पार्लामेण्टरी शासन के स्थान में फ़ैसिस्ट शासन-पद्धति प्रतिष्ठित करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। यद्यपि अभी डी वेलेरा इस दल को बराबर दबाए हुए हैं, परन्तु समय के प्रवाह को देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं यदि कुछ ही महीनों में इस दल का उद्देश्य

सफल हो जाय। ससार की वर्तमान परिस्थिति ही इस प्रकार के एकपक्षीय शासन के अनुकूल है और जिन देशों ने इस मार्ग को ग्रहण किया है, उनका बहुत-कुछ उपकार भी हुआ है। रूसी बोलशेविज़्म के विरोधी भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उसके द्वारा ज़ार के समय का अर्द्धसभ्य रूस एक आधुनिक शक्तिशाली राष्ट्र बनना जाता है। इसी प्रकार मुसोलिनी के प्रतिकूल आलोचक भी इससे इनकार नहीं करते कि उसने इटली जैसे असङ्गठित और निर्बल राष्ट्र को थोड़े ही समय में इतना सङ्गठित और सशक्त बना दिया है कि आज उसकी गिनती संसार की महाशक्तियों में की जाती है। रह गया जर्मनी का डिक्टेटर हर हिटलर, उसने भी शासनारुढ़ होते ही जर्मनी की काया पलट दी और जहाँ फ़्रान्स तथा इङ्ग्लैण्ड बात-बात में उसे धमकाते रहते थे, अब वे चिन्ता में पड़ गए हैं और उनका स्वर भी बहुत-कुछ बदल गया है। यद्यपि हम समझते हैं कि ये सभी दल कई दृष्टियों से उन्नति-विरोधी हैं और उनके कारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अधिकांश में नष्ट हो गई है, तो भी तात्कालिक लाभ की दृष्टि से इन देशों की जनता का एक बड़ा भाग उनका समर्थक है। राजनीति-विशारदों का अनुमान है कि यह लहर तुरन्त ही रुकने वाली नहीं है और यूरोप तथा अमेरिका के प्रत्येक देश को राज़ी से अथवा लाचार होकर प्रजातन्त्रवाद को नमस्कार करके



अधिनायकवाद को अपनाना होगा। क्योंकि अब यह सिद्ध हो चुका है कि प्रजातन्त्रवाद की अपेक्षा इसमें अधिक शक्ति है और शक्ति के पीछे ही यूरोप पागल बना दौड़ रहा है। इसका अन्तिम फल क्या होगा, यह जान लेना भी कठिन नहीं है। विभिन्न देशों में इस सिद्धान्त के जितने रूप देखने में आते हैं, वे सभी अत्यन्त सङ्कुचित अर्थों में राष्ट्रीयतावादी हैं और शान्ति की अपेक्षा युद्ध में अधिक विश्वास रखते हैं। इसलिए जैसे ही उनकी दृष्टि में उपयुक्त अवसर आ जायगा, वे अपने अधिकार की वृद्धि के लिए एक-दूसरे पर दूट पढ़ेंगे। इस पारस्परिक कलह के साथ ही अधिनायकवाद का भी अन्त हो जायगा। उसके पश्चात् यूरोप किस शमसन-प्रणाली का आश्रय लेगा, यह बताना इस समय कठिन है, पर यह स्पष्ट है कि उस समय वहाँ प्रजातन्त्रवाद का नाम तो कोई कदापि न लेगा।

✻

✻

✻

“यलो जर्नलिज्म”

अमेरिका और यूरोप में बहुत से ऐसे पत्र प्रकाशित होते हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य सनसनी फैलाना होता है। वे सत्य और असत्य की उतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि उनका प्रत्येक लेख और समाचार पाठकों को रोचक और कौतूहलवर्द्धक प्रतीत हो। उनके रिपोर्टर इसी धुन में इधर-उधर घूमा करते हैं और प्रत्येक सभा, सम्मेलन, अदालती कार्रवाई, चोरी, डकैती, खून और अन्य दुर्घटनाओं की रिपोर्टें अपने पत्र के लिए प्राप्त करते रहते हैं। इन लोगों का नियम होता है कि प्रत्येक सम्बाद में कोई न कोई ऐसी अजीब बात ढूँढ़ कर सम्मिलित कर दें, जिससे पाठकों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो। जो रिपोर्टर ऐसा नहीं कर सकता वह अयोग्य समझा जाता है। इसलिए जब कभी ढूँढ़ने पर भी उनको कोई विशेष बात नहीं मिलती, तब वे कोई मनगढ़न्त घटना रिपोर्ट में सम्मिलित कर देते हैं। ऐसे रिपोर्टर प्रायः बड़े लोगों के वार्तालाप (इण्टरव्यू) को भी ऐसे अतिरञ्जित रूप में लिख देते हैं, जिससे पाठकों की उत्सुकता तो बढ़ जाती है, परन्तु वक्ता के भाव की पूर्ण रूप से हत्या हो

जाती है। कभी-कभी जब कोई व्यक्ति इनके सामने अपने विचार प्रकट करने से इनकार कर देता है, तो वे इधर-उधर की सुनी-सुनाई बातों के आधार पर इण्टरव्यू लिख मारते हैं। जब महात्मा गाँधी राउण्डटेबिल-कॉन्फ़रेन्स से इटली होकर भारत लौट रहे थे, तो किसी इटैलियन पत्रकार ने उनकी ओर से ऐसा ही इण्टरव्यू प्रकाशित कर दिया था, जिससे भारतवर्ष के राजनीतिक क्षेत्र में बड़ी हलचल मच गई। बाद में महात्मा जी ने बतलाया कि इटली में उन्होंने किसी रिपोर्टर को इण्टरव्यू दिया ही नहीं था। इसी प्रकार हाल ही में इंग्लैण्ड के एक अज्ञात नाम के महाराज अलवर के नाम से एक मनगढ़न्त इण्टरव्यू छाप दिया था, जो उनके हित की दृष्टि से बड़ा ही अनिष्टकारक था। इसलिए दूसरे ही दिन महाराज को उसके सर्वथा निराधार होने की घोषणा करनी पड़ी। ये दो उदाहरण तो हमने ऐसे दिए हैं, जिनका भारत के प्रसिद्ध व्यक्तियों से सम्बन्ध है और इसलिए यहाँ के पाठकों को उनका हाज मालूम है। परन्तु यूरोप और अमेरिका में इस प्रकार की घटनाएँ न मालूम कितनी होती रहती हैं और उनका परिणाम भी बहुधा बड़ा ही हानिकारक होता है। हमें अत्यन्त दुःख से कहना पड़ता है कि इस ‘यलो जर्नलिज्म’ (पीली-सम्पादन-कला) ने हिन्दी पत्र-कला के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है और उसका दर्शन सर्वप्रथम हमें ‘सरस्वती’ जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में, जिसको हिन्दी मासिक पत्रों की जननी कहा जाना किसी दृष्टि से अनुचित न होगा, हुआ है। इसकी अगस्त की सख्या में ‘कलकत्ते की साहित्यिक यात्रा’ शीर्षक एक लम्बा लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें ‘विशाल-भारत’ के सम्पादक श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी का इण्टरव्यू दिया गया है। लेखक ने आरम्भ ही से चतुर्वेदी जी को बनाने और उनका मज़ाक उड़ाने की चेष्टा की है और बाद में उनके साथ होने वाले वार्तालाप का तो ऐसा अप्रत्याशित विवरण दिया है, जिससे हिन्दी-संसार में घोर हलचल उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है। यदि उस लेख में चतुर्वेदी जी के मुख से कहलाई गई बातों का दशमांश भी सत्य हो, तो इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक पाठक उनको घोर दम्भी अहङ्कारी और ईर्ष्या व्यक्ति समझेगा। हम उन बातों को दुहरा कर इस टिप्पणी



का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते, इसलिए इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि लेखक ने 'इन्वरटेड कॉमा' लगा कर जिन वाक्यों को चतुर्वेदी जी का यथावत् कथन बतलाने की चेष्टा की है, वे सब पहली दृष्टि में ही घोर अस्वाभाविक तथा काल्पनिक जान पड़ते हैं। उस तरह की बातें किसी भी व्यक्ति के मुँह से, जिसमें बुद्धि और मनुष्यत्व का कुछ भी अंश होगा, नहीं निकल सकती। केवल विचित्र अथवा बाज़ारू लोग ही उस प्रकार अपने मुँह से अपनी प्रशंसा कर सकते हैं। चतुर्वेदी जी तो क्या, यदि किसी साधारण से साधारण साहित्यिक के सम्बन्ध में वे बातें लिखी गई होतीं, तो भी सहसा हम उन पर विश्वास नहीं कर सकते, फिर श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में, जिनकी सरजता, निष्कपटता और सदाशयता की छाप अग्रणीत व्यक्तियों के हृदयों पर लगी हुई है, इस प्रकार की बातों पर पाठक भरोसा कर लेंगे, यह विश्वास ही न जाने लेखक को कैसे हो सका? हम जोर देकर कह सकते हैं कि जो लोग चतुर्वेदी जी से एक बार भी मिले हैं और जिन्होंने उनकी अस्तव्यस्त वेष-भूषा तथा उनके अकृत्रिम व्यवहार को देखा है तथा उनकी बेतकलुषी से भरी बातों का रसास्वाद किया है, वे इस लेख की एक बात पर भी विश्वास न करेंगे, चाहे इनमें स्वयं पं० बनारसीदास के कथनानुसार 'अर्द्ध-सत्य और सरासर असत्य' के साथ किसी रूप में कुछ 'सत्य' भी क्यों न शामिल हो। हमें चतुर्वेदी जी के लिए इस बात की चिन्ता नहीं है कि इस घटना से वे बदनाम हो जायेंगे, उनकी प्रतिष्ठा बट जायगी, अथवा लोग उनके विरोधी बन जायेंगे। उन्होंने अपनी निस्स्वार्थ सेवा, निर्मल आचरण और निष्कलङ्क साहित्य-साधना के द्वारा हिन्दी के साहित्यिकों में ही नहीं, वरन् साधारण पाठकों के हृदय में भी जो उच्चासन प्राप्त कर लिया है, उससे वे इस प्रकार की चेष्टा द्वारा गिराए नहीं जा सकते। हमें तो दुःख इसी बात का है कि हिन्दी-लेखकों के सामने एक ऐसा दूषित उदाहरण उपस्थित किया गया है कि यदि उसका अनुकरण हुआ तो साहित्य-क्षेत्र में गन्दगी फैल जायगी और लोग तथ्य की बातों को छोड़ कर व्यक्तिगत घृण-मैमें ही रसानुभव करने लगेंगे।

डॉक्टरो चिकित्सा की काया-पलट

प्राचीन काल में हमारे यहाँ चिकित्सा को एक परम पवित्र पेशा माना गया था और इस विद्या के आचार्यों ने आदेश दिया था कि इसे अर्थ-लाभ की दृष्टि से नहीं, वरन् जगत के कल्याणार्थ किया जाय। परन्तु पश्चिमी सभ्यता ने इन सम्बन्ध में केवल भौतिक दृष्टि से विचार किया और इसको भी अन्य पेशों की तरह धनोपार्जन का एक साधन बना डाला। इस प्रवृत्ति का फल यह हुआ कि चिकित्सकगण बीमार के हानि-लाभ से भी अधिक ध्यान अपनी आमदनी का रखने लगे और कितने ही तो बीमार के संशय को बढ़ा कर भी अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। आजकल साधारण लोगों में यह चर्चा प्रायः सुनने में आती है कि अमुक डॉक्टर रोग को बढ़ा देता है, अथवा अमुक डॉक्टर आरम्भ में ऐसी दवा देता है जिससे कुछ लाभ नहीं होता। हम जानते हैं कि जो लोग ऐसी बातें कहते हैं, वे प्रायः चिकित्सा-शास्त्र से सर्वथा अनजान और विवेक शून्य होते हैं और सुनी हुई बातों के आधार पर ही ऐसी सम्मति प्रकट करने लग जाते हैं, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे डॉक्टर अत्यन्त कम हैं जिन्हें इस पेशे की पवित्रता का खयाल हो और जो लोगों को व्याधि-मुक्त करना ही अपना परम कर्तव्य मानते हों। इतना ही नहीं, विज्ञात के डॉक्टरों ने अपना ऐसा सङ्गठन बना रखा है जिससे प्रत्येक डॉक्टर को एक ही मार्ग से चलना पड़ता है और यदि कोई डॉक्टर सिद्धान्त हासिकारक सिद्ध हो, तो भी उसके सम्बन्ध में चुप रहना पड़ता है। इसी तरह का एक सिद्धान्त 'जर्मस' का है, जो वर्तमान डॉक्टरी चिकित्सा का प्रधान आधार है। इसके अनुसार मनुष्य को होने वाले अधिकांश रोगों का कारण वे हानिकारक 'जर्मस' या कीटाणु हैं, जो हवा में इधर-उधर उड़ते रहते हैं अथवा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाते हैं। इसलिए डॉक्टर लोग जो चिकित्सा करते हैं, उसका एकमात्र उद्देश्य इन 'जर्मस' को नष्ट कर देना होता है। यह 'जर्मस' वाला सिद्धान्त ऐसा है, जिससे जनता में रोग सम्बन्धी भय अत्यन्त फैल गया है और इससे बचने



के लिए प्रति वर्ष करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं। परन्तु अब इस सिद्धान्त पर से लोगों की श्रद्धा हट रही है और उनका विश्वास है कि यह डॉक्टरों के लूटने के ढङ्ग के सिवा और कुछ नहीं है। इस तरह के लोगों में कितने ही बड़े बड़े डॉक्टर भी हैं, पर वे अब तक अपनी प्रतिनिधि संस्था के भय से इस सम्बन्ध में मुँह नहीं खोल सकते थे। यह अवस्था देख कर इंग्लैण्ड के कुछ प्रभावशाली लोगों ने 'नेशनल हैल्थ लीग' नाम की एक संस्था की स्थापना की, जो दस वर्ष तक चुपचाप चेष्टा करने के बाद अब इस योग्य हो सकी है कि ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन के असीम प्रभाव की परवाह न करके, चिकित्सा-सम्बन्धी नवीन सिद्धान्तों की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर सके और उनको कार्यरूप में परिणत कर सके। इस लीग में दो हजार बड़े-बड़े डॉक्टर सम्मिलित हैं, जिन्होंने मेडिकल एसोसिएशन के प्रभाव से बचने के लिए अभी तक अपने नाम गुप्त रखे हैं। परन्तु जैसे ही 'नेशनल हैल्थ लीग' का आन्दोलन सार्वजनिक रूप में आरम्भ होगा, वे प्रकट हो जायेंगे। इस लीग के कई धनवान सदस्य जगत के कल्याणार्थ अपने शरीर में विभिन्न बीमारियों का विष प्रवेश कराके औषधियों के प्रभाव की परीक्षा करा रहे हैं। उनका कथन है कि वर्तमान समय में चिकित्सक जानवरों के शरीर में विष प्रवेश करके जो परीक्षाएँ करते हैं, वे निरर्थक हैं, क्योंकि मनुष्य और पशु की मानसिक क्रियाओं में बड़ा अन्तर होता है। इन सज्जनों ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जर्मस का, बीमारी के उत्पन्न होने से कुछ सम्बन्ध नहीं होता, वरन् वे बाद में उत्पन्न होते हैं और उनसे बीमारी के अच्छे होने में सहायता मिलती है। जर्मस के सिद्धान्त की अस्मरता सिद्ध करने के लिए कितने ही सुप्रसिद्ध व्यक्तियों ने लाखों की संख्या में घातक समझे जाने वाले जर्मस को खा लिया है, पर उनका इससे कुछ भी अन्तिम नहीं हुआ। इन लोगों का मत है कि मनुष्य के शरीर में रोग उत्पन्न होने का प्रधान कारण दूषित खान-पान, अस्वास्थ्यकर रहन-सहन और अस्वाभाविक मानसिक अवस्था होती है। इस प्रकार ये चिकित्सक धीरे-धीरे उसी सिद्धान्त को स्वीकार करते जाते हैं, जिसे भारतीय आयुर्वेद के आचार्यों ने हजारों वर्ष पहले स्थिर

किया था। इनका दावा है कि वर्तमान चिकित्सा-पद्धति अनेक दृष्टियों से हानिकारक है और यदि उसका नवीन सिद्धान्तों के अनुसार सुधार कर दिया जाय, तो सर्व-साधारण अनेक ऐसे रोगों से मुक्ति पा सकते हैं, जो आजकल असाध्य समझे जाते हैं और जिनके कारण बहुत अधिक प्राण-हानि होती है। ये लोग इस सम्बन्ध में एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने की योजना कर रहे हैं और इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट में भी आन्दोलन उठाने वाले हैं। परन्तु हमारे देश में कोई इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझता। समय की प्रतिकूलता से हमारी अनुपम चिकित्सा-पद्धति की दिन पर दिन अवनति होती जाती है और चारों तरफ डॉक्टरी की ही पूछ हो रही है। यदि इस देश के अधिकारी आयुर्वेद की उन्नति और शिक्षा के लिए, डॉक्टरी चिकित्सा के लिए किए जाने वाले खर्च से आधा भी खर्च करें, तो यहाँ की जनता के शारीरिक कष्ट बहुत-कुछ कम हो सकते हैं।

❀ ❀ ❀

दवाओं के विज्ञापन

शि मला का समाचार है कि रावबहादुर एम० सी० राजा ने लेजिस्लेटिव एसेम्बली में निम्न-लिखित प्रश्न पूछने का नोटिस दिया है—

(१) क्या यह सच है कि प्रत्येक समाचार-पत्र में नपुंसकता, ताकत बढ़ाने, स्वास्थ्य की उन्नति करने और सन्तान-निग्रह की दवाओं के विज्ञापन छपते हैं?

(२) क्या यह सच नहीं है कि इन दवाओं में अधिकांश अनादियों की बनाई होती हैं, तो भी वे बहुत अधिक दामों में बेची जाती हैं?

(३) क्या सरकार जानती है कि ये विज्ञापन घृणोत्पादक तथा अनुभवहीन युवक और युवतियों के लिए अत्यन्त हानिकार होते हैं?

(४) क्या यह सच है कि इस प्रकार के विज्ञापनों का प्रकाशित होना इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देशों में वर्जित है? यदि यह ठीक है तो फिर भारत में उनको घुरा क्यों नहीं समझा जाता?

(५) क्या सरकार ने इस प्रकार की किसी दवा का विश्लेषण कराया है?

यह बतलाया गया है कि बम्बई में दूजे की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और पिछले चार-पाँच वर्षों में कई बार ऐसे भीषण दूजे हुए हैं, जिनमें सैकड़ों व्यक्ति मारे गए हैं तथा लाखों की सम्पत्ति नष्ट हुई है। बम्बई के शिक्षित-समुदाय ने इस कानून का बहुत विरोध किया और कौन्सिल में भी इसके विरुद्ध बहुत कुछ कहा-सुना गया, पर सरकारी और मनोनीत सदस्यों की सहायता से वह पास हो गया। यह बतलाना अनावश्यक है कि बेत की सज़ा असम्भ्यता की परिचायक मानी जाती है और अधिकांश सभ्य देशों में उसे वर्जित कर दिया गया है। हमारे देश में भी अभी तक वह बहुत ही थोड़े अवसरों पर काम में लाई जाती थी। आश्चर्य और खेद का विषय है कि अन्य देश इस सम्बन्ध में और भी आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं और इसका चिन्ह भी शेष नहीं रहने देना चाहते, परन्तु हमारे यहाँ उलटा चक्र चल रहा है और उसे कानून द्वारा वैध बनाया जा रहा है। इसका एक यही कारण हो सकता है कि हमारे गोरे प्रभुओं की दृष्टि में अभी यह देश सभ्यता से बहुत परे है और इसके निवासियों के साथ असभ्यों के समान बर्ताव करना ही उचित है। इस सम्बन्ध में यद्यपि होम-मेम्बर ने आश्वासन दिया है कि यह कानून दूजों के सिवा और किसी अवसर पर काम में न लाया जायगा, पर जब हम दफा १४४ और दफा ११७ का अन्धाधुन्ध उपयोग होते देखते हैं, तो आशा नहीं होती कि यह कानून भी सिवा उस उद्देश्य के, जिसकी घोषणा की गई है, अन्य कामों के लिए प्रयोग में न लाया जायगा। कुछ भी हो, सभ्य सत्तार इसे भारतीय दण्ड-विधान के लिए कलङ्क-स्वरूप ही समझेगा। अधिकारियों का कर्तव्य है कि यथासम्भव शीघ्र इसे मिटाने की चेष्टा करें।

क़र्ज देने वाले 'काबुली'

'स्टे' 'ट्रसमैन' के शिमला-स्थित सम्वाददाता ने सूचना दी है कि उस स्थान से क़र्ज देने वाले 'काबुलियों' को, जो प्रायः बड़े भगडालू और लबाके होते हैं, निकालने की चेष्टा की जा रही है।

परन्तु यह बला केवल शिमला में ही सीमाबद्ध नहीं है, वरन् समस्त भारत में फैली हुई है और यदि उनको शिमले से निकाला जायगा तो वे अन्य स्थानों में अपना झुका बना लेंगे। इसलिए इस प्रकार का उपाय तभी लाभदायक हो सकता है, जब कि वह किसी विशेष स्थान के बजाय समस्त देश के लिए किया जाय। इन लोगों का दुष्ट स्वभाव तथा गरीबों के ऊपर इनके अत्याचार सर्व-विदित हैं और भारत के सिवा कोई भी देश, जिसमें तनिक भी जीवन और स्वाभिमान का भाव होगा, इनको अपने यहाँ पैर नहीं रखने दे सकता। जो देहाती अथवा शहर में काम करने वाले मज़दूर इनसे दस-पाँच रुपए क़र्ज लेते हैं, वे अपने लिए एक बड़ी आक्रत मोल ले लेते हैं। इस रुपए का इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि थोड़े ही दिनों में रकम दुगुनी हो जाती है और उसके चुकाने में जहाँ ज़रा भी देर हुई कि 'काबुली' लड़ लेकर पहुँच जाता है। आलकल ये लोग क़र्ज वसूल करने के लिए कभी-कभी अदालती कार्रवाई भी करने लगे हैं, पर उनका प्रधान उपाय उनकी लग्नी लाठी ही होता है। ये क़र्जदार की मान-मर्यादा और इज्जत का कुछ भी खयाल नहीं करते और अपनी रकम वसूल करने के लिए घृणित से घृणित उपाय से काम लेने में भी नहीं हिचकते। हमने किसी जगह पढ़ा था कि एक काबुली क़र्ज लेने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसके शव पर इसलिए पेशाब करना चाहता था कि उसने मरने से पूर्व रुपया चुकाने की व्यवस्था नहीं की। दर्शकों को यह दृश्य असहनीय प्रतीत हुआ और उन्होंने परस्पर चन्दा करके अभाग 'काबुली' को उसका रुपया देकर हटाया। असल में ये लोग ममुष्य नहीं, नितान्त पशु होते हैं और अपने स्वार्थ के सिवा किसी बात को नहीं समझते। ज़ाहिर में ये कट्टर मुसलमान बनते हैं, पर मुसलमानी धर्म के सिद्धान्त के विरुद्ध सूद लेने का पेशा करते हैं। जब कोई समझदार मुसलमान इनको इसके लिए फटकारता है तो ये बहाना करते हैं कि यह रुपया हमारा नहीं है, वरन् हिन्दू साहूकारों का है, जिसे हम उनसे उधार लेते हैं। वे यह भी कहते हैं, हम उतना ही न्याज लेते हैं जितना कि प्रायः यहाँ के बनिए और क़र्ज देने वाली कम्पनियाँ लेती हैं। कुछ भी हो, क़र्जदारों के प्रति इन



लोगों का व्यवहार जैसा नृशंमतापूर्ण होता है और अपनी रकम के लिए ये उसे जिस प्रकार अपमानित करते हैं, उसे देखते हुए इनके प्रतिकार की कुछ न कुछ चेष्टा अवश्य होनी चाहिए।



इनकम-टैक्स वालों की धाँधली

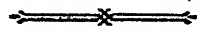


कलकत्ता की इनकम-टैक्स पेयर्स एसोशियेशन ने हमारे पास एक लम्बा पत्र भेजा है, जिसमें उन असुविधाओं और अन्यायों का जिक्र किया गया है, जो टैक्स देने वाली जनता को इस महकमे के अधिकारियों के कारण सहन करने पड़ते हैं। वैसे तो इस भारी टैक्स का देना सदा ही लोगों को अखरता है, पर वर्तमान समय में जब चारों तरफ व्यापार की मन्दी का रोना मचा हुआ है और अधिकांश लोगों की आमदनी पहले की अपेक्षा बहुत घट गई है, यह और भी कष्टकर हो गया है। यह एक ऐसा पेचीदा विषय है, जिसमें किसी बात का तात्पर्य कई तरह निकाला जा सकता है और इसलिए जनता के हित-अनहित तथा न्याय की रक्षा अधिकांश में कर्मचारियों की नेकनीयती पर ही अवलम्बित रहती है। एसोशियेशन का कहना है कि “ये कर्मचारी प्रायः टैक्स देने वाले व्यक्ति के हित की उपेक्षा किया करते हैं और उनके निर्णय का आधार अधिकांश में उनकी व्यक्तिगत सम्मति अथवा धुन होती है। कभी-कभी द्वेष अथवा अन्य उद्देश्य का प्रभाव भी इस निर्णय पर पड़ता है, जो उसे दूषित बना देता है।” इन लोगों को इतना अवकाश नहीं होता कि प्रत्येक टैक्स देने वाले के खाते की पूरी तरह जाँच कर सके, इसलिए वे उसे सरसरी निगाह से देख कर अनुमान से काम लेते हैं। एसोशियेशन ने एक ऐसे मामले का उदाहरण दिया है जिसमें किसी बड़े व्यापारी के इनकम-टैक्स का मामला पाँच वर्ष से चला रहा था और अन्त में इनकम-टैक्स के अधिकारियों ने दो दिन में उसके खाते की साधारण जाँच करके तीन वर्ष के लिए तीन लाख ७० हजार २० टैक्स लगा दिया। इस प्रकार की घटनाएँ अन्य स्थानों में भी प्रायः होती रहती हैं और कितने

ही लोगों को तो इनके कारण इतना तक्रा होना पड़ता है कि अन्त में उनका कारबार ही चौपट हो जाता है। यह नीति सरकार और जनता दोनों के लिए हानिकारक है। इस सम्बन्ध में राजा बहादुर जी० कृष्णभा-चारियर ने इनकम-टैक्स एमेण्डमेण्ट बिल के सम्बन्ध में दिए हुए भाषण में ठीक ही कहा था कि “हम यह नहीं कहते कि सरकार इस टैक्स को मन्सूख कर दे। हम इतना ही चाहते हैं कि यदि हमारा रक्तशोषण किया जाता है, तो वह इस प्रकार हो जिससे आपको अपनी मनोवाञ्छित वस्तु मिल जाय और हम जीवित रहें, ताकि हमारे शरीर में नया खून उत्पन्न हो और आप उसे फिर निकाल सकें।” यदि सरकार लोगों के असन्तोष को बढ़ने देना नहीं चाहती, तो उसे अवश्य ही कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे करदाताओं पर होने वाली असुचित तथा अनावश्यक कठोरता का अन्त हो जाय और कर्मचारियों द्वारा अन्याय होने की अवस्था में उसका बिना विशेष झूझ के प्रतिकार हो सके।



वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ की शेखी



वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ के जो प्रतिनिधि ज्वाइन्ट सेलेक्ट कमिटी के सामने गवाही देने समुद्र-पार गए थे, उन्होंने वहाँ कहा था कि इस सङ्घ को ९५ प्रतिशत हिन्दुओं की तरफ से बोलने का अधिकार है। पर इस अधिकार का उन्होंने जिस प्रकार उपयोग किया है, उससे यह कहा जा सकता है कि यदि ये ही लोग हिन्दुओं के प्रतिनिधि हैं तो उनका रक्षक भगवान ही है। जैसा कि हमारे पाठक जानते होंगे, नवीन सुधारों के सम्बन्ध में सभी देश-हितैषी व्यक्तियों का एक प्रस्ताव यह है कि कानून बनाने का अधिकार केवल एक हो सभा को रहे, क्योंकि दो शासन-सभाओं की प्रथा उन्नति के मार्ग में अड़कला डालने वाली है। पर ये वर्णाश्रमी सज्जन दो के बजाय तीन सभाओं के हाथ में कानून बनाने का अधिकार देना चाहते हैं। दो शासन-सभाओं के अतिरिक्त वे यह भी चाहते हैं कि किसी भी कानून पर, जिसका प्रभाव किसी तरह धर्म पर पड़ता हो,



तब तक विचार न किया जा सके, जब तक समस्त प्रति-
ष्ठित धर्माचार्य उसका अनुमोदन न कर दें। ये धर्माचार्य
देश के लिए किस प्रकार की शासन व्यवस्था पसन्द

करेंगे, यह उनके
चरित्र तथा विचारों
से सर्वथा स्पष्ट है।
जिन लोगों के जीवन
का उद्देश्य सीधे-सादे
लोगों को ठगना और
हराम का माल खाकर
चरित्रहीनता की वृद्धि
करना है, उनसे उन्नति
की क्या आशा की जा
सकती है। वे तो
यही चाहते हैं कि
हिन्दू-समाज जिस
अवस्था में पड़ा है,
उसी में पड़ा रहे,
ताकि उनके स्वार्थ को
किसी प्रकार का धक्का
न लगे। वे अछूतों को
वर्तमान दुर्दशा में
पड़ा रखना चाहते हैं,
स्त्रियों की परतन्त्रता
का समर्थन करते हैं,
लड़कियों का विवाह
ग्यारह वर्ष की अवस्था
से पूर्व कर देने के
पक्षपाती हैं, और
विधवा-विवाह को
घोर पाप बतलाते हैं।
इतना ही नहीं, यदि

उनका व्रथ चले तो वे फिर से सती-प्रथा को भी
प्रचलित कर दें। इन लोगों में से बहुत थोड़े शिक्षित
होते हैं और संसार की गति का उनको कुछ भी

पता नहीं होता। फिर उनको इन पक्षों में पड़ने
की ज़रूरत ही क्या है, जब वे बिना किसी चेष्टा के बड़े
से बड़े सांसारिक सुखों का उपभोग करते रहते हैं।

सेलेक्ट कमिटी में
भारतीय सदस्यों
ने इन विषयों पर
प्रश्न करके इन धर्म
के ठेकेदारों की पोल
खूब अच्छी तरह
खोल दी और स्पष्ट
शब्दों में कह दिया
कि यह सङ्घ प्रतिशत
से अधिक हिन्दुओं
का प्रतिनिधि नहीं
हो सकता। हम नहीं
समझते कि इस तरह
की बेतुकी बातें करके
विदेशियों के सम्मुख
अपने को उपहासा-
स्पद बनाने तथा साथ
ही हिन्दू जाति की
बदनामी करने में इन
लोगों ने क्या लाभ
सोचा है? अगर
वास्तव में ९१ प्रति-
शत हिन्दू उनके
समर्थक हैं और उन्हें
ही अपना सच्चा शुभ-
चिन्तक समझते हैं,
तो वे कौन्सिलों में
सहज ही में ऐसे बहु-
संख्यक प्रतिनिधि भेज

लेखकों से निवेदन

जैसा इस अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित विज्ञापन
से विदित होगा, अपने बारहवें वर्ष के आरम्भ
(नवम्बर, १९३३) में हमने 'चाँद' का एक
विशेषाङ्क प्रकाशित करने का आयोजन किया है।
हमारा उद्देश्य इसमें विविध विषयों के गम्भीर
गवेषणापूर्ण तथा समयोपयोगी लेख प्रकाशित
करने का है। 'चाँद' का जन्म मुख्यतया समाज-
सुधार को लक्ष्य में रख कर हुआ है, इसलिए
समाज में प्रचलित भौति-भौति की कुरीतियों तथा
हानिकारक रूढ़ियों से सम्बन्ध रखने वाले लेखों
का विशेष ध्यान रक्खा जायगा। विभिन्न जातियों
में जो सुधार-सम्बन्धी कार्य हो रहे हैं, उनका
निवरण जनता के सम्मुख प्रकट करना भी आव-
श्यक है। हमें पूर्ण आशा है कि विद्वान् लेखक
इन तथा अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं पर अपने
सारयुक्त विचार प्रेषित करके हमें अवश्य ही अनु-
गृहीत करेंगे। क्योंकि बिना इस प्रकार के सहयोग
के हमारे आयोजन की सफलता असम्भव है। ये
लेख हमारे पास सितम्बर के अन्त तक पहुँच जाने
चाहिए, क्योंकि उसके पश्चात् आने वाले लेखों
का उचित स्थान पर छाप सकना सन्देहजनक है।

—सम्पादक 'चाँद'

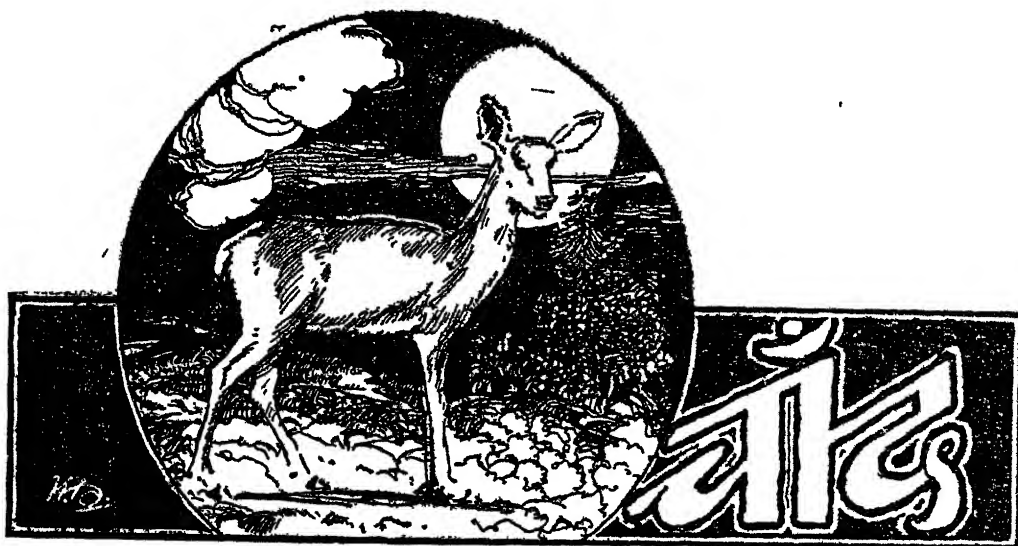
सकते हैं, जो वहाँ सङ्घ के सिद्धान्तों के अनुकूल प्रस्ताव
पुस कर सकते हैं और समस्त धर्म विरोधी प्रस्तावों को
डुकरा सकते हैं।





चित्रकार का आदर्श





आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड २

अक्टूबर, १९३३

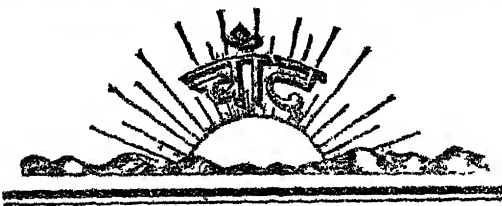
संख्या ६, पू० सं० १३२

पनिहारी

[श्री० मोहनलाल महतो, 'वियोगी']

अपना घट भर ले पनिहारी,
उमड़ो घटा क्षितिज पर काली—झाई है अधियारी।

छन भर का अवकास नहीं है,	कितने आए गए तरस के,
दिन का भी विश्वास नहीं है,	लाले पडे बूँद भर रस के,
विभा और तम वसुधा-तल पर आते बारी-बारी।	तू भी मत खो हँसी-हँसी मे अपनी घड़ियाँ सारी।
मत विलम्ब कर अरी सलोनी।	कदली, चातक, शुक्ति खड़ी है,
रहती है होकर ही होनी,	अपनी-अपनी इन्हे पड़ी है,
ऐ मतवाली। क्यों तेरी यो गई हाय, मति मारी ?	एक-एक छन है इनका जीवन से बढ़ कर भारी।
अपना घट भर ले पनिहारी।	



अक्टूबर, १९३३

संयुक्त-प्रान्त में स्त्री-शिक्षा



भा

रतीय स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न अब बाद-विवाद की सीमा को अतिक्रम करके व्यावहारिक क्षेत्र में पहुँच गया है। नई पीढ़ी के व्यक्ति इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकेंगे कि अब से कुछ वर्ष पहले ऐसा समय था, जब कि

अधिकांश लोग स्त्रियों को पढ़ाना केवल अनावश्यक नहीं, बरन् हानिकारक समझते थे और बड़े-बड़े पण्डित तथा विद्वान् कहलाने वाले झोरदार शब्दों में उसका विरोध किया करते थे। अब तो परिस्थिति यहाँ तक बढ़ल गई है कि लड़कियों का पढ़ाना उतना ही स्वाभाविक और

आवश्यक माना जाने लगा है, जितना कि लड़कों का। और, यदि अब भी बहुत से लोग लड़कियों को स्कूल नहीं भेजते तो उसका कारण प्रायः उनके पास साधनों का अभाव अथवा उनके घर की परिस्थिति होती है। फलतः अब प्रश्न केवल यही रह गया है कि स्त्रियों की शिक्षा कैसी हो और उसके लिए क्या प्रबन्ध किया जाय। कितने ही लोग लड़कियों को बिल्कुल लड़कों की सी शिक्षा दिलाने के पक्षपाती हैं, ताकि वे सब प्रकार के व्यवसायों को सफलतापूर्वक कर सकें। परन्तु इसके विपरीत कितने ही लोग ऐसे हैं, जो उनको ऐसी शिक्षा दिलाना चाहते हैं, जो विशेष रूप से गृहस्थी के सञ्चालन में उपयोगी सिद्ध हो। इस विषय में विद्वान् लोग समय-समय पर अपने विचार लेखों और पुस्तकों द्वारा प्रकट करते रहते हैं। इसी प्रकार का एक लेख पैम्फलेट के रूप में हाल ही में स्थानीय एक विदुषी महिला कुमारी एस० आगा ने प्रकाशित कराया है, जिसमें लड़कियों की शिक्षा-प्रणाली का विवेचन करते हुए संयुक्त-प्रान्त की कन्याशालाओं की स्थिति पर भी बहुत-कुछ प्रकाश डाला गया है। वास्तव में यह बड़े खेद और लज्जा की बात है कि संयुक्त-प्रान्त विस्तार, जन-संख्या तथा महत्व की दृष्टि से एक प्रधान प्रान्त होते हुए भी स्त्री-शिक्षा जैसे परमावश्यक विषय में भारत के अधिकांश प्रान्तों से पिछड़ा हुआ है। अब तक इस त्रुटि का मुख्य कारण यहाँ के निवासियों की मानसिक सङ्कीर्णता अथवा अपरिवर्तनशीलता समझा जाता था, पर कुमारी आगा ने सरकारी रिपोर्टों



के अङ्कों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि इस त्रुटि का अधिकांश उत्तरदायित्व यहाँ के निवासियों पर नहीं, बल्कि सरकार या उसके शिक्षा-विभाग पर है। अब समय आ गया है कि जनता इस सम्बन्ध में सावधान होकर इस अवस्था में सुधार करने की चेष्टा करे। यद्यपि इस समय शिक्षा-विभाग गैर-सरकारी नियन्त्रण में समझा जाता है और उसकी बागडोर उन्नतिशील भारतीयों के हाथों में रहती है, परन्तु जिन लोगों को सरकारी कार्य-प्रणाली का भली भाँति ज्ञान है, वे जानते हैं कि उसमें कोई भी नया परिवर्तन, विशेष कर जिसके लिए धन की अधिक आवश्यकता हो, बिना आन्दोलन किए नहीं होता। हम यहाँ कुमारी आगा के विचारों का आलोचनात्मक विवरण देते हैं, जिसमें पाठक इस विषय के मुख्य को समझ सकें और इस देश-सेवा के कार्य में यथोचित भाग ले सकें।

प्राथमरी स्कूल

किमी भी शिक्षा-प्रणाली में प्राथमरी स्कूलों का महत्व बहुत अधिक होता है, क्योंकि वे ही सब प्रकार की उच्च शिक्षा की जड़ होते हैं। इसके सिवा जनता का सभ्यता से संसर्ग कराने वाले तथा साधारण जीवनोपयोगी ज्ञान प्रदान करनेवाले भी वे ही होते हैं। सन् १९३० में इस प्रान्त में इन प्राथमरी स्कूलों की संख्या १६८७ थी। इस संख्या से यदि स्कूल जाने के योग्य उम्र वाली समस्त कन्याओं की संख्या को विभाजित कर दें, तो मालूम होता है कि इस प्रान्त में १८०० लड़कियों के पीछे एक स्कूल है। यदि हम उन लड़कियों की भी गणना कर लें, जो कि लड़कों के स्कूलों में पढ़ने जाती हैं, तो सब मिलाकर सौ में से केवल ३३ लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करती हैं। इन अङ्कों का यूरोप और अमेरिका के अङ्कों से मुकाबला करना तो व्यर्थ ही है, हमारे देश के मद्रास प्रान्त से तुलना करने पर भी बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। क्योंकि मद्रास में ५६० लड़कियों के पीछे एक प्राथमरी स्कूल है और १०० में से २१ लड़कियाँ शिक्षा पाती हैं। मैसूर रियासत में ७०८ लड़कियों के पीछे एक स्कूल है और १०० में से १४ लड़कियाँ पढ़ने को जाती हैं। इस दृष्टि से संयुक्त प्रान्त अप्रान्त पिछड़ा हुआ सिद्ध होता है और इसका जितना शीघ्र प्रतिकार किया जाय उसका ही अङ्का है।

जो प्राथमरी स्कूल इस प्रान्त में चल रहे हैं, उनका प्रबन्ध तथा शिक्षाक्रम भी ऐसा त्रुटिपूर्ण है कि उनमें जितना लाभ होना चाहिए उसका चौथाई भी नहीं हो पाता। इन स्कूलों में जितनी लड़कियाँ दाखिल होती हैं, उनमें से केवल ७-८ प्रति सैकड़ा प्राथमरी स्कूल की अन्तिम (चौथी) श्रेणी तक शिक्षा पाती हैं, शेष केवल एक दो वर्ग तक पढ़ कर ही छोड़ देती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि वे उतनी भी शिक्षा नहीं पाती जिससे पढ़ने-लिखने का पूरा अभ्यास हो जाय और थोड़े दिनों में सब भूल भाल कर जैसी की तैसी हो जाती हैं। अवश्य ही इसका एक कारण समाज में प्रचलित कृषि रुढ़ियाँ भी हैं, परन्तु उससे भी बड़ा कारण यह है कि ७० प्रति सैकड़ा प्राथमरी स्कूलों में केवल दूसरे दर्जे तक ही शिक्षा दी जाती है और यदि लड़कियाँ उससे अधिक शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो उन्हें किसी अन्य दूरवर्ती स्कूल में जाना पड़ता है। इससे तो अच्छा यही होता कि चाहे स्कूलों की संख्या और भी कुछ कम हो जाती, पर उनमें सम्पूर्ण प्राथमरी शिक्षा के दिए जाने का प्रबन्ध होता, ताकि जो लड़कियाँ उनमें जाती वे कम से कम इतना तो सीख सकतीं जो उनके लिए भविष्य में लाभदायक होता।

इस त्रुटि को दूर करने का एक उपाय प्राथमरी स्कूलों में सह-शिक्षा अथवा लड़के और लड़कियों को एक साथ पढ़ाने की व्यवस्था करना है। अब भी शिक्षा-विभाग के नियमानुसार दस वर्ष की उम्र तक लड़के और लड़कियों को एक साथ शिक्षा दी जा सकती है, पर इसका निर्णय शिक्षकों पर ही छोड़ दिया गया है और इसके लिए कोई निश्चित योजना नहीं बनाई गई है। कितने ही लोग इस सम्बन्ध में बहस करते हैं कि यदि इस प्रकार की पद्धति प्रचलित की गई तो पुराने विचारों के लोग उसका विरोध करेंगे और अपनी लड़कियों को बढ़ने के लिए नहीं भेजेंगे। परन्तु इस प्रान्त की शिक्षा-प्रणाली की जाँच करने वाली हरटोग कमिटी की रिपोर्ट से मालूम होता है कि इस पद्धति के विरोधियों की संख्या नाम-मात्र को है। छात्रकल भी स्कूल जाने वाली १ लाख १२ हजार में से २१ हजार अथवा ४६ प्रति सैकड़ा लड़कियाँ लड़कों के प्राथमरी स्कूलों में ही शिक्षा पाती हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में सावधानिक

विरोध की आशङ्का करना व्यर्थ है। समय कट्टर से कट्टर लोगों के विचारों पर प्रभाव डालता है और इस तरह चुपचाप परिवर्तन करता है कि स्वयं उनको भी इसका अनुभव नहीं होता। इतने पर भी यदि किसी स्थान के निवासी प्राथमरी स्कूल की अन्तिम श्रेणी तक लड़कियों का लड़कों के साथ पढ़ाया जाना पसन्द न करें तो सह-शिक्षा का प्रबन्ध केवल दूसरी कक्षा तक ही किया जा सकता है और शेष दो कक्षाओं की पढ़ाई के लिए पृथक् स्कूल खोले जा सकते हैं। ऐसे स्कूल 'ब्राह्म स्कूल' कहे जाते हैं और इससे शिक्षा-सम्बन्धी कार्य बड़ी मितव्ययिता से होता है। पञ्जाब में इस प्रकार के ३,००० ब्राह्म स्कूल हैं और इसके फल-स्वरूप वहाँ शिक्षा-विभाग में होने वाला अपव्यय बहुत घट गया है। सह-शिक्षा की व्यवस्था गाँवों के लिए शहरों की अपेक्षा भी अधिक आवश्यक और हितकर है, क्योंकि शहरों में तो आजकल शिक्षा-कार्य के योग्य स्त्रियों मिल भी जाती हैं, पर गाँवों में उनका बड़ा अभाव है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रख कर गुडगाँव (पञ्जाब) के सुप्रसिद्ध कलक्टर मि० एफ० एल० ब्रायन ने, जिन्होंने अपने ज़िले के गाँवों की कायापलट कर दी थी, 'बिहार और उड़ीसा कोऑपरेटिव जर्नल' में लिखा है :—

“हमको विवश होकर इस नियर्ण पर पहुँचना पड़ता है कि स्त्री-शिक्षा के प्रचार का एकमात्र व्यावहारिक मार्ग यही है कि छोटी-छोटी लड़कियों को अपने छोटे भाइयों के साथ गाँव के प्राथमरी स्कूलों में भेजा जाय। वहाँ पर वे शिक्षक से पढ़ना-लिखना सीखेंगी और उसकी पत्नी अथवा किसी अन्य सम्बन्धी महिला से गृहस्थी सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करेंगी। जब लड़के-लड़कियाँ इतने बड़े हो जायें कि उनका साथ पढ़ना उचित न जान पड़े तो लड़कियाँ कन्या-मिडिल स्कूलों में और लड़के अपने मिडिल-स्कूलों में चले जायें। संसार के समस्त देशों और भारत के भी कितने ही भागों में यही किया जा रहा है और यही समस्त गाँवों के लिए स्वाभाविक और नियमानुकूल व्यवस्था हो सकती है।”

सेकण्डरी और यूनीवर्सिटी की शिक्षा

जिस प्रकार साधारण जनता को साक्षर तथा सभ्य बनाने के लिए प्राथमरी शिक्षा की आवश्यकता है, उसी

प्रकार देश-ज्ञाति तथा समाज की प्रगति के कार्य में सहायता पहुँचाने को योग्य कार्यकर्ता तैयार करने के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। विशेष कर भारतीय स्त्रियों की वर्तमान अवनतिपूर्ण अवस्था में तो इसका महत्व और भी अधिक है। आजकल इस देश की स्त्रियों को जो सार्वजनिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए हैं या निकट भविष्य में होने वाले हैं, उनका उपयोग तब तक कदापि नहीं किया जा सकता, जब तक देश में उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं की पर्याप्त संख्या न हो। स्त्रियों में जाग्रति फैलाने और अपने अधिकारों का ज्ञान कराने का कार्य भी सुशिक्षित महिलाओं द्वारा ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

संयुक्त-प्रान्त में स्त्रियों की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध प्राथमरी शिक्षा की अपेक्षा भी अधिक शोचनीय है। सन् १९३०-३१ में प्रान्त भर में लड़कियों के १७७ बनारस-क्यूलर मिडिल स्कूल, ४४ अङ्गरेज़ी मिडिल स्कूल, १४ हाई-स्कूल और ३ इण्टर-मीजियट कॉलेज थे, जिनमें सब मिला कर ४,३१६ छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। ये छात्राएँ अधिकांश में शहरों की ही थीं। गाँवों से केवल २६३ छात्राएँ आई थीं, जिनमें से २४४ पाँचवीं या छठी कक्षा में शिक्षा पाती थीं। इससे विदित होता है कि छोटे कस्बों और गाँवों की स्त्रियों के उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकने की इस देश में अभी कोई सम्भावना नहीं है। जब हम यह स्मरण करते हैं कि इस प्रान्त की लगभग दो करोड़ स्त्रियाँ देहातों में रहती हैं और उनमें से केवल १६ दर्जा ६ से ऊपर की श्रेणियों में शिक्षा प्राप्त करती हैं, तो भविष्य सर्वथा अन्धकारपूर्ण जान पड़ता है।

शिक्षा-क्रम

लड़कियों के सेकण्डरी स्कूलों का शिक्षा-क्रम किस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर निश्चित किया जाय, यह एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। क्योंकि जहाँ एक ओर देश-सेवा तथा समाज-सेवा के योग्य शिक्षा देना आवश्यक है, दूसरी ओर गृह-कार्य के सम्भालन की शिक्षा के बिना भी काम नहीं चल सकता। हम अपना आदर्श चाहे कितना भी उच्च क्यों न बना लें, भारतवर्ष की वर्तमान दशा तथा मनोबुत्ति को देखते हुए सैकड़ों वर्ष तक इस

बात की आशा नहीं की जा सकती कि यहाँ की स्त्रियाँ यूरोप और अमेरिका की स्त्रियों की भाँति गृह-जञ्जाल से मुक्त होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लग जायँगी। वैसे अब भी कुछ महिलाएँ इस आदर्श के अनुसार आचरण करती हैं, पर उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनने लायक है और उनके आधार पर भारतीय स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में कोई निर्णय करना सर्वथा अमपूर्ण है। अभी तक जो लड़कियाँ सेकण्डरी स्कूलों में पढ़ने जाती हैं, उनका भविष्य में विवाहित जीवन व्यतीत करना ही निश्चित होता है और इसलिये शिक्षा-प्रणाली में गृहस्थी-सञ्चालन की शिक्षा की व्यवस्था का होना अनिवार्य है। यद्यपि आजकल लोअर मिडिल स्कूलों में गृह-कार्य की शिक्षा देने का नियम है, पर इसको जितना महत्व दिया जाना चाहिए, उतना नहीं दिया जाता। वर्नाम्यूलर स्कूलों में लड़कियों को चिकित्सा-विज्ञान, शिशुपालन, आहार-विज्ञान, गृह-प्रबन्ध, घर की सजावट, स्वास्थ्य-रक्षा, सीना और पाक-शास्त्र आदि का साधारण ज्ञान प्रदान करना शिक्षा क्रम में सम्मिलित है। यदि इसमें कुछ ऐसी दस्तकारियों की शिक्षा, जिन्हें कितने ही स्थानों की स्त्रियाँ अब भी घरों में करती हैं और जिससे उनको कुछ आर्थिक लाभ भी होता है, और सम्मिलित कर दी जाय, तो यह सर्व-साधारण की दृष्टि में अधिक उपयोगी होगा। इसके अतिरिक्त लड़कियों को नागरिक शास्त्र तथा समाज-शास्त्र सम्बन्धी शिक्षा भी थोड़ी बहुत अवश्य मिलनी चाहिए। इससे वे अपने समाज की परिस्थिति को, जिसके अनुसार आगे चल कर उनको रहना पड़ेगा कुछ अंशों में समझ सकेंगी। यदि इन विषयों के बढ़ाने से पढ़ाई का भार अधिक हो जाय तो कुछ अनावश्यक साहित्यिक विषयों को, जो भावी-जीवन में किसी उपयोग में नहीं आते, छोड़ दिया जा सकता है।

योग्य शिक्षकों का अभाव

इस प्रान्त में स्त्री-शिक्षा की उन्नति में एक बड़ी बाधा योग्य शिक्षकों का अभाव है। सन् १९३०-३१ में स्त्री-शिक्षिकाओं के लिए सब प्रकार के ट्रेनिङ्ग स्कूलों की संख्या २९ थी, जिनमें ४०३ विद्यार्थिनियाँ शिक्षा पाती थीं और १४३ उत्तीर्ण होकर निकलीं। पर इसी वर्ष

मौजूदा शिक्षिकाओं में २०० की कमी पड़ी। इसमें प्रत्यक्ष है कि ट्रेनिङ्ग शिक्षिकाओं की सरया बढ़ने के बजाय घटती जाती है और पढ़ाई का कार्य अधिकांश में शिक्षा-विज्ञान के नियमों से अनभिज्ञ स्त्रियों से कराया जाता है। इस अवस्था का सुकावला जब हम मद्रास से करते हैं, तो विदित होता है कि वहाँ के ट्रेनिङ्ग स्कूलों में विद्यार्थिनियों की संख्या करीब ३,००० है और प्रति-वर्ष १२०० उत्तीर्ण होकर निकलती हैं। हमारे प्रान्त के इस सम्बन्ध में विशेष रूप से पिछड़े हुए होने का कारण यह है कि यहाँ शिक्षिकाओं के ट्रेनिङ्ग को बहुत कम महत्व दिया जाता है और तीन गवर्नमेण्ट नार्मल स्कूलों को छोड़ कर शेष ट्रेनिङ्ग क्लास अन्य साधारण स्कूलों में ही सम्मिलित कर दिए गए हैं। इन क्लासों में विद्यार्थिनियों की संख्या प्रायः इतनी कम होती है कि उनके लिए शिक्षा का उपयुक्त प्रबन्ध नहीं किया जा सकता। यदि इस प्रकार के छोटे-छोटे क्लासों को तोड़ कर ऐसे ट्रेनिङ्ग स्कूलों की स्थापना की जाय, जिनमें विद्यार्थिनियों की संख्या काफी हो और जिनका सब प्रबन्ध स्वतन्त्र रूप से होता हो, तो वे कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में शिक्षिकाओं के वेतन के विषय में भी कुछ सुधार होने की आवश्यकता है। उनका वेतन इतना कम रखा गया है कि उतने में योग्य शिक्षयित्रियों का मिल सकना असम्भव है। इस सम्बन्ध में मद्रास की स्त्री-शिक्षा की उन्नति पर विचार करने वाली कमिटी की सम्मति है कि “इन स्कूलों में कार्य करने के लिए योग्य महिला-शिक्षिकाएँ तभी प्रसन्नतापूर्वक तैयार हो सकती हैं, जब कि उनकी नौकरी की शर्तें सन्तोषजनक हों। पुरुष शिक्षक जितने कम वेतन पर काम कर सकते हैं, उतने पर काम कर सकने की आशा उनसे नहीं की जा सकती।” इसी प्रकार की एक अन्य कमिटी का, जो मध्यप्रान्त में नियुक्त की गई थी, कथन है कि “यह आवश्यक है कि महिला-शिक्षिकाओं को इतना वेतन दिया जाय, जिससे वे भली प्रकार जीवन-निर्वाह कर सकें।” संयुक्त-प्रान्त की शिक्षा की जाँच करने वाली हरदोग कमिटी का भी यही मत था। परन्तु खेद की बात है कि इतने पर भी सरकार ने इस विषय पर बहुत कम ध्यान दिया है। इसके कारण ट्रेनिङ्ग स्कूलों और फलतः प्रान्त भर की स्त्री-शिक्षा की अपार हानि हो रही है।



ट्रेनिङ्ग स्कूलों का शिक्षा-क्रम

ट्रेनिङ्ग स्कूलों में आजकल जिस शिक्षा-क्रम के अनुसार पढ़ाई होती है, उसमें यद्यपि किण्डरगार्टन और अन्य आधुनिक शिक्षा-प्रणालियों को स्थान दिया गया है, पर इसका फल सन्तोषजनक देखने में नहीं आता। शिक्षयित्रियाँ इन विषयों को भी तोते की तरह रट लेती हैं। पर उनके वास्तविक आशय को समझ कर उसके अनुसार छात्रियों के साथ व्यवहार करना उनको नहीं आता। वे यह नहीं समझती कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का प्रधान लक्ष्य बालक को अधिक से अधिक स्वाधीनता देकर अप्रत्यक्ष रीति से उसके मन पर सस्कार डालना होता है। जिन देशों में इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली वास्तविक रूप में प्रचलित है वहाँ छोटे छोटे बालक भी प्रसन्नतापूर्वक स्कूल जाते हैं और उनकी ज्ञान-वृद्धि बड़ी शीघ्रतापूर्वक होती है।

शिक्षिकाओं के लिए उस समाज का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए, जिसके बालकों को वे पढ़ाती हैं। इससे एक तो वे बालकों के साथ विशेष रूप से आत्मीयता का भाव उत्पन्न कर सकेगी और दूसरे सामाजिक कल्याण के अन्य कामों में भी भाग ले सकेंगी। शिक्षक का काम छुर्क की तरह नहीं है, जो ऑफिस में छः-सात घण्टे खूटी बजा देने से समाप्त हो जाय। विशेष कर छोटे कस्बों और गाँवों में तो शिक्षक को समाज का एक बड़ा उपयोगी और आवश्यक अङ्ग माना जाता है, जिससे लोगों का अनेक प्रकार का हित-साधन होता है। इसलिए इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि जो शिक्षक जनता में जितना ही हिलमिल कर रहेगा और सामाजिक कार्यों में जितना ही भाग लेगा, उतनी ही उसे अधिक सफलता होगी।

शारीरिक व्यायाम

लड़कियों की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में एक बहुत बड़ा अभाव शारीरिक व्यायाम सम्बन्धी शिक्षा का है। इस देश की स्त्रियों की शारीरिक अवस्था जैसी हीब हो गई है और जिस प्रकार वे जीवन भर भौँति-भौँति की व्याधियों में ग्रसित रहती हैं, उसे देखते हुए लड़कियों के स्कूलों में लड़कों के स्कूलों से भी अधिक शारीरिक व्यायाम और खेलों की आवश्यकता है। पर

खेद है कि हमारे देश में इस तरह अभी तक कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। आजकल लड़कियों के स्कूल प्रायः छोटे छोटे कमरों में होते हैं, जहाँ शारीरिक व्यायाम की व्यवस्था तो क्या होगी, स्वच्छ हवा का मिलना भी कठिन है। अब समय आ गया है कि इस अवस्था में परिवर्तन किया जाय और प्रत्येक कन्या शाला में किसी प्रकार के व्यायाम की व्यवस्था की जाय। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि लड़कियाँ भी लड़कों की भाँति विदेशी जिमनास्टिक करें भथवा हॉकी फुटबॉल और क्रिकेट आदि खेल खेलें। हमारे यहाँ अनेक देशी खेल ऐसे प्रचलित हैं जिनसे स्वास्थ्य की उन्नति भी होती है और खर्च भी कुछ नहीं करना पड़ता। उन्हीं खेलों में से कुछ चुने हुए खेल कन्या स्कूलों में जारी किए जा सकते हैं अथवा उनके शारीरिक सङ्गठन के उपयोगी अन्य कसरतों और खेलों का आविष्कार किया जा सकता है।

स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियों के स्वास्थ्य की समय-समय पर जाँच होना भी अत्यावश्यक है। पश्चिमी देशों में इसका बड़ा उत्तम प्रबन्ध किया गया है और हमारे यहाँ भी लड़कों के कुछ स्कूलों में इस प्रकार की जाँच कभी-कभी की जाती है। पर लड़कियों के स्कूलों में इस प्रकार का कोई प्रबन्ध देखने में नहीं आता। यदि अधिकारीगण चेष्टा करें तो यह प्रबन्ध सहज में हो सकता है और इसके लिए अनेक ऑनरेरी डॉक्टर और वैद्य मिल सकते हैं। इस प्रकार की जाँच के फल से उन अनेक व्याधियों का प्रतिकार बाल्यावस्था में ही हो सकेगा, जो असाध्यानी के कारण अधिक उन्न हो जाने पर भयङ्कर रूप धारण कर लेती हैं।

अधिकारियों का कर्त्तव्य

उपर्युक्त विवरण पर ध्यान देने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि अभी तक इस प्रान्त के सरकारी अधिकारियों ने स्त्री शिक्षा की उन्नति के लिए बहुत कम चेष्टा की है और कदाचित् वे इसकी आवश्यकता का भी भली प्रकार अनुभव नहीं करते। इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि शिक्षा-विभाग के ३ करोड़ ८९ लाख के बजट में से लड़कियों की शिक्षा के लिए केवल ३८ लाख रुप



ज्ञान किन्तु जाते हैं। इस प्रकार के व्यवहार को पक्षपात के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त नवयुवक जिस प्रकार मारे-मारे फिर रहे हैं, उससे तो देश का हित इसी में जान पड़ता है कि शिक्षा विभाग के घजट का एक बड़ा हिस्सा स्त्रियों की शिक्षा के लिए खर्च किया जाय। ऐसा होने से समाज का आधा अङ्ग, जो अभी तक अन्धकार में पड़ा हुआ तरह-तरह के अन्यायों और अत्याचारों का शिकार हो रहा है, जाग्रत होकर अपने कर्तव्य पर आरुढ़ हो जायगा और इससे हमारा देश वास्तव में उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा। अपने यहाँ की स्त्रियों का उद्धार किए बिना आज तक कोई राष्ट्र अथवा जाति ससार में प्रधानता प्राप्त नहीं कर सकी है। इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि जितने देश इस समय संसार के कर्ता-धर्ता बने हुए हैं उन सब ने अपने यहाँ की स्त्रियों को अजनवि की दशा से निकास कर सुशिक्षिता तथा स्वावलम्बिनी बना कर ही यह पद प्राप्त किया है। इसके विपरीत जिन देशों की स्त्रियाँ अज्ञाना-न्धकार तथा सामाजिक गुलामी की अवस्था में पड़ी हुई हैं वे सब प्रकार दीन-हीन समझे जाते हैं और उनको अपमानपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। भारतवर्ष में पुरुषों की शिक्षा को आरम्भ हुए प्रायः सौ वर्ष हो चुके और इस बीच में यहाँ ऐसे-ऐसे दिग्गज विद्वान् उत्पन्न हो चुके हैं जो संसार के किसी भी देश के विद्वानों के मुकाबिले में कम नहीं समझे जा सकते तो भी देश की हीना-वस्था में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। इसका मुख्य कारण यही है कि समाज का आधा अङ्ग सर्वथा निर्बल अवस्था में है और इसलिए कोई भी उन्नति सम्बन्धी योजना पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती। मि० एफ०

एल० ब्राथन ने, जिनके लेख का जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं, इस सम्बन्ध में बहुत ठीक कहा है :—

“स्त्रियों की शिक्षा प्राप्त करते हुए पचास वर्ष हो गए, पर इससे गाँवों का कुछ भी कल्याण नहीं हुआ है। इसके विपरीत सम्भवतः वे पचास वर्ष पहले की अपेक्षा भी अधिक गन्दे और खरिब की दृष्टि से हीन हो गए हैं। इसलिए पुरुषों को जिस कार्य में असफलता हो चुकी है उसे पूरा करने का अवसर एक बार स्त्रियों को देना चाहिए। जब मैं किसी देहाती से प्रश्न करता हूँ कि “तुम्हारे बच्चे गहने क्यों पहिनते हैं ?” “तुमने उनको टीका क्यों नहीं लगवाया ?” तो वह सदा यही उत्तर देता है कि “मेरी स्त्री ऐसा करने को विवश करती है ?” ऐसी अवस्था में हमारा कर्तव्य है कि हम स्त्रियों को ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दे जिससे वे जान सकें कि घर का सञ्चालन किस प्रकार किया जाता है और बच्चों के पालने का उचित ढङ्ग क्या है। ऐसा होने से बहुत शीघ्र गाँवों की कायापलट हो जायगी।

“सभ्यता की परीक्षा के चार सिद्धान्त हैं :— स्वच्छता, स्त्रियों की स्थिति, कार्यकुशलता और अवकाश के समय तथा धन का उपयोग। इन चारों दृष्टियों से जब मैं देहातों की अवस्था पर विचार करता हूँ, जिनमें मैं बराबर २० वर्ष से काम कर रहा हूँ तो मुझे विशेष उन्नति का कोई भी चिह्न नहीं दिखलाई पड़ता। मुझे आशा है कि जिन व्यक्तियों ने इस सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है वे भी मुझसे इस विषय में सहमत होंगे कि उन्नति की इस मन्द गति का सबसे बड़ा कारण भारतीय स्त्रियों का अशिक्षिता बना रहना है। इसलिए अब बिना विलम्ब लगाए हमको इस श्रुति का प्रतिकार करना चाहिए।”

“मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा।”

—लोकमान्य तिलक

“पुराने कपड़े पहिन कर नई किताबें खरीदिए।”

—अँस्त्रिम क्रिस्पस

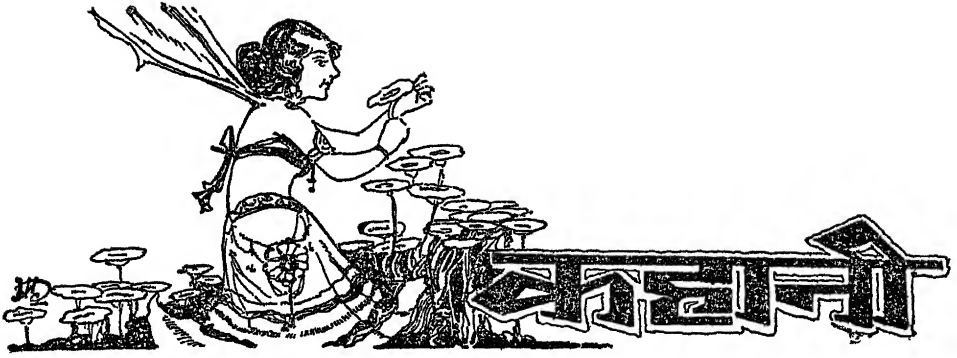
“बहुत बार ऐसा हुआ है कि पुस्तकों के अध्ययन ने मनुष्य के भविष्य को बना दिया है।”

—एमर्सन

“विद्वान् के लिखने की स्याही शहीद के खून से ज्यादा पवित्र है।”

—मुहम्मद





इन्दुकला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु' वी० ए०]



च

चन्द्रगुप्त सुन्दर युवक है। आयु पच्चीस से अधिक नहीं है। स्वस्थ शरीर और प्रसन्न-वदन ने उसमें एक अपूर्व आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। मुख पर सौजन्य और शील का भाव झलकता है। उसका जन्म हुआ है जाटव कुल में—'जाटव' जिन्हें महात्मा गाँधी प्रेम और भक्ति के भावावेश में 'हरि-जन' नाम से पुकारते हैं और गर्वोन्मत्त जात्यभिमानी उन्हें 'दलित' कह कर अपने पतन का परिचय दिया करते हैं।

* शिवनाथ ऐसा सुशील सुन्दर और प्रतिभाशाली पुत्र पाकर अपने भाग्य की प्रशंसा करता है और ईश्वर को धन्यवाद देता है। आधुनिक परिभाषा में शिवनाथ संस्कृत नहीं कहा जा सकता, पर तु उसके हृदय में संस्कृति और उन्नत जीवन के अनुराग हैं। जब वह किशोर था तभी से उसका झुकाव आर्यसमाज की ओर हो गया था। शिवनाथ शिक्षा का प्रेमी बन गया इसलिए स्वभावतः पिता ने अपने पुत्र को उच्च शिक्षा दिलाने का आयोजन किया। शिवनाथ एक सामान्य शिष्यी था; उसकी आय परिवार के पालन-पोषण के

लिए यथेष्ट थी, परन्तु उससे चन्द्रगुप्त की शिक्षा का श्रवण नहीं चल सकता था। विश्व में साहस और लगन भी कोई चीज़ है। जब कोई प्राणी इन्हें अपना लेता है तो उसका दुष्कर कार्य भी सरल बन जाता है। अन्त में वह परिस्थितियों पर विजयी होता है।

शिवनाथ ने चन्द्रगुप्त की शिक्षा के मार्ग को प्रशस्त करने में कष्ट और आपत्तियों का स्वागत किया। वह पुरुषार्थ की सजीव प्रतिमा था। वह स्वयम् रूखा-सूखा खा कर, चन्द्रगुप्त के लिए पौष्टिक और बलप्रद खाद्य-सामग्री एकत्रित करता था। उसके बदन पर एक खादी की धोती, कुरता और दोपी के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई न पड़ता, पर चन्द्रगुप्त के लिए सुन्दर वस्त्र जुटाने में लगा रहता। यथार्थ में चन्द्रगुप्त उनकी एक मात्र कल्पलता थे, उसको हरा-भरा रखने में शिवनाथ ने अपना खून पसीना कर दिया। उसकी एकमात्र कामना थी लता को पूर्ण विकसित रूप में देखना और उससे आत्मा को शान्ति प्रदान करना। नागरिकों में शिवनाथ का स्वावजम्बन विख्यात था। जब कोई उदारमना सहायता के रूप में कुछ चोँदी के टुकड़े देने की इच्छा प्रगट करता, तो शिवनाथ विनीत भाव से, उसे धन्यवाद देते हुए, कहते—'भगवान् की कृपा है, मुझ दीन में इतनी शक्ति कहों, जो कृतज्ञता का भार वहन कर सकूँ।'



२

चन्द्रगुप्त योग्य पिता का योग्य पुत्र था। शारदा की पूजा करने में उसने जिस योग्यता, भक्तिभाव और अनन्यता का परिचय दिया, वह उसके अनुरूप ही था। जब वह हाईस्कूल में था, तभी से उसने बड़े-बड़े मन्सूबे बाँध रखे थे। उसने सङ्कल्प किया कि मैं अपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करूँगा। दरिद्रता का राज्य नष्ट होकर उसके स्थान में विभव का राज्य होगा। लक्ष्मी मेरे चरणों में लोटेगी। जब मैं वकील बन जाऊँगा, तो समाज में मेरी खूब प्रतिष्ठा होगी। मुझे सार्वजनिक जीवन के अनुभव प्राप्त करने में सुगमता होगी। मुझे समाज-सेवा का अवसर भी मिलेगा। आज जिस समाज के लोगों को 'उच्चाभिमानी' घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उनके स्पर्श-मात्र से अस्पृश्यता मानते हैं, उन्हें मैं दिखला दूँगा कि 'हरिजन' पवित्र हैं। चन्द्रगुप्त के कोमल हृदय में यह आकांक्षाएँ हलचल मचा रही थीं। वह महत्वाकांक्षी था, इसलिए ऐसी कल्पनाएँ स्वाभाविक थीं।

चन्द्रगुप्त का स्कूल-जीवन समाप्त हो गया था, इसलिए अब वह विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गया और विश्वविद्यालय में जाकर उसे होस्टल-जीवन अपनाना पड़ा। क्योंकि उसके नगर में विश्वविद्यालय तो दूर रहा, एक कॉलेज भी न था। कुछ ही महीनों में सब प्रोफेसर तथा विद्यार्थी उससे परिचित हो गए। उसकी मौलिक प्रतिभा की धाक पूरी तरह जम गई। अपनी श्रेणी में वह सर्वश्रेष्ठ छात्र माना जाने लगा। संसार विद्युत् की भाँति विद्वेष की चिनगारियों से परिपूर्ण है। अधम प्रकृति के पुरुष दूसरे के उत्कर्ष से दुखी होते हैं। वह विद्रोह द्वारा अपनी कुटिलता को व्यक्त कर देते हैं। चन्द्र की प्रतिभा को देख कर प्रतिद्वन्दी विद्रोह का झण्डा लेकर खड़े हो गए। विद्रोही छात्रों ने चन्द्र को कलङ्कित करने के लिए प्रयत्न रचा। महीनों तक प्रयत्न को सफल बनाने के लिए उपाय और युक्तियाँ सोची गईं। एक ने प्रस्ताव किया कि चन्द्रगुप्त सुन्दर तो है ही, उस पर चरित्र-हीनता का दोष क्यों न लगाया जाय। परन्तु प्रयत्न-मण्डली ने इसे स्वीकार नहीं किया। क्योंकि उसका चरित्र ऐसा विमल और निर्दोष था कि शत्रु भी उसकी प्रशंसा करते थे। अन्त में यही निश्चय हुआ कि

२

चन्द्रगुप्त से उसकी जाति पूछी जाय। यह निश्चय है कि वह अपनी जाति बतजायगा नहीं। अतः यह अफवाह फैला दी जाय कि चन्द्रगुप्त 'अछूत' है; उसका होस्टल से बायकाट किया जाय। 'होस्टल' के 'महाराजों' के भड़का दिया जाय और वे रसोई बनाना त्याग दें।

३

एक दिन होस्टल में यह अफवाह बिजली की तरह फैल गई कि चन्द्रगुप्त अछूत है। 'महाराज-मण्डल' में कुहराम मच गया। विद्रोही छात्र-मण्डल में अमर्ष का दावानल धक्-धक् करने लगा। 'सनातनधर्म की नाक कट गई!' 'हमारा धर्म-कर्म अष्ट हो गया!!' 'साले को पकड़ो, मारो; देखो भाग न जाय' के चीत्कारपूर्ण विचुम्भ वातावरण के कारण इधर-उधर के लोग भी जमा हो गए। चन्द्रगुप्त पर अश्लील एवं लज्जा को लजित करने वाले अपशब्दों की बौछार की गई। यही नहीं, दुष्ट छात्रों ने राहू बन कर चन्द्र पर आक्रमण किया! उस पर इतनी मार पड़ी कि वह बेचारा बेहोश हो गया!

जब वायस-चान्सलर और वाडें महोदय घटना-स्थल पर आए, तो वह विद्रोह को देख कर आश्चर्या-न्वित हो गए। विद्रोहियों ने इनको घेर लिया और अपने विद्वेषपूर्ण उद्गारों को व्यक्त करने लगे। 'महाराज-मण्डल' ने कहा कि हम भोजन नहीं बनाएँगे। चन्द्रगुप्त को होस्टल से निकाल दिया जाय।

वायस-चान्सलर ने पूछा—चन्द्रगुप्त का अपराध क्या है?

'साहब, हमरा धर्म-कर्म नास हुइ गया।'

'चन्द्रगुप्त ने तुमको विधर्मी तो नहीं बनाया, फिर धर्म कैसे नष्ट हो गया?'

'हुजूर, बाबू लोग कहते हैं कि चन्द्रगुप्त अछूत है।'

'अरे बुद्धिहीनो! कौन कहता है कि वह अछूत है? वह ब्राह्मण है। उसका धर्म-कर्म ब्राह्मण-जैसा है। उसका खान-पान, आचरण, वेश-विन्यास इतना विशुद्ध और पवित्र है; फिर उसमें अस्पृश्यता कहाँ से आई?'

॥ संयुक्त-प्रान्त में रसोइया को 'महाराज' कहते हैं।



वायस-चान्सलर की अकाव्य युक्तियों का महाराजों के असंस्कृत हृदय पर कोई प्रभाव न पड़ा। इन उद्दण्ड महाराजों के पीछे विद्रोही छात्रों की शक्ति काम कर रही थी, इसीलिए इनको इतना दुःसाहस करने का हौसला हुआ था। उन्होंने छटतापूर्वक उत्तर दिया—साहब, अब हम काम नहीं करेंगे।

अस्तु, वायस-चान्सलर ने किसी तरह झगड़े को शान्त किया। कुछ 'महाराज' सिंहासनच्युत कर दिए गए और कुछ स्वयं 'राज-काज' से विरक्त होकर चले गए। अवशिष्ट बुद्धिमानों ने क्षमा माँग ली। विद्रोही छात्रों को दण्ड दिया गया। वायस-चान्सलर ने घोषणा निकाली कि भविष्य में यदि किसी ने ऐसा अन्याय किया, तो उसे विश्वविद्यालय से अलग कर दिया जायगा।

कहना नहीं होगा कि चन्द्रगुप्त को इस अमानुषिक अत्याचार से घोर वेदना हुई। उसे अपनी तथा अपने समाज की अवनत दशा का बोध हुआ। क्या हिन्दू-धर्म इतना नृशंस है कि वह वीन-दुस्त्रियों पर ऐसे भीषण अत्याचार करने का आदेश करता है? ऐसे धर्म से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। आज पोंच करोड़ भाई इसी प्रकार के कष्टों में अपना जीवन यापन कर रहे हैं। क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या इनमें जीवन नहीं है? क्या इनमें अधि-मुनियों का रक्त नहीं है? क्या आर्यधर्म के प्रति इनकी श्रद्धा नहीं है? धूर्त, दम्भी तथा अत्याचारी, जात्यभिमानी नर-पिशाचों ने स्वार्थपरतावश इनको इस दुर्दशा तक पहुँचा दिया है कि आज यह कुत्ते से भी गए-बीते हैं। इस प्रकार के विचार चन्द्रगुप्त के मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं आजीवन अपने दीन-बन्धुओं की सेवा करूँगा। जब तक जात्यभिमानी के मद को चूर-चूर नहीं कर दूँगा, तब तक मैं शान्ति से नहीं बैठ सकता। अस्तु।

चन्द्रगुप्त ने जिस साल बी० ए० पास किया, उसी वर्ष उस पर एक ऐसा वज्राघात हुआ जिसने उसके कल्पना-मन्दिर को अस्त-व्यस्त कर दिया। शिवनाथ का स्वर्गवास हो गया। वह निष्काम कर्मवीर की भाँति, रम्य वाटिका लगा कर चल बसा। उसने एक दिन भी उस वाटिका में विश्राम नहीं किया।

चन्द्रगुप्त अपने देवता-स्वरूप पिता की कुछ सेवा न कर सका—इसका उसे अत्यन्त दुःख है। उसका सुन्दर

स्वप्न भाद्रपद की मेघमाला की भाँति विलीन हो गया। उसने राजप्रासाद का स्वप्न देखा था, आज उसकी भग्न कुटीर भयानक तूफान से नष्ट हुई दिखलाई देती है। जिसके बनाने में उसने जीवन का एक-एक क्षण बड़ी उमङ्ग और चाह से बिताया, अत्याचार भी सहा, दुःख भी भोगा, परन्तु अपने पथ पर अविचलित रहा। पर आज वह जीवन के अथाह, अपार, गम्भीर सागर के तट पर अकेला है।

एक दिन चन्द्रगुप्त एक पुस्तकालय में बैठा हुआ अस्त्रबार पढ़ रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक पत्र पर पड़ी। उसका नाम था 'हरिजन'। कुतूहलपूर्वक उसे उठाया। उसके मुख-पृष्ठ पर एक चित्रापन था। 'आवश्यकता है—एक योग्य हरिजन स्नातक की। वेतन योग्यतानुसार। हरिजन-सङ्घ के कार्यालय में मन्त्री से मिलें।'।

चन्द्रगुप्त तुरन्त हरिजन-सेवक-सङ्घ के कार्यालय में गया। मन्त्री ने चन्द्रगुप्त को कार्यालय में स्थान दे दिया। चन्द्रगुप्त 'हरिजन' के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगा।

थोड़े ही समय में चन्द्रगुप्त अपने त्याग, सेवा-भाव और वक्तृत्वकला के कारण नगर में प्रसिद्ध हो गया। जनता उसके व्याख्यान सुनने के लिए बड़ी जालायित रहती। वास्तव में उसका व्याख्यान प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी होता था। उसके वचन, विचार और व्यवहार में सामञ्जस्य था। जो मुँह से निकला, वैसा ही करके दिखला दिया।

एक दिन कुमारी इन्दुकला चन्द्रगुप्त के अपूर्व व्यक्तित्व पर मुरब्ब हो गई। यदि भावुक भाषा में कहा जाय तो हम कहेंगे इन्दुकला चन्द्र पर आसक्त हो गई। इन्दुकला कन्या-गुरुकुल की स्नातिका है और विगत सितम्बर मास के महात्मा गाँधी के व्रत से प्रभावित होकर उसने हरिजन-सेवा को अपने जीवन का ध्येय बना लिया है। वह एक विभवशाली, संस्कृत प्रतिष्ठित-कुल की कन्या है। इस कुमारी के पूर्ण यौवन, अपूर्व कान्ति और मधुर सौन्दर्य ने चन्द्रगुप्त के हृदय को चुम्बक की भाँति आकर्षित कर लिया। चन्द्रगुप्त के जीवन में कामिनी के प्रति आकर्षण का यह प्रथम अवसर था। जहाँ, जब वह कुमारी मिल जाती, वह उसकी मुखश्री की ओर चातक के समान



देखता रहता। उसके लोचनों की शोभा निराली थी। कवि मृगनयनी कह देते हैं, पर मृगी के नयन उसके लोचनों के सामने अपदार्थ थे। उसके कपोल ताज़े सेव के समान थे। अधरों में मधु भरा हुआ था। वह काश्मीर की कुमारी थी और मादक यौवन से पूर्ण।

इन्दुकला ने चन्द्रगुप्त से मधुर मुस्कान के साथ कहा—‘उस दिन मैं आपके सुन्दर व्याख्यान पर मुग्ध थी। पर आज आप और भी सुन्दर लगते हैं।’

‘कला-मर्मज्ञ ही कला की परख जानता है। आप सुन्दरी हैं, मोहिनी हैं, इसीलिए सौन्दर्य-विभोर दृष्टि को सुन्दरता ही दिखलाई पड़ती है।’—चन्द्रगुप्त ने कहा।

‘न जाने क्यों मेरे संयम का बाँध ढीला होता जा रहा है। जब से आपके दर्शन हुए हैं, मैं एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रही हूँ।’—इन्दुकला ने कहा।

‘नारी कैसी रहस्यमय पहेली है। उसकी प्रत्येक बात में एक रहस्य निहित रहता है। भाव-गोपन की कला में इससे निपुण कोई नहीं। परमात्मा ने इसमें ऐसा आकर्षण भर दिया है कि पुरुष इच्छा न करते हुए भी उधर खिंच जाता है × × ×।’

बीच में ही रोकते हुए इन्दुकला ने कहा—आपका व्याख्यान बड़ा गम्भीर होता जाता है, मुझे अवकाश नहीं। इसलिए इस छटता के लिए क्षमा चाहती हूँ।

४

चन्द्रगुप्त ने इन्दुकला को भोज के लिए निमन्त्रण दिया। इन्दुकला भोज में सम्मिलित हुई। बड़े सत्कार-पूर्वक भोजन किया। इसके उपरान्त इन्दुकला ने ‘हार-मोनियम’ पर एक गीत सुनाया। गीत का आशय यह है—‘प्राणेश, मेरा हृदय-मन्दिर सुना है। आप अपने चरणारविन्द से उसे कब पवित्र करेंगे? मैं आपकी प्रतीक्षा करते-करते थक गई हूँ। मैं मतवाली हूँ, उन्मत्त हूँ, परन्तु हूँ आपकी। मैं आपके साथ प्रेम-सागर में निमज्जन कर जीवन की साध पूरी करना चाहती हूँ।’

इस मादक गीत ने चन्द्रगुप्त को प्रेमार्द्र कर दिया। उसकी इन्द्रियाँ निकल हो गई और उसका हृदय कला के आभिज्ञान के लिए उन्मत्त हो उठा। उसने

कला के कोमल कर को अपनी ओर खींचा × × ×। उसके शरीर में एक अद्भुत बिजली दौड़ गई।

‘कला, मैं आज अपना हृदय तुम्हारे सामने खोल कर रख देना चाहता हूँ। क्या तुम उसकी स्वामिनी बनना स्वीकार करोगी?’

‘प्रियतम, संसार में प्रेमी की आशा को फलवती देख कर प्रेयसी को उल्लास नहीं होता? आज मुझे ‘प्रियतम’ मिल गया, इसलिए मैं × × ×’

‘कला, तुम सच कहती हो। पर यह देश निराशा है। इसके कण-कण में अस्पृश्यता का कीड़ा लगा हुआ है। हमारे धर्म-कर्म, रीति-रिवाज, अन्न-जल इत्यादि सभी में अस्पृश्यता के कीटाणुओं का प्रवेश है। फिर अकेला प्रेम ही अछूता कैसे रह सकता है?’—चन्द्र ने कला को बीच में रोक कर कहा।

कला इस गूढ़ोक्ति का आशय न समझ सकी, इसलिए उसने इसका स्पष्ट अर्थ जानने की इच्छा प्रगट की।

‘कला, प्रेम जात-पाँत के बन्धन में नहीं है?’

‘प्रियतम, प्रेम असीम है। उसे आज तक कोई जात्यभिमानी जाति के बन्धन में नहीं बाँध सका। जहाँ दो हृदय मिल गए, वहाँ प्रेम है।’

‘कला, तुम विभव-सम्पन्न कुल की राजकुमारी हो। किसी सुयोग्य कुलीन युवक के गृह को शोभित करना ही तुम्हारे योग्य है। मैं पददलित समाज का एक प्रतिनिधि हूँ। मैंने अपने समाज के उत्थान का व्रत लिया है, इसलिए तुम सोने की काया को तप की प्रचण्ड अग्नि में क्यों होम करती हो?’

कला के श्रीमुख पर एक दिव्य आलोक झलकने लगा। उसके सौन्दर्य में एक अपूर्वता आगई। उसके विमल लोचनों से उसकी आत्मा के आनन्द का भाव झलकता था।

आज उसकी साध पूरी हुई। जब से उसने सेवा-व्रत लिया, तब से उसकी एकमेव कामना यही थी कि वह किसी हरिजन-युवक को आत्म-समर्पण कर सेवा-मार्ग को परिष्कृत करे।

कला ने नतमुख हो, प्रेमार्द्र नेत्रों से कहा—‘नाथ, आज मैं आपकी हूँ। आज मेरे जीवन की साध पूरी हुई।’



मौण्टिसरी की शिक्षा-पद्धति का मनोवैज्ञानिक आधार

[प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार]



प्रा

चीन शिक्षा-प्रणाली में बालक को उतनी मुख्यता नहीं दी गई जितनी दी जानी चाहिए थी। शिक्षक जिन विचारों को बालक के दिमाग में डालना चाहता था, उन्हें बालक की योग्यता का ख्याल बिना किए डालने का प्रयत्न करता था। बालक के शारीरिक

विकास के लिए भी इसी प्रकार के बाह्य साधन इस्तेमाल में लाए जाते थे। बच्चे की टाँग के साथ फटी बाँध दी जाती थी, ताकि टाँग कहीं टेढ़ी न हो जाय। उसकी जीभ के नीचे की तौत काट दी जाती थी ताकि वह जल्दी बोलने लगे। सिर पर टोपी पहना दी जाती थी ताकि कान बहुत लम्बे न हो जायें। माताएँ बच्चों की नाक को इस प्रकार मलती थीं, ताकि वह चपटी न होकर लम्बी हो जाय। बच्चों के जल्दी चलना सीखने के लिए तरह-तरह के तरीक़े इस्तेमाल किए जाते थे। परन्तु जब से विज्ञान का विकास हुआ है तब से यह बात स्पष्ट हो गई है कि बालक के शारीरिक विकास का आधार-भूत सिद्धान्त उसे खुले छोड़ देना है, उसे पूरी स्वतन्त्रता देना है। धीरे-धीरे इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि बालक के विकास में प्रतिबन्ध उत्पन्न करने वाले कार्यों को अगर हटा लिया जाय तो वह खुद-ब-खुद चौमुखी उन्नति करने लगेगा। जो अधिकार हम बन-स्पतियों तक को अब तक देते रहे हैं, वे बालक के प्रति अब स्वीकार किए जाने लगे हैं। किसी भी पौधे की वृद्धि के लिए यही उचित समझा जाता है कि उसे उचित खाद देकर, प्रकृति में खुला छोड़ दिया जाय, वह स्वयं विकसित होगा, फूले-फलेगा। बच्चे की शारीरिक वृद्धि के लिए भी यह समझा जाने लगा है कि उसे खुला छोड़

देने से उसका विकास अच्छा होगा। कई माताएँ, बच्चा जब भी रोने लगता है, उसे दूध पिलाने को दौड़ती हैं, परन्तु अब समझा जाने लगा है कि यह प्रथा ठीक नहीं है। बच्चे को अगर बिगाड़ न दिया जाय तब जब भी उसे भूख लगेगी तभी वह चिल्लाएगा, हर समय नहीं। ठीक समय पर बच्चे को दूध पिला देने से फिर वह आराम से दो-तीन घण्टे तक पड़ा रहेगा। मौके-बे-मौके दूध पिलाते रहने से बच्चे की आदत बिगड़ जाती है।

पौधे के विकास में उसे स्वतन्त्र छोड़ देने का जो नियम काम कर रहा है, बालक के शारीरिक विकास में भी वही नियम काम करता है। बालक के शारीरिक विकास सम्बन्धी इस नियम को तो प्रायः सभी समझने लगे हैं, परन्तु बालक का मानसिक विकास भी इन्हीं नियमों पर आश्रित है, इसे उतना अधिक नहीं समझा जाता। अभी तक शिक्षक यह आवश्यक समझता है कि जो कुछ उसे बालक को सिखाना है वह उसे जल्दी से जल्दी और ज्यादा से ज्यादा देने का प्रयत्न करे। इस दृष्टि में शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ 'बालक' को मुख्यता दी जानी चाहिए थी, वहाँ 'शिक्षक' को मुख्यता प्राप्त हो गई है। जो कुछ बालक सीखना चाहता है, अगर उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो वह उसे स्वयं सीख जाता है। जिस शिक्षा के लिए बालक तैयार है, जिसके लिए वह मानों भूखा है, वह न देकर अगर शिक्षक उसके लिए जो स्वयं उचित समझता है वह देने का प्रयत्न करेगा तो इसका नतीजा यह होगा कि बालक शिक्षक के प्रति विद्रोह कर देगा। अक्सर यह बात सबके अनुभव में आई होगी कि जिस समय बालक किसी काम को स्वयं कर रहा हो उस समय उसी काम को अगर दूसरा कोई बालक के लिए करने लगे तो वह झुंझलाने लगता है और स्वयं करने के लिए आग्रह करता है। बालक अक्सर कहा करते हैं—“मैं स्वयं करूँगा।” अतः हमें शिक्षा

के क्षेत्र में बालक की जगह स्वयं कुछ करने के बजाय बालक से ही काम कराना चाहिए, बाहर से अन्दर जाने के बजाय अन्दर से बाहर आना चाहिए। बालक जो कुछ कर रहा है, वह उसके अतिरिक्त विकास का फल है, और वह अपने काम से हमें बतला है कि वह किस चीज़ को लेने के लिए तैयार है। परन्तु हम ऐसा न करके बाहर से अन्दर जाने का प्रयत्न करते हैं और जिस चीज़ को हम देने के लिए तैयार होते हैं उसे देने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि जो चीज़ बालक लेना चाहता है वह हम नहीं देते और जो हम देते हैं उसे लेने के लिए बालक तैयार नहीं होता, फलतः शिक्षा की गाड़ी बीच में ही अटक जाती है।

शिक्षा सम्बन्धी अनेक प्रश्नों को हल करने के लिए मनोविज्ञान में एक नई शाखा का प्रचार हुआ है, जिसे परीक्षात्मक मनोविज्ञान (Experimental psychology) कहा जाता है। इसके अनुसार यह पता लगाने का प्रयत्न किया गया है कि बालक को किसी वास्तविक ज्ञान कितने समय में हो जाता है। भिन्न-भिन्न बालकों के ऊपर परीक्षण किए गए हैं और उनके परिणाम निकाले गए हैं। कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति की प्रबलता या निर्बलता के अनुसार काम करने में अधिक या कम थकता है। यदि उसकी इच्छा-शक्ति प्रबल होती है तो वह देर में थकता है और अगर निर्बल होती है तो जल्दी थक जाता है। स्कूलों के विषय में यह कहा जाता है कि ज्यों-ज्यों पढ़ाई बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों बालक अधिकाधिक थकता जाता है। शैटन महोदय का कहना है कि थकावट हमारी शिक्षा-पद्धति का परिणाम है; कइयों का कहना है कि सोमवार और शुक्रवार के दिन बहुत कम थकावट मालूम होती है, कई कहते हैं कि विषय को बदल देने से थकावट कम हो जाती है, कइयों का कहना है कि एक ही काम लगातार करने से थकावट कम होती है और बदलते रहने से बढ़ जाती है। तो भी यह माना जाता है कि थकावट को दूर करने के लिए भिन्न-भिन्न विषयों में हेर-फेर होता रहना चाहिए और इसी सिद्धान्त के अनुसार स्कूलों में भिन्न-भिन्न विषयों के मेल से 'टाइमटेबल' बनाया जाता है। विकार्ड महोदय ने पता लगाया है कि थकावट से शरीर में

एक प्रकार का विष उत्पन्न हो जाता है। इस विष का प्रतिकार करने के लिए उन्होंने कई चीज़ें तैयार की हैं, जिनके इन्जेक्शन से वह विष दूर हो सकता है। यह भी पता लगाया गया है कि जितना थकाने वाला काम होगा, उतना ही विष अधिक पैदा होगा और जितना ही मनोरंजक कार्य होगा उतना ही, चाहे वह किनना ही अधिक क्यों न किया जाय, विष कम उत्पन्न होगा। इसीलिए फ्रैनेलोन, रूसो, पैस्टोलोजी, हरबर्ट, फ्रीबल और स्पेन्सर ने शिक्षा को मनोरंजक बनाने के सिद्धान्त पर अधिक जोर दिया है।

परीक्षात्मक मनोविज्ञान हमारे सामने शिक्षा के विषय में नए से नए प्रश्न खड़े कर देता है, परन्तु उनका कुछ तसल्ली देने वाला उत्तर नहीं देता। वह कहता है कि पढ़ाई से थकावट पैदा होती है, थकावट से शरीर में ख़ास तरह के विष उत्पन्न हो जाते हैं और उन विषों को भिन्न-भिन्न प्रकार के इन्जेक्शनों से दूर किया जा सकता है। परन्तु वह कैसा द्रव्य होगा, जब लड़के भूगोल पढ़ कर, संस्कृत का व्याकरण पढ़ कर और दूसरे कठिन विषय पढ़ कर थकावट दूर करने के लिए इन्जेक्शन कराया करेंगे और फिर अन्य कठिन विषयों को पढ़ने में जुट जाएंगे। अगर इन्जेक्शनों से बचना हो तो परीक्षात्मक मनोविज्ञान यही बतला सकता है कि विषय कम कर दिए जायें, कोर्स घटा दिया जाय, पढ़ने के घंटे आधे कर दिए जायें, लिखने का काम छुड़ा दिया जाय। इसका मतलब यह होगा कि बच्चों को कोरा रक्खा जाय, पढ़ाया ही न जाय। ये दोनों इलाज निकम्मे हैं, क्योंकि इन दोनों को कोई स्वीकार नहीं कर सकता। न इन्जेक्शनों से पढ़ाई चल सकती है और न पढ़ाई को ख़त्म करके ही पढ़ाई के प्रश्न को हल किया जा सकता है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर इटली की रहने वाली श्रीमती डॉ॰ मौन्टिसरी ने अपनी शिक्षा-पद्धति का निर्माण किया है। उनका कहना है कि परीक्षात्मक मनोविज्ञान ने प्रचलित शिक्षा-पद्धति की निस्सारता खूब अच्छी तरह से प्रकट कर दी है। उसने सिद्ध कर दिया है कि इस प्रकार शिक्षा का बोझ बालक पर लादने से उसके शरीर में विष उत्पन्न होने लगते हैं, अतः शिक्षा को किन्हीं ऐसे सिद्धान्तों पर आश्रित रखना चाहिए, जो इन दोषों से मुक्त हों। जैसा



पहले कहा गया है कि प्रत्येक पौधे में स्वयम् विकसित होने की शक्ति है, इसी प्रकार बालक का शरीर भी, अगर उसे उचित परिस्थितियों से घेर कर फिर स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय—स्वतन्त्रता के वायुमण्डल से उसे परिवेष्टित कर दिया जाय, तो वह स्वयम् विकसित होने लगता है। कई माताएँ बड़ी कोशिश करके बच्चे को खड़ा होना सिखाती हैं, परन्तु उनकी कोशिश का कोई परिणाम नहीं होता। एक समय आता है, जब कि बालक के शरीर का बढ़ता हुआ विकास स्वयम् उसे खड़े होने की प्रेरणा करता है और वह खड़ा हो जाता है। वह एक बार का खड़ा होना उसके आगे चलना सीखने के लिए पर्याप्त है। माता का काम बालक के चारों तरफ़ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देना है, जिनकी मौजूदगी के कारण वह खुद-बखुद खड़ा हो जाय। खड़े होने की क्रिया बालक के अन्दर से विकसित होनी चाहिए, बाहर से नहीं आनी चाहिए। जब तक अन्दर के विकास की वह अवस्था स्वयं नहीं आ जाती, तब तक बालक को हाथ पकड़ कर कितना ही क्यों न चलाया जाय, वह चलना नहीं सीख सकता। इसी प्रकार विकास की वह अवस्था आ पहुँचने पर अगर उचित परिस्थितियों को उपस्थित न किया जाय, तब भी बच्चा खड़ा होना नहीं सीख सकेगा। जो नियम बालक के शारीरिक विकास में काम कर रहे हैं, डॉ० मौण्टिसरी का कहना है कि वे ही नियम उसके मानसिक विकास में भी काम करते हैं। शिक्षक का कार्य बालक के मानसिक विकास को समझना है। जिस प्रकार का बालक का मानसिक विकास हो रहा हो, ठीक वैसी ही वस्तु उसके सामने रख देने से बालक को बहुत सहायता मिलती है।

मनोविज्ञान का यह साधारण सा नियम है कि बाहर की वस्तु अर्थात् विषय (Stimulus) मन में प्रतिक्रिया (Response) उत्पन्न करते हैं। जितने भी विषय बालक के सामने आएँगे, उनकी उसके मन पर कोई प्रतिक्रिया होगी। वह प्रतिक्रिया ऐसी भी हो सकती है कि बालक उस विषय को ध्यानपूर्वक देखने लगे और ऐसी भी हो सकती है कि वह उस विषय का बिचकुल ही ख़याल न करे। 'ख़याल करना' या 'ख़याल न करना' दोनों ही मन की वास्तविक विषय के प्रति प्रतिक्रियाएँ (Response) हैं। अब तक यही

समझा जाता रहा है कि बालक के मन के ऊपर 'ख़याल न करने' की प्रतिक्रिया ही अधिक होती है, इसीलिए कहा जाता है कि बालक चञ्चल होते हैं, उनका मन किसी बात में नहीं लगता, वे कभी एक चीज़ को उठाते हैं, कभी दूसरी चीज़ को, किसी चीज़ को देर तक नहीं देखते। मौण्टिसरी का कहना है कि वह भी बहुत दिनों तक यही समझा करती थी कि बालक स्वभाव से चञ्चल हुआ करते हैं, किसी विषय के प्रति उनकी प्रतिक्रिया (Response) देर तक नहीं रहती, परन्तु वह कहती है कि एक दिन रोम में लैनलो-एज़ो स्कूल के बच्चों को वह पढ़ा रही थी, तो उसने देखा कि एक बच्चा, जिसकी उम्र ३ वर्ष की थी, कुछ चीज़ों को उठाने और रखने के काम में इतना व्यग्र था कि उसे और किसी बात का ख़याल ही नहीं था। मौण्टिसरी अब तक यही समझती थी कि बच्चे सदा चपल होते हैं, एक चीज़ से दूसरी पर दौड़े फिरते हैं, इसीलिए इस बालक की निश्चलता देख कर उसे आश्चर्य हुआ। उसने बच्चे को उठा कर टेबल पर बैठा दिया, बच्चे ने झट से अपनी चीज़ों को ज़ोर से पकड़ लिया और टेबल पर बैठने के बाद फिर वह उसी काम में लग गया। इसके बाद मौण्टिसरी ने क्लास के सब बच्चों को गाने को कहा। सब ज़ोर-ज़ोर से गाने लगे, परन्तु इस बालक का ध्यान अपनी चीज़ों को उठाने और रखने से न हटा। बच्चे ने ४४ बार तक अपने काम को दोहराया। मौण्टिसरी का कहना है कि इस घटना को देख कर मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानों मैंने कोई आविष्कार कर लिया हो। मुझे यह अनुभव होने लगा कि बच्चे स्वभाव से ही चपल नहीं होते, परन्तु उनकी चपलता ध्यान की स्थिरता के लिए होती है। जब तक वह वस्तु उनके सामने नहीं आ जाती, जिससे उनका ध्यान स्थिर हो सके, तब तक वे चपलता के शिकार रहते हैं और अपनी अभीष्ट वस्तु के सामने आते ही उसमें ऐसे लिस हो जाते हैं मानों समाधिस्थ हो गए हों। इस अनुभव को मौण्टिसरी ने अपने स्कूल के बच्चों पर घटा कर देखा। इससे मालूम होने लगा कि जो बालक चञ्चल थे, वे किसी ऐसे समय पर आकर जब कि उनके मन के विकास के अनुकूल असली चीज़ उन्हें मिल गई, तो वे एकदम निश्चल हो गए और ऐसा

मालूम पड़ने लगा मानों इनमें एकदम कोई परिवर्तन आ गया है। सारी चञ्चलता को छोड़ कर वे उस काम में ऐसे लगे कि फिर उन्होंने ऊधम मचाने का नाम भी नहीं लिया।

प्रकृति में प्रायः देखा जाता है कि कुछ पौधों पर ख़ास तरह के कीट-पतङ्ग आकर उनका रस चूसते हैं, परन्तु वनस्पति-शास्त्रज्ञ बतलाते हैं कि इस प्रकार शहद की मक्खियों को जो फ़ायदा होना था वह तो होता ही है, परन्तु उसके अलावा प्रकृति की इस प्रक्रिया से उन पौधों का भी विकास होता है। फूलों पर शहद की मक्खियाँ आती हैं और उससे पराग को लेकर दूसरे फूलों तक पहुँचाती हैं। इससे वनस्पति-जगत् में विकास होता है। वनस्पति-जगत् की यही जनन-प्रक्रिया है। कई पपीते के पेड़ खीलिझी होते हैं, कई पुख़िलझी। अगर शहद की मक्खियाँ खीलिझी पपीते के पराग को पुख़िलझी पुष्प तक न ले जायँ, तो उम पेड़ की जनन-प्रक्रिया ही नहीं होती और पेड़ पर फल ही नहीं आता। इस प्रकार प्रकृति में वनस्पति तथा कीट-पतङ्ग एक दूसरे के लिए सहायक बने हुए हैं। यद्यपि शहद की मक्खी स्वतन्त्र होती है, तो भी वह वनस्पति के आन्तरिक विकास में सहायक ही होती है। इसी प्रकार बालक के आन्तरिक विकास में बाहर की घटनाएँ सहायक होती हैं। देखने को वे स्वतन्त्र मालूम पड़ती हैं, उनका बालक से कुछ सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता, परन्तु वे ही बालक के मन में ऐसी आन्तरिक लहरें उत्पन्न कर देती हैं, जो उसके विकास का कारण बनती हैं। शिक्षक का काम बालक के मन की इस आन्तरिक भूख को सन्तुष्ट करना है। अगर वह इसे सन्तुष्ट कर सकता है तो सचमुच वह शिक्षक का कार्य कर रहा है। शिक्षक का कार्य बालक के मानसिक विकास को समझ कर उसके अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर देना है। अगर उसने ठीक परिस्थिति पैदा की है तो बालक की चञ्चलता एकदम रुक जायगी और उसमें एक चमत्कारिक विकास दिखलाई देने लगेगा। बालक की आत्मा तो विकास के लिए तड़प रही है। जैसे वह भूख के लिए चिल्लाता है, उसी प्रकार वह आत्मिक विकास उत्पन्न करने वाले साधनों को ढूँढ़ता हुआ इधर-उधर भागता फिरता है। इसी को चञ्चलता का नाम दिया जाता है। अगर

शिक्षक इन साधनों को उत्पन्न कर दे तो इतना ही नहीं कि बाह्य की चपलता ध्यान में परिवर्तित हो जाती है, परन्तु साथ-साथ आगामी विकास के लिए भी बालक के हृदय में बीज बोया जाना है। जैसे माता का काम बालक के चिह्नाने पर उसके मुँह में स्तन दे देना है, इसी प्रकार शिक्षक का कार्य बालक के आन्तरिक विकास को समझते हुए उसके सामने उचित सामान उपस्थित कर देना है। दूध पीने के बाद बालक का शरीर खुद-बखुद बढ़ता है, माता केवल उस वृद्धि का इन्तज़ार करती है। इसी प्रकार शिक्षक का कार्य भी उचित परिस्थिति उत्पन्न कर देने के बाद बालक को स्वतन्त्र छोड़ देना है, उसके विकास को देखना और उसका इन्तज़ार करना ही है। मनुष्य के आन्तरिक विकास का यही स्वाभाविक नियम है। शिक्षा में बच्चे की ही प्रधानता होनी चाहिए, इसलिए उचित सामग्री में बच्चे को स्वतन्त्र रूप से विचरना और उसमें अपनी शक्ति का विकास करने देना ही शिक्षा का सर्वोत्तम साधन है।

परन्तु सबसे कठिन बात यह है कि यह कैसे पता लगाया जाय कि कौन सी चीज़ बच्चे के आन्तरिक विकास के साथ मेल खाती है। डॉ० मौन्टिसरी ने अनेक परीक्षणों के बाद ऐसे साधन आविष्कृत किए हैं, ऐसे पदार्थों की रचना की है, जो एक ख़ास आयु में बालकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। उसने परीक्षणों से यह देखा है कि ३ वर्ष के बालक किस चीज़ पर आकृष्ट होंगे, वह चीज़ ऐसी होनी चाहिए जो बालक के आन्तरिक विकास से मेल खाती हो। इसी प्रकार ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ वर्ष की आयु में कौन सी चीज़ बालक के सामने आनी चाहिए, इन सब बातों का परीक्षणों के आधार पर निर्णय किया गया है। इन साधनों के निश्चय करने में इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है कि वे साधन ऐसे न हों जिनसे केवल ध्यान ही आकृष्ट हो। क्योंकि ध्यान आकृष्ट करना ही शिक्षा का कोई अन्तिम साधन नहीं है। वे औज़ार या उपकरण इस प्रकार के होने चाहिए जिनसे ध्यान तो आकृष्ट हो ही, परन्तु उसके साथ वे बालक के विकसित होते हुए मन को ऐसा धक्का दें कि जिससे वह ऊपर ही ऊपर विकास करता चला ज़ाए और उठता जाय।



वे साधन एक प्रकार की सीढ़ी का काम करने वाले होने चाहिए। जब एक साधन प्रयोग में लाया जा रहा है तो वह स्वभावतः मन को ऐसी अवस्था में पहुँचा दे जिससे दूसरे उपकरण की आवश्यकता पड़ जाय। और जब दूसरे उपकरण की आवश्यकता पड़े, ठीक उसी समय वह उपकरण बालक के सम्मुख उपस्थित कर देना चाहिए और वह ऐसा हो कि जिससे ध्यान भी आकृष्ट हो और आगे का विकास भी हो सके। जैसे एरोप्लेन जब उड़ने लगता है तो उसके लिए थोड़ी सी ज़मीन पर चक्कर लगाना ज़रूरी होता है, परन्तु अन्त तक वह उसी पर चक्कर नहीं काटना रहता। वह आसमान में उड़ता है। इसी प्रकार बालक को अपनी मानसिक परिस्थिति के अनुकूल साधन केवल अपनी गति प्रारम्भ करने के लिए ही अपेक्षित होते हैं, उनके बाद वह उन्हें छोड़ कर उड़ने लगता है। मौण्टिसरी के शिक्षा-विषयक उपकरणों की यही उपयोगिता है।

इन सिद्धान्तों का आधार लेकर अनेक स्थानों में काम किया जा रहा है और उनसे जो सफलता प्राप्त हो रही है उसके कुछ दृष्टान्त देना अप्रासङ्गिक न होगा।

१—मिस जॉर्ज का कथन है कि मैंने एक बच्चे को शिक्षा देते हुए उसकी दिलचस्पी पैदा करने वाले सब साधनों का इस्तेमाल कर लिया, परन्तु बच्चे का कुछ न बना। इसके बाद अचानक एक दिन मैंने उसे लाल और नीले रङ्गों की दो तस्त्रितियाँ दिखलाई और इन दोनों रङ्गों के भेद की तरफ़ उसका ध्यान आकर्षित किया। उन्हें दिखाते ही वह बच्चा भूखे की तरह उन तस्त्रितियों से चिपट गया और एक ही पाठ में ५ भिन्न-भिन्न रङ्गों के विषय में उसने ज्ञान प्राप्त कर लिया। इससे मालूम पड़ता है कि अब तक उसके सामने जो साधन उपस्थित किए जा रहे थे वे उसके मानसिक विकास से मेल नहीं रखते थे, इसलिए उसका ध्यान किसी चीज़ पर नहीं अटकता था। जब उसके मानसिक विकास से मेल खाने वाली चीज़ उसके सामने आई तब उसका ध्यान झुबाना मुश्किल हो गया। ज्योंही बालक को वह चीज़ मिल जाती है, जो उसकी दिलचस्पी का केन्द्र होती है, त्योंही उसकी उच्छ्वङ्खलता, उद्विग्नता नष्ट हो जाती है।

(२) मिस जॉर्ज ने एक और अनुभव लिखा है जो बड़ा रोचक है। दो बहिनें थी, जिनमें से एक ३ और

दूसरी ५ बरस की थी। ३ बरस की बालिका का मन भावशून्य था, क्योंकि वह अपनी बड़ी बहिन की हर बात में नज़र करती थी। अगर बड़ी के पास नीले रङ्ग की पेन्सिल होती तो छोटी और किसी रङ्ग वाली पेन्सिल लेने से इन्कार कर देती और तब तक न मानती जब तक उसे भी नीले रङ्ग की पेन्सिल न दे दी जानी। जब बड़ी बहिन रोटी और मक्खन खा रही होती तब छोटी के पास और दूसरी कितनी ही चीज़ें खाने को क्यों न होतीं वह उन्हें हाथ न लगाती और अपनी बड़ी बहिन की नज़र में रोटी और मक्खन ही खाती। एक दिन यह छोटी लड़की लाल रङ्ग की छोटी-छोटी ईंटों में दिलचस्पी दिखाने लगी और उसने एक छोटा सा बुर्ज बना लिया। उसने इसे कई बार बनाया और अपनी बड़ी बहिन को बिल्कुल भूल गई। उस दिन के बाद से छोटी लड़की का व्यक्तित्व प्रकट होगया और आगे से उसने हर बात में बड़ी बहिन का अनुकरण करना छोड़ दिया।

(३) उक्त दृष्टान्त इस बात को पुष्ट करते हैं कि किसी व्यक्ति में जो गुण हमें नहीं दिखलाई देते वे कभी-कभी उसमें ख़ुद प्रगट हो जाते हैं। परन्तु उनके प्रगट होने का आधारभूत कारण यही होता है कि वह बालक अपने को देर तक किसी काम में लगा देता है। इसका एक बहुत अच्छा दृष्टान्त मिस बार्टन ने दिया है। वह लिखती है कि एक लड़की थी जो बोल नहीं सकती थी। उसके माँ-बाप ने उसे डॉक्टरों को दिखाया। डॉक्टरों ने कहा कि उसमें कोई ख़राबी नहीं है। एक दिन वह बालिका सिलेण्डर बनाने लगी और जब कई बार बना चुकी तो खुशी में दौड़ी-दौड़ी अपने अध्यापक के पास आकर बोली, “चलो देखो।” वह लड़की अब तक बोल नहीं सकती थी, परन्तु उसके मानसिक विकास के अनुकूल वाद्य परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर उसकी अन्तर्हित शक्ति फूट कर निकल पड़ी। यह मनोवैज्ञानिक घटना प्रत्येक बालक के जीवन में होती है, परन्तु इसका हम लोग बहुत कम श्रദ്ധा रखते हैं। इस घटना को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि हम बालक के ध्यान को किसी एक चीज़ में ऐसा लगाएँ कि वह उससे हटने का नाम न ले। जब कोई बालक का ध्यान पकड़ने वाली ऐसी चीज़ उसके सामने



आ जाएगी तो उसकी अन्तर्हित शक्ति फूट पड़ेगी और बालक शिक्षा में आगे ही आगे क्रम बढ़ाने लगेगा। मौखिक शिक्षा का उद्देश्य बालक के सामने ऐसे साधन उपस्थित कर देना है, जो बालक के ध्यान को केंद्र कर लें। उसके बाद उसकी मानसिक शक्ति उसमें से स्वयं फूट निकलेगी।

सारे कथन का अभिप्राय यही है कि बालक के मानसिक विकास में जो कारण प्रतिबन्धक के तौर से मौजूद होते हैं, रुकावट के तौर से होते हैं, जो उसे विकसित नहीं होने दिया करते, उन्हें हटा देना ही शिक्षक का कार्य है। उन्हें हटाकर विकास के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर देना और फिर उस परिस्थिति में बालक को स्वतन्त्र छोड़ देना ही शिक्षक का कर्तव्य है और यही मौखिक शिक्षा के मत से सर्वोत्तम शिक्षा पद्धति है। इस शिक्षण-पद्धति में जो स्थान बालक को दिया गया है, वह स्थान शिक्षक को नहीं है। विकास का असली बीज बालक में है, शिक्षक को तो उस बीज के फलने-फूलने वाली ठीक सामग्री का जुटाव करना है।

पुराना शिक्षा का तरीका सब कुछ शिक्षक पर छोड़ देता था और शिक्षक बालक के मानसिक विकास को बिना जाने उस पर अपने विचार लादने का प्रयत्न करता था। परीक्षात्मक मनोविज्ञान शिक्षा से होने वाले दुष्परिणामों को देख कर उस बोझ को हटाने का प्रयत्न करता है। परन्तु डॉ० मौखिक शिक्षा की पद्धति उन उपकरणों को ढूँढ़ती है, जिनको बालक ढूँढ़ता होता है और उन्हें ढूँढ़ कर बालक के सामने पेश कर देती है। वह बालक उनकी सहायता से अपने अन्दर मौजूद मानसिक बीज का विकास करता है। इस शिक्षा-प्रणाली के द्वारा बालक पर बाहर से कुछ लादा नहीं जाता और न उसे थकने ही दिया जाता है, क्योंकि बालक के सामने ऐसे उपकरण लाए जाते हैं, जिनमें उसका ध्यान जम जाता है, वह तन्मय हो जाता है, थकता नहीं। इस प्रकार उसे कठिन से कठिन विषय पाठ-विधि में बिना कुछ कमी किए पढ़ाए जा सकते हैं। डॉ० मौखिक शिक्षा की शिक्षा-पद्धति का यही मनोवैज्ञानिक आधार है।



प्यार



[श्री० महावीरप्रसाद पाण्डेय]

लुट गया जीवन का सौभाग्य,
धुल गई ओठों की मुस्कान।
बूढ़ गए इन आँखों की राह
हृदय के चिर-सञ्चित अरमान।

इसी को कहते हैं क्या प्यार ?

लुट गया सोने-सा ससार,
मिट गया आशामय उन्माद।
भर उठा अन्तर में अनजान
न जाने कितना प्रचुर विषाद।

इसी को कहते हैं क्या प्यार ?

झिन गया धीरे से सर्वस्व,
मिल गया पीडाओं का सार।
अनेको अधिकारों के बीच
रह गया रोने का अधिकार।

इसी को कहते हैं क्या प्यार ?

छेद करके अन्तर को शीघ्र,
बह गए प्राणों के उल्लास।
हो गया इस जीवन के बीच
भयङ्कर चिन्ताओं का वास।

इसी को कहते हैं क्या प्यार ?



अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

[श्री० प्रमुदयाल मेहरोत्रा, एम० ए०]



व से सहस्रों वर्ष पहले जब मनुष्यों ने इतनी उन्नति न की थी, तब वे बात-बात पर आपस में लडा-झगडा करते थे। उनमें जो सबल थे, चैन करते थे और बेचारे निर्बल सबलों का मुँह ताका करते थे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत थी। सामाजिक शान्ति सदैव ख़तरों में थी। कोई बात हुई और लाठियाँ तन गईं, पत्थर चल पड़े और समाज में अशान्ति मच गई। प्रत्येक मनुष्य की जान ख़तरों में थी।

क्रमशः मानव-समाज ने उन्नति की। रोज़-रोज़ की ख़ून-ख़राबी से ऊब कर उसने सामाजिक शान्ति की खोज आरम्भ की। बहुत दिनों के बाद उसने अपने झगड़ों को निबटाने के लिए और पारस्परिक सिरफ़ुद्दौबल से बचने के लिए न्यायालय की स्थापना की। अब दो मनुष्यों में जब कोई झगडा होता तो वे पञ्चायत या न्यायालय की शरण लेते। धीरे-धीरे उन्होंने न्यायालय के नियमों को मानना सीखा। इसके बाद शनैः-शनैः क़ानून का विकास हुआ। आज दिन इसी क़ानून के सहारे न्यायालय हमारे झगड़ों का क़ैसला करते हैं और सामाजिक शान्ति को स्थिर रखते हैं। परन्तु आज भी ससार में अनेक ऐसी बर्बर जातियाँ हैं, जिनमें न्यायालय नहीं हैं और वे अपने झगड़े बल-प्रयोग द्वारा ही निबटाती हैं।

जो दशा अति प्राचीन काल में मानव-समाज की थी या जो आजकल कुछ जज़ली जातियों की है, ठीक वही दशा कुछ वर्ष पूर्व संसार के राष्ट्र-समाज की थी। युद्धों के मूल कारण राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े हैं, जिन्हें निबटाने के लिए उन्हें शस्त्र धारण करना पड़ता है।

बात असल यह है कि संसार में जब से राजा और राज्य का आविर्भाव हुआ है, तभी से राजकीय अराजकता

का भी जन्म हुआ है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल जाने, नीचा दिखाने और उसे दासता के बन्धन में बाँध लेने के मन्सूबे बराबर बाँधता रहता है। जिस प्रकार आम तौर पर सबल निर्बलों को समय-समय पर दबाया और सताया करते हैं, ठीक वही दशा राष्ट्रों की है।

जिस प्रकार साधारण अराजकता को दूर करने का प्रयत्न सोचा जाता है, उसी प्रकार इस राजकीय अराजकता को भी मिटाने का प्रयत्न होता रहता है। इापर में जब कौरवों ने पाण्डवों का राज्य उन्हें वापस देने से इन्कार कर दिया तो पाण्डव युद्ध के लिए तैयार हुए। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने बीच में पड़ कर सम्राट् दुर्योधन को उसकी अराजकता के लिए उसे बहुत समझाया, परन्तु जब उसने साफ़ साफ़ यह उत्तर दे दिया कि—“सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन वेशवः” तो बाध्य होकर कृष्ण ने दुर्योधन की अराजकता दबाने के लिए महाभारत रचवाया। अस्तु।

अभी तक इस राजकीय अराजकता को दूर करने और उसके निवारण के लिए चीझने-चिछाने वाले सिर्फ़ छोटे-छोटे राष्ट्र ही हुआ करते थे, जिन्हें समय-समय पर बड़े राष्ट्र नोधा-खसोटा या दबाया करते थे। यूरोप में जब कि एक ओर प्रिंस बिस्मार्क की निर्धारित नीति पर चल कर जर्मन सम्राट् क़ैसर विलियम विश्व-विजय के मन्सूबे बाँध रहा था, फ़्रांस, इटली और रूस आदि देश एक दूसरे को शङ्का की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि किसी अन्य दृष्टि से देख रहे थे। इङ्गलैण्ड ससार के समुद्र पर अपना प्रभुत्व बनाए रखने की चेष्टा में अपना दिमाग ख़राब ढाल रहा था। एशिया का 'पीला ख़तरा' जापान तथा अमेरिका सदृश देश ससार की राजनीति में किसी से पीछे न रहने के लिए भरसक प्रयत्नशील थे। ऐसे समय में ससार में कुछ शान्तिकामी राजनीतिज्ञ, ग़त यूरोपीय महायुद्ध के बहुत पहले से ही, विश्व-शान्ति के नाम पर इस अराजकता का

मूलोच्छेद करने की बात सोच रहे थे। सन् १८९९ के पहले तक इस अराजकता को दबाने के लिए सिर्फ एक ही उपाय काम में लाया जाता था और वह था, शस्त्रों की झड़ार और तोपों की घरघराहट। ऐसे झगड़ों में पड़ने वाले राष्ट्रों को कभी-कभी विपुल धन-जन से हाथ धोना पड़ता था, कभी-कभी रक्त ही भस्म बन जाते थे। जो सबल राष्ट्र या राज्य दूसरे दो प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों के झगड़े निबटाने के लिए रुके होते थे, वे स्वयम् ही बन्दर-बाँट का अभिनय करने लगते थे। अस्तु।

उस समय राजकीय अराजकता को रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास तो हो चला था, पर कोई ऐसा न्यायालय न था, जो कानून के बल पर राष्ट्रों के झगड़े निबटाता और उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध शस्त्रास्त्र का सहारा न लेना पड़ता और न ऐसे न्यायालय के सामने मस्तक झुकाने को उस समय का कोई राष्ट्र ही तैयार था। फलतः यूरोपीय महायुद्ध के पूर्व एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना करने के लिए दो बार भगीरथ-प्रयत्न किया गया—पहला सन् १८६६ में और दूसरा सन् १९०७ में—परन्तु उद्योग-कर्ताओं को अपने प्रयत्न में विशेष सफलता न मिली। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को पञ्चायत द्वारा निबटाने के पक्ष में सुदृढ़ लोकमत तैयार हो गया। इंग्लैंड के तत्कालीन राजा सप्तम एडवर्ड ने इन पञ्चायतों को सफल बनाने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न किया। फलस्वरूप ब्रिटेन तथा अन्य कई राष्ट्रों ने अपने छोटे-मोटे झगड़ों के लिए एक पञ्चायत की स्थापना की और उसके फ़ैसले को मान लेना स्वीकार कर लिया, परन्तु अन्य राष्ट्र उदासीन ही रहे।

इस अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता के युग में संसार की राजनीतिक स्थिति विचित्र थी। उस समय प्रत्येक राष्ट्र पूर्णरूपेण सशस्त्र और एक दूसरे के लिए खतरनाक थे। बाँ तो उनकी नीति केवल आत्मरक्षा थी, परन्तु वास्तव में वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ने के लिए हर समय खम ठोका करते थे। नीति का सञ्जालन प्रत्येक राष्ट्र में हुने-गिने स्वार्थी लोग चुपचाप किया करते थे। जनता को इसका कुछ पता ही न लगता था। ये राज नीतिज्ञ प्रत्येक क्षण अपना उच्छ्वास करने को कटिबद्ध थे और उनके ज़बरदस्त सहायक थे वे समाचार-पत्र,

त्रिदंश कान पाठकों की कमज़ोरियों से लाभ उठा कर अपना पेट भरना था।

अन्त में उनकी मन्शा फर्जा और महायुद्ध छिड़ा। यह महायुद्ध क्या था, 'मियाँ की जूनी, मियाँ के खर' की कड़ावत का साक्षात् नमूना था। इस महायुद्ध ने संसार के राष्ट्रों की धौलें खोल दीं। उनकी 'एकोइस द्वितीयोनासिन' की धारणा बहा हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता की ओर संसार के राजनीतिज्ञों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो गया। वे समझ गए कि इस अराजकता को मिटाए बिना समर में न तो शान्ति स्थापित की जा सकती है और न वह स्थायिनी ही बनाई जा सकती है। जब तक राष्ट्र अपनी-अपनी झड़बी अपना-अपना राग अजापने की नोति पर चबेंगे, तब तक विश्वशान्ति सदैव सङ्कटापन्न रहेगी। फलतः राष्ट्रों में परस्पर रुद्धाव उत्पन्न करने के लिए, उनमें सहयोग की भावना पैदा करने के लिए तथा उन्हें शान्ति-पथ पर ले चलने के लिए राष्ट्र सङ्घ की स्थापना की गई।

यह राष्ट्र-सङ्घ जन्म लेते ही एक अन्तर्राष्ट्रीय न्याया-लय स्थापित करने में लग गया, ताकि राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े शान्तिपूर्वक निबटार जा सकें। सङ्घ-विधान की चौदहवीं धारा ने सङ्घ-कौन्सिल को यह अधिकार दिया कि वह एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की योजना बना कर सङ्घ के सामने रखे। इस धारा में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि ऐसे प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को सुनने तथा उसे निबटाने का अधिकार इस न्याया-लय को होगा, जो दो द्वन्द्वी राष्ट्रों द्वारा इस न्यायालय को सौंपे जावेंगे अर्थात् वादी और प्रतिवादी चाहें तो इस न्यायालय से अपने झगड़े का फैसला करा सकते हैं। इस धारा में यह भी कहा गया था कि सङ्घ के आग्रह करने पर किसी प्रश्न या झगड़े पर सहाह देने का अधिकार भी न्यायालय को होगा।

सङ्घ कौन्सिल ने अपनी दूसरी बैठक में न्यायालय की योजना तैयार करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने ६ सप्ताह के लगातार परिश्रम के बाद एक योजना तैयार करके कौन्सिल के सामने रखी। कौन्सिल ने उस पर पूर्ण रूप से विचार करके अनेक संशोधन किए। योजना में राष्ट्रों के लिए वह अनिवार्य किया गया था कि वे अपने-अपने झगड़े इसी न्यायालय

द्वारा निबटावें। छोटे राष्ट्र उपर्युक्त शर्त के पक्ष में थे, पर बड़े-बड़े राष्ट्र इसके विरोधी थे। इन बड़े राष्ट्रों का कहना था कि न्यायालय का अधिकार अनिवार्य करने का अभी समय नहीं आया है। जब तक न्यायालय पर राष्ट्रों का पूरा विश्वास न हो जावे, तब तक उन्हें बाध न करना चाहिए। अन्त में छोटे और बड़े राष्ट्रों में यह समझौता हुआ कि जो राष्ट्र चाहें अपने को न्यायालय के इस अधिकार से बाध सकता है। अस्तु।

खुदा-खुदा करके सन् १९२२ ई० में प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हो गई। ३० जनवरी (सन् १९२२) को न्यायालय की सर्व-प्रथम बैठक हुई। तब से प्रत्येक वर्ष उसी तारीख को इसकी बैठक होती है, जो बहुधा महीनों तक चला करती है। इस स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में ग्यारह न्यायाधीश और चार उपन्यायाधीश होते हैं। वे ही सज्जन इस न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए जा सकते हैं, जिनमें दो विशेष योग्यताएं होती हैं। अर्थात् उनका चरित्र उज्ज्वल हो और अपनी योग्यता के कारण अपने देश में उच्चतम न्यायाधीश रह चुके हों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून की विशेष जानकारी रखते हों। ये न्यायाधीश कोई राजनीतिक या शासन-सम्बन्धी कार्य नहीं कर सकते और न वे किसी सरकार के सदस्य, प्रतिनिधि या अक्रसर हो सकते हैं। न्यायालय का कोई जज किसी अन्तर्राष्ट्रीय मामले में एजेंट या एडवोकेट का काम नहीं कर सकता। यदि किसी मामले में एक जज का सम्बन्ध रह चुका है, तो वह उस मामले की सुनवाई के समय न्यायासन पर नहीं बैठ सकता। ऐसे किसी मामले का शङ्का-समाधान न्यायालय स्वयम् करता है। यदि किसी विशेष कारण से कोई जज यह समझता है कि किसी खास मामले में उसका भाग लेना उचित नहीं है, तो वह इस बात की सूचना न्यायालय के प्रेज़ीडेंट को दे देता है। प्रेज़ीडेंट स्वयम् भी किसी जज को इस प्रकार की सूचना दे सकता है। विधान की २० वीं धारा के अनुसार प्रत्येक जज को खुले न्यायालय में शपथ लेनी पड़ती है कि वह अपना कार्य ईमानदारी से सम्पूर्ण निष्पक्ष होकर करेगा। २१वीं धारा में कहा गया है कि जज लोग इस ढङ्ग से चुने जावें कि न्यायालयों में संसार की समस्त समुन्नत सभ्यताओं तथा न्याय-प्रणाली के

प्रतिनिधि आ जावें, ताकि न्यायालय को कानून के अलावा राष्ट्रीय रीति-रिवाज आदि का भी पूरा ज्ञान हो। इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाता है कि छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों के लोग बिना किसी कठिनाई के न्यायालय में आ जावें और विशेष योग्य पुरुष अवश्य जज चुन लिए जावें।

एक न्यायाधीश के कार्य की अवधि ६ वर्ष की होती है। बीच में वह अपने पद से केवल उसी हालत में हटाया जा सकता है, जब कि उसके साथी तमाम न्यायाधीश एकमत से उसको हटा देने की राय दें। यदि एक भी न्यायाधीश उसे हटाने के विरुद्ध हो, तो वह नहीं हटाया जा सकता। प्रत्येक न्यायाधीश को १२५० पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता है और न्यायालय के काम के लिए जब वह अपने देश से बाहर जाता है, तो जाने के दिन से लेकर लगभग ८ पौण्ड प्रति दिन के हिसाब से भत्ता पाता है। न्यायालय के उपसभापति का भत्ता १२ पौण्ड १० शिलिंग है। डिप्टी जजों को भी इतना ही भत्ता मिलता है, पर उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता। इसके अलावा उपसभापति जजों तथा डिप्टी जजों को, जब तक कि वे हेग में, जहाँ न्यायालय की बैठक होती है, रहते हैं, प्रायः चार पौण्ड प्रतिदिन के हिसाब से भत्ता मिलता है। इस न्यायाधीश-मण्डल के प्रधान को हेग में ही रहना पड़ता है, अतः उसे ३७५० पौण्ड सालाना का विशेष भत्ता मिलता है। जजों एवम् डिप्टी जजों को सफ़र-खर्च पृथक् मिलता है और उनके वेतन तथा भत्ते पर इनकम टैक्स नहीं लगता।

किसी मामले की सुनवाई पूरे न्यायालय में होती है और ११ में से ६ जजों का 'कोरम्' होता है। पाँच जजों तथा दो डिप्टी जजों की तीन वर्ष के लिए एक विशेष कमिटी बना दी जाती है, जिसका काम होता है मज़दूर-सङ्घ के विधान से उत्पन्न मामलों को या शान्ति-सन्धियों के बन्दरगाहों, जलाशयों और रेलवे विभाग से सम्बन्ध रखने वाले मामलों को सुनना, जिनके बारे में न्यायालय को अनिवार्य अधिकार दिए गए हैं। किसी मामले को शीघ्रातिशीघ्र निबटाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर तथा मुवकिलों के प्रार्थना करने पर एक विशेष कमिटी नियुक्त कर दी जाती है, जिसमें तीन जज होते हैं।

संसार के ५२ राष्ट्रों ने इस अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान पर हस्ताक्षर किए हैं। न्यायालय के अनिवार्य अधिकार वाली धाराओं पर २७ राष्ट्रों के हस्ताक्षर हैं। १६ राष्ट्रों ने इसे स्वीकार कर लिया है। निम्नलिखित राष्ट्रों के पारस्परिक मामलों में न्यायालय के अनिवार्य अधिकार लागू हैं—एविसिनिया, आस्ट्रिया, बेल्जियम, बल्गेरिया, डेनमार्क, हंगेरी, फ़िनलैंड, जर्मनी, यूनान, हेरो, लिथुनिया, नीडरलैंड्स, नॉर्वे, पुर्तगाल, स्वीडन, स्वीजरलैंड तथा उरुग्वे। कुछ राष्ट्रों ने न्यायालय का अनिवार्य अधिकार सदैव के लिए स्वीकार कर लिया है और कुछ ने प्रथम बार पाँच वर्षों के लिए। फिर भी न्यायालय के अनिवार्य अधिकार को मानने वाले राष्ट्रों की संख्या कम ही है। न्यायालय की उपयोगिता भी उसके अनिवार्य अधिकार पर ही निर्भर करती है। आशा की जाती है कि शीघ्र ही संसार के सब राष्ट्र इस न्यायालय के अनिवार्य अधिकार को स्वीकार कर लेंगे। उस समय यह न्यायालय वास्तव में विश्व की शान्ति को स्थिर रखने का प्रधान साधन होगा।

न्यायालय की भाषाएँ अङ्ग्रेज़ी तथा फ़्रेंच हैं। सुवर्णिकों को अधिकार है कि इन दोनों भाषाओं में से किसी एक को या दोनों भाषाओं को चुन लें। पर उनकी प्रार्थना पर इनमें से किसी एक भाषा का प्रयोग ही न्यायालय कर सकता है। यदि फ़रीक़ैन में भाषा के सम्बन्ध में मतभेद हो तो न्यायालय अपना निर्णय दोनों भाषाओं में देता है और यह स्पष्ट कर देता है कि कौन सी भाषा का निर्णय प्रामाणिक माना जावेगा। न्यायालय की कार्य-शैली यह है :—अननिवार्य मामलों में फ़रीक़ैन में परस्पर क्या समझौता हुआ था, इसका पूर्ण परिचय न्यायालय को कराया जाता है। तत्पश्चात् न्यायालय उनके झगड़े को अच्छी तरह समझता है। अनिवार्य अधिकार से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में किसी एक फ़रीक़ैन के प्रार्थना करने पर कार्य-वाही प्रारम्भ की जाती है। इस प्रार्थना-पत्र में वजूहात का खुलासा दिया होता है। सलाह लेने के लिए न्यायालय के पास एसेम्बली या कौन्सिल की तरफ़ से एक लिखा हुआ प्रार्थना-पत्र भेजा जाता है, जिसमें राष्ट्र सङ्घ के प्रेज़िडेंट या प्रधान सेक्रेटरी के हस्ताक्षर होते हैं।

तत्पश्चात् न्यायालय का रजिस्ट्रार सङ्घ के सदस्यों को, न्यायालय के सदस्यों को तथा डिपुटी जजों को मामले की सूचना देता है। न्यायालय को यह भी अधिकार है कि वह यह बतला दे कि फ़रीक़ैन के सदस्यों की रक्षा करने के लिए फ़िलहाल क्या किया जावे।

न्यायाधीश-मण्डल अपना फ़ैसला खुली अदालत में सुनाता है। जिन कारणों से वह अपने सिद्धान्त पर पहुँचता है, उनका हवाला स्पष्ट रूप से अपने निर्णय-पत्र में देते हैं। यह निर्णय जजों के बहुमत द्वारा होता है।

न्यायालय-विधान की ६१वीं धारा के अनुसार किसी फ़रीक़ैन को यह अधिकार है कि वह न्यायालय के निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए प्रार्थना करे, बशर्ते कि कोई ऐसी नई बात मालूम पड़ जावे, जिसका मामले से विशेष सम्बन्ध हो और जो न्यायालय को तथा फ़रीक़ैन को अब तक न मालूम रही हो। परन्तु पुनर्विचार की दरखास्त नई बात मालूम होने के ६ महीने के भीतर तथा निर्णय के दस वर्ष के भीतर ही दी जानी चाहिए। न्यायालय को जब यह विश्वास हो जाता है कि वास्तव में जो नयी बात मालूम हुई है उसका मामले से विशेष सम्बन्ध है तो वह पुनर्विचार करने की दरखास्त को स्वीकार कर लेता है।

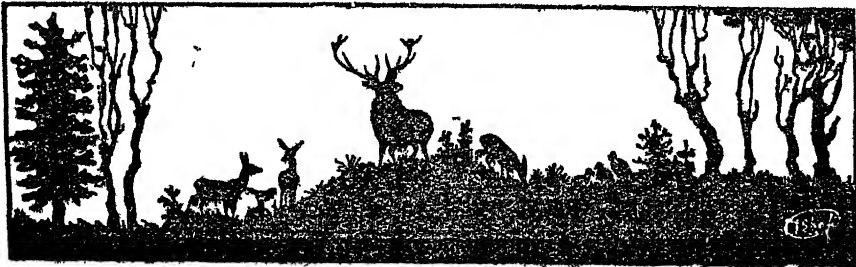
अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का द्रष्टर कारनेगी शान्ति-भवन में रहता है। यह भवन पूर्णरूपेण अन्तर्राष्ट्रीय है। इस भवन के लिए स्काट-धनकुबेर मिस्टर ऐण्ड कारनेगी ने पैंतालीस लाख रुपए दिए थे। डच पार्लामेंट ने आठ लाख चालीस हजार रु० ज़मीन के लिए दिए, नॉर्वे तथा स्वीडन ने दीवारों के निचले हिस्से के लिए पत्थर दिए। डेनमार्क ने बाग़ का फ़ौव्वाग़ बनवाया। हॉलैंड ने ईंटें दीं और सभी सोड़ियाँ बनवाईं। इटली ने बरामदों के लिए सङ्गमरमर और ब्रिटेन ने खिड़कियों तथा दरवाज़ों के लिए रज़ीन कौंच दिए। फ़्रान्स ने रङ्ग, पच्चीकारी तथा चित्रकारी कराई। रूस ने एक बहुमूल्य सङ्ग-यशब का सुन्दर गुलदान दिया। हङ्गेरी ने बहुत ही सुन्दर शमा-दान, ऑस्ट्रिया ने उसके रखने योग्य क्रीमती रज़ाबियाँ, अमेरिका ने काँसे और सङ्गमरमर की मूर्तियाँ, चीन ने अत्यन्त सुन्दर प्याले और जापान ने रेशम पर के उत्तमोत्तम चित्र दिए। हैनी के प्रजातन्त्र ने कुर्सियाँ और मेज़ें आदि दीं। ब्रेज़िल और सस्वेडर ने लकड़ी देकर

दरवाजे आदि बनवाए। रूम और रूमनियाँ ने दरी बिछवाई, स्वीजरलैण्ड ने ध्वजधारे के लिए धर्मघडी दी। बेल्जियम ने लोहे के किवाड़, जर्मनी ने बाहर के फाटक और ऑस्ट्रेलिया ने सभापति के लिए मेज़ बनवाई। इस प्रकार सब राष्ट्रों के सहयोग से यह शान्ति-भवन निर्माण हुआ, जिसमें आज दिन अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का दफ्तर है।

राष्ट्र-सङ्घ के बजट में से न्यायालय का बजट बनाया जाता है। राष्ट्र-सङ्घ के बजट का एक बहुत बड़ा भाग न्यायालय पर व्यय किया जाता है। कत्रतः न्यायालय का कोई स्वतन्त्र कोष नहीं होता और उसे सङ्घ का मुँह ताकना पड़ता है। यों तो यह उचित हो है, क्योंकि न्यायालय है तो राष्ट्र-सङ्घ का एक भाग ही। न्यायालय को आर्थिक ऋग्गो से लुट्टे रहती है, पर कुछ इसके विरोधी हैं। वे चाहते हैं कि आर्थिक मामलों में न्यायालय राष्ट्र-सङ्घ से पूर्णतया स्वतन्त्र रहे। वे नहीं चाहते कि न्यायालय का कोष राष्ट्र-सङ्घ के कोष पर निर्भर करे। उनका कहना है कि राष्ट्र-सङ्घ एक राजनीतिक संस्था है। न्यायालय का सम्बन्ध न्याय से है, जो राजनीति से पृथक् है। न्याय को राजनीति पर निर्भर न रहना चाहिए। न्यायालय को राष्ट्र-सङ्घ पर निर्भर रखने के मानी यह होते हैं कि न्यायालय की तत्कदीर राष्ट्र-सङ्घ की तत्कदीर से बाँध दी जाय और यदि किसी कारण से राष्ट्र-सङ्घ डूबने लगे तो न्यायालय को भी ले डूबे। इन लोगों का कहना है कि न्यायालय का स्वतन्त्र कोष होना चाहिए और निजी सम्पत्ति होनी चाहिए, जिसका सञ्चालन स्वयम् न्यायालय या ट्रस्टिबों का एक अन्तर्राष्ट्रीय बोर्ड करे। तब जनता इसकी इज्जत भी अधिक करेगी और इसका भविष्य भी अत्यधिक

सुरक्षित रहेगा। उनका दावा है कि ससार भर में चन्दे द्वारा न्यायालय का कोष संग्रह किया जा सकता है। जब केवल एक अमेरिकन, केन्द्रीय अमेरिकन न्यायालय के लिए कर्तगो में बिराल भवन बनवा सकता है तथा जब हेग के शान्ति-भवन के लिए कारनेगी साहब ही पैतालीस लाख रुपए दे सकते हैं, तब सरलता से न्यायालय के लिए धन संग्रह किया जा सकता है। जो लोग चन्दे द्वारा न्यायालय को अधिक स्वतन्त्रता देना चाहते हैं, वे सम्भवतः यह भूल जाते हैं कि जनता यह कभी भी पसन्द न करेगी कि दो-चार रॉकफेलरों की मुठ्ठी में न्यायालय रहे और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय 'रॉकफेलर न्यायालय' बन जावे। अस्तु।

यह ठीक है कि राष्ट्र-सङ्घ के बिना अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय रह नहीं सकता। राष्ट्र-सङ्घ ने ही न्यायालय को स्थापित किया। राष्ट्र-सङ्घ ही उसका बोझ उठाता है और राष्ट्र-सङ्घ के सदस्य ही न्यायालय को काम देते हैं। राष्ट्र-सङ्घ ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास करता है, जिसके बल पर न्यायालय ऋग्गड़े निबटाता है। पर वास्तव में न्यायालय तथा राष्ट्र-सङ्घ की वास्तविक जननी शान्ति एवम् सहयोग की अन्तर्राष्ट्रीय भावना है। जब तक ये भावनाएँ कायम हैं, तब तक राष्ट्र-सङ्घ सुरक्षित है और उसके साथ सलामत है यह न्यायालय। हाँ, ईश्वर न करे कि ये भावनाएँ ससार से उठ जावें और उनके स्थान पर राष्ट्रीयता तथा सैनिकवाद की तूती बोलने लगे। तब उस समय न तो राष्ट्र-सङ्घ ही रह सकेगा, और न न्यायालय ही। वह तो फिर एक बार अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का युग होगा, जिसमें पुरानी कहानी फिर दुहराई जावेगी और हमे पुराने करिबे फिर देखने पड़ेगे।



मुमताज़महल

[श्री० जयनारायण कपूर, बी० ए०, एल्-एल् बी०]



सार के इतिहास में शाहजहाँ की प्राणोपमा पत्नी अर्ज़मन्द बानू बेगम के समान अन्य कोई उच्च-बशीया सम्भ्रान्त महिला प्रसिद्धि के चरम शिखर पर नहीं पहुँची।

आगरे के विश्व-विभूत ताजमहल ने इस बेगम के मुमताज़महल नाम की अपनी अनुपम शिल्प-कला द्वारा संसार के इतिहास में सदा के लिए अमर बना दिया है। शाहजहाँ के उत्कट प्रेम का यह अद्वितीय स्मारक मुमताज़महल के दिव्य गुणों का एक जीवित निदर्शन है।

अर्ज़मन्द बानू बेगम, जो इतिहास में प्रायः मुमताज़महल बेगम के नाम से प्रसिद्ध है, विश्व-विख्यात मूरजहाँ बेगम की भतीजी और मुगल-साम्राज्य के प्रधान स्तम्भ आसफ़ज़ाँ की लक्ष्मी थी। इसका जन्म १५९४ ई० में हुआ था। पिता के घर में इसका लालन पालन बड़े ही स्नेह के साथ हुआ। अपने पिता की यह सबसे प्यारी थी। शैशव-काल ही से इसकी अभिरुचि विद्या-अध्ययन की ओर थी। इसलिए पिता ने इसकी शिक्षा-दीक्षा बड़े ही प्रयत्न से सम्पन्न कराई थी। एक सम्भ्रान्त महिला में जितने गुणों की अपेक्षा की जाती है, उन सबका इसके चरित्र में समावेश था। अपनी कुशाग्र बुद्धि से इसने अल्प-काल ही में फ़ारसी और अरबी के उच्च साहित्य का अध्ययन कर डाला था। मानसिक उत्कर्ष के साथ ही साथ इसके हार्दिक गुणों का भी आशातीत विकास हुआ था। दया और उदारता आदि सद्गुण तो मानों हममें कूट-कूट कर भरे थे। दीन-दुखियों के साथ यह सदा सहानुभूति और दया का व्यवहार करती थी। उनकी हीन दशा देख कर इसका हृदय इतना व्यथित हो जाता था कि जब तक वह उनके दुःखों को दूर करने का समुचित उपाय न कर लेती, तब तक

इसे चैन न आता था। यह अपने काल की भतीव सुन्दर रमणी थी। ईश्वर ने इसके शरीर में समस्त अप्रतिम तत्वों का समावेश किया था। ज्यो-ज्यों इसकी अवस्था बढ़ती गई, इसका सौन्दर्य भी शुद्ध पद्म के चन्द्रमा की भाँति विकसित होता गया। चौदहवें वर्ष में पदार्पण करते ही इसके रूप-चन्द्र की किरणें सर्वत्र समोज्ज्वल प्रकाश बिकीर्य करने लगीं। धीरे-धीरे इसकी सौन्दर्य-सुरभि सम्राट् जहाँगीर तक पहुँची। सम्राट् ने जब इसके रूप और गुण की अत्यधिक प्रशंसा सुनी तो इसका विवाह अपने सबसे प्रिय पुत्र खुर्रम के साथ कर दिया। यही खुर्रम जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। सन् १६१२ ई० के अप्रैल मास में शाहज़ादा खुर्रम और अर्ज़मन्द बानू का विवाह अत्यन्त समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। सम्राट् जहाँगीर और सम्राज्ञी मूरजहाँ ने इस विवाहोत्सव में प्रधान भाग लिया था। यद्यपि खुर्रम का एक विवाह इससे बहुत पूर्व ही क्रन्धारी बेगम से हो चुका था, तथापि उसके जीवन पर जो प्रभाव इस विवाह से पड़ा, वह अन्य विवाहों से नहीं पड़ा। बहुपत्नीक कुटुम्बों में इतना सफल तथा आनन्दमय विवाह बहुत कम सुनने में आता है।

अपनी फूफी मूरजहाँ की भाँति ही अर्ज़मन्द बानू ने भी अपने अप्रतिम सौन्दर्य तथा दिव्य गुण-राशि से अपने पति के हृदय पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी। उसका शाहजहाँ पर अगाध अनुराग था। शाहजहाँ भी उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। दोनों एक दूसरे पर सुग्ध थे; एक दूसरे पर प्राण निष्ठावर करते थे। इनके पारस्परिक प्रेम की कथा स्वर्गीय वनस्त-श्री की एक दिव्य स्मृति थी। दोनों गम्भीर प्रेम, अगाध विश्वास तथा हार्दिक तल्लीनता के अटूट बन्धन में सदा के लिए बँधे थे। शाहजहाँ जहाँ कहीं भी जाता, सदा



अर्जुनमन्द बानू को अपने साथ रखता। एक दिन के लिए भी उसका विछोह उसे असह्य था। यही दशा बेगम की भी थी। वह सुख और दुःख में, आपत्ति और विपत्ति में सदा पति के साथ रही। उसके हृदय में पतिभक्ति की अनन्त भावनाएँ भरी थीं। वह सदा अपने ही हाथ से शाहजहाँ की सेवा-शुश्रूषा करना पसन्द करती थी। जब शाहजहाँ को अपने पिता के राजत्व-काल में आठ वर्षों तक निर्वासितावस्था में रहना पड़ा था, तब अर्जुनमन्द बानू (मुमताज़) ने उसे सदा अपने स्नेह की स्निग्ध छाया में रख कर उसके साथ राजनीतिक विपत्तियों के सारे कष्ट हँसते-हँसते झेले थे। वह उपदेशप्रद मिष्ट भाषण द्वारा पति की चिन्ताओं को हास्य के मधुर प्रवाह में तिरोहित कर देती थी। उसके हृदय में प्रेम की अतिरक्त धारा का सृजन करके उसमें अनिर्वचनीय आनन्द का सञ्चार कर देती और स्वयं कष्ट झेल कर पति के कष्टों को भुलाने का प्रयत्न करती। विपत्ति-काल में मित्र बन कर वह पति की निस्सहायावस्था की पूर्ति करती थी। आन्ति के समय रुखी मार्ग-प्रदर्शिका की भाँति अन्धकारपूर्ण मार्ग में प्रकाश दिखाती। शाहजहाँ भी इसके परामर्श का बहुत सम्मान करता था। वह इसकी दूरदर्शिता और तीक्ष्ण बुद्धि पर मुग्ध था। राजनीति की जब कोई जटिल समस्या उसके सामने उपस्थित होती, तो वह बिना मुमताज़ का परामर्श लिए, उस विषय में कोई काम न करता था। शाहजहाँ के सिंहासनारूढ़ होने पर तो मुमताज़महल अपनी कीर्ति के चरम शिखर पर पहुँच गई।

उसकी वार्षिक पेन्शन और जागीर में अत्यधिक वृद्धि हो गई। अन्तरङ्ग की वह सर्वोच्च स्वामिनी नियत की गई। सम्राज्ञी के पद पर आरूढ़ होते ही 'मलिकेज्जमों' (ससार-स्वामिनी) की पदवी देकर शाहजहाँ ने उसे सम्मानित किया। शाही पञ्जा अर्थात् राजमुद्रा उसी के अधिकार में रहती थी। रङ्गमहल में उसी की आज्ञा सर्वोपरि थी। यदि कोई उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन करता था तो उसका अभियोग भी सम्राज्ञी ही के समक्ष उपस्थित किया जाता था और वही उसको दण्ड देने की अधिकारिणी थी। इस अधिकार में किसी अन्य का हस्तक्षेप न था। कुछ समय के पश्चात् सम्राज्ञी के कहने से राजमुद्रा उसके पिता को सौंप दी गई थी।

मुमताज़ के चरित्र की महत्ता का विकास सबसे अधिक उसके ऐश्वर्य-काल में हुआ। उसका उदार हृदय, परोपकाररत स्वभाव तथा निरभिमान व्यवहार से सारा अन्तःपुर तथा प्रजाजन उसके ऊपर मुग्ध थे। ऐश्वर्य तथा अधिकार के कारण उसके स्वभाव में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। प्रमत्त विलासिता ने उसके हृदय में अभिमान तथा क्षमताजनित गर्व की सृष्टि नहीं की। असहाया विधवाओं तथा निर्धन अनार्यों की मूक समवेदना उसके नेत्रों में अश्रुधारा पैदा कर देती थी। उसका हृदय इतना कोमल था कि आत्तों की पुकार से वह विचलित हो उठती थी। राज्य में ऐसा कोई भी दुखी न था, जिसकी मनोकामना उसकी शरण में जाकर पूरी न हुई हो। मुमताज़महल एक देवी थी, जो अनन्त सम्पत्ति और क्षमता के उच्च सिंहासन पर मानों इसी हेतु बिठलाई गई थी कि वह साम्राज्य के दुखी-जनो में अपने अक्षय भाण्डार से निरन्तर अमित धन का वितरण करती रहे। उसके इष्ट गुण के कारण समस्त प्रजा उस पर प्राण निछावर करने को तत्पर रहती थी। इस देवी ने अगणित अनाथ कन्याओं के विवाह स्वयं कराए थे और अनाथ बालक-बालिकाओं के लिए अमित धन प्रदान किया था। उसकी दया और उदारता के कारण अनेक राजदण्डित व्यक्तियों के अक्षय्य अपराध क्षमा कर दिए गए और वे अपने पूर्व पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिए गए। मुमताज़ की इन आज्ञाओं पर शाहजहाँ चूँ तक न करता था। रङ्गमहल में वह मधुर हास्य का एक अनवरत स्रोत थी, जिसके फुआरों से छिटक-छिटक कर निर्मल आनन्द-धारा सारे अन्तःपुर-निवासियों को अभिसिञ्चित करती रहती थी। उसकी इन उदारतापूर्ण प्रवृत्तियों को उसकी एक सहचरी सतीउज्जिसा खानुम द्वारा सदा उत्साहवर्धक प्रेरणा मिलती थी। यह एक ईरानी महिला थी, जो अपनी विद्वत्ता और उच्च चरित्र के कारण मुमताज़ की सहचरी के पद पर नियुक्त हुई थी। इसके अद्वितीय गुणों से आकृष्ट होकर मुमताज़ ने इसे अपने पास रख लिया था। इसने शाही रङ्गमहल के वैभवपूर्ण विलासितामय वातावरण में रहते हुए भी अपने चरित्र की महत्ता को अचूक बनाए रक्खा था। अन्तःपुर के समस्त प्रलोभनों की अवहेलना करके इस



महिला ने अपने देशस्थ गुणों में हास न आने दिया। यह अपने सार्विक स्वभाव तथा धार्मिक विश्वासों के लिए प्रसिद्ध थी। इसी के संसर्ग से मुमताज़ में धार्मिक हृदय उत्पन्न हो गई थी। मुमताज़ इसके धार्मिक विश्वास तथा अनुष्ठानों का बड़ा आदर करती थी। मुमताज़ के हृदय में इसकी धार्मिकता पर अनन्य श्रद्धा थी। यह महिला नमाज़ और रोज़े की बहुत पाबन्द थी और प्रत्येक प्रहर की नमाज़ बड़ी श्रद्धा, तन्मयता तथा समय की पाबन्दी के साथ पढ़ा करती थी। रोज़े बड़े नियमपूर्वक रखती थी। उसका प्रतिदिन का आचरण मुस्लिम विधि विधान के नितान्त अनुकूल होता था। मुस्लिम-इतिहासकारों ने इस महिला के धार्मिक विचारों की अत्यन्त प्रशंसा की है। इसका मुख्य कारण यह है कि सतीउज्जिमा की धार्मिकता, परम्परागत अतिरिक्त विश्वास तथा कट्टरता के रङ्ग में सराबोर थी। उदार-हृदय शाहजहाँ के समय में ईसाइयों तथा मूर्ति-पूजकों के विरुद्ध शाही आज्ञा से धार्मिक अत्याचार किए जाने की जो कई घटनाएँ मिलती हैं, उनका प्रधान कारण यही है कि शाहजहाँ के धार्मिक विचारों पर इस महिला का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। यह प्रभाव अनुमानतः मुमताज़ के द्वारा पड़ा होगा, क्योंकि सती-उज्जिमा के संसर्ग में रहने से मुमताज़ के धार्मिक विचार भी उसी के रङ्ग में रँग गए थे।

सतीउज्जिमा खानुम ईरान के माज़न्दरा प्रांत के एक उच्च वंश की कन्या थी। उसका भाई जहाँगीर के दरबार में एक प्रसिद्ध कवि था, जिसे राजदरबार से 'मलिकुल-शुअरा' (कवि-सम्राट्) की पदवी मिली थी। सतीउज्जिमा ने भारत आकर मुमताज़महल की सेवा में नौकरी कर ली थी। केवल उसकी अप्रतिम योग्यता तथा असाधारण गुणों के कारण ही मुमताज़ उस पर अत्यधिक स्नेह तथा विश्वास करने लगी थी। बादशाह की दृष्टि में इसका सम्मान इतना था कि जब इसकी मृत्यु हुई तो बेगम मुमताज़महल की क्रूर के पास ही इसकी कब्र को स्थान दिया गया था। अस्तु—

मुमताज़ की अनुजित पतिभक्ति तथा प्रेम का यथोचित पुरस्कार शाहजहाँ ने आगरे में भुवन-विमुग्धकारी ताज का निर्माण करके दिया और उसके दाग़स्थ सम्बन्ध को चिरन्तन काल के लिए अमर कर दिया।

१६३० ई० में शाहजहाँ ख़ाँजहाँ लोधी के विरुद्ध बुरहानपुर में रह कर सैन्य-सञ्चालन कर रहा था। इसी समय मुमताज़ ने अपनी चौदहवीं सन्तान—एक कन्या प्रसव की। प्रसव के समय सम्राज्ञी को प्राणान्तक कष्ट हुआ। कुछ ऐसी आन्तरिक गड़बड़ी उत्पन्न हो गई थी कि प्रसव के बाद तुरन्त ही वह बेहोश हो गई। यद्यपि यह बेहोशी कुछ क्षण के बाद ही दूर हो गई, तथापि बेहोशी के दौरान थोड़ी-थोड़ी देर पर बराबर होते रहे। सम्राज्ञी ने समझ लिया कि मेरे जीवन की अन्तिम अवधि निकट आ गई है। उसने अपनी समस्त नष्ट-प्राय चेतना को एकाग्र कर अपनी ज्येष्ठा कन्या जहानारा द्वारा सम्राट् शाहजहाँ को बुलवाया। समाचार पाते ही बादशाह तुरन्त आया। अपनी प्राणाधिका जीवन सहचरी को सज़ाहीन अवस्था में मृत्यु-शय्या पर पड़ी देख कर उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। सम्राज्ञी ने लुप्त चेतना को एकाग्र करके पति के मुख की ओर देखा और अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा कि 'अपने इन बच्चों और वृद्ध माता-पिता को आपकी रक्षा में सौंपती हूँ, इनका खयाल रखिएगा।' इतना कह कर उसने दम तोड़ दिया और उसके प्रभापूर्ण नेत्र सदा के लिए बन्द हो गए। मुमताज़ की मृत्यु १७ जिल्काद, हिजरी सन् १०४० अर्थात् १६ जून सन् १६३१ को हुई थी। अब्दुल हमीद लाहौरी की गणना के अनुसार उसकी उम्र इस समय ३८ साल २ महीने की थी।

मुमताज़ की मृत्यु से शाहजहाँ के हृदय को बड़ी गहरी चोट लगी। अज्ञेय भाग्य ने उसके ऊपर यह एक अनर्थ वज्रपात किया था। क्रूर काल इससे अधिक दुःख उसको और क्या पहुँचा सकता था? यह वह वेदना थी, जिसकी चोट को सहन करना उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। शाहजहाँ के जीवन के आनन्द तथा उसकी हार्दिक आशाओं को निर्दय काल ने अपनी प्रसीमित शक्ति से सदा के लिए चूर-चूर कर डाला! यद्यपि सम्राट् के रङ्गमहल में पलियों अनेक थीं, तथापि मुमताज़ की मृत्यु ने जिस स्थान को रिक्त किया था, उसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती थी। मुमताज़ सम्बन्धी पुरातन स्मृतियों उसके दिल में रात दिन एक विषम अन्तर्दाह उत्पन्न करती थीं। उसके हृदय में एक हूक उठती थी, जिससे उसकी सारी चेतना विकलता तथा विचोभ के अतल सागर में निमग्न



हो जाती थी। मुमताजमहल की मृत्यु पर समस्त प्रजा फूट-फूट कर रोई थी। सारा दरबार शोक-सागर में निमग्न था। सम्राट् ने आठ रोज़ तक झरोखे में दर्शन नहीं दिए। वह शय्या पर पड़ा-पड़ा विलाप और अश्रुपात किया करता था। एक सप्ताह तक सारा राज-काज बन्द रहा। इस शोक से शाहजहाँ के शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसका शरीर खूब गया, चेहरा पीला पड़ गया। ऐसा मालूम होता था मानों वर्षों का बीमार हो। यहाँ तक कि वह शोकोन्माद में प्रलाप करता था। कभी रोता-रोता चिल्ला उठता—‘हा ! यदि इस साम्राज्य की पवित्र धाती का बोझ मेरे कंधों पर न होता तो मैं संसार त्याग कर सन्यासी का सा एकान्त जीवन व्यतीत करता। मेरे लिए इस जगत् में कोई सुख नहीं है।’ वह प्रतिदिन बेगम मुमताज की कब्र पर जाकर अर्पणों की वर्षा करता था और रो-रो कर कहता था—‘मुमताज, तेरे बिना यह संसार मुझे आनन्द-शून्य, साम्राज्य नीरस और जीवन भार मालूम

होता है।’ वह उन्मत्त दशा में चित्त बहलाने के लिए रङ्गमहल में जाता, किन्तु तुरन्त ही यह कह कर लौट पड़ता कि ‘किसी की भी सुख-श्री मेरे दुःख हृदय को शान्त नहीं कर सकती, किसी भी बेगम का रूप मुझे आनन्द नहीं दे सकता। सबका सौन्दर्य श्रीहीन है ?’ सम्राट् ने सारे राजसी वस्त्र, मणि-माणिक तथा आभूषण आदि पहनना त्याग दिया और दो वर्षों तक न हथ लगाया न तेल ; न आभूषण पहने और न किसी उत्सव या नाच-रङ्ग में भाग लिया। सम्राट् की कोई ऐसी अवस्था न थी, परन्तु इस दुर्बल शोक ने उनके कृष्ण केश को चाँदी के समान श्वेत कर दिया। भरी जवानी में वृद्धापा ने आ घेरा। मुमताज की अस्थियाँ छः मास पश्चात् अकबराबाद जाई गई और ताजमहल की बाटिका में कुछ काल के लिए दफना दी गई। बाद को उस मकबरे में रख दी गई जहाँ अभी उसकी कब्र बनी है। अन्तःपुर में उसके स्थान पर शाहजहाँ की ज्येष्ठा पुत्री अजानारा ने स्थान लिया।

✽

✽

✽

चन्द्र-कलङ्क



[श्री० बलभद्रप्रसाद गुप्त ‘रसिक’, विशारद]

चन्द्र ! तुम्हारा भू पर है जो,
प्रतिचिम्बित यह धूमिल अङ्क ।
अनभिज्ञता-दोष के कारण,
इसे बताता विश्व कलङ्क ॥

पर सच पूछो तो उससे ही,
है रजनीपति ! तब सम्मान ।
बिना कालिमा कैसे जग को,
होता उज्ज्वलता का भान ?

शुभ्र धवल कागज पर अङ्कित,
मुक्ता-से काले अक्षर ।
बहा न देते हैं किसके,
मन-मानस मे अनुराग लहर ?

किन्तु कलङ्क न लेशमात्र भी,
कहलाता वह कालापन ।
‘रसिक’ बरन् वह तो उसकी,
सौन्दर्य-वृद्धि का है साधन ?

प्रबल पवन के आघातो से,
उद्धत होकर अवगुण्ठन ।
सम्मुख ला देता आँखों के,
है रमणी का चन्द्र-वदन ॥

भ्रमभा के मोकों से जाता,
है जब चञ्चल अञ्चल हिल ।
दिखलाई पड़ने लगता है,
तब कपोल का काला तिल ॥

किन्तु न क्या वह तिल करता है,
एक अपूर्व छटा उत्पन्न ?
उस तिल को कलङ्क कहते हैं,
क्या जग के प्रतिभा-सम्पन्न ?

अथवा क्या छवि का दिग्दर्शन,
है न कराता पङ्कज-पङ्क ?
महा भूल है अतः बताना,
श्यामलता को चन्द्र-कलङ्क ॥



ताजमहल के बनाने वाले कौन थे ?

[श्री० विक्रमादित्यसिंह निगम, एम० ए०]

आ



गरे के 'ताजमहल' या 'ताजवीबी के रौज़े' का नाम तो न मालूम कितनों ने सुना होगा और बहुतों ने उसे देखा भी होगा। ताज-महल, संसार की प्रसिद्ध इमारतों में है। दुनिया के नौ अजायबों में से एक अजायब है। इस प्रसिद्ध इमारत को हर साल सैकड़ों यात्री, भारत ही नहीं, वरन् अन्यान्य देशों से भी, देखने आया करते हैं। यह इमारत मकराना के सज़मरमर पत्थर की बनी हुई है। इसमें मुगल बादशाह शाहजहाँ और उनकी धर्मपत्नी मुमताज़-महल की समाधियाँ हैं।

कहा जाता है कि जब मुमताज़महल की अन्तिम सन्तान गौहरआरा का जन्म होने को था, तो उसके पेट के अन्दर से बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। वह सुन कर बेगम बहुत घबराई और अपने पति को बुलवा कर रोते-रोते कहा—जब पेट से बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई देती है, तो प्रसूती नहीं बचती। इसलिए अब मेरे जीने की कोई आशा नहीं है। जब तक परमात्मा को मन्ज़ूर था, मैंने आपकी सेवा की, आपके दुःख-सुख में साथ दिया। परन्तु अब मेरा अन्तिम समय आ पहुँचा है, अब मैं आपसे बिलुब्धना चाहती हूँ। आपसे मेरी अन्तिम प्रार्थना यह है कि मेरी कब्र पर आप एक ऐसा मक़बरा बनवा दीजिएगा, जिसका सानी इस संसार में दूसरा न हो। इतना कहने के बाद ही बेगम के पेट में पीड़ा उठी और थोड़ी देर के बाद ही शाहज़ादी गौहरआरा का जन्म हुआ। यह प्रसव-वेदना बड़ी भीषण थी और प्रायः तीस घण्टे तक रही और अन्त में बेचारी बेगम का प्राण लेकर ही टली।

पहले उसकी लाश बुरहानपुर में तापती नदी के किनारे एक बाग में दफ़नाई गई। फिर वहाँ से खोद

कर आगरा लाई गई और ताजमहल में दफ़न की गई।

शाहजहाँ अपनी प्यारी मुमताज़ को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। इसलिए उसकी मृत्यु के बाद उसकी इच्छानुसार उसने आगरे में एक उत्कृष्ट मक़बरा बनवाने के लिए जमना नदी के किनारे कुछ ज़मीन, राजा मानसिंह के पुत्र राजा जयसिंह से, मोल ली और १६३२ ईस्वी में मक़बरा बनवाने का हुक्म दे दिया और सन् १६३३ ईस्वी में बह बन कर तैयार हो गया।

इस अद्भुत इमारत के बनवाने में अपार धन लगा था। 'बादशाहनामा' तथा 'मुन्तज़ज़बुलबाव' में लिखा है कि इस रौज़े की तैयारी में २० लाख रुपए लगे थे। परन्तु 'दीवाने-अफरीदी' में लिखा है कि १ करोड़ १० लाख रुपए खर्च हुए और इसके बनवाने के लिए बहुत से सत्कार-प्रसिद्ध कारीगर और मेयार नौकर रखे गए थे—जैसे आसफ़ज़ाँ, उस्ताद ईसा, उस्ताद पीरा, इस्माईलज़ाँ रुमी और राममल्ल काश्मीरी इत्यादि।

कुछ यूरोपियन इतिहासकारों का विचार है कि ताजमहल के बनाने वाले यूरोप के कारीगर थे—भारतीय नहीं थे। यद्यपि यह विचार शक्यतः साबित कर दिया गया है, तथापि बहुतों का अभी ख़याल है कि ताजमहल-निर्माता यूरोपियन न होने पर भी अन्तर्देशीय अवश्य थे। इस विचार के दो दल हैं। एक दल तो मिस्टर स्लीमैन (Mr Sleeman) के अनुयायियों का है, जिनका कहना है कि उस्ताद ईसा, जो ताज का मुख्य कारीगर था, वह मुसलमान अर्थात् भारतीय कारीगर नहीं, बल्कि एक फ़्रान्सीसी था और उसका नाम आस्टिन डी बोरडो (Austin De Borden) था। दूसरा दल आगस्टीनियन फ़्रायर फ़ादर मैन्नरिक (Augustinian Friar Father Manrique) के



के मानने वालों का है, जिसका कहना है कि ताज का बनाने वाला एक इटेलियन—जेरोनीमो वेरोनियो (Geronimo Veroneo) नामक मिस्त्री था। परन्तु वास्तव में ये दोनों विचार नितान्त असत्य और निराधार हैं। स्लीमैन साहब लिखते हैं कि ताज के बनाने वाले यूरोप के कारीगर थे। इन कारीगरों का प्रधान उस्ताद ईसा था। उस्ताद ईसा का अर्थ मास्टर जीसस (Master Jesus) है और चूँकि आस्टिन डी बोरडो उस समय शाहजहाँ का नौकर था, इसीसे लोग उसे 'उस्ताद ईसा' कहते थे। तात्पर्य यह कि उस्ताद ईसा आस्टिन डी बोरडो का ही उपनाम था। परन्तु यह तर्क नितान्त निराधार है, क्योंकि उस्ताद ईसा का पूरा नाम मुहम्मद ईसा इक़न्दी था। वह रोम तथा शीराज़ का रहने वाला था। इसका लडका भी समरक़न्द का रहने वाला था। फलतः स्लीमैन साहब का यह विचार कि उस्ताद ईसा आस्टिन डी बोरडो का ही नाम था, बिल्कुल ग़लत है।

दूसरा विचार आगस्टीनियन फ़ायर फ़ादर मैनरिक नामक सज्जन का है, जो शाहजहाँ के समय में भारत आए थे। आप लिखते हैं कि ताज का बनाने वाला एक इटेलियन मिस्त्री था और उसका नाम जेरोनीमो वेरोनियो (Geronimo Veroneo) था। इस विचार के समर्थक मि० स्मिथ और फ़ादर हॉस्टिन भी हैं। आप लोगों की राय है कि जेरोनीमो वेरोनियो का नाम फ़ारसी इतिहास-लेखकों ने जान-बूझ कर नहीं लिखा है। इसका कारण यह है कि ये इतिहास-लेखक भारतीय कारीगरों की प्रशंसा चाहते थे। इस विचार के लोगों का कहना है कि इस सम्बन्ध में मैनरिक साहब का कहना ही सत्य माना जाना चाहिए। क्योंकि मैनरिक साहब मुमताज़महल के पिता आसफ़ज़ाँ के बड़े प्रिय मित्र थे और उन्हें सब समाचारों का भली-भाँति पता भी रहता था। इसके सिवा जेरोनीमो वेरोनियो की मृत्यु ताज के बन कर तैयार होने के पहले ही हो चुकी थी और उस्ताद ईसा जेरोनीमो वेरोनियो के बाद नियुक्त किया गया था। इसी से मुसलमान इतिहास-लेखकों ने जेरोनीमो वेरोनियो का नाम बिल्कुल उड़ा दिया। इसके अतिरिक्त जेरोनीमो वेरोनियो की क़ब्र अब भी आगरे में मौजूद है, जिसमें १६४० ई० की तारीख़ पढ़ी है। इन लोगों का

यह भी कथन है कि यद्यपि ताज की बनावट यूरोपियन नहीं है तो भी विन्सेण्ट स्मिथ साहब लिखते हैं, बहुत मुमकिन है कि एक ख़तर यूरोपियन ने भारतीय कारीगरों की सहायता से ताज की बनावट भारतीय रखी हो।

परन्तु इन सब तर्कों को सर जॉन मार्शल तथा ई० बी० हैबेल ने ग़लत साबित कर दिया है। इनका कहना है कि मुसलमान इतिहास-लेखकों ने ताज के बनने का पूरा हाल लिख दिया है। ताज कैसे बना, कौन-कौन से कारीगर थे, कैसी सामग्री लगी, कहाँ की सामग्री और किस मूल्य की थी, यहाँ तक कि तमाम हिन्दू-मुसलमान कारीगरों के नाम भी लिखे हैं। इसलिए यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि फ़ारसी ऐतिहासिकों ने जान बूझ कर यूरोपियन कारीगरों का नाम उड़ा दिया होगा। दूसरे, इमारत भर में कहीं यूरोपीय भवन-निर्माण-कला का चिन्ह भी नहीं है। यदि ताज के बनाने वाले यूरोपियन कारीगर होते तो इमारत में अपने देश की कला को कहीं न कहीं अवश्य स्थान देते। परन्तु उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे यूरोपीय कहा जा सके। यहाँ तक कि पच्चीकारी का काम तक फ़ारसी ढ़ङ्ग का हुआ है। वास्तव में ताज की बनावट हुमायूँ बादशाह के मक़बरे से, जो दिल्ली में है, नक़ल की गई है। इसके बनाने वाले हिन्दू तथा मुसलमान कारीगर थे और इस सम्बन्ध में जेरोनीमो वेरोनियो का नाम तक नहीं है। सम्भव है कि इस सम्बन्ध में मैनरिक साहब को झूठी ख़बर मिली हो और उसीके आधार पर उन्होंने उपर्युक्त बातें लिखी हों। मैनरिक साहब आसफ़ज़ाँ के मित्र थे और सब समाचारों का पूरा पता रखते थे। परन्तु यह भी सम्भव है कि उन्हें ग़लत ख़बर मिली हो या जेरोनीमो वेरोनियो कोई मामूली कारीगर रहा हो और मैनरिक साहब ने अपने देश-भाई की प्रशंसा करने के ख़याल से उसका नाम अपने इतिहास में लिख दिया हो।

ताजमहल को देखने से यह पूरा पता चलता है कि यह इमारत भारतीय कला का निदर्शन है। इसके मुक़ाबले का कोई और ताज या कोई और मुसलमानी इमारत भी नहीं है। इसकी सुन्दरता और बढ़ता से मालूम होता है कि यह भारतीय इमारत है। क्योंकि

सुन्दरता और हृदयता भारतीय इमारतों की खास पहचान है। ताज के चारों ओर पञ्च-रत्न बने हुए हैं और यह पञ्च रत्न ग्यारहवीं शताब्दी के जावा (Java) के मन्दिर में पाए जाते हैं। ताज का गुम्बद, जिसे Bulbous dome अर्थात् कमल-रूपी गुम्बद कहते हैं, बौद्धों के समय का है। ऐसे गुम्बद बौद्ध-काल में बहुत बना करते थे। इसके कमल-रूपी चोटी तथा कजरा, जो चोटी पर है, हिन्दू 'डिज़ाईन' की खास पहचान हैं।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें हैं, जिनसे ताज भारतीय नमूने का मालूम होता है। ताज में बहुत सी बातें बीजापुर की प्रसिद्ध इमारत इब्राहीम-रौज़ा से नकल की गई हैं—जैसे ताज का गुम्बद, कब्र के चारों ओर जालीदार परदा और उसमें जाली का काम और ताज में चारों ओर चार मीनारों इत्यादि। इसमें पीएटरा डियुरा (Pietra Dura) का काम भी 'परशियन डिज़ाईन' में है और इसे कन्नौज के हिन्दू कारीगर छेदीलाल-चिरञ्जीलाल और मन्नालाल ने बनाया था। इसमें फ़ारसी की नस्तालीक़ लिखावट भी ईरानी ढङ्ग की है, जिसे शीराज़ तथा बग़दाद के कारीगरों ने लिखा था। इसके मीनार अरबी ढङ्ग के हैं। अलावा इसके इस इमारत की सरलता और पवित्रता

से सारासैनिक बनावट का पता चलता है। कुछ लोगों का विचार है कि पीएटरा डियुरा का काम इटेलियन डिज़ाईन का है। परन्तु वास्तव में यह फ़ारसी डिज़ाईन का है और इसे हिन्दू-कारिगरों ने बनाया था।

इन सब कारणों से यह विदित होता है कि ताज के बनाने वाले भारतीय कारीगर थे और ताज भारत का है। जो लोग इसके विरुद्ध विचार करते हैं, वे ग़ज़ती पर हैं। जनवरी सन् १९३३ ई० में मिस्टर पोप (Mr Pope) ने इण्डियन सोसाइटी (लण्डन) के सामने भाषण करते हुए कहा था कि यह विचार कि ताज के बनाने वाले इटेलियन कारीगर थे, अब केवल स्वप्न को कहानी है। और यह विचार कि जो कुछ भी सुन्दर वस्तु है, वह यूरोप ही की बनी हुई है, या जो कुछ भी विचित्र तथा अद्भुत वस्तु है वह यूरोप ही से आविष्कृत होती है, असत्य है। इसलिए मिस्टर स्लीमैन तथा फ़ादर मैनरिक का विचार यूरोप के कारीगरों के सम्बन्ध में बिल्कुल ग़लत है। ताज भारत का है। इसके बनाने वाले भारतीय कारीगर थे। यह भारत की एक उत्कृष्ट इमारत है जिसके मुकाबले में दुनिया में और कोई इमारत नहीं है।

नव-वधू के प्रति—

[श्री० चन्द्रनाथ मालवीय 'वारीश']

जीवन की पहिली सीढ़ी पर,
चढ़ने आई हो देवी ।
रति-सी पतिरत हो जाना तुम,
कुन्ती-सी कुटुम्ब-सेवी ॥

दमयन्ती-सी दीक्षिमयी तुम,
सती-श्रुती हो सीता-सी ।
पुण्य प्रेम की प्रतिमे । बन जाना,
पति-चरणों की दासी ॥

लेकर सारी शान्ति आज तुम,
शान्ति-निकेतन की हे शान्ति ।
भव्य-भावनाएँ भर देना,
भूरि भगा कर तुम कुल शान्ति ॥



चाँदनी रात में

[श्री० प्रमोद]

स्वर्ण किरण,

मैंने मैस्मरिज़्म के खेल बहुत देखे हैं। बड़े से बड़े जादूगर के हुनरों की करामात खूब देखी है। वे अक्सर बच्चों को, अपनी आँखों से देख कर, उन्हें बेहोश कर देते हैं। कब तक के लिए? कुछ घण्टों के लिए। परन्तु मैं यह कहने का साहस कैसे करूँ कि तुमने मेरे ऊपर उसी तरह का मैस्मरिज़्म कर दिया? क्यों? इसलिए कि जिन बच्चों के ऊपर मैस्मरिज़्म का प्रयोग किया जाता है, उनमें और मुझमें बहुत अन्तर है। दोनों की दशा एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। वे बच्चे, जिनके ऊपर मैस्मरिज़्म का प्रयोग किया जाता है, कुछ घण्टों के लिए ही अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। परन्तु यहाँ तो कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि ज़िन्दगी भर के लिए, अपनी सुध-बुध भूल कर मैं दुनिया के सब बखेड़ों से छुड़ी पा गया! अपना, बिराना, भला, बुरा, लाभ-हानि, मानापमान सभी कुछ, तुम्हें देख कर एकदम भूल गया। मेरी इस बेखुदी का यादे-गुल में क्या ठिकाना है, उठी जब आशियाँ से आग तब समझा बहार आई।

अभी थोड़े दिन की बात है। चाँदनी रात थी। आकाश के वक्षःस्थल पर चन्द्रमा खिलखिला कर हँस रहा था। वासन्ती बयार के झोंके शरीर के रोम-रोम में अद्भुत स्पन्दन पैदा कर रहे थे। अचानक तुमने कह दिया—तबीयत नहीं लगती, मैं जाती हूँ।

तुम्हारे जाने का नाम सुन कर मेरे हृदय में हलचल मच गई। मैं तरह-तरह की बातों से तुम्हारा जी बहलाने की कोशिश करने लगा। थोड़ी देर के बाद तुम बोल उठी—अच्छा, ज़रा शरद बाबू को बुला दीजिए!

तुरन्त ही मैंने साहकिल उठाई और शरद बाबू के मकान की ओर चल दिया। एक के बाद दूसरी कितनी ही गली-कूचों को पार कर, मैं ढ़ँदते-ढ़ँदते शरद बाबू के मकान पर जा पहुँचा। एक पड़ोसी ने कहा—बाबू अभी हाल ही किसी दोस्त के साथ कहीं बाहर गए हैं। मैं फ़ौरन ही तुम्हारे बसाए हुए एक दूसरे मकान पर जा पहुँचा। वहीं वे मिल गए। इधर-उधर की बातें

करने के बाद मैंने उनसे कहा—आप फ़ौरन मेरे साथ चलिए, आपको किरण याद कर रही है।

शरद बाबू बड़े सझोच के साथ बोले—आजकल मेरा इम्तिहान हो रहा है। घर पर एक साथी को पढ़ने को बुलाया है। वह मेरी प्रतीक्षा में बैठा होगा। उसके साथ आज रात को मुझे बहुत पढ़ना है। आप 'किरण' से कह दीजिएगा कि इस वक्त मुझे चमा करें। हाँ, कल सवेरे ही मैं आकर उनसे ज़रूर मिलूँगा।

मैंने तुमसे शरद बाबू का सन्देशा कह दिया। तुरन्त ही तुम्हारे मुँह से निकल पड़ा—“अरे,..... लोग बड़े नीच होते हैं!” मैं तुम्हारी इस मनोवृत्ति को देख कर अवाक् रह गया। मन ही मन मैं सोचने लगा—आखिर, यह मामला क्या है? जिसके देखने के लिए तुम इतनी व्याकुल हो रही हो, उसके न आने पर, तुम अपने यौवन के उन्माद में क्या अनर्गल प्रलाप कर रही हो! जो तुम्हारी इच्छा के इशारे पर नाच सके, वह तो तुम्हारे लिए चण भर को देवता है और जो तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध ज़रा भी सर उठाने का साहस करे, वही, हाँ सचमुच वही, 'नीच' है! प्रेम के नाम पर किया गया यह तथा दो-चार अवसरों पर मेरे सामने किए गए अग्र्य अभिनय, मेरी आँखें खोल देने के लिए सचमुच बहुत काफ़ी थे! परन्तु मेरे ऐसे दीवाने, जो आत्म-विस्मृति के आनन्द में डुबकी लगा कर, अपनी आँखें सदा के लिए बन्दग्राय कर चुके हैं, इस प्रकार की घटनाओं से भी सावधान होना नहीं जानते!

हम लोग लगातार दो घण्टे तक बातें करते रहे। घड़ी की तरफ़ आँख उठा कर देखा, तो रात के ११ बज रहे थे। तुम्हारी बातों में मैं खाना-पीना सब भूल गया था। आखिर हाथ-मुँह धोकर हमने थोड़ा दूध पिया और फिर बातें करने लगे। पड़ोस की कुछ स्त्रियाँ ढोलक पर एक गीत गा रही थीं। तुम बड़े ध्यान से सुनने लगीं। मैंने कहा—यह गीत तो पूरा मुझे याद है। ये स्त्रियाँ तो शलत-सलत गा रही हैं, इनके बन्द हो जाने पर मैं तुम्हें ठीक रूप में वही गीत गाकर सुनाऊँगा।



तुम दर्द-भरी कविता बड़े चाव से पढ़ती हो। आज तुम पड़ोस की छियों का गीत सुन कर मन ही मन मुग्ध हो रही थीं। तुम्हारा स्वभाव ललित-कला-प्रिय है। साहित्य और सज्जीत में तुम्हारी अभिरुचि है। कुछ समझ भी लेती हो। वह दूसरी बात है कि तुम्हें इन कलाओं का वास्तविक ज्ञान नहीं है और इसीलिए तुम इनकी परख भी नहीं कर सकतीं।

पड़ोस की छियों का गाना बन्द होने पर मैं धीरे-धीरे गाने लगा :—

पिया डोली मँगा दे दुल्हन के लिए,
जिया तड़पै है तोरे मिलन के लिए।
जैसे तड़पै विदेशी वतन के लिए,
वैसे तड़पै है सजनी सजन के लिए।
मोरे बालों पै कैसी सफेदी हुई,
पैगाम अजल का न आए कहीं।
तुझसे भूठ न कहती थी सुन री सखी,
देख, आए बराती लिबन के लिए।
मोरी मैके में सारी जवानी कटो,
अब मैं बूढ़ी हुई पी के देश चली।
जब राह में पहुँची तो याद हुआ,
कोई तोहफा न लीन्हा सजन के लिए।
तोरी सुनगुन 'अहमद' जो पाती कहीं,
तो मैं दौड़ी हुई चली आती वहीं।
तोरे चरणों की खाक जो पाती पिया,
तो मैं सुरमा बनाती नयन के लिए।

तुमने मेरा गीत बड़े ध्यान से सुना। गीत में 'सुरमा' शब्द का प्रयोग सुन कर तुम बहुत ही प्रसुद्धि हुई। ईश्वर ने सचमुच तुम्हें बड़ा दर्द-भरा, किंतु साथ ही अत्यन्त कठोर, दिल दिया है। तुम्हारा वह दर्द-भरा दिल एक बार मेरे कलेजे की पीड़ा का अनुभव कर फूट पड़ा था। मेरी व्यथा का अनुभव करके, तुम्हारी आँखों से आँसुओं का झरना उमड़ पड़ा था। बस, तुम्हारी आँखों के उमड़ते हुए झरने की अविरल गति ही ने मेरे जीवन को सबसे अधिक प्रभावित कर दिया। इसी से, हाँ, सचमुच इसी कारण मैं तुम्हारा हो गया।

अपने अब तक के जीवन में मैंने कितनी चाँदनी रातें देखी हैं, इसका कुछ हिसाब नहीं है। कितनी

चाँदनी रातें रोते और कितनी हँसते हुए कटी हैं, यह भी याद नहीं है। परन्तु उस दिन की चाँदनी रात में, जिस दिन तुम मेरे पास थीं, जो सुख था, जीवन को प्रेमी और प्रेमिका के सम्मिलन की मादक मदिरा के नशे में सराबोर कर देने का जो आनन्द था, उसका इससे पहले मैंने कभी अनुभव किया ही नहीं। और कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि वैसा आनन्द अब शेष जीवन में कभी आवेगा भी नहीं, और सचमुच वह मेरे और तुम्हारे हृदयों के पारस्परिक सम्मिलन के सुख का अन्तिम दिन था।

अरे, मैं क्या कह रहा हूँ? यदि मेरे प्रेम में सच्चाई होगी, मेरे हृदय में शुद्ध और निष्कपट प्रेम की झलक होगी, यदि मैंने तुम्हारा जीवन नष्ट कर देने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की होगी, यदि मेरे अन्दर निर्मल अतुराग की ज्योति जग रही होगी, यदि मेरे अन्तस्तल में तुम्हारी मञ्जुल मूर्ति अपनी अखण्ड सत्ता जमाए बैठी होगी, यदि मेरे अन्तःकरण में जीवन के अन्तिम क्षण तक तुम्हारे विशुद्ध प्रणय की भाग में जलते रहने की आकांक्षा होगी, यदि मेरे मन में अन्तिम श्वास तक तुम्हारे साथ रहने, और तुम्हारे प्रेम की निस्पृह साधना में संलग्न रहने की सच्ची लगन होगी, तो दुनिया में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो तुम्हें मुझसे अलग करके रख सके। आज मैं इस बात को बड़ी दृढ़ता से फड़ने का साहस करता हूँ कि यदि मेरे अन्दर तुम्हारे लिए प्रेम की ज़रा भी झलक होगी, तो तुम जहाँ कहीं होगी वहीं से बरबस मेरे हृदय के निकट खिंच आओगी।

मैंने प्रेम के नाम पर कभी किसी के प्राणों के साथ खिलवाड़ करने की छटता नहीं की। तुम्हारी मधुर स्मृति को मैंने कितनी कठिनता से, कितनी वेदना से, कितनी जुगुति से, अपने अन्तःप्रदेश के कोने में संभाल कर रख छोड़ा है, यह आज कहने की बात नहीं है। यह बात तो मेरे जीवन के अन्त में, प्रेम-तत्त्व के पारखी लोग ही पहचान सकेंगे।

हाँ, तो उस दिन की चाँदनी रात, उस दिन की वासन्ती समीर और घण्टों तक तुम्हें अपने हृदय से लगाए रखने की मधुर स्मृति जीवन को अन्तिम क्षण तक हरा रखने के लिए काफ़ी है। उस दिन तुमने आह

भर कर एक बात बड़ी मर्मभेदी कह डाली। उस बात से सचमुच मैं सिहर गया। वह बात कहते हुए, तुम्हारी आँखों से मोती के सदृश आँसुओं की दो बूँदें मेरी बाँह पर गिर पड़ीं! तुमने स्पष्ट कह डाला कि मैंने तुम्हें अलग रख छोड़ने का अपराध किया है, इससे तुम बहुत दुखी रहती हो! परन्तु क्या कभी तुमने स्वप्न में भी सोचने का कष्ट उठाया कि यह बात बिल्कुल असम्भव है कि तुम मेरे साथ रहने को तैयार हो और मैं तुम्हारी इस बात से सहमत न हो सकूँ?

मैं जहाँ तक तुम्हें जान सका हूँ, वहाँ तक यह कहने का पूरा हक रखता हूँ कि तुम कभी अपने एक विचार पर हट नहीं रह सकती। तुम सुसीवत-जड़ हो। बहुत कुछ सुसीवतों तो तुम अपने स्वभाव से, अपने अल्हड़पन से, ज़बर्दस्ती मोल ले लेती हो। तुम्हारी वृत्ति मधुकरी है। वह बड़ी जल्दी सांसारिक पुष्पों के सौन्दर्य-सौरभ के सुख में रम जाती है, पर तु उस समय वह यह बात बिल्कुल भूल जाती है कि मधुमय पुष्प-दल में कोई मक्खी या कीड़ा हो सकता है, जो उसका रसास्वादन करते ही डङ्क मार कर भयङ्कर पीड़ा उत्पन्न कर देगा। सचमुच सांसारिक सुखों का यही हाल है।

कुछ लोगों के विश्वासघात के कारण तुम्हारा दिल टूट चुका है। उस विश्वासघात का बदला भी तुम जी भर कर ले चुकी हो। परन्तु तुम्हारे अन्दर सचमुच भले-बुरे को परखने की विवेक-बुद्धि नहीं है। तुम किसी चीज़ को महज़ ऊपरी कारणों से परखती हो; और जब अपना निर्णय शलत होने के कारण धोखा खाती हो, तब दुनिया के सर पर विश्वासघात का भारी झकड़ा लादती हो! तुलनात्मक बुद्धि का विकास न होने के कारण तुम बड़ी जल्दी किसी आदमी को अपना मित्र या शत्रु बना लेती हो। अपनी जल्दबाज़ी के कारण बाद में तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है। मैं समझता हूँ कि भयङ्कर से भयङ्कर भूलों के लिए अपने जीवन तक को सर्वनाश की तराजू पर चढ़ा कर, तुम्हें बहुत तेज़ क्रीमत चुकानी पड़ी है।

एक तरफ़ तो तुम यह भी कहती हो कि मैंने तुम्हें अलग रख छोड़ा है, अन्यथा तुम एक पल को भी मुझे नहीं छोड़तीं। दूसरी ओर, ईश्वर को साक्षी देकर मुझे

तुम भुला भी चुकी हो!' तुम्हारी इन दोनों बातों में कितना विरोधाभास है, इसे तुम स्वयं सोच लो। तुम्हारी मनोवृत्ति सचमुच बहुत ही विचित्र है। तुम किसी के बन्धन में नहीं रहना चाहती। 'पूर्ण स्वतन्त्रता' का आदर्श तुम्हारे सामने है। इसी सनक में, शायद तुमने अपने परिवार से सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। घर-गृहस्थी को तुम एक ज़बर्दस्त बन्वन समझती हो। जिस व्यक्ति को तुम अपना सब कुछ दे चुकी हो, उसकी भी आर्थिक सहायता लेना पाप समझती हो। तुम तो निर्भय होकर, जहाँ जिस प्रकार जी चाहे वहाँ विचरना चाहती हो। दुःख है कि जीवन का सर्वनाश करने वाली स्वच्छन्दता की सनक में तुम यह तक भूल जाती हो कि प्रेम के मार्ग में पैर रखना ही बन्धन है, और यह ऐसा ज़बर्दस्त बन्धन है, जिसको तुम तो क्या, कोई भी व्यक्ति कभी तोड़ नहीं सकता। शर्त यह है कि प्रेम में सचाई हो, प्रेम के आदर्श को निभाने की लगन हो। आज एक को अपना साथी बनाया, कल ही उससे झगड़ा करके, दूसरे के साथ लय भर के लिए मौन उड़ा ली, इस प्रकार लय-लय में कली-कली का रस लेने की मधुकरी-वृत्ति को मैं प्रेम के पवित्र नाम के साथ कदापि सम्मिलित नहीं करूँगा। यह प्रेम नहीं, प्रेम के नाम पर किया जाने वाला, विलासिता के रङ्ग-मञ्च पर पाप का पटाचेप है, जो दुनिया को थोड़ी-थोड़ी देर में नये-नये दृश्य दिखाने की सूचना देता है! इस प्रकार पाप-पङ्क में फँसे हुए लोग प्रेम नहीं, प्रेम के नाम पर अभिनय करने में, दूसरों के साथ विश्वासघात करने की कलुषित कला में, बड़े निपुण होते हैं।

आजकल हमारे देश में शिश्चित देवियाँ घर-गृहस्थी को एक बला समझने लगी हैं। तुम पर भी यही सनक सवार है। तुम भी अपने आपको सांसारिक बन्धनों से दूर रखने की क्रायल हो। बात तो बड़ी अच्छी है। आज्ञादी की चाह तो सचमुच बड़ी भीठी है। आदर्श तो बहुत ऊँचा है। यदि किसी के दिल में आज्ञादी के ऊँचे आदर्श तक पहुँचने की लगन लगी हो, तो दुनिया में कोई ताक़त उसे बाँध कर नहीं रख सकती। परन्तु यह बात जितनी आसानी से कह दी जाती है, उतनी आसानी से अमल में नहीं लाई जा सकती।

मीरा को सांसारिक बन्धनों से घृणा थी। उसने राजसी वैभव को एक क्षण में ठुकरा दिया। राजभवनों की बेड़ी उसे सांसारिक मोह-माया और शान-शौकत के झूठे और निस्सार बन्धनों में बाँध कर नहीं रख सकी। वह निर्द्वन्द्व हो गई और अपने उज्ज्वल आदर्श तक पहुँचने की साध में धिरक-धिरक कर नृत्य करके गाने लगी—
हे री, मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी केहि विधि सोना होय।
गगन-मँडल पै सेज पिया की केहि विधि मिलना होय ॥

जिस आदर्शवादिनी परम तपस्विनी ने जान-बूझ कर शूली के ऊपर अपनी सेज बिछा दी हो, उसे भला सांसारिक मोह-ममता के कलुषित बन्धन बाँध कर रख ही कैसे सकते हैं? घर-गृहस्थी के झुंझट से विरत होते हुए मीरा का जीवन संसार की कलुषित भावनाओं से बिल्कुल मुक्त था। उसके हृदय में अपने ऊँचे और पुनीत आदर्श तक पहुँचने के लिए त्याग और तपस्या की वह आग जल रही थी, जिसमें तप कर मानुस का मिट्टी का पुतला सचमुच नर से नारायण के रूप में परिणत हो जाता है। परन्तु मीरा का जीवन उच्छुद्धल नहीं था। उसके जीवन का प्रत्येक क्षण जीवन को ऊँचे उठाने वाले अद्भुत संयम, त्याग और तपस्या के दृढ़ सूत्र में बँधा हुआ था। जीवन का सर्वनाश करने वाली स्वच्छन्दता तो मीरा के पास तक नहीं फटकी थी। स्वच्छन्दता की घातक वृत्ति के प्रबल प्रवाह में बहने के लिए तो उसके पास तनिक भी समय नहीं था। वह तो प्रति क्षण गिरधर गोपाल की उत्कट भक्ति के अनिर्वचनीय आनन्द में सराबोर रह कर गान करती थी :—

दरस बिनु दूखन लागे नैन।

जब से तुम बिछुरे मोरे प्रभुजी, कबहुँ न पायो चैन।

यही कारण है कि आज सैकड़ों वर्ष के बाद भी समस्त विश्व परम तपस्विनी मीरा के नाम पर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से मस्तक झुकाने में अपना गौरव समझता है।

तुम यह क्यों भूल जाती हो कि दुनिया में जन्म लेना ही एक बन्धन है? जब तक तुम जीवित रहोगी, तब तक किसी न किसी नियम के बन्धन में तुम्हें

जकड़ना ही पड़ेगा। बिना किसी प्रकार के नियम के बन्धन में जकड़े जीवन नियमित रूप से सफ़लतापूर्वक नहीं बिताया जा सकता। संयम-नियम के बन्धन में बाँधे बिना जीवन उच्छुद्धल हो जायगा। उच्छुद्धलता जीवन के लिए आत्म-घातक है। यदि तुम चाहेली हो कि तुम्हारा जीवन पवित्र और ऊँचा बने, तो उसे कर्तव्य की मजबूत डोरी से बाँध कर रखना पड़ेगा, उसे पवित्र आदर्श के बन्धन में बाँधना पड़ेगा, अन्यथा स्वच्छन्दता के प्रवाह में पड़ कर, वह निरर्थक और निस्सार बन जायगा। इस दशा में वह दुर्लभ मानव-जीवन, जो किसी ऊँचे उद्देश्य को पूरा करने की पवित्र साधना में लगाना चाहिए, सर्वनाश के गहरे गर्त में गिर कर विनष्ट हो जायगा!

हाँ, तो उस दिन चाँदनी रात में घण्टों हम लोग घुल-मिल कर बातें करते रहे। अन्त में एक साधारण सी हँसी की बात मेरे मुँह से निकल गई। बस, तुम्हारे दिमाग का पारा ठीक १०८ डिग्री पर जा पहुँचा। तुरन्त ही तुम मेरे पास से यह कह कर उठ खड़ी हुई—
घमण्ड बहुत हो गया है। अगर इस घमण्ड को मिट्टी में न मिला दूँ, तो मेरा नाम नहीं! मुझे उस समय नींद का झोंका आ रहा था, परन्तु फिर भी एक बात तो कह ही दी थी! जब तुम मेरे कमरे से उठ कर दूसरे कमरे में जा लेटों, तब सचमुच मेरी नींद काफ़ूर हो गई! उस वक्त मुझे मालूम हुआ कि मैंने बड़ी आसानी से कितनी भारी बात कह कर तुम्हारी सोई हुई क्रोधाग्नि प्रज्वलित कर दी।

मैं पुकारने लगा—किरण, किरण! परन्तु किरण, मेरे जीवन को अपने प्रकाश-पुञ्ज से जगमगा देने वाली किरण, न बोली! वह अपना मुँह कम्बल में छिपाकर सो रही! अब मैं क्या करता?

अपने पल्लंग से उठ कर मैं पागलों की भाँति झूत पर घूमने लगा। आकाश में चन्द्रदेव अपनी पूर्ण कला के साथ खिलखिला कर हँस रहे थे। उनकी प्रकाश-किरणें भूतल पर अमृत-वर्षा कर रही थीं। परन्तु वह अमृत-वर्षा अब मेरे लिए बहरीली नौस से भी कहीं अधिक घातक हो गई! मैं पागल-सा विचिस होकर एक बार फिर पुकार उठा—किरण! किरण!! अरे, अब बात भी नहीं सुनोगे?



कुछ हमीं जानते हैं लुत्क तेरे कूचे के,
वरना फिरने को तो मल्लूके-खुरा फिरती है ।

× × ×

भूल सकता हूँ कहीं उनकी मुहब्बत के मजे,
मेरी आँखों में अब एक एक अदा फिरती है ।

तुम अपने पलंग पर कम्बल में मुँह ढाँके सो रही थीं। और मैं? मैं पागल बना हुआ छत पर घूम रहा था। कभी सोचता कि चुपचाप तिमझिजी छत से नीचे गिर पड़ूँ! मेरे धड़ाम से नीचे गिर जाने की आवाज़ सुन कर तो तुम ज़रूर उठोगी। फिर सोचता कि मेरी मृत्यु से तुम्हें सुख नहीं पहुँचेगा। इससे तो तुम्हारा दर्द-भरा दिल और भी दुखी होगा। तुम्हारे जीवन से सदा के लिए 'शान्ति' बिदा हो जायगी। फिर चाहे भले ही तुमने मुझे भुला दिया हो! अरे, नहीं, तुम मुझे भुला देतीं तो आज भी तुम मेरे लिए कोई भी ऐसी बात सहन करने के लिए हर्गिज़ तैयार न होतीं, जिसे कोई भी शीलवती हिन्दू-नारी अपने बहुमूल्य प्राणों की बाज़ी लगा कर भी कभी सहन नहीं कर सकती। यह सोचते ही मेरा पागलपन चश्म भर में दूर हो गया और मैं अपनी मसहरी में घुस कर चुपचाप पलंग पर जा सोया। ओड़ी देर के बाद निद्रादेवी ने थपकी देकर अपनी गोद में विश्राम दे दिया।

नींद में, कुछ घण्टे न जाने कब निकल गए। ज्योत्स्ना मन्द हुई और पवित्र ऊषा ने भूतल पर अपना स्नेहाञ्जल फैला दिया। मैं उठ कर गाने लगा—

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम्
सच्चित्सुखं परमहंसगतिम् तुरीयम् ।

यत् स्वप्नजागर सुषुप्तमवैति नित्यम् ।
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूत संघः ॥

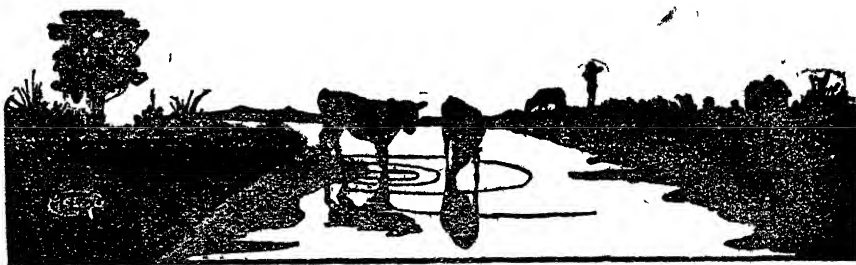
अर्थात्—प्रातःकाल अपने हृदय में संस्फुरित होने वाले आत्म-तत्त्व का मैं स्मरण करता हूँ। वह सद्-रूप, ज्ञानरूप और सुखरूप है। परमहंसों की वह अन्तिम गति है। वह चतुर्थ पद है। वह जागृति, स्वप्न और निद्रा, इन तीनों अवस्थाओं को निरन्तर जानता है। वह अखण्ड ब्रह्म मैं हूँ, पञ्च महाभूत-निर्मित शरीर नहीं हूँ।

प्रातःकाल प्रार्थना करने के बाद मैं उठ कर अपने नित्य-कर्म में लग गया। कुछ देर बाद तुम भी उठ कर नित्य-कर्म से निश्चिन्त हुईं। इतने ही में शरद् बाबू आ गए। तुमने अपने कपड़े सँभाल कर मुझसे केवल इतना कहा—यहाँ मेरी एक पुस्तक रखी हुई थी, वह कहाँ रख दी? मैं इसका उत्तर भी न दे पाया कि पुस्तक मिल गई। बस, तुरन्त ही तुम मुझे 'नमस्ते' करके शरद् बाबू के साथ चली गईं।

आज तुम मेरे पास नहीं हो। किन्तु उस दिन की चाँदनी रात की बासन्ती बयार के झोंकों के साथ मुझे तुम अपने मधुरालाप द्वारा जो असीम आनन्द प्रदान कर गईं वह अक्षय निधि के रूप में मैंने अपने अन्तस्तल के कोष में बहुत सुरक्षित रूप से सञ्चय करके रख छोड़ा है। किरण, वह आनन्द सचमुच मेरे लिए अमृत है। वह मुझे संसार में आनन्द के साथ जीवित रखने के लिए सजीवनी बूटी का काम देगा। ओह! उस दिन की चाँदनी रात कितनी सुखकर और कितने स्वर्गीय आनन्द से ओत-प्रोत थी।

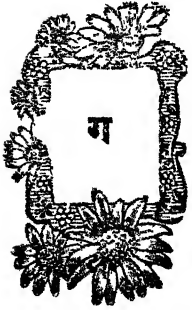
तुम्हारा वही,

—प्रमोद



ईश्वर की उत्पत्ति

[श्री० सत्यभक्त]



ताक में हमने बतलाया था कि किस प्रकार अपने पूर्वजों और विशेषतः सुप्रसिद्ध राजाओं तथा वीरों की प्रेतात्माओं की पूजा की प्रथा के फलस्वरूप मनुष्य के हृदय में देवताओं की कल्पना का उदय हुआ। पर उससे यह ज्ञात नहीं होता कि इन अगणित देवताओं सम्बन्धी विश्वास ने एकेश्वरवाद का रूप किस तरह धारण कर लिया। यद्यपि मनुष्य की कल्पना के अनुसार देवतागण अत्यन्त तेजस्वी, सामर्थ्यवान और अनेक प्रकार की अति-मानुषी (Superhuman) शक्तियों से सम्पन्न थे, तो भी वे इस मृत्युलोक के प्राणियों से सर्वथा भिन्न नहीं थे। मनुष्य जिस प्रकार का ऐश्वर्य तथा वैभव बड़े-बड़े राजाओं के यहाँ देखते थे और जिन शक्तियों तथा गुणों का अस्तित्व इहलोक के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में पाते थे, उन्हीं को बढ़ा-चढ़ा कर उन्होंने देवताओं तथा उनकी निवासभूमि स्वर्गलोक की कल्पना की थी। इन देवताओं का शरीर यद्यपि मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुषम माना जाता था तो भी वे शारीरिक कष्टों और बुधा-तृष्णा आदि इन्द्रियों का अनुभव करते थे। उनके वस्त्र पृथ्वी पर पाए जाने वाले बड़िया से बड़िया रेशमी वस्त्रों से भी बारीक तथा कोमल और उनका भोजन दिव्य स्वादयुक्त बतलाया जाता था। वे यद्यपि मनुष्यों की भाँति अल्पायु नहीं समझे जाते थे, तो भी किसी काल में उनका अन्त होना माना जाता था और अपने से अधिक शक्तिशाली देव द्वारा वे मारे भी जा सकते थे। मनुष्यों की अपेक्षा उनकी क्षमता बहुत अधिक थी, पर तो भी कुछ बातें ऐसी आ पड़ती थीं जो उनकी सामर्थ्य से बाहर होती थीं और उनके लिए वे अपने उपासकों को अपने से बड़े देवता से प्रार्थना करने

को कहते थे। परन्तु इसके विपरीत ईश्वर को अजर-अमर, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, अव्यक्त, अज्ञेय, निराकार आदि विशेषणों से संयुक्त बतलाया गया है जो इस मृत्युलोक में पाई जाने वाली वस्तुओं के स्वभाव से सर्वथा भिन्न है। जब हमारी पृथ्वी ही, जिस पर समस्त प्राणियों और नदियों, पहाड़ों, समुद्रों तक का आधार है, अजर, अमर और अज्ञेय नहीं है तो अन्य पदार्थों की क्या चर्चा। इसलिए स्वभावतः ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वे कौन से कारण थे जिनसे मनुष्य के विचारों में परिवर्तन होते-होते ईश्वर के सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ और वह बहुदेववादी से एकदेववादी बन गया।

भारतवर्ष और बहुदेववाद

पश्चिमी विद्वानों के मतानुसार एकदेववाद के आविष्कारक यहूदी लोग हैं। हम जानते हैं कि हमारे अनेक पाठक और ज्ञास कर अपने को वैदिक मतावलम्बी कहने वाले इस कथन पर बहुत माक-भौं सिको-वेंगे और कुछ लोग विद्रूपमयी हँसी से इसके प्रति तिरस्कार का भाव प्रकट करेंगे। वे कहेंगे कि इस वेद और उपनिषदों की जन्मभूमि से पहले एकदेववाद अथवा एकेश्वरवाद का आविष्कार करने का दावा कौन देस अथवा कौन जाति कर सकती है! हमको यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं है कि उपनिषदों और अन्य कितने ही धार्मिक ग्रन्थों में ईश्वर के स्वरूप की जो विवेचना की गई है उसकी तुलना किसी अन्य जाति के ग्रन्थों में मिल सकना असम्भव है। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि इस भूमि में सदा से ऐसे विद्वान् और ऋषि-मुनि होते आए हैं जो एकेश्वरवाद की चरम सीमा तक पहुँच गए थे। पर इन बातों से यह सिद्ध नहीं होता कि इस देश की जनता अथवा साधारण लोग एकेश्वरवादी हैं अथवा उन्होंने ईश्वर के निराकार और अव्यक्त स्वरूप को अन्य धर्म वालों की अपेक्षा अधिक हृदयङ्गम कर लिया है। यदि हम वर्तमान दशा पर ध्यान दें तो वहाँ



की जनता अथवा यहाँ के सौ निवासियों में से ९९ व्यक्ति धर्म की दृष्टि से आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के जङ्गलियों से किसी तरह श्रेष्ठ नहीं कहे जा सकते। वे केवल बहुदेववादी ही नहीं हैं, वरन् पहाड़, नदी, पेड़, पत्थर, गाय, बन्दर, सर्प आदि अनेक चैतन्य और अचैतन्य पदार्थों की पूजा करते हैं। जङ्गली लोगों की भाँति इस देश में भी जादू-मन्त्र पर बहुत अधिक विश्वास किया जाता है और इस सम्बन्ध में अनेक मामले तो अदालत तक पहुँचते हैं। कोई बीमारी होने पर यहाँ की देहाती और शहरों की भी बहुत सी स्त्रियाँ झाड़ू-फूँक करने वाले ओम्भा अथवा स्याने पर जितना विश्वास रखती हैं उतना बड़े से बड़े डॉक्टर या वैद्य पर भी नहीं रखतीं। भूत और प्रेतों के क्रिस्ते यहाँ घर-घर सुनने में आते हैं और थोड़े लोग ही ऐसे हैं जो उनसे भयभीत नहीं होते। इन अन्ध-विश्वासों और बहुदेववाद को मिटा कर एकदेववाद के प्रचार करने की चेष्टा इस देश में अनेक वर्षों से हो रही है, पर अभी तक उसमें विशेष सफलता हुई नहीं जान पड़ती। कबीर, गुरु नानक, राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द ने समय-समय पर बहुदेववाद के विरुद्ध आवाज़ उठाई, पर उनका प्रभाव कुछ ही लोगों पर पड़ा और उनमें से प्रत्येक का एक अलग सम्प्रदाय बन गया। साधारण जनता पूर्ववत् ही अन्धविश्वासों में फँसी रही और उसके प्रभाव से एकेश्वरवादी सम्प्रदायों वाले भी कुछ अंशों में बहुदेववादी बने रहे। यदि यह कहा जाय कि यह बहुदेववाद पौराणिक काल से फैला है, उससे पहले उसके यहाँ के निवासी एकेश्वरवादी थे, तो यह भी संशयार्थक है। क्योंकि वैदिक काल में जिन यज्ञों का विशेष रूप से प्रचार था और जिनमें विभिन्न देवताओं के नाम पर आहुतियाँ दी जाती थीं उनका सम्बन्ध एकेश्वरवाद से जोड़ देना कठिन है। कहने के लिए तो यहाँ किसी समय अनीश्वरवाद का भी खूब प्रचार था और बृहस्पति, चार्वाक आदि उसके बड़े-बड़े आचार्य थे, पर इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि किसी समय भारतवर्ष अनीश्वरवादी भी था। वर्तमान समय की सभा-समाजों या सम्प्रदायों की भाँति इसके भी दस-बीस लाख अनुयायी हो गए होंगे, पर यह सोचना कि साधारण जनता कभी इस गहन

सिद्धान्त को समझ सकी होगी, कष्ट-करपना जान पड़ती है।

यहूदियों का प्राचीन धर्म

यहूदियों के सम्बन्ध में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे कभी बहुदेववादी थे ही नहीं अथवा उस धर्म के संस्थापक आरम्भ ही में एकेश्वरवाद के सिद्धान्त पर पहुँच गए थे। वास्तव में यहूदियों का एकेश्वरवाद धार्मिक विचारों के क्रमशः विकास का एक सुन्दर उदाहरण है और उससे विदित होता है कि किस प्रकार सामाजिक उथल-पुथल और राजनीतिक घटनाओं का प्रभाव लोगों के धार्मिक विश्वासों पर पड़ता है। यों तो आजकल यहूदी विद्वान भी हमारे देश के वेदानुयायियों की भाँति यह सिद्ध करने का प्रयास किया करते हैं कि एकेश्वरवाद का सिद्धान्त उनके आदि पुरुष अब्राहम का ही स्थिर किया हुआ है। वे यह भी कहते हैं कि आरम्भ में समस्त संसार एक ईश्वर (यहूदियों के ईश्वर जेहोवा) की ही पूजा करने वाला था और बहुदेववाद का सिद्धान्त बाद में संसार में अष्टता और मूर्खता बढ़ने पर फैला है। उनका यह कथन ठीक उसी प्रकार का है, जिस प्रकार हमारे यहाँ के सीधे-सादे लोग कहा करते हैं कि आरम्भ में समस्त संसार वेदानुयायी था, सब लोग ज्ञानी और धर्मात्मा थे और पाप का कहीं चिन्ह भी न था। पर इस प्रकार की बातें विकास के सिद्धान्त की कसौटी पर सर्वथा अमपूर्ण सिद्ध होती हैं। कोई भी निष्पक्ष और विवेकशील व्यक्ति इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि एकेश्वरवाद का सिद्धान्त किसी एक व्यक्ति ने एक समय में अपने हृदय से स्थिर कर लिया होगा। इस प्रकार का विचार उन तमाम मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के विरुद्ध है, जो आज तक मालूम किए गए हैं।

यहूदियों के इतिहास की खोज करने वाले विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में ये लोग तीन प्रकार के देवताओं की पूजा करते थे। प्रथम प्रकार के देवता गृह-देवता अथवा उनके पूर्वज थे, जिनको 'टैरेफ़िम' कहा जाता था। दूसरे देवता कई प्रकार के पत्थर थे। तीसरी श्रेणी में कुछ बड़े-बड़े देवता थे, जिनमें से किसी की पूजा पशु के रूप में और किसी की सूर्य आदि आकाशस्थ पिण्डों के रूप में की जाती थी।

गृह-देवताओं की पूजा के लिए लोग उनकी छोटी या बड़ी मूर्तियाँ बनाकर घर में रखते थे और अपने परिवार के कल्याणार्थ उनकी पूजा करते थे। पर ये बहुत छोटे देवता समझे जाते थे और राष्ट्रीय जीवन पर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। यहूदियों के प्रधान देवता अथवा ईश्वर 'जेहोवा' ने, जोकि अपने अधिकार के सम्बन्ध में बड़ा ईर्ष्यालु समझा जाता है, इन छोटे देवताओं का कभी विरोध नहीं किया, क्योंकि ये उसकी तुलना में अत्यन्त तुच्छ थे और इनकी पूजा कभी सार्वजनिक रूप से नहीं की जाती थी।

लिङ्ग-पूजा

गृह-देवताओं के पश्चात् उन पत्थरों का नम्बर आता है, जिनकी पूजा किसी काल में समस्त सेमेटिक जातियों (जैसे यहूदी, आर्मीनियन, असीरियन, अरब-निबासी, फ़िनीशियन आदि) में बहुत अधिक प्रचलित थी। यहूदियों के प्राचीन धर्मग्रन्थों में इन पत्थरों का वर्णन अनेक स्थानों पर पाया जाता है, यद्यपि पश्चात्-वर्ती लेखकों ने उसमें परिवर्तन करने की बहुत कुछ चेष्टा की है। 'जेकब के स्वप्न' की कथा में इस प्रकार के पत्थर की पूजा का वर्णन पाया जाता है। जेकब ने, जो यहूदियों का एक प्रधान पुरुष था, पत्थर का स्तम्भ स्थापित करके पेय पदार्थ और तेल चढ़ाकर उसकी पूजा की। यहूदियों के अन्य धर्मग्रन्थों में भी स्तम्भाकार अथवा लिङ्गाकार पत्थरों के पूजे जाने के अनेक प्रमाण पाए जाते हैं। ये लिङ्गाकार देवता जनन-शक्ति अथवा उत्पादन शक्ति के अधीश्वर माने जाते थे और यहूदी स्त्रियाँ उनके सम्मुख उसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति की प्रार्थना किया करती थीं, जैसे कि हमारे देश में स्त्रियाँ महादेव बाबा के समस्त पुत्र की कामना करती हैं।

तीसरी श्रेणी के देवताओं में, जिनकी पूजा यहूदी करते थे, सर्वप्रधान जेहोवा था। इसके सिवा प्राचीन काल में वे लोग 'बाल' और 'मोलेक' नाम के देवताओं तथा सर्प की भी पूजा करते थे, पर जैसे-जैसे जेहोवा का प्रभाव बढ़ता गया, अन्य देवताओं की पूजा का हास होता गया और अन्त में ये जेहोवा के ही विभिन्न रूप समझे जाने लगे। जिस प्रकार हमारे देश के आर्यसमाजी विभिन्न वैदिक देवताओं को एक ही ईश्वर के विभिन्न

विशेषण बतला कर वेदों में एकेश्वरवाद सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार वर्तमान समय के यहूदी विद्वानों ने बड़े-बड़े पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लिख कर इस बात को सिद्ध किया है कि उनके पूर्वज सदा से एकमात्र जेहोवा की ही उपासना करते आए हैं और अन्य देवताओं के जो नाम प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं, वे जेहोवा के ही विशेषण हैं। वे लोग 'बाल' शब्द का अर्थ 'स्वामी' और 'मोलेक' का बादशाह बतलाते हैं और कहते हैं कि इस नाम के कोई स्वतन्त्र देवता न थे, वरन् उनके पूर्वज इन विभिन्न सम्बोधनों को जेहोवा के लिए ही प्रयुक्त करते थे।

जिस जेहोवा को यहूदी लोग अपना ईश्वर मानते हैं, वह भी प्राचीन काल में पाषाण-लिङ्ग के ही रूप में था और उसका मुख्य कार्य अपने उपासकों की वंश-वृद्धि करना ही समझा जाता था। यहूदियों के पुराणों में लिखा है कि जेहोवा ने अब्राहम को दर्शन देकर कहा कि "मैं तेरे वंश को एक विशाल जाति बना दूँगा।" जब अब्राहम ने अपना कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण जेहोवा से शिकायत की कि "तुने मुझे बीज नहीं दिया" तो उसने उत्तर दिया—"आकाश-स्थित तारों को देखो, तुम्हारा बीज भी इसी प्रकार असंख्यात् होगा।" उसने समय-समय पर अब्राहम से इसी प्रकार के वादे किए—"मैं तेरी बहुत अधिक वृद्धि करूँगा"; "तू कितनी ही जातियों का पिता होगा"; "मैं तुझे अधिक उर्वर बना-ऊँगा"; "तुम्हारे बादशाहों की उत्पत्ति होगी"; "मैंने तुम्हें बहुत सी जातियों का पिता होने के लिए उत्पन्न किया है।" इसमार्जल के सम्बन्ध में उसने कहा—"मैंने उसे आशीर्वाद दिया है कि उसकी अत्यन्त वृद्धि होगी। उसके बारह शाहजादे होंगे। मैं उसके वंश को एक बड़ी जाति बना दूँगा।" अब्राहम, उसके पुत्र इसहाक तथा उसके अन्य वंशजों को जेहोवा सदा इसी प्रकार का आशीर्वाद देता रहा कि "जिस प्रकार आकाश में तारे हैं और जिस प्रकार समुद्र के किनारे बाल के कण हैं उसी प्रकार मैं तुम्हारे वंश की वृद्धि करूँगा और तुम्हारी सन्तान शत्रु के द्वार की मालिक होगी।" जेहोवा की स्तुति के भजन रचने वाले कवियों ने भी इसी प्रकार की बातें लिखी हैं। एक भक्त कवि कहता है—"उसने वन्ध्या स्त्री को वंश की रक्षा करने योग्य बनाया। उसने उसे सन्तान प्रदान करके सुखी किया।" मनोहा की



स्त्री बन्ध्या थी। जेहोवा के फ़रिश्ते ने उसे दर्शन देकर कहा कि “तेरा बन्ध्यापन दूर हो जायगा और तेरे पुत्र उत्पन्न होगा।” हन्ना नाम की स्त्री के गर्भाशय को जेहोवा ने रुद्ध कर दिया, जिससे उसके सन्तान नहीं होती थी। इसलिए वह जेहोवा के मन्दिर में गई और उससे प्रार्थना की कि वह बन्ध्यापन के कलङ्क से मुक्त हो जाय। जेहोवा ने उसकी प्रार्थना सुनी और उससे सैमुअल उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् जेहोवा फिर हन्ना के पास आया और उससे तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

इन समस्त उदाहरणों से इसमें सन्देह नहीं रहता कि जेहोवा मुख्यतया वंश-वृद्धि, जनन-शक्ति और उर्वरता का देवता माना जाता था और उसके उपासक इसी उद्देश्य से उसकी पूजा करते थे। संसार के अन्य कितने ही देशों और जातियों में भी सन्तान-प्राप्ति के लिए ऐसे लिङ्गाकार देवताओं की पूजा की जाती है। पश्चिमी यूरोप में अब भी ऐसे कितने ही पत्थर पाए जाते हैं, जिनमें ईसाई-धर्म का प्रचार होने पर क्रॉस का चिह्न बना दिया गया है और जिनसे बन्ध्या स्त्रियाँ सन्तान की प्रार्थना करती हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि यह लिङ्ग-पूजा की प्रथा, जिसका आजकल भारतवर्ष में सबसे अधिक प्रचार है, प्राचीन-काल में इन्हीं पश्चिमी आक्रमण-कारियों के साथ इस देश में आई हो और अन्य अनेक प्रथाओं तथा विधाओं की तरह धीरे-धीरे हिन्दू-धर्म का एक अङ्ग बन गई हो। पुराणों में वर्णित अनेक कथाओं से भी यही विदित होता है कि प्राचीन-काल में राक्षस और अनार्य कहे जाने वाले लोग ही शिव के सबसे बड़े उपासक और भक्त थे और एक प्रकार से उन्हीं को अपना कुल-देवता मानते थे। इतिहास में जैन और बौद्ध-काल के आस-पास भारत पर विदेशियों के जिन अनेक आक्रमणों और लूटों की संख्या में इस देश में बस जाने का जो वर्णन पाया जाता है, उससे हमारा तो यही अनुमान है कि लिङ्ग-पूजा ही क्या, प्रत्येक प्रकार की मूर्ति-पूजा का आरम्भ सम्भवतः इस देश में विदेशियों के संसर्ग से ही हुआ है।

यहूदियों में और अन्य जातियों में यह लिङ्ग-पूजा की प्रथा कैसे उत्पन्न हुई, इस सम्बन्ध में खोज करने से यही प्रतीत होता है कि यह भी मृत व्यक्तियों की

कब्रों का एक स्वरूप था। जहाँ कुछ लोग चौड़े पत्थर की कब्र बनाते थे, अन्य लोगों ने उसे स्तम्भाकार बनाना आरम्भ कर दिया। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं, यदि लोगों ने मृत व्यक्ति के जनन-अङ्ग को ही प्रधान समझ कर उसी के रूप में उसकी कब्र अथवा स्मारक बनाना उचित समझा हो। उस काल के जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य लोग सहज में यह कल्पना कर सकते थे कि जनन-अङ्ग की इस प्रकार पूजा करने से हमारे वंश की अधिक वृद्धि होगी। इस विषय की जाँच करने वाले विद्वानों ने सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में सीरिया का देश इस प्रकार के लिङ्गाकार पत्थरों से भरा हुआ था और उनकी पूजा उर्वरता के देवता के स्वरूप में की जाती थी। इन लिङ्गों के ऊपर प्याले के आकार का एक गड्ढा भी रहता था, जिसमें उस समय के भक्तगण बलिदान किए गए मनुष्य या पशु का रक्त भरते थे।

जेहोवा और नरबलि

जेहोवा की पूजा का एक मुख्य अङ्ग नरबलि था। उसने अपने भक्तों को आदेश दे रक्खा था कि वे अपनी प्रथम सन्तान उसको भेंट दें। आरम्भिक युग में तो ये सद्यः प्रसूत शिशु उसके सम्मुख मार ही डाले जाते थे, पर बाद में उसके पुजारियों ने इसको अपने लिए सेवक प्राप्त करने का मार्ग बना लिया। तब ये बच्चे बड़े होकर जेहोवा के मन्दिर में दासों की भाँति रहने लगे। कितने ही धनवान लोगों के बच्चों को पुजारी लोग कुछ रकम लेकर लौटा भी देते थे। कुछ समय पश्चात् इस प्रथा ने ‘झतने’ का रूप धारण कर लिया और प्रत्येक यहूदी बलिदान या भेंट के रूप में अपनी हृन्त्रिय का थोड़ा सा चमड़ा काट कर जेहोवा को सन्तुष्ट करने लगा। यहूदियों के पुराणों में इस प्रथा की उत्पत्ति मूसा के समय से बतलाई गई है। जेहोवा मूसा को इसलिए मार डालना चाहता था, कि उसने अपने पुत्र का बलिदान नहीं किया। यह देख कर मूसा की स्त्री, जिपारा ने एक पत्थर का चाकू लेकर लड़के के पुरुषाङ्ग का अग्र भाग काट कर जेहोवा के पैरों पर फेंक दिया और इस प्रकार रक्त पाने से वह सन्तुष्ट हो गया।



जेहोवा के महत्व की वृद्धि

जिस 'जेहोवा' की कल्पना का आरम्भ इस प्रकार एक साधारण पाषाण-लिङ्ग से हुआ था उसने कालान्तर में किस प्रकार एकेश्वरवाद जैसे गहन सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लिया, यह एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। वे कौन से कारण थे, जिनसे अन्य अनेक उन्नत जातियों के होते हुए भी यहूदियों ने ही इस विषय में सबसे अधिक सफलता प्राप्त की? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि इसका कारण कुछ अंशों में सेमेटिक जातियों की एक विशेष मनोवृत्ति और कुछ अंशों में यहूदी जाति की राजनीतिक परिस्थिति थी। सेमेटिक लोगों का स्वभाव है कि वे एक देवता के गुणों का दूसरे में बढ़ी जल्दी आरोप कर देते हैं और इसके फलस्वरूप कुछ समय में उन दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। इससे देवताओं की संख्या निरन्तर घटती जाती है और अन्त में एक ही देवता बच रहता है। दूसरा कारण यह था कि ईसा से पूर्व की आठवीं, सातवीं, छठी और पाँचवी सदीयों में यहूदियों को सदैव मिश्र, असीरिया आदि के निवासियों से लड़-भिड़ कर अपने अस्तित्व की रक्षा करनी पड़ती थी। अपने शत्रुओं के प्रति उनको जो सफलता प्राप्त होती थी उसे वे जेहोवा की कृपा का ही फल समझते थे। वे कहते थे कि जेहोवा हमारे पक्ष में लड़ता है और वह हमारा रक्षक है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस पक्ष के भीतर इस प्रकार का विश्वास बढमूल होगा उसके अनुयायी अधिक वीरता तथा मनोयोग से लड़ेंगे। आदि कालीन मुसलमान विजेताओं की विजय का एक मुख्य रहस्य यही था कि उनमें से प्रत्येक के हृदय में यह विश्वास पूरी तरह जमा हुआ था कि हम अल्लाह के हुक्म से सच्चे दीन के प्रचारार्थ लड़ते हैं और इसलिये हमको अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। जिन लोगों में इस प्रकार के आत्म-विश्वास का भाव होता है—फिर वह विश्वास चाहे धर्म के नाम पर हो, चाहे देश के नाम पर और चाहे किसी अन्य लक्ष्य के आधार पर—वे संख्या में उत्पन्न होने पर भी उन बहुसंख्यक लोगों पर अवश्य विजय पाते हैं, जिनको उत्साहित करने वाला और एक सूत्र में बाँधने वाला इस प्रकार का कोई विश्वास नहीं होता। इसलिये स्वभावतः ही तत्कालीन यहूदी देश-भक्त अपने राष्ट्र तथा जाति की रक्षा के लिए जेहोवा के

महत्व को निरन्तर बढ़ाते जाते थे और इस बात की चेष्टा करते थे कि लोग विभिन्न देवताओं की पूजा छोड़ कर केवल एक-उसी को अपना आराध्य समझें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने अन्य देवताओं के मन्दिरों को ध्वंस कर दिया और धार्मिक ग्रन्थों में से भी जहाँ तक बन पड़ा उनका नाम-निशान मिटा दिया। इतना ही नहीं, साधारण लोगों द्वारा देश के विभिन्न भागों में जेहोवा के छोटे-छोटे मन्दिर बना कर पूजा कर सकने को भी धर्म-विरुद्ध बतला कर वर्जित कर दिया गया। इस प्रकार उन्होंने एकमात्र जरूशलम के प्रधान मन्दिर को ही प्रत्येक यहूदी के धार्मिक विचारों का केन्द्र बना दिया। इससे उस जाति की एकता तथा सङ्गठन के दृढ़ होने में जो सहायता मिली होगी उसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

यद्यपि इन उपायों से थोड़े से यहूदी कितने ही वर्षों तक अपने शत्रुओं के विरुद्ध सफलता प्राप्त करते रहे, पर वे अपने विरोधियों से चारों ओर से इस प्रकार घिरे थे कि अन्त में उनकी शक्ति क्षीण हो गई और बैबिलोनिया-निवासियों ने उनको पूरी तरह से पराजित करके जरूशलम को नष्ट कर दिया। इन आक्रमण-कारियों ने यहूदियों और उनके ईश्वर जेहोवा की जैसी दुर्गति की वह अकथनीय है। जिस प्रकार भारत-वासी मुसलमानी आक्रमण के समय देवताओं की शक्ति द्वारा शत्रुओं के परास्त हो जाने की कल्पना किया करते थे और अन्त में उनको और उनके देवताओं, दोनों को ही आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट होना पड़ा, उसी प्रकार जेहोवा की शक्ति का लाख भय दिखलाने पर भी बैबिलोनियों ने उसके मन्दिर की समस्त सम्पत्ति लूट ली और वे तमाम प्रमुख यहूदियों को गुलाम बना कर अपने देश में ले गए। उस मन्दिर में पुजारियों द्वारा एकत्रित बहुत बड़ा खजाना और सुलेमान आदि बादशाहों द्वारा भेंट दिए हुए सोने-चाँदी के अनेक बहुमूल्य बर्तन थे, जिन सबको आक्रमणकारी अपने देश ले में गए। सम्भवतः उस समय जरूशलम की वही दशा हुई होगी जो महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय सोमनाथ और मथुरा की हुई थी।

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि इस घटना का विवरण लिखने वाले यहूदी इतिहासकारों ने जहाँ खूद



जाने वाले एक-एक बर्तन और पूजा सम्बन्धी उपकरण का पूरा वर्णन किया है, उन्होंने इस सम्बन्ध में कहीं एक शब्द नहीं लिखा कि इस अवसर पर उनके देवादिदेव जेहोवा की क्या दशा हुई। सम्भव है, इतिहासकारों ने अपने राष्ट्रीय देवता के अपमान की कथा लिखनी उचित न समझी हो अथवा उसके प्रति श्रद्धा का भाव रखने के कारण इस विषय पर कलम उठाना पापपूर्ण माना हो। यह भी हो सकता है कि पश्चात्पूर्ति इतिहास-लेखकों को इस बात का पता ही न लगा हो कि उस सन्दूक का, जिसके भीतर जेहोवा की मूर्ति बन्द रहती थी, अन्तिम परिणाम क्या हुआ। जिस समय जरूशलम में यहूदियों की सत्ता जमी हुई थी उस समय किसी नरतनधारी की, चाहे वह कितना भी महान क्यों न हो, यह मजाज न थी कि वह उस सन्दूक को खोल कर जेहोवा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर सके। उसके भक्तों की कल्पनानुसार उसका तेज सूर्य से भी बढ कर था और किसी भी व्यक्ति के लिए उसकी तरफ ताक सकना सर्वथा असम्भव था। लोगों में इस प्रकार की दन्त-कथाएँ प्रचलित थीं कि अमुक व्यक्ति ने सन्दूक को खोल कर जेहोवा को देखने का साहस किया और वह उसी समय गिर कर मर गया। इसलिए इतिहासकर्ता यदि यह न बतला सकें कि उस सन्दूक के भीतर क्या था और उसकी अन्तिम गति क्या हुई, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर हम सहज ही में समझ सकते हैं कि आक्रमणकारियों की दृष्टि में, जिन्होंने मन्दिर की समस्त सम्पत्ति लूट कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, जेहोवा की मूर्ति अथवा उसकी सन्दूक की क्या इज्जत हो सकती थी? सम्भवतः उसका उन्होंने उसी प्रकार खण्ड-खण्ड करके फेंक दिया होगा, जिस प्रकार हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी प्रतिष्ठित देव-मूर्तियाँ मुसलमान बादशाहों द्वारा तोड़ डाली गई थी। क्योंकि इस घटना के पश्चात् फिर कभी जेहोवा अथवा उसकी सन्दूक के विषय में कुछ सुनने में नहीं आया।

जेहोवा के स्थूल रूप के इस प्रकार नष्ट हो जाने से यहूदी धर्म की कायापलट हो गई। ऐसे अवसर पर सम्भावना तो इस बात की थी कि उसका सम्प्रदाय नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा और उसके स्थान पर किसी अन्य देवता की प्रधानता हो जायगी। पर इसके विपरीत इस घटना के

पश्चात् जेहोवा की मान्यता ने आध्यात्मिक और एके-श्वरवाद का रूप धारण करना आरम्भ किया, जो कुछ ही समय में एक विश्वव्यापी सिद्धान्त की भाँति सर्वत्र प्रचलित हो गया। ठीक जिस समय जेहोवा का अस्तित्व मिटा उसके धर्म का स्वरूप सबसे महान् और सर्वाङ्गपूर्ण हो गया। बैबिलोनियों के आक्रमण से पहिले ही यहूदी धर्माचार्य और उसके उपासक जेहोवा की महानता, पवित्रता, विशिष्टता और सर्वशक्तिमानता को निरन्तर बढ़ाने और आध्यात्मिक रूप देने का उद्योग करते रहते थे। अब जब जेहोवा का स्थूल स्वरूप, जिसने उनके विचारों को सीमाबद्ध कर रखा था, लोप हो गया, तो एक महान् अदृश्य ईश्वर की भावना उनमें बड़ी शीघ्रता से जोर पकड़ने लगी। चूँकि उनके धर्माचार्य जेहोवा की प्रतिमूर्ति बनाने को पाप-कार्य बतला चुके थे और इस प्रकार की चेष्टा कभी न करने का आदेश दे चुके थे, इसलिए दास बन कर बैबिलोनिया जाने वाले यहूदियों में क्रमशः एक ऐसे ईश्वर की उपासना का भाव उत्पन्न हो गया जो सब प्रकार के स्थूल बन्धनों से सर्वथा मुक्त था, जिसकी पूजा बिना किसी मूर्ति, प्रतिनिधि अथवा चिन्ह के की जाती थी, और जो इतना श्रेष्ठ तथा पवित्र था कि मनुष्य के नेत्र उसे कदापि नहीं देख सकते थे।

इसके पश्चात् एकेश्वरवाद और परमात्मा की निराकारता का भाव यहूदियों में दिन पर दिन बढ़ता गया और कुछ वर्ष बाद जब वे बैबिलोनियों की दासता से मुक्त हुए और उन्होंने फिर से जरूशलम के मन्दिर का निर्माण किया तो उसमें जेहोवा की मूर्ति अथवा उसके रहस्यपूर्ण सन्दूक का चिन्ह भी नहीं था। अब उसके अनुयायी उस मन्दिर में अदृश्य तथा अशरीरी ईश्वर की उपासना करते थे और उसी के नाम पर बलिदान करते थे।

इस घटना के कुछ सौ वर्ष बाद यहूदियों के ही देश में ईसाई-मत का आविर्भाव हुआ और यह निराकार तथा सर्वशक्तिमान ईश्वर की भावना उसमें भी सम्मिलित हो गई। ईसाई-धर्माचार्यों ने इसके स्वरूप को और भी परिष्कृत किया और इसके आधार पर एक गम्भीर दर्शनशास्त्र की रचना कर डाली, जिसका प्रचार उनके उद्योग से अब समस्त संसार में हो गया है।





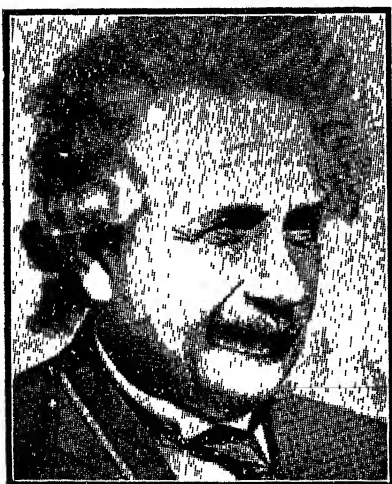
प्रयाग महिला-विद्यापीठ के गत अखिल भारतवर्षीय महिला-कवि-सम्मेलन की प्रमुख कविशिवियाँ । खड़ी—बाईं ओर से—किशोरीदेवी, राजकुमारी, विद्यावती 'कोकिल', रामकुमारी की बहिन । बैठी—बाईं ओर से—रामेश्वरी देवी 'चकोरी', विष्णुकुमारी 'मञ्जु', सप्रदादेवी चौहान, महादेवी वर्मा, तोरणदेवी 'जलती' ।



श्रीमती लेखवती जी जैन—आप अम्बाला-निवासी
श्री० सुमतिप्रसाद जी जैन, बी० ए०, एल्-एल्०
बी० की धर्मपत्नी हैं और पञ्जाब-कौन्सिल
की मेम्बरी की उम्मेदवार हैं ।



श्रीमती डॉक्टर कुमारी दमयन्ती बाली, बी० ए० ।
आप पञ्जाब की सुप्रसिद्ध महिला-रत्न हैं ।
सामाजिक कार्यों में विशेष दिलचस्पी
रखती हैं । आप पञ्जाब-कौन्सिल
की मेम्बरी की उम्मेदवार हैं ।



जर्मनी के विश्व-विख्यात वैज्ञानिक प्रो० इन्सटीन्,
जिनको यहूदी होने के कारण हिटलर-
पन्थी नाज़ियों ने देश-निकाला
दे दिया है ।



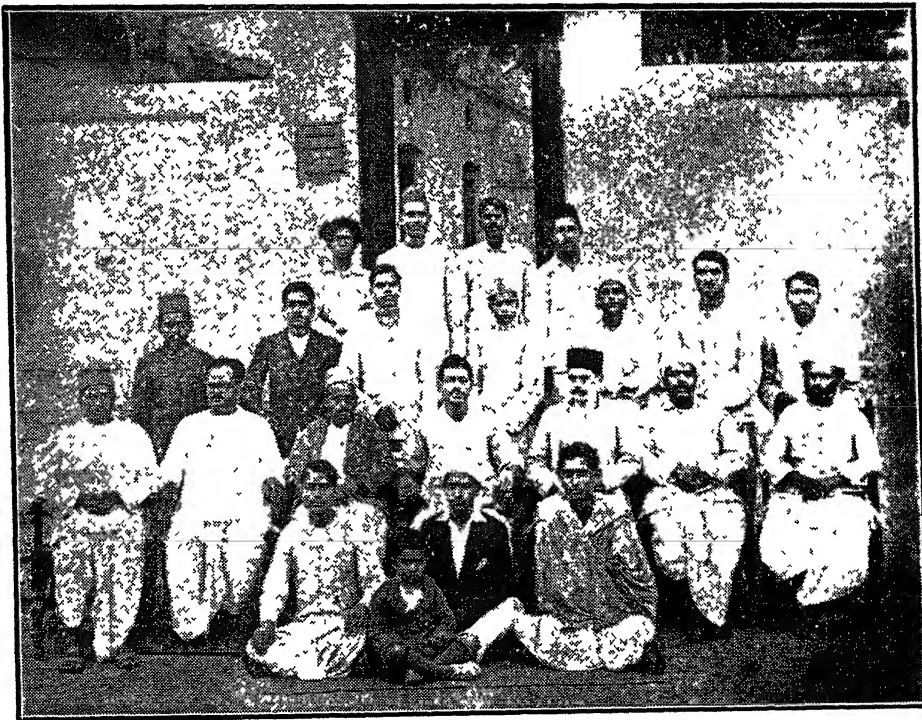
चि० वीरेन्द्र—यह १३ महीने का मातृहीन अथच तन-
दुस्त बालक कानपुर का है । यह गवैयों की तरह
मनमनाता और सिर हिलाता है । लोगों का
झयाल है कि यह भविष्य में गवैया होगा ।



श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०। अभी हाल में ही आप प्रयाग महिला-विद्यापीठ में प्रिन्सिपल होकर आई हैं। पिछले अखिल भारतवर्षीय महिला-कवि-सम्मेलन की आप स्वागताध्यक्षा थीं।



श्री० भवानीप्रसाद जी गुप्त—आप प्रयाग महिला विद्या-पीठ के परीक्षा-विभाग के सुयोग्य कार्यकर्ता हैं। द्विवेदी मेला के कवि-दरबार में आपने पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी का पार्ट किया था।



गत द्विवेदी मेला के कवि-दरबार के पात्र और कार्यकर्ता गण



स्वर्गवासिनी श्रीमती शान्तिदेवी उबाना

आप नसीराबाद-निवासी पण्डित गङ्गाराम जी उबाना की धर्मपत्नी थीं ।

आपको शिशु-पालन और शिशु-शिक्षण का विशेष ज्ञान था । समाज-संभार सम्बन्धी कार्यों में भी आप भाग लिया करती थीं ।

प्रेमलोक में प्रेत

(एकाङ्की नाटक)

[श्री० नरेन्द्र]



नी साहिबा का सुसज्जित बरामदा । बरामदे के सामने छोटा सा रम्य उद्यान है । रात के आठ बजे होंगे । रानी साहिबा एक उज्ज्वल श्वेत सारी पहने हुए हैं और उसके नीचे उतनी ही उज्ज्वल श्वेत चोली है, जिसका कुछ हिस्सा गोरी-गोरी बाँहों पर निकला हुआ है । गले के नीचे वाला चोली का गोल कट सादा होते हुए भी अत्यन्त सुन्दर है । उनके पैरों में बरमीज़ चप्पलें शोभित हैं ।

रानी साहिबा की आयु तैंतीस वर्ष के लगभग है । किन्तु वे युवतियों के समान स्वस्थ और सुन्दर हैं । उनके विशाल नेत्र सम्भ्रान्त कुल के परिचायक हैं । जिनमें वैधव्य की स्वाभाविक सौम्यता ने एक अमृत ज्योति भर दी है । उनके मुख-मण्डल पर प्रतीक्षा के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं । प्रतीक्षा और अनुराग रह-रह कर उनके कपोलों पर स्मिति के रूप में दीप्त हो उठते हैं ।

रानी साहिबा बरामदे में धीरे-धीरे टहल रही हैं । सहसा प्रमोद का प्रवेश । रानी साहिबा आशा-पूर्ति के पुलक से प्रफुल्लित हो उठती हैं । प्रमोद सम्भ्रान्त कुल का रूपवान किशोर है । अवस्था अठारह वर्ष के लगभग होगी । उसके मुख पर क्रीड़ा, उत्सुकता और माधुर्य, स्नेह और सौन्दर्य के साथ गत शैशव के समान ही खेल रहे हैं । उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में चपल उत्कण्ठ है । एक हाथ में ताज़ा जुही की माला है ।

प्रमोद—(रानी साहिबा से) भाभी!

वे कोई उत्तर नहीं देती । निस्तब्धता रहती है । रानी

साहिबा सन्तोष भरी सस्मित चितवन से प्रमोद की ओर निर्निमेष देख रही हैं ।

[निस्तब्धता]

प्रमोद—भाभी.....!

रानी साहिबा—तुम आ गए ?

[प्रमोद की ओर बढ़ती हैं]

प्रमोद—(पीछे हट कर) ना, भाभी ! तुम्हें न दूँगा यह माला । अशोक कहाँ है ?

[निस्तब्धता]

(शिशुवत्) बता दो भाभी !

[निस्तब्धता]

(विनय से) बता दो !

[पूर्ववत् निस्तब्धता]

न बोलोगी ? अच्छा, जाता हूँ मैं । अब कभी तुम्हारी गोद में न बैठूँगा । फूल दोगी तब भी नहीं बैठूँगा (रुठ कर जाने को उद्यत होता है । रानी साहिबा उसे रोक लेती हैं ।)

रानी साहिबा—(हँस कर) अच्छा बतलाती हूँ । ठहरो भी । तुम तो मेरे पास आए और बने वे स्वाँग भरने ! बड़े बालक बन जाते हो ?

प्रमोद—तो बतलाती क्यों नहीं ? मैं रुठ जाऊँगा !

रानी—तो मैं मना लूँगी । लेकिन आज से मैं रुठ करूँगी और तुम मनाओगे । हो तो बड़े चालाक । निरे बालक बने रहते हो और मुझी से झुशामद कराते हो । अच्छा, लो ! (रुठने को होती हैं)

प्रमोद—तुम्हीं तो कहा करती हो भाभी, कि तुम मुझे बच्चे की तरह प्यार करती हो और! (सुस्करा देता है) ।



रानी साहिबा—ज़रा-ज़रा-सी बातों पर रूठा करोगे तो मैं भी रूठ जाऊँगी और कभी... ..तुम चाहे कितना ही मनाओगे।

[हलके-से रहस्य से प्रमोद की आँखों में देख कर]

प्रमोद—(अनुनय करते हुए) अच्छा, बता दो भाभी ! फिर तुम्हारी गोदी में बैठ जाऊँगा !..... सच्ची !

रानी साहिबा—उसे जगाओगे तो नहीं ? नहीं तो बूढ़ी दाई घर में भी न घुसने देगी।

प्रमोद—वह कब जाएगी वहाँ से ?

रानी साहिबा—दाई ?

प्रमोद—हूँ।

रानी साहिबा—जब सब सोने जाएँगे !.....अच्छा प्रमोद, बताओ तुम मुझे कैसे प्यार करते हो ?

प्रमोद—अपनी तरह।

रानी साहिबा—और मैं तुम्हें ?

प्रमोद—मेरी तरह।

रानी साहिबा—और तुम अशोक को ?

प्रमोद—तुम्हारी तरह !

रानी साहिबा—प्रमोद ! अगर मैं रूठ जाऊँ, तो तुम मुझे मनाओगे ?

प्रमोद—हाँ !

[रानी साहिबा रूठने का अभिनय करती हैं। प्रमोद अपने घुटने टेक कर विनम्र स्वर में कहता है—“भाभी !” और कहण नयनों से रानी साहिबा की ओर देखता है। रानी साहिबा प्रमोद को अत्यन्त दुलार से उठा लेती हैं और प्यार से मस्तक चूम लेती हैं।]

रानी साहिबा—(प्यार से हँस कर) ठीक !

प्रमोद—चलो सोने।

रानी साहिबा—(मुस्करा कर) कहाँ सोओगे ?

प्रमोद—जहाँ रोज़ सोते हैं।

[दुलार और स्नेह से दोनों हाथ में हाथ डाले बाहर जाते हैं]

[दूसरी ओर से स्वर्गीय सम्राट की प्रेतात्मा का प्रवेश। प्रेतात्मा सर से पैर तक काले वस्त्र पहने हुए है। मुख पर क्रोध और प्रतिहिंसा के भाव चिता के समान

जल रहे हैं और आँखों से ईर्ष्या की चिनगारियाँ निकल रही हैं]

प्रेतात्मा—नारी ! व्यभिचारिणी !! विश्वासघात की अपावन मूर्ति !!! (क्रोध से मुट्ठियाँ बँध जाती हैं) यदि प्रथा होती तो तू पति की लाश पर भी उपहास से हँस सकती थी, विलास से रास कर सकती थी। तू पति की मौत पर आँसू बहा कर उसी क्षण—उसी क्षण उसके जीवन भर के प्यार का बदला चुका देती है। आँसू बहाकर तू मृत पति के प्रेम को हृदय से निकाल देती है; नए यात्रियों के लिए हृदय खोल देती है। सर्पिणी ! व्यभिचारिणी !!

[सहसा खेह का प्रवेश। सखित बदन पर अक्षय आभा वैदीप्यमान है। गोरे शरीर पर पीताम्बर और उस पर कितनी ही मालाएँ शोभित हैं]

खेह—(स्वाभाविक मुस्कराहट से) यात्री ! इस देश में व्यभिचार, व्यभिचारिणी या व्यभिचारी नहीं होते। यहाँ सर्पिणी नहीं हैं। यह प्रेम-लोक है।

प्रेत—तुम कौन हो आगन्तुक ?

स्नेह—(प्रश्न पर कोई ध्यान न देकर) वेश-भूषा से भी तुम विदेशी ही प्रतीत होते हो। यात्री ! इस देश में कोई काले वस्त्र नहीं पहनता। प्रेम-लीला में रूठने के अतिरिक्त यहाँ कोई क्रोध भी नहीं करता। ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का यहाँ अधिवास नहीं है, यात्री ! तुम विदेश से आए हो। दूर से आए होगे। थक गए होगे। थोड़ा विश्राम ले लो।

प्रेत—मैं यात्री नहीं हूँ, छष्ट आगन्तुक ! मैं इस देश का सम्राट हूँ। चार वर्ष पहले मैं ही इस देश पर राज्य करता था।

स्नेह—अच्छा, तो तुम इस देश से निर्वासित प्रेत हो।

प्रेत—मेरे राज्य से मुझे ही निर्वासित करने वाले तुम कौन हो, मूर्ख ?

स्नेह—तुम प्रेत हो, मैं स्नेह हूँ। आत्मा से अवभिज्ञ पहले लोग मुझे ‘काम’ कहते थे, किन्तु वास्तव में मैं आत्मा का पति, चराचर का स्वामी स्नेह हूँ, जिसके अनङ्ग रूप को इस लोक के अधिवासी प्राणी भिन्न-भिन्न



रूपों में पूजते हैं। मैं अपने आता, चिन्तन, के साथ इस लोक का शासन करता हूँ।

[स्नेह अन्तर्धान हो जाता है]

प्रेत—ओ मायावी शैतान ! मैं इस देश का स्वामी और उस व्यभिचारिणी का पति प्रेत हूँ।

[सहसा चिन्तन का प्रवेश। सुखाकृति गम्भीर है। दर्पण-से स्वच्छ नेत्रों में असाधारण ज्योति है। शरीर पर पीताम्बर है और उस पर एक कुम्हलाई माला पड़ी है।]

चिन्तन—हाँ, तुम प्रेत हो। किन्तु प्रेतों का मनुष्यों से क्या नाता ? जिस पवित्रात्मा को तुम स्त्री कहते हो, उसकी छाया तक छूने का तुम्हें अधिकार नहीं। प्रेत, भूलते हो, यदि झूठे आडम्बर और मिथ्या नियमों से तुम उस साध्वी को अपने अधिकार के स्पाती पञ्जर में जकड़े रहना चाहते हो। प्रतिहिंसा की मूर्ति ! अधिकार-लोलुप !! क्या अपनी निरङ्कुशता से उस आत्मा को ही मिटा देना चाहते हो ? क्या तुम उसका अस्तित्व ही हर लेना चाहते हो ?

प्रेत—वह विधवा है, विलास की मूर्ति नहीं। संसार के सुख अब उसके लिए नहीं हैं और वह मेरी स्त्री है। पर-पुरुष से प्रेम करने का उसे अधिकार नहीं है।

चिन्तन—(व्यङ्ग से) वह तुम्हारी स्त्री है न ? फिर विधवा कैसे हुई ? स्वर्ग-तुल्य संसार से निर्वासित प्रेत, संसार के सुखों पर यदि संसार के अधिवासियों का ही अधिकार नहीं तो किसका है ? ईर्ष्या से जलती हुई अपनी पाशविक आँखों से तुम किसी को सुखी नहीं देख सकते ? हूँ—वह ईर्ष्या की ज्वाला तुम्हारी उन निरङ्कुश आँखों को ही क्यों नहीं जला डालती ? अपनी प्रतिहिंसा में स्वयम् ही क्यों नहीं भस्म हो जाते, प्रेत ?..... और पर-पुरुष !—उस जन्म में विवाह से पूर्व क्या तुम्हीं अपनी स्त्री के लिए पर-पुरुष न थे ?

प्रेत—मूर्ख ! अब वह विधवा है। उसे समाज 'विधवा' के नाम से पुकारता है। उसका कर्त्तव्य मेरे पुत्र का लालन-पालन करना है।

चिन्तन—तुम्हारे पुत्र का ? तुम्हारा पुत्र कैसा ? क्या तुमने ही उस पुत्र को गर्भ में रखकर अपने रक्त से सींचा था ? क्या तुमने ही अपने अङ्ग-अङ्ग निबोड़ कर दूध में

अमृत पिला कर उस मृतवत् शिशु को जीवन-दान दिया था ? क्या तुम्हीं उसे चाँद दिखाकर बहलाते हो ? क्या तुम्हीं उसे फूलों से खिलाते हो ? तितलियाँ दिखा-दिखा कर किलकाते हो ? क्या तुम्हीं उसे दुलरा कर, थपकियाँ दे, लोरियाँ सुना कर सुख की नींद में सुलाते हो ?

[कुछ चण निस्तब्धता रहती है]

चिन्तन—समाज उसे विधवा कहता है ? कहेगा ही ! अधिकार-लोलुप, उस प्रेतों के समाज के लिए तो संसार में जितने प्राणी कम हों उतना ही अच्छा—जितने प्रतिहिंसी कम हों उतना ही भला होगा। समाज चाहता है कि विधवा उन्नति के मार्ग पर चल ही न सके। टाट में लिपटी, कालिख मुँह से जपे किसी निर्जन कोने में वह सबती रहे ; समाज यही चाहता है न ? समाज उसे राख में लिपटी हुई बुकरी चिनगारी के समान क्रियाहीन, अकर्मण्य और निरर्थक देखकर प्रसन्न हो सकेगा ? क्या समाज का निरङ्कुश हृदय उसे वैधव्य के उवलन्त निदाघ में धूनी रमाते हुए ही देख कर शीतल होगा ? समाज का गृह तो उसका गला घोट कर, उसके शिशुओं का स्वादिष्ट मांस नोच-नोच कर खाना पसन्द करेगा ही !

प्रेत—नासमरक युवक ! समाज शिशुओं का पालन करेगा।

चिन्तन—वही समाज शिशुओं का पालन करेगा, जिसके भँवर में पड़े सहस्रों अनाथ भूखे-प्यासे तड़प-तड़प कर प्राण दे देते हैं ; जहाँ नन्हें बालक उदर के अतिरिक्त कुछ और जानते ही नहीं, सूखे टुकड़े बीन-बीन कर वे केवल अपने उदर की ज्वाला ही प्रज्वलित कर सकते हैं ; जहाँ भोली बालिकाएँ वेरयाएँ बन जाती हैं और अपने यौवन, आत्मा और रूप को भी बेच कर उस उदर की ज्वाला को नहीं बुझा पातीं। क्या वही समाज शिशुओं का पालन करेगा ?

प्रेत—वह कुलटा क्या अपने बालक से प्रेम नहीं कर सकती ? नए प्रेम-पात्र से प्रेम-लीला करने से ही क्या वह शिशु का पालन करती है, छष्ट बालक ?

चिन्तन—प्रेत ! तुम और तुम्हारा प्रेतों का समाज प्रेम जैसे सूक्ष्म तत्त्व को नहीं समझ सकता। क्या तुम जानते हो, माँ अपने बालक को कितना प्यार करती



है ? पर-पुरुष से प्रेम किसे कहते हैं, क्या तुम समझते हो प्रेत ?

[कुछ क्षण निस्तब्धता रहती है]

चिन्तन—बालक, माँ का प्रेम-पात्र नहीं हो सकता। चौको मत, प्रेत ! बालक माँ का प्रेम-पात्र नहीं हो सकता। वह तो माँ का ही एक अङ्ग बन जाता है, उसी की आत्मा का एक अंश हो जाता है। फिर पात्र कैसा ! पात्र तो कोई पृथक् वस्तु ही हो सकती है। शून्य आँखों से मेरी ओर क्यों देखते हो ? ईर्ष्यालु पशु ! तुम प्रेम के सूक्ष्म तत्वों को नहीं समझ सकते। पुत्र का प्रेमी उसकी माँ का प्रेम-पात्र होता ही है। जानते हो, युवती की अपने पति को बहुत अंशों में इसलिये प्यार करती है कि उसका पति उसके बालक को प्यार करता है ? प्रेत ! नारी के लिए प्रेम नितान्त आवश्यक है। तुम उससे ईर्ष्या रखते हो ?

प्रेत—(क्रोध से) सत्य के बहाने इन्द्रिय-लोलुपता का उपदेश देने वाले तुम कौन हो मूर्ख ?

चिन्तन—इन्द्रिय-लोलुपता ? तुम प्रेत हो, पशु से भी निकृष्ट हो, प्रेम को इन्द्रिय-लोलुपता कहते हो !

प्रेत ! जो चेतनाहीन और आत्माहीन पशु की इन्द्रिय-लोलुपता है, वह सूक्ष्म तत्त्वदर्शी प्राणियों का प्रेम है। उन सूक्ष्म तत्वों का आलिङ्गन, जिनका व्यक्त स्वरूप साकार विश्व है, प्रेम कहलाता है। कङ्काल ! तुम सूक्ष्म तत्वों को नहीं देख सकते, अतएव प्रेम को इन्द्रिय-लोलुपता कहते हो। पशु की आँखों से देखो !..... किन्तु मेरी आँखों में देखो, प्रेत ! अपना रूप देखकर काँपो, सिहरो !

[प्रेत चिन्तन की दर्पण-सदृश स्वच्छ आँखों में देखता और काँपता है]

प्रेत ! तुम्हारा अवसान हो !

[प्रेत अन्तर्धान होता है]

[खेद का प्रवेश]

चिन्तन—आओ भैया, चलें !

[दोनों सप्रेम जाते हैं ।]

नेपथ्य में—भाभी !

प्रमोद !

[पटाचेप]

मनोवेदना

[श्री० कविराज उमेशचन्द्र देव]

क्षीण हास की धूमिल रेखा
लगी चूमने शुभ्र दिगन्त,
सुमन सिहरने लगे गगन से
उतरा मेरा रूप वसन्त ।

हृदय-समीर भाव-सौरभ का
अब कर चुका प्रचुर विस्तार,
आ-आकर पद चूम रहे हैं,
भ्रमरों के गर्वित गुञ्जार ।

नहीं कँपाती मेरी श्वासें
अब नीरव निशीथ का क्रोड़,
दृग-जीवन से अब न लगाते
वे प्रभात के मोती होड़ ।

झुक जातीं तरु राजि हठीली
करने को विश्राम विधान,
दिग्वधुएँ उन्नत उर-कर से
करती हैं सम्मान प्रदान ।

उस अतीत-स्मृति की छाया भी
छू पाती अञ्चल का छोर !
कोमलताएँ बुला रही हैं
विनय-प्रणय से निज-निज ओर ।

मेरे मन के हरिण तुम्हारी
कजरारी-प्यारी-सुकुमार
अलसाई आँखें न आ सकीं
स्वागत करने मेरे द्वार !

चिर-याचित प्रत्यूष ! गिरा दो
यदि अञ्जन-रञ्जित दो बूँद,
मैं होकर कृतकृत्य सदा को
लूँगा अपनी आँखें मूँद ।



अजमेर और पुष्कर*

[श्री० रामेश्वर ओझा, एम० ए०]



रत के इतिहास में अजमेर का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में भी उसका वही महत्व है जो प्राचीन काल में था। वह राजपूताने का केन्द्र है और अपनी स्थिति के कारण 'राज-पूताने की कुँजी' कहलाता है। यह नगर प्रायः चारों ओर से सुन्दर पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ है, जिससे प्राचीन काल में शत्रुओं के आक्रमणों से रक्षा होने के साथ ही साथ यहाँ की प्राकृतिक छटा भी दर्शनीय है। वर्षा-ऋतु में तारागढ़ पहाड़ अथवा बजरङ्गगढ़ आदि पहाड़ियों पर चढ़ कर अजमेर नगर का अवलोकन करने पर इसके मनोरम दृश्य से दर्शक का चित्त प्रफुल्लित हुए बिना नहीं रहता। अस्तु।

प्रसिद्ध चौहान-वंशीय राजा अजयदेव ने (११६५-७५ ई०) इस नगर को बसाया था। तब से इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। अजयदेव के पुत्र आनानी (अणोराराज) ने नगर के समीप 'आनासागर' नामक सुन्दर तालाब बनवाया। उसके पुत्र बीसलदेव ने बीसलिया तालाब, एक सुविशाल संस्कृत महाविद्यालय (कॉलेज) जिसे अब "ढाई दिन का भोंपड़ा" कहते हैं, तथा अनेक देवस्थान बनवाए। बीसलदेव के पोते सुप्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान ने इस नगर की उन्नति कर इसे सुदृढ़ बनाने में बहुत प्रयत्न किया। नाग पहाड़ की एक ऊँची चोटी पर उसने तारागढ़ नाम का सुदृढ़ दुर्ग बनवाया, जो अब तक दृष्टी-प्लुटी दशा में विद्यमान है।

❁ आगामी २० अक्टूबर को अजमेर में महर्षि दयानन्द सरस्वती की अर्द्ध-शताब्दी मनाई जायगी। आशा है, यात्रीगण इस लेख से लाभ उठाएँगे।

—लेखक

पृथ्वीराज के दरबार के प्रसिद्ध कवि जयानक ने अपने 'पृथ्वीराज-विजय' महाकाव्य में इस नगर की शोभा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन लिखा है।

पृथ्वीराज के राजत्व-काल में, शहाबुद्दीन गोरी की अभ्युत्थता में, मुसलमानों को सेना से राजपूतों की लड़ाई हुई, जिसमें पृथ्वीराज घायल होकर मारा गया और अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। शहाबुद्दीन ने इस नगर को बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट किया। तदनन्तर अलतमश ने भी कई हिन्दू-देवालयों आदि को नष्ट कर मस्जिदों के रूप में परिवर्तित किया, जिसमें बीसलदेव का संस्कृत महाविद्यालय भी था। उसमें उसने कुरान की आयतें खुदवा कर सामने के सात दरवाज़े खड़े करवाए। महाविद्यालय का नाम 'ढाई दिन का भोंपड़ा' रखा गया। अलतमश के अनन्तर अजमेर कई वर्षों तक मुसलमान-हाकिमों के अधीन रहा। उस काल में इस नगर की कोई उन्नति नहीं हुई। फिर मुगलों के समय में इसका पुनरुद्धार होने लगा। सन् १५०० ई० के आस-पास इब्राहिम साहब की दरगाह का जीर्णोद्धार होने लगा था। अकबर के राजत्व-काल में इसका पुनर्निर्माण आरम्भ हुआ। उसने दरगाह में अकबरी मस्जिद, दरगाह बाज़ार, शहरपनाह, क़िला (अब मेगज़ीन कहलाता है) तथा अन्य भवन बनवाए। अकबर के अनन्तर जहाँगीर द्वारा इसकी शोभा-वृद्धि हुई। उसने यहाँ दौलतबाग़ लगवाया और उसमें रहने के लिए मकान बनवाया। शाहजहाँ ने आनासागर के बाँध पर सत्तमरमर की बहुत सुन्दर बाग़दरी बनवाई। सन्ध्या समय यहाँ से सूर्यास्त का दृश्य देखते ही बनता है। प्रतिदिन वायु-सेवनार्थ यहाँ अजमेर के नागरिकों की भीड़ लगी रहती है। मुगलों के पतन के साथ इस नगर की समृद्धि का भी हास होने लगा। मरहटों के उत्कर्ष के समय यह नगर उनके अधीन हुआ। उन्होंने इसमें नए-नए स्थान बनवाये।



किन्तु उनके स्थान में अब बहुत हेर-फेर हो गया है। शिवाजी नाना नामक मरहटा अफसर ने, जो सन् १७६१ ई० में यहाँ का हाकिम था, वर्तमान नए बाज़ार का ढाँचा तैयार कर उसकी नींव डाली। इस समय यह अजमेर का मुख्य बाज़ार है।

सन् १८१८ ई० में यह नगर अङ्गरेज़ी सरकार के अधीन हुआ। उस समय से इसकी बहुत वृद्धि होने लगी। नया बाज़ार तथा अन्य बाज़ार और सड़कें बन कर तैयार हुईं। धीरे-धीरे नगर का विस्तार होने लगा। अङ्गरेज़ों के अधिकार में आने के कारण बाहर के सेठ-साहूकार अपने जान माल की रक्षा के विचार से इस नगर में आ बसे, जिससे इसका व्यापार-व्यवसाय, उद्योग-धन्धे आदि खूब पनपने लगे। इसीसे आजकल भारत के प्रसिद्ध नगरों में इसकी गणना होती है। इस समय अजमेर की जन-संख्या १,२०,००० है। निम्न पंक्तियों में अजमेर के कतिपय उल्लेखनीय स्थानों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है :—

तारागढ़

यह भारत के प्रसिद्ध दुर्गों में गिना जाता है। रण-कुशल महाप्रतापी पृथ्वीराज चौहान ने इसे बनवाया था। किन्तु उसके युद्ध में मारे जाने से यह मुसलमानों के अधिकार में चला गया। तदनन्तर यह कई सत्ता-धारियों के अधिकार में रहा। समय के अनेक उतार-चढ़ावों से गुज़रता हुआ यह दुर्ग इस समय भग्नावस्था में है। जब से अङ्गरेज़ों के अधीन हुआ तभी से अङ्गरेज़ सिपाहियों के लिए 'सेनीटोरियम' (आरोग्य-निवास) के रूप में इसका उपयोग होने लगा। आजकल वहाँ प्रायः ५०० मनुष्यों की बस्ती है। क़िले पर जाने के लिए पहाड़ी मार्ग बने हुए हैं, जिनसे ऊपर जाने में सुविधा रहती है। यहाँ पुरातत्व सम्बन्धी कोई उल्लेखनीय वस्तु नहीं है।

आनासागर और बारादरी

आनासागर अजमेर का सबसे रमणीय स्थान है। इसके तीनों तरफ़ पर्वतमालाएँ हैं और एक तरफ़ बारादरी का सुन्दर बाँध बँधा हुआ है। वर्षाकाल में तालाब के पूरे भर जाने पर इसकी शोभा बहुत बढ़ जाती है। उस समय दर्शकों को इस स्थान से हटने की इच्छा तक

नहीं होती। सुप्रसिद्ध शिल्प-प्रेमी मुग़ल-सम्राट् शाह-जहाँ ने इन बारादरियों को बनवाया था। बाँध के नीचे बादशाह जहाँगीर द्वारा बनवाया हुआ दौलत-बाग़ अपनी अपूर्व शोभा से आज भी लहलहा रहा है। आजकल इस स्थान पर अजमेर के नागरिक वायुसेवन के लिए आकर अपने दिन भर के परिश्रम को भूल कर शान्ति का अनुभव करते हैं।

ढाई दिन का भोंपड़ा

पुरातत्व की दृष्टि से सब से अधिक चित्ताकर्षक एवम् प्राचीन स्थान "ढाई दिन का भोंपड़ा" है। यह भारत की प्रसिद्ध इमारत और हिन्दू-कला का उत्कृष्ट नमूना है। मेवाड़ में बाढ़ोली के मन्दिर और आबू पर दिलवाड़े के सुप्रसिद्ध जैन-मन्दिरों की कारीगरी दर्शकों को अवश्य चकित कर देती है। परन्तु इस भव्य-भवन की कारीगरी को भी देख कर दर्शकों का हृत्तात् दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। अनेक देशी एवं विदेशी शिल्प-कोविदों ने इसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। मालवे के परम प्रतापी एवं विद्यानुरागी राजा भोज द्वारा धारा नगरी (मध्य भारत के वर्तमान धार राज्य की उसी नाम की राजधानी) में बनवाए हुए 'सरस्वती कण्ठाभरण' (अब कमालमोला मस्जिद) नामक महा-विद्यालय के समान बीसलदेव ने यह सरस्वती मन्दिर बनवाया था। लोगों का यह ख्याल कि यह विशाल भवन ढाई दिन में बना था, केवल कपोल-कल्पना है। मरहटों के ज़माने में, अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहाँ पञ्जाबाशाह नामक फ़कीर की मृत्यु के उपलक्ष में ढाई दिन का उर्स भरने से इसका यह नाम पड़ा।

ख़ाजा साहब की दरगाह

भारत भर के मुसलमानों के लिए यह एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। ख़ाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की स्मृति में इसका निर्माण हुआ था। उसकी मृत्यु के कुछ वर्ष तक तो इसका कोई महत्त्व नहीं था और न यहाँ आजकल जैसी कोई भव्य इमारत थी। अकबर ने अकबरी मस्जिद बनवाई और शाहजहाँ ने क्रम पर का गुम्बज और उसके पीछे सङ्गमरमर की जुमा मस्जिद बनवाई। हैदराबाद (दक्षिण) के निज़ाम ने महक़िलख़ाना बनवाया। इस तरह धीरे-धीरे दरगाह का विस्तार बढ़ा।



सामने ही इसमें बड़े-बड़े दरवाजे हैं। उनमें भीतर जाने से एक बड़ा चौगाम मिलता है। बुलन्द दरवाजे के दोनों तरफ़ दो बड़ी-बड़ी कढ़ाइयाँ हैं, जिन्हें 'देगें' कहते हैं। ख्वाजा साहब के उस के मेले के अवसर पर यहाँ भारत के कोने-कोने से हज़ारों सुसलमान भक्ति-पूर्वक आते हैं।

मेगज़ीन

नगर के मध्य में जो क़िला देख पड़ता है, आज-कल जिसे मेगज़ीन कहते हैं, उसे अकबर ने बनवाया था। अजमेर शहर में यह एक दर्शनीय स्थान है। इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से यह उल्लेखनीय है। इसके प्रवेश-द्वार के बाज़ीरों पर झरोखे बने हुए हैं। उनमें से एक में इस्लैण्ड के बादशाह के राजदूत सर टॉमस रो से भारत-सम्राट् जहाँगीर से भेंट हुई थी।

प्रवेश करते ही इस भव्य इमारत में चारों ओर जो बड़े कमरे देख पड़ते हैं, उनमें बेगमें रहा करती थीं। इस समय उनमें कई एक दफ़्तर हैं। मध्य के पीले पत्थर के भवन में, जहाँ पहिले बादशाह का दरीखाना भरता था, आजकल पुरातत्व सम्बन्धी वस्तुओं का संग्रहालय है। इसमें राजपूताने के विभिन्न भागों से प्राप्त की हुई ब्राह्मण एवं जैन-धर्म सम्बन्धी अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का सुन्दर संग्रह है। एक कमरे में ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी से अब तक के अनेक शिला-लेख संगृहीत हैं। यहाँ के संग्रहालय में प्राचीन सिक्कों और ताम्र-पत्रों का अच्छा संग्रह मौजूद है। पुरातत्व-अनुरागियों के लिए यहाँ का संग्रह उपा-देय है। इस संग्रहालय के वर्तमान अध्यक्ष भारत के इतिहास एवं पुरातत्व के इने-गिने विद्वानों में से हैं। समय-समय पर विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विद्यार्थी उनसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते रहते हैं।

नूर चश्मा (चश्मा)

अजमेर नगर के प्राकृतिक छटापूर्ण स्थानों में नूर-चश्मा उल्लेखनीय है। यह तारागढ़ के पश्चिम की उपत्यका में है। यहाँ जल का सोता सदा बहा करता है। सारी उपत्यका हरे-भरे वृक्षों से आच्छादित है।

इसकी सुन्दर छटा को देख कर ही बादशाह जहाँगीर ने वहाँ शिकारगाह बनवाई थी, जिसमें वह कभी-कभी रहा करता था। उसने अपने रोज़नामचे में उसका बड़ा रोचक वर्णन लिखा है। बरसात में चारों ओर इसका दृश्य देखते ही बनता है। वर्षाकाल में मनुष्य एक बार वहाँ जाता है, तो फिर छोटने को उसका बी नहीं चाहता।

नसियाँ

इन स्थानों के सिवाय आधुनिक काल का बना हुआ एक दिगम्बर जैन-मन्दिर, जिसे नसियाँ कहते हैं, विशेषतया दर्शनीय है। यह आगरा दरवाज़े से दौलत-बाग़ को जाने वाली सड़क पर है। यह लाल पत्थर का बना हुआ है। इसीलिए इसे लाल-मन्दिर भी कहते हैं। इस देवस्थान को रायबहादुर सेठ टीकमचन्द के दादा मूलचन्द जी सोनी ने बनवाया था। फिर उनके पुत्र नेमिचन्द जी ने इसमें बहुत कुछ वृद्धि की। इसमें अखण्ड टाँकी चला करती है अर्थात् कोई न कोई काम हर समय चलता रहता है।

इसमें आगे का विभाग मुख्य मन्दिर है। उसके पीछे के भाग में दुमन्ज़िले हॉल हैं, जिनमें से बीचे वाले में घोड़े, हाथी, रथ आदि मन्दिर सम्बन्धी वस्तुएँ रखी हुई हैं। ऊपर की मन्ज़िल में जैन-धर्म से सम्बन्ध रखने वाली गाथाएँ प्रदर्शित हैं। अषभदेव (आदिनाथ) की जीवन-कथा का इतिहास इस प्रदर्शनी में व्यक्त किया गया है। आदिनाथ अयोध्या के राजा के कुमार थे। उनके जन्म के पश्चात् इन्द्राक्षी के साथ भगवान् इन्द्र अयोध्या में आए और आदिनाथ को बड़े समारोह के साथ सुमेरु पर्वत पर ले गए। वहाँ चौर ससुद्र के लक्ष से उन्हें स्नान करा कुछ और देव-कुमारों के साथ अयोध्या भेज दिया। अपने पिता के अनन्तर अषभदेव अयोध्या के स्वामी हुए। राज्य के ऐश्वर्य में वे अपने कर्त्तव्य को भूल गए। इन्द्रदेव ने यह देखकर तिलोत्तमा नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा। कुछ समय वह नृत्य करके अपनी देह को छोड़ स्वर्ग में चली गई। यह देख कर आदिनाथ को जगत् की निस्सारता का ज्ञान प्राप्त हुआ। अतः अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य-भार सौंप कर वह संसार के मोह-जाल से विरक्त हो गए।



इन्द्र ऋषभदेव को जुलूस के साथ प्रयाग में त्रिवेणी पर ले गए। वहाँ अक्षयवट के नीचे उन्होंने (ऋषभ-देव ने) वैराग्य ग्रहण कर अपना राजसी ठाठ त्याग दिया। ऋषभ के जीवन की इस घटना का इस दालान में प्रदर्शन किया गया है। ऊपर चढ़ते ही उत्तरी भाग में सुमेरु पर्वत और उसके आस-पास जम्बूद्वीप है। फिर सागर और दूसरा द्वीप दिखलाया गया है। इस प्रकार सप्तसागर और द्वीपों का प्रदर्शन किया गया है। दक्षिण भाग में अयोध्या नगरी बतलाई गई है। उसके पीछे प्रयाग एवं अक्षयवट वृक्ष है, जिसके नीचे आदिनाथ ने वैराग्य ग्रहण किया था। विमानों में देवता बतलाए गए हैं और उत्तरी दीवार में आदिनाथ के सामने नाचती हुई तिलोत्तमा नाम की अप्सरा अङ्कित है।

मेयो कॉलेज

यह प्रसिद्ध कॉलेज सन् १८७० ई० में भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड मेयो के नाम से भारत के राजकुमारों, सरदारों, उमरावों आदि की शिक्षा के लिए स्थापित किया गया था। पहले इनके लिए ऐसा कोई विद्यालय नहीं था। अजमेर के चारों ओर रियासतें होने से यही स्थान इस कार्य के लिए उपयुक्त समझा गया। यह भारत के राजकुमार कॉलेज में सबसे बड़ा है।

अन्य स्थान

इनके अतिरिक्त कई एक छोटे-बड़े स्थान और भी हैं। उनमें सैयद अब्दुल्ला ख़ाँ और उसकी स्त्री की कब्रें भी उल्लेख के योग्य हैं। ये कुछ ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। औरङ्गजेब की मृत्यु के अनन्तर दिल्ली के सिंहासन पर राज्य करने वाले फ़र्रुख़सियर आदि कतिपय मुग़ल शासकों के राज्य-काल में अब्दुल्ला और हुसेन नामक दो भाइयों का तत्कालीन राज्य-तन्त्र में बहुत हाथ रहा था। उनमें से एक भाई और उसकी स्त्री की सज़्जरमरमर की कब्र रेलवे स्टेशन से कोई दो फ़र्लाङ्ग दक्षिण में ब्यावर की सड़क पर आमने-सामने बनी हुई है। अब्दुल्ला ने अपने जीते जी अपनी कब्र बनवा ली थी। किन्तु मृत्यु के अनन्तर उसकी लाश यहाँ न पहुँच सकी।

पुष्कर

अजमेर नगर से ७ मील पश्चिम में पुष्कर का क़स्बा और उसी नाम का पवित्र सरोवर है। यह भारत में हिन्दुओं का एक सुप्रसिद्ध तीर्थ है। बदरीनाथ, जगन्नाथ-पुरी, सेतुबन्ध रामेश्वर और द्वारिकापुरी, इन चारों सुप्रसिद्ध हिन्दू-धर्मों की यात्रा भी पुष्कर में स्नान किए बिना सफल नहीं मानी जाती। प्रति वर्ष कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूणिमा तक पुष्कर-स्नान का पर्व रहता है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों से हजारों नर-नारी इस अवसर पर यहाँ स्नानार्थ एकत्र होते हैं। इस तीर्थ की पवित्रता इसीसे स्पष्ट है कि पुष्कर की सीमा में किसी जीवित प्राणी की हत्या नहीं होती।

जिस प्रकार वैदिक हिन्दू-धर्म अनादि काल से चला आता है, उसी तरह पुष्कर भी एक अत्यन्त प्राचीन नगरी है। रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों में भी पुष्कर का वर्णन मिलता है। पञ्च-पुराण में पुष्कर का सविस्तर वृत्तान्त है। ब्रह्मा जी यज्ञ करने के लिए किसी उपयुक्त स्थान की खोज में थे। इतने में उनके हाथ से कमल छूट कर भूमि पर, तीन स्थानों में जा गिरा, जहाँ से जल निकल आया। ब्रह्मा ने उतर कर कमल-सूचक 'पुष्कर' शब्द से उन स्थानों का 'पुष्कर' नाम रक्खा। लगभग ६ मील के घेरे में ज्येष्ठ (या 'बूढ़ा'), मध्य और कनिष्ठ पुष्कर, ये तीनों स्थान आज भी विद्यमान हैं।

पुष्कर में स्नान और देवमन्दिरों के दर्शन की ही प्रधानता है। मन्दिरों में ब्रह्मा जी, सावित्री माता, श्रीबाराह जी, श्रीरङ्गजी (पुराना मन्दिर), अट-मटेश्वर महादेव और रमावैकुण्ठ का नया मन्दिर उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मा जी का वर्तमान मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं है, किन्तु भारतवर्ष में इसकी बहुत अधिक प्रसिद्धि है। इसका कारण यह है कि इस समय भारत में ब्रह्मा के ऐसे मन्दिर बहुत ही कम, वरन् नहीं के बराबर हैं, जहाँ नियमानुसार पूजा होती हो। वि० सम्वत् १८६६ में सिन्धिया के मन्त्री गोकलचन्द पारख ने १३००००) व्यय करके इसका जीर्णोद्धार करवाया था।

बाराह-मन्दिर एक प्राचीन देवालय है। इसे अजमेर के चौहान-वंशीय राजा अय्योराज (सन् १२३३-५० ई०)

ने बनवाया था। प्रातः स्मरणीय महाराजा प्रताप के भाई संगर ने इसकी मरम्मत करवाई थी। सन् १६१३ ई० में दिल्ली के मुगल बादशाह जहाँगीर ने इस मन्दिर के विष्णु के बराह अवतार की प्रतिमा को तुड़वा कर पुष्कर के सरोवर में डलवा दिया था। बादशाह औरङ्गजेब ने इस देवालय को भी गिरवा दिया था। जयपुर के महाराजा जयसिंह (द्वितीय) ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। वर्तमान प्रतिमा की प्रतिष्ठा सन् १७२७ ई० में हुई।

वर्तमान समय के बने हुए देवालयों में श्रीरङ्गजी और रमा-वैकुण्ठ का नया बना हुआ मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीरङ्गजी का मन्दिर सन् १८२३ ई० में हैदराबाद (दक्षिण) के सेठ पूरणमल द्वारा बनवाया गया था। यह मन्दिर सुप्रसिद्ध धर्माचार्य रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय के वैष्णवों का देवालय है। रामानुज का जन्म सन् १०१६ ई० में मद्रास प्रान्त के भूतपुरी नामक स्थान में हुआ था। इस मन्दिर के सब पुजारी मद्रासी ब्राह्मण हैं। इस सम्प्रदाय के सब अनुयायी, वे चाहे जिस जाति के हों, चौका-पद्धति का विचार छोड़ कर एक साथ भोजन करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व जोधपुर राज्य के डीडवाणा गाँव के भगवद्भक्त-शिरोमणि सेठ श्रीमङ्गलाराम रामकुँवर माहेश्वरी ने रमा-वैकुण्ठ का सुविशाल मन्दिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा दक्षिण देशीय पद्धति से वि० सं० १६८१ (सन् १९२४ ई०) में हुई थी। अजमेर से पुष्कर जाते हुए क्रस्वे में यही सबसे पहला मन्दिर मिलता है।

शिवालयों में अटमटेश्वर महादेव का मन्दिर और मरहटा सेनापति जयभापा सिन्धिया की छत्री के साथ का देवालय दर्शनीय हैं। पुष्कर सरोवर के घाटों में गौघाट, बाराह-घाट और ब्रह्म-घाट अधिक प्रसिद्ध हैं।

पुष्कर के उपर्युक्त देवालयों के अतिरिक्त क्रस्वे के

अनुमान दो मील दक्षिण में एक पहाड़ी पर बना हुआ सावित्री देवी का मन्दिर भी दर्शनीय है। प्रतिवर्ष भाद्र-पद शुक्ला ८ को वहाँ बड़ा मेला लगता है, जिसमें अजमेर तथा अन्य समीपवर्ती स्थानों से अनेक मनुष्य दर्शनार्थ जाते हैं। सावित्री मन्दिर के सम्बन्ध में एक दन्त-कथा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। पहले यहाँ ब्रह्मा-द्वारा यज्ञ होने का उल्लेख किया गया है। हिन्दू धर्मशास्त्र के नियमानुसार प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलम्बी के धार्मिक कृत्यों में उसकी धर्मराज्ञी की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है। यज्ञ का आरम्भ करने के लिए ब्रह्मा को अपनी स्त्री सावित्री की प्रतीक्षा करनी पड़ी। सावित्री ने आग्रह किया कि वे लक्ष्मी, पार्वती और इन्द्राणी को साथ लिए बिना न आएँगी। उन्हें बुलाने के लिए पवन को भेजा गया। यज्ञ का निश्चित समय निकट था, पर उस समय तक पार्वती आदि के न आ सकने से सावित्री उपस्थित न हो सकीं। इस पर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने किसी कन्या को खाने के लिए इन्द्र को आज्ञा दी। उनका उस कन्या से विवाह करके यज्ञ आरम्भ करने का विचार था। इन्द्र शीघ्र ही गायत्री नाम की किसी गृजर-कन्या को ले आए और ब्रह्मा के विवाह के पश्चात् यज्ञ आरम्भ कर दिया गया। इतने में शिव जी की आज्ञा से एक दैत्य ने प्रकट होकर यज्ञ-कार्य में बाधा उपस्थित की। अन्त में शङ्कर ने इस शर्त पर उस बाधा को दूर किया कि पुष्कर में उनका भी देवालय रहे। यज्ञ की समाप्ति के समय सावित्री भी उपस्थित हो गई और अपने स्थान पर गायत्री को देख कर उन्हें बहुत क्रोध हुआ। ब्रह्मा ने उन्हें शान्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसमें वे सफल न हुए। अन्त में सावित्री रष्ट होकर पुष्कर से दक्षिण रत्नगिरी नामक पहाड़ी पर चली गई, जहाँ इस समय उनका मन्दिर बना हुआ है।



अस्पृश्यता-निवारण

[श्री० राजेन्द्रलाल दास, बी० ए०]



अ

अस्पृश्यता-निवारण के जिस आन्दोलन ने सारे देश में उथल-पुथल मचा दी है, वह सर्वथा नवीन नहीं है। यदि कॉङ्ग्रेस के इतिहास को ही देखें तो बिदित होगा कि जब से महात्मा गाँधी ने उक्त संस्था का सञ्चालन-सूत्र अपने हाथ में लिया है, तभी से उसके रचनात्मक कार्यक्रम का यह एक महत्वपूर्ण अङ्ग रहा है। इतना ही नहीं, तथाकथित सनातनधर्म के सूत्रधारों का विरोध भी न्यूनाधिक वर्तमान रूप में ही इस कार्यक्रम के प्रति उसी समय से चला आ रहा है। सन् १९२१ ई० के अन्त में अहमदाबाद में राष्ट्रीय महासभा का जो ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ था, उसमें भी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीभारती-कृष्ण तीर्थ जी ने कॉङ्ग्रेस-कार्यक्रम के इस अङ्ग का जोर विरोध किया था। कहना ब होगा कि उस समय वे महाशय महात्मा जी के असहयोग-आन्दोलन के प्रबल पक्षपाती एवं प्रमुख नेता थे। फिर भी वे सनातनधर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में अपनी अन्त-भावना को बदल नहीं सके थे और राष्ट्रीय महासभा के मञ्च से भी अस्पृश्यता-निवारण के कार्यक्रम का विरोध करने से न चूके। यह तो हुआ राष्ट्रीय आन्दोलन के अङ्ग रूप में इसका विवरण। किन्तु इतना ही जानना यथेष्ट नहीं है। सच तो यह है कि असहयोग-आन्दोलन के बहुत पूर्व से ही यह प्रश्न देश के सार्वजनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन चुका था। देश के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में अपूर्व जागृति का सञ्चार करने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसकी ओर भी सङ्केत किया था तथा उनके सुयोग्य शिष्य एवं भारत के अमर-राष्ट्रीय स्वामी अन्नानन्द जी ने उसे क्रियात्मक रूप दिया

था। राष्ट्रीय आन्दोलन की सच्ची इतिवृत्ति जानने वालों से यह छिपा नहीं है कि कॉङ्ग्रेस की कार्य-समिति से मतभेद होने पर जब उक्त स्वामी जी ने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना प्रारम्भ किया था, उस समय 'शुद्धि' के साथ ही 'दलितोद्धार' को भी उन्होंने अपने कार्य-क्रम में स्थान दिया था।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि इस ऐतिहासिक विवरण का उपयोग इस विषय में क्या है? आन्दोलन जाड़े नवीन हो या प्राचीन, हमें तो उसकी उपयोगिता मात्र पर विचार करना चाहिए। पर तनिक सोचने पर ही इस प्रश्न की निरर्थकता कमर में आ जायगी। ऐतिहासिक विवरण से एक तो अनेक व्यक्तियों का यह भ्रम दूर हो जा सकता है कि यह आन्दोलन वर्तमान समय की किसी और ही आवश्यकता की पूर्ति के हेतु उठाया गया है। दूसरे इसके सहारे कार्यकर्तागण यह भी सोच सकते हैं कि अब तक इस आन्दोलन की यथेष्ट प्रगति क्यों नहीं हुई। इसी सिद्धांत में यह बता देना भी नितान्त आवश्यक है कि १९२१ ई० में कॉङ्ग्रेस के लाहौर वाले युग-परिवर्तनकारी अधिवेशन के समय विषय-निर्धारणी-समिति में महात्मा गाँधी ने 'बर्खा-सङ्ग' की भाँति 'अस्पृश्यता-निवारण' के लिए भी कॉङ्ग्रेस के शासन से पृथक् एक संस्था की स्थापना की आवश्यकता बताते हुए इस विषय को उसके चालू कार्यक्रम से पृथक् कर देने का प्रस्ताव रखा था, पर अधिकांश सदस्यों की अदूरदर्शिता के कारण उन्हें सफलता नहीं मिली।

इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से इस आन्दोलन का अध्ययन करनेवालों को दो बातों का सुस्पष्ट ज्ञान हो जायगा। एक तो यह कि राष्ट्रीय-आन्दोलन की भाँति ही इस आन्दोलन के भी अनेक पहलू हैं और उनमें से राजनैतिक पहलू की अपेक्षा उसके सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं की महत्ता किञ्चिन्मात्र न्यून नहीं है।

प्रस्तुत इस विषय के ये ही दोनों पहलू प्रधान तथा मौलिक हैं। जिस प्रकार खादी का महत्व मुख्यतया आर्थिक है और उसकी राजनैतिक महत्ता भी मूलतः इसी पर निर्भर है, उसी प्रकार 'अस्पृश्यता' का प्रश्न भी मौलिक रूप में सामाजिक एवम् धार्मिक ही है, और देश के राजनैतिक जीवन पर भी जो उसका विषम प्रभाव पड़ रहा है, उसका मूल कारण भी इसके धार्मिक एवम् सामाजिक पहलुओं में ही निहित है। इस कथन का एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि जिस समय देश में राजनैतिक प्रश्न वर्तमान रूप में उपस्थित नहीं था, उस समय भी देश के अधिकांश धर्म-सुधारकों तथा प्रधान-तया हिन्दू-धर्म के मर्मभूत सिद्धान्त—भक्तिवाद—के प्रचारकों ने अस्पृश्यता का घोर विरोध किया था और 'जात-पाँत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' वाले सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप में प्रचार किया था।

दूसरी बात, जो इस ऐतिहासिक अनुशीलन से ज्ञात होती है, यह है कि अब तक 'अस्पृश्यता' के इस महारोग को दूर करने का जो प्रयत्न किया गया, वह एकान्त एवम् एकाग्र रूप से नहीं हुआ। पर इतने बड़े प्रश्न को किसी दूसरी मइती समस्या का आनुवर्णिक प्रश्न बना कर हल नहीं किया जा सकता। ज्ञास कर इसे किसी प्रचण्ड राजनैतिक आन्दोलन के कार्यक्रम का अंश बना कर तो कभी हल किया ही नहीं जा सकता। उस अवस्था में तो इस दिशा में सदैव 'थोड़ा बहुत' कार्य ही होता रहेगा और यह स्पष्ट है कि इस तरह थोड़े-बहुत कार्य से इतनी बड़ी बुराई को दूर नहीं किया जा सकता। कॉङ्ग्रेस का अब तक का प्रयत्न इसी बात का साक्षी है।

इन दो तथ्यों का परिज्ञान हो जाने पर सुगमतापूर्वक महात्मा गाँधी के वर्तमान आन्दोलन के मर्म को समझा जा सकता है। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी के लेखों, व्याख्यानों एवम् वक्तव्यों के द्वारा यही ज्ञात होता है कि वे 'अस्पृश्यता' को विशुद्ध धार्मिक दृष्टि से ही हिन्दू-धर्म का कलङ्क समझते हैं और इस आन्दोलन के द्वारा हिन्दू-धर्म के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन करने की कुचेष्टा वे नहीं कर रहे हैं। सामाजिक दृष्टि से भी वे 'अस्पृश्यता' को सङ्गठन की मूल भिन्नि—समता—का

विनाश करने वाली एवम् अवाञ्छनीय दुर्बलता की जननी समझते हैं। और इन्हीं दोनों मौलिक दुर्गुणों के कारण इसने राजनैतिक क्षेत्र में भी अनावश्यक मतभेद की सृष्टि कर रखी है। इसलिए जो लोग महात्मा जी को हिन्दू-धर्म को अष्ट करने वाला और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला समझते हैं, वे उनके वास्तविक उद्देश्यों को समझते ही नहीं। इस नासमझी का प्रधान कारण यही है कि निष्पक्ष एवम् निरपेक्ष भाव से उनके आन्दोलन का अनुशीलन नहीं किया जाता। इतना ही नहीं, आक्षेपकर्तागण आलोचना के समय शान्ति से भी काम नहीं लेते। तात्पर्य यह कि क्रोधावेश तथा पक्षपात के साथ ही वर्तमान 'अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन' का अध्ययन किया जाता है और विरोधियों में से अधिकांश इसी कारण भ्रान्त भाव से ही इसका विरोध करते रहते हैं। यह बहुत अवाञ्छनीय स्थिति है, और इसका निराकरण तत्त्व-ज्ञान से ही हो सकता है।

तत्त्व-ज्ञान के लिए शान्त भाव से विचार करने की आवश्यकता है और इस रूप में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि अस्पृश्यता का वर्तमान रूप हिन्दूधर्म की विमलता का बिनाशक है, यद्यपि विपक्षियों की धारणा यही है कि धर्म की शुद्धता की रक्षा के लिए ही इस प्रथा का प्रचलन हुआ है। परन्तु धर्म का जो वास्तविक रूप है उसकी दृष्टि से देखने पर यह धारणा अतिमूलक ही जान पड़ती है। धर्म की शुद्धता मूलतः आन्तरिक शुद्धता ही है, बाह्य शुद्धि का स्थान गौण है। इस दृष्टि से अन्तःकरण एवं आचरण की शुचित्ता का ध्यान रख कर ही किसी व्यक्ति किंवा वर्ग को अशुद्ध माना जा सकता है। इस बात को समझाने के लिए विशेष तर्कों की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान अस्पृश्य जातियाँ इसी कारण अस्पृश्य नहीं मानी जातीं। उनके अशुद्ध माने जाने का कारण है बाह्य शौच की भावना। इस भावना की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सच है तथा यह भी सच है कि बाह्य शौच गौण होते हुए भी धर्म का एक आवश्यक अङ्ग है। पर बाह्य शौच की जो भावना वर्तमान समाज में काम कर रही है, वह भी निभ्रान्त नहीं है। शौच के स्वरूप के ज्ञान के लिए अशौच का रूप जानना चाहिए। आन्तरिक अशुचित्ता का वहाँ प्रश्न ही नहीं है। बाह्य शौच एकाध विशेष



अवस्था को छोड़ कर कभी जीवन-व्यापी एवं स्थायी नहीं हो सकता। अस्पृश्यों के जो धन्धे अपवित्र माने जाते हैं वे भी ऐसे नहीं हैं जिनमें वे सदा संलग्न रहें। वे भी श्वास-प्रास समय में ही उन कार्यों का सम्पादन करते हैं, तत्पश्चात् वे वाह्य शुद्धि कर सकते हैं और शुद्ध माने जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी जानना चाहिए कि मनुष्य-मात्र नित्यप्रति समय विशेष पर इस प्रकार वाह्यतः अशुद्ध होते हैं तथा समुचित शुद्धि-संस्कार के अनन्तर शुद्ध हो जाते हैं। इस अवस्था में कई गन्दे समझे जाने वाले धन्धों के कारण किसी भी मनुष्य-वर्ग को सदा के लिए अशुद्ध मान बैठना सरासर भ्रम के सिवा और कुछ नहीं समझा जा सकता। इस विषय में यह समझ लेना भी आवश्यक है कि मूल को दूर करने का कार्य अशुद्ध नहीं है, प्रत्युत उसको दूर करने में आज्ञास्व एवं प्रमाद करना ही अशुचित है। इस दृष्टि से अस्पृश्य कहे जाने वाले भाई शुद्धिकर्ता होने के कारण अधिक पवित्र माने जायँ, यही समीचीन है, न कि उनका अपवित्र माना जाना समीचीन है। इस विवेचन से सिद्ध हुआ कि अपने व्यवसाय की दृष्टि से अस्पृश्य बन्धु सामूहिक अशुद्धि का निराकरण करने वाले हैं, अतएव नैतिक दृष्टि से भी उनके ये धन्धे उच्च ही हैं, नीच कदापि नहीं। इस स्थान पर उनकी गन्दी रहन-सहन की बात उठाई जा सकती है। पर उसका सीधा उत्तर यही है कि उनके व्यवसाय के साथ इसका अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है और मनोविज्ञान की दृष्टि से शेष समाज के द्वारा निरादृत होकर उनमें शुद्धि की भावना अवश्य दुर्बल होगी और जब वे देखेंगे कि स्वच्छता का ध्यान रखने पर भी उनके साथ जो बर्ताव होता है वह बदल नहीं सकता, तब उनका उत्साह निश्चय ही भग्न हो जायगा। वस्तुतः यही हुआ है और इस दृष्टि से उनकी वर्तमान रहन-सहन की गन्दगी के लिए मुख्यतया उच्चवर्गीय जन ही उत्तरदायी हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान अस्पृश्यता की कोई धार्मिक भित्ति नहीं है।

परन्तु बात इतनी ही नहीं है। अस्पृश्यता की वर्तमान दुर्भावना धर्म के वास्तविक तत्वों के विरुद्ध एवं उसके मूल पर ही कुठाराघात करने वाली है। सच्चा धर्म पतितपावन होता है, न कि पतितों को सदा उसी

अवस्था में छोड़ देने वाला। हिन्दू-धर्म की तो पतित-पावनता एक मुख्य विशेषता है। हिन्दू-धर्म तो वस्तुतः समता, स्नेह, सहानुभूति, श्रद्धा एवं उदारता का धर्म है। किन्तु अस्पृश्यता की यह कुभावना इन सब दैवी गुणों के प्रतिकूल है। यह दूषित भावना तो गिरे हुआओं को और भी गिराने वाली, सहधर्मियों में ही भयङ्कर विषमता की सृष्टि करने वाली तथा घृणा, उपेक्षा एवं अनुदारता को उत्पन्न करने वाली है। हिन्दू-धर्म की एक यह भी प्रशंसनीय विशेषता है कि उसमें सब श्रेणी के लोगों के लिए पृथक्-पृथक् उपासना-पद्धतियों का समावेश है। मूर्ति-पूजा अपेक्षाकृत अल्प मानसिक विकास वाले मनुष्यों के ही उपयुक्त है और इस दृष्टि से तथाकथित अस्पृश्य वर्ग के मनुष्यों को उसकी सर्वतोऽधिक आवश्यकता है। पर पतित-पावन भगवान एवं उनके विभूति-स्वरूप देवताओं की प्रतिमाओं के पूजन तक का अधिकार इनको नहीं है। इससे बढ़ कर अन्याय दूसरा हो नहीं सकता। विधिपूर्वक प्रतिष्ठित मूर्तियाँ इनके स्पर्श मात्र से तेजहीन तथा दूषित हो जायँगी, यह कुकल्पना सङ्कीर्णता तथा मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपनी च्यक्तिगत उपास्य मूर्ति को कोई अत्यधिक सुरक्षित रखने की चेष्टा करे तो एक बात भी है, पर बड़े-बड़े तीर्थ-स्थानों में स्थित एवं अग्न्य सार्वजनिक मन्दिरों में प्रवेश कर पूजा का समानाधिकार न देना तो नङ्गा अन्याय तथा स्वत्वापहरण मात्र है। और इस धार्मिक स्वत्व के अपहरण से बड़ा पाप और हो ही क्या सकता है? तत्पर्य यह है कि धार्मिक विचार से अस्पृश्यता की वर्तमान भावना पाप और ताप की ही सृष्टि करने वाली है। इसीलिए अस्पृश्यता के आधुनिक रूप को महात्मा गाँधी ने हिन्दू-धर्म के लिए कलङ्क कहा है। वस्तुतः मानव-समाज के एक सम्पूर्ण वर्ग को पतन के गम्भीर गर्त में डाल देने वाली व्यवस्था धर्म का कलङ्क होने के सिवा और हो ही क्या सकती है?

इन बातों से यह पुष्टरूपेण प्रमाणित हो जाता है कि धार्मिक दृष्टि से अस्पृश्यता का वर्तमान स्वरूप समर्थनीय नहीं है। इसका एक हीनतम परिणाम यह भी हुआ है कि अस्पृश्यों में आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास के उदात्त भावों का विलोप हो गया है; और यह



विलोप उनकी नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का बाधक है। इसीसे उच्च वर्गीय हिन्दू-धर्मावलम्बियों में भी मिथ्याभिमान की उत्पत्ति होती है, जो आत्म-सम्मान-हीनता के समान ही नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास का विधातक है।

एक दूसरी दृष्टि से भी अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म को अपरिमेय छति पहुँचा रही है। अस्पृश्य कहलाने वाले वर्ग की पतितावस्था से अन्य धर्म के प्रचारक तथा अनुयायियों को अपना हाथ बढ़ाने का सुअवसर प्राप्त होता है और इससे लाभ उठा कर वे हिन्दू-धर्म में श्रद्धा रखने वाले इन भाइयों को अपने धर्म की दीक्षा देने में सफल होते रहे हैं। इससे हिन्दू-धर्म के अनुगामियों का संख्यात्मक ह्रास होता है, जो कदापि वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। यही नहीं, अस्पृश्यता का वर्तमान रूप केवल सहधर्मियों में ही विषमता उत्पन्न करके नहीं रह जाता, प्रत्युत कई क्षणों में वह अस्पृश्यों को अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में भी सहधर्मियों की ही दृष्टि में गिरा देता है, जिसका परिणाम यही होता है और हो सकता है कि इसका तीव्र अनुभव होते ही हिन्दू-धर्म का आश्रय छोड़ देते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि अस्पृश्यता का यह दूषित रूप अवाञ्छनीय घृणा, विषमता एवं अनैतिकता के कलुषित वातावरण की सृष्टि करके सच्चे धर्म के उत्कर्ष को रोकता है तथा उसके नाम पर एक पाखण्डपूर्ण दुर्व्यवस्था की रचना करता है।

यहाँ तक तो धार्मिक और नैतिक दृष्टि से अस्पृश्यता के प्रश्न का विवेचन हुआ। अब सामाजिक दृष्टि से विचार करना उचित है। किसी भी समाज की स्थिति का आधार इसका सुदृढ़ सङ्गठन है और ऐसे सङ्गठन के लिए अधिकारों एवं कर्तव्यों के न्याय-सङ्गत तथा समुचित विभाजन की अनिवार्य आवश्यकता है। इसीसे समाज-सङ्गठन के मूलतत्त्व सहयोग-सिद्धान्त का संरक्षण तथा सुचारु सञ्चालन हो सकता है। किन्तु हिन्दू-समाज का वर्तमान सङ्गठन सुदृढ़ नहीं है और न उसका उष्युक्त आधार ही प्रकृत रूप में है। पर यहाँ इस विषय का आलोचना विस्तारपूर्वक नहीं की जा सकती। इस निबन्ध में तो 'अस्पृश्यता' की दृष्टि से ही विचार करना समीचीन होगा। इस प्रकार विचार करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दू-समाज का अस्पृश्य-वर्ग सामाजिक

दृष्टिकोण से सर्वथा बहिष्कृत एवं समाजमुक्त मनुष्य के मौलिक प्रारम्भिक अधिकारों से भी वञ्चित है। इस वर्ग को वरिष्ठ वर्ग के साथ सार्वजनिक सभाओं में एक साथ बैठने, सार्वजनिक जलाशयों का उपयोग करने तथा सार्वजनिक शिक्षणालयों में उसके साथ शिक्षा प्राप्त करने के स्वत्व भी प्राप्त नहीं हैं। दक्षिण-भारत के कई भागों में तो इन्हें सार्वजनिक मार्गों पर चलने के अधिकार से भी वञ्चित रक्खा गया है। यही नहीं, वरिष्ठ वर्ग ने इस कनिष्ठ वर्ग की कई उपजातियों को एक खास तरह की रहन-सहन रखने के लिए भी मजबूर किया है और सदियों के अत्याचार एवं दबाव के कारण इस वर्ग की आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय हो गई है। इस भयङ्कर एवं सर्वाङ्गीण बहिष्कार ने इस वर्ग को सर्वतोभावेन दीन-हीन बना डाला है। इसी कारण इनके स्वाभाविक मनुष्योचित गुणों का विकास नहीं हो सकता और महत्वाकांक्षा का सर्वथा नाश हो जाने से ये किसी भी रूप में उन्नति-पथ पर अग्रसर होने की चेष्टा नहीं कर सकते। और यदि चेष्टा करें भी तो वर्तमान दुर्व्यवस्था के रहते हुए इन्हें पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हो सकता।

इस प्रकार हिन्दू-समाज ने अपने ही एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग को निर्बल एवं निःसत्त्व बना कर अपनी दुर्बलता बढ़ा ली है। यह कहना भी अत्युक्ति नहीं कि उसने घातक आत्म-बहिष्कार कर रक्खा है, जिसके दो ही कुपरिणाम हो सकते हैं। या तो अस्पृश्य वर्ग धर्म-परिवर्तन करके हिन्दू-समाज का कट्टर विरोधी बन जायगा या वर्तमान युग की स्वाभाविक गति की प्रेरणा एवं प्रभाव से लाभ उठा कर आत्मोद्धार-पूर्वक अपना नवीन दल स्थापित करेगा। इनमें से प्रथम परिणाम अब से बहुत पहले से ही प्रकट हो चुका है और इधर कुछ समय से दूसरे का भी प्रकटीकरण हो रहा है। पर ये दोनों स्थितियाँ किसी भी स्वदेश-प्रेमी एवं प्रगमन-शील हिन्दू के लिए समाधानकारिणी नहीं हैं, न हो सकती हैं। किसी भी रूप में हो, अपने समाज के अङ्गच्छेद को कोई भी सहृदय तथा बुद्धिमान व्यक्ति सहन नहीं कर सकता। किन्तु केवल ग्लानि एवं विकलता से कुछ नहीं होने का। सोचना तो यह चाहिए कि जिस अङ्ग को जान-बूझ कर अशक्त तथा रोग-ग्रस्त



रक्षा जायगा, कभी न कभी, किसी न किसी रूप में उससे हाथ भोना ही पड़ेगा। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि पूरी लगन और तत्परता के साथ उसकी अशक्ति एवं क्षमता को दूर करने का अग्रीम प्रयत्न किया जाय। आत्म-विनाश के कुपथ का परित्याग करके आत्मोद्धार के सुपथ का अवलम्बन किया जाय तथा सामाजिक हित, मनुष्यत्व एवं आध्यात्मिक एकता को हृदयङ्गम करके इस दिशा में अपने सम्योचित कर्त्तव्य का पालन किया जाय। इस कर्त्तव्य की अवहेलना करने से राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति में भी प्रचण्ड बाधा उपस्थित होगी और कदाचित् वह प्राप्त भी हो जाय तो राष्ट्र सुख-शान्तिपूर्वक उसका उपभोग एवं उपयोग नहीं कर सकता। इस प्रकार हिन्दू-समाज की इस गहर्णीय उपेक्षा का कुफल केवल उसी को नहीं, किन्तु समस्त राष्ट्र को भोगना पड़ेगा और इस दृष्टि से यह प्रश्न भारतीयता एवं राष्ट्रीयता की समस्याओं को भी स्पर्श करता है। किन्तु केवल दुःस्थिति का रोना रोने तथा कर्त्तव्य की दुहाई देने से काम नहीं चल सकता। समुचित उपायों के अवलम्बन से ही इस अवाञ्छनीय परिस्थिति का सुधार सम्भव है। अतएव ऐसे सद्दुपायों का निर्देश भी आवश्यक है।

किसी भी कार्य का प्रेरक किसी न किसी प्रकार का मनोभाव ही होता है और वह विषय इसका अपवाद नहीं हो सकता। अतएव सर्वप्रथम मनोभाव को अस्पृश्यता-निवारण जैसे महान् कार्य के अनुकूल बनाना आवश्यक है। इस कार्य का प्रारम्भ कार्यकर्त्तागण इस भाव से नहीं करें कि हम अस्पृश्य वर्ग के उद्धार का प्रयत्न करके उनका बड़ा उपकार कर रहे हैं और उनकी कृतज्ञता के पात्र हैं। प्रत्युत उनका भाव यह होना चाहिए कि हम अपने सदियों के स्वत्वा-पहरण-रूप महापाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं तथा उनके अपहृत अधिकारों को उन्हें देकर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। इस प्रकार सच्ची भावना से प्रेरित होकर कार्य करने से ही उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं। इसी सार्विक भाव से कार्यक्षेत्र में पदार्पण करने से कार्यकर्त्तागण अट्टा एवम् बल से बच सकते हैं और संशय एवम् अविरवास के वर्तमान बातावरण को बदल कर विरवास तथा

निःशङ्कता के वायुमण्डल की सृष्टि कर सकते हैं। यदि वे नम्रता और सेवा की सद्भावनाओं के साथ इस महत् कार्य के सम्पादनार्थ अग्रसर न होंगे तो इस दलित वर्ग की मनोवृत्ति में अभीष्ट परिवर्तन नहीं हो सकता। दृष्टसिद्धि के लिए कार्यकर्त्ताओं के मनोभाव की भाँति इन पीड़ित बान्धवों की भावनाओं में परिवर्तन होना भी नितान्त आवश्यक है। इसके लिए इनकी मनोवृत्ति भी अनुकूल होनी चाहिए। पर यह तभी हो सकता है, जब उनके हृदयों में आत्मोन्नति की आकांक्षा, आत्म-विश्वास एवम् आत्म-सम्मान के भावों को जाग्रत किया जाय। और उन भावों का जागरण तब तक हो नहीं सकता, जब तक विनय, प्रेम तथा श्रद्धा के साथ उनकी सेवा न की जाय।

यहाँ यह बतला देना भी प्रसङ्गानुमोदित ही है कि महात्मा गाँधी ने मनोभावों के वाञ्छनीय परिवर्तन के विचार से ही 'दलित', 'अस्पृश्य', 'अछूत' आदि शब्दों के बदले 'हरिजन' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ किया है। इस शब्द के निरन्तर प्रयोग से अस्पृश्य वर्ग के लोगों में आत्म-सम्मान का भाव जाग्रत होगा तथा वरिष्ठ वर्ग के कार्यकर्त्ताओं एवम् अन्य मनुष्यों के हृदयों से घृणा और अश्रद्धा की कुभावनाओं का निवारण होकर उनके स्थान में प्रीति एवम् श्रद्धा की पुनीत भावनाओं का उद्रेक होगा।

किन्तु केवल भाव एवम् नाम के परिवर्तन से अभीष्ट-सिद्धि नहीं हो सकती। इसके लिए सुव्यवस्थित सङ्गठन की आवश्यकता है और 'हरिजन सेवक-सङ्घ' इसी आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है। पर अभी तक इस सङ्घ का सङ्गठन पर्याप्त रूप से व्यापक नहीं बन सका है। अखिल भारतीय सङ्घ की प्रान्तीय शाखाओं के साथ-साथ हर एक जिले में भी सङ्गठन होना चाहिए और जिले के भिन्न-भिन्न भागों एवम् गाँवों तथा ग्राम-समूहों में सङ्गठन का विस्तार होने से ही कार्य-सञ्चालन सुचारु रूप से हो सकेगा। इस दृष्टि से उपर्युक्त सङ्घ की नियमावली ठीक है, परन्तु वस्तुतः कार्य अभी तक तदनु-रूप नहीं हो सका है। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। एक तो कार्यकर्त्ताओं की पर्याप्त संख्या का अभाव और दूसरा शिक्षित लोगों का शहरों में कार्य करने का पुराना दुःस्वभाव। जो हो, महात्मा गाँधी की सपथर्पा एवम्



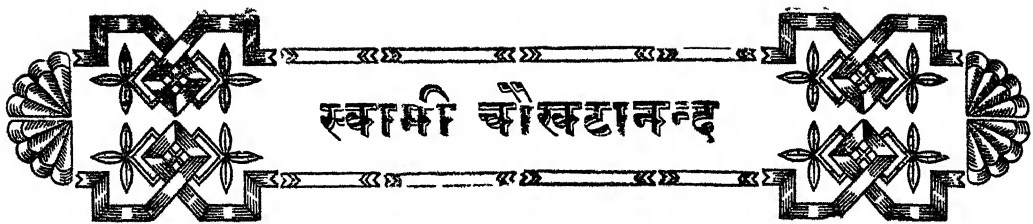
नवयुग की महती जागृति के समय ये दोनों ही बातें अत्यन्त क्लेशकर तथा लज्जाजनक हैं। इनका जितना शीघ्र निराकरण हो उतना ही अच्छा।

समुचित सङ्गठन के पश्चात् उपयुक्त कार्यक्रम का प्रश्न आता है। इस सम्बन्ध में मन्दिर-प्रवेश की बात को कुछ लोग गौण स्थान देते हैं, पर उच्च वर्ग के धार्मिक दृष्टिकोण में समीचीन परिवर्तन करने तथा हरिजन भाइयों को वास्तविक धार्मिक अधिकार देने की दृष्टि से इसे भी कार्यक्रम का मुख्य अङ्ग मानना ही उचित है। इसके साथ ही शिक्षा और आर्थिक स्थिति के सुधार का कार्य पूरे वेग से होना चाहिए। शिक्षा के अन्तर्गत पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त स्वच्छता की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक शिक्षा का भी समावेश होना आवश्यक है। पूर्व संस्कार का परित्याग कर निःसङ्कोच भाव से मिलने-जुलने से सफ़ाई के सम्बन्ध में हरिजनों को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होगा और ऐसा होने से शुरू-शुरू में मजबूरी के मारे भी उन्हें सफ़ाई का ज़्यादा रखना पड़ेगा। मानसिक शिक्षा के लिए सरकारी और गैर-सरकारी दोनों तरह की संस्थाओं में उनके बच्चों का प्रवेश होना चाहिए और प्रारम्भिक प्रोत्साहन तथा आर्थिक दुरवस्था का विचार करके उन्हें विशेष सुविधाएँ एवं सहायता भी प्राप्त होनी चाहिए। आर्थिक दुःस्थिति के निवारणार्थ उनके लिए विशेष प्रकार की सहयोग-समितियों की स्थापना हो, उन्हें अपने धन्धों को परिष्कृत एवं उन्नत ढङ्ग से करने की सुविधा और उत्तेजना दी जाय तथा थोड़ी आय में कभी कुछ न कुछ सञ्चय करने की शिक्षा प्रदान की जाय तो उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। साथ ही उन्हें महाजनों एवं ज़मीन्दारों के अत्याचारों से बचाने का यत्न होना भी परमावश्यक है। सार्वजनिक जलाशयों का उपयोग वे स्वच्छन्दतापूर्वक कर सकें, इसके लिए पूर्ण प्रयत्न निरन्तर जारी रहना चाहिए। उन्हें जल का कष्ट न हो, इसका पूरा ध्यान रखा होगा, नहीं तो स्वच्छता की व्यावहारिक शिक्षा का कार्यक्रम भी सम्यक् प्रकार से कार्यान्वित नहीं

हो सकेगा। धार्मिक एवं वैदिक भावनाओं की समुचित जागृति के लिए कथा और कीर्तन का प्रचार अत्यन्त उपयुक्त होगा। श्री० तुलसीदास रामायण के षठन-पाठन का क्रम भी जारी होना चाहिए। उनकी गम्भीर आदतों को छुड़ाने, अभक्ष्य भक्षण को वर्जित करने तथा मादक द्रव्यों के सेवन से उन्हें विरत करने की पूरी चेष्टा होना भी अत्यावश्यक है। पर इन सब बातों के लिए स्वयं हरिजनों को ही सङ्गठित करने, उनकी पञ्चायतों को सुदृढ़ रूप में स्थापित करने एवं उनकी भिन्न-भिन्न उपजाति में जो पारस्परिक अस्पृश्यता है, उसे दूर करने का अङ्कान्त उद्योग होना चाहिए। 'हरिजन सेवक-सङ्घ' के कार्यक्रम में क़रीब-क़रीब सभी बातों का समावेश होता है, पर इनका कार्यान्वित होना कार्य-कर्ताओं की संख्या तथा संलग्नता पर निर्भर है। आवश्यकता इस बात की है कि कार्यकर्तागण गाँवों में हरिजन भाइयों के सम्पर्क एवं समीपता में ही धूनी रमा दें और 'अस्पृश्यता' का अन्त करने के महान् कार्य में प्राणपण से जुट जायें।

परन्तु अन्त में इस सम्बन्ध में एक चेतावनी दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि कठिनाइयों से घबड़ा कर हरिजनों के लिए भिन्न मन्दिर, भिन्न जलाशय एवं भिन्न शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की प्रवृत्ति को प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए। इससे भेद-भाव ज्यों का त्यों रह कर एक नवीन रूप धारण कर लेगा और जिस समता एवं आतृ-भाव की स्थापना के लिए इस महात्मा आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है, उसका सञ्चार नहीं हो सकेगा। फलतः सच्चे अर्थों में 'अस्पृश्यता' का निवारण भी नहीं होगा और संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष की सारी साधनाओं पर पानी फिर जायगा। अतएव सभी विघ्न-बाधाओं को सहते हुए कार्यकर्ताओं को इस दिशा में, इसी लक्ष्य को स्थिर रख कर अग्रसर होना चाहिए, जिससे 'रोटी-बेटी' के व्यवहार को छोड़ कर अग्र्य सभी बातों में हिन्दू-धर्मावलम्बी सभी मनुष्य अभिन्न हो जायें।





[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

३



गों

हा ऐसे शहर के रहने वाले होने पर भी स्वामी जी को ज़िन्दगी में दो ही तीन बार रेल पर सफ़र करने का अवसर मिला था। वह भी अपने बड़ों के साथ। हर बार चुपके से कोने में बैठाल दिए गए तो मुक़ाम पर उतार लिए गए। बस इसके सिवाय खुद टिकट लेकर कहीं आने-जाने की ज़हमत नहीं उठानी पड़ी थी। हाँ, इतना जानते थे कि रेल में ज़नानी गाड़ी भी होती है। इस ज्ञान ने इन्हें और चौपट किया। वह बहकाने वालों की बात सच समझ कर अपनी टेक पर अड़े ही रहे कि मेरे साथ धोखा किया गया और टिकट बाबू ने जान-बूझ कर मुझे बेवक़ूफ़ बनाने के लिए ज़नानी गाड़ी का टिकट दे दिया। क्योंकि जब रेल में ज़नानी गाड़ी होती है तब उसका टिकट भी ज़रूर अलग होता होगा। मगर बेचने वाले ने खिड़की ही बन्द कर दी। सारा ताव बिगड़ गया। नहीं तो भले-मानुसों से दिल्लगी करने का मज़ा बाबूजी को मिल जाता। फिर भी स्वामी जी ने बकने-झकने में कोई कसर उठा नहीं रखी।

मुसाफ़िरख़ाने में ख़ासी भीड़ लग गई। मगर उसकी बातों पर सिवाय हँसने के किसी ने उनके अम मिटाने की फ़िक्र न की। ठलुओं को शिकार मिल गया। इन्हें ख़ूब चक्र पर चढ़ाया। हज़रत दौड़ गए स्टेशन-मास्टर के पास। मगर मुँह से कुछ कह न सके। ख़ाली उनके हाथ में टिकट दे दिया। उन्होंने टिकट देख कर कहा—“ओहो! गाड़ी तो छूट गई। अब दो घंटे बाद डाक मिलेगी।”

स्वामी जी गढ़बढ़ा कर बोले—मगर—मगर—मैं ही जाने वाला था। अपने—अपने—ख़ास अपने ही लिए टिकट लिया था।

“अच्छा अब डाकगाड़ी से जाना।”—यह कह कर स्टेशन मास्टर ने इनकी ओर टिकट फेंक दिया और एक ओर चलते हो गए।

स्वामी जी मन मार कर रह गए। अपनी चवव्ही पर सन्न करके घर की ओर मुँह किया। मगर चलते-चलते रुक गए। सोचा, टिकट लेकर सफ़र न करने में कहीं कोई जुर्म न हो। स्टेशन मास्टर ने भी कह दिया है कि डाक-गाड़ी से जाना। और टिकट के पैसे भी वसूल होंगे तो जाने ही में।

किसी आगा ने खाने की चीज़ समझ कर कहीं साबुन ख़रीदा था। खाने में डुरा लगा, मगर वह उसे खाता ही गया। लोगों ने पूछा—“अरे! आगा, साबुन खाता है?” उसने ज़बाब दिया—“साबुन नहीं, आगा अपने पैसे खाता है।” यही हाल मानों टिकट लेकर स्वामी जी का हुआ। गाड़ी के वक्त आप प्लेडफ़ार्म पर फिर मौजूद हो गए और दन से ज़नानी गाड़ी में बेधड़क घुस गए।

युवतियाँ घूँघट काढ़ कर सिमट गईं, मगर वृद्धाएँ मुँह नोचने को तैयार हो गईं।

स्वामी जी ने भी झुंझला कर कहा—जिनको परदे का ख़याल है वह तो बेचारी कुछ नहीं बोलतीं। इनको देखो, बुढ़ापे में यह नज़रा?

आफ़त हो गई। वृद्धाएँ एकदम किटकिटा पड़ीं। गाड़ी में ‘निकालो-निकालो’ की आवाज़ गूँज उठी।

स्वामी जी—काहे को निकलें? जब तुम लोग मर्दाना गाड़ी में बैठती हो तब तो हम लोग कुछ नहीं बोलते। और आज तुम लोगों की गाड़ी में ज़रा हम आ गए तो यह बेहूदापन? यही तुम लोगों की सभ्यता है? वाह री! कृतज्ञ स्त्रियाँ!

गाड़ी के सामने प्लेटफॉर्म पर कुछ लोग जमा हो गए। जिनके घरों की स्त्रियाँ थीं, वे भी अपने-अपने ढब्बे से निकल आए। मगर स्वामी जी अपनी जगह पर ऐसे डटे रहे कि मालूम होता था कि जब तक ज़बर-दस्ती उतारे न जाएँगे, खुद उतर नहीं सकते। लोगों ने रेल-कर्मचारियों को बुला लाने की धमकी दी। मगर इनकी अकड़ ढीली न पड़ी। खूँटे के बल बड़वा नाचता है। जानते थे कि परवाना तो मेरे पास है ही, मेरा कोई क्या कर सकता है। एंट कर बोले—हाँ-हाँ, जाओ बुलाओ, जिसको जी चाहे। मेरे पास टिकट है। ख़ास इसी गाड़ी का टिकट है। रेलवे वालों ने आँखें खोल कर दिया है। कुछ धोखे में नहीं। स्टेशन-मास्टर को भी दिखा चुका हूँ। सभसे ? मैं जाऊँगा तो इसी ढब्बे में जाऊँगा, चाहे जो हो।

स्वामी जी अब खुले। सचमुच इन्हें रेलवे वालों के डर या पैसा वसूल करने की नीयत से बढ़ कर ज़नाने ढब्बे में बैठ कर सफ़र करने का शौक ही खींच लाया था, जहाँ उन्हें प्रेम की सामग्री बहुतायत में मिलने की सम्भावना थी। जब टिकट बाबू ने दिल्लगी या बेवकूफी से उन्हें स्त्रियों के साथ सफ़र करने का 'लाइसेंस' दे दिया और उसे देखकर स्टेशन-मास्टर भी कुछ न मिनके, तब अपने मतलब का ऐसा शुभ अवसर पाकर छोड़ देना सरासर बेवकूफी थी। अगर यह बात इन्हें पहिले सूझी होती तो शायद यह टिकट वापस करने का इयाल भी न करते और टिकट बाबू को गालियों के बदले धन्यवाद देते। मगर मुसीबत यह हुई कि इनकी दलील एक-एक काम आई। परवाना बेअसर निकला। जिन रेलवे वालों पर उन्हें बड़ा गुमान था, उन्होंने ही इन्हें ज़बरदस्ती उतार दिया और ले जाकर एक ढब्बे में ठूँप दिया। वैसे ही गाड़ी चल पड़ी।

स्वामी जी को अब ज़नाने मर्दाने टिकट का हाल अच्छी तरह मालूम हो गया और यह भी समझ गए कि हम पहली गाड़ी से क्यों उतारे गए थे। क्योंकि यह गाड़ी चली ठीक उसकी उल्टी तरफ़। मगर अब अपनी शालितियों पर पड़ताने के सिवाय और बेचारे कर ही क्या सकते थे ? सबसे झ्यादा उन्हें इस बात का अफ़सोस था कि अगर ज़नानी गाड़ी में न भी बैठने को मिलता तो भी देख-भाज कर अपने पसन्द से किसी

मसालेदार गाड़ी में बैठते या मामला फीका पाकर न जाते, मगर रेलवे वालों ने तो हमें अनाप-शनाप गाड़ी में ढकेल कर हमारा सफ़र ही बेकार कर दिया। और वैसे ही गाड़ी छोड़ कर कम्बज़नों ने कूदने तक का भी मौका नहीं छोड़ा। इसी सोच में आप खड़े के खड़े ही रह गए। मुसाफ़िरों ने बैठने को कहा भी, तो आपने मारे गुस्से के उन्हें फाड़ खाया।

ज़ैर, ये तक्रदीर के साँड। और ईश्वर भी शकर-खोरे को शकर ही देता है। इसलिए इनके जब कुछ हवास ठिकाने हुए तो इन्हें दिखाई पड़ा कि इनसे दूर एक कोने में एक स्त्री बैठी हुई है और उसकी बग़ल में जगह ख़ाली है। यद्यपि पास में भी बैठने के लिए काफ़ी जगहें थीं, तो भी आप उचकते-फाँदने सीधे वही पहुँचे और उस स्त्री की बग़ल में आसन जमा देना चाहा। वैसे ही स्त्री के साथ अड़ोस-पड़ोस के लोग "यहाँ नहीं" "यहाँ नहीं" कह कर बिल्ला पड़े। इस हुल्लड़ में स्वामी जी कुछ ऐसे बौल्लाए कि हज़रत गड़बड़ा कर स्त्री की ओर मुँह किए उसके सामने के बेझ पर बैठने लगे, जहाँ उसका बच्चा सो रहा था। मगर बेचारे बीच ही में अपनी उँकड़ अवस्था में इस तुरी तरह ढकेल दिए गए कि फ़र्श पर औंधे गिर कर कलाबाज़ी खा गए। इनकी खोपड़ी तो फूटी ही, इनके साथ इनकी आसमानी टाँगों से कई मुसाफ़िरों की भी नाक, कान, गाल, टोपी और पगड़ी साफ़ हो गई।

स्वामी जी किसी तरह उठ कर अपने पैरों के बल खड़े हुए और मुसाफ़िरों की गाली और फटकारों के बीच में ताव में आकर वीर रस का व्याख्यान झाड़ने लगे। पहले तो शोर-गुल के मारे कुछ समझ में न आया, क्या कह रहे हैं। मगर धीरे-धीरे जो उनके एकाध जुमले सुनाई पड़े तो लोग भौंचक होकर उनका मुँह देखने लगे। आप हाथ नचा-नचा कर कह रहे थे—'डूब मरना चाहिए, डूब मरना चाहिए, चुबू भर पानी में। किनको ? इन मर्दों को, जो अपने अधिकारों की तनिक भी रक्षा करना नहीं जानते। बस आपस ही में लडना-झगड़ना और गालियाँ देना जानते हैं। इसीलिए देश की यह दुर्दशा है। अगर मर्दों को अपने अधिकारों की कुछ भी परवाह होती तो स्त्रियाँ भला उनके अधिकारों पर छापा मार सकती थीं ? × × ×'



एक से न रहा गया। बीच ही में टोंक बैठा—ज़रा अर्थ भी समझाते जाइए लेखचराराधिराज जी !

स्वामी जी ने साँस लेकर फिर कहना शुरू किया—
“अक्रसोस ! अक्रसोस ! तुम लोग इतना नहीं समझते कि मर्दानी गाड़ी ख़ास मर्दों के लिए होती है, उसमें स्त्रियों को बैठने देना अपने हक़ पर कुल्हाड़ी मारना है। अपने अधिकारों का खून करना है। ज़नानी गाड़ी में मर्दों का ठिकाना नहीं है और मर्दानी गाड़ी में भी जब स्त्रियाँ बैठने लगें तो मर्द कहाँ बैठेंगे ? उनकी खोपड़ी पर ? यही हाल रहा तो भेड़-बकरियाँ और गाय-भैंस सभी मर्दानी गाड़ी में सफ़र किया करेंगी और मर्द खड़े-खड़े बस मुँह ताका करेंगे। जिनका कोई अधिकार नहीं, वह यहाँ मज़े से टाँग फैला कर बैठें और जिनका हक़ है, अधिकार है, वे ढकेले जाएँ, फटकारे जाएँ। छिः ! तभी तो जाति का पतन है, देश की बरबादी है। ज़माने की ख़राबी है। × × ×”

एक स्कूली लड़के ने ‘वन्समोर’ की ताली पीट दी। मुसाफ़िरों का रङ्ग बदल गया। सब हँस पड़े और स्वामी जी के लिए वहाँ किसी तरह थोड़ी सी जगह कर दी गई, और इनके सौभाग्य से स्त्री के लगभग सामने ही।

जब तक चोट से खोपड़ी भिन्नाती रही तब तक तो बेचारे गुस्से में लेखचर झाड़ते गए, जिसमें ज़नानी गाड़ी में उनके अपमान ने भी ख़ासी मदद कर दी थी। मगर जब सामने बैठी हुई स्त्री को घूरते-घूरते कुछ दिल में तरावट पहुँची तो इनका सुर बदला। लगे दिल में कहने कि हाँ यह स्त्री अलबत्ता स्त्री है। एकदम नख-सिख से दुरुस्त। ईश्वर ने अपने ही हाथ से बनाया है। जितना ही देखो उतनी ही सुन्दरी मालूम होती है। बस यह है प्रेम करने क़ाबिल।

स्त्री अब तक इनकी करतूत पर दबे ओठों मुस्करा रही थी। मगर इन्हें उक्लू की तरह घूरते हुए पाकर उसने मुँह फेर लिया और उसका चेहरा तमतमा उठा। अब इन्हें अपने लेखचर का ख़याल आया। बस, कलेजे पर साँप लोट गया। फिर तो हाथ मलने लगे कि हाथ ! हाथ ! हमने नाहक़ गुस्से में स्त्रियों के विरुद्ध ज़बान हिला कर अपनी राह में काँटे बो दिए। तभी तो यह मेरी तरफ़ ताकना भी नहीं चाहती। अब कौन सा मुँह लेकर उससे प्रेम करें और बिना मनाए यह भला मुझसे

प्रेम क्यों करने लगी ? भाग्य से एक प्रेमिका भी मिली तो प्रेम का द्वार बन्द। सफ़र का उद्देश्य ही चौपट हो गया। हत्तैरी तक्रदीर की !

मगर स्वामी जी अनोखी सुरू के आदमी ठहरे, जिसके बल पर वह लेखक होने की तैयारी कर रहे थे। वह भला कहाँ हिम्मत हार सकते थे ? स्त्री को खुश करने के लिए मौक़े के इन्तज़ार में कमर कस के इकटक निगाहों से घूरने लगे। सीना खुजलाने के बहाने कई दफ़े कलेजे पर हाथ भी रखे। हाथ मलते हुए चुपके से हाथ भी जोड़ा। मगर बेकार। स्त्री ने देखा ही नहीं। और मुसाफ़िरों के मारे खुल के कोई कार्रवाई भी नहीं की जा सकती थी। तब फ़िक्र हुई स्त्री का ध्यान अपनी ओर खींचें कैसे ? आखिर सोचते-सोचते यह तदबीर सूझी कि चुपके से जूता उतार कर अपना पैर बढ़ाऊँ और उसे ज़रा खोद दूँ। जैसे ही ताके वैसे ही हाथ जोड़ कर मामला सुधार लूँ। मगर निगाह के असहयोग से निशाना बिगड़ गया और इनकी नज़्मी टाँग भी कम्बलत अङ्गे पर पहुँचते ही कुछ ऐसी जोश में आ गई कि अपने अँगूठे और अँगुलियों से धर के बकोट खाया। बग़ल का मुसाफ़िर बाप-बाप करके उछल पड़ा। लगा बेतहाशा चिल्लाने—“अरे ! इस बेज्ज के नीचे कोई जानवर है जानवर ! हाथ बाप ! कहीं पागल कुत्ता न हो !”

एकाएक सभी मुसाफ़िर घबड़ा उठे। किसी ने रुट से अपने पैर ऊपर कर लिए। कोई बेज्ज पर खड़ा होने लगा, कोई बौखलाहट में लुढ़क गया। कोई अपने डगड़े से नीचे खटखटाने लगा। एक अजीब अन्धेर मच गया। अकेले स्वामी जी ही एक ऐसे थे, जो अपनी आबरू समेटे सर झुकाए अपनी जगह पर चुपचाप बैठे के बैठे रह गए। हाथ जोड़ना तो अलग रहा, बेचारे से किसी तरफ़ आँख उठा कर देखते भी न बनता था।

आखिर एक स्टेशन पर जहाँ गाड़ी अपने नियम के अनुसार नहीं, बल्कि ‘लाइन क्लियर’ न पाने के कारण रुक गई थी, एक मुसाफ़िर ऐसा आया कि मानों वह इसी डब्बे का व्यक्ति है, जो किसी कारणवश अन्यत्र बैठा हुआ था। और वह भी स्वामी जी की तरह सारी जगह छोड़ता हुआ सीधे उस स्त्री की ग़ाल में आकर दन से बैठ गया। वहीं जहाँ स्वामी जी पहिले बैठना चाहते थे। स्वामी जी को अब ताब कहाँ ? सर से पाँव



तक आग लग गई। कुछ तो अपनी जलन के मारे और कुछ उस स्त्री की खुशामद में एकदम बड़बड़ा उठे—अन्धा है क्या? हट के बैठ। देखता नहीं देवी जी बैठी हुई हैं?

लोग मुँह ताकने लगे। स्त्री मुस्कराई और मुसाफिर बौखला कर बोला—तो क्या हुआ?

गाड़ी चली। स्वामी जी ने देखा बस यही मौक़ा है अपनी बिगड़ी बनाने और 'वाहवाही' लूट कर स्त्री की आँखों में समाने का। फ़ट जामे से बाहर होगए। बिगड़ कर बोले—अबे क्या देवी जी तेरे बाप की जोरु हैं जो तेरा उनकी बग़ल में बैठना उन्हें गवारा होगा? उठ वहाँ से, बेहूदा, नालायक, बदतमीज़ कहीं का।

मुसाफ़िर को भी ताव आगया। उसने झुँझला कर डाँटा—बस ज़बरदार!

जब तक स्वामी जी ने धड़ से तमाचा जमा ही दिया। दोनों में जूतेबाज़ी शुरू हो गई। मगर स्वामी जी मारने के लिए नीचे झुक कर जो ही जूता उठाते थे वही उनके हाथ से वह स्त्री चिमट कर छीन लेती थी और दन से खिड़की के बाहर फेंक देती थी। मुसाफ़िरों को पहले तो ताज्जुब के साथ कुछ मज़ा भी आता रहा, मगर जब स्वामी जी के हाथ में एक मौलाना का काम-

दार जूता चमका और मौलाना साहब कफ़न फाड़ कर चित्लाए कि "हाँ-हाँ, यह मेरा जूता है मेरा जूता" तब उन लोगों की आँखें खुलीं और घबड़ाए कि अरे! यह तो जूता उतार कर बैठने की हिन्दुस्तानी आदत में हम लोगों की भी टाँगें राँड हो गईं। किसी का दाहिना जूता गायब था तो किसी का बायाँ। अजीब खलबली मची। हँसी की जगह गालियों की भरमार हो गई। बड़ी ख़ैर हुई, स्टेशन जल्दी ही आगया और उसके साथ ही आया टिकट कलक्टर भी।

स्वामी जी को अब पता चला कि उनका चवन्नी का टिकट गाड़ी की पहली ही रुकावट पर ख़तम हो चुका है और वह घूराघारी में न जाने कितनी दूर निकल आए हैं। और जिसकी खुशामद में इन्होंने अपनी खोपड़ी पिलपिली कराई थी वह निकली उसकी बग़ल में बैठने वाले जूतेबाज़ मुसाफ़िर के बाप की जोरु भी नहीं, बल्कि उसी कम्बख़्त की सगी जोरु। हाय! हाय! यह ग़म स्वामी जी के लिए बहुत हुआ। बेचारे को हाथ मलते हुए टिकट कलक्टर के साथ ज़बरदस्ती गाड़ी से उतर जाना पड़ा।

(क्रमशः)

(Copyright)

हे मौलसिरी !

[श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', बी० ए०]

हे मौलसिरी !

अन्तरिक्ष में चलता है तेरा यौवन-व्यापार।
रवि-प्रेयसि! तू प्रणय-पिपासी दौड़ी जग के पार ॥
'पाप'-पवन से घिरी—

हे मौलसिरी !!

भू से ऊपर वृन्तों पर लटकी, लालसा अपार।
घृणित दृष्टि वसुधा पर, गगनाङ्गन में सुरभि-प्रसार ॥
सच तक्रदीर फिरी—

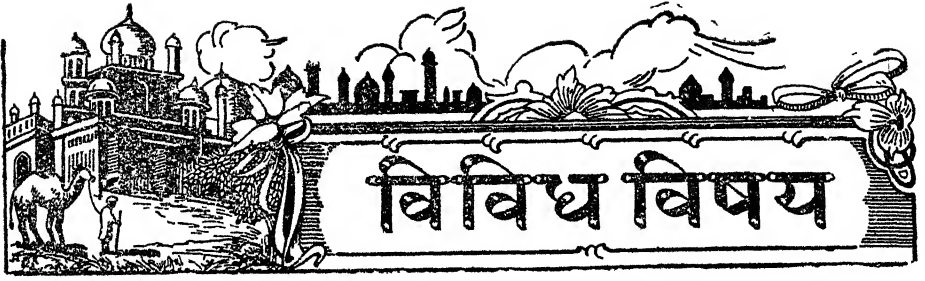
हे मौलसिरी !!

पर विराट् के आलिङ्गन-चुम्बन का भारी भार—
सह न सकी, यौवनभागा, तू थी सखि! अति सुकुमार!

भू-भू पर ही गिरी—

हे मौलसिरी !!





हरी खाद

हरी खादों के ऊपर समाचार-पत्रों में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। पर यह विषय इतना आवश्यक है कि इसके सम्बन्ध में पुस्तकें लिखी जाने की आवश्यकता है।

कृषि-शास्त्र में गोबर के खाद की बड़ी महिमा गाई गई है। फ़सलों से पौधों द्वारा पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति में जो न्यूनता आती है, उसे गोबर की खाद भली-भाँति पूर्ण कर देती है। एक फ़सल के उगाने के लिए जिन-जिन खाद्य-पदार्थों की आवश्यकता होती है, वे सभी इसमें हैं। गोबर की खाद के प्रयोग से निम्न श्रेणी की भूमि भी खेती के योग्य हो जाती है। यदि सब खेतों को प्रति वर्ष सौ-डेढ़-सौ मन भी यह खाद मिल जाया करे तो फ़सल की उत्तमता में अन्तर न आवे और खेत की उर्वरा-शक्ति भी ठीक-ठीक बनी रहे। परन्तु अभान्य-वश यह पर्याप्त मात्रा में मिल ही नहीं सकती। बड़े-बड़े 'फ़ार्मों' पर गोबर की खाद का भरपूर प्रबन्ध कर लेना वास्तव में एक दुष्कार्य है, अतः इसकी कमी हरी खादों अथवा व्यापारिक (Commercial fertilizers) खादों द्वारा पूर्ण करनी पड़ती है। हरी खादों की तुलना गोबर की खादों से किसी अंश तक की जा सकती है। गोबर की खाद में नाइट्रोजन, फ़ॉसफ़ोरस और पोटाश आदि सभी आवश्यक पदार्थ मिल जाते हैं, परन्तु हरी खादों में नाइट्रोजन के अतिरिक्त अन्य आवश्यक पदार्थ नहीं के बराबर हैं। हमारी भूमि में 'नाइट्रोजन' की ही विशेष कमी रहती है और यह है भी एक अमूल्य पदार्थ। फ़सल को और वस्तुओं

की अपेक्षा नाइट्रोजन की विशेष आवश्यकता होती है। अस्तु।

फ़सल के लिए भूमि को नाइट्रोजन प्रदान करने के अतिरिक्त हरी खाद से और भी कई लाभ हैं, जैसे—

(१) हरी खाद भूमि को ढाई-तीन सौ मन प्रति एकड़ बनस्पति (Organic matter) देती है, जिसका होना खेती के योग्य भूमि के लिए अनिवार्य है और वह जीवांशुओं का भोजन भी है।

(२) हरी खाद पृथ्वी के कणों को सुधारती है। रेतीली अथवा पोली ज़मीन में इसके प्रयोग से पानी रोक रखने की शक्ति आ जाती है और चिकनी ज़मीन भुरभुरी हो जाती है।

(३) जिस समय हरी खाद खेत में खड़ी होती है, उस समय खेत में खर-पतवारों की बाढ़ रुक जाती है। क्योंकि हरी खाद वाली फ़सलें शीघ्रता से बढ़ती हैं। हरी खाद के लिए फ़सल को जोतने के कारण खर-पतवार भी ढक जाते हैं और उनका सदुपयोग भी हो जाता है।

(४) वर्षा के कारण नाइट्रोजन के लवण-नाइट्रेट (Nitrates) नीचे रिस जाते हैं। हरी खाद की फ़सलें उस लवण को नीचे जाने से रोक देती हैं।

(५) ऊँचे-नीचे खेत वर्षा के पानी के प्रभाव से कट जाते हैं, जिससे खेतों में गड्ढे पड़ जाते हैं। वर्षा ऋतु में हरी खाद के काम में लाई जाने वाली फ़सलें खेत में खड़ी रहती हैं, तो पानी सुगमता से नहीं बह सकता और खेत की मिट्टी कटने से (Scouring) बच जाती है।

(६) जिन स्थानों में गोबर की खाद नहीं मिलती, वहाँ हरी खाद उसकी न्यूनता की पूर्ति करती है।

(७) हरी खाद गोहूँ, धान, गन्ना आदि के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है।

८—हरी खादों के प्रयोग से खेत को 'नाइट्रोजन' भी बड़ी अच्छी दशा में मिल जाती है और अन्य खादों की 'नाइट्रोजन' से सस्ती पड़ती है।

हरी खाद के योग्य फ़सलें

यों तो कोई भी फ़सल हरी खाद के काम में लाई जा सकती है। परन्तु एक उत्तम श्रेणी की हरी खाद के लिए ऐसी फ़सल की आवश्यकता है, जिसमें निम्न-लिखित बातें मौजूद हों।

१—जहाँ तक हो सके एक ढाल वाली फ़सल को ही हरी खाद के लिए चुनना ठीक है। क्योंकि इन फ़सलों की जड़ों में छोटी-छोटी घुण्डियाँ होती हैं, जिनमें एक प्रकार के जीवांश (*Bacillus radicicola*) भरे रहते हैं। यह वायु की नाइट्रोजन को उन घुण्डियों में जमा करते रहते हैं, जिससे पृथ्वी में नाइट्रोजन का अंश बढ़ जाता है। यह जीवांश पृथ्वी में सदा निवास करते हुए ढाल वाली फ़सलों से ही अपना भोजन लेते हैं और बदले में अमूल्य 'नाइट्रोजन' भेंट करते हैं। कभी-कभी पृथ्वी में इन जीवांशुओं की कमी आ जाती है और ढाल वाली फ़सलें इनके अभाव में भली प्रकार से नहीं बढ़तीं। उस दशा में उक्त जीवांशुओं को पृथ्वी में पहुँचाया जाना आवश्यक हो जाता है। ऐसा करने की दो रीतियाँ हैं :—

(अ) जिस भूमि में उपर्युक्त जीवांश मौजूद हों, उसकी मिट्टी लेकर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बखेर कर खेत में भली भाँति मिला दी जाय और उसमें तुरन्त ही ढाल वाली फ़सल बो दी जाय, अथवा पहिले फ़सल बोकर पीछे अच्छे खेत की मिट्टी फैलाई जाय। यह जीवांशुओं के बढ़ाने की सरल और मोटी रीति है।

(क) आधुनिक वैज्ञानिक उस इच्छित जीवांश (*B. radicicola*) को पुष्टिकारक भोजनों के ऊपर बढ़ाते हैं, जिसको 'कल्चर' (Culture) कहते हैं। इस 'कल्चर' का थोड़ा सा भाग लेकर और पानी में मिला

कर बोने वाले बीजों पर छिड़क देते हैं और उसे भली-भाँति मिला कर, बीजों को शीघ्र ही बो देते हैं। ऐसा करने से पौदों के उगते ही यह जीवांश अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।

२—हरी खाद की खेती के लिए यह आवश्यक है कि वह शीघ्रता से बढ़े। क्योंकि वर्षा के पानी से ही बोई जाकर उसे वर्षा-काल में ही सड़ाने की आवश्यकता होती है। यदि उसके बढ़ने में देर लगेगी, तो उसके सड़ाने के लिए वर्षा के पानी से लाभ नहीं उठाया जा सकता। सिंचाई के द्वारा उसके पेड़ अच्छी तरह से सड़ते नहीं और उधर रबी की फ़सल के बोने का समय बीत जाता है। अतएव हरी खाद के लिए शीघ्र ही बढ़ने वाली चीज़ चुननी चाहिए।

३—हरी खाद की फ़सल के पौदों का झूब घने पत्ते वाले होना परमावश्यक है। जिस फ़सल में जितने अधिक पत्ते होंगे, वह उतना ही अधिक बोझा प्रदान करेगी और शीघ्रता से सड़ेगी।

४—उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त हरी खाद की फ़सलों के तने आदि भी नरम और कोमल होने आवश्यक हैं, ताकि वे शीघ्र सड़ने में रुकावट न डालें।

भारतवर्ष में सनई एक ऐसी फ़सल है, जिसमें उपर्युक्त गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। अतः इसी को हरी खाद के लिए विशेषतः पसन्द किया जाता है। इसके अतिरिक्त नील, ग्वार, ढेंचा आदि भी हरी खाद के लिए बोए जाते हैं। नील अप्रैल मास में ही बोया जाता है, अतएव यह उन्हीं स्थानों में बोया जा सकता है, जहाँ सिंचाई के साधन प्रस्तुत हों। ग्वार संयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों में बोई जाती है। यह बहुत धीरे-धीरे बढ़ती है और शीघ्रता से सड़ती नहीं। पूर्वी ज़िलों और बिहार में ढेंचा का व्यवहार किया जाता है। इसका पेड़ भी कड़ा होता है और देर के पश्चात् सड़ता है।

हरी खाद तैयार करने की रीति

सनई अथवा हरी खाद में काम आने वाली अन्य फ़सलों के बोने का समय एक नहीं होता। वह भिन्न-भिन्न होता है, जो वर्षा द्वारा निर्धारित किया जाता है। जहाँ पर सिंचाई के साधन हों, वहाँ पर हरी खाद की



फ़सलें अप्रैल, मई अथवा जून में बोई जा सकती हैं। परन्तु जहाँ सिंचाई न की जा सके, वहाँ इसे पहली वर्षा के साथ बोने का प्रयत्न करना चाहिए।

हरी खाद की फ़सल को बोने के पहले यदि खेत को पञ्जाब अथवा किसी और गहरी जुताई करने वाले हल से कम से कम चार बार जोत दिया जाय तो अति उत्तम। एक एकड़ के लिए लगभग एक मन बीज की आवश्यकता होती है। बीज को खेत में छिड़क कर और देशी हल अथवा 'कल्टीवेटर' से भली-भाँति मिला कर पाटा दे दिया जाता है।

बोने के आठ से दस सप्ताह के पश्चात् अथवा जब पेड़ों पर फूलों की कलियाँ दिखाई देने लगें, फ़सल खेत में जोत देने के योग्य बन जाती है। चाहे जो हो, फ़सल को वर्षा के मध्य ही में जोत डालना ठीक है। ताकि वर्षा के पानी से यह भली-भाँति सड़ जाय। यदि दुर्भाग्यवश वर्षा बन्द हो जाय तो सिंचाई द्वारा पेड़ों के सड़ाने की आवश्यकता होती है। यदि फ़सल अच्छी तरह नहीं सड़ती, तो हरी खाद से कोई लाभ नहीं होता।

फ़सल को खेत में जोतने में अधिक चतुराई की आवश्यकता है। पाटे के द्वारा पहले फ़सल को गिरा दिया जाता है, ताकि पेड़ों के टूट जाने से भूमि उनका पोषण बन्द कर दे और हल की जुताई से फ़सल को दफ़नाने में सहाय्य हो जाय। जिस-जिस दिशा में हल चलाना हो, उसी-उसी ओर पाटा चलाना चाहिए। हरी खाद के ढँकने के लिए जुताई खेत के बीच से किनारों की ओर करनी चाहिए। गिरी हुई फ़सल के ऊपर यदि आवश्यक हो तो चूना अथवा 'सुपर फ़ॉस्फ़ेट' (Super phosphate) छिड़का जा सकता है। इन वस्तुओं के प्रयोग से भूमि का खट्टापन (Acidity) दूर होकर नाइट्रोजन के लवण (नाइट्रेट) बनने में बड़ी सहायता मिलती है।

हरियाली को दबाने के लिए ऐसे मिट्टी पलटने वाले हलों की आवश्यकता है, जो मिट्टी को एकदम नीचे से ऊपर न पलट कर एक कोण (Angle) पर पलटें, ताकि भूमि के नीचे और ऊपर के पतों का सम्बन्ध हरियाली के कारण से न टूटने पावे। ऐसा करने से फ़सलें शीघ्र सड़ जाती हैं; क्योंकि सड़ाने

के लिए उचित पानी की मात्रा नीचे वाले पतों से आती रहती है। प्रयोगों द्वारा पञ्जाबी अथवा लोहे का 'विक्टरी' हल इस काम के लिए बड़े उपयोगी प्रमाणित हुए हैं।

खेत को जोतने के पश्चात् ऐसी ही दशा में कम से कम १५-२० दिन के लिए छोड़ देना आवश्यक है। इस समय यदि वर्षा न हो तो सिंचाई का शीघ्र प्रबन्ध करना चाहिए। हरी फ़सल नरम और कोमल होने के कारण जल्दी ही सड़ जाती है। रबी के लिए खेत की तैयारियों के समय काँटे (Harrow) द्वारा सूखी और बिना सड़ी लकड़ियों को बीन कर खेत से बाहर निकाल डालना लाभकारी है। इससे दीमक का प्रकोप कम हो जाता है और खेत सुन्दर दिखाई देता है।

हरी खाद से प्रति एकड़ कितना नाइट्रोजन मिल जाता है, इसके विषय में वैज्ञानिकों में मतभेद है। यह निश्चय है कि जितनी अच्छी फ़सल बड़ेगी और जितनी अधिक वनस्पति खेत को मिलेगी, उतना ही अधिक नाइट्रोजन भी मिलेगा। एक अच्छी फ़सल से लगभग ढाई-तीन सौ हरा बोझा प्राप्त हो जाता है। परन्तु नाइट्रोजन का ठीक-ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों का कथन है कि हरी खाद के पूर्व खेत में जो नाइट्रोजन होता है, उसका भी प्रभाव पड़ता है। दूसरे वैज्ञानिक ने तो यहाँ तक तथ्य कर लिया है कि हरी खाद से खेत में दो तिहाई नाइट्रोजन बढ़ जाता है। अपने व्यावहारिक ज्ञान के लिए हम कह सकते हैं कि अच्छी हरी खाद से खेत को प्रति एकड़ ५०-६० पौण्ड नाइट्रोजन मिल सकता है।

हरी खादों में नाइट्रोजन का मूल्य प्रति एकड़ अथवा प्रति पौण्ड बहुत सस्ता पड़ता है। हरी खाद के ५०-६० पौण्ड नाइट्रोजन का मूल्य ३) अथवा ४) होता है और उतना ही पौण्ड नाइट्रोजन यदि व्यापारिक खादों से मोल लिया जाय तो लगभग १२) से १५) तक खर्च करने पड़ेंगे।

हरी खादों का प्रयोग

हरी खादें गोहूँ, धान और गन्ने के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई हैं। नीचे लिखी तालिका में हरी खादों के साथ किए गए प्रयोगों का व्योरा दिया जाता है:—

फसल	विचरण	उपज प्रति एकड़	जहाँ प्रयोग किया गया
गेहूँ पूसा १२	बिना खाद	२८ मन ५ सेर ...	हरदोई फार्म
	१००५ गोबर की खाद	३२ मन २७ सेर ...	
	सनई की हरी खाद	३४ मन ५ सेर ...	
गेहूँ पूसा ४	बिना खाद	१६ मन १६ सेर ...	प्रतापगढ़ फार्म
	२००५ गोबर की खाद	२३ मन २२ सेर ...	
	२०५ अण्डी की खली	३१ मन १२ सेर ...	
	२०५ महुआ की खली	२५ मन २० सेर ...	
	२५५ नीम की खली	३३ मन ६ सेर ...	
	सनई की हरी खाद	२२ मन १३ सेर ...	
	बिना खाद	१४८२ पौण्ड ...	कानपुर रिसर्च फार्म
धान	१००५ गोबर की खाद	२१८२ पौण्ड ...	
	१२५ अण्डी की खली	२६४१ पौण्ड ...	
	सनई की हरी खाद	३६४८ पौण्ड ...	
गन्ना	सनई की हरी खाद और अमो- नियम सल्फेट... ..	३२९१ पौण्ड ...	शाहजहाँपुर फार्म
	सनई की हरी खाद, गोबर की खाद १००५ और अण्डी की खली २०५	१०४० मन गन्ना ...	
	सनई की हरी खाद, ८ गाड़ी कूड़े की खाद और १८५ अण्डी की खली	११०८ मन गन्ना ...	
	सनई की हरी खाद और १०५ अण्डी की खली	६०० मन गन्ना ...	
	सनई की हरी खाद और २५ अमो- नियम सल्फेट	१००२ मन गन्ना ...	
	सनई की हरी खाद, २५ अमोनियम सल्फेट और २०५ सरसों की खली	७०० मन गन्ना ...	
			अलीगढ़ फार्म

उपर्युक्त तालिका से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि सनई की हरी खाद से प्रत्येक दश में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। हरी खाद के साथ यदि और खादें मिला दी जायें, तो पैदावार में बड़ा अन्तर हो जाय।

एक कमी हमें बड़ी अखरती है। खरीफ में होने वाली फसलों के ऊपर अभी तक किसी ने हरी खाद का प्रयोग नहीं किया। यह अवश्य है कि रबी में हरी खाद के लिए फसल उगाने में खरीफ से अधिक खर्चा पड़ता है और हरी फसल को खेत में जोतने से लोगों

का दिल दृढ़ता है। आशा है कि कृषि-विभाग इस ओर भी ध्यान देगा और खरीफ की फसलों के लिए हरी खाद के योग्य किसी सस्ती फसल की खोज करेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि हरी खादों का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है और इनके शीघ्र ही विस्तारित होने की आशा है। प्रान्तीय सरकार भी इसके प्रचार-कार्य में बड़ी सहायता कर रही है और नहर-विभाग ने हरी खाद के लिए सनई के पलेवा की आवश्यकता केवल १) प्रति एकड़ कर दी है।



नई खोज

अभी तक वैज्ञानिकों का ज्ञान यहीं तक परिमित था कि नाइट्रोजन वाले जीवांश, जो केवल वायु में रहने वाले हैं, दालवाली फसलों पर निवास करते हुए वायु-मण्डल से नाइट्रोजन लेते हैं, परन्तु हाल ही में पूसा के एक वैज्ञानिक ने पता लगाया है कि धान की फसल बोने से भी खेत की नाइट्रोजन बढ़ जाती है और वे जीवांश वायु-रहित दशा में भी जीवित रहते हुए खेत को नाइट्रोजन प्रदान करते हैं। खेत के अतिरिक्त उक्त वैज्ञानिक ने वे प्रयोग पानी भरे हुए शीशे के गिलासों में भी किए थे, और उस पानी में भी नाइट्रोजन का भाग बढ़ गया था। यह प्रयोग अभी अधूरा ही है, अतएव हम पाठकों से धान की फसल को हरी खाद के लिए प्रयोग करने की सिफारिश अभी नहीं कर सकते।

—ब्रजेन्द्रप्रसाद पालीवाल, बी० एस्-सी०, विशारद



सहशिक्षा

सहशिक्षा का जन्म

जन-साधारण की यह धारणा है कि सहशिक्षा का जन्म यूरोप में हुआ और वहीं इसका विकास हुआ। परन्तु यदि हम प्राचीन साहित्य का अनुशीलन करें तो हमें स्पष्ट विदित हो जायगा कि यह विचार वास्तव में अमपूर्ण है। हम मानते हैं, बीसवीं सदी में यूरोप ने ही इस पद्धति का सबसे पहले और शायद सबसे अधिक प्रयोग किया है, उन्होंने ही इस अमृत या विष-वृक्ष का फल चखा है, वहीं यह फल पूर्ण रूप से परिपक्व हुआ है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि यूरोप को इसका जन्मदाता मान लिया जाय। जो लोग बौद्ध-साहित्य से परिचित हैं, उनसे यह छिपा हुआ नहीं है कि नालन्द जैसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में सहशिक्षा का प्रचार था। सैकड़ों बौद्ध-भिक्षु और भिक्षुनियाँ साथ-साथ शिक्षा प्राप्त किया करती थीं। इस विद्या के प्रसिद्ध केन्द्र से निकल कर सहस्रों भिक्षुओं और भिक्षुनियों ने संसार में धूम-धाम कर बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। स्त्री-पुरुष के सहयोग के

परिणाम से ही बौद्ध-धर्म का इतना अधिक प्रचार हुआ।

हाँ, आधुनिक काल में तो सहशिक्षा का पौधा यूरोप से ही लाया गया है। १९१९ के सुधारों के बाद से स्त्रियों में अद्भुत जाग्रति हुई। उनमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की भावना प्रबल हुई। शिक्षा का पृथक् प्रबन्ध न रहने से उन्हें लड़कों के स्कूल-कॉलेजों का आश्रय लेना पड़ा। परन्तु धीरे-धीरे उनकी इस भावना का अनुभव शीघ्र ही किया गया और उनके लिए पृथक् स्कूल तथा कॉलेज खुलने लगे।

सहशिक्षा की आवश्यकता है या नहीं ?

सहशिक्षा के पक्ष और विपक्ष में बहुत सी युक्तियाँ दी जा सकती हैं। यदि उन सबका यहाँ उल्लेख किया जाय तो लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा और फिर यह पाठकों का समय और रोचकता दोनों के लिए शायद उपयोगी सिद्ध न हो। परन्तु हमें मुख्य-मुख्य युक्तियों का उल्लेख तो करना ही पड़ेगा।

सहशिक्षा के समर्थकों का कहना है कि यह पद्धति स्त्री-पुरुष में समानता स्थापित करने का सबसे अच्छा तरीका है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पास रह कर एक दूसरे के मनोभावों को खूब अच्छी तरह समझ सकते हैं। शिक्षिकाएँ शिषकों की अपेक्षा बालकों को पढ़ाने में अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं। मातृत्व उन्हें बहुत सी बातें सिखा देता है, जिसका शिक्षक स्वप्न में भी खयाल नहीं कर सकते। इसके अलावा इस पद्धति के द्वारा बहुत से धन की बचत भी हो सकती है।

जो लोग इसके विपक्ष में हैं, वह समझते हैं कि इस पद्धति के होते हुए बालक-बालिकाओं के आचार की रक्षा नहीं हो सकती। उनका कहना है कि प्रकृति ने स्त्री-पुरुष का निर्माण भिन्न-भिन्न रूपों में किया है, उनकी आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हैं, दोनों को एक विषय की शिक्षा नहीं दी जा सकती। सहशिक्षा से स्त्रियों का स्त्रीत्व और पुरुषों का पुरुषत्व खो जाता है। लज्जा, जो स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है, वह पुरुषों के सहवास से काफ़र हो जाती है। इसलिए सहशिक्षा हर प्रकार निन्दनीय है। यही नहीं, इसी प्रकार की अनेक युक्तियाँ हैं, जो दोनों ओर से दी जाती हैं।



हम निष्पक्ष समालोचक की दृष्टि से इन युक्तियों पर एक दृष्टि डालना चाहते हैं। हम जानते हैं कि दोनों पक्षों की दलीलों में बहुत कुछ सचाई है। सहशिक्षा से जहाँ लाभ है, वहाँ हानि भी है। जहाँ इस पद्धति से यूरोप को तथा भारतवासियों को बहुत से लाभ हुए हैं वहाँ इसके द्वारा अनेक व्यक्तियों का जीवन सफल हुआ है, वहाँ इसके द्वारा अनेक युवक-युवतियों का धीर मानसिक और नैतिक पतन भी हुआ है। यदि हम शिक्षा-साक्षियों के प्रयोग के आकषण में आकर इस पद्धति के दोषों पर परदा-पोशी करें, तो यह एक प्रकार का अन्याय होगा ?

हमने इस समस्या पर एक विशुद्ध शिक्षक की दृष्टि से जहाँ तक विचार किया, इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि कम से कम युवक और युवतियों की सहशिक्षा कभी निर्दोष नहीं हो सकती—उन्हें आचार की कितनी ही शिक्षा क्यों न दी जाय, कभी न कभी आचार-दोष आ ही जायगा। हाँ, छोटे बच्चों की शिक्षा अनाथी अध्यापकों की अपेक्षा सुयोग्य महिलाओं के हाथों में अधिक सुरक्षित है। यदि प्राइमरी क्लास तक बालक-बालिकाओं को सहशिक्षा द्वारा शिक्षा दी जा सके तो न तो कोई आचार सम्बन्धी भय की सम्भावना है, न उनके मानसिक विकास में किसी रुकावट की। हमारा तो कहना है कि यदि प्राइमरी श्रेणी तक अनिवार्य रूप से सहशिक्षा जारी हो सके, तो बालकों का भविष्य अधिक सुन्दर हो।

एक शिक्षा-विशेषज्ञ के विचार

१। विशेषतः गृह-विज्ञान की शिक्षा देने के लिए देहली में लेडी हर्विन कॉलेज की स्थापना हुई है। उसकी डाइरेक्टरेस मिसेज़ हन्ना सेन ने कुछ दिन हुए मी प्रेस को इसी विषय पर वक्तव्य देकर इस समस्या पर बहुत कुछ प्रकाश डाला था। उनका कहना है कि स्त्री-पुरुषों की शिक्षा में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि आजकल युवद्वेष का ज़माना है, स्त्री-पुरुष दोनों को चारों हाथ से कमाना चाहिए। पता नहीं, युवद्वेष में स्त्री आगे बढ़े या पुरुष। ऐसे समय में पीछे रहने वालों को पहले ही से जीवन-संग्राम में जुटने

की तैयारी करनी चाहिए। इसी बात को लक्ष्य में रख कर स्त्री-पुरुष दोनों को दोनों के काम के विषय पढ़ाने चाहिए। यदि स्त्री पुरुष से अधिक कमा सकती है तो पुरुष को चौके-चूहे की फ़िक्र करनी चाहिए। इसके लिए पुरुषों को भी गृह-विज्ञान की शिक्षा मिलनी चाहिए। जो लोग क़ारें हैं, विवाह के पचड़े में नहीं पड़े, उनके लिए भी यह विषय उतना ही आवश्यक है।

मिसेज़ सेन को यह भी भय नहीं कि इस पद्धति से आचार-सम्बन्धी दोष पैदा होंगे। उनका कहना है कि शुरू में ऐसी-ऐसी दुःखपूर्ण घटनाएँ होंगी ही, लेकिन बाद को धीरे-धीरे आप ही बन्द हो जायँगी। आप इसको दूर करने के लिए आचार-सम्बन्धी शिक्षा की भी आवश्यकता नहीं समझतीं। आपका कहना है कि साहित्य की शिक्षा से, शिक्षापूर्ण कविताओं के वाद कराने से आचार-सम्बन्धी दोष स्वयमेव दूर हो जायँगे। शारीरिक उन्नति के लिए आपने 'फ़ाक डांस' बतलाया है।

हम एक शिक्षा-विशेषज्ञ की युक्तियों को बौद्धी खरबन करना नहीं चाहते। मिसेज़ सेन अभी-अभी विज्ञायत से लौटी हैं, अभी वह सिर से पैर तक विज्ञायती रज़ में रंगी हैं, यूरोप की घटनाएँ उनकी आँखों के सामने जीवित-जाग्रत हैं, इसीलिए उनके यह विचार हैं। अफ़सोस ! उनको अपने विचारों के प्रयोग करने का अवसर ही नहीं मिला। लेडी हर्विन कॉलेज में पुरुषों को स्त्रियों के साथ पढ़ाने का नियम नहीं है। इसलिए एक शिक्षा-विशेषज्ञ की राय पर हम टिप्पणी न करते हुए इन विचारों का प्रयोग (Experiment) करने को कहेंगे, इसीसे हमारा मतलब हल हो जायगा।

सहशिक्षा कहाँ तक होनी चाहिए ?

हम ऊपर कह चुके हैं कि प्राइमरी श्रेणी में छात्रों के लिए सहशिक्षा बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यह क्यों, हम पिष्टपेषण करना नहीं चाहते। बच्चों की शिक्षा में स्त्रियों की विशेष योग्यता मानी हुई है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए स्त्रियों के हाथों में छोटे बच्चों का भविष्य सौंप देना कहीं अधिक अच्छा है। हाँ, इससे बड़ी उन्न के बालक-बालिकाओं को मिलाना, उन्हें साथ पढ़ाना दूरदर्शितापूर्वक नहीं कहा जा सकता। किन्तु जिन विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध स्त्रियों



के लिए पृथक् नहीं है, उन विषयों को पढ़ाने के लिए स्त्रियों को पुरुषों के कॉलेजों में तो भेजना ही पड़ेगा। सहशिक्षा के प्रश्न को लेकर स्त्री जाति को यदि उच्च-शिक्षा से वञ्चित किया जाय, तो इससे अधिक स्त्रियों के साथ कोई और अत्याचार नहीं हो सकता।

—जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ

भारतीय स्त्रियों का मताधिकार

प्रकृति-प्रदत्त पदार्थों का उपभोग करने के लिए मनुष्य-मात्र को समान अधिकार हैं। प्रकृति नहीं चाहती कि कोई भी उसके उपहारों से वञ्चित रहे। प्रति दिन वह उतना सामान तैयार करती है, जितना सृष्टि भर के प्राणियों के लिए वह आवश्यक समझती है। अब यदि कोई बलवान अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ अपने अधिकार में कर ले तो बेचारा निर्बल अपना भाग कहाँ से पावे; वह क्यों न अपने स्वत्वों से वञ्चित रह जाय। ठीक यही बात स्त्रियों और पुरुषों के अधिकारों के सम्बन्ध में भी है। स्त्री और पुरुष दोनों एक गाढ़ी के पहिए एवं पूरक हैं। एक के बिना दूसरा आश्रयहीन एवं अधूरा रह जाता है। ऐसी दशा में यदि स्त्रियों को वे अधिकार नहीं प्राप्त हैं, जो पुरुषों को दिए गए, तो इसका अर्थ यही है कि पुरुष-समाज स्त्री-समाज को हेम समझता है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं समझता। स्त्रियों के मताधिकार के विषय में पर्याप्त रूकावटें पैदा की जाती हैं। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि जब पुरुष को स्वरक्षा का अधिकार है, तो स्त्री को भी समाज का एक प्रमुख अङ्ग होने के नाते अपनी रक्षा का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि कोई भी अपने को दूसरे के अधिकार में रखना नहीं चाहता। कुछ लोगों की धारणा है कि पुरुष और स्त्री को समान अधिकार देना ठीक नहीं है। अपने मत के समर्थन में वह यह कहते हैं कि स्त्रियों का उत्तरदायित्व पुरुषों पर ही निर्भर रहता है। पुरुष ही स्त्रियों की रक्षा का भी ध्यान रखते हैं। वे पालायेमेट तथा अन्य संस्थाओं में स्त्रियों के प्रतिनिधि-स्वरूप उनकी माँगें उपस्थित कर सकते हैं।

दूसरी बात यह कि स्त्रियाँ इस योग्य भी नहीं हैं कि उन्हें राजनीतिक अधिकार दिए जायें। उनकी प्रत्येक शक्ति पुरुषों से बहुत कम है, अतः उनको किसी प्रकार का अधिकार देना अनावश्यक है।

परन्तु इस युग में इन दोनों बातों का सार कुछ भी नहीं रह गया है। कारण यह है कि प्रायः सभी देशों में उनकी योग्यता भली-भाँति प्रतिष्ठित हो चुकी है। ऐसी दशा में उन्हें अयोग्य ठहराना अपनी अनुदारता और सङ्कीर्णता का परिचय देना है। वर्तमान काल में कोई भी अपना अधिकार दूसरे के हाथों सौंपना नहीं चाहता। अपनी सम्पत्ति, स्थिति तथा अपने जीवन के उत्तरदायित्व की बागडोर को अपने हाथ से ढीला कर देना अपने जीवन के मूल्य को अपनी मूर्खता से तोलना है।

जब प्रजा का अर्थ पुरुष और स्त्री दोनों के मेल से होता है और उसी से राष्ट्र का गठन है तो कोई ऐसा तर्क नहीं जिसके आधार पर स्त्रियों को राजनीतिक अधिकारों से वञ्चित रखा जाय। स्त्रियों को अपने हितों की रक्षा के लिए दूसरों का मुँह ताकना पड़े, यह अवश्य उनके लिए लज्जास्पद बात है। मताधिकार के आविष्कर्ता रूसो ने स्त्रियों के विषय में कुछ विशेष बातें नहीं लिखी थीं। परन्तु उस शताब्दी के अन्य लेखकों—कैंडेरसेट, बेथम आदि—ने स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार देने के सम्बन्ध में कई तर्क उपस्थित किए थे। इस प्रकार वे लोग स्त्रियों की स्थिति को उन्नत करने में समर्थ हुए। कुछ लोगों के ऐसे विचार भी हैं कि स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने से पारिवारिक जीवन की मधुरता नष्ट हो जायगी। परन्तु निर्वाचन पद्धति में 'Ballot system' (बैलोट सिस्टम) के आ जाने से यह तर्क भी निस्सार रह जाता है।

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। यहाँ पारिवारिक विचोभ की आशङ्का करना सर्वथा निर्मूल तथा असङ्गत है। केवल मताधिकार पा लेने से ही स्त्रियों में पर्याप्त सुधार होने की सम्भावना है। पाँच या तीन वर्षों में एक बार निर्वाचन-पत्र भर देने से विचोभ की आशङ्का नहीं की जा सकती।

स्त्री को एक नागरिक की हैसियत से राष्ट्र की उन्नति में अपना अधिकार रखना अत्यन्त आवश्यक है।



वह किसी राष्ट्र की नागरिक होती हुई यदि उसकी राजनीति से अपरिचित रही तो समान अथवा राष्ट्र को उससे लाभ तो कुछ होगा ही नहीं, उल्टी हानि ही की सम्भावना रहेगी। कुछ लोग यह दलील पेश करते हैं कि स्त्रियों को मताधिकार मिलने पर शासन-कार्य में कठिनाई की वृद्धि हो जायगी। परन्तु अन्यान्य देशों—जैसे कनाडा, अमेरिका, स्विट्ज़रलैण्ड आदि—में तो ऐसा होने पर भी शासन-कार्य में कोई कठिनाई नहीं पाई जाती। इन बातों को ध्यान में रखते हुए भी भारत में समान मताधिकार देने में आना-कानी करना अपने सङ्कुचित हृदय का परिचय देना है। भारतीय रमणियाँ अब इस योग्य हो गई हैं, जिन पर हम बिना आना-कानी किए भरोसा कर सकते हैं। मत देने के लिए उच्च-शिक्षा का होना कोई आवश्यकिय नहीं है। हाँ, इतना अवश्य होना चाहिए कि मत-दाता मत (Vote) देने का अर्थ अवश्य समझता हो एवं उसके परिणाम का भी ज्ञाब रखता हो। भारतीय महिलाओं में इस आवश्यकता की पूर्ति होना कोई कठिन बात नहीं है।

भारतीय महिलाओं की संख्या १५,५०,१८,७१२ है। उनमें से अगर डेढ़ करोड़ अथवा इससे कुछ न्यूनताधिक नाबालिग लड़कियों को अलग कर दिया जाय तो भी चौदह करोड़ स्त्रियाँ बच रहती हैं। इसमें से कई करोड़ तो मिलों में काम करती हैं। आजकल का यह नियम है कि मज़दूर भी अपना प्रतिनिधि भेज सकते हैं। इस नियम के अनुसार भी भारतीय महिला-मज़दूरों को मताधिकार मिलना आवश्यक है। उनके हित के लिए काम करने के उचित समय का निश्चित करना तथा मातृत्व के लाभ आदि के क़ानून बनने चाहिए। यदि हम उनकी उन्नति करना चाहें तो उनके इस आन्दोलन की सफलता के हेतु हमें सब प्रकार से अपनी सहायुभूति दिखानी और प्रयत्नशील होना चाहिए। महिलाएँ ही राष्ट्र-जननी हुआ करती हैं, अतः उनकी एकमात्र उन्नति का मार्ग सोचना राष्ट्र-सेवा करना है।

—श्रीराम शर्मा

नौकरशाहों की लम्बी तनख्वाहें

भारत में वाइसराय से लेकर साधारण से साधारण अङ्गरेज़ अफ़सरों को कितनी लम्बी-लम्बी तनख्वाहें मिलती हैं और केवल इन अफ़सरों के वेतन तथा पेन्शन में किस प्रकार करोड़ों रुपए अर्द्ध-नग्न तथा अर्द्ध-सुसुचित भारतीयों के पेट काट का विलायत पहुँच जाते हैं, इसके विरुद्ध कितनी ही बार पत्र-पत्रिकाओं में लिखा जा चुका है। केवल पत्रों द्वारा ही नहीं, सभा-मञ्चों और व्यवस्थापिका-सभाओं द्वारा भी इसके विरुद्ध सैकड़ों बार चीत्कार मचाया जा चुका है; परन्तु सरकार के कानों पर कभी जूँ नहीं रंगी! भारतीयों द्वारा बहुत शोर मचाने पर यदि कभी इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कमेडियाँ भी बनीं, तो नाम-मात्र को यत्र-तत्र कुछ किरायतें पेश कर इसे सदा डालने का प्रयत्न किया गया और मूल बात पर कभी पहुँचा ही नहीं गया। मगर यह प्रश्न ऐसा नहीं है कि सरकार की टालमटोल की नीति में आकर इसका विस्मरण कर दिया जाय। प्रश्न करोड़ों रुपए वार्षिक का है, भारतीयों और विशेषतः भारतीय अफ़सरों के सम्मान का है, इसलिए भारतीयों का कर्तव्य है कि जब तक इसका सम्तोषजनक हल न हो जाय, वे निरन्तर इसका आन्दोलन कायम रखें।

हमारे देश में अङ्गरेज़ अफ़सरों को जो वेतन मिलता है, वह दूसरे देशों के उसी पद और उसी योग्यता के अफ़सरों से तीन गुना से लेकर पचास गुना तक अधिक होता है। इस देश के और अन्य देश के छोटे-बड़े सभी अफ़सरों के वेतन का मुकाबला करने का न तो समय है और न स्थान ही है, इसलिए सरकार के सबसे बड़े नौकर वाइसराय के वेतन का अन्य देशों के सबसे बड़े नौकर के वेतन से मिज़ान कर हम यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि यहाँ कैसा अन्धेरखाता है। अमेरिका सबसे धनी देश है और वहाँ के सबसे बड़े अफ़सर राष्ट्रपति का पद अमेरिका में ही नहीं, समस्त संसार में सम्मानित समझा जाता है, परन्तु इन राष्ट्रपति से भी सात गुना अधिक हमारे यहाँ वाइसराय को दिया जाता है। भारत के वाइसराय को २,५६,००० रुपया वार्षिक मिलता है और अमेरिका के राष्ट्रपति को केवल १५,०००



डालर वार्षिक मिलता है (१ डालर पौने तीन रुपए के बराबर होता है) । अमेरिका के राष्ट्रपति के अतिरिक्त स्वयं इङ्ग्लैण्ड के सबसे बड़े अफसर प्रधान मन्त्री से हमारे वाइसराय को तिगुने से अधिक वेतन मिलता है । इङ्ग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री को ५ हजार पौण्ड वार्षिक मिलता है । इसी प्रकार जर्मनी के राष्ट्रपति से, जिन्हें ६० हजार मार्क्स मिलते हैं, वाइसराय को ७ गुना अधिक मिलता है, जापान के प्रधान मन्त्री से १८ गुना ज्यादा मिलता है और फ्रान्स के राष्ट्रपति से पचास गुना अधिक मिलता है । जापान के प्रधान मन्त्री को १२,००० पेन वार्षिक मिलता है और फ्रान्स के राष्ट्रपति १०,००० फ्रैंक वार्षिक पाते हैं ।

केवल वाइसराय ही नहीं, इसी प्रकार गवर्नरों, मिनिस्ट्रों, जजों, कमिश्नरों, मैजिस्ट्रेटों तथा अन्य विभागों के अङ्गरेज कर्मचारियों को भारत में जितना वेतन दिया जाता है, उससे कहीं कम अन्य देशों में तद्देशीय रक्त-मांस के ही कर्मचारियों को दिया जाता है । परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि यह उदारता केवल अङ्गरेज कर्मचारियों के ही लिए दिखाई जाती है और उसी योग्यता के हिन्दुस्तानियों को न वह पद दिया जाता है और न वह वेतन । अङ्गरेजों को यह वेतन क्यों अधिक दिया जाता है, इसके लिए कहा यह जाता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने में अङ्गरेज लोग व्यापार की दृष्टि से भारत आते थे और उन दिनों उन्हें कमीशन के रूप में आय होती थी । वह आय सैकड़ों नहीं, हजारों रुपए मासिक होती थी । पर जब भारत का शासन कम्पनी के हाथों से निकल कर बादशाह के हाथों में आया और भारत में अङ्गरेज, कम्पनी के हिस्सेदार न रह कर नौकर रखे जाने लगे, तो कम वेतन में काम करना उन लोगों ने स्वीकार न किया, क्योंकि कमीशन के रूप में जब अधिक रुपए उनके मुँह लग गए थे, तब वेतन के रूप में वे थोड़े रुपए कैसे स्वीकार कर सकते थे, अतः उनको प्रसन्न रखने के लिए

लम्बी-लम्बी तनझाहें दी गईं । एक बार भारत के भूतपूर्व वाइसराय लॉर्ड कार्नवालिस ने आर अधिक स्पष्ट कहा था । उन्होंने कहा था कि इतनी दूर, सात समुद्र पार कर अङ्गरेज आते हैं तो वे कुछ लेकर जायें, इसी उद्देश्य से उनके लिए अधिक वेतन नियत किए गए हैं । इसके अतिरिक्त आए-दिन भी जब कभी यह प्रश्न उठाया जाता है, तो सरकार की ओर से इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि अङ्गरेजों का इतना अधिक वेतन इसलिए दिया जाता है, जिससे अङ्गरेजों को नौकरी के लिए भारत आने का प्रोत्साहन मिले, वे अपने पद और अपनी मर्यादा के उपयुक्त रह सकें और किसी प्रकार के प्रलोभन में न आ सकें । परन्तु ये दलीलें बहुत लचर हैं और इनमें कोई वजन नहीं है । गरीब भारतीयों की रोटी पर आक्रमण कर और उन्हें भूखे और नङ्गे रख कर, दूसरों के माथे पर अङ्गरेजों को भारत आने का प्रोत्साहन देने तथा ठाठ-बाट से रखने के लिए इतने भारी वेतन देना कहाँ तक न्यायोचित है, इसका निर्याय संसार के न्यायशील व्यक्ति ही कर सकते हैं । रह गई प्रलोभन की बात, सो पैसे किसी को काटते नहीं । अधिक रुपए मिलने पर प्रलोभन नहीं होगा, यह कोई वेद-वाक्य नहीं है । परन्तु हमें तर्कों और दलील की आवश्यकता नहीं है । हम तो यह चाहते हैं कि हमारे देश का शासन हमारे लिए इतना महँगा न पड़े । पहिले हमारा हित देख कर तब विदेशियों का स्वार्थ देखा जाय । अङ्गरेज अफसरों की तनझाहें घटाई जायें । यह नियम बना दिया जाय कि ५०० रु० से अधिक मासिक वेतन किसी को न मिले और अङ्गरेजों के बराबर की योग्यता के भारतीयों को भी उतना ही वेतन दिया जाय ।

—रामकिशोर मालवीय

❁ ❁ ❁ दाम्पत्य-फलह-निदान

हिन्दू संस्कृति में विवाह एक संस्कार है, जिसके द्वारा पुरुष-स्त्री को 'पति-पत्नी' की उपाधि मिलती है और इसी पति-पत्नी की जोड़ी को दम्पति कहते हैं । पति-पत्नी एक दूसरे के लिए सर्वोपरि आत्मीय

❁ जर्मनी के सिक्के को मार्क कहते हैं और एक मार्क १ रुपए डेढ़ आने के बराबर होता है ।

† १ पेन एक रुपए ६ आने के बराबर होता है ।

‡ १४ फ्रैंक एक रुपए के बराबर होता है ।



माने जाते हैं एवम् दोनों को एक शरीर समझा जाता है। कहा जाता है कि पति-पत्नी गृहस्थी-रूपी गाड़ी के दो चक्र हैं, विवाह के अवसर पर की गई पवित्र प्रतिज्ञाएँ इस गाड़ी की धुरी हैं तथा यह गाड़ी धर्म के समस्त बोझों को ढोती है, इसीलिए गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ माना गया है। जगत की उत्पत्ति, वृद्धि तथा आनन्द का यही स्रोत है। स्वर्ग के देवता भी गृहस्थाश्रम में विचरने के लिए लालायित रहते हैं। किन्तु वास्तव में गृहस्थाश्रम की समस्त विशेषताएँ दाम्पत्य जीवन की उत्तमता पर ही अवलम्बित हैं। दाम्पत्य जीवन की पूर्णता ही गृहस्थाश्रम को उपयुक्त, श्रेष्ठ तथा आकर्षक बनाती है; अतएव गृहस्थी की अवस्था दाम्पत्य जीवन की कसौटी है। आजकल हम बिरले ही गृहस्थ को सुखी पाते हैं और वैसा सुखी तो किसी को नहीं, जो स्वर्गास्थ देवता को भी आकर्षित कर सके। तब आधुनिक दाम्पत्य जीवन की पूर्णता में सहज ही आशङ्का होने लगती है। आगे बढ़ कर जब हम गहराई में छान-बीन करते हैं तो देखते हैं कि कहीं पति दुखी है तो कहीं पत्नी और कहीं दोनों ही। सुखी दम्पति तो अँगुलियों पर गिनने योग्य ही मिलते हैं। पति अथवा पत्नी के क्लेशों का प्रायः सर्वत्र एक ही मूल कारण मिलता है और वह है 'बेमेल जोड़ी का गठ-बन्धन।' इस विषमता के कारण जितनी बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें हमने दाम्पत्य कलह के नाम से सम्बोधित किया है।

दाम्पत्य कलह की उत्पत्ति बेमेल जोड़ी के गठ-बन्धन अर्थात् विवाह-संस्कार की त्रुटियों के कारण होती है। अस्तु, इस विवाह-संस्कार की त्रुटियों का विश्लेषण करके, दाम्पत्य कलह के बीजों का पता लगा सकते हैं। कहने को तो विवाह-संस्कार आज भी धर्मशास्त्रों के आधार पर ही होता है, किन्तु कहना अनुचित न होगा कि अन्य संस्कारों की तरह परमावश्यक पवित्र विवाह-संस्कार की भी छीछालेदर हो रही है। बालक-बालिका का विवाह करना तो मानों विवाह-संस्कार की खिल्ली उड़ाना है ही, युवक-युवतियों का विवाह भी जिस ढङ्ग से होता है, वह भी दो पशुओं को चिड़ियाघराने के पिंजरे में बन्द कर देने के समान है। विवाह-संस्कार द्वारा स्त्री-पुरुष को आजन्म अभिन्न आरम्य बन कर

रहने तथा उत्तम गृहस्थी की सृष्टि करके जगत की सेवा करने के लिए बाँध दिया जाना है। हिन्दू जाति का वैवाहिक बन्धन आजन्म अटूट होता है। एक बार जिसका जिससे 'गठबन्धन' हो गया, फिर वह छूटने का नहीं। ऐसी दशा में, यह अतीव आवश्यक है कि उन्हीं दो स्त्री-पुरुष को वैवाहिक बन्धन में बाँधा जाय, जिनकी योग्यता, विचार, स्वभाव, गुण, रूप-रङ्ग तथा अवस्था मिलती-जुलती हो और जो परस्पर बँधने को सहमत हों। परन्तु आज अधिकतर क्या होता है? कोई धन के लोभ से अपनी दुधमुँही बालिका का विवाह एक अधेड़ खूंसट से कर देता है, तो कोई अपनी युवती कन्या का विवाह एक बालक से। वर गोरा है तो कन्या काली; कन्या गोरी है तो वर काला। वर अंगुष्ठ है तो कन्या प्राश्मरी पाप; कन्या अंगुष्ठ है तो वर मैट्रिक्युलेट। इसके अतिरिक्त विचार, स्वभाव तथा स्वास्थ्य की विषमता का तो कहना ही क्या, उसका जानकार तो ईश्वर ही है। ऐसी अवस्था में दाम्पत्य जीवन का श्रेष्ठ होना ही आश्चर्य की बात है। विवाह का सर्वाधिकार अभिभावकों को ही प्राप्त है, वे चाहे जैसे और जिससे वर या कन्या को बाँध दें, उन्हें अपनी जोड़ी पसन्द हो अथवा नहीं, वे विवाह करना चाहें अथवा नहीं, वे मुँह नहीं खोल सकते, उन्हें अपनी इच्छा प्रगट करने का अधिकार नहीं। उन्हें अभिभावकों की इच्छा के सम्मुख घुटना टेकना पड़ता है और मूक, असहाय पशु के समान जन्म-पर्यन्त विवाह-बन्धन में बँध जाना पड़ता है। कोई कन्या को मोल-तोल करके बेचता है तो कोई वर को टीका के नाम पर चढ़-बढ़ कर बेचता है। वर-कन्या के भविष्य की चिन्ता केवल पण्डितों के पञ्चाङ्ग में राशि और ग्रहों का मेल कराकर दूर हो जाती है। वर के गुप्त रोगों की जाँच करना तो धर्म-विरुद्ध माना जाता है। हालाँकि इस भूल के कारण कितनी ही कन्याओं को आजीवन दुःख भोगना पड़ता है। समाज की मान्यता है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष का विवाह होना ही चाहिए, इसलिए 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब' के अनुसार जो विवाह-संस्कार योग्य आयु में होना चाहिए, उसे मूर्ख अभिभावक बाल्यकाल ही में सम्पन्न करके अपना बोझ हल्का कर डालते हैं। वे विवाह को पूर्व-जन्म का कर्म-फल अथवा



होतव्यता-वश मानते हैं। इसलिए वे बालविवाह-जनित अनिष्टों के लिए अपने को ज़िम्मेदार नहीं मानते। परन्तु ऐसे अभिभावक अपनी सन्तान का ही जीवन नहीं बिगाड़ते, बल्कि हिन्दू-जाति-मात्र का अहित कहते हैं। कितने ही मृत्यु-द्वार पर खड़े मूल्य अभिभावक छोटे बालक वा बालिका का विवाह केवल जीते जी उनका विवाह-सुख देखने के लिए ही कर डालते हैं। और यदि कोई अनिष्ट हुआ तो पूर्वजन्म के पाप का फल मान कर सन्तोष कर लेते हैं। परन्तु उनके सन्तुष्ट होने मात्र से क्या कन्या का क्लेश मिटता है? बिल्कुल नहीं। कहाँ तक कहा जाय, आज हिन्दू-विवाह-संस्कार में इतनी बुराइयाँ पैदा हो गई हैं कि इसे संस्कार न कह कर कुसंस्कार कहना अधिक सार्थक हो सकता है। जब गृहस्थाश्रम-रूपी महल की विवाह-संस्कार रूपी नींव ही कमजोर है, तो उस महल के निवासी दम्पति क्योंकर सुखी हो सकते हैं?

टीका या तिलक भी प्रचलित प्रथा भी वर-कन्या के निर्वाचन में बड़ी बाधक होती है। वर-पक्ष की इच्छा होती है कि जो अधिक से अधिक टीका दे, उसी की कन्या ली जाय तो कन्या-पक्ष की लालसा होती है कि अधिक से अधिक टीका देकर बड़ा घर प्राप्त किया जाय। वर-कन्या की योग्यता-अयोग्यता तथा स्वास्थ्यादि का विचार यहाँ गौण माना जाता है। टीका के लेन-देन में आदि से अन्त तक अपशकुन होते रहते हैं। धनाढ्य अभिभावक टीका के प्रलोभन से अपने लड़कों की कई शायियाँ भी कर डालते हैं। कन्या के अभिभावक कन्या का विवाह धनाढ्य परिवार में यह समझ कर करते हैं कि दैवयोग से यदि कन्या विधवा हो जायगी, तो भी सुख से जीवन यापन कर लेगी। टीका की बुराइयों के कारण तो हिन्दू-विवाह-संस्कार की दुर्गति हो रही है। परन्तु उसकी बुराइयों का वर्णन करना अप्रासङ्गिक होगा। यहाँ पर तो इतना ही बताना है कि टीका के क्रमेले में वर-कन्या का उत्तम चुनाव, जो विवाह-संस्कार का मुख्य विषय है, गौण हो जाता है। टीके की रकम, बारात की मर्यादा, बाजा, माच तथा गहने-गठर से वर-कन्या को कोई लाभ नहीं पहुँचता। वहाँ तो वर के योग्य वधू तथा वधू के योग्य वर चाहिए। पर खेद की बात है कि आज इसी विषय की बहुधा उपेक्षा की जा रही है।

विवाह-संस्कार के अवसर पर पण्डित-पुरोहित मन्त्रों का पाठ संस्कृत भाषा में करते हैं। अतः संस्कृत भाषा से वञ्चित वर-कन्या पर उन मन्त्रों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वर-वधू द्वारा की जाने वाली प्रतिज्ञाएँ भी वे ही बक जाते हैं। चाहिए यह कि वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ उन्हीं से उनकी व्यावहारिक भाषा में कह-लवाई जाएँ, क्योंकि उस समय की की हुई प्रतिज्ञाएँ दम्पति को आजन्म धर्म-बन्धन में बाँधती हैं। वे प्रतिज्ञाएँ तो नित्य के पाठ की चीज़ हैं। जाति-बन्धुओं के मध्य सोच-समझ कर की हुई प्रतिज्ञाएँ असरदार भी होती हैं। जब हम वर-वधू की प्रतिज्ञाओं की महत्ता और उनके बाद के व्यवहारों की तुलना करते हैं, तो बिना समझे-बूझे प्रतिज्ञा करने-कराने की निस्सारता स्पष्ट दीखने लगती है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि आजकल का विवाह-संस्कार केवल वर-वधू को विषय-भोग के लिए प्रमाण-पत्र के सदृश है, न कि वह उनको एक दूसरे के प्रति पवित्र कर्तव्य के लिए संस्कृत करता है।

दाम्पत्य कलह का एक कारण दम्पति का, विशेषकर पुरुष का काम-शास्त्र से अनभिज्ञ होना भी है। पुरुष स्वभाव से ही दीठ और स्त्री शीलवती होती है। इसके अतिरिक्त वह केवल पतित्व की वेदी पर ही अपने को निछावर करने में आनन्द नहीं मानती, वह पतित्व के साथ ही दाम्पत्य प्रेम भी चाहती है। जो पुरुष प्रथम संयोग में ही स्त्री को अपनी कामना का शिकार बनाने की बर्बरता करता है, वह भयङ्कर भूत करके दाम्पत्य कलह का बीज बोता है। विषय मानसिक विकार एवम् शरीर का सौदा है, किन्तु दाम्पत्य प्रेम तो हृदय का सौदा है। हृदय के आदान-प्रदान में समय लगता है। हृदय ही स्त्री की सम्पत्ति है, वह उसे सहज ही पुरुष को नहीं देती और एक बार देकर फिर वापिस लेना नहीं जानती। आजकल की विवाह-प्रणाली में हृदय को आदान-प्रदान करने का अवसर नहीं मिलता। अतएव विवाह-संस्कार मात्र से ही दाम्पत्य प्रेम की धारा प्रवाहित नहीं होती, बल्कि वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ में दम्पति को उसे प्रवाहित करना पड़ता है। इसीलिए पत्नी के हृदय पर पति का और पति के हृदय पर पत्नी का अधिकार करना आवश्यक होता है। हृदय पर अधिकार किए



बिना शरीर पर अधिकार करना बलात्कार है। बलात्कार से दाम्पत्य-कलह की स्थापना होती है।

परदे की प्रथा भी दाम्पत्य-कलह की सहायिका है। बहुधा परिजनों तथा लोक की लज्जा के चक्कर में पढ़कर पति-पत्नी एक दूसरे से प्रगट में बातचीत नहीं करते, और करते भी हैं तो सायँ-सायँ, फुस-फुस, मानों वे कोई दुष्कर्म कर रहे हों। सङ्कोचवश पतिदेवता, पत्नी के अभाव-अभियोग का निवारण नहीं कर पाते, अतएव पत्नी को ज़ोम होता है। ऐसा बहुधा देखा जाता है कि पत्नी सङ्गत बीमार है, मगर लोक-लज्जा के मारे पतिदेव स्वयं अस्वस्थ पत्नी की सेवा न कर भाड़े की स्त्रियों से करवाते हैं। बड़े परिवार में भी पति को अस्वस्था पत्नी की सेवा-सुश्रूषा का अवसर नहीं मिलता। जो लोग स्त्रियों को पुरुषों की दासी और विषय-वासना का साधन मानते हैं, उनसे हम कुछ भी नहीं कहना चाहते। किन्तु जो लोग स्त्रियों को गृहलक्ष्मी, आनन्ददायिनी तथा मङ्गल-मूर्ति मानते हैं, उनसे अनुरोध करेंगे कि वे व्यर्थ की परदा-परिपाटी को दाम्पत्य-कलह का प्रवर्तक समझ उसे त्याग दें तथा अपनी स्त्रियों को भी उससे मुक्त कर दें। परदा तो लुब्ध-लफ्फों से होना चाहिए, पति तथा परिजनों से परदा क्यों?

सारांश यह कि बाल-वृद्ध और बेमेल-विवाह, जोड़ी के चुनाव में घर-बधू की परतन्त्रता, काम शास्त्र की

अनभिज्ञता, परदा-प्रथा तथा संस्कार-दोष के कारण दाम्पत्य-कलह की उत्पत्ति होती है। दाम्पत्य-कलह दुसह दुःख है। जो मन्दभागी दम्पति इसका शिकार हो जाता है, उसका जीवन नीरस और कभी-कभी व्यर्थ भी हो जाता है। चाहे उसके पास सब सुखों का साधन विद्यमान क्यों न हो। दाम्पत्य-कलह के कारण कितने ही परिवार बर्बाद हो चुके हैं, कितने ही नर-नारी अपना जीवन खो चुके हैं। कितने ही पुरुषों को घरबार छोड़ कर वैरागी होना पड़ा तो कितनी ही देवियों को बेशर्मी की ज़िन्दगी बितानी पड़ी है। कभी-कभी दाम्पत्य-कलह रूपी ज्वाला की लपट समस्त परिवार को भस्म कर डालती है। यह कहना अनुचित न होगा कि नशेबाज़ी, साधूपन, वेश्याबाज़ी तथा अन्य अनेक बाज़ियों में भी दाम्पत्य-कलह का प्रसार पाया जाता है। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि आए-दिन हिन्दू जाति में दाम्पत्य-कलह की महामारी से बच कर दाम्पत्य-प्रेम का परमानन्द भोगने वाले थोड़े ही दम्पति पाए जाते हैं। दाम्पत्य-कलह के फल-स्वरूप केवल व्यक्तियों की ही नहीं, बल्कि समस्त हिन्दू-समाज की महान् क्षति हो रही है। अतएव प्रत्येक जाति-हितैषी का परम कर्तव्य है कि वह दाम्पत्य-कलह के उपर्युक्त कारणों के उन्मूलन का शक्ति भर प्रयत्न करे।

—गौरीशङ्करसिंह चन्देल

विजया का सन्देश

[राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश']

नाश कर सके भेद-भाव की पिशाचिनी ना, बन रहे कुटिल कुरीति के शिकारी हैं।

सोते अभी नींद में पड़े हैं कुम्भकर्ण से ही, आती ना तरस देव अबला दुखारी हैं।
सुरसा-बदन रुढ़ियों में जा रहे हैं धँसे, हो रहीं दशाएँ कैसी पतित तुम्हारी हैं।

दासता-पयोधि के न पार हो सके हैं अभी, कैसे फिर विजया के आप अधिकारी हैं।
सेबरी, निषाद सा लगाओ अन्त्यजों को गले, टीका ये कलङ्क का जो धोना चाहते हो तुम।

वस्तुएँ स्वदेशी अपनाओ कर प्रेम सदा, देश की विपत्ति जो पै खोना चाहते हो तुम।
बाज़ा लो शिवा का, छत्रशाल का प्रताप का जो, पुट्टमी में पुण्य बीज बोना चाहते हो तुम।

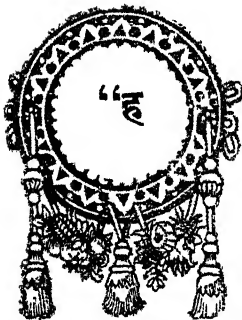
जीवन-समर में पछाड़ दासता को बढ़ो, वसुधा में विजयी जो होना चाहते हो तुम।





कहानी

[श्री० केशवराम गुप्त, विशारद, बी० ए०, एल्-एल् बी०]



ध्वजाप्रसाद जी ने अकड़ते हुए कहा ।

“महाराज, इतने रुपए तो मैं अपना धन, धर्म, घर-गृहस्थी बेच कर भी न इकट्ठे कर पाऊँगा । यदि मान लीजिए कि सब कुछ बेच-बाँच कर यह रकम पूरी कर ही दी, परन्तु और भी तो व्यय होंगे, वह कहाँ से लाऊँगा ? इसके अतिरिक्त मेरे दो कन्याएँ और भी हैं, उनका विवाह फिर कहाँ से करूँगा ? दो लड़के आपके दास हैं, वे बेचारे क्या खाएँगे ? कुछ दया कीजिए । पाँच सौ ले लीजिए । निराश न कीजिए ।”—लड़की के पिता पण्डित नम्रतानिधान जी ने हाथ जोड़ कर कहा ।

“हम दुनिया भर के काम-काज और खाने-पीने के ठेकेदार नहीं हैं । इससे पाई भी कम न लेंगे । जी चाहे बात पक्की कीजिए, जी चाहे कोई दूसरा घर देखिए । सम्भव है, कोई कक्काल या धाकर इससे कम में राज़ी हो जाय ।”—पण्डित धर्मध्वजाप्रसाद जी ने रुखे हो कर कहा ।

“भगवन्, आप कान्यकुब्ज महासभा के प्रमुख व्यक्तियों में से हैं । मैं आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ करके आया हूँ । कृपा करके सात ही सौ रुपए ले लीजिए, जिसमें मैं एक राहस्य में समस्त कार्य निबटा सकूँ । यद्यपि इतने में भी मैं भिट जाऊँगा, किन्तु क्या किया जाय, कान्यकुब्ज-कुल में जन्म लेने और कन्या उत्पन्न करने का प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ेगा !”—नम्रतानिधान जी ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा ।

“सभा का कार्यकर्ता होने का व्यङ्ग आप व्यर्थ कसते हैं । सभा वालों का मुझे आपसे अधिक अनुभव है; मैं भी दो लड़कियों का विवाह कर चुका हूँ । बड़े-बड़े व्याख्यानदाताओं के यहाँ सम्बन्ध किए हैं । किन्तु किसी न किसी बहाने से बिना बैलियाँ ढकारे उन लोगों के देवता न पसीजे । मैं छल-कपट और पालिसीबाज़ी पसन्द नहीं करता कि अपना उत्तर-दायित्व बाबा-दादा पर छोड़ता फिऊँ । इसलिए आपसे स्वयम् स्पष्ट बातें कर रहा हूँ । एक लड़की मुझे और भी ब्याहनी है । लड़के के सम्बन्ध में एक सहस्र लेकर कुछ अपने पास से मिला कर किसी नामधारी नेता के ग्रेजुएट लड़के को फाँसने का प्रयत्न करूँगा । मुझे आप से पूर्ण सद्धानुभूति है, किन्तु क्या करूँ, कान्यकुब्ज-समाज की दशा देख कर विवश हूँ । अन्ध्रा घर-घर तो यहाँ गूलर का फूल हो रहा है । लोगों के पेट बड़ रहे हैं । शिचा और डिग्रियों के साथ-साथ बैलियों की

संख्या बढ़ जाती है। अस्तु, चमा कीजिए, इसमें कमी करना असम्भव है।”—धर्मश्वजाप्रसाद जी ने कुछ सहायभूति, किन्तु पूर्ण दृढ़ता दिखलाते हुए यह लम्बा लेम्बर भाड़ डाला।

“तब तो शरीरों की लड़कियों का विवाह होना ही असम्भव हो जाएगा।”—मन्नतानिधान जी ने फिर निवेदन किया।

“परिदत्त जी महाराज, इसमें केवल लड़के वालों का ही अपराध नहीं है, वरन् इस अन्धेर का विशेष उत्तरदायित्व लड़की वालों पर ही है, जो अपनी कन्याओं को कोठी वालों, प्रेजुपटों के यहाँ डाल कर उन्हें पूर्ण सुखी और मेम साहबा के रूप में देखना चाहते हैं। किसी की निगाह लड़की की पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर होती है, इसलिए वे किसी एकाकी साहब बहादुर, अङ्गरेजीदाँ के साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं। किसी की निगाह घर की अतुल सम्पत्ति से अपने बच्चों को लाभान्वित होते हुए देखने की ओर झुकी रहती है। कहाँ तक कहूँ, लड़की वाले क्या कुछ कम उत्तरदायी हैं? उनकी इस प्रवृत्ति के कारण ही तो आज समाज में सहस्रों शरीर युवक निर्धन होने के कारण अविवाहित पड़े हैं, जिनका निस्सन्तान मरना और पतनोन्मुख होना अवश्यम्भावी है। उधर इच्छित घर न प्राप्त होने के कारण हज़ारों कन्याएँ अविवाहिता रह कर समाज को कोसती रहती हैं। किन्तु उन्हें सोचना चाहिए कि समाज के सिवा उनकी अपनी भोग-लिप्सा, सुख-वासवा और उनके अभिभावकों की महत्वाकांक्षाएँ भी बहुत कुछ उनके दुःख के लिए उत्तरदायी हैं। जैसे-जैसे त्याग, तपस्या तथा सेवा के पवित्र भाव लुप्त होते जाते हैं, जैसे-जैसे दुःख, पाप, कलुष आदि बढ़ते जाते हैं, अस्तु, मैं विवश हूँ।”—धर्मश्वजाप्रसाद जी ने भाड़-पट्टी बतलाते हुए अबकी बार और भी लम्बी वक्तृता दे डाली।

“अच्छा भगवन्! यदि आप नहीं मानते तो मैं एक सहस्र की थैली का भुगतान किसी न किसी भाँति कर दूँगा, परन्तु फिर और प्रबन्ध न कर सकूँगा। अस्तु, बहुत बड़ी बारात न लाइएगा। इने-गिने आदमी चले आँवें।”—मन्नतानिधान जी ने हार कर कहा।

“बड़ी बारात क्या! हज़ार दो हज़ार आदमी तो आवेंगे नहीं। हाँ, इष्ट-मित्र और रिश्तेदार अवश्य ही आवेंगे, उनके आए बिना कैसे बनेगा?”—धर्मश्वजाप्रसाद जी ने कुछ नमी लिए हुए कहा। अस्तु।

इसी प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् विवाह की बातचीत पक्की हो गई। मन्नतानिधान जी ने लड़का देख कर घर-रखा कर दी और निश्चिन्त होकर घर जाकर विवाह का प्रबन्ध करने में लगे।

२

“विद्या के विवाह में देने के लिए हज़ार रुपए कहाँ से आएँगे?”—मन्नतानिधान की धर्मपत्नी ने प्रश्न किया।

“अपने रहने भर को एक दालान, दो कोठरियाँ, और थोड़ा सा सहन छोड़ कर घर का शेष भाग बेच देना पड़ेगा। तुम्हारे गहने बन्धक रखने पड़ेंगे। दो-ढाई सौ रुपए घर में हैं। इम प्रकार सब मिला कर हज़ार-बारह सौ की रकम हो जाएगी! और क्या उपाय है?”—मन्नतानिधान जी ने सर्व आह भर कर कहा।

“घर बेचना पड़ेगा? गहने गिरवी रखने होंगे?”—पत्नी ने उदास होकर पूछा।

“सत्रह-अठारह वर्ष की सयानी लड़की से उभय होने का और कौन सा मार्ग है?”—परिदत्त जी ने और भी अधिक दुःखी होकर कहा।

“इतने पर भी तो पूरा न पड़ेगा, एक हज़ार तो नक़द ही लेंगे। शेष सौ-पचास रुपए मैं बारात का बोझ कैसे सँभलेगा?”—पत्नी ने पहली दुःख-समस्या को टाल कर दूसरी समस्या उपस्थित की।

“सब भगवान पार करेंगे। उनसे कह दिया है कि इने-गिने मनुष्य आँवें, बहुत बड़ी बारात न लावें।”—परिदत्त जी ने निश्चिन्त भाव से उत्तर दिया।

“दहेज़ की इस विनाशक प्रथा का कब अन्त होगा? पूर्वजों ने न जाने क्या सोच कर यह परिपाटी चला दी थी।”—पत्नी ने कहा।

“जब लड़की ग्याहनी होती है तो सभी दहेज़ को बुरा बखलाते हैं। किन्तु जब लड़के के विवाह का अवसर आता है, तब इस विवेक-मुक्ति को तिजाज़्जि देकर उसी प्रथा का अनुसरण करते हैं। सच पूछो तो इसमें तत्त्व रूप से कोई बुराई नहीं है। वही माता-पिता पुत्र उत्पन्न करते हैं और वही पुत्री। तब

क्या कारण है कि पुत्र तो सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन बैठता है और पुत्री को एक छदाम भी नहीं दिया जाता; वरन उसके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व शौरो पर डाल दिया जाता है। मेरी समझ में दहेज सम्पत्ति में पुत्री का आवश्यक अंश है, जो विवाह के समय, उसे अपने परिवार से अलग करते वक्त, अवश्य मिल जाना चाहिए। सम्पत्ति में बच्चों की संख्यानुसार उचित अंश पुत्री को दहेज-रूप में देना न्याय्य है। हाँ, घर आदि बेचकर सारी सम्पत्ति ही देने पर विवश होना अवश्य ही अन्याय है। परन्तु ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि हम धनियों के लड़कों के साथ ही अपनी कन्याओं का विवाह करना चाहते हैं। नहीं तो ऐसे सैकड़ों शरीर युवक मिल सकते हैं, जो बिना कुछ लिए विवाह कर लेंगे। किन्तु उनके यहाँ सिर से पैर तक स्वर्णभरण, छप्पन प्रकार के भोजन, दास-दासी, महरी-महाराजिन कहाँ? वह कन्या को साधारण भोजन-वस्त्र दे सकते हैं, किन्तु उसे मेम साहबा का सा सुख तो नहीं दे सकते। उनके यहाँ चौका-बर्तन, भाड़-बहार, रसोई सब अपने हाथों करना पड़ेगा; पलंग पर बैठे-बैठे हुकूमत करना वहाँ कहाँ नसीब होगा? इसीलिए धनी घर-घर दूँदे जाते हैं; फिर 'जस देवता तस चाहिय पूजा' के अनुसार उन्हें लम्बी दक्षिणा भी देने को विवश होना पड़ता है। या तो फिर किसी बूढ़े रईस के साथ विवाह किया जाय। किन्तु इसे अपनी आत्मा स्वीकार नहीं करती। संछेप में दहेज-प्रथा का रहस्य यही है। अस्तु, जो कुछ भगवान चाहेंगे वह होगा। अधिक चिन्ता न करो, सोने दो।"—कह कर पण्डित जी ने करवट बदली। परन्तु पण्डिताइन जी उदास भाव से देर तक पड़ी-पड़ी तारे गिनती रहीं।

३

घर का बड़ा सा भाग बेच कर और धर्मपत्नी के गहने बन्धक रख कर पण्डित नम्रतानिधान जी ने बड़ी कठिनता से बारह सौ रुपये एकत्र किए। उधर बारात पूरे ठाट-बाट से आई, जिसमें प्रायः पाँच सौ मनुष्य थे। बहुत से देहाती बाराती अपने साथ छकड़े, बहलें, रथ, घोड़े आदि भी लाए थे।

बारात देख कर कन्या-पक्ष वालों के होश उड़ गए। सब दृढ़ थे कि क्या होगा और कैसे आबरू बचेगी।

बारात को शर्बत पिलाने में ही एक बोरा शकर पर पानी फिर गया। बात-बात में बारात वाले रुठते और लौट जाने की धमकियाँ देते थे। येन-केन-प्रकारेण, बड़ी हाय-हाय और ठायँ-ठाँयँ के पश्चात् राम-राम करके विवाह वाली रात समाप्त हुई। कहना न होगा कि भाँवरें पड़ने के पहले ही धर्मध्वजाप्रसाद जी ने एक सहस्र का हिसाब-किताब करके भुगतान चुकता करा लिया। कई सौ रूपयों की थैली नम्रतानिधान जी से वेदी पर रखवा ली, तब कहीं भाँवरें पड़ने दीं।

प्रातःकाल सीधा और दाना-चारा माँगने वालों का ताँता लगा। क्योंकि इसके बिना आगे कोई कार्यवाही न हो सकती थी। दाना-चारा और सीधा लिए बिना बारात भात खाने को भी तैयार न थी। दोपहर तक सीधे तुलते रहे। दाना-चारा दिया जाता रहा; यहाँ तक कि पण्डित नम्रतानिधान जी ने जितनी रसद एकत्र की थी, सब उठ गई। सौ सवा सौ रूपए और भी व्यय हो गए। किन्तु उधर की माँग पूरी होने को न आती थी। अभी तक दाना-चारा वालों का ताँता न टूटा था। पण्डित नम्रतानिधान जी ने अपनी पत्नी के भाई चतुरशिरोमणि जी को एकान्त में बुला कर पूछा—कहो, अब क्या किया जाय? सारा सामान तो समाप्त हो चला है। केवल चालीस-पच्चास रूपए शेष रह गए हैं। चार दिन कैसे निबटेंगे? यहाँ तो अब एक दिन निबटाना भी दूभर हो रहा है!

कन्या के मामा पण्डित चतुरशिरोमणि जी ने कहा—दस रूपए मेरे हवाले कीजिए, अभी सब प्रबन्ध किए देता हूँ।

“सो कैसे?”—पण्डित नम्रतानिधान जी ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा।

“यह अभी मैं न बताऊँगा, इसका रहस्य बाद में खुलेगा। अभी बता देने से अड़चन पड़ने की सम्भावना है।”—चतुरशिरोमणि जी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

४

गाँव के बाहर आमों के एक बड़े से बाग में बारात का जनवासा था। बड़ी भीड़-भाड़ थी। जगह-जगह शामियाने, छोलदारियाँ तथा झीमे गड़े हुए थे। दौड़-धूप मची हुई थी। लड़की वाले दाना-चारा तथा सीधा

ही न दे पाते थे, नारते आदि का वह क्या प्रबन्ध करते? चारों ओर अशान्ति विराजमान थी। जो लोग सीधा पा चुके थे, वह अङ्गारे लगा-लगा कर खिचड़ी और भौरी आदि बनाने में जुटे हुए थे। जिन्होंने न पाया था वे मुँह सुखाए घूम रहे थे। वर-पक्ष वालों की ओर से भी कोई विशेष प्रबन्ध न था। बड़ी कठिनाई से दो-तीन बड़ी-बड़ी हाँदियों में खिचड़ी पकवा कर खिलाने का प्रबन्ध हो रहा था। वर के मामा, पण्डित बुद्धराम शर्मा भी इसी प्रबन्ध में व्यस्त थे कि इतने में देखा कि एक अपरिचित व्यक्ति इशारे से बुला रहा है।

यद्यपि उस व्यक्ति से आपकी कोई जान-पहचान न थी। परन्तु उसके इशारे में कुछ ऐसी विचित्रता प्रतीत हुई कि आप उसे टाल न सके। उसके चेहरे से कुछ रहस्य झलक रहा था। आप खिंचे हुए से उसके पास पहुँचे।

“आप भी कहाँ अपना धर्म देने आ पहुँचे।”—अपरिचित व्यक्ति ने बुद्धराम से कहा।

“क्यों-क्यों, क्या हुआ?”—बुद्धराम ने चकित होकर पूछा।

“हुआ क्या, कुछ कहने की बात नहीं। कुशल यही है कि औरन यहाँ से चले जाओ, अभी भात नहीं खाया है।”—उपर्युक्त व्यक्ति ने कहा।

“कहना नहीं था तो बात ही क्यों छेड़ी? सहसा बिना कारण जाने-समझे कैसे भाग खड़े हों? आपस का मामला ठहरा।”—बुद्धराम ने रुष्ट होकर कहा।

“नहीं मानते तो लीजिए सुनिप—कन्या के पेट है। मैंने आपको सूचित कर दिया। अब आप जानें और आपका काम जाने। सारी बारात का धर्म आपके हाथ है।”—कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही अपरिचित व्यक्ति चलता हो गया। क्षण भर बाद ही वह दृष्टि से ओझल हो गया।

उसी अपरिचित व्यक्ति ने कन्या के मामा चतुरशिरोमणि जी से जाकर कहा—मैंने आपके आदेशानुसार सब कार्य कर दिया। चिनगारी लगा दी। अब मैं तो जाता हूँ, आप तमाशा देखिए और काम सँभालिए। सजग रहिएगा, मुझ पर कोई दोषारोपण न होने पावे।

“आप निश्चिन्त होकर जाइए, मैं काम बनाने का ही प्रयत्न कर रहा हूँ बिगाड़ना कैसा?”—पण्डित चतुरशिरोमणि जी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा। अपरिचित व्यक्ति वहाँ से भी नौ-दो-न्यारह हो गया।

उसकी लगाई हुई चिनगारी क्षण भर में सारी बारात में बिजली की तरह फैल गई और अपना रङ्ग दिखाने लगी।

५

लोग अपने-अपने रथ, बहलें, मँझोलिया जुतवा कर प्रस्थान करने लगे। जो लोग खिचड़ी आदि बनाने में लगे थे, उन्होंने जैसे-तैसे कच्ची-पक्की बना कर दो-चार आस मुँह में डाल, पानी पिया और तैयारी करके चलते हुए। जो अभी बनाने जा रहे थे, उन्होंने फिर न बनाया। बिना भोजन किए शर्वत-पानी पीकर ही चलने लगे। निदान घण्टे भर में वह जन-कलरवपूर्ण बाग उजाड़ हो गया। केवल धर्मध्वजाप्रसाद जी, उनके सुपुत्र वर महोदय, पण्डित बुद्धराम शर्मा, वर के मामा जी और दो एक नाई-कहार रह गए। उन लोगों ने भी अपनी बहली जोतने की आज्ञा दी और सामान बाँधने लगे।

इतने में कन्या के मामा चतुरशिरोमणि जी तथा उनके दस-पाँच और साथी उधर से आ निकले। उन्होंने बाग उजाड़ा हुआ देख कर आश्चर्यान्वित होकर धर्मध्वजाप्रसाद जी से पूछा—भगवन्, यह एकाएक क्या हो गया? बारात कहाँ गई?

“अरे साहब, मैं लुट गया। मेरे साथ बड़ा धोखा हुआ। मैं कहीं का न रह गया। क्या कहूँ, क्या न कहूँ?”—पण्डित धर्मध्वजाप्रसाद जी ने दुःखावेश में उत्तर दिया।

“आखिर कुछ मालूम भी तो हो, ऐसा तो कोई कारण प्रतीत नहीं होता। हम लोगों की ओर से तो यथाशक्ति कोई झुटि नहीं की गई। आपका दान-दखिया कल ही चुकता कर दिया गया था। आज सवेरे से भी हम लोग सेवा में भरसक कुछ उठा नहीं रख रहे हैं। अभी कुछ देर पूर्व तो आनन्द ही आनन्द था।”—पण्डित चतुरशिरोमणि जी ने पूछा।



“आप लोगों की ओर से कोई त्रुटि नहीं हुई? आप ही लोगों ने तो मुझे चौपट कर दिया है। नम्रतानिधान मिले तो उससे मैं अपनी मानहानि का सारा बदला चुका लूँ। तुम्हें क्या कहूँ। जाओ, जले में और नमक न छिड़को।”—धर्मध्वजा जी ने बिगड़ कर कहा।

“भगवन्! रूढ़ होने का कारण भी तो ज्ञात हो। यों तो कान्यकुब्ज-कुल में जन्म लेकर कन्या का पिता होना ही लालिछित होना और क्रसूरों का टोकरा सर पर ढोना है, किन्तु जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, नम्रतानिधान जी ने कोई त्रुटि नहीं की। वरन् कन्या विवाहने के लिए बड़ा भारी त्याग किया है।”—चतुरशिरोमणि जी ने नम्रता, किन्तु दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

“अरे बुद्धराम! इन्हें कारण बता दो, बिना कारण जाने यह न मानेंगे। लज्जित होने की जगह और हठ ठानते हैं, हैकड़ी मारते हैं।”—धर्मध्वजा जी ने आदेश किया।

“वास्तव में पण्डित जी आप बड़े हठी और निर्लज्ज ज्ञात होते हैं। सारी बारात में आपके घर की बात फैल गई कि लड़की के पेट है और आप अनजान बनते हैं। इसी कारण सब लोग चले गए। सब गुड़ गोबर हो गया। बड़ा भारी अपमान हुआ।”—पण्डित बुद्धराम जी ने व्यङ्ग्य कसते हुए कहा।

“अरे! यह आप क्या कहते हैं, बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी दुष्ट शत्रु के भड़काने में सारी बारात आ गई। किसी ने खोज करने का भी प्रयत्न न किया। कन्या पूर्णरूपेण निर्दोष है, शुद्ध है। आप चाहे स्वयम् देख लीजिए, चाहे डॉक्टरों की परीक्षा करा लीजिए।”—चतुरशिरोमणि जी ने कहा।

अस्तु, सब लोग घेर-घार कर पण्डित धर्मध्वजा-प्रसाद जी को नम्रतानिधान जी के घर पर ले गए। उनके बुद्धराम जी आदि अनेक साथी भी पहुँचे। चतुरशिरोमणि जी ने कन्या को लाकर सबके सम्मुख उपस्थित कर दिया। कन्या देखने में शुद्ध प्रतीत हुई। किन्तु धर्मध्वजा जी ने कहा—हम लोग इन मामलों को क्या समझ सकते हैं?

इस पर चतुरशिरोमणि जी ने शहर से एक सुप्रसिद्ध लेडी डॉक्टर को बुलवाया। लेडी डॉक्टर ने कन्या की परीक्षा करके उसके शुद्ध होने का प्रमाण-पत्र दे दिया।

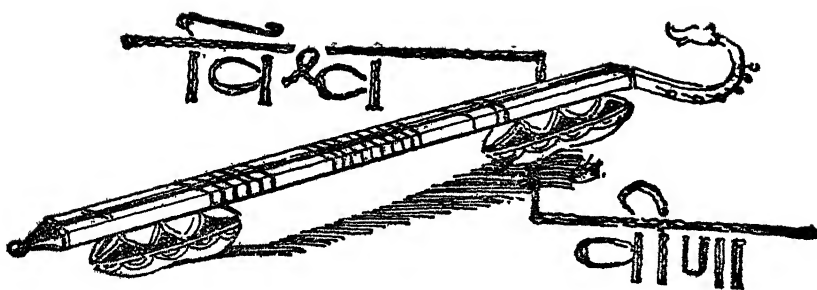
चतुरशिरोमणि जी ने कहा—आप लोग समझदार होकर शत्रुओं के बहकाने में आ गए। क्या बतावें, बारात भर में भूठी अपकीर्ति हो गई। कहने वाले का पता लग जाय तो हम उसे बिना मारे न छोड़ें।

बारात के अवशिष्ट लोग ठहर गए। भात, बड़हार आदि सब रस्में सामान्द समाप्त हो गईं। घर-पक्ष बाधे कन्या को, सयानी होने के कारण, विदा करा कर ले गए।

धर्मध्वजा जी ने घर पहुँच कर बारात से लौटे हुए लोगों को भोजन का निमन्त्रण देकर बुलाया। सब लोगों के सम्मुख स्थिति साफ़ की कि वह बात किसी शत्रु की लगाई हुई थी। लेडी डॉक्टर का प्रमाण-पत्र पेश किया। सब लोग यह भूठी बात उड़ाने वाले को उरा-भला कहते थे, किन्तु इस भूठी बात के प्रचार करने का मुख्य रहस्य बारातियों में से कोई भी न जान सका।

इधर नम्रतानिधान जी चतुरशिरोमणि जी की कार्य-कुशलता और चतुरता के बड़े कायल हो गए।





वर्तमान समय में गुलामी

जि न लोगों ने इंग्लैण्ड में दास-व्यवसाय के बन्द होने का इतिहास पढ़ा है और जो इस सम्बन्ध में होने वाले अमेरिका के गृह-युद्ध की कथा जानने हैं उनका खयाल है कि अब संसार में कहीं गुलामी का चिन्ह शेष नहीं है। ऐसे लोगों को यह सुन कर कदाचित् आश्चर्य होगा कि संसार में अब भी गुलामी की प्रथा प्रचलित है और लाखों अभागे उसके शिकार बने हुए हैं। इस विषय में 'इण्टर नेशनल रिव्यू' में लॉर्ड बक्सटन लिखते हैं :—

सम्भवतः इस विषय के नए पाठकों को यह बात बड़ी दुःखदायिनी जान पड़ेगी कि संसार में अब भी पचास-साठ लाख गुलाम हैं, जो सौ वर्ष पूर्व संसार में पाए जाने वाले गुलामों की संख्या से आधे से कम नहीं हैं। इस गणना में केवल वे ही लोग सम्मिलित हैं जो आस्तविक अर्थ में गुलाम हैं, अर्थात् जो कानून अपने स्वामी की आज्ञादा समझे जाते हैं और जिनको खरीदा तथा बेचा भी जा सकता है। इसके सिवा और भी लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो किञ्चित् प्रच्छन्न गुलामी की अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वर्तमान समय में जिन देशों में गुलामी की प्रथा प्रचलित है उनमें मुख्य चीन, एबीसीनिया और अरब हैं। इन देशों के गुलामों की ठीक-ठीक संख्या प्रकट नहीं हुई है, पर जानकार लोगों का कथन है कि अकेले चीन में कम से कम दो लाख गुलाम हैं। चीन के गुलामों में अधिकांश लड़कियाँ हैं। अमोय में रहने वाले अङ्गरेजी राजदूत मि० रसल ब्राउन का कहना है कि

घर के काम-काज और गुलामी के लिए लड़कियाँ सर्वत्र खरीदी और बेची जाती हैं। सन् १९३० में कितने ही प्रमुख चीन निवासियों और ईसाई पादरियों के नाम से एक अपील प्रकाशित की गई थी जिसमें बतलाया गया था कि "साधारण समय में सैकड़ों लड़कियाँ देशांत से शहरों में लाकर बेची जाती हैं। पर जब अकाल पड़ता है अथवा जनता को किसी अन्य आपत्ति का सामना करना पड़ता है तो उनकी संख्या हजारों तक पहुँच जाती है।" मिसेज़ डेमण्ड नाम की पादरी महिला का, जो चीन में चालीस वर्ष तक प्रचार-कार्य कर चुकी हैं, कथन है कि एक बार भयङ्कर अकाल के समय चार हजार बालिकाएँ राजधानी में लाकर बेची गई थीं।

एबीसीनिया (अफ़्रीका) की दशा और भी भीषण है। उसके सिवा संसार में कदाचित् और कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ गुलामी की प्रथा समाज का एक अनिवार्य अङ्ग बनी हुई हो। उस देश में एक-एक व्यक्ति बहु-संख्यक गुलामों का स्वामी है और इसलिए वहाँ गुलामों को पकड़ कर लाने और बेचने का व्यवसाय ज़ोरों से चलता है। गुलामों के लिए प्रायः हबशियों के गाँवों पर आक्रमण किया जाता है और लुक-छिप कर भी उनको पकड़ लिया जाता है। ये आक्रमणकारी ब्रिटिश राज्यान्तर्गत सूदान और केनिया के भीतर भी चले आते हैं और सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सन् १९१३ से १९२७ तक इस प्रकार के १३६ आक्रमण हुए थे। इन आक्रमणों में सैकड़ों मनुष्य मारे गए अथवा पकड़ कर ले जाए गए। इन आक्रमणकारी दलों का वर्णन मैक्स-मूल नामक विद्वान् ने, जो एबीसीनिया में प्राचीन रीति-रिवाजों और हमारतों की जाँच-पड़ताल करने गए थे, अपनी "आर्केओलॉजी इन एबीसीनिया" नामक पुस्तक में इस प्रकार किया है :—



“हमने अपनी तरफ एक जलूस सा आता देखा जिसका यथावत् वर्णन कर सकना लेखनी की शक्ति से बाहर है। वह ऐसा दृश्य था जिस पर मनुष्य एकाएक विश्वास भी नहीं कर सकता। सर्वथा नङ्गे पुरुषों और स्त्रियों की क्रतार की क्रतार हमारे सामने होकर जा रही थी। ये सब जङ्गीरों से बँधे थे और उनके साथ में छोटे-छोटे लड़के भी थे जो या तो हाथ पकड़े हुए जा रहे थे अथवा गठरी की तरह पीठ पर लदे थे। उनके निर्दय रखवाले उनको पशुओं की भाँति हाँक कर लिए जा रहे थे। वे चलते-चलते रास्ते में पशुओं की भाँति गिर जाते थे। घण्टों तक यह गुलामों का दल हमारे पड़ाव की बगल में होकर गुज़रता रहा। दरअसल यह ढाकुओं का एक गिरोह था जो सैकड़ों निरीह व्यक्तियों को बन्दी बना कर लिए जा रहा था। उस समय मेह भी ज़ोरों से बरस रहा था। पर इन अभागों गुलामों के पास उससे बचने का कोई साधन न था। ठण्ड से बचने के लिए न उनके पास आग थी और न दुधानिवृत्ति के लिए भोजन।”

यह एक ऐसे व्यक्ति की गवाही है जिसका गुलामी के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है, वरन् जो केवल पुरातत्व सम्बन्धी उद्देश्य से उस प्रदेश में गया था।

एबीसीनिया में पकड़े जाने वाले बहुत से गुलाम समुद्र पार ले जाकर अरब में बेचे जाते हैं, जहाँ गुलामी की प्रथा अभी तक प्रचलित है। एक अङ्गरेज़ जहाज़ी अफ़सर का कथन है कि लाल समुद्र द्वारा प्रति वर्ष हजारों गुलाम अरब में लाए जाते हैं। मक्का में गुलामों को बेचने के लिए एक बड़ा बाज़ार है। इसमें अधिकांश गुलाम अफ़रीका और सुदूर पूर्व के देशों के होते हैं, जिनको वहाँ तीर्थयात्रियों के भेष में लाया जाता है।



प्राचीन विवाह-प्रथा का लोप

हमारे देशवासियों को अपनी सभ्यता पर बड़ा अभिमान है और एक दृष्टि से उनका यह मनोभाव सत्य भी है। प्राचीन काल में जब

संसार के अधिकांश देश जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य अवस्था में थे, भारतवासियों ने धर्म, चरित्र और सामाजिकता की दृष्टि से वास्तव में बहुत कुछ उन्नति की थी। पर इस समय तख़ता बिल्कुल उलट गया है और अन्य देशों के निवासी जहाँ क्रमशः उन्नति कर रहे हैं, हम लोग नीचे गिरते जाते हैं। वैसे तो इस समय हम सभी विषयों में संसार की उन्नत जातियों से बहुत पिछड़े हुए हैं, पर हमारी सामाजिक अवस्था और विशेष रूप से वैवाहिक प्रथा की जैसी दुर्दशा हुई है, वह अकथनीय है। इस सम्बन्ध में श्रीमती लीलावती देवी, बी० ए० नाम की एक महिला दिल्ली के 'नेशनल कॉल' में लिखती हैं:—

हम लोग सैकड़ों बार यह सुन चुके हैं कि भारतवर्ष एक महाद्वीप है, जिसमें सामाजिक विकास की दृष्टि से विभिन्न श्रेणियों के व्यक्ति बसते हैं। यहाँ की विभिन्न जातियों और प्रदेशों के निवासियों के रीति-रिवाजों में जितना अधिक अन्तर है, उतना संसार के किसी अन्य देश के निवासियों में नहीं पाया जाता। संसार के किस देश में लाखों व्यक्ति विरक्त और तपस्वी-जीवन व्यतीत करते मिल सकते हैं? इसके साथ ही यहाँ लाखों व्यक्ति ऐसे भी मिलेंगे, जो एक साथ पचासों विवाह करते हैं और अपनी पत्नियों के नाम तथा पते की सूची बना कर रखते हैं। फिर टोडा, कुर्म्बा तथा मालाबार प्रान्त की अनेक जातियों में जिस प्रकार एक स्त्री के अनेक पति होने की प्रथा प्रत्यक्ष रूप से पाई जाती है, उसका भी उदाहरण और किस देश में मिल सकता है? बलूचिस्तान में जिस प्रकार मेहमान की खातिरदारी के लिए अपनी अविवाहिता कन्या को भी भेज देते हैं, उस तरह के अतिथि-सत्कार का नियम कहाँ मिलेगा? ऐसी प्रथा भी भारत के सिवा और कहाँ पाई जा सकती है, जिसके अनुसार पुत्र के दाम्पतिक कर्तव्य का पालन उस समय तक पिता करता है, जब तक वह स्वयं उसके योग्य नहीं हो जाता।

ये और इसी प्रकार की अन्य सैकड़ों प्रकार की विचित्र प्रथाएँ हिन्दू-समाज का अङ्ग बन गई हैं। इन तमाम प्रथाओं का वर्णन करते हुए भारतीय महुंम-

शुमारी की रिपोर्ट के लेखक जिस दिग्दर्शक पर पहुँचे हैं, वह इस प्रकार है :—

(१) हिन्दुओं की विवाह-प्रथा और तत्सम्बन्धी रूढ़ियों में कोई ऐसी बात नहीं है, जो समान रूप से पाई जाती हो ।

(२) शास्त्रों में विवाह का जो स्वरूप स्थिर किया गया है, उसका अब कोई भी चिह्न शेष नहीं है ।

(३) हिन्दु-जनों के अनुसार बहु-विवाह की प्रथा वैध मानी जाती है । कितनी ही जातियों में एक पत्नी के अनेक पति होने की प्रथा भी प्रचलित है । दक्षिण-भारत के नायरों में यह प्रथा प्राचीन काल में प्रत्यक्ष रूप में पाई जाती थी और आजकल प्रच्छन्न रूप में व्यवहार में लाई जाती है ।

(४) हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तानुसार विधवा-विवाह की प्रथा वर्जित है, पर यह नियम केवल द्विजन्मा समझी जाने वाली जातियों के लिए ही है । अब इन जातियों में भी विधवा-विवाह का प्रचार बढ़ता जाता है । जिन जातियों में विधवा-विवाह की प्रथा है, उनमें सबसे ज्यादा हज़र छोटे भाई अथवा देवर का समझा जाता है ।

(५) विधवा-विवाह प्रायः कृष्ण-पक्ष में किए जाते हैं ।

(६) आजकल हिन्दुओं में विवाह क्रय-विक्रय के रूप में होता है । उच्च जातियों में प्रायः वर की क्रीमत चुकानी पड़ती है और छोटी जातियों में कन्या की ।

(७) बाल-विवाह की प्रथा सार्वजनिक रूप में प्रचलित है । अचिरांत विवाह ८ और १२ वर्ष की अवस्था के दरम्यान होते हैं । सुधार-प्रिय लोगों में बढ़ी उम्र में विवाह करने की प्रवृत्ति क्रमशः बढ़ रही है ।

(८) किसी ज़माने में इस देश में एक हद तक अन्तर्जातीय विवाह करने की प्रथा थी, पर अब उसका सर्वथा अन्त हो गया है । पर पंजाब में इस प्रथा का विशेष जोर अभी नहीं हुआ और वहाँ इस प्रकार के विवाह अब भी बहुत बढ़ी संख्या में होते हैं ।

(९) पर उप-जातियों का पारस्परिक विवाह प्रायः सर्वत्र वैध माना जाता है, यद्यपि इसको भी लोग बहुत कम पसन्द करते हैं ।

❁

❁

❁

हिटलर का आरम्भिक जीवन



हमारे देश के उच्च जातीय लोगों में अपने कुलीन होने का बड़ा अभिमान देखने में आता है । कितने ही व्यक्ति जो स्वयं विद्या, शिक्षा और चरित्र की दृष्टि से सर्वथा हीन हैं, केवल इसलिए अपने को सम्मान का अधिकारी समझते हैं कि वे एक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं । ऐसे लोगों को यूरोप की वर्तमान अवस्था से कुछ शिक्षा लेनी चाहिए, जहाँ विशेष रूप से ऐसे ही व्यक्ति राष्ट्रों के कर्णधार बने हुए हैं, जो वंश-भर्यादा की दृष्टि से अत्यन्त नीचे दर्जे के हैं । रूस का डिकटेटर स्तेलिन चमार का लड़का है और इटली का भाग्य-विधाता मुसोलिनी लुहार का । अब जर्मनी ने भी एक ऐसे ही व्यक्ति को अपना प्रधान चुना है, जो कुछ वर्ष पूर्व भीख माँग कर पेट भरता था । इस सम्बन्ध में हैनिच नामक व्यक्ति ने लन्दन के 'डेली एक्सप्रेस' के सम्वाददाता को जो बातें बतलाई हैं, वे मनोरञ्जक होने के साथ ही शिक्षाप्रद भी हैं । उसका कहना है :—

चौबीस वर्ष पूर्व जब मैं ऑस्ट्रिया की राजधानी वियेना में फेरी लगा कर छोटी-छोटी चीज़ें बेचने का पेशा करता था, तब एक दिन शाम के वक्त मैंने एक मनुष्य को देखा, जो केवल एक पतलून पहने हुए था । यह हिटलर था । उस समय वह एक नामी चित्रकार होने का स्वप्न देख रहा था, पर अपना पेट भरने के लिए उसे वियेना की सड़कों पर भीख माँगनी पड़ती थी । जब हम दोनों की घनिष्ठता हो गई तो हमने मिल कर कोई काम करने का निश्चय किया । मेरे प्रश्न करने पर हिटलर ने अपने को 'पेण्टर' बतलाया । मैंने समझा कि वह घरों को रँगने का काम करता है । हिटलर ने इस पर शृणा का भाव प्रकट करते हुए कहा कि वह 'चित्रकार है ।'

मैंने विचार किया कि इस तरह के काम से हम कुछ लाभ नहीं उठा सकते । इसलिए हम लोग मिल

कर क्रालीन साक्र करने, बोझा उठाने और चूना-गारा ढोने का काम करने लगे। इससे हमको हर रोज़ कुछ आने मिल जाते थे। जब जाड़े की ऋतु आई तो मैंने हिटलर को सम्मति दी कि वह पोस्टकार्डों पर तस्वीर बनाए और मैं उनको फेरी लगा कर बेचूँ। इससे जो कुछ आमदनी होगी, उसे हम आधा-आधा बाँट लेंगे। इस काम में मेरे अनुमान से अधिक सफलता हुई। कभी-कभी हमको इतना मिल जाता था जो हमारे खर्च से अधिक होता था। तब हिटलर तस्वीर बनाना बन्द कर देता था। वह घर में ही पड़ा रह कर राजनीति के सम्बन्ध में बातें करता रहता और अक्सर गुस्से में आकर लड़ बैठता। वह अपनी अधिकांश आमदनी अन्नबारों के खरीदने में खर्च किया करता था और केवल रोटी तथा शेरवा खाकर जीवन निर्वाह करता था।

❁

❁

❁

पानीपत के युद्ध का परिणाम

~~~~~

**ह** मारे यहाँ इतिहास की जो पुस्तकें मिलती हैं, उनमें पानीपत की तीसरी लड़ाई को महाराष्ट्र सत्ता के पतन का सूचक माना गया है। पर महाराष्ट्रीय इतिहासकारों का मत इसके विपरीत है और उनके कथनानुसार इस घटना का प्रभाव महाराष्ट्र सत्ता पर बहुत कम पड़ा। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जी० एस० सर देसाई 'मॉडर्न रिव्यू' में लिखते हैं :—

अधिकांश लेखकों ने पानीपत की तीसरी लड़ाई को उठती हुई महाराष्ट्र सत्ता के लिए अन्तिम प्रहार बतलाया है। परन्तु मेरी सम्मति में यह विचार अमालूम है। इस युद्ध में निस्सन्देह मराठों के बहुत अधिक सिपाही काम आए थे, पर इससे मराठों की सत्ता को कोई ख़ास धक्का नहीं लगा। महाराष्ट्र की नई पीढ़ी ने शीघ्र ही इस हानि की पूर्ति कर दी। अफ़ग़ानों को भी इस विजय से कोई लाभ न हुआ। अहमदशाह अब्दाली इस युद्ध से थक कर शीघ्र ही अपने देश को लौट गया और फिर कभी उसने इस तरफ़ रुज़ नहीं किया। दस वर्ष बाद

मराठों ने इस पराजय का बदला पूरी तरह चुका दिया, जब कि तेजस्वी पेशवा और उसके वीर सेनापति महादजी सिन्धिया ने देहली पर अधिकार करके मुग़ल-साम्राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी को अपनी संरक्षकता में सिंहासन पर बैठाया। दरअसल मराठी सत्ता का पतन उस समय से आरम्भ हुआ जब कि उनका सर्वश्रेष्ठ और पराक्रमी शासक पेशवा माधवराव (प्रथम) की अकाल मृत्यु सन् १७७२ में हो गई। समस्त महान् महाराष्ट्रीय इतिहासकारों ने इस बात को एक स्वर से स्वीकार किया है कि “मराठा-साम्राज्य के लिए पानीपत का मैदान उतना घातक सिद्ध नहीं हुआ जितना कि इस सुयोग्य शासक का असामयिक अन्त।”

×

×

×

पर यदि एक अन्य दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो पानीपत का युद्ध अवश्य ही भारतीय इतिहास की धारा को बदलने वाला था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में इस देश के स्वामित्व के लिए दो शक्तिशाली दलों में सङ्घर्ष हो रहा था, जिनमें से एक थे उठते हुए मराठे और दूसरे थे अस्त होते हुए मुसलमान। एक तीसरी शक्ति अङ्गरेजों की भी उसी काल में भारतीय चित्त पर उदय हो रही थी। इनमें से पहले दोनों दल पारस्परिक कलह के फलस्वरूप, जिसकी पराकाष्ठा पानीपत के युद्ध में दिखलाई दी, निर्बल पड़ गए और इससे तीसरे दल के लिए रास्ता साफ़ हो गया। ‘अंग्रेज़ों के ऑफ़ बॉम्बे’ के विद्वान् लेखक (डा० गर्सन डा कुनहा) ने इस तथ्य को बहुत अच्छी तरह समझ कर ही लिखा है कि “अंग्रिया के पतन और पानीपत की घटना के फल-स्वरूप अङ्गरेजों के ज़बदस्त प्रतिद्वन्द्वियों की शक्ति क्षीय हो गई और इससे उनकी वृद्धि बड़ी तेज़ी के साथ होने लगी।” इसी घटना के परिणाम-स्वरूप चार वर्ष बाद झाड़व बज़ाख की दीवानी का अधिकार प्राप्त कर सका और यहीं से भारत में ब्रिटिश सत्ता की जड़ जमने लगी। इसके पूर्व बज़ाख पर नागपुर के भोंसलों का अधिकार जम चुका था और यदि पानीपत में मराठों की विजय हुई होती तो पेशवा और भोंसला बज़ाख को ऐसे सहज में हाथ से न निकल जाने देते।

❁

❁

❁



## अमेरिका के गगनचुम्बी-गृह



**बी** सवीं शताब्दी में विज्ञान के जितने चमत्कार देखने में आए हैं, अमेरिका के गगनचुम्बी-गृह भी उनमें एक मुख्य स्थान रखते हैं। एक समय था जब कि सौ दो सौ फीट ऊँचे मकान ही आश्चर्य की दृष्टि से देखे जाते थे और हम लोग तो बम्बई, कलकत्ता के पाँच-छः मञ्जिलों के मकानों को ही बहुत ऊँचा समझ लेते हैं। ऐसी दशा में जब हम सुनते हैं कि अमेरिका में सैकड़ों मकान अस्सी-अस्सी और सौ-सौ मञ्जिलों के बनाए गए हैं तो हमको इस पर एकाएक विश्वास नहीं होता। हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते कि इस तरह के मकान किस तरह बनाए जा सकते हैं और किस तरह वे खड़े रह सकते हैं। पर विज्ञान ने असाध्य को भी साध्य कर के दिखला दिया है और आज लाखों मनुष्य ज़मीन से कई-कई सौ गज़ की ऊँचाई पर राज-महलों का सा सुख और आनन्द का उपभोग करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् प्रोफेसर पी० शेषाद्रि, जो कुछ समय पूर्व अमेरिका-भ्रमण के लिए गए थे और वहाँ से लौट कर अपने अनुभव 'लीडर' में प्रकाशित कराए थे। वे लिखते हैं :—

गगनचुम्बी-गृह अमेरिका के प्रत्येक नगर में पाए जाते हैं और कोई भी ऐसा महत्त्वपूर्ण होटल, ऑफिस या दुकान नहीं है जिसमें बहुत सी मञ्जिलें न हों और जिसमें आने-जाने के लिए रात-दिन शक्तिशाली 'लिफ्ट' न चलते रहते हों। पर इस दृष्टि से सर्व-प्रधान न्यूयार्क ही है, जहाँ इस प्रकार के सब से अधिक ऊँचे और बड़े मकान बनाए गए हैं और वहाँ उनकी संख्या भी अत्यधिक है। इस नगर ने, जिसका नम्बर संसार में दूसरा है, इस तरह के मकान बनाने में विशेष रूप से दक्षता प्राप्त कर ली है। यदि भविष्य में किसी भी कारखानेवाले न्यूयार्क की आबादी नष्ट होकर वह उजाड़

हो जाय तो उस समय के पुरातत्वविद् इन मकानों को देख कर अवश्य ही आश्चर्य-सागर में डूब जायेंगे।

इन मकानों को अमेरिका के करोड़-पतियों ने केवल संसार में अपनी शान दिखलाने के लिए नहीं बनवाया है। वास्तविक बात यह है कि न्यूयार्क का मुख्य व्यवसाय-क्षेत्र एक छोटे टापू के भीतर आबद्ध है। वहाँ ज़मीन की बड़ी क्लिष्ट है और उसके लिए बहुत अधिक मूल्य देना पड़ता है। सम्भवतः इसीलिए लोगों का ध्यान मकान को आकाश की तरफ बढ़ाने पर जाता है। सौभाग्यवश उस टापू की ज़मीन भी पथरीली है और उसमें नींव मज़बूती के साथ दी जा सकती है। इसके आधार पर यहाँ के अज्ञातकर्मा शिल्पियों ने मिश्र के पिरामिडों से भी उच्च और विशाल इमारतें खड़ी कर दी हैं और जो पिरामिडों की भाँति केवल दिखावटी क्रबड़ें ही नहीं हैं, वरन् लाखों मनुष्यों के उपयोग में आती हैं।

×

×

×

इन तमाम मकानों में सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' है जिसमें एक सौ दो मञ्जिलें हैं और जिसकी ऊँचाई बारह सौ फीट है। यह मकान विदेशियों का ही ध्यान अपनी तरफ आकर्षित नहीं करता, वरन् स्वयम् अमेरिकन भी उसे कौतूहल की दृष्टि से देखते हैं। इस मकान को देखने के लिए सदैव दर्शकों का ताँता लगा रहता है जो एक ढालर देकर इसके ऊपर चढ़ते हैं, और हृदय में यह अनुभव करते हैं कि वे संसार के सब से ऊँचे मकान पर चढ़ लिए। इतनी ऊँचाई पर लिफ्ट से एक ही बार में चढ़ना असम्भव होने से बीच में एक स्थान पर लिफ्ट बदलना पड़ता है। जब दर्शक चोटी पर पहुँचता है तो उसे यह देख कर आश्चर्य होता है कि वहाँ विश्राम के लिए गद्देदार कोच मौजूद हैं, जलपान की व्यवस्था है, और मकान के विभिन्न भागों के चित्र बेचने वाली एक दुकान भी है। जिस समय मैं (प्रो० शेषाद्रि) उसके ऊपर पहुँचा तो दोपहर का समय था और बड़ी गर्मी जान पड़ती थी, पर तुरन्त ही मेरे सामने बहुत बढ़िया मजवाई की बरफ़ की तश्तरी आ गई। इतनी ऊँचाई पर स्वभावतः हवा आँधी की तरह चलती रहती है, पर वहाँ मोटे काँच की ऐसी खिड़कियाँ लगाई गई हैं जिससे ऐसा अनुभव



होता है मानों हम ज़मीन पर ही किसी सुखप्रद डाइज़रूम में बैठे हैं। वहाँ बैठ कर न्यूयार्क का लुभावना दृश्य बड़ी अच्छी तरह देखा जा सकता है। आस-पास में और भी बड़े-बड़े मकान दिखलाई देते हैं, पर इस हमारत की चोटी पर से वे सब छोटे जान पड़ते हैं।

❀

❀

❀

## जर्मन-स्कूलों में समाचार-पत्र

हमारे यहाँ स्कूल और कॉलेजों के विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रखने की चेष्टा की जाती है और इस विषय में माथा लड़ाना उनके भविष्य के लिए हानिकारक बतलाया जाता है। इसके विपरीत जर्मनी में स्कूल के विद्यार्थियों के लिए बाकायदा समाचार-पत्र पढ़ने और इससे राजनीतिक ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था की गई है। इस सम्बन्ध में डॉ० ऑटो हरबोर्न नामक विद्वान 'एजुकेशनल रिव्यू' में लिखते हैं :—

समाचार-पत्रों के पठन-पाठन को लाभदायक बनाने के लिए जर्मनी के स्कूलों में कई प्रकार की व्यवस्था की गई है। अगर कोई स्कूल बारह भिन्न-भिन्न पत्रों को कुछ समय के लिए खरीद सकता है तो एक-एक लड़का एक-एक अखबार को एक सप्ताह के लिए पढ़ने को ले जा सकता है।

इस उपाय से एक ही प्रति से अनेक विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं और प्रत्येक विभिन्न विषयों के पत्र पढ़ने को पा सकता है जिससे शीघ्र ही उसे उन विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जब कोई ख़ास घटना होती है, जैसे पार्लामेंट का चुनाव या लीग ऑफ़ नेशन्स का अधिवेशन, तो विद्यार्थी समाचार-पत्रों में जो कुछ पढ़ते हैं उसके सम्बन्ध में अपनी सम्मति सहित एक रिपोर्ट तैयार करते हैं जिनकी परस्पर तुलना करके एक निष्कर्ष निकाला जाता है। अगर स्कूल के पास हस्तनारूप्या नहीं होता कि वह अनेक समाचार-पत्र नियमित रूप से खरीद सके तो केवल विशेष घटनाओं

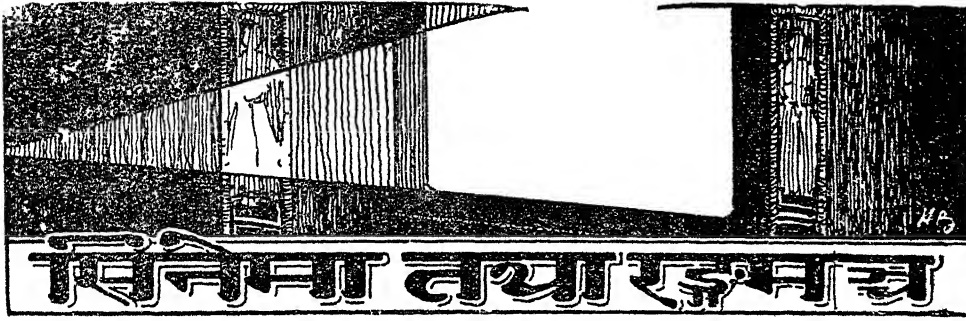
के अवसरों पर लड़कों के पढ़ने के लिए कुछ प्रतियाँ खरीद ली जाती हैं। ऐसी दशा में लड़कों को उतना ही लाभ होता है जितना एक प्रति के पढ़ने से सम्भव है और शेष बातें उनके मास्टरों को समझानी पड़ती हैं। तीसरा तरीका यह है कि बहुत से लड़के सम्मिलित रूप से अपनी पसन्द के विषय से सम्बन्ध रखने वाले समाचार-पत्र पढ़ते हैं और समय-समय पर इस सम्बन्ध में रिपोर्ट देते रहते हैं। लड़कों को इस बात के लिए भी उत्साहित किया जाता है कि वे जितने समाचार-पत्र प्राप्त कर सकें उन सबको पढ़ें, यह न हो कि केवल अपने राजनीतिक विचारों के समर्थक पत्रों को पढ़ा जाय और शेष को छोड़ दिया जाय। इस प्रकार के पठन-पाठन के लिए सार्वजनिक वाचनालयों से भी समाचार-पत्र मिल जाते हैं।

समाचार-पत्रों के पढ़ने से विद्यार्थियों के कितने ही पाठ्य विषयों में बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है। इतिहास और भूगोल की शिक्षा के लिए समाचार-पत्रों में बहुत सी उपयोगी बातें मिल जाती हैं। इसी प्रकार रङ्गमञ्च पर होने वाले खेलों और अन्य विषयों की पुस्तकों की समालोचना से साहित्य सम्बन्धी अनेक बातें ज्ञात होती हैं। आधुनिक भाषाओं की शिक्षा का कार्य तो बिना विदेशी पत्रों के सुचारु रूप से हो ही नहीं सकता और जर्मनी में कदाचित् ही कोई ऐसा स्कूल होगा जिसमें भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेशी समाचार पत्र न पढ़े जाते हों।

जर्मनी के स्कूलों में समाचार-पत्रों के इस पठन-पाठन का फल अत्यन्त उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुआ है। सभी लड़कों ने, स्कूल में पढ़ते समय और शिक्षा समाप्त कर चुकने पर भी, समाचार-पत्रों से स्कूली पाठ्य विषयों में मिलने वाली सहायता को बड़ा महत्वपूर्ण बतलाया है। उनके पिता अथवा संरक्षक भी इस पठन-पाठन से उपलब्ध होने वाले लौकिक ज्ञान और निष्पत्तता की शिक्षा से सर्वथा सन्तुष्ट हैं।

इस बात की पूर्ण आशा है कि समाचार-पत्रों का पठन-पाठन जर्मन स्कूलों के शिक्षा-क्रम का एक स्थायी अङ्ग बन जायगा।





## फ़िल्म-संसार और अभिनेत्रियाँ

[ श्री० देवदत्त मिश्र, सहकारी सम्पादक 'विश्वमित्र' ]

**इ**स समय जिधर देखो उधर ही इस बात की चर्चा सुन पड़ती है कि भद्र महिलाओं को फ़िल्मी दुनिया में अभिनेत्री के रूप में प्रवेश करना चाहिए या नहीं। वास्तव में यह एक विचारणीय एवं जटिल समस्या है। इस प्रश्न पर अत्यन्त गम्भीरता एवं महान उत्तर-दायित्व के साथ विचार करने के बाद ही किसी को अपनी सम्मति प्रकट करनी चाहिए। हम इस प्रश्न पर उभय पक्ष की दलीलों को बड़े गौर के साथ सुनते आए हैं और अन्त में अब इस तथ्य पर पहुँचे हैं कि दोनों ही पक्ष अर्थात् फ़िल्म में महिलाओं के काम करने के पक्षपाती तथा विरोधी, अपनी-अपनी युक्तियों को कुछ अतिरिक्तित्व करके उपस्थित करते हैं। हम इस लेख में इस समस्या पर प्रमुख महिला-नेत्रियों के विचारों को पाठकों के सामने उपस्थित करते हुए इस उलझन को बहुत दूर तक सुलझाने की कोशिश करेंगे।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा के कानपुर के अधिवेशन की सभानेत्री, अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन की अध्यक्षा एवं दूसरी राउण्ड-टेबल कॉन्फ़रेन्स में भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली श्रीमती सरोजिनी नायडू के विचार सर्वप्रथम आपके सामने उपस्थित करते हैं। भारतीय स्त्रियों को फ़िल्म में अभिनय करना चाहिए अथवा नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में भारत-कोकिला कहती हैं—“मुझे इसमें आपत्ति की तो कोई बात नहीं जान पड़ती। वस्तुतः मैं तो कलापूर्ण आत्मानुभूति के लिए चित्रपट को एक बहुत ही सुन्दर साधन मानती हूँ।

किन्तु”—कुछ गम्भीरतापूर्वक आपने कहा—“इसमें मुझे सन्देह है कि भारतीय स्टुडियो का वर्तमान नैतिक एवं कलापूर्ण वातावरण ऐसा है, जो सुखचिपूर्ण एवं सुसंस्कृत महिलाओं को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। इस कला को हमें इसके वर्तमान विशुद्ध व्यावसायिक धरातल से मुक्त करना पड़ेगा, हमें इसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके इसको इस तरह सजीव तथा सुन्दर बनाना पड़ेगा, जिसमें भारत के अतीत एवं वर्तमान में जो कुछ सौष्ठव है, उसे यह संसार के सामने यथार्थ रूप में उपस्थित कर सके।”

कितनी सुन्दर सम्मति है। इससे सम्बन्ध रखने वाले पूँजीपतियों, डायरेक्टरों एवं अभिनेताओं को इस पर गम्भीरतापूर्वक मनन करना चाहिए।

श्रीमती नायडू फ़िल्म-जगत में अपनी बहिनों एवं पुत्रियों के प्रवेश करने का विरोध नहीं करती, लेकिन वर्तमान परिस्थिति में भारतीय चित्रागारों (Studios) के गन्दे, दूषित एवं अनैतिक वातावरण को देखते हुए वे मुक्त कण्ठ से इसका समर्थन भी नहीं कर सकतीं। इसीलिए आपने कहा था कि इस उत्कृष्ट-कला को उसके वर्तमान दूषित एवं विशुद्ध व्यावसायिक चक्कुल से मुक्त करना पड़ेगा। इस समय भारत में प्रायः सभी चित्रागारों के सञ्चालक कला से कोरे हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य अपनी पूँजी को बढ़ाना है। कला का विकास उनका लक्ष्य नहीं है। कुछ सञ्चालक तो ऐसे भी हैं, सुना जाता है, जो लक्ष्मी की उपासना के साथ ही साथ अपनी काम-वासना की परितृप्ति के लिए भी



इस व्यवसाय में हाथ डालते हैं। ऐसी अवस्था में इनके चित्रागारों का वातावरण दूषित एवं विषाक्त होना अनिवार्य है। इस तरह के वातावरण में भला कैसे कोई अपनी बहिनों एवं पुत्रियों को इस क्षेत्र में पदार्पण करने की अनुमति दे सकता है? कहा जा सकता है कि यह स्त्री-स्वातन्त्र्य का युग है, इसमें कौन किसकी अनुमति की प्रतीक्षा करता है। किन्तु ऐसा कहने वाले यह नहीं जानते कि स्वातन्त्र्य-प्रियता के साथ-साथ आत्म-सम्मान एवं प्रतिष्ठा की भावना भी अधिकाधिक बढ़ती जाती है। इसीलिए श्रीमती सरोजिनी ने कहा है कि वर्तमान स्टुडियो सुरुचि-सम्पन्न महिलाओं को आकर्षित नहीं कर सकते। श्रीमती नायडू ने चित्रपट को कलापूर्ण अभिव्यञ्जना का सर्वोत्तम साधन बताया है। अर्थात् उनके कथनानुसार यदि चित्रपट के द्वारा कला की यह अनुभूति नहीं होती, तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं। किन्तु क्या आजकल के चित्रपटों से इस आदर्श की पूर्ति होती है? नहीं। क्यों? इसलिए कि उनके भीतर काम करने वालों ने स्वयं कभी आत्मानुभूति की ही नहीं, तब जिसका उन्होंने कभी अपने जीवन में चिन्तन अथवा मनन ही नहीं किया, उसकी अभिव्यक्ति वे कैसे कर सकते हैं। इसीलिए श्रीमती जी का कहना है कि वर्तमान चित्रागारों को, प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा सजीव बनाओ। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि अब तक चित्रागारों में जो मूर्तियाँ हैं, उनमें प्राण नहीं है। वे निर्जीव हैं। स्पष्ट तात्पर्य यह है कि अब तक चित्रपटों में वेश्याएँ एवं उन्हीं की कोटि के अधिकांश युवक काम करते हैं, इनमें प्राण-चेतना अथवा हृदय की सच्ची अनुभूति कहाँ है? यह मैं मानता हूँ कि नियम का अपवाद सर्वत्र मिलेगा। इन अपवादों के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। कहना है उनके सम्बन्ध में, जो सदैव हृदयहीनता के साम्राज्य में विचरण किया करते हैं! जिनका लक्ष्य हृदय-दान नहीं होता, बल्कि जो सदैव अपने पाषाणवत् कठोर षड्यन्त्र में डाल कर दूसरों के हृदयों को चूर-चूर कर उनकी हत्या किया करती हैं। चित्रपट में हमें “सत्यं शिवं सुन्दरम्” के दर्शन तब तक नहीं मिल सकते, जब तक उनमें काम करने वाले अभिनेता सद्गृहस्थ और अभिनेत्रियाँ सम्भ्रान्त महिलाएँ न होंगी। वाराङ्गना और कुलाङ्गना

का कार्यक्षेत्र एक नहीं हो सकता। यदि हम चाहते हैं कि भद्र महिलाओं का सहयोग इस कला के उत्कर्ष साधन में प्राप्त हो, तो हमें कलकत्ते की श्रीमती माया-देवी की इस बहुमूल्य सम्मति को गाँठ बाँध लेना चाहिए कि यदि सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा कम्पनियाँ खोली जायँ और उनका परिचालन (डायरेक्शन) सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा किया जाय तो मुझे निश्चय है कि किसी भद्र महिला अथवा पुरुष को उसमें योगदान करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। भारतीय फ़िल्मों के भविष्य के सम्बन्ध में श्रीमती मायादेवी का कहना है कि सम्भ्रान्त, सुसंस्कृत भारतीय महिलाओं के सहयोग बिना भारतीय फ़िल्मों की असफलता निश्चित है और वे आज की तरह हमेशा तीसरी कोटि में ही पड़े रहेंगे। श्रीमती मायादेवी का उपर्युक्त कथन पूर्ण सत्य है। इस समय भारतीय फ़िल्म-संसार में सुयोग्य महिला-कलाकारों की कमी है। ठीक यही बात पुरुष-कलाकारों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। हम यदि आयुर्वेद का ककहरा जानने वाले को ठोंक-पीट कर वैद्यराज बनाने का प्रयत्न करते हैं, तो बनने वाले का नहीं, बनाने वाले का दोष है, और ऐसी अवस्था में उसके हाथ से रोगी की मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। ठीक यही दशा हमारे यहाँ के अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों की है। अभिनय-कला का ककहरा जानने वाले व्यक्तियों से यदि कला की हत्या होती है, तो कौन सी बड़ी बात है। यदि आप चाहते हैं कि आपको फ़िल्मों में कला के सुन्दर स्वरूप के दर्शन हों, तो आपको चित्रपट के परिचालकों की इस धाँधली को बन्द करने के लिए उनके विरुद्ध आन्दोलन करना होगा। किन्तु आपके सामने घास-पात जो कुछ भी रख दिया जाय, यदि उसी से तृप्त होकर आप निर्वाक चले आएँगे, तो किसी को क्या पड़ी है कि अपनी शत-प्रतिशत आमदनी में बट्टा लगाने की चेष्टा करे।

सभा-समितियों, उद्यान-मैदानों तथा राह-बाट चलते हुए हम इस बात की चर्चा करते देखे तथा सुने जाते हैं कि अमुक अभिनेत्री में मनोविज्ञान की सूक्ष्म कल्पना का सर्वथा अभाव है, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म विश्लेषण क्या वस्तु है, वह जानती भी नहीं; जीवन के नाटकीय प्रसङ्गों के समझने, मनन करने की मानों उसमें शक्ति ही नहीं। किन्तु हम इस प्रकार की चर्चा करते समय यदि



हस पर भी ध्यान रखें कि यह आशा हम किससे कर रहे हैं, तो कुछ काम भी बने। उस अवस्था में हम इस बात की भी चर्चा करते सुने जायेंगे कि अब मूखों के गुरु कहाने के दिन लड़ गए। इस तरह फ़िल्म-जगत में अब तक जो गुरुडम भरा हुआ है उसके विरुद्ध आवाज़ उठेगी, लोकमत तैयार होगा और फ़िल्म-मालिकों को बाध्य होकर अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा। फ़िल्मी दुनिया में आज योग्यता के स्थान में गुरुडम का आसन जमाए अयोग्यता क्लिककारियाँ मार रही है, इसे धता बताना पड़ेगा। यदि यह कर सकने की आप में शक्ति नहीं है तो असंस्कृता, अशिक्षिता अभिनेत्री से यह आशा करना ही आपकी मूर्खता है कि वह उन विषयों के अभिनय में, जिसका उसने कभी अनुभव ही नहीं किया, यथार्थ व्यक्तित्व का रश्ममात्र भी आभास दे सके। किसी चरित्र की वास्तविक अभिव्यक्ति कोई व्यक्ति तभी कर सकता है, जब या तो उसे उसका व्यक्तिगत अनुभव हो या उसने उस चरित्र का पूर्णरूप से मानसिक अध्ययन किया हो। किन्तु हमारी अभिनेत्रियों में इन दोनों ही बातों का सर्वथा अभाव है। औसत दर्जे की भारतीय अभिनेत्रियों का जीवन इतना दलित, सङ्कुचित तथा अस्वाभाविक होता है कि जिस नाटकीय चरित्र का अभिनय उनसे कराया जाता है, उसके सम्बन्ध में उनकी अपनी कोई धारणा ही नहीं होती। शिक्षा और साहित्य से कोरी रहने के कारण उनको विभिन्न देश, काल, पात्र के ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटकीय चरित्रों की कोई धारणा ही नहीं होती। ऐसे चरित्रों की भूमिका में ये अभिनेत्रियाँ स्टेज तथा स्क्रीन दोनों में बिलकुल असफल होती हैं, जो बिलकुल स्वाभाविक है। इन लोगों से मानसिक उत्तेजना, आवेग, राग, अनुराग, जोभ, मनोविकार, विरक्ति, विस्मय, यन्त्रणाएँ, सन्ताप, शोक, आनन्द, हर्ष, उन्मास, आत्म-सम्मान, गौरव तथा स्वार्थ-त्याग आदि भावों के प्रदर्शन की आशा करना आकाशस्थित चन्द्रदेव को हस्तगत करने की आशा के तुल्य है।

इसलिए यदि भारतीय फ़िल्म-सञ्चालक विदेशियों के मुक्ताबले अपने फ़िल्मों की सफलता चाहते हैं, यदि वे उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्वालिटी का हेतु बनाना चाहते हैं, तो

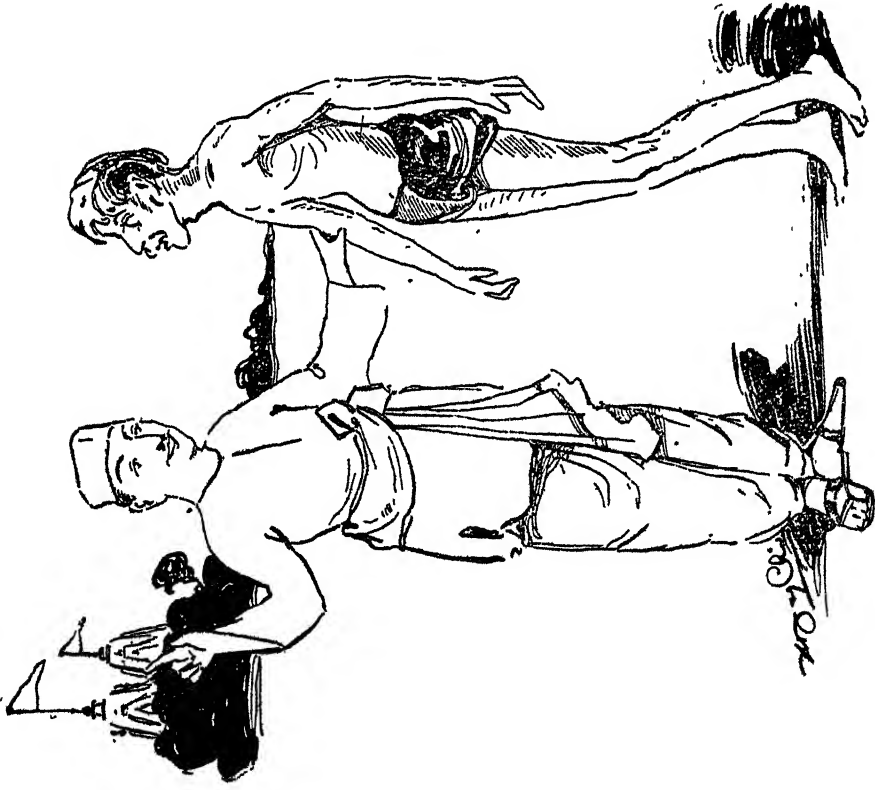
उनको चाहिए कि वे शिक्षिता तथा सुसंस्कृता भारतीय महिलाओं का सहयोग प्राप्त करें, किन्तु यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक उनके चित्रागारों का वर्तमान दूषित, अनैतिक एवं दूषित वातावरण दूर न हो जाय। किन्तु निकट भविष्य में व्यवसाय के साथ-साथ काम-वासना को चरितार्थ करने के उद्देश्य से खोले गए स्टुडियो के वातावरण के शुद्ध होने की आशा नहीं है, इसलिए तब तक हमें मिस गौड़ की निम्नलिखित सम्मति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके उसे कार्यान्वित करने की चेष्टा करनी चाहिए। आपका कहना है कि जीवन की कलापूर्ण अभिव्यक्तीकरण के लिए चित्रपट एक अत्यन्त सुन्दर साधन है और यदि यह कार्य सुयोग्य, देश-प्रेम-भाव-सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा अपने हाथ में लिया जाय तो निस्सन्देह इससे देश, जाति और समाज का अमित लाभ हो सकता है। किन्तु हमें वर्तमान व्यवसायिक प्रयोजकों से तनिक भी आशा नहीं। इसलिए इस विषय से दिलचस्पी रखने वाले, कला के उपासक शिक्षित युवक तथा युवतियों से हमारा अनुरोध है कि वे सार्वजनिक नाट्य संस्थाओं (अपेचर ड्रामेटिक क्लब्स) की तरह एक अपेचर फ़िल्म क्लबों की स्थापना करके अपने मन के अनुकूल चित्रपट तैयार करें, जिसका प्रधान लक्ष्य कला की उपासना होना चाहिए।

देश में प्रतिभावान व्यक्तियों की कमी नहीं है, पर्याप्त प्रतिभा है, किन्तु वह बिखरी हुई है। उसे एकत्र करने वाले की आवश्यकता है। तब हम अपने देश-वासियों को ही नहीं, संसार के लोगों को चित्रपट के द्वारा अपने अतीत गौरव का यथार्थ एवं सुन्दर परिचय दे सकते हैं। हम उनके सामने अपनी वर्तमान दलित, धर्षित एवं कुचली हुई अवस्था का सजीव चित्र दिखा सकते हैं और दिखा सकते हैं अपने प्रिय भारत का वह चित्र, जिसकी कल्पना हमारे देश के नेताओं, स्वतन्त्रता के दीवाने नवयुवकों तथा नवयुवतियों को दिन-रात मथा करती है, सुख से सोने नहीं देती।

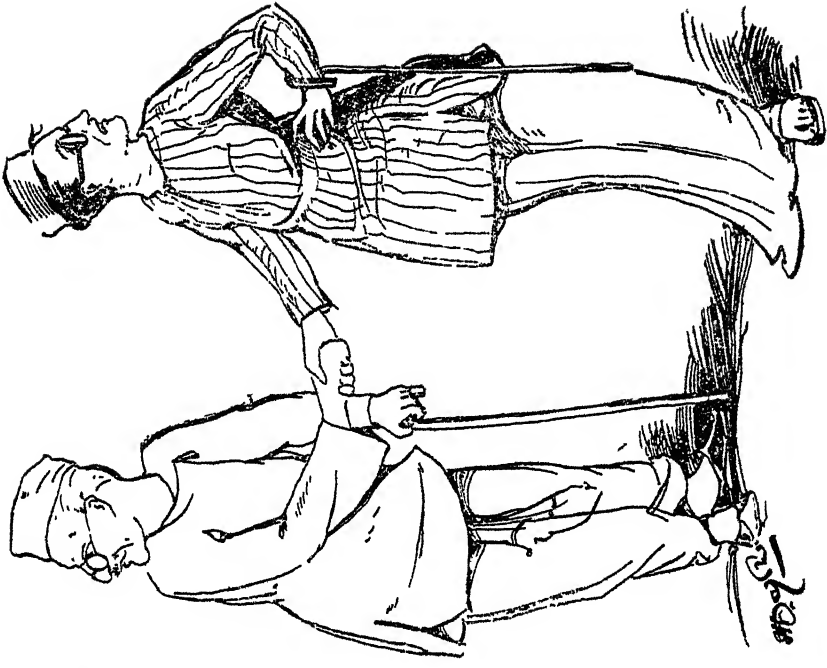
क्या हम आशा करें कि हमारे शिक्षित नवयुवक, नवयुवतियाँ एवं इस कला से प्रेम रखने वाले शिक्षित धनी व्यक्ति उपरिखिलित पंक्तियों पर समुचित ध्यान देने की कृपा करेंगे ?



चौद



अछूत—बाबू जी, दो दिन से कुछ खाने को नहीं मिला, बहुत भूखा हूँ।  
सुधारक—बलो, तुम्हें मन्दिर में भगवान के दर्शन करा दें।



साहित्यिक सद्भाव !

“सादर वन्दे ! आप अच्छे हैं ?”  
“सप्रेम वन्दे ! धन्यवाद ! आशा है, आप भी अच्छे होंगे !”

## नारी-जीवन

[ कविवर आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव ]

पत्र-संख्या ४३

[ पत्र वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को ]

बहिन !

तुम्हारा पत्र प्राप्त कर  
मुझको हुआ परम सन्तोष ।  
समझ रही हूँ खुला तुम्हारे  
हेतु अनन्त दया का कोष ।

❀

तब से हो तुम उस सुकुमारी  
निज ध्यारी नारी के घर,  
नहीं पड़ा तब से तुम पर तो  
कोई दुस्तर क्लेश अपर ?

❀

बहिन, कह चुकी हूँ मैं लगभग  
जितना था मुझको कहना,  
और सह चुकी हूँ मैं दुख बस  
जितना था मुझको सहना ।

❀

यों तो कहना अभी बहुत है,  
दुख भी कुछ आगे आए,  
पर समुचित विश्राम यहीं है,  
वैसे फिर न क्लेश पाए ।

❀

उन्हीं वृद्ध के साथ चली मैं  
गई, रही उनके घर में,  
जैसे मीन पहुँच जाती है  
अतिजल से पूरित सर में ।

❀

ला दी एक मशीन उन्होंने  
मुझे, बख्श सीकर अपना  
जीवन सदा चला लेती हूँ,  
हुआ पूर्व दुख अब सपना ।

❀

मूल्य पटा करके मशीन का  
कर अपना उद्धार लिया,  
पर तब से अब तक आश्रय है  
सदा उन्होंने मुझे दिया ।

❀

भूलूँगी उपकार न उनका,  
सज्जन भी हैं कुछ जग में,  
जो आ जाते हैं सुभाग्य से  
कभी दुखी जन के मग में ।

❀

बहिन, तुम्हारी याद मनोहर  
मुझे सदा ही आवेगी,  
जो इस कठिन परिस्थिति में भी  
सुख मुझको दे जावेगी,

❀

बहिन, बड़ा नीरस जीवन है  
धनहीनों का इस जग में,  
मूल्य चरित का बहुत न्यून है  
जगती के भीषण मग में ।

❀

निज सतीत्व-रक्षा के हित जो  
मैंने तुमने काम किया  
क्या समझी हो तुम, जावेगा  
उस पर कुछ भी ध्यान दिया ।

❀

लोग कहेंगे यही—“न जाने  
कैसी हैं ये ललनाएँ,  
भरी हुई होंगी अवश्य ही  
इनमें कुटिला झलनाएँ ।”

❀

पास हमारे यदि होता धन—  
सच्चरित्रता का सुप्रमाण,  
तो हो जाता दुश्चरित्रता  
में भी हम लोगों का त्राण;

❀



पर अब तो हम हैं इस जग में      है यह पाप कि है न हमारा      जकड़ी हुई अगर हम होतीं  
मात्र गई-बीती नारी,      अब न किसी नर से सम्बन्ध,      मनुज-दासता में इस काल,  
निश्चय यही सन्दिग्ध-चरित्रा,      है यह पाप कि कर लेती हैं      तो हो सकता जग के सम्मुख  
भार सकल जग पर भारी ।      हम तो अपना आप प्रबन्ध ।      आज हमारा उन्नत भाल ।

❀

❀

❀

जितना ही दासत्व भाव से  
पूरित हो ललना सुकुमार  
उतना ही वह भली लगेगी,  
वह\* है उसका जीवन-सार ।

प्रति चाहे हो दुश्चरित्र ही  
नारी माने उसकी बात,  
यह सिद्धान्त बड़ा अनिष्टकर,  
है भारत-जीवन का घात ।

❀

❀

पति-सुधार लेने वाली हों      नहीं चाहिए कोमल तन की,  
हमें चाहिए अब नारी,      निर्बल-मन की सुकुमारी  
धर्म-सार लेने वाली ही      नहीं चाहिए थोड़े दिन की  
हमें चाहिए अब नारी ।      सुन्दरता-प्रतिमा प्यारी

हमें चाहिए हृष्ट-पुष्ट अति  
सिंह-दर्प हरने वाली,  
भीतर का सौन्दर्य दिखा कर  
जग सुन्दर करने वाली ।

❀

❀

❀

जीवन के इस विषम युद्ध में  
भुज-बल से लड़ने वाली  
अङ्गद-पद सम कठिन परिस्थिति—  
व्यूह मध्य अड़ने वाली ।

धीर नरों के योग्य चाहिए  
हमें नारियाँ धीर नितान्त,  
वीर नरों के योग्य चाहिए  
हमें नारियाँ वीर नितान्त ।

❀

❀

जीवन का संग्राम कठिन अब,      हमें चाहिए मनुज-दम्भ का  
वीर-युग्म की चाह यहाँ,      भाव दमन करने वाली,  
एक स्वस्थ पग से जा सकती      उनका अत्याचार-घोर का  
चली कठिन है राह कहाँ ?      चाव दमन करने वाली ।

फिर उन्नति के शत्रु जनों का  
भी विनाश करने वाली,  
अपना और नरों का—सब जग  
का विकाश करने वाली ।

❀

❀

❀

भ्रममय या कटु बात लिखी हो  
तुमको कोई बहिन कभी,  
दयामयी बनकर कर देना  
तो तुम उनको क्षमा सभी ।

बहिन, बिदा होती हूँ अब मैं  
रखना मेरी याद सदा,  
मधुर तुम्हारी याद मुझे तो  
होगी नित प्रति शक्ति-प्रदा ।

❀

❀

अश्रुबिन्दु से भीग न जाए  
पत्र, यही है डर मुझको  
क्या सहायता है लिखने में  
करता मेरा कर मुझको ?

बहिन, लिखूँ क्या और ? विदा  
लेते तुमसे मैं रोती हूँ,  
इस वियोग के कटु प्रहार से  
अपनी सुध-बुध खोती हूँ ।

## पत्र-संख्या ४४

[ पत्र बाल-विधवा की ओर से बुद्ध-पत्नी को ]

बहिन,

पढ़ा जब पत्र तुम्हारा . बहुत लिखा तुमने, मैंने भी . तुमने तो अनुमान कर लिया  
फूट-फूट कर मैं रोई, बहुत लिखा निज मन का हाल । है मेरा आगे का हाल ।  
किन्तु कल्लूँ क्या ? इस वियोग को अब तो इसका अन्त ठीक है, उस सुकुमारी के आश्रय में  
रोक नहीं सकता कोई । बहुत स्नेह माया का जाल । बीत रहा है मेरा काल ।

❀

❀

❀

उसने मुझे करा दी अपने उसके रूपों का जो ऋण था  
ही पड़ोस में एक दुकान, उससे मुक्त हुई हूँ अब,  
उसने सदा सभी विधि से है उस दुकान की अल्प आय से  
मेरा बढ़ा किया सम्मान । निज धन-मुक्त हुई हूँ अब ।

❀

❀

पर उसका ऋण ऐसा कुछ है, बहिन, लिखा जो कुछ है तुमने . उससे वञ्चित हो जाऊँगी,  
नित्य रहेगा जो मुझ पर, परम-सत्य है अति सुन्दर, होता सोच यही मन में,  
उससे नहीं छूट सकती मैं देती थी उपदेश मधुर नित बहुत कष्ट तुमको देती थी  
लेकर के भी जन्म अपर । मुझे तुम्हारी बुद्धि प्रखर । पर सङ्कोच यही मन में ।

❀

❀

❀

बहिन, रहो सुख से सदैव तुम, कोई माने या कि न माने  
अभिलाषा है अन्त यही, हम तुम वहीं सदैव पवित्र,  
उन्नति सदा करोगी अपनी, जो मिलता अन्तरानन्द है  
शुभ आशा है अन्त यही । उसका, वह नित नव्य विचित्र ।

❀

❀

क्या उसके अतिरिक्त चाहिए ? धन की आवश्यकता क्या है ? ये गुण अति आनन्दप्रद हैं,  
यश कब तक रहता जग में, अल्प लाभ पर ही सन्तोष, इनका अपने में सुविकाश  
हमको क्या ? आनन्द भरा है उन्नति की चेष्टा सदैव ही, करना है कर्तव्य हमारा,  
अपने तो इस रग-रग में । देना नहीं किसी को दोष, और ढूँढ़ना परम प्रकाश ।

❀

❀

❀

बहिन, जानती हूँ, तुमने है और नहीं तो बुद्धि तुम्हारी देना आशीर्वाद सदा ही,  
लिखीं जोश में वे बातें, बड़ी तीव्र, तुमको उपदेश रखना मुझ पर दया सदैव  
अथवा इस समाज के ऊपर मैं क्या दूँगी ? बात रह गई, करती हूँ प्रणाम पद छूकर,  
लिखीं रोष में वे बातें, बहिन, नहीं कहने को शेष । रक्षा करे हमारी दैव ।



[ समाप्त ]



### भीषण अभियोग

बिहार प्रान्त से एक कुमारी ने लिखा है :—

श्री० सम्पादक जी, प्रणाम !

मैं भूमिहार ब्राह्मण जाति की कन्या हूँ। मेरी उम्र इस समय बीस बरस की है। परन्तु अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ है। इस गाँव के लोग लड़कियों पर बड़ा अत्याचार करते हैं। रुपए लेकर उन्हें बूढ़ों के हाथ बेच कर उनकी जिन्दगी खराब कर देते हैं। बहुधा लड़कियों के सगे-सम्बन्धी ही उन्हें धर्मभ्रष्ट करके भ्रूणहत्या आदि पाप कर बैठते हैं। ऐसी ही भीषण दशा मेरी भी है। एक रात्रि मैं मेरे सगे भाई ने बलात्कार-पूर्वक मुझे धर्मभ्रष्ट कर डाला ! अब भी जब कभी उसकी इच्छा होती है, बलपूर्वक अपनी कुरसित लालसा पूरी कर लेता है। माता-पिता इस बात को जानते हुए भी बदनामी के डर से कुछ नहीं बोलते। वे न तो मेरा कहीं व्याह ही कर देते हैं और न अभागो भाई को ही मना करते हैं। बल्कि उल्टे मेरे ही ऊपर कड़ी नज़र रखते हैं। मुझे न कहीं बाहर जाने की आज्ञा है, न किसी से बोलने की। अगर मैं कभी इस आज्ञा की अवहेलना करती हूँ तो बेतरह पीटी जाती हूँ। जब तक कोई पूरा दाम देकर मुझे खरीद लेने वाला घर नहीं मिलेगा, तब तक मैं इसी तरह नरक-यातना सहती रहूँगी।

हमारे गाँव के पास ही एक दूसरा गाँव है। यहाँ हिन्दी की एक पाठशाला है। एक सरवरिया ब्राह्मण सज्जन उस पाठशाला में अध्यापक होकर आए। कुछ दिनों के बाद मेरे घरवालों से उनकी मैत्री हो गई और

वे भोजन करने के लिए मेरे घर आने लगे। कुछ समय बीतने पर मुझसे और अध्यापक जी से प्रेम हो गया। वे बड़े उदार-हृदय, सज्जन और प्रेमी युवक हैं। उन्होंने मुझे अपनी जीवन-सङ्गिनी बनाने का वचन दिया। मैंने भी इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। मैंने सोचा कि अब इस नारकीय जीवन से मेरा उद्धार हो जायगा। परन्तु अध्यापक जी से बोलना मेरी माता को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उनके सामने आने से मुझे रोक दिया। हम लोगों का परस्पर बोलना-चालना रुक गया। परन्तु हमारे उनके प्रेम में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इसलिए अध्यापक जी ने मुझे एक पत्र लिखा कि चलो, अमुक समय हम लोग यहाँ से भाग चलें। यह पत्र उन्होंने एक बालक के हाथ भेजा था। परन्तु मेरे दुर्भाग्यवश वह पत्र मेरे पिता जी के हाथ में पड़ गया। फिर क्या था, मेरी आकृत आगई। पिता ने मुझे खूब पीटा और अध्यापक जी को भी मारने के लिए ढूँढ़ने लगे। परन्तु खबर पाकर अध्यापक जी भाग गए।

सम्पादक जी, अब मेरा जीवन बड़े सङ्कट में पड़ा है। मैं एक बन्दिनी की तरह पड़ी हूँ। भाई का अत्याचार जारी है। कहीं गर्भ रह गया तो भ्रूण-हत्या करनी पड़ेगी अथवा किसी बूढ़े से व्याह करके आजीवन वैधव्य भोगना पड़ेगा। अब आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय सोच कर बताइए, जिससे इस पापमय जीवन से मेरा छुटकारा हो। मेरी इच्छा कभी-कभी आत्महत्या करके मर जाने की होती है। परन्तु माता जी सदा सावधान रहती हैं, इसीसे भाग जाने का भी मौका नहीं मिलता।



फिर अगर भागू भी तो कहाँ जाऊँ ? देहात की लड़की हूँ। कभी बाहर गई नहीं। रास्ता मालूम नहीं। कहीं किसी बदमाश के पाखे पड़ गई तो और भी मुश्किल होगी। कृपा करके मेरा पत्र छाप दीजिए और 'चाँद' द्वारा ही मेरे आग्रह का भी कोई उपाय बताइए।

आपकी,

× × ×

[ लड़की ने यह पत्र कैथी लिपि में लिखा है। भाषा इसकी विहारी हिन्दी है। परन्तु पत्र का आशय वही है, जो ऊपर छपा है। हम इस घृणित पत्र को 'चाँद' में छापने के लिए पाठकों से क्षमा चाहते हैं। परन्तु हमें यह कहते दुःख होता है कि इस पत्र में लिखी हुई बातें हमारे अभागे हिन्दू-समाज के लिए असम्भव नहीं हैं। जिन्हें अबला-आश्रमों तथा विधवायों के हाथों में जाने वाली अभागिनी हिन्दू-स्त्रियों की दशा का ज्ञान है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि ऐसी सौ में नब्बे स्त्रियाँ अपने सगे-सम्बन्धियों द्वारा ही भ्रष्ट की जाती हैं। अन्धा समाज अपनी आँखों से यह पाप-लीला देखता है, परन्तु उसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं करता। अस्तु, लड़की ने अपने पत्र में जिन अध्यापक जी का जिक्र किया है, वे यदि वास्तव में उससे प्रेम करते हैं और उसे अपनी जीवन-सहचरी बनाना चाहते हैं, तो उन्हें साहस करके इस प्रश्न को भूमिहार-ब्राह्मण समाज के सामने रखना चाहिए। वह एक प्रतिष्ठित समाज है। इसमें धनवानों, विद्वानों और समाज-सुधारकों की कमी नहीं है। उसकी जातीय सभाएँ भी हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस समाज के नेता इस अभागिनी लड़की के उद्धार के लिए अवश्य ही कोई उपाय करेंगे। लड़की को भी चाहिए कि अपनी कष्ट-कहानी अपने समाज के प्रतिष्ठित और पढ़े-लिखे लोगों के कानों तक पहुँचाने की कोशिश करे।

—स० 'चाँद' ]

## एक विकट प्रश्न

मध्य भारत से एक सज्जन लिखते हैं :—

श्री० एडीटर साहब, नमस्ते !

मैं एक खान्दानी माथुर कायस्थ-युवक हूँ। आज प्रायः दो साल से मेरा प्रेम एक सजातीय लड़की से हो गया है। परन्तु मेरी अदम-मौजूदगी में और लड़की के बार-बार इन्कार करते रहने पर भी, जबरन उसकी शादी एक ऐसे आदमी के साथ कर दी गई है, जो सर्वथा उसके अयोग्य है। उस मनुष्य की तन्दुरुस्ती बिल्कुल ही शराब है और वह शराबी तथा व्यभिचारी भी है। लड़की उसे ज़रा भी पसन्द नहीं करती और न इस विवाह से वह सुखी है। इधर मेरी भी अटल प्रतिज्ञा है कि इस जन्म में नहीं तो मर कर अगले जन्म में इसी लड़की से शादी करूँगा। इसलिए या तो मैं मर जाऊँगा या साधु होकर इधर-उधर भटकता फिरूँगा। वह भी अपने जीवन से निराश हो गई है और माता-पिता की बदनामी न कराकर चिरशान्ति लेना चाहती है। जल्द ही उसका गौना होने वाला है। वहाँ जाने पर उसकी क्या दशा होगी, भगवान् ही जानें। अब हमने आपकी शरण ली है। कृपा करके कोई उचित उपाय बता कर हमारी रक्षा कीजिए।

भवदीय,

× × × माथुर

[ जिस विवाह की भित्ति प्रेम नहीं अथवा जो विवाह पात्र-पात्री की इच्छा के विरुद्ध जबरन कर दिया जाता है, उसे हम विवाह मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। ऐसे नाजायज़ विवाहों को तो अब निर्दयतापूर्वक ठुकरा देने की ज़रूरत है। परन्तु हिन्दू-धर्मशास्त्र और वर्तमान काल के कानून के अनुसार माथुर जी के लिए अब कोई उपाय नहीं रह गया है। हाँ, यदि दोनों प्रेमियों में इतना साहस हो और वे नेकनामी-बदनामी की परवा छोड़ कर धर्मान्तर ग्रहण कर लें, उदाहरणार्थ सिक्ख-धर्म स्वीकार कर लें, तो जबरन जोड़ा हुआ विवाह-बन्धन टूट सकता है। यदि माथुर जी और उनकी प्रेमिका का पारस्परिक





प्रेम सच्चा हो और उसके लिए वे अपना सब कुछ निछावर करने को तैयार हों तो ऐसे ही किसी उपाय का अवलम्बन कर सकते हैं। अन्यथा और कोई उपाय हमारी समझ में तो नहीं आता। यदि नवयुवक साहस करें तो बड़ी आसानी से विवाह सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं।

—सम्पादक 'चाँद' ]



## एक शिक्षिता वन्दिनी

एक पढ़ी-लिखी लड़की ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

सादर नमस्ते। मेरा जन्म एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ है। मैं × × नगर की निवासिनी हूँ और यहीं की यूनिवर्सिटी से सेक्रेड डिप्लोमा में मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास की है। मेरी उम्र १९ साल की है और अभी तक कुंवारी रखी गई हूँ। मैं एक शिक्षित परिवार की लड़की हूँ, परन्तु मेरे परिवार में परदे की प्रथा अभी तक मौजूद है। हम प्रथा के प्रेमी मेरे एक चाचा जी हैं, जो पढ़े-लिखे, होशियार, सुधारक और आर्य-समाजी हैं। परन्तु मेरे सम्बन्ध में, न जाने क्यों उनके विचार बड़े ही हीन हैं। वे मुझ पर बड़ी कड़ी नजर रखते हैं। किसी से बोलते देखते हैं तो क्रौरन पूछते हैं, उससे क्या बातें हो रही थीं? वह क्यों आया था? उनकी सज्जती के कारण मैं दिन-रात एक कोठरी में पड़ी रहती हूँ। इससे मेरा स्वास्थ्य खराब होता जा रहा है। एक बार वह मुझे मारने को भी तैयार हो गए। परन्तु महल्ले वालों ने बीच-बचाव कर दिया। मालूम नहीं, वे क्यों मुझ पर सन्देह किया करते हैं और लोगों की नज़रों में मुझे दुश्चरित्रा बना कर मेरी बदनामी कराते हैं। सम्पादक जी, आप तो कहते हैं कि स्त्रियों को पुरुषों की तरह सब अधिकार मिलना चाहिए और

यहाँ पुरुष लोग किसी से बातचीत करने की इजाज़त तक नहीं देना चाहते। मैं तो अब इस नारकीय जीवन से घबरा गई हूँ और स्वतन्त्र रह कर देशसेवा-सम्बन्धी कुछ कार्य करना चाहती हूँ। मैं अन्तर्जातीय विवाह के लिए भी तैयार हूँ। आप कृपा करके बताइए कि मेरी यह अभिलाषा कैसे पूरी हो सकती है और कैसे मेरा उद्धार हो सकता है।

आपकी एक दुखिया बहिन,

क × × देवी

[ एक शिक्षित परिवार में भी परदा-प्रथा मौजूद है और अकारण ही एक पढ़ी-लिखी लड़की सन्दिग्ध दृष्टि से देखी जाती है। यह वास्तव में उस कुसंस्कार का परिणाम है, जो दुर्भाग्य-वश हमारे समाज के शिक्षितों में भी मौजूद है। इसलिए लड़कों के चाचा जी से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे अकारण ही उसे सन्देह की नज़रों से न देखें। उन्हें यह स्वयं ही सोचना चाहिए कि मैट्रिक तक पढ़ी हुई लड़की किसी तरह भी परदे के जाल में जकड़ कर नहीं रखी जा सकती। लोगों से बातचीत करने आदि की उचित स्वतन्त्रता तो उसे मिलनी ही चाहिए। इस लड़की को भी हमारी सलाह है कि वह इस तरह रहे और अपने आचार-व्यवहार को ऐसा बना ले कि उससे चाचा के चित्त की सन्दिग्धता मिट जाय। स्वतन्त्र होकर देश-सेवा करने की अभिलाषा स्तुत्य है, परन्तु उसके लिए उतावली होने की आवश्यकता नहीं। अभी तो सारा जीवन ही सामने पड़ा है। इस अभिलाषा की पूर्ति तो किसी सुयोग्य जीवन-सहचर के मिलने पर ही सुचारु रूप से हो सकती है। धीरता और गम्भीरतापूर्वक खूब सोच-समझ कर ही कुछ करना चाहिए।

—सम्पादक 'चाँद' ]





**धार्मी-शिक्षा**—लेखक, श्री० अत्रिदेव गुप्त, विद्यालङ्कार, भिषगृत्न ; प्रकाशक, गङ्गा ग्रन्थागार, लखनऊ ; पृष्ठ-संख्या २६७ ; मूल्य २)

वर्तमान समय में हिन्दी-प्रकाशकों का ध्यान चिकित्सा-ग्रन्थों की तरफ विशेष रूप से आकर्षित हुआ है और इसलिए थोड़े ही समय में इस विषय की अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। धार्मी-शिक्षा भी चिकित्साशास्त्र का एक अङ्ग है और उसका ज्ञान प्राप्त करना सर्वसाधारण के लिए अत्यावश्यक है। इस ज्ञान के अभाव से वर्तमान समय में हमारी स्त्रियों और शिशुओं को अनेक ऐसे कष्टों का सामना करना पड़ता है, जिनसे थोड़ी सी सावधानी रखने से बचा जा सकता है। इस दृष्टि से इस प्रकार की पुस्तकों का प्रचार बढ़ाना समाज के लिए कल्याणजनक है। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा लेखक और प्रकाशक ने इस प्रकार के साहित्य की वृद्धि की है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इसको धार्मी-शिक्षा सम्बन्धी कई प्रामाणिक अङ्गरेजी ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है और संस्कृत, गुजराती तथा बङ्गला पुस्तकों की भी सहायता ली गई है। लेखक ने जननेन्द्रिय के स्वरूप तथा उसमें गर्भकाल में उत्पन्न हो जाने वाली अनेक व्याधियों का विशद रूप से वर्णन किया है। विषय को समझाने के लिए बहुसंख्यक चित्र भी दिए गए हैं।

**मौर्य-साम्राज्य के जैन-वीर**—लेखक, श्री० अयोध्याप्रसाद गोपलीय ; प्रकाशक, जैन-मित्र-मण्डल, धर्मपुरा, देहली ; पृष्ठ-संख्या १७३ ; मूल्य १८)

इस पुस्तक में लेखक ने सिद्ध किया है कि मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त जैन-धर्मावलम्बी थे। इसके लिए उसने अनेक विदेशी लेखकों के प्रमाण उद्धृत किए हैं। इतिहास से विदित होता है कि उस काल में भारतवर्ष में जैन-धर्म की प्रधानता थी। यद्यपि उस समय बौद्ध-धर्म का भी अस्तित्व था, पर उसका प्रचार विशेष रूप से सम्राट् अशोक के बौद्ध हो जाने के पश्चात् हुआ। यह अशोक चन्द्रगुप्त का पोता था। साथ ही उस समय वैदिक धर्म के प्रति लोगों में अश्रद्धा उत्पन्न हो गई थी और उसका अधिकांश में हास हो गया था। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि सम्राट् चन्द्रगुप्त जन्म से जैन रहा हो अथवा उसने बाद में जैन-धर्म स्वीकार कर लिया हो। लेखक ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए जो युक्तियाँ दी हैं, वे विचारणीय हैं।

—स० भ०

**मधुकन**—रचयिता, श्री० भगवतीचरण वर्मा ; प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग ; छपाई तथा गेट-अप अत्यन्त सुन्दर ; मूल्य १।।)

‘मधुकन’ श्री० भगवतीचरण वर्मा की उन कविताओं का संग्रह है, जो बहुत पहले ही प्रसिद्धि पा चुकी हैं। इस संग्रह के निकलने में अधिक देर हो गई और इसका कारण भी लेखक ने अपनी पुस्तक की भूमिका में दे दिया है। उनकी यह धारणा है कि कवि की रचनाओं का संग्रह उस समय प्रकाशित होना चाहिए जब जनता में उसकी रचनाओं की माँग हो। ‘मधुकन’ वर्मा जी की तेईस चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। जिनमें ‘क्रय-विक्रय’, ‘कसक-कहानी’, ‘मेरी प्यास’,

‘संसार’, ‘नूरजहाँ की क़ब्र पर’ ‘हिन्दू’ तथा ‘तारा’ (एकाङ्की नाटक) बहुत लोकप्रिय हैं।

वर्मा जी की कविता में कोमलता और कारुणिक कमनीयता का अनुभव नहीं होता, किन्तु फिर भी यह अत्यन्त हृदयग्राहिनी है। इसका कारण भी ढूँढ़ना नहीं पड़ता। पढ़ते ही ज्ञात होता है कि कवि की धमनियों में उष्ण रक्त का प्रवाह है, पौरुष है और स्फूर्ति है। जहाँ शैली और कीट्स अपनी सरसता और कोमलता के लिए विख्यात हैं, वहाँ बाइरन का नाम भी उसकी कविता में पौरुष और स्फूर्तिवान् आवेग के कारण नहीं भुलाया जा सकता। वर्मा जी में बाइरन के बहुत से गुण विद्यमान हैं। मन्द स्पन्दनशील हृदय को ऐसी कविताएँ इतनी पसन्द न आवेंगी, किन्तु इनका ओज-गुण तो सर्वमान्य होगा ही। वर्मा जी की कविताएँ आवेशपूर्ण झुंझा के समान पाठक को हिला देने की सामर्थ्य रखती हैं; इसी में उनका ओज-गुण है। झुंझा सबके लिए सत्य और प्रिय नहीं हो सकती।

वर्मा जी की कविता में शक्ति और तेज के सथ कवित्व का समावेश भी प्रचुर मात्रा में है। जो कवि ‘नूरजहाँ की क़ब्र पर’ निम्न पंक्तियाँ लिखने में समर्थ है, वह कवित्वहीन नहीं कहा जा सकता।

“तुम रजकण के ढेर, उलूकों के तुम भग्न विहार !  
किस आशा से देख रहे हो उस नभ पर प्रतिभार  
कि जिससे टकराता कभी

तुम्हारा उन्नत भाल ?  
सुनते हैं तुमने भी देखा था वैभव का काल  
धूल में मिले हुए कङ्काल ?

तुम्हारे सङ्केतों के साथ नाचता था साम्राज्य विशाल;  
तुम्हारा क्रोध और उल्लास बिगड़ते-बनते थे भूपाल,  
किन्तु है आज कहानी शेष प्रबल है प्रबल काज की चाल !”

‘नूरजहाँ की क़ब्र पर’ बहुत उच्चकोटि की कविता है और उसी के समान ‘तारा’ (एकाङ्की नाटक) भी है, जिसमें कवि चरित्र-चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में कविता की भाँति सफल हुआ है।

अपनी स्त्री तारा और शिष्य चन्द्रमा के पाप-कर्म को जान कर गुरु बृहस्पति शाप देते हैं :—

चन्द्रमा से—“ऐ कृतघ्न उद्भ्रान्त तुम्हारा नाश हो !  
सुर हो तुमने किया सुधा का पान है

मर सकते हो नहीं मुझे यह दुःख है।

देता हूँ मैं शाप नित्य धूल-धूल मरों।

फिर जीवित हो शनैः-शनैः आकाश में

अन्धकार के समय सदा विचरा करो

जिससे यह संसार सदा देखा करो

पापी को—प्रतिभार पाप-परिग्राम को !

तारा से—पतिता दुराचारिणी तारा ! तुम चलो

चूर-चूर होकर बिखरो आकाश में

निज प्रेमी के साथ सदा घूमा करो।

देखो उसका नाश और तुम विश्व से

निज पापों की कहो कहानी सर्वदा !”

उपर्युक्त पंक्तियों में उच्चकोटि की कवित्व-शक्ति भासमान है। एक और बात भी उतनी ही स्पष्ट है—वर्मा जी की कविता में स्पष्टता। यह स्पष्टता भाषा तथा कल्पना ही में नहीं, वरन् विचारों में भी उतनी ही अधिक स्पष्ट है। आधुनिक कविता के इस दुर्लभ गुण का मूल्या कुछ कम नहीं।

श्री० भगवतीचरण वर्मा की कविताओं में कवित्व के समान दार्शनिकता का भी प्रचुर मात्रा में समावेश हुआ है। इसका परिचय कवि की ‘परिचय’ शीर्षक कविता में मिल सकता है। आप लिखते हैं :—

“क्या भविष्य है ? नहीं जानता मुझको ज्ञात अतीत नहीं,  
सुख से मुझको प्रीति नहीं है। दुःख से मैं भयभीत नहीं”

यहाँ विश्व के प्रति उदासीनता का भय होता है, किन्तु फिर :—

“इस जीवन के तीखेपन में, विनय नहीं, अभिमान नहीं  
‘और’ ‘और’ का छोड़ यहाँ पर, और दूसरा ध्यान नहीं !”

अपने विषय में वे एक दूसरे स्थान पर कहते हैं :—

“क्या हूँ ? इस अनन्त का कण हूँ, मेरा कितना मोल !  
पर अनन्त पात्रोगी मुझमें अपनी आँखें खोल—

यहाँ देखोगी रूप विराट् ।”

वर्मा जी ‘मधुकन’ की भूमिका में एक समालोचक के रूप में भी उपस्थित हुए हैं। यद्यपि आपका ऐसा विचार है कि कवि एक अच्छा समालोचक नहीं हो सकता (आप कवि हैं); तथापि आपने आधुनिक हिन्दी-कविता की अच्छी विवेचना की है। आपने छायावाद पर अच्छा प्रकाश डाला है। अपनी अत्यन्त विनम्र भूमिका में गुरुजनों से प्रार्थना की है कि वे आधुनिक कविता को

समझने का प्रयत्न करें। आप गति को कृत्रिम मानते हैं और इसीलिए आप 'मुक्त-छन्द' की आलोचना में सफल नहीं हुए हैं।

वर्मा जी हिन्दी के परिचित सत्कवि हैं। आधुनिक काव्य-साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। आशा है, कविता-प्रेमी पाठक 'मधुकन' का यथोचित समादर करेंगे।

—नरेन्द्र

❀ ❀ ❀

**काम-कुञ्ज**—लेखक, श्री० विजयबहादुर-सिंह, बी० ए० ; प्रकाशक, महाशक्ति साहित्य-मन्दिर, बुलानाला, बनारस सिटी ; आकार डबल-क्राउन सोलह पेजी ; पृष्ठ-संख्या प्रायः पौने सात सौ ; सजिल्द, मूल्य ४)

गाहस्थ-जीवन के लिए कामशास्त्र एक अत्यावश्यक वस्तु है। इस शास्त्र के न जानने के कारण ही आज हमारे देश के युवक-युवतियों का स्वास्थ्य अधोगति की सीमा पर पहुँच गया है और उनका शरीर रोगों का घर बन गया है। गाहस्थ-जीवन को इस अधोगति से बचाने के लिए ही हमारे ऋषियों ने कामशास्त्र की सृष्टि की थी और इसीलिए पाश्चात्य विद्वान् भी इस विषय की खोज में लगे हुए हैं। हमारे ऋषियों की तरह वे भी युवक-युवतियों के लिए काम-विज्ञान की शिक्षा को अत्यावश्यक और उपयोगी मानते हैं। फलतः ऐसे उपयोगी विषय पर यह विशाल ग्रन्थ लिख कर इसके लेखक महोदय ने समाज का विशेष कल्याण साधन किया है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में आपने इस विषय के ३४ ग्रन्थों से सहायता ली है और काम-विज्ञान सम्बन्धी कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसका समावेश इस ग्रन्थ में न हुआ हो। मर्षि वात्सयन के काम-सूत्रों की सरल और सुबोध व्याख्या करने में तो आपने कमाल कर दिया है। इसलिये साधारण भाषा-ज्ञान रखने वाले भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। सारी पुस्तक सुरुचिपूर्ण शिष्ट भाषा में लिखी गई है। यही कारण है कि कितने ही प्रोफेसरों तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों ने लेखक के प्रयत्न की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। संस्कृत-साहित्य के प्रगाढ़

परिचित आचार्य भगवानदास जी ने इस पुस्तक के लिए ७८ पृष्ठों की लम्बी और विशेष तथ्यपूर्ण भूमिका लिख कर इस पुस्तक की उपादेयता को और भी बढ़ा दी है। इसके बाद लेखक की ५२ पृष्ठों की "अपना मन्तव्य" शीर्षक प्रस्तावना है, जिसमें कामशास्त्र की उपयोगिता आदि कई विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। हमें आशा है कि हिन्दी-संसार में इस पुस्तक का खूब आदर होगा और जो लोग 'कामशास्त्र' और 'कोकशास्त्र' के नाम पर रही पुस्तकें खरीद कर अपने पैसे और परिश्रम की बरबादी करते थे, वे इस ग्रन्थ से लाभ उठावेंगे।

❀ ❀ ❀

**स्त्री और सौन्दर्य**—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर; प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तक-माला, दारागञ्ज, प्रयाग ; आकार मैग्नोला; छपाई, सफाई और बाह्यावरण अत्यन्त सुन्दर; पृष्ठ-संख्या ३०५, मूल्य २।।)

सौन्दर्य स्त्री ही क्यों, स्त्री-पुरुष दोनों के लिए ही एक आवश्यक वस्तु है, क्योंकि इसका सम्बन्ध स्वास्थ्य से है, जिसके बिना जीना न जीने के बराबर होता है। पुस्तक की लेखिका ने इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है। इसके अलावा सामाजिक जीवन में सौन्दर्य का स्थान, उसकी रचा का उपाय और नष्ट हो जाने पर उसे पुनः प्राप्त करने के साधन आदि तत्सम्बन्धी बहुत से विषयों पर अच्छी तरह विचार किया है। स्त्रियाँ इस पुस्तक को पढ़कर विशेष लाभान्विता हो सकती हैं।

❀ ❀ ❀

**'तेज' (उर्दू) का श्रीकृष्ण नम्बर**—सम्पादक, श्री० धर्मपाल गुप्त; मूल्य १८; प्राप्ति-स्थान—'तेज' ऑफिस, दिल्ली।

दिल्ली का 'तेज' उर्दू भाषा का नामी राष्ट्रीय पत्र है। यह दैनिक और साप्ताहिक दोनों रूपों में प्रकाशित होता है। 'तेज' का यह कृष्ण नम्बर गत कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर निकला है। इसमें भारत के कोटियों नामी विद्वानों के लेख और कविताएँ हैं। कई रज्जिन और एक-रङ्गे चित्रों से अङ्क अलंकृत है। अङ्क संग्रह करके रखने की चीज़ है।

